मर्यादा ।

सचित्र मासिक पत्रिका ।

५५-६२

नवां भाग, नवां खण्ड ।

माघ–ज्येष्ठ ।

(जनवरी—जून)

१९७१

वार्षिक मूल्य तीन रुपया ।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग ।

वर्णानुक्रमिक विषय-सूची।

विषय	पृष्ठ से पृष्ठ तक
१-अन्य लोक में जाकर गिरा हुआ पुरुष-श्रीयुत चम्पालाल जौहरी (सुधाकर)	२७२-२८०
२-अमेरिका के विश्वविद्यालय-श्रीयुत शिवनारायण द्विवेदी	१९४-२०१
३-अशोक के शिलालेख-श्रीयुत रमाशङ्कर अवस्थी	२९६-२९८
४-आग की चिनगारी-श्रीयुत अम्बिकाप्रसाद पाण्डेय एम० एस० सी०	२२४-२२९
५-आशा विफल हुई (कविता)-कुसुमाकर	३०४-
६-आदर्श-पुरुष (कविता)-श्रीयुत प्रेमराम वैष्णव	३७०-३७१
७-इंगलैंड की शासन-पद्धति-श्रीयुत शिवनारायण द्विवेदी	३३-३८
८-एक राष्ट्रीय आवश्यकता (कविता)-श्रीयुत भगवन्नारायण भार्गव	३२२-
९-औरंगज़ेब के पत्र-पं० शिवनारायण द्विवेदी	८६-८८
१०-कला और स्वदेशी-श्रीयुत परशुराम चतुर्वेदी	३५३-३५७
११-कान्यकुब्जाधिपति श्रीहर्षवर्धन-श्रीयुत बालमुकुन्द बाजपेयी	३३६-३४८
१२-कैविन (कविता)-श्रीयुत ठाकुर प्रसाद शर्मा	२९३-
१३-गर्भिणी स्त्री को प्रसव कष्ट क्या होता है ?-श्रीयुत डाक्टर के० स्त्री० औडी एम० डी०	२६६-२७०
१४-गान्धी स्वागत (कविता)-श्रीयुत ठाकुरप्रसाद शर्मा	२५६-२५७
१५-गीताञ्जलि-श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुर	२२०-२२२
१६-गीताञ्जलि-श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुर	३८-४०
१७-ग्रीष्मागमन (कविता)-श्रीयुत मन्नालाल द्विवेदी "द्विजलाल"	३४८-३५१
१८-चीन की गुप्त सभाएं-श्रीयुत नारायणप्रसाद अरोड़ा	१३८-१४१
१९-चेतावनी (कविता)-श्रीयुत श्री-शङ्कर याज्ञिक	१९३-
२०-जय स्वतंत्रते (कविता)-श्रीयुत भगवन्नारायण भार्गव	२२३-
२१-जलचर जीव-श्रीयुत दशरथ बलवन्त जादव	१०३-१०४
२२-जातीय भाषा (कविता)-पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय	५-८
२३-जीवन का मूल्य-श्रीयुत श्रीराम भा	२१-२४
२४-तिजारती लड़ाई-श्रीयुत सैयद हैदर हुसेन	३१-३२
२५-दीन की आह-श्रीयुत अयोध्या-सिंह उपाध्याय	१६९-
२६-देशभक्ति-एक एम० ए० एल० एल० बी०	३१३-३२२
२७-नवीन स्वाधीनता-एक भारत-वासी	९१-९३

विषय	पृष्ठ से पृष्ठ तक
२८-नवीन सम्पत्तिशास्त्र-पं० सोमेश्वरदत्त शुक्ल बी० ए०	१६४-१६८
२९-नैतिक साहस-श्रीयुत विश्वनाथ द्विवे	३०४-३१०
३०-नौहवे वफ़ात मि० गोपाल कृष्ण गोखले-श्रीयुत ब्रजनारायण चक्रवर्त्त	१७८-१७९
३१-पति-पत्नी संवाद-श्रीयुत लक्ष्मण सिंह वर्मा	१५५-
३२-प्रतिभा का विकाश-श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी	१३३-१३५
३३-प्राचीन भारतवर्ष में युद्ध-पं० प्रयागप्रसाद त्रिपाठी	२५-३१
३४-प्राचीन भारत में प्रजातंत्र-श्रीयुत राधामोहन गोकुल जी	६५-७०
३५-प्रार्थना (कविता)-ग्रामीण	२९८-२९९
३६-पुरुषार्थ और एकता-श्रीयुत गोवर्धन दास	२६४-२६६
३७-प्रेम-पराकाष्ठा (कविता)-श्रीयुत पं० राममारायण चतुर्वेदी	२७१-
३८-प्रेमी का पत्र	२४३-२४७
३९-बालकों को वर्णमाला सिखाने का सुगम उपाय-एक शिक्षक	३५१-३५७
४०-बेलजियम के जातीय गीत का भाषान्तर (कविता)-श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी	२०-
४१-बेलजियम की रानी-श्रीयुत चन्द्रलाल गुप्त बी० ए० एल० एल० बी०	८९-९१
४२-भारत-वन्दना (कविता)-पंडित जीवानन्द शर्मा (काव्यतीर्थ)	२४-३१
४३-भारतवर्ष में शिक्षा का आधुनिक क्रम-श्रीयुत विश्वश्वर प्रसाद	९६-९९
४४-भारतवर्ष के विश्वविद्यालयों में हिन्दी को स्थान-श्रीयुत राजेन्द्रप्रसाद एम० ए० बी० एल०	१०५-११०
४५-भारत-भारती-श्रीयुत उद्भट	११९-१२२
४६-भारत-भारती-श्रीयुत उद्भट	१८०-१८६
४७-मनुष्य उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग क्यों करते हैं?-श्रीयुत नर्मदाप्रसाद वर्मा	२०२-२१६
४८-मनुष्य-तत्व-श्रीयुत शारदाचरण पाण्डेय	१२९-१३३
४९-महापुरुष-श्रीयुत नारायणप्रसाद अरोड़ा	८४-८६
५०-महात्मा गोखले-श्रीयुत भगवन्नारायण भार्गव	२९९-३०४
५१-मातृभाषा का प्रेम-श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी	१६३-
५२-मातृभाषा में शिक्षा-श्रीयुत पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी	२१७-२१८
५३-माधवराव सिंधिया-श्रीयुत गंगाशंकर मिश्र	१४२-१५०
५४-मि० गोखले का गुणगान-श्रीमती सरोजनी नायडू	१८६-१९०
५५-मुसलमानों की शासननीति-श्रीयुत राधाकृष्ण झा	२३७-२४२
५६-मुहम्मद के चरित्र पर एक दृष्टि-श्रीयुत नारायणप्रसाद अरोड़ा	२६१-२६२
५७-यह क्यों-श्रीयुत ठाकुर शिवनन्दनसिंह बी० ए०	२४९-२५५
५८-युक्तप्रदेश में प्रारम्भिक शिक्षा-श्रीयुत बालमुकुन्द बाजपेयी	७०-७८
५९-युक्तप्रदेश में प्रारम्भिक शिक्षा-श्रीयुत बालमुकुन्द बाजपेयी	१५६-१६३
६०-युद्ध के अन्तर्राष्ट्रीय कानून-श्रीयुत सुपार्श्वदास गुप्त	९-१६
६१-युद्धक्षेत्र की सैर	५५-५८
६२-युद्ध सम्बन्धी गप्पें-श्रीयुत रामनारायण मिश्र	१३६-१३७

विषय	पृष्ठ से पृष्ठ तक
६३-युद्ध के बाद भारत	२३४-२३७
६४-युद्ध-श्रीयुत मुकुन्दीलाल	२५७-२६०
६५-युद्धक्षेत्र की सैर-श्रीमती उमा नेहरू	३६५-३७०
६६-रे मन ! (कविता)-श्रीयुत भगवन्नारायण भार्गव	२६५-२६६
६७-लार्ड मेयो-श्रीयुत पुत्तनलाल विद्यार्थी	४०-५५
६८-लोकनायक के रूप में शिवाजी-तरुण भारत	२८१-२८७
६९-विचित्र अभिनयकर्ता-श्रीयुत महावीरप्रसाद पोद्दार	३२७-३३६
७०-विजयदशमी के दिन माता को नमस्कार	३-५
७१-शनिग्रह-श्रीयुत चन्द्री प्रसाद	३५७-३६५
७२-शान्ति का दुरुपयोग	१०१-१०३
७३-शिवाजी की योग्यता-श्रीयुत तरुण भारत	७८-८४
७४-शिवाजी की योग्यता-श्रीयुत तरुण भारत	१७०-१७८
७५-शिवाजी की समकालीन परिस्थिति-श्रीयुत तरुण भारत	२३०-२३४
७६-सङ्कलित संख्या-श्रीयुत अम्बिका प्रसाद पाण्डेय एम० एस० सी०	९४-९६
७७-सम्पादकीय टिप्पणियां	५९-६४
७८-सम्पादकीय टिप्पणियां	१२६-१२८
७९-सम्पादकीय टिप्पणियां	१९१-१९२
८०-सम्राट् अशोक (कविता)-श्रीयुत दयानन्द चौबे	२१९-
८१-सम्पादकीय टिप्पणियां	२४७-२४८
८२-सम्पादकीय टिप्पणियां	३१०-३१२
८३-समिश्लित कुटुम्ब-प्रणाली-श्रीयुत नेमधर शर्मा	९९-१०१
८४-सहयोग समितियां-श्रीयुत भगवन्नारायण भार्गव	३२३-३२६
८५-सर्वोत्तम लेख-श्रीयुत कृष्णराम भा०	११०-११४
८६-सम्पादकीय टिप्पणियां	३७१-३७२
८७-सामुद्रिक लड़ाई-श्रीयुत राजाराम	१७-२०
८८-हतभागिनी हिन्दी (कविता)-श्रीयुत भागवत सिंह शर्मा	११५-
८९-हमारा नया वर्ष	१-३
९०-हमारा स्वप्न	१५०-१५३
९१-हमारी डायरी-श्रीयुत शिवप्रसाद गुप्त	२९५-२९६
९२-हा गोखले-श्रीयुत बसन्तलाल चौबे	१४२-
९३-हा ! गोखले (कविता)-श्रीमती तोरन देवी (लली)	२८०-
९४-होली का हुल्लड़ (कविता)-श्रीयुत नाथूराम शङ्कर शर्मा	१०४-१०५
९५-होली (कविता)-श्रीयुत अयोध्या सिंह उपाध्याय	१२३-१२६

वीरबाला.

५५-७२

लक्समबर्गकी रानी।
आप अविवाहिता हैं और आपकी अवस्था २० वर्ष की है.

ब्रिटिश धावा.

अचानक जर्मनोंको अपने सामनें पाकर ब्रिटिश वीर
धावा कर रहे हैं.

052/3v2
45-62

मर्यादा।

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ९] जनवरी सन् १९१५—माघ [संख्या १

हमारा नया वर्ष।

वर्षारंभ के दिन रूढ़ि के अनुसार प्रायः लोग जगन्नियन्ता जगदाधार की वन्दना करते हैं। वे लिखते हैं, उन्हीं की कृपा से आज पत्र या पत्रिका नूतन वर्ष में पदार्पण करती है। हम भी आज चार वर्षों से यही करते आये हैं किन्तु अबकी बार हम उसे दोहराना नहीं चाहते। आज हम शुष्क, नीरस शब्दों में यही कहकर "कि मर्यादा अब चार वर्ष की हुई" अपने कार्यभार से मुक्त होते हैं।

मर्यादा चार वर्ष की हुई; यह प्रसन्नता की बात है। अवस्था के अधिकार से अभी यह लालन-योग्य है। अब भी इसमें त्रुटियां अनेक हैं इसके लिए हम कुसूरवार हैं और ग्राहकों से क्षमा माँगते हैं।

यह सच है कि गत वर्ष में मर्यादा विगत वर्षों से अच्छी निकली, कई एक विशेष संख्याएं, जो शिक्षाप्रद और समयोपयोगी थीं, प्रकाशित की गईं। श्रीमती उमादेवी नेहरू द्वारा सम्पादित "स्त्रियों की विशेष संख्या" और दक्षिण एफ्रिका नम्बर की इतनी मांग रही कि फाइल में रखने को भी वे संख्याएं नहीं नसीब हुईं किन्तु साथ ही साथ "समय से प्रकाशित न होने का इसका दुःखदायी रोग" बढ़ गया और विशेषकर वर्ष के अन्तिम दिनों में इस रोग ने भीषण रूप धारण कर लिया था।

इसके लिए भी दोषी हमीं हैं, सम्पादक के नहीं वरन प्रबन्धकर्ता के नाते से। एक तो सदा के रोगी, दूसरे "अभ्युदय" के दैनिक रूप धारण करने से हमारा कर्तव्यभार कहीं अधिक होगया, रोज़ का काम अगित नहीं किया जा सकता लाचार मासिक का काम पिछड़ जाता था। अब इसका प्रबन्ध होगया है, अब कर्तव्य भार चार हाथों में रहेगा और आशा है कि "समय से न प्रकाशित होने के रोग" का हम मूलोच्छेद कर सकेंगे।

अब नूतन वर्ष भी जनवरी मास से माना जायगा। अधिक समय जो इधर मिला जाता है। उससे आशा है कि मर्यादा अब प्रति मास ठीक समय से अपने उदार, क्षमाशील और प्रेमी पाठकों की सेवा में उपस्थित होती रहेगी।

मर्यादा अन्य बातों में भी, आशा है, इस वर्ष अधिक उन्नति करेगी। मर्यादा का एक मात्र उद्देश्य राजनैतिक लेखों का प्रकाश करना तथा राजनैतिक सिद्धान्तों का प्रचार करना है। यद्यपि खुश होने की अभी बात नहीं है तथापि यह सन्तोष की बात अवश्य है कि अङ्गरेज़ी पढ़े हुए भाइयों का ध्यान अब मातृभाषा द्वारा अपने देशभाइयों की सेवा करने की ओर अधिक है। कितनों ही मित्रों ने इधर लेख लिख भेजे हैं और कितनों ही ने भेजने की प्रतिज्ञा की है। (प्रायः ऐसे ही लेखों की बाट जोहने के कारण भी मर्यादा के प्रकाशित होने में कभी २ विलंब हुआ है।)

इसके सिवा विशेष संख्याओं के प्रकाशित करने का भी विशेष प्रबन्ध हो रहा है और आशा है कि "स्त्रियों की विशेष संख्या" शीघ्रही प्रकाशित होगी। अन्य विशेष संख्याओं की विज्ञप्ति भी शीघ्रही प्रकाशित की जायगी।

अपने आदरास्पद लेखकों के प्रति हम मौखिक कृतज्ञता प्रकाश कर उनके भार से मुक्त होना नहीं चाहते। वे जानते हैं कि मर्यादा को उनका अभिमान है, वह उनसे गौरवान्वित है और उनके सामने वह सदा कृतज्ञताभार से नत है। किन्तु इस स्थिति में भी हम परम देशभक्त ला० लाजपतिराय जी के प्रति जो सहस्रों कामों के रहते हुए भी वर्ष में कितने ही लेख नाम से तथा बेनाम से भेजा करते हैं, बिना कृतज्ञता प्रकाश किये नहीं रह सकते। इसके कारण और भी हैं, जिनमें एक तो यह है कि दूर देश विलायत में बैठे हुए भी मर्यादा को उन्होंने नहीं बिसराया है और बिना किसी प्रकार की याद दिलाये ही वहां से इस संख्या में प्रकाशनार्थ एक लेख उन्होंने भेज दिया है। हमारे वे मित्र जिन्हें फुर्सत नहीं मिलती और कार्य की अधिकता के कारण जो सदा व्याकुल रहते हैं इस बात को ज़रा सोचें कि क्या लाला जी को काम कम है और क्या लाला जी को फुर्सत अधिक है? इसी समय में श्रीमती उमादेवी नेहरू को भी, जिन्होंने बड़ी कृपाकर "स्त्रियों की विशेष संख्या" का सम्पादन किया था, धन्यवाद देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं। उस संख्या को देखकर पाठकों को विदित हुआ होगा कि श्रीमती जी को उस संख्या के लिए कितना परिश्रम उठाना पड़ा था। सभी प्रान्तों की महिलाओं से लेख मँगवाना, उनके अनुवाद का प्रबन्ध करना, उचित विषयों का चुनना यह सब काम सरल न था; किन्तु यह प्रसन्नता की बात है कि इस परिश्रम से घबड़ा जाने के स्थान में श्रीमती जी का अपनी भगनियों की सेवा करने का प्रेम और गाढ़ा होगया और उन्होंने स्त्रियों की एक दूसरी विशेष संख्या निकालने की सूचना उसी अङ्क में दे दी। हमें खेद है कि श्रीमती जी के अनेक बार कहने पर भी हम इस दूसरी संख्या को अभी तक नहीं प्रकाशित कर सके। आशा है अब हम शीघ्र ही इस संख्या को जिसमें अधिकतर "स्त्रियों के स्वत्व" सम्बन्धी लेख रहेंगे प्रकाशित कर सकेंगे।

सहृदय पाठकों से यह हमारी विनीत प्रार्थना है कि वे समय समय पर हमें बतलाते रहें कि वे क्या चाहते हैं, किस प्रकार के लेख अधिक लाभप्रद और रुचिकर होंगे। एक की राय निरंकुश शासन की भांति हेय है और मर्यादा उसका सदा विरोध करनेवाली है।

मर्यादा को शिक्षाप्रद, रुचिकर और शक्तिशालिनी बनाने को हम तैयार हैं किन्तु इसके लिए पाठकों की कमेटी होनी चाहिये जो हमें यह बताया करे कि अमुक बात की इस समय आवश्यकता है। पाठकों की कार्यकारिणी

४५८२

समिति का होना एक दुष्कर बात है। ऐसी अवस्था में यही उचित होगा कि प्रत्येक पाठक को यह पूरा अधिकार रहे कि वह अपनी उचित सम्मति लिख भेजे। यथाशक्ति उनकी सम्मति के अनुसार किया जायगा।

अब हमें कुछ अधिक नहीं कहना है। मर्यादा का उद्देश्य जनता में स्वतंत्रता, समता और भ्रातृभाव की स्थापना तथा अत्याचारों की चाहे वे सामाजिक, चाहे धार्मिक और चाहे सरकारी हों, विरोध करना है।

मनुष्यों को मनुष्योचित और मनुष्य-प्राप्त अधिकार प्राप्त कराना इसका लक्ष्य है और इसी लक्ष्य की ओर यह बढ़ती रहेगी। इन्हीं विचारों को शिरोधार्य कर मर्यादा आज पाँचवें वर्ष में प्रविष्ट होती है और आशा करती है कि- अपने लेखकों और पाठकों की सहायता से वह अपने प्रयत्न में सफलता प्राप्त करेगी।

विजयादशमी के दिन माता को नमस्कार।*

माता! आज विजयादशमी है। तेरे पुत्र उत्तर से दक्षिण तक, पूर्व से पश्चिम तक, तेरे ही एक महान् पुत्र के, महान् विष्णु के यश और कीर्ति को स्मरण कर उत्सव मना रहे हैं। चारो ओर वह प्यारा शब्द मुंह से निकल रहा है जिसका चिन्तन करते ही मन मान और उमंग से भर जाता है। २२ करोड़ आर्यसन्तान आज एकही स्वर से और एकही हृदय से महाराज रामचन्द्र जी की जय मना रहे हैं। जिह्वा से शब्द निकालते ही वे अपने मन के मन्दिर में एक मूर्ति को स्थापन करते हैं और उस मूर्ति के सामने अति प्रेम और भक्ति से श्रद्धारूपी फूल चढ़ाते हैं। वह मूर्ति क्या है? माता तुम्हारे यौवन, तुम्हारे बल, तुम्हारे पराक्रम, तुम्हारे पुण्य, और तुम्हारे गौरव की एक प्रतिमा है; जी चाहता है कि उसके पैर चूम लें उसके चरणों से लिपट जायँ। मगर यह समझकर हट जाते हैं कि ऐसा न हो कि हमारे नापाक मुंह और हमारे अपवित्र शरीर के छू जाने से वह अपवित्र हो जावे परन्तु पवित्र वस्तुएँ तो सब प्रकार की अपवित्रता को अपने छूने मात्र से दूर कर देती हैं।

माता क्या तुमने अपनी पवित्रता से अपवित्र बालक रामचन्द्रजी को पवित्र न कर दिया था? इसलिए शारीरिक अपवित्रता का तो भय नहीं किन्तु मानसिक अपवित्रता हमें उनके निकट जाने से रोकती है। परन्तु मानसिक अपवित्रता का उपाय भी तो यही है कि मनुष्य पवित्र व्यक्तियों से अपना नाता जोड़े। माता तुमसे उतरकर महाराज रामचन्द्र से ज़्यादा पवित्र व्यक्ति हमको कहां से मिलेंगे। उनके साथ हमारा गहरा सम्बन्ध है। ये उसी कोख में पैदा हुए जिसमें तुमने हमको रक्खा। उनकी नाड़ियों में वही रक्त था जो तुमने हमको दिया था। उनके माथे पर वही टीका था जो तुमने अपने प्यारे हाथों से हमारे मस्तक पर लगाया। उन्होंने उन्हीं छातियों से दूध पिया जिनसे तुमने हमको पाला; फ़रक इतना है कि वह उसी दूध को पान करके मुक्त हो गये और हमने उसी दूध में नाना प्रकार की बीमारियों के कीड़े मिलाकर अपने आपको रोगों का केन्द्र बना लिया। माता तुम्हारे दूध में दोष नहीं। दूध तो वैसाही पवित्र, निर्मल, साफ़, बल और पराक्रमवाला है परन्तु हमारे कर्मों का दोष है। हमने अपनी लापरवाही से, अपनी

---

* विलम्ब से आने के कारण यह लेख उचित समय पर न छप सका। (सं० म०।)

मूर्खता से और सब से ज़्यादा अपनी कायरता से उस दूध को कलुषित बना दिया है। माता के जिस दूध को पानकर छत्रधारी क्षत्री पैदा हुए थे, जिस दूध के एक दो घूंट पीकर अन्य माताओं की सन्तान वीर हो जाती थीं आज वही दूध तुम्हारी अपनी सन्तान को पृथ्वी का भार और कायर बना रहा है।

कारण क्या है।

माना कि तुम्हारा दूध खालिस नहीं रहा कुछ तो तुम्हारा दूध कलमश होगया है। मगर उसके अतिरिक्त हमने और बहुत बेशुमार अन्य वस्तुएं भी खानी शुरू कर दी हैं जिन्होंने हमारे अन्दर रोग पैदा कर दिया है। माता ऐसी अवस्था में हम तुम्हारे शिरोमणि पुत्र महाराज रामचन्द्र को देखकर अत्यन्त अचम्भे में पड़ जाते हैं और यह कहने लगते हैं कि वह तो स्वयम् प्रभू थे, तुम्हारे पुत्र न थे। परन्तु यह हमारी भूल है वह प्रभू के पुत्र थे इसमें सन्देह नहीं परन्तु आखिर निकले तो वे तुम्हारे पेट से ही थे न? उनकी जननी तो तुम्हीं थीं फिर आज क्या हो गया कि हम ऐसे ख़स्ताहाल और बेहाल हुए फिरते हैं? माता सामने से ज़रा हट जाओ, हमको जानकी जी को देख लेने दो। अहा हा! क्या सुन्दर छवि है। स्वयम् सरस्वती का रूप है। सौन्दर्य, रस, मिठास की मूर्ति है। आँखें तो देखो कमल की तरह से खिली हैं, लोगों की आँखों में धँसती जाती हैं, मानों उनके दिल के सारे भ्रम और भेद निकाल लेंगी। वे लोगों को अपनी तरफ़ बुला रही हैं। लोग देखते हैं। अहा हा! कहकर जल्दी से आगे बढ़ते हैं, आँख उठा कर देखते हैं और स्वयम् पैरों की तरफ निगाह चली जाती है। एकदम पैरों में वे गिर पड़ते हैं। जानकी जी! उठाओ, हम गिरे हुओं का उद्धार करो, हम दुर्बलों के हाथों और पैरों में शक्ति संचार करो। जो सन्देशा तुम ने हनुमान जी के हाथ भेजा था वह फिर हमको सुनाओ ताकि हम अपने धर्म से पतित होने से बचें। एक वह समय था कि तुमने हनुमान जैसे मित्र के हाथ से अपना छुटकारा अस्वीकार कर दिया था क्योंकि उससे महाराज रामचन्द्र के क्षत्रियत्व पर बट्टा लगता था आज वह समय है कि हम अपनी स्त्रियों, अपनी बेटियों, बहिनों और अपने प्यारे देश की माताओं को दूसरों को सौंप रहे हैं कि वह उनको हमारे लिए कामिनियाँ बना दें। हाहाहा! माता हमको क्या होगया? जानकी जी भी आज हम से रूठ गईं। उन्होंने अपना मुँह फेर लिया, आँख मूंद लीं, वह हमारी शक्ल से बेज़ार हैं, क्यों न हो हमारे जैसा पुरुषार्थहीन, निकम्मा, अपने काम दूसरों को सौंपनेवाला, दूसरों के दान पर जीवन निर्वाह करनेवाला, दूसरों की दया का भिखारी संसार में कौन होगा? जानकी जी क्यों हमारी तरफ देखें उनको यह निश्चय नहीं कि हम उनके भाई हैं, उनके पति के भाई हैं। वह तो अपना समझकर हमारी तरफ बढ़ी थीं हमारी शक्ल सूरत से उनका ख़याल हुआ था कि हम तुम्हारी ही सन्तान हैं मगर आँख उठाकर जो देखा तो हमारे कायर हृदयों का भेद उन पर खुल गया। उन्होंने आँखें उठालीं और क़दम पीछे हटा लिए। हाय! हमारे मन्द भाग! माता अच्छा ज़रा आगे से हट जाओ हम भरत जी को ही देखलें वह तो शायद हमें पहिचान लेंगे। अहाहा! कैसी मोहनी मूरत है, सत्य, न्याय, धीरज, प्रेम, वीरता और धर्म उनके अपूर्व चेहरे पर लिखे हुए हैं। उनकी आँखों में दया और प्रेम है। वे हमको छाती से लगाएंगे। माता तुम हमारे और उनके बीच में से हट जाओ, हम उनके पास जायँगे। माना कि हम मैले हैं, मलीन हैं, भीरु हैं, झूंठे हैं, मक्कार हैं, माना कि हम स्वार्थी और नीच हैं, माना कि हमारे हाथ पाँव कांप रहे हैं, हमारे मुँह से मदिरा की बू आती है, हमारे हाथ अपने ही भाई, बहिनों के रक्त से रंगे हुए हैं, माना कि आज हम औरों के दास हैं, औरों का जूठा

५५८६२

खाते हैं और तान कर सोते हैं परन्तु आख़िर हैं तो तुम्हारी ही सन्तान। हट जाओ हमको भाई भरत से मिलने दो। माता यह कठोरता, यह निर्दयता क्यों? सच है भरत जी हमसे बहुत ऊंचे हैं, वह महाराज राम के भाई हैं, भाई देवता के रूप हैं, प्रेम की मूर्ति हैं, ऋषि और देवता उनका मान करते हैं। माता उनकी पदवी ऋषियों से भी ऊंची है, वह ब्राह्मणों से भी बड़े हैं फिर भी तो वे हमारे भाई हैं। माता हमको उन्हें देख लेने दो, हमारे देखने से उनके यश और कीर्ति में कुछ कमी नहीं आवेगी। अच्छा माता अगर आप भरत जी के दर्शन हमको करने नहीं देतीं तो हमको लक्ष्मण जी ही को देख लेने दो; उनकी आँखों में बेशक क्रोध और अभिमान भरा हुआ है परन्तु वह भ्रातृस्नेह से कोमल हो रही हैं, उनकी आंखों में नीर के डोरे बँधे हैं, वह हमको गले लगाना चाहते हैं। माता यह सच है कि हमने सैकड़ों भाइयों का साथ छोड़ दिया, लाखों को धोखा दे दिया, करोड़ों को दरिन्दों के हवाले कर दिया, हमने आजतक किसी भाई का साथ नहीं दिया। किसी की सेवा नहीं की, नहीं नहीं बल्कि बारम्बार उनसे दगा की, उनको अपनी ही आंखों के सामने अपने हाथों से मट्ठी में झोंक दिया, कुएँ में ढकेल दिया, बनवास दिला दिया और लंका के अथाह समुद्र में डुबवा दिया, यह सब सच है मगर इस वक़्त हमारा वह भ्रातृस्नेह जोश मार रहा है। हमको सच्चा पश्चात्ताप कर लेने दो, हम लक्ष्मण जी के पैरों से सर रगड़ कर प्रायश्चित्त करेंगे। माता हट जाओ, हम अभागों के रास्ते में न पड़ो। परमात्मा के नाम पर दया करो। ओहो ओहो अब मालूम हुआ माता तुम हमको पहिचानती ही नहीं, शक करती हो कि हम तुम्हारे पुत्र नहीं। बस आखीर हो चुकी अब यह सब असहनीय है।

आपका

एक लंदनप्रवासी दिलजला पुत्र।

जातीय भाषा।*

[लेखक—पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय।]

षटपद

(१)

जातियाँ जिससे बनीं ऊंची हुईं फूलीं फलीं।
अंक में जिसके बड़े ही गौरवों से हैं पलीं॥
रत्न हो करके रहीं जो रंग में उसके ढलीं।
राज भूलीं पर न सेवा से कभी जिसकी टलीं॥
ए हमारे बन्धुओ जातीय भाषा है वही।
है सुधा की धार बहु मरुभूमि में जिससे बही॥

(२)

जो हुए निर्जीव हैं उनको जिला देती है वह।
धार सुरसरि कर्मनासा में मिला देती है वह॥
स्वच्छ पानी प्यासवाले को पिला देती है वह।
जो कली कुम्हला गई उसको खिला देती है वह॥
नीम में हैं दाख के गुच्छे वही देती लगा।
ऊसरों में है रसालों को वही देती उगा।

(३)

आन में जिनकी दिखाती देस ममता है निरी।
जो सपूतों की न उँगली देख सकते हैं चिरी॥
रह नहीं सकतीं सफलतायें कभी जिनसे फिरी।
वह नई पौधें उठी हैं जातियां जिनसे गिरी॥
थीं इसी जातीय भाषा के हिंडोले में पलीं।
फूंक से जिनकी घटायें आपदाओं की टलीं॥

(४)

है कलह वो फूट का जिसमें फहरता फरहरा।
दम्भ उल्लू नाद जिसमें है बहुत देता डरा॥
मोह आलस मूढ़ता जिसमें जमाती है परा।
वह अंधेरा देश का बहु आपदाओं से भरा॥

---

* कविता सम्मेलन के लिए लिखी गई थी।

दूर करती है उसे जातीय भाषा की किरन।
भानु कासा है चमकता भाल का जिसके रतन॥

(५)

सूझती जिनको नहीं अपनी भलाई की गली।
पड़ गई है बीच में जिनके बड़ी ही खलबली॥
है अनाशारंग में जिनकी सभी आशा ढली।
जिन समाजों की जड़ें भी हो गई हैं खोखली॥
ढंग से जातीय भाषा ही उन्हें आगे बढ़ा।
है समुन्नति के शिखर पर सर्वदा देती चढ़ा॥

(६)

उस स्वकीया जाति भाषा सर्वथा सुखदानिकी।
परम सुरला सुन्दरी आधारभूता आनि की॥
जननि सी उपकारिका प्रतिपालिका कुल कानिकी
उस निराली नागरी अति आगरी गुण खानिकी॥
आप में कितनी है ममता दीजिये मुझको बता।
आज भी क्या प्यार उससे आप सकते हैं जता॥

(७)

खोलकर आँखें निरखिये बंगभाषा की छटा।
मरहठी की देखिये कैसी बनी ऊंची अटा॥
क्या लसी साहित्य नभ में गुर्जरी की है घटा।
आह! उर्दू का है कैसा चौतरा ऊंचा पटा॥
किन्तु हिन्दी के लिए ये बार अब भी दूर हैं।
आज भी इसके लिए उपजे न सच्चे सूर हैं॥

(८)

फिर कहें क्यों आप उससे प्यार सकते हैं जता।
फिर कहें क्यों आप में है उसकी ममता का पता॥
फिर कहें क्यों है लुभाती नागरी लोनी लता।
किन्तु प्यारे बन्धुओ देता हूं मैं सच्ची बता॥
दृष्टि उससे दैव की चिरकाल रहती है फिरी।
जिस अभागी जाति की जातीय भाषा है गिरी॥

(९)

क्यों चमकते मिलते हैं बंगाल में मानव रतन।
किस लिए हैं बम्बई में देवतों से दिव्य जन॥
क्यों मुसलमानों की है जातीयता इतनी गहन।
क्यों जहाँ जाते हैं वे पाते हैं आदर मान धन॥
और कोई हेतु इसका है नहीं ये बन्धु गन।
ठीक है जातीय भाषा से हुई उनकी गठन॥

(१०)

आँख उठाकर देखिये इस प्रान्त की बिगड़ी दसा।
हैं जहाँ पर यूथ हिन्दी भाषियों का ही बसा॥
आज भी जो है बड़ों के कीर्त्ति चिह्नों से लसा।
सूर तुलसी के जनम से पूत है जिसकी रसा॥
सिद्ध विद्यापीठ गौरव खानि विबुधों से भरी।
आज भी है अङ्क में जिसके लसी काशीपुरी॥

(११)

अल्प भी जो है खिंचा जातीय भाषा ओरचित।
तो दसा को देख करके आप होवेंगे व्यथित॥
नागरी अनुरागियों की न्यूनता अवलोक नित।
चित्त ऊबेगा दृगों से वारि भी होगा पतित॥
आह! जाती हैं नहीं इस प्रान्त की बातें कही।
नित्य हिन्दी को दबा उर्दू सबल है हो रही॥

(१२)

यह कथा सुन कह उठेंगे आप तुम कहते हो क्या।
पर कहूंगा मैं कि मैंने जो कहा वह सच कहा॥
जाँच इसकी जो करेंगे आप गावों बीच जा।
तो दिखायेगा वहाँ पर आपको ऐसा समा॥
हिन्दुओं के लाल प्रतिदिन हाथ सुविधा का गहे।
भूल अपनापन को उर्दू ओर ही हैं जा रहे॥

(१३)

जो उठाकर हाथ में दस साल पहले का गज़ट।
देख लेंगे और तो होगी अधिक जी की कचट॥
मिडल हिन्दी पास का था जो लगा उस काल टट।
वह गया है एक चौथे से अधिक इस काल घट॥
बढ़ रही है नित्य यों उर्दू छबीली की कला।
घोटते हैं हाथ अपने हाय! हम अपना गला॥

(१४)

बन फलों को प्यार से खा छाल के कपड़े पहन।
राजभोगों पर नहीं जो डालते थे निज नयन॥
फूल सा बिकसा हुआ लख जाति भाषा का बदन।
जो सदा थे वारते सानन्द अपना प्राण धन॥

५५८७२

इन द्विजों की हाय! कुछ संतान भी चाहों भरी।
पड़ गई है पेच उर्दू में तजी निज नागरी॥

(१५)

हिन्द हिन्दू और हिन्दी कष्ट से हो के अधिर।
खौल उठता था अहो जिनके शरीरों का रुधिर॥
जो हथेली पर लिए फिरते थे इनके काज शिर।
थे उन्हीं के वास्ते जो राज तज देते रुचिर॥
बहु कुँवर उन क्षत्रियों के तुच्छभोगों से डिगे।
तोड़ नाता नागरी से रंग उर्दू में रंगे॥

(१६)

हो जहाँ पर सिरधरों का आज दिनयों सिर फिरा।
फिर वहाँ पर क्यों फड़कसकती है औरों की शिरा
किन्तु क्यों है नागरी के पास इतना तम घिरा।
आँख से कुछ हिंदुओं के क्यों है उसका पद गिरा॥
आप सोचेंगे अगर इसको तनिक भी जी लगा।
देर समझ जायेंगे है अज्ञानता ने की दगा॥

(१७)

आज दिन भी गाँव गाँवों में अँधेरा है भरा।
है वहाँ नहिं आज दिन भी ज्ञान का दीपक बरा॥
आज दिन भी मूढ़ता का है वहां डेरा परा।
जाति हित के रंग से कोरी वहां की है धरा॥
हाथ का पारस भला वह फेंक देगा क्यों नहीं।
आह! उसके दिव्य गुण को जानता है जो नहीं॥

(१८)

है नगर के वासियों में ज्ञान का अंकुर उगा।
जाति हित में किन्तु वैसा जो नहीं अब भी लगा॥
फूंक से वह आपदा है सैकड़ों देता भगा।
जाति भाषा रंग में नर-रत्न जो सच्चा रँगा॥
उस वदन की ज्योति देती है तिमिर सारा नसा।
जाति के अनुराग का न्यारा तिलक जिसपर लसा॥

(१९)

नागरी के नेह से हम लोग आये हैं यहां।
किन्तु सच्चा त्याग हममें आज दिन भी है कहां॥
जातिसेवा के लिए हैं जन्मते त्यागी जहां।
आपदायें ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलती वहां॥
जातिभाषा के लिए किस सिद्ध की धूनी जगी।
वे कहां हैं जिनके जी को चोट है सच्ची लगी॥

(२०)

निज धरम के रंग में डूबे, तजे निज बन्धुजन।
हैं यहां आते चले यूरोप के सच्चे रतन॥
किसलिए! इसहेतु! जिसमें वे करें तमका निधन।
दीन दुखियों का हरें दुख औ उन्हें देवें सरन॥
देखिये उनको कहां आ करके क्या करते हैं वे।
एक हम हैं आंख से जिनके न आंसू भी स्रवे॥

(२१)

जो अँधेरे में पड़ा है ज्योति में लाना उसे।
जो भटकता फिर रहा है पंथ दिखलाना उसे॥
फँस गया जो रोग में है पथ्य बतलाना उसे।
सीखता हो जो नहीं कर प्यार सिखलाना उसे॥
काम है इनका जिन्हें पा पूत होती है मही।
इस विषम संसार पादप के सुधा फल हैं वही॥

(२२)

आज का दिन है बड़ा ही दिव्य बहु रत्नों जड़ा।
जो यहाँ इतने स्वभाषा प्रेमियों का पग पड़ा॥
किन्तु होवेगा दिवस वह और भी सुन्दर बड़ा।
लाल कोई वीर लौं जिस दिनकि होवेगा खड़ा॥
दूर करने के लिये निज नागरी की कालिमा।
औ लसाने के लिये उन्नति गगन में लालिमा॥

(२३)

राज महलों से गिनेगा झोंपड़ी को वह न कम।
वह फिरेगा उन थलों में है जहाँ पर घोर तम॥
जो समझते यह नहीं, है काल क्या, हैं कौन हम।
वह बतादेगा उन्हें जातीय उन्नति के नियम॥
वह बना देगा बिगड़ती आँख को अंजन लगा।
जाति भाषा के लिये वह जाति को देगा जगा॥

(२४)

वह नहीं कपड़ा रँगेगा किन्तु उर होगा रँगा।
घर न छोड़ेगा, रहेगा पर नहीं उसमें पगा॥
काम में निज वह परम अनुराग से होगा लगा।
प्यार होगा सब किसी से और होगा सब सगा॥

बात में होगी सुधा उसका रहेगा पूत मन।
जाति भाषा तेज से होगा दमकता वर बदन॥

(२५)

दूर होवेगा उसीसे गाँव गाँवों का तिमिर।
खुल पड़ेगी हिन्दुओं की बंद होती आँख फिर॥
तम भरे उर में जगेगी जोति भी अतिही रुचिर।
वह सुनेगी बात सब, जो जाति है कब की बधिर॥
दूर होगी नागरी के सीस की सारी बला।
चौगुनी चमकेगी उसकी चारुता डूबी कला॥

(२६)

दैनिकों के वास्ते हैं आज दिन लाले पड़े।
सैकड़ों दैनिक लिये तब लोग होवेंगे खड़े॥
केतु होगे नागरी की कीर्ति के सुन्दर बड़े।
जगमगायेंगे बिभूषण अंग में रत्नों जड़े॥
देस भाषा रूप से वह जायगी उस दिन वरी।
सब सगी बहनें बनायेंगी उसे निज सिरधरी॥

(२७)

मैं नहीं सकटेरियन हूं और हूं न उतावला।
बात गढ़कर मैं किसी को चाहता हूं कब छला॥
मैं न हूं उरदू बिरोधी मैं न हूं उससे जला।
कौन हिन्दू चाहता है घोंटना उसका गला॥
निज पड़ोसी का बुरा कर कौन जग फूला फला।
हैं इसी से चाहते हम आज भी उसका भला॥

(२८)

किन्तु रह सकता नहीं यह बात बतलाये बिना।
ज्यों न जीयेगा कभी जापान जापानी बिना॥
ज्यों न जीयेगा मुसल्माँ पारसी अरबी बिना।
जी सकोगे हिन्दुओं बोली न तुम हिन्दी बिना॥
देखकर उरदू कुटुंब यह दीजिये मुझको बता।
आपकी जातीयता का है कहीं उसमें पता॥

(२९)

क्या गुलाबों पर करेंगे आप कमलों को निसार।
क्या करेंगे कोकिलों को छोड़ कर बुलबुल कोप्यार
क्या रसालों को सरो शमशाद पर देवेंगे वार।
क्या लखेंगे हिन्द में ईरान का मौसिम बहार॥
क्या हिरासे और दजला आदि से होगी तरी।
तजहिमालयसासुगिरिवर पूतसलिला सुरसरी॥

(३०)

भीम अर्जुन की जगह पर गेव रुस्तम को बिठा।
सभ्य लोगों में नहीं दृग आप सकते हैं उठा॥
साथ कैकाऊस दारा प्रेम की गाँठें गठा।
क्या भला होगा! रसातल भोज बिक्रम को पठा॥
कर्ण की ऊँची जगह जो हाथ हातिम के चढ़ी।
तो समझिये ढह पड़ेगी आपकी गौरव गढ़ी॥

(३१)

क्या हसन की मसनवीसे आप होकर मुग्धमन।
फेंक देंगे हाथ से वह दिव्य रामायन रतन॥
क्या हटाकर सूर तुलसी मुख सरोरुह से नयन।
आप अवलोकन करेंगे मीरग़ालिब का बदन॥
क्या सुधा को छोड़कर मंजुल मयंक मुखी सबी।
आप सहवा पान करके हो सकेंगे गौरवी॥

(३२)

जो नहीं तो देखिये जातीय भाषा का बदन।
पोंछिये उसपर लगे हैं जो बहुत से धूलिकन॥
जो लगाकर काजिये उसकी भलाई का जतन।
पूजिये उसका चरन उस पर चढ़ा न्यारे रतन॥
जगमगा जायेगी उसकी ज्योति से भारत धरा।
आप का उद्यान यश होगा फला फूला हरा॥

(३३)

हे प्रभो उर हिन्दुओं में ज्ञान का अंकुर उगे।
हिन्द में बनकर रहें सब काल वे सब के सगे॥
दूसरों को हानि पहुंचाये बिना औ बिन ठगे
दूर हों सब विघ्न बाधा भाग हिन्दी का जगे॥
जाति भाषा के लिये जो राज सुख को रज गने।
बुद्ध शंकर भूमि कोई लाल फिर ऐसा जने॥

युद्ध के अन्तर्राष्ट्रीय कानून।

[लेखक—श्रीयुत सुपार्श्वदास गुप्त।]

वर्तमान् यूरोपीय महाभारत की दैनिक घटनाओं का महत्व और युद्ध में प्रवृत्त राज्यों के दाँव पेंच समझने के लिए उनके अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का पूर्ण ज्ञान आवश्यक है। इस छोटे से लेख में समस्त अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का समालोचनात्मक वर्णन करना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव है। फिर भी थोड़े से में ही उनकी प्रकृति और विकास, उत्पत्ति स्थान, और आधुनिक रूप, उपयुक्तता और अन्य प्रश्नों पर विचार किया जायगा। इससे हमारे पाठकों को युद्ध के समाचार समझने में बड़ी सुविधा होगी।

अन्तर्राष्ट्रीय कानून वे नियम हैं जो संसार के समस्त सभ्य राज्यों के पारस्परिक आचरणों को निर्दिष्ट करते हैं। इस परिभाषा से राज्यों के बाध्य होने का भाव टपकता है; और वास्तव में तात्विक दृष्टि से वे राज्य उन नियमों को पालन करने के लिए बाध्य भी हैं। पर अभ्यास में कुछ का कुछ होता दीख पड़ता है। इसका प्रधान कारण किसी अत्यन्त शक्तिशाली मध्यस्थ संस्था, या राजा का अभाव है। अभी तक सिर तोड़ प्रयत्न करने पर भी, ऐसा कोई न्यायालय सब शक्तियों की सम्मति से स्थापित नहीं हुआ है, जो किसी दो या अधिक राज्यों के अन्तर्विग्रह का निपटारा कर दे और वे उसे बिना सांस लिये मान लें तो भी समय समय पर इस प्रकार का न्याय होता आया है। माध्यमिक काल में जब रोम के पोप की तूती बोलती थी, तो वे राज्यों के झगड़ों का न्याय प्रायः किया करते थे।

पर इस प्रकार का न्याय उच्च कोटि के प्रश्नों के सम्बन्ध में नहीं देखा गया। १७वीं और १८वीं शताब्दियों में तो इसका कुछ टीम-टाम भी सुनाई नहीं दिया, पर १९वीं शताब्दी में इस प्रश्न ने खूब ज़ोर पकड़ा और बड़े २ राजनीतिज्ञों का ध्यान इसओर आकर्षित हुआ। इसका प्रधान कारण युद्ध का असीम व्यय, लड़ाके और उदासीन राज्यों के व्यापारिक जीवन का नाश और सम्पूर्ण सभ्य संसार में औद्योगिक और आर्थिक उन्नति का पारस्परिक निबंधन है। इन कारणों के महत्व ने इन दो शताब्दियों में लोगों पर अपना प्रभाव ऐसा डाला कि १९वीं शताब्दी ही में कम से कम सौ जटिल प्रश्नों का निपटारा सभा-पञ्चायतों द्वारा हो गया।

जैसे मनुष्य के बाह्य स्वरूप आदि पर विचार करने से वह सब प्रकार से स्वाधीन और अनियंत्रित जान पड़ता है, उसी प्रकार प्रत्येक राज्य दीख पड़ता है। कोई राज्य चाहे वह कितनाही बड़ा हो या छोटा, शक्तिसम्पन्न हो या शक्तिरहित, रूस हो चाहे काबुल पर दूसरे पर बिना कारण किसी प्रकार का अत्याचार नहीं कर सकता और न उसपर अपने कानून ही चला सकता है। राजनैतिक स्वतंत्रता ही प्रत्येक राज्य के अस्तित्व की जड़ है। परन्तु तात्विक दृष्टि से ऐसी स्वाधीनता प्राप्त होने पर भी, साधारण रीति से भिन्न २ राज्य आपस में भिन्न २ नियमों से बँधे रहते हैं। उनके व्यापार और कलाकौशल का सम्बन्ध और नागरिकों का आवागमन उन्हें एक सूत्र में बाँधकर उनसे कुछ ऐसे नियमों का पालन कराता है, जिनसे दोनों पक्षों का हितसाधन हो। आधुनिक सभ्य संसार में अनेक प्रकार की लौकिक सुविधाओं के कारण एक राज्य अपने पड़ोसी राज्यों के साहित्य, विचार, कला और कौशल

आदि से इतना घनिष्ट सम्बन्ध रखता है कि वह उनसे संपूर्ण राजनैतिक पार्थक्य रूप से निभा नहीं सकता। विशेषतः यदि उन राज्यों की भाषा, धर्मादि एकही हैं और उनके निवासी एकही, व्यक्ति वंश वा जाति के सन्तान होने का गर्व रखते हैं, जिनसे दोनों को एकही प्राचीन रिवाज और इतिहासादि का समान अहंकार और अधिकार प्राप्त है।

अध्यापक टी० जी० लारेन्स ने अपने "अन्तर्राष्ट्रीय कानून" नामक ग्रन्थ में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के विकार को तीन कालों में विभक्त किया है। इस विभाग का प्रधान कारण उन कालों में उन सम्बन्धों के विचार में परिवर्तन है। अर्थात् प्रथम काल में लोगों के अन्तर्राष्ट्रीय कानून सम्बन्धी विचार अन्य दो कालों के उन्हीं विचारों से एक दम भिन्न थे। प्रथम काल सभ्यता के प्रारम्भ से लेकर रोमन साम्राज्य के पतन तक का है, द्वितीय, १६४८ ई० के वेस्टफेलिया की सन्धि तक का और तृतीय, उस तिथि से आज तक का है। प्रथम काल में तो सचमुच ही अन्तर्राष्ट्रीय नियम थे ही नहीं। पड़ोसी जातियों में पारस्परिक युद्ध तो उस समय की साधारण घटना थी। यदि इन युद्धों में किसी निर्दिष्ट नियमों का पालन भी होता था तो वे बाध्यन थे और न उनकी कोई ठीक व्यवस्था ही थी। रोमन लोग अपने प्रजातन्त्र के जमाने में सैमनीट और इटालियन जातियों से कभी कभी अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का पालन कराते थे। पर इस प्रकार के कोई नियम यूरोप के अन्य सभ्य या अर्ध सभ्य जातियों में नहीं देखे जाते थे। उस समय रोमन साम्राज्य में जस जेंटियम (Jus Jentium) नाम का एक कानून जारी था जो रोम में रहनेवाले विदेशियों के या रोमनों और विदेशियों के परस्पर झगड़े का न्याय करता था। उस कानून को कितने ही लेखकों ने भूल से अन्तर्राष्ट्रीय नियम बतलाया है। पर वास्तव में ऐसा नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का दो भिन्न और स्वतंत्र राज्यों से सम्बन्ध है; पर जस जेंटियम का एकही साम्राज्य के अधिवासी दो विदेशियों से सम्बन्ध था। हां इतना कहा जा सकता है कि जस जेंटियम अन्तर्राष्ट्रीय नियमों से बहुत मिलता जुलता था। उसमें उन्हीं नियमों का समावेश था, जो प्रत्येक राज्य के विचारों में साधारण रूप से पाये जाते हैं। उसमें उन नियमों की चर्चा भी नहीं है जो रीति नीति या जलवायु की विशेषता से केवल एकही जाति के उपयुक्त हो सकते हैं।

दूसरे काल में, जिसका आरम्भ रोमन साम्राज्य के स्थापन के बाद से होता है, विश्वव्यापी साम्राज्य के प्रश्न ने अधिक ज़ोर पकड़ा था। लोग उस समय इससे बड़े मोहित हो गये थे कि विश्वव्यापी एक ऐसा विशाल साम्राज्य का स्थापन हो, जो अन्य छोटे बड़े राज्यों का अधिपति हो और सबों की देखरेख रखता हुआ उनके हितसाधन में लगा रहे। इससे उनके हृदय में यह भावना उठा करती थी कि शीघ्र ही पारस्परिक युद्ध का अन्त हो जायगा। शार्लमेन (सन ८०० ई०) के राज्यकाल के पूर्व ईसाई मत के प्रभाव के कारण, जो शीघ्रही विश्वव्यापी होनेवाला था, विश्वव्यापी साम्राज्य का प्रश्न भी बड़ी तेज़ी से चल निकला। "सीज़र" बादशाह प्रायः समस्त रियासतों और राज्यों का न्यायकर्ता समझा जाता था। अपील वहीं होती थी। शार्लमेन के शासनकाल ही में इस विचार के अनेक पृष्ठपोषक थे, पर पिछली शताब्दियों में इस विचार की जड़ ढीली पड़ गई। विश्वव्यापी साम्राज्य की बिजली देखते ही अन्धकार में विलीन हो गई। अब धर्माधिकारी पोप ने लौकिक राजा से प्रतिद्वन्द्विता शुरू कर दी। पहिले तो वे दोनों मिलकर विश्वव्यापी साम्राज्य के स्थान को सत्य में परिणत करना चाहते थे, पर पीछे वे परस्पर विरोधी हो गये। इस प्रकार विश्वव्यापी साम्राज्य को दो बृहत्

५५-८२

विभाग होने से अनेक छोटे मोटे स्वाधीन राज्यों का विकाश हुआ। साथही फ्यूडल प्रथा के प्रचलित होने और ज़ोर पकड़ने से एक नवीन भाव का जन्म हुआ। वह भाव यह था कि राज्यों के संगठन में भूमि भी एक प्रधान तत्व है। अर्थात् एक राज्य दूसरे राज्य से पृथक् तभी कहा जा सकता है जब उसकी भूमि एक दूसरे से पृथक् और निर्दिष्ट हो यानी राज्य की सीमाएं भूमि से निर्धारित की जाने लगीं। इसके पूर्व भूमि के आधिपत्य पर उतना ज़ोर नहीं दिया जाता था, जितना प्रजा के। इसके बाद फिर कैथोलिकों और प्रोटेस्टंटों में ३० वर्षों तक चलनेवाला इतना भीषण युद्ध छिड़ा कि जिससे विश्वव्यापी साम्राज्य का प्रश्न ही निकल गया। १६४८ ई० में इस युद्ध के अन्त होने के बाद से ही तृतीय अर्थात् आधुनिक काल का प्रारम्भ होता है।

आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का संगठन इसी काल में हुआ है। पर इस काल के आरम्भ होते ही उनके प्राचीन आधार में परिवर्तन हुआ। उनका नवीन आधार राजनैतिक स्वाधीनता और भौमिक आधिपत्य हुआ। अब अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहारमात्र ही उसका आधार न रहा। १६वीं और १७वीं शताब्दियों के विकराल जंगली युद्धों से थककर, जिनमें नरहत्या बड़ी क्रूरता से हुआ करती थी, लोगों ने उन्हें बन्द करने अथवा उनकी भीषणता कम करने के लिए कुछ ऐसे पारस्परिक सम्बन्धों और नियमों की आवश्यकता देखी जिनसे उक्त उद्देश्यों की पूर्ति किसी अंश में हो सकती थी। इस आवश्यकता ने प्रसिद्ध डच क़ानूनदान ह्युगो ग्रोटियस के लेखों को जन्म दिया जिनमें पहिले पहिल आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय क़ानूनों की नींव पड़ी। ग्रोटियस और उसके अनुयायियों ने यूनानी स्टोइक (stoic) दार्शनिकों के "प्रकृति के नियमों" को अपने अन्तर्राष्ट्र सम्बन्धी विचारों का आधार बनाया। अन्तर इतना ही था कि स्टोइक (stoic) दार्शनिकों ने इन नियमों को दो व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों के नियम के लिए बनाया था और ग्रोटियस आदि ने दो या दो से अधिक राज्यों के लिए। उन लोगों का विचार था कि संसार में प्रत्येक काल और दशा में कुछ ऐसे नियम स्वयं वर्तमान रहते हैं जो मनुष्य मात्र के हृदय पर अधिकार कर लेते हैं और जिन्हें आत्महित की दृष्टि से पालन करना पड़ता है। ये नियम न किसी राजनैतिक संस्था द्वारा ही बनाये जाते हैं और न कानून द्वारा ही। वे स्वयं मनुष्यहृदय में जन्म लेकर उनके विचारों पर प्रभाव डालते हुए उनसे वही कार्य करवाते हैं, जो सबके मन के अनुकूल हों। ऐतिहासिक दृष्टि से येही विश्वव्यापी "प्राकृतिक नियम" जिनके पालन के लिए सब राज्य स्वयं बाध्य से थे, आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय नियमों की नींव की पहली ईंट समझे जा सकते हैं। इसके बाद तो कई शताब्दियों के रस्म-रिवाज़, सन्धियों और पंचायतों आदि से ऐसे २ नियम सब शक्तियों की सम्मति से संगठित किये गये कि साहित्य का यह अंश खूब ही भर गया। आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों में इन्हीं की प्रधानता है। वेस्टफ़ेलिया की सन्धि में जिसमें प्रायः सभी राज्य सम्मिलित थे, यह राय ठहरी कि प्रत्येक छोटा या बड़ा राज्य राजनैतिक रूप से अपनी सीमाओं के भीतर सर्वथा स्वाधीन है। विश्वव्यापी साम्राज्य का ख्याल त्याग दिया गया। यूट्रेक्ट (Utrect) की सन्धि में यह निश्चित हुआ कि युद्ध के समय शत्रु से छीना हुआ व्यक्तिगत माल युद्ध के अन्त में उसे लौटा दिया जायगा। १८४१ ई० की सन्धि के अनुसार जो डार्डनलीज़ और बासफ़ोरस के जन्माधिकार के विषय में हुई थी, यह निश्चित हुआ कि प्रत्येक राज्य का उसके निकटस्थ समुद्र पर अधिकार रहेगा। १८७१ ई० की वाशिङ्गटन की सन्धि के अनुसार, जिसमें अमेरिका के

संयुक्त राज्य और ग्रेटब्रिटेन सम्मिलित थे, प्रत्येक उदासीन राज्य का कर्तव्य है कि वह अपने देश के किसी भाग के किसी लड़ाके राज्य को युद्ध की तैयारियां करने से रोके। इनके सिवा १८६४ ई० की प्रथम जेनेवा पंचायत, १८७४ ई० का ब्रूसेल्स सम्मिलन, १८६८ ई० की सेंटपिटर्सबर्ग की घोषणा, १८९९ ई० की प्रथम हेग कान्फरेंस, १९०६ की द्वितीय जेनेवा पंचायत और १९०७ की द्वितीय हेग कान्फरेन्स उल्लेखयोग्य हैं। इन सम्मिलनों और पंचायतों में जिन अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का संगठन यूरोप की बड़ी २ शक्तियों की सर्वसम्मति से हुआ, उनका कुछ वर्णन आगे चलकर किया जायगा। ये कानून तो जान बूझकर उद्देश को लक्ष्यकर सर्वसम्मति से बनाये गये थे। पर दो तीन मार्ग और भी हैं, जिनसे इन नियमों का आविर्भाव समय २ पर हुआ करता है। प्रथम तो वे सरकारी घोषणाएं हैं, जो युद्ध छिड़ने पर सरकार की ओर से प्रजा को सुनाई जाती हैं और जिन्हें वह शत्रु और उदासीन राज्यों के साथ व्यवहार करने में पालन करती है। दूसरे उन प्राइज़ कोर्टों के फैसले हैं, जो युद्धघोषणा के समय लड़ाके राज्यों में स्थापित किये जाते हैं और जो जहाज़ों पर शत्रु के लूटे हुए माल का न्याय करते हैं। तीसरे उन विद्वान कानून जाननेवालों की सम्मतियां हैं जिन्होंने बड़े २ ग्रन्थ उस विषय पर लिख डाले हैं। केंट ने अपनी "कमेंटरीज़" (Commentaries) में लिखा है कि "जहां प्रधान २ कानूनवेत्ताओं का एकमत हो जाता है, वहां समझ लेना होता है कि उनके कथन पुष्ट और हितकर हैं और किसी सरकार को जो एकदम अपनी ढिठाई और अहम्मन्यता से कानून पर लात मारना नहीं चाहती, साहस न होगा कि उनके मतों का खंडन कर उनके विपरीत आचरण द्वारा प्रजा का हितसाधन कर सके।"

अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के विकास, मूल और आधार आदि प्रश्नों पर विचार कर लेने के बाद उनके क्षेत्र पर विचार करना अत्यन्तावश्यक है। इस स्थान पर यह विचार किया जायगा कि अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों के भीतर कौन २ से विषय आजतक सम्मिलित किये गये हैं। अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का प्रारम्भिक बिन्दु, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, समस्त राज्यों की स्वाधीनता के समान अधिकारप्राप्ति है। इस प्रधान नियम के बाद राज्यों की भूमि और निकटस्थ समुद्र पर अधिकार की बात है। साथ ही यह प्रश्न भी उठता है कि राज्य का विस्तार करने के लिए युद्ध में जो साधन अवलम्बित किये गये हैं, वे कहां तक न्यायसंगत हैं और आत्मसमर्पण, विजय, या अन्य किसी प्रकार से प्राप्त हुए अधिकार कहां तक नीतियुक्त हैं।

प्रजा के दूसरे राज्यों में अधिवास करने से उस प्रजा के सम्बन्ध में उसको सरकार को क्या अधिकार प्राप्त हैं। इसी प्रकार के नियम और सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों के भीतर आते हैं। ये कानून दो भागों में विभक्त हैं:—

(१) शान्ति के कानून और (२) युद्ध के कानून।

इनमें युद्ध के कानूनों की ही अधिकता है। यद्यपि अभी तक जैसा मैं ऊपर कह आया हूं, ऐसा प्रबल न्यायालय स्थापित नहीं हुआ है जो दो लड़ाके राज्यों का निपटारा कर दे तथापि इन नियमों द्वारा आधुनिक युद्ध में बहुत कुछ मनुष्यत्व और साधुता आगई है। इसका प्रधान कारण व्यर्थ के दुःख और पीड़ाओं को कम करना और उदासीन राज्यों की जान-माल की रक्षा करना है। इसीलिए युद्ध में बुलेटों और विष का प्रयोग और नरहत्या आदि साधन अन्याययुक्त बताये गये हैं। युद्ध के समय समाचार भेजने के लिए झंडे, पासपोर्ट आदि का प्रबन्ध रहता है। उदासीन राज्यों का व्यापार लड़ाकू राज्यों के साथ बन्द नहीं होता। व्यापार तभी बन्द हो सकता है जब उससे किसी लड़ाके

राज्य को युद्ध में सहायता पहुंचती हो या पहुंचने का भय हो। आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का अधिकांश उदासीन राज्यों से ही सम्बन्ध रखता है। लीकौक ने लिखा है कि विशेषकर १८वीं और १९वीं शताब्दियों में "उदासीनता" के कानून की उन्नति पर ही अधिक ध्यान दिया गया है और अब यह अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का प्रधान अङ्ग समझा जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों पर अबतक जो कुछ लिखा गया है वह शास्त्रिक दृष्टि से लिखा गया है। उसका किसी विशेष राज्य या युद्धकाल या देश से सम्बन्ध नहीं है। नीचे वर्तमान यूरोपीय महाभारत को अपना लक्ष्य मानकर कुछ लिखा जायगा। इसमें कुछ उन नियमों का अवतरण दिया जायगा जो समय २ पर सम्मिलनों और पंचायतों द्वारा स्वीकृत हुए हैं और जिन्हें प्रत्येक राज्य कर्तव्याकर्तव्य दृष्टि से पालन करने के लिए बाध्य है।

जब दो सभ्य राज्यों में युद्ध छिड़ जाता है तो अनुमान किया जाता है कि युद्ध-क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय नियमों में निषेध किये गये साधनों का अवलम्बन न करने तथा किसी भी नियम का पददलन न करने से वे युद्ध में मनुष्यत्व को पूर्ण स्थान देंगे। हां, जब असभ्य और जंगली जातियों का दमन करने के लिए उनसे युद्ध ठाना जाता है या जब दो असभ्य जातियां लड़ती हैं तो उन नियमों का पालन, जिनकी आवश्यकता और उपयुक्तता जंगली जातियां नहीं जानतीं, सभ्य जातियां नहीं कर सकतीं। क्योंकि ऐसा करने से सिवा हानि के लाभ की आशा नहीं है। पर वर्त्तमान युद्ध में सभी जातियां सभ्य और अपने को संसार की नेत्री कहनेवाली हैं। यदि इन्हीं के बनाये हुये नियमों की अवहेलना इन्हीं द्वारा हुई, तो कितने कष्ट और लज्जा की बात होगी? पर जर्मनी का तो कहना है कि "प्रेम* और युद्ध में जो कुछ किया जाता है सब न्यायसंगत है" भला इस उक्ति के सामने बेचारे अन्तर्राष्ट्रीय कानून कैसे खड़े रह सकते हैं। यह तो जर्मनी को ही शोभा देनेवाली डाँट कही जा सकती है। जर्मनी की आँखों में तो पंचायत और सम्मिलनों के नियम मानों कागज़ के चिट हैं, जो समयानुकूल उल्लंघन किये जा सकते हैं। बात यह है कि हेग, जेनेवा या सेंटपिटर्सबर्ग आदि की पंचायतें इस समय सब धूल में मिल गई हैं। वे स्वप्नवत् मालूम होती हैं, मानों हुई ही नहीं।

बेलजियनों और शत्रुओं पर जर्मन द्वारा किये गये अत्याचारों की जाँच करने के लिए जो बेलजियन कमीशन बैठी थी, उसने अनुसन्धान करके ऐसी बातें प्रकाशित की हैं जिनको पढ़कर सारा सभ्य संसार क्रोधाग्नि में कूद पड़ा है। इनके अत्याचार, आबाल-वृद्ध-हत्या, सतीत्व-हरण आदि अमानुषिक और पैशाचिक आचरणों ने संसार में क्रोध और घृणा की जो प्रचंड लहरें पैदा की हैं, उनसे कोई सभ्य और न्यायशील मनुष्य स्पर्श हुए बिना न रहेगा। इतना ही नहीं यदि जर्मनी का यह घृणित व्यवहार इनेगिने अशिक्षित सैनिकों द्वारा किया जाता तो इतनी तेज आग न भड़कती पर इसमें सभ्यता और शिक्षा विज्ञान और दर्शन का दम भरनेवाले जर्मन कमांडरों का भी पूरा ज़ोर था। इस अवस्था में यह कहने में क्या संसार न्याय नहीं करता कि इस समय जर्मन लोग जंगली सभ्यता के दृश्य दिखा रहे हैं।

नीचे लिखे हुए युद्ध सम्बन्धी नियम १९०७ ई० में हेग की पंचायत में स्वीकृत हुए थे:—

१—उस शत्रु के प्राण लेना या घायल करना मना है जिसने अपने हथियार त्यागकर या आत्मरक्षा का और कोई उपाय न देखकर शत्रु की इच्छानुसार आत्मसमर्पण किया हो।

२—शरण नहीं दी जायगी यह घोषणा प्रकाशित करना मना है।

---

* यहां से जो कुछ लिखा जाता है यह "इंडियन रिव्यू" के एक लेख के आधार पर है। लेखक।

संयुक्त राज्य और ग्रेटब्रिटेन सम्मिलित थे, प्रत्येक उदासीन राज्य का कर्तव्य है कि वह अपने देश के किसी भाग के किसी लड़ाके राज्य को युद्ध की तैयारियां करने से रोके। इनके सिवा १८६४ ई० की प्रथम जेनेवा पंचायत, १८७४ ई० का ब्रूसेल्स सम्मिलन, १८६८ ई० की सेंटपिटर्सबर्ग की घोषणा, १८९९ ई० की प्रथम हेग कान्फरेंस, १९०६ की द्वितीय जेनेवा पंचायत और १९०७ की द्वितीय हेग कान्फरेन्स उल्लेखयोग्य हैं। इन सम्मिलनों और पंचायतों में जिन अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का संगठन यूरोप की बड़ी २ शक्तियों की सर्वसम्मति से हुआ, उनका कुछ वर्णन आगे चलकर किया जायगा। ये कानून तो जान बूझकर उद्देश को लक्ष्यकर सर्वसम्मति से बनाये गये थे। पर दो तीन मार्ग और भी हैं, जिनसे इन नियमों का आविर्भाव समय २ पर हुआ करता है। प्रथम तो वे सरकारी घोषणाएं हैं, जो युद्ध छिड़ने पर सरकार की ओर से प्रजा को सुनाई जाती हैं और जिन्हें वह शत्रु और उदासीन राज्यों के साथ व्यवहार करने में पालन करती है। दूसरे उन प्राइज़ कोर्टों के फैसले हैं, जो युद्धघोषणा के समय लड़ाके राज्यों में स्थापित किये जाते हैं और जो जहाज़ों पर शत्रु के लूटे हुए माल का न्याय करते हैं। तीसरे उन विद्वान कानून जाननेवालों की सम्मतियां हैं जिन्होंने बड़े २ ग्रन्थ उस विषय पर लिख डाले हैं। केंट ने अपनी "कमेंटरीज़" (Commentaries) में लिखा है कि "जहां प्रधान २ कानूनवेत्ताओं का एकमत हो जाता है, वहां समझ लेना होता है कि उनके कथन पुष्ट और हितकर हैं और किसी सरकार को जो एकदम अपनी ढिठाई और अहम्मन्यता से कानून पर लात मारना नहीं चाहती, साहस न होगा कि उनके मतों का खंडन कर उनके विपरीत आचरण द्वारा प्रजा का हितसाधन कर सके।"

अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के विकास, मूल और आधार आदि प्रश्नों पर विचार कर लेने के बाद उनके क्षेत्र पर विचार करना अत्यन्तावश्यक है। इस स्थान पर यह विचार किया जायगा कि अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों के भीतर कौन २ से विषय आजतक सम्मिलित किये गये हैं। अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का प्रारम्भिक बिन्दु, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, समस्त राज्यों की स्वाधीनता के समान अधिकारप्राप्ति है। इस प्रधान नियम के बाद राज्यों की भूमि और निकटस्थ समुद्र पर अधिकार की बात है। साथ ही यह प्रश्न भी उठता है कि राज्य का विस्तार करने के लिए युद्ध में जो साधन अवलम्बित किये गये हैं, वे कहां तक न्यायसंगत हैं और आत्मसमर्पण, विजय, या अन्य किसी प्रकार से प्राप्त हुए अधिकार कहां तक नीतियुक्त हैं।

प्रजा के दूसरे राज्यों में अधिवास करने से उस प्रजा के सम्बन्ध में उसको सरकार को क्या अधिकार प्राप्त हैं। इसी प्रकार के नियम और सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों के भीतर आते हैं। ये कानून दो भागों में विभक्त हैं:—

(१) शान्ति के कानून और (२) युद्ध के कानून।

इनमें युद्ध के कानूनों की ही अधिकता है। यद्यपि अभी तक जैसा मैं ऊपर कह आया हूं, ऐसा प्रबल न्यायालय स्थापित नहीं हुआ है जो दो लड़ाके राज्यों का निपटारा कर दे तथापि इन नियमों द्वारा आधुनिक युद्ध में बहुत कुछ मनुष्यत्व और साधुता आगई है। इसका प्रधान कारण व्यर्थ के दुःख और पीड़ाओं को कम करना और उदासीन राज्यों की जान-माल की रक्षा करना है। इसीलिए युद्ध में बुलेटों और विष का प्रयोग और नरहत्या आदि साधन अन्याययुक्त बताये गये हैं। युद्ध के समय समाचार भेजने के लिए झंडे, पासपोर्ट आदि का प्रबन्ध रहता है। उदासीन राज्यों का व्यापार लड़ाकू राज्यों के साथ बन्द नहीं होता। व्यापार तभी बन्द हो सकता है जब उससे किसी लड़ाके

Call No. H(C)

राज्य को युद्ध में सहायता पहुंचती हो या पहुंचने का भय हो। आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का अधिकांश उदासीन राज्यों से ही सम्बन्ध रखता है। लीकौक ने लिखा है कि विशेषकर १८वीं और १९वीं शताब्दियों में "उदासीनता" के कानून की उन्नति पर ही अधिक ध्यान दिया गया है और अब यह अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का प्रधान अङ्ग समझा जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों पर अबतक जो कुछ लिखा गया है वह शास्त्रिक दृष्टि से लिखा गया है। उसका किसी विशेष राज्य या युद्धकाल या देश से सम्बन्ध नहीं है। नीचे वर्तमान यूरोपीय महाभारत को अपना लक्ष्य मानकर कुछ लिखा जायगा। इसमें कुछ उन नियमों का अवतरण दिया जायगा जो समय २ पर सम्मिलनों और पंचायतों द्वारा स्वीकृत हुए हैं और जिन्हें प्रत्येक राज्य कर्तव्याकर्तव्य दृष्टि से पालन करने के लिए बाध्य है।

जब दो सभ्य राज्यों में युद्ध छिड़ जाता है तो अनुमान किया जाता है कि युद्ध-क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय नियमों में निषेध किये गये साधनों का अवलम्बन न करने तथा किसी भी नियम का पददलन न करने से वे युद्ध में मनुष्यत्व को पूर्ण स्थान देंगे। हां, जब असभ्य और जंगली जातियों का दमन करने के लिए उनसे युद्ध ठाना जाता है वा जब दो असभ्य जातियां लड़ती हैं तो उन नियमों का पालन, जिनकी आवश्यकता और उपयुक्तता जंगली जातियां नहीं जानतीं, सभ्य जातियां नहीं कर सकतीं। क्योंकि ऐसा करने से सिवा हानि के लाभ की आशा नहीं है। पर वर्त्तमान युद्ध में सभी जातियां सभ्य और अपने को संसार की नेत्री कहनेवाली हैं। यदि इन्हीं के बनाये हुये नियमों की अवहेलना इन्हीं द्वारा हुई, तो कितने कष्ट और लज्जा की बात होगी? पर जर्मनी का तो कहना है कि "प्रेम* और युद्ध में जो कुछ किया जाता है सब न्यायसंगत है" भला इस उक्ति के सामने बेचारे अन्तर्राष्ट्रीय कानून कैसे खड़े रह सकते हैं। यह तो जर्मनी को ही शोभा देनेवाली डाँट कही जा सकती है। जर्मनी की आँखों में तो पंचायत और सम्मिलनों के नियम मानों कागज़ के चिट हैं, जो समयानुकूल उल्लंघन किये जा सकते हैं। बात यह है कि हेग, जेनेवा या सेंटपिटर्सबर्ग आदि की पंचायतें इस समय सब धूल में मिल गई हैं। वे सब्भवत् मालूम होती हैं, मानों हुई ही नहीं।

बेलजियनों और शत्रुओं पर जर्मन द्वारा किये गये अत्याचारों की जाँच करने के लिए जो बेलजियन कमीशन बैठी थी, उसने अनुसन्धान करके ऐसी बातें प्रकाशित की हैं जिनको पढ़कर सारा सभ्य संसार क्रोधाग्नि में कूद पड़ा है। उनके अत्याचार, आबाल-वृद्ध-हत्या, सतीत्व-हरण आदि अमानुषिक और पैशाचिक आचरणों ने संसार में क्रोध और घृणा की जो प्रचंड लहरें पैदा की हैं, उनसे कोई सभ्य और न्यायशील मनुष्य स्पर्श हुए बिना न रहेगा। इतना ही नहीं यदि जर्मनी का यह घृणित व्यवहार इनेगिने अशिक्षित सैनिकों द्वारा किया जाता तो उतनी तेज आग न भड़कती पर इसमें सभ्यता और शिक्षा विज्ञान और दर्शन का दम भरनेवाले जर्मन कमांडरों का भी पूरा ज़ोर था। इस अवस्था में यह कहने में क्या संसार न्याय नहीं करता कि इस समय जर्मन लोग जंगली सभ्यता के दृश्य दिखा रहे हैं।

नीचे लिखे हुए युद्ध सम्बन्धी नियम १९०७ ई० में हेग की पंचायत में स्वीकृत हुए थे :—

१—उस शत्रु के प्राण लेना या घायल करना मना है जिसने अपने हथियार त्यागकर या आत्मरक्षा का और कोई उपाय न देखकर शत्रु की इच्छानुसार आत्मसमर्पण किया हो।

२—शरण नहीं दी जायगी यह घोषणा प्रकाशित करना मना है।

* यहां से जो कुछ लिखा जाता है वह "इंडियन रिव्यू" के एक लेख के आधार पर है। लेखक।

३–यदि युद्ध की आवश्यकताएं ऐसी कठिन नहीं हैं कि शत्रु के माल लूटे और नष्ट किये जायँ, तो ऐसा करना मना है।

४–अरक्षित नगरों, गाँवों, मकानों या इमारतों पर आक्रमण या गोलन्दाज़ी करना मना है।

५–हमला करनेवाली सेना के कमांडरों का कर्तव्य है कि अकस्मात् धावा करने (assault) के सिवा और सब अवस्थाओं में स्थानीय अफ़सरों को पहिले सूचना दे दें।

६–घेरने और गोलन्दाज़ी करने के समय धर्मस्थान, कलाभवन, विज्ञानशाला तथा दातव्यनिकेतनों की रक्षा के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिये—यदि वे साथ २ युद्ध के कामों में न लाये जाते हों।

७–अकस्मात् धावा (assault) करके लेने पर भी, किसी शहर या स्थान को लूटना मना है।

८–प्रजा की स्वाधीनता, जानमाल, धर्म विश्वास, कुलमर्यादा और अधिकारों का आदर करना होगा।

९–प्रजा की सम्पत्ति ज़ब्त नहीं की जा सकती।

१०–प्रकटरूप से (formally) लूट मार करना मना है। यदि राज्य के हित के लिए चुंगी, कर आदि लगाने के सिवा अधिकारी अधिकृत देश पर दूसरा टेक्स लगावे तो ऐसा युद्ध की आवश्यकतानुसार और उस देश के शासन के लिए ही किया जा सकता है।

११–प्रजा को कोई धन सम्बन्धी या और किसी प्रकार का व्यापक दंड, व्यक्तिगत आचरणों के लिए नहीं दिया जा सकता, क्योंकि वह उनके लिए सम्पूर्णरूप से दोषी नहीं है।

१२–अधिकार करनेवाली सेना की आवश्यकता के सिवा अन्य अवस्थाओं में प्रान्तों या अधिवासियों से सेना के लिए खाद्यपदार्थ नहीं लिए जा सकते और न अन्य काम कराये जा सकते हैं।

१३–रसद के लिए यथाशक्ति नकद रुपये चुकाने पड़ेंगे।

१४–कलाकौशल और विज्ञान की चीज़ों, ऐतिहासिक चिह्नों और धर्म, दान अथवा शिक्षा संस्थाओं को छीनना, नष्ट करना या जान बूझ कर तोड़ फोड़ डालना मना है; यदि ऐसा हो तो उचित कार्रवाई की जा सकती है।

इन प्रतिबन्धों के रहते हुए भी जर्मनों के जो अत्याचार हुए हैं, वे सचमुच ही घृणोत्पादक हैं। जब उन्होंने किसी स्थान पर अधिकार किया है वहां उन्होंने सीधी साधी प्रजा पर क्रूरता दिखाई है। कहीं २ तो पुरुष कैदी खेतों में काम करने के लिए जर्मनी भेज दिये गये हैं। सड़कों और गलियों में बेलजियन युवतियों पर जो अमानुषिक अत्याचार किये गये हैं उन्हें हमारी आँखें नहीं देख सकतीं। सभ्यता के प्राचीन समय में युद्ध के कैदी गुलाम बनाकर रक्खे या मार दिये जाते थे। १९वीं शताब्दी में भी उनको बड़ी क्रूरता और निर्दयता से दुःख दिया जाता था। ऐसी अवस्था में यदि कैदी इन अत्याचारों से छुटकारा पाने के लिए आत्महत्या करले तो क्या आश्चर्य है? पर कैदियों को छीन लेने का तो तात्पर्य यही है कि वे भविष्यत् में शत्रु की ओर से लड़ें। उनकी इस प्रवृत्ति की जड़ काटने के लिए यथासम्भव मनुष्योचित साधनों का अवलम्बन ही सर्वथा न्यायसंगत कहा जायगा पर उसके लिए क्रूरता और अपौरुषेयता की शरण लेना कहां का न्याय है। साथ ही जिस सरकार के हाथों में वे कैदी आये हैं उसे उनके जीवननिर्वाह का पूरा सामान करना होता है। उनके स्वास्थ्य का ख्याल, उनके निवासस्थान को साफ़ सुथरा रखना और उनके रहन सहन के अनुकूल बनाना पड़ता है। उन कैदियों को जो भागने हुए

Call No. I(C)

पकड़े जाते हैं अथवा जिनका भागना किसी कारण से काम न कर सका, किसी प्रकार का दण्ड नहीं दिया जा सकता पर जो कैदी शर्तों पर छोड़ दिये जाते हैं और जिन्हें प्रतिज्ञा के अनुसार उन शर्तों को पूरा करना होता है वे यदि भागने की कोशिश करें तो उनको यथोचित दंड दिया जा सकता है। यदि सेनापति यह विचार कर कि कैदियों की अधिक संख्या के कारण उसकी गति या युद्धक्रिया में बाधा पहुंचती है या उनके पालनपोषण में बड़ी कठिनाई है या उन्होंने स्वतन्त्रता प्राप्त करने की चेष्टा की है उन्हें मरवा डाले तो उसका यह आचरण अन्याययुक्त कहा जायगा। इस प्रकार की सब से अन्तिम घटना १७९९ ई० में जाफ़ा में हुई थी जहां नेपोलियन की हुंकार से ३६५३ अरब समुद्र तीर पर गोलियों और भालों से मार गिराये गये थे। पर आधुनिक समय में इसकी आवश्यकता न रहने पर भी १९०२ ई० का जर्मन 'क्रूजब्रा' (Krugebrauch) कहता है कि "बड़ी कड़ी ज़रूरत पड़ने पर जब उनकी रक्षा का कोई उपाय न रह गया हो और जब उनका जीवित रहना उनके ही अस्तित्व में बाधक हो तो कैदी मारे जा सकते हैं। युद्ध की ज़रूरतों और राज्य की रक्षा पर पहिले ख्याल किया जाता है; पीछे कैदियों के आराम का ।" घायलों और रोगियों के साथ यथासम्भव सद्व्यवहार ही करना चाहिये, चाहे वे अपने हों या शत्रु के पर १८६४ और १९०६ ई० के जेनेवा सम्मिलनों के नियमों के रहते हुए भी जर्मनों ने इसकी अवहेलना खूब ही की है। वे प्रायः यह समझकर उन्हें पीछे छोड़ देते हैं कि उनसे उनके काम में बाधा होगी।

और भी। युद्ध-क्षेत्र में घायलों का पता लगाकर उनकी एक सूची तैयार की जाती है जो उनके नाम तथा उनके पास पाये हुए पत्रादि के साथ कैदियों के ब्यूरो के पास भेजी जाती है। इन कामों को अन्जाम करने के लिए जो लोग नियुक्त किये जाते हैं उन्हें कोई दल आघात नहीं पहुंचा सकता और न वे कैद ही किये जा सकते हैं। पर जर्मनों ने इसकी भी अवहेलना की है। बड़ी इमारतों को जिन पर रेड् क्रास (Red cross) की पताका उड़ रही थी इन्होंने धूल में मिला दिया; रोगियों और घायलों को मार डाला और अस्पतालों को जला दिया। रेड् क्रास (Red cross) गाड़ियां, तोप और बन्दूक आदि ढोने के काम में लाई गईं।

अब कुछ उन नियमों का वर्णन सुनिये जो जलयुद्ध के संबन्ध में १९०७ के 'हेग' सम्मिलन में पास किये गये थे।

(१) ऐसी सुरंगें लगाना मना है जो उनके नियामक के कार्य बन्द करने पर अधिक से अधिक एक घंटे के बाद निरुपद्रव न हो जायँ।

(२) ऐसी सुरंगें बिछाना मना है जो अपनी (movings) से अलग होतेही बेकार न हो जायँ।

(३) ऐसे टारपीडो को व्यवहार में लाना मना है जो निशाना चूकने पर बेकार न हो जायँ।

समाचारपत्रों के पाठकों को मालूम है कि उत्तर समुद्र को जर्मनों ने सुरंगों से पाट दिया है, जिससे बृटेन नार्वे, और हालैंड के अनेक जहाज़ क्रूज़र आदि नष्ट हो गये हैं। अबतो अटलांटिक महासागर में भी जर्मनों ने सुरंगें बिछादी हैं। एक अमेरिकन जहाज़ भी टकराकर डूब गया है। ये जर्मन सुरंगें नियामक के काम बन्द करने पर १ घंटे के बाद बेकार नहीं होतीं। इसपर भी मजा यह है कि हेग सम्मिलन में जर्मनों ने ही इस रुकावट की स्वीकृति पर ज़ोर दिया था। उपर्युक्त बन्धनों के सिवा अन्य कितने ही हैं जिनका वर्णन यहां नहीं किया जा सकता। फिर भी निम्नलिखित जानने योग्य हैं।

किसी बन्दर पर इसलिए गोलन्दाजी नहीं की जा सकती कि उसके पास सुरंगें बिछी हैं।

यदि खाद्य पदार्थ देने से इनकार किये जाने या गोलियां चलने पर शत्रु गोलन्दाज़ी करे, तो उस समय उसे उपर्युक्त छठे नियम का पालन करना होगा। जो नौकाएं समुद्रतट के निकट ही मछलियों का काम करती हैं अथवा स्थानीय व्यापार का माल ले जाती और ले आती हैं, वे और न उनकी कोई चीज़ पकड़ी जा सकती है। इस नियम के होते हुए भी जर्मनों ने डोडर तीर के पास के १५ मछुए जहाज़ों को डुबा दिया। शत्रु के सरकारी और प्राइवेट जहाज़, यदि वे उदासीन राज्य के तीर पर नहीं हैं तो पकड़े जा सकते हैं। अस्पतालवाले जहाज़, जिनसे शत्रु को भड़कानेवाला कोई दूसरा काम नहीं लिया जाता, पकड़े नहीं जा सकते। इन पर बिना तार का तार खड़ा नहीं किया जा सकता। जर्मन जहाज़ "गोबेन" और "ब्रेसलो" के सम्बन्ध में, जिन्हें रोम ने कहा कि उसने खरीद लिये हैं, यही कहा जा सकता है कि—१६०६ के लंडन की घोषणा के अनुसार कोई उदासीन राज्य लड़ाके राज्य के जहाज़ को ले नहीं सकता, जबतक वह यह प्रमाण न दे कि ऐसा आचरण इसको शत्रु से बचाने के लिए नहीं किया गया। पर यह साफ़ है कि ये दोनों जर्मन जहाज़ यदि टर्की उन्हें न ले लेता तो भूमध्य सागर के ऐंगलो-फ्रांसीसी नौ-सेना द्वारा ज़रूर पकड़ लिये जाते। १६०७ के हेग सम्मिलन में यह भी निश्चित हुआ कि सामुद्रिक तार, जो अधिकृत (occupied) देश और उदासीन राज्य को मिलाता है, बहुत बड़ी ज़रूरत पड़ने पर ही तोड़ा जा सकता है। उदासीन राज्य में बिना तार के तार गाड़ने और व्यवहार में लाने का निषेध लड़ाके राज्यों के लिए है। इसी नियम के अनुसार अमेरिका ने बोस्टन का तार बन्द कर दिया है, जिसे जर्मन लोग नियम के विरुद्ध काम में ला रहे थे।

लड़ाई बन्द करने और आत्मसमर्पण की सूचना देने के लिए झूठे झंडे दिखाये नहीं जा सकते। झंडों का प्रयोग भागने के लिए अवसर प्राप्ति या नई सेना जमा करने के लिए नहीं किया जा सकता। शत्रु को धोखा देने के लिए बनावटी आत्मसमर्पण करना और जब कैदी एकत्र करने के लिए शत्रु निकट आवें तो उन पर हमला करना मना है। पर जर्मनों ने ऐसा कई बार किया है।

धोखा देने के लिए शत्रु के राष्ट्रीय झंडे और पोशाक को काम में लाना मना नहीं है। पर रणक्षेत्र में जब लड़ाई हो रही है, ऐसा नहीं किया जा सकता। हम लोग जानते हैं कि लड़ाई की भीषणता, मुर्दा गाड़ने, रोगियों की सेवा करने या कैदियों के बदलने या शत्रु से बातें करने के लिए कम कर दी जाती है। ऐसे अवकाश का समय बहुत कम रहता है। बिना सूचना दिये लड़ाके फ़िर युद्ध शुरू नहीं कर सकते। ट्रूस के समय युद्ध करने के सिवा और सब काम किये जा सकते हैं—जैसे, सैनिकों को शिक्षा देना, नई सेना का बुलाना, इत्यादि। अर्थात् वे काम किये जा सकते हैं जिन्हें शत्रु युद्ध के समय में भी रोक नहीं सकता था।

पर अंत में यह कहना ही पड़ता है कि इन सब नियमों के विरुद्ध जर्मनों का ऐसा कुत्सित आचरण होते हुए भी, एमडेन का व्यवहार, शत्रु जहाज़ों के नाविकों और कप्तान आदि के साथ इतना उत्तम, प्रशंसनीय और मानुषिक कैसे हुआ, यह जटिल समस्या युद्ध के बाद ही सुलझायी जा सकती है।

Call No. F(C)

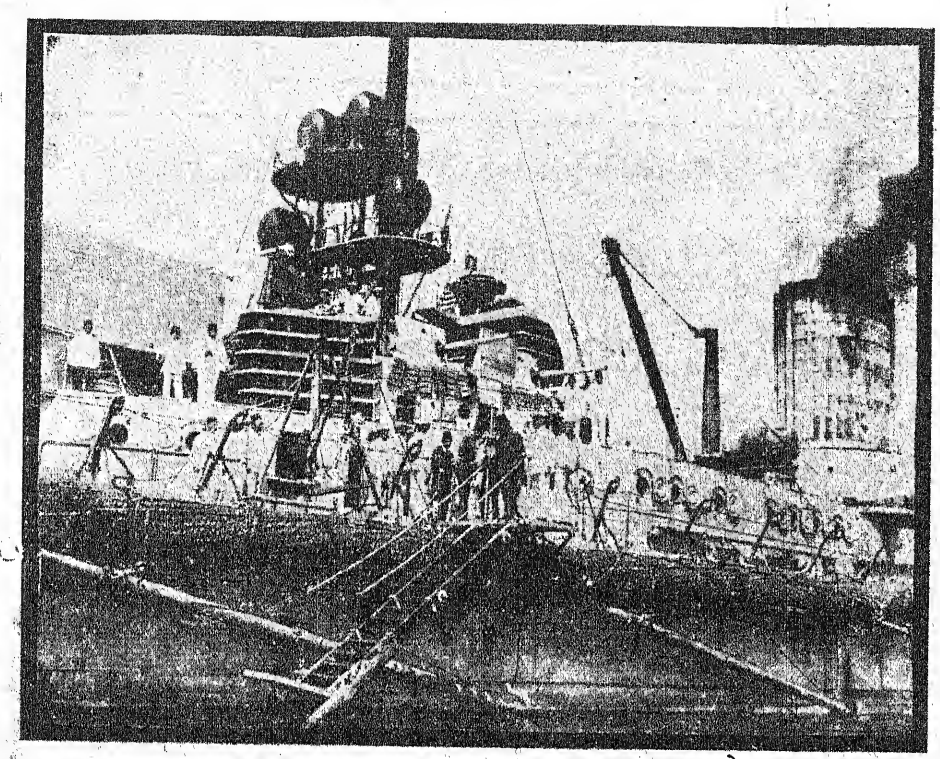

टर्कीमें जर्मन क्रूज़र 'गोबेन'
नौसेना विभागके प्रधान जमालपाशा उसकी देखरेख करते फिर रहे हैं.

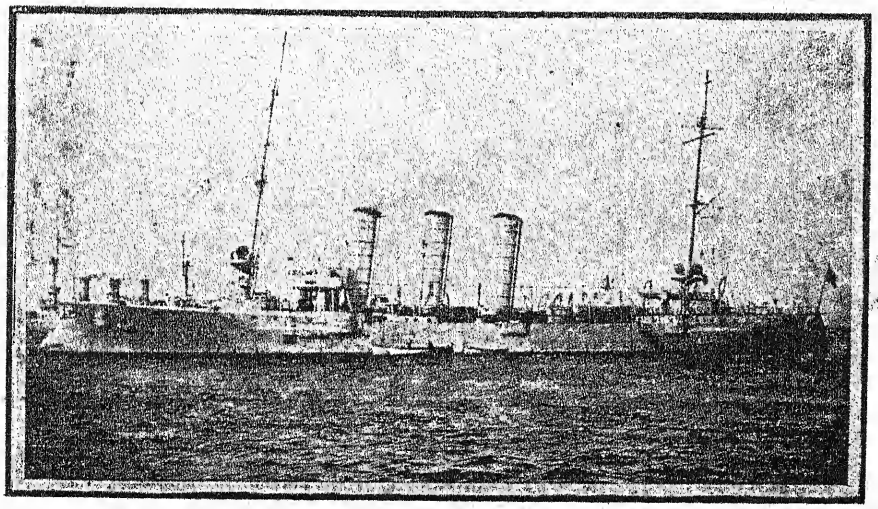

बंगालकी खाडीमें उपद्रव करनेवाला
सुप्रसिद्ध जर्मन क्रूज़र 'एमडन्.'

'रॉयल' तोफखानेंका वीर.

एक ब्रिटिश तोफखानेके वीर गोलोंकी वर्षा कर रहे थे। जर्मन गोलन्दाज़ोंने एकदम भीषण गोला बरसाये। एकसौ छोड़कर बाकी सब ब्रिटिश तोपखानेवाले मारे गये। किन्तु वह वीर अपनी जगह से हटा नहीं और बराबर गोलन्दाजी करता रहा।

Call No. 7(C)

सामुद्रिक लड़ाई।*

[अनुवादक—श्रीयुत राजाराम।]

४ अगस्त को लड़ाई छिड़ते ही यह मालूम हो गया था कि ग्रेट-ब्रिटेन को १०० वर्ष के अन्दर ही फिर एक बार सामुद्रिक लड़ाई का सामना करना पड़ेगा। ईश्वर की कृपा से युद्ध घोषणा होते ही जंगी बेड़ा भी लड़ाई के लिए तैयार करा लिया गया था, जिससे कि यह शीघ्रता से काम में लाया जा सके। इस कार्य का परिणाम सब पर विदित ही था। इसका पहिला काम शत्रु के बेड़े को तलाश करना और हराना है और दूसरा इङ्गलैंड के समस्त व्यापारी मार्गों की रक्षा करना है। युद्ध की घोषणा होने के तीन घंटे के अन्दर ही ब्रिटिश जलमग्न जहाज़ हेलिगोलैंड की खाड़ी में जाँच करते नज़र आते थे। यहीं से युद्ध में इस नई डोंगी का प्रयोग आरम्भ होता है और दोनों ओर की लड़ाई के इतिहास ने यह बात दिखला दी है कि आधुनिक सामुद्रिक लड़ाइयों में जलमग्न जहाज़ और हलके क्रूज़र, ये दोनों ही बड़े ज़ोरदार और काम की चीज़ें हैं। इसका पहिला कार्य ५ अगस्त से प्रारम्भ होता है। उस दिन उत्तरी सागर में गश्त लगाते हुए 'ऐम्फियन' नामी जहाज़ ने जिसके कप्तान मि० फाक्स थे, जर्मन सुरंग लगानेवाले कोनिगन-लुई जहाज़ को डुबोया था। अभाग्य से उसी दिन थोड़ी ही देर बाद स्वयं ऐम्फियन भी सुरंग से टकराकर डूब गया। इस घटना से पता लगता है कि जल-सेना को तैयार होते कुछ भी देर न लगी थी। उसी दिन सन्ध्या समय २० जर्मन जहाज़ पकड़ कर ब्रिटिश बन्दरगाहों में लाये गये थे। इससे अब यह भी सिद्ध होता है कि बेड़े के दूसरे कार्य पर भी ध्यान दिया गया था। ८ अगस्त को उत्तरी सागर में एक जर्मन जलमग्न जहाज़ डुबोया गया और अन्य जहाज़ों को गिरफ्तार न करने का केवल यही कारण था कि वे अपने २ सुदृढ़ बन्दरगाहों में ही डटे रहे और बाहर नहीं निकले थे। युद्ध छिड़ने के एक सप्ताह के अन्दर ही नौ-सैन्य विभाग ने २४ "व्यापारी क्रूज़रों" को कुछ दिनों के लिए मोल ले लिया। इन व्यापारी जहाज़ों को शत्रु के समस्त व्यापार को व्यापारी मार्गों से हटाने और ब्रिटिश व्यापार को जारी रखने ही के लिए राजपत्र दिया गया है। इन्होंने अपना कार्य कैसा अच्छा किया है इसका पता ब्रिटिश बन्दरगाहों में लाये हुए जहाज़ों और जर्मन क्रूज़रों द्वारा डुबोये गये अङ्गरेज़ी जहाज़ों की संख्या देखने ही से लग सकता है। ८ अगस्त और १४ अगस्त के बीच में जल-सेना ने युद्ध के इतिहास में बड़ा ही अद्भुत कार्य कर दिखाया है। ब्रिटिश सेना बिना किसी रोक टोक और शत्रु के हमले के फ्रांस में सहीसलामती पहुंचाई गई थी।

इस सफलता के प्राप्त होने का कारण जर्मन तटों को पूर्णतया बन्द करदेना और सामुद्रिक उड़ाऊ सेना और दबे जलमग्न फ्लोटिला की चौकसी ही थी।

यह जहाज़ सेना भेजे जाते समय अपने २ स्थानों पर रात दिन पहरा देते थे। ऐसे समय में और २ भी स्थानों में उड़ाऊ सेना ने भेद लाने में अच्छा काम किया है।

अब तक जल सेना ने अपनी कार्यकारिता ऊंचे दरजे की दिखलाई थी, परन्तु सामुद्रिक लड़ाई में यह किस प्रकार काम कर सकेगी

* "इन्डियन रिव्यू" से।

इसे दिखाने का इसे अभीतक कोई मौका न मिला था। आखिर २८ अगस्त को यह समय भी उपस्थित ही हुआ। बृटिश जलमग्न जहाज़ हेलिगोलैण्ड के आगे जर्मन बेड़े की कार्यवाहियों की खबर लाये और इसी कारण 'अर-थ्यूसा' के कप्तान टिरप्पिट्ज़ को एक विध्वंसी फ्लोटिला, जिसकी रक्षा हलके क्रूज़र और लड़ाई के क्रूज़र करते थे—के साथ उनके और जर्मन तटों के बीच जाने का प्रयत्न करना ही पड़ा। घनघोर घटा होने के कारण वे लोग ऐसा करने में समर्थ हुए और जर्मन जहाज़ों को पीछे हटने के लिए उन लोगों ने मज़बूर किया। लड़ाई होने पर अंगरेज़ों की ओर न कोई जहाज़ ही नष्ट हुआ और मृत्युसंख्या भी सौ से कम ही रही। इसके अतिरिक्त बृटिश स्क्वाड्रनों ने दो जर्मन विध्वंसी जहाज़ और तीन क्रूज़र डुबो दिये और ३०० मनुष्य भी गिरफ्तार किये।

इसके अनन्तर फिर जर्मनों ने अपने क्रूज़रों और विध्वंसी जहाज़ों के ज़रिये धावा करने का साहस न किया। इस प्रकार अगस्त मास के अन्त तक समुद्र में ग्रेटब्रिटेन ही का पक्ष बलवान रहा। जर्मन लोग उत्तरी सागर से भगा दिये गए और उनका व्यापार बिलकुल चौपट हो गया। अबतक उत्तरी सागर में कुछ जर्मन क्रूज़र थे परन्तु वे बिचारे डूबते हुए जहाज़ों की रक्षा में लगे हुए थे, क्योंकि वे उन्हें किसी भी बन्दरगाह में नहीं ले जा सकते थे।

इस प्रकार इन जहाज़ों के मालिकों को पूरी हानि हो रही थी और उधर जर्मनी भी इनसे कोई लाभ नहीं उठा सकता था।

५ सितम्बर को पथप्रदर्शक नाम का एक हलका क्रूज़र उत्तरी सागर में सुरङ्गों को बहाते समय एक सुरङ्ग से टकराकर डूब गया। इसका बदला बृटिश जलमग्न जहाज़ 'ई-९' ने जर्मन क्रूज़र हेला को डुबो कर लिया था।

२२ सितम्बर को तीन बृटिश क्रूज़र, आबूकीर, क्रीसी और हो जलमग्न जहाज़ों से डुबाये गये।

यह ठीक २ नहीं मालूम कि धावा करनेवाले जहाज़ों में से भी एक या दो डुबाये गये थे या नहीं। इन छोटी २ लड़ाइयों में अच्छी २ जानें अवश्य गईं, परन्तु इसका लड़ाई पर कुछ भी असर नहीं हो सकता। बिना खुले समुद्र में आये जर्मनी को कदापि इन छुट्टा लड़ाइयों से विजय नहीं प्राप्त हो सकती और यही एक बात जर्मनी करना भी नहीं चाहता। ६ अक्टूबर को 'ई-९' ने ऐम्स की खाड़ी में एक जर्मन विध्वंसी जहाज़ पर आक्रमण करके अपने अद्भुत बल का फिर परिचय दिया; इतना ही नहीं वरन् उसे डुबाने के बाद वह सही सलामत लौट भी आया। यह बड़ी बहादुरी का काम था क्योंकि इसका मतलब यह है कि अंगरेज़ लोग घूम कर ठीक उनके पीछे चले गये थे।

१५ अक्टूबर को 'हावेक' नामी जहाज़ को एक जर्मन जलमग्न जहाज़ ने बहुत से मल्लाहों सहित डुबो दिया था। इसका भी बदला खूब अच्छी तरह हालैंड के तट के आगे लिया गया। १६ अक्टूबर को 'अनडाण्टेड' नामी क्रूज़र ने जिसके कप्तान फाक्स थे चार विध्वंसी जहाज़ों को साथ लेकर केवल डेढ़ घंटे ही की लड़ाई में चार जर्मन विध्वंसी जहाज़ों को डुबो दिया। बचने के हज़ार प्रयत्न करने पर भी जर्मन लोग घेर लिये गये और लड़ने के लिए मज़बूर किये गये। वे बहादुरी से लड़े, और शेष ३० मनुष्य बन्दी हो गये। युद्ध में यह दूसरी बार सामुद्रिक लड़ाई हुई थी, और इसमें भी जर्मनों की निशानेबाजी अच्छी न होने के कारण अंगरेज़ों को कुछ भी हानि न हुई।

उत्तरी सागर में १८ अक्टूबर को इङ्गलिश जलमग्न जहाज़ 'ई-३' का डूबना समुद्र की

Call No. 11(C)

अन्तिम घटना थी। बेलजियन तट के आगे १९ ता० से लेकर जल-सेना मित्रों का साथ दे रही है। इसका कारण जर्मनों को समुद्रतट पर अधिकार जमाने से रोकना है। यह कार्य इतना अच्छा हुआ है कि इससे जर्मन खाइयां बिलकुल बचाव रहित हो गई हैं। एक ज़ेपलिन और एक वायुयान भी नष्ट हुआ है। इस कार्य के लिए नौ-सैन्य विभाग ने 'मानिटरों' (एक किस्म के छोटे जहाज़) की सहायता ली। यह युद्ध के आरम्भ ही में खरीदे गए थे। यह जहाज़ वास्तव में नदी ही के काम के हैं और यह इतने हलके होते हैं कि आवश्यकता पड़ने पर ये किनारे पर भी लाये जा सकते हैं।

प्रत्येक जहाज़ में दो ६ इंच की तोपें लगी रहती हैं। इन सब बातों को देखते हुए यही कहना पड़ता है कि पिछले तीन महीने से हमारा बेड़ा अच्छा काम कर रहा है। इसका प्रधान काम जर्मन बेड़े को हानिकारक न होने देना था।

इसके अतिरिक्त ब्रिटिश बेड़ा जर्मन और आस्ट्रियन जहाज़ों को समुद्र से हटाने; सेनाओं को पहुंचाने और लुटेरे जर्मन क्रूज़रों से व्यापारी मार्गों को साफ करने में बड़ी चतुराई से लगा रहा।

कुछ बृटिश व्यापारी जहाज़ भी डुबोये गये हैं। इन सब में प्रधान लुटेरा 'एमडन' था जिसने २२ सितम्बर को मद्रास पर गोले बरसाकर अपना ढंग ही बदल दिया था और जो आखीर में सिडनी नाम के ब्रिटिश जहाज़ का शिकार हुआ। दूसरे जहाज़ अन्य व्यापारी मार्गों पर भी वैसा ही कर रहे हैं। सब मिलाकर करीब २७ ब्रिटिश जहाज़ डूब चुके हैं।

अब तक नौ जर्मन क्रूज़रों का पता लग चुका है और मित्रों के ७० जहाज़ उनकी खोज में भेजे गये हैं। जर्मनों ने भी व्यापारी जहाज़ों को कुछ दिन के लिए ठेके पर ले लिया है और इनमें के दो 'हाईफ्लायर' और 'कारमोनिया' नामी जहाज़ों से डुबाये भी जा चुके हैं।

कठिनाई यह है कि यूनाईटेड स्टेट्स स्वजातियों को निष्पक्षता भंग करने से रोक नहीं सकती, क्योंकि उसके यहां ऐसा करने के लिए कोई कानून नहीं है।

साथही साथ हम लोग एक एमेरिकन को जर्मन जहाज़ों को कोयला देने से रोक भी नहीं सकते क्योंकि यह डर लगा रहता है कि वह कहीं पकड़ न लिया जाय।

इसके अतिरिक्त जल-सेना जर्मन उपनिवेशों पर आक्रमण करने में लगी रही। चीन में जापान किआओ-चौ लेने में लगा है; प्रशान्त महासागर में जापान, आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्ड ने जर्मन द्वीपों पर अधिकार कर लिया है; एफ्रिका में ग्रेटब्रिटेन और फ्रान्स ने प्रायः जर्मन उपनिवेशों के समस्त बन्दरों पर कब्ज़ा कर लिया है।

यद्यपि मेडिटेरेनियन सागर में ब्रिटिश बेड़े ने लड़ाई में कुछ भाग लिया है, परन्तु ज़्यादातर लड़ाइयां इन सागरों में फ्रान्स ही ने लड़ी हैं।

उसने आस्ट्रियन बेड़े को जो दूसरे दर्जे के जहाज़ से कुछ अच्छा नहीं था बिलकुल निकम्मा कर दिया और इस समय वह आस्ट्रिया के मार्ग को बन्द करने में लगा हुआ है।

गोबेन और ब्रेस्लो नाम के दो जर्मन क्रूज़र जिन्होंने एक अरक्षित नगर को ध्वंस करने के बाद डार्डिनेल्स में शरण ली थी, अन्त में शत्रु ही निकले।

यह ख्याल किया जाता है कि टर्की ने उन्हें खरीद लिया है परन्तु ऐसा भी कहा जाता है कि उनपर मल्लाह अभी तक जर्मन ही हैं। इन सब बातों से ठीक २ परिणाम

निकालना अभी बहुत दूर है। परन्तु तौभी यह प्रगट है कि इङ्गलैंड के लिए बड़ी नौ सेना की नीति का अनुकरण करना श्रेय होगा। युद्ध छिड़ने के कठिन समय में इसी से हमारी रक्षा हो सकी है। इसके लम्बान चौड़ान ही को देखकर शत्रु भयभीत हो गया है। इसीने जर्मन व्यापार को समुद्र से बिलकुल हटा दिया और इसी के ज़रिये से ग्रेट ब्रिटेन, उसके मित्रों और निष्पक्ष रियासतों की रक्षा हो सकी है। जब तक समुद्र हमारा दबदबा है, तब तक मित्रों ही की जीत होगी इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

बेलजियम के जातीय गीत का भाषान्तर।

[लेखक—श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी।]

दासपने के दिन हैं बीते,
आखिर बारी आई है।
बेलजियम की ऊंची गर्दन,
सुयश धजा फहराई है॥
अपने राजपाट की रक्षा
अपने बल से करो अभी।
तजो भीरुता, करो वीरता
होगा सच्चा काम तभी॥
"नृप, स्वतन्त्रता विधि"* लिख
अपनी धजा पुरानी फहराओ।
पद पीछे मत धरो भूलकर,
विजय करो औ सुख पाओ॥ १॥

राजमुकुट है जैसा वैसा
दिखलाओ साहस अनुपम।
श्रम से खुश भगवान तुम्हारे
औ रक्षक वह हैं हरदम॥
उपजाऊ है भूमि तुम्हारी
श्रम फल बहु गुन पाते हो।
"नृप, स्वतन्त्रता, विधि' का आसन
जमा कला पर गाते हो॥ २॥

वह रिपु जो थे सुहृद पुराने
प्रेम दिखाने आते हैं।
है स्वातन्त्र्य जहां तक उसको
कंचन सा अपनाते हैं॥
बेलजियम बटेवियावासी
भ्रातृभाव से बँध जावें।
"नृप, स्वतन्त्रता, विधि" को मिलकर
ऊंचे सुर से सब गावें॥ ३॥

बेलजियम माता के आगे
आज प्रतिज्ञा करते हैं।
नहीं घटेगा प्रेम हमारा
दम उसका ही भरते हैं॥
वह आशा औ कुशल हमारी,
हृदय रक्त उसके अर्पन।
प्राण तजें रक्षा में उसकी
है तुझसे विनती भगवन॥
"नृप, स्वतन्त्रता, विधि" का सब दिन
करें चिन्ह अब हम धारन।
घर बाहर, सुख दुख में निस दिन
होय इन्हीं का उच्चारण॥ ४॥

---

* King, Liberty, Law.

Call No. P(C)

जीवन का मूल्य।*

[लेखक–श्रीयुत श्रीराम शर्मा।]

बिना नौकरी की पेंशन।

फ्रांस व इटली सीमाप्रान्त पर भूमध्यसागर के तीरवर्ती एक बहुत छोटा सा स्वतन्त्र राज्य है—उसका नाम मोनाको है। इस छोटे से स्वतन्त्र राज्य की तुलना में अन्य देशों के साधारण नगर भी जनसंख्या में अधिक पाये जायँगे। यदि मनुष्यगणना की जाय तो यह मुश्किल से ७००० से अधिक किसी प्रकार से भी न होगी। यदि राज्य का जनसमुदाय समभाव से विभाग किया जाय तो प्रति मनुष्य के हिस्से एक एकड़ भूमि भी न पड़ेगी, ऐसे इस राज्य का एक राजा था। राजा के लिए सुन्दर राजमहल था, भव्य सभामन्दिर था, उसमें सभासद थे, धन के याचक थे, शान्ति-रक्षा के लिए सैन्याध्यक्ष था तथा एक छोटी सी फौज की पलटन भी थी।

यद्यपि फौज थी परन्तु फौज में कठिनता से ६० मनुष्य होंगे तथापि थी वह स्वतन्त्र राज्य की स्वतन्त्र फौज! अन्य देशों की तरह इस राज्य में भी प्रजा को कर देना पड़ता था, प्रति मनुष्य पीछे राज्य कर वसूल किया जाता था। मादक द्रव्य से भी कुछ चुङ्गी वसूल की जाती थी कारण यहां के लोग भी शराब या तमाकू के कम शौकीन न थे। परन्तु यह सब करने पर भी जनसंख्या इतनी कम थी कि केवल कर के भरोसे राज्य की रक्षा होनी कठिन थी अतः राजा को राज्य रक्षा के निमित्त धन के लिए एक नया उपाय ढूंढना पड़ा। राज्य में एक जुए का अड्डा स्थापित हुआ, लोग वहां पर बाजी लगाकर रुलेट (Raullete)† खेलने लगे। बहुत लोग जुआ खेलने को पहुंचने लगे, कोई जीतता था, कोई हारता था परन्तु अड्डाधारी को हमेशा लाभ ही था। उस नाल की आमदनी से राजा की नज़र ली जाती थी। इस प्रकार राजा को अच्छी आमदनी हो जाती थी कारण यूरोप में अन्य राज्यों में सभ्यता के लिहाज़ से जुआ खेलना मना था। जर्मनी के किसी २ स्थान में जुए के अड्डे थे परन्तु उन्हें भी धीरे २ राजा को उठा देने में बाध्य होना पड़ा, कारण जुए का परिणाम किसी से अविदित नहीं है। लोग जुए के नशे में अपना तथा पराया सब खो डालते हैं फिर नुकसान होने से अथवा देना चुकाने से असमर्थ होने से कोई जल में डूब कर, कोई गोली मारकर अपने जीवन को समाप्त करता है, इसलिए जर्मनी के सभ्य लोगों ने दबाव डालकर इस कुरीति को बन्द करवा दिया। परन्तु मोनाको के राजा को रोकनेवाला कोई नहीं था, उसकी इस विषय में पूर्ण स्वतन्त्रता थी।

जिसको जुए का नशा चढ़ता वह फौरन मोनाको पहुंचता। लोग चाहे हारें चाहे जीतें राजा का लाभ अवश्य था। राजा के लिए यह कोई गौरव की बात न थी। राजा इसे जानते थे पर वे लाचार थे। वे जानते थे कि "धर्माचरण द्वारा कठोर परिश्रम से भी वे राजप्रासाद नहीं बनवा सकते।" अन्त में "आत्मानं सततं रक्षेत्" इस नीति के अनुवर्ती होकर धन के

---

* फरासीसी गल्प के आधार पर बंगला से अनुवादित।

† यह खेल टेबिल पर गेंद द्वारा खेला जाता है। टेबिल के बीच में एक बड़ा गोल गड्ढा रहता है, उस गड्ढे में एक घूमती हुई तश्तरी रहती है जिसमें लाल व काले घर बने रहते हैं। गेंद कभी लाल व कभी काले घर पर गिरता है इसी पर बाजी लगती है।

उपार्जन के लिए राजा इस पथ का त्याग न कर सके।

लगभग २ पर मोनाको में भी अभिषेकोत्सव होते थे, दरबार होते थे। रियाया को भले बुरे कामों पर तिरस्कार व पुरस्कार भी मिलता था। सिपाही राजा के सामने नकली लड़ाई भी करते थे। शान्ति रक्षा के लिए कानून अदालत की भी कमी न थी। ठीक और राज्यों की तरह से ही कार्य होता था परन्तु एक छोटे स्वरूप में!

कुछ दिनों की बात है इस अजनबी राज्य में एक खून हुआ। मोनाको के अधिवासीगण बड़े शान्तिप्रिय थे। ऐसी घटना आजपर्यन्त पहिले कभी नहीं हुई थी। खूनी के विचार करने के लिए जज साहब गम्भीरता के साथ न्यायासन पर विराजमान हुए। उनकी सहायता के लिए नगर के कई जरी भी बुलाये गये। उभयपक्ष के विद्वान वकीलों की तेजस्वी बहस भी कुछ काल तक जारी रही। अन्त में जूरी ने एकमत होकर यह निश्चय किया कि कानून के अनुसार खूनी का सर धड़ से अलग कर दिया जाय। राजा ने दुखी होकर "यदि मनुष्य का प्राण वध करना ही है तो करो" कह कर दंड का अनुमोदन किया। यहां तक सब कार्य ठीक २ हुआ।

परन्तु अब दण्डाज्ञा को पूर्ण करने में एक बाधा उपस्थित हुई। उस राज्य में कोई जल्लाद न था और न कोई फांसी का यंत्र ही था। मंत्रीगण बड़े २ विचार कर फरासीसी राज्य के शरणागत हुये। लिखा गया कि यदि फरासीसी राज्य एक जल्लाद और फांसी देने का सरंजाम भेजने की कृपा करे तो जो कुछ खर्च लगेगा उसे मोराको के राजा हर्षपूर्वक देना स्वीकृत करेंगे व उपकृत होंगे" फरासीसीराज्य से उत्तर मिला—फरासीसी राज्य जल्लाद व फांसी के यंत्र को भेज सकता है परन्तु खर्च सिर्फ १६०००) रुपया लगेगा। राजा के पास खबर पहुंची। राजा सुनकर चुप हो गये। एक मनुष्य की फांसी और १६०००) का खर्च! राजा ने कहा—भाई एक मनुष्य का मूल्य इतना अधिक नहीं हो सकता! मनुष्य पीछे २) से भी अधिक! इसके लिये नया कर लगाना पड़ेगा, गरीब प्रजा इस अपव्यय को कदापि सहन न कर सकेगी और दंगा उत्पात का होना भी संभव है।

तब राजा ने एक सभा की, निश्चय किया कि इटली के राजा को चिट्ठी लिखी जाय। फ्रांस में प्रजातंत्र शासनप्रणाली है, वे राजा का मान करना क्या जानें। इटली के राजा तो उनके जाति भाई हैं आशा है सस्ते में काम निपट जायगा। इटली के राजा ने उत्तर दिया सहर्ष जल्लाद व फांसी का सरंजाम दे देंगे आपको १२०००) रुपया खर्च देना पड़ेगा। अब मुनाको के राजा बड़े असमञ्जस में पड़े। यद्यपि मूल्य सस्ता है तथापि एक दुष्ट के वध के लिए इतना खर्च कदापि न होगा। इसमें भी तो जन प्रति २) रुपये से कुछ कम कर लगाना पड़ेगा। फिर सभा एकत्रित हुई कि क्या करने से खर्च कम लगे। क्या कोई सिपाही किसी प्रकार से कार्य को नहीं कर सकता! सेनापति से इस विषय में पूंछा गया, लड़ाई में तो सिपाही लोग कितने मनुष्यों का वध करते हैं। सेनापति ने सिपाहियों से पूंछने का वचन दिया। कोई भी सिपाही इस काम को करने में राज़ी न हुआ, उन लोगों ने कहा कि वे जल्लाद का काम नहीं कर सकते।

अब क्या किया जाय? सभा हुई। बड़े तर्कवितर्क के बाद यह निश्चय हुआ कि फांसी के बदले असामी को यावज्जीवन कारावास का दण्ड हो इससे राजा की दया भी प्रकट होगी व खर्च भी कम लगेगा।

इस प्रस्ताव पर राजा ने अपनी अनुमति दिखाई। कैदी को यावज्जीवन कैद करने का

Call No. R(C)

उद्योग होने लगा, परन्तु अब एक नया विघ्न उपस्थित हुआ कैदी को यावज्जीवन कैद रखने के लिये सुदृढ़ कारागार कहां ? जो कैदखाना था उसमें साधारण कैदी अस्थायी भाव से रक्खे जाते थे। परन्तु राज्य में यावज्जीवन कैदी को रखने का कोई स्थान न था। अन्त में एक स्थान निर्दिष्ट हुआ। वहां पर वह युवा खूनी कैद किया गया। कैदी की खबरदारी के लिए एक प्रहरी भी नियुक्त हुआ। वही मनुष्य राजा के राजगृह से कैदी को खाने के लिए भोजन ले जाया करता था।

कैदी का जीवन भी मास पर मास उसी कारागार में कटने लगा। इस प्रकार एक वर्ष बीत गया। वर्ष के अन्त में एक दिन राजा अपने राज्य का हिसाब देख रहे थे। बही में एक नयी रकम उनके नज़र पड़ी। कैदी के भोजन में और चौकीदार के वेतन आदि में प्रायः ६००) रुपये अधिक वर्ष में खर्च होगये थे। विशेष आशङ्का इस बात की थी कि कैदी हृष्ट पुष्ट निरोगी था, उसके अभी ५० वर्ष और जीने की आशा थी। राजा ने मंत्री को बुलाया और कहा "इस एक दुष्ट के लिए इतना खर्च नहीं हो सकता और कोई उपाय सोचिये।

राजसभा में इस विषय के सम्बन्ध में फिर सलाह हुई। भांति भांति के तर्क वितर्क हुये। एक ने कहा-"प्रहरी को छुड़ा देने से खर्च घटेगा" दूसरे ने प्रतिवाद किया "कैदी भाग जायगा" परन्तु भाग के जायगा कहां? अतः यही निश्चय हुआ कि प्रहरी छुड़ा दिया जाय। प्रहरी उसी दिन से छुड़ा दिया गया।

दूसरे दिन कैदी ने प्रहरी को न देखा। पेट में भूख की आग धीरे २ तेज होती देख कैदी को कोई उपाय न सूझा और वह स्वयं राजगृह से खाने को लेने चला। खाना लाकर, कारागार का उसने दरवाज़ा बंद किया और कैदखाने से उसके भागने का कोई आसार नहीं दिखाई दिया। कैदी बड़े आराम और शान्ति से जीवन बिताने लगा। भूख लगने पर राजमहल से भोजन ले आता और फिर दिन भर वह चैन से काटता था! अब क्या करना चाहिये ? फिर मंत्री की पुकार हुई।

सभासदों ने कहा महाराज कैदी को साफ साफ कह देना चाहिये कि उसे हम लोग कैद नहीं रखना चाहते। तब मंत्री ने कैदी को बुलवाया और कहा-"अब चौकीदारतो है नहीं तुम भाग क्यों नहीं जाते ? अब तुम जहां चाहो जा सकते हो, राजा कुछ न कहेंगे। कैदी ने कहा "राजा को मेरे जाने में कोई आपत्ति नहीं है यह संभव है, परन्तु अब मेरे जाने का स्थान कहां है ? मैं निरुपाय हूं। आप लोगों ने मेरे ऊपर वधाज्ञा देकर मेरे चरित्र में कलङ्क लगाया है। अब मैं जहां जाऊंगा वहां ही मेरी ताड़ना होगी, मेरा अपमान होगा। इसके सिवा बैठे बैठे आपका अन्न खाने से मेरी कार्य करने की शक्ति जाती रही है। आप लोगों ने मुझ गरीब पर बड़ा अन्याय किया है जब मुझे प्राणदण्ड की आज्ञा हुई थी तब मेरा अन्त करना ही उचित था परन्तु आपने वैसा नहीं किया! मैंने इसके विरुद्ध कोई अभियोग आप पर नहीं चलाया। इसके बाद आपने मुझे यावज्जीवन कारागारवास का दण्ड दिया, मुझपर कठिन पहरा रक्खा। प्रहरी मुझे भोजन ला देता था परन्तु धीरे धीरे वह भी बंद हुआ। मैं स्वयम् कष्ट सह कर राजगृह जाकर आहार ले आता था, तब भी मैंने आपसे कुछ न कहा, अब आप लोग मुझे भगाना चाहते हैं। मैं इसमें कदापि राज़ी नहीं हूं। महाराज जो चाहें करें मै राज्य से जाने में कदापि राज़ी नहीं हूं।

मंत्री फिर चिन्ता में पड़ा। कैदी किसी प्रकार से भी जाना नहीं चाहता। सभासदगण बहुत विचार करने पर भी कुछ निश्चय न कर सके। कैदी को पेंसन देने की बात होने लगी। कारण इसके सिवा और कोई उपाय ही

नज़र नहीं पड़ता था। सब यही चाहते थे कि किसी भी प्रकार से जान बचे। लाचार होकर कैदी के लिए राजा ने ६००) वार्षिक पेंसन का बंदोबस्त किया।

कैदी ने यह सुनकर कहा "महाराज मुझे यदि नियमित रूप से पेंसन मिलती जाय तो राजाज्ञास्वीकार करने में हमें कोई आपत्ति न होगी"। इस प्रकार इस मामले का अन्त हुआ। कैदी एक तिहाई रुपया पेशगी लेकर राज्य त्याग करके रेलगाड़ी पर चढ़कर १५ मिनट में मोनाको राज्य की सीमा से बाहर हो गया। सीमान्त देश में एक ग्राम में कुछ ज़मीन खरीद कर वहां वह रहने लगा। ज़मीन से उत्पन्न तरकारी, भाजी को बाज़ार में बेंचकर धीरे धीरे वह दो पैसे का रोज़गार भी करने लगा। अब वह बड़े आराम से जीवन बिताता था। पेंसन का रुपया वसूल करने के लिए ठीक समय से मोनाको के राजगृह के सम्मुख वह हाज़िर हो जाया करता था। पेंसन के रुपयों से राजगृह से लौटते समय वह जुए के अड्डे में भी दो चार हाथ खेल लिया करता था। कभी जीतता था कभी हारता था। संध्या होते २ वह अपने देहाती घर पर पहुंच जाता और अपने शान्तिमय जीवन को व्यतीत करता था।

भारत-वन्दना।*

[लेखक—पं० जीवानन्द शर्मा (काव्यतीर्थ)।]

द्वितीय दिन की कविता।

दिन दिन सुख शान्ति लहै जननी मम प्यारी।
जासों हरिचन्द पूत जनम्यो अर्जुन सपूत
राम कृष्ण गोद लहैं ऋषियन महतारी॥
हिमगिरि अरु विंध्यशिखर जाके शिर मुकुटकीट
नदिअन कचरोकलोल मलय गन्धवारी।
ब्रह्मचर्य की प्रसूति दर्शन की आदि भूमि
रतननि की खानि ज्ञानभक्ति कोखधारी॥
करमें इकशस्त्र लहैं दूजे कर शोभित श्रुति
तीजे कर में रसाल चौथ अभयकारी।
जाके पगु धोइ धोइ वारिधि निज भाग लहैं
झरननि अन्हवावै नग ऋतुन जिहिं सिंगारी॥

कान्हरा सहाना झपताला।

आओ जनम भू की आरती उतारो।
हिन्दू मुसलमान चाहे किरिस्तान
सब सुत इकट्ठे हो माता उद्धारो।
बाती स्वदेशी परम प्रेम घृत डालि
विज्ञान की ज्योति जगमग उज्यारो॥
प्रफुलित हृदयकञ्ज चरननि अरपि आज
एकै सुरनि मातु जय जय उचारो।
गाड़ो ध्वजा एकता की परम रम्य
ऊंचे सिंहासन पै माता बिठारो॥

देश तीनताला।

शक्ति कउ घूमति घूमि जगावति।
उठहु उठहु प्रिय भारतवासी
सब कह कहि समझावति॥
सबहि नवल उत्साह दिलावति
सब कहँ मन अकुलावति।
हृदय कमल बिच बहत झकोरनि
वायु अगिनि उकसावति॥
एक भाव लै सबहि मिलावति
मानस जाइ हिलावति।

---

* यह कविता हिन्दी साहित्य सम्मेलन में पढ़ी गई थी।

Call No. I(C)

नस नस में पुनि देति गुदगुदी
धमनिन रुधिर चढ़ावति ॥
विज्जुशक्ति कर तन दौड़ावति
कारज शक्ति बढ़ावति ।
मंत्र फूंक दै सबनि उठावति
आलस रिपुहि भगावति ॥

तीसरे दिन की कविता ।

(काफी, वा कान्हरा) उलहना—

सुनौजो भारत के तुम वीर ।
मेरी गोदी में तव पितरन पल्यो रह्यो बिनु पीर ॥
मेरे हित दधीचि ने हड्डी कवच कर्ण ने दीने ।
श्रीअभिमन्यु प्राण दै डारे प्रिय प्रताप प्रन कीने ॥
पद्मावती आदि बेटी सब मम हित तनहि जलाये ।
निज पीठन पै बांधि शिशुन को लड़ि लड़ि प्राण गँवाये ॥
जीवानन्द कहौ अब किहिकृत भूले मोहि तुम प्यारे ।
छिन्न भिन्न सी अब हो रही हूं किहि विधि जीवन धारे ॥

भारत के कन्याओं का भारतमाता के प्रति आश्वासन—

सहैंगी सहैंगी विपत्ती का सदमा ।
यह माता खड़ी रोरही मातृभूमी
हमीं इसका आंसू पोछैंगी पोछैंगी ।
ये सूखी हुई आर्यकीरति की पोखी
हमीं प्रेम जल से भरैंगी भरैंगी ॥
धरम पंथ पै ये जो कांटे बिछे हैं
उन्हें हम मसल कर चलैंगी चलैंगी ।
कला का कमल हिन्द में सूखा जाता
उन्हें लहलहे हम करैंगी करैंगी ।
हमीं डूबती हिन्द की नाव को झट
भँवर से बचावा करैंगी करैंगी ॥

प्राचीन भारतवर्ष में युद्ध ।*

[लेखक—पं० प्रयाग प्रसाद त्रिपाठी ।]

प्राचीन भारतवर्ष में युद्ध जातीय व्यवहारों में स्वाभाविक थे । प्राचीन आर्यों में एक दूसरे से वादाविवाद बहुधा उठा ही करते थे तथा इनका सम्बन्ध ऋग्वेद में पाया जाता है यथा वशिष्ठ तथा विश्वामित्र के सम्बन्ध में। आर्य जाति तथा इस देश के प्राचीन निवासियों से नाना प्रकार के युद्ध होते रहे जिससे आर्य जाति संग्रामिक बल में स्थित रही। राक्षस, पिशाच तथा सभ्यजातियों में इस देश में युद्ध स्वाभाविक थे क्योंकि एक दूसरे पर अपना आधिपत्य चाहते थे । इस समय की आर्य जाति में वर्णव्यवस्था का नियम इतना कड़ा नहीं था जितना कि वर्तमान समय में है। कोई जाति गान विद्या में निपुण थी, कोई यज्ञ में, कोई कला-कौशल तथा वाणिज्य में । एक विशेष जाति रक्षक तथा योद्धा थी । जब परस्पर में भेदभाव का आरम्भ हुआ तो प्रथम ब्राह्मण तथा क्षत्री में भेद माना जाने लगा । जिसका विशेष विवरण कठोपनिषद् में पाया जाता है ।

प्राचीन भारत के देवता भी युद्ध में निपुण थे । योद्धा इन्द्र ने वृत्र, शुष्ण, पिप्रू, शम्बर

* 'इन्डियन रिव्यू' के आधार पर ।

तथा अन्य शत्रुओं का वध किया। उसने उन जातियों का नाश किया जोकि कटुभाषी थीं और उन जातियों के सात दुर्गों को छिन्न भिन्न किया। कविगण उसका गुणानुवाद अपनी कविता में किया करते थे। इसी प्रकार अग्नि, मित्र, वरुण, मारुत, अश्विनी तथा स्वर्गीय वैद्य भी शूरवीर थे तथा युद्धों में प्रसिद्धि प्राप्त करते थे। देवताओं को युद्ध में उत्साहित करने के लिए कविगण कविताओं का गान करते थे। सोमरस पान करने के कारण उनकी शक्ति बढ़ जाती थी।

जब देवताओं के शत्रु माया तथा कूट युद्ध करते थे तब देवता भी उनके विरुद्ध माया का विस्तार करते थे। नास्तिक-शत्रुओं से माया युद्ध करने के कारण इन्द्र देवता की बड़ी स्तुति की गई है, "वृत्र तथा अन्य शत्रुओं के मायापूर्ण युद्ध को उसने माया ही द्वारा नाश किया।" युद्ध में अश्वादि जीव बहुत लाभदायक तथा अमूल्य समझे जाते थे। एक कवि कहता है "मैं आप का शरणागत हूं जैसे योद्धा घोड़े की शरण लेकर युद्ध में जाता है।" सोमलता का रस निकालकर पान किया जाता था तथा देवतागण योद्धाओं को इसे समर्पण करते थे क्योंकि वह "केवल शूरों के पान करने योग्य था" कविगण भी संग्राम में लड़ा करते थे। युद्ध-भूमि में बाण, कमान, तीर, ज़िरहबख़्तर, खड्ग, भाले इत्यादि का प्रयोग किया जाता था, तथा योद्धा लोग किसी पक्ष के क्यों न हों बड़े सम्मान की दृष्टि से देखे जाते थे। बड़े २ युद्ध भी यहां पर होते थे, जैसा कि एक जगह लिखा मिलता है कि "एक सौ एक महान दुर्ग नष्ट कर डाले गये" "असंख्य शत्रु पृथ्वी पर मार डाले गये, रुधिर धाराएँ बहने लगीं।" अनुपमेय योद्धा उस समय इस भूमि पर विद्यमान थे। एक श्लोक में बृहस्पति देवता की स्तुति पाई जाती है "वीरेषु वीरम् उपपृञ्चिध नाहत्वं" "अर्थात् हम तुम्हारी महान कीर्ति वीरों के बीच में गाएँगे, वीरों का उत्तम कीजिये, हम यद्यपि वीर हैं" इत्यादि। उस समय जितने अस्त्र प्रचलित थे उन्हीं का प्रयोग युद्ध में होता था। जब नवीन अस्त्रों का आविष्कार हुआ, यहां के निवासी उन्हें असभ्य तथा पिशाची अस्त्र कहने लगे तथा उनके प्रयोग का घोर तिरस्कार किया। आग्नेयास्त्रों के प्रयोगकर्त्ता को सेना में कोई स्थान नहीं प्राप्त होता था पक्षी तथा विपक्षी दोनों उसका तिरस्कार करते थे। वर्तमान समय में अदृश्य आग्नेयास्त्रों का भी प्रयोग युद्ध में सभ्यता के विरुद्ध किया जाता है। जब मनुष्य विकट अस्त्रों से परिचित होगये तो उनका भी प्रयोग होने लगा। जब युद्ध में अन्य शस्त्र फलरहित हो गये तो इन्द्र देवता ने मायापूर्ण अस्त्रों का प्रयोग कर शत्रुओं का दमन किया जिससे उनकी बड़ी प्रशंसा हुई।

जैसे २ सभ्यता बढ़ती गई, युद्ध विषय स्मृतियों तथा नीतिशास्त्र द्वारा अनुमोदित होने लगा। राज-धर्म पर स्मृतियों में विशेष विस्तारपूर्वक लेख पाये जाते हैं। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य, विष्णुस्मृति, महाभारत तथा अन्य पुराणों में राज धर्म तथा युद्ध-नियम पर बड़े २ कितने ही लेख पाये जाते हैं। शुक्राचार्य कौटिल्य तथा कामण्डक में सेना विस्तार, समय तथा नियम, मित्र शत्रु का ज्ञान तथा अन्य विषयों पर नाना प्रकार के लेख मिलते हैं। महाभारत (शान्ति पर्व ५७-६८) में युद्ध-सम्बन्धी विशेष विवरण मिलता है। उसमें बृहस्पति, विशालाक्ष, प्रचेतसमनु, भरद्वाज, गौरशिर तथा इन्द्र के निर्मापित नियम मिलते हैं। ब्रह्मा देवता ने स्वयम् युद्ध-सम्बन्धी बहुत सा विषय विस्तारित किया है।

शुक्राचार्य असुरों के गुरु थे। देवताओं के शत्रु होने के कारण उनके नियम युद्ध विषय में बहुत ही ढीले हैं। युद्ध-धर्म भी है

Call No. I.(C)

तथा कूट भी है। मनु ने कूट-युद्ध का घोर विरोध किया है किन्तु शुक्राचार्य ने शत्रुनाश के हेतु कूट युद्ध की भी आज्ञा दी है। उनको सम्मति है कि ये नियम कूट तथा धर्म युद्ध दोनों के लिए हैं। प्रबल शत्रुओं के नाश करने के लिए कूट-युद्ध से बढ़कर अन्य कोई युद्ध नहीं है। उनकी सम्मति है कि रामचन्द्र, कृष्ण, इन्द्रादि देवताओं ने भी कूट युद्ध करके शत्रुओं का दमन किया। उनकी यह भी सम्मति है कि यदि नम्रता, छन्दानुवर्तन (खुशामद) तथा तिरस्कार आदि द्वारा अभिप्राय सिद्ध हो। शत्रुओं के साथ इनका प्रयोग करे अर्थशास्त्र के अनुसार न्याय को आवश्यकता के नीचे स्थान दिया गया है। स्मृतियों में हमें प्रमाण मिलता है कि धर्मशास्त्र का स्थान अर्थशास्त्र के ऊपर है क्योंकि अर्थशास्त्र में "आवश्यकता" ही को प्रधान मानकर मानव-धर्म का स्थान नीचे दिया है।

राजनीति पर कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र इसके पश्चात् आता है। चन्द्रगुप्त का मंत्री चाणक्य कौटिल्य तथा विष्णुगुप्त नामों से पुकारा जाता था। यह ब्राह्मण मन्त्री बड़ा ही विद्वान तथा योग्य था, इसी की नीति से नन्द-वंश का नाश हुआ तथा मौर्यवंश की स्थापना हुई, इसी का निर्मापित राजनीति पर महान ग्रन्थ 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' कहलाता है। इस महानुभाव का समय, यदि चन्द्रगुप्त से इसका सम्बन्ध ठीक है तो, चतुर्थ शताब्दी है। 'मुद्रा-राक्षस' नाटक से इस महाशय की राजनैतिक योग्यता का पूर्ण परिचय मिलता है।

नीतिशास्त्र पर कामण्डक का भी उत्तम ग्रन्थ ध्यान देने योग्य है, इस ग्रन्थ में शासन तथा युद्ध का उल्लेख मिलता है। कामण्डक कौटिल्य का शिष्य था। कामण्डक के ग्रन्थ में १२५० श्लोक हैं तथा कौटिल्य के ग्रन्थ में ६००० श्लोक हैं। इनकी सम्मति है कि "दुर्बल राजा प्रबल शत्रु के साथ कूट युद्ध का प्रयोग करे। शत्रुओं को सुप्तावस्था में यमपुरी भेजे जैसा कि महाभारत में अश्वत्थामा ने किया है।

युद्ध-विज्ञान पर अपने को सीमाबद्ध करने से विदित होता है कि हिन्दुओं में युद्ध में वीरता दिखाने पर बड़ी प्रशंसा की गई है। युद्ध में भागना हिन्दुओं के यहां मृत्यु से भी अधिक अपमानित किया गया है। मनु में देखिये। अ० ७।

समेत्योत्तमाधमै राजा त्वाहूतः पालयन् प्रजाः।
न निवर्तेत संग्रामात् क्षात्रं धर्ममनुस्मरन् ॥८७॥
संग्रामेष्वनिवर्त्तित्वं प्रजानां चैव पालनम्।
सुश्रूषा ब्राह्मणानां च राज्ञां श्रेयस्करं परम् ॥८८॥
आहवेषु मिथोऽन्योन्यं जिघांसन्तो महीक्षितः।
युध्यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखा ८९

अर्थात्, छोटे नीच ऊंच या बराबर शक्तिशाली राजा राजा द्वारा युद्ध के लिए निमंत्रित राजा प्रजा की रक्षा करता हुआ क्षात्र धर्म को स्मरण करके युद्ध से कदापि पराङ्मुख न हो। युद्ध से न हटना, प्रजापालन, ब्राह्मणों की सेवा, आदि बातें राजा का कल्याण ही करती हैं। एक दूसरे के नाश करने की इच्छा से अपने से महान् शक्तिशाली राजा से लड़ते हुए जो राजा मरता है वही स्वर्ग का अधिकारी होता है।

याज्ञवल्कि में राजधर्म को देखिये :—

य आहवेषुवध्यन्ते भूम्यर्थमपराङ्मुखः।
अकूटैरायुधैर्यान्ति ते स्वर्गं योगिनो यथा ॥३२४॥
पदानि क्रतु तुल्यानि भग्नेष्वप्यनिवर्तिनाम्।
राजानुकृतमादत्ते हतानां विपलायिनाम् ॥३२५॥

अर्थात्, जो लोग राज्य की रक्षा के लिए सामने लड़ते हुए मर जाते हैं यदि वे लोग विष से बुझाये शस्त्रों से न लड़ें और संग्राम के समय भय से पीठ न फेरें और अपने राजा के पूरे २ भक्त हों तो ऐसे लोग योगियों के तुल्य स्वर्ग के उत्तम सुख भोगते हैं।

युद्ध में हाथी, घोड़ा, रथादि के टूट फूट जाने वा मरजाने पर भी जो लोग युद्ध से पीठ नहीं फेरते किन्तु अपने राजा के लिए प्राण रहते तक युद्ध करते हैं उनके चलने फिरने में अन्त समय के पग अश्वमेधादि यज्ञ के तुल्य फलदायक होते हैं और जो लोग युद्ध से पीठ फेर के भाग आते हैं उनका जन्म भर में किया हुआ जो पुण्य होता है वह राजा को मिलता है॥

अब शुक्राचार्य की सम्मति देखिये:—

"इस संसार में दो ही मनुष्य स्वर्ग को जाते हैं, एक योगी और दूसरा युद्ध में शत्रु के सन्मुख से न भागनेवाला मनुष्य। श्रुति का अभिप्राय है कि युद्ध में विद्वान, गुरु और ब्राह्मण को भी यदि वह शत्रु हो, मारकर अपनी रक्षा करे। गुरु दयालु होते हैं तथा विद्वान् पुरुष अपराध के विरोधी होते हैं, महान भय के समय उनसे प्रार्थना न करना चाहिये। जो प्राणरक्षा के लिए युद्ध से भागता है वास्तव में वह मर चुका यद्यपि वह जीवित हो तथा सब प्राणियों के पाप अपने ऊपर लेता है। वह मनुष्य जो अपने मित्र को तथा स्वामी को छोड़ देता है और संग्राम भूमि से भागता है नर्क को जाता है तथा जीवित सबके अपमान सहता है। वह मनुष्य जो अपने मित्र को युद्ध में दुःखित देखते हुए भी उसकी सहायता नहीं करता अपमानित होता है और मृत अवस्था में नरक को जाता है (शुक्रनीति ४ अ० ७-३१७-३१८)

शुक्रनीति में यह भी लिखा है कि "यदि स्त्रियों का तिरस्कार हुआ हो या गोवध हुआ हो तो ब्राह्मणों को भी लड़ना चाहिये। युद्ध का भगेड़ू देवताओं द्वारा बध किया जाता है। बिछौने पर क्षत्री की मृत्यु घोर पाप है। भगवद्गीता में कहा है:—

यदृच्छयाचापपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभंते युद्धमीदृशम्॥

अर्थात्-हे पार्थ! यह समय अपने आप उपस्थित हो गया है, इसमें स्वर्ग का द्वार खुल जाता है, पुण्यवान क्षत्रियों को ही यह युद्ध समागम मिलता है अर्थात् जो क्षत्री युद्ध में मरते हैं वे सीधे स्वर्ग को चले जाते हैं।

हमारे हिन्दू शास्त्रों में अधर्म-युद्ध का तिरस्कार किया है। केवल असभ्यता दर्शाना अथवा न्यायरहित देश-प्राप्ति की इच्छा से युद्ध करना वर्जित है। महाभारत में प्रमाण मिलता है कि "यतोधर्मस्ततो जयः" जहां धर्म है तहां जय है। मनु के अनुसार प्रजा की रक्षा ही क्षत्री का प्रधान धर्म है। राजा को सदैव प्रजारक्षा का उद्योग करना चाहिये। राजा के पड़ोसियों के दो भाग किये गये हैं, शत्रु तथा मित्र। राजा के समीप का अन्य राजा शत्रु समझा जाता है। उसके पश्चात् जो राजा रहता है वह मित्र समझा जाता है, उससे दूरस्थ राजा सामान्य समझा जाता है। मनु से लेकर कामंडक तक शत्रु तथा मित्र के ३ भाग किये गये हैं, सहज शत्रु तथा मित्र, प्रकृत शत्रु तथा मित्र तथा बनावटी शत्रु और मित्र। मनु के अनुसार शत्र तथा मित्रों पर सदैव राजा को कड़ी दृष्टि रखना चाहिये।

राजाओं में मित्रता के विषय में शुक्राचार्य का मत है कि, "जो राजा बलवान हैं, जो आक्रमण करनेवाला प्रबल योद्धा है, जो नीतिनिपुण हैं उनके सभी शत्रु हैं, भीतरी हृदय से उनसे घृणा करते हैं तथा उचित समय की आकांक्षा करते हैं। राजाओं का कोई मित्र नहीं है तथा वे भी किसी के मित्र नहीं हैं। मित्रों की रक्षा तथा शत्रुओं का नाश करना चाहिये। इस अभिप्राय से साम, दाम, दंड, तथा भेद का प्रयोग करना चाहिये। कामण्डक की सम्मति के अनुसार माया का भी प्रयोग होना चाहिये; मनु के अनुसार प्रथम साम, दाम, भेद का प्रयोग हो,

यदि इससे शान्ति न हो तो फिर अन्त में दण्ड (युद्ध) का आश्रय लेना चाहिये क्योंकि जय निश्चय होती है किन्तु पराजय बहुधा होती है। इस कारण युद्ध को जहांतक हो सके वर्जना चाहिये। जब पराजय निश्चय हो तो युद्ध से हटना ही उचित है। मित्र-प्राप्ति, राज्यविस्तार प्राप्ति तथा धन-प्राप्ति, ये युद्ध के फल हैं।

मनु की सम्मति है कि धन तथा राज्य-प्राप्ति से मित्र प्राप्ति राजा के लिए बहुत उत्तम है। शत्रु के पराजय करने में छः बातों की राजा के लिए आवश्यकता है, सन्धि करना, युद्ध, युद्ध-क्षेत्र पदार्पण, कैम्प लगाकर स्थित रहना, अधिक बलवान राजा से मित्रता तथा सेना का उचित स्थान पर नियत करना।

युद्ध के पूर्व एक राजा दूसरे के पास अन्तिम दूत सूचनार्थ भेजता था। हनुमान रावण के पास युद्ध के पूर्व गये थे। राजदूत का शरीर अत्यन्त पवित्र समझा जाता है तथा शत्रु-राजा बड़े आदर से उसका सत्कार करते थे। इस विषय पर पूर्ण रीति से विभीषण ने रावण को शिक्षा दी थी। महाभारत में युद्ध के पूर्व उलूक, संजय तथा श्रीकृष्ण आदि दूत सन्धि के लिए भेजे गये थे। जब कृष्ण को दुर्योधन ने बन्दी बनाना चाहा तो बड़े २ योद्धाओं ने उसका बड़ा तिरस्कार किया।

हमारे शास्त्रों में युद्ध में भगेड़ू शत्रु, असहाय, शरण प्राप्त शत्रु को मारना सभ्यता के विरुद्ध माना गया है। बौद्धायन का लेख है:—

"किसी को विषपूर्ण अस्त्रों से युद्ध न करना चाहिये। भयभीत, मतवाला, पागल, शस्त्रहीन, स्त्री, बालक तथा ब्राह्मण से युद्ध न करना चाहिये। किन्तु यदि ब्राह्मण वध की इच्छा से आगे बढ़े तो उसके साथ युद्ध अवश्य करना चाहिये ॥१॥ १०-११-१२

मनु का वचन है—अध्याय ७।

न कूटैरायुधैर्हन्याद्युध्यमानो रणे रिपून्।
न कर्णिभिर्नापि दिग्धैर्नाग्निज्वलिततेजनैः ॥६०॥

न च हन्यात्स्थलारूढं न क्लीवं न कृताञ्जलिम्।
न मुक्तकेशम् नासीनं न तवास्मीति वादिनम् ६१

न सुप्तं न विसन्नाहं न नग्नं न निरायुधम्।
नायुध्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतम् ॥ ६२ ॥

नायुधव्यसनप्राप्तं नार्तं नातिपरिक्षतम्।
न भीतं न परावृत्तं सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ ६३ ॥

अर्थात् कूट आयुध जो ऊपर से काष्ठादि से बने हों और भीतर उनके तीक्ष्ण शस्त्र छिपे हों, ऐसे आयुधों से युद्ध करता हुआ राजा शत्रु को न मारे। और जिनके फल टेढ़े कांटे के आकार के मास के खींचनेवाले हों तथा विष के बुझे हुये और अग्नि के तपाये हुये हों ऐसे बाणों से शत्रु को न मारे ॥ ६० ॥ आप रथ में बैठा हुआ रथ को छोड़ के भूमि में खड़े हुये को न मारे तथा नपुंसक को और हाथ जोड़कर सन्मुख आये हुए को और बाल जिसके खुले हों और जो बैठा हो तथा मैं तुम्हारा हूं ऐसा कहनेवाले को न मारे ॥६१॥ सोते हुए को, बिना कवचवाले को, नंगे को, शस्त्ररहित को, नहीं लड़नेवाले को, युद्ध देखनेवाले को और दूसरे से युद्ध न करनेवाले को न मारे ॥ ६२ ॥ जिसके खड्ग आदि शस्त्र टूट गये हैं और जो पुत्र आदि के शोक से व्याकुल हो और जो बहुत चोटों से व्याकुल हो तथा जो युद्ध से भागा हो इन सबों को कठिन क्षत्रिय धर्म का स्मरण करता हुआ न मारे ॥६३॥

याज्ञवल्क्य की सम्मति। अध्याय १ ॥

तवाहं वादिनं क्लीवं निर्हतिं परसङ्गतम्।
न हन्याद्विनिवृत्तञ्च युद्धप्रेक्षणकादिकम् ॥३-६॥

अर्थात् युद्ध के समय जो शरणागत होकर कहे कि मैं आपका ही हूं उसको, नपुंसक को, जिसने हथियार धर दिये हों, जो अन्य के साथ

युद्ध करता हो, जो युद्ध करने से हट गया हो, जो युद्ध देखने को आया व जो कहार आदि सेवक हों, इन सब को युद्ध में नहीं मारना चाहिये।

शुक्राचार्य की सम्मति है कि शत्रु को किसी प्रकार बध करना चाहिये चाहे धर्म से हो या अधर्म से। युद्ध की सूचना शत्रु को युद्धारंभ के पूर्व अवश्य देना चाहिये। युद्ध एक राजा तथा दूसरे राजा के बीच में पारस्परिक नहीं होता है किन्तु राज्य का युद्ध राज्य से होता है, तथा युद्ध में असहाय प्रजा को दुःख न देना चाहिये, उनका माल धन स्पृशनीय नहीं होना चाहिये। महाभारत का युद्ध, जिसका मुख्य अभिप्राय पाण्डवों को राज्य में उचित भाग दिलाने का था तथा जिसमें समस्त भारत-वर्ष के राजा लड़े थे, कुरुक्षेत्र के रणक्षेत्र में हुआ था जो कि जनपदों से बिलकुल अलग था, तथा कोई सेना नगरों पर अत्याचार नहीं करने पाती थी, प्रजा निर्विघ्नावस्था में थी। युद्ध में अनुपमेय सेना सम्मिलित थी। एक अक्षौहिणी सेना में २१८७० रथ थे, उतनेही हाथी, ६५६१० घोड़े तथा १०९३५० पैदल सेना थी। यह स्मरण करते हुए कि हाथी घोड़े सुसज्जित थे, अक्षौहिणी की शक्ति २००,००० से अधिक थी तथा १८ अक्षौहिणी सेनाएँ लड़ीं। इससे प्रगट है कि कुल शक्ति ३६००००० से अधिक थी। ११ अक्षौहिणी सेनाएँ कौरव की ओर तथा ७ पाण्डवों की ओर थीं। इस अक्षौ-हिणी सेना के एकत्रित करने में बड़ा परिश्रम लगा होगा। यदि यह सेना अत्याचार शान्तिपूर्ण निवासियों पर करती तो भारतवर्ष उजड़ गया होता और हिन्दू नाम इतिहास से उड़ गया होता किन्तु ऐसा करना हमारे शास्त्रों के विरुद्ध था।

मनु की सम्मति है कि:—७ अ०

उपरुध्यारिमासीत राष्ट्रं चास्योपपीडयेत्।
दूषयेच्चास्य सततं यवसान्नोदकेन्धनम् ॥१९५॥
भिन्द्याच्चैव तडागानि प्राकार परिखास्तथा।
समवस्कन्दयेच्चैनं रात्रौ वित्रासयेत्तथा १९६॥

अर्थात् किले में होवे अथवा बाहर होवे ऐसे युद्ध करते हुए राजा को घेरा डाले हुए पड़ा रहे उसके देश को उजाड़े और घास, अन्न, पानी, ईंधन को दूषित वस्तुओं से दूषित करे। शत्रु के जल पीने योग्य तड़ाग आदि को किला आदि तोड़ तोड़ कर भर दे और उसकी खाइयों को जलरहित कर दे, ऐसे शत्रुओं को शंकारहित होके दबावे और शक्ति को लेलेवे और रात्रि में ढंका काहलिक आदि शब्दों से डरवावे। मुख्य उद्देश्य शत्रु को शक्तिरहित कर देना है। इससे अभिप्राय यह नहीं है कि कूपों में विष मिलावे किन्तु डरवाकर शत्रु का पराजय करना है।

शुक्राचार्य की सम्मति है। (अ० ४ श्लो० ७। ३६७) "शक्तिवान राजा को चाहिये कि जल, भोजन, घास इत्यादि को शत्रु के पास न जाने दे जिससे शत्रु बलहीन हो जावे"। उचित विद्वान शत्रुओं की दशा जानने के लिए दूत भी नियत करे। राजा को चार चक्षुषु की पदवी दी गई है अर्थात् दूतों के द्वारा राजा देखता है तथा शत्रु का भेद लेने में दूत निपुण होते हैं। आगे भी शुक्राचार्य की सम्मति है:—

"जो मनुष्य बुद्धिमान तथा प्रशंसनीय स्व-भाव के होते हैं वे पुरुषार्थ का बड़ा सत्कार करते हैं तथा दुर्बल केवल भाग्य का ही सहारा लेते हैं।"

महाभारत तथा रामायण के युद्धों में कुछ निन्दनीय बातों का प्रयोग किया गया है जो धर्म-युद्ध के विरुद्ध है यद्यपि सैनिक आवश्य-कता से वे ठीक क्यों न हों, जैसे राम द्वारा ताड़का बध, क्योंकि स्त्रियों को मारना पाप है किन्तु इसको विश्वामित्र ने इस युक्ति से न्याय-सिद्ध बताया है कि यह स्त्री बड़ी पापिन तथा दुष्टा थी, कुटिला तथा यज्ञविध्वंसिका थी अतः

उसका बध उचित था। जबकि रामचन्द्र ने वृक्ष में छिपकर सुग्रीव के भ्राता बालि को मारा तथा जब बालि अपने भ्राता से लड़ने में अकेले लगा था, राम ने युद्ध नीति का उल्लंघन किया तथा बालि द्वारा अन्तिम समय में बड़ा निन्दित किया गया। इस पर यही युक्ति लग सकती है कि बालि रामचन्द्र के मित्र का शत्रु था तथा उसका बध आवश्यक था।

महाभारत में भी ऐसी बहुत प्रमाणें मिलती हैं, जिनसे यही सिद्ध होता है कि युद्ध के समय नीति सभी भूल जाते हैं केवल बदला लेने का विचार रहता है।

जहां धर्म है वहां जय है, इसी कारण भारत-वासियों का दृढ़ विश्वास है कि ग्रेट ब्रिटेन का युद्ध धर्म-युद्ध है अतः हमें विश्वास है कि अन्त में हमारी जय होगी और जर्मनी का नाश होगा क्योंकि धर्म का अवलम्बन लेकर ब्रिटेन युद्ध कर रहा है।

तिजारती लड़ाई।

[लेखक—श्रीयुत सैयद हैदर हुसेन।]

यूरोप में जो लड़ाई हो रही है उसके मुताल्लिक इङ्गलिस्तान की गवर्नमेंट ने यह फैसला कर दिया है कि जर्मन और आस्ट्रिया की जो बड़ी भारी तिजारत अंगरेज़ों के सल्तनत में थी उस पर भी हमला इस ज़ोर से किया जाय कि लड़ाई समाप्त होने से पहिले आस्ट्रिया और जर्मनी को पता चल जाय कि अङ्गरेज़ी राज्य के हर बाज़ार में अङ्गरेज़ी बने हुए माल ने जगा छेक ली। इस काम के लिए इङ्गलिस्तान भर में ज़ोर लगाया जा रहा है कि नये कारखानों के खोलने में पूरी कोशिश की जाय। हम भी अङ्गरेज़ी हुकूमत के रहने-वाले हैं और हमारा मुल्क हिन्दुस्तान अङ्गरेज़ी सल्तनत के अन्दर है। कुछ ज़माना हुआ कि इस मुल्क के बड़े २ आदमियों ने स्वदेशी के लिए बड़ा ज़ोर लगाया और कुछ थोड़ी बहुत कामयाबी भी हुई। दियासलाई, बटन, तरह २ के कपड़े, जूते, कागज़, शक्कर विलायती शीशे की चीज़ें गरज़ सैकड़ों तरह के माल इस देश में, इस देश के पैदावार से और इसी मुल्क के निवासियों के बनाये हुये मिलने लगे हैं। हाँ वह चीज़ें इतनी नहीं तैयार होती हैं कि इस बड़े देश के सब लोगों की ज़रूरत पूरी कर सकें लेकिन हमारे देश ने पूरी कोशिश देशी बने हुए माल के खरीदने और बनाने में नहीं की। अगर ऐसी कोशिश आँख खोल कर की होती तो हिन्दुस्तान को यह दिन क्यों देखना पड़ता कि कल यूरोप में लड़ाई शुरू हुई और आज बम्बई और तमाम बड़े शहरों में दियासलाई जैसे रोज़ के काम की चीज़ का दाम चौगुना होगया। यह बड़े शर्म की बात है कि दिया-सलाई छोटी चीज़ भी हम जर्मनी, आस्ट्रिया या नारवे की लें तब हमारा काम चले। इस घड़ी अङ्गरेज़ी सल्तनत अपने दुश्मनों से तोप, बन्दूक, तलवार से लड़ रही है बल्कि जिन २ बाज़ारों और देशों में उसके दुश्मन के बने हुये माल बिकते हैं उन बाज़ारों और मंडियों पर कब्ज़ा कर रही है इस कारण से न जर्मनों के पास ज्यादा तिजारत रहेगी न जर्मनी के पास खज़ाना इतना होगा कि लड़ाई का सामान ज्यादे मुहइया कर सके। क्योंकि इस लड़ाई

में जर्मनी के बादशाह मुल्क लेने के लिए नहीं लड़ते, बल्कि अपने मुल्क के बने हुए माल की निकासी के लिए मन्डियों की तलाश में लड़ते मरते हैं। अंगरेज़ी हुकूमत के रहनेवाले जो मैदान में जाकर अपनी फौज के साथ दुश्मन से लड़ नहीं सकते उनके लिए भी घर बैठे तावान पहुंचाने का यह रास्ता सरकार ने बतला दिया है कि तुम उन चीज़ों के कारखानों को जारी करो जो जर्मन आस्ट्रिया के देश में हैं और खुद माल बना कर अङ्गरेज़ी हुकूमत के अन्दर तमाम मंडियों में ले जाओ जिससे जर्मन की चीज़ों का जगह पर खुद तुम्हारी चीज़ें बिकें। इस तरह जो बड़ी दौलत प्रति वर्ष अङ्गरेज़ी रियाया के हाथों से दुश्मन के देश में जाकर उसको मालदार और मोटी बना रही थी वह खुद तुम्हारी ही भलाई करे और घर की दौलत घर के अन्दर ही रह जाय। जर्मन अब इसको खाकर न मोटे हों, न तुम्हें आँखें दिखावें और सतावें। सच बात तो यह है कि यह बड़े मार्के की चाल है। इसलिए हमने ये बातें लिख डालीं। हमारी यह इच्छा है कि जिससे हमारे देशभाइयों को भी इन बड़े भारी मालदारी के नुसखे की नकल मिल जाय और एक ढेले को फेंक कर दो चिड़िया कैसे पकड़ी जा सकती हैं यह उन्हें भी मालूम हो जाय।

हमारे देश के भाइयों को जिनके पास रुपया भी है कान खोलकर इसको सुनना चाहिये—'सांप मरै और लाठी न टूटै' की सब ने कहावत ही सुनी है। आज हम उस कहावत को सच्ची कर दिखाने का मार्ग दिखलाते हैं। इससे सांप मरैगा लाठी बची रहेगी। इसके सिवाय लाठी और मज़बूत हो जायगी और फिर दस पांच लाठी हम लोग और पैदा कर सकेंगे। गवर्नमेंट का इतना हक़ ज़रूर है कि उसके मुश्किल की घड़ी में उसकी मदद की जाय। अगर हमारे देश के बड़े २ ज़मींदार, महाजन, दूकानदार चाहें तो घर बैठे आज यह मदद सरकार की कर सकते हैं और उसके दुश्मन से लड़ सकते हैं और खुद अपना और अपने भारतमाता दोनों का नफ़ा भी साथ २ है। ऐसा मौका किसी देश के आदमी को कम मिलता है कि जेब भी अपनी भरें और हाकिम को भी खुश करें, अपने भाइयों की भी भलाई करें और देश की भी खिदमत करें। आज हमारी किस्मत ने यह दिन हमको दिखलाया है कि हमारे बादशाह और हमारी गवर्नमेंट खुश है कि हम स्वदेशी को ऐसा बढ़ावें कि उनके दुश्मनों के हाथ से तिज़ारत छीन लें और उनको अब अपना पैसा न दें फिर क्या मुनासिब है कि ऐसे अच्छे सबूत को हम हाथ से जाने दें। अपने देश को ग़रीब से ग़रीब मुफलिस रहने दें। हमारे प्यारे देश के लोगो और हमारे भाइयो! यह तो ऐसा समय है कि तुम जागो और अपने भलाई के मौक़े को जाने न दो। फिर भलाई अपनी और खुशी अपने हाकिम और अपने मादरी देश की। अगर इस घड़ी चुप रहे और काम न किया तो याद रक्खो कि सौ साल तक ऐसा मौक़ा न मिलेगा। सरकार और देश दोनों नाराज़ रहेंगे और दोनों के सामने हम हिन्दुस्थानियों को शर्म से सर नीचा करना पड़ेगा। इससे अधिक कहने की ज़रूरत नहीं है, बात बड़ी है मगर ऐसी चमकदार है कि अन्धा भी उसकी चमक को देख ले। आज इङ्गलिस्तान के आदमी जिनके पास रुपया है, जी तोड़ कर कोशिश कर रहे हैं कि तिज़ारत में जिस तरह से हो सके जर्मनी और आस्ट्रिया को हटा दें और यह मार ऐसी मार है कि जो लड़ाई के समाप्त होजाने के पचास साल तक इसकी चोट याद रहेगी। तिजारती मार वह लाठी है कि जिसमें आवाज़ नहीं है मगर उसकी चोट बन्दूक, तलवार, तोप से हज़ार गुना ज्यादा है। क्या हमारे देश के अमीर और रुपयावाले अपने गवर्नमेंट की मदद करने पर तैयार हैं।

यूरोपीय रणक्षेत्रमें हिन्दुस्थानी वीर.

१. सैनिक. २. आफिसर्स. ३. भालाबरदार.
४. २लांसर्स ५. राजासाहेबकी पल्टन. ६. १४ लांसर्स.
७. भालाबरदार. ८. भाल़ाबरदारोंका दल. ९. भालाबरदार.

'जबाउकर,' 'हेग' व 'फ्रेसीं' नामके क़िलूर टकरा कर ध्वंस रहे हैं.

इङ्गलैंड की शासन-पद्धति।*

[लेखक—श्रीयुत शिवनारायण द्विवेदी।]

आज यूरोप में इङ्गलैंड की शासन-पद्धति सर्वोत्तम समझी जाती है। इस सर्वोत्तम पद को प्राप्त करने में, प्रजा के विजयी बनने में जिन २ कठिनाइयों ने वहां के कार्यकर्ताओं का सामना किया उनका इतिहास जान लेना प्रत्येक उन्नतिशील जाति का कर्तव्य है। साधारण तौर पर वहां यह झगड़ा राजा और प्रजा या शासक और प्रजा में चला आता था। राजा और शासक प्रजा का भाग्य अपने हाथ में रक्खा चाहते थे और प्रजा अपने भाग्य की मालिक आपही बनना चाहती थी। यह कशमकश वहां प्रारम्भ ही से चली आरही थी। ग्यारहवीं शताब्दी में इङ्गलैंड का राज्यदंड नार्मन लोगों ने धारण किया; उस समय पार्लामेन्ट थी किन्तु उसके अधिकार कुछ नहीं थे। उस समय राजा के पूछने पर सम्मति भर दे देना पार्लामेन्ट का काम था; तथा पार्लामेन्ट के सभासद लार्ड, प्रान्तिक धर्माधिकारी (बिशप) और यार्क कंटरबरी के मुख्याधिकारी आर्च बिशप आदि थे। लार्ड लोग युद्ध में राजा की सहायता करते थे और प्रसन्न होकर राजा उन्हें ज़मीन और पद इनाम में देते थे। राजा की इच्छा पर अपना जीना मरना जान कर बड़े आदमियों ने ही राजा के अधिकारों से अपने आप को बचाना चाहा था। इस महत्कार्य की सिद्धि के लिए पहिले तो इन्होंने बड़े आदमियों को (बैरन, नाइट आदि) अपने में मिलाया और अन्त में साधारण प्रजा को भी इसमें शामिल किया। अनेक प्रकार की आपत्तियों का सामना करते हुए और केवल तलवार के ज़ोर पर विजय पाते हुए अन्त में सर्वसाधारण ने मेग्नाचार्टा प्राप्त किया। इङ्गलैंड का यह प्रतिज्ञापत्र बड़े महत्व का है, इसके ही द्वारा प्रजा अपने भाग्य की नियामक बनी। जब पार्लामेन्ट में प्रजा का प्रवेश होगया तब वह दो भागों में विभक्त हो गई, एक लार्डों की, दूसरी कामन्स की। तेरहवीं, चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दियों में पार्लामेन्ट की उन्नति हुई, उसे हर एक प्रकार के राजकीय स्वत्व मिले; किन्तु इस समय तक लार्ड सभा ने कामन्स सभा को अपना सहायक बना रक्खा था और राष्ट्रीय सत्ता के अधिक भाग की स्वामिनी लार्ड सभा ही थी। सोलहवीं शताब्दी में यह बात उठाई गई कि कामन्स (सर्वसाधारण) के अधिकार भी लार्ड (सरदार) के समान हैं। इसके अनन्तर ही यह नियम बना कि किसी कार्य के उपस्थित होने पर प्रथम वह कामन्स और लार्ड सभा में निश्चित हो और अनन्तर राजा की स्वीकृति से वह काम में लाया जाय। इस समय तक कामन्स (सर्वसाधारण) के अधिकार राजा और लार्ड्स के नीचेही दबे थे, किन्तु थोड़े ही समय के अनन्तर यह नियम निश्चित हुआ कि राष्ट्रीय नियम (धन सम्बन्धी बिल, बजट आदि) पहिले कामन्स में पेश हों और अनन्तर लार्ड्स के सम्मुख उपस्थित किये जायँ। यहीं से कामन्स का प्रभाव बढ़ने लगा।

सन् १६८८ ई० में इङ्गलैंड में राज्यक्रान्ति हुई। इस क्रान्ति का कारण राजा प्रजा का झगड़ा ही था। इस क्रान्ति में अधिकांश लार्ड और सर्दार लोग मारे गये। पीछे से राजा के बनाये हुए लार्ड लोग निर्बल हो गये इसी

* प्रिंसिपल दामोदर गङ्गेश पाध्ये एम० ए० के एक लेख के आधार पर। ले०।

कारण सन् १७१४ ई० में कामन्स का लार्ड्स पर पूरा अधिकार हो गया। धीरे २ इस सभा का अधिकार इतना बढ़ा कि राजा के अधिकार बहुतही संकुचित हो गये। धीरे २ लोगों को यह समझ हो गई कि "राजा राजा रह सकता है, शासक नहीं" (The King rules but does not govern) इस नियम के प्रचलित होते ही दोनों सभाएँ अपने २ नेता (Leader) चुनने लगीं और प्रत्येक बात का अन्तिम फैसला अपनी ज़िम्मेदारी पर करने लगीं। राजा को सम्मति देने मात्र का अधिकार रह गया। सर्वसाधारण की प्रत्येक बात में राजा और लार्ड सभा को सम्मति देनी पड़ती थी, इसीलिए सर्वसाधारण की सत्ता का इन सब पर प्रभाव विशेष था। किन्तु लार्ड सभा की सर्वथा असम्मति होने पर अनेक बातें नहीं हो पाती थीं, यही अड़चन सर्वसाधारण के सामने थी। पार्लामेन्ट के चुनाव के समय में लिबरल (उदार) और कंसर्वेटिव दल जिसे यूनियनिस्ट दल कहना चाहिये, अपना २ मसौदा—कि अपने शासन में वे किस प्रकार से प्रजा का हितसम्पादन करेंगे—प्रजा के सामने पेश करते थे। अधिक संख्या से प्रजा जिस दल की बात को पसन्द करती उसी दलवाले सभा को वह अपना प्रतिनिधि चुनती, जिस दल के प्रतिनिधि अधिक होते उसी दल के हाथ शासन का काम होता। फिर यह मसौदा जैसे का तैसा कामन्स के सामने पेश किया जाता था। कामन्स के बाद लार्ड सभा से निश्चित कराना आवश्यक होता था किन्तु अपना पक्ष रखने के लिए अधिकारी वर्ग अपनी ओर के नये लार्ड चुनते थे। यह बात लिबरल और कंसर्वेटिव दोनों के लिए समान थी। अनेक विचारकों का अनुमान है कि यह नीति कामन्स का जीवन थी।

यदि तात्विक दृष्टि से विचार किया जाय तो लार्ड सभा का प्रधान रहना कुछ आवश्यक था। क्योंकि अन्तिम फैसला देनेवाली सभा यदि तीसरी ही हो तो देश में अनिष्टों की सम्भावना कम रहती है। अन्यथा दो समान अधिकारियों में जो घर की दशा होती है वही देश की होती है। योग्य कार्यों में अधिकारों की रक्षा करते हुए योग्य सलाह देनेवाली 'वृद्ध सभा' अपनी नीति को बचाती रहती है। जापान, फ्रांस और एमेरिका के संयुक्तराज्य अपना प्रबन्ध विशेष करके इस ही नीति पर करते हैं। किन्तु लार्ड सभा की द्वितीय समिति (Second Chamber) अधिकांश इन गुणों से रहित है। बड़े बाप के बेटे कहानेवाले (Hereditary) मान्य सभासद अधिकांश इन गुणों से रहित हैं। इङ्गलैंड के साढ़े सात सौ लार्ड घरानों में ऐसे बुद्धिमान पुत्रों को जन्म देनेवाले बहुत ही कम हैं। नार्मनवंश से प्रतिज्ञापत्र (मेग्नाचार्टा) के युद्ध से महारानी विक्टोरिया के पूर्व तक जितने लार्ड नवीन स्थापित किये गये, उनमें तीन चौथाई राजाओं के कृपापात्र थे। नये लार्ड बड़े २ ज़मींदार, धनी, व्यापारी और श्रीमन्त बनाये गये थे, इनमें से अधिकांश भोगविलासी और गोल्फ, पोलो तथा फाक्सहेटिंग के प्रेमी थे। प्रजातान्त्र राज्य का सुधार होने के बाद लार्ड लोगों की राजनीति की सीमा इतनी ही रह गई थी कि वे इस ही को नीति समझते थे कि अपने अधिकारों की रक्षा करना और प्रजातान्त्रिक सत्ता के विरोधी बने रहना। साढ़े सात सौ लार्ड्स का सातवाँ भाग भी लिबरल नहीं है। आज जो लिबरल मनुष्य लार्ड बनाया गया वह दो वर्ष के बाद कंसर्वेटिव बन जायगा, इसीलिए कंसर्वेटिव अर्थात् यूनियनिस्ट पक्ष का ही मत अधिक रहता था। एक ही पक्ष की अधिकता बहुत विशेष बनी रहने के कारण राज्यपद्धति को पक्षपात का रोग लग गया था। लिबरल दल के कार्यों का बड़ी कठोरता से विरोध किया जाता था। इसीलिए शासक सभा प्रजा की प्रगति की विरोधक

मात्र बन गई थी। यदि किसी वर्ष कंसर्वेटिव दल की जीत होती तो वह जितने नये नियम और बजट बनाता वे सब बेरोक टोक लार्ड सभा से पास हो जाते किन्तु यदि लिबरल पक्ष अधिकारी बनता तो उसके नियम पास होने के लिए लार्ड सभा में अड़ा करते थे। कामन्स सभा के पास किये हुए नियम इस प्रकार से लार्ड सभा में पड़े रहते थे। कोई नया नियम या सुधार बिना पार्लामेंट की दोनों सभाओं से पास हुए प्रचलित नहीं हो सकता था। इसी लिए लिबरल दल के नियम चाहे जैसे भले हों किन्तु लार्ड सभा से पास हुए बिना वे काम में नहीं आ सकते थे और सर्वसाधारण का जो हित लिबरल दल सोचता था वह काम में नहीं लाया जा सकता था। कामन्स भवन में लिबरल पक्ष की विशेषता होने पर भी वह अपने मतानुसार कोई नियम प्रचलित नहीं कर सकता था और यों प्रजा की विशेष सहायता होने पर भी प्रत्येक बार उसे कंसर्वेटिव दल से हार खानी पड़ती थी। इस निरन्तर की हार ने प्रजापक्षी लिबरल दल को लार्ड लोगों का कट्टर विरोधी बना दिया और उन्हें पूरा निश्चय होगया कि उनके मार्ग में लार्ड सभा काँटा स्वरूप है।

१९११ ई० का पार्लामेंट एक्ट।

विजयी बनने पर लिबरल दल को अधिकार था कि वह किसी नियम पर अपनी असम्मति प्रकट करके अपने मत बढ़ाने के लिए नये लार्ड चुने या पार्लामेंट तोड़कर फिर से चुनाव करे। अपने इस अधिकार को काम में लाने के लिए लिबरल दल ने कोई २२ वर्ष पहिले प्रथम होमरूल के समय मन्त्री ग्लेडस्टन के समक्ष इस विषय को उठाया था। तभी समय से इस विषय पर बड़े ज़ोर से वादविवाद होने लगा था। सन् १९०५ ई० में पार्लामेंट के चुनाव में लिबरल दल की ही जीत रही। उसी समय लिबरल दल के चार वर्ष के कामन्स द्वारा पास हुए प्रस्तावों को लार्ड सभा ने दाखिल दफ्तर कर दिये। इसीलिए १९०९ ई० में लिबरल दल ने पार्लामेंट का विसर्जन कर दिया और अपने कई प्रस्ताव और आयरिश होमरूल को पास किया। इन कार्यों से लिबरल दल को पूर्ण यश प्राप्त हुआ। प्रजा के हित को सामने रखने के कारण पुनः मि० लायड जार्ज कोषाध्यक्ष (Chancellor of the Exchequer) ने कई प्रजा-हित के प्रस्ताव कामन्स के सामने रक्खे। ये प्रस्ताव थे धनिकों पर उनके धन के अनुसार कर लगाना, इनकम टैक्स, डेथ ड्यूटीज़ (मृत मनुष्य की सम्पत्ति पर अधिकारी से कर) ज़मीन की मालगुज़ारी, आय पर कर जो खर्च के बाद बचे आदि। इन प्रस्तावों के पास हो जाने से लार्ड और धनी लोगों को टैक्स देना पड़ता किन्तु इस ओर कर बढ़ जाने से दीन मनुष्यों पर कर घटता था। इसी लिए, इस बिल के सामने आतेही कंसर्वटिव दल को यह बुरा लगा और उन्होंने पार्लामेन्ट विसर्जन करके नई चुनी। किन्तु किसी बिल के पास करने या न करने का अधिकार कामन्स सभा को तेरहवीं शताब्दी से था, लार्ड सभा से योंही सम्मति लेली जाती थी। लार्ड सभा ने कामन्स का यह अधिकार सर्वथा तोड़ देना चाहा, किन्तु इसे लक्ष्य करके सर्वसाधारण लार्ड सभा से बहुत विरक्त होगये। सन् १९१० ई० में जब पार्लामेन्ट भरी तब भी लिबरल पक्ष की जीत रही। नई पार्लामेन्ट में सब से प्रथम मि० लायड जार्ज ने साधारण प्रजा के उद्धार के लिए धनिकों पर कर लगाने का प्रस्ताव उठाया। कामन्स ने इसे पास किया। लार्ड सभा ने साफ़ उत्तर दे दिया कि हम इसमें सम्मति ही न देंगे। इसके उत्तर में लिबरल प्रधान मंडल ने कहा कि, हम पुनः पार्लामेंट विसर्जन करके अपने पक्ष के पांच सौ लार्ड चुनगे और

राजा की सम्मति लेकर अपने प्रस्ताव को प्रचलित कर देंगे। अन्त में प्रस्ताव पास होता ही देखकर लार्ड सभा को हार माननी पड़ी, बहुत से लार्ड अनुपस्थित रहे, बहुत से दूसरे मत में रहे, बहुतों ने अपनी सम्मति भी दी इस प्रकार १९११ ई० की पार्लामेन्ट में लिबरल पक्ष की जीत हुई।

१९११ के पार्लामेन्ट एक्ट में पास हुआ है कि, (१) किसी सर्कारी बजट को यदि कामन्स सभा स्वीकार करले तो उसे लार्ड सभा स्वीकार करे या न करे राजा की सम्मति से वह कार्य-रूप में परिणत कर दी जायगी। यदि लार्ड सभा उसमें विवाद उपस्थित करेगी तो कामन्स के अध्यक्ष (Speaker) उसका फैसला करेंगे। (२) दोनों सभाओं और राजा की सम्मति से तो प्रत्येक नियम पास होता ही है किन्तु यदि किसी नियम पर लार्ड और कामन्स में भिन्न मत होंगे, और वही प्रस्ताव ज्यों का त्यों दो वर्ष के बाद फिर कामन्स सभा में पेश होगा और कामन्स सभा तीन बार उसे पास कर देगी तो लार्ड सभा से फिर पूछने की आवश्यकता न रहेगी। राजा की सम्मति से ही वह नियम का रूप धारण करेगा। (३) पहिले पार्लामेन्ट का जीवन ७ वर्ष का था किन्तु अब वह केवल ५ वर्ष का हो गया है। पाँच वर्ष के बाद पार्लामेन्ट का नया चुनाव होता है।

इन नियमों से सहज ही में विचार किया जा सकता है कि, कामन्स सभा का इंगलैंड की राजनीति पर कितना अधिक प्रभाव है। प्रत्येक नियम में राजा की सम्मति अवश्य ली जाती है किन्तु वह केवल शिष्टाचार मात्र है। वास्तव में इंगलैंड का शासन कामन्स सभा के हाथ में है। प्रजापक्ष के लिबरल लोगों की जीत से इङ्गलैंड की प्रजा बहुत सन्तुष्ट है। कंसर्वेटिव दलवाले यह पुकार मचाते थे कि लिबरदल के हाथ में सत्ता जाते ही राज्यव्यवस्था एक ही सभा के हाथ हो जायगी (One Chamber Government) और खराब हो जायगी, किन्तु लिबरल दल ने पार्लामेन्ट की अवधि पाँच वर्ष की रखकर यह असुविधा भी मिटा दी है। यदि कंसर्वेटिव दल सेना के द्वारा लिबरल को हराना चाहे तो भी वह यशस्वी नहीं हो सकता। इस प्रकार इङ्गलैंड में प्रजासत्तात्मक राज्य की पूरी जय हुई है।

पार्लामेन्ट के एक्ट का फल।

प्रत्येक नियम की उत्तमता उसके निश्चित कर लेने ही में नहीं बल्कि, उसकी सार्थकता और उसके उपयोग में है। लिबरल और कंसर्वेटिव के झगड़े का मुख्य स्थान पार्लामेन्ट है। वहां सदा से कंसर्वेटिव दल का अधिकार चला आया है। वहां धनियों के सामने दीन प्रजा का पक्ष लेनेवाले लिबरल दल की जय होना बहुत ही कठिन था, किन्तु उसके सार्वदेशिक प्रेम ने उसे तीन बार जय प्रदान किया है।

आयरिश होमरूल के पास हो जाने से प्रजा के प्रतिनिधियों का प्रभाव इङ्गलैंड में और विशेष होगया। यह जब पहिले कामन्स सभा से पास होगया था तब लार्ड सभा ने (Veto) वर्जन अधिकार के द्वारा इसे त्याग कर दिया था, किन्तु दो वर्ष के बाद यह कामन्स के सामने फिर वैसे का वैसा ही पेश हुआ, कामन्स के पास कर देने पर लार्ड सभा पार्लामेंट विसर्जन करने की चिन्ता में लगी। किन्तु नई पार्लामेंट में भी लिबरल पक्ष की ही जय हुई, तब लार्ड सभा को और कोई कारण न मिलने से वह होमरूल में अलस्टर को छोड़ देने के लिए पुकारने लगी। इस पर इङ्गलैंड के सब पत्रसम्पादक लार्ड सभा की हठधर्मिता की कथा कहने लगे। समाचारपत्रों में लार्ड लोगों के बड़े भद्दे २ चित्र निकलने लगे। अन्त में लार्ड सभा ने अलस्टर को जुदा करने के

लिए तुल ही गई। सर एडवर्ड कार्सन की अध्यक्षता में एक लाख स्वयंसेवक युद्ध के लिए तैयार होगये। यदि यूरोपीय महासंग्राम न छिड़ गया होता तो इङ्गलैंड में घरेलू कलह से नररक्त अवश्य बहता। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि प्रजा के पक्ष का इङ्गलैंड में पूर्ण विजय हुआ है और आज लार्ड लोगों का सिर झुक गया है। मि० एसक्विथ ने कहा था—'बहुत समय से जो लार्ड सभा लिबरल दल पर अन्याय करती चली आरही है, उसका अब प्रायश्चित्त हो रहा है।'

पार्लामेंट एक्ट की दूसरी महत्व की विजय एप्रिल मास में हुई। इस मास में "वेल्स डिसइस्टेब्लिशमेंट बिल" पास हो गया। इसको कथा इस प्रकार है, लार्ड सभा या यूनियनिस्टदल क्रिश्चियन धर्म की शाखा एपिस्कोपल चर्च या चर्च आफ इङ्गलैंड पन्थ का अनुयायी है और इङ्गलैंड के सरकारी खजाने से केवल इस ही धर्म के प्रचार में रुपया खर्च किया जाता है। सम्पूर्ण आयरिश लोग कैथोलिक धर्म के अनुयायी हैं, इसलिए ग्लैडस्टन के समय में यह रुपया वहां विश्वविद्यालय में लगा देने का प्रबन्ध किया गया था। वेल्स के निवासी 'नान-कन्फर्मिस्ट' धर्म के अनुयायी हैं, वहां के लिए भी "वेल्स डिसेसब्लिशमेंट बिल" के द्वारा चर्च आफ इङ्गलैंड धर्म के लिए जो रुपया खर्च किया जाता था वह विश्वविद्यालय में लगाये जाने का प्रबन्ध किया गया था। यदि पार्लामेंट में सर्वथा लिबरल पक्ष की जय न हुई होती तो यह बिल कभी पास न होता। इसके पास हो जाने से भी प्रजा का बहुत लाभ हुआ है तथा लिबरल पक्ष का प्रभाव बढ़ गया है।

तीसरा लिबरल दल का अधिक प्रभाव बढ़ानेवाला कारण मि० लायड जार्ज का १९०९ ई० वाला बिल है। यह भी कामन्स के सामने दो वर्ष के अनन्तर ज्यों का त्यों पेश होकर पास हुआ है। देश की सम्पूर्ण आय बीस करोड़ पाउण्ड (१ पा० = १५ रुपये) में इस बिल का कैसा प्रभाव हुआ है:—

१–मृत पुरुषों के वारिसों से कर	२८८ लाख पाउण्ड।
२–इनकम टैक्स	५०॥ लाख "
३–३००० पाउण्ड से अधिक वार्षिक आय पर इनकम टैक्स ...	५८ लाख, "
४ ज़मीन की बढ़ती हुई पैदावार पर कर	७। लाख "

बड़े २ धनाढ्यों पर इस बिल के अनुसार निम्नलिखित रूप से कर लगाया जाता है (साधारण मनुष्यों के लिए यह कर नहीं है।)

आय पाउण्ड	इनकम टैक्स प्रत्येक पाउण्ड पर पेन्स	आय पाउण्ड	इनकम टैक्स प्रत्येक पाउण्ड पर पेन्स
१६०	०	१००००	२४.६
२००	१.८	१०००००	३१.३
५००	६.३		
१०००	९		
२५००	१४		
३०००	१६.८३		
५०००	१९.७		

(१२ पेन्स = १ शिलिङ्ग तथा २० शिलिङ्ग = १ पाउण्ड।)

इस बिल के सम्बन्ध में व्याख्यान देते हुए मि० लायड जार्ज ने कहा था कि—यदि सर्व-साधारण का कर श्रीमान् लोग स्वीकार न

करेंगे और उनके परामर्श को न मानेंगे तो इङ्गलैंड में एक बड़ी राज्यक्रान्ति हो जायगी, जिसमें सर्वथा श्रीमान् लोगों की ही हानि होगी।' १९०५ और ०६ ई० की आय की अपेक्षा १९१४-१५ ई० की आय ४४० लाख पाउण्ड अधिक हुई है। इसमें से १८० लाख पाउण्ड सर्वसाधारण की सहायता के लिए और २२६ लाख पाउण्ड पाठशालाओं के सुधार के लिए व्यय किया गया है। यह शासन में प्रजा के हाथ का फल है।

गीताञ्जलि।*

[लेखक—श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुर।]

जिसे मैं अपने नाम से पुकारता हूं वह बन्दीगृह में रोता है। मैं सदा अपने आसपास दीवार चुनने में लगा रहता हूं और ज्यों २ यह दीवार आकाश की ओर चढ़ती जाती है इसकी अंधेरी छाया में मेरा 'सत्य स्वरूप अदृष्ट होता जाता है।

मैं इस विस्तृत भित्त पर बड़ा घमंड करता हूं। रेत और मिट्टी का उसपर लेप चढ़ाता हूं ताकि ऐसा न हो कि कहीं कोई ज़रा सा भी छिद्र रह जाय और इसपर जितना मैं ध्यान लगाता हूँ उतनी ही दूर में अपनी हस्ती से चला जाता हूं।

* * * *

मैं मिलने के स्थान में अकेला जा रहा हूं। किन्तु इस अंधकारमय सन्नाटे में कौन मेरे पीछे चला आरहा है। मैं इससे बचने के लिए मार्ग से एक ओर हट जाता हूं। परन्तु मैं इससे बचकर कहाँ जा सकता हूं। वह अपनी मनोहारिणी चाल से पृथ्वी से धूल उड़ाता है। प्रत्येक शब्द के साथ जो मेरे मुख से निकलता है वह अपनी ऊंची आवाज़ मिलाता है।

मेरे प्रभु यह मेराही अहंकारमय आत्मा है। यह निर्लज्ज है परन्तु मैं इसके साथ तेरे द्वार पर आकर बहुत लज्जित हुआ हूं।

* * * *

बन्दी बता तो तुझे किसने बांधा?

बन्दी—मेरे स्वामी ने। मैंने सोचा कि इस संसार में धन व मान में मैं सब को मात कर सकता हूं। इसलिए मैंने अपने स्वामी का सब धन अपने कोष में डाल रक्खा। जब नींद ने घेरा तो मैं अपने स्वामी के पलँग पर ही सो गया। जब मेरी आंख खुली तो मैंने अपने को अपने ही भंडार के अन्दर 'बन्दी' पाया।

बन्दी, यह तो बता कि इस अटूट जंज़ीर को किसने बनाया?

बन्दी—मैंने ही इस जंज़ीर को बड़े कष्ट और हिकमत के साथ बनाया था। मैंने सोचा कि मेरी प्रबल शक्ति सारे संसार को जकड़ लेगी और मैं स्वतंत्र होजाऊंगा। इसलिए रात दिन मैं इस भयंकर जंज़ीर को बड़ी २ भट्टियों में बड़ी कठिनता से बनाता रहा। परन्तु जब अंत में कार्य समाप्त होगया और जंज़ीर पूरी तय्यार हो गई तो मुझे मालूम हुआ कि मैं स्वयं इससे जकड़ा गया हूं?

* * * *

जो लोग मुझसे इस संसार में प्रेम करते हैं वे हर प्रकार से मुझे बांधने का प्रयत्न करते हैं परन्तु तेरा प्रेम इससे भिन्न है। वह इनके प्रेम से गाढ़ है। तू मुझे बांधता नहीं है किन्तु स्वतंत्र करता है।

---

* रवीन्द्र बाबू के 'गीताञ्जलि' के कुछ अंशों का अनुवाद।

कदाचित मैं उनको भूल जाऊं इसलिए वे मुझे अकेला छोड़ने को तय्यार नहीं होते। इधर दिन व्यतीत हो जाते हैं किन्तु तू दिखाई नहीं देता।

यदि अपनी प्रार्थनाओं में मैं तुझे न बुलाऊँ और तुझे अपने हृदय में स्थान न दूं तो भी तेरा प्रेम मेरे प्रेम की प्रतीक्षा करता है।

* * * *

वे दिन के समय मेरे घर आये और कहने लगे 'हम सबसे छोटे कमरे में रहेंगे'।

उन्होंने कहा हम परमात्मा की भक्ति में तुम्हारी सहायता करेंगे और इससे जो लाभ पावेंगे उसमें तुम्हें भी शामिल करेंगे। यह कह कर वे कोने में चुपचाप बैठ गये।

परन्तु रात्रि के समय अंधकार में वह मेरी पूजा के स्थान पर आधुसे और शोर मचाते और स्वार्थ से अन्धे होकर ईश्वर के चढ़ाने की वस्तुओं को वे अपवित्र तृष्णा के साथ उठा ले गये।

* * * *

तू मेरे जीवन का वह थोड़ा सा भाग रहने दे जिससे मैं तुझे अपना सब कुछ कह सकूं।

तू मेरी तृष्णाओं का वह थोड़ा सा भाग रहने दे जिससे मैं तुझे अनुभव करूं और हर एक वस्तु में तेरे पास आऊं और प्रतिक्षण अपना प्रेम तुझे अर्पण करूँ।

तू मेरे जीवन का वह थोड़ा सा भाग रहने दे जिससे मैं तुझे कभी न छुपा सकूं।

तू मेरी बेड़ियों का वह भाग रहने दे जिससे मैं तेरी इच्छा में बँधा हुआ हूं। तेरी इच्छा मेरे जीवन में पूर्ण हो। यही तेरे प्रेम की साँकल है।

* * * *

जहां मन भय-रहित नहीं है, जहां मनुष्य शीस ऊंचा उठाये हुये हैं, जहां ज्ञान स्वतन्त्र है, जहां संसार तंग घरेलू दीवारों के कारण छोटे २ भागों में बँटा हुआ नहीं है; जहां आत्म-विचार हृदय की गहराई से उत्पन्न होते हैं, जहां सर्वोच्च शिखर पर पहुंचने के लिए पुरुषार्थ बाहु फैलाये रहता है, जहां बुद्धि की स्वच्छ नदी का मार्ग मृतवत् स्वभाव (Dead habit) के बियाबान में लोप नहीं हो जाता, जहां मन तेरी आधीनता स्वीकार कर विस्तृत होनेवाले विचार और कर्म के मैदान में पहुंचता है—ऐ पिता स्वतन्त्रता के उस उच्चतर शिखर पर मेरा देश पहुंचे।

* * * *

मेरे प्रभु! तुझसे मेरी यही प्रार्थना है कि तू निर्धनता और दीनता को मेरे हृदय से दूर कर। तू मुझे बल दे कि मैं अपने सुखों व दुःखों को सरलतापूर्वक धारण कर सकूं। तू मुझे यह शक्ति दे कि दूसरों की सेवा से मेरा प्रेम फलदायक हो।

मेरे स्वामी मुझे शक्ति दे कि मैं कंगालों से द्वेष न करूं और अपना घुटना अहंकारी शक्तिशाली पुरुषों के सामने न झुकाऊं।

तू मुझे यह शक्ति दे कि मैं अपने मन को रोज़ के झगड़ों से स्वतन्त्र करके तेरी ओर लगाऊं।

तू मुझे यह शक्ति दे कि हार्दिक प्रेम और आनन्द के साथ अपनी शक्ति व अपने जीवन को तुझे अर्पण करूं।

* * * *

जब हृदय कठोर और दुःखमय हो तब तू दया के प्रवाह के साथ मुझ तक आ।

जब जीवन से कृपा उठ चुकी हो तू मुझ पर राग के सुरों के साथ प्रकट हो।

जब कामकाज की अधिकता और काम करनेवालों की चिल्लाहट अधिक हो और जब वे मुझे आगे बढ़ने से रोकें तो मेरे शान्तिमय स्वामी मुझ तक आ।

जब मेरा हृदय विध्वंस होकर कोने में निराश हो बैठा हो तो मेरे स्वामी द्वार तोड़ कर और राजसी ठाठ के साथ अन्दर आ। जब कामना, भ्रम और मलिनता मन को अंधा कर देती है तो ऐ पवित्र पुरुष ! तू चेतन है अपने प्रकाश और गर्जन के साथ मुझ तक आ।

* * * *

ऐ मेरे ईश्वर ! तेरी प्रेम वर्षा के बन्द होने से मेरा हृदय शुष्क हो रहा है। दिक् मंडल की ललाई को दहलानेवाले बादल की छाया दृष्टि-गोचर नहीं होती, दूर गिरे हुये, मधुर मेह का चिह्न तक नहीं दिखाई देता।

यदि तेरी इच्छा हो तो तू भयंकर तूफान भेज जो मृत्यु के अंधकार से भी अधिक कृष्ण हो और बिजली की चमक से आकाश एक किनारे से दूसरे किनारे तक चमका दे। परन्तु प्रभू तू इस दमघुटनेवाली गर्मी को वापिस बुला ले। यह बड़ी भयंकर और पीड़ा देनेवाली है और निर्दयता से हृदय को जलाये डालती है। तू अपनी दया के मेघ को भेज जिस प्रकार माता के नेत्र, बालक पर पिता के क्रुद्ध होते समय आंसुओं से भर जाते हैं।

अनुवादक—ब्रजमोहनलाल वर्मा।

लार्ड मेयो।

[लेखक–श्रीयुत पुत्तनलाल विद्यार्थी।]

आपका जन्म २१ फरवरी सन् १८२२ को और मृत्यु ८ फरवरी १८७२ ई० को हुई। इस तरह आपकी जीवनलीला का काल केवल ५० वर्ष था परन्तु इस काल का आपने सुव्यय करके अपनी मातृभूमि और अपनी जाति की जो सेवा की वह हम भारतवासियों के लिए आदरणीय ही नहीं किन्तु अनुकरणीय भी है।

आप आयर्लैंड में पैदा हुए थे। यह विलायत का वही भाग है जिसको कि जातीय शासन प्रदान करने के लिए वर्तमान उदार लिबरल अंगरेज़ी गवर्नमेंट ने जी तोड़कर प्रयत्न किया है और जिसका विरोध विरोधी यूनियनिस्ट (unionist) दल ने केवल वक्तृताओं द्वारा ही नहीं वरन् स्वयंसेवकों की सेना बना-कर और आन्तरिक युद्ध (Civil war) की धमकी देकर भी किया।

इनका जन्म एक प्राचीन और मान्य घराने में हुआ था। इनके पिता एक बिशप के पुत्र थे और इसलिए उनकी आय इतनी नहीं थी कि अपने ८ सन्तानों को स्कूल में पढ़ा सकें। अस्तु हमारे चरितनायक की शिक्षा घर पर ही हुई। आपकी माता बड़ी सुशीला थीं और सारे दिन काम ही में लगी रहती थीं। वे जिस कार्य का प्रबन्ध करतीं उसके छोटे से छोटे भाग की भी देखभाल करती थीं। इस और अन्य बातों में बालक रिचर्ड (यह आपका ईसाई (Christian) नाम था) के चरित्र संगठन में माता के उदा-हरण से बड़ी सहायता मिली। आपने सदा अपनी माता में भक्तिबुद्धि रक्खी।

मसल है कि 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' आपने १२ वर्ष की ही अवस्था में अपनी धर्मपुस्तक बाइबिल की एक भूमिका लिख डाली। २३ वर्ष की अवस्था में आपने रूस

देश की यात्रा की। कई मास तक रहकर और इस देश के हाल से परिचित होकर जब आप घर लौटे तब रूस की प्राचीन और नवीन राजधानियों (मासकाऊ व सेंटपीटर्सबर्ग) तथा महाराजा (ज़ार) की राज सभा का वृत्तान्त दो पुस्तकों में लिखकर अपने देशवासियों के भेंट किया (हे परमात्मन् भारत के शिक्षितों को भी आप ऐसी बुद्धि प्रदान करें कि वह भी निजोपार्जित ज्ञान अपने देशबन्धुओं के अर्पण करें) जो दूसरों का भला करता है उसका स्वयं भी भला होता है। जहां इनके देशवासियों के ज्ञान में वृद्धि हुई वहां इन्होंने भी अपने विचारों को निश्चित करके शृंखलाबद्ध प्रकाशित करना सीखा। आपका लिखा हुआ रूस का हाल (१८४५ का) हम थोड़ा सा उद्धृत करते हैं। "रूस में मध्यम श्रेणी के पुरुषों का बड़ा अभाव है। परिणाम यह होता है कि उच्च और नीच श्रेणी के मनुष्यों में सहानुभूति नहीं है। गुलाम भेड़ की खाल पहिने हुए अपने मालिक लार्ड के महल में भले ही चला जाय और उसके फाटक पर पहरा दे परन्तु उसके हृदय में यह भाव स्फुटित नहीं होते कि वह भी उसी जाति में पैदा हुआ है जिसमें कि उसका मालिक और उसके जन्म का भी वही अभिप्राय है जो कि उच्च कोटि के लार्ड का। मालिक महाशय अपने दासों पर कृपादृष्टि तो रखते हैं परन्तु उसी तरह से जैसे कि कोई भला आदमी अपने लाभदायक पशु का ध्यान रखता है। पर उसके साथ मैत्री करने या उसे बराबरी का अधिकार प्रदान करने का विचार मालिक के हृदय में कभी नहीं उठता। इसका परिणाम यह होता है कि एक ओर शिक्षित व उन्नत लार्ड हैं दूसरी ओर महामूर्ख व अवनत प्रजा जो गुलामी कर रही है। एक तरफ नभोमंडल से बात करते हुए प्रासाद हैं तो दूसरी ओर टूटा हुआ झोंपड़ा, सभ्यता और सुख की नदी कभी महलों की सीढ़ियों और चमन के किनारे बहती है, कभी जंगल और दलदल से अपना रास्ता बनाती है। उच्च पदों पर राजघराने और ऊंचे दर्जे के लोग ही रक्खे जाते हैं। जो प्रजा के हाल और व्यापार के रहस्यों से पूर्णतया अनभिज्ञ हैं उनके बनाये हुए कानून कभी सर्वहितकारी नहीं हो सकते।

रूस के किसानों का हाल प्रायः वही था जो आज भारतीय किसानों का है। रूस के गुलामों के विषय में आप लिखते हैं:—"वह अपने मालिक के मन के अतिरिक्त और किसी कानून को नहीं जानता और रूस के महाराज को जिनको कि पिता कहकर सम्बोधन किया जाता है वह भूमि पर की सर्व समृद्धियों की मूर्ति समझता है। जब उनके साथ अच्छा वर्ताव किया जाता है तब वह मालिक से प्रेम करते हैं और अनुगृहीत होते हैं, आगन्तुकों का आतिथ्य करते हैं और आपस में हिलमिल कर रहते हैं परन्तु गुलामी का कड़ा जुआ उनके कन्धों पर पड़ा हुआ है और उनके सारे कार्यों से उदासीनता झलकती है। पुश्तैनी मालिकों के प्रति उनकी भक्ति वास्तविक धर्म का अंग है। वे श्रेष्ठतर कार्यों के सम्पादन करने के योग्य हैं। जब नेपोलियन ने उनको स्वतन्त्रता प्रदान करनी चाही तब उन्होंने साफ इन्कार कर दिया और संग्राम में कभी रूसी दल को गुलामों के विद्रोह से हानि नहीं पहुंची। उन्होंने अपना जीवन और माल सब "पिता" के कहने से स्वाहा कर दिया, अपने हाथ से अपनी सारी सम्पत्ति आग में दे दी और बाल्यकाल के घर को छोड़कर बालबच्चों सहित भूखे प्यासे जंगल २ घूमते फिरे, इसलिए कि "पिता" की भूमि में आक्रमण करनेवाले फ्रान्सीसी को भोजन और छाया न मिले। रूसी फौज के सहस्रों योद्धा गोली से मार दिये गये परन्तु किसी ने भागने या अपना आन छोड़ने का विचार भी नहीं किया। परन्तु! वह शायद ही कभी घोर आक्रमण करके शत्रु के दल पर टूट

पड़े हों! उनकी शहीदों (निज धर्म पर प्राण त्यागनेवालों) की सी बहादुरी थी सिपाही की सी नहीं। गुलामी के भाव ने उनसे सारे कष्ट झिलवा लिये किन्तु इस प्रकार कार्य करने को उत्तेजित नहीं किया मानों विजय उन्हीं के पुरुषार्थ पर निर्भर हो। उनमें यह भाव नहीं रहा था कि हम भी कुछ कार्य कर सकते हैं। इससे शासकों को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

रूस में गुलामों के कोड़े मार मार कर जान लेने की प्रथा थी। एक गुलाम को जिसने कि राज-पुत्र को मारा था इस प्रकार प्राणदंड मिला। पहिले उसे सिपाही बनाया गया क्योंकि वह प्रायः फ़ौजी दंड है जब उसपर कोड़े पड़ रहे थे और हर कोड़े पर शरीर से मास के छीछड़े उड़ रहे थे तब वह सिपाहियों की पंक्तियों के सामने ज़बरदस्ती घुमाया जाता था। १२०वां कोड़ा पड़ने पर वह गिर पड़ा, हुक्म था एक सहस्र (१०००) कोड़े पड़ने का, उससे पूछा गया कि बाक़ी कोड़े उसी दिन मारे जायँ या दूसरे दिन उसने कहा उसी दिन क्योंकि दूसरे दिन के अर्थ यह होते कि दुःख अधिक काल तक सहना पड़ता। वह उठाया गया, कुछ कोड़े और पड़े और वह फिर गिर पड़ा। तीसरी दफ़ा फिर उठाया गया किन्तु वह बेहोश हो गया। वैसी ही अवस्था में उसे लोग वहां से उठा कर ले गये। घावों के दर्द से तड़प २ कर दूसरे दिन वह मर गया। यह दृश्य सार्वभौमिक प्रेम की शिक्षा देनेवाले ईसा के अनुयायी देश को अपमानित करानेवाला और शासन के सच्चे नियमों के विरुद्ध है"।

रूस से लौटकर आपने प्यारे आयरलैण्ड को रोगग्रस्त और अकाल से पीड़ित पाया। इस समय आपने अपना धर्म पालन किया और महीनों घोड़े की पीठ ही पर बिता दिये। आज यहां एक सभा में भाग लिया तो कल तीस मील दूर दूसरी सभा में जा पहुंचे (उस समय आयरलैण्ड में रेल नहीं थी) दुखियों को सहायता पहुंचाने का प्रबन्ध किया; भूखों को भोजन दिया; बिनने का सामान क्रय करके स्त्रियों को दिया और तैयार की हुई वस्तुओं को लन्दन ले जाकर अपने फ़ैशनदार मित्रों द्वारा अच्छे मूल्य पर बिकवाया। आप गानविद्या में भी कुशल थे इस समय आपने जलसे कराके आसपास के सब सज्जनों से टिकट लेकर या योंहीं चन्दा लेकर अकालपीड़ितों के सहायतार्थ धन इकट्ठा किया। थोड़े ही दिन बाद देश ने इनको पार्लामेन्ट में प्रतिनिधि चुन कर कृतज्ञता प्रकट की। इस समय आपकी अवस्था केवल २५ वर्ष की थी।

१८४७ से १८४९ तक आप पार्लामेन्ट में चुपचाप बैठे रहे। १८४९ के आरम्भ में आपने अपनी प्रथम वक्तृता दी। आपकी पार्टी के नेता ने आपको सफलता पर बधाई दी। विषय था आपका 'आयरलैंड'। इस विषय से आपका पूर्ण परिचय ही नहीं था वरन् इसपर आपका अगाध प्रेम भी था। १८४९ से ५१ तक १० वक्तृतायें आयरलैंड पर और दो आस्ट्रेलिया तथा भारत के सम्बन्ध में हुईं। सारे सदस्य आपको समझदार, विचारशील और अपने विषय के ज्ञाता मानने लगे। जिस पार्टी (Conservative) में आप सम्मिलित हुए थे उसकी आपने अच्छी सेवा की। १८५२ में पुरानी रीति नीति का अवलम्बन करनेवालों (Conservative) के हाथों में गवर्नमेन्ट की बाग आई। उन्होंने लार्ड नास (पिता के अर्ल आफ़ मेयो हो जाने से आप अब लार्ड नास कहलाने लगे थे) को आयरलैण्ड के प्रधानमंत्री के उच्च पद पर नियुक्त किया। अवस्था कम होने के कारण लार्ड नास को लोग "बालमंत्री" (boy Secretary) कहने लगे। इनकी पार्टी का अधिकार अल्पकाल तक ही रहा पर इसमें भी आपने कृषकों को अधिकार दिलाकर उनकी अवस्था सुधारने की चेष्टा की। इसके पश्चात् ६ वर्ष तक आप अपनी पार्टी के साथ

विरुद्ध दल (Opposition) में रहे। पार्लामेन्ट में भिन्न २ राजनैतिक मतावलम्बी दल हैं मुख्य और अधिक संख्या में उदार (Liberals) और पुरातनी (Conservatives) हैं। इनमें से जिसके दल के अधिक सदस्य होते हैं उसी दल का आधिपत्य होता है और उसी का नेता अपने दलवालों में से सज्जनों को चुनकर मंत्रिमण्डल बनाता है और स्वयं प्रधान मंत्री होता है। अस्तु, १८५८ में फिर पुरातनियों का भाग्योदय हुआ और नास फिर आयरलैंड के प्रधान-मंत्री हुए, परन्तु एक वर्ष पश्चात् इनकी पार्टी फिर हार गई और शासन उदार दल के हस्तगत हुआ। १८६६ में तृतीय और अन्तिमबार लार्ड नास उसी पद पर नियुक्त हुए और १८६८ तक, जब कि आपको भारत के वाइसराय का पद मिला, आप उक्त पद पर कार्य करते रहे। आपका आयरलैंड पर अगाध प्रेम था और उसी के लिए आप निरन्तर श्रम करते थे। आपने दीन दुखिया और असहाय निर्बलों के उद्धार के लिए विशेष यत्न किया जो किसी दर्जे तक सफल भी हुआ। "किसी दर्जे तक" इसलिए कि विलायत में सब राजनैतिक कार्यों का विशेषतः उनका जिनमें कि निम्न श्रेणी के पुरुषों का हित हो, सफलतापूर्वक करना बड़ा कठिन है। एक तो जो पार्टी कुछ करना चाहे उसके विरुद्धवाली अवश्य जी तोड़ कर कार्य को नाश करने का यत्न करती है। इसके अतिरिक्त अपनी ही पार्टी के वे सदस्य जिनकी कि हानि होने की सम्भावना होती है विरोध करते हैं। हमारे चरितनायक को एक बड़ी कठिनता पड़ी। आपके विचार उस समय के पुरातनियों से बहुत आगे बढ़े हुये थे परन्तु इतने नहीं कि यह उदार दल में सम्मिलित हो सकते। यह निश्चय था कि यदि यह किसी भी पार्टी में नहीं मिलेंगे तो देश की सेवा न कर सकेंगे अतः कलेजे पर पत्थर रखकर यह कन्सरवेटिव दल के साथ हो गये। बिलकुल अपने सिद्धान्तों के अनुसार कार्य न करना सब से बड़ी कुर्बानी है परन्तु देशभक्ति ने इनसे यह भी करा लिया। उन भारतवासियों को जो विशेषतः क्षुद्र बातों में आपस में सहमत न होकर देशसेवा को छोड़ बैठते हैं और कभी २ हानि भी पहुंचा देते हैं लार्ड नास के आचरण से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

जब मन्त्रिमंडल इनकी बात न मानता तो यह कहते कि अच्छा न मानिये परसाल उदार दल इससे अधिक कड़ी बात आपसे मनवावेगा। यह तो सृष्टि का नियम ही है। जो मनुष्य या जाति समयानुसार अपने आचार व्योवहारों में परिवर्तन नहीं करती प्रकृति उसे ठोकरें मार कर अपने अनुकूल चलने को बाधित करती है। उस समय की अवस्था देखकर लार्ड नास बहुधा निराश से हो जाते थे। कौनऐसा मनुष्य है जिसने परोपकार के कार्य में हाथ डाला और यदा कदा नैराश्य के दर्शन नहीं किये? पर यह वह मनुष्य नहीं थे कि कठिनाइयों के सामने हाथ बांधकर बैठ जायँ। जितनी बड़ी मुश्किल उतना ही प्रबल उसके निवारण का उपाय यह आपका नियम था। जब आयरलैंड में विद्रोह हुआ तब आपने शान्तिपूर्वक थिर चित्त से उसका प्रबन्ध किया कभी घबड़ाये नहीं, उदारता को न छोड़ा।

१८६७ में पिता के देहान्त पर आप अर्ल आफ़ मेयो (Earl of Mayo) हो गये। १८६८ में आपको भारत के वाइसराय का पद मिला। विलायत में भी यह पद बड़े महत्व का समझा जाता है। इसलिए नहीं कि इतना वेतन इङ्गलैंड के किसी कर्मचारी या मंत्री को नहीं मिलता बल्कि इसलिए कि वाइसराय को बहुत कुछ कार्य करने का स्वातंत्र्य और अधिकार मिलता है। जब मेयो की नियुक्ति का समाचार प्रकाशित किया गया तब विलायत के समाचारपत्रों ने इसकी बड़ी कड़ी समालोचना की, खूब शोर मचाया। उस समय पुरात-

नियों का दल निर्बल हो रहा था और यह सम्भावना थी कि जबतक मेयो भारत में जाकर चार्ज लेंगे तब तक उदार दल का आधिपत्य हो जायगा। इस घोर विरोध से आपको दुःख हुआ, अपने लिए नहीं परन्तु अपने साथियों के लिए क्योंकि इस विरोध का प्रभाव इनके दल पर भी अच्छा नहीं पड़ा, परन्तु आपने किसी पर क्रोध नहीं किया और कहा कि मुझे किसी से द्वेष नहीं है। मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि अपने विरोधियों को अपने प्रबन्ध और कार्य से मैं यह दिखा दूं कि उन्होंने विरोध करने में भूल की थी। यद्यपि आप इस उच्च पद के महत्व और कठिनता को जानते थे तथापि कभी घबड़ाये नहीं। जैसे कोई शूरवीर समर में जाते समय इस आशा से कि उसको अपना पराक्रम दिखा कर देश की सेवा का अवसर मिलेगा हर्षित और गद्गद् होता है वैसेही इनका स्वदेश के गौरव वृद्धि के विचार से हृदय प्रफुल्लित हो जाता था। इंडिया आफ़िस जाकर इन्होंने भारतसम्बन्धी बातों का ज्ञान प्राप्त करना आरम्भ किया। एक दफ़ा आयरलैंड अपनी मातृभूमि के दर्शन करने गये और बाल्यकाल के दृश्यों को प्रेम भरी निगाहों से देखते हुए घूमा किये। ११ नवम्बर १८६८ को आप अपने प्रिय देश की मनोहर चट्टानों का अन्तिम दर्शन करके बिदा हुए। २० दिसम्बर १८६८ को आपने बम्बई में पदार्पण किया और वहां के गवर्नर के अतिथि हुए। दस दिन बम्बई में रहकर और वहां की सारी देखने योग्य वस्तुओं को देखकर मद्रास होते हुए और बराबर नये देश का अनुभव तथा तत्सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करते हुए १२ जनवरी १८६९ को तोपों की सलामी लेकर आप कलकत्ते में जहाज़ (इस पर मद्रास से चढ़े थे) पर से उतरे। नवीन वाइसराय का स्वागत गवर्नमेंट हाउस (राजगृह) के विशाल ज़ीने पर बड़ी तड़क भड़क से होता है। आज उसकी शोभा निराली ही थी। ज़ीने के ऊपर वृद्ध सर जान लारेन्स, जिन्होंने ४० वर्ष इस देश में रहकर स्वदेश के लिए राष्ट्र का निर्माण और संरक्षण किया था, खड़े थे; आपने वाइसराय की देदीप्यमान यूनीफार्म आज अन्तिम बार धारण की थी, आपका शरीर दुर्बल था परन्तु सिर सीधा और मुख तेजोमय था। चारो ओर नीले और सुनहिले वस्त्र धारण किये उच्चकोटि के अफ़सर खड़े थे। नीचे युवा वाइसराय सैनिकों की सलामी लेता हुआ प्रसन्न चित्त से गाड़ी से उतरा। जब मेयो ज़ीने पर चढ़े तब पूर्व प्रथानुसार लारेन्स साहब ने तीन क़दम आगे बढ़कर ज़ीने के ऊपर आपका स्वागत किया। दोनों वाइसराय उच्च अधिकारियों के साथ कौंसिल के कमरे में जाकर बैठ गये। प्रधान मन्त्री चारो ओर खड़े हो गये। क्लर्क (लेखक) महाशय ने उच्चस्वर से शपथ पढ़ी। मेयो ने स्वीकृति प्रकट की। बाग़ में राजबाजा बजने लगा। बाहर एकत्रित हुए जनसमुदाय ने जयध्वनि की। किले ने जय सलामी दागी और सम्राट् की १६ करोड़ ६० लाख प्रजा नवीन शासक के अधिकार में चली गई। सायंकाल को लारेन्स ने भोज दिया और मेयो वाइसराय की यूनीफार्म में पधारे। आपके शील स्वभाव को देखकर बहुत से अफ़सर जिन्होंने विलायती समाचारपत्रों में नवीन वाइसराय पर आक्रमण देखकर अन्यथा विचार रक्खा था, मुग्ध हो गये। भारतवर्ष में यह आपकी पहिली सफलता थी।

इस समय भारतीय गवर्नमेंट ७ विभागों में विभाजित थी (अब ८ हैं। शिक्षाविभाग का कुछ ही वर्ष हुये कि संगठन हुआ है।) हर विभाग एक एक सदस्य के आधीन है। (वाइसराय एक विभाग वैदेशिक (Foreign) अपने आधीन रखता है परन्तु मेयो ने इसके अतिरिक्त पब्लिक वर्क्स (मकान सड़क इत्यादि का विभाग भी स्वाधीन रक्खा था।) सदस्य के नीचे एक

प्रधान मन्त्री रहता है और मन्त्री के नीचे उप-मन्त्री, सहायक मन्त्री इत्यादि। हर एक सरकारी कार्य वाइसराय और उसकी सभा (गवर्नर जनरल इन कौंसिल) के नाम से होता है पर वाइसराय को जो कि इस सभा का प्रधान होता है अधिकार है कि वह सब सदस्यों के निश्चित एक मत के विरुद्ध कार्य करे। वह गवर्नमेंट के सब कार्यों का स्वयं उत्तरदाता है। वास्तव में ऐसा करने का अवसर बहुत ही कम पड़ता है। मामूली कार्य सब सदस्य के हुकम से हो जाते हैं (बहुत से प्रधान मन्त्री या उप-मन्त्री ही कर डालते हैं) जो ज़रा महत्व के होते हैं उनपर सदस्य अपना मत लिखकर वाइसराय के पास भेज देता है। वाइसराय यदि सहमत हुआ तो उस मामले का अन्त हो जाता है और मन्त्री सदस्य की सम्मति के अनुसार पत्र अथवा प्रस्ताव (Resolution) का ड्राफ्ट को लिख देता है जोकि 'गवर्नर जनरल इन कौंसिल' के नाम से प्रकाशित होता है। अधिक महत्व के मामलों में सहमत होने पर भी सब सदस्यों के पास या जिनके पास जाने की वाइसराय आवश्यकता समझे कागज़ात एक बक्स के अन्दर बन्द करके भेजे जाते हैं। वे अपनी २ सम्मति लिख देते हैं। जिन मामलों में वाइसराय सहमत नहीं होते वह बहुधा सब सदस्यों के पास घुमाये जाते हैं और अक्सर सप्ताह में साधारणतया एक बार होने-वाली कौंसिल के अधिवेशन में निश्चित किये जाते हैं। सब सदस्य मामले पर विचार कर के आते हैं। इसलिए निश्चय होने में बहुत देर नहीं लगती। जिन मामलों में शीघ्रता की आवश्यकता होती है उन्हें प्रधान मन्त्री सीधा वाइसराय के पास भेज देता है। वाइसराय या तो स्वयं आज्ञा दे देते हैं या उस विभाग के सदस्य के पास भेज देते हैं। एक २ दिन सातों विभागों के मन्त्रियों के लिए निश्चित है। उस दिन वह वाइसराय से मिलकर विशेष बातें बताते, उनके प्रश्नों का उत्तर देते और उचित आज्ञा प्राप्त करते हैं।

कभी २ किसी मामले में कौंसिल में बहस भी हो जाया करती है। एक नमूना देखिये—निश्चय हुआ कि किसी सरहदी देश पर आक्रमण किया जाय। सेनापति (कमांडर इंचीफ़) का धर्म है कि वह सफलता का पूर्ण प्रबन्ध करे, वाइसराय तथा और सदस्यों का धर्म है कि आवश्यकता से अधिक व्यय न होने दें। सेनापति का बनाया हुआ अनुमान पत्र पहिले वाइसराय सेनाविभाग के मन्त्री की सहायता से जांचते हैं, फिर मामला कौंसिल में प्रविष्ट होता है। सेनापति बहुधा व्यय का पूरा और उचित विचार नहीं करते। सम्भव है कि उन्होंने जिस कार्य के लिए हाथी और ऊंटों का एक दल मांगा है वह स्थानिक और तद्देशीय विचार से बैलों के दल से हो सकता हो। सैनिक मामलों में सेनापति की सम्मति हर सदस्य को मान्य होती है। सम्भव है कि दो या तीन सदस्य सेनापति के बनाये हुये अनुमानपत्र से सहमत हों और शेष वाइसराय से, ऐसी अवस्था में जब दोनों पक्षों के प्रमाण कह दिये गये तब यदि एक ओर के सदस्य दूसरी ओर से सहमत होगये तो मामला निश्चित होगया नहीं तो कुछ काट छांट करके अनुमानपत्र ठीक कर लिया जाता है।

यह लिखा जाचुका है कि परराष्ट्र (Foreign) विभाग वाइसराय के ही आधीन रहता है इसलिए पहिले इसी का ज़िक्र करते हैं। साधारणतः इसके ३ उपविभाग किये जा सकते हैं। देशी राज्य; (Native states) देश की सीमा पर रहने वाली जातियों के मामले और अफ़गानिस्तान, पर्शिया इत्यादि देश। Questions regarding frontier tribes foreign countries like Afganistan, Persia etc. १८५८ वाले बलवे के पूर्व देशी राज्य सन्देह की दृष्टि से देखे

जाते थे। शासकों का विचार था कि भारत की जनता गवर्नमेंट के अनुकूल है और रजवाड़े प्रतिकूल। अतएव वे दमन करने योग्य हैं और जहां तक हो सके उनको अंगरेज़ी राज्य में मिला लेना चाहिये। बलवे में यह प्रमाणित हुआ कि देशी राज्य राजभक्त हैं अतः इस पुरानी नीति में परिवर्तन हुआ। रजवाड़ों के आधीन भूमि को विदेशी और इसलिए अपने में सम्मिलित करने योग्य न मानकर गवर्नमेंट ने उनकी उन्नति और समृद्धि का न्यूनाधिक उत्तरदायित्व स्वीकार कर लिया। लार्ड मेयो जब भारतवर्ष में आये तब नीति में परिवर्तन हो चुका था। आपने राजाओं को सुशासन करने के लिए उत्तेजित किया। अलवर राज्य की अवस्था बड़ी शोचनीय थी। आपने पहिले तो महाराज को बहुत समझाया बुझाया जब उन्होंने न माना तब आप ने राज्य प्रबन्ध करने के लिए एक राज-सभा स्थापित करके अंगरेज़ी एजेन्ट को उसका सभापति बनाया और महाराजा को २४०,००० साल की पेन्शन दे दी। ऐसा कड़ा व्यवहार आपको और किसी देशी राजा के साथ नहीं करना पड़ा। लार्ड मेयो ने अपने बर्ताव से यह दर्शाया कि राजा चाहे बड़ा हो या छोटा यदि वह सदाचारी सुशासक है तो उनका मित्र तथा मानास्पद हो सकता है अन्यथा नहीं।

सीमाप्रान्तवासी जंगली मुसलमान जातियां सदा ही से उद्दंड हैं। वे अचानक आक्रमण करके लूट मार करतीं और कुछ आदमियों को भी पकड़ ले जाया करती थीं। इनसे दुखित होकर स्थानिक अफ़सरों ने यह प्रस्ताव किया कि कुछ सेना तैयार रक्खी जाय जिसका उपयोग आवश्यकता पड़ने पर तत्काल ही किया जा सके। लार्ड मेयो ने लिखा कि स्थानिक अफसरों का पत्र पढ़कर यही मालूम होता है कि लेखक के हृदय में प्रबल पर गुप्त आकांक्षा बदला लेनेवाली नीति के अवलम्बन करने की है जिसे गवर्नमेंट पसन्द नहीं करती। इस ढंग की लूट मार निम्न श्रेणी की चोरी या डकैती की कोटि में है। सभ्य जातियों के संग्राम की पदवी इसे नहीं दी जा सकती अतः इसके प्रतीकार के लिए मज़बूत शस्त्रस्त्र पुलिस ही की आवश्यकता है सेना की नहीं। आपने विचारा कि देशी राज्यों द्वारा नवीन और सभ्य पाश्चात्य शैली पर शासन होने के लिए उसी प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है इसलिए मेयो कालेज अजमेर की बुनियाद आपने डाली।

प्राचीन काल से भारतवर्ष पर आक्रमण उत्तर पश्चिम दिशा से ही होते आये हैं अतएव उसी ओर की सीमा को सुरक्षित रखना बड़े महत्व का कार्य है। लार्ड मेयो के समय के पूर्व भारत सरकार ने अन्य देशों में हस्तक्षेप न करने की नीति का अवलम्बन किया था। उस अस्थिर समय में राजाओं में बाहुल्यता से संग्राम होते थे और उन्हीं के परिणाम में प्रायः राजा बदला करते थे। भारतवर्ष का वैदेशिक विभाग सामयिक शासक से सम्बन्ध जोड़ लिया करता था। सन् १८६३ में अफ़गानिस्तान के शक्तिशाली राजा दोस्तमुहम्मद की मृत्यु होने के पश्चात् उत्तराधिकारियों में संग्राम आरम्भ हुआ। शेर अली और अफ़ज़ल खां दो प्रतिद्वन्दी थे। दोनों ही यह चाहते थे कि भारत सरकार उन्हें राजा मान ले। शेरअली का हिरात पर अधिकार था और अफ़ज़ल खां का काबुल और क़न्धार पर। लार्ड मेयो के पूर्वगामी वाइसराय लार्ड लारेन्स ने दोनों को यही लिखा कि हिरात और काबुल तथा क़न्धार के शासक की हैसियत से दोनों से सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है पर अफ़गानिस्तान के नाते से नहीं, यह उसी समय होगा जब दोनों में से कोई एक अपना अधिकार सारे देश पर जमा ले। इस नीति से दोनों राजा असन्तुष्ट हुए। शेरअली ने कहा कि भारत सरकार भाई भाई को लड़ाना चाहती है मैं अब और किसी बृहद्राज्य से सम्बन्ध

जोड़ूंगा। रूस अपने पैर मध्य एशिया में फैला रहा था और भय था कि कहीं उसके प्रभाव में अफ़गानिस्तान न आ जाय। इसी अवसर पर सन् १८६८ में शेरअली ने काबुल से अफ़ज़लखां को निकालकर अपना अधिकार जमा लिया। लार्ड लारेन्स ने अपने अन्तिम राजपत्र में जो ४ जनवरी १८६९ को लिखा था—भारत मन्त्री से यह प्रार्थना की कि इङ्गलैंड के वैदेशिक विभाग द्वारा रूस सरकार को यह सूचना दे दी जाय कि हम उसे अफ़गानिस्तान अथवा भारत के सीमास्थित किसी देश में भी हस्तक्षेप नहीं करने देंगे तथा भारत सरकार को अधिकार दिया जाय कि अवसर पड़ने पर काबुल के राजा को धन, अस्त्र शस्त्र तथा गोला बारूद आदि से वह सहायता पहुंचावे। इसके नौ दिन बाद लार्ड मेयो ने चार्ज लिया। दो ही मास पश्चात् अमीर काबुल भारतवर्ष में आये और अम्बाले में वाइसराय से मुलाकात की। उनकी बड़ी तड़क भड़क से आवभगत की गई पर उनकी एक भी हार्दिक आकांक्षा सिद्ध नहीं हुई। वह चाहते थे कि भारत सरकार से सन्धि कर लें, एक निश्चित संख्या धन की बराबर लिया करें, जब चाहें तब सेना तथा अस्त्र शस्त्र से सहायता लें, भारत सरकार अपने को उन्हें और उनकी सन्तान को अफ़गानिस्तान में सहायता देने के लिए बाध्य कर ले और उनका उत्तराधिकारी कनिष्ठ पुत्र अब्दुल्लाजान हो न कि ज्येष्ठ पुत्र याकूब खां। इनमें से किसी बात को भी मेयो ने स्वीकार नहीं किया परन्तु उन्होंने इन्कार भी इस ढंग से किया कि अमीर भारत सरकार से सन्तुष्ट रहे और उन्हें इस बात का विश्वास हो गया कि उसकी मैत्री ही में उनका भला है। लार्ड मेयो ने उन पर यह स्पष्ट कर दिया कि यद्यपि प्रजा पर अत्याचार करने में उनकी सहायता करने के लिए कभी भी कोई भारत का सैनिक उनके देश में नहीं भेजा जायगा तथापि जब यह सरकार आवश्यकता समझेगी तब धन शस्त्रादि से उनकी सहायता करेगी और स्पष्ट रूप से उन्हें अफ़गानिस्तान का बादशाह मानकर उनकी नैतिक रूप से सहायक रहेगी।

लार्ड मेयो ने अम्बाला दरबार के पश्चात् लिखा कि यदि इस देश के सब ओर स्वतन्त्र बलवान और मित्रभाव रखनेवाले राज्य हों जिनको कि यह निश्चय हो कि हमारे सम्बन्ध से उनको और सरकारों के सम्बन्ध की अपेक्षा अधिक लाभ है तो अंगरेज़ी राज्य सुरक्षित रहेगा।

रूस के राज्याधिकारियों से लिखा पढ़ी कर के तथा गैर सरकारी (unofficial) रूप से दूत भेजकर अफ़गानिस्तान की सीमा जो चिरकाल से गड़बड़ थी आपने ठीक कर दी।

बिलोचिस्तान की आभ्यन्तर तथा बाह्य दशाएं दोनों ही इस समय असन्तोषजनक थीं। एक तो राजा जो खां था उसका अधिकार अपने सरदारों पर निश्चित नहीं था। वह कहते थे कि खां बादशाह नहीं केवल सरदार मात्र है। खां कहता था कि वह स्वाधीन राजा है। इसका निश्चय करना बड़ा कठिन था क्योंकि दोनों ही अपने पक्ष की सम्पुष्टि के प्रमाण दे सकते थे। सरदार लोग कहते थे कि उन्होंने खां को अपने सरदार (न कि राजा के समान) कार्य करने के लिए बाध्य किया है। खां कहते थे कि यद्यपि उन्हें कभी २ अपने सरदारों के विद्रोह से दबना पड़ा है तथापि वे उनके प्रतिरोध के लिए असफल प्रयत्न करने के पश्चात ही दबे थे और अवसर मिलते ही वे फिर बलवान होगये थे। लार्ड मेयो के उद्योग से दोनों प्रतिद्वन्द्वियों में चिरकाल तक शान्ति रही और इन्होंने एक बड़े अंगरेज़ अफ़सर को पंच बनाकर भेज दिया।

मध्य एशिया में एक मुसलमान याकूब कुशबेगी ने चीन से स्वतन्त्र होकर पूर्वीय तुर्कि-

स्तान में राज्य स्थापित किया था। उसने १८७० में लार्ड मेयो के पास एक दूत भेजा और इनसे कहा कि आप भी मित्रभाव से एक दूत भेजिये। वाइसराय ने फ़ार्सिथ साहब को भेजा उनको यह आज्ञा दी कि किसी राजनैतिक मामले में हस्तक्षेप न करना परन्तु पूर्वीय तुर्किस्तान तथा आसपास के राज्यों की सम्पत्ति, इतिहास, समकालीन राजनैतिक अवस्था, व्यापार सम्बन्धिनी शक्ति, भारतीय वस्तुओं की मांग और उनका वहां मूल्य तथा उन देशों से भारत में लाने योग्य वस्तुओं के पूरे और विश्वसनीय हाल का पता लगाते आना। कार्सिथ साहब ने वहां जाकर देखा कि याकूब मियां का अधिकार पूरा २ जमा नहीं था पर आपने किसी राजनैतिक मामले में हाथ नहीं डाला और आज्ञानुसार अपना सारा कार्य बड़ी योग्यता से कर के शीघ्र ही लौट आये और सारा वृतान्त वाइसराय को सुना दिया।

लार्ड मेयो का भारतवर्ष में सबसे अधिक महत्व का कार्य अर्थविभाग सम्बन्धी था। इस कारण से अर्थविभाग का कुछ कार्य क्रम बतलाना आवश्यक प्रतीत है। भारत का सरकारी साल १ अप्रैल से प्रारम्भ होकर ३१ मार्च को समाप्त होता है। हर वर्ष मार्च में आगामी वर्ष के आय तथा व्यय का एक बजट (अनुमान पत्र) बनाया जाता है। उस समय समाप्त होनेवाले वर्ष का पूरा २ हिसाब तैयार नहीं होता प्रायः अप्रैल से दिसम्बर तक ९ मास का हिसाब उपस्थित होता है। यदि अप्रैल सन् १९१४ से मार्च सन् १९१५ तक का बजट बनाना है (इसे सन् १९१४-१५ का बजट कहेंगे) तो उस समय (मार्च सन् १९१४ में) सन् १९१२-१३ का आय तथा व्यय पूर्णतया ज्ञात रहता है और १९१३-१४ का जो बजट मार्च १९१० में बना था वह भी उपस्थित रहता है। गत ९ मास के हिसाब देखने से मालूम होता है कि उसमें अमुक अमुक परिवर्तन की आवश्यकता है, तो बजट इस प्रकार बनाया जाता है।

नोन की आमदनी का १९१४-१५ का बजट।

१९१२-१३ की वास्तविक आय ५ करोड़।

१९१३-१४ की अनुमानित आय ५॥ करोड़।

१९१३-१४ की द्वितीय बार की (मार्च १९१४) अनुमानित आय ६ करोड़।

१९१४-१५ की अनुमानित आय ६॥ करोड़।

मार्च १९१३ में १९१३-१४ के लिए यद्यपि ५॥ करोड़ का अनुमान किया गया था तथापि ९ मास की वास्तविक आय से यह प्रतीत होता है कि आय ६ करोड़ होगी। अतः १९१४-१५ की आय का अनुमान इसी के आधार पर किया जायगा। ठीक इसी प्रकार व्यय का भी अनुमान किया जाता है और यथासम्भव व्यय अनुमान के अनुसार ही होता है।

सन् १९१४-१५ से १८६८-६९ तक (जबकि लार्ड मेयो भारतवर्ष में आये) ५५ वर्षों में से ३९ में व्यय आय से अधिक हुआ था और इस अधिक धन की संख्या ७५,५०,००,०००) रुपया थी। केवल १६ वर्षों में आय अधिक हुई थी और उसकी संख्या १२,५०,००,०००) रु० थी। इनके आने से ३ वर्ष पूर्व (सन् १८६६ से १८६९ तक) ही सरकारी कोष में ७,००,००,०००) रुपये का घाटा हुआ था। जैसे किसी व्यक्ति की आय ५०) मासिक हो और व्यय ५५) तो वह अपनी आर्थिक स्थिति बहुत दिन तक पुष्ट नहीं रख सकेगा वैसे ही जिस देश का व्यय आय से अधिक होता हो उसकी दशा किसी न किसी दिन अवश्य ही शोचनीय हो जायगी। यह कठिनाई और भी बढ़ जाती है यदि आय व्यय का अनुमान ठीक न हो सके। यही दशा उस समय भारतीय कोष की थी। यद्यपि वर्ष के आदि में अनुमान पत्र में बचत दिखाई जाती थी तथापि वर्षान्त में घाटा ही रहता था।

ईशप्रार्थना.

करुणासागर प्रभो ! रक्तपात बन्द कीजिये.

Manoranjan Press,
Girgaon-Bombay.

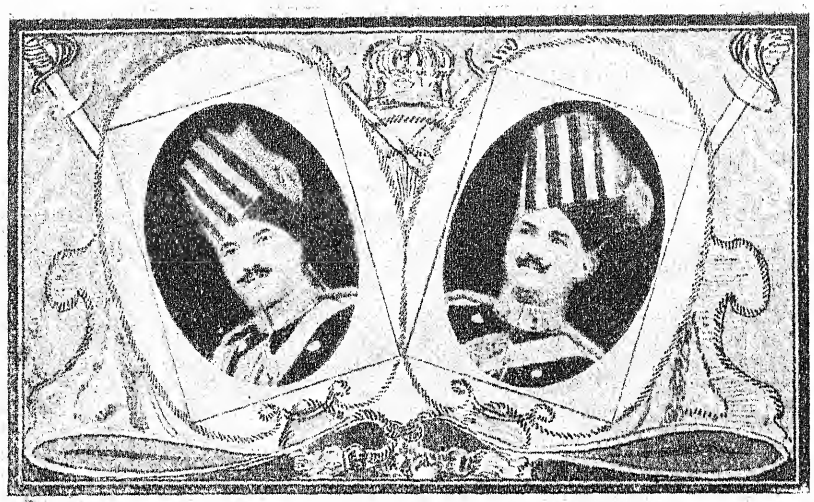

युद्धक्षेत्रमें हमारे मराठा वीर.

साम्राज्य की सिरमौर सिक्ख सेना.

अतुलनीय धीरता और वीरता से जर्मन गोलोंकी परवाह
न कर सिक्ख वीर आगे बढ़ते जा रहे हैं.

१८६७ से १८६९ तक २ वर्षों में बजट के अनुसार ४६७०००० बचना चाहिये था पर वास्तव में इतना रुपया घट गया जिसका अर्थ यह हुआ कि २ वर्ष के बजट में ९३४००००० की भूल थी। अतः जो कार्य लार्ड मेयो को करना था उसके दो विभाग थे एक तो बजट का ठीक २ बनना जिसमें गवर्नमेंट को वास्तविक अवस्था ज्ञात रहे और दूसरे ऐसा प्रबन्ध करना जिससे कि साधारणतया घाटा न हो।

पाठकों को स्मरण होगा कि लार्ड मेयो ने १२ जनवरी १८६९ को चार्ज लिया था। मार्च में सन् १८६८-६९ का संशोधित बजट बना और यह अनुमान किया गया कि गत वर्ष में १ करोड़ के लगभग का घाटा होगा पर जब पूरे वर्ष का हिसाब तैयार हुआ तो ३ करोड़ से अधिक का घाटा रहा इससे और अन्य कारणों से भी लार्ड मेयो को सन्देह हुआ कि सन् १८६९-७० का बजट भी कहीं गलत न हो। उसकी आपने पहिले स्वयं जांच की और फिर आज्ञा दी कि १८६९-७० का बजट पुनः जांचा जाय। इस पड़ताल से ज्ञात हुआ कि वर्षान्त में २,२०,००,००० रु० का घाटा होगा यद्यपि गत मार्च में ६६०,००० की बचत की आशा थी।

लार्ड मेयो की इस विषय सम्बन्धी व्यग्रता के बढ़ने का इस समय एक और कारण उपस्थित हुआ। आपके अर्थविभाग के अद्वितीय कर रिचर्ड टेम्पेल को ६ मास की छुट्टी लेकर विलायत जाना पड़ा अतः उनके अनुभव और ज्ञान का लाभ इस अवसर पर प्राप्त न हुआ। (भारत सरकार को कैसी ही हानि सहनी पड़े पर अंगरेज़ अफसरों को छुट्टी दे ही दी जाती है कारण यह है कि यह लोग इतनी दूर से आकर नौकरी करते हैं। इसलिए इनकी सुविधाओं का विचार रखना पड़ता है) अब रिचर्ड के स्थान पर स्टूचीं साहब कार्य करते थे इनसे इनको बड़ी सहायता मिली।

घाटे की पूर्ति के दोही उपाय हैं एक तो आय को बढ़ाना दूसरे व्यय को कम करना। यद्यपि वर्ष के मध्य में इन दोनों ही साधनों के अवलम्बन करने से गड़बड़ मचती है तथापि लार्ड मेयो ने बड़ी स्थिरता और हिम्मत से निश्चय किया कि कुछ भी हो चाहे सेना में चाहे सिविल विभाग (देश के शासन कार्यकर्ताओं) में न्यूनता करनी पड़े, चाहे बनते मकान इत्यादि रुकवाना पड़े परन्तु वह सरकारी कोष में घाटा न होने देंगे। आज इस प्रकार के भाव शासकों से सुनने को नहीं मिलते। १०७००,०००) आपने उस विभाग के व्यय में से कम कर दिया जिसके सुपुर्द पुल, सड़क, मकान, नहरें इत्यादि बनवाना था और ४६००००० रु० आपने अन्य व्ययकारी विभागों में से कम कर दिया (ऊपर कह आये हैं कि वर्ष के मध्य में काट छांट करने से गड़बड़ मचती है यह पाठकों को अब स्पष्ट होगया होगा। जैसे मकान बनाने के लिये ईंटे, चूना, मट्टी इत्यादि मँगा कर ढेर किया और इंजीनियर नौकर रक्खे तत्पश्चात खबर आई कि धनाभाव से काम बन्द रहेगा बस सब नौकरों को छुड़ा देना पड़ा था और काम पर बरसात में बह गया) व्यय में इस प्रकार कमी करने पर भी जब घाटा पूरा होते न दिखाई दिया तब वाइसराय ने आमदनी बढ़ाने के लिए कर बढ़ाना निश्चित किया। आय पर एक रुपया सैकड़ा कर था उसको आपने आधे वर्ष के लिए २॥) रु० सैकड़ा कर दिया जिससे ४३०००००) की अधिक आय हुई। आपने मद्रास तथा बम्बई में नोन पर भी कर बढ़ा दिया। इससे २४००००००) रु० की अधिक आय हुई इस तरह से राम २ करके २२०००००००) रु० का घाटा पूरा हुआ।

अब आपने सारे देश की वार्षिक स्थिति की ओर ध्यान किया। बजट सरकार बिना किसी आधार के नहीं बना सकते। यह

आधार उसे प्रान्तिक सरकार तथा भिन्न भिन्न विभागों से प्राप्त होता था और है क्योंकि वही यह जान सकते हैं कि आगामी वर्ष में किन २ विशेष घटनाओं की सम्भावना है और उनका देश के प्रति भाग पर क्या प्रभाव पड़ेगा। उस समय प्रान्तिक सरकारों इत्यादि के भेजे हुये लेखों पर जोकि बड़ी मेहनत से तैयार किये जाते थे कुछ विचार नहीं होता था और वह व्यर्थ पड़े रहते थे। लार्ड मेयो ने इस बात पर बड़ा ज़ोर दिया कि सब लेखों को एक चित्र में एकत्रित किया जाय और उनसे लाभ उठाया जाय। इसके लिए यह भी आवश्यक था कि वह लेखे प्रान्तिक सरकारों इत्यादि से समय पर प्राप्त हों, जब यह भी होने लगा तब प्रान्तिक सरकार तथा अन्य विभाग इस बात पर बाध्य किये गये कि वह अपने भेजे हुये लेखे के भीतर ही व्यय करें। इन सब बातों का फल यह हुआ कि बजट ठीक २ बनने लगा और यदि अनुमान से भिन्न कोई बात होनेवाली भी होती तो उसकी सूचना सरकार को फौरन ही मिल जाती जिससे उसके प्रतिकार इत्यादि का प्रबन्ध कर दिया जाता।

अब आपने किफायत की ओर ध्यान दिया। भारतवर्ष में आर्थिक कठिनता का एक बड़ा कारण यह है कि देश का शासन भिन्न २ प्रान्तिक सरकारों के द्वारा होता है जोकि यद्यपि इम्पीरियल (राष्ट्रीय = भारतवर्ष भर की) सरकार के आधीन हैं तथापि उससे अलग हैं। इनको लार्ड मेयो के पूर्व किसी प्रकार का आर्थिक स्वातन्त्र्य प्राप्त नहीं था। वह वर्ष के अन्त में अपने आगामी वर्ष के व्यय के अनुमान से भारतीय सरकार से रुपया मांगती थीं। भारतीय सरकार पूरे देश की आय का विचार करके हर एक को हिस्से से रुपया दे देती थी और वर्षान्त में यदि कुछ धन बच रहता था तो उसे लौटा लेती थी इसलिए कोई सरकार किफ़ायत की दृष्टि से व्यय नहीं करती थी क्योंकि उसको ज्ञात था कि बचत से उसका कुछ लाभ नहीं। अनुभव से यह मालूम हो चुका था कि जो प्रान्त जितना अधिक धन माँगता है उसको उतना ही अधिक मिलता है। अतः प्रत्येक प्रान्त खूब बढ़ाकर अपना बजट बनाता और मिला हुआ सारा धन येन केन प्रकारेण व्यय कर डालता। लार्ड मेयो ने सोचा कि प्रान्तीय सरकारों से किफायत कराने का एकमात्र उपाय उनको कुछ अंश में आर्थिक दशा का उत्तरदाता बनाना है। इस विषय पर पत्र-व्यवहार करके आपने पहिले खूब छानबीन की। तत्पश्चात् १४ दिसम्बर १८७० को एक निश्चय प्रकाशित कर आपने प्रान्तिक सरकारों के वार्षिक व्यय के लिए एक स्थिर संख्या नियत कर दी। यह सामान्यतया ५ वर्षों के लिए होता थी और इसमें न्यूनता विशेष अवस्थाओं ही में हो सकती थी जैसे युद्ध इत्यादि। इसकी बचत भारतीय सरकार लौटा नहीं लेती थी किन्तु वह प्रान्तीय सरकारों के पास ही आगामी वर्षों में व्यय के लिए रह जाती थी और रह जाती है। इस धन से जेलखाने, रजिस्टरी, पुलीस, शिक्षा, अस्पताल, छपाई, सड़क, मकान इत्यादि सम्बन्धीय व्यय प्रान्तीय सरकार को करना होता है। पर किस २ कार्य में कितना २ व्यय करना चाहिये यह निश्चित करने के लिए प्रान्तीय सरकार स्वतन्त्र है। इसमें अब कुछ परिवर्तन होगया है पर नियम वही है जिसका प्रचार लार्ड मेयो ने किया था। अब किसी २ आमदनी का निश्चित भाग प्रान्तीय सरकारों को मिलता है और एकाध पूरी मिल जाती है। कोई २ बिलकुल नहीं मिलती। इसका ब्योरा हम नीचे देते हैं:—

बिलकुल भारतीय सरकार की।

नोन, देश की सीमा पर प्राप्त चुंगी, अफीम और देशी राजाओं के दिये हुये कर।

प्रान्तीय तथा भारतीय सरकारों में विभाजित।

भूमि का लगान तथा मालगुज़ारी, सरकारी स्टाम्प (टिकट), नशीली वस्तुओं का कर, आमदनी इत्यादि पर कर, जंगल तथा रजिस्टरी।

बिलकुल प्रान्तीय।

प्रान्तीय रेट (वह कर जो कि सड़कों की मरम्मत स्कूल, अस्पताल आदि के लिए विशेष रूप से लिये जाते हैं)।

कोष में घटंती न होने देने के लिए आपने अन्य उपाय भी किये। आपके आने के पूर्व ही भारत-सचिव ने आय पर कर लगाया जाना स्वीकृत कर लिया था अतः इस कर को लगा कर आपने कोष में आय की वृद्धि की। नोन पर भी आपने सब प्रान्तों में कर समान कर दिया तथा नोन की प्राप्ति में भी आधिक्य किया और उसके चालान का व्यय कम करके तत्सम्बन्धीय आय बढ़ाई। पर विशेष रूप से आपने किफ़ायत व्यय में की। हर विभाग को कड़ी दृष्टि से देख भाल करके यथासम्भव आपने व्यय में न्यूनता कर दी। इसका परिणाम यह हुआ कि देश के खर्चे में ५०००००००) रु० वार्षिक की बचत होगई। इस विषय को समाप्त करने के पूर्व एक बात कहे बिना हम नहीं रह सकते वह यह है कि आपने देश से बाहर जानेवाले नाज पर जो चुंगी पड़ती थी उसको हटा दिया। इसका परिणाम भारतवासियों के लिए बड़ा ही बुरा हुआ। एक तो नाज के अधिक बाहर जाने से यहां सदा महँगी रहने लगा और देश के निवासी भूखों मरने लगे दूसरे भारत सरकार की आय घटने से उसे दूसरे प्रकार से अपनी आय बढ़ानी पड़ी जिससे यहां के रहनेवालों की हानि हुई या शिक्षा इत्यादि आवश्यक व्ययों में कमी करनी पड़ी। इससे भी भारतवासियों की ही हानि हुई। वास्तव में बात यह है कि एक्सपोर्ट ड्यूटी (देश से बाहर जानेवाली वस्तुओं पर कर) का भार बहुधा उस देश पर पड़ता है जहां कि वस्तुएं खर्च होती हैं क्योंकि वहां उनका मूल्य बढ़ जाता है-"बहुधा" इसलिए कि कभी २ इसका परिणाम बड़ा भयंकर भी हो सकता है। जैसे यदि विलायत से भेजे जानेवाले कपड़े पर विलायत ही में कर पड़े तो वह भारत में आकर महँगा बिकेगा और तब यह सम्भव है कि जापान अपना कपड़ा सस्ता बेंच कर विलायत की सौदागरी को हानि पहुंचावे। साधारण नियम यह है कि कच्चे माल पर इस ढंग के कर से लाभ है क्योंकि देश में उसकी अधिकता होने से वह सस्ता होगा और निवासियों को सुविधा होगी। बने हुए (मैन्यूफैक्चर्ड) माल पर कर से हानि है क्योंकि उससे सौदागरी की हानि होना सम्भव है। आशा है कि पाठक मेरे इस विषयत्याग को क्षमा करेंगे।

लार्ड मेयो के प्रबन्ध से सन् १८६९-७० का आय व्यय करीब २ बराबर ही रहा और १८७०-७१ तथा १८७१-७२ में क्रमशः १४८००००० और ३१२००००० की बचत हुई।

इन्डियन नेशनल कांग्रेस इस बात पर सदा से ज़ोर देती आई है कि भारतवर्ष में सेना विभाग का व्यय आवश्यकता से कहीं अधिक है। इस विषय में कांग्रेस को एक प्रकार से सफलता हुई भी और नहीं भी हुई। सफलता नहीं हुई इस विचार से कि इस व्यय में किसी वर्ष न्यूनता नहीं हुई और सफलता इस विचार से हुई कि यदि यह आन्दोलन न होता तो कदाचित् व्यय और भी अधिक बढ़ जाता। इस विभाग का व्यय १८५६-५७ में १२॥ करोड़ रुपया था जो लार्ड मेयो के समय सन् १८६८-६९ में बढ़कर १६ करोड़ होगया था। (सन् १९११-१२ में इस विभाग का व्यय २९३३७९००० था!) भारत-सचिव ने वाइसराय को इसमें

न्यूनता करने को लिखा था। अतः आपने व्यय करने में कमी करने की ठानी और इस विभाग के प्रबन्ध सम्बन्धी व्यय में कमी की तथा कुछ विलायती सेना न्यून कर दी और थोड़ी सी भारतीय सेना घटा दी। इस विषय में आपके भाव कैसे उच्च थे यह निम्नोद्धरित वाक्य से ज्ञात हो जायगा। आपने भारतीय सरकार की ओर से भारत-सचिव को लिखा :—

"हमारे विचार में यह बड़ा अनुचित होगा यदि यहां की जनता देश की रक्षा के लिए आवश्यक धन से एक पैसा भी अधिक देने के लिए बाध्य की जाय।"

पर लिखते हुए दुःख होता है कि आपके ही समय से भारतवासियों को तोपें चलाने-वालों की जगह मिलना बन्द होगया।

इस नीति का पूर्ण परिणाम कुछ काल पश्चात् दिखाई पड़ा। देश के निवासियों को हथियार रखने की प्रायः मनाही होगई।

देश में आन्तरिक सुधार करनेवाले वाइस-रायों में भी आपका आसन बहुत ऊंचा है। आपने ऐसे कठिन समय में जब रेलें बहुत कम थीं बड़े परिश्रम से देश में भ्रमण करके अपनी आंखों से वास्तविक अवस्था देखी। भवन, सड़क, नहर इत्यादि निर्माणकारिणी विभाग [जिसे अंगरेज़ी में संक्षेप से पी० डब्लू० डी० (P. W. D. Public Works Department) कहते हैं] की उस समय दशा बड़ी शोचनीय थी। इसका व्यय धन उधार लेकर किया जाता था अतएव कोई किफ़ायत नहीं करता था। एक दफा आपने लिखा कि "कोई बुराई जोकि एक वृहत कार्य में हो सकती है बची नहीं। अनुमानित तथा वास्तविक व्यय में दूने का बल, नीचे की धरती देखे बिना ही बुनियाद डाल देना, कार्य होते समय अधिक व्यय की कोई जांच पड़ताल न करना"। अन्य स्थान पर आपने लिखा कि "बे-परवाही, अयोग्यता, तथा रिश्वतखोरी का यह क्लेशद इतिहास मैंने बड़े दुःख से पढ़ा। हर एक उच्चपदाधिकारी जिसका कि सम्बन्ध इस मकान के आरम्भ से था बेपरवाही का अपराधी है, हर मातहत पर न्यूनाधिक अयोग्यता का दोषारोपण हो सकता है। ठेकेदार सब रिश्वत देनेवाले हैं।" आपने यह परिणाम निकाला कि इस कुप्रबन्ध का मुख्य कारण उच्चपदाधिकारियों की न्यूनता है अतएव आपने उनकी संख्या में वृद्धि करके इस विभाग का सुधार किया। इसके अतिरिक्त आपने यह कड़ा नियम कर दिया कि साधारणतया छोटे निर्माणकार्यों का भार देश की साधारण वार्षिक आय पर ही रहे। आपके समय में भारतीय सरकार की रेल सम्बन्धिनी नीति में बड़ा परिवर्तन हुआ। सन् १८५३ में भारत भर में २॥ मील रेल थी। यह सन् १८६९ अर्थात् लार्ड मेयो के इस देश में आने के समय तक बढ़कर ४ हज़ार मील होगई पर जिस प्रकार से रेलों का विस्तार हुआ वह इस देश के लिए बड़ा हानिकारक था। भारत-सचिव ड्यूक आफ़ आरगाइल के शब्दों में "गवर्नमेंट के अधिकार और विश्वास पर धन उधार लिया गया जिसपर ५) सैकड़ा लाभ की जमानत की गई। अतः धन देनेवालों को घाटे का कोई डर न रहा पर भारत सरकार को हर तरह से घाटा ही घाटा रहा और लाभ की कोई सूरत न रही।" इसका यह अर्थ था कि यदि वर्षान्त में रेल में लगे हुए धन पर ५) सैकड़े से कम लाभ हो तो बाकी सरकार दे और यदि अधिक हो तो धन देनेवालों का। तिसपर भी तुर्रा यह कि लागत पर ५) सैकड़े की आमदनी निश्चित होने के कारण रेल के बनाने के व्यय में किफायत का विचार नहीं किया जाता था। इसलिए लार्ड मेयो ने यह ढंग निकाला कि ३-४ रुपये सैकड़े पर धन उधार लेकर सरकार स्वयं रेल बनवावे जिससे एक ओर तो हानि की सम्भावना कम होगई

और दूसरी ओर लाभ होने की आशा बंधी। लार्ड मेयो ने इस देश का यह बड़ा उपकार किया। आजकल भारत के राष्ट्रीय दलवाले इस बात पर ज़ोर देते हैं कि इस देश की सारी रेलें सरकार अपने अधिकार में कर ले; रेलवे कम्पनियों और भारत सरकार के बीच किन्हीं शर्तों के अनुसार यथासमय ऐसा होना सम्भव भी है।

भारतवर्ष के अधिकांश निवासियों की जीविका प्रायः खेती पर निर्भर है पर किसान लोग बिलकुल ही ईश्वराधीन हैं। वे आकाश की ओर टकटकी लगाये मेघ का आसरा देखा करते हैं। पश्चिम के उन्नत देशों में ऐसा नहीं है। वहां की सरकारों ने कृत्रिम नहरें इत्यादि बनवाकर इस प्रकार का प्रबन्ध कर दिया है कि यदि जल वृष्टि न भी हो तो भी खेत सींचे जा सकते हैं और अनाज पैदा हो सकता है। इसलिए वहां के किसानों को वह दुःख नहीं सहने पड़ते जो कि भारतीय कृषकों के प्रायः द्वार ही पर खड़े रहते हैं। लार्ड मेयो ने कई नहरों की बुनियाद डाली।

प्रारम्भिक शिक्षा के विस्तार के भी यह बड़े पक्षपाती थे। उन्होंने इस बात पर बड़ा ज़ोर दिया कि केवल कुछ बंगालियों की उच्च शिक्षा पर ही ध्यान न दिया जाय जैसा कि उस समय होता था वरन् देहातियों को भी कुछ सिखाने का उद्योग किया जाय। आपका विश्वास था कि भारतवर्ष में शिक्षा का प्रचार देहाती स्कूल और देशीभाषाओं द्वारा ही हो सकता है। आपके समय में उन स्कूलों को भी जिनमें कि केवल गोरों के लड़के ही पढ़ते हैं बड़ी सहायता मिली।

इन्होंने केवल प्रजा ही की शिक्षा का प्रबन्ध नहीं किया वरन् राजा की ज्ञान वृद्धि का भी उद्योग किया। उस समय सरकार को बंगाल के सर्वोन्नत ज़िले तक के निवासियों की संख्या ज्ञात न थी। उस समय के किसी साधन द्वारा अकाल आदि आपत्ति से होनेवाली हानि का पता नहीं चल सकता था इसलिए आपने सारे भारतवर्ष की मनुष्यगणना कराई तथा हर ज़िले, नगर और गाँव की जनता के स्थानिक अन्वेषण के पश्चात् आर्थिक और सामाजिक अवस्था का हाल लिखवाया।

लार्ड मेयो को दृढ़ विश्वास था (और इसकी सत्यता में कभी किसी विचारशील मनुष्य को सन्देह नहीं हो सकता) कि भारतवासियों की स्थायी उन्नति उन्हीं के निज पुरुषार्थ पर निर्भर है। आप उस समय की प्रत्याशा करते थे जबकि म्युनिसिपलिटियां सरकारी पदाधिकारियों की भलीभांति सहायता करेंगी। आपने पंजाब के छोटे लाट की म्युनिसिपलिटियों की उन्नति करने के लिए बड़ी प्रशंसा की थी। आपने लिखा कि इन संस्थाओं में देशी और विलायती सज्जन मिलकर कार्य करें और इस प्रकार से अधिकांश लोग सुशासनपद्धति की शिक्षा ग्रहण करें।

कारागार सम्बन्धी प्रबन्ध के सुधार की भी आपने चेष्टा की। पाठकों को ज्ञात है कि भारतवर्ष के निर्वासित घोर अपराधी अंडमन द्वीप में जिसे कालापानी भी कहते हैं भेजे जाते हैं। उस समय कुप्रबन्ध के कारण वहां की मृत्यु-संख्या बहुत बढ़ी हुई थी तथा उस द्वीप का व्यय भार भारत-कोष पर बहुत पड़ता था। इन दोषों को दूर करने के लिए आपने सेनाविभाग के एक उच्च पदाधिकारी को इस द्वीप का शासक नियुक्त किया। उसने कुछ सुधार किये पर यह इच्छा प्रगट की कि वाइसराय स्वयं इस उपनिवेश का निरीक्षण करें। लार्ड मेयो ने यह स्वीकार कर फरवरी सन् १८७२ को उक्त स्थान पर पदार्पण किया। दिन भर देखभाल करते रहे यह कार्य

सायंकाल के ५ बजे समाप्त हुआ। अंधेरा होने में अभी १ घंटा बाकी था, इसलिए लार्ड मेयो ने इरादा किया कि हैरियट नाम के पहाड़ को भी जिसपर कि ज्वर से पीड़ित लोगों के आरोग्य लाभ करने के लिए एक मकान बनवाने का विचार था देख आवें। वहां पर कोई ऐसे अपराधी नहीं रहते थे जिनसे कि कुछ भय हो केवल ऐसे लोग रहते थे जिनका अच्छा चाल-चलन प्रायः दृढ़ हो चुका था। आपने खूब निरीक्षण किया और सायंकाल होने पर लौट पड़े। जल के किनारे पर पहुंचने के पूर्व ही अंधेरा अधिक होगया था इसलिए दो आदमी जलती हुई मशालें लिए हुये आगे २ चलते थे। इनके पीछे प्राइवेट सेक्रेटरी और द्वीप के शासक के बीच में लार्ड मेयो चलते थे। पीछे दो अफ़सर और सशस्त्र पुलीस थी। शासक महाशय वाइसराय की आज्ञा लेकर दूसरे दिन का प्रबन्ध करने के लिए कुछ हटे और वाइसराय आगे बढ़े इतने ही में पत्थरों के पीछे से किसी पशु की तरह दौड़ने का शब्द सुनाई दिया और एक दो आदमियों ने मशाल के प्रकाश में चाकू पकड़े एक हाथ को चलते हुए देखा। प्राइवेट सेक्रेटरी ने धमाके का शब्द सुना और पीछे फिरकर देखा कि वाइसराय की पीठपर एक मनुष्य चीते के समान चिपटा हुआ है। एकदम १२ आदमी उस हत्यारे पर टूट पड़े और यदि अफ़सर उसकी प्राण-रक्षा न करते तो उसे मार ही डाला होता। अस्तु वह पकड़ लिया गया। घायल वाइसराय पानी में गिर पड़े थे। इनको प्राइवेट सेक्रेटरी ने उठाया और एक देशी गाड़ी पर बिठाल दिया। इनकी पीठ से रक्त बह रहा था। आप पल दो पल बैठे फिर पीछे गिर पड़े, धीरे से कहा 'मेरा सिर उठा दो' और बस। अग्नि-बोट पर चढ़ाकर अफसर उन्हें जहाज़ पर ले गये। जिस समय इनको जहाज़ में खाट पर लिटाने के लिए उठाया गया सब ने देखा कि इनकी आत्मा ने इस नश्वर शरीर को त्याग दिया था।

हत्यारा पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त की ओर का एक मुसलमान था जिसने कि पंजाब की घोड़-सवार पुलीस में नौकरी कर ली थी। इसने अपने एक पुरातन शत्रु को मरवा डाला था। इस अपराध के कारण इसे फांसी हो जानी चाहिये थी पर इसपर दया की गई और आजन्म द्वीपान्तरवास का दंड मिला। इस ने उसी समय यह निश्चित कर लिया था कि किसी बड़े अंगरेज़ को मार कर सरकार से बदला लूंगा। अतः अंडमन द्वीप में इसने सच्च-रित्रता से रहकर इधर उधर घूमने की स्वतंत्रता प्राप्त कर ली थी। वाइसराय के वहां जाने पर इसको अपने पूर्व निश्चित घोर दुष्कर्म करने का अवसर प्राप्त हुआ। कहने की आवश्यकता नहीं कि ११ मार्च सन् १८७२ को इसे फांसी दी गई। पुस्तकरचयिता ने लिखा है कि उसका, उसकी जाति का तथा उसके गाँव का नाम इस पुस्तक में अंकित नहीं किये जावेंगे। यह उचित ही किया गया है। ऐसे नरपिशाच की किसी प्रकार की भी ख्याति न होनी चाहिये।

वाइसराय का शव पहिले कलकत्ते लाया गया और फिर इनकी जन्मभूमि आयरलैंड को लेजाया गया जहां यह सदा के लिए धराशायी हुये। इनकी मृत्यु पर आयरलैंडनिवासी और विलायत की राष्ट्रीय सरकार दोनों ने अत्यन्त शोक प्रगट किया। समाचारपत्रों ने लिखा कि यह संयुक्त आदर बड़ा दुष्प्राप्य है। गवर्नमेंट जिसका आदर करती है बहुधा उसका मान प्रजा के हृदय में नहीं होता और जिसमें प्रजा की प्रेम और पूज्य बुद्धि होती है उसका सरकार यथोचित सम्मान नहीं करती। धन्य हैं वे पुरुष और सार्थक है उनका जीवन जिनके मरने पर राजा और प्रजा दोनों ही आंसू बहावें।

परमात्मन्! आप इस प्यारी प्राचीन भारत-भूमि पर कृपा करें और इस घोर अविद्या अन्धकार के गड्ढे से निकालकर ज्ञान और उन्नति के शिखर पर पहुंचानेवाले सपूत सन्तानों को उत्पन्न करें जिससे कि यह फिर अपना शिर ऊंचा कर सके और सारा संसार इसका वैसाही आदर करे जैसा कि किसी समय इसको प्राप्त था। भगवन् यह सब आपकी कृपा ही से हो सकेगा।

युद्ध-क्षेत्र की सैर ।

पाठक तथा पाठिकागण आजकल आप नित्य ही युद्ध की खबरें पढ़ती होंगी। आप पढ़ती होंगी कि आज फलाने स्थान पर फलानी सेना ने शत्रुओं को पीछे हटाया, आज फला शहर पर अंगरेज़ों ने कब्ज़ा कर लिया, आज जर्मनों ने विजय लाभ की किन्तु इन सब खबरों को पढ़कर आपको खून को सफेद करनेवाली युद्ध की भीषणता का पता न लगता होगा, आपको यह पता न होगा कि युद्ध की वास्तविकता या हकीकत क्या है और यह कि उसमें दिल दहलानेवाली बातें कौनसी होती हैं?

आप भोजन कर विश्राम करने को बैठी हैं, थोड़ी देर के लिए गृहस्थी के कामों को छोड़ कर आइये, हमारे साथ चलिये, हम आपको युद्धक्षेत्र की सैर करा लावें। हम यह नहीं कहतीं कि इससे आपका मन बहलेगा, सम्भव है युद्ध की भीषणता, गोलों की गरररड्डम, बन्दूकों की बिजली कीसी तड़प, गोलियों की सन-सनाहट, घायल सिपाहियों का पानी के लिए चीतकार और मुर्दों के ढेर देखकर आपका कोमल कलेजा काँप जाय किन्तु याद रहे कुछ ही दिन पहिले हमारे ही भाई और हमारी ही बहिनें स्वयं घोड़े पर सवार हो रणक्षेत्र में शत्रुओं का मान मर्दन करती थीं। उन्हीं का खून हम में बह रहा है। आज हमारी दशा हीन अवश्य है किन्तु संसार से रण-बाँकुरो और वीर ललनाओं का नाम अब भी नहीं मिट गया है। आज इस यूरोपीय महा-भारत में भी कितनी ही ललनाएं अस्त्र शस्त्र ले स्त्री जाति का मुख उज्वल कर रही हैं। अभी कल ही यह खबर आई थी कि एक रूसी को सेना में जाने की आज्ञा हुई। वह भीरु था, कायर था, रण में न जाकर वह घर में छिप रहा। उसकी स्त्री को यह बात मालूम होगई। वह पति का वेश धारण कर अस्त्रशस्त्र से सुसज्जित हो मैदान में जा पहुंची। कितने ही वीर शत्रुओं को उसने नीचा दिखाया आखीर में वह घायल हुई, उसके कई गोलियां लगीं। सिपाही उसे सेवा सुश्रूषा के लिए उठाकर ले गये। उसका हाल खुल गया। कारण पूछा जाने पर उसने यह बताया कि "मैं यह नहीं चाहती थी कि मेरे कुल में यह दाग लगे कि उसमें कोई भीरु पैदा हुआ था।" हमने इस बात को इसीलिए सुना देना अच्छा समझा जिसमें आप रणक्षेत्र की सैर करने के नाम से विचलित न हो जाँय।

अच्छा तो अब देर न करिये, आपको घर लौटने की भी जल्दी होगी।

* * * *

वह देखिये, समुद्र के किनारे एक भीषण मैदान खँडहरसा पड़ा हुआ है। युद्ध के ही कारण इसकी ऐसी दशा हो गई है, नहीं तो ४ दिन पहिले इसका एक ज़माना था, दूर दूर से यात्री इसकी सैर करने आते थे। यह जो खंड-

हर दिखाई देते हैं वे चार दिन पहिले ऊंचे २ महल थे, कभी २ रात्रि में सन्देह हो जाता था कि ये चन्द्रमा को चूम रहे हैं, नक्षत्रों से ये बातें कर रहे हैं किन्तु आज ये धराशायी (ज़मींदोज़) हो गये हैं, इनके निवासी घर छोड़ जर्मनों के भय से भाग गये हैं। इस प्रदेश का नाम बेलजियम है। आज यहीं की आपको सैर करनी है। दूर से आप चलकर आई हैं, स्वस्थ हो लीजिये और सावधानी से देखती चलिये।

* * * *

देखिये २ वह एक पैदल सेना आती हुई दिखाई देती है। इनकी खाकी रंग की पोशाक कैसी धुंधली दिखाई देती है। आइये बढ़कर देखें ये कौन हैं। आहा, इनके साथ तो यूनियन जैक का झंडा फहरा रहा है, यह तो ब्रिटिश सरकार की ही सेना है। यह अच्छा हुआ। यह मित्र ही निकले। आइये इन्हीं के साथ हम लोग भी होलें। देखिये वह दूर से कौन सवार तेज़ी से चला आरहा है ? अरे यह तो रूब के आगे आपहुंचा। यह सैनिक कैसे एक साथ हाथ उठा रहे हैं, अरे ये तो सब एकदम रुक भी गये। मालूम होता है यह कोई इनका अफसर है। बस अब इसी के साथ हम सब लोग भी होलें। युद्ध का तमाशा इसीके साथ रहने से अच्छा दिखाई देगा। देखिये उसके हुकम के साथ ही ये सब पश्चिम की ओर मुड़ गये। पचास कदम चलकर कप्तान खड़ा होकर कुछ कह रहा है। कितने ही सैनिक कुदाली ले यह ज़मीन क्यों खोदने लगे ये तो बड़े बड़े ऊंचे राजप्रासादों की नेह सी कुछ खोदी जा रही है। क्या अपने ठहरने को ये महल तैयार करेंगे क्या ? नहीं नहीं यह नहीं हो सकता। देखिये कप्तान से मैं इसका मर्म पूँछ आती हूँ।

* * * *

हम लोग धोखे में थे। कप्तान कहता है कि "वे महल नहीं खोद रहे हैं, वरन अपने रहने को वे ज़मीन के भीतर गड्ढे खोद रहे हैं। ये गड्ढे २४ हाथ गहरे खोदे जाते हैं। कारण यह है कि गोले फूटने पर १०, १२ हाथ ज़मीन में घुस जाते हैं। इसी कारण से बचाव के निमित्त गहराई गड्ढों की २४ हाथ रक्खी जाती है। इन्हीं खड्डों में ये सैनिक छिपे रहते हैं। मैदान में रहने से शत्रुओं के गोलों से बचना कठिन है, इस लिए शरण ज़मीन के अन्दर ही मिल सकती है। इन्हीं खड्डों में सब सैनिक और सेना का सरंजाम रहता है "

* * * *

गरररडम-गरररडम।

यह गोले की आवाज़ कहां से आई। अरे यह तो हम लोगों के कानों के पास ही से निकल गया। देखिये ! देखिये पचास हाथ के फासले पर वह फूट गया। आंखें चौंधियां गईं। वहां पर वे दस आदमी देखिये कैसे हो गये ? वह देखिये एक हाथ उड़ गया। वह किसी का सर चकनाचूर हो गया। हैं, यह कप्तान ने बिगुल कैसी बजाई। ये सिपाही खड्डों में कैसे घुसे जाते हैं ? अरे ये तो सब भीतर चले गये, कप्तान भी भीतर घुसना चाहता है, आइये हम लोग भी इसी के साथ खड्ड में चले चलें। मालूम होता है शत्रु आरहे हैं।

* * * *

चारो तरफ भीषण गोलों की वर्षा हो रही है। सिपाही खड्डों में बैठे हैं, कितनों ही की मुखश्री चिन्ताशून्य है, कितनों ही के चेहरे पर हवाइयां उड़ रही हैं। प्रत्येक दूसरी मिनट पर गोले इधर उधर गिर रहे हैं, संध्या होने को आई किन्तु गोलों की वर्षा में कमी नहीं हुई है। अरे वह देखो "कप्तान वाला घर ढेर हो गया। कप्तान साहब भाग कर इस खड्ड में चले गये। अरे यहां तो बहुत कुछ भरा हुआ है। वह देखिये शराब की बोतलें ढेरों इकट्ठा हैं, खाने

का भी कुछ सामान दिखाई देता है। चलिये दिन भर बाद कुछ भोजन का सहारा हो जायगा। तोपों की अररर्डम भी कम होती दिखाई देती है। अँधेरा भी हो गया है, सैनिक रोशनी के इन्तज़ाम में लग गये हैं। अब संध्या भी होगई चलिये कुछ पेट पूजा कर लीजिये।

देखिये सैनिकों की दशा कैसी है? दिन भर इन्हें चलते और काम करते ही बीता है अभी तक विश्राम करने की नौबत नहीं आई है। ये भी भोजन पर कैसे टूटे हैं, किसी प्रकार पेट की ज्वाला को कम कर ये ज़मीन पर ही पड़ कर मुर्दों से बाज़ी लगायेंगे। देखिये वह कप्तान भी आगया, अब भोजन में देर नहीं।

सुनिये वह क्या कह रहा है "भाइयो आज ७ दिन और ७ रात हम लोगों को लड़ते और भागते बीता, कितने ही भाई हमारे वीरगति को प्राप्त हुए, ईश्वर की दया से हम लोग प्रसन्न हैं। जगदीश्वर को जय मनाओ और भोजन आरम्भ करो।"

कप्तान की बात खतम भी न हो पाई थी कि गोलों की आवाज़ सुनाई देने लगी। अरे क्या शत्रु फिर आगये। सब भोजन ज्यों का त्यों रह गया। सब सिपाही फिर वैसे ही अस्त्र शस्त्र ले तैयार होगये। देखिये वह एक सिपाही खड्ड के बाहर गर्दन निकाले क्या देख रहा है? अरे वह तो वहीं उलट गया। यह क्या? लोग दौड़े। कप्तान ने सब को रोक दिया। शत्रु की गोलियों की सनसनाहट से कान उड़े जाते हैं। आइये कप्तान से पूछें मामला क्या है?

* * * *

देखिये कप्तान कहता है कि जब से वह आया है उसे बराबर शत्रु की अग्निवर्षा का ही सामना करना पड़ा है, तीन दिन खाली उसकी सेना केवल अग्निवर्षा से दूर रही किन्तु उन तीन दिनों में उसे बिना रात में एक मिनट भी सोये सेना सहित बराबर चलना पड़ा है। उसके कितने ही आदमी मर गये हैं। उसे नये और बहुसंख्यक सैनिकों की आवश्यकता है। वह कहता है कि जितने अधिक सैनिक उसके पास रहेंगे उतनी ही कम उसे हानि उठानी पड़ेगी और उतनी ही जल्दी वह शत्रुओं का दमन कर सकेगा। देखिये उसने भी सैनिकों को तोप छोड़ने की आज्ञा दे दी। आह ये तो कान के पर्दे फटते से मालूम होते हैं। देखिये वह जर्मनों के गोले ने फटकर ज़मीन में प्रायः १६ फीट ८ इञ्च का कैसा गड्ढा कर दिया है। चारो ओर अग्नि ही प्रज्वलित दिखाई देती है। आकाश में उड़ते हुए लाल २ अग्नि के स्फुलिङ्ग अंधेरी रात में कैसे भयावने मालूम होते हैं। कान के पास से गुजरते हुये गोलों की सन-सनाहट से शरीर का रक्त ठंढा सा हो जाता है। गोले से निकले हुये तेज़ धारवाले लोहे के टुकड़े चारो ओर नाचते से दिखाई देते हैं। बड़ा ही रोमांचकारी दृश्य है। मालूम होता है यम ने सभी नारकीय राक्षसों को आज उत्सव मनाने की छुट्टी दे दी है या भैरव के पिशाच और भूत संहारकारिणी मातृ दुर्गे के लिए रुन्ड मुन्ड की माला बनाने का आयोजन कर रहे हैं।

रात्रि के ११ बज चुके किन्तु युद्ध की भीषणता में कमी नहीं। लीजिये अब १२ पर सुई भी आपहुंची। ईश्वर को धन्यवाद है अररर्डम में भी कमी होती दिखाई देती है। वह कप्तान भी आगे आगया है। चौथाई सैनिकों को उसने आराम करने की आज्ञा दे दी। आज ७ दिन और रात्रि के बाद इन्हें सोना नसीब होरहा है।

युद्ध भी हलका हो गया है मालूम पड़ता है जर्मन चल दिये हैं।

* * * *

हमारा अनुमान ठीक निकला। जर्मन चल दिये हैं किन्तु वे यों ही नहीं चले गये। देखिये कप्तान के पास वह जासूस क्या खबर दे रहा

है। वह कहता है "कि पास ही दक्षिण की ओर फ्रेंच सिपाही खड्डों में भरे पड़े थे उन्हें जर्मनों ने त्रस्त कर बाहर निकलने पर बाध्य किया। खुले मैदान में विचारों की बहुत बुरी गति हुई। सब मुर्दे मैदान में पड़े हैं। उनमें कुछ जीवित भी होंगे किन्तु उनके पास जाना कठिन है क्योंकि जर्मनों की गोलियां बराबर चली आरही हैं। उनमें जो जीवित हैं वे सब थोड़ी देर में मर जायँगे क्योंकि भीषण ठंढा हवा बह रही है। ब्रिटिश सिपाहियों की खड्डों के आस पास जो घर थे उनका पता नहीं है, किसी को लुत गायब है, कोई औंधा पड़ा ज़मीन से बातें कर रहा है, ईंटें और खपड़े इस तरह चारों ओर फैले हैं मानों उनकी वर्षा हुई हो।

अच्छा अब चलिये रात्रि बहुत बीत चुकी हम लोग भी तनिक विश्राम कर लें।

* * * *

लीजिये थकान भी दूर नहीं हुई थी कि सवेरा हो गया, किन्तु यहां कौओं की काँव २ नहीं है, कहीं चिड़ियों की चहचहाहट भी नहीं सुनाई देती। आकाश मेघाच्छन्न है, सर्दी से हाथ पैर ठुठरे जाते हैं, बदन पाला हुआ जाता है, पानी छूना तो दूर रहा उसकी ओर देखने की भी हिम्मत नहीं होती। चलिये रात्रि के लीला-क्षेत्र का दर्शन कर आवें।

* * * *

भूमि की रंगत देखकर मालूम होता है यहां बरसाने को फाग रचा गया था। चारों ओर रक्त ही रक्त दिखाई देता है। इनमें कितने ही फ्रेंच और कितने ही अंगरेज़ सैनिक हैं। चलिये देखें वह खड्ड के पास हिलता क्या दिखाई देता है? अरे यह तो आहत सैनिक है। पहिनावे से फ्रेंच मालूम होता है। अभी इसमें जान बाकी है। देखिये यह इसका झोला भी पास ही पड़ा है। इसमें यह बोतल भी है। दो चार बूंद इसके मुख में डालिये शायद बच जाय। अरे इसने तो आँखें खोल दीं। तनिक शराब इसे और देनी चाहिये। इससे युद्ध गाथा कदाचित कुछ मालूम हो जाय। देखिये वह कुछ कह रहा है "हम...लोगों को...जर्मनों ने...व अड्डा..... धोखा दिया। हम लो...इधर से जा आ...थे। पास ही ख... में ...झंडा लिए ए...जर्मन सैनि...थे। वे हाथ उठा दोहाई सी दे रहे थे। कप्तान के हु... से हम लोग उन्हें गिरफ्तार करने गये। जब हम लोग खड्ड में पहुँचे ...तो हाथ उठानेवालों के पीछे जो छि...हुए जर्मन सि...थे उन्होंने गोलों की वर्षा शुरू कर दी। जो झंडा उठाये थे वे भी गोला चलाने लगे। हम सब धोखे में मारे गये"

अरे बोलते २ इसकी तो आंखें पथरा गईं। बेचारे का कोई साथी भी पास नहीं। यदि हम लोगों के पहिले किसी ने पहुंच कर इसकी फिक्र की होती तो यह बच जाता। किन्तु लड़ाई में कौन किस को पूछता है कितने ही जिन्दा कुचल जाते हैं, घोड़े और तोपगाड़ियां उनपर दौड़ जाती हैं।

* * * *

अब दिन चढ़ता दिखाई देता है गृहस्थी का कामकाज सब पड़ा होगा चलिए लौट चलें। यदि यह सैर आपको पसन्द आई होगी तो फिर किसी दिन रणक्षेत्र की सैर कराने ले चलूंगी। अच्छा अब विदा होती हूं।

क्षमा नेहरू।

सम्पादकीय टिप्पणियां।

आसाम की विचित्र अवस्था।

आसाम की व्यवस्थापक कौंसिल में हाल में मान० मि० कामिनीकुमार चांदा ने राजधानी शिलांग के शासन के विषय में जो आश्चर्यजनक कथा सुनाई है उससे मालूम पड़ता है कि वहां के निवासियों के भाग्य अन्य भारतवासियों की तरह साधारण नहीं वरन् असाधारण हैं। देश में सर्वत्र जो कानून प्रचलित है उसकी वहां पत्र नहीं। ३० वर्ष पहिले एक जंगली जाति के शासन के उपयुक्त जो नियम बना लिये गये थे वे ही आज भी वहां पर कानून का काम देरहे हैं। हाईकोर्ट का वहां कोई अधिकार नहीं। चीफ कमिश्नर, कमिश्नर और डिप्टी कमिश्नर ही वहां के न्यायालय स्वरूप हैं और उन्हीं पराने नियमों के आधार पर श्रीमुख से जो आज्ञा सुना देते हैं वही 'न्याय' माना जाता है। बिना विशेष आज्ञापत्र पाये वकीलों की कचेहरियों में पैठ नहीं। मान० सर एस०. पी० सिंह सरीखे प्रतिष्ठित महाशय ने कुछ समय हुआ एक मुकदमे में बोलने की इजाजत चाही थी मगर प्रभुओं ने साफ नहीं कर दी। जबतक सज़ा ३ वर्ष की कैद से अधिक की न हो तबतक किसी भी व्यक्ति को अपील करने का अधिकार नहीं। परन्तु कथा यहीं समाप्त नहीं है। पाठक यदि अधीर हो गये हों तो अपने धैर्य की मात्रा कुछ और बढ़ालें। हां, इतना अवश्य है कि वहां 'अब धान बारह पसेरी नहीं है।' बुद्धिमान शासकों ने विवेक से काम लिया है। केवल तुच्छ काले चमड़ेवाले ही उपर्युक्त नियमों के शिकंजे में कसे गये हैं; उस प्रान्त में रहनेवाले गोरे चमड़ेवालों के लिए, उदाहरणतः जर्मनों के लिए, ये नियम हर्गिज़ लागू नहीं हैं। शायद मान० मि० चांदा इस विवेकपूर्ण नीति का सूक्ष्म महत्व नहीं समझ सके इसीलिए उन्होंने आसाम की कौंसिल में यह मन्तव्य उपस्थित कर डाला कि वहां भी अंगरेज़ी राज के साधारण कानून प्रचलित किये जायँ और अन्य प्रान्तों की तरह वहां के प्रजाजनों के मुकदमों का भी फैसला हुआ करे। अधिक आश्चर्य की बात यह है कि कौंसिल का कोई भी हिन्दुस्थानी मेम्बर इस बारीक मामले की भीतरी तह पर नहीं पहुंच सका, न प्रभुओं ही की प्रसन्नता अप्रसन्नता की पर्वाह की, सब के सब वर्तमान प्रबन्ध के विरुद्ध खड्गहस्त हो गये और आठो ही मेम्बरों ने मि० चांदा की हां में हां मिलादी! मगर हिन्दुस्थानी मेम्बरों की बक बेबक की इन्हीं नासमझियों और उपादतियों को रोकने के लिए तो हमारे उदार शासकों ने कौंसिल में उन्हें अधिक अधिकार नहीं दिया है। कौंसिल के अधिकारियों ने चट मि० चांदा की बात दबा दी और स्वाभाविक दूरदर्शिता से इस प्रकार होनेवाले अनर्थ को रोक दिया।

बजबज के दंगे की रिपोर्ट।

समाचारपत्र-पाठकों को मालूम होगा कि 'कोमागाटामारू' नाम के जापानी जहाज़ पर सवार होकर कई सौ अभागे भारतसन्तान, अधिकांशतः सिक्ख, गत मई १९१४ में कैनेडा के तटपर गये थे परन्तु नियमविरुद्ध यात्रा करने के कारण उन्हें वहां की ज़मीन पर पैर रखने की आज्ञा नहीं मिली। कैनेडा से जहाज़ जापान को लौट आया जहां से उसको भारतसरकार ने जापान सरकार से लिखापढ़ी करके अपने खर्च से भारत को बुलवा लिया। इसके बाद २९ सितम्बर १९१४ को कलकत्ते के पास बजबज में पुलीस के साथ उनका जिस तरह बखेड़ा होगया और जिसमें कई सिक्खों की जानें गईं उसका वृत्तान्त यहाँ लिखने की आवश्यकता नहीं। इस दंगे के सम्बन्ध में जाँच करने के लिए सरकार

ने सर विलियम विसेंट की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की थी जिसकी रिपोर्ट सरकारी मन्तव्य सहित हाल ही में प्रकाशित हुई है। उससे विदित होता है कि पुलीस ने इस दंगे के अभियोग में जिन बहुतसे सिक्खों को गिरफ़्तार किया था उनपर मुकदमा चलाने का विचार सरकार ने अब त्याग दिया है। परन्तु साथही उसमें कहा गया है कि "पकड़े हुए मनुष्यों में से ४० पहिले ही छोड़े जा चुके हैं और ८१ और मुक्त कर दिये जायँगे परन्तु शेष व्यक्तियों के सम्बन्ध में अभी कुछ और विचार करने की आवश्यकता है"! रिपोर्ट भी यह अन्तिम नहीं है क्योंकि "दंगे के सम्बन्ध में कुछ बातें ऐसी ऐसी हैं जिनकी और जांच होगी।" एक दंगे के सम्बन्ध में गिरफ़्तार व्यक्तियों में से कुछ को छोड़ देने और कुछ को जेलखाने में बंद रखने की नीति में कौनसा लाभ सरकार ने सोचा है यह तो उसीको मालूम होगा। कम से कम यह स्पष्ट है कि पंजाब के देशी अख़बार सरकार की इस नीति से सन्तुष्ट नहीं। जब सरकार ने उनके अधिकांश साथियों को छोड़ दिया है और उदारतापूर्वक उनपर मुकदमा चलाने का विचार भी त्याग दिया है तब साधारण बुद्धि के आदमी को तो यही उचित मालूम पड़ेगा कि शेष व्यक्ति भी तुरन्त मुक्त कर दिये जायँ और यथासम्भव शीघ्र ही इस अप्रिय कांड की इति श्री हो।

जर्मन भूत।

लड़ाई तो यूरोप में होरही है परन्तु जान पड़ता है कि जर्मन भूत कई हज़ार मील की छलांग मारकर हिन्दुस्थान के कुछ एंग्लो-इंडियन पत्रों के सिरों पर नाचने लगे हैं। इनका यह मर्ज़ अगर बढ़ता गया तो हमें भय है कि भारत सरकार को इनके इलाज की फ़िक्र करनी पड़ेगी। जैसे सावन के अन्धे को सब चीज़ें हरी भरी और सब्ज़ ही जान पड़ती हैं वैसे ही कुछ एंग्लो-इंडियन पत्रों को संसार के सब प्रकार के कुचक्रों की रचनाओं में जर्मनों ही का हाथ नज़र आता है। उदाहरणतः प्रयाग के 'पायोनियर' के कार्यालय से एक पैम्फलेट प्रकाशित हुआ है जिसमें यह लिखा गया है कि "भारतवर्ष में असन्तोष अराजकता आदि फैलाने में जर्मनों का हाथ है। 'बर्लिन प्रेस ब्यूरो' ने मिस्र और भारत के देशी समाचार-पत्रों को अराजकता का प्रचार करने के लिए उत्तेजित किया। बर्लिन और ज्यूरिच-स्थित जर्मनी की गुप्त पुलीस के सभ्यों ने भारतीय युवकों को जूट और मई में आग लगाना सिखलाया, बम फेंकना सिखलाया, और हत्या करने में उन्हें निपुण बना दिया। दिल्ली में जो बम फेंका गया था उसमें भी जर्मनी का हाथ था। जर्मनी ही के संकेतानुसार ढाके में १६ जुलाई १९१४ को हत्याएं की गई थीं ...! भारतवासियों की राजभक्ति पर कीच फेंकने के लिए मानो इतना काफी न था, इसीलिए आगे चलकर पैम्फलेट में कहागया है कि जर्मनी ने रुपये से भारतीय कांग्रेस कमेटी की सहायता की, उसे स्वराज्य के निमित्त खड़े होने के लिए उत्तेजित किया...। इतना ही नहीं, यह भी कहागया है कि बङ्गविच्छेद और स्वदेशी आन्दोलन के लिए भी जर्मनी से सहायता मिली थी।" साधु साधु! शायद इससे अधिक दूर जाने में कल्पनाशक्ति असमर्थ थी।

* * *

इसी प्रकार कलकत्ते का 'स्टेट्समैन' बड़ी गम्भीरता के साथ अपने पाठकों को इसबात का विश्वास दिलाता है कि जर्मनों ही की साज़िश से सिक्खों ने 'कोमागाटामारू' द्वारा कैनेडा जाने की ठानी थी! सिक्खों के दंगे की जाँच करनेवाली कमेटी ने भी इस विषय पर विचार किया है परन्तु सुबूत न होने के कारण वह जर्मनों को दोषी नहीं ठहरा सकी है।

जर्मनों के लगाव का संदेह इस कारण किया जाता है कि मि० वून नाम के एक जर्मन एजेंट द्वारा इस जहाज़ का किराया ठहराया गया और यह कि सिक्खों के रवाना होने की खबर पहिले जर्मन अखबारों ने छापी थी। मगर स्वयं कमेटी के मतानुसार इतना ही कारण सन्तोषजनक नहीं है। उलटे इस बात के सुबूत मौजूद हैं कि जर्मन एजेंट ने अपनी दलाली लेली थी और सिक्खों के अगुआ गुरुदत्त सिंह को उसने या किसी और जर्मन ने इसके तथा दूसरे किसी काम के लिए एक कौड़ी भी नहीं दी थी। साथ ही यह भी मालूम होगया है कि जर्मन एजेंट ने गुरुदत्त सिंह को बहुत समझाया था कि कैनेडा जहाज़ न ले जाओ पर उन्होंने एक न सुनी।

ऐसी अवस्था में 'स्टेट्समैन' का प्रलाप कहांतक न्यायसङ्गत है इसके बतलाने की कोई आवश्यकता नहीं।

औद्योगिक उन्नति।

वर्तमान महायुद्ध ने अपनी बाल्यावस्था ही में जो बड़े बड़े परिवर्तन कर डाले हैं उनमें एक यह कम उल्लेखयोग्य नहीं है कि ब्रिटिश सरकार ने अपनी मुक्तद्वारा (निःशुल्क व्यापार की) नीति को ताक पर रख दिया है और अब अपने देशके व्यवसायियों और कारखानेवालों को प्रत्यक्ष रूप से सहायता देने लगी है। इंग-लैंड (और फ्रांस में भी) आजकल उन वस्तुओं के बनाने का भगीरथ-प्रयत्न किया जा रहा है जो युद्ध के समय तक जर्मनी और आस्ट्रिया बनाकर भेजा करते थे। 'स्टेट्समैन' का स्वत्वा-दाता लंदन से लिखता है कि जो विविध प्रकार के रंग अभीतक जर्मनी से आते थे उनको बनाने के लिए इंगलैंड में ४॥ करोड़ रु० की पूंजी से एक कम्पनी खड़ी की गई है और उसको ब्रिटिश सरकार ने २। करोड़ रु० २५ वर्ष की मियाद पर ऋण दिया है। इतना ही नहीं, वह अन्य कितने ही प्रकार से अपने व्यवसायियों को आर्थिक और नैतिक सहायता दे रही है। युद्ध के आरम्भ ही में वह खजाने से १,८०,००००० पौंड प्रजा के सुभीते के लिए कुल चीनी खरीद लेने में खर्च कर चुकी है। इधर भारत में भी देशी उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिए आन्दोलन आरम्भ हुआ है और विशेषता यह है कि सर-कार की भी 'सहानुभूति' उसके साथ है। मगर जिस प्रकार हम भारतवासी संसार में अपने ढंग के निराले ही हैं उसी प्रकार हमारा औद्यो-गिक आन्दोलन भी निराला ही है। हमारे इस आन्दोलन के अङ्ग प्रत्यङ्ग इस प्रकार हैं:—कान-फरेंसें, कमेटियां, जांचें, रिपोर्टें, उनपर सर-कारी मन्तव्य, और यहाँतक कि प्रदर्शिनियाँ भी होने लगी हैं—मगर बस, इससे आगे बढ़ने का साहस दुःसाहस है। बंगाल की व्यवस्थापक कौंसिल में हाल में मान० बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने यह प्रश्न पूछा था कि रंग, चमड़ा, काँच, दिया-सलाई, रेशम, सूती कपड़ा, चीनी और कागज़ बनाने के कार्य में उत्तेजना देने के लिए सरकार ने क्या किया है? सरकार की ओर से गम्भीरता के साथ उत्तर दिया गया कि ये सब विषय मि० खान की जाँच के विस्तीर्ण क्षेत्र में आगये हैं!

युद्ध की गति।

लोग समझते थे कि शीतकाल में युद्ध की गति मन्द हो जायगी परन्तु यह आशा दुराशा मात्र निकली। कई अंशों में युद्ध और भी भीषण रूप धारण कर रहा है। टर्की तो युद्धक्षेत्र में उतरा ही था; इधर मालूम पड़ता है कि बेचारे फारस को भी इस महायज्ञ में आहुति डालनी पड़ेगी। सम्भव है कि कुछ और राष्ट्र भी उसका अनुसरण करें।

* * * *

आक्रमणकारियों की आशाएं अभी तक तो स्वप्नवत् ही सिद्ध हो रही हैं। जर्मनी को अनु-मान था कि इस समय तक भारत में अवश्य

अंगरेज़ों के विरुद्ध विद्रोह की अग्नि भड़क उठेगी परन्तु हुआ क्या है? श्रीमान् वाइसराय की बड़ी कौंसिल की हाल की बैठक में अपनी वक्तृता द्वारा भारत के सब जातियों और धर्मों के लोगों को उनकी सर्वव्यापिनी राजभक्ति के लिए धन्यवाद देने का अवसर मिला है! खास युद्ध-क्षेत्र में जर्मनों को लेने के देने पड़ गये हैं। पेरिस पहुंचने की आशा पर पानीआ फिर गया है। इङ्गलैंड पर आक्रमण करने की अभिलाषा वे वहां के कुछ तटस्थ नगरों पर अपने हवाई जहाज़ों द्वारा कुछ गोले फेंकवाने का खेल कर के पूरी करना चाहते हैं। तर्क लोग अभीतक मिस्र और स्वेज़ नहर पर अपना पैर नहीं बढ़ा सके हैं, वरन् समाचार आया है कि सीरिया में उनकी आक्रमणकारी सेना की अवस्था शोचनीय है।

* * * *

मिस्रवासियों और तुर्कों के परस्पर-सम्बन्ध का जो हलका तागा शेष रह गया था उसे अङ्गरेज़ों ने अब एकदम तोड़ दिया है। ख़दीव अब्बास हिलमी तुर्कों से जाकर मिल गये इसलिए अंगरेज़ों ने उनके चाचा प्रिंस हुसेन को 'सुल्तान' का ख़िताब देकर मिस्र का अधिकारी बना दिया है और मिस्र को अब अपने शासन-छत्र के नीचे ले लिया है। इस परिवर्तन के अवसर पर ब्रिटिश सरकार की ओर से जो महत्वपूर्ण सूचना मिस्र के नये सुलतान को दी गई है उसकी तुलना सहयोगी 'स्टेट्समैन' ने महारानी विक्टोरिया के १८५८ के हिन्दुस्थान-सम्बन्धी घोषणा-पत्र से की है। ब्रिटिश सरकार ने कहा है कि वह धार्मिक मामलों में कभी छेड़छाड़ नहीं करेगी, मिस्रवासियों की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति के लिए प्रयत्न करेगी, प्रजा को शासन के कार्य में यथासम्भव भाग देगी और मिस्रवासियों को क्रमशः स्वराज्य की ओर ले जायगी!

* * * *

कुछ लोगों को आश्चर्य होता होगा कि तुर्कों ने अपने जातिभाई ईरानियों के देश फारस पर क्यों चढ़ाई कर दी और क्यों उनके एक प्रान्त अज़रबैजान और मुख्य नगर तब्रीज पर कब्ज़ा कर लिया। 'पायोनियर' कहता है कि फारस पर तुर्कों के आक्रमण करने की कोई आवश्यकता नहीं थी! एक दूसरा एंग्लो-इन्डियन पत्र इस सम्भावना पर विचार करता हुआ कहता है कि तुर्कों के आधुनिक और प्रभावशाली नेता अनवरपाशा का विचार सिकन्दर की तरह कहीं फारस के मार्ग से हिन्दुस्थान पर तो चढ़ाई करने का नहीं है। परन्तु उसी के कथनानुसार यह कपोलकल्पना केवल हास्यजनक है। यह कारण तो कुछ समझ में आता है कि तुर्कों ने ईसाइयों के विरुद्ध जहाद का झंडा उठाया था जिसमें ईरानी लोग शामिल नहीं हुए अथवा उत्तरीय फारस में, जहाँ रूसियों का आधिपत्य है, उन्हें अधिकार-च्युत करने के लिए ही तुर्कों ने यह चालाकी की है। इस सम्बन्ध में एक यह भी समाचार आया है कि जर्मनों ने कुछ ईरानी अफसरों को अपनी ओर मिला लिया है। देखें, ईरानी लोग अब किस पक्ष की ओर लुढ़कते हैं।

* * * *

श्रीमान् वाइसराय ने अपनी कौंसिलवाली वक्तृता में यह भेद खोल दिया कि हिन्दुस्थान से २ लाख सेना युद्धक्षेत्र में लड़ने के लिए भेजी जाचुकी है, परन्तु फिर भी हिन्दुस्थान की सीमा पर की फौज तनिक भी नहीं घटाई गई है! आपने कहा कि सरकार इतने भारत-सन्तानों को साम्राज्य के निमित्त खून बहाने के लिए भेज सकी यह इस बात की सूचना देता है कि उसको भारतवासियों की राजभक्ति में कितना पूर्ण विश्वास है। साथ ही आपने यह भी सम्मति दी कि हिन्दुस्थानी सेना ने जैसी वीरता प्रकट की है उससे अधिक और कोई सेना नहीं प्रकट कर सकती। आशा है कि 'पायोनियर' भविष्य में हिन्दुस्थानी सेना की

निन्दा करते समय वाइसराय की बात को तनिक याद करलेगा।

प्रिय-प्रवास।

श्रीयुत अयोध्यासिंह उपाध्याय जी ने अतुकान्त छन्दों में "प्रिय-प्रवास" नामक महाकाव्य रचकर हिन्दी का बहुत बड़ा उपकार किया है। इसकी कविता बहुत ही हृदय-ग्राहिणी और उच्चकोटि की है। कृष्ण के वृज से मथुरा चले जाने के बाद राधा-वियोग का इसमें वर्णन है। यद्यपि विषय पुराना है और उसपर छोटे बड़े अनेक कवियों ने अपनी प्रतिभा की छटा चमकाई है तोभी उपाध्याय जी की कथा और कविता में नवीनता और सरलता है। ग्रन्थ उत्तम है और हमें आशा है कि हमारे पाठक १॥) में खड्ग-विलास प्रेस, बांकीपुर से इस महाकाव्य की एक प्रति खरीद कर उसका रसास्वादन ज़रूर करेंगे।

सेवा-समिति।

पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि उत्तरीय भारत में अब समाजसेवा के भाव नवीन रूप धारण करने लगे हैं। बम्बई में सोशल-सर्विस-लीग गत चार वर्षों से सेवा के धर्म का अनुसरण कर रही है। उसने वहां पर गश्ती पुस्तकालय मुफ्त में खोल रक्खे हैं जिनसे सहस्रों स्त्री पुरुष मुफ्त में अच्छी २ पुस्तकें देख सकते हैं। पिछली साल २० हज़ार आदमियों ने इन गश्ती पुस्तकालयों से लाभ उठाया। ग़रीब और असमर्थ बालकों और युवकों के लिए उसने रात्रि-पाठशालाएं स्थापित करा दी हैं। ऐसे बहुत से उपयोगी और आवश्यक कामों को हाथ में लेकर बम्बई की लीग समाज-सेवा के द्वारा सामाजिक जीवन के आदर्श को जनता में फैला रही है। परन्तु हमारे प्रान्त में ऐसी संस्था की बड़ी ज़रूरत थी। प्रयाग की दीन-रक्षिणी-समिति ज़रूर अपने स्वयं-सेवकों के द्वारा माघ मेले के अवसर पर यात्रियों की पूरी पूरी सहायता कई साल से करती चली आई है। इस वर्ष भी उसके २५० स्वयंसेवकों ने त्रिवेणी के तट पर यात्रियों की सेवा अप्रतिहत उत्साह और आत्म-त्याग से किया। और बंगाल-बाढ़ और अकाल के समय पर उसने चन्दा जमा किया था, लेकिन इस समिति का कार्य-क्षेत्र एक तो बहुत ही परिमित था दूसरे साल भर में वह एक या दो ही दफ़ा काम किया करती थी। इस माघ मेले में नवयुवकों के प्रशंसनीय सेवा-भाव को देखकर कुछ लोगों ने स्थायी रूप से इस काम को करना निश्चय कर लिया। हमें हर्ष है कि दीन-रक्षिणी-समिति सेवा-समिति के नाम से भविष्य में स्थायी ढंग से काम करेगी। सेवा-समिति का कार्य-क्रम भी अधिक विस्तृत होगा। माघ मेले में यात्रियों की सहायता और दिवाली तथा होली में जुए और अश्लीलता के ख़िलाफ़ आन्दोलन करना, गश्ती पुस्तकालय, स्वास्थ्य के आदर्श का प्रचार और सचित्र व्याख्यान आदि के कामों को समिति करेगी। हम सुनते हैं कि कानपुर में भी इसी तरह के गश्ती पुस्तकालय वग़ैरः शीघ्र खुलने-वाले हैं। यदि कार्यकर्ताओं ने उत्साह और दृढ़ संकल्प से इस सेवा में अपने को अर्पण किया तो उत्तरीय हिन्दुस्थान का शिक्षित समाज अनपढ़ों की सेवा के उत्तरदायित्व को पूरा करने की ओर धीरे धीरे बढ़ने लगेगा।

लार्ड हार्डिङ्ग।

श्रीमान् लार्ड हार्डिङ्ग के साथ इस समय किसे सहानुभूति न होगी। कुछ ही मास हुए उन्हें पत्नी-वियोग का दारुण दुःख सहना पड़ा था और उसके बाद उनपर एक दूसरा वज्राघात हुआ। समरभूमि पर उनके प्रिय पुत्र लेफ्टिनेन्ट हार्डिङ्ग आहत हुए; उनकी बहादुरी

के लिए सम्राट् से एक प्रसिद्ध खिताब मिला, और लोग उनके अच्छे होने के सुसमाचार की आशा कर रहे थे कि खबर आई कि उनकी वीर-गति होगई। जो मुसीबतें लार्ड पर आई हैं, वैसी किसी अन्य वाइसराय को नहीं भोगनी पड़ीं। लेकिन इस दुस्सह दुःख को वीरता से सहते हुए श्रीमान् ने अपने कर्त्तव्यपालन में असीम धीरता दिखलाई है। हम उनके साथ अपनी हार्दिक और विनम्र सहानुभूति प्रकाशित करते हैं।

गांधी का स्वागत।

श्रीमान् गांधी और श्रीमती गांधी का हम भारतवर्ष में हृदय से स्वागत करते हैं। गांधी से पाठक परिचित नहीं हैं। उनकी वीरता और अपूर्व आत्मसंयम तथा स्वदेशप्रेम की कथाओं से देश वर्षों तक गूंज चुका है। उनका विचार है कि वे देश ही में रहकर भारत माता की सेवा में अपने बचे बचाये दिन लगा देंगे। उनके सम्पर्क से, हमें विश्वास है, हमारे बहुतेरे स्वार्थी देशभक्तों में कुछ कुछ सचाई और मान-मर्यादा की महिमा का अंश आजायगा।

कांग्रेस।

मद्रास में जो अधिवेशन गत मास हुआ, एक दृष्टि से उसको पूरी २ सफलता हुई। प्रतिनिधियों की उपस्थिति अच्छी थी। संसार व्यापी युद्ध के सम्बन्ध में कांग्रेस ने भारतीयों की राजभक्ति पर समुचित ज़ोर दिया और उसके रूप और रहस्य की ओर संसार की दृष्टि खींची। लेकिन उसने भीरुता और अकर्मण्यता से काम नहीं लिया। उसने अपने स्वत्वों के निस्तार और सुरक्षा के लिए उचित प्रस्ताव पास किये। तीसरे, मद्रास के गवर्नर ने एक दिन अधिवेशन में पधारकर उसे सुशोभित किया। यह भी एक मार्के की बात इस दफ़ा हुई। लेकिन कई बातों में वह और अधिवेशनों के सामने फीका पड़ता है। प्रतिनिधियों की संख्या तो काफ़ी थी परन्तु अन्य प्रान्तों के प्रतिनिधि बहुत ही थोड़े गये थे। पंजाब से एक भी सज्जन न उपस्थित था। हमारे सूबे से केवल ११! फिर मेल-मिलाप की बातचीत जो साल भर से लोगों को उत्सुक बना रही थी, अन्त में कोरी बात ही बात बनी रही; कोई फल न हुआ। राष्ट्रीय दल के दो अङ्ग अबतक तितर बितर हैं और संगठित कार्य के लक्षण अभीतक नज़र नहीं आते। बाबू भूपेन्द्रनाथ वसु सभापति थे और उनका सम्भाषण अच्छा था।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग, में बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित हुई।

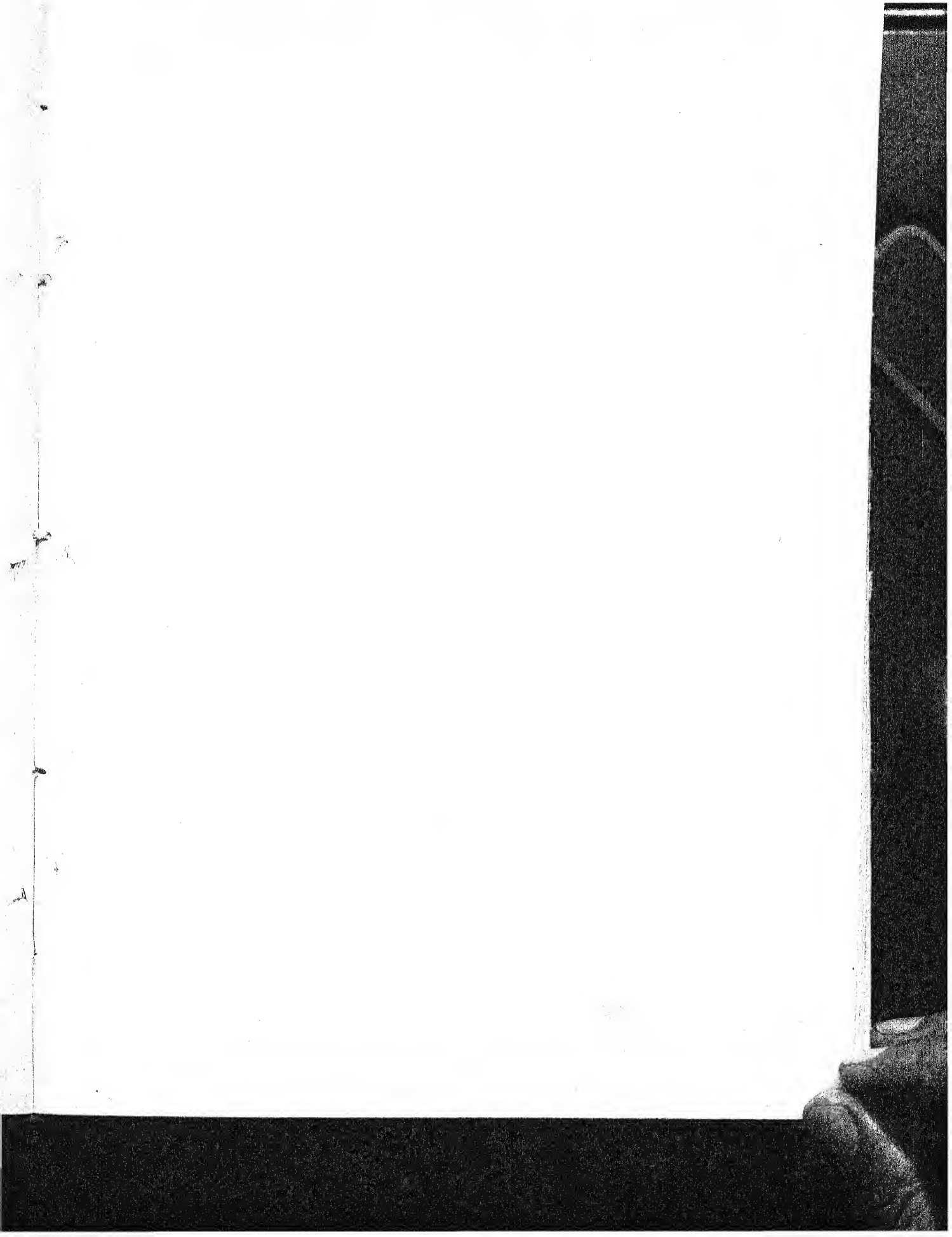

मर्यादा

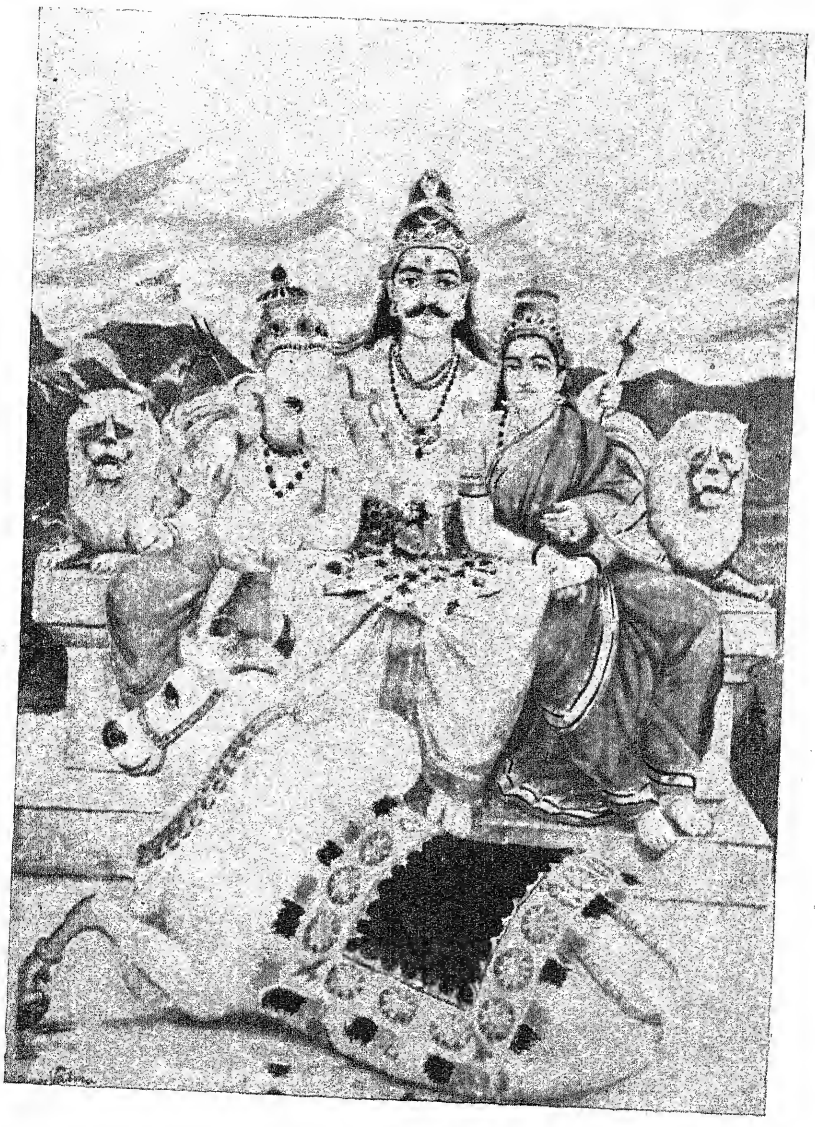

शङ्कर-पार्वती।

वर्म्मन प्रेस, कलकत्ता।

मर्यादा।

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ९] फरवरी सन् १९१५—फाल्गुन [संख्या २

प्राचीन भारत में प्रजातन्त्र।

[लेखक—श्रीयुत राधामोहन गोकुल जी।]

हमारे कानों में पाश्चात्य विद्वानों की यह ध्वनि बहुत दिनों से गूंजती चली आरही है कि भारत अनन्तकाल से यतेच्छाचारियों द्वारा शासित होते रहने के कारण ऐसी योग्यता नहीं रखता कि अपना शासन आप करे या उसे उसके शासन का कुछ भी अंश निश्शंक होकर सौंपा जाय। इस कथन की पुष्टि में लार्ड मार्ले प्रभृति अनेक अधिकारसम्पन्न विद्वानों ने भारत की अप्रजासत्तात्मक (undemocratic) प्रथाओं तथा सामाजिक भेदभावों को उद्धृत किया है, जैसे भिन्न जातियों और धर्मों का अस्तित्व।

यद्यपि यह कहना कि सृष्टि के आरम्भ काल से ही कोई देश एकमुखी यथेच्छाचारी-शासन-प्रणाली (Absolute Monarchy) के आधीन चला आता है सृष्टि के इतिहास, मानवी प्रकृति और विकाश के सिद्धान्तों की अवज्ञा करना है तथापि हमारे प्रतिद्वन्दी कह सकते हैं कि दार्शनिक तर्क और ऐतिहासिक प्रमाण में बड़ा अन्तर होता है। जब तक हमें यह सिद्ध न हो जाय कि भारत में कभी प्रजातन्त्र रहा है, हम केवल दार्शनिक तर्क के आधार पर ही इस बात को निर्विवाद रूप से मानने को तैयार नहीं हैं कि भारत में कभी प्रजातन्त्र शासन था।

सुतराम् हम उचित समझते हैं कि कुछ ऐसे प्रमाण दिये जायँ जिनसे हमारे प्रतिपक्षियों को निश्चय हो जाय कि भारत की प्राचीन शासनप्रणाली के सम्बन्ध में उनके विचार भ्रमात्मक हैं। इसी अभिप्राय से हम भारत के इतिहास को पाँच भागों में विभक्त करते हैं:-

(१) वैदिक काल; (२) उपनिषद् काल; (३) स्मृति काल; (४) पौराणिक काल; और (५) पूर्व मुहम्मदी काल। इस विभाग में आर्यावर्त

के समुन्नत काल से लेकर उसके पतन पर्यन्त का सारा समय आजाता है।

(१) वैदिक काल।

हमें ऋक् वेद मं० ३ सू० ३८ का छठा मंत्र बतलाता है कि—

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ॥

अर्थात् शासकसमुदाय और साधारण प्रजा के लोग मिलकर अपने कल्याण के लिए तीन सभाएं बनावें*। कह सकते हैं कि हमने यहां 'राजाना' का अर्थ शासक समुदाय कैसे किया। इसके लिए इतना ही कहना बस होगा कि वैदिक काल में राजा सभापति (President) को कहते थे। क्योंकि-

तं सभा च समितिश्च सेना च...।

अथर्व० का० १५-अनु० २ व० ६-मं० २।

ऐसा यहां लिखा है कि उस राजधर्म को (तम्) तीनों सभाएं और उनसे बनी हुई समितियां (कमेटियां)† चलावें और संग्राम आदि सब बातों की व्यवस्था करें।

साथ ही निम्नलिखित वाक्य भी आता है-

सभ्यः सभां मे पाहि मे च सभ्याः सभापदः।

अथर्व का० १९ अनु० ७। व० ५५। मं० ६।

सभासद लोग सभा की व्यवस्था और पालन करें। यहां सभा शब्द में सभापति और राजा भी शामिल है। यदि एकमुखी यथेच्छाचारी शासन होता तो राजा को ही यह बात कही जाती कि "तू प्रजा और देश का और सब सभाओं का एक मात्र स्वामी बनकर इन्हें चला" पर ऐसा न कहने का प्रत्यक्ष अभिप्राय यही है कि उस समय एक व्यक्ति को अनियंत्रितशासन का अधिकार नहीं दिया जाता था। राजा (सभापति) और उसकी अधीनस्थ सभा इन्हीं दोनों से प्रधान शासनाधिकारसम्पन्न समुदाय संगठित होता था। इसके उपरान्त हम देखते हैं तो वेदों में ऐसे अनेक मन्त्र मिलते हैं जिनसे राजा के अर्थात् सभापति के गुणों का पता चलता है। उनमें यह भी लिखा है कि प्रजा उन्हीं गुणों से सम्पन्न व्यक्ति को अपना राजा चुने। इतना ही नहीं प्रजा को उस राजा को नाना प्रकार के दंड देने का भी अधिकार दिया गया था जो चुने जाने पर प्रजा की इच्छा के प्रतिकूल आचरण करे, पर हम कई कारणों से उन मंत्रों को यहां पर उद्धृत करना नहीं चाहते।*

(२) उपनिषद् काल।

इस काल का सुप्रसिद्ध ब्राह्मण ग्रन्थ शतपथ है। उसमें लिखा है कि:—

राष्ट्रमेव विश्याहन्ति तस्माद्राष्ट्राविशं घातुकः। विशमेव राष्ट्रायाधां करोति तस्माद्राष्ट्री विशभक्ति न पुष्टं पशुं मन्यत इति॥ शत० का० १३। प्र० २। ब्रा० ३। कं० ७। ८

जो सभापतिसहित राज्यसभा स्वतंत्र होगी तो वह प्रजा को चाट जायगी। अतः किसी एक को स्वाधीन न करना चाहिये अर्थात् प्रजा न केवल राजा ही को बल्कि राजसभा

---

* शायद ये विभाग आधुनिक व्यवस्थापक (Legislative), शासक (Judicial) और कार्यकारिणी (Executive) समितियों से हों। सुपार्श्व।

† ये आजकल की कामन्स और लार्ड सभाओं की कमेटियों से मिलती जुलती हैं जिनका काम बिलों को सूक्ष्म रीति से निरीक्षण करना है। सुपार्श्व।

* यह शायद आधुनिक Impeachment प्रथा सी थी जिसमें U. S. A. (संयुक्तराज्यों) में कामन्स सभा तो Impeach करती है और सिनेट न्याय। फ्रेंच शासनप्रणाली में भी यही कानून देखा जाता है। (सुपार्श्व)।

को भी सदा अपने दबाव में रक्खे* तभी उसका कल्याण हो सकता है।

(३) स्मृति काल ।

हमने उपर्युक्त दोनों कालों का अधिक विस्तार इसलिए नहीं किया कि स्मृतियों का तीसरा काल वैदिक काल के ज़रा भी विपरीत नहीं है। स्वयं मनु ने कहा है कि हम जो कुछ कहते हैं वह वेदानुकूल है पर यदि कोई बात वेदविरुद्ध हो तो वह प्रमाण नहीं। अतः जो कुछ हम मनु द्वारा सिद्ध करेंगे, उससे उपर्युक्त दोनों कालों का भी समर्थन होगा।

मनु भगवान् अध्याय ७ में १७ से ३१वें श्लोक पर्यन्त कहते हैं:—

स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासितग्यसः।
प्रतुराणामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः।

अर्थात् दण्ड ही राजा, दण्ड ही पुरुष, दण्ड ही नेता है। दण्ड ही चारो वर्ण, आश्रमों और धर्मों का प्रतिभू है। अर्थात् राजा (सभापति) और समस्त अधिकारी, सदस्य और समुदायों और सम्प्रदायों के नेता, सब ही दण्ड के आधीन हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि दण्ड क्या वस्तु है। इसके सम्बन्ध में मनु जी फिर कहते हैं:—

समीक्ष्य सधृतः स (दण्ड) धृतः सम्यक् सर्वारक्षयति प्रजाः। असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः॥

यदि वह दण्ड समझ बूझकर धर्मानुकूल धारण किया जाय तो वह प्रजा के सुख का कारण होता है और यदि वह बिना विचारे व्यवहृत किया जाय तो सब ओर से राजा (सभापति व सभा) को ही विनाश कर देता है।

अस्वर्थि सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम्।
ब्रह्मतेजो मयं दण्डमसृजत् पूर्वमीश्वरः॥

अर्थात् इस सभापति के लिए ही सर्व भूतों के रक्षक, धर्मात्मज और ब्रह्मतेजोमय दण्ड को परमात्मा ने पहिले ही बनाया, जिससे मनुष्य इसके अनुसार चलें।

यह दंड वही शासनपद्धति या नियमसंग्रह है जिसके अनुसार राजा प्रजा, छोटे बड़े सब को चलना पड़ता है। जो नहीं चलता वही उस दंड से ताड़ित होता है। प्रजा में से जो कोई इस दंड की अवज्ञा करता है वह इसीके द्वारा राजा के हाथों से मारा जाता है। यदि राजा या उसका परिकर (सभा) इस दंड की अवहेलना करे तो वह दंडानुयायिनी प्रजा के हाथों मारा जाता है।

इसीका मनु ने कथन किया है।

इस दंड के प्रणेता एक नहीं, दो नहीं, बल्कि अनेक विद्वान् हुआ करते थे जो सब जातियों, धर्मों और सम्प्रदायों के प्रतिनिधि होते थे। इनके विषय में जनता का पूर्ण विश्वास होता था कि वे धर्मविरुद्ध स्वार्थ से प्रचलित होकर कोई अन्याय कार्य्य न करेंगे (यद्यपि उस समय आजकल का सा चुनाव (Election) नहीं होता था। इसी कारण से दंड का नाम ईश्वरदंड पड़ा क्योंकि आजकल भी कहा जाता है कि यह समस्त संसार ही विराट्रूप परमात्मा है (Vox Populi Vox deior या ज़बान ख़ल्क नक्कारे ख़ुदा); इसी के वचन ईश्वर के वचन हैं।

इस समय भारत में मनु से लेकर वशिष्ठ पर्यन्त जितनी स्मृतियां हैं सब यद्यपि एक नाम से मेकाले के कोड (Code) की भांति प्रसिद्ध हैं तो भी इनमें से किसी का कर्ता एक न था। जो नियम प्रजा ने अपनी ओर से बनाये वे ही किसी साहित्य विद्वान् द्वारा उत्तम शब्दों में सम्बद्ध होकर राजदंड बन गये।

---

* इस वाक्य से साफ झलकता है कि उन दिनों भी Public opinion को कितना महत्व दिया जाता था। यद्यपि आधुनिक प्रतिनिधिनिर्वाचन विधि उस समय नहीं थी तथापि वह भाव (spirit) पूर्ण रूप से विद्यमान था।

इन २० स्मृतियों से, मनु से लेकर बहुत पीछे तक के शासन का पता हमें लग सकता है। दंड अर्थात् कानून के बनाने में किसी स्वार्थी का हाथ नहीं होता था। वे त्यागी मुनि, ऋषि जिन्हें प्रजा 'आप्त' नाम से सम्बोधन करती थी इसके निर्माता होते थे। इन विद्वानों में भी किसी एक जाति या धर्म के लोग न रहते थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारो जातियों को आवश्यकतानुसार उस मंडली में स्थान दिया जाता था। सभी ऋषि श्रेणी में थे। इनमें से कोई भी यह विचार नहीं करता था कि वह तो अमुक वर्ण है और मैं अमुक वर्ण हूं। सभी अपने को मनुष्य समझते थे और मनुष्यमात्र के हित की चिन्तना किया करते थे।

इसीलिए कभी २ तीन विद्वानों की ही समिति न्यायधारा (दंड) निर्माण करती थी और कभी एक ही विद्वान् यह सम्पादन करता था; लेकिन इन तीनों या एक में राजवर्ग का कोई नहीं होता था।* ये त्यागी समस्त देश के विश्वास-पात्र होते थे। राजवर्ग के अन्यायी हो जाने से उसमें से किसी दुष्ट को दंड देने का अधिकार प्रजा को प्राप्त था। देखिये—

अरक्षितारं हन्तारं विनयेतारं अनायकम्।
ये वैः राजकुलं हन्युः प्रजः सन्नयनिर्घृणम्।

हम इस प्रकार के उत्कृष्ट दंडविधान के समर्थन में अनेक उदाहरण देकर लेख को बढ़ाना नहीं चाहते। कथन इतना ही है कि स्मृति काल तक भी हमें भारत में सिवा प्रजातन्त्र प्रणाली के कहीं स्वेच्छाचारियों का शासन नहीं मिलता।

(४) पौराणिक काल।

इस समय के प्रधान ग्रन्थों में महाभारत ही एक ग्रन्थ है जिसका प्रमाण देने से मानों समस्त पुराणों का प्रमाण दिया जाचुका। सुतरां हम महाभारत से दिखलाते हैं कि भारत का शासन कैसा था :—

वदवामि तु यथामात्यान् यादवांश्च करिष्यति।
चतुरो ब्राह्मणान् वैद्यान् प्रगल्भान् ख्यातकान् शुचीन्॥
क्षत्रियाश्च तत्र चाष्टौ बलिनः शस्त्रपाणयः।
वैश्यान् विंशेन सम्पन्नान् एकविंशति संख्यया॥
त्रींश्च शूद्रान् विनीतांश्च शुचीन् कर्मणिपूर्वके।
अष्टाभिश्च गुणैर्युक्तं सूतं पौराणिकं तथा।
पञ्चाशद्वर्षवयसं प्रगल्भमनसूयकम्॥
श्रुतिस्मृतिसमायुक्तं विनीतं समदर्शिनम्।
कार्या विवदमानानां शक्तमर्थेष्वलोलुपम्॥
वर्जितश्चैव व्यसनैः सुधीरैः सप्तभिर्भृशम्।
अष्टानां मन्त्रिणां मध्ये मन्त्रं राजोपधारयेत्॥
ततः संप्रेषयेद्राष्ट्रे राष्ट्रीयाय च दर्शयेत्।
अनेन व्यवहारेण द्रष्टव्यास्ते प्रजाः सदा॥

(म० भा० शान्तिपर्व)

दंड (अर्थात् Code of Law) निर्माण करनेवाली सभा में चार वेदज्ञ (ईश्वर से भय करने वाले विद्वान्) ब्राह्मण, आठ राजपुत्र, इक्कीस वैश्य और तीन शूद्र होते थे। इन सदस्यों की अवस्था पचास वर्ष से कम न होती थी। इस मंत्रिमंडल के सिवा एक अन्तर समिति (Sub-Committee) बनाई जाती थी जिसमें इनमें से आठ व्यक्ति योग* दान करते और राजा सभापति होता था। इस समिति और अन्तरङ्गसमिति

* यह आधुनिक Separation of powers से मिलता है। यहां पर कार्यकारिणी और व्यवस्थापक का पृथक्करण इंगित होता है। जो भाव यूरोपवालों को १८वीं शताब्दी में Montesquieu (मौंटेस्कू) से प्राप्त हुआ वही भाव हमारे शास्त्रों में कितने समय पहिले दर्शाया गया था, इसकी किसी को खबर तक नहीं है पर फिर भी आज भारतवासी उसीके लिए रो रहे हैं। (सुपार्श्व)।

* यह प्रथा वर्तमान जर्मनी की प्रथा से बहुत कुछ मिलती जुलती है। (सुपार्श्व)।

में निश्चित प्रत्येक विचार की घोषणा प्रजा को कर दी जाती थी। इस दशा में यह कहना कि भारत के प्राचीन शासन में राजा को सब कुछ मनमानी करने का अधिकार था असत्य के सिवा और क्या कहा जा सकता है।

शूद्रों के प्रायः मूर्ख होने से उनमें से केवल ३ ही सदस्य निर्वाचित होते थे। यह केवल अपने स्वार्थों की रक्षा करते थे। ब्राह्मण लोगों का ऐहिक स्वार्थ अति अल्प था इसलिए केवल चार ही चुने जाते थे; सो भी अन्यों के हित के लिए। क्षत्रियों में से कुछ अधिक होते थे। इनमें से ८ व्यक्ति लिये जाते थे। वैश्यों के हाथ में व्यवसाय और देश का धन था; इसलिए उनके २१ व्यक्ति लिये जाते थे। इससे प्रकट है कि औसत से प्रतिनिधि निर्वाचन (Proportional representation) का भाव उस समय भी खूब प्रबल था। कौशल, वाणिज्य या व्यवसाय की रक्षा करना आज की भांति अन्य कामों से अधिक आवश्यक समझा जाता था। राजकोषमें इन्हीं के जेब से अधिक धन जाता था। इसलिए इनके सदस्यों की संख्या सब से अधिक होती थी। इससे कोष का अपव्यय नहीं होता था। उस समय ऐसा न था कि सरकार की ओर से nominated (निर्दिष्ट) सदस्यों की संख्या प्रजा द्वारा चुने हुए सदस्यों की संख्या से अधिक हो जाय।

वैदिक काल से महाभारतकाल पर्यन्त समस्त देश का शासन तीन भागों में विभक्त रहा :—

(१) राजार्घ परिषद् (Political Department)

(२) धर्मार्घ परिषद् (Religious Department)

(३) विद्यार्घपरिषद् (Educational Department)

फिर इनमें से प्रत्येक के उपविभाग भी थे; उपविभागों के भी खंड थे।

(५) पूर्व मुहम्मदी काल।

इस समय आर्यावर्त के साम्राज्य का पतन हो चुका था। प्रान्त प्रान्तों में अलग २ राजा बन बैठे थे। इन्हीं राजाओं से भारत में यथेच्छाचार का संचार आरम्भ हुआ। तो भी इनमें से प्रजातन्त्र की वासना गई नहीं थी। आज अनुमान ३५० वर्ष ही हुए होंगे जब बीकानेर का राज्य स्थापित हुआ था। इस राज्य के संस्थापक थली के गोदारे जाट थे। इन जाटों में और पश्चिम के भाटियों में लगातार झगड़ा रहा करता था, जिसके कारण उन्हें एक स्थायी राजा चुनने की आवश्यकता हुई। इन्होंने जोधपुरनिवासी बीका जी को भी अपनी सहायता के लिए बुलाया था। इनके व्यवहार और वीरता से प्रसन्न होकर जाटों ने इनको अपना स्थायी सभापति बनाना चाहा। जब बीका जी ने सभापति होना स्वीकार कर लिया, तब सार्वजनिक सभा बैठी। इस सभा ने बीका जी को अनेक प्रतिबन्धों (शर्तों) से अपना सभापति चुना, जिनमें से मुख्य मुख्य नीचे दिये जाते हैं।

१—राजा को अधिकार न होगा कि वह किसी व्यक्ति को चाहे वह उसका वंशधर ही क्यों न हो, अपनी इच्छा से अपना उत्तराधिकारी चुने।

२—राजा को प्रत्येक घर से १) वार्षिक से अधिक कर लेने का अधिकार न होगा। यह कर धुआँ कहलावेगा और जितने अलग चूल्हे होंगे, उतने घर समझे जायँगे।

३—राजा की मृत्यु पर जाटों द्वारा जो योग्य समझा जायगा उसीको राजा बनाया जायगा।

४—राजा के अन्यायाचरण करने पर जाटों को अधिकार होगा कि वे अपराधी राजा को पदच्युत करके दूसरा राजा चुनें।

५—इसी प्रकार की और भी अनेक शर्तें हुईं। हमें यहां पर इतना ही कहना है कि बीकानेर के कुपढ़ जाटों तक की नसों में प्रजातन्त्र का रक्त सञ्चारित हो रहा था।

आज तक उपर्युक्त शर्तों में से दो-चुआं और तिलक-वर्तमान हैं। पर अब ये शर्त न रहकर रीति होगई हैं।

बच्चे यथेच्छाचार का आगमन मुसलमानों के साथ हुआ और दिनों दिन जड़ पकड़ता गया, जिसका विषमय फल आजतक देखने में आता है।

पर फिर भी धन्य है परमात्मा को कि अंगरेज़ों के आगमन से हमें सच्चा प्रजातंत्र नहीं मिला तो न सही पर नियन्त्रित (Limited) राज्य तो प्राप्त हुआ ही है। कौन कह सकता है कि वह दिन न आवेगा जब हम लोग वास्तविक सुव्यवस्थित शासन का उपभोग करेंगे क्योंकि इसी में शासक और शासित दोनों का यथार्थ कल्याण है।

युक्तप्रदेश में प्रारम्भिक शिक्षा।

[लेखक—श्रीयुत बालमुकुन्द बाजपेयी।]

सन् १९१३ में संयुक्तप्रदेश की सरकार ने प्रारम्भिक शिक्षा पर विचार करने के लिए सरकारी और गैर सरकारी १२ सज्जनों की, जस्टिस पिगट की अध्यक्षता में एक समिति बनाई जिसने छोटे लाट के ग्रीष्मावास नैनीताल शैल पर जून में विचार किया और दो ही मास पीछे अपना निर्णय सरकार के पास भेज दिया। यथासमय यह विवरण प्रकाशित हुआ और हिन्दी पत्रों ने इस विवरण के हिन्दी-उर्दू-विवाद सम्बन्धीय अंशों और मीमांसा के विषय में जो कुछ आलोचना की थी, वह पत्रों के पाठकों को स्मरण होगी।

पिगट कमेटी के विवरण तथा और एक आध कमेटियों की "सिफारिशों" पर विचार कर युक्तप्रदेश के छोटे लाट ने गत २९ अगस्त के सरकारी गज़ट में प्रारम्भिक शिक्षाविषयक अपना निर्णय प्रकाशित किया है। यह निर्णय बड़े ही महत्व का है और यदि हमारे नेता इसका भाषानुवाद, केवल हिन्दी या उर्दू जाननेवाले हिन्दुओं के उपकारार्थ बटवा दें तो बहुत लाभ हो सकता है।

ब्रिटिश सरकार इन दिनों प्रबल शत्रु से युद्ध में व्यस्त है। राजभक्त भारतवासी आज सम्पूर्ण अभाव अभियोगों को भूल कर तन, मन, धन से साम्राज्य की रक्षा करने के लिए व्यग्र हो रहे हैं। लार्ड कर्जन से प्रारम्भ कर कनाडावासी पर्यन्त हमारी राजभक्ति के गीत गा रहे हैं। ऐसे अवसर पर विरोध का स्वर यथासाध्य न उठाना ही अच्छा है। परन्तु बात साधारण नहीं है। मौनावलम्बन कदापि उचित नहीं प्रतीत होता। हिन्दू भाइयो, हाथ पैर छोड़कर राजभक्ति के प्रवाह में बहने से किनारे लगना कठिन हो जायगा। कहां भँवर पड़ रहा है और कहां नांद पड़ रही है, इसका ध्यान रखना आवश्यक है। घड़ियाल और मगर राजभक्तिरूपी पवित्र सरिता में बहनेवालों पर भी चोट करने को तत्पर बैठे रहते हैं इसमें आश्चर्य ही क्या है। हाथ पैर छोड़कर बहनेवाले को शव समझकर काग आदि मांस नोच २ खायँ और तृप्त हों यही प्रकृति का नियम है।

यथासाध्य इस आपत्तिकाल में सरकार की सहायता करना हमारा परम धर्म है। ब्रिटिश सरकार ने दक्षिणी एफ्रिका और कनाडा में हमारी जैसी कुछ सहायता की थी, उसे भुला कर इस कुअवसर पर सम्पूर्ण रीत्या साम्राज्य की सेवा करना ही हमारा कर्तव्य है परन्तु अपने को बिलकुल भुला देने से भी काम न चलेगा। अस्तु।

युक्तप्रदेश के विद्वान् शासक ने प्रारम्भिक शिक्षा विषयक अपना निर्णय नौ भागों में विभक्त किया है:—

(१) प्रारम्भिक पाठशालाओं का सङ्गठन तथा स्थापन।

(२) प्रारम्भिक शिक्षकों का वेतन और विधान।

(३) प्रारम्भिक शालाओंका पाठ्यक्रम।

(४) विशेष जातियों या वर्गों की शिक्षा।

(५) पाठशाला-भवन तथा स्वास्थ्यविधान।

(६) सहायताप्राप्त तथा स्वतंत्र पठशालाएं।

(७) प्रारम्भिक बालिका-पाठशालाएं।

(८) निरीक्षण और नियंत्रण।

(९) आर्थिक तथा सर्वव्यापी।

इन नौ में तीसरे और चौथे मन्तव्य पर इस लेख में विचार करना है।

तीसरे मन्तव्य में पाठ्यक्रम का विचार किया गया है। प्रारम्भिक शिक्षा ही क्यों, शिक्षा मात्र का यही प्रधान अङ्ग है। क्या पढ़ाना, किस भाषा द्वारा पढ़ाना यही सर्वप्रथम विचारणीय है। यह मन्तव्य तीन भागों में विभक्त कर, विचार किया गया है। उपभाग ये हैं:—

(क) शिक्षणीय विषय और प्रणाली।

(ख) पाठ्यपुस्तकों की भाषा और लिपि।

(ग) नैतिक और धार्मिक उपदेश।

हम इस समय केवल उपभाग (ख) पर ही विचार करेंगे।

ईश्वर की कृपा से हमारे विपक्षियों ने अभी तक लिपि के सम्बन्धमें कोई आपत्ति नहीं उपस्थित की है। भाषा का ही झगड़ा चल रहा है और यह क्रमशः उग्र रूप धारण करता जा रहा है और जब तक सरकार पक्षविशेष के अनुचित हठ को प्रश्रय देती रहेगी तब तक यह विवाद निपटनेवाला नहीं है। झगड़ा मिटे कैसे, हिन्दू हिन्दी भाषा पढ़ने के लिए अपने लड़के प्रारम्भिक पाठशालाओं में भेजते हैं, वहां ईश्वर के बदले उन्हें खुदा पढ़ाया जाता है। यदि हिन्दू इसपर आपत्ति करते हैं तो किसी प्रकार से भी वे दोषी नहीं ठहराये जा सकते। परन्तु आर्य बालकों को "खुदा" पढ़ाने के लिए आकाश पाताल एक करना दुराग्रह नहीं तो क्या है? "इंडियन प्रेस रीडर" "पहली किताब" "पहला हिस्सा" मेरा एक पुत्र इन दिनों पढ़ता है और इसके छठे पन्ने में पांचवें पाठ "मेंह" के अन्त में लिखा हुआ है "मेंह हमारे लिए खुदा बरसाता है"। क्या एक भी हिन्दू ऐसा मिलेगा जो यह स्वीकार करने को तैयार हो कि, मेरी भाषा यही है? परन्तु युक्तप्रदेश के प्रधान शासक के विचार से शिक्षित हिन्दुओं की यही भाषा है और इसी भाषा की शिक्षा हिन्दू बालकों को दी जानी आवश्यक है। जिन युक्तियों के बल पर सर जेम्स मेस्टन महोदय सरीखे विचक्षण शासक इस भाषा की शिक्षा हिन्दू बालकों के लिए आवश्यक समझते हैं उनपर विचार करना नितान्त प्रयोजनीय है।

पिगट कमेटी में भी इस विषय पर बहुत खंडन मंडन हुआ था और अन्त में बहुमत से निर्णय हुआ कि:—

(क) "तीसरी और चौथी कक्षाओं की नागरी और फारसी लिपि की रीडरों में एक ही विषय और भाषा का प्रयोग होना उचित है परन्तु"

(ख) "आवश्यक स्थानों पर उसी भाव को व्यक्त करने के लिए भिन्न २ शब्दों का प्रयोग

किया जाय। नागरी रीडरों में हिन्दी शब्दों का पर्यायवाची उर्दू शब्द कोष्ठक में लिखा रहा करे और उर्दू रीडरों में इसी भांति नागरी शब्द कोष्ठक में रहा करें।"

(ग) "तीसरी और चौथी कक्षाओं की रीडरों में ६ गद्य पाठ के परिच्छेद हिन्दी और उर्दू भाषाओं के रहा करें, फारसी लिपि में छपी हुई रीडरों में अधिकतर उर्दू के पाठ और नागरी लिपि की रीडरों में अधिकतर हिन्दी के रहें"।

परन्तु सर जेम्स मेस्टन को यह निर्णय स्वीकार नहीं है। आपके मत से "प्रथम और द्वितीय कक्षाओं के लिए आजकल जिस प्रकार की रीडरें प्रचलित हैं वैसी ही प्रचलित रहनी चाहियें और इनसे ऊपर की कक्षाओं के लिए भी सामान्य भाषा की एक वरिष्ठ (Senior) रीडर की आवश्यकता है" परन्तु उर्दू और हिन्दी की विशेष योग्यता के लिए आपने चौथी कक्षा में परिशिष्ट स्वरूप एक शुद्ध हिन्दी या उर्दू रीडर के (Supplementary readers) पढ़ाये जाने की आवश्यकता भी स्वीकार की है। सर जेम्स मेस्टन की सम्मति में "जब कोई वर्ग वरिष्ठ (Senior) रीडर समाप्त कर ले तब उस वर्ग के विद्यार्थियों को तुरन्त दो में से एक परिशिष्ट पुस्तक का (Supplementary reader) पढ़ाना प्रारम्भ कर देना चाहिये और साधारणतः चौथी कक्षा के अन्तिम छ मास इस कार्य में लगाना सम्भवपर होगा।"

पिगट समिति का निर्णय लाट साहब को क्यों नहीं भाया यह बताना ज़रा टेढ़ी खीर है। हमने बारम्बार सरकारी मन्तव्य को ध्यानपूर्वक पढ़ा परन्तु एक वाक्य भी हमें ऐसा न मिला जिससे समिति का निश्चय अस्वीकृत किये जाने के कारणों का स्पष्टीकरण होता हो। अवश्य ही "उल्लिखित पाठ्यक्रम से सामान्य तथा सरल भाषा द्वारा प्रारम्भिक शिक्षा दी जाने के सिद्धान्त का पालन हो सकेगा" तथा "विरुद्धमतों का समाधान करने के प्रयास के कारण आपोषण (Compromise) ने जो स्वरूप धारण किया है वह व्यवहार में बहुत ही असुविधाजनक होगा" आदि अपने पक्ष का समर्थन और पिगट कमेटी के निर्णय का खंडन करनेवाले वाक्यों का अभाव नहीं है परन्तु इनसे पूर्ण प्रयोजन नहीं सिद्ध होता। पाठको, यदि आपको इतने से सन्तोष नहीं है तो धैर्य धरिये। राजकाजों के कारणों का पता सहज में नहीं लग जाया करता। यहां दाल न गलती देख अब हम उपर्युक्त प्रथम वाक्य में उल्लिखित "सामान्य तथा सरल भाषा द्वारा प्रारम्भिक शिक्षा दी जाने के सिद्धान्त" की परीक्षा करते हैं और मुख्य प्रयोजन भी हमारा यही है।

इस सिद्धान्त पर विचार करने के लिए सरकारी मन्तव्य में भाषा के प्रश्न का जो संक्षिप्त इतिहास दिया गया है उसका कुछ अंश हम पाठकों की सेवा में उपस्थित करना उचित समझते हैं :—

"भारतीय सरकार को लिखे गये युक्तप्रदेश सरकार के १३वीं जन १८७६ के एक पत्र में इस सिद्धान्त का और संकेत किया गया था कि "इस प्रान्त के शिक्षित वर्ग की भाषा एक ही है; चाहे वह नागरी लिपि में लिखी जाय चाहे फारसी लिपि में।"

"उत्तम प्रारम्भिक पाठ्य पुस्तक वही है जो बिना तोड़े मरोड़े लिपियों में लिखी जा सके।"

सर जेम्स मेस्टन यह भी स्वीकार करते हैं कि इस पत्र में कथित सिद्धान्तानुसार कार्य नहीं किया गया तथा "१८०३ में इस प्रश्न की पुनरालोचना हुई और १६ मई १८०३ के एक महत्वपूर्ण पत्र में तत्कालीन छोटे लाट ने स्थिर किया कि प्रारम्भिक पाठशालाओं की उर्दू और हिन्दी रीडरें नित्य बोलचाल की भाषा में

लिखी जाया करें न कि साहित्यिक भाषाओं में।" इन अवतरणों से स्पष्ट है कि १८७६ में तत्कालीन पश्चिमोत्तर प्रदेश के छोटे लाट ने निश्चित किया कि पश्चिमोत्तर प्रदेश के शिक्षित अधिवासियों की भाषा, चाहे नागरी लिपि में लिखी जाय चाहे फारसी में एक ही है और उसी नित्य व्यवहृत भाषा में ही प्रारम्भिक पाठ्य पुस्तकों का लिखा जाना उचित है परन्तु १९०३ तक यह निश्चय कार्य में परिणत नहीं हुआ। परवर्ती ईसवी संवत् से इस सिद्धान्त का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। सिद्धान्त स्थिर हो जाने पर भी २७ वर्ष तक बिना उसका प्रयोग किये ही कार्य सानन्द चलता रहा परन्तु १९०३ में अधिकारियों ने करवट बदली और प्रारम्भिक पाठ्य पुस्तकें संयुक्तप्रदेश के "शिक्षित वर्ग की नित्य बोल चाल की और सरल भाषा में" लिखी जाने लगीं। १९०३ से तीन वर्ष पूर्व घोर आन्दोलन के पश्चात् अदालतों में नागरी लिपि का प्रवेशाधिकार स्वीकार कर सर (अब लार्ड) मैकडानेल्ड ने जो पुण्य या पाप किया था सम्भवतः उसीका प्रायश्चित्त करने के लिए यह उपाय रचा गया। अस्तु।

देखना यह है कि यह सिद्धान्त कहां तक युक्तिसंगत है। पहले यह जान लेना आवश्यक है कि यह सरल और सामान्य भाषा जिसे अधिकारीवर्ग संयुक्तप्रदेश के शिक्षित हिन्दू मुसलमानों की नित्य बोल चाल की भाषा समझता है, कौन सी है। प्रारम्भिक पाठ्य पुस्तकों के देखने से जान पड़ता है कि उर्दू को ही अधिकारियों ने ऐसी भाषा स्वीकार किया है। "सरस्वती" में प्रकाशित पं० कामताप्रसाद गुरु के लेखों से भी हिन्दी रसिकों को सरकारी "सरल और नित्य बोल चाल की भाषा" का अच्छा परिचय हो चुका है। हमारे शासक जिस भाषा को सरल, सामान्य तथा नित्य बोल-चाल की भाषा बतलाते हैं, क्या वास्तव में उसमें ये गुण हैं?

यहां पर यह बता देना भी आवश्यक है कि भाषा की दृष्टि से उर्दू और हिन्दी के सम्बन्ध में सरकारी मत क्या है सन् १८७६ के जिस पत्र की सर जेम्स मेस्टन ने दुहाई दी है उसी में लिखा है "सुशिक्षितों की नित्य बोल चाल की भाषा एक होने पर भी उभय समाजों की (हिन्दू मुसलमानों की) साहित्यिक भाषाएं सर्वथा भिन्न २ हैं।" "इनमें केवल अक्षरों का ही भेद नहीं है, शब्दावली भी सर्वथा भिन्न है.....नित्य के सांसारिक उपयोगी विषयों की शिक्षा देने के लिए तो यही (नित्यबोल चाल की) भाषा उपयुक्त है..... माध्यमिक शिक्षा की अवस्था अवश्य भिन्न है क्योंकि तब भाषा, भाषा और साहित्य के महत्व की दृष्टि से पढ़ी जाने लगती है।"

सन् १९०८ में प्रादेशिक सरकार ने टेक्स्ट-बुक कमेटी (पाठ्य पुस्तक समिति) के निम्न-लिखित दो मन्तव्य स्वीकार किये, उन्हें भी हम यहां पर उद्धृत करना आवश्यक समझते हैं:—

(क) इस समिति के मत से निम्न प्रारम्भिक पुस्तकें तो उर्दू और हिन्दी उभय भाषाभाषी विद्यार्थियों के लिए उपयुक्त हैं परन्तु उच्च प्रारम्भिक रीडरों की भाषा विद्यार्थियों को साहित्यिक शिक्षा प्राप्त करने के योग्य बनाने में असमर्थ है।

(ख) इस समिति की सम्मति में उच्च प्रारम्भिक रीडरों द्वारा विद्यार्थियों को उच्चतर साहित्यिक भाषा की शिक्षा दी जानी चाहिये और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उच्च-प्रारम्भिक (upper primary) काल में हिन्दी और उर्दू रीडरों की भाषाओं में पार्थक्य होना अनिवार्य है।

उर्दू और हिन्दी भाषाओं का भिन्नता का सिद्धान्त आज सर जेम्स मेस्टन को भी वैसाही मान्य है जैसा सन् १८७६ में तत्कालीन शासक को या १९०८ में प्रान्तीय पाठ्य-पुस्तक-समिति

को था। पिगट कमेटी ने भी बहुमत से इस सिद्धान्त को स्वीकार किया है। इस विषय में सर जेम्स मेस्टन की उक्ति यह है:—

"साहित्यिक शिक्षा में पार्थक्य होना अवश्यम्भावी है यह कौन अस्वीकार करता है....."
"साधारण पाठकों के पढ़ने के योग्य पुस्तकों तथा क्षणस्थायी समाचारपत्र-साहित्य में भी सरल हिन्दुस्थानी को त्याग करने की प्रचंड प्रवृत्ति दृष्टिगत हो रही है तथा महत्वपूर्ण साहित्यिक ग्रन्थों में तो यह प्रवृत्ति उग्रतर रूप से दर्शन देती है।"

प्रवीण पाठकगण इन अवतरणों के लिए क्षमा करें; परन्तु इनसे यह निर्णय हो जाता है कि, विवाद केवल प्रारम्भिक पुस्तकों की ही भाषा के लिए है। साहित्यिक हिन्दी और उर्दू में सर्वथा भिन्नता है, साधारण पुस्तकों तथा क्षणस्थायी समाचार-पत्र-साहित्य तक में भी विभिन्न भाषाओं का प्रयोग करने की ओर अधिकाधिक लोगों का झुकाव है, साहित्यिक महत्व के ग्रन्थों में तो यह पार्थक्य-प्रवृत्ति बड़ाही उग्र रूप धारण करती है; यह सब स्वीकार है परन्तु फिर भी प्रारम्भिक-पाठशालाओं में बलपूर्वक हिन्दी-भाषी बालकों को उर्दू की शिक्षा देनेकी क्या आवश्यकता है यह समझ में नहीं आता। बड़ी माथापच्ची करने पर भी केवल एक पंगु कारण दिखाया जा सका है। अवश्य, शब्दाडम्बर की सहायता से उसी एक बात को कई भिन्न स्वरूप देने की चेष्टा की गई है परन्तु उसमें अधिक सफलता नहीं हुई; यह निस्सङ्कोच कहा जा सकता है। और वह एक मात्र निर्बल कारण यही है कि, संयुक्त प्रदेश के (उभय जातीय) शिक्षित समाज की नित्य बोलचाल की भाषा हिन्दुस्थानी (अर्थात् उर्दू) है जो बहुत सरल है। बस, इसी लिए प्रारम्भिक पाठ्यपुस्तकों की भाषा हिन्दुस्थानी या उर्दू होना उचित है।

क्या वास्तव में नित्य बोलचाल की भाषा शिक्षित हिन्दू और मुसलमानों की एक है? उर्दू से प्रेम रखनेवाले कुछ कायस्थ और थोड़े से कश्मीरी हिन्दू भाइयों की नित्य बोलचाल की भाषा कदाचित् उर्दू हो परन्तु अधिकांश शिक्षित हिन्दुओं की नित्य बोलचाल की भाषा भी मुसलमान भाइयों की नित्य बोलचाल की भाषा से उतनी ही भिन्न है जितनी साहित्यिक हिन्दी से उर्दू। जिन थोड़े से कायस्थ और कश्मीरी हिन्दुओं की बोलचाल की भाषा उर्दू मानी जा सकती है वे भी इतने नहीं बह गये हैं कि भगवान व ईश्वर के स्थान में वे खुदा बोलने लग गये हों और जिस दिन ईश्वर का स्थान खुदा ग्रहण कर लेगा उस दिन हिन्दू समाज में उनका भी मान न रहेगा। नित्य बोलचाल की भाषा से क्या प्रयोजन है? शिक्षित हिन्दू या विशेषतः कुछ कायस्थ और कश्मीरी भाई अपने मुसलमान बन्धुओं से उर्दू भाषा में वार्तालाप करते हैं इससे यह कदापि नहीं सिद्ध होता कि उनकी नित्य बोलचाल की भाषा उर्दू ही है। यदि इसी नीति अथवा तर्क के अनुसार शिक्षित हिन्दुओं की भाषा उर्दू मानी जा सकती है तो शीघ्रही शिक्षित हिन्दू और मुसलमानों की भाषा अंगरेज़ी मानी जा सकेगा और कोई आपत्ति न उठ सकेगी, क्योंकि शिक्षित हिन्दू और मुसलमान सज्जन अपने अंगरेज़ बन्धुओं से या राजकीय कार्यालयों में अंगरेज़ी भाषा में ही अधिकतर वार्तालाप करते हैं। यदि गवर्नमेंट शिक्षित हिन्दू और मुसलमान भाइयों की भाषा अंगरेज़ी मानने का साहस नहीं कर सकती है तो शिक्षित हिन्दुओं की भाषा उर्दू वह किस बल पर मानती है?

यह भी विचारणीय है कि केवल संस्कृतज्ञ हिन्दुओं की गणना शिक्षितों में हो सकती है या नहीं? यदि हो सकती है तो क्या इन संस्कृतज्ञों की नित्य बोलचाल की भाषा भी उर्दू

है ? प्रकृत स्थिति यह है कि बहुतेरे शिक्षित हिन्दू अपने मुसलमान बन्धुओं से तथा कभी २ परस्पर में भी उर्दू में वार्तालाप अवश्य करते हैं परन्तु उर्दू उनकी भाषा कदापि नहीं स्वीकार की जा सकती क्योंकि दिन रात अपने घर में तथा सजातियों, कुटुम्बियों और सम्बन्धियों से वे जिस भाषा में बातचीत करते हैं वह हिन्दी है और यही उनकी नित्य बोलचाल की भाषा है।

इस प्रश्न की मीमांसा करने के लिये एक और भी महत्वपूर्ण प्रश्न से बहुत कुछ सहायता मिलती है और वह यह है कि शिक्षित हिन्दुओं की महिलाओं या कन्याओं की नित्य बोलचाल की कौनसी भाषा है। इसका उत्तर देने के लिए हमें अधिक काग़ज काले करने की आवश्यकता नहीं है। अधिकारियों ने स्वयम् इस प्रश्न का उत्तर हमारे पक्षमें दे रक्खा है अन्यथा बालिकाओं के लिए प्रारम्भिक पाठ्यपुस्तकों के विषय में भी यही विवाद खड़ा हो जाता। अस्तु।

अब वाद के लिए यदि यह काल्पनिक सिद्धान्त स्वीकार भी करलें कि शिक्षित हिन्दुओं की भाषा उर्दू है तो भी यह सिद्ध करना कठिन हो जाता है कि प्रारम्भिक नागरी पाठ्यपुस्तकें उर्दू में या "नित्य बोलचाल की सरल भाषा" में ही लिखी जाया करें। यदि इने गिने शिक्षित हिन्दुओं की भाषा हिन्दुस्थानी या उर्दू है तो आलोच्य मन्तव्य में ही स्वीकार किया गया है कि "विशेषतः पूर्वीय ज़िलों में बहुतेरे मुसलमान भी हिन्दी लिखने पढ़ने के अभ्यासी हैं" ? इन हिन्दी लिखने पढ़ने के अभ्यासी शिक्षित मुसलमानों की भी नित्य बोलचाल की भाषा उसी भांति उर्दू है जिस प्रकार शिक्षित हिन्दुओं की भाषा उर्दू है। इन तर्कों को छोड़कर हमारा पक्ष यह है कि मुट्ठी भर शिक्षितों की (केवल नित्य बोलचाल की, साहित्य की नहीं) भाषा कई गुने अधिक हिन्दी भाषी अशिक्षितों पर क्यों लादी जाय जब यह मान लिया गया है कि शिक्षितों की बोलचाल की भाषा से हिन्दी साहित्य पढ़नेवालों को किसी प्रकार की सहायता नहीं प्राप्त होती। अधिकारियों का कथन है कि यह नित्य बोलचाल की भाषा सरल है और हिन्दीभाषियों की समझ में भली भांति आती है। ऐसी अवस्था में इस भाषा के पढ़ाने से क्या लाभ विचारा गया है यह हमारी कुण्ठित बुद्धि में नहीं आता। प्रारम्भिक शिक्षा का उद्देश्य यदि बालकों को शिक्षितों की नित्य बोलचाल की भाषा की शिक्षा देना ही हो तो हमें कुछ कहना नहीं है। यदि यह लक्ष्य नहीं है तो प्रारम्भिक पाठ्यपुस्तकों के द्वारा हिन्दीभाषी बालकों पर उर्दू लादने के प्रयत्न का अवश्य कोई गूढ़ कारण है।

ऊपर साहित्यिक हिन्दी और उर्दू के सम्बन्ध में सरकारी मत हम पाठकों के समक्ष उद्धृत कर चुके हैं। हिन्दू और मुसलमानों की नित्य बोलचाल की भाषा में भी आकाश पाताल का अन्तर हमने बताया है; इसका प्रमाण भी हम आपकी सेवा में सरकारी वाक्यों में ही उपस्थित करेंगे। यह लीजिये:—

"बोलचाल की भाषा एक है सही परन्तु यह एकता भी सीमाबद्ध है क्योंकि कुछ विषय ऐसे हैं जिनका बारम्बार काम पड़ता है; यथा धर्म, नीति, कहावतें, साहित्यिक उदाहरण इत्यादि और इन विषयों के लिए हिन्दू और मुसलमान भिन्न शब्दों का उपयोग करते हैं"।

इस उद्धृतांश से यह स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षित हिन्दू और मुसलमानों की नित्य बोलचाल की भाषा में भी भेद है, यह अधिकारियों से छिपा नहीं है। परन्तु अब भी यदि यह हठ किया जाय कि शिक्षितों की भाषा में भेद नहीं है तो भी "नित्य बोलचाल की सरल भाषा" की शिक्षा देने में समय खोना व्यर्थ है। नित्य के संसर्ग

से नित्य व्यावहारिक बोलचाल की भाषा आप ही आप आजाती है इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं विशेषतः जब यह भाषा सरल है तब तो इसके समझाने में अधिक दिनों की अपेक्षा नहीं हो सकती।

विपक्षियों का बड़ा प्रबल अस्त्र "सरलता" है परन्तु तर्क की कसौटी पर यह ब्रह्मास्त्र भी कुंठित हो जाता है। अधिक से अधिक यही कहा गया है कि यह शिक्षितों की नित्य बोल-चाल की भाषा है, अशिक्षितों की नहीं। इस अवस्था में अधिकांश अशिक्षितों के बालकों के लिए इस भाषा में लिखित पाठ्यपुस्तकें सरलता गुणसम्पन्न कैसे स्वीकार की जा सकती है। उलट पुलट के चाहे जिस दृष्टि से विचार किया जाय परन्तु नागरी लिपि की प्रारम्भिक पाठ्यपुस्तकों में "शिक्षितों की नित्य बोलचाल की सरल भाषा" का उपयोग कदापि सिद्ध नहीं हो सकता।

अब हम प्रारम्भिक शिक्षा के लक्ष्य तथा नागरी लिपि की पाठ्यपुस्तकों की भाषा इस लक्ष्य के कहां तक अनुकूल है इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करेंगे। यथासाध्य समस्त प्रश्नों या उपप्रश्नों की व्याख्या के लिए हमने सर जेम्स मेस्टन के मन्तव्यों से ही सहायता लेने का विचार किया है और इस स्थान पर भी हम इसी नीति को बरतेंगे। सर जेम्स महोदय प्रारम्भिक शिक्षा का लक्ष्य यह समझते हैं:—

"प्रथम स्पष्ट सिद्धान्त यही है कि विद्यार्थी की भलाई का ध्यान रक्खा जाय। भाषा विषयक सिद्धान्तों और विवादों से बालकों की शिक्षा जटिल बना देना अनुचित है। शिक्षा की प्रारम्भिक अवस्था में बालकों पर दो भाषाएं किम्वा दो वर्णमालाओं का बोझ लादना अनुचित है।.....

प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त होने पर विद्यार्थी को चिट्ठी पत्री लिखने की तथा साधारण पुस्तक या समाचारपत्र समझने की योग्यता अवश्य होनी चाहिये.....बालकों को ऐसी शिक्षा देना उचित है जो उन्हें सांसारिक कर्तव्य पालन करने के लिए विशिष्टतया सुसज्जित कर सके और जिससे उनकी मेधाशक्ति पर स्थायी प्रभाव पड़े।"

हम इन उद्देश्यों के साथ २ प्रारम्भिक शिक्षा के और भी कुछ उद्देश्य समझते हैं--जो इनसे कम महत्व के नहीं हैं--परन्तु हम उन प्रश्नों का उत्थापन कर लेख को विस्तृत नहीं करना चाहते। हम स्वीकार करते हैं कि प्रारम्भिक शिक्षा के येही उद्देश्य हैं परन्तु जिस प्रणाली का अनुसरण किया जा रहा है क्या उससे ये उद्देश्य सिद्ध हो सकते हैं? भाषा विषयक "विवादों द्वारा बालकों की शिक्षा जटिल बनाना" तथा "प्रारम्भिक शिक्षाकाल में बालकों पर दो भाषाओं अथवा वर्णमालाओं का बोझ लादना" अनुचित समझा गया है। यथार्थ बिलकुल यथार्थ। सर जेम्स मेस्टन तथा उनके सहकारियों को हम इन वाक्यों के लिए साधुवाद देते हैं। अब प्रश्न उठता है कि नागरी लिपि द्वारा उर्दू भाषा की शिक्षा देना किस कोटि में समझा जाय। हम कोटि निर्देश करने में असमर्थ हैं और हमें खेद है कि मन्तव्यों से हमें इस अवसर पर कोई सहायता नहीं मिलती। पाठक स्वयं विचार लें। इतना अवश्य निर्विवाद कहा जा सकता है कि इस रीति से हिन्दी पढ़नेवाले विद्यार्थी को न हिन्दी आती है और न उर्दू ही। प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर पढ़ना छोड़ देनेवाला हिन्दी पढ़नेवाला विद्यार्थी "धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का" बन जाता है, इसमें आश्चर्य ही क्या हो सकता है। सर जेम्स मेस्टन महोदय भी एक भाषा के अक्षरों द्वारा अन्य भाषा की शिक्षा दी जाने का उद्योग वैसाही हास्यास्पद समझते हैं जैसा हम समझते हैं। आप

कहते हैं "जिस १८७६ के पत्र से ऊपर सहायता ली जा चुकी है उसके शब्दों में विजातीय शब्दों को प्रगट करने की जटिलता के कारण दोनों लिपियों के अक्षर शब्दों पर प्रतिघात करते हैं और भेद बढ़ाते हैं।" प्रारम्भिक शिक्षा का प्रथम मान्य सिद्धान्त नागरी अक्षरों द्वारा हिन्दी पढ़नेवाले विद्यार्थियों पर बर्दू लादने से कहां तक सफल हो सकता है यह समझना कुछ कठिन बात नहीं है।

प्रारम्भिक शिक्षा का दूसरा उद्देश्य "चिट्ठी पत्री लिखने तथा साधारण पुस्तक और समाचारपत्रों के समझने की योग्यता हो जाना" स्वीकार किया गया है। उद्देश्य में मतभेद नहीं हो सकता परन्तु जिस प्रणाली का अनुसरण किया जाता है और भविष्य में करने का संकल्प किया गया है उससे इष्ट सिद्धि असम्भव है। यहां भी स्वयं छोटे लाट महोदय को ही हम अपना साक्षी बनावेंगे :—

"वर्तमान समय में सैकड़ा पीछे ८०, ९० लड़के "निम्न प्रारम्भिक अवस्था" में ही पाठशाला छोड़ जाते हैं.....लड़कों का यह बड़ा भारी समूह ऐसी कोई शिक्षा लेकर नहीं जाता.....जिसका कुछ स्थायी मूल्य हो .....इसमें धन और उद्योग का केवल खेदजनक अपव्यय हुआ है; तथा ग्रामीण जनता के चित्त में शिक्षा के प्रति दुर्भाव उत्पन्न हो गया है....."

"श्रीमान् लाट साहब ने ध्यानपूर्वक "उच्च प्रारम्भिक सामान्य पुस्तक" का (Upper Primary General Reader) अवलोकन किया है और वे स्वीकार करने को बाध्य हैं कि "इससे बालक को भाषा का कोई भी समाचारपत्र जिससे वे (छोटे लाट साहेब) परिचित हैं—अथवा बालकोपयोगी कहानियों की पुस्तक से उच्चश्रेणी की किसी भी पुस्तक के पढ़ने की योग्यता नहीं हो सकती.....।"

"चौथी कक्षा के अन्ततक व्यवहार की जानेवाली सामान्य भाषा की रीडरों को पढ़कर प्रारम्भिक पाठशाला छोड़नेवाले बालक में वह मानसिक योग्यता नहीं हो सकती जिसकी अभिलाषा की जाती है।"

इन अंशों को उद्धृत करने के पश्चात् किसी प्रकार की टीका टिप्पणी करना व्यर्थ है। केवल इतना ही पूछना यथेष्ट होगा कि हम प्रारम्भिक पुस्तकों की भाषासम्बन्धी वर्तमान नीति को क्या समझें?

साहित्यिक भाषा में भेद है, नित्य बोलचाल की भाषा में भेद है, उच्चप्रारम्भिक सामान्य रीडर पढ़कर विद्यार्थियों को साधारण समाचारपत्र सरलतापूर्वक पढ़ने की योग्यता नहीं प्राप्त होती, प्रारम्भिक शिक्षा का उद्देश्य भी किसी अंश में नहीं प्राप्त हो रहा है, स्वाभाविक जातीय साहित्याभिमान तथा संस्कृत एवम् फारसी भाषाओं से (हिन्दी और उर्दू शब्दावली की) उत्पत्ति होने के कारण बोलचाल की भाषा की अपेक्षा लिखित भाषा में भेद प्रबल रूप धारण करता है। आदर्श शिक्षा की दृष्टि से यह प्रबल भेद दुर्भाग्य की बात न हो, उन्नति में इससे कोई बाधा न पड़ सकती हो आदि सब बातें स्वीकार हैं परन्तु फिर भी "श्रीमान् लाट साहब सामान्य भाषा की शिक्षा देने की नीति स्वीकार करते हैं।" किमाश्चर्यमतःपरम्।

यह तो स्पष्ट ही हो गया कि भ्रमवश सामान्य भाषा द्वारा प्रारम्भिक शिक्षा दी जाने का यत्न नहीं किया जा रहा है। हमारी समझ में "श्रीमान लाट साहब सामान्य भाषा की शिक्षा देने की नीति स्वीकार करते हैं" इस वाक्य में प्रयुक्त "नीति" शब्द ही सब कारणों का मूल है। तर्क एक ओर ले जाता है, नीति दूसरे मार्गकी ओर संकेत करती है। हिन्दुओं का भाग्य ही ऐसा है।

अब हम पूर्वोक्त पिगट कमेटी के सदस्य और एक मुसलमान सज्जन मि० असगर-अली खां के एक वाक्य से हिन्दी के प्रति हमारे मुसलमान भाइयों की घृणा पता लग जाता है। मि० असगरअली खां साहेब फरमाते हैं "प्राचीन भाषा जो संस्कृत के समान मृत भाषा है और जिसे केवल "संस्कृत के ज्ञाता ही समझ सकते हैं हिन्दी के नामसे राष्ट्रभाषा उर्दू या हिन्दुस्थानी को हानि पहुंचाने के लिए पुनर्जीवित की जा रही है"। कुछ सज्जन तो खां साहब के भी इस विषय में कान काटते हैं। उनका कथन है "उर्दू या हिन्दुस्थानी ही संयुक्त प्रान्त के शिक्षित समुदाय की सर्वमान्य भाषा है.....पुस्तकों या समाचारपत्रों की हिन्दी भाषा का इस प्रदेश में बोली जानेवाली भाषा से कोई सम्पर्क नहीं है; तथा राजनैतिक उद्देश्य से जिस अपरिपक्व साहित्य का प्रचार किया जा रहा है उसके द्वारा संयुक्त प्रदेश की प्रकृत भाषा की उन्नति के मार्ग में कांटे बोना कदापि वाञ्छनीय नहीं है"। बाध्य होकर हमें यह कहना पड़ता है कि एक ओर तो हमारे मुसलमान भाइयों का यह भाव है जिससे हमारा हृदय क्षुब्ध रहता ही है पर सरकार की ओर से भी हमें सान्त्वना न मिलने से हम कुछ कुछ निराश हो जाते हैं। इस अवस्था में परवर्ती अवतरण में "राजनैतिक उद्देश्य" की जो दुहाई दी गई है हिन्दुओं की ओर से उसी "राजनैतिक उद्देश्य" की पुकार अधिक पुष्ट प्रमाणों सहित मचायी जा सकती है। सरकारी मन्तव्य में भी यह बात स्वीकार होते देख हमें बड़ा खेद हुआ है कि, "सामान्य भाषा के सिद्धान्त से इस नाममात्र के विचलन पर भी मुसलमान सदस्यों ने आपत्ति बटाई थी"।

अन्त में इस प्रकरण को समाप्त करते हुए हम अपने मुसलमान बन्धुओं को विजय प्राप्ति के हेतु बधाई देते हैं और साथही यह कह देना भी उचित समझते हैं कि भाषा सम्बन्धीय आलोच्य निर्णय को हिन्दीभाषी समाज कदापि भ्रमशून्य निर्णय स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं है।

शिवाजी की योग्यता।

[लेखक—श्रीयुत तरुण भारत।]

किसी पुरुष की योग्यता समझ लेना उसका शारीरिक, मानसिक और नैतिक बल जानना है और ये बातें तभी ज्ञात हो सकती हैं जब हम यह जानें कि उस पुरुष ने क्या क्या किया अर्थात् उसका चरित्र हमें ज्ञात हो। सारांश किसी की योग्यता समझने के लिए उसके पूर्ण चरित्र की छोटी बड़ी सभी घटनायें जानना आवश्यक है। जब हम किसी पुरुष का चरित्र पढ़ते हैं तब हम कुछ न कुछ उसकी योग्यता समझने ही लगते हैं। हां, इतना कहीं कहीं रह जाता है कि उसके चरित्र में जो कहीं प्रत्यक्ष असंबद्ध बातें होती हैं, उनका पूर्ण अर्थ हमारे लक्ष्य में नहीं आता परन्तु हम चरित्र पढ़ने में ये बातें भूल जाते हैं अथवा जो वह महान् पुरुष हो तो अपने मन को समझा लेते हैं कि सत्पुरुषों का प्रत्येक काम करने में कुछ न कुछ अर्थ होता ही है, वे कभी कोई काम निरर्थक अथवा असंबद्ध नहीं करते। साधारण जन चरित्र पढ़ने में ही संतोष मान लेते हैं, उसका मनन करने में अर्थात् उसकी योग्यता समझ लेने में उन्हें उत्साह नहीं होता और

इस कारण चरित्रवाचन से जितना लाभ होना चाहिये उतना नहीं होता। जब हम किसी की कृति का मनन करते रहते हैं तो उसके गुणदोष समझने का प्रयत्न आप ही होता रहता है और जो प्रभावशाली पुरुष हों उनके गुणों का—विशेषतया उनके नैतिक गुणों का—परिचय अपने मन पर हुए बिना नहीं रहता। यदि गुणों का प्रभाव पड़ा तो उस प्रकार का व्यवहार थोड़ा बहुत कृति में अवश्य रूपान्तरित हो जाता है और यही सत्पुरुषों के चरित्रों के पठन का लाभ है। शिवाजी महाराज के चरित्र हिन्दी में छोटे बड़े अनेक लिखे गए हैं और हिन्दी की आज की अवस्था में कोई सविस्तर चरित्र छापना शक्य नहीं है, परन्तु इतने महान् सत्पुरुष की योग्यता समझने का प्रयत्न करना हमें नितांत आवश्यक है, इसलिए आज यह अल्पस्वल्प प्रयत्न करने पर हम बद्धत हुए हैं।

आज तक शिवाजी का स्मरण लुटेरा, डाकू, बागी इत्यादि शब्दों से किया जाता है। हमें अंगरेज़ी में जितनी किताबें पढ़ाई जाती हैं उनमें उस महान् पुरुष को येही विशेषण लगाये जाते हैं। कितने अफसोस की बात है कि जिस पुरुष के चरित्र में भौतिक और पारलौकिक, राजकीय और नैतिक उन्नति के स्रोत बह रहे हैं और जहां हम सब को स्नान करना उचित है, उसी को डाकू, लुटेरा, बागी इत्यादि कहें और इस प्रकार उस पुरुष के विषय में कपोल कल्पना करने का अनावश्यक प्रयत्न किया जावे। हम देखते हैं कि स्कूलों और कालेजों में जो पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं उसमें मराठों इतिहास का हाल बहुत थोड़ा रहता है, मानो सब हिन्दुस्थान का इतिहास मुसलमानों के राज्य वर्णन में और अंगरेज़ों की लड़ाइयों की तफसील में समाप्त हो जाता है। जिस पुरुष ने इतिहास की दिशाही बदल दी और एक नया ही राष्ट्र बना दिया, उसका चरित्र जानना हमारे शिक्षणदाता क्या पाप समझते हैं? शायद ऐसा ही होगा इस कारण हमें नेल्सन और वेलिंगटन प्रभृति परक्षीपक्षवीरों के उद्गारों से हमारी स्मरण शक्ति लादी जाती है परन्तु शिवाजी का एक भी उद्गार किंवा एक भी उत्तेजक घटना का वर्णन हमें नहीं बतलाया जाता। ऐसी अवस्था में शिवाजी की योग्यता हमारी समझ में कैसे आसकती है? ऐसी अवस्था में हमारे नाममात्र के शिक्षित हिन्दू भाई शिवाजी को इसी प्रकार समझें, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। हमें हिन्दुस्थान का इतिहास पढ़ाया जाता है परन्तु शिवाजी का इतिहास नहीं, मानों शिवाजी हिन्दवासी थे ही नहीं। अंगरेज़ों का इतिहास ही क्या पूर्णतया इस हिन्द का इतिहास है? शायद ऐसाही होगा क्योंकि हिन्दुस्थान के इतिहास में मराठे, राजपूत, और सिक्ख इनके बारे में बहुत ही कम रहता है। जिस इतिहास में उत्तेजक जीवन भरा है उसके बारे में तो हम नितान्त अज्ञानान्धकार में रहें परन्तु अंगरेज़ों की एक एक लड़ाई के वर्णन में शिरोत्राण से लेकर पादत्राण और ढाल तलवार तक की बातें हैं। हमारे इतिहास की ऐसी दशा देखकर किस सच्चे पुरुष को दुःख न होगा? परन्तु हाय हम कर ही क्या सकते हैं? शिवाजी को डाकू कहो तब भी हम पढ़ेंगे और लुटेरा कहो तब भी हम पढ़ेंगे! हमारा इतिहास हमें जिस रंग में भी दिखलाया जावे वैसे ही हम देखने को तैयार हैं!!! परन्तु हमें तो इस महान् पुरुष की योग्यता समझ लेना आवश्यक है और इसलिए रागद्वेष इत्यादि मनोविकार दूर कर उसके चरित्र का मनन करना उचित है।

ऊपर कह ही चुके हैं कि शिवाजी की योग्यता, उसके चरित्र के पढ़ने के विनोद और उसके मनन के बिना नहीं जानी जा सकती क्योंकि दुनिया के इतिहास में इस महान् पुरुष का चरित्र इतिहास से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। जहां पहिले स्वातंत्र्य के बदले परतंत्रता, स्वधर्म के बदले परधर्म, शान्ति के

बदले अशान्ति, स्वजाति के बदले परजाति, न्याय के बदले ज़ुल्म ऐसी हज़ारों बातें थीं उन सबको बदलकर उनकी जगह स्वातंत्र्य, स्वधर्म, शान्ति, स्वजाति, न्याय, इत्यादि प्रस्थापित किये गये, वहां का इतिहास कितने अधिक महत्व का न होना चहिये? और जिस पुरुष ने यह महान् कार्य्य किया उसकी योग्यता कितनी अधिक न होनी चाहिये? वाटरलू की लड़ाई केवल दैववशात् वेलिंगटन ने जीत ली पर वेलिंगटन का आज कितना महत्व है! सिकंदर ने क्षणभर परजातियों पर विजय प्राप्तकर राज्य किया भी नहीं था कि जल्द पूर्व दशा ज्यों की त्यों आगई परन्तु सिकंदर उतने ही से महान् हो गया। क्षण भर युरोप में ढोल पीट कर सेंट हेलिना में शत्रु के जेलखाने में प्राण दे देने से नेपोलियन का चरित्र आश्चर्य-कारक होगया पर जिस पुरुष ने नवीन 'इतिहास' रचा, जिस पुरुष ने नवीन देश बनाया, जिस पुरुष ने नवीन राष्ट्र बनाया, जिस पुरुष ने नवीन जोश पैदा किया, जिस पुरुष ने स्वधर्म का उद्धार किया, जिस पुरुष ने निःसीम स्वार्थत्याग का उदाहरण सामने रक्खा, उसका महत्व हमें हमारे सहृदय परछोपस्थ भाई लुटेरा, डाकू इत्यादि, शब्दों से बतलाना चाहते हैं। यह देख कर इनकी सहृदयता के विषय हमें शंका होने लगती है!!! हमारे इस मराठी इतिहास का महत्व स्वयं प्रकाशमान है पर हमारी शिक्षा के अधिकारी इस रूप में हमें उसे दिखलाते हैं कि हमें इस इतिहास में कुछ जीव ही नहीं दीखता। शिवाजी ने हमारे महाराष्ट्र में जो नवीन राष्ट्रीय जोश भर दिया, उसकी हमें कल्पना भी नहीं करने दी जाती! उस जोश के कारण प्रत्येक महाराष्ट्रीय एक एक शिवाजी ही होगया था इस बात का हमें बोध भी नहीं होने दिया जाता। शिवाजी और उनके अनुयायियों के स्वदेशाभिमान की बात भी नहीं सुनाई पड़ती! औरंगजेब के समान भूरव्याघ्र अपने दल समेत दक्षिण में आपहुंचा यह हम अच्छीतरह जानते हैं परन्तु मुट्ठीभर मराठों ने उसके दांत कैसे खट्टे किये इसका कुछ भी परिचय हमें नहीं कराया जाता। नाना फडनवीस के समय कैसे स्वदेशाभिमान से वीर भाइयों ने अंगरेज़ों को शरण दी थी, इसपर बेतरह परदा डाल दिया जाता है, और समय समय पर महाराष्ट्र वीरों ने शिवाजी महाराज का स्मरण कर जो स्वदेशाभिमान की ज्योति दिखलाई थी उसका प्रकाश हम तक नहीं आने दिया जाता! परन्तु इन सब में मराठी इतिहास का महत्व और शिवाजी महाराज की योग्यता ठूंस ठूंस कर भरी है। जिस किसी को यह जानना हो, उसे मराठी इतिहास का विशेष रूप से अवलोकन और मनन करना चाहिये।

उनकी आखों की ज्योति नष्ट हो गई है, कानों में मैल भर गई है, हृदय के परदे बन्द हैं और मन विचारहीन हो गया है इसलिए मराठी इतिहास के निर्माता को लुटेरा, डाकू कहने के सिवा, और कुछ नहीं आता! नहीं तो यह स्पष्ट है कि लुटेरे कभी ऐसा दीर्घकालीन राज्य नहीं कर सकते कि जिससे देश का नकशा तमाम बदल जावे। शिवा जी कुछ हैदर, टिप्पू, अलीवर्दीखां किंवा निज़ामुलमुल्क नहीं थे। ऐसे होते तो उनका भी राज्य कल ही रसातल को चला जाता। महाराष्ट्र पर हिन्दुस्थान के एक छत्रधारी बादशाह की फौज ने बारंबार आक्रमण किया पर मरहठों ने हमेशा उन्हें हतवीर्य कर पीछे लौटा दिया! आखिरकार बादशाह स्वतः अपनी तमाम सेना ले दक्षिण में आया और बराबर पच्चीस साल तक मुट्ठीभर मरहठों से लड़ता रहा पर उसने क्या किया? मुश्किल से मृत्यु के समय अपने अजीत वैरियों के हाथ फँसते २ बचा और यह उद्गार निकाला कि, "मैंने अपने जन्म में कुछ न किया।" क्या यह लुटेरों का काम हो सकता है अथवा इसमें कुछ और तथ्य है? अलीवर्दी खां, टिप्पू, आदि तो सचमुच लुटेरे थे और जब तक वे सत

योग्य रहे और जबतक उनके हाथ में बल रहा तब तक ही उनका राज्य रहा! उनके शरीरपात के साथ उनके राज्य का भी पतन हुआ! पर शिवाजी के अनन्तर कठिन २ कठिनाइयों से बचते हुए वह राष्ट्र स्वतन्त्र ही रहा है और अंगरेज़ों को भी कहना पड़ता है कि यदि वह राष्ट्र सब से पहले ही स्थापित हुआ होता तो शायद हिन्दुस्थान का इतिहास ही बदल जाता और अंगरेज़ों की क्या दशा होती वह वे नहीं कह सकते! जिसने ऐसा राष्ट्र बनाया उसकी योग्यता का विचार करना ज़रूरी है। मुसल्मानों के आक्रमणों से इस राष्ट्र में कमज़ोरी न आई नित्य नवीन जोश ही आता रहा। क्षण में मालूम होता था कि मुट्ठी भर मरहठे अब जाते हैं पर क्या? दाबी हुई हवा के समान वे दुगने वेग से उठते थे और उस वेग के सामने कितनों ही को सिर नीचा करना पड़ता था। तार पर के खेल करनेवालों के समान उनकी ओर जो देखता वह यह ही कहता कि अब गिरता ही है पर क्या? सारा खेल कुशलता से दिखाकर उन लोगों ने औरंगजेब सरीखे कट्टर वैरियों से भी तारीफ करवाई!

क्या यह लुटेरों का काम हो सकता है?

अंगरेज़ इतिहासकार कहा करते हैं कि दैववशात् उसे यश मिलता गया और मुसलमानों ने बारंबार मूर्खता दिखलाई इस कारण वह राज्य स्थापित करने पाया। ऐसा दैव सब को ही फलीभूत होता तो क्या न होता? दैववशात् द्रव्य मिल गया, दैववशात् परीक्षा पास करली यदि ऐसा कहें तो साधारण लोग विश्वास भी करलेंगे पर दैववशात् राज्य का उद्धार कर लिया ऐसा कहें तो अनपढ़ भी तुरन्त मूर्ख की संज्ञा से हमें बोध करेंगे। यही बात इन इतिहासकारों की है। अफ़ज़लखां के समान कट्टर वीरों को जिसने मृत्यु के मुख में भेज दिया उसकी योग्यता समझना हो तो अफ़ज़लखां की ही योग्यता जानना ज़रूर है। इस कट्टर मुसलमान को आदिलशाही के दरबार ने भेजा था। किस लिए? शिवाजी को पकड़कर लाने के लिए और उसने प्रतिज्ञा की थी कि मैं शिवाजी को जैसे होगा पकड़ कर ज़रूर लाऊंगा। उसका शारीरिक बल, मुसलमान होने के कारण उसका पक्का जोश, हिन्दू ने बलवा किया इस कारण उसका अप्रतिम क्रोध, आदिलशाही दरबार का वह पहला सेनापति इत्यादि बातें देखने से यही मालूम होता है कि शिवाजी उससे जीत न सकते थे। परन्तु शिवाजी ने अफ़ज़लखां को ज़मीन दिखा दी और उसकी सेना खदेड़ते २ बीजापूर भेज दी। हिन्दू का मुसलमान से लड़ने को और झगड़ा करने को तैयार होना और वह काम यशःपूर्वक बीजापूर के राज्य के विरुद्ध करना, यह बात हर मुसलमान के लिए बड़े क्रोध और द्वेष की बात थी। परन्तु शिवाजी का जोश जब तक मरहठों में भरा है तब तक मुसलमान उनसे किस प्रकार जीत सकते हैं? इस विजय में शिवाजी की पूर्ण योग्यता दीखती है।

पुनरपि शिवाजी की योग्यता इतनी ही बात से स्पष्ट है कि जब वे दिल्ली से लौटे, तो उसके राज्य में कुछ हेरफेर न हुआ, कहीं भी यह न मालूम पड़ता था कि उनकी गैरहाज़िरी में कुछ गड़बड़ हुई। सब काम ऐसा हो रहा था मानो वे स्वतः वहाँ राज्य कर रहे थे। इस समय शिवाजी ने संधि क्यों की इसका निर्णय करना कठिन है। जिसने अफजल खां और शाइस्ता खाँ के समान सेनापतियों को मार भगाया, जिसके मुसरबा जी समान स्वार्थत्यागी वीर ने केवल तीन सौ मावले लेकर दिलेर खां को उसके हजारों सैनिकों सहित मार भगाया था, वही सन्धि करने को तैयार हो यह आश्चर्य तो अवश्य मालूम होता है परन्तु हमें तो इसमें शिवाजी की पारदर्शी बुद्धि दिखाई देती है। एक तो जयसिंह और दिलेरखाँ ये बड़ी भारी तैयारी से आये, कहीं न जीत हुई तो "समूलंच विनश्यति", दूसरी

बात यह थी कि जयसिंह का हिन्दू राजा के सामने रणमें खड़ा होना ठीक न था। शिवाजी को हिन्दुओं से हिन्दुस्थान लेना नहीं था, लेना था मुसलमानों से, इसलिए अगर जयसिंह से वे लड़ते तो शायद इतनाही होता कि और हिन्दू राजा शिवाजी के गर्व से सहानुभूति न रखते। शिवाजी के अवतरण के कार्य्य से कई हिन्दू राजाओं को यह आशा उत्पन्न हो गई थी कि शायद यह हिन्दुस्थान का मुसलमानों से उद्धार करें। इसकारण शिवाजी को वे प्रेम की दृष्टि से ही देखते थे, जयसिंह से लड़ने से यह प्रेम दूर होने का डर था। परन्तु सब हिन्दुओं को अपनी ओर कर लेने की उनकी पूर्ण इच्छा थी और जयसिंह जैसे पराक्रमी और बली राजा को अपने विरुद्ध करलेना वे कभी ठीक नहीं समझते थे। संधि कर युक्ति और अन्य उपायों से अपनी ओर उसे कर लेने का भी शायद शिवाजी का विचार हो। तीसरी बात यह है कि संधि करने से उन्हें दिल्ली जाने का अवसर मिलता था। वहां जाकर राजपूत राजाओं को अपनी ओर मिला लेना और औरंगजेब के राज्य के बल की कुछ कल्पना कर लेना भी शायद उनका विचार हो सकता है। ये तीनों बातें ऐसी हैं कि इस संधि के कारण विचारवान पुरुष शिवाजी को दोष न देंगे। परन्तु यह स्पष्ट है कि शिवाजी के दिल्ली जाने से केवल उन्हीं पर ही नहीं वरन् सारे महाराष्ट्र की आशा पर वज्राघात हुआ था। यदि औरंगजेब उन्हें कत्ल करने पर उतारू हो जाता, तो कोई क्या कर सकता था। उस समय महाराष्ट्रों में इतनी शक्ति उत्पन्न नहीं हुई थी कि वे औरंगजेब की महती सेना से टक्कर लेते। राजपूतों में भी इतना ज़ोर न था कि औरंगजेब से किसी प्रकार बदला लेते। औरंगजेब ने शिवाजी को क्यों जीता रक्खा, इस बात का निर्णय करना कठिन है। परन्तु ऐसे समय में शिवाजी की बुद्धि, उनका अप्रतिम धैर्य और उनकी अगाध कल्पना आदि गुण देखकर मन आश्चर्यरूपी समुद्र में गोता खाने लगता है। और देखिये जाने के पहिले राज्य की व्यवस्था भी उन्होंने कितनी उत्तम कर दी थी कि स्वयं उनके न रहने पर भी राज्य का काम ज्यों का त्यों चलता रहा। हेरफेर हमें कहीं नहीं मालूम होता है। उस समय उन्होंने राज्य की व्यवस्था इसी विचार से की होगा कि हमारा कहीं दिल्ली में कुछ हो भी जाय तो भी महाराष्ट्र के स्वतंत्र राज्य की पताका ज्यों की त्यों फहराती हो रहे। इस विषय का पूर्ण मनन करने पर इस महापुरुष पर श्रद्धा उत्पन्न हुए बिना रह नहीं सकती।

महाराष्ट्र राज्य पर सब से बड़ा भारी संकट शिवाजी की मृत्यु के अनन्तर आया और इस असाधारण पुरुष की सच्ची योग्यता तभी दिखाई पड़ी। औरंगजेब ने जब देखा कि शाही सेनापतियों के भेजने से मरहठे हाथ नहीं आते तो आखिरकार स्वयं अपनी तमाम शाही सेना समेत दक्षिण में आपहुंचा और एक एक करके सब किले लेने लगा। धीरे धीरे महाराष्ट्र का बहुतसा भाग उसने जीत लिया पर तब भी मराठे हाथ न आये। संभाजी पकड़े गये और उनका औरंगजेब ने बड़ी क्रूरता से खून किया, शाहू और ताराबाई उनके पास कैद थे। सारे महाराष्ट्रीय राज्य भ्रष्ट हो गये थे, पैसा मिलना असंभव हो गया था, मराठी सेना अव्यवस्थित हो इधर उधर भटकने लगी थी। ऐसे समय में भी मराठे थोड़े भी न दबे। उलटे जब कभी यह मालूम हो कि अब सर्वनाश होगया, तभी वे फौलाद की स्प्रिंग की तरह दुगने वेग से उठते थे और शाही सेना को मार भगाते थे। आखिर, राजाराम अपने प्रधानों सहित जिंजी के किले में जा रहे और वहां से महाराष्ट्र का राज्य करने लगे। देश छोड़ परदेश में मरहठों के राजा जा रहे, पर परतंत्रता स्वीकार न की। इस समय की तुलना अन्यत्र किसी इतिहास में मिलना दुर्लभ है। हाँ और लोगों के इतिहास में ऐसा उदा-

हरण है पर वह इस महाराष्ट्रीय कर्तव्यपालन की समता नहीं कर सकता। सोलहवीं सदी में स्पेन के राजा फिलिप ने डच लोगों को ज़बर्दस्ती कैथोलिक धर्म का अनुयायी करना चाहा। ये प्रोटेस्टेंट धर्माभिमानी थे इसलिए इस जुल्मी राजा का जुल्म सहन न कर उन्होंने उसके विरुद्ध बलवा मचाया और स्वतंत्र बन बैठे। किसी को भी मालूम होगा डच लोगों का देश बहुत छोटा है, पर उसपर सेना के बाद सेना आने लगी। यह झगड़ा धर्म के कारण था इसलिए जोश में वह हिन्दू मुसलमानों का लड़ाइयों से कम न था। इनके युद्ध होते रहे स्पेन का राजा बड़ा बलिष्ठ था, उसका राज्य बड़ाभारी था। उसकी सेना कमर कसे हुए तैयार थी, उसके पास कुशल सेनापति थे, और डच लोग सर्वथा हीन थे फिरभी उनके स्वतंत्र मन पर विजय प्राप्त करना कठिन था। इतिहास में ये लोग प्रवीण नाविक के नाम से प्रसिद्ध हैं। अपने टापू से वे समुद्र की लड़ाइयां लड़ते रहे और स्पेन की प्रचंड सेनाएँ उनका आगे कुछ न कर सकीं। आखिर तीस चालिस वर्ष के युद्ध के बाद सन् १६०९ में उनकी स्वाधीनता स्पेन के राजा ने स्वीकार कर ली। यहां यह ख्याल रखना चाहिये कि इंगलैंड की रानी एलिज़बेथ से उन्हें बराबर सहायता मिलती रही। इतिहासकारों का मत है कि अगर यह सहायता न मिलती तो डच लोगों का सर्वनाश कभी का हो जाता। दूसरी बार सत्रहवीं शताब्दी में जब फ्रांस के राजा लुई (चौदहवें) ने उनके देश पर आक्रमण किया तब डच लोगों ने अपतिम धैर्य दिखलाया। उनके पास न देश था, न सेना थी, न पैसा था और न सेनापति। ऐसी स्थिति में वे बराबर इस बली राजा की प्रचंड सेना से टक्कर लेते रहे इस बार उन्हें समस्त यूरोप से सहायता मिली क्योंकि उनके विजय पराजय में यूरोप के बहुत से देशों का स्वार्थ सम्मिलित था और उनका स्वतन्त्र रहना उन्हें लाभकारी था। ऐसा ही महान् संकट महाराष्ट्र पर आया था। पर उन्हें किसी प्रकार की सहायता भी मिलनी असंभव थी। महाराष्ट्र के पास के दो राज्य विजापुर और गोलकुंडा मुगलों ने कभी के निगल लिये थे। और बाकी तमाम देश में मुगलों का राज्य इतना ही नहीं था, खास महाराष्ट्र में मुगलसेना चारों ओर फैल गई थी और मरहठों को अपना देश छोड़ जाना पड़ा था। पर स्वातंत्र्य कायम रखने के लिए वे जिंजी के किले से नाममात्र का राज्य कर रहे थे। इतना भी होकर मरहठे क्या मुगलों के हाथ आये? उलटे मुगल सेना पर ही वे बार-बार आक्रमण किया करते और समय पाकर उनकी फौज़ कत्ल करते और उनका द्रव्य लूट लाते थे। जिंजी के किले के पास जुल्फिकार खां के सामने बली और कुशल सेनापति को सात वर्ष घेरा डालकर पड़े रहना पड़ा और अन्त में किले पर अधिकार मिलना भी न मिलने के बराबर होगया। सब खाली! महाराष्ट्र की गवर्नमेंट पर अधिकार हुआ ही नहीं। पचीस वर्ष तक औरंगजेब मरहठों का पीछा जगह जगह पर करता रहा पर कुछ हाथ न आया। मरहठों को वह जीत सका ही नहीं कि उसकी आयु पूरी हो गई और शरीर छोड़ने की इच्छा से अहमदनगर जाते समय वह मरहठों के हाथ आते आते जरा ही बच गया नहीं तो इतनी प्रचंड सेना रहते भी उसकी कैद में ही मृत्यु हुई होती। उसके मृत्यु के बाद क्षणभर में महाराष्ट्र मरहठों का हो गया। मराठी इतिहास बड़ा मनोरंजक और बोधपूर्ण है। इतिहास का निर्माणकर्ता कौन है? वह ही महापुरुष शिवाजी! यह जो घटना ऊपर लिखी है, उस घटना के अजीत वीर सब शिवाजी के साथी थे। शिवाजी का जोश ही कुछ ऐसा था कि उनसे जो मिलता वह शिवाजी ही हो जाता था। उनकी मृत्यु के बाद उनका स्मरण मात्र ही पर्य्याप्त था। केवल स्मरण से ही प्रत्येक महाराष्ट्रीय के

शरीर में ऐसी विलक्षण शक्ति संचार कर जाती थी कि उससे जीते जी जीतना किसी की शक्ति नहीं थी। इस घटना के समाप्त होते तक शिवाजी के साथ के कई वीर मर चुके थे पर शिवाजी का उत्पन्न किया हुआ वह जोश जबतक महाराष्ट्र में मौजूद था तबतक शिवाजी किंवा उनके साथी रहे या मरे तो भी कोई ज़्यादा अन्तर नहीं होता था। इस महाव्यक्ति की योग्यता न जानें कितनी अधिक होनी चाहिये जिसका केवल स्मरणमात्र सब ऐहिक विकारों से दूरकर प्रत्येक महाराष्ट्रीय को वीरयोगी बना देता था? वह महापुरुष न जाने कैसा होना चाहिये जो मरकर भी अपने अनुयायियों से अपना कार्य करा रहा था? उस महाराष्ट्रीय में कौनसी शक्ति रही होगी जिसने केवल ३२ वर्ष ही में मुसलमानों के समान बलिष्ट शत्रु से अपना देश मुक्त कर स्वराज्य की स्थापना की?

महापुरुष।

[लेखक-श्रीयुत नारायणप्रसाद अरोड़ा।]

जिस समय हम इस गहन विषय पर विचार करते हैं, उस समय हमारे मन में ये प्रश्न उठते हैं कि महापुरुष किसे कहते हैं? उन्होंने हमारे सांसारिक व्यवहार में क्या परिवर्तन किया है? उन्होंने संसार के इतिहास में क्या भाग लिया है? लोगों ने उनके विषय में क्या विचार निश्चित किया? उन्होंने क्या विशेष कार्य किया? इत्यादि, इत्यादि। यह विषय बड़ा गम्भीर है और हम इन प्रश्नों का यथार्थ उत्तर देने में असमर्थ हैं। परन्तु तो भी अपनी शक्ति के अनुसार हम इन प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न करेंगे। यह विषय उतना ही बड़ा है जितना सारे विश्व का इतिहास। विश्व के इतिहास में वे ही बातें हैं जो मनुष्यों ने की हैं और महापुरुषों का इतिहास ही संसार के कार्यों का मूल है। महापुरुष ही लोगों के अगुआ रहे हैं। उन्होंने संसार को उसके वर्तमान रूप में ढाला है। उन्हीं ने उसे ऐसा बनाया है। साधारण लोगों ने जो काम किये हैं उनके बनाने तथा बिगाड़नेवाले वे ही रहे हैं। जो कुछ संसार में प्रगट रूप से दिखाई देता है वह महापुरुषों के उन विचारों का मूर्तिमान स्वरूप है जो उन्होंने संसार में प्रकाशित किये हैं। यदि सच पूछो तो इन लोगों के कार्यों का इतिहास ही सारे संसार के इतिहास की जान है। मनुष्य जाति का इतिहास, वास्तव में संसार के महापुरुषों तथा उनके बड़े बड़े कार्यों का इतिहास है। महापुरुष ही मनुष्य जाति के उदार और सच्चे नेता हैं। ऐसे ही लोग अंधकारमय संसार को सूर्य के समान प्रकाश देनेवाले हैं। वे ही मनुष्यजाति की आत्मा हैं। उनके बिना मनुष्यजाति निर्जीव है। वे ही संसार के स्रष्टा हैं। वे ही संसार के बड़े बड़े कार्यों का सूत्रपात करनेवाले और उदाहरणरूप होते हैं। संसार में जो कुछ मनुष्यकृत या मनुष्य की कल्पनाशक्ति के अन्तर्गत है वह सब वास्तव में महान पुरुषों के विचार का निदर्शन या आदर्शमात्र है। महान् पुरुष संसार में बिजली की तरह चमक कर जड़ों में भी जान

डाल देते हैं। वे अपनी विद्युच्छक्ति से मनुष्य की मुर्दादिली में उसी बिजली की आग में उसे जला कर ऐसी गरमी पैदा कर देते हैं जिससे जनसमुदाय तेजस्विता से चमक उठता है।

प्रत्येक महापुरुष संसार में कोई न कोई उद्देश्य पूरा करने के लिए ही आता है। महापुरुषों के साथ हम किसी प्रकार का भी सम्बन्ध करें, हमें अवश्य लाभ होगा। चाहे हम उनके साथ रहें, चाहे हम उनके वाक्यों को पढ़ें और चाहे हम उनके जीवन-चरित्र की ओर अपनी दृष्टि डालें। महापुरुष प्रकाश का एक जीता जागता स्रोत है जिसके समीप रहने में बड़ा आनन्द मिलता है। उससे संसार प्रकाशित होता है और अन्धकार दूर होता है। यह प्रकाश दीपक के प्रकाश के अनुसार नहीं होता किन्तु आकाशमंडल के सूर्य के सदृश होता है। उससे नवीनतारूपी प्रकाश का स्रोत सदैव बहता रहता है। उसकी उपस्थिति में सब लोगों को बड़ा आनन्द मिलता है। कोई भी उसके समीप रहने से अप्रसन्न नहीं रहता। उसके संसर्ग में जो समय व्यतीत होता है कभी उसका पछतावा नहीं होता।

जो मनुष्य पदार्थों की सुन्दरता को जानता है उसी को हम कवि, चित्रकार या प्रतिभाशाली कहते हैं। जो मनुष्य स्वतन्त्र विचार करने की शक्ति रखता है उसे हम विलक्षण बुद्धि का आदमी कहते हैं। ये महापुरुष संसार के विविध विषयों को हमारे सामने प्रकाशित करने के लिए आते हैं। इस विचार को सामने रख कर हम उनकी भिन्न २ श्रेणियां बना सकते हैं। कहीं महापुरुष देवता समझा जाता है और कहीं पैगम्बर, कहीं वह कवि माना जाता है और कहीं पुजारी, कहीं लोग उसे विद्वान् मान कर पूजते हैं और कहीं राजा। परन्तु सब से पुराना प्रथा महापुरुषों को देवता मानने की है। कुछ लोगों का ख़याल है कि महापुरुषों को देवता की पदवी देना केवल पुरोहितों की चालबाज़ी है, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। जब किसी मनुष्य में कोई असाधारण बात होती है तब लोग कहते हैं कि यह मनुष्य सब से बड़ा अर्थात् महान् है। यही विचार हर जगह और हर समय महापुरुषों के सम्बन्ध में अप्रत्यक्ष रूप से रहता आया है। जब किसी पुरुष को हम अपने से बड़ा मान लेते हैं तब यह स्वाभाविक है कि हम उसकी आज्ञा का पालन करें। हां, यह सम्भव है कि हम किसी अयोग्य ही आदमी को बड़ा मान बैठें। इसे मानने और न मानने में भूल हो सकती है परन्तु आज्ञा-पालन तो करना ही पड़ता है।

वर्तमान समय में महापुरुषों को देवता मानने की प्रथा उठ गई है। परन्तु महापुरुष की पूजा अवश्य होती है और भविष्यत् में भी होती रहेगी। पूजा का रूप सदैव बदलता रहता है। जब हम किसी महापुरुष की प्रतिष्ठा करते हैं तब हमारे मन में भी तुरन्त ही यह विचार उत्पन्न होता है कि हम भी कुछ ऊपर की ओर जा रहे हैं। यह सम्भव नहीं है कि हम लोगों के हृदयों से यह बात बिलकुल निकाल दें कि वे अपने से श्रेष्ठ लोगों की मानमर्यादा करना छोड़ दें। अपने से बड़े का मान करने का गुण मनुष्य में स्वाभाविक रूप से विद्यमान है। ग़लती केवल बड़ों के चुनने में होती है। एक दुनियादार आदमी अपने से अधिक धनी को श्रेष्ठ समझता है। परन्तु वास्तव में श्रेष्ठ कौन है यह जानना कठिन है।

कुछ लोगों का ख़याल है कि समय महापुरुष बना लेता है। परन्तु यदि ऐसा होता तो कोई समय नाश न हुआ होता। यदि समय में इतनी शक्ति होती कि वह ऐसे महापुरुष पैदा कर सके जो अपनी बुद्धिमत्ता से समय को ठीक रास्ते पर ले आवें तो आज हमें संसार

की ऐसी शोचनीय अवस्था न दिखलाई पड़ती। मेरा ख़याल तो यह है कि समय तो सूखा हुआ ईंधन है और महापुरुष एक स्वर्गीय चिनगारी है। समय प्रतीक्षा करता रहता है कि कब महापुरुषरूपी चिनगारी आवे और संसार में प्रकाश फैले। सूखी लकड़ियों को उस चिनगारी की ज़रूरत तो होती है परन्तु वे उसे पैदा नहीं कर सकतीं।

औरंगजेब के पत्र।

[लेखक—पं० शिवनारायण द्विवेदी।]

भारतवर्ष की सोलहवीं शताब्दी के इतिहास में औरङ्गजेब का नाम दिल हिला देनेवाली क़लम से लिखा गया है। इसके राज्य में हिन्दू और मुसलमानों के जो निर्दोष खून हुए हैं वे इतिहास जाननेवालों से छिपे नहीं हैं। इसने राज्यासन प्राप्त करने के लिए जो प्रपञ्च रचा, भाइयों को धोका दिया, बाप को क़ैद किया और मुल्लाओं का क़तल किया यह सब एक क्रूर मायावी का खेल सा है। जब औरंगजेब का प्रताप अस्त हुआ तब उसके बेटे ने उसे क़ैद करके सिंहासन ले लिया। उस समय इसकी अवस्था अस्सी से अधिक थी। कारागार से जो पत्र इसने अपने पुत्रों के नाम भेजे, उनकी नक़ल हम यहां देते हैं:—

पहिला पत्र।

"शाहजादे कामबख़्श! मेरे गले के हार, जब ईश्वर की आज्ञा और उसकी इच्छा के अनुसार मुझ में शक्ति थी तब मैंने तुम्हें ज्ञान और विचार के उपदेश दिये थे किन्तु तुम ने बुद्धि के परिपक्व न होने के कारण उनपर जितना ध्यान देना चाहिये नहीं दिया; और तुम्हें जितनी शिक्षा प्राप्त कर लेनी आवश्यक थी न की। इस समय मेरे जाने का नक्कारा बज रहा है। मैंने अपने जीवन को व्यर्थ खोया है, इसीलिए अब हृदय दग्ध हो रहा है; पर अब पछताने से क्या होता है? अब मुझे मेरे विचार-शून्य कृत्य और पापों का फल मिलना ही चाहिये। मैंने पैदा होके कुछ नहीं किया इसलिए ईश्वर चकित होगा, मैं व्यर्थ आया और व्यर्थ जाता हूं। मेरे पापकर्मों पर पछताने से कुछ न होगा क्योंकि हज़ारों बुरे कामों से मैंने अपनी आत्मा को मलिन कर लिया है। मुझे चार दिन से ज्वर आता था पर अब वह नहीं है। मैं निधर दृष्टि करता हूं, ईश्वर का साक्षात् होता है, उसके सिवा दूसरा कुछ नहीं दीखता। मेरे सेवक नफ़र और परिवार का क्या होगा, इस चिन्ता से इस समय कोई फल नहीं है। धिक्कार है इस लोभ और मायाजाल को जिसके कारण मैं न समझ सका कि मेरी क्या गति होगी। मेरी कमर टूट गई है, पांव अशक्त होगये हैं, मुझ में हिलने डुलने और बोलने की शक्ति नहीं है। केवल साँस लेता दिन पूरे कर रहा हूं। मैंने घोर पाप किये हैं जिनके लिए ईश्वर क्या दण्ड देगा यह वही जाने। मेरे मरने के बाद मेरी सेना की व्यवस्था मेरे लड़कों को करनी है—मैं ईश्वर को साक्षी समझ के सब योग्य अधिकार अपने वारिसों को देता हूं। अज़ीमशाह मेरे पास है और इससे मेरा बड़ा प्रेम था। उसके प्राणों का नाश मैंने नहीं किया और इसीलिए इसका अपयश मुझ पर नहीं है। मैं संसार को छोड़े जाता हूं और तुझे, तेरे शाहजादे और तेरी मा

को ईश्वर की रक्षा में छोड़े जाता हूं। वही तुम्हारी रक्षा करे। मृत्युसमय की यातना और दुःख अब एक से एक बढ़कर मालूम हो रहे हैं। बहादुरशाह जहां था वहीं है पर उसका पुत्र हिन्दुस्थान में आया है, बेदारबख्त गुजरात में है, हेतडलनिशा पर आजतक कोई दुःख न आया था इसीलिए वह दुःखों में डूब गई है। उदयपुरी बेगम ने बहुत काम किया है और वह मेरे दुःख से दुःखी है और उसकी इच्छा मेरे ही साथ जाने की है, पर जो भावी है वही होगी। जो तुम्हारे साथ कुटुम्बी या दरबारी लोग बुरा बर्ताव करें तो उनके साथ बुरी तरह पेश न आना किन्तु अपना काम निकालने के लिए उनके साथ सभ्यता का बर्ताव करना—इस गुण की सदा आवश्यकता होगी। समय देख के बातें करना। अपनी शक्ति के अनुसार सब कामों में हाथ लगाना। सिपाहियों का वेतन चढ़ गया है इसे ध्यान में रखना। दारा ने जो उनके बैठे २ वेतन देने की बान डाल दी थी और हमारे यहां थोड़ा मिलता है इसीलिए वे अप्रसन्न हैं। अब मैं जाता हूं। मुझसे जो कुछ बुरा काम हुआ है वह तेरे ही लिए हुआ है, इसलिए मेरे प्रति अपने चित्त में घृणा न करना और मैंने कभी तुम्हें कड़ी शिक्षा दी हो या और कोई दुःख पहुंचाया हो तो उसे भूल जाना क्योंकि उससे अब कोई लाभ नहीं है। अब उसके लिए प्राण दे देने से भी कुछ न होगा। अब मैं अनुभव कर रहा हूं कि मेरे प्राण इस शरीर से निकल रहे हैं। हाय!"

दूसरा पत्र।

"शाहजादे शाह अज़ीमशाह! तुम्हारा कल्याण हो। मेरा मन तुम्हीं में है। अब मैं वृद्ध होगया और कमज़ोरी ने मुझे घेर लिया है। मेरे शरीर की सारी शक्ति नष्ट होगई है। इस संसार में जैसे खाली हाथ आया था वैसे ही खाली हाथ जानेवाला हूं। मैं पैदा क्यों हुआ और मुझ से क्या अच्छा काम बना यह मैं नहीं जानता, पर जो क्षण सुख में बीता उसके पीछे दुःख होना अवश्यम्भावी था। मैंने अपने राज्य की रक्षा नहीं की और प्रजा का पालन नहीं किया। मेरा बहुमूल्य जीवन व्यर्थ ही गया। मेरी बुद्धि ने मुझे जैसी प्रेरणा की मैंने वैसाही किया। मुझ में भले बुरे सोचने की बुद्धि है पर मेरे अविवेक ने उसे नहीं देखा। मैंने यह कभी नहीं सोचा था कि जीवन क्षणिक है, परन्तु बाहर निकला हुआ साँस वापिस नहीं लिया जाता, इसलिए मेरे कल्याण की मुझे आशा नहीं है। यद्यपि शारीरिक ताप अब शान्त है पर शरीर में केवल अस्थिचर्म मात्र शेष है। प्यारा शाहजादा कामबक्स बीजापुर गया है किन्तु मैं उसे अपने पास ही समझ रहा हूं। मेरा प्यारा पौत्र ईश्वर की कृपा से हिन्दुस्थान में आया है। जीवन पानी के बुदबुदे और काँच की कलई के समान है। शहन्शाह के मरने के बाद भी कोई उसका स्वामी होगा, यह सदा याद रखना। इस संसार में मैंने अपने कर्तव्य को अच्छी तरह से पूरा नहीं किया, किन्तु संसार की असारता से मैं अपने को अनभिज्ञ नहीं समझता। अब मुझे यही भय है कि मेरा छुटकारा कैसे होगा और न्यायपरायण ईश्वर के सामने मेरी क्या गति होगी? यद्यपि मैं यह जानता हूं कि ईश्वर दयालु है और उस पर मेरी बहुत श्रद्धा है; परन्तु मेरे घोर और अक्षम्य पापों के बदले वह दयालु अपनी दया-दृष्टि कैसे करेगा यह नहीं जानता? इसी भय से मैं कांप उठता हूं। मेरे मरने के बाद मेरी छाया भी न रहेगी। चाहे कुछ भी हो, अब मैंने अपनी जीवननौका मृत्यु के अगाध समुद्र में छोड़ दी है; अब वह चाहे किसी प्रकार की यातना, विपत्ति या भय की ऊंची लहरों से टकरावे, उछले या टूट जावे, इसकी मुझे चिन्ता नहीं। मेरे पीछे मेरे पुत्रों को विजयी बनानेवाला सर्वशक्तिमान् ईश्वर है, किन्तु उन्हें अपने

कर्तव्यपालन से कभी विमुख न रहना चाहिये। मेरे प्यारे पोते बेदारबख़्त पर दैवी कृपा बनी रहने के लिए मैं प्रार्थना करता हूं। यद्यपि बेदार-बख़्त से मैं अब न मिल सकूंगा पर मिलने की इच्छा बहुत थी। मेरी तरह शाहज़ादी बेगम साहबा बहुत व्याकुल हैं, किन्तु उनके चित्त में क्या २ भरा है, यह परमात्मा ही जाने। स्त्रियों के मूर्ख और अस्थिर विचारों में सिवा निराशा के और है ही क्या? ये सब मेरी अंतिम शिक्षाएं हैं। सलाम! सलाम!! सलाम!!!"

तीसरा पत्र।

"शाहज़ादे अज़ीम! तुम्हें और तुम्हारे प्यारों को शान्ति मिले। मैं बहुत निर्बल होगया हूं, सब अङ्ग शिथिल होगये हैं। जब मैं पैदा हुआ था तब मेरे आस पास बहुत लोग थे; पर अब मैं अकेला जाता हूं। मैं यह नहीं जानता कि इस दुनिया में मेरा आना क्यों और कैसे हुआ? मेरा जितना समय परमात्मा की सेवा के बिना गया है उसके लिए मैं पछताता हूं। मैं इस देश और लोगों में रह के अपना ज़रा भी कल्याण न कर सका। मेरा जीवन व्यर्थ गया। परमात्मा मेरे ही भीतर है परन्तु मेरी अन्धी आंखों ने उसकी अगाध शक्ति का विकाश न पाया। जीवन क्षणिक है और बीता हुआ समय फिर नहीं आता। मुझे परलोक में भी अपनी भलाई की आशा नहीं है। शरीर की विभूति चली गई, अब केवल अस्थिचर्म मात्र शेष है... .....घबराई हुई सेना की जो अवस्था होती है वही मेरी है। मेरा हृदय ईश्वर से विरक्त और अशान्ति का स्थल है। उसका राज्य कुछ है या नहीं मेरा हृदय यह नहीं जानता। इस दुनिया में आते समय मैं अपने साथ कुछ भी नहीं लाया था पर अब अपने साथ पाप की गठड़ी ले जाता हूं। मैं नहीं जानता कि मुझे क्या दंड भोगना पड़ेगा। चाहे मुझे परमात्मा की दया और कृपा पर कुछ विश्वास होता हो किन्तु मैं अपने पापों के लिए पछता रहा हूं और जब स्वयं मैंने बहुतों की आशाएं निष्फल कीं तब मैं दूसरे से अपनी आशाएं पूरी होने का कैसे विश्वास करूं? जो कुछ होना है वह हो, मैंने अपनी जीवन नौका मृत्यु के समुद्र में छोड़ दी है.....सलाम! सलाम!!"

चौथा पत्र।

"कामबख़्स! मेरे हिये के हार!.....अब मैं अकेला जाता हूं। तुम्हारी निराधार स्थिति के लिए मैं चिन्तित हूं पर इस चिन्ता से अब क्या होगा? मैंने संसार को जो २ दुःख दिये हैं, जो २ पाप किये हैं, जो २ खोटे काम किये हैं इन सब का परिणाम अपने साथ ले जाता हूं। आश्चर्य है कि मैं जब संसार में आया था तब मेरे साथ कुछ भी न था किन्तु अब पाप का पहाड़ ले जारहा हूं!.....मैं जहां २ जाता हूं केवल ईश्वर का भान होता है..... मैंने बहुत पाप किये हैं किन्तु मुझे क्या दण्ड देना सोचा गया है यह मैं नहीं जानता..... मुसलमानों के निर्दोष खून के छींटे मेरे सिर पर पड़े हैं। मैं तुम्हें और तुम्हारे पुत्र को ईश्वर की छाया में छोड़ता हूं और यह अन्त की सलाम करता हूं। मुझे बहुत दुःख होता है। तेरी बीमार मा उदयपुरी बेगम मेरे साथ जायगी .....शान्ति!.....हाय दुःख.....!"*

* श्रीयुत रुक्खाराम सूर्यराम देसाई के अनुवाद किये हुए पत्रों के आधार पर लिखित। लेखक।

बेलजियम की रानी।

[लेखक—श्रीयुत चन्द्रलाल गुप्त बी० ए०, एल० एल० बी० ।]

यूरोप के महायुद्ध के सम्बन्ध में कौन नहीं जानता कि बेलजियम सरीखे छोटे से शान्तिप्रिय तथा स्वाधीन राज्य पर निष्पक्षता प्रकट करने पर भी जर्मनों ने दल-बल सहित चढ़ाई कर नादिरशाही दिखा ही दी। जो राज्य आज से पांच महीने पहिले सुखी, सम्पन्न और स्वतंत्र था उसे एक ही महीने के बीच में जर्मनों के अधीन होना पड़ा है। यहां के नगरों और ग्रामों को नष्ट भ्रष्टकर और निस्सहाय बालक, बालिका और स्त्रियों पर शस्त्र प्रहार कर जो जो अत्याचार जर्मनों ने उस देश में किये हैं, उनसे जर्मन सभ्यता पर ऐसा कलङ्क लगा है कि यह सहस्र वर्ष के प्रत्युपकार और पश्चात्ताप से भी दूर न होगा। जो हो, वीर बेलजियनों ने भी उस बीच अकेले ही शत्रुओं का सामना किया और विश्वासघाती जर्मनों के दांत खूब खट्टे किये। भला एक वीर जाति कैसे अपने को दुष्टों के पैरों तले कुचली जाने देती। यदि क्रूर जर्मनों की संख्या पराक्रमी बेलजियनों से अतिशय अधिक न होती अथवा उनको अपने मित्रों से समय पर सहायता मिल जाती तो इस वीर जाति को पराजित करना सहज न होता। घर द्वार छिनने पर भी ये वीर अभीतक शत्रुओं का सामना कर रहे हैं और अपने पराक्रम से संसार को चकित कर रहे हैं। आत्मगौरव की पराकाष्टा, स्वदेश-प्रेम और उसके प्रति आत्मत्याग की महिमा, अल्पशक्तिमान् होने पर भी अधिक बली शत्रु का साथ न देकर उसके विपरीत हो उसका सामना करने में पराक्रम दिखलाना और अपनी स्थिति का तनिक ध्यान न रखना, इन सब बातों ने इन वीरों की उज्ज्वल कीर्ति को संसार में फैला दिया है और निस्सन्देह यह कीर्ति अटल रहेगी।

इसी वीर जाति के नृप श्रीमान् एलबर्ट हैं और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती एलिज़बेथ हैं। इन दोनों ही ने जो आत्मत्याग और धैर्य देश की रक्षा करने में दिखाया है वह सुवर्ण के अक्षरों में लिखे जाने योग्य है। ये वीर नृपति अभी तक स्वयं अपने सिपाहियों के साथ शत्रु का सामना कर रहे हैं। इन्होंने निराशा को अपने पास फटकने तक नहीं दिया। ये युद्ध के असीम कष्टों की ज़रा भी परवा न कर अपने मुट्ठी भर बचे हुए योद्धाओं के साथ खाइयों में रात दिन रहते हैं, उन्हें ढाढस देते हैं, घायल होने पर उनकी सेवा करते हैं, और गोले गोलियों की ज़रा परवा न कर स्वयं युद्ध में अभिमुख होते हैं। उनकी रानी भी उनका साथ दे रही हैं और पाठकों को आगे चलकर मालूम होगा कि ये भी स्वयम् युद्धक्षेत्र में जाकर अपने पति का साथ दे युद्ध में जो कुछ एक अबला से बन सकता है कर रही हैं। इन्हीं रानी के जीवन की कुछ घटनाओं को हम यहां उद्धृत करेंगे।

रानी एलीज़बेथ का जन्मस्थान बवेरिया देश है। इनके पिता ड्यूक थियोडार और इनकी माता पुर्तगाल देश की डचेज़ ब्रिगेन्ज़ी इनफेन्टा हैं। बाल्यावस्था से ही इनका स्वभाव अति सरल था। बड़ी होने पर इनको राजघराने की कुमारियों के उपयुक्त शिक्षा दी गई। पढ़ने लिखने के अतिरिक्त इनको गानविद्या, चित्रविद्या आदि ललित कलाओं का भी अच्छा ज्ञान कराया गया। २४ वर्ष की अवस्था में इनका विवाह बेलजियम देश के नृप श्रीमान् एलबर्ट से ठहरा और सन् १९०० में इनका विवाह होगया। तदनन्तर ये

पति की प्रेमपरायणा और सहयोगिनी हो राजा के साथ प्रजा के सुख में सुखी रहकर आनन्द से दिन बिताने लगीं। इन्होंने पति-सेवा और प्रजापालन का व्रत धारण कर लिया। अनाथालय और चिकित्सालयों में जाकर वे दुःखियों को सान्त्वना देतीं और उनकी सहायता करतीं थीं। वे सब लोकोपकारी संस्थाओं में योग दिया करतीं थीं। राजमहल में ये पति को प्रसन्न रखने के लिए दत्तचित्त हो पतिव्रता स्त्रियों की भांति गृहकार्यों का स्वयं निरीक्षण करतीं थीं। इस बीच में इनके दो राजकुमार और एक राजकुमारी उत्पन्न हुइ। ये अबतक राज-गृह के आनन्द में ही रहीं थीं कि सहसा उन-पर जर्मन-आक्रमण रूपी वज्राघात हुआ। एका-एक गत जुलाई महीने के अन्त में जर्मन सेना बड़े वेग से उनके देश की सीमा पर टूट पड़ी। दो सप्ताहों के समाप्त होते न होते जर्मन दैत्यों ने इनकी विख्यात राजधानी ब्रूशल्स पर अधि-कार कर लिया। तब राजधानी ब्रूशल्स से हट-कर एन्टवर्प चली गई। राजगृह के सब लोगों को भी वहीं प्रस्थान करना पड़ा। जब नृपति ने देखा कि उनके सेनानायकों के लिए शत्रु को रोकना कठिन होगया है उन्होंने अपने सचिव से कहा "अब क्या है, हम स्वयं अस्त्रशस्त्र ले-कर अपने वीर सिपाहियों के साथ देश की रक्षा करेंगे" यह सुन रानी बोलीं "प्राणनाथ, देश पर आपत्ति आने पर प्रत्येक देशवासी का धर्म है कि वह देशरक्षा के लिए प्राण देने को तैयार रहे। यदि आपने युद्धक्षेत्र में जाकर देश-रक्षा करने की ठानी है तो मेरा भी आपके साथ जाना धर्म है और मैं भी शस्त्र ग्रहण करूंगी"। यह सुन राजा विस्मित हुए तथा प्रसन्न और पुलकित हो कुछ न बोले। तदनन्तर जर्मन सेना ब्रूशल्स पर अधिकार कर एन्टवर्प घेरने की फिक्र करने लगी। रही सही बेलजियम सेना भी एन्टवर्प की रक्षा के लिये तैयार होगई। नृपति ने रानी को राजकुमार और राजकुमारी सहित इङ्गलैंड जाने का उचित परामर्श दिया और स्वयं सेना के साथ युद्ध में योग देने का निश्चय किया। रानी ने नृपति का परामर्श मान लिया पर साथ रहने के लिए उनके मन की अभिलाषा बनी ही रही। वे राजकुमारों को ले विलायत चली गईं और राजा युद्धकर्म में प्रवृत्त हो गये। अन्त में शत्रु ने एन्टवर्प भी लेलिया और बची बचाई बेलजियम सेना को समुद्रतट से होकर पीछे हटना पड़ा। फिर भी वीर नृपति और पराक्रमी सेना ने शत्रु को पीठ नहीं दिखाई। इस बीच में बेलजियम के मित्र अंगरेज़ और फरासीसी युद्ध के लिए तैयार हो गये थे। इनके साथ ही आज तक बची हुई बेलजियन सेना अपने नृपति के नायकत्व में जर्मनों से बड़ी बहादुरी से लड़ रही है। इस बीच में रानी ने विलायत में अंगरेज़ों का आतिथ्य स्वीकार कर वहां राजकुमारों के रहने का सुप्रबन्ध कर दिया और फिर उन्हें छोड़ स्वयं राजा का साथ देने के लिए युद्धक्षेत्र में आगईं हैं। कहां उन राजभवनों का सुख और कहां दिन रात अग्निवर्षामय युद्धक्षेत्र के महाकष्ट। परन्तु प्रेम और धर्म न जाने किन किन शक्तियों को उत्पन्न करते हैं और अबलाओं से भी दुष्कर से दुष्कर कर्म कराकर असम्भव को सम्भव कर दिखलाते हैं। क्या हम स्वनामधन्य सीता सती सावित्री, कुन्ती, द्रौपदी आदि को कभी भूल सकते हैं? आज फिर रानी एलीज़ेबेथ ने उसी धर्म व सच्चे प्रेम का सहारा ले अपने पति के साथ युद्धक्षेत्र में सच्ची सहधर्मिणी कहलाने का सौभाग्य प्राप्त कर अपने को देशसेवा और देशरक्षा के लिए न्योछा-वर कर दिया है। वे युद्धक्षेत्र में पति को धैर्य देती हैं, उनकी सहायता करती हैं और दूर न रहकर स्वामी की आज्ञा शिरोधार्य कर घायल वीर बेलजियन योद्धाओं की चिकित्सा में लगी रहती हैं। कहा जाता है कि एक बार राजा और रानी आगे बढ़ी हुई सेना से पीछे रह गये।

एक मोटरपर सवार हो व अकेले सेना से मिलने आगे बढ़े पर सेना दूर निकल गई थी। जाते जाते रास्ते में मोटर खराब हो गई। वे आगे न बढ़ सके। चारों ओर उजाड़ मैदान पड़ा था, कोई झोंपड़ी भी न बची था कि जहां सहारा लेते। इधर उधर से शत्रुओं के आने का भय था। परन्तु निर्भीक युगलमूर्ति हतोत्साह न हुई। राजा और रानी दोनों मोटर से उतर पड़े। क्षण भर भी विश्राम न लेकर साधारण कारीगरों की भांति मोटर को ठीक करने में लगगये। विधाता ने उनके उद्योग को सफल किया और शीघ्र ही मोटर ठीक हो गई और वे उसपर सवार हो कुछ ही काल में अपनी सेना से जामिले। पाठक समझ सकते हैं कि इनको नित्यप्रति कितनी ही ऐसी घटनाओं का सामना करना पड़ता होगा। क्षण क्षण पर उनके प्राण संशय में रहते होंगे। इनको समय पर भोजन न मिलता होगा और बड़ा परिश्रम करना पड़ता होगा। परन्तु यह सब इनके लिए कोई बात नहीं। प्रश्न होगा क्यों? उत्तर पाठक पाठिका स्वयं दें। यह धैर्य और साहस की मूर्तियां देश रक्षा के व्रत में दीक्षित हैं। जब तक ये अपनी प्रजा को स्वाधीन न बना सकेंगे, जब तक ये पुनः अपने देश में शान्ति और सुख स्थापित न कर लेंगे, जबतक ये शत्रु का मस्तक न नीचा कर देंगे अथवा स्वयं ही रणक्षेत्र में वीरगति को प्राप्त न हो जायँगे तब तक इनके लिए इस भूलोक में न शान्ति है और न सुख। भगवान् इनकी विजय करे। कहा है "यतो धर्मस्ततोजयः"।

नवीन स्वाधीनता।

[लेखक—एक भारतवासी।]

डाक्टर वुडरो विलसन के नाम से मर्यादा के पाठक अवश्य परिचित होंगे क्योंकि उनका थोड़ा सा हाल और चित्र मर्यादा की किसी पिछली संख्या में निकल चुका है। आप इस समय एमेरिका के संयुक्त राज्य के प्रेसीडेंट हैं और इस पद के ग्रहण करते ही आपने अपनी प्रतिभा और स्वतन्त्र विचारों का जो परिचय दिया है उससे आपका बहुत कुछ नाम हुआ है।

आपने हाल में एक पुस्तक लिखी है। इसे लंडन की हाल और चैपमैन कम्पनी ने प्रकाशित किया है। वास्तव में यह इनके कुछ व्याख्यानों का संग्रह है। इसका नाम है New Freedom अर्थात् "नवीन स्वाधीनता"। उनके जो विचार-रत्न इस पुस्तक में संगृहीत हैं उनमें बड़े २ उपदेश भरे हैं। इस पुस्तक के लिए उन्होंने स्वयं प्रस्तावना में लिखा है:—"स्वाधीनता चाहनेवालों और देशभक्तों के लिए यह पुस्तक एक निमन्त्रण स्वरूप है।"

एमेरीका प्रजातन्त्र देश है। किन्तु उसका उद्देश्य, क्या है? डा० वुडरो विलसन अपनी ओजस्विनी भाषा में कहते हैं कि "एमेरिका इस लिए बना है कि वह व्यापार का प्रत्येक प्रकार का विशेष स्वत्व नाश कर दे और मनुष्यों को ऐसी स्वतन्त्रता दे कि सब के साथ समता का व्यवहार हो और सब को अपनी योग्यता और परिश्रम के अनुकूल उन्नति करने का अवसर मिले।"

जिस देश की गवर्नमेंट का ऐसा शुभ उद्देश्य होगा उसके निवासियों के विचार अवश्य अमूल्य

होंगे, इसमें सन्देह नहीं। इसी आशा से मैंने यह लेख लिखा है। मैं यहां पर यह भी कह देना चाहता हूं कि मैंने इस पुस्तक को हिन्दुस्थानी पहलू से पढ़ा है और उसके सिद्धान्तों को अपने देश के प्रश्नों पर ढाला है। अस्तु।

उन्नति क्या है ?

आजकल हिन्दुस्थान भर में उन्नति की पुकार मच रही है। यह सब कहते हैं कि हम लोग पीछे पड़ गये हैं किन्तु आगे बढ़ने का मार्ग भी हर एक नया ही बतलाता है। कुछ मनुष्यों का मत है कि चाहे कोई भी मार्ग हो आगे बढ़ने से कुछ न कुछ लाभ अवश्य होगा। यदि आगे बढ़ने से कोई मनुष्य आग में गिरता हो तो इसे कदापि उन्नति नहीं कह सकते। हां आगे वह अवश्य बढ़ता है, परन्तु बिना सोचे समझे वर्तमान दशा के परिवर्तन में और उन्नति में बहुत भेद है। किन्तु बहुत से मनुष्य इसको ध्यान में नहीं लाते। वे कार्य जल्दी में कर डालते हैं और फिर बहुत दिनों तक पछताते हैं।

डाक्टर विलसन कहते हैं—"बहुत से मनुष्यों का कहना है कि परिवर्तन हमेशा अच्छा ही होता है। यदि और किसी उद्देश्य से नहीं तो नवीनता के लिये ही वे इसे अच्छा समझते हैं। यह सिद्धान्त बिलकुल ग़लत है क्योंकि उन्नति तभी हो सकती है जब परिवर्तन से कुछ लाभ हो।", हमारे देश में कुछ ऐसे भी लोग हैं जो यह कहते हैं कि भारत की उन्नति तभी हो सकती है जब हमारी पुरानी सब संस्थाएं नष्ट हो जायँ। उनका यह ख्याल है कि जबतक हम में हिन्दुस्थानीपन है तबतक कुछ नहीं हो सकता। इन विद्वानों के मतानुसार नवीन संस्था की रचना सहज है और पुरानी संस्थाओं में सुधार करना कठिन है। इस विषय में डाक्टर वुडरो विलसन का यह कथन है :—

"मेरा विश्वास है कि किसी जाति की प्राचीन और परम्परागत प्रथाएँ उस जाति के लिए वही काम देती हैं जैसे जहाज़ को सीधा रखने के लिए उसकी पेंदी का बोझा काम देता है। तुम एक नये कागज़ के टुकड़े पर यह नहीं लिख सकते कि कल से तुम्हारा जीवन किस प्रकार का होगा। तुम्हें सुधार ऐसा करना चाहिये कि नये और पुराने का भेद न मालूम पड़े और दोनों एक दूसरे से अच्छी तरह मिल जायँ। यदि मैं इस बात को न मानता कि अपनी संस्थाओं की प्रधान और आवश्यक बातें बनाये रखना ही उन्नतिशील होना है, तो मैं सुधारक न हो सकता।"

पाठकगण! इन शब्दों पर ध्यान दीजिये। भारत की उन्नति होगी, किन्तु यदि हिन्दुस्थानीपन को रखते हुए हुई तो उसी को वास्तविक उन्नति मानना चाहिये। जब हमारी भारतीयता ही नष्ट होगई तो फिर यह देश भारत न रह जायगा और न हम भारतवासी ही रह जायँगे।

गवर्नमेंट क्या है ?

बहुत से लोग ईश्वर की सृष्टि से गवर्नमेंट की तुलना करते हैं। आकाश के अनन्त तारे जैसे उगते और छिपते हैं, और जिस भांति वे नियमबद्ध होते हैं उसी प्रकार उन मनुष्यों के मतानुसार गवर्नमेंट के अंग भी हैं। न्यूटन का सृष्टि सम्बन्धी सिद्धान्त (Universe Theory) है कि सब तारे अपने २ नियम से घूमते हैं और कालान्तर में इस नियम में कुछ भी भेद नहीं पड़ता। फ्राँस में मांटस्क्यू (Montesquieu) नाम का एक विद्वान् हो गया है। उसी ने सब से प्रथम एक गवर्नमेंट के विषय में कहा था कि यह सृष्टि की हूबहू नकल है किन्तु यह सिद्धान्त निर्मूल है क्योंकि गवर्नमेंट कोई मशीन नहीं है बल्कि एक जीवित संस्था है।

"The trouble with the theory is that Government is not a machine but a living thing. It falls not under the theory of universe but under the theory of organic life. It is accountable to Darwin and not to Newton. It is modified by its environment, necessiated by its tasks, shaped to its functions by the sheer pressure of life." P. 43.

स्वतन्त्र मनुष्यों के लिए निरीक्षकों की आवश्यकता नहीं।

पराधीनता बड़ी बुरी वस्तु है। किसी भी चीज़ के लिए दूसरों का मुंह ताकना बुरा है। स्वतन्त्र देशों में भी गवर्नमेंट प्रायः एक मुट्ठी भर मनुष्यों ही के हाथ में होती है, किन्तु जिस देश की अधिकांश प्रजा को अपनी गवर्नमेंट में अधिकार प्राप्त हो वही देश भाग्यशाली है। एमेरिका प्रजातन्त्र है किन्तु वहां भी अधिक विकाश की आवश्यकता है। डा० वुडरो विलसन का विचार है कि एक मुट्ठी भर आदमी चाहे जैसे देशभक्त क्यों न हों कदापि इस योग्य नहीं हो सकते कि एक जाति के भाग्य की डोर उनके हाथ में सौंप दी जाय।

डा० विलसन कहते हैं "एमेरिका के अधिकांश मनुष्यों को छोड़कर और किसी को अधिकार नहीं कि मुझसे यह कहे कि 'तुमको अमुक प्रकार से रहना पड़ेगा'।" उनका यह भी कहना है कि जो जाति किसी की संरक्षता में रहती है उसका पुरुषत्व नष्ट हो जाता है। प्रजातन्त्र और वह भी विस्तृत रूप में जब कि प्रजा और शासक प्रायः एक ही हों—सब से अच्छी शासनप्रणाली है।

"प्रजातन्त्र की यही खूबी है कि जब तुम गुस्से में आकर अथवा बदला लेने के लिए कोई काम अपनी गवर्नमेंट के विरुद्ध करते हो तो अपना ही नुकसान करते हो क्योंकि तुम्हारे और गवर्नमेन्ट के मनोरथों में विभिन्नता नहीं है।"

धन्य है वह देश जहां के प्रेसीडेंट के ऐसे विचार हों। अब इस लेख को समाप्त करते हुए हम डा० विलसन के शब्दों में अपने भाइयों को सावधान किये देते हैं:—

"The procession is under way. The standpatter (sic) does'nt know there is a procession. He does'nt know that the road is resounding with the tramp of men going to the front. And when he wakes up, the country will be empty. He will be deserted, and he will wonder what has happened.

इसका सारांश यह है 'जो सोया सो खोया, जो जागा सो पाया।'

सङ्कलित संख्या।

[लेखक—श्रीयुत अम्बिकाप्रसाद पाण्डेय एम० एस० सी०]

निम्नलिखित संख्याएं सङ्कलित संख्या कहलाती हैं:—

१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०.....

१, ३, ६, १०, १५, २१, २८, ३६, ४५, ५५.....

१, ४, १०, २०, ३५, ५६, ८४, १२०, १६५, २२०.....

१, ५, १५, ३५, ७०, १२६, २१०, ३३०, १९५, ७१५.....

१, ६, २१, ५६, इत्यादि ... ...

... ...

इनकी रचना इस प्रकार होती है :—

पहिली श्रेणी में एकद्वित्रयादि संख्या प्राकृतिक क्रम से एक दूसरे के बाद लिखी जाती हैं। दूसरी श्रेणी, १, (एक) से आरम्भ होती है, और इसकी दूसरी संख्या, ३, इसकी प्रथम संख्या, १, में प्रथम श्रेणी की दूसरी संख्या, २, के जोड़ने से बनती है। इसी प्रकार इसकी तीसरी संख्या, ६, इसकी दूसरी संख्या, ३, में प्रथम श्रेणी की तीसरी संख्या, ३, के जोड़ने से बनती है इत्यादि। इसी नियम के अनुसार और सब श्रेणियां भी बनती हैं—अर्थात् जिस प्रकार पहिली श्रेणी की संख्याओं से दूसरी श्रेणी की संख्याएं बनती हैं उसी प्रकार दूसरी श्रेणी की संख्याओं की सहायता से तीसरी श्रेणी की संख्याएं भी बनती हैं। दूसरी श्रेणी की संख्याएं "त्रिभुजाकार संख्याएं" (triangular numbers) कहलाती हैं और तीसरी श्रेणी की संख्याएं सूची-आकार (pyramidal) संख्या के नाम से प्रसिद्ध हैं। शेष श्रेणियों की संख्याओं की कोई विशेष संज्ञा नहीं होती वरन् सभी 'सङ्कलित संख्याएँ' (Figurate numbers) के नाम से विख्यात हैं।

जिस रीति से ये संख्याएं रची जाती हैं, उससे स्पष्ट है कि किसी श्रेणी की कोई संख्या उसकी पूर्व श्रेणी का, उस विशेष संख्या के ऊपर तक की, संख्याओं के योग फल के बराबर होती है। उदाहरणार्थ-दूसरी श्रेणी की छठी संख्या '२१' प्रथम श्रेणी की पहिली ६ संख्याओं अर्थात् १,२,३,४,५,६, का योगफल है और तीसरी श्रेणी की छठी संख्या "५६" दूसरी श्रेणी की प्रथम ६ संख्याओं अर्थात १,३,६,१०,१५,२१, का सङ्कलन है।

यदि त्रिभुजाकार संख्याएं विन्दु द्वारा लिखी जायँ तो उन विन्दुओं की रचना निम्नलिखित चित्रों के अनुसार की जा सकती है—

पहिले चित्र में एक विन्दु है, दूसरे चित्र में तीन। तीसरा चित्र दूसरे चित्र के नीचे तीन विन्दुओं के बढ़ाने से बनता है और चौथा चित्र तीसरे चित्र में चार विन्दुओं के बढ़ाने से इत्यादि। इस प्रकार इन विन्दुओं से बने हुए सब चित्र त्रिभुजाकार दीखते हैं और इसी कारण इन संख्याओं का नाम 'त्रिभुजाकार संख्या' (triangular numbers) रक्खा गया है। सङ्कलित संख्याओं के जानने वा बनाने की एक दूसरी सरल रीति और है जिसमें 'अनुक्रमिक सङ्कलन' (Successive addition) की आवश्यकता नहीं पड़ती। सातवीं त्रिभुजाकार संख्या परिभाषा के अनुसार पहिली सात प्राकृतिक संख्याओं का योग है। एकद्वित्रयादि संख्या सात तक दो श्रेणियों में यों लिखी जाती हैं:—

१, २, ३, ४, ५, ६, ७,
७, ६, ५, ४, ३, २, १,
८, ८, ८, ८, ८, ८, ८,

अतएव '१' से '७' तक प्राकृतिक संख्याओं के योगफल का दूना '७' और '८' के गुणनफल के बराबर है अथवा सातवीं त्रिभुजाकार संख्या '७' और '८' के गुणनफल के आधे के बराबर होती है। इसी प्रकार नवीं त्रिभुजाकार संख्या '९' और '१०' के गुणनफल की आधी होती है इत्यादि!

यही सिद्धान्त दूसरी रीति से साबित किया जा सकता है। अ, व, स, द, ई, फ़, ज, ह, ये आठ अक्षर हैं, इनके दो २ अक्षरों का एकादिभेद लिखा जाता है। पहिले वे एकादिभेद (Combinations) लिखे जाते हैं जिनमें 'अ' है तब वे जिसमें 'व' है इत्यादि:—

अव, अस, अद, अई, अफ़, अज, अह।
वस, वद, वई, वफ़, वज, वह।
सद, सई, सफ़, सज, सह।
दई, दफ़, दज, दह।
ईफ़, इज, ईह।
फ़ज, फ़ह।
जह।

'अ' के साथ सात एकादिभेद बन सकते हैं, क्योंकि शेष '७' अक्षरों में 'अ' के साथ कोई भी अक्षर रह सकता है। 'व' भी "स, द, ई, फ़, ज, ह" अक्षरों में से किसी अक्षर के साथ रह कर ६ नवीन एकादिभेद बना सकता है। 'अव' वा 'वअ' के एक होने के कारण कोई नया एकादिभेद नहीं होता। 'स' के पांच, 'द' के चार, 'ई' के तीन, 'फ़' के दो, 'ज' का एक, एकादिभेद होता है। अतएव इन सब एकादिभेदों की संख्या पहिली सात प्राकृतिक संख्याओं का योगफल है अथवा यों कहिये कि सातवीं त्रिभुजाकार संख्या ही है। पर यह मालूम है कि आठ चीज़ों के एकादिभेद की संख्या, दो २ चीज़ों के एकत्रित लेने पर, २८ होती है जो कि सात और आठ के आधे गुणनफल के बराबर है। अतएव सातवीं त्रिभुजाकार संख्या सात और आठ के गुणनफल के आधे के बराबर होती है।

इस रीति से दूसरी सङ्कलित संख्याएं भी जानी जा सकती हैं। सातवीं सूच्याकार संख्या जो कि प्रथम सात त्रिभुजाकर संख्याओं का योगफल है, वह इस प्रकार जानी जा सकती है। अ, व, स, द, ई, फ़, ज, ह, क, ये ९ अक्षर हैं, इनके तीन अक्षरों के एकादिभेद लिखे जाते हैं। पहिले वे एकादिभेद लिखे जिनमें 'अ' हो। यदि शेष आठ अक्षरों के दो २ अक्षरों के एकादिभेद के पहिले 'अ' लिख दिया जाय, तो हमें तीन २ अक्षरों के वे एकादिभेद मिलेंगे जिनमें 'अ' है। पर ऊपर बतलाया जा चुका है कि आठ अक्षरों के, दो २ अक्षर के एकादिभेद की संख्या ७ और आठ के गुणनफल की आधी होती है या स्वयं सातवीं त्रिभुजाकार संख्या होती है। अतएव उन एकादिभेदों की संख्या जिनमें 'अ' है सातवीं त्रिभुजाकार संख्या के बराबर होती है। इसी प्रकार उन एकादिभेदों की संख्या जिनमें 'व' है छठी त्रिभुजाकार संख्या के बराबर होती है। अतएव सब एकादिभेदों की सङ्कलित संख्या

सात त्रिभुजाकार संख्याओं के योगफल के बराबर होती है। परन्तु ६ वस्तुओं के, तीन वस्तुओं को एकत्रित लेने पर, एकादिभेद की संख्या ६×८×७÷१×२×३ के बराबर होती है। अतएव प्रथम सात त्रिभुजाकार संख्याओं का योग वा सातवीं सूच्याकार संख्या '७×८×६÷१×२×३' के बराबर होती है। इसी प्रकार यह साबित किया जासकता है कि दसवीं सूच्याकार संख्या '१०×११×१२÷१×२×३' के बराबर होती है और चौथी सूच्याकार संख्या '४×५×६÷१×२×३' के बराबर होती है।

ऊपर लिखे नियम के अनुसार दूसरी श्रेणियों की संख्याएं भी जानी जा सकती हैं।

ऊपर लिखे अनुसार यह स्पष्ट है कि त्रिभुजाकार संख्याएं '१, २, ३, ४, इत्यादि' प्राकृतिक संख्याओं के जोड़ने से बनती हैं और इस श्रेणी की प्रति दो संख्याओं में '१' का अन्तर है। और फिर '१, ३, ५, ७, ६ इत्यादि' श्रेणी की संख्याओं के जोड़ने से वर्ग संख्याएं बनती हैं और इस श्रेणी की प्रति दो संख्याओं में '२' का अन्तर है। इसी प्रकार यदि निम्नलिखित श्रेणी की संख्याएं जोड़ी जांयः—

१, ४, ७, १०, १३, १६ इत्यादि

जिसकी संख्याओं में ३ का अन्तर है, तो १, ५, १२, २१ इत्यादि संख्याएं मिलती हैं और ये 'पञ्चभुजाकार' संख्याओं (pentagonal) के नाम से प्रसिद्ध हैं। फिर १, ५, ६, १३, १७, २१ इत्यादि संख्याओं के जोड़ने से १, ६, १५ इत्यादि संख्याएं मिलती हैं जो 'षट्भुजाकार' (hexagonal) संख्याएं कहलाती हैं। इसी प्रकार और भी श्रेणियां बनाई जा सकती हैं जिनकी संख्याएं 'बहुभुजाकार' (polygonal) संख्याओं के नाम से प्रसिद्ध है। सम्भवतः 'पाइथेागोरस' ने त्रिभुजाकार संख्याओं का आविष्कार किया था। बहुत से ग्रीक गणितज्ञों ने सङ्कलित संख्याओं के विषय में लिखा है। ग्रीक गणितज्ञों में 'हिपलाइकिल्स' जिनका जन्म ईसा से २०० वर्ष पहिले हुआ था और जिरासा के 'निकोमेकस' बहुत प्रसिद्ध हैं। 'बहुभुजाकार संख्या' के सम्बन्ध में महात्मा 'डाओफैंटस' ने एक अत्युत्तम ग्रन्थ, लिखा है। इन्हें मरे लगभग डेढ़ हज़ार वर्ष हो गये।

भारतवर्ष में शिक्षा का आधुनिक क्रम।*

[लेखक—श्रीयुत विशेश्वरप्रसाद।]

भारतवर्ष केसामाजिक औरधार्मिक जीवन पर पश्चिमीय शिक्षा का बुरा प्रभाव पड़ा है या अच्छा इसके सम्बन्ध में लोग विपक्ष वर्षों से विचार कर रहे हैं और संवाद-पत्रों दोने ओर के लेख में बराबर पक्ष और निकल रहे हैं। इससे मुझे विश्वास है कि अब इस पश्चिमीय शिक्षा का प्रश्न एक निष्पक्ष विचार द्वारा हल हो जायगा। हम पश्चिमीय शिक्षा के उन लाभों पर जो हमें मिल चुके हैं और मिल रहे हैं विचार करेंगे। यह मुझे निश्चय है कि कुछ सज्जनों को यह विचार उच्छृङ्खल प्रतीत होगा। वे कहेंगे कि मैंने इन लाभों का आवश्यकता से अधिक गुण गान किया है पर यह बात नहीं है। परन्तु इन सज्जनों को यह बताने के लिए ही कि मेरा

* श्रीयुत सी० एन० जुतशी के जून १३ के "हिन्दुस्थान रिव्यू" में प्रकाशित "The present system of Education in india." नामक लेख का सम्पादक की आज्ञा से अनुवाद"।

यह मत सच्चे और निष्पक्ष विचार का फल है। जातीयता और युक्ति की दृष्टि से भी यही ठीक है और इस शिक्षा ने जो कार्य हम लोगों के लिए किया है और कर रही है उसको कदापि तुच्छ न समझना चाहिये।

इस देश में आधुनिक शिक्षा-क्रम की नींव पड़ने का पता सन् १८५४ में लगता है। १८५४ के स्मरणीय राजपत्र के बाद १८५६ में वर्तमान शिक्षा-विभाग स्थापित हुआ था। पश्चिमीय शिक्षा की आधुनिक व्यवस्था मद्रास, बम्बई, कलकत्ता, पञ्जाब और इलाहाबाद विश्वविद्यालयों द्वारा जो सन् १८८७ तक मिस्टर केमरन के बराबर प्रयत्न करने से स्थापित हो चुके थे हो रही है। इन विश्वविद्यालयों का कार्य विद्यार्थियों के लिए भिन्न भिन्न विषयों और पुस्तकों को निश्चित करके अपने अपने कालेज और स्कूलों के छात्रों की परीक्षा लेना है। आजकल जो शिक्षा दी जाती है वह और समयों की शिक्षा से कहीं विस्तृत और दृढ़ है। देशभर की संस्थाओं में साहित्य, विज्ञान और पूर्वदेशीय भाषाओं के पढ़ने के प्रबन्ध के अतिरिक्त कानून, इञ्जीनियरी, खेती और आयुर्वेद इत्यादि व्यवसायिक बातों के सीखने का भी प्रबन्ध है। इनका ज्ञान हमारी सांसारिक उन्नति के लिए सब से अधिक आवश्यक है।

मुझे भारतवर्ष की आधुनिक शिक्षा के इतिहास पर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं पर उसके लाभों पर कुछ कहने की इच्छा है। जो लाभ पश्चिमीय शिक्षा से लोगों को हुए हैं उनका उल्लेख १८५४ के राजपत्र में ऐसी उत्तम रीति से किया गया था कि उसका कुछ अंश यहां उद्धृत किये बिना मैं नहीं रह सकता। उस प्रसिद्ध राजपत्र में डाइरेक्टरों की मंडली ने लिखा है:—

जहां तक हो सके भारतवासियों पर उन महान् नैतिक अथवा सांसारिक उपकारों का करना हमारा परम और पवित्र कर्तव्य है जिन को वे ईश्वर की कृपा से इंगलैंड से सम्बन्ध होने के कारण प्राप्त कर सकते हैं और जो उपकारलाभदायक ज्ञान के प्रचार से प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त हम लोगों ने शिक्षा की उन्नति पर विशेष रूप से ध्यान दिया है जिससे न केवल मानसिक योग्यता बढ़े परन्तु उसके प्राप्त करनेवाले ऐसे चरित्र सम्पन्न हों कि आप भारतवर्ष में उनको विश्वस्त पदों पर नियत कर सकें। शिक्षा के प्रचार में सफल होना इंगलैंडवासियों पर बहुत निर्भर है और भारतवर्ष की सांसारिक उन्नति यूरोपीय विज्ञान के अधिक प्रचार से बहुत कुछ संबन्ध रखती है। इससे भारतवासियों को द्रव्य और परिश्रम के उपयोग के आश्चर्यजनक लाभ प्राप्त होंगे। इससे भारतवासी अपने देश के महान् वैभव की उन्नति करने में हम लोगों का अनुकरण करने के लिए जागृत होंगे। इससे वे अपने कार्य को उचित रीति से कर सकेंगे, धीरे धीरे परन्तु अवश्य ही उनको वे लाभ जो धन और वाणिज्य की वृद्धि से होते हैं प्राप्त होंगे और साथ ही साथ हम लोगों को वे बहुतसी वस्तुएं जिनकी हमें अन्य वस्तुओं के बनाने में आवश्यकता पड़ती है और जो हमारे देश के निवासियों में अधिक व्यय होती हैं मिला करेंगी। इससे ब्रिटिश मज़दूरों द्वारा बनी हुई वस्तुओं के लिए एक बहुत बड़ा निकास भी होजायगा।"

इतने पर भी शिक्षापद्धति के मुख्य मुख्य अवगुण यहां बतलाए जा सकते हैं। इससे लोगों की श्रद्धा परीक्षाओं पर बहुत हो गई है और वे उच्च शिक्षा केवल सर्कारी नौकरी के लिए ही प्राप्त करते हैं जिससे शिक्षा का फल बहुत ही संकुचित हो जाता है और रटने की प्रथा बढ़ती जाती है जिससे विद्यार्थियों में उनके सर्टिफिकेटों के अनुसार पूर्ण ज्ञान नहीं होता। तथापि यहां पश्चिमी शिक्षा की ओर झुकाव अधिक हो रहा है। हमारा सम्बन्ध

यहां तो अपने सामाजिक और धार्मिक जीवन पर उसके प्रभाव से है।

अब हमको इसकी परीक्षा करनी चाहिये कि पश्चिमी शिक्षा का प्रभाव हमारी इन दो बातों पर अच्छा पड़ रहा है या बुरा। मैं उन लोगों से सहमत हूं जो यह कहते हैं कि सामाजिक और धार्मिक जीवन में परिवर्तनों का झुकाव बुरी ओर की अपेक्षा अच्छी ओर अधिक है।

लोगों के धार्मिक जीवन पर प्रभाव।

यद्यपि उन लोगों की हँसी उड़ाई जातीहै जो निडर होकर यह कहते हैं कि इस देश के धर्म में अच्छा परिवर्तन हो रहा है तोभी मैं यह ज़ोर के साथ कहूंगा कि हिन्दुस्थानी धार्मिक विचारों में पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव से जिसका वैज्ञानिक दृष्टि से बहुत मूल्य है स्पष्ट उन्नति हुई है। यह इसी शिक्षा का फल है कि लोग अब धीरे धीरे किन्तु निश्चय ही उन मूढ़ विश्वासों और निराधार धार्मिक श्रद्धा के बन्धनों से छुटकारा पा रहे हैं जिनमें वे इतने दिनों से बँधे थे। प्राणविद्या और ऐसी ही दूसरी अनेक विद्याओं जैसे शरीरविज्ञान (Physiology) (Histology) रोग-विद्या (Pathology) इत्यादि के आश्चर्य-जनक प्रयोगों ने जीवन-मरण के उन रहस्यों को हम लोगों को बता दिया है जो इन विद्याओं की अनुन्नत अवस्था में प्राचीन धार्मिक मूढ़विश्वासों ही में दिये रहते थे। इस सम्बन्ध में इन विद्याओं से विलक्षण रहस्यों का पता लगा है और यह भली प्रकार प्रमाणित हो गया है कि जीवन की नित्यता का विश्वास और यह बात कि कुछ नियमों के पालन करने से ही हम स्वर्ग को जा सकते हैं अथवा उनके न करने से हमें नर्क में जाना होगा बिलकुल गप्प है। अब लोग उस सच्चे धर्म को समझने लगे हैं जो बुद्धि और तर्क के विरुद्ध नहीं हैं।

लोगों के सामाजिक जीवन पर प्रभाव।

पश्चिमी शिक्षा ने जो सामाजिक परिवर्तन हम लोगों के जीवनों में किया है और कर रही है उसपर विचार करने से मुझे यही प्रतीत होता है कि वे धार्मिक जीवन के परिवर्तनों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट हैं। भारतवर्ष में अथवा बाहर रहनेवालों को इनका पूर्ण ज्ञान है इससे मैं इसके विषय में संक्षेप ही में लिखूंगा। वह कौनसी बात है जिसने लोगों को विधवाओं के पुनर्विवाह और भिन्नवर्णों में परस्पर विवाह की वकालत करने को और बालविवाह और पर्दे की प्रथा को जिनसे हिन्दुस्थानी समाज में एक रुकावट सी हो रही है हटाने के लिए सामाजिक सुधार-सभाएं करने पर आरूढ़ किया है? इस शिक्षा के बिना हम लोग वैसे ही रहते जैसे कि असभ्य काल में थे और जिसका पता आधुनिक सामाजिक दशा और प्राचीन सामाजिक दशा के इतिहास के मिलान से लगता है। कुछ संकीर्ण हृदय के लोग अभीतक हिन्दुस्थानी विचारों में इस परिवर्तन का कारण यही बताते हैं कि यह कोई आश्चर्य्य की बात नहीं है यदि हमारे समाज में प्राचीन बातों की जगह नई बातें होगई हैं यह तो स्वाभाविक ही है। यह बात ठीक हो या नहीं मैं कुछ नहीं कहूंगा। मैं केवल इतना ही कहूंगा कि बिना अच्छे कारणों के पुरानी बातों के स्थान में अच्छी नई बातें नहीं आ सकतीं। निवेदन यह है कि इसी शिक्षा के कारण हमारा उन बातों पर ध्यान गया है जिनपर हमारी सामाजिक उन्नति निर्भर है।

इन सब के लिए हमको लार्ड विलियम बेंटिंक और लार्ड मेकाले को धन्यवाद देना चाहिये जिन्होंने इस शिक्षा का बीज भारत भूमि में बोया। अब यह बीज एक अच्छा वृक्ष होकर अनगिनती अच्छे फल दे रहा है। इसके तो कहने की आवश्यकता ही नहीं कि यदि वे आज हम लोगों के बीच अपने कार्य को परि-

पक्ष रूप में देखते तो इससे उन लोगों को भी वैसा ही आनन्द प्राप्त हुआ होता जैसा हमको हो रहा है।

अब मैं इतना कहकर कि अब भी दो दल हैं, एक तो वह जो इन परिवर्तनों को अच्छा समझता है, दूसरा वह जो अभीतक प्राचीन मूढ़ विश्वासों के जादू में फँसा है इस लेख को समाप्त करता हूँ। मैं साफ़ २ कहता हूं कि मैं उस दल का हूं जो सदा मूढ़विश्वासों और पुरोहितों की शिक्षाओं को कुछ न समझता हुआ अपनी उन्नति पर ध्यान रखता है और जो यह विश्वास करता है कि भारतवर्ष इस मरी हुई दशा से केवल पश्चिमी शिक्षा और विद्या के सहारे उच्च सामाजिक और धार्मिक दशा को प्राप्त होगा।

सम्मिलित कुटुम्बप्रणाली।

[लेखक–श्रीयुत नेमधर शर्मा।]

आजकल भारत के बुरे दिन हैं, इससे उसके सन्तानों को उसकी पतित दशा देख दुःख होता है। वे लोग उसकी दुर्गति के कारण ढूँढ़ २ उनके दूर करने की निरन्तर चेष्टा किया करते हैं। यह बड़े आनन्द की बात है।

जब से भारत में पाश्चात्य सभ्यता की छाया पड़ी है, तब से यहां की सारी संस्थाएँ चञ्चल हो उठी हैं। सहस्रों वर्षों से अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए भारत सदा प्राणपण से लगा हुआ है। आज वर्तमान शासन के शान्ति समय में वह अपनी गिरी हुई दशा के सुधारने को सचेष्ट हुआ है। यह बात इसीसे सिद्ध है कि देश के विचारवान पुरुष आत्मबल धारण कर देशसेवा का बीड़ा उठाये हुए दिखलाई पड़ रहे हैं। जहां देखो वहां, विज्ञजन सब प्रकार से भारत को सर्वोत्कृष्ट करने को आतुर हो रहे हैं। कोई उपदेशों द्वारा, कोई अपनी लेखनी के बल से अपना २ कर्तव्य पालन कर रहे हैं। यह सब भारत के सौभाग्य के लक्षण हैं। हिन्दी समाचारपत्रों की बदौलत हिन्दी जाननेवालों को भी भारत के हितेच्छुओं के सद्विचार ग्रहण करने को मौक़ा मिल जाता है। एक महोदय का कथन है कि भारतीय सम्मिलित कुटुम्ब प्रणाली अब उपादेय नहीं मानी जा सकती अतएव आप सम्मति देते हैं कि हम लोगों को पाश्चात्य कुटुम्बप्रणाली की शरण लेनी चाहिये। आपने अपनी सम्मति की पुष्टि में दो तीन दलीलें भी पेश की हैं। सचमुच आपकी दलीलें क्या हैं, आप के मार्मिक दुःख के उद्गार हैं और प्रत्येक भारतवासी आप के विचारों से सहमत होने में अचकचा नहीं सकता।

परन्तु जिन दुःखों के दूर करने को और जिन अभावों की पूर्ति के लिए जो उपाय आपने दबी ज़बान से बतलाया है, उससे बहुत लोग नहीं सहमत हो सकते हैं। आप की दलीलों पर बहुत से तर्क किये जा सकते हैं परन्तु यहां उन पर वादविवाद करना उचित नहीं जमझ पड़ता।

आपके कथनानुसार हिन्दू कुटुम्ब अवश्य अनेक रोगों से ग्रसित है। आज वहां सुख और

शान्ति तक के भी चिह्न दृष्टिगोचर नहीं होते हैं, परन्तु क्या पाश्चात्य कुटुम्ब-पद्धति धारण कर लेने पर हिन्दू समाज चिरशान्ति लाभ कर सकेगा, जब कि यूरोपीय समाज में भी अशान्ति का बाज़ार खूब गर्म है।

अवश्य पाश्चात्य सभ्यता की सहायता बिना वर्तमान समय में हम लोग अपना अस्तित्व आधी नहीं रख सकते; निस्सन्देह बिना उसका अनुकरण किये हमारा निर्वाह दिन प्रति दिन कठिनतर होता जाता है। अतएव, बहुत बातों के लिए हम लोगों को पाश्चात्यों का मुख ताकना पड़ता है और ताकना पड़ेगा। यह बहुत अंशों में ठीक भी है। परन्तु यदि हम लोग पाश्चात्य सभ्यता का मोहिनी रूप निरख और उसके वशीभूत होकर अपनी आत्मगत भारतीय सभ्यता का तिरस्कार करने को उतारू हो जायँ, तो पहले यह विचार कर लेना चाहिये कि ऐसा करना कहां तक उपादेय हो सकता है। आज जो हम अपने देश में सर्वत्र प्रतिक्रिया की धूम पा रहे हैं, सब पाश्चात्य सभ्यता के साथ हमारी बाबा आदम की सभ्यता के संघर्षण का फल है और निस्सन्देह इस समय हम लोग जो कुछ देख रहे हैं वह ऐसे बीज पैदा करेगा जिनके ही अंकुरित होने पर भारत का भविष्य गौरव अवलम्बित है! इसी प्रतिक्रिया के कारण आज भारत की नई पीढ़ी कुलबुलाती हुई दिखलाई पड़ती है, उसकी दशा इस समय उस आदमी कीसी है जो अँधेरी कोठरी में पड़ा हुआ एकाएक रोशनी की झलक देख उजाले में तुरन्त आजाने को अकुला उठे। ऐसी अवस्था में वर्तमान पीढ़ी को सुपथ में लेजाना सरल कार्य नहीं है।

भारत सन्तान सच्चे उपदेश के लिए आज जिज्ञासु बन चुके हैं; उनकी प्रवृत्ति अपनी दुर्गति दूर करने को दिन रात ज़ोर पकड़ रही है। देश या विदेश के आत्मसंयमी उदारचेता महानुभाव भारतसन्तानों को अपना शिष्य बनाने के लिए भी उदासीन नहीं हैं और ऐसी अवस्था में महापुरुषों की ही आवश्यकता है। भारत को ऐसे उपदेशकों की आवश्यकता नहीं है जो उसके जातीय भावों का रूप तक भी बदल देना चाहते हों।

भारतीय लोगों के तो वे दिन अब दूर गये, जब पश्चिमीय सभ्यता ही भारत के कल्याण साधन के लिए उपयोगी समझी जाती थी। एक दिन भारत में अवश्य ऐसा उपस्थित हुआ था जब कुछ लोगों ने शिखासूत्र त्याग करना अपनी सच्ची उन्नति समझा था। अब तो लोगों की भक्ति अपनी ही बची खुची चीज़ों पर एकाएक ढल पड़ी है। वे लोग अब अपनी भद्दी वस्तुओं को अपनाने लगे हैं; भले ही कोई उन्हें देख २ हंसे। इस बात का प्रमाण बिहारियों का हिन्दुस्थानी जूतेवाला आन्दोलन है। जब देशवासियों के चित्त में स्वदेशी भाव जागृत हो चुका है तब ऐसी अवस्था में उक्त महोदय ने सम्मिलित कुटुम्बप्रणाली के विरुद्ध जो विचार प्रगट किये हैं वे विचार कैसे लोकप्रिय हो सकेंगे?

अच्छा मान लीजिये कि आपकी दलीलों से क़ायल हो, नवयुवक पाश्चात्य कुटुम्बप्रणाली का अनुकरण करने लगे; उस अवस्था में तब क्या एक प्रकार की सामाजिक क्रान्ति न उठ खड़ी होगी। एक तो भारत आप ही आप दलादली के कारण पीड़ित हो रहा है, तब क्या वह एक नई व्याधि न उत्पन्न हो उठेगी जिससे जातीयता को भारी आघात पहुंचने का भय है। प्रत्येक मनुष्य अपने विचार प्रगट करने को स्वतंत्र हैं परन्तु इसके साथ २ उसको देश काल भी देख लेना चाहिये। देश में अब नये २ दल खड़े करने से विशेष लाभ नहीं दिखलाई पड़ता है और शायद लोग ऐसा करने को तैयार भी नहीं हैं। सहृदय लोगों के मत में अब तो यही जँचने लगा है कि वही आन्दोलन, वही सुधार स्तुत्य

है, श्रेय है जिससे जातीयता का लोप न होने पावे।

भारतीय कुटुम्बप्रणाली की इज़्ज़त लोग भले ही न करें। उनके मतानुयायी उसके आध्यात्मिक गौरव को मानना भले ही अपना कर्तव्य न समझें तथा वे लोग, इस सिद्धान्त की ओर कि भारतीय गार्हस्थ धर्म स्वर्गीय है, इहलौकिक नहीं है, खुशी से कटाक्ष करें परन्तु जातीयता के इस ज़माने में उनके विचार मान्य नहीं हो सकते हैं। हां, यदि भारतीय कुटुम्बप्रणाली के दोषों को दिखला २ जातीय भित्ति पर सुधार के उपाय बतलाये जाँय तो सब लोग प्रसन्नतापूर्वक बातें सुन और समझ सकते हैं।

भारतीय युवकों ने अब जातीयता के महत्व का पाठ सीखना आरम्भ कर दिया है और आगे की पीढ़ी जापानियों की भांति पाश्चात्य रंग ढंग में परिप्लुत हो जाने से घृणा ही न करेगी किन्तु नूतन संस्कारों द्वारा अपने सदा बहुकाल से मान्य आदर्श सिद्धान्तों और संस्थाओं के दोषों को दूर करते हुए देशसेवा करेगी।

शान्ति का दुरुपयोग।

[लेखक—अमेरिकाप्रवासी श्रीयुत शिवप्रसाद गुप्त।]

आजकल वास्तविक ज्ञान के अभाव से हमारे देश में अनेक प्रकार के उपद्रव हो रहे हैं। शब्दों का ठीक अर्थ में, ठीक समय पर, ठीक प्रसंग में उचित व्यवहार न होने से वैसी ही हानि होती है जैसी किसी औषधि के दुरुपयोग से होती है। किसी ने ठीक कहा है कि "अच्छे शिक्षित वैद्य को चिकित्सा से मरना अधूरे वैद्य की दवा से अच्छे होने से अच्छा है।"

देखिये, अब इसी 'शान्ति' शब्द को ले लीजिये। यह एक महान् शब्द है किन्तु इसका इतना दुरुपयोग आजकल हुआ है कि इसने देश में मृत्यु ही उत्पन्न कर दी है।

शान्ति किसको कहते हैं, इसका वास्तविक अर्थ क्या है, इसका प्रयोग कब किसके लिए किस समय होना चाहिये यह सब हम भूल गये। बस केवल शब्दमात्र ही याद रहा और उसका दुरुपयोग यहां तक बढ़ा कि हमारा जीवन ही शान्त होगया।

संसार में, प्रकृति में, सृष्टि के रहस्य में सभी जगह आन्दोलन विराजमान है। हिन्दू लोग अपने ज्ञान स्रोत से तथा वैज्ञानिक लोग अपनी खोज से यह जानते हैं कि इस सृष्टि के वर्तमान रूप के पूर्व सारे जगत का मूल बीज शान्ति की अगाध निद्रा में सो रहा था। प्राचीन धार्मिकों के अनुसार ब्रह्मा की रात्रि बीतने पर अर्थात् उनके पुनः जागने पर अर्थात् उनकी शान्ति भंग होने पर सृष्टि का आरम्भ हुआ और वैज्ञानिकों के मत के अनुसार उस ब्रह्माण्ड विराट् गोले में सृष्टि-बीज-समूह में जो शान्ति थी उसके किसी प्रकार से (प्रकार का पता अभी वैज्ञानिकों को नहीं चला है) भंग होने पर अर्थात् उसमें आन्दोलन उपस्थित हो जाने से सृष्टि का चक्र फिर चल पड़ा।

जिसका चक्र सदा चलता हो, जिसमें अहर्निशि परिवर्तन होता रहे वहां शान्ति कैसे आ सकती है। यदि शान्ति आवेगी तो चक्र का चलना रुक जावेगा, परिवर्तन होना बन्द हो

जावेगा। बहाव रुकने से जिस प्रकार जल में दुर्गंधि आजाती है, दिल का धड़कना बन्द होने से जैसे शरीर ठंढा होजाता है उसी प्रकार सृष्टि का अन्त भी शान्ति से हो जाता है।

शान्ति मृत्यु का चिह्न है। वह सड़ान व बदबू का नाम है, चलते हुए पहिये का रुक जाना है, बढ़ते हुए पौधे का सूख जाना है, पानी का तालाब में रुक कर सड़ जाना है, जीवित शरीर का मृतक हो जाना है। इसी प्रकार यह शान्ति जीती जागती जाति के लिए भी मृत्यु का संदेशा है।

यदि हम प्रकृति ही से शिक्षा ग्रहण करें तो हमें क्या दिखलाई पड़ता है? हमें संसार में कहीं भी शान्ति नहीं दिखाई देती। पौधे को लीजिये तो क्या देखने में आता है? वह जल वायु दूसरे पौधे और कभी २ जीवजन्तुओं को भी खाकर अपने जीवन पर्यन्त बढ़ता ही जाता है उससे शान्ति की शिक्षा नहीं मिलती। फिर लीजिये कीड़े मकोड़ों को। कभी उन्हें किसी ने शान्त अवस्था में नहीं देखा है। दुर्बीन में जो सूक्ष्म से सूक्ष्म जन्तु देखे जाते हैं या जन्तु होने के पूर्व अवस्था में जो जीव का स्वरूप होता है उसमें भी अशान्ति ही मिलती है। वह भी सदा हिला डुला करता है।

अब इनसे बढ़कर बड़े जीवों को देखिये तो आपको मालुम होगा कि जन्म की घड़ी से लेकर मृत्यु तक उन्हें एक क्षण भी शान्ति नहीं मिलती। मिले भी कैसे क्योंकि जीवन तो अशान्ति का नाम है। उजाले में अंधेरा, कहां से आसकता है।

अब और प्रकृति की वस्तुओं को लीजिये तो क्या देखने में आता है? यदि हवा एक क्षण के लिए शान्त हो जावे तो लाखों जीव सांस लिए बगैर मर जावें, सूर्य यदि शान्त हो जावे तो दिन, रात्रि, महीना, मौसम ही बदलना बन्द हो जावे, पानी यदि न बहे तो सड़कर दुर्गंधि देने लगे। मनुष्य यदि हाथ, पैर न हिलावे तो उसे लोग समझेंगे कि लकवा मार गया है। सांस न ले तो दम भर में मर जावे। तो फिर यह शान्ति शान्ति का बखेड़ा कहां से आ उपस्थित हुआ जो हमारे राष्ट्रीय जीवन में घुन सा लग गया है।

धार्मिक विचार के अनुसार भी एक मनुष्य को कठिन परिश्रम करके ब्रह्मचर्य अवस्था में विद्या लाभ करना होता है। गृहस्थ अवस्था में घरबार के झंझट में रहना होता है। वानप्रस्थ अवस्था में भी शान्ति नहीं खोजी जाती किन्तु कठिन तपस्या ही करना परम धर्म होता है, यहां पर तपस्या का भी अर्थ जरा विचार लेना प्रसंगविरुद्ध न होगा। तपस्या आंख बन्द कर के चुपचाप बैठने का नाम नहीं है किन्तु किसी ज्ञानान्वेषण में निमग्न हो उसी में लिप्त हो जाने को तपस्या कहते हैं। कठिन मानसिक चिन्ता और विचार के बाद मस्तिष्क में जो आन्दोलन होता है उसे अशान्ति कहते हैं। चौथेपन सन्यस्त में भी शान्ति नहीं, वहां भी सेवा ही धर्म है, अपनी सेवा नहीं, जैसा कि आजकल देखा जाता है, किन्तु दूसरों की सेवा करना। फिर यह शान्ति कहां से कूद पड़ी? सुनिये यह अन्तिम अवस्था है। अर्थात् जब मनुष्य का शरीर जर्जर हो जाता है, कोई काम करने योग्य नहीं रहता तब मनुष्य शान्ति की इच्छा करता है अर्थात् मृत्यु चाहता है।

उपर्युक्त कथन के उपरान्त मैं यह प्रश्न भारतीयों से करना चाहता हूं कि इसपर विचार के उपरान्त आप मुझे बताइये कि हम लोग जो दिन रात्रि अहर्निश शान्ति शान्ति का पाठ किया करते हैं उसका क्या अर्थ है? क्या हम अपने अस्तित्व से दुःखी हैं और शान्ति की निद्रा में मृत्यु चाहते हैं? क्या हम भीरु हैं कि संसार के युद्धस्थल से पलायन कर मृत्यु के पीछे छिपना चाहते हैं। यदि नहीं तो इस

भ्रममूलक शब्द को त्यागिये, संसार में यदि केवल जीना ही है तो भी अशान्ति का पाठ पढ़िये, यदि मुख ऊँचा कर संसार में रहना है तो अधिक अशान्ति के लिए कटिबद्ध रहिये। अशान्ति कोई बुरी वस्तु नहीं है, वह जातीय जीवन है, नदी का मीठा सुस्वादयुक्त बहता हुआ पानी है। प्राणाधार चलती हुई वायु का ही नाम अशान्ति है। ब्रह्माण्ड के जयगोले में आन्दोलन उत्पन्न करनेवाली आदि शक्ति का नाम भी अशान्ति ही है. जीती जागती जाति में सदा अशान्ति ही का राज्य रहता है, बिना अशान्ति के कोई कार्य इस संसार में नहीं हो सकता, जीना हो, उठना हो तो अशान्ति के मार्ग में पदार्पण करो नहीं तो शान्ति के गड्ढे में सदा के लिए मृत्युनिद्रा में विश्राम करो। अशान्ति से हमारा यह तात्पर्य नहीं कि आप आपे से बाहर हो जायँ, आप उद्दंड हो जायँ। शान्ति त्यागने से हमारा एकमात्र तात्पर्य यह है कि कर्मयोग की विद्युत शक्ति आपकी रगों में दौड़ने लगे, आप कर्मशील हो जायँ और शान्ति की चादर ओढ़े हुए आप मृत्यु को न प्राप्त हों।

जलचर जीव।*

[लेखक—श्रीयुत दशरथ बलवंत जादव।]

अन्यजीवों के समान जलचर जीवों की भी शारीरिक गठन जुदी २ होती है। जलचर जीव केवल जल के समान द्रव पदार्थ से ही अपना निर्वाह करते हैं। हमारा मानवी खाद्य उदर में जाने के बाद परिपाक करने के लिए उसका रस बनता है। और इस रस के द्वारा खाद्य, शरीर के अंग प्रत्यंग में समाकर रक्त मांसादिक का सृजन करता है। उपर्युक्त जीव तरल पदार्थ खाते हैं और शिकार के खाते समय जीर्ण करनेवाला रस छोड़ देते हैं। इस प्रकार जब शिकार का शरीर गलकर द्रव रूप होजाता है, वे उसे चूसने लगते हैं। चूसते २ केवल पकड़े हुए जीव का सूखा चमड़ा बाकी रह जाता है। हेनरी कोपिन नामक एक फ़रासीसी वैज्ञानिक ने "ला नेचर" नामक सामयिक पत्र में लिखा है कि, उपर्युक्त जीवों की संख्या कम नहीं है। उनमें "डाइटिस्कम" नामक एक जलचर जीव की आहारप्रणाली की कथा इस प्रकार वर्णित है। इस जीव का निवास-स्थान जल है। हमारे देश में भी जलाशयों की कमी नहीं है।

इस जीव के मुंह नहीं होता है। इसके दाढ होती हैं। इनके द्वारा यह जीव शिकार को पकड़ता है, उसके शरीर में हजमी रस को प्रवेश कर देता है और जब तक कि पकड़े हुए जन्तु का शरीर जीर्ण होकर नहीं गल जाता तब तक दाढ़ के अग्रभागस्थित सूक्ष्म छिद्र द्वारा जलमिश्रित आहार चूस डालता है। यह जीव पहिले शिकार के रक्त को चूसता है उपरान्त ऊपर लिखे अनुसार प्रथम शरीर को हजम कर के पीछे भोजन करता है।

---

* प्रवासी से अनुवादित।

मि० पोर्टियर ने उपर्युक्त जीव के सामने एक छोटी मछली फेंककर उसकी समस्त भोजन-प्रणाली देखी है। यह जीव पहिले मछली के शरीर को दाढ़ों के द्वारा पकड़कर उसमें विष प्रवेश कर उसे मूर्छित कर देता है। कुछ काल के उपरान्त काला हजमी रस उसके शरीर में छोड़ता है। दुरबीन से यह बात स्पष्ट दिखाई पड़ती है कि यह जीव अपनी रस-शक्ति द्वारा मछली के अंग-प्रत्यंग को तरल कर देता है। थोड़ी देर पश्चात् मछली के शरीर में एक स्रोत लक्षित होता है। इस स्रोत के द्वारा शरीर का सम्पूर्ण द्रव पदार्थ उस जीव की दाढ़ के पास पहुंचता है और दाढ़ के अग्रभागी सूक्ष्म छिद्र द्वारा उदर में प्रवेश करता है। इसप्रकार मछली अथवा अन्य शिकार के शरीर से समस्त द्रव पदार्थ चूस डालता है। प्रायः आध मिनिट-तक शरीर शुष्क रहता है। तदुपरान्त उक्त जीव शिकार के शरीर में हजमी रस प्रवेश करता है। इस कारण शिकार का शरीर फिर से द्रव रूप हो जाता है। 'डाइटिस्कस' अपनी शोषण क्रिया फिर से प्रारम्भ कर देता है। इस प्रकार बारंबार इस क्रिया के करने से शिकार केवल अस्थि-पंजर मात्र रहजाता है।

हमारे देश में भी इस तरह के जीवधारी होते हैं। परंतु हम उनका नाम नहीं जानते; यह जीव मिट्टी के तेल की बोतल में तेल डालने के चोंगे के समान ऊपर से चौड़ा और फिर नीचे क्रमशः सकड़ा गड्ढा करके उसमें रहता है। उस गड्ढे में कोई पिपड़ा व उसी के सदृश छोटे जीव के गिरने पर उसे पकड़कर वह खा जाता है। जब वह जीव भागने की चेष्टा करता है तब उसके शरीर पर धूल डाल कर घबरा देता है। इस प्रकार उसका भागना बंद कर देता है। इस जीवधारी को अंगरेज़ी में पिपीलिका सिंह (Ant Lion) कहते हैं। इस जीवधारी की भोजन-प्रणाली उल्लिखित जलचर जीव के सदृश है।

इन बातों की ओर हमारे देशवासियों ने ध्यान नहीं दिया है। परन्तु अब मालूम पड़ता है कि लोगों का मन इस ओर अवश्य आकर्षित हो रहा है।

होली का हुल्लड़।*

[लेखक—श्रीयुत नाथूराम शंकर शर्मा।]

(दोहा)

होली का हुल्लड़ मचा, उलें उजबक ऊत।
भूखे भारत पै चढ़ा, भक्तक-भ्रम का भूत॥ १॥

होलिकाष्टक।

(सुभद्रा-छन्द)

(१)

उद्यम को कर अन्ध, आंख अवनति ने खोली है।
धन की धूलि उड़ाय, अकिञ्चनता हँस बोली है॥
ठसक भीतर से पोली है।
खुल २ खेलो फाग, भड़क भारत की होली है॥

(२)

गर्व—गुलाल लपेट, रङ्ग रिस का बरसाया है।
खाय वैर-फल फूट, फड़कता फगुआ पाया है॥
भरी अनबन से झोली है।
खुल २ खेलो फाग, भड़क भारत की होली है॥

(३)

शोणित लाल सुखाय, लटे तन पीले करलाये।

---

* "अनुराग-रत्न से उद्धृत।"

पट पट पीटें पेट, सांग भुक्कड़ भी भरलाये ॥
अधोगति सब को रोली है।
खुल २ खेलो फाग, भड़क भारत की होली है ॥

(४)

गोरी-धन पर आज धनी की चाह टपकती है।
श्यामा लगन लगाय, पिया की ओर लपकती है॥
चढ़ी चञ्चल पर भोली है।
खुल २ खेलो फाग, भड़क भारत की होली है ॥

(५)

लोक-लाज पर लात, मार कर बात बिगाड़ी है।
ऊल रहा दुरदङ्ग, सुमति की फरिया फाड़ी है ॥
अकड़ की चमकी चोली है।
खुल २ खेलो फाग, भड़क भारत की होली है ॥

(६)

ऊल ऊल कर ऊन, ढमाढम ढोल बजाते हैं।
थिरकें थकें न थोक, गितक्कड़, तुक्कड़ गाते हैं ॥
ठना ठन ठनी ठठोली है।
खुल २ खेलो फाग, भड़क भारत की होली है ॥

(७)

सब के मस्तक लाल, न किस का मुखड़ा काला है।
भङ्गड़ भस्म—रमाय, रहे हुल्लड़ मतवाला है ॥
न इसमें कपटक-टोली है।
खुल २ खेलो फाग, भड़क भारत की होली है ॥

(८)

चढ़े न भ्रम की भङ्ग, कहीं पौराणिक-शङ्कर को।
समझे अपने भूत, न ऐसे यूथ भयंकर को ॥
निरन्तर-समता होली है।
खुल २ खेलो फाग, भड़क भारत की होली है ॥

भारतवर्ष के विश्वविद्यालयों में हिन्दी का स्थान।

[लेखक—श्रीयुत राजेन्द्रप्रसाद एम० ए० बी० एल०।]

इस विषय पर लेख लिखने की आवश्यकता बहुतों के देखने में नहीं आवेगी।

यदि किसी अन्य देशवासी के सामने जो भारतवर्ष की वर्तमान अवस्था से परिचित न हो इस लेख को रक्खा जाय तो वह शीर्षक देखकर घबड़ा जायगा और वह लेख लिखनेवाले को पागल समझने लग जाय तो आश्चर्य की कोई बात नहीं है, क्योंकि ऐसे विषय पर विचार करने की आवश्यकता होना ही उस देश अथवा जाति के अधःपतन का बहुत बड़ा प्रमाण है। पर आज हमें इस विषय पर विचार करने की आवश्यकता है—आवश्यकता नहीं यह हमारा कर्त्तव्य है; क्योंकि काल की गति से आज हम सब कुछ पढ़लेते हैं, पंडित बन जाते हैं, वैज्ञानिक बनाने का दम भरने लग जाते हैं, अङ्गरेज़ी के महाविद्वान् होने का दावा करने लग जाते हैं; पर अपनी मातृभाषा से बिलकुल ही कोरे रह जाते हैं, उसमें एक पत्र भी शुद्ध शुद्ध नहीं लिख सकते, उसमें पढ़ने योग्य साहित्य भी है इसका तो हमें पताही नहीं चलता। इसके अक्षरों तक से हमें परिचय नहीं होता। आज भारतवर्ष में पांच विश्वविद्यालय विद्यमान हैं और अब नये नये विश्वविद्यालयों के बनाने की तैयारी हो रही है, पर भारतवर्ष के विश्वविद्यालय होने पर भी उनमें भारत की भाषा हिन्दी को स्थान नहीं है,—यदि कहीं स्थान है भी तो बहुत ही संकुचित। मैं इस लेख में यही दिखलाने का यत्न करूंगा कि हिन्दी के साथ यह बर्ताव अत्यन्त अन्याय का है

और इसी अन्याय के पाप से शिक्षा का प्रचार उतनी तेजी से नहीं हो सकता जितनी हम चाहते हैं।

जिन लोगों को भारत के किसी विश्वविद्यालय से किसी प्रकार का सम्बन्ध हुआ है वे जानते हैं कि कुछ दिन पहले हिन्दी क्या किसी भी देशी भाषा की (जिसे विश्वविद्यालयों के कर्मचारी Vernacular कहते हैं) पाठ्य विषयों में गिनती नहीं होती थी। आज इतना अवश्य हुआ है कि प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी देशी भाषा में लिखने पढ़ने की योग्यता का प्रमाण देना पड़ता है-अर्थात् मैट्रिक्युलेशन परीक्षा के विषयों में देशी भाषा भी एक विषय है। इसके लिए भाषा का अथवा उसके व्याकरण और साहित्य का उस प्रकार का ज्ञान आवश्यक नहीं है जैसा कि अंगरेज़ी अथवा किसी दूसरी भाषा के साहित्य और व्याकरण का। यदि कोई विद्यार्थी संस्कृत, अथवा फारसी, लेटिन, अथवा ग्रीक, फ्रेंच अथवा जर्मन, हेब्रू अथवा अर्बी को अपना पाठ्य विषय चुनले तो उसे एम० ए० परीक्षा तक उस विषय को पढ़ने का अधिकार हो जाता है और वह एम० ए० की उपाधि भी उसी भाषा में प्राप्त कर सकता है।

पर हमारी हिन्दी की क्या दशा है? कलकत्ते के विश्वविद्यालय में हिन्दी का पठन बी० ए० परीक्षा तक अनिवार्य है पर हिन्दी साहित्य पढ़ना अनिवार्य नहीं-अर्थात् परीक्षा में ऐसे प्रश्न किये जाते हैं जिनसे केवल इस बात की जांच होती है कि विद्यार्थी कुछ हिन्दी में लिख पढ़ ले सकता है अथवा नहीं। उसे ग्रन्थ पढ़ना आवश्यक नहीं। यदि वह शुद्ध हिन्दी लिख-सके तो उसे व्याकरण पढ़ने की भी आवश्यकता नहीं। उसे साहित्य से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होने पाता। इसका फल यह होता है कि यद्यपि आज कल के विद्यार्थी हिन्दी में कुछ लिखने पढ़ने का अभ्यास कर लेते हैं पर उसके मधुर साहित्य के सरोवर का आनन्द उन्हें नहीं मिलता और जिसको साहित्य से आनन्द नहीं मिला वह फिर उस साहित्य की ओर क्यों ध्यान देने लगेगा? यही कारण है कि आज भाषा को जानते रहने पर भी लोग उसके रत्नों को नहीं जानते। यदि बी० ए० श्रेणी तक शिक्षा पाये हुए किसी विद्यार्थी से बातें कीजिए तो आपको स्पष्ट देख पड़ेगा कि अंगरेज़ी कवियों और ग्रन्थकारों से वह एक प्रकार परिचित तो है पर हिन्दी में तुलसीदास के अतिरिक्त और किसी भी कवि का नाम उसे मालूम नहीं। यदि हिन्दी और अंगरेज़ी दोनों भाषाओं को समान स्थान मिला रहता तो वही विद्यार्थी केवल शेक्सपीयर, मिल्टन और टेनिसन से ही नहीं किन्तु सूर, तुलसी और हरिश्चन्द्र के ग्रन्थों से भी परिचित रहता। इतना ही नहीं प्रत्युत् इन्हीं के ग्रन्थों को अधिक प्रेम से पाठ करता और इन्हीं से अपना और देश का गौरव मानता और दुःख सुख में इन्हीं की पुस्तकों का आश्रय लेता।

खेद का विषय है कि देशी भाषा की शिक्षा के अभाव से, अपने साहित्य के रत्नों से अनभिज्ञ रहने से, हिन्दी भाषा की परीक्षा के लिए अनिवार्य विषय न रहने के कारण आज हमको वह देशप्रेम नहीं होता, मातृभाषा पर वह ममता नहीं होती। मैं तो यहां तक कहने को प्रस्तुत हूं कि यदि किसी जाति का जीवन नष्ट करना अभीष्ट हो तो उसकी भाषा का नाश कर देना ही उसके नष्ट करने का सबसे सुगम उपाय है, क्योंकि भाषा जीवित रहने पर और सब कुछ नष्ट हो जाने पर भी फिर वह मृतप्राय जाति जीवितावस्था को प्राप्त हो सकती है पर भाषा के नष्ट होजाने पर वह कदापि उठ नहीं सकती। इस लिए आज हमें अपनी भाषा को बचाये रखना हमारा परम धर्म है। और यह बहुत बड़ा पाप है कि हम अपनी भाषा से अलग रक्खे जायँ और अन्य २ भाषाओं द्वारा हमारी शिक्षा हो। यह ठीक उसी प्रकार का पाप है जैसे माता के

स्तनों से दूध टपकते रहने पर भी बच्चे को भूखा रक्खा जाय अथवा किसी अन्य जानवर का हानिकारक दूध पिलाया जाय।

अब प्रश्न यह रहा कि क्या हिन्दी में ऐसे ग्रन्थ हैं जो बी० ए०, एम० ए० श्रेणी के विद्यार्थी पढ़ सकते हों? मैं समझता हूं कि यह कहना कि हिन्दी में ऐसे ग्रन्थ नहीं हैं, केवल हिन्दी-भाषियों पर ही नहीं पर समस्त भारतवर्ष पर कलंक लगाना है। यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि नई प्रथा की बहुत उत्तम पुस्तकें नहीं बनी हैं। बङ्गाल के हेमचन्द्र, बङ्किमचन्द्र, रमेशचन्द्र, मधुसूदनदत्त और रवीन्द्रनाथ जैसे लेखक और कवि हिन्दी में इधर बहुत नहीं हुए हैं। इसका कारण यह है कि बँगला में अंगरेज़ी पढ़कर के भी बंगभाषी महाशयों ने बंगभाषा का तिरस्कार नहीं किया। अपनी माता को माता समझते रहे और अन्य देशों से सुन्दर सुन्दर फूलों के गुच्छे लाकर उसके चरणों पर चढ़ाते रहे। पर हमारे हिन्दीभाषी अंगरेज़ी पढ़नेवालों का इस ओर ध्यान ही नहीं गया। फल यह हुआ है कि आजकल के नवशिक्षित युवक ऐसा समझने लग गये हैं कि हिन्दी में पढ़ने योग्य कोई पुस्तक ही नहीं है। इसके लिए हम उनको दोषी नहीं ठहराते, क्योंकि जिसकी शिक्षा बचपन ही से इस प्रकार की हुई है कि उसको अंगरेज़ी ग्रन्थों के अतिरिक्त और कोई ग्रन्थ देखने का अवसर ही नहीं मिला, जिसके भाव बचपन ही से अंगरेज़ी रंग में रँगे गये, जिसको अंगरेज़ी बोलना, पढ़ना, अंगरेज़ी चाल चलना और अंगरेज़ी को नकल सब कामों में करना बचपन ही से सिखाया गया, यहां तक कि जिसको अपने पवित्र धर्म की दीक्षा तक भी नहीं दी गई, वह यदि अपने देश के भावों को अपने कवियों के विचारों को न समझे तो आश्चर्य ही क्या है? ऐसे मनुष्य को यदि शेक्सपीयर के सोनेट (Sonnet) अच्छे लगें और बिहारी के दोहों से आनन्द न मिले तो आश्चय ही क्या है? ऐसे मनुष्य को यदि मिल्टन की कविता से, जिसमें ईसाई धर्म की बातें कूट कूट कर भरी हुई हैं, आनन्द मिले और तुलसीदास की रामायण सूखी, पुराने जमाने के मूर्खों की कहानी सी जचे जिसमें बहुत ऐसी बातें भरी हैं (Superstition) जिन पर कोई सभ्य (Civilized) मनुष्य विश्वास नहीं कर सकता तो यह खेद की बात अवश्य है पर इसमें आश्चर्य नहीं। इस प्रकार की शिक्षा पाये हुए मनुष्य को यदि हर्बर्ट की कविता पसन्द आवे और सूरदास महा ऊँचे तो इसमें भी आश्चर्य नहीं। वह यदि कबीर की "उलटी बानी" और रहीम की सीधी बातें समझने में असमर्थ हो तो उसका कोई दोष नहीं है। यह हमारी शिक्षा का दोष है, हमारा नहीं। इसीलिए मैं कहता हूं कि हिन्दी को वही स्थान मिलना चाहिये जो अंगरेज़ी, संस्कृत, फारसी अर्बी, हिब्रू तथा अन्य देशीय और भाषाओं को विश्वविद्यालयों में मिला है। जब तक ऐसा नहीं किया जायगा, यह घोर अन्याय जो हम पर, हमारी सभ्यता पर, हमारे देश पर और हमारी मातृभाषा पर हो रहा है दूर नहीं होगा।

एक बात विचार करने की है कि क्या यह सचमुच दोष की बात है कि आज हिन्दी में अंगरेज़ी ढर्रे की बहुत पुस्तकें नहीं हैं? नकलबाजी बहुत सहज काम है, दूसरों के भाव लेकर ग्रन्थ रच देना उतना कठिन नहीं, अन्य भाषा और अन्य सभ्यता के विचारों को लेकर अपने घरों में फैलाना सुगम तो अवश्य है पर यह कहां तक लाभदायक है इसमें मतभेद हो सकता है।

इसलिए मैं यह कहता हूं कि यदि आज-हिन्दी में अंगरेज़ी ढर्रे की अच्छी पुस्तकें, (मैं अच्छी पुस्तकों का ही उल्लेख करता हूं क्योंकि बुरी पुस्तकें बहुत बन चुकी हैं और बन रही हैं यहां तक कि Mysteries of London का भी अनुवाद "लंडन रहस्य" छपही रहा है) जो आज-

कल के अच्छे विचारवाले शिक्षित मनुष्य पढ़ सकें, नहीं बनी है तो यह एक प्रकार से हिन्दी का सौभाग्य ही समझना चाहिये, क्योंकि अभी तक वह निर्मल प्रवाह जो चन्दबरदाई से लेकर सूर, तुलसीदास आदि तक बहता आरहा है बाहरी वस्तुओं से गन्दा नहीं किया गया है। यदि मुसलमान कवियों ने हिन्दी में ग्रंथ लिखे तो वे भी हिन्दी और हिन्दू भाव ही को प्रधानता देते गये। यही एक सबूत है कि हमारी सभ्यता में कितना अधिक बल था, और आज यदि हम अपने भावों को प्रगट करने में लज्जा मानते हैं, अपने पूर्वजों के विचारों से घृणा करते हैं तो यह समझना चाहिये कि हमारा अधःपतन इससे और अधिक नहीं हो सकता। इसलिए यह समझना कि हिन्दी में अंगरेज़ी ढर्रे के ग्रंथ अर्थात् अपनी चाल छोड़ नकलबाजी के ग्रन्थ बहुत नहीं हैं यह एक बार ही दुःख की बात नहीं है। जिस जाति का साहित्य अन्य सभ्यता के विचारों को प्रकट करने की चेष्टा करता है और अपने भावों से संसार को वंचित रखता है वह ठीक उस प्रकार की चेष्टा करता है जैसा कि कौवा अपनी चाल छोड़ हंस की चाल चलने लगता है और फल यह होता है कि वह अपनी चाल भूल जाता है और हंस की भी चाल नहीं चल सकता।

हमारे विश्वविद्यालयों में अंगरेज़ी साहित्य का स्थान बहुत ऊंचा है। जिसे अंगरेज़ी सभ्यता के भावों को जानना है उनके लिए वह साहित्य खुला है। वह उसे पढ़ सकते हैं, उससे लाभ उठा सकते हैं। यहां तक कि इच्छा नहीं रहने पर भी सभी विद्यार्थियों के लिए कुछ कालतक अङ्गरेज़ी साहित्य का अध्ययन अनिवार्य है। तो फिर हिन्दी भाषा में अथवा किसी अन्य देशी भाषा में नकली अंगरेज़ी साहित्य पढ़ने का क्या आवश्यकता है ? हिन्दीसाहित्य द्वारा हिन्दी-भाषियों के भाव—विचार जानने ही की चेष्टा श्लाघनीय है। यदि यह मान लिया जाय कि हिन्दी साहित्य में अंगरेज़ी भावों का अभाव दोष नहीं वरन् इसके गौरव का कारण है तो कोई कारण ऐसा नहीं है जिससे हिन्दी को वही स्थान विश्वविद्यालयों में नहीं दिया जाय जो अन्य भाषाओं को दिया गया है।

आजकल जो अंगरेज़ी की पुस्तकें बी० ए० एम० ए० परीक्षा के लिए पढ़ाई जाती हैं वह प्रायः इस प्रकार की होती हैं (१) कुछ पुस्तकें शेक्सपियर, मिल्टन आदि के समय की (२) कुछ उनके भी पहले की जैसे चौसर आदि के ग्रन्थ (३) कुछ और भी पुरानी जैसे बिउल्फ इत्यादि अथवा एलफ्रेड के समय की (४) कुछ पुस्तकें अर्वाचीन ग्रन्थ-कर्ताओं की लिखी हुई रहती हैं जैसे पद्य में टेनिसन, वर्डस्वर्थ, ब्राउनिंग, शैली इत्यादि का और गद्य में कारलाइल, डिकेन्स, थाकरी इत्यादि की। यदि इन ग्रंथों का समय और भाषा के विचार से विभक्त किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि चतुर्थ श्रेणी की पुस्तकों को छोड़कर और सब प्रायः ३०० वर्ष के पूर्व की हैं और अधिकांश का भाषा ऐसी है जो आज की अंगरेज़ी भाषा से बिलकुल मिलता जुलता नहीं है। शेक्सपियर की भाषा और आज की अंगरेज़ी भाषा में इतना अन्तर है (शायद इससे अधिक ही होगा कम नहीं) जितना तुलसीदास सूरदास की भाषा और वर्त्तमान हिन्दी में। चौसर की भाषा तो मानो एक दूसरी ही भाषा है जैसे चन्दवरदाई की भाषा वर्त्तमान हिन्दी जाननेवालों के लिए बिलकुल ही एक नई भाषा है। फिर बिउल्फ और एलफ्रेड की भाषा को तो अंगरेज़ी कहते ही नहीं, उसे एंग्लो सेक्सन कहते हैं। उसका मुकाबला शायद प्राकृत से हो। भेद यह होगा कि प्राकृत को संस्कृत ग्रन्थों में भी जहां तहां स्थान मिला है, पर इस एंग्लो सेक्सन को और कहीं स्थान नहीं मिला। आज यदि हमें अंगरेज़ी साहित्य में पाण्डित्य लाभ करने के लिए उस भाषा और साहित्य का ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्त

करने के लिए कैसे ग्रन्थ पढ़ने की आवश्यकता होती है जिनसे न तो ऐहिक न पारलौकिक कोई भी लाभ नहीं होता तो हमें अपने देश की भाषा का ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्त न करने देने का क्या कारण हो सकता है? तेरहवीं शताब्दी के अंगरेज़ किस प्रकार से रहते थे, किस प्रकार से तीर्थाटन किया करते थे, भिन्न भिन्न श्रेणी के लोग आपस में किस प्रकार एक दूसरे के साथ बर्ताव किया करते थे, पार्सन (पुरोहित) की क्या शक़्ल होती थी और मिलर (चक्की चलानेवाला) कैसा होता था। इन सब बातों को जानने के लिए, और इस समय के अंगरेज़ी के व्याकरण का क्या रूप था यह जानने के लिए हमें चौसर और पियर्स प्लाडमैन पढ़ना आवश्यक है। पर हमारे पूर्वज कैसे वीर थे, उन्होंने किस प्रकार मुसलमानों के साथ युद्ध किया और उस समय के लोगों के जीवन का हाल जानने के लिए चन्द वरदाई का पाठ अनावश्यक है! १६वीं और १७वीं शताब्दी में इंगलैण्ड और यूरोप के अन्य देशों में किस प्रकार का धर्म विप्लव हुआ था इसके जानने के लिए मिल्टन की पुस्तकें पाठ्य हैं, पर भारतवर्ष का वही धर्म विप्लव जानने के लिए सूर, तुलसीदास, कबीर, नाभाजी, दादूदयाल, तथा रामदास की पुस्तक पाठ्य नहीं है! यह हमारे दुर्भाग्य की बात है। अब भी यदि हम अपने देश के सच्चे इतिहास से परिचित होना चाहते हैं तो देश के साहित्य का सञ्चय करें, अध्ययन करें और अपना गौरव अपने साहित्य में समझें। नहीं तो दूसरे के पर लगाकर जो उड़ने की चेष्टा करता है वह औंधे मुंह गिरता है। यही नहीं यह भारतवर्ष के विश्वविद्यालयों का धर्म है कि वे भारत के जातीय साहित्य को उन्नति नहीं तो उसका सञ्चय अवश्य करें। यदि उसके सञ्चय का प्रबन्ध हो जाय तो इसमें सन्देह नहीं कि उसकी उन्नति भी अवश्य होगी'। भावी ढाका विश्वविद्यालय की समिति ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि अंगरेज़ी राज्य के समय बंगला का बहुत उन्नति हुई है और ढाका विश्वविद्यालय का यह कर्तव्य है कि उसकी और भी उन्नति का उपाय करे। खेद है बिहार के भावी विश्वविद्यालय के अधिभावकों को यह बात न सूझी। सूझती कैसे उनमें हिन्दी का प्रेमी कोई भी नहीं था? सभी अंगरेज़ी के रंग में रँगे हुए थे और हिन्दी को बिना जाने हुए भी बहुत तुच्छ दृष्टि से देखनेवाले थे। इसका खेद और लज्जा हम लोगों को होना चाहिये। पर केवल इसीसे काम नहीं चलेगा। बम्बई प्रान्त में मराठी भाषा एम० ए० उपाधि परीक्षा के लिए भी पाठ्यविषयों में है। कुछ ही दिन हुए कि कलकत्ता विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर माननीय डाक्टर देवप्रसाद सर्वाधिकारी महोदय ने कहा था कि वह दिन अब दूर नहीं है जब बँगला को भी वही स्थान दिया जावेगा जो अंगरेज़ी और अन्य दूसरी भाषाओं को मिला है। इससे आशा की जाती है कि बंगला भी शीघ्र ही एम० ए० के लिए स्वतन्त्र पाठ्य विषय हो जायगी। पर बेचारी हिन्दी के लिए अभी तक किसी ने ज़बान नहीं खोली। यहां तक कि जो अपने को हिन्दीभाषी कहने का दम भरते हैं और उसी के भरोसे बँगला से अलग होने का दावा करते हैं वे भी अवसर पाने पर इसे भूल गये। जो हुआ सो हुआ अब हिन्दीभाषाभाषियो, कमर कस कर तैयार हो जाइये, जिसमें हिन्दी को भी वही उच्चस्थान कम से कम हिन्दीभाषी प्रान्तों के विश्वविद्यालयों में मिल जाय जो बंगाल में बँगला को और महाराष्ट्र में मराठी को मिला है।

मैं तो यह कहूंगा कि हिन्दी को भारत के सभी विश्वविद्यालयों में स्थान मिलना चाहिये। क्योंकि यदि यह मान भी लिया जाय कि संस्कृत, अर्बी फारसी और अंगरेज़ी को उच्च स्थान विशेष कारणों से सभी विश्वविद्यालयों में दिया गया है तो वही स्थान लैटिन, ग्रीक, हिब्र आदि

को देने का क्या कारण हो सकता है ? केवल उनके साहित्य की उच्चता और भाषा विज्ञान में उनका स्थान। मैं समझता हूं कि हिन्दी देशभक्ति और देशगौरव के विचार से नहीं तो उसके साहित्य और भाषाविज्ञान द्वारा उससे सहायता मिलने की आशा से, एम० ए० श्रेणी तक पढ़ाई जाय। हिन्दीभाषियों के लिए यह कम लज्जा की बात नहीं है कि मराठी, बँगला जैसी प्रान्तिक भाषाएँ तथा अन्य देशीय भाषाएँ इस स्थान को प्राप्त कर सकें पर हिन्दी उससे वञ्चित रक्खी जाय। क्या हिन्दीभाषी इस ओर ध्यान देंगे ? यदि वह अपना इसमें गौरव समझेंगे और तन, मन, धन, से चेष्टा करेंगे तो अवश्य सफल होंगे।

सर्वोत्तम लेख।*

[लेखक—श्रीयुत कृष्णराम भा।]

फिलिप मार्स्टन पच्चीस वर्ष का भी नहीं हुआ था कि उसने सुंदर कविता, छोटी २ कहानियां तथा लेख लिखना आरम्भ कर दिया था। भविष्य में उन्नति करने के लिए उसे कोई आशा नहीं थी। उसका संसार में कोई निकट सम्बन्धी न था। वह दुःख सुख से किसी प्रकार एक छोटे से भाड़े के घर में रहता था और उसी घर में रहती हुई एक युवती से उसका प्रेम था। उस युवती का नाम मोली एन्ड्रूज था। वह छोटे २ बालकों को संगीत शिक्षा देती और उसी से अपना निर्वाह करती थी। फिलिप जिस घर में रहता था उसी घर में उस युवती ने एक कमरा भाड़े का लिया था और उसी स्थान में वह बालकों को पढ़ाती थी। उसके माँ बाप नहीं थे और उसके सम्बन्धी भी कोई न था और यदि कोई रहा भी होगा तो उसे वह नहीं जानती थी। फिलिप और मोली को स्वाभाविक ही एक दूसरे पर दया आती थी। वह दया पहिले मित्र रूप में थी किन्तु कुछ काल के उपरान्त वह प्रेम में परिणत हो गई। जब फिलिप को मालुम हुआ कि मोली के प्रति उसका शुद्ध और दृढ़ प्रेम है तो उसने एक दिन मोली के सन्मुख अपना प्रेम प्रगट किया और मोली से सन्तोषजनक उत्तर मिलने पर दोनों प्रेम से रहने लगे।

मोली बड़ा कठिन परिश्रम करने लगी। जिससे उन दोनों का विवाह शीघ्र ही हो जाय इससे फिलिप उत्साह और उमंग से कविता और चुटकले लिखने लगा। दो तीन नाटक भी उसने लिखने शुरू कर दिये। इससे मासिक पत्रिकाओं में उसका नाम छपने लगा और उसीसे उसको कुछ द्रव्य मिलना आरम्भ हुआ। थोड़े ही काल में प्रसिद्ध 'मेट्रोपोलिटन' पत्र में उसका लिखा हुआ एक बड़ा उपन्यास छपने लगा।

फिलिप के लिए तो वास्तव में वह बड़ा सौभाग्य का दिन था जब उसका लिखा हुआ उपन्यास पत्र में छपना प्रारम्भ हुआ। उसदिन वह घमंड में अपना लेख मोली को दिखलाने के लिए शीघ्र ही आया और मोली ने भी बड़ी प्रसन्नता से लेखक का नाम पढ़ा।

उस लेख की सफलता के जोश में फिलिप ने एक नया टाईपराईटर मोल ले लिया और फिलिप और मोली फिर कुछ सुखस्वप्न देखने लगे। पर हाय ! उनका यह आनन्द शीघ्र ही

---

* गुजराती के एक लेख से अनुवादित।

समाप्त हो गया—प्रकाश जाता रहा और सर्वत्र अन्धकार हो गया।

बहुत दिनों से जब फिलिप रात्रि में दीपक के सामने काम करता था तब उसकी आँख के सामने अँधेरा आजाता था पर उसका कुछ ख्याल न कर वह काम करता जाता। धीरे २ उसकी आँखें कमज़ोर होने लगीं और अन्त में उसकी आँखों की ज्योति एकदम नष्ट हो गई। उसने आँख के डाक्टरों को अपनी आँखें दिखलाईं परन्तु उसका हर डाक्टर ने निराशाजनक उत्तर दिया। डाक्टर लोग फिलिप के हृदय में एक आशा की किरण फेंकते थे। वह यह थी कि चीरा लगाने से सम्भव है कि आँख ठीक हो जाय और उसके सिवा और कोई उपाय नहीं है।

चीरा लगाया गया पर वह किसी काम न आया। फिलिप अब आशाहीन अन्धा था। अब फिलिप मार्स्टन बेचारा अन्धा हो गया। वह टेबिल के सामने बैठा था—उसके सन्मुख बिना खाया हुआ भोजन रक्खा हुआ था—उसको अब किसके लिये खाय? क्या जीवन धारण करने के लिए? जीवन—अन्धकारमय जीवन—अब उसके किस काम का था? इतने में मोली का स्नेहभरा हाथ उसके कन्धे पर पड़ा और वह प्रेम से बातें करने लगी, "प्यारे फिलिप! तुम्हारे बदले मैं लिखूंगी और मुझसे जितना बनेगा उतना मैं तुम्हारी सहायता करूंगी। अभी आप बहुत कुछ कर सकेंगे; निराश होने का क्या कारण है?"

फिलिप ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया, "नहीं मोली, अंधा हो तुझे मैं अपने पास कदापि बांध न रक्खूंगा।" मोली ने अपना मस्तक उसकी गोद में रख दिया और बोली "फिलिप! क्या हम लोगों को एक दूसरे की सहायता न करनी चाहिये? आपकी आँख नष्ट हो गई तो क्या मैं आपको छोड़ दूंगी? ऐसा आप विश्वास कर सकते हैं? कदापि नहीं इससे तो मैं आपको पहिले की अपेक्षा अधिक प्यार करूंगी और मेरी आँखें हम दोनों की आँखों का काम देंगी।"

फिलिप, "परमात्मा तुझको प्रसन्न रक्खे, मोली! "तेरे सिवा मेरा और कोई नहीं है। विश्व में मेरा सर्वस्व तूही है प्यारी मोली"

मोली आनन्द से बोल उठी "अच्छा तो यह बात ठीक हो गई।" और उसके नेत्रों से प्रेमाश्रु बह निकले। वह फिलिप के सामने 'टाईपराइटर' ले आई और बोली इसपर अपने हाथ धरिये और मुझ को टाईपराइटर चलाना सिखलाइये।"

फिलिप ने धीरे २ उसपर उंगलियां फेरनी आरम्भ कीं और वह सहसा चौंक उठा। वह हर्ष से बोल उठा "मोली, थोड़े समय में तो मैं स्वयं ही इसपर काम कर सकूंगा अक्षरों को ध्यान में रखना ही मेरे लिए आवश्यक है और फिर तो हे सुन्दरी! मैं बड़ी सरलता से लिख सकूंगा।"

उसका चेहरा विचार और उत्साह से गंभीर होगया और चाहे कितनाही परिश्रम क्यों न करने पड़े पर स्वतंत्र काम करनाही उसे उचित जचने लगा। अक्षरों को धीरे २ पहचानने के लिए वे दोनों उसपर हाथ फेरने लगे और थोड़े ही समय में फिलिप स्वतंत्रता से 'टाईपराईटर' से काम लेने लगा। प्रत्येक कागज़ को यंत्र पर धर के पूर्व वह गिन कर रखता और लिखे हुए पत्रों को वह अपने पैर के पास रक्खी हुई टोकरी में डालता जाता था। मोली संध्या समय अपने काम से छुट्टी पाकर वहां आती और सब कागज़ों को ठीक २ लगाकर समाचार पत्रों के सम्पादकों को भेज देती थी। लेख छप जाते थे और उनसे रुपया जो मिलता था वह बैंक में जमा हो जाने से बहुत कुछ हो गया था।

मोली उसी की है तो अन्धकार में भी उस का जीवन सुखमय आनन्दमय हो जायगा। फिलिप विचारता था कि यदि उसके पास सौ पाउन्ड और आ जायँ तो वह अपना विवाह मोली से कर ले। एक दिन सायंकाल को मोली फिलिप के पास कुछ शीघ्र आई और उसके हाथ में 'मेट्रोपालिटन' पत्र का नवीन अंक था। इसमें एक नई खबर छपी हुई थी। कितने ही टीकाकारों का यह मत था कि उपन्यास लिखने-वालों में तरुण की अपेक्षा वृद्ध अधिक अच्छा लिखते हैं और उसमें छोटे चुटकले तो वृद्ध तरुण की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छे लिखते हैं। इस पत्र का सम्पादक इस मत के विरुद्ध था और उस का मत था कि कितनेही अच्छे युवक लेखक वर्तमान हैं। अपने मत को सिद्ध करने के लिए २७ वर्ष की आयु तक के लेखकों को उसने लेख लिखने के लिए उत्तेजित किया था और 'सर्वोत्तम' लेख के लिखनेवाले को सौ पाउन्ड का इनाम रक्खा था। शर्त यह थी कि लेख दस हजार शब्दों से अधिक बड़ा न हो और वह आगामी मास की आखिरी तारीख तक पहुंच जाय।

मोली जब पढ़ रही थी तो फिलिप बोल उठा "मोली मैं यह सौ पाउन्ड उपहार पाने की चेष्टा करूंगा और यदि वह उपहार मुझको मिलगया तो हम लोग अपने विवाह के दिन कहां बितावेंगे!" मोली का हृदय भी प्रेम से गद्गद हो गया। उसी दिन से उस उपहार के योग्य लेख लिखने के लिए वह मनन करने लगा। दस बारह लेख उसने लिख डाले किन्तु उसमें कुछ न कुछ न्यूनता रह ही जाती थी और उन्हें वह उपहार पाने के योग्य नहीं समझता था। लेख भेजने का दिन निकट आता जाता था। दो सप्ताह बाकी रह गये और अंत में तो एक ही सप्ताह रह गया तथापि भेजने लायक संतोष-जनक लेख उससे नहीं लिखा गया।

तीसवीं तारीख भी आपहुंची और लेख इकतीसवीं तारीख को मध्याह्न के बारह बजे तक पहुंच जाना चाहिये। रात्रि में फिलिप देर कर के सोने गया। बड़ी २ कल्पनाओं और विचारों से उसका सिर दर्द कर रहा था। उसने लेख के पीछे बहुत परिश्रम किया था और वह सर्वोत्तम लेख लिखने में समर्थ नहीं हुआ। सौ पाउन्ड क्या उसका भला कर देते? उसने कई घंटे जागृत अवस्था में काटे और बारह बजने का घंटा उसने सुना!—एक बजा—दो बजे और फिर तीन बजे—और फिर उसको निद्रा आगई और उपहार का स्वप्न उसको आने लगा। उसको स्वप्न आया कि उसने एक लेख भेज दिया, उपहार उसको मिल गया और फिर सुन्दरी मोली से उसका विवाह हो गया। फिलिप एकदम जाग उठा। उसके कमरे में धूप पहुंच गई थी।

उसकी बुद्धि शान्त थी, स्वप्नावस्था में जो लेख लिखा था वह जागृत अवस्था में सत्य ही प्रतीत होता था। वह स्वप्न न था किन्तु ईश्वरीय प्रेरणा थी। वह बिछौने से उठ पड़ा और पास के कमरे में जाकर एक कागज़ का पुलन्दा ले आया और 'टाइपराईटर' के सामने बैठ गया। स्वप्न में लिखा हुआ लेख धीरे २ स्पष्ट होता गया और हर एक शब्द उसके अन्धे नेत्रों के सामने आने लगे और वह एकदम लिखता ही गया और बड़े उत्साह और उमंग में वह पेज पर पेज लिखता ही गया। उन सब कागज़ों को वह टोकरी में डालता गया। यही उसका 'सर्वोत्तम लेख था।

इस लेख पर उसको उपहार अवश्य मिलेगा यह उसका पूरा विश्वास था और इस लेख के सदृश और कोई नहीं लिख सकता यह वह मानता था। वह बराबर लिखता ही गया और अन्त में संतोषजनक निश्वास छोड़कर उसने आखिरी पत्र टोकरी में डाला।

"नौ बजे हैं साहब" उसकी मज़दूरिन ने किवाड़ खटखटाकर कहा। "बहुत अच्छा मैं अभी आता हूं" फिलिप ने जवाब दिया। थोड़े समय में वह हाथ मुंह धोकर भोजन के लिए तैयार हो गया और खूब पेट भर कर उसने आनन्द से भोजन किया।

फिलिप ने मज़दूरिन से कहा "मिस ऐन्ड्रूस को बहुत जल्दी यहां बुला ला" "मोली! भीतर आना" वह मोली के पैर की आवाज़ सुनकर बोल उठा और वह भीतर आई और फिलिप की आनन्दभरी वाणी सुनकर आश्चर्य करने लगी। "मेरा उपहारवाला लेख पढ़ना तो" फिलिप ने टोकरी की तरफ हाथ बढ़ाकर कहा मोली ने उसमें कागज़ों का ढेर देखा। "मोली! प्यारी मोली!! अन्त में मैं इस लेख को एक आश्चर्यजनक स्वप्न की सहायता से लिख सका हूं और इसका पूरा हाल फिर बतलाऊंगा। वास्तव में लेख बहुत ही उत्तम लिखा गया है और उपहार मुझको अवश्य मिलेगा। इसके कागज़ों को नम्बरवार तू लगा देगी? अभी हम लोगों को समय है। दस ही तो बजे हैं। चलो हम लोग इस लेख को 'मेट्रोपोलिटन' आफिस में दे आवें। सौभाग्य से बारह बजने तक तो हम लोग वहां पहुंच जायँगे।"

प्यारे फिलिप!! मुझको कितना आनन्द हुआ है?" मोली कागज़ की टोकरी खाली करते समय बोली।

फिलिप ने कागज़ों को टेबिल पर गिरते हुए और फिर मोली को शोकपूर्ण सांस छोड़ते हुए सुना। कागज़ों पर एक भी अक्षर नहीं लिखा गया था, वे एकदम कोरे थे!!

"क्या है मोली? मैंने पंक्तियां तो बराबर सीधी लिखीं हैं कि नहीं? तुझको लगाने में परिश्रम न पड़े इस हेतु मैंने हमेशा की तरह उनपर पृष्ठ के नम्बर तो दे दिये हैं।"

मोली ने मेज़ पर हाथ रख कर उस पर अपना सिर टेक दिया और बिना कुछ बोले वह उन कोरे कागज़ों को शोक से देखने लगी।

"क्या कुछ भूल हुई है?" फिलिप ने आतुरता से पूंछा। मोली ने उसकी तरफ़ देखकर फिर कागज़ों को देखा और धीरे से वह टाइपराईटर के पास गई और वह उसको देखने लगी। टाईपराईटर लिखनेवाली पट्टी से जोड़नेवाला रिबन (फीता जिस पर अक्षर पड़ने से कागज़ पर छप जाते हैं) न था।

अगले दिन टाइपराईटर से दिन भर काम लेने से वह "रिबन" टूट गया होगा। जब फिलिप वहाँ से उठा होगा तो उसने सोचा होगा कि फिर काम करने के समय रिबन बदल दूंगा। इस लेख लिखते समय वह रिबन लगाना भूल गया। परिणाम यह हुआ कि उसके सर्वोत्तम लेख का एक अक्षर भी नहीं छपा था। और कोरे कागज़ों का ढेर लगा गया था।

उस लेख को अब फिर लिखने के लिए बहुत देर हो गई थी। मोली यह सब देखकर रोपड़ी और फिलिप को अपने पास बुलाकर सब हाल कह सुनाया।

* * *

प्रभात होने के पूर्व सब से अधिक अन्धकार हो जाता है यह वास्तव में सत्य है।

"मोली! गिरे हुए दूध पर अब व्यर्थ शोक करने से क्या लाभ है?" फिलिप ने उसको धीरज देते हुए कहा "वो पाउन्ड जाने को थे वे तो गये पर यदि मैं चेष्टा करूंगा तो फिर अक्षर २ लिख लूंगा इससे परिश्रम एकदम निष्फल तो नहीं जायगा।"

मोली के नेत्र आनन्द से चमकने लगे। वह बोली "क्या वास्तव में आप फिर से लिख सकेंगे?" "हम लोग उसको और दूसरे पत्र में भेज देंगे" "हां, पर उसके लिए अब मुझ को वह उपहार नहीं मिलेगा" फिलिप ने मुसकरा कर कहा।

मोली उसको धीरज देकर संगीत सिखलाने गई और फिलिप उस गंभीर लेख को फिर से लिखने के लिए बैठा।

दोनों हाथों पर उसने अपना मस्तक टेका और उस आश्चर्यजनक स्वप्न को याद करने लगा। थोड़ी देर में उसको सब याद आने लगा। पहले तो धीरे २ स्मरण होने लगा और फिर लिखना प्रारम्भ करते ही सब दृश्य उसके सामने जल्दी २ आने लगा। अपने विचारों को वह कागज़ों पर लिखने लगा और फिर पेज पर पेज टोकरी में डालने लगा। अन्तिम पृष्ठ और अन्तिम वाक्य लिखने के बाद उसने एक दीर्घ श्वास खींची और कुरसी पर आराम करने लगा।

इतने में ही दरवाजा खटकता हुआ उसने सुना।

फिलिप ने कहा "भीतर आओ"। आगन्तुक मोली थी। एक पत्र उसके हाथ में था और दौड़ कर आने से उसका दम फूल रहा था।

"अरे, फिलिप" !! वह साँस को छोड़ते हुए बोली।

"मोली ? क्या है ? क्या हुआ ?"

"सुनिये, फिलिप सुनिये" वह बोली आज मेट्रोपोलिटन पत्र का नया अंक प्रकाशित हुआ है।

"मैं पढ़ती हूं उसको आप बराबर ध्यान देकर सुनते जाइये।" उसने सम्पादकीय टिप्पणियाँ पढ़नी प्रारम्भ कीं।

"सौ पाउन्ड के उपहार का समाचार:— कितने ही लेखकों के आग्रह से हमने पहले की तारीख बदल दी है और इस महीने की २० तारीख रक्खी है। लेखकों के लिए अब लेख भेजने की अन्तिम तारीख २०वीं रक्खी गई है।"

"मोली ! प्यारी मोली !! यह बहुत आनन्ददायक समाचार है" फिलिप बोल उठा और लिखे हुए कागज़ों की तरफ़ उसने अपना हाथ बढ़ाया। मोली ने बड़ी आतुरता से उधर देखा। वह एकदम वहां गई और वहां सब परिपूर्ण था। कागज़ों को उसने नम्बरवार लगा दिया और उसको उसके लेखक को सुनाने लगी। पढ़ते २ वह उसकी बड़ी प्रशंसा करने लगती थी।

"अरे ! बहुत ही उत्तम लेख है" पढ़ने के बाद मोली ने कहा—"खराब तो नहीं है ?" उसके लेखक ने पूंछा।

दूसरे दिन फिलिप और मोली उस लेख को पत्र के आफिस में पहुंचा आये और अन्त में परिणाम का दिवस आही पहुंचा।

मोली धड़कते हुए कलेजे से उस पत्र का एक अंक फिलिप के पास लाई। बिना फिलिप के उसे पत्र खोलने का साहस न हुआ। उसने सम्पादक के लेख की तरफ दृष्टि डाली और उसके सामने अक्षर नाचने लगे और फिलिप मार्स्टन का नाम बड़े २ अक्षरों में लिखा हुआ उसको दिखलाई पड़ा। उसके लेख की प्रशंसा बहुत कुछ लिखी थी और अन्त में सौ पाउन्ड का जीतनेवाला, वही है यह छपा था।

मोली यह समाचार गद्गद कंठ से पढ़ रही थी और फिलिप बड़े ध्यान से उसको सुन रहा था। उसका मुखारविन्द आनन्द से खिल उठा और उसने दोनों हाथ मोली के कन्धे पर रख दिये।

जिस समय वह पढ़ रही थी उस समय वहां एक दम शान्ति फैल रही थी।

वह उपकार से भरे हृदय से बोल उठा "भक्तवत्सल परमात्मन्", मोली धीरे से बोली "हे मेरे प्यारे फिलिप मैं कितनी प्रसन्न हुई हूं यह क्या तुम जान सकते हो।"

हतभागिनी हिन्दी।

[लेखक—श्रीयुत भागवतसिंह शर्मा।]

दयामय जगदीश ईश्वर
दीनरक्षक हे प्रभो।
दीन होकर विलपती हूं
जोयकर सारा विभो॥
मेरे बहुत से पुत्र हैं
पर सब बड़े अज्ञान हैं।
मातृभाषा की भलाई
का तनिक न ध्यान है॥ १॥

भाषण लिखत निज मातृभाषा
में निरा अपमान है।
मानदायिनि म्लेच्छ भाषा
बस यही अनुमान है॥
मित्र के शुभ आगमन में
बन्दगी करते सप्रेम।
शृगाल सी आकृति बना
गुडमार्निं करना है नेम॥ २॥

नेह अवगुण गेह भाषा
से लगा है नाथ अब।
कर्कशा ठगनी हुई है
प्रेम भाजन वेसबब॥
छोड़कर अमृत कलश को
विष पर इनकी चाह है।
क्या होयगा परिनाम इसका
तनिक नहिं परवाह है॥ ३॥

मरि व्यर्थ झूठी झलक में
घर का गवांते हे प्रभो।
असिल तजि कर नकल गहते
लोभ में पड़कर विभो॥
अपना बदलते कर्म पर वो
मर्म कुछ पाते नहीं।
हैट कालर के सिवा कुछ
हाथ बस आते नहीं॥ ४॥

अपना बचा है शेष जो
उसको सम्हालो धैर्य धर।
उन्नति करो जी तोड़ कर
पावोगे सब कुछ मित्रवर॥
निज मातृभाषा देश की
उन्नत करो नित रूप में।
गुण छोड़ि अवगुण ग्रहण करि
नाहक पड़ो मत कूप में॥ ५॥

हिन्दी तुम्हारी आर्यभाषा
सर्व भाषों से भली।
परचार इसका हिन्द में हो
ना बचे कोई गली॥
सरकार में शुभ थान पावे
मान सब दरबार में।
हो प्रयोगित भारतीयों
के सकल शुभ कार में॥ ६॥

व्यास पाणिनि अंगिरा से
सुत इसे फिर प्राप्त हों।
सतयुग यहां फिर लौट आवे
दूर सब परिताप हों॥
सत्य का आतंक भारतवर्ष में
फिर जाय जुट।
झूठ टट्टी धोखे की
फन्दा यहां से जाय फुट॥ ७॥

भारत-भारती।

[लेखक—श्रीयुत उद्भट।]

हिन्दी में आजकल समालोचनाएँ होती हैं उनमें से बहुतों की यदि समालोचना कीजाये तो जान पड़ेगा कि वे आँखवालों के लिए नहीं अंधों के लिए की जाती हैं। समालोचक यह मान लेते हैं कि उनके लोचनों की परीक्षा करनेवाले कहीं नहीं हैं। वे उनपर चाहे जिस प्रकार का चश्मा चढ़ाकर चाहे जिसको छोटा, बड़ा, श्वेत, कृष्ण कह सकते हैं। वे अपने या अपने भक्तों के लिए अन्योन्याश्रय धर्म का पालन करते हुए समाज में एक कृत्रिम रुचि की स्थापना तक करने का उद्योग करते हैं और अपने झंडे के नीचे ऐसे लोगों की एक टोली बसाना चाहते हैं जो किसी विषय में अपना निज का कोई विचार नहीं रखते। ऐसे समालोचकों की समालोचना की जो परवा करें वे असमर्थ, जो गर्व करें वे अहंकारी और जो कुछ मूल्य समझें वे अंधे हैं।

भद्दी कविता की चर्चा जिस प्रकार इधर बहुत दिनों से सुनाई पड़ती है उसी प्रकार इस चर्चा को बन्द करने का प्रयत्न भी बहुत कुछ देखने में आता है। पर जब तक भद्दापन है तब तक यह चर्चा बंद होने की नहीं। यद्यपि यह चर्चा तभी से उठी है जब से 'त्वदीय, मदीय, यथा, तथा,' ऐसे पदों की निःसार भाव-शून्य योजना कविता के नाम से आरम्भ हुई, पर बा० मैथिलीशरणगुप्त के पद्यात्मक पद्य आकृष्य के साथ इसका प्रवाह भी बढ़ा और इसके रोकने का अर्थात् लोक की मार्मिकता को नष्ट करने का—प्रयत्न भी। इस नाशकारी प्रयत्न को व्यर्थ करना प्रत्येक काव्य-मर्मज्ञ का कर्त्तव्य है। अपनी रुचि का कोई जहाँ तक चाहे वहां तक भ्रष्ट करे पर आदर्श भ्रष्ट करने का अधिकार किसी को नहीं है।

आज "भारत-भारती" हमारे सामने है। यदि इसके पहले भी वही भूमिका लगी होती जो "पद्यप्रबन्ध" के आदि में है तो कुछ कहने सुनने की बात न थी, पर जब पुस्तक छपने के बाद ही लेखक महाशय ने उसकी उच्चता की घोषणा अपने मुह से एक गद्य-लेख द्वारा सरस्वती में की (ध्यान रखना चाहिये कि इसके पहले गुप्त जी को गद्य-लेख द्वारा कविता के आदर्श बतलाने की आवश्यकता नहीं पड़ी थी क्योंकि इस विषय पर बहुत से गंभीर और विचारपूर्ण लेख मासिक पत्रिकाओं में निकल चुके हैं) और उनके एक पूज्यवर उसे उच्चभावपूर्ण तथा काव्य में एक नया युग तक उपस्थित करनेवाली कहने लगे तब आदर्श पर लाञ्छन लगते देख कुछ लिखना ही पड़ता है। काव्य के एक बार आदर्श भ्रष्ट हो जाने पर पीछे उसे सँभालना बहुत कठिन हो जाता है।

'भारत-भारती' पर विचार करते हुए पहिले तो हम यह देखेंगे कि उसमें काव्यत्व कहां तक आया है, फिर उसकी वाक्यरचना आदि पर विचार करते हुए प्रसंगवश यह भी विवेचित करेंगे कि उच्चभावपूर्ण कविता किसे कहते हैं। हमारे यहां के आचार्यों ने काव्य के मुख्य अंग तीन माने हैं—रस, ध्वनि और अलंकार।

रस।

रस द्वारा वह सम्बन्ध पुष्ट किया जाता है जो भिन्न भिन्न वस्तुओं और व्यापारों के साथ मनोवेगों का होना चाहिये अर्थात् उसके द्वारा मनोवेग तीव्र और परिष्कृत किए जाते हैं। जिस प्रकार चेष्टा मंद होने पर चन्द्रोदय आदि रस दिए जाते हैं उसी प्रकार मनोवृत्तियों को उभाड़ने के लिए वीर, करुण आदि रसों के छींटे दिए जाते हैं। अब 'भारत-भारती' के

किसी पद्य को उठा लीजिए और देखिए तो उसमें मनोवेगों को उभाड़ने की कितनी शक्ति है। शिक्षित समाज में बहुत दिनों से प्रचलित, तथा पढ़े लिखे लोगों के मुंह से नित्यप्रति सुनाई पड़नेवाली साधारण बातों का उसमें सूखा उल्लेखमात्र मिलेगा। अतीत खंड में इतिहास की बातों की खतिऔनी भर की गई है। हमारे यहां "कलाकौशल्य था, चित्रकारी थी, "ज्ञान था, विज्ञान था" स्थूल रूप से इतना ही देखना हो तो अतीत खंड का कोई पृष्ठ खोल लीजिये और इसी प्रकार के पद्य पढ़ चलिये।

निज चित्रकारी के विषय में
क्या कहें क्या क्रम रहा।
प्रत्यक्ष है या चित्र है
यों दर्शकों को भ्रम रहा॥
इतिहास, काव्य, पुराण नाटक,
ग्रंथ जितने दीखते।
सब से विदित है चित्र रचना
थे यहां सब सीखते॥

अब इसका अन्वय कीजिए—निज चित्रकारी के विषय में क्या कहें कि क्या क्रम रहा, दर्शकों को भ्रम रहा कि प्रत्यक्ष है या चित्र है। इतिहास, काव्य, पुराण, नाटक, जितने ग्रन्थ दीखते हैं सब से विदित है कि यहां सब चित्र-रचना सीखते थे।

अब पाठक ही बतलावें कि अन्वय करने पर बचा क्या जिसे कोई कविता कहे। पद्य का क्रम तोड़ देने से जो कुछ शेष रहता है वह भावपूर्ण अच्छा गद्य भी नहीं कहा जा सकता, कविता की तो बात ही जुदी है। अब वर्त्तमान् खंड के भी दो एक पद्य देखिये

(६२)
था समय वह भी एक जो
अब स्वप्न जा सकता कहा।
घी तीन सेर विशुद्ध रुपये
में हमें मिलता रहा॥
देहात में भी सेर भर से
अब अधिक मिलता नहीं।
दुर्बल हुए हम आज यों
तनु भार भी झिलता नहीं॥

(११५)
दुर्विध प्रजा का द्रव्य हर
फूंकते हैं व्यर्थ वे।
सत्कार्य करने के लिए हैं
सर्वथा असमर्थ वे॥
चाहे अपव्यय में उड़े
लाखों करोड़ों भी अभी।
पर देशहित में वे न देंगे
एक कौड़ी भी कभी॥

इन दोनों को भी ज़रा अन्वय कर डालिये (६२) एक समय वह भी था जो अब स्वप्न कहा जा सकता है (जब) रुपये में तीन सेर विशुद्ध घी हमें मिलता रहा। अब देहात में भी सेर भर से अधिक नहीं मिलता। हम आज यों दुर्बल हुये कि तन का भार भी नहीं झिलता। (११५) वे प्रजा का द्रव्य दुर्विध हर कर फूंकते हैं, वे सत्कार्य करने के लिए सर्वथा असमर्थ हैं। अपव्यय में चाहे लाखों करोड़ों अभी उड़े पर देशहित में वे कभी एक कौड़ी भी न देंगे।

इतनी बातें तो जिनका कविता से कुछ भी सम्पर्क नहीं है वे भी जब चाहें तब कह सकते हैं। घी का भाव बताना कवियों का काम नहीं है अढ़तिए बनियों का काम है। ऐसे पद्यों को कविता नहीं कह सकते। कहां तक दिखावें, सारी पुस्तक ऐसे ही पद्यों से भरी है एकआध जगह जहां कुछ चमत्कार देख पड़ता है वहां इशारों से लिये हुये भाव हैं, जैसे—

इस लोक में उस लोक से
वे अल्प सुख पाते न थे।
हँसते हुए आते न थे
रोते हुए जाते न थे॥

यह भाव फ़ारसी के इस शेर का है:—

बाद दारी कि बक्के ज़ादने तो।
हमः खंदां बुवंद तू गिरियां॥ इत्यादि।

पर इस भाव को भी खूबसूरती के साथ निबहते न बना। और देखिये—

ऋण भार दिन दिन बढ़ रहा है
दब रहे हैं हम यहां।
देना जिन्हें हो कुछ नहीं
भी पास उनके है कहां॥

यह "कुछ नहीं" शेक्सपियर के Ihave less than nothing का भाव है जो आपने Merchant of Venice के किसी हिन्दी अनुवाद से लिया है पर शेक्सपियर के "कुछ नहीं से कम" में जो भाव था उसे "कुछ नहीं भी नहीं है" करके आपने निरर्थक कर दिया। इसी प्रकार "होंगे न दोनों नेत्र प्यारे एक से किस को भला?" सरसैयद अहमद की प्रसिद्ध उक्ति है। रईसों के वर्णन में आपने जो "धिक धिक पुकार मृदंग भी देता उन्हें धिक्कार है" लिखा है वह "धिक् तान् धिक् तान् धिगेतान्कथयति सततं कीर्त्तिनखो मृदंगः" का भाव है।*

पर गुप्त जी ने दूसरों के भाव जहाँ जहाँ चुपचाप उड़ाये हैं वहां उन्हें इतना अंगभंग कर डाला है कि वे किसी काम के नहीं रह गये हैं। पहला ही पद्य लीजिये—

हां लेखनी! हृत्पत्र पर लिखनी तुझे है यह कथा।
दृक्कालिमा में डूबकर तैयार होकर सर्वथा॥

यह दृक्कालिमा फ़ारसी के इस सुन्दर शेर में मिली है—

अवांदे दीदः दल करदम
नबिश्तम नामः सूए तो।
कि बक्के ख्वांद दीदन
चश्मे मन उफ़्ताद बरूए तो॥

फ़ारसी के कवि ने तो आँख की पुतली की स्याही से ख़त लिख कर प्रिय के पास भेजा है जिसमें ख़त पढ़ते समय उसकी आँख प्रिय के सामने हो जाय पर आपकी इस दृक्कालिमा से क्या भाव निकलता है, क्या अर्थ सिद्ध होता है, आप ही जानें। कहीं कहीं भावों का लेना गुप्त जी ने स्वीकार भी किया है जैसे "देते प्रजा-हित ही बढ़ा, कर प्राप्त कर वे सर्वथा। ले भूमि से जल रवि उसे देता सहस्रगुना यथा" में।

जिन स्थलों और अवसरों पर साधारण-जनों के हृदय में भी लीन करनेवाले भावों का प्रादुर्भाव हो सकता है उन स्थलों और अवसरों पर भारत-भारती में एक भी ऐसे भाव का उदय नहीं देख पड़ता जिसे सुन आँखों में आँसू आजायँ या चित्त किसी उद्वेग में हो जाय। 'प्राचीन भारत की झलक' के अन्तर्गत "भारतभूमि" की कुछ झलक दिखाने का आयोजन तो आप करते हैं पर उसके नगर, वन, शैल आदि के विषय में केवल इतने ही सूखे वाक्य कहकर रह जाते हैं—

वे ही नगर, वन, शैल नदियाँ
जोकि पहले थीं यहां।
हैं आज भी, पर आज वैसी
जान पड़ती हैं कहाँ?

भावुकता का अन्त होगया! यदि कोई सहृदय मनुष्य इन पर्वत, नदियों का स्वदेशप्रेम से गद्गद होकर, नाम लेने बैठता तो वह उनके और अपने पूर्वजों के जीवन के सम्बन्ध का ऐसा चित्र खींचता कि चित्त तन्मय हो जाता। ऐसे स्थलों के उपयुक्त वर्णन आदर्श रूप से हिन्दी ही में कई दिखाये जा सकते हैं जिनके अनुसार यदि गुप्त जी चल नहीं सकते थे तो चलने का प्रयत्न तो कर सकते थे।

प्राचीन भारत की वायु के गुण का गुप्त जी, देखिये, कैसा डाकुरी वर्णन करते हैं—

---

* हम समालोचना को इस उक्ति के क़ायल नहीं हैं। बड़े से बड़े कवियों की कृतियों में भी अन्य कवियों के भावों की झलक पाजाती है। ब० म०

उत्साह-पूर्वक दे रहा जो
स्वास्थ्य वा दीर्घायु है।
कैसे कहें कैसा मनोरम
उस समय का वायु है॥

दूसरी पंक्ति के १६ अक्षर या २८ मात्राएं किस लिए ख़र्च की गईं यह समझ ही में न आया। यह बीच की भरती है इस प्रकार की भरती पुस्तक में स्थान स्थान पर मिलेगी जिसका उल्लेख आगे चल कर होगा। अब दो पद्यों में समाप्त प्रभात का वर्णन भी ज़रा देखिये—

क्या ही पुनीत प्रभात है
कैसी चमकती है मही।
अनुरागिणी ऊषा सभी को
कर्म में रत कर रही॥
यद्यपि जगाती है हमें भी
देर तक प्रति दिन वही।
पर हम अविध निद्रा निकट
सुनते कहां उसकी कही॥
गंगादि नदियों के किनारे
भीड़ छवि पाने लगी।
मिलकर जलध्वनि में नलध्वनि
अमृत बरसाने लगी।
सस्वर इधर श्रुति-मंत्र-लहरी
उधर जल-लहरी अहा!
तिस पर उमंगों की तरंगें,
स्वर्ग में अब क्या रहा?

"क्या ही" और "कैसी" के द्वारा 'प्रभात की पुनीतता' और मही के चमकने का सारा रस निचोड़ कर पाठकों को पिला दिया गया। गंगा के तीर पर मंत्रलहरी, जललहरी और उमंग लहरी दिखाकर आपने किसी और ऐसी बात की आवश्यकता ही नहीं समझी जिसके लिए स्वर्ग तक जाने का कष्ट उठाना पड़े। जब यह तरंग-त्रय मिल गया तब स्वर्ग में रहा क्या? पर इस तरंगत्रय का मेल भी आपकी भावना या कल्पना ने नहीं किया, 'स्वरलहरी' और 'उमंग की तरंग' इन दो लोकप्रसिद्ध वाक्यों की स्मृति द्वारा ही यह सङ्गम सम्पादित हुआ है। इसी प्रकार जहां जहां वस्तु और व्यापार-वर्णन हैं वहां वहां अपूर्णता पाई जाती है—दृष्टि-विस्तार का अभाव झलकता है। उदाहरण-स्वरूप इस पद्य को लीजिये—

मस्तिष्क उनका ज्ञान का
विज्ञान का भांडार है।
है सूक्ष्म बुद्धि-विचार उनका
विपुल बल विस्तार है॥
नव नव कलाओं का कभी
लोकार्थ आविष्कार है।

इस पद्य में पुरुषों की बुद्धि और बल का वर्णन है। बुद्धि का दृष्टान्त तो तीसरी पंक्ति में दिया गया, अब चौथी में पाठक सोचते होंगे कि बल का कोई दृष्टान्त होगा पर नहीं वहां तो अध्यात्म तत्वों का कभी उद्गार और प्रचार है।

आप कोई पृष्ठ निकालिये इस प्रकार के अशक्त और भावशून्य पद्य ही अधिक मिलेंगे—

कविवर्य शेक्सपियर तथा
होमर सदा सम्मान्य हैं।
विख्यात फ़िरदौसी सदृश
कवि और भी अन्यान्य हैं॥
पर कौन उनमें मनुजमन को
मुग्ध इतना कर सके।
वाल्मीकि, वेदव्यास,
कालीदास जितना कर सके॥

अर्थात् इतना भर कोई कह दे कि "स्पेंसर, कांट, हेगल आदि दार्शनिक विख्यात हैं पर इनमें से कौन इतना विचार कर सके हैं जितना गौतम, कपिल, कणाद कर सके हैं" बस कविता होगई। हां एक बात भूल गये; 'बुधवर्य', 'वदान्यता', 'कौशल्य' ऐसे दो चार शब्द भी ठूंस दे। लेखक की भाव-रंकता का अंदाज़ा इसीसे कर लीजिए कि "गागर में सागर" वाली लोकोक्ति को वे ८वें पद्य में लाये—

उन सूत्र-ग्रन्थों का अहा!
कैसा अपूर्व महत्व है।
अत्यल्प शब्दों में वहां
सम्पूर्ण शिक्षा तत्व है॥
उन ऋषिगणों ने सूक्ष्मता से
काम कितना है लिया।
आश्चर्य है घट में उन्होंने
सिन्धु को है भर दिया॥

फिर 'अंधे के हाथ बटेरवाली' बात सच करते हुए बसे ६४ पद्य में फिर ले आये—

चाणक्य से नीतिज्ञ थे हम
और निश्चल निश्चयी।
जिनके विपक्षी राज-कुल
की भी इतिश्री होगई॥
है विष्णु शर्मा ने घड़े में
सिन्धु सचमुच भर दिया।
कहकर कहानी हीजड़ों को
पूर्ण पंडित कर दिया॥

ऊपर जितने पद्य उद्धृत हो चुके हैं वे इसका पता दे रहे हैं कि रस के परिपाक से इस पुस्तक का बहुत कम सम्बन्ध है—इसकी शब्दावली में मनोवेगों पर प्रभाव डालने की क्षमता नाम को नहीं है। कुछ वस्तुओं और व्यापारों का साधारणतः नाम ले जाना ही कविता नहीं है। कवि अपनी कल्पना की सूक्ष्म क्रिया द्वारा इन वस्तुओं और व्यापारों के ऐसे रूपों वा अंशों को छांट छांट कर सामने रखता है जिन्हें मनोवेगों का अपने विषय करके ग्रहण करने में क्षणभर की भी देर नहीं लगती। सामान्य-वाचक शब्द मनोवेगों पर बहुत कम प्रभाव डालते हैं क्योंकि उनका कोई रूप निर्दिष्ट नहीं होता जिसके साक्षात्कार का स्पष्ट अनुभव अन्तःकरण में हो। यदि कोई केवल इतना ही कहे कि "अमुक मनुष्य वहां बहुत अत्याचार कर रहा है" तो किसी पर उतना प्रभाव न पड़ेगा क्योंकि 'अत्याचार' शब्द के अन्तर्गत बहुत से व्यापार आ सकते हैं। अतः किसी निर्दिष्ट व्यापार का चित्र हमारे सामने नहीं खड़ा होता। पर वही मनुष्य यदि कहे कि "अमुक मनुष्य लोगों के घर में आग लगाकर रोती चिल्लाती माताओं की गोद से अनजान बालकों को लेकर आग में झोंकता है" तो बहुत से लोग क्रोध से नाच उठेंगे। इसी से कविता सामान्यवाचक शब्दों पर सन्तोष नहीं करती है। वह वस्तु या व्यापार के एक एक ऐसे अंग को जिससे मनोवेगों का सम्बन्ध होता है दृष्टि गड़ाकर देखने के लिए कहती है। कवि वही है जो ऐसे अंगों को छाँट सके जिनका मनोवेगों से नित्य सम्बन्ध है। "हा स्वार्थवश हमको अनेकों घोर कष्ट दिये गये" कहने से कविता का काम नहीं चलता है क्योंकि यह एक सामान्य कथन है, इसमें मूर्तिमत्ता नहीं है। पर 'भारत भारती' में ऐसे ही वाक्य अधिक मिलेंगे।

इस अतीत खंड के स्थान पर तो गुप्त जी यदि भारतवर्ष के किसी छोटे मोटे इतिहास को लेकर पद्यरूप में पूरी तुकबन्दी के साथ ढाल देते तो स्कूली लड़कों का बड़ा काम चलता। पर इसके लिए शायद उन्हें 'दौरात्म्य', 'विषयोत्कृष्टता' ऐसे शब्द बचाने का अभ्यास करना पड़ता तथा म० रामदेव के इतिहास (?) और हरविलास शारदा के Hindu Superiority ऐसे कल्पनामूलक ग्रन्थों की सहायता से वञ्चित रहना पड़ता। यह गुरुकुली इतिहास का प्रसाद है कि वर्तमानकाल में जो २ बातें अपेक्षित हैं पूर्वकाल में उनकी पूर्णता का पूर्ण आरोप करके भारत-भारती में प्राचीन (शायद वैदिक) युग की स्त्रियों के विषय में कहा गया—

घर का हिसाब किताब है
सारा इन्हीं के हाथ में।
हैं पाकशास्त्र विशारदा वे
और वैदक (midwifery?) जानतीं।

सीना पिरोना (मोज़े बुनना नहीं?)
चित्रकारी जानती हैं वे सभी।

गुप्त जी ने आरम्भ में अपनी लेखनी को सँभल जाने की सूचना तो बड़ी धूम से दी, पर उससे कहा केवल प्रस्ताव करने के लिए। कविता प्रस्ताव नहीं करती, वह श्रोताओं के अन्तःकरण की स्थिति ऐसी कर देती है कि वे किसी ओर आप से आप आकर्षित होते जाते हैं। इस 'प्रस्ताव' शब्द से आपने अपनी लेखनी की दौड़ की यथार्थ सीमा बतलाकर भी "जग जायँ तेरी नोक से सोये हुए हों भाव जो" कहकर उसे अनधिकृत भूमि में प्रवेश करने के लिए कहा। पर यह हो कैसे सकता था? आपकी लेखनी की नोक कानों को बेध कर ही रह गई, हृदय के मर्म को स्पर्श तक न कर सकी, क्योंकि वह रस में नहीं 'इक्कालिमा' में डूबी थी।

ध्वनि।

ध्वनि कविता का वह गुण है जिससे वह एक व्यापार को प्रत्यक्ष करती हुई अन्तःकरण को ऐसा संकेत दे देती है कि वह वाच्यार्थ द्वारा उपस्थित व्यापार के अतिरिक्त और और व्यापार आप से आप उपस्थित कर लेता है। हमारे यहां के आचार्यों ने इसे अत्यन्त उत्कृष्ट गुण माना है। यूरोप में भी एक प्रकार की लाक्षणिक वा ध्वन्यात्मक काव्यप्रणाली Symbolism के नाम से प्रसिद्ध है जिसमें निपुण कई भारी कवि वहां विद्यमान हैं। डा० रवीन्द्रनाथ की कविता इसी ध्वन्यात्मकता के बल से यूरोप में इतनी आदृत हुई है। इसी काव्यप्रणाली को लक्ष्य करके कवि रवीन्द्रनाथ ने कहा है—

आमार मनेर भावे आमि एक गेये जाव।
तोमार मनेर मत तुमि बूझि जाबे आर॥

इस विषय पर विशेष विवेचना यहां न करके हम आगे बढ़ते हैं, और कहते हैं कि भारत-भारती में एक भी पद्य ऐसा नहीं जिसमें कोई ध्वनि हो, जो भावगर्भित हो। अस्तु, जिस बात का नितान्त अभाव है उसके विषय में अधिक कहा ही क्या जा सकता है।

अलंकार।

यद्यपि चन्द्रालोककार का यह कहना कि "अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थौ वनलंकृति। असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती" असंगत है पर अलंकार से काव्य का चमत्कार अवश्य बढ़ जाता है। यद्यपि 'भारत-भारती' के प्रस्ताव-रूप वाक्यों में अलंकारों की आवश्यकता ही क्या है; पर स्थान स्थान पर वे लाये गये हैं-किन्तु अत्यंत अंगभंग करके। इस पद्य में आपने परिसंख्यालंकार लाने की चेष्टा की है—

पांडित्य का इस देश में
सब ओर पूर्ण विकास था।
बस दुर्गुणों के ग्रहण में ही
अज्ञता का वास था॥

पर अलंकार तो बना नहीं वाच्यार्थ दूषित हो गया। लेखक का अभिप्राय है कि लोग दुर्गुणों को ग्रहण करना नहीं जानते; पर इस शब्दाडंबर से यह अर्थ निकलता है कि लोगों की अज्ञता दुर्गुणों को ग्रहण करने में थी। परिसंख्यालंकार के यदि उदाहरण देखने हों तो गुमान कवि के नैषध के आरम्भ में देख सकते हैं, बहुत से हैं।

इसी प्रकार प्रायः जहां जहां उपमा, रूपक आदि लाने का प्रयत्न किया गया है वहां वहां गुप्त जी मुंह के बल गिरे हैं। देखिये इस पद्य में रूपक की कितनी भारी तैयारी देख पड़ती है—

संसार भर के ग्रंथगिरि पर
चित्त से पहिले चढ़ो।

पर इसके आगे की पंक्ति में टायँ टायँ फिस हो जाता है—

उपरान्त रामायण तथा
गीता-ग्रथित भारत पढ़ो॥

ग्रंथों का अटाला लगाकर उसपर चढ़े तो इस धूमधाम से, पर वहाँ से जोम लड़खड़ाई

और "रामायण पढ़ो" बस यही मुंह से निकल सका। इसी को तो कवित्व-शक्ति कहते हैं कि एक साधारण रूपक का निर्वाह तक न हो सके। अब 'धर्मधनु' की बहार देखिये--

हम धर्म-धनु से भक्ति-शर भी
छोड़ने में सिद्ध थे।
अतएव अक्षर लक्ष्य भी
करते निरन्तर विद्ध थे॥

न जाने धर्म में आपने धनु का कौन सा धर्म पाया, शायद लचीलापन।

अब सन्देहालंकार की मिट्टी ख़राबी देखिये--

ऊषा-गमन से जाग वे भी
ईश गुण गाने लगे।
वा कंज फूले देख बन्दी
भृङ्ग उड़ जाने लगे॥

ऊषागमन से बालकों का जागना (मुंह खोलना या आँख खोलना ? मालूम नहीं) तो कंज फूलना हुआ, उनके मुंह से निकले गान बंद भौंरे हुये। पहिली बात तो यह है कि जागने का लक्षण आँख खुलना है मुंह खुलना नहीं। दूसरी बात यह है कि जब कमल खिल ही गये तब भी भौंरे बंदी कैसे बने रहे, देखने के समय उनकी अवस्था बंदी की कैसे रही। गोस्वामी तुलसीदास जी ने इसी भाव को किस पूर्णता के साथ रूपक में बाँधा है--"गिरा अलिन मुख पंकज रोकी। प्रगट न लाज-निशा अवलोकी। अपने से नवीन भावों की उद्भावना करना तो दूर रहा गुप्त जी से दूसरों का भाव भी लेते नहीं बनता। दूसरों के भावों की ओर आप झपटते हैं। पर हाथ में टुकड़ा ही आता है जिसे आप कहीं न कहीं ऊपर से चिपका देते हैं। इस प्रकार जहां जहां आपने पट्टी चिपकाई है वहां वहां जो सीधी सादी बात कहने चले थे वह भी बिगड़ गई है।

वेदों पर आपकी एक उत्प्रेक्षा देखिये--

प्रभु ने दिया यह ज्ञान हमको
सृष्टि के आरम्भ में।
है मूल चित्र पवित्रता का
सभ्यता के स्तम्भ में॥

कहिये तो इस उत्प्रेक्षा का विषय वा आश्रय क्या है ? अनुक्तविषया सही, पर विषय तो कुछ चाहिये। खैर आगे चलिये--

ऋषि-मुनि मुदित मन से यथाविधि
हवन क्या करने लगे।
उपकार-मूलक पुण्य के
भांडार से भरने लगे॥

इसे शब्दों की भर्ती के सिवा और क्या कहा जाय ? अग्निकुंड ही शायद आपको पुण्य के भांडार की तरह दिखाई पड़े हैं (राम राम ! दिखाई पड़ने का नाम नाहक लिया, आपको शब्द जोड़ने से मतलब, देखने दिखाने से क्या काम ?) जिनमें से जब जितना चाहें उतना पुण्य आप हाथ डालकर निकाल सकते हैं। जहां पुराण-पाठ होता था वहां गीदड़ बोलते देख आप फरमाते हैं--"आकाश के बहुरंग जैसे भूमि के भी ढंग हैं।" कहां तक दिखावें अब आगे बहुत बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। इतने ही उदाहरणों से लेखक की शक्ति का अनुमान कर लीजिये।

(क्रमशः)

होली।*

[लेखक—श्रीयुत अयोध्यासिंह उपाध्याय।]

षटपद।

(१)

चाव में डूबे उमंगों में भरे भावों ढले।
गान के वर गौरवों की भू बना अपने गले॥
कौतुकों की मूर्तियां बनकर वितानों के तले।
भूति न्यारी मानुकों की भाल पर अपने मले॥
जो परब त्योहार अपने हैं मनाते हो मगन।
हैं बड़े वे भागवाले हैं धरा वे धन्य जन॥

(२)

हैं उठाते देश नभ के अंक वे आनन्द घन।
वे प्रफुल्लित हैं बनाते जाति जीवन का बदन॥
वे खिलाते हैं परस्पर प्यार के सुन्दर सुमन।
हैं दिखाते खोलकर वे सभ्यता संचित रतन॥
हैं बड़ी ही बुद्धि से त्योहार वसुधा में रचित।
चारुता से वह विभव जातीय करते हैं विदित॥

(३)

जब सजा नव पल्लवों के पुंज से विटपावली।
जब रसालों में लसा कर मंजरी सोने ढली॥
जब बना छोटी बड़ी सब डालियां फूली फली।
हाथ में ले जब अनूठे रंग की नाना कली॥
विहँसता ऋतुराज आता है महा मोदों सना।
रंजिता आमोदिता आनन्दिता वसुधा बना॥

(४)

मत्त हो होकर निकुंजों गूंजता है जब भ्रमर।
है सुनाती कूक कर जब कोकिला स्वर्गीय स्वर॥
बोल करके बोलियां मीठी रसीली मुग्ध कर।
जब विहगगन हैं दिशाओं को बनाते मंजुतर॥
जब मलय मारुत बड़ी ही चारुता के साथ चल।
है बहा देता उरों में मत्तता धारा प्रबल॥

(५)

देख करके खेत को अपने सुफलों से भरा।
जब किसानों का हृदय तल है बहुत होता हरा॥
की गई थी जो कमाई पत्थरों का पेट भरा।
जब सुफल उसका उन्हें है मुग्ध हो देती धरा॥
झोंपड़ी से राजभवनों तक सुआभायें फबी।
है विलसती दीखती सम्पन्नता की जब कला॥

(६)

तब उठेगी क्यों नहीं उर में विनोदों की लहर।
क्यों न जावेगा रुधिर में प्राणियों के ओज भर॥
रंग लावेंगी उमंगें क्यों नहीं बन चारु तब।
चौगुना हो चाव चित्तों में करेगा क्यों न घर॥
फल स्वरूप इन्हीं सबों का पर्व होली है बना।
जो बड़ा ही है मनोहर मुग्ध कर रसगालना॥

(७)

जिस दिवस को गात छू प्रहलाद का पावन परम।
होलिका का अग्निमय अंकम हुआ था पुण्य सम॥
है वही फागुन सुदी पूनो, दिवस वह मंजु तम।
है इसीसे होगया त्योहार यह अभिरामतम॥
जिस दिवस को पूतयजन की बात वसुधा में रही।
जाति जीती उस दिवस को मान देगी क्यों नहीं॥

(८)

धान्य कटने के समय सब देश का है यह चलन।
लोग करते हैं विविध उत्सव बना उत्फुल्ल मन॥
मान देते हैं बरस के आदि दिन को सर्वजन।
है हुआ इस सूत्र से भी पर्व होली का सृजन॥
हैं बड़े उत्साह से उसको मनाते निज जन।
हैं उसे कहते इसीसे पर्व उनका विज्ञ गन॥

---

* इस कविता के आदि के १० पद्य किसी समय मर्यादा में प्रकाशित हो चुके हैं पर आगे का सिलसिला मिलाने के लिए वे भी फिर प्रकाशित किये जाते हैं। सं०।

(९)

वृद्धि पाती है शिथिलता शीत की जब नित्य प्रति।
पेड़ तक को है सरस करती किरण जब बार पति॥
तब इधर है ओजमय होता रुधिर जो, क्षिप्र गति।
व्याधियां उत्पन्न होकर हैं उधर लाती विपत्ति॥
है इसीसे यह व्यवस्था लोग हो उत्सव निरत।
चित रखें उत्फुल्ल, पैन्हें वर वसन, हों मोद रत॥

(१०)

यह बड़ा ही भावमय त्योहार है जैसा मधुर।
वैसही है देशव्यापी औ विमोहक लोक उर॥
दीखती है इस परब में मत्तता इतनी प्रचुर।
है उमग पड़ता परम उससे नगर गृह ग्रामपुर॥
इन दिनों उठती है उस आनन्द की उर में लहर।
बैरिता जो है बरस दिन की मिटाता अंक भर॥

(११)

आज दिन रोते हुओं को लोग देते हैं हँसा।
मोद देते हैं व्यथामय मानसों में भी लसा॥
जिन कुचालों में समाज विमोहवश है जा फँसा।
हैं विमूढ़ों को जगा देते उन्हें आँखों बसा॥
स्वांग लाकर सैकड़ों नाना स्वरूपों को बना।
भावमय गीतादि से जातीय दोषों को जना॥

(१२)

रँग उड़ाकर रंग देते हैं न केवल तन वसन।
हैं डुबा देते परम अनुराग में भी मत्त मन॥
कुमकुमों को मार मंजु गुलाल को मलकर बदन।
हैं सुरंजित सा बनाते भव्य भावुकता भवन॥
जा घरों पर खा खिला आमोद से मिलकर गले।
मुग्ध होते हैं परम पा प्रेम के पादप फले॥

(१३)

इन दिनों जैसा गमकता है मुरज बजता पनव।
वेणु वीणा आदि जैसा हैं सुनाते मंजु रव॥
कंठ जैसा है दिखाता ओज, या माधुर्य नव।
है स्वरों जैसा विलसता चारुतर स्वारस्य जव॥
साल भर ऐसा मनोहर रंग दरसाता नहीं।
है गगन रससा बरसता मोद सरसाती मही॥

(१४)

हैं सरव होतीं रसीले कंठ से लड़कें सकल।
चौहटों चौपाल में है नित्य होता गान कल॥
है गली कूंचों विचरता गायकों का मत्त दल।
झोपड़े होते ध्वनित हैं गूंज उठते हैं महल॥
स्वर सरसता है बड़ी सुकुमारता से सब समय।
पेड़तक की डालियां होती हैं मंजुल नाद मय॥

(१५)

अंग बंग कलिंग होते हैं प्रमोदों में निरत।
नाच उठता है सकल पंजाब हो आमोद रत॥
यह हमारा युक्तप्रान्त प्रमत्त होता है महत।
है मनाता मोद राजस्थान हो उन्मत्तवत॥
डूब जाती है विनोदों बीच भारत की धरा।
ब्रज उमग पड़ता है हो जाता है हरियाना हरा॥

(१६)

काल पाकर यह रुचिर त्योहार भी कलुषित हुआ।
कलवियों का नाचना गाना अधिक प्रचलित हुआ॥
गालियां बकना वहँकना मद्यपान विहित हुआ।
डाल देना कीच कालिख पोतना समुचित हुआ॥
ओज औ माधुर्य में बीभत्स आकर के मिला।
पाटलों के पुंज बीच प्रसून बिम्बा का खिला॥

(१७)

किन्तु इस त्योहार में तो भी दिखाती थी झलक।
उस परस्पर प्यार की जिसमें रहे सच्ची ललक॥
नव उमंगों के सहित आमोद उठता था छलक।
सोगई जातीयता भी खोल देती थी पलक॥
भूल करके भेद और विरोध की बातें अखिल।
एक ही रँग बीच रँग जाती थीं सारी जाति मिल॥

(१८)

किन्तु अब इस पर्व का है हो रहा जैसा पतन।
किस विबुध का देख कर उसका व्यथित होगा न मन
प्रति बरस है म्लान होता कंज सा इसका बदन।
है बिगड़ती जारही इसकी बड़ी सुन्दर गठन॥
धूल में है मिल रही इसकी सभी मधु मानता।
मत्तता आमोद मंजुलता उमंग महानता॥

(१९)

विश्व में जिस पर्व से जो जाति है गौरव मई।
है सदा जिसने मिटाई कालिमा जिसकी कई॥
है जिसे जिससे मिली बहु जीवनी धारा नई।
कीर्ति जिसके व्याज से जिनकी दिगन्तों में गई॥
आह! भ्रान्त अतीव बन उस जाति के ही वंशधर।
नाश करते हैं इसे नहिं देख सकते आँख भर॥

(२०)

रंग पड़ता देख उनका रंग जाता है बदल।
लाल हो जाते हैं मूंह गुलाल जो जाती है चल॥
कुमकुमों की मार उनको है बना देती बिकल।
है उन्हें चंचल बनाता गायकों का मत्त दल॥
मुख रँगों को देख वे मुख तक उठा सकते नहीं।
धूल उड़ती देख उनकी धूल उड़ती है वहीं॥

(२१)

किन्तु उनकी औगुनों की ओर ही आँखें अड़ीं।
वे नहीं इसके गुनों पर भूल करके भी पड़ीं॥
वे कभी बारीकियों में भी नहीं इसकी गड़ीं।
वे नहीं रुचि साथ ऊंची आँख से इसकी लड़ीं॥
वे इसकी नहिं देख इसकी रीतियां न्यारी रची।
है बहुत कुछ आज तक जातीयता जिनसे बची॥

(२२)

कौन कहता है कुचालें हैं घुसी इस में नहीं।
मानता हूं हैं बुरी धारें कई इसमें बहीं॥
किन्तु है सच्ची सपूती काम करने में वहीं।
लोक हित के वास्ते बुध ने जहां आँखें खहीं॥
मुख बनाना चुटकियों लेना बहकना है मना।
जो बिगड़ती बात अपनी हम नहीं सकते बना॥

(२३)

क्यों कुचालों पर न होंगी धर्म की मुहरें लगी।
क्यों अजानों की सभी बातें न होवेंगी रँगी॥
दिन दहाड़े जो उन्हीं के सामने होगा ठगी।
ज्ञान की वर ज्योति है जिनके विमल उर में जगी॥
क्यों न होती जायगी तम पुंज की धारा सबल।
जो दमकती भानु की किरणों न आवेंगी निकल॥

(२४)

दल अजानों का कुचालों में इधर चलमा रहे।
दल सुबोधों का उधर निज गौरवों में ही बहे॥
तो बता दो जाति किस से निज व्यथाओं को कहे।
वह कुअवसर में लपककर किस के दामन को गहे॥
निज परब त्योहार में जिनकी नहीं ममता रही।
वे मरम जातीयता का जानते कुछ भी नहीं॥

(२५)

मरडली नवशिक्षितों की है नए रंगों ढली।
है पुराने ढंगवालों के लिये सब ही भली॥
वे नये ढँग से खिलाना चाहते हैं सब कली।
ए उसे तजते नहीं जो बात है अब तक चली॥
द्वंद्व में पड़कर इसी, अब वह नहीं नाता रहा।
सब परब त्योहार का वह रंग ही जाता रहा॥

(२६)

तोल चालिस लाल पहले सामने जो था समा।
जो अनूठापन, परस्पर प्यार, था आँखों रमा।
रंग जैसा उन दिनों आमोद का देखा जमा।
जिस तरह से नव उरों में चाव रहता था थमा॥
आह! हमको आज दिन वह बात दिखलाती नहीं।
वह उमंगें बादलों की झूमती आती नहीं॥

(२७)

उन दिनों थी जोति फैली ज्ञान की इतनी नहीं।
उन दिनों भी सब कुचालें आज दिन की सी रहीं॥
किन्तु अपनापन रहा आज से बढ़कर कहीं।
इन दिनों की तब न थीं जातीयता भीतें ढहीं॥
एक दिल हो उन दिनों जैसे मिले लगते नहीं
लोग वैसे आज दिन एक रंग में रँगते नहीं॥

(२८)

किन्तु हमको है बहुत नवशिक्षितों से ही गिला।
प्यार से क्या वे अजानों को नहीं सकते मिला॥
क्या मनोप्राबल्य की जड़ वे नहीं सकते हिला।
वे पुनः जातीयता को क्या नहीं सकते जिला॥
हैं न ए बातें असंभव जो हृदय में त्याग हो।
जाति का अपने परब त्योहार का अनुराग हो॥

(२९)

क्या हुआ लिक्खे पढ़े जो चित्त में समता न हो।
निज परव त्योहार की औ जाति की ममता न हो॥
औ परस्पर प्यार में सद्भाव में रमता न हो।
थामने से भी हृदय का वेग जो थमता न हो॥
वह बड़प्पन सभ्यता गौरव धरातल में धँसे।
रंग जिसपर लोकहित की लालसा का नहिं लसे॥

(३०)

जो परव त्योहार अपने हम मनावेंगे नहीं।
जो बुरी परिपाटियों को हम मिटावेंगे नहीं॥
जो बहकते भाइयों को पथ दिखावेंगे नहीं।
जोति जो घिरते तिमिर में हम जगावेंगे नहीं॥
तो भला किसको पड़ी है और की जो ले बला।
जाति ही सकती है कर निज जाति का सच्चा भला॥

(३१)

आज भी वह बात इन में है कि जिस से हो भला।
हम सुमति के साथ सकते हैं सुफल जिस से फला॥
हम तिनक कर भूल इनका घोंट सकते हैं गला।
पर कहां फिर पा सकेंगे देशव्यापी बहु कला॥
जाति जो नहिं पर्व उत्सव प्रेम धारा में बही।
वह रही तो नाम को संसार में जीती रही॥

(३२)

ऐ नई पौधें करो मत जाति हित में आतुरी।
फूंकदो अनुराग निजता धुन भरी बर बाँसुरी॥
ऐ पुराने ढंगवालो छोड़ दो चालें बुरी।
आँख खोलो फेर लो अपने गले पर मत छुरी॥
प्यार से मिल, गोद में निज उत्सवों को लो लिटा।
जाति जीती कब रही निज कीर्ति चिन्हों को मिटा।

सम्पादकीय टिप्पणियां।

भाग्य फूटा!

आज भारत का भाग्य फूट गया। बिना मेघ के बिद्युत का पात हुआ। जिसकी स्वप्न में आशा न थी आज वही अघटनीय घटना घट गई। कहते हृदय विदीर्ण होता है, कलेजा मुँह को आता है और सहसा सत्य बात को भी ज़बान पर लाने का साहस नहीं होता। सोचते हैं कैसे कहें और क्या कहें? पाठक, क्षमा करिये, हम कुछ भी कहने में असमर्थ हैं, आप सुन ही लेंगे फिर वृथा उस बात को हम ज़बान पर क्यों लावें? सत्य होते हुए भी जिस पर विश्वास करने को तबीयत नहीं होती या जिसपर विश्वास करने से तबीयत घबराती है और कलेजे में कुछ समझ में न आनेवाली एक अजीब हर्कत होती है। मालूम होता है हृदय पर विषधर बिच्छू डंक मार रहे हैं, और हृदय चारों ओर से भीषण दहकती हुई अग्नि में दहन हो रहा है।

यह सब कुछ है किन्तु हमारा काम बुरा है। खबर सुनाना हमारा काम है, उस खबर के सुनाने से हमें कितनी पीड़ा होगी इसपर हम विचार नहीं कर सकते, सुननेवालों की उसे सुनकर क्या दशा होगी, वे मूर्च्छित होंगे या पागल हो जायँगे इसकी चिन्ता करने का हमें अधिकार नहीं आज तक हम इस काम को सर्वोपरि मानते थे। हम समझते थे दुनिया में इससे परे कोई चीज़ नहीं और बादशाहत भी इसके सामने हेच है किन्तु आज इस समय हम समझते हैं हमारा काम सबसे हीन है। ज़बान हिलती नहीं, कलम बढ़ती नहीं, हृदय साथ छोड़ता है, हाथ पीछे हटता है किन्तु सबको रुष्ट कर, सबों की इच्छा के विरुद्ध काम करना हमारा कर्तव्य है। इसीसे विवश हो कहना पड़ता है कि देश का सूर्य आज अस्त हो गया, वह ज़बान जो कल तक हमारे कानों में गूँजती थी, जो हमारी थी, जो हमें आगे बढ़ाती थी, जो हमारे, और हमारे बालबच्चों के हितों की दुन्दुभी

संसार में बजाती थी, जो हमारे लिए युद्ध करती थी वह ज़बान शुक्रवार की रात्रि को १०-२५ बजे सदा के लिए बन्द हो गई। जो मानसिक शक्ति हमारे लिए चिन्ता करती थी, हमारी ही चिन्ता के कारण जो क्षीण हो गई थी, वह अब महाशक्ति में विलीन हो गई। जो शरीर रुग्ण होते हुए भी अपनी परवा न कर हमारे लिए दूर देशों में दौड़ा जाता था आज वह शरीर शान्त हो गया। जो हृदय हमारे लिए धड़का करता था, हमारे ही लिए धड़कते धड़कते जिसे धड़कने की बीमारी हो गई थी आज वह हृदय हमसे नाता तोड़, दुःख के अथाह समुद्र में हमें निमग्न कर तथा हमारे रोने कलपने की चिन्ता न कर हमसे मुख मोड़ हमसे विदा हो गया। आज भारत से उसका सपूत, उसका एकमात्र राजनीतिज्ञ और कूटनीतिज्ञ सदा के लिए विलग हो गया। अब न बम्बई में, न मद्रास में, न संयुक्तप्रान्त में, न बङ्गाल में, न बिहार में, न पंजाब में, न कौंसिल चेम्बर्स में और न गिल्डहाल में कहीं गोपाल कृष्ण की सुमधुर वंशीध्वनि सुनाई देगी, अब शत्रुओं के हृदय में हूक पैदा करनेवाली कोकिलकंठ गोखले की कूक कहीं न सुनाई देगी। अब कर्ज़न को मुँहतोड़ जवाब देनेवाला इस संसार में न रहा, आज अधिकारियों की ज़बान बन्द करनेवाला हमें छोड़कर चल बसा।

यह हमारा अभाग्य है, हमारे आश्रितों, बाल-बच्चों का अभाग्य है; हिन्दुओं का अभाग्य है, मुसलमानों का अभाग्य और भारतमाता का अभाग्य है। आज इस अभागे देश का कृष्ण टूट गया, आज हमारी बदकिस्मती से हमारा सरताज हम से अलग हो गया, आज हमारा भाग्य फूट गया। अब रोने के सिवा हमारे हाथ कुछ नहीं रहा किन्तु रोने से भी अब क्या हाथ आवेगा? जो होना था सो हो गया, कराल काल ने हमसे हमारा सर्वस्व अपहरण कर लिया, जिस समय हम निश्चिन्त निद्रा में निमग्न थे, उसने अँधेरे में हमपर वार किया। इस समय उसने बाज़ी मार ली है, अब हमारा बदला लेना यही है कि हमारा शत्रु विजय पर खुशी न मना सके। गोपाल कृष्ण का भौतिक शरीर हमारे मध्य में नहीं किन्तु उनकी आत्मा अब तक जीवित है, उनका यशसौरभ अब भी मुर्दों के जिलाने के लिए सजीवन बूटी का काम दे सकता है। आओ भाइयो, आओ! एक बार गले मिलकर रोलें, और हृदय की प्रलयकाल सदृश उमड़ती हुई दुःख की लहरों को किञ्चित् समय के लिए शान्त करलें और यह प्रण करलें कि गोखले की आत्मा को हम अपने से विलग न होने देंगे। गोखले की शिक्षा, गोखले के वचन हमारे पथप्रदर्शक होंगे। गोखले के लिए हम स्मारक बनायेंगे और उन्हींका पगानुसरण कर, उनके सदृश बनने का प्रयत्न करेंगे। काल पर विजय पाने का यही सबसे उत्तम उपाय है। दुःख के भार को कम करने के लिए इससे श्रेष्ठ और कुछ नहीं किया जा सकता। गोखले मरे नहीं, जिसका वास प्रत्येक भारतवासी के हृदय में है उसे मरा समझना भूल है। हृदय को संतुष्ट करने के लिए इतना इस समय अलम् होगा।

युद्धक्षेत्र।

युद्धक्षेत्र से कोई महत्वपूर्ण खबरें नहीं आ रही हैं। पोलैंड में रूसी और जर्मन प्रायः जैसे के तैसे बने हुए हैं। पूर्वीय जर्मनी में जर्मन सेना के अधिक शक्तिशालिनी होने के कारण रूसियों को विवश हो पीछे हटना पड़ा है। कहा जाता है कि यहां पर तैयारियां भी खूब हो रही हैं और इस होनेवाली लड़ाई पर ही भविष्य निर्भर है। पश्चिमीय रणाङ्गण में में व्यवस्था वैसी ही है। जर्मन अबतक अधिकतर बेलजियम और फ्रांस की सीमा पर कब्ज़ा किये बैठे हैं। छुटपुट लड़ाइयों में कभी मित्रदल

और कभी जर्मन दो चार पग आगे पीछे हट जाते हैं। बर्फ और पानी के कारण कोई विशेष महत्व की मारकाट नहीं हो रही है। उत्तरीय समुद्र में ब्रिटिश जहाज़ कुछ डूबे हैं, जर्मनों ने तटस्थ शहरों पर भी गोलाबारी की थी किन्तु उससे कोईविशेष परिवर्तन युद्ध की दशा में न हुआ। आस्ट्रियनों को कसी बराबर दबाते चले जा रहे हैं। साथही साथ ४ लाख की आस्ट्रियन सेना सर्वियन सीमा की ओर बढ़ रही है। तुर्कों की दशा शोचनीय है, रूसी उन्हें पीटते चले जाते हैं। तुर्कों ने फारस में तबरेज़ पर कब्ज़ा कर लिया था किन्तु रूसियों ने वहां से उन्हें फिर मार भगाया। इधर तुर्क सिनाई प्रायद्वीप में पहुंच कर स्वेज़ नहर पर अधिकार जमाना चाहते थे। इसमें भी उन्हें कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। लोग कहते हैं कि अन्त में मित्रदल की सर्वथा जय होगी। कहा जाता है रूमानिया यूनान भी मौसम बदलते ही मित्रदल का पक्ष ले रणक्षेत्र में उतरेंगे। इटली और बलगेरिया के पेट की थाह नहीं मिल रही है।

प्रान्तीय कान्फरेंस।

प्रान्तीय कान्फरेंस की बैठक ईस्टर की छुट्टियों में गोरखपुर में होगी। राजनैतिक कान्फरेंस की अधिनेत्री होंगी मि० बीसेन्ट। राष्ट्रीय दल के लोग इस चुनाव से असन्तुष्ट हैं। उनका कहना है कि भारतीय कान्फरेंस में अधिनायक या सभानेत्री भी भारतीय होनी चाहिये। विदेशियों को उस आसन पर बैठाना इस बात का ढिंढोरा पीटना है कि हम लोगों में उस आसन को सुशोभित करने योग्य पुरुष नहीं है। इसके सिवा एक विदेशी को सभानेत्री बनाने का अर्थ यह है कि मातृभाषा में वहां पर कार्यवाही होना असंभव हो जाय। बिना मातृभाषा की सहायता के जनता में राष्ट्रीयता के भाव कैसे फैलेंगे इसपर कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। सामाजिक कान्फरेंस के लिए पहिले महामहोपाध्याय डा० गंगानाथ झा सभापति चुने गये थे किन्तु किन्हीं कारणों से उन्होंने इस पद को स्वीकार नहीं किया अब आशा है पं० मोहनलाल जुतली सभा के नायक चुने जायँगे। औद्योगिक कान्फरेंस के सभापतित्व का भार रायबहादुर प्रयागनारायण भार्गव पर रक्खा गया है। यह उपयुक्त ही हुआ है।

भारत-भारती।

भारत-भारती की समालोचना प्रकाशित करने का हमारा विचार नहीं था। किन्तु एक पूज्य और प्रतिष्ठित सज्जन के आग्रह से हम अपने स्तम्भों में भारत-भारती की समालोचना प्रकाशित करने पर विवश हुए हैं। इसके पहिले भी हमारे पास भारत-भारती की समालोचनाएं आई थीं। उनमें से एक बड़े ही परिश्रम से लिखी हुई प्रतीत होती थी। उसमें समालोचक होने की "हम" रखनेवालों से सर्टीफिकट प्राप्त इस हिन्दी में नवयुग करनेवाली भारत-भारती की एक एक पंक्ति पर विचार किया गया था, छपने में वह समालोचना मूलग्रंथ की अठगुनी दसगुनी होती। जो समालोचना इस अङ्क में प्रकाशित हो रही है उसके सम्बन्ध में हम कुछ कहना उचित नहीं समझते। किन्तु हम इतना कह देना कि सम्पादक समालोचक की सम्मतियों के लिए ज़िम्मेदार नहीं, आवश्यक समझते हैं। "मर्यादा" सब तरह के विचारों को स्वतंत्रता से छापने के लिए तैयार है और यदि इस समालोचना की आलोचना कोई सज्जन हमें भेजेंगे और यदि वह हमारे विचार में छपने के योग्य होगी तो हम उसे भी सहर्ष प्रकाशित कर देंगे।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग, में बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित हुई।

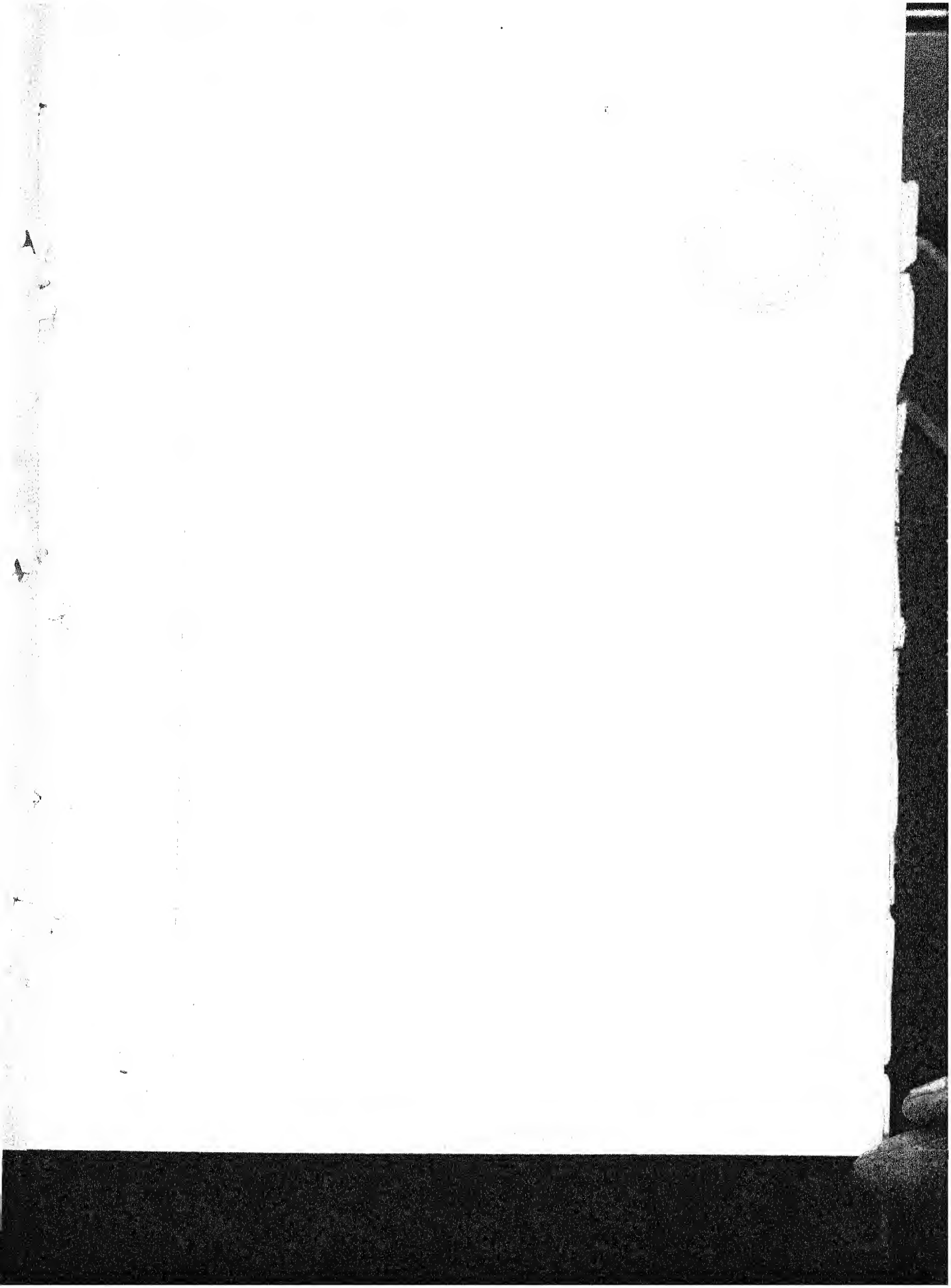

स्वर्गवासी गोपाळ कृष्ण गोखले.

Block, by Courtesy of Navyug.

The Bombay Art Printing Works, Fo

मर्यादा।

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ९] मार्च सन् १९१५—चैत्र [संख्या ३

मनुष्यतत्व।

[लेखक—श्रीयुत शारदाचरण पाण्डेय।]

पतङ्ग उड़ानेवाले सब इस बात को जानते हैं कि नीचे की बन्द हवा में पतङ्ग बढ़ाकर ऊपर की चलती हुई हवा तक पहुंचाना ही कुछ कठिन है। कितने ही कनकौए कच्चा डोर होने से बढ़कर टूट जाते हैं। जैसे पहलवान को कुश्ती मार कर "वह मारा!" कहने में आनन्द आता है वैसे ही किसी का पतङ्ग काट कर "वह काटा!" कहने में बड़ा सुख होता है। बालकों को बढ़े हुए पतङ्ग के सड़ाके और डोर की सरसराहट से साश्चर्य सुख होता है। जब कोई सब कनकौए काटकर धीरे धीरे अपना कनकौआ उतारता है तब उसको बहिर्जगत् में सम्भवतः उसी सुख का अनुभव होता है जिसका रसास्वाद पूर्ण रूप से उसी को हो सकता है जिसने नाना प्रकार की आपत्ति पड़ने पर बड़े २ कष्ट सहकर मनुष्योचित जीवन के सारे कार्य सुन्दरता से समाप्त करने के अनन्तर स्वर्ग में प्रवेश करने के निमित्त संसार से अपने आप को समेटा हो। ऐसा मनुष्य मरता नहीं किन्तु सिमट कर भगवान् में समा जाता है। माता के गर्भ से उत्पन्न होनेवाले और कुछ काल जीकर मर जानेवाले इत्यादि मध्य-निधन मनुष्य के पिण्ड की केन्द्र-स्थली अनादिमध्यान्त अर्वतो-भद्र-चक्र-बिन्दु-स्वरूपिणी विश्वनाभि है जो अनन्त-कला-कुशल "जगत्त्रय विलक्षणोल्लसित सद्यशोलक्षण" अपार गुणागार भगवान् की त्रैलोक्य-मोहन-लीला भूमि है। मनुष्य का मन एक फूलने और पटकनेवाला अर्थात् घटकर सिमटने और बढ़कर फैलनेवाला पदार्थ है। "कत्ताने मारे खुशी के फूलकर कुप्पा होगये!" ऐसा कहने में आता है। यह मन बहुत ही महीन और बहुत ही मोटा है, बहुत ही हलका और बहुत ही भारी

है। सिद्ध पुरुषों का मन किसी निर्वात स्थान में ठहरे हुए एक गोल मटोल पर्जन्य पिण्ड के समान होता है जिसका सङ्कोच प्रसार उनके अधीन ठीक उसी तरह होता है जैसे रबर की थैलीवाले पपैये को बजाना न बजाना लड़कों की इच्छा के अधीन होता है। और जिस प्रकार जबतक कोई लड़का पपैये की थैली को अपनी फूंक से फुलाकर उसका मुंह अँगूठे से बन्द रखता है तबतक वह थैली फूली हुई रही आती है उसी प्रकार सिद्ध पुरुष जबतक इच्छा हो तबतक निःस्पन्द दशा में रखकर अपने मन के संकोच-प्रसार को रोक सकता है। तथा जैसे ठहर ठहर कर कई बार थोड़ी २ फूंक भरने से पपैये की लाल हरी अथवा नीली रबर की कुप्पी फूल फूल कर और फूक निकलने से पटक पटक कर रह जाती है और ज्यों ज्यों फूलती जाती है त्यों त्या रङ्ग खिलता जाता और धीरे धीरे पटकने पर फीका पड़ता जाता है वैसे ही योगीजन अपने एक श्वास को थोड़ा थोड़ा करके जै बार चाहें तै बार रोक कर उस रुकाव का दशा में जितनी देर तक चाहें उतनी देर तक ठहरे रहकर भीतर ले सकते और बाहर निकाल सकते हैं और जैसे जैसे श्वास लेते अथवा निकालते जायँ वैसे वैसे अपने शक्तिवैभव को प्रादुर्भूत और तिरोहित कर सकते हैं। जगदाधार आदि कारण में स्थित रह कर योगी अपने पिण्ड में सारे ब्रह्माण्ड की शक्ति का समावेश कर सकता है। भगवद्भक्त कुछ अपने बल से नहीं किन्तु अपने भगवान् के बल से बलवान् होकर उनके प्रिय कार्यों का साधन बन जाता है। इसीलिए सामान्य पुरुषों को सदा से भक्तों के जीवन में भगवान् के दिव्य-रूप दिव्य गुण दिव्य कर्म और दिव्य स्वभाव का दर्शन होता चला आता है।

एक मुसलमान फ़क़ीरने किसी वेश्यागामी हिन्दू से यों कहा था:—

"जो मिला भी तो इनसेःवोसा
और उनसे पान ये क्या मिला!
तू मिले तो ऐसे किसी से मिल
कि मिले से जिसके खुदा मिले।"

जिस प्रकार सूर्य की किरण पड़ने से कमल खिलता है उसीप्रकार दयार्द्रचित्त भगवद्भक्त की कोमल दृष्टि पड़ने से सामान्य मनुष्य के हृदय में भक्तिकलिका प्रस्फुटित होती है। सुगन्ध खिले हुए पुष्प से निकलती है। मनुष्य बड़ों की आँखें देखकर बड़ा बनता है। धन्य हैं वे जिनके हृदय पर किसी महानुभाव की दृष्टि पड़ती है! किसी महात्मा का वचन है:—

"चलत चलत जब बल (पड़ै)
थकत थकत थक जाय (परै)
लखत लखत जब लख (पड़ै)
आनँद उर न समाय!" (परै)

जो मारे आनन्द के फूले अङ्ग नहीं समाते जिनके रोम रोम से आनन्द चू रहा हो ऐसे अमृतनिर्झर महात्माओं के कर्पूरकुन्दोज्वल और दुग्धफेनोपम शरीरों के सौकुमार्य तथा प्रेमसम्पुटीभूत उनके मुखारविन्द के सौन्दर्य को पूर्ण रूप से चित्रित करने की योग्यता का तो कहना ही क्या ध्यान तक में लाना मेरे लिए असम्भव है! जो सामान्य पुरुषों के लिये असम्भव है वह यदि भक्तों के लिए सम्भव न होता तो किसी भक्तशिरोमणि गोपी ने अपनी सखी से यों कहा यह बात उस कवि के चित्त में न आती जिसने लिखा है: —

"शृणु सखि कौतुकमेकं
नन्दनिकेतनाङ्गणे मयादृष्टं।
गोधूलिधूसराङ्गा
नृत्यति वेदान्तसिद्धान्तः!"

देखो! भक्तों ने नन्द के आँगन में वेदान्त-सिद्धान्त को सशरीर होकर खेलते हुए देखा!

बहुत दिन हुए अलवर के जयदेव कवि ने एक शेर यह कहा था:—

"लेही आती है उन्हें अपनी मोहब्बत की कशिश,
वर्ना आते वो तबज्जुः में भी अखराते हैं!"

जो किसी महात्मा का दर्शन पाकर महात्मा बना उसका दर्शन पाकर ही किसी साधुने कहा है:—

"नैन छके बैना छके, छके गात सरसात।
छके नैन जापर (पड़ें) रोम रोम छक जात (एरें)

जिस मनुष्य को केवल एक बार सचमुच किसी ब्रह्मात्मा महापुरुष का दर्शन हो जाता है उस मनुष्य का सारा जीवन पलटा खाजाता है। महात्मा धर्ममूर्ति का दर्शन करने से बड़े बड़े "परच्छिद्रान्वेषी धर्मद्वेषी" धर्माचरण को धारते हैं। महात्मा-प्रेममूर्ति का दर्शन पाने से बड़े बड़े वियोगनियलम्पट और परद्रोही झगडालू पुरुषों के हृदय का ऊसर प्रेमपीयूषधारा से प्लावित होकर दिव्य भाव और विचारों का उपजाऊ खेत बन जाता है! महात्माकारुण्यमूर्ति का दर्शन होने से बड़े बड़े क्रूर शिकारियों ने शिकार खेलना छोड़ दिया! क्योंकि जिसके रोम रोम से दया टपक रही हो ऐसे का साक्षात्कार होने पर बड़े बड़े विकट बहेलिये और बधिक अपने अपने जाल और अस्त्रशस्त्र क्यों न फेंक देते!

मुक्ति बताबन अति कठिन
रे पण्डित मतिमन्द।
प्यारी पैनी दीठि सों
सहज कटत भव फन्द॥

महात्मा-आनन्दमूर्ति के मधुर दर्शन से कोई कैसा ही शोक-सन्ताप-तप्त और आधि-व्याधि-पीड़ित क्यों न हो उसको भी शान्ति देवी की गोद में जाकर सुख होगा!

महात्मा ज्ञानमूर्ति का जिसे दर्शन होजाय वह कैसाही अज्ञानी क्यों न हो तत्काल ज्ञानी हो जायगा! ज्ञानी मनुष्य के दर्शन से यदि शीघ्र ही अज्ञानी का अज्ञान दूर न भी हो तब भी ज्ञानी बनने की उसको लालसा अवश्य उठ खड़ी होगी और कालान्तर में पूरी भी होगी। अज्ञानाबृत्त सांसारिक मनुष्य जो केवल विषय-सुखाभिलाषी हैं यह नहीं जानते कि जिनकी हम इच्छा करते हैं और जिसके निमित्त नाना प्रकार का परपीड़न और प्रपञ्च करते हैं वह उस पदार्थ का अग्रभाग और पूर्वार्ध मात्र है जिसके पृष्ठभाग और उत्तरार्ध का नाम दुःख है जिसके सामने की अलँग देखकर हम सुख के बहकाए में आकर उसके सगे भाई दुःख के कठिन जाल में फँसे फड़फड़ाते हैं। विषय-सुख को त्याग देने से ही मनुष्य नाना रोग शोक विषाद आदि क्लेशपाशों से मुक्त होकर भगवद्भजन में मग्न हो सकता और क्रमशः परम गति का अधिकारी बन सकता है। तृष्णा की तरङ्गों में अब तब होनेवाले का कल्याण सन्तोषी मनुष्य के दर्शन से अवश्य होगा। उदार मनुष्य के दर्शन से बड़े बड़े कर्कश कंजूस पसीजने लगते हैं! किसी धीर वीर गम्भीर पुरुष के दर्शन से लोगों के हृदय में धैर्य शौर्य गम्भीर्यादि गुणों का न्यूनाधिक समावेश अपने अपने चित्त के अनुसार अवश्य होता है। यह भगवान का अटल नियम है कि जिसमें जो गुण हो वह गुण उसके द्वारा दूसरे में आजाय। और न केवल आजाय किन्तु आकर दिन दूना रात चौगुना बढ़ता चला जाय! जो भी गुरुभक्त होगा सो गुरुओं के आशीर्वाद से किसी न किसी दिन गुरुसम समाराध्य अवश्य होगा। इसीलिए सौम्यप्रकृति सनातनधर्मावलम्बी सज्जनों का समुदाय स्वभावसिद्ध साधुसेवी है। भगवान् के बड़े बड़े सोहावने रूप का दर्शन साधुओं में हो जाता है। प्रोफेसर राममूर्ति को अपने शरीर की गठरी जितना चाहे उतना कस कर बाँधने की क्रिया किसी साधु ने बताई है। कितने ही ढीले आदमी अपने

अस्थिपञ्जर पर ऐसे लटकते हैं जैसे खूंटी पर कपड़े ! कितने ही भारी आदमी जब किसी स्थान में आकर बैठते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे कहीं से किसी ने बोझा या घास का गट्ठा लाकर पटक दिया ! कोई कोई आदमी उस चूहे के समान होता है जिसने बिल्ली देख ली हो ! और कोई ऐन मैन बिलरबग्वा ! संसार में बहुत से सूँघू आदमी हैं और बहुत से बुद्धे और गायबगुल्ला !

मेरी समझ में कितने ही आदमियों को नये नामों से पुकारकर उनका उपकार करना चाहिये। कुपथ्य के कारण सदा रोगी रहनेवालों को रोगमित्र कह कर पुकारना योग्य है। झूठ बोलनेवाले ब्राह्मण कुलाङ्गार को पण्डित मिथ्याप्रसाद के नाम से तबतक पुकारना योग्य है जबतक वह झूंठ का सर्वथा परित्याग न कर दे। इसी प्रकार अज्ञानपाल दुर्गुणदत्त दोषदास दीनमर्दन सन्तोषनिकन्दन भ्रष्टभूषण कष्टकारण दयादूषण आदि नामों से पुकारे जाने योग्य सैकड़ों मनुष्य हैं। कहो ! ऐसों के उद्धार की बड़ी आवश्यकता है न ? पर करै कौन इनका उद्धार ? इनका उद्धार वही कर सकता है जो इनके बीच में पलकर बड़ा हुआ हो और इनकी सारी लीलाओं को और उनके परिणामों को भगवान् के भेजे हुए जासूस के समान देख रहा हो और जो धर्मराज के इजलास में साक्षी बनेगा ! मनुष्य का मनुष्य के साथ ऐसा व्यवहार होना चाहिये जो सर्वभूतान्तरात्मा जगदीश्वर को प्यारा लगे। मनुष्य को कुछ मनुष्य का प्यारा नहीं किन्तु मनुष्य के हृदय में बढ़ते हुए ज्ञान और प्रेम के प्रकाश को प्यार करनेवाले परमात्मा का प्यारा बनना चाहिये।

प्रत्येक मनुष्य के भीतर एक ऐसा स्थान है जहां अपनी वृत्ति को टिकाने से यदि वह चाहै तो अपने शरीर में श्वास की गैस ठूंस ठूंस कर ठीक इसी रीति से भर सकता है जैसे हवा की पिचकारी से बाइसिकिल के पहिये पर चढ़ी हुई भीतर से पोली रबरकी हाल में हवा भरते हैं। प्रत्येक मनुष्य अनन्त-शक्ति-भंडार से अपना सम्बन्ध ठीक उसी प्रकार जोड़ और तोड़ सकता है जैसे बिजली की सब्जूया से तार का सम्बन्ध आवश्यकतानुसार जोड़ते और तोड़ते हैं। और जैसे जहां बिजली की ट्रामगाड़ी दौड़ती है और बिजली का प्रकाश होता और उसी से पङ्खे चलते तथा और भी अनेक काम होते हैं तहां एक विद्युच्छक्ति-भण्डार (Power House) होता है जिससे सम्बन्ध टूट जाने पर सब काम बन्द हो जाते हैं वैसे ही समूचे विश्व का परिचालन करनेवाले उस अनन्तशक्तिभण्डार अपने उपास्य परमात्मा से विमुख होते ही मनुष्य के सब काम बन्द हो जाते हैं। भगवद्विमुख लोगों के चलते हुए काम भी ऐसे हैं जैसे पागलों के मन और शरीर ! और जैसे उच्छृङ्खल पागलों से लोगों को हानि पहुंचने के सन्देह से उनकी इच्छा के प्रतिकूल पागलखानों में रक्खा जाता है और उनसे ऐसे ऐसे काम लिये जाते है जिनका प्रयोजन उन्हें विदित नहीं होता वैसे ही मिथ्यापूजक सांसारिक जीवों का अपने ही स्वार्थ के पागलखाने में रखकर उनसे वह काम लेलिया जाता है जो अन्त में दूसरों के लिए लाभदायक ठहरता है। सूमड़े की सम्पत्ति का स्वामी वही होगा जो उदार और दयालु होगा। बहुतेरे सूम अपनी औलाद को उड़ाऊ जाऊ देखकर कैसा कैसा कुढ़ते हैं ! करैं क्या ? कुछ वश तो चलता नहीं अन्यथा न जाने क्या करते ! इनकी मन चीती इस लिए नहीं होती कि ये लोग धन के प्रयोजन से नहीं किन्तु धन से प्रयोजन रखते हैं। ऐसों की दशा का उदाहरणस्वरूप जयपुरके राज्य में रहनेवाली एक बुढ़िया थी जिसके आगे पीछे कोई न था और पीसकूट कर अपना पेट पालती थी। उसके पास कुछ मोहरें थीं पर यह बात कोई जानता न था। जब वह मरने को हुई तब एक एक करके उस कूढ़ बुढ़िया ने सारी

अशर्फियां गरक लीं! वही अशर्फियां पीछे डल खुरांट की राख में लोगों को मिलीं। सांप हो कर अपने गड़े धन पर बैठनेवालों को क्या कहा जाय? जिस प्रकार विकार होने से सूर्य के सन्मुख होने पर मनुष्य के नेत्र चौंधियाने लगते हैं वैसे ही पापग्रस्त पुरुष की दृष्टि सत्यसेवी के समक्ष नहीं ठहरती। दृष्टि के ठहरे बिना मनुष्य का कल्याण हो ही नहीं सकता। सारा खेल दृष्टि का है। जिसकी दृष्टि सत्य पर जमी हुई रही आवे उसका ही कल्याण समझना!

प्रतिभा का विकाश।*

[लेखक-श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी।]

प्रतिभा के विकाश पर कुछ लिखने के पहिले प्रतिभा क्या है, यह बतलाना आवश्यक है। पर इसके लिए जगद्बाल की आवश्यकता नहीं। रुद्र कवि की उक्ति ही अलम् होगी। वह कहते हैं—"प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा" अर्थात् जिस बुद्धि से अथवा शक्ति से मनुष्यों को नये २ विचार सूझते हैं उसका नाम प्रतिभा है। इसी प्रतिभा के विकाश का वर्णन यहां करना है।

अंगरेज़ी में एक कहावत है कि—'A poet is born, not made' अर्थात् मनुष्य जन्म से ही कवि होता है, बनता नहीं। कवि अपनी प्रतिभा के साथ जन्म लेता है। उसके सिवा और कोई सच्चे कवि के गौरवयुक्त पदवी को ग्रहण नहीं करता है। पर 'not made' से यह भी ध्वनि निकलती है कि, शिक्षा या और कोई अभावनीय अनुकूल अवस्था भी मनुष्य को कवि नहीं बना सकती है। कवित्वशक्ति वास्तव में दुर्लभ है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। पर इस शक्ति का विकाश क्या अनुकूल अवस्था पाकर नहीं होता है? भिन्न २ देशों के साहित्य के इतिहास की पर्यालोचना करने से देखा जाता है कि, देश काल पात्र तथा अन्यान्य कारणों से कवि की प्रतिभा बहुधा नियन्त्रित रहती है। राष्ट्रीय अथवा सामाजिक अवस्था और प्रतिभा के विकाश में साधारणतः कार्यकारण सम्बन्ध दिखाई देता है।

प्रतिभा कभी २ अलक्षित रूप से इस तरह अकस्मात् अपना विकाश कर बैठती है कि आश्चर्य होता है। जल में मिली हुई चीनी या और कोई द्रवमान पदार्थ सर्दी गर्मी के संयोग से भी कभी क्रिस्टल (crystal) नहीं बनता है पर कभी ज़रा सा आघात पहुंचते ही तुरन्त बनने लगता है। ठीक यही दशा प्रतिभा की भी है। मनुष्य-पेट से प्रतिभा तिर ही पैदा होता है पर उसके अस्तित्व का कुछ भी लक्षण दिखाई नहीं देता है। परन्तु किसी सामयिक घटना से आन्दोलित होकर वह अकस्मात् विकसित हो उठती है। इस प्रकार के प्रतिभा-विकाश के उदाहरण अनेक हैं।

महर्षि वाल्मीकि के मुख से क्रौंच पक्षी की जोड़ी टूटते देख अकस्मात् "मा निषाद" आदि निकलना उनकी प्रतिभा के विकाश का प्रथम दृश्य है। युवक शेक्सपियर का अपनी जन्मभूमि Stratsford-On-Avon, स्त्री पुत्रादि

---

* यह निबन्ध कलकत्ते की हिन्दी-साहित्य परिषद् में पढ़ा जा चुका है।

ऊन का व्यापार छोड़कर रुपये कमाने के लिए लंडन आना तथा रंगमञ्च पर अभिनय करना ही उसकी प्रतिभा के विकाश का कारण है इसमें सन्देह नहीं। फ्रान्स का सुप्रसिद्ध नाटककार मोलियर (Moliere) भी जवानी में शेक्सपियर की तरह मनमाजी था। उसका दादा थियेटर देखना बहुत पसन्द करता था। वह मोलियर को भी अपने संग थियेटर ले जाया करता था। इस पर मोलियर का बाप एक रोज बोला "मेरा लड़का क्या अभिनेता होगा?" वृद्ध ने उत्तर में कहा—"भगवान करे मोलियर मनरोज़ का अभिनेता हो।" मनरोज़ (Monrose) उस समय फ्रान्स का सब से अच्छा अभिनय करनेवाला था। दादे का यह वचन मोलियर के हृदय में चुभ गया। उसी समय से उसके जीवन का पथ निर्दिष्ट हो गया। इस सामान्य घटना से वह दुर्वृत्त युवक फ्रांस का साम्यरस का सर्वप्रधान कवि होगया। रंगभूमि में प्रवेश करने के पहिले शेक्सपियर ऊन का और मोलियर कारपेट का व्यापार करता था! और एक फरासीसी कवि कार्नेई (corneille) जवानी में वकालत करता था। उस समय वह कविता का नाम भी नहीं जानता था। पर अकस्मात् एक रोज़ इश्क का भूत उसके सिर पर चढ़ बैठा। उस उसकी वकालत तो काफूर होगई और वह अपनी माशूका के लिये कविता रचने लगा। वही कविता उसके महत्व का कारण होगई। अंगरेज़ी कवि कौली (Cowley) भी घटनाक्रम से सरस्वती देवी का कृपापात्र हुआ था। वह लड़कपन में एक रोज अपनी माता के घर में स्पेंसर की Fairy Queen नाम की कविता पढ़ने लगा। पढ़ते २ वह ऐसा तन्मय होगया कि उसके मुख से कविता की धारा निकलने लगी। जब वह केवल तेरह वर्ष का था तब उसकी कविता की पहिली किताब निकली थी। अंगरेज़ी साहित्य जाननेवाले सब जानते हैं कि, घटनाचक्र से ही बायरन की प्रतिभा भी विकसित हुई थी "एडिनबरा रिविउ" के आक्रमण करने पर उसने British Bards and Scotch Reviewers नाम की व्यङ्ग कविता बनाई थी। यही उसकी प्रतिभा के विकाश का पहिला नमूना था। अपनी चरित्रहीनता के कारण जब वह स्वदेश परित्याग करने को विवश हुआ तब फिर उसकी प्रतिभा जाग उठी। उस समय उसने फिर Childe Harold नाम की कविता रची। देशविदेश में इसका बड़ा आदर हुआ। जो लोग पहिले उसे घृणा की दृष्टि से देखते थे वह उसका फिर सम्मान करने लगे। वह अपने देश वापिस आया और बड़े आदमी लोग उससे मिलकर अपने को धन्य समझने लगे। पर अफसोस यह सम्मान वह बहुत रोज न भोग सका। जिस चरित्र हीनता के कारण उसे पहले देश छोड़ना पड़ा था वही फिर आ उपस्थित हुई। अन्त में वह एक रोज सदा के लिये देश से निकल गया। Childe Harold के अन्तिम दो सर्ग और Don Juan यह दोनों कविताएं उसके स्वदेश-त्याग के फल हैं।

विदेश में ही नहीं अपने यहां भी इसके बहुतेरे उदाहरण मिलते हैं। कालिदास, जगन्नाथ त्रिपुरी, जयदेव, सूर, तुलसी, भूषण, भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र आदि कवियों की प्रतिभा भी घटनाक्रम से विकसित हुई है। विद्यारम्भ से केवल नामोल्लेख ही कर दिया है।

केवल काव्यजगत में ही आकस्मिक घटना विशेष प्रतिभा के विकाश में सहायता करती है यह नहीं, वह साहित्य के अन्यान्य विभागों में भी अपना चमत्कार दिखाती है। इसके भी अनेक उदाहरण हैं। नमूने के लिये दो चार यहां दिये जाते हैं। Fielding फीलडिंग अंगरेज़ी उपन्यासलेखक है। उसने अर्थाभाव दूर करने के लिये पन्द्रह साल तक बहुतेरे नाटकादि रचे पर सुलेखकों में उसका नाम नहीं हुआ। फिर उसने सामयिक औपन्यासिक Richardson

के Pamela नामक उपन्यास की Parody (अनुकृति) लिखने में हाथ लगाया। बस हाथ लगाते ही उसे अपनी प्रतिभा का पता लग गया। यह Joseph Andrews ही उनकी भविष्यदुन्नति की पहली सीढ़ी है। स्वदेशीय साहित्य में भी ऐसे दो चार उदाहरण पाये जाते हैं। बंकिम बाबू की बिल्कुल एक बात की चोट से रमेशचन्द्र दत्त बंगला साहित्य में अपनी प्रतिभा दिखा गये हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की छोटी-मोटी कहानियां बड़ी सुन्दर होती हैं। उनकी उत्पत्ति का कारण बड़ा विचित्र है। रवीन्द्र बाबू अपने गावों की सैर अक्सर नाव पर ही किया करते थे। एक बार उनकी नाव एक गाँव में खड़ी थी। उन्होंने देखा कि कई आदमी एक औरत को जबरदस्ती ससुराल भेजने के लिये नाव पर चढ़ा रहे हैं। यह घटना ही उनके कहानी लिखने का कारण हुई। माइकेल मधुसूदनदत्त और काली प्रसन्नसिंह के बारे में भी ऐसी ही बातें सुनने में आती हैं। शिवलिङ्ग पर चढ़े हुए चावल चूहों को चाटते देखकर आर्यसमाज के प्रतिष्ठाता स्वामी दयानन्द के भाव का परिवर्तन हुआ था। पं० दीनदयालु शर्मा भी घटनाक्रम से दयानन्दगाम्भीर्यप्राप्त हो गये। "भारतमित्र" के भूतपूर्व सम्पादक स्वर्गवासी बाबू प्रेमयुकुन्द गुप्त की प्रतिभा का विकाश "हिन्दीबङ्गवासी" छोड़कर "भारतमित्र" में आने पर हुआ। ..... हिन्दीबङ्गवासी के सम्पादकों को पत्र के स्वामी ने एक निरपराध ब्राह्मण को जबर लेने के लिये हुक्म दिया। और सम्पादकों ने क्या कहा मालूम नहीं पर गुप्त जी ने उसी समय लेखनी रख दी और कहा कि, निरपराध ब्राह्मण की निन्दा मुझ से न होगी। बङ्गवासी से सम्बन्ध छोड़ वह "भारतमित्र" में चले आये और उसी दिन से उनकी प्रतिभा का परिचय मिलने लगा। उनके चुटीले लेख और टिप्पणियों ने हिन्दी संसार को काया पलट दी और नये उत्साह से लोग हिन्दी की सेवा करने लगे। अच्छे सम्पादकों में उनकी गिनती होगई।

प्रसिद्ध इतिहास-लेखक जिबन (Gibbon) के मन में रोम के इतिहास लिखने की बात जिस तरह पहिले पहिल उठी वह सुनने के लायक है। रोम के प्राचीन गौरव (Capital) खंडहरों में एक दिन सांझ को वह बैठा था। ज्युपिटर के मन्दिर में सन्यासीलोग नंगे पैर कन्धावन्दन कर रहे थे। उसी समय रोम के अभ्युदय और पतन का इतिहास लिखना उसने विचारा।

न्यूटन के सर्वाकर्षण का नियम और वाल्टा की प्रवाहमान विद्युदुत्पादन-प्रणाली किस प्रकार तुच्छ घटनाओं से आविष्कृत हुई सब को मालूम है। एक सामान्य घटना से Flamsteed सुप्रसिद्ध ज्योतिर्विद् होगया। सदा रोगग्रस्त रहने के कारण लड़कपन में ही उसे पाठशाला छोड़नी पड़ी थी। पीछे संयोग से Sacrobosco प्रणीत Sphaera नामक ज्योतिष विद्या का ग्रन्थ उसके हाथ लग गया। वह उसी समय से उस की आलोचना में लगा। पीछे उसका बड़ा नाम हुआ।

ऐसे उदाहरण और भी बहुतेरे उदाहरणों से दिखाया जासकता है कि प्रतिभा के सहित जन्मग्रहण करने पर भी प्रतिभा अलक्षित रहती है। पर पीछे साधारण घटना से उसका विकास होजाता है।

मैं समझता हूं, मेरा तात्पर्य अब पाठक भली भांति समझ गये होंगे। यह स्वीकार करना पड़ता है कि, कवि उत्पन्न ही नहीं होते बनाये भी जाते हैं। प्रतिभा होनी चाहिये, फिर कविता ही क्यों सब बातें आपही हो जाती हैं। कभी कभी प्रतिभा की प्रेरणा स्वतः अनुभूत नहीं होती है। मालूम होता है, इसके स्वाभाविक विकास के पथ पर परदा पड़ा रहता है परन्तु परमात्मा अकस्मात् किसी समय साधारण आघात से वह परदा हटा देता है और उसी समय उस क्षुद्र प्रतिभा की उज्ज्वल ज्योति से दिग्मण्डल प्रकाशित हो जाता है।

युद्ध सम्बन्धी गप्पें।

[लेखक—श्रीयुत रामनारायण मिश्र।]

इस समय यूरोप में महाभारत हो रहा है। इसका प्रभाव संसार के सब महाद्वीपों पर पड़ रहा है। संसार के प्रत्येक हिस्से में थोड़ा बहुत अंगरेज़ी राज्य है। अंगरेज़ों के अस्त्र शस्त्र जर्मन राज्य के विरुद्ध उठे हुए हैं। इस अवस्था में अंगरेज़ी राज्य में कोलाहल मचाने के अनेक उपाय विरोधी लोग कर रहे हैं। विरोधियों की पहुंच भारतवर्ष तक नहीं है परन्तु इस देश में विद्या का अभाव है। किसी झूंठी बात का यहां फैल जाना कठिन नहीं है। जिन लोगों ने इस रामराज्य में शिक्षा पाने का सौभाग्य प्राप्त किया है उन लोगों का धर्म है कि लड़ाईसम्बन्धी ऐसी गप्पें बढ़ने न दें। उनमें से कुछ गप्पों का यहां उल्लेख किया जाता है जिनके जानने से मालूम हो जायगा कि वे किस प्रकार निर्मूल और हानिकारक हैं। हानि भी भारतवासियों ही की है, सरकार का उनसे अधिक कष्ट नहीं पहुंच सकता। इस प्रकार की गप्पें इसी देश में नहीं फैलती हैं अन्य देशों की भी यही दशा है परन्तु भारत एक विशाल देश है, यहां शिक्षित लोगों की संख्या कम है और लाखों स्त्रीपुरुष इस देश में भोलेभाले हैं इसलिए यहां फैली हुई बात फैलती ही जाती है।

किस प्रकार से कभी २ गप्पें फैलती हैं इसका भी एक उदाहरण देना आवश्यक है—

बनारस के एक अंगरेज़ी स्कूल में एक फौजी हवलदार कसरत सिखाने के लिए रक्खा गया, उसने ऐसे लड़कों की एक सूची बनाई कि जो कसरत में अच्छे थे। एक लड़के के घरवालों ने यह समझ लिया कि जिन लड़कों का नाम लिखा गया है वे फौज में भेजे जायँगे। उस लड़के का स्कूल आना बन्द कर दिया गया। यहां तक कि स्कूल से उसका नाम कटवाने के लिए उसके घर के लोग तैयार होगये।

बहुधा लोग कहते हैं कि जर्मन लोग संस्कृत के पंडित हैं इसलिए गोमांस नहीं खाते।

यह बात सच नहीं है कि प्रत्यक जर्मन संस्कृत का पंडित है। हां यह अवश्य है कि यूरोप में जितने संस्कृत के विद्वान हैं उनमें जर्मन विद्वानों की संख्या अधिक है पर ऐसे लोग लाखों में एक हैं। उनके कारण समस्त जर्मन जाति को संस्कृत के अनुराग का गौरव नहीं दिया जा सकता।

रहा गोमांस का खाना इस बात को भूगोल के विद्यार्थी जानते हैं कि एक देश से दूसरे देश में खाने की वस्तुएं जाया करती हैं। दक्षिण एमेरिका में Argentine Republic से मनों गोमांस प्रति वर्ष जर्मन देश को भेजा जाता है। यदि वहां के लोग गोभक्त होते तो गोमांस को बिक्री क्यों होती।

इसके अतिरिक्त जिस प्रकार इस देश में जर्मनवालों को संस्कृतज्ञ और गोमांस न खानेवाले कहकर लोग बहकाए जाते हैं उसी प्रकार टर्की देश में यह बात प्रसिद्ध की जाती है कि जर्मन सम्राट् मुसलमानी धर्म को उत्तम समझते हैं और मुसलमानों के सहायक हैं। असली बात तो यह है कि लोगों की जान मारनेवालों का कोई धर्म नहीं होता। जर्मन लोगों ने ईसाई मतावलम्बी होकर भी लोवेन, टरमौन्ड, रीम्स इत्यादि स्थानों में युद्ध के समय गिरजों में आग लगादी या उनको तोप से ढहा दिया या उनको नष्ट भ्रष्ट कर दिया।

एक गप्प यह भी फैली हुई है कि एक जर्मन हवाई जहाज़ हिन्दुस्तान में आया था। संयुक्त प्रान्त के लोग कहते हैं कि गाज़ीपुर में लोगों ने दिन के समय उसको देखा था, पञ्जाब के लोग कहते हैं कि गुरदासपुर के पास एक गांव में वह पानी पीने के लिए उतरा था और जिन लोगों ने उसको पानी पिलाया उन्हें रुपया अशर्फियां दे गया। प्रत्येक प्रान्त में इसी तरह कोई न कोई जगह बतला दी जाती है और स्थान भी ऐसा बतलाया जाता है कि जो प्रसिद्ध न हो, जहां विद्वानों की बस्ती न हो और जो रस्ते से हटकर हो ऐसी गप्पें सुनकर लोग चमकीले तारों को देखकर हवाई जहाज़ समझ लेते हैं और मनमानी कल्पना करने लगते हैं। अंगरेज़ी सरकार की ओर से फौज को हवाई जहाज़ पर चढ़ना सिखलाने का सीतापुर में प्रबन्ध है। सम्भव है कि वहीं का कोई जहाज़ कभी इधर उधर दिखलाई भी दे गया हो। जर्मन देश से वायुमण्डल पर सहस्रों कोस से हवाई जहाज़ का आना असंभव है।

कहीं कहीं गँवार लोग कहते हैं कि हमारे सम्राट् जार्ज महोदय स्वदेश छोड़कर भारत में आगए हैं। कोई कहता है प्रयाग के क़िले में ठहरे हैं, कोई कहता है दिल्ली के क़िले में हैं और कोई कहता है कि नैपाल में हैं। भला ऐसी गप्पों का भी कहीं ठिकाना है। अभी थोड़े ही दिन हुए कि वे रणक्षेत्र में स्वयं पधारे थे और वहां अन्य योद्धाओं के अतिरिक्त भारतवासी सेना से विशेष प्रेम और कृपापूर्वक उन्होंने बात चीत की थी और फ्रांस के प्रेसिडेन्ट और बेलजियम के सम्राट् के साथ भोज में सम्मिलित हुए थे हमारे सम्राट् को बाल्यावस्था ही में सैनिक शिक्षा मिली थी। उनके युवराज रणक्षेत्र में उपस्थित हैं। अंङ्गरेज़ जाति कायर नहीं है। इस युद्ध में बड़े बड़े लोगों के सम्बन्धियों का देहान्त हो गया है परन्तु किसी ने भी अपने कर्तव्य पालन करने से मुंह नहीं मोड़ा। हमारे बड़े लाट के सुपुत्र अनरेबिल लेफ्टिनेन्ट हार्डिङ्ग युद्ध में ज़ख़्मी होकर मृत्यु को प्राप्त हुए, हमारे भारतीय मंत्री लार्ड क्रू के जामाता का देहान्त भी लड़ाई में हुआ, हमारे सैनिक लाट H. E. Sir Beauchamp Duff का पुत्र भी इसी प्रकार असार संसार को छोड़ गया। सर डंकन बेली जो थोड़े दिनों तक इस प्रान्त में लेफ्टिनेन्ट गवर्नर थे उनका भी एक पुत्र रणक्षेत्र में मरकर यश को प्राप्त हुआ परन्तु इनमें से किसी महानुभाव ने भी अपने इस असह्य दुःख के कारण अपने कार्य को नहीं छोड़ा। कारण यह है कि सम्राट् से लेकर प्रत्येक इङ्गलैंडनिवासी इस समय अपने देश के लिए अपना जीवन प्रदान करने के लिए प्रस्तुत है।

इसी प्रकार की सैकड़ों गप्पें प्रसिद्ध हैं। कोई कहता है इङ्गलैंड की राजधानी लंडन से वेलफास्ट बदल गई, कोई कहता है शहरों में कसाइयों के भवन और सरकारी बाटिकाएं नीलाम हो रही हैं, कोई तो यहां तक कहता है कि धनाभाव से स्कूल बन्द हो रहे हैं इत्यादि इत्यादि। इन सब का फल यह है कि लोग बैंकों से अपना रुपया निकाल कर ज़मीन में गाड़ रहे हैं। जब वे जान लेंगे कि ये सब कहानियां निर्मूल हैं तब वे ऐसा नहीं करेंगे। डाकख़ाने की बचत में रुपया रखने से अच्छा कोई दूसरा उपाय इस समय नहीं है। यह युद्ध चाहे कितने भी दिनों तक रहे पर अंगरेज़ी राज्य भारतवर्ष में बना ही रहेगा। जिस प्रकार भारतीय सेना इस समय अंगरेज़ी राज्य के लिए लड़ रही है और जिस प्रकार लोग धन दे रहे हैं उससे भारतीय प्रजा को आगे चलकर बड़ा सुख मिलेगा।

हर्ष का विषय है कि लड़ाई की गप्पें अब कम होती जाती हैं और लोग अब उनका सच्चा रहस्य समझते जाते हैं।

चीन की गुप्तसभायें।*

[लेखक—श्रीयुत नारायणप्रसाद अरोड़ा।]

हमारे देश के बहुत ही कम लोग चीन की गुप्त सभाओं का हाल जानते हैं। किन्तु सन १९०८ में जो गदर चीन में हुआ था उस के सम्बन्ध में बाक्सर लोगों का नाम मशहूर है। इस बाक्सर विप्लव की फौज में ज़्यादातर आदमी इन गुप्त सभाओं के थे। परन्तु यह कहना ठीक नहीं है कि फौज के सभी लोग इन गुप्त सभाओं के थे। यह एक राष्ट्रीय आन्दोलन था। वह आन्दोलन चीन के विदेशी लोगों के विरुद्ध था। इसमें राजवंश के भी कुछ लोग सम्मिलित थे। उनमें प्रिन्स "टुआन" (Tuan) एक ख़ास आदमियों में से समझे जाते थे। इन राजों, महाराजों के अतिरिक्त कुछ बड़े २ अफ़सर भी शामिल थे। अब प्रश्न यह होता है कि क्या कारण है कि चीन के राजे महाराजे और बड़े २ अफसर इन गुप्त सभाओं में सम्मिलित हो गये? इसका उत्तर भी बहुत ही सीधा सादा है। चीनी सरकार और वहां के लोग विदेशी मंत्रियों से तंग आगये थे। उनमें से कोई तो चाहता था कि मुझे कुछ ज़मीन पर अधिकार मिलजाये। कोई चाहता था कि व्यापार में हमारे साथ ख़ास रियायत की जाय और हमको विशेष अधिकार प्राप्त हों। कुछ लोग चाहते थे कि चीन के बड़े बड़े अफसरों को फांसी की सज़ा मिलनी चाहिये क्योंकि चीन के कुछ गुमनाम लोगों ने कुछ विदेशियों को मार डाला था। इस के सिवा झमेले में और ग्रंथियां इस वजह से पड़ गईं कि जो चीनी ईसाई हो गये थे उन्हें भी चीन के अन्य अपराधियों की तरह दण्ड दिया जाता था परन्तु यह बात विदेशी पादरियों को अच्छी न लगती थी और वे न्याय के मार्ग में बाधक होते थे। इस प्रकार की अवस्था वर्षों से चली आती थी परन्तु बहुत दिक करने से तो गाय भी सींग हिला देती है। बस इन्हीं बेजा हस्तक्षेपों के कारण बेचारे सीधे और सन्तोषी चीनी बिगड़ खड़े हुए। लेकिन चीन सरकार दुरंगी चाल चल रही थी। एक ओर तो वह विद्रोही दल को बाहरी डाटडपट बताती थी और दूसरी ओर वह उनसे हार्दिक सहानुभूति रखती थी। चीनी सरकार बहाना यह करती थी कि हम असमर्थ हैं और इस विद्रोह का मुकाबिला नहीं कर सकते परन्तु भीतर २ वह इस विद्रोह को हर प्रकार का सुभीता देती थी। सच बात तो यह है कि सरकारी फौज के बहुत से सिपाही विद्रोही फौज में शामिल थे। विदेशी लोग सारा दोष महारानी "हेज़ाशी" के माथे मढ़ते हैं। कोई तो उन्हें 'खून की प्यासी' कहता है, कोई उन्हें शेरनी कहता है और कोई कहता है कि "वह स्त्री नहीं स्त्री के शरीर में शेरनी की आत्मा है" लेकिन कुछ निष्पक्ष विदेशियों का मत है कि इस बात का प्रमाण नहीं मिलता है कि इस विद्रोह में महारानी का हाथ था। वे असमर्थ थीं, उनका प्रभाव केवल महल ही भर में था। इस आन्दोलन के नेताओं से मिलने का उन्हें कोई मौक़ा ही न था। जो आज्ञा वे जारी करती थीं वह उन्हीं अफसरों के द्वारा लोगों तक जा सकती थी जो विदेशियों के ख़िलाफ़ थे। कभी वे लोग उन आज्ञाओं में मनमाना हेर फेर कर देते थे और जो आज्ञा उनके आन्दोलन के विरुद्ध होती थी उसे रोक लेते थे और लोगों तक पहुंचने ही न देते थे। हां, यह बात तो अवश्य सत्य है कि

* "माडर्न रिव्यू" के एक लेख के आधार पर लिखित।

उस गड़बड़ी के ज़माने में महारानी ने लोगों की कुछ बातें मानलीं। पर वे क्या करतीं? अगर वे उनकी बातें कुछ भी न मानतीं तो वे उनके हाथ से बिलकुल निकल जाते। इससे यह सिद्ध होता है कि उन्होंने लोगों की कुछ बातों को केवल इसी लिए मंजूर किया कि वे उनके अधीन रहें।

मतवाले बाक्सर लोगों ने पेकिन पर धावा करके विदेशी राजदूतों को घेर लिया। उन्होंने सब से पहले जर्मन राजदूत 'शेन केटलर' को मार डाला और मारा भी बड़ी बेरहमी से। इसके बाद उन्होंने बहुत से लोगों को मारा। उनकी निर्दयता की कहानी अगर न कही जाय तो अच्छा है।

पाठक एक ही बात से उनकी निर्दयता का पता लगा सकते हैं। एक पादरी तीन रोज़ तक सूली पर लटका रहा तब उसकी जान निकली और दूसरे के हाथ पैर काट कर आग में डाल दिये गये। इस ख़तरनाक मौके पर महारानी पेकिन में पहुंचीं और अपनी सामर्थ्य भर उन्होंने प्रयत्न किया कि विदेशी राजदूत मारे न जायँ। इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं है कि यदि महारानी कोशिश न करतीं तो विदेशी लोगों में से एक भी न बचता क्योंकि जहां विदेशी लोग रहते थे वह स्थान बिलकुल अरक्षित था। एक अंगरेज़ का कथन है कि यदि बाक्सर लोग चाहते तो प्रत्येक विदेशी को मार डालते।

चीन के प्रत्येक शहर और प्रत्येक गांव में एक आध गुप्त सभा ज़रूर होती है। किसी किसी बड़े शहर में तो छः सात तक गुप्त सभाएँ होती हैं। इन गुप्त सभाओं के सभासद चुने हुए और जँचे हुए आदमी होते हैं। जहांतक हो सकता है समाज के प्रभावशाली आदमी इनमें अवश्यही शामिल किये जाते हैं। इन सभाओं की बैठक बहुधा रात को किसी मन्दिर में होती है। जितनी कार्यवाही होती है वह सब गुप्त रक्खी जाती है। सारे सभासदों को आज्ञा है कि सभा की बातें प्रकाशित न करें। यदि किसी मेम्बर पर सन्देह होता है कि उसने सभा के भेदों को प्रकाशित कर दिया तो दूसरे मेम्बर उसे मार डालते हैं। एक युरोपियन पुलीस इन्सपेक्टर का कथन है कि उसने मानों नगर की सड़क पर क़तल की बहुत सी रिपोर्ट सुनी और अपनी शक्ति भर उनके पता लगाने का प्रयत्न भी किया परन्तु एक का भी पता न लगा। पुलीस को खुफिया तौर से रिपोर्ट मिलती थी और जो लोग मारे जाते थे उनकी बर्मी स्त्रियों के द्वारा ये रिपोर्टें होती थीं। परन्तु वे बेचारी खुल्लमखुल्ला अपने को मुख़बिर नहीं कह सकतीं थीं नहीं तो उनकी भी वही गति होती थी जो उनके पतियों की हुई थी।

इन सभाओं का उद्देश सभासदों में ऐक्य, मित्रता और एक दूसरे को आर्थिक तथा शारीरिक सहायता पहुंचाने के भावों को उत्पन्न करने का है। जब कभी आवश्यकता होती है तब ये सभाएँ राजनैतिक रूप धारण करलेती हैं। प्रत्येक सम्प्रदाय में अच्छे और बुरे लोग होते हैं। उस प्रकार इन सभाओं में भी कुछ ऐसे नासमझ लोग होते हैं जिनकी नासमझी से कभी कभी इन सभाओं की भी बदनामी हो जाया करती है। इन्हीं नासमझ लोगों की बुद्धिहीनता के कारण अब कुछ अफसर इन सभाओं की वृद्धि के बाधक हो गये हैं। किन्तु जिन सभाओं के नेता अच्छे, सच्चे और देशभक्त हैं वे सभाएँ अब भी जीती जागती हैं।

जो मनुष्य किसी सभा का सभासद होना चाहता है, उसे सभा के मुखिया के पास चीनी भाषा में जिसे "थाकू" कहते हैं अपना प्रार्थनापत्र भेजना पड़ता है। फिर "थाकू" सब मेम्बरों को नोटिस देता है और किसी मन्दिर में सभा करता है। जब रात के समय सब पुराने मेम्बर जमा हो जाते हैं तब

"थाकू" एक छोटी सी वक्तृता देकर उस नये आदमी का परिचय कराता है। सारी सभा के सामने वह उम्मेदवार तुरन्त खड़ा हो जाता है और अपनी मुट्ठी बन्द करके तीन बार प्रणाम करता है। इसको चीनी भाषा में "थाटिओ" कहते हैं। इस "थाटिओ" के उत्तर में सब लोग खड़े हो जाते हैं और उस आगन्तुक से बड़ी शब्द कहते हैं। इसके बाद वे एक दूसरे से "चीनचा, चीनचा" कहते हैं अर्थात् एक दूसरे से अपने २ आसन पर बैठने को कहते हैं क्योंकि चीन में दूसरों के बैठने के पहिले अपनी जगह पर बैठ जाने को सभ्यता के विरुद्ध समझते हैं। इस तरह "चीनचा चीनचा" कहने में दस पांच मिनट गुज़र जाते हैं। हर एक आदमी थोड़ा २ झुकता जाता है और दूसरों को देखता जाता है कि वे बैठते हैं कि नहीं। जब सब बैठ जाते हैं तब "थाकू" नये सभासद को चीनी हुक्का देता है। वह हुक्के को अपने दहिने हाथ में पकड़े रहता है और दूसरे हाथ में एक कागज़ की बत्ती लिए रहता है। उसीसे हुक्का पिया जाता है। ये हुक्का और बत्ती इस प्रकार से दिये जाते हैं कि देनेवाले के हाथ आड़े हो जाते हैं। हुक्के की भेंट स्वीकार करने के पहले नया सभासद अपने दोनों हाथों की पहिली उँगलियों को दिखाकर एक दूसरे से मिलाता है और फिर उन्हें बड़े ज़ोर से अलग करता है। यह इस बात का संकेत है कि वह सभा के साथ रहने की दृढ़ प्रतिज्ञा करता है। तब वह हुक्के को लेकर खूब आनन्द से पीता है और सब मेम्बर अपने दोनों हाथों की मुट्ठियां बन्द करके और अँगूठे को खड़ा करके उसके सामने लाते हैं। यह संकेत महान् प्रशंसावाचक है।

इसके बाद 'थाकू' एक पुस्तक से सभा के नियम और उपनियम पढ़ना आरम्भ करता है। हर एक नियम को नये सभासद को पूरी तौर से स्वीकार करना पड़ता है।

कुछ नियम इस प्रकार हैं:—

१—आज से मैं इस पारस्परिक भ्रातृभाव की सभा का सभासद होता हूं।

२—मैं गम्भीरता के साथ और सच्चे हृदय से प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं सभा का कोई भी रहस्य प्रकाशित नहीं करूंगा। यदि मैं ऐसा करूं तो थाकू की जो इच्छा हो मुझे सज़ा दे।

३—आज से मैं सभा के प्रत्येक सभासद को उसकी उम्र, विद्या और दरजे के अनुसार अपना बड़ा या छोटा भाई समझूंगा।

४—आज से मैं थाकू को अपना सब से बड़ा भाई समझूंगा और उसे अपना आध्यात्मिक पथप्रदर्शक भी मानूंगा। मैं प्रण करता हूं कि मैं उसकी आज्ञा का पालन करूंगा और उसके आदेशानुसार कार्य करूंगा।

५—जिस समय सभा के किसी सभासद को आर्थिक या शारीरिक सहायता की आवश्यकता होगी, उस समय मैं उसकी सहायता करने का प्रयत्न करूंगा। इस प्रकार की सहायता करने में यदि मुझे अपने प्राण भी देने पड़ेंगे तो भी मैं कुछ संकोच न करूंगा।

६—यदि सभा के किसी सभासद पर अदालत में कोई सच्चा या झूंठा मुकदमा चलेगा तो मैं अपनी सामर्थ्य भर उसके छुड़ाने का प्रयत्न करूंगा। या तो मैं स्वयं उसका गवाह बन जाऊंगा या दूसरों को उसका गवाह बनने के लिए उत्साहित करूंगा।

७—मैं गम्भीरता के साथ प्रण करता हूं कि मैं देश के शत्रुओं का जड़मूल से सफाया कर दूंगा। इस काम को मैं या तो अन्य सभासदों के साथ मिलकर अथवा अकेला ही करूंगा।

८—यदि अपना कर्तव्य पालन करने में किसी सभासद की मृत्यु हो जायगी तो मैं धन और तन से उसके कुटुम्ब की सहायता करूंगा।

९—यदि मेरे सामने सभा के किसी सभासद पर कोई अन्य आदमी हमला करेगा तो मैं तुरन्त उस शत्रु के मुकाबिले में अपने भाई का साथ दूंगा और अगर आवश्यकता होगी तो अपने शत्रु का सिर भी काट लूंगा।

१०—यदि कोई मनुष्य मुझ पर या सभा के किसी सभासद पर चोट करेगा तो जबतक उसका पूरी तौर से बदला न ले लूंगा तबतक मैं चैन से न बैठूंगा।

११—यदि सभा के नियमों के अनुसार मैं अपना कर्तव्य न करूं तो 'थाक' तथा अन्य सभासद मुझे सुनासिब सज़ा दें।

इसके पश्चात् ये सारी बातें एक कागज़ पर लिख दी जाती हैं। फिर वह कागज़ जला दिया जाता है और उसकी राख लेकर शराब के एक प्याले में डाल दी जाती है और वह प्याला उस नये सभासद को पीने के लिए दिया जाता है। वह अपने वचनों के प्रमाण स्वरूप उसे पी जाता है।

अपनी दृढ़ता और गम्भीरता का दूसरा प्रमाण देने के लिए वह यह करता है कि अपनी उंगली को एक सुई से छेदता है और उसमें से दस पांच बूंद खून के निकालकर चाय में मिला देता है। उस चाय को वह स्वयं पीता है और दूसरों को पीने के लिए देता है।

तीन चार भारी भारी तलवारें बहुत महीन डोरों से लटकी रहती हैं। तलवारों की नोक नीचे की तरफ होता है। वे वर्तमान समय की तलवारों के मुआफ़िक नहीं होतीं। वे हमारे यहां की भुजाली के अनुसार होती हैं किन्तु उनकी बेंट दो तीन हाथ लम्बी होती है। प्राचीन समय में चीनी लोग इन्हीं तलवारों को दोनों हाथों से पकड़कर लड़ते थे।

नये सभासद को आज्ञा होती है कि वह इन तलवारों के नीचे खड़ा हो। तलवारों की नोकें उसकी गर्दन से छू जाती हैं। थाकू अपने हाथ में एक मुट्ठी चावल लेकर किसी पुस्तक से कुछ मन्त्र पढ़ता है। फिर उन चावलों को बड़े ज़ोर से तलवारों की ओर फेंकता है। इससे वे बड़े ज़ोर २ से हिलने लगती हैं। यदि वह सभासद डर जाता या घबड़ा जाता है तो सब के सब यह समझ लेते हैं कि जो प्रतिज्ञाएँ इसने अभी की हैं उन्हें वह पालन न कर सकेगा। इसलिए उसे भरती करने से इन्कार कर देते हैं।

कभी २ ऐसा होता है कि एकआध डोरा टूट जाता है और तलवार उस आदमी की पीठ पर गिर पड़ती है। इससे उसको बहुत चोट लग जाती है और कभी २ वह मर भी जाता है। परन्तु उपस्थित सज्जन उस अभागे मनुष्य के प्रति सहानुभूति दिखाने के बदले उसपर बहुत क्रुद्ध होते हैं और कहने लगते हैं कि इसका हृदय शुद्ध नहीं है। उनका विश्वास है कि सच्चे आदमी पर ऐसी विपत्ति नहीं पड़ती। केवल मलिन हृदय के लोगों ही का परिणाम ऐसा होता है। इसलिए सब लोग उसकी सेवा करने के बजाय, उसे तुरन्त वहां से निकाल बाहर करते हैं। किन्तु जब कोई मनुष्य इस तलवार की परीक्षा में भलीभांति उत्तीर्ण होता है, तब एक भोज होता है। इसके पश्चात 'थाकू' उसका एक नया नाम रखता है और सभा के कुछ गुप्त संकेत उसे बताता है और इसके बाद सभा विसर्जित हुई।

इस प्रकार की दो सभाएं 'टेन युह' में हैं। एक का नाम है 'टंग-चांन-कंग' और दूसरी का 'चीन ची-कंग'।

सम्भव है कि भिन्न २ प्रान्तों में या भिन्न २ सभाओं में जुदे २ नियम और उपनियम हों।

हा गोखले !

[लेखक—श्रीयुत बसन्तलाल चौबे ।]

(ग़ज़ल सोहनी)

हा शोक है भारत का प्यारा
चन्द्रमा जाता रहा।
छाया अँधेरा, देश का हा
प्राण खा जाता रहा॥
हा ईश तेरे सामने कुछ
जोर चल सकता नहीं।
उद्धारकर्ता देश का
संसार से जाता रहा॥
वह उठ गया सब छोड़कर
हम देखते ही रह गये।
हा प्राण से प्यारा हमारा
गोखले जाता रहा॥

उसके विरह का शोक क्योंकर
भूल सकता हिन्द है।
हा दाहिनी जिसकी भुजा का
जोर सब जाता रहा॥
अब स्वर्ग में जाकर के बैठे
गोखले आराम से।
हतभाग्य भारत रो रहा है
सुख सभी जाता रहा॥

माधवराव सिन्धिया।

[लेखक—श्रीयुत गंगाशंकर मिश्र ।]

सङ्कीर्णहृदय मुग़ल सम्राट् आलमगीर के मरने के पश्चात् ही जगद्विख्यात मुग़ल साम्राज्य का वास्तविक अधःपतन प्रारंभ हुआ। वही देश, जो कभी दयालु सम्राट् अकबर के प्रबल प्रताप से शान्ति-सुख भोग रहा था, सौ ही डेढ़ सौ वर्ष बाद अन्याय, अशान्ति और अत्याचार का रङ्गस्थल बन बैठा। अठारवीं शताब्दी का भारत, अकबर के समय के भारत से कहीं भिन्न है। इसी समय की दशा वर्णन करते हुए एक इतिहासकार लिखता है कि "देश परस्पर के झगड़ों से छिन्नभिन्न हो रहा था, घर २ में अशान्ति का राज्य था, चारों ओर दुष्टता का बाज़ार गरम था। धार्मिक और राजनैतिक नियम पददलित हो चुके थे। शासन, समाज और परस्पर प्रीति को दृढ़ करनेवाले बन्धन टूट रहे थे। प्रत्येक व्यक्ति को भयानक जन्तुओं से घिरे हुये जङ्गल के मध्य में फँसे हुए के समान रक्षा के लिए केवल अपने बाहुबल का सहारा लेना पड़ता था।"

मुग़ल साम्राज्य के सर्वोच्च सिंहासन पर केवल नाममात्र के लिए एक विषयी मदान्ध सम्राट् विराजमान था। तीन चार सौ वर्ष के कठिन परिश्रम से बनी हुई मुग़ल साम्राज्य की इमारत धीरे २ ढह रही थी। एक एक कर के अधीनस्थ रियासतें स्वतन्त्र हो चली थीं। मुग़ल सम्राटों के दहने हाथ राजपूत आज उसी साम्राज्य की जिसे स्वयं उन्होंने बनाया था, सहायता करने के लिए उद्यत न थे। राजधानी दिल्ली के पड़ोस ही पंजाब में "वाह गुरु की फ़तेह" की दीक्षा प्रारम्भ हो चली थी। बंगाल, अवध और हैदराबाद के सूबेदार जो

मुग़ल साम्राज्य के आधारस्तम्भ थे, मुग़ल सम्राट् से अपने को स्वतन्त्र मानने लगे थे। भारत के राजनैतिक गगन में अराजकता के बादल गरज रहे थे। जिनके हाथों में शासन की बागडोर थी, उन्हें कभी शराब और कबाब से छुट्टी पाकर प्रजा का ध्यान भी न आता था। परन्तु इस अराजकता के समय में भी वह अग्नि, जिसकी स्थापना दक्षिण देश में एक मराठा युवक ने की थी बराबर सुलग रही थी। आलमगीर बहुत कुछ मनुजरक्त बहाकर भी जिस अग्नि को शान्त न कर सका, था वह इस शताब्दी में यहां तक प्रज्वलित हो उठी कि उसकी विकराल लपटें मुग़ल साम्राज्य को भस्म करने के लिए दिल्ली तक पहुंचने लगीं।

छत्रपति शिवाजी महाराज की मृत्यु के पश्चात् महाराष्ट्र राज्य की रक्षा का भार पूना के पेशवाओं के हाथ में आया। इन पेशवाओं के हृदय में मुसलमानों को नीचा दिखलाने की प्रबल आकांक्षा सदा जागृत रहती थी। उनके सौभाग्य से अब वह समय आपहुंचा था कि उनकी परम्परागत अभिलाषा पूर्ण हो। तत्कालीन पेशवा बालाजी की दृष्टि दिल्ली के सिंहासन पर लगी थी। वह देख रहा था कि मुग़ल साम्राज्य की नाड़ी धीरे २ गिर रही है और केवल "हरी" बोलना शेष है।

मालवा प्राप्ति के पश्चात् दक्षिण में मराठों का आतङ्क पूर्ण रूप से बैठ चुका था। पेशवा का चचेरा भाई–सदाशिव राव भाऊ, निज़ाम को नीचा दिखाकर अपने बाहुबल के गर्व में मस्त मनही मन प्रफुल्लित हो रहा था। पेशवा ने भी देखा कि अब दिल्ली को हड़प करने के लिए शुभ अवसर आपहुंचा। फिर क्या था सन् १७५९ ई० के सितम्बर महीने में पेशवा के पुत्र विश्वास राव को साथ लेकर भाऊ की अध्यक्षता में उत्तरीय भारत में महाराष्ट्र विजयपताका फहराने के लिए मरहठा दल बड़ी धूमधाम से दिल्ली की ओर बढ़ा।

मरहठा सन्य का यह दृश्य महाराष्ट्र के इतिहास में बिलकुल नया था। इसके पूर्व वे कभी इस शान के साथ अपने देश से बाहर न निकले थे। मालवा से हुलकर और सिन्धिया, गुजरात से गायकवाड़, बुन्देलखंड से गोविन्द पन्थ और भरतपुर से सूरजमल अपने २०,००० जाट योद्धाओं को लिए हुए इस दल में आ मिले थे। पाश्चात्य रण शिक्षा पाये हुए फ्रेंच जेनरल बुसी (Bussy) का शिष्य वीरवर इब्राहीम खां गार्डी भी इसी दल के साथ था। जिस समय यह तूफ़ान दिल्ली की ओर बढ़ रहा था, उत्तरीय भारत में एक और ही गुल खिल रहा था। दिल्ली दरबार में इस समय अमीरों के दो दल हो रहे थे एक ईरानी और दूसरा तूरानी। ईरानी दल के नेता अवध के नवाब सफ़दरजंग थे और तूरानी दल निज़ाम के भतीजे गाज़ीउद्दीन के आधीन था। कुछ काल तक तूरानी दल की विजय हुई। गाज़ीउद्दीन ने तत्कालीन सम्राट् को पदच्युत कर "आलमगीर द्वितीय" को सिंहासन पर बैठाया। दिल्ली दरबार की यह दशा प्रसिद्ध लुटेरे नादिर शाह का उत्तराधिकारी अहमदशाह अब्दाली देखता रहा, इसी समय वह नाजिब खां नामक एक पठान सरदार से निमन्त्रण पाकर सन् १७५७ ई० में भारतवर्ष आया। गाज़ीउद्दीन की पराजय हुई। अब्दाली ने नाजिबखाँ को "अमीरुलउमरा" की पदवी देकर मुग़ल सम्राट् का संरक्षक नियत किया और जो कुछ "नरकुठार" नादिर की निर्दयता से दिल्ली में बच रहा था उसे लूट कर वह अपने देश को लौट गया। इधर ज्यों ही अब्दाली की पीठ फिरी, गाज़ीउद्दीन ने मरहठों की सहायता से फिर दरबार में दबदबा जमा लिया। नाजिब खां ने रुहेलखण्ड में आकर शरण ली। गाज़ी ने दिल्ली में बड़ा उधम मचाया और उसने निर्बल

सम्राट् का वध कर डाला। बेचारे युवराज अली गौहर ने भागकर अवध के नवाब शुजाउद्दौला के यहां शरण ली। परन्तु गाज़ी के दिन अब पूरे हो चुके थे। अब्दाली अफ़ग़ानिस्तान से फिर लौटा, उसने अनूपशहर को अपनी छावनी बनाया। इधर शाहजादे अलीगौहर ने सम्राट् पद को ग्रहण किया। अवध के नवाब शुजा और नजीब दोनों मिलकर मरहठों से मुग़ल सम्राट् की रक्षा करने के लिए उद्यत हुये। गाज़ीउद्दीन ने अपनी दाल गलना कठिन देखकर दिल्ली छोड़ दिया और भरतपुर में जाकर जाटों की शरण में रहने लगा।

संक्षेप में जब भाऊ अपने दलबल सहित वहां पहुंचे तो दिल्ली की यह दशा थी। यहां हुलकर और सूरजमल ने भाऊ को बहुत कुछ समझाया कि सैन्य को किसी सुरक्षित दुर्ग में रखना चाहिये और वहीं से शत्रुओं की रसद लूटकर उन्हें प्रथम निर्बल बना कर फिर आक्रमण करना चाहिये। सदा से मरहठों की यही युद्धनीति रही है। सहसा आक्रमण करना उचित नहीं। पर भला निज़ाम पर विजय पानेवाले अपने दर्प में चूर भाऊ को यह सम्मति क्योंकर अच्छी लगती। उसने गर्व में आकर इस समयोचित अमूल्य सम्मति को गड़रियों की सम्मति कहकर हँसी में उड़ा दिया। इस मतभेदरूपी "प्रथमग्रासे मक्षिकापातः" होने के पश्चात् दिसम्बर मास में भाऊ दिल्ली पहुंचे। थोड़ी सी गोलाबारी के बाद दिल्ली के किले पर मरहठों का अधिकार होगया। इतनी बार लूटे जा चुकने पर भी अभी तक दिल्ली सोने चाँदी से भरा हुई थी। मरहठों ने केवल दीवानखाने की दीवालों से १२५००००) रु० को चाँदी का सामान लूटा था। कुछ इतिहासकारों के मतानुसार विश्वासराव दिल्ली के राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए और इस प्रकार मरहठों की मनोकामना पूर्ण हुई।

पर यह दशा बहुत दिन तक न चल सकी, भारत के मुसलमान इस अपमान को सहन न कर सके। अन्त में वे सब परस्पर मिलकर अब्दाली की अध्यक्षता में युद्ध के लिए कटिबद्ध हुए। प्रसिद्ध पानीपत के रणक्षेत्र में मरहठों और मुसलमानों की सेनाएँ भारतभाग्य का निपटारा करने के लिए एक बार फिर आ डटीं। कुछ दिन तक दोनों सैन्य एक दूसरे की ताक में लगी रहीं। इस अवसर में भाऊ के उद्दण्ड स्वभाव के कारण मरहठा दल में आपस में फूट फैल गई, जाट सूरजमल अपनी सेना ले भरतपूर लौट गया। मुसलमानों को यह अच्छा अवसर हाथ लगा। उन्होंने मरहठों की खूब रसद लूटी। अन्त में दोनों दल तंग आकर सन् १७६१ ई० की जनवरी को अस्त्र शस्त्र लेकर एक दूसरे पर टूट पड़े। पानीपत का मैदान "हर हर महादेव" और "दीन! दीन!!" के तुमुल शब्दों से गूंज उठा। पानीपत के मैदान ने अपनी कला दिखा ही तो दी। मरहठों की पराजय हुई, विश्वास मैदान में काम आया, मरहठे रणक्षेत्र छोड़कर भाग निकले। इस भागाभूगी में एक मरहठा युवक एक ओर घोड़े पर आरहा था और उसका पीछा कुछ मुसलमान बड़ी तेज़ी से कर रहे थे। थोड़ी ही देर में घोड़ा ठोकर से गिरता है। मुसलमान लोग आकर आक्रमण करते हैं, उसके अमूल्य वस्त्र आदिक लेकर उसे वहीं घायल छोड़कर अपना रास्ता लेते हैं। पर भाग्यवश एक भिश्ती ने आकर इस युवक की प्राण-रक्षा की। बस पाठकगण! यह ही युवक भारत के इतिहास में विख्यात, उस समय के राजनैतिक नाटक का मुख्यपात्र मदारुल महाम आलीजाह बहादुर शिंधिया माधवराव था।

इस समय माधव राव की अवस्था कोई ३० वर्ष के लगभग थी। सुना जाता है कि यह रानोजी सिन्धिया के जारज पुत्र थे। रानो जी का जन्म एक अच्छे कुल में हुआ था, पर समय

के फेर से इनके पिता को पेशवा के यहां जूती उठाने का काम करना पड़ता था। एक दिन पेशवा बालाजी विश्वनाथ रानो जी के पिता की स्वामिभक्ति से कुछ ऐसे प्रसन्न हुए कि उन्हों-ने उनको उत्तरी मालवे की जागीर देडाली। बस यहीं से सिन्धिया राज्य की नींव पड़ी। रानो जी के पिता ने विक्रमादित्य की प्रसिद्ध प्राचीन उज्जैन नगरी को अपनी राजधानी बनाया। पानीपत के युद्ध के पश्चात् माधवराव के अतिरिक्त इस जागीर का कोई अन्य उत्तरा-धिकारी जीवित न था। इसलिए माधव राव ने युद्ध से छुट्टी पाकर अपने बाप की गद्दी पर बैठने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। प्रथम तो सर-दारों ने बहुत कुछ झगड़े लगाये पर अन्त में सब को इस वीर युवक के सम्मुख शिर नीचा करना पड़ा।

पानीपत के युद्ध के कुछ ही दिनबाद पूना के पेशवा और इन्दौर के मल्हारराव होलकर की मृत्यु हुई इसलिए इस समय इन्दौर के शासन की बागडोर महारानी अहिल्याबाई के हाथ में थी, और इधर पूना में कुलाङ्गार रघुवा अपने कुचालों में लगा था। अब्दाली अपने देश को लौट चुका था, और दिल्ली नजीब के अधीन थी।

अभी पानीपत के भीषण संग्राम को पूरे १० वर्ष भी व्यतीत न होने पाये थे कि माधव अब्दाली की पीठ फिरते ही, इन्दौर के सेना-ध्यक्ष ताकू जी को साथ लेकर दिल्ली में फिर जा डटा। नजीब इससमय बुड्ढा हो चुका था, इस-लिए उसने मरहठों से मेल करलेने ही में भलाई देखी। अपने पुत्र जाब्ताखां को लेकर वह तुरन्त मरहठा शिविरि में पहुंचा। वहां उसने तुका जी के हाथ में जाब्ता का हाथ द दिया और सदैव जाबता की रक्षा करने के लिये प्रार्थना की। नजीब ने सिन्धिया को भी अपने पक्ष में लाने का प्रयत्न किया पर उसके हृदय में तो बदला लेने की प्रचण्ड अग्नि दहक रही था, वह भला कब माननेवाला था। उसने बड़े दर्प से उत्तर दिया "मुझे तो अपने मृत भाई भतीजों और अपने ऊपर अपमान का बदला लेना है। यद्यपि मेरे मित्र तुका जी ने मुसलमान ज़ब्ता को अपना भाई मानना स्वीकार कर लिया है पर इस कार्य से मैं सन्तुष्ट नहीं तथापि मैं पेशवा का सेवक हूं। इस सन्धि के विषय में जो कुछ उनकी आज्ञा होगी वह शिरोधार्य है।"

इस सन्धि के पश्चात् वृद्ध नजीब जाब्ता खां को मरहठों के हाथ में छोड़कर अपने अन्तिम दिन व्यतीत करने के लिए नजीबाबाद चला गया पर बहुत शीघ्र ही रुहेला सरदारों का अत्या-चार और नीच जाब्ता का कुटिल व्यवहार दिल्लीवासियों को असह्य हो उठा। मरहठे इस अवसर की ताकही में थे। फल यह हुआ कि अंगरेज़ों के हाथ में बन्दी मुग़ल सम्राट् शाह आलम को फिर दिल्ली के सिंहासन पर बैठाने की सोची गई। अंगरेज़ों ने इसका बहुत कुछ विरोध किया। भला घर आई हुई लक्ष्मी को भी कोई ठुकराता है। शाह आलम कब चूकने वाला था। अनुकूल अवसर पाकर वह भी फतेहगढ़ तक आपहुंचा। सिन्धिया ने भी दल-बल सहित बढ़कर ता० २५ दिसम्बर सन् १७७१ ईसवी को मुग़ल सम्राट् का स्वागत किया।

शाह आलम केवल नाम के लिए सम्राट् था। राज्य का कुल कारबार मरहठों के हाथ में था। एक साल बराबर सिन्धिया और होलकर की सेनाएं रुहेलों को खर करने में लगी रहीं पर इसी समय पूना से जो समाचार आये उससे सारे मराठा कैंप में खलबली मच गई। पूना में पेशवा की मृत्यु हुई और रघुवा रक्षक नियुक्त हुआ। रघुवा बड़ा कुटिल मनुष्य था, वह स्वयं पेशवा बनने का स्वप्न देख रहा था। शीघ्र ही उसने पेशवा के छोटे भाई को भी इस संसार से बिदा किया और स्वयं पेशवा बन बैठा। इससे सारे महाराष्ट्र देश में अशान्ति

फैल गई। सिन्धिया और होलकर को भी दिल्ली से अपनी २ जागीरों में आना पड़ा।

पहिले तो सिन्धिया ने रघुवा की सहायता की पर इसी अवसर में एक ऐसी घटना हुई जिससे उसे अपनी नीति बदलनी पड़ी। पेशवा की विधवा रानी किसी न किसी तरह से रघुवा के क्रूर पंजों से निकल भागी थी। वह गर्भवती थी। अब उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। न्यायानुसार पेशवा की गद्दी का अधिकारी यह बालक था। इसका पक्ष प्रसिद्ध नाना फड़नवीस ने लिया। इस तरह से इस समय पूना में दो दल हो रहे थे, एक के नेता नाना फड़नवीस थे और दूसरे का रघुवा। इस बार सिन्धिया ने भी नाना के दल का पक्ष लिया। अतः रघुवा को पूना छोड़ना पड़ा। उसने भागकर बम्बई में अंगरेज़ सरकार की शरण ली। उस समय बंगाल और मद्रास प्रान्त की अंगरेज़ी कम्पनी तत्कालीन राजनैतिक झगड़ों में पूरा भाग ले ही रही थी। केवल बम्बई कम्पनी ही चुपचाप थी। उसने देखा कि अब तो शिकार आप ही आप आफँसा है, अवसर हाथ से जाने देना बुद्धिमानी का कार्य न होगा। बंगाल सरकार और विलायत में कम्पनी के डाइरेक्टरों से बहुत कुछ लड़झगड़ कर, बम्बई के गवर्नर ने ४००० सेना के साथ रघुवा को पूना पर अधिकार प्राप्त करने के लिये भेजा। सिन्धिया इस छेड़-छाड़ को सहन न करसका। आख़िर को उसने सन् १७७७ ईस्वी के जनवरी मास में बम्बई अंगरेज़ी सेना के भी बाड़ गांव में छक्के छुड़ा दिये।

कलकत्ते में बंगाल के गवर्नर 'नीतिधुरंधर' वारेन हेस्टिंगस्, इस अपमान को कब सहन करनेवाले थे। उन्होंने शीघ्र गोडार्ड की अध्यक्षता में बम्बई सरकार की सहायता के लिए बंगाल की सेना भेजी। इधर राजपूतों और जाटों ने भी सिन्धिया से अपना बदला लेने के लिए अंगरेज़ों का साथ दिया। गोहद के राणा ने हेस्टिंगस् के कहने से पोपहम नाम के एक विदेशी अफ़सर को नौकर रक्खा। यह अफ़सर और कप्तान ब्रूस षड्यन्त्र रच कर एक रात को ग्वालियर दुर्ग के अन्दर जापहुंचे और वहां के सैनिकों को सहज ही में कैद कर लिया। इस दुर्ग के छिन जाने से सिन्धिया को बहुत भारी क्षति पहुंची। अब दोनों दल लड़ते २ थक चुके थे, इसलिए सन्धि की बातचीत प्रारम्भ हुई। अंगरेज़ों और पूना वालों में सन्धि करा देने पर सिन्धिया को उसके जीते हुए राज्य लौटाने के लिए हेस्टिंग्ज़ उद्यत थे। सिन्धिया ने भी ऐसे समय सन्धि करना उचित देखा। अतः १७ मई सन् १७८२ ईस्वी को अंगरेज़ों और मरहठों में एक सन्धि हुई जो 'सालबाई की सन्धि' के नाम से विख्यात है।

भारत के इतिहास में यह सन्धि बड़े महत्व की है। इसमें दोनों ओर से बड़ी २ राजनैतिक चालें चली गई हैं। माधव मन ही मन दिल्ली साम्राज्य का स्वप्न देख रहा था। वह हेस्टिंग्ज़ और पूना के झगड़ों से पिण्ड छुड़ाकर दिल्ली पहुंचने के लिए उत्सुक हो रहा था। उधर हेस्टिंगस् अच्छी तरह से जानता था कि अभी कल के लगे हुए पौधे के समान बंगाल की अंगरेज़ सरकार दक्षिण से उठती हुई आँधियों को सहन करने के लिए सर्वथा असमर्थ है। जिस दिन यह सब के सब मराठे तथा अन्य दक्षिणी मुसलमानी रिआसतें बिगड़ेंगी उस दिन अंगरेज़ों के दांत भी खट्टे हो जायंगे। इसलिए ऐसे अवसर में नीति यही बतलाती है कि सब से बैर अच्छा नहीं, किसी एक के होकर रहना चाहिये। इस लिए उसने सिन्धिया का आश्रय लेना उचित और आवश्यक समझा। वह इस बात से भी अनभिज्ञ न था कि सिन्धिया के अतिरिक्त अन्य मराठा सरदार इस सन्धि के पक्ष में नहीं हैं, इसका फल यह होगा कि मराठों में फूट फैलेगी। वह यह भी जानता था कि सिन्धिया

अपने वचन का सच्चा है। वह निज जीवन पर्यन्त अपनी बात पर दृढ़ रहेगा और हुआ भी ऐसा ही। सिन्धिया ने अन्तिम घड़ी तक अपनी बात निबाही और अंगरेज़ों की रक्षा की। हेस्टिंग्ज़ को टट्टी की ओट से शिकार खेलने का अच्छा अवसर हाथ लगा। नाना फड़नवीस हेस्टिंगस् की इस दूरदर्शिता और उसके आभ्यन्तरिक भावों को अच्छी तरह से जानता था। वह यह भी देख रहा था कि सिन्धिया निज स्वार्थ से अंगरेज़ी नीति के पंजे में पड़ रहा है उसे यह ध्यान भी नहीं कि उसका यह कार्य अन्त में मरहठों को छिन्नभिन्न करने के लिए कुठार तुल्य होगा। यही सोच विचार कर उसने बहुत दिनों तक हस्ताक्षर करने में आना-कानी की पर उसकी कब तक चलती। अन्त में उसे हस्ताक्षर करने ही पड़े। इस सन्धि का जो कुछ फल हुआ वह प्रत्यक्ष ही है। सिन्धिया के 'मन के मनसूबे मन ही में रहे' मराठा राज्य छिन्नभिन्न हुआ, हेस्टिंग्ज़ का मनोरथ सफल हुआ। अंगरेज़ी राज्य के पौधे ने बढ़ते २ सारे भारत को आच्छादित कर लिया।

पूना के झगड़ों से छुट्टी पाते ही सिन्धिया की निगाह दिल्ली की ओर फिर गई। उसकी अनुपस्थिति में दिल्ली की बड़ी दुर्दशा होती रही। सम्राट् केवल नाममात्र के थे, यह तो पहले ही कहा जा चुका है, इसलिए शासन वज़ीरों के हाथ में रहता था। वज़ीरों के चुनाव के लिए, "जिसकी लाठी उसकी भैंस" यही नियम था। इस अराजकता को शान्त करने के लिए सन् १७८४ ई० में सिन्धिया फिर दिल्ली जा पहुंचा। सम्राट् ने बहुत कुछ सोच विचार के अनन्तर उसका स्वागत किया और पेशवा को अपना राजप्रतिनिधि (Viceroy) और सिन्धिया को सेना का अध्यक्ष बनाया। सेना का खर्च चलाने के लिये दिल्ली और आगरे के सूबे भी सिन्धिया ही के हवाले कर दिये।

सिन्धिया की आशाएं अब पूर्ण होती हुई दिखाई देने लगीं। शाही फ़रमान और परवानों पर उसके भी हस्ताक्षर होने लगे। सम्राट् के भी दिन शाहजहांवाले शाही महल में चैन से कटने लगे। सिन्धिया ने अपना निवासस्थान मथुरा बनाया और वहीं से राज्य में शान्ति स्थापन करने की चेष्टा प्रारम्भ की। साथ ही साथ उसने शासन और सेना में भी सुधार करने की सोची। उसका उद्देश्य जागीरदारी प्रणाली को तोड़कर सेना को स्थायी बनाने का था, पर इसे सरदार और जागीरदार पसन्द न करते थे। फल यह हुआ कि सरदार लोग बिगड़ खड़े हुए। पर सिन्धिया ने डी० बोयन (De Boigne) जो सिन्धिया का एक बड़ा चतुर और वीर विदेशी अफसर था, उसकी अध्यक्षता में सेना का सुधार जारी ही रक्खा? उसने शाह की ओर से अंगरेज़ों और राजपूत रियासतों से राजकर भी मांगा। अंगरेज़ों ने बिलकुल न्याय के विरुद्ध करदेना अस्वीकार किया। पर सिंधिया का ध्यान अधिकतर पड़ोसी राजपूतों की ओर था। इसलिए अंगरेज़ों के साथ छेड़खानी करने का उसे अवसर न मिल सका। राजपूत लोग मराठों से सदैव चिढ़े रहे हैं, उन्होंने कर देने के बजाय युद्ध की तैयारी करना प्रारम्भ की। जयपुर, उदयपुर, जोधपुर, तथा अन्य राजपूत रियासतों ने मिलकर एक लाख सेना एकत्रित की। मुसलमान अमीर और स्वयं सम्राट् भी इस समय 'काफ़िर पटेल' के गौरव को देखकर मन ही मन कुढ़ रहे थे। उन्होंने भी देखा कि सिन्धिया को अब नीचा दिखाने का समय निकट आगया है। पंजाब से सिक्खों ने भी दबाना प्रारम्भ किया। सिन्धिया चारों ओर से घिर गया और उसके लिए बहुत ही कठिन समय उपस्थित हुआ।

सिक्खों को परास्त करने के लिए कुछ थोड़ी सी सेना भेजकर वह स्वयं मुहम्मद बेग, राना खां अप्पा खान्डो और डी० बोयन तथा

अन्य सरदारों को साथ लेकर राजपूताने रवाना हुआ। जयपुर से ४० मील की दूरी पर लाल-सोत नाम के गांव में उसने डेरा डाला। ऊपर यह कहा ही जाचुका है कि मुसलमान अमीर सिन्धिया के अभ्युदय को घृणा की दृष्टि से देखते थे। ठीक मौके पर उन्होंने धोखा दिया। मोहम्मद और इस्माइल दोनों निज २ सैन्यसहित शत्रुओं से जा मिले। तीन दिन तक युद्ध होता रहा। सिन्धिया की बहुत कुछ हानि हुई, और उसे पीछे लौटना पड़ा। उसने अपनी बहुत कुछ युद्धसामग्री भरतपुर में छोड़ कर ग्वालियर का रास्ता लिया और वहां से सहायता भेजने के लिए नाना फड़नवीस को लिखा।

राजपूतों ने तो अपनी इस विजय से कुछ अधिक लाभ न उठाया पर एक दूसरा ही शिकारी बैठे २ परस्पर की खटपट को देखता रहा। यह शिकारी था जाबता खाँ का पुत्र निर्दयी गुलाम कादिर। अवसर पाते ही वह दिल्ली आपहुंचा और बलात् प्रधान मंत्री बन बैठा। अलीगढ़ का किला, जो सिन्धिया के अधिकार में था, छीन लिया, और आगरे की ओर जहां मराठा फौज पड़ी हुई थी, बढ़ा। पर वहां उसे सिक्खों की बगावत के समाचार मिले, अतः उसको पंजाब की तरफ लौटना पड़ा।

इधर ग्वालियर में पूना से सहायता भी आ पहुंची थी, सिन्धिया ने अच्छा अवसर हाथ आया जानकर आगरे की ओर कूच किया। रास्ते में उसे कई बार राजपूतों से लड़ना पड़ा, पर ज्यों त्यों करके फ़तेहपुर सीकरी के प्रसिद्ध मैदान में उसने एक बार भगवाँ झंडा फहराया। मुसलमानी अफसर इस्माइल रणक्षेत्र से भाग निकला। उसने अपना घोड़ा जमना में डाल दिया। पर जब वह नदी पार पहुंचा, उसने वहां गुलाम क़ादिर को देखा। गुलाम क़ादिर सिक्खविद्रोह दमन करके उसी ओर आरहा था। यहां से दोनों ने दिल्ली का रास्ता लिया। इस अवसर में डी० बोयन जो लड़ते २ थक गया था सिन्धिया की नौकरी छोड़कर लखनऊ चला गया। इस अमूल्य सेनानायक की हानि से खिन्न होकर सिन्धिया भी दीन सम्राट् को निर्दयी गुलाम के हाथ में निज कर्मों का फल भोगने के लिए छोड़, कुछ काल के लिए मथुरा चला गया।

इसके बाद दिल्ली में जो तीन महीने तक दशा हुई है, उसके वर्णन करते हुए रोंगटे खड़े होते हैं। गुलाम ने वृद्ध सम्राट् की आंखें तलवार से निकाल लीं और कुटुम्ब सहित उसे कैद कर दिया! यहां पर प्रश्न यह होता है कि मथुरा में पड़े २ सिन्धिया यह अत्याचार कैसे देखता रहा। कुछ लोगों का अनुमान है कि उस समय सिन्धिया इस योग्य न था कि वह दीन मुगल सम्राट् की रक्षा करता, और कुछ लोगों का कहना है कि सिन्धिया मुगल सम्राट को यह दिखाना चाहता था कि सम्राट् के सिर से मराठों का हाथ उठा लेने से उसकी क्या दशा होगी। जान भी यही पड़ता है कि सिन्धिया मुगल सम्राट् को कुछ दिन निज कृत्यों का मज़ा चखने के लिए छोड़ देना उचित समझता था। पर गुलाम की कठोरता और नीचता इस हद तक तक पहुंचेगी यह कभी उसे ध्यान न था।

शाह आलम फ़ारसी का कवि भी था। उसने इस समय की कविता में अपनी दीनता दिखलाते हुए, सिन्धिया को अपना पुत्र कहकर रक्षा के लिए प्रार्थना की है। गुलाम के पापों का प्याला अब पूर्ण हो चुका था। सिन्धिया की सेना आ पहुंची। गुलाम भाग निकला, पर अन्त में पकड़ गया, और मथुरा भेज दिया गया। वह ऐसा नीच प्रकृति था कि मार्ग ही में सिपाहियों ने क्रोधित होकर उसकी भी आंख निकाल लीं और अङ्गभङ्ग करके फांसी लटका दिया। सिन्धिया ने उसका सिर और धड़ अन्धे सम्राट् के पास दिल्ली भेजवा दिया। अब सम्राट् को

ज्ञात हुआ कि जिसे वह शत्रु समझे बैठा था केवल वही एक उसका सच्चा मित्र है। सम्राट् ने भी प्रसन्न होकर "मदारुलमहाम आलीजाह बहादुर" के पद से सिन्धिया को विभूषित किया।

राजधानी दिल्ली में शान्ति स्थापित करके सिन्धिया ने फिर राजपूताने की ओर दृष्टि फेरी। वह अपनी पराजय अभी तक भूला न था। वह बदला लेने के लिए बेचैन हो रहा था। बस अब किसी का भय न था, डी० बोयन दलबल सहित राजपूत विजय के लिए चल दिया। कई मास तक मराठा और राजपूतों में घनघोर युद्ध होता रहा। अन्त में बोयन की रणचातुरी से एक २ करके सब राजपूत रियासतों को हार माननी पड़ी। सिन्धिया की विजय हुई। और वही पेशवा का दास पटेल, जिसने ४० वर्ष पूर्व पानीपत के मैदान से भाग कर एक भिश्ती की सहायता से अपनी प्राणरक्षा की थी, आज अपने ही प्रबल पराक्रम से सारे मध्य देश और उत्तरी भारत के बड़े भारी अंश का राजा बन बैठा।

राजपूतों पर विजय पाकर अब पटेल को अपने घर की याद आई। पूना में नाना और ताकू जी होल्कर दोनों सिन्धिया की इतनी शीघ्र उन्नति को देखकर मन ही मन जलने लगे। इधर सिन्धिया ने भी यह सोचा की उत्तरी भारत में तो रोब जम चुका, अब ज़रा पूना की दशा भी देखनी चाहिये। यही सोच विचार कर सन् १७९२ में उसने मथुरा से पूना की ओर प्रयाण किया और धीरे २ मध्यदेश होते हुए ता० ११ जून को वह पूना पहुंचा और ब्रिटिश रेज़ीडेन्सी के निकट उसने अपना डेरा डाला।

पूना पहुंचने के दस दिन बाद वह बहुतसी अमूल्य वस्तुओं की भेंट लेकर अपने स्वामी पेशवा से मिलने को गया। मुग़ल सम्राट् को दिल्ली के सिंहासन पर बिठलानेवाले सिन्धिया, माधवराव ने हाथी, घोड़े, चोबदार, सिपाही पियादे इत्यादि सब साज सामान को छोड़कर पैदल ही अपने स्वामी की सेवा में उपस्थित होना उचित समझा। दरबार में पहुंचने पर सिन्धिया ने सब सरदारों से जो आसन नीचा था उसी को ग्रहण किया और जब स्वयं पेशवा आउपस्थित हुए, तो बड़े भक्तिभाव से झुक कर प्रणाम किया और बगल में दबी हुई पोटली से एक नया जूते का जोड़ा निकाला और पेशवा के पैरों के पास रखकर कहा "महाराज! यह मेरे बाप का पेशा था इसलिए मेरा भी अवश्य होना चाहिये।" तत्पश्चात् उसने निज हाथों से पेशवा का पुराना जूता पैरों से उतार कर अपनी बगल में दबा लिया और नया जोड़ा पांव में पहना दिया। इसके बाद पेशवा के बहुत कुछ कहने पर उसने जूतों को बगल में दबाये हुए ही आसन ग्रहण किया।

दूसरे दिन इससे बढ़कर धूमधाम से दरबार हुआ। आज सिंधिया ने शाह की ओर से पेशवा को शाही खिलअत पहनाई। इस खुशी के उपलक्ष में शाही पर्वाने से गोबध रोक दिया गया। महाराष्ट्र जाति पर सिन्धिया की इस स्वामि-भक्ति और विनय का बहुत कुछ प्रभाव पड़ा। निस्सन्देह मालकम साहब ने बहुत ठीक लिखा है कि "सिन्धिया अपने आप को सेवक ही कहते २ स्वामी बन गया।"

सिन्धिया का स्वभाव बहुत ही सरल और दयालु था। उसने कभी किसी क्रूर और कुटिल कार्य से अपने नाम को कलङ्कित नहीं किया था। वह सदैव सादे कपड़े पहनता था और तड़क भड़क की ओर अधिक ध्यान न देता था। फ़ारसी और उर्दू का उसे अच्छा ज्ञान था। अपने नौकरों पर उसकी बहुत कृपा रहती थी। पर कायरों को सदैव घृणा की दृष्टि से देखता था। इसका

हृदय उदार और उसके विचार उच्च और स्वतंत्र थे। शत्रु, मित्र, देशी तथा विदेशी सभी ने उसके व्यवहार और उसकी नीति की प्रशंसा की है। अंगरेज़ों के साथ जो उसने व्यवहार किया है उसके लिए उन्हें सदैव कृतज्ञ रहना पड़ेगा। यदि सालबाई की सन्धि न होती तो आज का इतिहास कुछ और ही होता।

जिस समय सिंधिया पूना लौटा था उसकी अवस्था ६० वर्ष से भी अधिक थी। पूने में उसका उद्देश्य सफल न हुआ। हुल्कर और नाना ये दोनों पूना दरबार में सिन्धिया की ख्याति को सहन न कर सके। फल यह हुआ कि पूना दरबार में नित्यप्रति नये झगड़े उत्पन्न होने प्रारम्भ हुए। पेशवा निर्बल होने के कारण शान्ति स्थापित करने के लिए बिलकुल अयोग्य था। पूना दरबार षड्यन्त्रों का रंगस्थल बन रहा था, ऐसे अवसर में ता० १२ फरवरी सन् १७९४ ई० को पूना के समीप ही वनौली गाँव से सिन्धिया माधवराव के सहसा देहान्त का शोकसमाचार आया। कुछ इतिहासकारों होने का अनुमान है कि सिन्धिया की मृत्यु नाना की कर्तूत थी। ख़ैर उसकी मृत्यु का कारण कुछ भी हो यह सब को मानना पड़ेगा कि उस पटेल के साथ ही साथ मराठा साम्राज्य का सूर्य सदैव के लिए विलीन हो गया।

हमारा स्वप्न।

जहां में हाय अभी धूम यों मचा के चले।
जो फितना सोता था नाहक उसे जगा के चले॥
ये जान लीजो न भूलेंगे हम कयामत तक।
तुम्हीं थे ऐसे जो दिल से हमें भुला के चले॥
बिचारे हिन्द का क्या हाल होगा अब अफ़सोस।
बताओ इसका ठिकाना भी कुछ लगा के चले॥
नसीब किसको हुआ था कभी ये भारत में।
जो चार दिन का तमाशा हमें दिखा के चले॥
"रसा" की गरचे रसाई हुई है जन्नत में।
हज़ारों ही को मगर दह में रुला के चले॥

क्या कहें, किससे कहें, जो देखा वह भूलना चाहते हैं किन्तु वह भूलता भी नहीं। आँख के सामने वही दृश्य नाच रहा है. आँख बन्द करते हैं तो दृश्य और ज़ोर से सामने आता है। हृदय घबरा जाता है और आंख और मुंह दोनों ही खुल जाते हैं। हृदय में श्वास समाती नहीं। चुप रहने से हृदय के फटने का भय होता है। व्यथा कुछ ऐसी होती है जिसका सहना सहन-शक्ति की शक्ति से बाहर है। लोग कहते हैं, कहने सुनने से दुःख कम होता है. हृदय का वेग आँख और मुंह के द्वारा बाहर निकल कर कम हो जाता है। इसीलिए आज हम भी कुछ कहना चाहते हैं। स्वप्न क्या था उसमें मार्मिकता कितनी थी, कलेजे को पानी करनेवाली शक्ति उसमें कौन सी थी, पाठक स्वयं देख लें हम इतना ही कहेंगे, सावधान हो जाइये, हृदय पर पत्थर रख लीजिये, कलेजे को काबू में रखिये वह बाहर न निकल पड़े, आंखों के बाँध रखिये कहीं अश्रुधार में वे बह न जायँ। अब सुनिये। रात्रि अँधेरी थी, बादलों की घनघोर चित्त को डरानेवाली घटा चारों ओर से उमड़ी हुई थी। भीषण निस्तब्धता का साम्राज्य था। न कहीं बिजली की चमक थी और न कहीं बूँदाबाँदी ही होती थी। कहीं झींगुर की झन-

कार भी न सुनाई देती थी। मालूम होता था। समस्त सृष्टि मर गई है, और किसी में किसी प्रकार की भी जीवनशक्ति नहीं। इसी प्रलय की अँधेरी में एक निर्जन वन की हाथ को हाथ न सूझने देनेवाली अँधियारी में मालूम नहीं कहाँ चले जाते थे। चले तो जाते थे किन्तु पैर ठिठकते थे, आगे बढ़ने की हिम्मत नहीं होती थी, रह रहकर चित्त पूर्वाभास से सहम जाता था और यही कहता था कि कोई भीषण अघटनीय घटना घटनेवाली है। चित्त को हज़ार समझाते थे किन्तु उसे शान्ति नहीं मिलती थी। इतने ही में बड़े ज़ोर का धड़ाका सुनाई दिया। मालूम हुआ ब्रह्माण्ड फट गया, वह टुकड़े टुकड़े हो ज़मीन पर गिर पड़ा। संसार में एक तहलका मच गया किन्तु हज़ार आँख फाड़ फाड़ कर देखने पर भी यह न दिखाई दिया कि बादल कहीं से फटा हो। अँधियारी भी वैसी ही घनी थी, बादल भी ज्यों के त्यों अपने स्थान पर थे, वृक्ष भी जैसे के तैसे खड़े थे। बुद्धि मारी गई, कोई बात समझ में न आई, कलेजा और भी काँपने लगा किन्तु कोई चारा नहीं दिखाई दिया। पैर जो रुक गये थे आगे बढ़े। चित्त इस चिन्ता में निमग्न हुआ कि धड़ाका

कैसा और क्या था?

धड़ाके की आवाज़ ज्यों की त्यों कानों में गूँजती थी। हृदय कहता था चलकर देखो। बुद्धि कहती थी मन का भ्रम है। किन्तु प्रतिध्वनि वैसे ही गूँज रही थी। ज्यों ज्यों पैर आगे पड़ते थे प्रतिध्वनि अधिक ज़ोर से सुनाई देती थी। चित्त सहम जाता था, पैर रुक जाते थे किन्तु साहस कहता था बढ़े चलो। धीरे धीरे जंगल खतम होता दिखाई दिया। कहीं दूर से सूर्यरश्मि की लाली नज़र आने लगी, भीषण अँधियारी भी छिन्न भिन्न होने लगी। मालूम हुआ पौफट होरहा है। इतने ही में एक विशाल शहर का फाटक दिखाई दिया। डूबते हुए को तिनके का सहारा मिला, पैर जल्दी बढ़ने लगे और कुछ ही मिनटों में हम भी फाटक पर दिखाई दिये। फाटक देखकर शहर की विशालता और उसके धन-वैभव का चित्र सामने आ जाता था। मालूम होता था कि हम इन्द्रपुरी के बाहर खड़े हैं। यह सब कुछ था किन्तु शान्ति का राज्य जमा दिखाई देता था, चिड़ियों की चहचहाहट भी नहीं सुनाई देती थी, दर्बान और जो दो एक मनुष्य इधर उधर चलते फिरते दिखाई देते थे वे प्रस्तर की मूर्ति से थे। उसपर मुर्दनी सी छाई हुई थी, कोई किसीसे कुछ बोलता तक नहीं था। हमारी भी किसीसे कुछ बोलने की हिम्मत न पड़ी, फाटक के अन्दर घुस हम आगे बढ़े, सोचा आगे चलकर किसीसे कुछ बातें करेंगे किन्तु इधर उधर जो दो चार आदमी भी दिखाई दिये वे भी बड़े उद्विग्न। सोचा बाज़ार में चलने पर इस दिल को दहलानेवाली शान्ति का पता चल जायगा। किन्तु बज़ार क्या इस शहर में तो बाज़ार की चहल-पहल कहीं दिखाई ही नहीं देती। दूकानें चारों तरफ बन्द, चारों ओर शोक ही शोक दिखाई देता था। हां, एक सड़क की ओर बेतरह मनुष्यों की भीड़ जाती देखाई देती थी, किन्तु भीड़ भी केवल मूर्तियों की भीड़ सी थी। सबों के चेहरों पर उदासी छाई हुई थी, बिना एक शब्द भी बोले सब लोग एक ओर चले जाते थे। मालूम होता था इनमें शक्ति ही नहीं। हम भी इन्हींके पीछे हो लिये। जाते जाते हम लोग एक स्थान पर पहुंचे जिसे मनुष्यों का जंगल कहा जाय तो अत्युक्त नहीं। मनुष्य ही मनुष्य वहां दिखाई देते थे किन्तु वहां भी पूरी शान्ति। वहीं पर एक आदमी से पूंछने पर मालूम हुआ कि आज देश के राजा का स्वर्गवास हो गया है। इसी लिए देश के बाज़ार बन्द हैं, स्कूल बन्द हैं और चारों ओर भीषण सन्नाटा छाया हुआ है। राजा राजा ही नहीं था, वह अवतार था, लोगों की

आशा का मूर्तिमान् स्वरूप था, वह उनका पिता था, वह उनका पुत्र था, वह उन्हें उनकी माता का काम देता था, उन्हें जीवन दान देता था, उन्हें आशान्वित करता था, उनका पोषण करता था और उनका सर्वस्व था। उसीके बिछोह से आज इस देश के तीस कोटि निवासी हाहाकार कर रुदन कर रहे हैं। यह सुन आगे बढ़ा ही था कि हाहाकार क्रन्दन सुनाई दिया, रात को सुनी हुई भड़ाके की प्रतिध्वनि फिर कान में गूँजने लगी, भ्रम होने लगा कि रात्रि में इसी क्रन्दन के हाहाकार ने तो नहीं विचलित किया था। धीरे धीरे कर समुद्र की लहरों की भाँति यह मजमा हिलने डोलने लगा। लोग आगे बढ़ते नज़र आये। हम भी वहीं एक कोने में दूर पर एक वृक्ष की छाया में ठहरकर देखने लगे। हज़ारों आदमी अश्रधारा से पृथ्वी को सींचते और डर्बरा करते चले जा रहे थे, आदमियों में सभी जाति के मनुष्य थे, हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, अंगरेज़ सभी रोते बिलखते चले जाते थे। कोई नंगे पैर था, कोई नंगे सिर, किसी के बदन पर कोई कोई कपड़ा था किसी के बदन पर कुछ। सब एक ही दुःख में दुःखी थे और किसी को किसी प्रकार की सुध-बुध न थी। मालूम नहीं कितनी देर यह मनुष्य की लहर आगे बढ़ती रही, कुछ समय बाद दूर से रथी दिखाई दी। लोग उसके साथ दुःख से पागल हो रहे थे, उनका रुदन सुनकर हृदय फाटता था। इसी भीड़ में सब के पीछे एक बुड्ढा बाल सफेद, आँख पथराई हुई, कमर टूटी, लाठी के सहारे विह्वल चला आता था। वह ज़मीन पर गिर पड़ता था, उसके शरीर से रक्त कितने ही स्थानों से बह रहा था। वह पागल सा हो रहा था, रोने की आवाज़ उसके गले से नहीं निकलती थी, न अश्रुधारा ही उसके नेत्रों से बह रही थी। रह रह कर वह चीत्कार कर उठता था। उसकी दशा देख हमसे न रहा गया, हम दौड़ कर उसके पांवों पर गिर पड़े, कितने ही देर पड़े रहे पता नहीं। कुछ होश होने पर हमने उससे पूछा आप कौन हैं? मालूम नहीं इस प्रश्न में क्या था। इसके सुनते ही उसके शरीर से रक्त सूखता सा मालूम हुआ, उसकी आँखें डबडबा आईं, वह विह्वल हो रोने लगा। कुछ देर बाद एक जंगल को झुलसा देनेवाली आह को छोड़ते हुए उसने कहा:—

"जो खिज़ा हुई वो बहार हूं।
जो उतर गया वो खुमार हूं॥
जो उजड़ गया वो नसीब हूं।
जो बिगड़ गया वो सिंगार हूं॥
मेरा हाल काबिले दीद है।
कि न याद है न उम्मीद है॥
न गिला गुज़ारे खिज़ा हुं मैं।
न सिपास संजे बहार हूं॥
कोई ज़िन्दगी है ये ज़िन्दगी।
न हंसी रही न खुशी रही॥
मेरी घुट के हसरतें मर गईं।
मैं उन हसरतों का मज़ार हूं॥
वो हँसी के दिन वो खुशी के दिन।
गये हस्र याद सी रह गई॥
कभी जामे बादये नाब था।
मगर अब मैं उसका उतार हूं"॥

वृद्ध की इस सदा को सुन कर मालूम होता था कि आकाश फट जावेगा और विधाता का आसन डिग जायगा। उसकी दशा कैसी थी इसका वर्णन हमारी शक्ति के बाहर है। कुछ समय तक श्वास लेने के बाद उस वृद्ध ने यों कहना शुरू किया "आज काल ने हमसे हमारा सर्वस्व अपहरण कर लिया। सदियों से उसकी बारों का मैं शिकार था कितने ही हमारे बच्चों को उसने हमसे छीना किन्तु लहलहाती आशा के सम्बोधन से मैं अपने प्राणपखेरुओं को पालता रहा। इस सपूत पर मैं अपना तनमन धन वारण किये था, यह अन्धे की आँख, वृद्ध की लाठी और

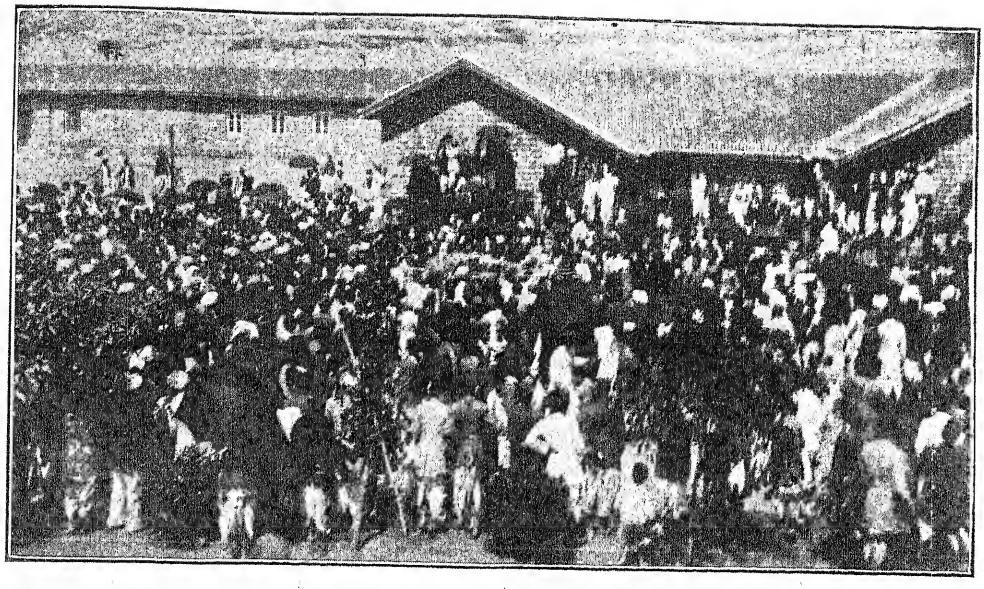

मि० गोखले के अन्तिम दर्शन करने के लिये सर्वेंट्स् आफ् इंडिया सोसाइटी के सामने लोगोंकी भीड.

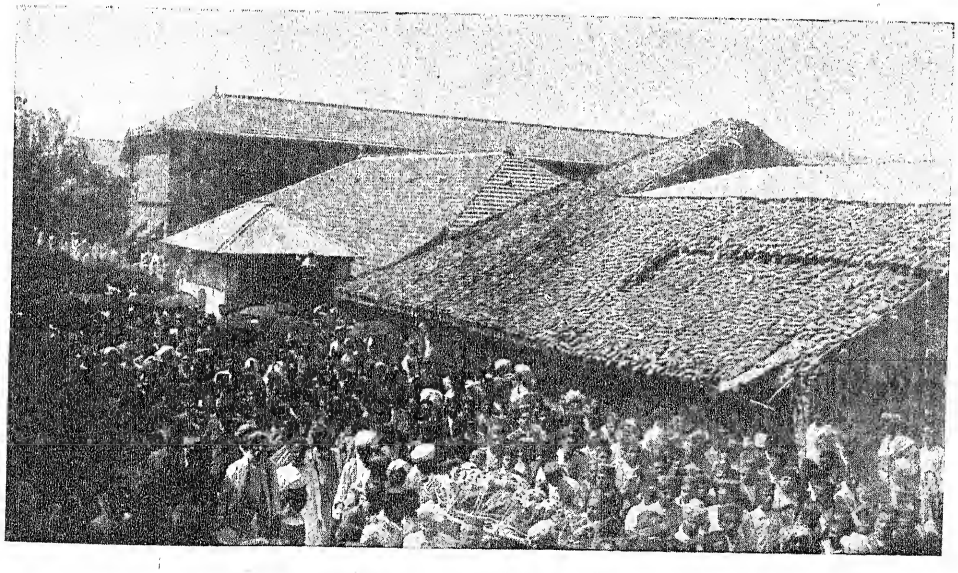

मि० गोखले को स्मशानभूमि लेजाते समयका दृश्य.

The Bombay Art Printing Works, Fort.

आराम कुरसी पर मि० गोखले.

हमारी वृद्धावस्था का सहारा था। यह हमारा मूर्तिमान् भाग्य था और इसीपर हमारी सब आशालताएं निर्भर थीं किन्तु आज यह भी हमें छोड़ हमसे विदा हुआ। अब हमें कोई आशा नहीं। संसार में अब हमारा पुर्साहाल कोई नहीं. हमारी आशाओं की फिक्र करनेवाला अब कोई नहीं, न अब हमारे अधिकारों के लिए कोई हमारे शत्रुओं या हितचिन्तकों को समझाने वाला ही है। आज हमारी तमाम उम्मीदों पर पानी फिर गया और अब मैं कहीं का न रहा।" बूढ़े की बातें सुनकर बरबस कलेजा मुँह को आता था। जब वह गोपाल, कृष्ण, गोखले चिल्ला चिल्ला कर ज़मीन पर पछाड़ें खाता, "मेरे प्यारे, मेरे बच्चे, मेरे प्राण" कहकर चीत्कार करता और "कहां हो, कहां गये, मैंने क्या बिगाड़ा था, बोलो, जवाब दो, अब क्यों नहीं बोलते, क्या आज के दिन रुलाने के लिए ही तुमने हमारी अस्थि और मज्जा को रक्तरस से सिंचन किया था, क्या यही दिन दिखाने के लिए तुम ने हमें जिला रक्खा था, क्या छोड़कर एक दिन भागने के लिए ही तुम हमारे लिए कष्ट उठाते थे, दूर दूर जाते थे, क्या तुम ने जो हमारे लिए कष्ट जीवन भर उठाये थे उसका इसी प्रकार बदला लेना सोच रक्खा था?" इतना कहते कहते बूढ़ा गिरकर बेहोश होगया। कुछ समय बाद होश आने पर वह खड़ा होने लगा। मैं सहारा दे उसे उसी ओर ले चला जिधर सब मनुष्य गये थे। धीरे धीरे मैं दरिया के किनारे पहुंचा। विचित्र दृश्य था। कितने मनुष्य तटपर थे कहना कठिन है। मालूम होता था कालरूप वैरी को मारने के लिए इतने लोग एकत्र हैं। किन्तु बेबसी सब के चेहरों से टपक रही थी। धीरे धीरे अर्थी ठीक की गई। दाह का समय निकट हुआ। बूढ़ा चीत्कार कर गिर पड़ा। एकत्रित मनुष्यों ने भीषण हाहाकार करना आरम्भ किया। इतने ही में आकाश के एक कोने में उजेला दिखाई दिया। श्वेत हंस पर सुशोभित एक देवी उतरती दिखाई दीं। अर्थी के पास जाकर उन्होंने सफेद चन्दन से उसे सजा और मालूम नहीं होठ हिलाकर क्या कहने लगीं। कुछ ही मिनटों के बाद वे उस बूढ़े के पास आईं। बुड्ढे को होश में लाकर वे इस प्रकार बोलीं "क्यों दुःख करते हो? ढाढस धरो! जिसके लिए तुम रोते हो वह मेरा भी पुत्र था, उसे मैंने अपनी कितनी ही विभूतियां दे रक्खी थीं। वह हमारा वर पुत्र था। संसार में कोई सदा के लिए नहीं आता, अपना काम वह कर चुका था, इसी हेतु मैंने उसे बुला लिया। अब वह मेरी अन्य कितनी ही विभूतियों से विभूषित हो फिर जन्म लेगा। उसके लिए रोना कैसा? अपने लिए भी अब तुम्हारा रोना व्यर्थ है, भौतिक रूप से नहीं वरन् शक्तिरूप से, बीजरूप से, तुम उसे अपने पास रक्खो, अपने हृदय में उसका स्मारक बना लो, इसी के आदेशानुसार काम करो। जबतक वह फिर न आवे, उसके मार्ग से विचलित मत हो, तुम्हारे लिए यही श्रेय है।" इतना कहकर वे हंस की ओर बढ़ीं और वह उन्हें लेकर आकाश में लीन हो गया। लोग सब चित्रलिखित से अवाक् रह गये। लोग इसी अचम्भे में थे कि भीषण घननाद हुआ और एक देव अंग में भभूत रमाये नांदिया पर सवार आते दिखाई दिये। देखनेवालों में एकदम भक्ति और श्रद्धा का उद्रेक हुआ। उनके मुंह से शान्ति टपकती थी। इधर उधर देखकर वह देव भी अर्थी के पास पहुंचे। कुछ कहकर देव ने रमाई हुई विभूति से कुछ अंश अर्थी पर छोड़ दिया। बाद में वे भी वृद्ध के पास आकर यों कहने लगे:—"अवाक् क्यों हो? अपनी दो शक्तियों में से मैंने इसे शान्ति ही प्रदान की थी, यही इसमें प्रधान थी अब इसे अन्य शक्तियों से भी विभूषित करना है। कुछ समय बाद यह फिर तुझसे आ मिलेगा अब रोने का काम नहीं। जाओ उसीको शान्ति ग्रहण

करो।" इतना कह ये जाने ही को थे कि आकाश से एक बड़ा पक्षी उड़ता हुआ आता दिखाई दिया। चारों ओर एक अवर्णनीय प्रकाश फैल गया। वह पक्षी गरुड़ था। इसके पहुंचते ही देव उतरकर अर्थी के पास पहुंचे। गले से उतारकर उन्होंने एक पुष्पहार अर्थी पर रख दिया। एक अनिर्वचनीय सुगंध से दिगन्त व्याप्त हो गया। इतने ही में वृद्ध को अर्थी के पास बुलाकर उन्होंने कहा "समानता की शिक्षा के लिए मैंने इसे भेजा था। इसने उसका प्रचार किया। मेरे पुष्पहार की भांति इस का यशसौरभ चारों दिगन्त में व्याप्त है, यह जाता है किन्तु यशसौरभ यहीं छोड़े जाता है। उसी के तुम भ्रमर हो जाओ। समानता की शिक्षा उसने हमारे आज्ञानुसार तुम्हें दी है, समानता ही तुम्हारा मूलमंत्र होना चाहिये, यदि तुमने समानता प्राप्त कर ली तो इसके लिए तुम्हारा तड़पना सफल हो जायगा।" देव अपनी बात पूरी भी न कर पाये थे कि मनमोहनी "आशा" देवी स्थान पर आकर प्रकट हुई। सभी के चेहरे विचित्र छटा से दीप्त हो गये। शोक का चिह्न जाता रहा, लहलहाती आशालता हृदय में अंकुरित होने लगी। देवी ने अर्थी पर एक सुन्दर गुलाब रख दिया। कुछ देर तक मन ही मन न मालूम वे क्या सोचने लगीं बाद में वृद्ध को सम्बोधित कर वे यों बोलीं "वृद्ध, भारत! दुःख उठाते तुम्हें कितनी ही शताब्दियां बीत चुकीं। आज सा दिन तुमने पहिले भी देखा है किन्तु उस समय तुम्हारे शरीर में बल था, तुममें शक्ति थी और तुम सहन कर सकते थे। अब तुम्हारे शरीर में कुछ नहीं है। मेरा प्रकाश जो तुम्हारे हृदय में है वही अब तक तुम्हें जिलाये हुए है। तुम्हीं नहीं संसार के समस्त प्राणी हमारी कृपा से अपने असहनीय दुःखों को सहज में वहन करते हैं। इस गुलाब के पुष्प को देखो, कितने सहस्र काँटों के बाद एक पुष्प दिखाई देता है। संसार की समस्त बातों में देखने से यही दृश्य दिखाई देगा। जाओ इस आशा की मूर्ति को अब हम सब देवी देवता ले जांयगे। अब यह तुम्हारे काम की नहीं रही। इस "आशा की मूर्ति" की छटा से अपने हृदय को व्याप्त कर लो, आशा को हृदय में धारण करो, जो काम यह छोड़े जाता है उसे पूरा करो। हम जानती हैं इस अशान्ति के समय तुम्हें इसकी ज़रूरत अधिक थी। तुम से अधिक इसकी आवश्यकता तुम्हारे सम्राट् को थी किन्तु ईश्वर जो कुछ करता है सोच समझकर करता है, मनुष्य समझे या न समझे किन्तु वह उनकी भलाई के लिए ही चेष्टा करता रहता है। जाओ, जाओ!" इतना कहते ही एक धड़ाका हुआ, एक विमान आकाश से उतरता दिखाई दिया उसी पर मि० गोखले को बैठाकर सब देव चलते दिखाई दिये। मि० गोखले ने विमान से नीचे खड़े मनुष्यों को सम्बोधित कर कहा "तुम लोग हमें नहीं देख सकते किन्तु मैं तुम लोगों को देखता हूं और देखता रहूंगा। हमारी आवाज़ तुम सुन सकते हो, यदि उसे सुनकर काम करोगे तो तुम विजयी होगे इस में सन्देह नहीं।"

गोपाल कृष्ण की यह आवाज़ सुनते ही एकदम आंखें खुल गईं। बहुत चेष्टा की कि आंख बन्दकर फिर कुछ सुनें किन्तु मालूम हुआ हम स्वप्न देख रहे थे।

"अभ्युदय"।

पति-पत्नी-संवाद ।*

[लेखक—श्रीयुत लक्ष्मणसिंह वर्मा ।]

हे हे सुशीले ध्यान दो,
निज कार्य को विश्राम दो ।
तव पति पधारो द्वार पै
जंजीर ध्वनि पर ध्यान दो ॥
आभरण झंकारित न हों;
विचलित न हो सम्मान में ।
निज कार्य को विश्राम दो
लखि पति सुदिवस अवसान में ॥१॥

कुछ भूत प्रेत न है यहां
मति स्खलित हो भय-पाश में ।
शुभ शरदपूर्ण "मयंक" है
उदित पूर्वाकाश में ॥
ऊपर प्रभामय गगन है
प्रतिबिम्बपति निकुंज में ।
करलो प्रकम्पित मुख कमल
निज नील अंचल पुंज में ॥
ले दीप जाओ द्वार पै
यदि हो स्खलित कछु चाल में ।
कुछ भूत प्रेत न है यहां
मति फँस प्रिये भय पाश में ॥२॥

यदि हो शुभे लज्जावती
तो प्रश्न का उत्तर न दो ।
शुभ मिलन में द्वार प
प्रिये मौन का आश्रय गहो ॥
प्रश्नादि यदि प्रीतम करे
इच्छा तुम्हारी हो तथा ।
करलो विलोचन नमित तो
करि मौन धारण सर्वथा ॥
कङ्कणादिक ध्वनित हों
नहिं, दीप ले स्वागत करो ।
प्रश्न का उत्तर न दो
शुचि शील युत लज्जा धरो ॥३॥

कर चुकीं अब भी न क्या
तुम कार्य निज अविशेष हो ।
प्रीतम पधारो द्वार पै
मिलनार्थ उत्कण्ठित लखो ॥
सुप्रदीप दीप्त न कर सकीं
क्या गोधनालय में अभी ।
दिवसान्तकालिक हौ न
लाभग्रे न प्रस्तुत हो सकी ॥
सौभाग्य चिन्ह न मांग में
सिन्दूर रेख विराज ही ।
मङ्गलमयी शुभरात्रि के हित
क्या शृङ्गार किया नहीं ॥
होकर रही क्या श्रवणगोचर
पति पधारो द्वार पै ।
निज कार्य को विश्राम दो
न विलम्ब का अब है समै ॥४॥

---

* यह पद्य जगत्प्रसिद्ध कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के "गार्डनर" नामक ग्रन्थ की दशम लाइरिक अर्थात् शृङ्गाररसप्रधान कविता का अनुवाद है । कवि ने शृङ्गार-रस-प्रधान कविता लिखते हुए भी अपने अपूर्व धार्मिक मास्तिष्क का पूर्ण परिचय दिया है । इसमें यदि "अन्तरात्मा" को "दुलहिन" तथा "मृत्यु" को "पति" माना जावे तो अनुचित न होगा । अनुवादक

युक्तप्रदेश में प्रारम्भिक शिक्षा।

[लेखक श्रीयुत बालमुकुन्द वाजपेयी।]

(गताङ्क की पूर्ति।)

इस लेख के पूर्वार्द्ध में हिन्द-उर्दू विवाद के विवेचन की चेष्टा की गई है। परन्तु यह झगड़ा अब पुराना हो चला है और विचाराधीन मन्तव्यों द्वारा कलह के एक नवीन बीज का वपन किया गया है; इस अंश में उसी पर विचार करना है। साथही यह अन्याय इतना स्पष्ट है कि, अधिक ऊहापोह करने का प्रयोजन नहीं। बिना किसी तर्क-वितर्क के ही पाठक भली भांति समझ लेंगे, दूरकी कौड़ी लाने का कष्ट न उठाना पड़ेगा। अस्तु।

चौथे मन्तव्य में कहा गया है कि, "उपस्थित दशा में साधारण बोर्ड स्कूलों द्वारा समाज के कुछ दलों का काम भली भांति नहीं चल सकता।" क्यों नहीं चल सकता, इससे कुछ प्रयोजन नहीं। इन दलों के लाभके लिये जिन उपायों पर विचार किया गया है वे तीन भागों में विभक्त किये गये हैं (१) आधे समय वाले या रात्रि स्कूल। (२) विशेष जातियों या व्यापारों के लिये स्कूल। (३) मुसलमानों के लिये विशेष स्कूल। पूर्ववर्ती दोनों भागों के लिये हमें कुछ कहना नहीं है और न सरकारी मन्तव्य में ही उनके लिये विशेष चिन्ता दिखलाई गई है या प्रबन्ध करनेका सङ्कल्प किया गया है। अन्तिम ही सर्व प्रधान है।

सरकार कहती है कि सन १८८२-८३ के शिक्षा कमीशन ने मुसलमानों की शिक्षा के लिए विशेष रूपसे अनुरोध किया था परन्तु उनकी संख्या के विचार से सार्वजनिक स्कूलों और कालेजों में उनकी दशा सन्तोषजनक समझी जाती रही और कमीशन के अनुरोध पर ध्यान नहीं दिया गया। उच्च श्रेणियों में अब भी उनकी स्थिति दृढ़ है परन्तु प्रारम्भिक स्कूलों में हिन्दुओं की तुलना में उनकी उन्नति शोचनीय है और इसका कारण चाहे जो हो सरकार उत्तेजन देने को बाध्य है। क्या हम यह पूंछ सकते हैं कि, समाजविशेष को किसी कार्य के लिये विशेष रूपसे उत्तेजन देनेके लिये सरकार क्यों बाध्य है? क्या युक्त प्रदेश की सरकार का यही अभीष्ट है कि, मुसलमानों की संख्या भले ही हिन्दुओं की चतुर्थांश या उससे भी कम हो परन्तु प्रारम्भिक स्कूलों से उतने ही मुसलमान बालक लाभ उठावें जितने हिन्दू बालक उठाते हैं? सार्वजनिक प्रारम्भिक शालाओं में केवल मुसलमान बालक ही दिखाई पड़ें इसमें किसी को आपत्ति नहीं है। ईश्वर करे मुसलमान बालकों में विद्याभिरुचि इतना बढ़े कि एक भी मुसलमान बालक "डिबिया दियासलाई" की आवाज़ लगाता हुआ राह घाट न दिखाई पड़े परन्तु सरकार उनके लिये अधिक सुविधा करे इसका उसे कोई अधिकार नहीं है। साधारण स्कूलों में ही मुसलमान विद्यार्थियों के लिये जो अधिक सुविधाएं कर दी गई हैं क्या वे यथेष्ट नहीं हैं? सरकार ने स्वयं स्वीकार किया है कि "सर्वव्यापी व्यवस्थामें मुसलमान समाजके लिये अनेक रक्षणोपायों का (Safeguards) समावेश किया गया है। शिक्षक और निरीक्षक वर्गों में मुसलमानों के उचित सन्निवेश के लिये सुविधाएं की जायंगी। बोर्डोंसे कहा जाता है कि, जिन स्कूलों में हिन्दुओं की संख्या अधिक है उन में मुसलमान विद्यार्थी सुगमता पूर्वक प्रवेश कर सकें और उनके साथ उचित व्यवहार किया जाय"। वाद के लिये हम यह स्वीकार किये लेते हैं कि, मुसलमान

विद्यार्थी बड़े ही साधु स्वभाव के होते हैं और इसलिए यह आवश्यक था कि जैसा सरकारी मन्तव्य में कहा गया है। उनका अपमान न हो इसका विशेष ध्यान रखा जाय और ऊपर जिन सुविधाओं की व्यवस्था की जानेका उल्लेख हुआ है वे सब आवश्यक थीं। फिर भी प्रश्न यह उठता है कि सर्वव्यापी व्यवस्थामें सब भांति की सुविधाएं कर देने पर भी सरकार को निम्नलिखित उपाय करने की क्यों सूझी?

"जिस किसी गांव या नगर में यथेष्ट मुसलमान नागरिक अन्ततः २० लड़कों की ज़िम्मा लें वहीं बोर्ड को विशेष इस्लामिया स्कूल खोल देना चाहिये और उसमें मुसलमान शिक्षक नियत किया जाय"। सार्वजनिक धनसे समाज विशेष के बालकों की शिक्षा के लिये ये विशेष उपाय करने का सरकार को क्या अधिकार है? किस देश की रीति अथवा किस नीति के आधार पर यह व्यवस्था की गई है? क्या यह सार्वजनिक द्रव्य का दुरुपयोग नहीं है? सरकार इससे भी अधिक कुछ करना चाहती थी परन्तु "सम्पूर्ण व्यय जब सार्वजनिक कोष से लिया जायगा तो इससे अधिक सहन न होगा" इस चिन्ता ने बाधा उपस्थित कर दी। इस वाक्यसे यह भी स्पष्ट है कि, सरकार स्वयं समझती है कि, यह सार्वजनिक धनका अनधिकार तथा नीतिविरुद्ध प्रयोग है परन्तु फिर भी किया वही गया है।

हिन्दू समाज यदि ऐसे कार्यों का अर्थ यह लगावे कि, कर्तृपक्ष उर्दू का अधिक प्रचार करना चाहता है, मुसलमान समाज का पक्ष करता है, यथासाध्य हिन्दुओं के हित की बातों की उपेक्षा की जाती है तो इनका क्या दोष है? राजकर्मचारियों का आन्तरिक अभिप्राय कुछ भी हो परन्तु ऐसे कार्यों से सिद्ध क्या होता है? यदि यह भी स्वीकार कर लिया जाय कि समाज-विशेष में विद्या प्रचार बढ़ाने के लिये ऐसे उपायों का अवलम्बन करना देश के हित की दृष्टि से, विचारशील शासक का कर्त्तव्य है तो भी शंका का समाधान नहीं होता और प्रश्न यह उठता है कि प्रान्त के जिन अन्य समाजों में प्रारम्भिक शिक्षाका सन्तोषजनक अथवा बिलकुल ही प्रचार नहीं है उन सब के लिये भी ऐसी ही कोई व्यवस्था क्यों नहीं की गई? क्या मुसलमानों में अन्त्यज जातियों से भी कम प्रारम्भिक शिक्षाका प्रचार है? यदि यह बात नहीं है तो उनके लाभके लिये कोई उत्तेजनात्मक प्रबन्ध क्यों नहीं किया गया? उन्हों ने ऐसा कौनसा अक्षम्य अपराध किया था कि "अस्पृश्य जातियों की शिक्षा का भार परोपकारपरायण सज्जनों और ईसाई-धर्म-प्रचारिणी संस्थाओं" पर छोड़ दिया गया? इन बातों पर विचार करने से सर्वसाधारण की धारणा केवल यही हो सकती है कि सरकार को मुसलमान भाइयों की उन्नति की तथा उर्दू के प्रचार की विशेष चिन्ता उत्पन्न हो गई है और येन केन प्रकारेण वह अपना अभीष्ट सिद्ध करना चाहती है। ऐसे कार्योंके पश्चात् भी हिन्दू और मुसलमानों के वर्द्धमान वैमनस्य के कारणों को ढूँढते फिरना अनावश्यक है।

यह तो हुई विशेष इस्लामिया स्कूलों की सृष्टि की बात। परन्तु महामना सुचतुर सर जेम्स मेस्टन महोदय को इतनेही से संतोष नहीं हुआ क्योंकि "गवर्नमेंट मुसलमानों की अवनति रोकने को बाध्य है"; दूसरे शब्दों में जिसे हम कह सकते हैं कि गवर्नमेंट मुसलमानों की विशेष उन्नति करने को दृढ़प्रतिज्ञ है। यदि कोई यह पूंछे कि, मुसलमान भाइयों की विशेष उन्नति करने को गवर्नमेंट क्यों दृढ़प्रतिज्ञ है तो उनसे हमारा निवेदन है कि राजनीतिक कारणों का स्पष्टीकरण करने को हम यह लेख नहीं लिख रहे हैं। अस्तु। छठे मन्तव्य द्वारा वर्तमान मक्तबों को तथा नवीन मक्तबों के

स्थापन में विशेष सहायता देनेका संकल्प किया गया है। इस सम्बन्ध में जो कुछ निश्चित हुआ है वह हम पाठकों की सेवा में उपस्थित करते हैं।

"शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर महोदय मुसलमान सज्जनों की "एक प्रान्तीय मक्तब-समिति का संगठन करें जिसमें ११ से अधिक सदस्य न हों और उसका अध्यक्ष कोई मुसलमान स्कूल इन्सपेक्टर हो या शिक्षाविभाग के डायरेक्टर महोदय अपने विभाग के अन्य किसी अनुभवी पदाधिकारी को नियुक्त करें (अवश्य हो मुसलमान)। यह प्रान्तीय समिति परामर्शदातृ संस्था होगी जो शिक्षाविभाग की पाठ्य प्रणाली में किसी सारगर्भित परिवर्तन या प्रबन्ध विषयक उपायों के सम्बन्ध में सम्मति देगी तथा जिससे (प्रान्तीय मक्तब-समिति से) उक्त विभाग एवं गवर्नमेंट मुसलमान समाज में प्रारम्भिक शिक्षा के अधिक प्रचार तथा उनके हितों से सम्बन्ध रखनेवाले किसी भी विषय पर सम्मति पाने की आशा रक्खेगी। एक मक्तब मुख्य पाठ्य पुस्तक (text book) समितिका संगठन किया जाय जिसके नौ सदस्य हों, चार प्रान्तीय मक्तब-समिति द्वारा और शेष (अध्यक्ष सहित) शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर द्वारा मनोनीत किये जांय। प्रत्येक ज़िले में एक "ज़िला मक्तब-समिति" बनाई जाय। एतदर्थ जिला बोर्ड पाँच मुसलमान सज्जनों को मनोनीत करे अथवा बोर्ड का निर्वाचक नामावली के मुसलमान निर्वाचकों द्वारा उनके निर्वाचित किये जाने का प्रबन्ध कर दिया करे और जिलाधीश अर्थात् कलेक्टर साहब किसी मुसलमान पदाधिकारी को अध्यक्ष मनोनीत किया करें तथा—यदि गैरसरकारी सदस्यों की इच्छा हो तो—वे राजकर्मचारियों को समिति का सदस्य बना सकेंगे। ज़िला समितियों का कर्तव्य होगा कि वे वर्तमान मक्तबों की गणना कर बोर्ड तथा निरीक्षणकारी अधिकारियों का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट करें; मक्तबों के स्थापन और उनके समुचित संगठन को प्रोत्साहन दें; मौलवियों के चुनाव और उनकी प्रवीणता का (training) प्रबन्ध करें तथा मक्तबों शिक्षा सम्बन्धी प्रत्येक विषय पर सम्मति दें। आर्थिक सहायताभिलाषी मक्तबों का प्रान्तीय मक्तब-समिति की सम्मति से शिक्षाविभाग के डाइरेक्टर द्वारा निश्चित पाठ्यक्रम की शिक्षा देनी होगी। विशेष निरीक्षक वर्ग जिस मक्तब को भलीभाँति कार्य करनेवाला बतलावेंगे ज़िला बोर्ड उसे आर्थिक सहायता प्रदान करेगा। किन्तु यह सहायता मक्तब के व्यावहारिक शिक्षकों के वेतनों की तीन चौथाई भाग से अधिक न होगी। कम से कम दो वर्ष की शिक्षा के पश्चात् बोर्ड की किसी प्रारम्भिक शाला की तीसरी या चौथी कक्षा में प्रवेश "कराये जाने वाले प्रत्येक विद्यार्थी के लिए बोर्ड जो उचित समझे किसी मक्तब के कोष की वृद्धि कर सकता है। यदि गवर्नमेंट का स्पष्ट आदेश्य कला प्रतीत होगा तो मक्तबों के व्यावहारिक शिक्षकों के लिये एक "विशेष" नार्मलस्कूल भी खोल दिया जायगा। प्रवेशनियम, पाठ्यवृत्त, पाठ्यक्रम आदि समय आने पर प्रान्तीय मक्तब समिति की सम्मति से निश्चित हो जाँयगे।"

मक्तबों पर कर्तृपक्ष की इस विशेष कृपा के कारणों का भी जान लेना चाहिये। मन्तव्य में कहा गया है कि, (मक्तबों की) यद्यपि धार्मिक शिक्षा मूलभित्ति है और गणित, व्याकरण तथा भूगोल की उपेक्षा की जाती है तथापि धार्मिक के साथ २ व्यावहारिक शिक्षा भी किसी अंश में सम्मिलित रहती है। परम्परा और व्यवहार के कारण विशेष मुसलमानी देशों में वे बड़े सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं। दो कारणों से इनकी विशेष आवश्यकता है। एक तो नैतिक और धार्मिक शिक्षा उनमें दी जाती है। दूसरे धार्मिक शिक्षा न दी जाने या स्थानाभाव के

कारण बोर्ड स्कूलों में न जानेवालों की प्रारम्भिक शिक्षा के लिये शिक्षा दी जाती है। कट्टर मुसलमान मखतबों का काल्पनिक से अधिक उपयोग समझते हैं"। वर्तमान मखतबों को विशेष सहायता देने तथा नवीन मखतबों के स्थापन को उत्तेजन देने के हेतु अनेक अंशों में उपर्युक्त सर्वाङ्गसुन्दर व्यवस्था कर देने के लिये ये कारण कहाँ तक यथेष्ट हैं इस पर बिना विचार किये हम केवल यही कहेंगे कि इन्हीं कारणों के उपस्थित रहते हुए भी हिन्दू बालकों के लिये भी ऐसी ही कोई व्यवस्था क्यों नहीं की गई ? इस व्यवस्था को देख कर सरलचित्त हिन्दूभाइयों की धारणा अवश्यमेव होगी कि, हमारी पाठशालाओं के लिये भी ऐसा ही कोई प्रबन्ध अवश्य किया गया होगा। परन्तु वे बजूहदब होकर सुनें कि प्रान्तीय पाठशाला-समिति, ज़िला पाठशाला-समिति आदि सुन्दर उपाय तो दूर रहे, पाठशालाओं को आर्थिक सहायता देना भी अनावश्यक समझा गया है। मखतबों को एक प्रकार से उनका तीन-चौथाई व्यय दिया जायगा। मौलवियों को प्रवीण बनाने के लिये नारमल स्कूल खोले जायंगे, दो वर्ष तक शिक्षा देकर साधारण प्रारम्भिक स्कूलों की तीसरी या चौथी कक्षा में प्रवेश कराये जानेवाले प्रत्येक विद्यार्थी के हिसाब से मखतबों के कोष की वृद्धि की जायगी और दीन हीन पाठशालाओं के लिये एक मधुर शब्द भी नहीं। जो कुछ भी हो, अब यह देखना चाहिये कि जिन कारणों से मखतबों की श्रीवृद्धि करने का निश्चय किया गया है वे ही कारण पाठशालाओं के पक्ष में भी उपस्थित हैं या नहीं ?

कर्तृपक्ष का कथन है कि धार्मिक शिक्षा न दी जाने तथा स्थानाभाव के कारण बोर्ड स्कूलों में न जानेवाले मुसलमान बालकों की शिक्षा के लिये मखतबों की बड़ी आवश्यकता है। परन्तु बोर्ड स्कूलों में स्थान तथा धार्मिक शिक्षा के अभाव के कारण केवल मुसलमान बालकों ही को हानि पहुँच रही है। इसका क्या प्रमाण है अथवा हिन्दू बालकों की धार्मिक शिक्षा का बोर्ड स्कूलों में कोई विशेष प्रबन्ध है और उनके लिये स्थान का अभाव नहीं होता ? यदि ऐसा नहीं है और ये कारण हिन्दू और मुसलमान उभय समाज के लिये समान रूप से वर्तमान हैं तो एक समाज की सुभीते के लिये मखतबों की विशेष रीतिपर सहायता करना क्यों उचित समझा गया है ? धार्मिक और नैतिक शिक्षा देने के कारण से भी मखतबों की आवश्यकता समझी गई है। वास्तव में धार्मिक और नैतिक शिक्षा की बड़ी ही आवश्यकता है। हिन्दुओं ने इस अभाव के लिये कम पुकार नहीं मचाई है। धार्मिक शिक्षा का सार्वजनिक स्कूलों में प्रबन्ध न होना हिन्दुओं को भी यदि अधिक नहीं तो उतनाही खटक रहा है जितना मुसलमानों को, बाल्यकाल से पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा न मिलने ही के कारण हमारे युवक इतने उच्छृङ्खल हो जाते हैं कि वे स्वधर्म को उपेक्षा की वस्तु समझने लगते हैं। मुसलमान विद्यार्थियों की अपेक्षा हिन्दू विद्यार्थियों में यह दोष अधिक देखा जाता है। इस अवस्था में इससे अधिक आक्षेप और क्या हो सकता है कि मुसलमान विद्यार्थियों की धार्मिक और नैतिक शिक्षा के ध्यान से मखतब तो अपनाये जाँय परन्तु जिन हिन्दू विद्यार्थियों के लिये उक्त शिक्षाओं की अपेक्षाकृत अधिक आवश्यकता है उनके लिये कोई प्रबन्ध न किया जाय। यह सब देख कर यही मुख से निकलता है कि "जिसको पिय चाहे वही सुहागिल"। हमारे मुसलमान भाइयों पर सरकार की दयादृष्टि है, उनका राजनीतिक महत्व राजपुरुषों को भी समझ में आगया है, इसलिए उनकी पाँचों अंगुलियां घी में हैं और भाग्यदोष से हम उच्छिष्ट भाग से भी वञ्चित रक्खे जाते हैं।

अब यह विचारणीय है कि हिन्दू पाठशालाएं किन कारणों से दयापात्र नहीं समझी गईं।

कहा गया है कि "हिन्दुओं की यह पुरानी संस्था यद्यपि साधारणतः मुसलमानी मक्तब का प्रतिरूप समझी जाती है परन्तु दोनों में बहुत ही अल्प समानता है" पाठशालाओं की "धार्मिक शिक्षा मक्तबों की अपेक्षा साहित्यिक (dogmatic) अधिक होती है और मक्तबों में मुसलमानी अध्यात्मविद्या की जितनी चर्चा होती है पाठशालाओं में हिन्दू अध्यात्मविद्या की उतनी नहीं होती। उसके स्थान में बही-खाता, महाजनी, चिट्ठीपत्री आदि व्यापार सम्बन्धी विशेष विषयों पर ही अधिक ध्यान दिया जाता है। शिक्षा हिन्दी में दी जाती है और साधारणतः थोड़ी संस्कृत भी पढ़ाई जाती है। साधारण बोर्ड स्कूलों के पाठ्यक्रम का अनुसरण किसी अंश में भी नहीं किया जाता। अतएव ज़िला या प्रान्तीय संगठन की कोई आवश्यकता नहीं। हां, जिन पाठशालाओं में मक्तबों की भांति व्यापक सिद्धान्तों के अनुसार हिन्दू धर्म की वास्तविक शिक्षा दी जाती हो उन्हें आर्थिक सहायता देना बोर्डों की विवेक-बुद्धि पर निर्भर है।"

अस्तु, पाठशालाओं के लिये विशेष संगठन की तथा उन्हें आर्थिक सहायता देने की आवश्यकता इसलिए नहीं समझी गई कि पाठशालाओं में हिन्दू धर्म के व्यापक सिद्धान्तों की शिक्षा पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता, बहीखाता, महाजनी, चिट्ठीपत्री आदि सांसारिक विषयों में अधिक समय लगाया जाता है, बोर्ड स्कूलों के पाठ्यक्रम का अनुसरण नहीं किया जाता। इन कारणों से पाठशालाओं को सहायता न देने के सङ्कल्प पर हंसी आती है। एक ओर तो मन्तव्यों में स्थान २ पर सांसारिक विषयों की शिक्षा का रोना रोया गया है परन्तु पाठशालाएँ इसलिए अपात्र ठहराई गई हैं कि उनमें सांसारिक उपयोग के विषयों पर अधिक अधिक ध्यान दिया जाता है। मक्तबों को विशेष सहायता देने के कारणों का वर्णन करते हुए यह इङ्गित किया गया है कि उनमें गणित आदि सांसारिक विषयों की शिक्षा पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता यह त्रुटि है परन्तु पाठशालाओं के समय यही अखिल त्रुटि में परिणत हो गई। कहा गया है कि पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा का स्वरूप साहित्यिक (dogmatic) नहीं होता और जिन पाठशालाओं में मक्तबों की भाँति व्यापक सिद्धान्तों के अनुसार हिन्दू धर्म की प्रकृत शिक्षा दी जाती हो उन्हें बोर्ड यदि उचित समझें तो सहायता दे सकते हैं। यदि पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा दी जाती है तो वह हिन्दू धर्म के व्यापक सिद्धान्तों की नहीं तो किस धर्म के सिद्धान्तों की दी जाती है। यह एक नवीन समस्या है। क्या पाठशालाओं में शिक्षा पानेवाले हिन्दू बालक ईसाई या महम्मदी धर्म के सिद्धान्तों का शिक्षा पाते हैं। Dogmatic Character से यहां क्या अर्थ रक्खा गया है यह हमारी समझ में नहीं आया। दो ही बातें हो सकती हैं। या तो पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा दी ही नहीं जाती और यदि दी जाती है तो वह हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों की नहीं केवल नैतिक शिक्षा दी जाती है, या यह कहा जा सकता है कि साम्प्रदायिक सिद्धान्तों की शिक्षा नहीं दी जाती। हम यह जानते हैं और हमें इसकी प्रसन्नता है कि पाठशालाओं में साम्प्रदायिक शिक्षा नहीं दी जाती। परन्तु यह कदापि स्वीकार नहीं किया जा सकता कि पाठशालाओं में जो धार्मिक शिक्षा दी जाती है—उसका स्वरूप भलेही साहित्यिक हो—वह हिन्दू बालकों में स्वधर्माभिमान नहीं उत्पन्न करती। हां, हिन्दू धर्म दुराग्रह नहीं, उदारता का पोषक अवश्य है। स्पष्ट तो यह है कि मक्तबों को विशेष सहायता देने का सङ्कल्प करने के साथ ही अधिकारियों को यह चिन्ता हुई कि कहीं हिन्दू समाज यह न चिल्लाने लगे कि पाठशालाओं की उपेक्षा क्यों की गई, इसीलिए शब्दजाल के विकट अस्त्र से पाठशालाओं के भावी दल

भरनेवालों को निरक्ष करने का उपहास्य प्रयत्न किया गया है।

यदि वास्तव में पाठशालाओं को भी मक्तबों की भाँति सहायता देने की इच्छा होती तो हिन्दू धर्म की Dogmatic character की शिक्षा का सहज में प्रबन्ध हो सकता था और हिन्दू समाज इस आदेश का सहर्ष स्वागत करता तथा सर जेम्स मेस्टन की जयजयकार से आकाश कम्पित कर देता। जिस प्रकार प्रान्तीय "मक्तब टेक्स्ट-बुक-समिति" मक्तबों के लिये पाठ्य पुस्तकें निर्द्धारित करेगी, उसी भांति पाठशाला धर्म-शिक्षा-समिति का सहज ही सङ्गठन किया जा सकता था और वह पाठशालाओं के लिये धार्मिक शिक्षा की सुशैली नियत कर देती। न जाने इसमें कौन सी भयानक कठिनाई समझी गई। "इच्छा होने से उपाय निकल आता है" इस अंगरेज़ी प्रवाद के अनुसार सब कुछ किया जा सकता था परन्तु जब ऐसा करने की इच्छा हो तब न?

मुसलमानों की प्रारम्भिक शिक्षा और उनके मक्तबों के लिये जो विशेष प्रबन्ध किया गया है वह पाठकों की सेवा में भेंट किया जा चुका। परन्तु इतने बड़े सौदे में घाटे की भी आवश्यकता है। दान की साङ्गता के लिये कुछ व्याज स्वरूप भी देना उचित है। यह विचारकर पूर्ण फलप्राप्ति के हेतु कर्तृपक्ष ने निश्चय किया है कि "साधारण निरीक्षकवर्ग में तो शनैः २ अधिकसंख्यक मुसलमानों के प्रवेश का प्रबन्ध किया ही जायगा तो भी मुसलमानों की प्रारम्भिक शिक्षा के लिये जो विशेष प्रबन्ध किया गया है तदनुसार निरीक्षकवर्ग में भी वृद्धि सापेक्ष है।" यह वृद्धि इस प्रकार से होगी। विविध मनोनीत उपायों में सहायता और सम्मति देने के लिये एक अधिक निरीक्षक नियत किया जायगा। उसका मुसलमान होना आवश्यक समझा गया है। वह "प्रान्तीय मक्तब-समिति" तथा "मक्तब मूल-पुस्तक-समिति" का भी सदस्य होगा। विशेष इस्लामिया स्कूलों के स्थापन के उद्योगों में सहायता देना तथा लोगों के निजी (Private) स्कूलों को सहायता के योग्य ठहराना भी उसका कर्तव्य होगा। इसके अतिरिक्त प्रत्येक खण्ड में (Division) एक मुसलमान डिप्टी इन्सपेक्टर ज़िलों की मुसलमानी पाठशालाओं के विषय में सम्मति देने और निरीक्षण करने के विशेष कार्य के लिये नियत किया जायगा। सम्भवतः साधारण निरीक्षकों से यह कार्य सन्तोषजनक रीति से न होता इसीलिए यह व्यवस्था करनी पड़ी। बोर्ड के स्कूलों के निरीक्षण का कार्य हिन्दू अथवा अन्य जातीय निरीक्षक द्वारा भलीभांति भले ही चल जाता हो परन्तु विशेष इस्लामिया स्कूलों का निरीक्षण करने की योग्यता केवल मुसलमान निरीक्षक में ही होना सम्भव है। यह बिलकुल ठीक है। जनसाधारण स्कूलों से मुसलमानों का काम नहीं चलता और विशेष प्रबन्ध की आवश्यकता पड़ी तो विशेष प्रबन्ध को सुन्दर रीति से सम्पादित करने के लिये विशेष पुरुषों की आवश्यकता भी अनिवार्य है; यह स्वीकार करने में किसी को भी आपत्ति न होनी चाहिये।

बुद्धिमानों का कोई भी कार्य विशेषता से खाली नहीं होता। प्रवीण धनुर्धर की चतुरता यही है कि यदि अधिक नहीं तो एक बाण से दो पक्षी तो अवश्य बिद्ध हों। इसी अनुसार राजनीति-निपुण कर्तृपक्ष ने विशेष निरीक्षक को जो अधिकार दिये हैं उनमें कुछ रहस्य निहित है और वह रहस्य यही है कि लोगों के निजी (Private) स्कूलों को सहायता देने का उसे अधिकार होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि कदाचित् ही हिन्दुओं द्वारा सञ्चालित कोई प्राइवेट स्कूल सहायता पाने के योग्य समझा जाय। इस प्रकार से हिन्दू पाठशालाओं को सहायता मिलने का मार्ग भी अवरुद्ध सा कर दिया गया। हमें क्षमा किया जाय यदि हिन्दू या

अन्य जातीय निरीक्षक द्वारा विशेष इस्लामिया स्कूलों और मक्तबों का समुचित निरीक्षण न हो सकने की आशंका करने का कर्तृपक्ष को अधिकार है तो हमारे समक्ष यह विचार स्वतः उपस्थित हो जाता है कि मुसलमान निरीक्षक महोदय हिन्दुओं द्वारा सञ्चालित किसी भी प्राइवेट स्कूल को बोर्ड से सहायता पाने के योग्य न समझेंगे। ऐसा विचारने में हमारा कोई अपराध नहीं है। स्वयं सरकार हमारी पथ-प्रदर्शक है। बड़ों की ही परिपाटी सर्वसाधारण की दृष्टि में अनुकरणीय हुआ करती है।

विशेष इस्लामियां स्कूलों में एक और भी विशेषता होगी। बोर्डों को अधिकार होगा कि उक्त स्कूलों के आधे विद्यार्थियों से वे फीस न लें। बड़ों की यही बड़ाई है कि जिसकी बांह पकड़ते हैं उसका पक्ष सब भांति से समर्थन करते हैं। कल्पवृक्ष तक पहुंचना अवश्य कठिन है परन्तु पहुंच जाने वाले के निकट दरिद्रता का क्या काम। सुविधाओं की भरमार देखकर चकित होने का कोई कारण नहीं है। गवर्नमेंट समाजविशेष के साथ भिन्न प्रकार का व्यवहार करने को जब उद्यत होगई तो फिर क्या नहीं हो सकता। "सैंया भये कोतवाल अब डर काहे का" के अनुसार मुसलमान बन्धुओं के लिये दुष्प्राप्य अब कुछ भी नहीं है। जिसमें उनकी बात बनती हो वह सब सहज ही हो सकता है। बिचारे फुलर ने सहज स्वभाव से जो कुछ स्पष्ट कह डाला था वही इन दिनों कर्तृपक्ष की नीति है, इसमें सन्देह करने का कोई कारण नहीं जान पड़ता। परन्तु इस नीति का परिणाम मङ्गलजनक कदापि नहीं हो सकता। दो पुत्रों में एक को युवराज और दूसरे को उसकी मृत्यु नियुक्त करना कदापि बुद्धिमत्ता का द्योतक नहीं समझा जा सकता। अब हम दो शब्द अपने नेताओं और भाइयों से कह कर इस रामकहानी को समाप्त करेंगे।

इन मन्तव्यों के प्रकाशित होते ही हमारे नेताओं को उचित था कि वे तीव्र प्रतिवाद करते। परन्तु खेद के साथ लिखना पड़ता है कि भारतीय राष्ट्र के सङ्गठन की धुन में वे ऐसे मस्त हैं कि हिन्दुओं के दुर्दिनों का प्रमाण इस से अधिक और क्या हो सकता है। नेता होने का दम भरनेवालों से हमारा विनीत निवेदन है कि मृगतृष्णा के जल को तिलाञ्जलि देकर जाति और देशसेवा का व्रत ग्रहण करना उचित है। ताली एक हाथ से नहीं बजता। यदि यह नहीं समझ में आता तो सरलचित्त हिन्दुओं का भ्रम दूर कर देना चाहिये। स्मरण रहे कि हिन्दू जाति को क्षति पहुंचने से भारतीय राष्ट्र का कल्याण नहीं हो सकता। जिन कार्यों से हिन्दू और मुसलमान भारत के उभय मुख्य समाजों का हित होना सम्भव है वही कार्य राष्ट्रीय दृष्टि से हितकर माने जा सकते हैं और जिन कार्यों से एक समाज को हानि और दूसरे को लाभ पहुंचना निश्चित है वे राष्ट्रीय दृष्टि से कल्याणकारक कदापि नहीं हो सकते। हम राष्ट्रीयता के विरोधी नहीं हैं। राष्ट्रोन्नति हमारा परम ध्येय है परन्तु हिन्दू जाति के रसातल पहुंचने का मार्ग परिष्कृत कर हम राष्ट्रपन्थी होने का गौरव नहीं चाहते। हिन्दू नेताओं को ऐसे विचारों को हृदय में स्थान भी न देना चाहिये जिनसे राष्ट्रीयता के मूल में कुठाराघात होने की सम्भावना हो परन्तु साथ ही अपर समाज किम्वा गवर्नमेंट द्वारा जब ऐसा कोई कार्य किया जाय जिससे हिन्दुओं के हित की हानि होना निश्चित हो तो हिन्दू नेताओं को निस्सङ्कोच होकर अपने जातीय हित के लिये प्रयत्नशील होना उचित है। यही हमारा बारम्बार निवेदन है। राजनीतिक क्षेत्र में सहनशीलता से काम चलने के दिन खप्त होगये। अब तो सदैव घूंसे के बदले लाठी मारने के लिए प्रस्तुत रहने की ही नीति श्रेयस्कर है। जो लोग केवल सम्मानवृद्धि या उन्नति

का पथ उन्मुक्त करने के लिये देशभक्ति का जामा पहिनते हैं उनसे हमारा यही कहना है कि इससे बढ़कर महापातक या नीचता का परिचायक और कोई कार्य नहीं हो सकता। सम्पूर्ण जाति को क्षतिग्रस्त करने के उद्योग से अब उन्हें विरत होना चाहिये।

हिन्दू भाइयो, अब मनही मन बुदबुदाने से काम न चलेगा। यदि तुम्हारे नेता जिनके हाथों में तुम ने अपना सर्वस्व छोड़ दिया है, कर्तव्य-परायण नहीं हैं तो तुम्हें उचित है कि तुम स्वयं अपने भावों को, अपने हित की बातों को सरकार के कानों तक पहुंचाओ। मानना या न मानना दूसरे के हाथ में है। परन्तु अपने ऊपर होनेवाले अन्यायों का प्रतिवाद अवश्य करना चाहिये। आवश्यकता से अधिक सुशीलता और सरलता भी हानिकर हुआ करती है। विचार करने की बात है कि केवल मुसलमान बालकों की प्रारम्भिक शिक्षा और उनके मक्तबों के लिये इस प्रकार से सार्वजनिक धन का व्यय करने का संकल्प युक्तप्रदेश की सरकार ने कर डाला और हमारे नेताओं के मुख से प्रतिवादसूचक एक शब्द भी न निकला!! हिन्दीज्ञाता के नाते प्रयागीय विश्वविद्यालय के "फेलो" बनने के अभिलाषी एक सज्जन ने तो बात जहां की तहां दबा देने के लिये आकाश पाताल एक कर दिया परन्तु भला हो हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का जिसने उपर्युक्त मन्तव्यों द्वारा उर्दूभाषियों के लिये जो सुविधाएं कर देने की सरकार से प्रार्थना तो की। प्यारे भाइयो, उठो, जागो, चेतो अपना भला बुरा समझो। तुम्हारी दशा बड़ी ही शोचनीय हो रही है, अब सोने का समय नहीं। तन, मन, धन से उद्योग करो, ईश्वर सहायक होगा।

मातृभाषा का प्रेम।

[लेखक—श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी।]

भैरवी।

मन हिन्दी हिन्दी कहु रे।
अंगरेज़ी उरदू कों तजि के
अपनी भाषा गहु रे॥

दीन हीन हिन्दी भाषा है
यह कलंक मत सहु रे।
निज भाषा की सेवा करि के
जगन्नाथ यश लहु रे॥

नवीन सम्पत्ति शास्त्र।*

[लेखक—पं० सोमेश्वरदत्त शुक्ल बी० ए०।]

३ "जो पृथ्वी का निर्णय करें।"

आज से प्रायः दो हज़ार वर्ष पहिले एक बड़ा मालदार यहूदी व्यापारी हुआ था। सुकृत ही के धन को कमा कर उसने अपने को करोड़पती बनाया था। वह पाप की कमाई से एकदम अलग रहता था। उसकी लिखी हुई कुछ कहावतें, उसके काग़ज़ों में मिली हैं, इस समय भी वे बड़े मार्के की हैं और ध्यान में रखने के योग्य हैं। उसकी कुछ मुख्य उक्तियाँ ये हैं:—

(१) "झूठ बोल कर रुपया पैदा करने के मद में वे ही लोग चूर रहते हैं जो मौत के पीछे दौड़ा करते हैं।"

(२) पाप की कमाई किसी अर्थ की नहीं होती है, परन्तु पुण्य मृत्यु से बचाता है"

इनका यह प्रयोजन है कि जब कभी अन्याय के साथ धन पैदा करने का यत्न किया जायगा, तब सर्वनाश ही उसका अन्तिम परिणाम होगा।

(३) जो मनुष्य धनी बनने के लिये निर्धनों को सताता है उसे एक न एक दिन ज़रूर कौड़ी कौड़ी तक के लिये तरसना पड़ेगा।

(४) निर्धन को निर्धन जानकर कभी न लूटो और न व्यापार के बहाने से दूसरे लोगों को ही पीड़ित करो, कारण कि जो मनुष्य औरों को कष्ट देते हैं उनकी आत्माओं को परमेश्वर दुःखी करता है।"

डकैत लोग धनी को धनी जानकर लूटते हैं, परन्तु आजकल के व्यवसायी दरिद्री मनुष्यों की दरिद्रता से लाभ उठाकर और बहुत थोड़ी मज़दूरी देकर उन्हें ज्यादा काम करने को बाध्य करते हैं—उन्हें जितना रुपया अपनी मेहनत के लिये मिलना चाहिए उसका कुछ हिस्सा वे अपने ही पास दबा रखते हैं। इधर मज़दूर लोग जो कुछ पाते हैं उसीसे अपना पेट पालते हैं और लाचार होकर थोड़े वेतन पर कठिन परिश्रम करते हैं।

(५) "धना और निर्धन आमिले हैं। परमेश्वर इनका बनानेवाला है।"

(६) धनी और निर्धन आमिले हैं। परमेश्वर इनकी ज्योति है।

यहाँ पर "आमिले हैं" इसका अर्थ यह है कि ये एक दूसरे का विरोध कर रहे हैं। धन और निर्धनता में बड़ी पुरानी शत्रुता है। इन दोनों का प्रतिस्पर्धा प्राकृतिक है, क्योंकि "परमेश्वर इनका बनानेवाला है।" जैसे पहाड़ से निकल कर नदी का समुद्र में गिरना एक नैसर्गिक घटना है, वैसेही धनी और निर्धनों का एक स्थान में होना और उनमें खींचा-तानी का बना रहना भी आवश्यक है, परन्तु इस दशा का भला या बुरा उपयोग करके ये दोनों अपना कल्याण या सर्वनाश कर सकते हैं। जब

---

* इङ्गलैंड के प्रसिद्ध विद्वान् जान रस्किन की "पोलिटिकल इकानोमी आफ़ आर्ट", "अंटूदिस लास्ट" और "म्यूनेरा पुल्वेरिस" के आधार पर। इसके पहिले तीन लेख "चित्रविद्या का सम्पत्ति शास्त्र", "गौ व का मूल कारण" और "सम्पत्ति की नर्सें" मर्यादा की गत संख्याओं में छप चुके हैं। यह पुस्तक शीघ्र ही अभ्युदय प्रेस से छपकर प्रकाशित होगी।

लक्ष्मीवान् और दरिद्री मनुष्य दोनों ही यह याद रखते हैं कि "परमेश्वर हमारी ज्योति है" तथा आपस में सहानुभूति और एक दूसरे से न्यायपूर्ण बर्ताव करते हैं, तब ये सुखी रहते हैं और देश की सम्पत्ति को बढ़ाते हैं, वैसे ही यदि एक ने दूसरे को सताया और दूसरे ने पहिले का अपमान किया, तो दोनों ही का हित नहीं हो सकता है। अन्याय का व्यवहार हुआ नहीं कि दोनों के नेत्रों की ज्योति जाती रहती है और तब ये न तो अपने को और न दूसरे ही को पहिचान पाते हैं तथा दिनों दिन अत्याचार और अपकर्ष के समुद्र में डूबते जाते हैं।

अर्वाचीन अर्थशास्त्रियों का एक नियम यह भी है कि जहाँ पर जिस चीज़ की खपत होगी वहीं पर उसकी आमदनी होगी। उनका कहना है कि क़ानून इस बात को नहीं रोक सकता है। ठीक उसी तरह से संसार की नदियाँ वहीं बह कर जाती हैं जहाँ उनकी चाह होती है। जहाँ ज़मीन नीची होगी उसी ओर को पानी झुकेगा, हम इसको भी क़ानून से अपने वश में नहीं कर सकते हैं, परन्तु हमें उसको इस प्रकार से नियंत्रित करना चाहिए कि वह न्यायी और उदार मनुष्यों के पास पहुंचकर देश का और जाति का कल्याण करे। इस समय के अर्थशास्त्री सम्पत्ति के उचित नियन्त्रण और वितरण के नियमों की उपेक्षा करते हैं। वे कहते हैं कि हमारा शास्त्र धनाढ्य बनने का शास्त्र है। सच पूछिए तो इस प्रकार से जुवा खेलना, चोरी करना और डाका मारना भी धनी बनने के शास्त्र हो सकते हैं।

हम वर्तमान अर्थशास्त्र को ऐसी अनुदार दृष्टि से नहीं देखना चाहते हैं, इस कारण से हमें यह समझना चाहिए कि यह हमें न्यायपूर्ण और उचित रीतियों से रुपया पैदा करने के नियम बतलाता है। अब यहाँ पर यह आपत्ति होती है कि कुछ काम ऐसे हैं जो यद्यपि क़ानून के देखते हुए ठीक जँचते हैं, तथापि वे वास्तव में अन्याय से भरे हुए होते हैं, इसलिए हम केवल न्याय के साथ कमाये हुए धन को ही अर्थशास्त्र का उचित उद्देश्य मानेंगे। इस दशा में यह सबको स्वीकार करना पड़ेगा कि अर्वाचीन अर्थशास्त्र के अनुकूल धनी होने के लिये हम को न्यायपूर्ण उपायों से ही धनी बनना चाहिये। जो लोग किसी के साथ कभी अन्याय नहीं करते हैं उन्हीं की आत्माएँ नक्षत्रों के समान ज्योतिर्मय, पवित्र और प्रभावशाली होती हैं। इसी प्रकार के मनुष्यों के नेत्रों में स्वर्गीय प्रकाश होता है और ये ही दूसरे लोगों के सच्चे नेता होते हैं। ये स्वयं उचित मार्ग पर चलते और दूसरों को भी उस पर चलाते हैं। इन्हीं को देख कर यह कहा गया है—"जो पृथ्वी का निर्णय करें उन्हें चाहिए कि वे न्याय के साथ निरन्तर प्रेम रक्खें।"* येही किसी बात की चिन्ता न करके सदा न्याय के साथ प्रेम करते हैं। यह ज़रूरी नहीं है कि जब कोई मनुष्य राजा, ऋषि या न्यायाधीश हो, तभी वह इस काम को अपने हाथ में ले; प्रत्येक पुरुष जो उचित शासन करता है राजा है, जो दूसरों की रक्षा करता है ऋषि है, और जो सब के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार करता है न्यायाधीश है।

अब हमें यह जानना है कि किसी के परिश्रम के मूल्य को चुकाने का क्या न्याय है और उसके क्या नियम हैं। जैसा हम इससे पहिले वाले निबन्ध में दिखा चुके हैं कि यदि हम किसी मनुष्य से काम लें, तो उसका पूरा बदला तभी होता है, जब ज़रूरत पड़ने पर उतनेही समय तक हम उसका काम कर दें, या यदि ऐसा न हो सके तो हम उसकी मेहनत के बदले में उसे इतने रुपये दें कि वह जब कभी आगे चलकर उसे आवश्यकता हो किसी और आदमी

* "Diligite Justitiam Qui Judicatis Terram."

से उन्हें देकर इतने समय तक अपना काम करवा ले। यदि किसी को एक ही मज़दूर की ज़रूरत हो और दो आदमी उस काम के लिये आपहुंचे तो उस समय ये दोनों आपस में चढ़ा-ऊपरी लगाकर मज़दूरी को कम कर देंगे। इस प्रकार से जो मनुष्य कम मूल्य लेकर अपना परिश्रम बेचेगा वह घाटे में रहेगा। यदि दो आदमियों को एक एक मज़दूर की ज़रूरत हो और वहां पर एक ही मनुष्य हो तो उनमें से जो कोई उसको ज्यादा मज़दूरी देगा उसी का यह काम करेगा। इस प्रकार से थोड़े परिश्रम के बदले में इसे ज्यादा मूल्य मिलेगा।

यहां पर यह उचित है कि परिश्रम के मोल लेने वाले और बेंचने वाले में पूरा पूरा बदला हो—समय के साथ समय का, शक्ति के साथ कौशल का। इतना ही नहीं बरन यदि न्याय की दृष्टि से देखिये तो काम लेनेवाले को दूसरे के परिश्रम के उपलब्ध में थोड़ा बहुत ज्यादा ही मूल्य देना चाहिये जिसमें समय आने पर उसे स्वयं अपने लिये उतनीही मेहनत कराने में किसी प्रकार की अड़चन न हो। जब किसी को यह बदला रुपये के रूप में चुकाया जाय तब यह आवश्यक है कि हम उसे उचित से भी कुछ ज्यादा वेतन दें। जैसे यदि आज किसी ने एक घंटे तक हमारा काम किया तो हमें उससे यह वादा कर लेना चाहिए कि आवश्यकता होने पर हम एक घंटा और पाँच मिनट तक तुम्हारा काम करेंगे। साधारणतया एक घंटा काम करनेवाले से कम से कम एक ही घंटे तक काम करने की प्रतिज्ञा करना सभी प्रकार से योग्य है। यदि इसमें कमी हुई तो वह एक का दूसरे पर केवल अत्याचार करना है। इस सम्बन्ध में हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि हिसाब चुकाते समय हम किसी को जो कुछ दें वह उचित रीति से अवश्यमेव उसके परिश्रम के अनुरूप—बराबर हो। जब किसी वेतन-विशेष का पानेवाला काम पड़ने पर उसी मूल्य को देकर अपने लिये ठीक उतना ही परिश्रम किसी और से करवा सके, केवल तभी यह व्यवहार न्यायपूर्ण कहा जा सकेगा। परिश्रमजीवियों की संख्या के कम या ज्यादा होने से इस नियम में कुछ भी हेरफेर न होना चाहिये। यदि हमें एक तसवीर तैयार करानी हो और हम उसके लिए २०००) देने का निश्चय कर चुके हों तो चाहे एक चित्रकार हो चाहे १०० हों और चाहे १००० हों परन्तु उनमें प्रतिस्पर्धा उत्पन्न करके हमें अपने निश्चित मूल्य २०००) को ५००) ही कर डालने का यत्न कभी न करना चाहिये। ऐसी दशाओं में वास्तविक लाभ की आशा करना व्यर्थ है, बरन जो रुपया हाथ से जाता है वह भी मिट्टी में मिल जाता है, क्योंकि जो चित्रकार या शिल्पी गुणी है वह हज़ार बार मत्था पटकने पर भी अपने परिश्रम का मूल्य न कम करेगा। अपना मूल्य वे ही कम करेंगे जो लोग घटिया दर्जे के हैं तथा जो हमारा रुपया उड़ा जायँगे और उसके साथ ही काम को भी सत्यानाश कर देंगे।

आजकल साधारणतया शिल्पियों और परिश्रमजीवियों के काम का मूल्य रुपयों ही में दिया जाता है और उनके बदले में हम उनसे सभी तरह की मेहनत लेते हैं। इस प्रकार से परिश्रम विशिष्ट हो जाता है और उसका मूल्य साधारण—रुपये के रूप में—बना रहता है, क्योंकि यह समय के बदले समय और निपुणता के बदले में निपुणता नहीं है, बरन समय और निपुणता दोनों के बदले में रुपया मात्र है। यह द्रव्य देश के या अपनी जाति के नाम एक आशा या प्रमाण मात्र है, जिससे कोई मनुष्य जब चाहे तब अपना उतना ही काम दूसरे मनुष्य से करा ले, अथवा उतने ही परिश्रम से पैदा की हुई या बनी हुई चीज़ ज़रूरत पड़ने पर मोल ले सके। परिश्रम के परिवर्तन में रुपया देते समय हमें बड़ी सावधानता

करनी चाहिए जिसमें काम करनेवाले के ऊपर किसी प्रकार का अन्याय न हो। हमें यह दृढ़ नियम बना लेना चाहिये कि हम सदा प्रत्येक मनुष्य के परिश्रम का पूरा पूरा बदला चुका दिया करेंगे। कुछ समय तक ऐसा करने पर हम मनुष्यों के कामों के मूल्य का रुपये के रूप में अनुमान कर लेने में चतुर हो जावेंगे और तब हम दूसरों के ऊपर अत्याचार करने से अपना हाथ खींच सकेंगे।

यदि कोई व्यवसायी दो कारीगरों में स्पर्धा पैदा करे और उनमें से एक को आधे ही वेतन पर काम करने के लिये राज़ी कर ले तो इस बात का पहिला फल यह होगा कि दूसरा आदमी भूंखों मरेगा या बेकार रह जायगा, कारण कि उचित रीति से उसे दो को दूने दाम देने चाहिये थे। जो काम वह १) प्रति दिन देकर एक से कराता उसे अब वह ॥) ही में ले रहा है और शेष ॥) में वह दूसरा आदमी भी रख सकता है, वैसे उसको दो मनुष्यों को २) प्रति दिन देने पड़ते। इस प्रकार से पूरा १) उस अन्यायी व्यापारी के हाथ में रह जाता है जो वास्तव में दोनों कारीगरों के पास जाना चाहिए था। इस व्यतिक्रम से कारीगरों के परिश्रम का उचित मूल्य उन्हें नहीं मिलता है।

यदि इसके विरुद्ध उचित वेतन दिया जाय तो पूरा १) प्रतिदिन पहिले ही कारीगर को मिलना चाहिए। जब काम लेनेवाले को आधे आधे वेतनों पर दो मनुष्य न मिल सकेंगे तब उनको नौकर रखने के लिए उसे १) और अपनी जेब से निकालना पड़ेगा, वैसे वह दूसरे कारीगर से काम नहीं ले सकता है, इसलिए यह यथार्थ परिवर्तन इधर उस व्यापारी की अन्याय करने की शक्ति को परिमित करता है और उधर कारीगर के परिश्रम का उचित मूल्य देता है। इस प्रकार से यह शिल्पी ॥) जयदा पाकर दूसरे आदमी से अपना काम करा सकता है या ज़रूरी चीज़ें मोल ले सकता है। यहां पर इस अन्तर को भलीभांति समझ लेना चाहिये कि उचित नियम से काम लेनेवाले मनुष्य के पास एक वेतन में एक कारीगर और अनुचित रीति से उसके लिये उतने ही में दो कारीगर काम करते हैं। न्यायपूर्ण वेतन एक ओर तो केवल एकही मनुष्य के हाथ में धन की शक्ति को कम करता और उसके लिये बहुत लोगों पर अपना रोब जमाने के अवसरों को दिनों दिन घटाता रहता है तथा दूसरी ओर वही रुपया कई आदमियों में उचित रीति से फैलता और उन सब की दशाओं को सुधारता रहता है। इस प्रकार से अपने २ परिश्रम के हिसाब से सभी लोगों में सम्पत्ति का आवश्यक वितरण होता है। इसके विपरीत अन्याय एक ही पुरुष के हाथ में अलीम बल देकर उतने ही रुपयों में कई एक मनुष्यों को उसके वश कर देता है और वह उनके परिश्रम को मनमानी रीति से नियन्त्रित करता है।

जब न्याय सम्पत्ति के बल को परिमित करता है, तब वह बड़े २ व्यापारियों के विलास-प्रिय बनने और उनके अपने नौकरों पर अत्याचार करने के अवसरों को भी कम करेगा। इसके साथ ही वह शिल्पियों को उन्नति करने का अवसर देगा क्योंकि कम वेतन पाकर और एक ही मनुष्य के अधीन होकर ये अपना सिर ऊपर को नहीं उठा पाते हैं तथा दिनों दिन नीचे दबते जाते हैं। जब ऊपर से लेकर नीचे तक प्रत्येक मनुष्य को अपने परिश्रम का पूरा मूल्य मिलेगा तब वह बुद्धिमानी के साथ अपनी दशा को सुधार सकेगा। थोड़े शब्दों में उचित वेतन धन की अनुचित शक्ति को रोकने के साथ ही निर्धनता की असमर्थता, असहायता, दुर्दशा और उसके दुःखों को दूर करेगा।

हमारे विचारों को पढ़कर यह कभी न समझना चाहिए कि हम समष्टिवादी* हैं। सच पूछिए तो हम इस सिद्धान्त के विरुद्ध हैं। सब लोगों के लिये पूरी समानता और सम्पत्ति के समान वितरण का प्रतिपादन करना दूर रहा, हम यह ज़ोर देकर कहते हैं कि संसार के सभी मनुष्यों का धन में तथा और सब बातों में बराबर हो जाना असम्भव है। ज़िस आवश्यक विचार को हम सबके हृदयों पर अंकित करना चाहते हैं वह यह है कि पूंजीवाले और व्यापारियों को निर्धन मनुष्यों से काम लेकर उन्हें उस परिश्रम का सच्चा, उचित और यथार्थ बदला चाहे रुपयों में या और स्वरूप में ज़रूर चुका देना चाहिए। जो लोग योग्य और बुद्धिमान् हैं वे दूसरों के नेता अवश्य बनें और उन पर शासन करें परन्तु उन्हें न्याय को किसी दशा में भी न छोड़ना चाहिए।

यह कहा जाता है कि निर्धन मनुष्य धनाढ्यों की पूंजी के लिये लालच न करें। यह सच है परन्तु लक्ष्मीवान् मनुष्यों का निर्धनों के पेट और उनकी जेब को काटकर रुपया पैदा करना कहाँ का न्याय है? जैसे एक को दूसरे के धन को बिना परिश्रम के पाने के लिये कोई स्वत्व नहीं है, वैसेही दूसरे को भी पहिले के उचित वेतन में लूट मचाने का कुछ भी अधिकार नहीं है। अपना पसीना निकाल कर सम्पत्ति इकट्ठा करने और उसका उचित उपभोग करने के लिये जितना स्वाम्य धनी लोगों का है ठीक उतना ही निर्धनों का भी। "हल के सैनिक और खड्ग के सैनिक"† इन्हीं थोड़े से शब्दों में हमारे सम्पत्ति शास्त्र का सारांश आजाता है। इनमें से कोई भी एक दूसरे से कम नहीं हैं। ये दोनों ही समान आदर के पात्र हैं और इन्हें अपने परिश्रम का यथार्थ परिवर्तन मिलना चाहिये। इस सम्बन्ध में हमें यह कभी न भूलना चाहिए कि प्रत्येक काम और बात में "शासन और सहोद्योग जीवन के नियम हैं; अराजकता और प्रतिस्पर्धा मृत्यु के नियम हैं।"‡ हम यह चाहते हैं कि मनुष्यों को व्यक्त और अनावश्यक—न कि उचित और प्रासंगिक—रूप से विलासप्रिय बनाने का और संसार के परिश्रम पर अन्यायपूर्ण अधिकार करने का लक्ष्मी का बल यथेष्ट परिणाम में घट जाय तथा वर्तमान समय के समान यह मिथ्या सुख की देवी और परिश्रम की एकमात्र अधिष्ठात्री न रहे। जब तक व्यापार की व्यवस्था में आवश्यक परिवर्तन करके हम उपर्युक्त उद्देश्य को सिद्ध न करलेंगे तब तक सर्वसाधारण मनुष्यों की दशा का सुधारना केवल कठिन ही नहीं वरन असम्भव है।

---

* Socialist. (उस मत-विशेष के माननेवाले जिसके अनुसार संसार की सब सम्पत्ति धनी और निर्धन मनुष्यों में समान रूप से बँटनी चाहिए।)

† हल चलानेवाले और लड़ाई लड़नेवाले—किसान और सिपाही।

‡ Government and Co-operation in all things are the Laws of Life; Anarchy and Competition the Laws of Death.

दीन की आह।

[लेखक–श्रीयुत अयोध्यासिंह उपाध्याय।]

(१)

न तो हिलाती गगन न तो हरि हृदय कँपाती।
न तो निपीड़क उर को है भयभीत बनाती॥
निपट निराशा भरी निकल चुपचाप वदन से।
दीन आह दुख साथ वायु में है मिल जाती॥

(२)

उसकी बेधकता का परिचय पानेवाला।
उसकी दुख मयता को जो में लानेवाला॥
देखा जाता नहीं, कहीं कोई होता है।
दीन आह में अपनी आह मिलानेवाला॥

(३)

बार बार अपने उर को मथकर अकुलाती।
अमित ताप परिताप भरी होठों पर आती॥
फिर सहती अपमान शून्य में लय होती है।
दीन जनों की आह नहीं कुछ भी कर पाती॥

(४)

सुनते हैं उससे है पाहन भी भय पाता।
उससे है ईश्वर का आसन भी डिग जाता॥
किन्तु बात यह सब कहने सुनने ही की है।
दीन आह का एक विफलता से है नाता॥

(५)

वीर आह के तुल्य नहीं वह लहू बहाती।
सबल आह के सदृश नहीं वह लोथ ढहाती॥
आशंकित-कर घोर आह के सम नहिं होती।
वह अपना ही हृदय मथन कर है रह जाती॥

(६)

वैसी ही उससे होती दिन रात ठगी है
वही दीनता अब भी उसकी बनी सगी है॥
कौशल है, अतिगूढ़ चातुरी है, यह कहना।
दीन आह पर हरि स्वीकृति की छाप लगी है॥

(७)

पवि कठोर को धूल बनाकर धर सकती है।
लोकप दाहक दुसह अँगारे झर सकती है॥
किसी दयालु हृदय से निकली हैं यह बातें।
आह दीन की भला नहीं क्या कर सकती है।

(८)

सभी सतानेवाले निज कर मलते होते।
पड़ विपत्तियों में दिन रात विचलते होते॥
जो दीनों की आह में जलन कुछ भी होता।
ऊँचे ऊँचे महल आज तो जलते होते॥

(९)

चहल पहल है जहाँ वहाँ मातम छा जाता।
स्वर्ग छटा है जहाँ वहाँ रौरव उठ आता॥
दीन आह की ध्वनि यदि हरि कानों में जाती।
नन्दन वन है जहाँ आज मरु वहाँ दिखाता॥

(१०)

किया लोकहित विबुध जनों ने धर्म कमाया।
जो उनको सब काल प्रभावमयी बतलाया॥
किन्तु जानकर मरम दीन जन की आहों का।
भला कलेजा किसका है मुँह को नहिं आया॥

शिवाजी की योग्यता।

[लेखक–श्रीयुत तरुण भारत।]

(गताङ्क की पूर्ति।)

२–पूर्व-परिस्थिति।*

किसी भी मनुष्य पर उसकी परिस्थिति का बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है और इसलिए उस पुरुष की योग्यता जानने के लिये उसकी परिस्थिति का ज्ञान होना आवश्यक है। इस लेख में हम ने शिवा जी के जन्म की पूर्वस्थिति का विचार करने का संकल्प किया है। इस पूर्व-परिस्थिति के मोटी तरह तीन विभाग किये जा सकते हैं—(क) भौगोलिक (ख) राजकीय और (ग) धार्मिक। इस अन्तिमविभाग में सामाजिक परिस्थिति भी सम्मिलित है? बहुधा धर्म का सामाजिक बन्धनों पर सब देशों में बड़ा प्रभाव पड़ता है और इन दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध सब जगह दिखाई देता है और हिन्दुस्थान में तो शरीर और जीव के सम्बन्ध के बराबर ही घनिष्ठ सम्बन्ध है और जिस काल का हम विचार कर रहे हैं, उस समय सामाजिक बन्धन और धार्मिक बन्धन में किसी तरह का अन्तर समझना अत्यन्त कठिन था। इस कारण सामाजिक प्रश्नों का हम अलग विचार न करेंगे।

(क) भौगोलिक परिस्थिति।

प्रकृति ने महाराष्ट्र देश पर बड़ी कृपा की है। यहां पर जल, वायु और सुपरिस्थिति स्थान के सब लाभ विद्यमान हैं जो हिन्दुस्थान में अन्यत्र नहीं हैं। दोनों ओर पर्वतश्रेणियां स्थित हैं, उत्तर-दक्षिण सह्याद्रि पर्वत है और पूर्व-पश्चिम सतपुरा और विंध्याचल पर्वत है और फिर छोटी मोटी बहुत सी पर्वतश्रेणियां हैं, जिनके कारण यहां की भूमि विषम और ऊंची नीची बन गई है। भूगोल की दृष्टि से देखा जाय तो महाराष्ट्र में कोंकन, जो समुद्र और सह्याद्रि के बीच की पट्टी है और वह देश जो कृष्णा और गोदावरी की तराई है, ये दोनों भाग सम्मिलित हैं। इस कारण यह देश स्वाभाविक ही सुरक्षित है और इन पर्वतों पर जो किले हैं उनके कारण और भी सुरक्षित हो गया है। ये किले इस देश के एक मुख्य स्वरूप हैं और राजकीय इतिहास में इनका बड़ा भारी महत्व है। इस स्वाभाविक बनावट के कारण उत्तर की अत्युष्ण किंवा अति शीतल जलवायु की जगह यहां सम और आरोग्यवर्धक वायुमान है। ज़मीन पहाड़ी होने के कारण बहुत उपजाऊ नहीं है और लोग कट्टर होकर भी लादे हैं।

लोगों के शील का भी इस देश पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा है, उत्तर हिन्दुस्थान में आर्य लोगों की प्रधानता होने के कारण मूल निवासियों का कोई महत्व नहीं रहा है और नितान्त दक्षिण में द्रविण लोगों की भिन्नता पूर्णतया बनी रही है और उन पर आर्य लोगों का कोई प्रभाव नहीं पड़ने पाया है। पर महाराष्ट्र में भौगोलिक स्थिति के कारण आर्य और द्रविड़ लोगों का ऐसा योग्य संमिश्रण हुआ है कि दुष्परिणाम न बढ़ कर सब सुपरिणाम ही दिखाई देते हैं इस संमिश्रण का योग्य परिणाम भाषा की विचित्रताओं में भी दीख पड़ता है, जिसका मूलाधार तो द्राविणी है पर उसकी वृद्धि और रचना आर्य-परिणामों

*इस लेख में रानडेकृत "Rise of the Maratha Power" and सर देसाईकृत "हिन्दुस्थान चा इतिहास-मराठी रियासत" न पुस्तकों से बहुत सहायता मिली है। लेखक।

से बनी है। स्वरूप में भी वे न तो उत्तर के लोगों की तरह गोरे, नाजुक और सुडौल हैं, न द्रविड़ लोगों की तरह बिलकुल काले और रूखे हैं और फिर उनमें सीदीयन लोगों का भी योग्य मिश्रण होगया है।

इन कारणों से यहां की संस्थाओं में और धर्म में कुछ ऐसी सभ्यता है जो इस हिन्दुस्थान में अन्यत्र नहीं पाई जाती; इनमें ग्राम जनों की संस्थाएँ ही मुख्य हैं जिनकी इतनी वृद्धि हो गई थी कि वे अनेक विदेशीय आक्रमणों के बाद भी बनी हुई हैं। पंचायत पद्धति के समान ग्राम संस्थाएँ अभीतक मौजूद हैं और राज्य प्रबन्ध के बड़े बड़े उद्देश्य उनसे सिद्ध होते हैं। वे आजकल की शासनप्रणाली के एक मुख्य अंग हैं और सिंध और गुजरात में जहां वे मुसलमानी प्रभाव के कारण नष्ट होगई थीं, फिर भी वहाँ उनका प्रचार किया गया है। साथ ही इनके रैयतवारी बन्दोबस्त से किसानों को जमीन की पूर्ण मालकियत प्राप्त है और उससे उन्हें एक तरह की स्वाधीनता मालूम होती रहती है, जो अन्यत्र किसी प्रान्त में नहीं दीखती।

इन संस्थाओं के साथ ही एक बात और है। न तो यहां द्रविड़ के समान धर्मपन्थों की प्रतिनिविष्टता है न उत्तर की तरह जातियों की उपजातियाँ और फिर उनके भी अनेक उपभेद हैं। यहां पर भिन्न २ भेदों में इतनी सहिष्णुता है कि उनकी ओर वे बेपरवाह ही हैं ऐसा कह सकते हैं। यहां पर ब्राह्मण और अब्राह्मण समानता से मिलते जुलते हैं। सच बात यह है कि वैष्णव साधुओं के प्रभाव से नीची सामाजिक दशा से यहां के शूद्र भी क्षत्रिय या वैश्य के समान जिस प्रकार जो धंधे करते थे उसी प्रकार ऊंची दशा को प्राप्त हो गये हैं, यहां तक कि यहां मुसलमानों का अत्यन्त धार्मिक कट्टर स्वभाव इस प्रभावशील दशा में नरम पड़ गया है। सहिष्णुता और नेमस्ता (?) स्वभाव ये दो गुण महाराष्ट्रीय शील के प्रधान और चिरस्थायी तत्व हैं।

इन ऊपर लिखी हुई बातों के कारण यहां पर स्थानीय स्वराज्य और स्वाधीनता का विचार ऐसा कुछ बढ़ गया है कि हिन्दू या मुसलमान किन्हीं भी राजाओं के समय यह देश एक सत्ता में बहुत काल तक नहीं बना रहा। उत्तर हिन्दुस्थान में बड़े बड़े राज्य हुए, पर महाराष्ट्र में राजकीय सत्ता का केन्द्रीकरण न होने पाया। जुदे जुदे राज्यों के कारण ही ऐसा होता था और वे सब शत्रु की चढ़ाई के समय मिल कर काम करते थे। समय समय पर जो चढ़ाइयां हुईं, उन्हें उन्होंने विफल कर दिया। प्राचीन इतिहास से ज्ञात होता है कि यहां छोटे छोटे बहुत से राज्य थे और राजकीय सत्ता सदा एक के हाथ से दूसरे के हाथ में बदलती ही रहती थी।

महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति ऐसी है और उसके परिणाम ये हैं। अन्य देशों के इतिहास पढ़ने से यही ज्ञात होता है कि ऐसे देश के लोग स्वराज्यप्रिय और स्वाधीनताप्रिय होते हैं। ऐसे लोगों को कोई बलाढ्य राजा भले ही कुछ दिन तक तलवार के जोर से दबा ले पर बहुत काल तक उसकी अनियंत्रित सत्ता चल नहीं सकती। यह इसी का परिणाम है कि महाराष्ट्र हर प्रयत्न करने पर भी मुसलमानों के पूर्ण आधीन कभी नहीं हुआ और औरंगजेब के समान बलाढ्य और दृढ़चेता बादशाह को भी पचीस वर्ष तक लड़ने के बाद हार खाकर जाना पड़ा।

(ख) राजकीय परिस्थिति।

ऊपर लिखे कारणों से मुसलमानी सत्ता की शिवाजी के पहले क्या दशा थी, इसका संक्षेप में विचार करना आवश्यक है।

ईस्वी सन् १३१८ में दक्षिण के यादववंश का नाश हुआ और मुसलमानों की सत्ता आरम्भ हुई। सन् १३४७ तक महाराष्ट्र पर दिल्ली के सुलतानों का प्रभुत्व जारी था। जब दिल्ली में मुहम्मद तुगलक राज्य कर रहा था, उस समय दक्षिण में अनेक गदर हुए और आखिर बहमनी राज्य की स्थापना हुई। सन् १५२६ के लगभग बहमनी राज्य के पाँच टुकड़े होगये थे और आगे उनमें से तीन प्रधान हुए। छत्रपति शिवाजी का जन्म हुआ, उस समय इन तीन मुसलमानी राज्यों का महाराष्ट्र पर प्रभुत्व था।

इस देश के बहुत प्राचीन इतिहास की ओर दृष्टि डालें तो यह दीख पड़ेगा कि इस देश में अनेक राज्यक्रांतियां हुई हैं। पहले आर्यलोग हिन्दुस्थान में आये और उनकी सत्ता स्थापित हुई। पीछे मुसलमान आये, और उनकी सत्ता स्थापित हुई। यह साधारण नियम है कि विजयी लोगों की उच्च सभ्यता का प्रभाव जीते हुए लोगों की नीच सभ्यता पर पड़ता है। यूरोप का प्राचीन इतिहास देखें तो यह मालूम होगा कि ग्रीक और रोमन जैसे सभ्य राष्ट्रों ने आस पास के हीनावस्थ राष्ट्रों को जीत कर उन्हें अपनी सभ्यता से सभ्य और शिक्षित किया। आर्यराज्यक्रांति का यही परिणाम हुआ पर मुसलमानी राज्यक्रांति का यह परिणाम नहीं हुआ क्योंकि हिन्दुओं से मुसलमान अधिक सभ्य न थे, बल्कि कई बातों में हीन ही थे। मुसलमान पूर्व परम्परागत हिन्दू संस्थाओं का नाश न कर सके, हिन्दुओं की मदद बिना मुसलमानों का कुछ काम चल नहीं सकता था। विद्या, कला और अनेक सांसारिक बातों में हिन्दुओं का मुसलमानों पर प्रभाव पड़ा। राज्य की चिरस्थायिता के प्रश्न का विचार करना हो तो विजयी लोगों ने जीते हुए लोगों का स्वत्व कितना नष्ट कर डाला है, इसका विचार करना चाहिये। विजयी लोगों के विशेष गुणों से जीते हुए लोग जब तक दब नहीं जाते, अर्थात् जब तक जीते हुए लोगों का अधिकार कायम है तब तक इन दोनों वर्गों को जेता और जित कहना पूर्णतया ठीक नहीं मालूम होता।

महाराष्ट्र पर मुसलमानों ने अपना अधिकार जमाया पर महाराष्ट्रों के बिना उनका कुछ काम नहीं चलता था। हजारों वर्षों तक महाराष्ट्रों की स्वाधीनता बनी रही। जगह २ पर शूर मराठे सरदार फौजबंद रहते थे। उन सबों को नष्ट करने के लिये मुसलमानों का मन रहते भी आवश्यक फौज और कहीं से आ नहीं सकती थी। यानी उन सरदारों के प्रसन्न रखने के सिवा कोई दूसरा उपाय नहीं था। राजपूताने में भी मुसलमानी सत्ता को येही विघ्न थे, पर राजपूताने और महाराष्ट्र में अन्तर यह हुआ कि महाराष्ट्र में मुसलमानी सत्ता को फिर नीचा देखना पड़ा पर राजपूताने में यह बात नहीं हुई। वहाँ केवल वह थोड़ा बहुत स्वतंत्रता किसी प्रकार बनी रही। महाराष्ट्र पर मुसलमानी सत्ता पूर्णतया स्थापित न हो सकी, इसके अनेक कारण थे जिनका वर्णन हम ऊपर करही चुके हैं। महाराष्ट्रों में ग्रामसंस्थाओं का महत्व बहुत अधिक था। प्रत्येक गांव अपनी अपनी हद के भीतर एक प्रजासत्ताक राज्य ही था। इन ग्रामसंस्थाओं का ऐसा प्रबन्ध था कि सरकार के कर देने के बाद ग्राम की भीतरी बातों में सरकार को हाथ डालने की अवश्यकता न पड़ती थी, इस कारण उनका नाश मुसलमानों से न हो सका। लगान वगैरः वसूल करने के काम में उस देश के लोगों की सहायता आवश्यक थी ही। उत्तर हिन्दुस्थान में अफगानिस्तान और ईरान से जैसे नये २ असली मुसलमान आया करते थे, उस प्रकार महाराष्ट्र में नहीं आ सकते थे। उत्तर में फारसी और उर्दू भाषाओं का उपयोग सब सरकारी कामों में होता था, पर दक्षिण में इन कामों में भी मराठी भाषा जारी थी। पास में ही विजयानगर का प्रबल राज्य था, इस कारण मुसलमानों

की क्रूरता यहां उतनी प्रगट नहीं हुई। सारांश दक्षिण में मुसलमानी राज्य में भी हिन्दुओं का स्वत्व बना हुआ था।

उस समय अनेक मराठे सरदार अच्छे बलवान थे। कमरसेन, मुरारपंत, मुरारराव, मदनपंत, जगदेवराव, रायराव, कदमराव, मोरे, शिर्के, घाटगे, घोरपड़े जाधवराव, भोंसले, इत्यादि उस समय के मुख्य मराठे सरदार थे। शिवाजी का पिता शहाजी भोंसले वंश में उत्पन्न हुआ था, उसने अपनी योग्यता से बहुत जागीर कमाई। शहाजी पहले अहमदनगर के दरबार में था। उसने इस राज्य को बचाने के अनेक उपाय किये और उसीके कारण इस राज्य की स्वतन्त्रता कुछ दिन तक बनी रही और मुगलों की कुछ न चल सकी। मलिक अंबर को उससे बड़ी भारी सहायता मिलती रही। आखिर १६३७ में अहमदनगर की निजामशाही का नाश हुआ और शहाजी बीजापूर की नौकरी करने लगा। वहां भी उसका बड़ा प्रभाव पड़ता था।

इस प्रकार मराठे सरदारों का आदर दिनों दिन बढ़ता रहा, स्वतंत्रतापूर्वक अपनी योग्यता और पराक्रम दिखलाने के लिये उन्हें सब दिशाएँ खुली हुई थीं। बहामनी राज्य में उन्हें राज्यशासन और युद्धकला का अनुभव प्राप्त होता गया। मुगल बादशाहों ने दक्षिण को विजय करने के जो नाना प्रयत्न किये वे भी मराठों को लाभकारी हुए। बिना लड़ाई झगड़े के ही मुसलमानी सत्ता का नाश होते देख उनकी आशाएँ और बढ़ गईं। अकबर, जहांगीर, शाहजहां इन तीन बादशाहों ने दक्षिण के विजय करने का प्रयत्न किया, पर वे अपना अधिकार बनाये न रह सके। जिस प्रकार मुगलों ने राजपूतों पर पूरी तरह कभी विजय प्राप्त नहीं की उसी प्रकार मराठों पर भी विजय प्राप्त नहीं की। राजधानी निकट और राजपूताना खाली रहने के कारण राजपूतों पर मुगलों का शह पड़ गया था। पर दक्षिण में ऐसा नहीं हो सका, प्रत्युत इस देश पर अधिकार करने के लिये मुगलों ने जो लड़ाइयाँ कीं, उससे महाराष्ट्रों को नाना तरह के अनुभव प्राप्त होते गये।

स्वराज्य स्थापन होते समय उसके लिये नाना लोगों के हृदय में स्फूर्ति होनी चाहिये। एक ही व्यक्ति के मन में यह बात आने से कुछ नहीं होता, क्योंकि वह जो प्रयत्न करेगा उसे दूसरों की सहायता अवश्य चाहिये। इतना ही नहीं पर यदि उसका प्रयत्न सफल हुआ तो उसकी कल्पनायें समझकर उन्हें पूर्ण करना और उसकी पद्धति टलने न देना इन कामों के लिये भी अनेक लोगों की सहायता की आवश्यकता रहती है। इसी प्रकार अकेले शिवाजी से स्वराज्य स्थापन होना कठिन था, उस समय मराठे अलग अलग थे, उनमें एकता न था। उनमें जोश था, स्वदेशाभिमान था, उन्हें शिवाजी ने एक कर मानसिक शक्तियों का संगठन किया। उन्होंने धर्म का एक आदर्श अपने सामने रक्खा और उन्होंने देश, काल और पात्र के अनुसार स्वयं शक्ति, योग्यता और बुद्धि सम्पादन की। इतना ही नहीं वे उच्चतम आदर्श और उच्चतम आकांक्षा के मूर्तिमान रूप थे और मराठों को मिलकर काम करने में वे उनके हृदयों को बड़ा उकसाते रहते थे। महाराष्ट्र शक्ति उन्होंने उत्पन्न नहीं की, वह तो वहां थी ही। उन्होंने बिखरी हुई शक्तियों को एकत्र और उच्चतम उद्देश्य के साधन में उनका उपयोग किया। यही उनका आद्य गुण था और यही उन्होंने देश की श्रेष्ठ सेवा की और इसी कारण हमें उनका हृदय से कृतज्ञ होना चाहिये। लोग उन्हें ईश्वरीय नायक की दृष्टि से देखते थे। यह बात अकारण न थी। उन्हें ही अपने अंतःकरण में जोश मालूम होता था और वही जोश उन्होंने दूसरों में पैदा किया।

(ग) धार्मिक परिस्थिति।

१३,१४,१५, और १६ शताब्दियों में पृथ्वी पर जगह जगह बड़ा भारी धार्मिक आन्दोलन हुआ और यह आन्दोलन सब देशों में अत्यन्त स्मरणीय हो गया है, क्योंकि उनका उन देशों के इतिहास पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। आश्चर्य की बात है कि जिस समय यूरोप में धर्मसुधार के लिये बड़े भयंकर युद्ध हो रहे थे उसी समय हिन्दुस्थान में भी धर्म-सुधार की बड़ी भारी प्रेरणा उत्पन्न हुई थी। परन्तु यहां पर कोई भारी रक्तपात नहीं हुआ। महाराष्ट्रों का राज्य अस्त हो जाने पर मुसलमानों के राज्य में बहुत कष्ट होने लगे। इन कष्टों से बचने के लिये प्रयत्न करने में महाराष्ट्र जब मग्न थे उस समय उन्हें सहायता देने वाले अनेक साधुसंत उत्पन्न हुए। धर्म सुधार के बिना राष्ट्रोन्नति हो नहीं सकती, धर्म राष्ट्रोन्नति का मुख्य अंग है, यह तत्व उस समय सर्वमान्य था। शंकराचार्य द्वारा स्थापित धर्म अवनति को प्राप्त हो रहा था, और लोगों में धर्म के नाम से एक ढोंग उत्पन्न हो गया था। दांभिक मूर्तिपूजा के नाम से मनमाने दुराचार हो रहे थे, पारमार्थिक सुखप्राप्ति की इच्छा से लोग अपने संसारिक कर्त्तव्य भूल गये थे, जातिभेद संस्था का विपर्यास हो गया था, विचार, उच्चार, आचार, इस संसारावश्यक त्रयी का स्वातंत्र्य नष्ट हो गया था, और ये निरर्थक सामाजिक बंधनों से जकड़ गये थे। महाराष्ट्र देश के संत कवियों ने इस अनिष्ट निवारण के लिये जो प्रयत्न किये उनका ऐतिहासिक दृष्ट से बड़ा भारी महत्व है।

यह ख्याल रखने की बात है कि सब संत कवि थे। चांगदेव, मुकुंदराज, बहिरंभट्ट, निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव, सोपानदेव, मुक्ताबाई, नामदेव, गोराकुम्हार, बद्धवचिद्धन, चोखामेला, रोहिदास, एकनाथ, तुकाराम, नरहरिसोनार, जावतामाली, संतोनापवार, शेखमहम्मद, रामदास, इत्यादि संत प्रमुख थे। इन नामों में सब जाति के, सब वर्णके, सब धंधे के लोग शामिल हैं। ऐसा मालूम होता है कि पुरुषों के समान स्त्रियां भी सन्मार्ग दिखलाकर स्वदेशसेवा करने में अग्रसर हुई थीं। इनमें ब्राह्मणेतर भी शामिल हैं। इन लोगों ने लोगों को विद्या और ज्ञान देकर उनकी स्थिति किस प्रकार सुधारी इसका विवेचन आगे करेंगे। हिन्दूतत्वज्ञानभांडार संस्कृत भाषा रूपा पेटी में बन्द था, उसे इन्होंने देशी भाषा द्वारा सब को प्रदान किया। इनमें से सभी विद्वान थे ऐसा न समझना चाहिये, परन्तु लोगों के दोष दिखलाकर उन्हें सदुपदेश देने की ओर स्वाभाविक ही इनकी प्रवृत्ति थी। बहुत विद्वान न रहने पर भी उनकी भी सरल और सरस बातों का बहुत प्रभाव पड़ा, मनसा वाचा कर्मणा वे एक थे, इस कारण उनका बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। इन संत लोगों ने जो बड़ा भारी काम किया, वह यह था कि यज्ञ योगादि करनेवाले ब्राह्मणों का जो जनसमूह पर बड़ा भारी दबाव था, उसे दूर कर लोगों को स्वतंत्र विचार करने की ओर लगाया और यह काम विशेषतः ब्राह्मणों ने किया। यह स्मरण रखने के योग्य है कि विचारवान पुरुषों की एक बार खातरी हो जाने पर वे तात्कालिक स्वहित से अपनी दृष्टि संकीर्ण नहीं होने देते और अपने कर्त्तव्य से पराङ्मुख नहीं होते। इससे यह ज्ञात होता है कि समाज को विचारवान पुरुषों की ही ज्यादा आवश्यकता है। ईश्वर के आगे सब लोग समान हैं यह सिखलाने के लिये ब्राह्मण ही अग्रसर हुए, यह योग्य ही हुआ।

ज्ञानेश्वर के अनुयायी बहुधा १३वीं शताब्दी में हुए। अपने धर्म की अवनति हुई है, समाज सुधार के लिये यह अवनति दूर कर अपना धर्म शुद्ध करना चाहिये, यह कल्पना इन्हीं के मन में बड़ी और उन्हीं ने इस धर्म

कार्य के करने में प्रयत्न भी किया। जातिभेद के कारण उत्पन्न होनेवाले उच्चनीचत्व के भाव दूर करने में इन्होंने जितने प्रयत्न किये, उतने शायद ही और कभी हुए होंगे। भगवद्गीता देशी भाषा द्वारा समझने वाला ज्ञानेश्वर और लैटिन बाईबिल का अंगरेज़ी में भाषांतर करने वाला जान विकलिफ (Morning star) इन दोनों में बहुत कुछ समानता है।

एकनाथ के अनुयायियों का विकास सोलहवीं शताब्दी में हुआ। महाराष्ट्र में स्वराज्य स्थापना की ओर इन्हीं लोगों के मुख्य प्रयत्न हुए। ये शिवाजी के समकालीन थे। पुराना स्वराज्य अस्त होने पर इधर उधर मुसलमानी प्रभुत्व आरम्भ हुआ और उसके कारण जो क्लेश होने लगे इसका ज्ञान इन लोगों को जितना हुआ उतना ज्ञानेश्वरानुयायियों को नहीं हुआ था। उसी प्रकार साधुत्व और कवित्व इन दो गुणों का वर्चस्व इनमें ज्यादा था। संस्कृत ग्रन्थों के मराठे में तर्जुमे कर लोगों में ज्ञान की वृद्धि करनी चाहिये यह कल्पना प्रथम ही प्रथम इन्हीं के हृदय में उत्पन्न हुई और इस ओर इन्हींने उद्योग आरम्भ किया। स्वधर्म की अवनति होने के कारण लोगों को नीतिमार्ग दिखलाने की उत्कंठा इन लोगों में विशेष थी। रामदास इसी पन्थ के थे पर उनका काम कुछ और था इस कारण इस विषय में स्वतन्त्र रूप से विचार करेंगे।

संत लोगों के उपदेशों में से कुछ उदात्त तत्व और उन लोगों ने धर्मसुधार की ओर कौन कौन से कार्य किये, यह समझ लेना आवश्यक है। पाश्चात्य देशों की धर्मजागृति का इतिहास जिसने पढ़ा हो, उसे यह ज्ञात हो जायगा कि इन दोनों स्थानों की जागृति में बहुत कुछ समानता है।

(१) धर्मशिक्षण और धर्मसंरक्षण ये काम आचार्य कहलानेवाले ब्राह्मणों के हाथ में थे। ये ब्राह्मण बहुधा यज्ञयोगादि करने में निमग्न रहते थे और इसीसे उनका दूसरी जातियों पर प्रभाव पड़ता था। ब्राह्मण जन्म से ही वरिष्ठ माने जाने के कारण उनके बतलाये हुए कर्म मार्ग को छोड़ दूसरे साधनों से भी ईश्वरप्राप्ति हो सकती है, यह लोगों को मालूम नहीं था। यह स्थिति दूर करने का संतजनों ने बड़ा भारी प्रयत्न किया। इन्होंने लोगों को ऐसे उदात्त विचार सिखलाये कि भक्ति और सच्चे मन से ईश्वरोपासना करने ही से हर किसी को ईश्वर प्राप्त होता है, एक विशेष मार्ग के सिवा अन्य मार्गों से भी ईश्वरप्राप्ति हो सकती है, किसी विशेष कुल में जन्म लेने से श्रेष्ठत्व नहीं मिलता, ईश्वर को सब प्राणी समान प्रिय हैं और निज उदाहरणों से उन्होंने ये बातें लोगों के मन में घुसा दीं। पाश्चात्य देशों में ईसाई धर्म के गुरु पोप और उसके अनुयायियों ने यह क्रम चलाया था कि हम जनता और परमेश्वर के बीच मध्यस्थ हैं, वे ऐसा ढोंग करके लोगों से धन लेकर पाप-मोचन की रसीद लिख देते थे। ऐसी स्थिति में लूथर प्रभृति अनेक धर्मसुधारक उत्पन्न हुए और उन्होंने पोप का भंडा फोड़ कर दिया। महाराष्ट्र की और यूरोप की इन दोनों बातों में बहुत कुछ बराबरी है।

(२) जातिव्यवहार को धर्म के बन्धनों से दूर करना धर्मसुधार का बड़ा भारी काम है। साधुओं में सब जाति के लोग शामिल थे और वे अबतक सबको समान पूज्य हैं। इससे ही उनके मार्ग का श्रेष्ठत्व स्थापित होता है। इन सज्जनों ने लोगों को ऐसे विचार सिखलाये कि ग़रीब और धनवान, छोटा और बड़ा, ब्राह्मण और अब्राह्मण, ये भेद परमेश्वर को पसन्द नहीं हैं, सच्चा बड़प्पन नीति और ज्ञान से प्राप्त होता है, फिर कोई मनुष्य किसी भी जाति का और चाहे जो धंधा क्यों न करे, उसे समान है और अपने शुद्ध व्यवहार और निष्ठा से उनका लोगों पर प्रभाव पड़ा।

(३) सन्तों ने लोगों को ये बातें जंचा दीं कि इसी प्रकार योगसाधन, संन्यासधारण, मठवास इत्यादि ईश्वर प्राप्ति के प्रचलित मार्ग निन्दनीय हैं और संसार के सब काम करते हुए भी ईश्वरप्राप्ति हो सकती है। योगसाधन के नाम से संन्यासवृत्ति का आवरण पहिन अथवा मठवास का ढोंग रच कर नीच लोग अत्याचार करते थे।* इस स्थिति को दूर करने का श्रेय इन्हीं सन्तों को है।

(४) इन्होंने एक बड़ा भारी और लोकोपकारी काम किया है। संस्कृतग्रन्थों का भाषान्तर कर उसमें का ज्ञान सब को प्राप्य कर दिया। इस प्रकार ज्ञान प्राप्त हो जाने से लोगों में स्वतन्त्र विचार करने की शक्ति आगई। यूरोप में ग्रीक और लैटिन भाषाओं से वहां की देशी भाषाओं में सोलहवीं शताब्दी में बहुत ग्रन्थ हुए। इन दो बातों में भी बराबरी है।

(५) परमेश्वर के विषय में उदात्त और योग्य कल्पना लोगों के मन में भर देने का श्रेय भी इन्हीं संतजनों को है। परमेश्वर के विषय में ईसाइयों और आर्य लोगों की कल्पना में बड़ा अन्तर है। वह ईश्वर प्रमादियों को दंड देने वाला है, यह ईसाइयों की कल्पना है पर हमारे यहां उसका स्वरूप मा बाप, भाई बन्धु इत्यादि और न्याय और दंड करने के समय भी इन्हीं सम्बन्धों की दृष्टि से प्रीति रखनेवाला समझा जाता है। इन सन्तजनों के उपदेशों में यही कल्पना है और लोगों के अनुभव में जगह २ पर दिखाई देता है। कि ईश्वर दयालु है, वह प्रेमशील है, वह भक्तों के संकट दूर करने को दौड़कर आता है, उनके साथ खाता है, बोलता है। कर्मोपासक ब्राह्मणों की कल्पना में भी परमेश्वर का स्वरूप इतना स्नेहमय नहीं है।

(६) ईश्वरप्राप्ति के अनेक मार्ग थे और हैं पर भक्तिमार्ग के समान सुलभ दूसरा मार्ग नहीं है। इससे लोगों में एक तरह की एकता उत्पन्न होती है। इस भक्ति के जोर पर महाराष्ट्र संतों ने लोगों को सन्मार्ग दिखलाया। संसार से कष्ट और चिन्ताओं से लोगों की रक्षा करने के लिए एकान्तवास सेवन करने से राष्ट्र को जो दुर्बलता प्राप्त होती है उसे दूर करने के लिये संसार का सब काम करते हुए भी परमार्थसाधन का सच्चा मार्ग इन सन्तों ने लोगों को दिखलाया और इस प्रकार राष्ट्र को लाभ पहुंचा।

(७) यूरोप में जिस प्रकार मूर्तिपूजा की पद्धति नष्ट हुई, उसी प्रकार थोड़ा बहुत वहां भी हुआ पर यहां पर मूर्तियां भंग नहीं हुईं। किसी भी देवता को भजने से काम चल सकता है क्योंकि वह एक ही परमेश्वर के रूप है, ऐसा समझ प्रत्येक अपने उपास्य देवता की भक्ति करता था। मूर्तिपूजा का आजकल जो निन्दनीय अर्थ होता है, उस अर्थ में वे मूर्तिपूजक नहीं थे। धर्म के नाम से बलि आदि देने की बातों का उन सन्तों ने अत्यन्त निषेध किया है। सब देवता एक ही परमेश्वर के स्वरूप हैं इस कारण किसी की भी निन्दा करना वे अयोग्य समझते थे। परन्तु किसी भी देवता में दृढ़ श्रद्धा रहने से ही महत्कृत्य हो सकते हैं, इसलिए मूर्ति में विश्वास रखना ईश्वरप्राप्ति का एक मार्ग है, इसी अर्थ से वे मूर्तिपूजक कहला सकते हैं।

संतजनों के उद्योगों का परिणाम यहां दिखाया जाता है। इस प्रकार सन्तजनों ने ऐसी शिक्षा देकर राष्ट्रोन्नति का एक मुख्य अंग तैयार किया। परस्पर जातियों का तीव्रद्वेष शान्त हुआ। ब्राह्मणों के समान शूद्रों को भी सामाजिक उन्नति करने और तत्वज्ञान प्राप्त करने के लिये अवसर प्राप्त हुआ। सांसारिक कर्तव्य में स्त्रियों को

---

* आजकल सारे हिन्दुस्थान में यह स्थिति हो गई है। लेखक।

श्मशानभूमिमें मि० गोखले.

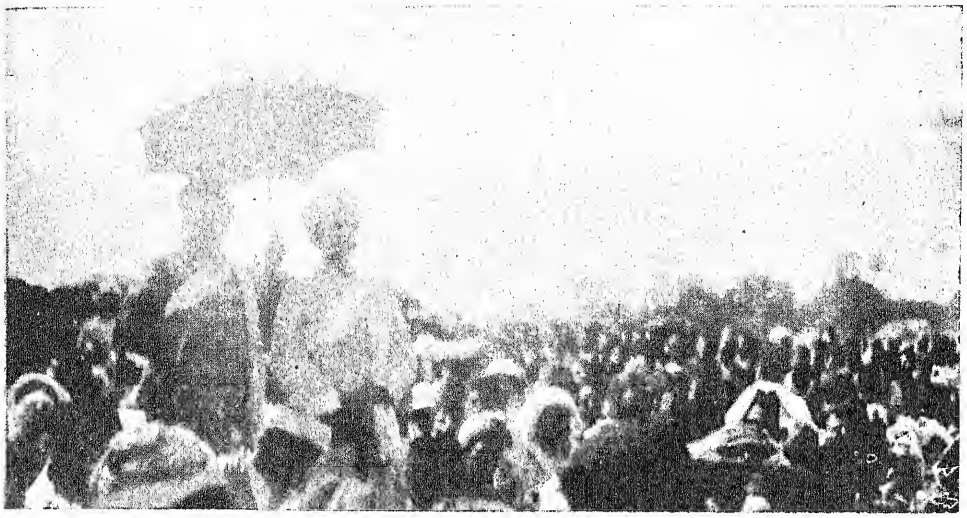

डाक्टर भांडारकर उनकी देशसेवाओंका गुणगान कर रहे है.

मि० तिलक लोगोंसे मि० गोखलेका अनुकरण करो ऐसा कह रहे हैं.

The Bombay Art Printing Works, Fort.

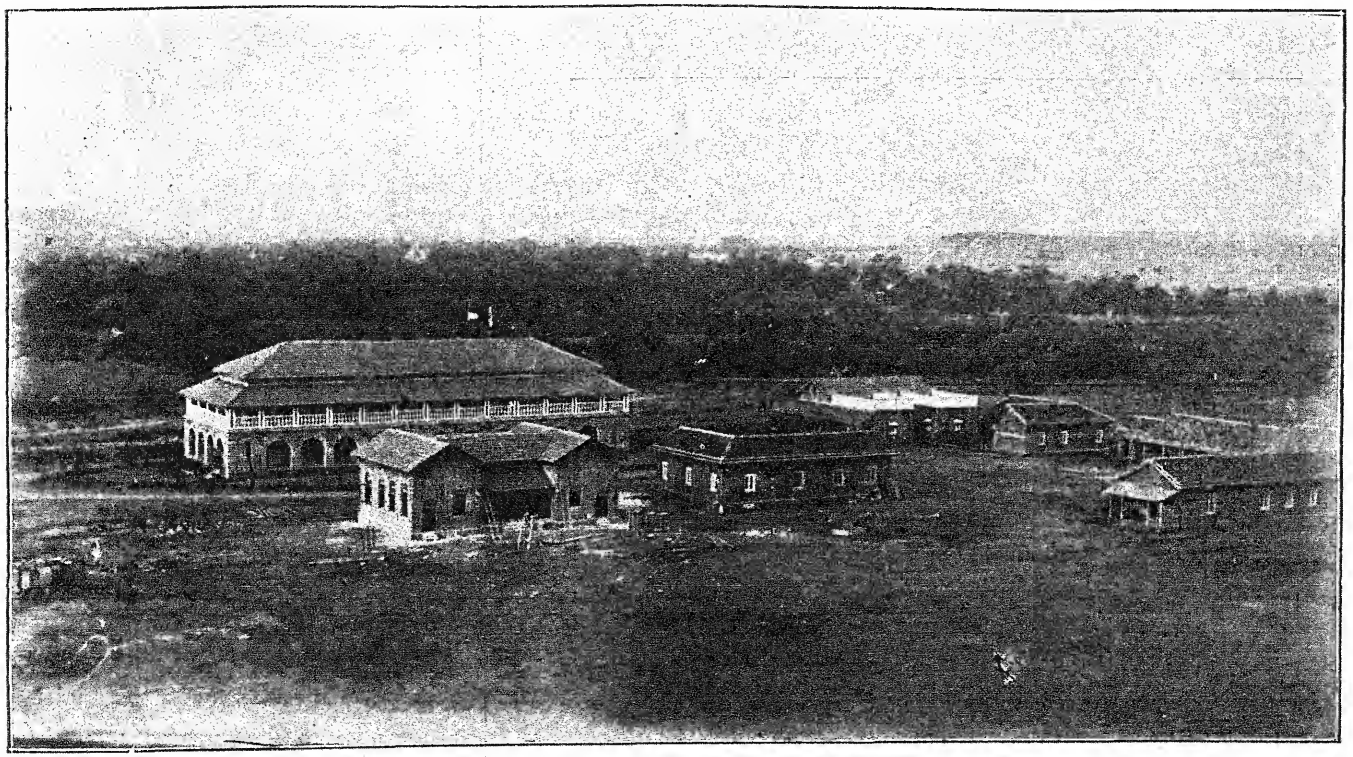

मि० गोखले की सर्वेंटस ऑफ इंडिया सोसाइटीका भवन पूना.

The Bombay Art Printing Works, Fort.

प्रधानता प्राप्त हुई और कौटुम्बिक व्यवहार पवित्र होने लगा। यह राष्ट्र परोपकारशील, सहनशील और आपस में मेल करने के योग्य बन चला। जप, तप, यज्ञ, योग योगाभ्यास आदि बातों में लोगों के समय और शक्ति का जो व्यय होता था वह बन्द होने लगा। विचार और आचार का विरोध कम होने लगा। संन्यासवृत्ति धारण करने के समान लोग अपने सांसारिक कर्तव्यों की ओर पूर्ण ध्यान न देते थे और ऐहिक सुख के विषय में बेपरवाह होते चले गये। यह दोष इन सन्तों के उपदेशों से दूर होगया। सांसारिक कर्तव्य करते हुए भी अपना और दूसरे का हित साधना यही उत्तम धर्म, यही पुरुषार्थ और यही जन्म की सार्थकता है ऐसी लोगों की प्रवृत्ति हो चली और इस कारण स्वाभिमान उत्पन्न होने लगा। वे विद्या का और पांडित्य का जो निरर्थक शोर मचाया था इसका प्रतीकार हुआ। सारांश स्त्री, पुरुष, सब जाति और श्रेणी के लोग एक दिल से काम करने लगे, इस कारण स्वराज्य प्राप्त करने की तैयारी धड़ाके से होने लगी। इसी कारण शिवाजी को स्वराज्य स्थापन करने की शक्ति प्राप्त हुई। एक ही मनुष्य कोई काम करने योग्य हो और उसके साथ काम करने के लायक दूसरे न हों तो उसकी असामान्य शक्ति का कुछ उपयोग नहीं होता। बल्कि सब साधन ठीक होने पर उनका उपयोग करने-वाला कोई न कोई जन्म ही जाता है। यह कहावत बहुत कुछ सत्य है कि महाराष्ट्रों के उदय के समय अगर शिवाजी न जन्मे होते तो कोई अन्य इस बात के लिये आगे आही जाता। परन्तु शिवाजी ने इन साधनों का पूरा उपयोग किया, यह बात ध्यान रखने योग्य है।

यह सब पढ़ कर यदि कोई पूछे कि इस धार्मिक उन्नति का मतलब क्या था तो उन्हें हम यही उत्तर देंगे कि इतिहास क्या वस्तु है, यह आप नहीं समझते। सामाजिक और राजकीय उन्नति का धार्मिक उन्नति से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। शरीर की जब उन्नति होती है तब केवल हाथ किंवा केवल पांव किंवा केवल छाती किंवा केवल गले या किसी एक अवयव की पुष्टि नहीं हो सकती। शरीर की उन्नति का यही अर्थ है कि सब अंग समान उन्नत हों। अगर एक ही अंग किसी कारण से अधिक बलवान हो तो यही कहना होगा कि शरीर पुष्ट होने के बदले दुर्बल हुआ क्योंकि एक अंग अधिक बलिष्ट होने से दूसरे अंग शिथिल पड़ जाते हैं और वे रोगी हो जाते हैं। उनके रोगी होने से शरीर रोगी हो जाता है और उन्नत अंग भी कमज़ोर पड़ जाता है ठीक यही बात सामाजिक, राजकीय और धार्मिक उन्नतियों के पक्ष में है। जहां तक हमें इतिहास से ज्ञात हुआ है, हमें यही पता लगता है कि धार्मिक उन्नति का राजकीय उन्नति से बड़ा भारी सम्बन्ध रहा है। यह एक ऐतिहासिक बात है और तात्विक दृष्टि से प्रमाणित है, इसलिए इसमें सन्देह करने का कोई कारण नहीं है।

कुछ लोग कहते हैं कि शिवाजी के कार्य से इस धार्मिक उन्नति का कार्यकारण का कोई सम्बन्ध नहीं था। इन लोगों के कहने का यही सारांश है कि शिवाजी ने अपना कार्य आप ही किया, उसमें किसी से न सहायता मिली, न उन्होंने ली। इस विषय का विचार हम आगे चलकर विशेष रूप से करेंगे। यहां पर इतना बतला देना आवश्यक है कि इन सन्तों के द्वारा और उनके उपदेशों और कविताओं से उस समय उन्नति हुई और आज भी हो रही है। यदि उनकी कविताओं से, आदर्श से, उपदेशों से केवल धार्मिक और नैतिक ही उन्नति हुई हो यह मान लिया जाय तो भी बहुत है क्योंकि ऊपर जैसा बतला चुके हैं मनुष्य स्वतन्त्र रूप से विचार करने लग गये, उनका आचरण शुद्ध होने लगा और वे सच्चे धर्म का निष्ठापूर्वक

पालन करने लगे। ऐसा करना कोई साधारण बात नहीं है। वही शुद्ध आचरण सब जगह मिलेगा और वही निष्ठा की शक्ति सब जगह बनी रहेगी। यह बात ही दूसरी है कि ये शक्तियां चाहे जिस मार्ग से प्राप्त हुई हों। इस शक्ति का आप चाहे जिस जगह उपयोग कर लीजिये। यह शक्ति इन सन्तों ने अत्यन्त की और उसका उपयोग शिवा जी ने राजकीय उन्नति की ओर किया इतना भी मान लिया जाय तो भी बहुत है। ऐसा अगर न मानें तो यही कहना पड़ेगा कि शिवाजी एक बागी था, और उसने लोगों को बागी बनाया, और चार दिन धूमधाम कर चला गया। पर यह बात ऐतिहासिक दृष्टि से असत्य है, और इसी कारण हम आज शिवाजी को अद्वितीय योग्य पुरुष मानते हैं। बिना इस धार्मिक उन्नति के महाराष्ट्र के इतिहास का कोई अर्थ ही नहीं है। इसलिए जो ऊपर लिखे हुए आक्षेप करें उन्हें चाहिये कि वे दुनियां का पुराने और नये सब इतिहासों का अध्ययन करें और फिर कुछ कहने की कृपा करें।

अब यदि कोई कहे कि "यह बात तो ठीक है पर शिवाजी की योग्यता का इससे क्या सम्बन्ध है तो इस प्रवाद का भी समाधान किया जावेगा।"

नौहये१ वफ़ात२ मि० गोपाल कृष्ण गोखले।

[लेखक—श्रीयुत ब्रजनारायण चकबस्त।]

(१)

लरज़ रहा था वतन जिस ख़याल के डर से।
वह आज ख़ून रुलाता है दीदए तर३ से॥
सदायें४ आती हैं फल फूल और पत्थर से।
ज़मीं पै ताज गिरा क़ौमे हिन्द के सर से॥
हबीब५ क़ौम का दुनिया से यों रवाना हुआ।
ज़मीं उलट गई क्या मुनक़लिब६ ज़माना हुआ॥

(२)

बढ़ी हुई थी नहूसत ज़वाले फहम७ की।
तेरे ज़हूर से तक़दीर क़ौम की चमकी॥
नज़र हक़ीर थी हिन्दोस्तां पै आलम की।
अजीब शय थी मगर रोशनी तेरे दम की॥
तुझी को मुल्क में रौशन दमाग़ समझे थे।
तुझे ग़रीब के घर का चिराग़ समझे थे॥

(३)

वतन को तूने सम्हारा किस आबो ताब के साथ।
सहर८ का नूर बढ़ै जैसे आफ़ताब के साथ॥
चुने रिफ़ाहे९ के गुल हुस्ने१० इन्तिख़ाब११ के साथ
शबाब१२ क़ौम का चमका तेरे शबाब के साथ॥
जो आज नश्वोनुमा१३ का नया ज़माना है।
ये इनक़िलाब तेरी उम्र का फ़िसाना१४ है॥

(४)

रहा मिज़ाज में सौदाए क़ौम खू१५ होकर।
वतन का इश्क रहा दिल की आरज़ू होकर॥
बदन में जान रही बक़फ़े आबरू होकर।
रगों में अश्के मुहब्बत रहे लहू होकर॥
ख़ुदा के हुक्म से जब आब औ१६ गिल१७ बना तेरा
किसी शहीद की मिट्टी से दिल बना तेरा॥

---

१ गुणावली। २ मृत्यु। ३ तर आंखों से। ४ आवाज। ५ दोस्त। ६ उलट पलट। ७ समझ। ८ सुबह। ९ जलाई। १० खूबसूरती से। ११ चुनना। १२ यौवन। १३ उन्नति। १४ किस्सा। १५ आदत। १६ पानी। १७ मिट्टी।

(५)

वतन की जान पै क्या २ तबाहियां आईं।
उमड़ उमड़ के जहालत की बदलियां आईं॥
चिराग़े अम्न बुझाने को आँधियां आईं।
दिलों में आग लगाने को बिजलियां आईं॥
इस इन्तिसार१८ में जिस नूर का सहारा था।
उफ़क़१९ पै क़ौम के वो एकही सितारा था॥

(६)

हदोसे२० क़ौम बनी थी तेरे ज़बां के लिये।
जबां मिली थी मुहब्बत की दास्तां के लिये॥
ख़ुदा ने तुझको पयम्बर२१ किया यहां के लिये।
कि तेरे हाथ में न कूस२२ था अज़ां२३ के लिये॥
वतन की ख़ाक तेरी बारगाहे२४ आला है।
हमें यही नया मसजिद नया शिवाला है॥

(७)

ग़रीब हिन्द ने तनहा नहीं ये दाग़ सहा।
वतन से दूर भी तूफ़ाने रंज ग़म का उठा॥
हबीब क्या हैं हरीफ़ों ने ये ज़बां से कहा।
सफ़ीरे२५ क़ौम जिगरबन्दे२६ सलतनत न रहा॥
पयाम२७ शह२८ ने दिया रस्मे ताज़ियत२९ के लिये
के तू सितून था ऐवान३० सलतनत के लिये॥

(८)

दिलों पै नक़्श हैं अब तक तेरे ज़बां के सुख़न३१।
हमारी राह में गोया चिराग़ हैं रौशन॥
फ़क़ीर थे जो तेरे दर के ख़ादिमाने वतन।
उन्हें नसीब कहां होगा अब तेरा दामन॥
तेरे आलम३२ में वो इस तरह जान खोते हैं।
कि जैसे बाप से छुटकर यतीम३३ रोते हैं॥

(९)

अजल३४ के दाम में आना है यों तो आलम को।
मगर ये दिल नहीं तैयार तेरे मातम को॥
पहाड़ कहते हैं दुनिया में ऐसे ही ग़म को।
मिटा के तुझको अजल ने मिटा दिया हमको॥
जनाज़ा हिन्द का दर से तेरे निकलता है।
सुहाग क़ौम का तेरी चिता में जलता है॥

(१०)

रहैगा रंज ज़माने में यादगार तेरा।
वह कौन दिल है कि जिसमें नहीं मज़ार३५ तेरा॥
जो कल रक़ीब३६ था है आज सोगवार तेरा।
ख़ुदा के सामने है मुल्क शर्मसार तेरा॥
पली है क़ौम तेरे साया ए करम३७ के तले।
हमें नसीब थी जन्नत३८ तेरे क़दम के तले॥

"हिन्दुस्थानी"

---

१८ उन्मेद। १९ आसमान का किनारा। २० पवित्र पुस्तक। २१ पथप्रदर्शक। २२ शंख। २३ मुनादी। २४ पूजा का स्थान। २५ नेता। २६ हृदय को धैर्य देनेवाला। २७ संदेश। २८ बादशाह। २९ स्वागत। ३० महल। ३१ बात। ३२ शोक। ३३ अनाथ। ३४ मौत। ३५ समाधिस्थान। ३६ दुश्मन। ३७ कृपा। ३८ स्वर्ग।

भारत-भारती।

[लेखक—श्रीयुत उद्भट।]

गताङ्क की पूर्ति।

भाषा-दोष।

दुष्ट और निरर्थक प्रयोग।

वाक्य रचना कहीं कहीं बिलकुल बेढंगी और बेमुहावरे है। अतीत खंड की बातों को आपने वर्त्तमान् कालिक क्रियाओं द्वारा वर्णन किया है और ऐसा करना ठीक भी है। पर सर्वनामों के प्रयोग में वर्त्तमान् का कुछ भी ध्यान नहीं रक्खा गया है, जैसे—

(१५१) दानी बहुत हैं किन्तु याचक
अल्प हैं उस काल में।

(१५६) देखो न, उनको देख कर
होती सुरों की भ्रान्ति है।

इन उदाहरणों में 'उस' और 'उनको' के स्थान पर 'इस' और 'इनको' होना चाहिये। ऐसा न होने से दृश्य की उपस्थिति में अन्तर पड़ता है।

कुछ और भी नमूने नीचे दिये जाते हैं—

(१४) यद्यपि हमें इतिहास अपना
प्राप्त पूरा है नहीं।
हम कौन थे इस ज्ञान को
फिर भी अधूरा है नहीं॥

(२६) पहुंचे जहां वे अज्ञता का
द्वार मानो रुक गया।

(१८५) मरते नहीं वह मौत वे
जो फिर उन्हें मरना पड़े।
करते नहीं वह काम उनको
नाम जो धरना पड़े॥

(६३) कहना हमारा बल यही था
विघ्न और विराम से।
करके हटेंगे हम कि अब
मर के हटेंगे काम से॥

(१६१) पतिदेव में मति, गति, तथा
दृढ़ हो हमारी रति सदा।

(१६२) हैं गेह में वे शक्तिरूपा
देह में सुकुमारियाँ।

(१६२) हमने बिगड़ कर भी बनाए,
जन्म के बिगड़े हुए।
मरते हुए भी हैं जगाए
मृतक तुल्य पड़े हुए॥
गिरते हुए भी दूसरों को
हम चढ़ाते ही रहे।
घटते हुए भी दूसरों को
हम बढ़ाते ही रहे॥

(१६७) जो सर्वदा करते हमों की
भांति उनका त्राण हैं।

(८७) मस्तक न लेवेंडर बिना
अब मस्त होता है अहो।

(४१) गोबर उठाती, थापती हैं
भोगती आयास वे।

(५१) है वायु कैसा चल रहा
इसका न कुछ भी ध्यान है।

(६२) दुर्बल हुए हम आज यों
तनु-भार भी झिलता नहीं।

(५४) पर चित्त को वे दीन जन
किस भाँति बहलाया करें।

क्या आँसुओं से ही उसे
वे नित्य नहलाया करें ॥

(७७) सब ओर क्रन्दन हो रहा है,
क्लेश को भी क्लेश है।

(८६) पर हाय! काले भाल पर
लाली कभी चढ़ती नहीं।

(११८) कल कंठियाँ गुंजारतीं
उनके अतुल आवास हैं।

(१४) 'ज्ञान को' के स्थान पर 'ज्ञान के लिए' चाहिये। क्रियापद के आगे तो 'को' इस अर्थ में लगता है पर संज्ञा के आगे नहीं। (२६) द्वार बंद होता है, कोई प्रवाह नहीं है कि रुके। 'द्वार रुकना' किससे आपने सुना? (१८५) 'उनको'? किनको? अपने आप कोई अपना नाम नहीं धरता, नाम धरते हैं दूसरे। दोनों चरणों में 'जो' का प्रयोग अशुद्ध है। यदि पहले में यह कहा जाय कि 'मौत' के साथ 'मरना' का सकर्मक प्रयोग है (जैसा 'कुत्ते की मौत मरना' में) तो भी 'मरनी पड़े' होना चाहिये था। पर दूसरे चरण के "नाम जो धरना पड़े" में भी 'जो' को रख कर सदोषता अच्छी तरह स्पष्ट कर दी गई है यदि 'जो' को संयोजक 'कि' के स्थान पर मानो तो 'वह' के स्थान पर 'ऐसा' चाहिये। 'जो' के स्थान पर 'जिससे' होता तो ठीक होता (६३) 'विराम' शब्द का प्रयोग रुकावट के अर्थ में बिलकुल ग़लत है। 'विराम' इच्छापूर्वक लिया जाता है और रुकावट न चाहने पर भी आ पड़ती है। (१६१) 'गतिदृढ़' होना कैसा? (१६२) 'देह में सुकुमारियाँ' क्या? जिस प्रकार 'शरीर से अशक्त वा बलवान्' बोला जाता है उसी प्रकार 'देह से सुकुमार' यदि कहा जाता तो किसी प्रकार खप भी सकता था। वे "देह में सुकुमार हैं" कोई मुहाविरा नहीं। (१९२) 'मरते हुए', 'गिरते हुए', 'घटते हुए' में से किसी एक के पहले भी 'आप' न आने से यह अर्थ हो जाता है कि 'गिरते हुए' 'मरते हुए' 'घटते हुए' वाक्य भी दूसरों ही के लिए कहे गए हैं। (१६७) यहाँ पर 'रक्षा' के स्थान पर 'त्राण' शब्द का व्यवहार अनुपयुक्त है। 'त्राण' शब्द हिन्दी भाषा में आपत्ति व कष्ट की उपस्थिति के सम्बन्ध में ही बोला जाता है, पर 'रक्षा' शब्द का प्रयोग आपत्ति वा कष्ट के अभाव में भी केवल संभावना के विचार से किया जाता है। 'वे दिन रात हमारा त्राण करते हैं। ऐसा कोई नहीं बोलता' पर 'इस आपत्ति से त्राण करो' सब बोलते हैं। रोग दूर करना दूसरी बात है और रोग न होने देना दूसरी बात। संस्कृत के 'पादत्राण' और 'अंगुलित्राण' आदि को देख हिन्दी में 'त्राण' का दुरुपयोग करना ठीक नहीं। (८७) 'मस्तक मस्त होना' कोई मुहाविरा नहीं। मन मस्त होता है। माथा ऊँचा और नीचा हो सकता है मस्त नहीं हो सकता। (४४) 'आयास भोगना' नहीं 'करना' या उठाना बोला जाता है। (५१) 'कैसा समय वा ज़माना है' के लिए 'कैसी हवा चली है' बोला जाता है। पूरब में बयार भी बोलते हैं (जैसी बहै बयार पीठ तब तैसी दीजै। 'हवा' के स्थान पर उसके और पर्य्याय रखने से यह अभिप्राय नहीं निकल सकता। "जब जैसा प्रभंजन चले, पवन चले, मारुत चले," कहकर "जब जैसा समय हो" का अर्थ नहीं निकल सकता। (६२) 'भार भी झिलता नहीं'। 'झेला जाना' बोला जाता है 'झिलना' नहीं। (५४) आँसुओं से शरीर नहलाया जाता है चित्त नहीं, चित्त के उद्वेग से जो आँसू बाहर निकलते हैं वे फिर घुसकर चित्त में नहीं जाते। (७७) 'क्लेश को भी क्लेश है! वाह क्या बात है। 'लज्जा को भी लज्जा आती है' यद्यपि यही उक्ति है पर उर्दू कवियों की कृपा से बोलचाल में आ गई है, पर उसे देख यदि कहा जाय कि 'क्रोध को भी क्रोध आता है', 'भय को भी भय होता है' तो उपहास ही होगा। नई उक्तियों के चमत्कार के अभाव में आप पुरानी उक्तियों का पिष्टपेषण करने चलते हैं सो भी नहीं बनता। सोचने की बात है कि यदि क्लेश

को भी क्लेश होगा तो वह रहेगा क्यों कर। पर जिसे केवल शब्दों का जोड़ मिलाना है उसको ऐसे सोच विचार से क्या सम्बन्ध? (८६) 'काले भाल पर लाली' नहीं चढ़ती यह आपही के मुंह से सुना है। 'काले मुंह' पर 'लाला नहीं चढ़ती काले भाल पर बराबर चढ़ती है, गंगा के घाटों पर जाकर देख आइए काले मस्तकों पर रोली कैसी चढ़ती है। 'काले मुंह पर लाली नहीं चढ़ती' इस उक्ति में जो चमत्कार है वह मुहाविरे का है। पर मुहाविरे का चमत्कार तो आपने समझा नहीं उक्ति को लेने के लिए लपक पड़े (११८) 'आवास गुंजारती हैं'। 'घर' शब्द के आगे कभी कभी विभक्ति का लोप करते देख आपने 'आवास' के आगे भी उसका लोप कर दिया। पर जिस प्रकार 'उनके घर गए थे' कहा जा सकता है इसी प्रकार 'उनके आवास गए थे' या 'उनके निवास गए थे' नहीं कहा जा सकता।

विस्तार-भय से मैंने थोड़े से ही उदाहरण ऊपर दिखलाए हैं। इतने से पुस्तक की भाषा के गुण दोष का पता अच्छी तरह चल सकता है।

व्याकरण-दोष।

यद्यपि भाषादोष के अन्तर्गत व्याकरण के दोष भी बहुत से आगए हैं पर स्पष्टता के लिए थोड़े से अलग भी दिखा दिए जाते हैं—

(५४) थी दूसरों की आपदा-
हरणार्थ उनकी सम्पदा।

(१५५) निर्मल पवन जिसकी शिखा को
तनिक चञ्चल कर उठी।

होमाग्नि जल कर द्विज गृ ों में
पुण्य परिमल भर उठी॥

(६३ अर्त) था जो असम्भव भी उसे
सम्भव हुआ दिखला दिया॥

(७५) घृत और दुग्धाभाव से
दुर्बल हुए हम रो रहे॥

(७६) भारत न ऐसा है कि अब वह
और भी दुख सह सके।

(१२८) जीवन सफल-करणार्थ अब
उनमें अपव्यय बढ़ गया।

(२३२) कम कीर्ति अकबर की नहीं
सत्त्रासकों की ख्याति में।

वर्त० (२६) वह उर्वरा-बल भूमि का
कम हो गया है, क्यों न हो।

(क) क्या न विषयोत्कृष्टता
करती विचारोत्कृष्टता।

(ख) हम सामगान किया करे

(५४) समास के कारण 'की' के स्थान पर 'के' चाहिये। (१५५) 'कर उठी' क्या? 'करना' के साथ संयुक्त क्रिया के रूप में 'उठना' का प्रयोग नहीं होता। 'करना' ही क्या 'कहना', 'बोलना' आदि दो चार क्रियाओं को छोड़ और किसी सकर्मक क्रिया के साथ 'उठना' का प्रयोग संयुक्त रूप में नहीं होता। 'भरउठी' का प्रयोग तो और विलक्षण है। यदि 'भरना' को सकर्मक मानिये तो उसके साथ 'उठना' नहीं आसकता 'देना' आना चाहिये। 'उसने दवात में स्याही भर दी' के स्थान पर कोई कहे कि 'वह दवात स्याही भर उठी' तो लोग उसे क्या कहेंगे? यदि 'भर उठी' को अकर्मक मानें तो दो अशुद्धियां एक साथ होती हैं। एक तो वाक्य (जुमला) ही अधूरा रहता है क्योंकि 'होमाग्नि' कर्ता की कोई पूर्ण क्रिया ही नहीं रह जाती दूसरी अशुद्धि लिंग की होती है; 'परिमल' शब्द पुल्लिंग है, उसकी क्रिया 'भर उठी' कभी नहीं होगी 'भर उठा' होगी। सारांश यह कि ये दोनों प्रयोग नितान्त अशुद्ध हैं। (६३ अर्त) (७५ वर्त) 'सम्भव हुआ दिखला दिया', 'दुर्बल

हुए हम रो रहे' ये दोनों वाक्य अशुद्ध हैं। इस प्रकार के कृदंत बनाने में जो 'हुआ' लगाया जाता है वह क्रियापद के आगे लगाया जाता है संज्ञा व विशेषण के आगे नहीं, जैसे, होता हुआ, आता हुआ, जाता हुआ, मारता हुआ इत्यादि। कृदंत बनाने के लिए संज्ञा वा विशेषण के साथ 'हुआ' लगाना व्याकरण-विरुद्ध है। (७६) 'न' के स्थान पर 'नहीं' चाहिये। (१२८) सफलकरणार्थ अशुद्ध है सफलीकरणार्थ चाहिये। (२८२) 'सत्शासकों' के स्थान पर 'सच्छासकों' होना चाहिये। 'रुत्शासक' सन्धि के नियमों के विरुद्ध है। (२६) 'उर्वरा-बल' में कैसा समास है? (क) 'न' के स्थान पर नहीं चाहिये। (ख) 'किया करे' कहां की बोली है। "किया करते थे" होना चाहिये था।

अर्थासंगति।

असंगति दोष स्थान २ पर मिलता है। दो एक उदाहरण उसके भी देख लीजिये —

हँसते प्रथम जो पद्म हैं
तम-पंक में फँसते वही।

मुरझे पड़े रहते कुमुद
जो अन्त में हँसते वही॥

'प्रथम' और 'अन्त' शब्दों का प्रयोग करके लेखक ने इन दोनों पंक्तियों का अर्थ चौपट कर दिया। 'प्रथम' शब्द अपने से पूर्ववर्ती काल में अवस्थान्तर का निषेध करता है और 'अन्त' शब्द अपने से परवर्ती आगामी काल में अवस्थान्तर का निषेध करता है। "हँसते प्रथम जो पद्म हैं" से यह सूचित होता है कि हँसने के पहले कमल अँधेरे में कभी नहीं पड़े थे और "कुमुद अन्त में हँसते हैं" से यह व्यंजित होता है कि हँसने के उपरान्त फिर कुमुद कभी न मुरझायँगे। 'प्रथम' और 'अन्त' के स्थान पर 'कभी' शब्द यदि होता तो अर्थ की यह दुर्दशा न होती। 'मुरझे' शब्द से भी अर्थ की हानि होती है 'सकुचे' होता तो अच्छा था।

कहीं कहीं वाक्यों का सम्बन्ध कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता, जैसे—

(७) होता समुन्नति के अनन्तर
सोच अवनति का नहीं।

हाँ सोच तो है जो किसी की
फिर न हो उन्नति कहीं॥

चिन्ता नहीं जो व्योम-विस्तृत
चन्द्रिका का ह्रास हो।

चिन्ता तभी है जब न उसका
फिर नवीन विकास हो॥

(८) है ठीक ऐसी ही दशा
हत-भाग्य भारतवर्ष की।

कब से इतिश्री हो चुकी
इसके अखिल उत्कर्ष की॥

"ठीक ऐसी ही दशा"। कैसी दशा? ऊपर ७वें पद्य में तो आपने किसी दशा का वर्णन नहीं किया है, एक साधारण सिद्धान्त कहा है। पुस्तक उलटने से असंगति का कई रूपों में दर्शन मिलता है। एक और उदाहरण देकर हम बस करते हैं—

आलस्य में अवकाश को
वे व्यर्थ ही खोतीं नहीं।

दिन क्या, निशा में भी कभी
पति से प्रथम सोतीं नहीं॥

इस "दिन क्या?" और "निशा में भी" का क्या मतलब? यही न कि दिन में सोना तो एक बहुत साधारण बात है, हाँ रात में सोना अलबत्ता बड़ी असाधारण बात है।

शब्दाडंबर वा पोलापन।

काव्य-रचना में जिन २ स्थलों पर ऐसे शब्द अधिकता से भरे मिलते हैं जिनसे भावों

की प्राप्ति, वृद्धि आदि कुछ भी नहीं होती वे स्थल भरतीं को पोले जान पड़ते हैं ऐसे शब्द यदि निकाल कर फेंक भी दिये जायँ तो भाव में कुछ अन्तर न पड़ेगा और यदि कुछ अन्तर भी पड़ेगा तो उसकी पूर्ति इतने थोड़े वा ऐसे छोटे शब्दों से हो जायगी जो बहुत कम स्थान छेकेंगे। इस दृष्टि से यदि पाठक देखेंगे तो गुप्त जी की रचनाओं में बहुत से पोले स्थान मिलेंगे; बहुत कम पद्य ऐसे ठोस वा चुस्त मिलेंगे जिनके एक शब्द को हटा देने से भाव खंडित हो जाय। यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि गुप्त जी की और रचनाओं की अपेक्षा भारत-भारती में पोलापन कम है जो कि शायद हाली की मँजी हुई भाषा की उच्छ-रणी का प्रसाद है। पर यह कम भी औरों के लिए बहुत ज़्यादा है। कुछ थोड़े से उदाहरण नीचे दिये जाते हैं जिनके रेखांकित शब्द आडंबर मात्र हैं। ऐसे शब्दों को निकाल कर या तो स्थान ख़ाला रक्खा जा सकता है अथवा उसमें छोटे या थोड़े शब्द रक्खे जा सकते हैं।

(१०) अनुकूल शोभामूल सुरभित
फूल वे कुम्हला गये।

(३०) सत्कार्यभूषण आर्यगण
जितने यहां पर हैं हुये।

(३५) जो धीरता के, वीरता के
प्रौढ़तम पालक हुये।

(८६) वे ज्ञानगरिमागार हैं
विज्ञान के भांडार हैं।

(१०२) है आजकल की डाकुरी
जिससे महामहिमामयी।

(११८) कलकंठियाँ गुंजारतीं
उनके अतुल आवास हैं।

(१४८) उत्साहपूर्वक दे रहा जो
स्वास्थ्य वा दीर्घायु है।
कैसे कहें कैसा मनोरम
उस समय का वायु है॥

(११८) दर्शन-विलम्बाकुल दृगों को
हाय ले जाते कहाँ।

(२४०) साद्यन्तसर्व सतीत्व-शिक्षा
विश्व में मिलती यहीं।

उपसर्गों की भरमार से बहुत से शब्दों का हिन्दीपन निकल गया है। प्रपूर्ण, समुज्वल, समुन्नति, विनिर्मित, परिपुष्टता ऐसे शब्द आव-श्यकता से अधिक जगह छेंके हुए हैं। प्रौढ़त्व, बृहत्व, दौरात्म्य, कौशल्य, लोख्य, विषयोत्कृष्टता, विचारोत्कृष्टता ऐसे भीमकाय शब्दों से पद्यों की भयंकरता और भी बढ़ गई है। 'सु' का पुछल्ला बहुत से शब्दों में लगा हुआ है, जैसे—

(१२१) आती सुचेतनता जिन्हें
सुन कर जड़ों में भी, अहो!

(१७५) पर यह सरल संगीत उसका
फिर यहाँ सुस्पष्ट हो।

(६१) जब के सुचिह्न अमेरिका में
हैं हमारे मिल रहे।

इसी प्रकार सुज्ञान, सुस्थान, सुबसुधैव कुटुंबकम्, 'सत्य प्रतिष्ठायाँ क्रिया सु फलाश्रयत्वं' आदि भी समझ लीजिये। 'अहो!' के मारे भी नाकों दम हो जाता है। 'सर्वथा' भी पादपूर्ति की एक ख़ासी सामग्री है।

भाषा पर अनधिकार।

जिस भाषा में कोई पुस्तक लिखने चले उस पर उसका पूर्ण अधिकार होना चाहिये। भारत भारती के कर्त्ता के अधिकार का विस्तार कितना है इसका पता 'भाषा दोष' के अन्तर्गत दिए हुए

प्रयाग में स्वर्गवासी महात्मा गोखले का भस्मावसान ।

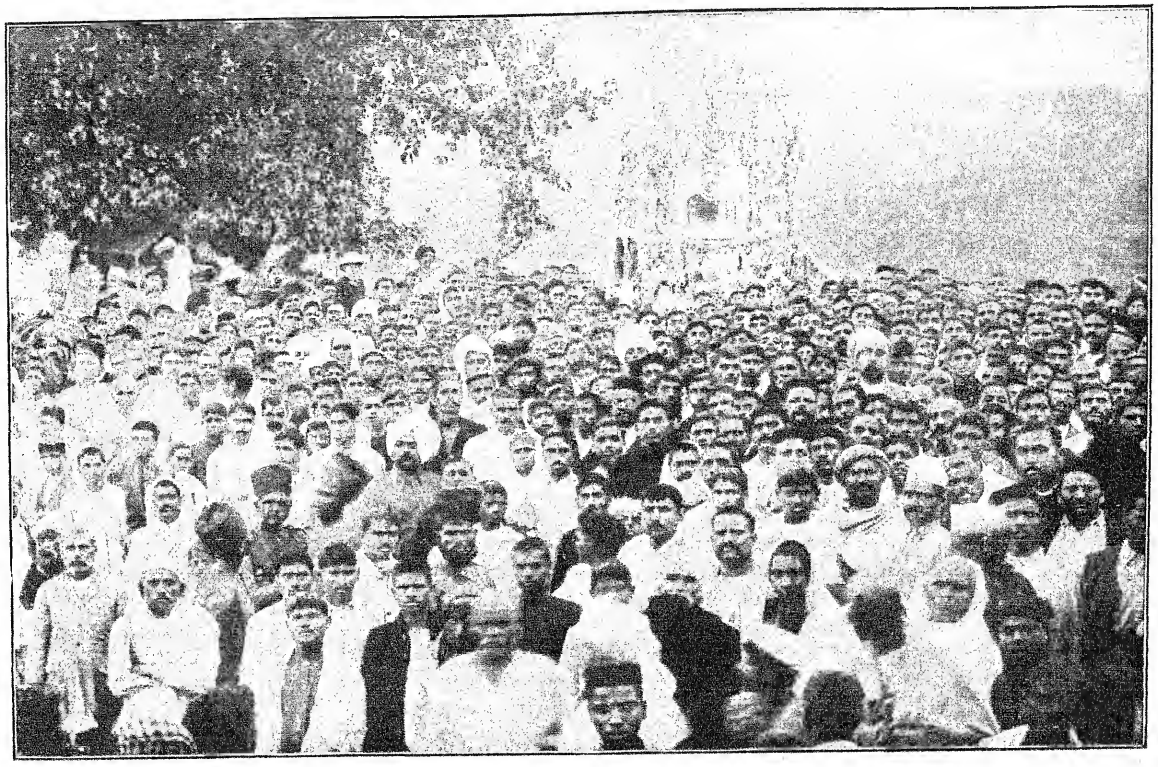

कहां है वह माता का लाल । कहां गया गोखले हमारा वह प्यारा गोपाल ॥
कहां शान्त अरविंद बदन वह, हा ! वह भाल विशाल । आशा पुष्प हमारा तोड़ा, हा ! हा !! निर्दय काल ॥

Allahabad Law Journal Press.

उदाहरणों से चल जाता है। पर थोड़ा यह भी तो देखिए कि ठेठ हिन्दी के शब्द उपयुक्त अवसरों पर गुप्त जी को उपस्थित हो सके हैं या नहीं यदि पद्यों को भाषा के विचार से देखिए तो बहुत से ऐसे अप्रचलित शब्द मिलेंगे जिनके स्थान पर हिन्दी के चलते हुए शब्द अधिक उपयुक्त होते पर आपको ऐसे शब्द नहीं मिले। यदि इसके उदाहरण देने चलें तो सारी पुस्तक ही उद्धृत करनी पड़े। एक नमूना देखिए।

(९०) हम दर्शनों का साम्य पहले
आज भी आगे धरो।

यहाँ 'साम्य' ऐसे घोर संस्कृत शब्द के स्थान पर हिन्दी का "जोड़" शब्द अच्छी तरह खप सकता था पर आपको न सूझा। "कृषि और कृषक" पर आपने कोई ३१ पद्य लिखे पर उन में 'कृषक' और 'कर्षक' को छोड़ 'किसान' शब्द भूलकर भी नहीं आया। जिसके पास स्वभाव-सिद्ध भाषा नहीं वह भला कविता कैसे लिख सकता है? कृत्रिमता से कहीं कविता का काम चलता है?

दूसरी बात यह है कि काव्य की पदावली गद्य की पदावली से कुछ भिन्न होती है। यह बात सभी भाषाओं में है। अंगरेज़ी भाषा में भी Poetic diction गद्य की शब्दावली से भिन्न होता है। यद्यपि "कोमलकान्त पदावली" से ही काव्यत्व की सिद्धि नहीं हो सकती पर साधन रूप में उसका ग्रहण आवश्यक है। गुप्त जी के सारे नाना छंदों में ढले हुए गद्य ही मालूम पड़ते हैं। कवि-सुलभ शब्दावली प्राचीन कवियों में तो पाई ही जाती है किन्तु उसका लोप नहीं हुआ है और वह आजकल भी पंडित श्रीधर पाठक और राय देवीप्रसाद पूर्ण की रचनाओं में पूर्ण रूपसे पाई जाती है। पर गुप्त जी के 'तथा, सर्वथा, किंवा, तथापि, तथैव, सर्वथैव' आदि को देख सचमुच यही धारणा होती है कि वे किसी सभा में पास किए हुए प्रस्ताव पढ़ रहे हैं।

विचारों की साधारणता।

'रस' के प्रसंग में हम दिखला चुके हैं कि 'भारत-भारती में उसी कोटि के विचार हैं जिस कोटि के साधारण बातचीत में नित्य प्रति आते हैं चिन्तन का सर्वथा अभाव पाया जाता है। चिन्तना के बिना भावों की उच्चता कहां से आ सकती है? यह चिन्तन कुछ तो उच्च कोटि की विचार-परम्परा के ग्रहण के अभ्यास पर और बहुत कुछ प्रतिभा पर निर्भर होता है। उच्च भाव उसे कहते हैं जो इतने ऊंचे पर रक्खा हो कि अन्तःकरण की सारी वृत्तियों को उसे पाने के लिए उचकना पड़े। सिद्धान्ता-वाक्यों के सूखे कथन में भावों की उच्चता नहीं पाई जाती। "अपने अशिक्षित भाइयों का प्रेम पूर्वक हित करो," "सब से प्रथम कर्त्तव्य है शिक्षा बढ़ाना देश में," "सच्चे प्रयत्न कभी हमारे व्यर्थ हो सकते नहीं" आदि लोकप्रचलित वाक्य कह कर ही कोई मनुष्य उच्च भाव का प्रकट करनेवाला नहीं कहा जा सकता। ये बातें उच्च भावों के द्वारा चित्त में जमाई जा सकती हैं पर ये स्वयं उच्च भाव नहीं हैं। अच्छा विषय हाथ में लेकर ही कोई उसपर अच्छे विचार नहीं प्रकट कर सकता। जिस प्रकार आपने पुस्तकारम्भ में पूछा कि "क्या न विषयोत्कृष्टता करती विचारोत्कृष्टता?" उसी प्रकार उसका उत्तर भी आपको प्राप्त कर लेना था।

यदि सिद्धान्त-वाक्य ही उच्चभाव के काव्य समझे जाते तो सब नीतिग्रन्थ काव्य हो जाते। यदि 'चाणक्यनीति उच्च भाव की कविता कही जा सकती हो तो 'भारत-भारती' भी है। जिन लोगों को 'भारत-भारती' में उच्च भाव दिखाई पड़े हैं वे उच्च भावों के परिचय से कोसों दूर हैं, उन्हों ने सूर और तुलसी के मर्म का नहीं

समझा है, वे शेक्सपियर, ब्राउनिंग और वर्ड्सवर्थ के काव्यों तथा कार्लाइल, रस्किन और एमर्सन के भावों से अपरिचित हैं। सूर और तुलसी ही की इन दो दो पंक्तियों में उच्च भावों के नमूने देखिए।

(१) मोहन माँग्यो अपनो रूप।
यहि ब्रज बसत अँचै तुम बैठी
ता बिनु तहां निरूप।—सूर

(गोपियों का वचन राधा प्रति उद्धव के समक्ष)

(२) रघुनाथ कृपा करि मोहू ओर चितैहौ।
.....
जो लघुतहि न मितैहौ॥—तुलसी।

भारत-भारती के प्रकाशित होने से जिस प्रकार वर्त्तमान कवियों को ऐसे पद्यबद्ध वाक्य उदाहरण के लिए सुलभ हुए हैं जो काव्य नहीं कहे जा सकते उसी प्रकार भविष्य के कवियों को भी चेतावनी मिली है कि यदि वे ऐसी ही शब्दमाला गूँथ सकते हैं जैसी कि 'भारत-भारती' में है तो वे व्यर्थ कष्ट स्वीकार न करें।

मि० गोखले का गुण ग्रान।

[लेखिका—श्रीमती सरोजनी नायडू।]

प्रसिद्ध भारतीय कवि श्रीमती सरोजिनी नायडू ने मि० गोखले का 'बम्बई क्रानीकल' में जो गुणगान किया है, उसका अनुवाद नीचे दिया जाता है:—

"मैं चाहता हूं कि मैं इतने निकट होता कि मैं स्वयं आकर आप से मिलता।.....मुझे विश्वास है कि आपका शोक गीतों द्वारा प्रगट होगा और ये गीत बने रहेंगे।' मि० गोखले के ये सुन्दर शब्द १२ फरवरी को लिखे गये थे और इनमें प्रत्यक्ष रूप से इस बात का कोई आभास नहीं था कि उनका अन्तिम समय भी इतने निकट है। यह पत्र मुझे मेरे स्वर्गीय पिता के शोकमय श्राद्ध के दिन मिला। थोड़े ही दिन बाद गोपाल कृष्ण गोखले चलते हुए और सारे देश ने इस दारुण विपत्ति और असहनीय हानि के लिये हार्दिक शोक प्रकट किया।

भारतवर्ष की सेवा करने में उन्होंने प्राणपण से जो उद्योग किया और जैसी वीरता दिखलाई उसके लिये अखबारों में बड़ी योग्यता पूर्वक, बड़े विस्तृत और सुन्दर रूप से उनका गुणगान हुआ है। जिसने भारतवर्ष के लिये ऐसा असीम स्वार्थत्याग किया, उसकी सेवा करने में जिसने इतना अधिक परिश्रम किया और उसकी सेवा करते हुए ही जिसकी ऐसी अकाल और दुःखदायक मृत्यु हुई, उस पुरुष को भारतवर्ष के हर नगर में और भारतवर्ष से सम्बन्ध रखनेवाले अत्यन्त दूर तक के स्थानों में सब श्रेणी और मतमतान्तर के लोगों ने और भिन्न भिन्न राजनैतिक पार्टियों ने एक होकर श्रद्धा और शोकप्रकाश का अन्तिम उपहार प्रदान किया है। उनके महत्वपूर्ण चरित्र की बातों को अधिक प्रकाशित करने या ऐसे देश-व्यापी शोक और कीर्ति के महत्व को बताने के

लिये मेरे तुच्छ शब्दों की आवश्यकता नहीं है। पर मेरा विश्वास है कि बड़े आदमी के कार्य और चरित्र का तबतक पूरा वर्णन नहीं हो सकता जब तक कि उसकी व्यक्तिगत बातों का चाहे वे छोटी और आकस्मिक ही क्यों न हों कुछ वर्णन न हो। इन व्यक्तिगत बातों से उसके हृदय के आन्तरिक गुणों का प्रकाश होता है। मि० गोखले ने राजनीतिज्ञ और समाज सुधारक के रूप में जो कार्य किया है उसका मैं इस संक्षिप्त वर्णन में उल्लेख नहीं करूँगी किन्तु गोखले ने साधारणतः मनुष्य के रूप में जैसा जीवन व्यतीत किया है और इन थोड़े से वर्षों में उन्हें जानने का मुझे जैसा विशेष अवसर मिला है मैं उसीका उल्लेख करूँगी।

घनिष्ठ मित्रता का आरम्भ।

मि० गोखले से मेरा व्यक्तिगत सम्बन्ध एक पत्र द्वारा स्थापित हुआ और एक पत्र द्वारा ही उसका अन्त हुआ। कलकत्ते में १९०६ की आल-इंडिया सोशल कानफरेन्स में स्त्रियों को शिक्षा देने का प्रस्ताव उपस्थित करने का भार मुझे दिया गया था और मेरी वक्तृता की कुछ बातों का उन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने शीघ्रता में मुझे बड़े प्रेम-पूर्ण वाक्य लिखे। मैं अपने को ऐसी उदार प्रशंसा के सर्वथा अयोग्य समझती हूं पर मैं उन्हें यहाँ इसलिए उद्धृत करने का साहस करती हूं कि इन्हीं से हमारे भविष्य सम्बन्ध का श्री गणेश हुआ। उन्होंने लिखा, "क्या मैं अत्यन्त सम्मान और सच्चे प्रेमपूर्वक आपको बधाई देने की स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकता हूं? आपकी वक्तृता में अत्यन्त ऊंची श्रेणी के बुद्धिमत्तापूर्ण विचार की अपेक्षा अधिक विशेषता थी।..... घड़ी भर के लिये हम सब यही समझते थे कि हम किसी उच्च लोक में हैं।"

इस प्रकार प्रेमपूर्ण परिचय होने के बाद हमारी उनकी घनिष्ठ मित्रता होगई और मैं इसे अपने जीवन के परम सौभाग्य की बातों में से समझने लगी और यद्यपि कभी २ थोड़े काल के लिये हमारा उनका गहरा मत-भेद हो जाता था पर हमारी मित्रता वैसेही सुन्दर बनी रही। कभी कभी किसी विषय पर बड़ी बुद्धिमत्ता के साथ हमारा उनका वादानु-वाद होता था और परस्पर मतभेद भी होता था। सब से बढ़कर विशेष बात यह थी कि मातृभूमि के लिये हमारे सामान्य प्रेम का बन्धन बड़ा दृढ़ था और कुछ काल के लिये केवल प्रेमपूर्ण पराधीनता का बन्धन रह गया जो बड़ा ही मर्मस्पर्शी और मधुर था। उनके कई सप्ताह तक विदेश में पीड़ित और दुःखित रहने की अवस्था में मैं भी उनको बहुत कम आराम दे सकी क्योंकि मेरा भी स्वास्थ्य अच्छा न था।

सन् १९०७ और १९११ के बीच में विशेष कर जब कभी मैं बम्बई जाती थी और मद्रास, पूना और देहली में भी कई अवसरों पर मुझे कई बार उनसे मिलने का सौभाग्य हुआ। हर बार मिलने के बाद उनके हृदय से निकले हुए प्रभा-वशाली और उपदेशपूर्ण शब्द मेरे हृदय पर इस प्रकार अंकित हो जाते थे कि मैं भी भारत-वर्ष की सेवा करने में अपने जीवन को उत्सर्ग करूं। उन अत्यन्त कार्यपूर्ण स्मरणीय वर्षों में भी जब उन्हें मेरी कविता या वक्तृता या मेरे किसी कार्य से प्रसन्नता होती अथवा मेरे बिगड़ते हुए स्वास्थ्य की उन्हें चिन्ता होती तो मुझे जब तब मेरा उत्साह बढ़ाने के लिये उन्हें एकाध प्रेमपूर्ण सँदेशा भेजने के लिये अवसर मिल जाता था।

चरित्र की जटिलता।

सन् १९१२ के आरम्भ में जब कलकत्ते में कुछ सप्ताह तक मैं अपने पिता के पास रही उसी समय हम लोगों में सच्ची मित्रता हुई।

समझा है, वे शेक्सपियर, ब्राउनिंग और वर्ड्सवर्थ के काव्यों तथा कार्लाइल, रस्किन और एमर्सन के भावों से अपरिचित हैं। सूर और तुलसी ही की इन दो दो पंक्तियों में उच्च भावों के नमूने देखिए।

(१) मोहन माँग्यो अपनो रूप।
यदि ब्रज बसत अँचे तुम बैठी
ता बिनु तहां निरूप।—सूर

(गोपियों का वचन राधा प्रति उद्धव के समक्ष)

(२) रघुनाथ कृपा करि मोहू ओर चितैहो।
.....
जो लघुतहि न भितैहो॥—तुलसी।

भारत-भारती के प्रकाशित होने से जिस प्रकार वर्त्तमान कवियों को ऐसे पद्यबद्ध वाक्य उदाहरण के लिए सुलभ हुए हैं जो काव्य नहीं कहे जा सकते उसी प्रकार भविष्य के कवियों को भी चेतावनी मिली है कि यदि वे ऐसी ही शब्दमाला गूँथ सकते हैं जैसी कि 'भारत-भारती' में है तो वे व्यर्थ कष्ट स्वीकार न करें।

मि० गोखले का गुण ग्रान।

[लेखिका—श्रीमती सरोजनी नायडू।]

प्रसिद्ध भारतीय कवि श्रीमती सरोजिनी नायडू ने मि० गोखले का 'बम्बई क्रानीकल' में जो गुणगान किया है, उसका अनुवाद नीचे दिया जाता है:—

"मैं चाहता हूं कि मैं इतने निकट होता कि मैं स्वयं आकर आप से मिलता।.....मुझे विश्वास है कि आपका शोक गीतों द्वारा प्रगट होगा और ये गीत बने रहेंगे।' मि० गोखले के ये सुन्दर शब्द १२ फरवरी को लिखे गये थे और इनमें प्रत्यक्ष रूप से इस बात का कोई आभास नहीं था कि उनका अन्तिम समय भी इतने निकट है। यह पत्र मुझे मेरे स्वर्गीय पिता के शोकमय श्राद्ध के दिन मिला। थोड़े ही दिन बाद गोपाल कृष्ण गोखले चलते हुए और सारे देश ने इस दारुण विपत्ति और असहनीय हानि के लिये हार्दिक शोक प्रकट किया।

भारतवर्ष की सेवा करने में उन्होंने प्राण-पण से जो उद्योग किया और जैसी वीरता दिखलाई उसके लिये अखबारों में बड़ी योग्यता पूर्वक, बड़े विस्तृत और सुन्दर रूप से उनका गुणगान हुआ है। जिसने भारतवर्ष के लिये ऐसा अलौकिक स्वार्थत्याग किया, उसकी सेवा करने में जिसने इतना अधिक परिश्रम किया और उसकी सेवा करते हुए ही जिसकी ऐसी अकाल और दुःखदायक मृत्यु हुई, उस पुरुष को भारतवर्ष के हर नगर में और भारतवर्ष से सम्बन्ध रखनेवाले अत्यन्त दूर तक के स्थानों में सब श्रेणी और मतमतान्तर के लोगों ने और भिन्न भिन्न राजनैतिक पार्टियों ने एक होकर श्रद्धा और शोकप्रकाश का अन्तिम उपहार प्रदान किया है। उनके महत्वपूर्ण चरित्र की बातों को अधिक प्रकाशित करने या ऐसे देश-व्यापी शोक और कीर्ति के महत्व को बताने के

लिये मेरे तुच्छ शब्दों की आवश्यकता नहीं है। पर मेरा विश्वास है कि बड़े आदमी के कार्य और चरित्र का तबतक पूरा वर्णन नहीं हो सकता जब तक कि उसकी व्यक्तिगत बातों का चाहे वे छोटी और आकस्मिक ही क्यों न हों कुछ वर्णन न हो। इन व्यक्तिगत बातों से उसके हृदय के आन्तरिक गुणों का प्रकाश होता है। मि० गोखले ने राजनीतिज्ञ और समाज सुधारक के रूप में जो कार्य किया है उसका मैं इस संक्षिप्त वर्णन में उल्लेख नहीं करूँगी किन्तु गोखले ने साधारणतः मनुष्य के रूप में जैसा जीवन व्यतीत किया है और इन थोड़े से वर्षों में उन्हें जानने का मुझे जैसा विशेष अवसर मिला है मैं उसीका उल्लेख करूँगी।

घनिष्ठ मित्रता का आरम्भ।

मि० गोखले से मेरा व्यक्तिगत सम्बन्ध एक पत्र द्वारा स्थापित हुआ और एक पत्र द्वारा ही उसका अन्त हुआ। कलकत्ते में १९०६ की आल-इंडिया सोशल कानफरेन्स में स्त्रियों को शिक्षा देने का प्रस्ताव उपस्थित करने का भार मुझे दिया गया था और मेरी वक्तृता की कुछ बातों का उन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने शीघ्रता में मुझे बड़े प्रेम-पूर्ण वाक्य लिखे। मैं अपने को ऐसी उदार प्रशंसा के सर्वथा अयोग्य समझती हूं पर मैं उन्हें यहाँ इसलिए उद्धृत करने का साहस करती हूं कि इन्हीं से हमारे भविष्य सम्बन्ध का भी गणेश हुआ। उन्होंने लिखा, "क्या मैं अत्यन्त सम्मान और अच्छे प्रेमपूर्वक आपको बधाई देने की स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकता हूं? आपकी वक्तृता में अत्यन्त ऊंची श्रेणी के बुद्धिमत्तापूर्ण विचार की अपेक्षा अधिक विशेषता थी।..... घड़ी भर के लिये हम सब यही समझते थे कि हम किसी उच्च लोक में हैं।"

इस प्रकार प्रेमपूर्ण परिचय होने के बाद हमारी उनकी घनिष्ठ मित्रता होगई और मैं इसे अपने जीवन के परम सौभाग्य की बातों में से समझने लगी और यद्यपि कभी २ थोड़े काल के लिये हमारा उनका गहरा मत-भेद हो जाता था पर हमारी मित्रता वैसेही सुन्दर बनी रही। कभी कभी किसी विषय पर बड़ी बुद्धिमत्ता के साथ हमारा उनका वादानु-वाद होता था और परस्पर मतभेद भी होता था। सब से बढ़कर विशेष बात यह थी कि मातृभूमि के लिये हमारे सामान्य प्रेम का बन्धन बड़ा दृढ़ था और कुछ काल के लिये केवल प्रेमपूर्ण पराधीनता का बन्धन रह गया जो बड़ा ही मर्मस्पर्शी और मधुर था। उनके कई सप्ताह तक विदेश में पीड़ित और दुःखित रहने की अवस्था में मैं भी उनको बहुत कम आराम दे सकी क्योंकि मेरा भी स्वास्थ्य अच्छा न था।

सन् १९०७ और १९११ के बीच में विशेष कर जब कभी मैं बम्बई जाती थी और मदरास, पूना और देहली में भी कई अवसरों पर मुझे कई बार उनसे मिलने का सौभाग्य हुआ। हर बार मिलने के बाद उनके हृदय से निकले हुए प्रभा-वशाली और उपदेशपूर्ण शब्द मेरे हृदय पर इस प्रकार अंकित हो जाते थे कि मैं भी भारत-वर्ष की सेवा करने में अपने जीवन को उत्सर्ग करूं। उन अत्यन्त कार्यपूर्ण स्मरणीय वर्षों में भी जब उन्हें मेरी कविता या वक्तृता या मेरे किसी कार्य से प्रसन्नता होती अथवा मेरे बिगड़ते हुए स्वास्थ्य की उन्हें चिन्ता होती तो मुझे जब तब मेरा उत्साह बढ़ाने के लिये उन्हें एकाध प्रेमपूर्ण सँदेशा भेजने के लिये अवसर मिल जाता था।

चरित्र की जटिलता।

सन् १९१२ के आरम्भ में जब कलकत्ते में कुछ सप्ताह तक मैं अपने पिता के पास रही उसी समय हम लोगों में सच्ची मित्रता हुई।

समझा है, वे शेक्सपियर, ब्राउनिंग और वर्ड्सवर्थ के काव्यों तथा कार्लाइल, रस्किन और एमर्सन के भावों से अपरिचित हैं। सूर और तुलसी ही की इन दो दो पंक्तियों में उच्च भावों के नमूने देखिए।

(१) मोहन माँग्यो अपनो रूप।
यहि ब्रज बसत अँचै तुम बैठी
ता बिनु तहां निरूप।—सूर

(गोपियों का वचन राधा प्रति उद्धव के समक्ष)

(२) रघुनाथ कृपा करि मोहू ओर चितैहौ।
.....
जो लघुतहि न भितैहौ॥—तुलसी।

भारत-भारती के प्रकाशित होने से जिस प्रकार वर्त्तमान कवियों को ऐसे पद्यबद्ध वाक्य उदाहरण के लिए सुलभ हुए हैं जो काव्य नहीं कहे जा सकते उसी प्रकार भविष्य के कवियों को भी चेतावनी मिली है कि यदि वे ऐसी ही शब्दमाला गूंथ सकते हैं जैसी कि 'भारत-भारती' में है तो वे व्यर्थ कष्ट स्वीकार न करें।

मि० गोखले का गुण ग्रान।

[लेखिका—श्रीमती सरोजनी नायडू।]

प्रसिद्ध भारतीय कवि श्रीमती सरोजिनी नायडू ने मि० गोखले का 'बम्बई क्रानीकल' में जो गुणगान किया है, उसका अनुवाद नीचे दिया जाता है:—

"मैं चाहता हूं कि मैं इतने निकट होता कि मैं स्वयं आकर आप से मिलता।.....मुझे विश्वास है कि आपका शोक गीतों द्वारा प्रगट होगा और ये गीत बने रहेंगे।' मि० गोखले के ये सुन्दर शब्द १२ फरवरी को लिखे गये थे और इनमें प्रत्यक्ष रूप से इस बात का कोई आभास नहीं था कि उनका अन्तिम समय भी इतने निकट है। यह पत्र मुझे मेरे स्वर्गीय पिता के शोकमय श्राद्ध के दिन मिला। थोड़े ही दिन बाद गोपाल कृष्ण गोखले चलते हुए और सारे देश ने इस दारुण विपत्ति और असहनीय हानि के लिये हार्दिक शोक प्रकट किया।

भारतवर्ष की सेवा करने में उन्होंने प्राण-पण से जो उद्योग किया और जैसी वीरता दिखलाई उसके लिये अखबारों में बड़ी योग्यता पूर्वक, बड़े विस्तृत और सुन्दर रूप से उनका गुणगान हुआ है। जिसने भारतवर्ष के लिये ऐसा अमीम स्वार्थत्याग किया, उसकी सेवा करने में जिसने इतना अधिक परिश्रम किया और उसकी सेवा करते हुए ही जिसकी ऐसी अकाल और दुःखदायक मृत्यु हुई, उस पुरुष को भारतवर्ष के हर नगर में और भारतवर्ष से सम्बन्ध रखनेवाले अत्यन्त दूर तक के स्थानों में सब श्रेणी और मतमतान्तर के लोगों ने और भिन्न भिन्न राजनैतिक पार्टियों ने एक होकर श्रद्धा और शोकप्रकाश का अन्तिम उपहार प्रदान किया है। उनके महत्वपूर्ण चरित्र की बातों को अधिक प्रकाशित करने या ऐसे देश-व्यापी शोक और कीर्ति के महत्व को बताने के

लिये मेरे तुच्छ शब्दों की आवश्यकता नहीं है। पर मेरा विश्वास है कि बड़े आदमी के कार्य और चरित्र का तबतक पूरा वर्णन नहीं हो सकता जब तक कि उसकी व्यक्तिगत बातों का चाहे वे छोटी और आकस्मिक ही क्यों न हों कुछ वर्णन न हो। इन व्यक्तिगत बातों से उसके हृदय के आन्तरिक गुणों का प्रकाश होता है। मि० गोखले ने राजनीतिज्ञ और समाज सुधारक के रूप में जो कार्य किया है उसका मैं इस संक्षिप्त वर्णन में उल्लेख नहीं करूँगी किन्तु गोखले ने साधारणतः मनुष्य के रूप में जैसा जीवन व्यतीत किया है और इन थोड़े से वर्षों में उन्हें जानने का मुझे जैसा विशेष अवसर मिला है मैं उसीका उल्लेख करूंगी।

घनिष्ठ मित्रता का आरम्भ।

मि० गोखले से मेरा व्यक्तिगत सम्बन्ध एक पत्र द्वारा स्थापित हुआ और एक पत्र द्वारा ही उसका अन्त हुआ। कलकत्ते के १९०६ की आल-इंडिया सोशल कानफरेन्स में स्त्रियों को शिक्षा देने का प्रस्ताव उपस्थित करने का भार मुझे दिया गया था और मेरी वक्तृता की कुछ बातों का उन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने शीघ्रता में मुझे बड़े प्रेम-पूर्ण वाक्य लिखे। मैं अपने को ऐसी उदार प्रशंसा के सर्वथा अयोग्य समझती हूं पर मैं उन्हें यहाँ इसलिए उद्धृत करने का साहस करती हूं कि इन्हीं से हमारे भविष्य सम्बन्ध का श्री गणेश हुआ। उन्होंने लिखा, "क्या मैं अत्यन्त सम्मान और सच्चे प्रेमपूर्वक आपको बधाई देने की स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकता हूं? आपकी वक्तृता में अत्यन्त ऊंची श्रेणी के बुद्धिमत्तापूर्ण विचार की अपेक्षा अधिक विशेषता थी।..... घड़ी भर के लिये हम सब यही समझते थे कि हम किसी उच्च लोक में हैं।"

इस प्रकार प्रेमपूर्ण परिचय होने के बाद हमारी उनकी घनिष्ठ मित्रता होगई और मैं इसे अपने जीवन के परम सौभाग्य की बातों में से समझने लगी और यद्यपि कभी २ थोड़े काल के लिये हमारा उनका गहरा मत-भेद हो जाता था पर हमारी मित्रता वैसेही सुन्दर बनी रही। कभी कभी किसी विषय पर बड़ी बुद्धिमत्ता के साथ हमारा उनका वादानु-वाद होता था और परस्पर मतभेद भी होता था। सब से बढ़कर विशेष बात यह थी कि मातृभूमि के लिये हमारे सामान्य प्रेम का बन्धन बड़ा दृढ़ था और कुछ काल के लिये केवल प्रेमपूर्ण पराधीनता का बन्धन रह गया जो बड़ा ही मर्मस्पर्शी और मधुर था। उनके कई सप्ताह तक विदेश में पीड़ित और दुःखित रहने की अवस्था में मैं भी उनको बहुत कम आराम दे सकी क्योंकि मेरा भी स्वास्थ्य अच्छा न था।

सन् १९०७ और १९११ के बीच में विशेष कर जब कभी मैं बम्बई जाती थी और मदरास, पूना और देहली में भी कई अवसरों पर मुझे कई बार उनसे मिलने का सौभाग्य हुआ। हर बार मिलने के बाद उनके हृदय से निकले हुए प्रभा-वशाली और उपदेशपूर्ण शब्द मेरे हृदय पर इस प्रकार अंकित हो जाते थे कि मैं भी भारत-वर्ष की सेवा करने में अपने जीवन को उत्सर्ग करूं। उन अत्यन्त कार्यपूर्ण स्मरणीय वर्षों में भी जब उन्हें मेरी कविता या वक्तृता या मेरे किसी कार्य से प्रसन्नता होती अथवा मेरे बिगड़ते हुए स्वास्थ्य की उन्हें चिन्ता होती तो मुझे जब तब मेरा उत्साह बढ़ाने के लिये उन्हें एकाध प्रेमपूर्ण सँदेशा भेजने के लिये अवसर मिल जाता था।

चरित्र की जटिलता।

सन् १९१२ के आरम्भ में जब कलकत्ते में कुछ सप्ताह तक मैं अपने पिता के पास रही उसी समय हम लोगों में सच्ची मित्रता हुई।

उन्होंने कहा, "अभी तक मैं सर्वदा पक्षी के पर पकड़ने के समान तुम्हारी बातों ही से मोहित था पर अब मैं तुम्हारे सच्चे भाव को ग्रहण करने के लिये बहुत काल तक हृदय रूपी पिंजड़े में तुम्हें बन्द रक्खूंगा। इसी समय उनसे मेरा बहुत देर तक अत्यन्त सुखदायक वार्तालाप हुआ। मैं उनके सच्चे और अचल महत्व को समझने लगी और आश्चर्य करने लगी कि वे कैसे दृढ़ और उपयोगी उपायों द्वारा अपने महत्वपूर्ण व्यक्तित्व के परस्पर विरुद्ध गुणों का देशभक्ति के महान् कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये सामञ्जस्य और एकीकारण करते हैं। इस महान् और विलक्षण प्रकृति के रहस्य को मनन करना मेरे लिये एक बहुमूल्य पाठ था। सारा संसार उन्हें जानता था और यह समझ कर उनका आदर करता था कि उनकी बुद्धि बड़ी ही सुन्दर, कुशाग्र और कुशल थी, वे राजनैतिक विषयों के भिन्न २ अंगों पर विचार करते थे और जटिल बातों के सुलझाने का प्रयत्न करते थे, व्यावहारिक बातों और अर्थ शास्त्र के अंगों पर उनका पूर्ण अधिकार था और वे उनका बड़ी सुन्दर युक्तियों द्वारा पूर्ण उपयोग करते थे, मतभेद होने पर भी कैसी सज्जनता और दृढ़ स्पष्टवादिता का परिचय देते थे, मेल करने पर वे कैसी धीरता और साहस दिखाते थे, वे कैसे बड़े आत्मसंयमी थे, कैसे वीर, दृढ़ और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ थे। वे अपने नित्य जीवन में सरलता से रहते थे और बड़ा स्वार्थ-त्याग करते थे और बहुत सी बातें जो उनके हृदय में थीं उन्हें जानकर मालूम होता था कि वास्तव में वे कैसे आदमी थे। यद्यपि वे जन्म से बड़ी २ ऊँची बातों का स्वप्न देखा करते थे और स्वप्न देखने में चिन्ता, संन्देह में कष्ट और विश्वास में प्रसन्नता होने पर भी वे सारे संसार से हृदय से प्रेम करना चाहते थे और इस माया-मय और निराशापूर्ण संसार में सदा वास्तविक सत्य का खोज करते थे। मुझे ऐसा मालूम होता था कि बहुत काल तक उनके ब्राह्मण पूर्वजों की अत्यन्त प्राचीन शिक्षाप्रणाली और परम्परा के कारण उनमें सच्चे और परिश्रमी कार्यकर्ता और ऊँचे से ऊँचे स्वप्न देखनेवालों के गुण मिल गये थे। उनके ब्राह्मण पूर्वजों की अत्यन्त प्राचीन शिक्षा ने भगवद्गीता के भाव को निर्माण किया था और बतलाया था कि कर्मयोग ही सच्चा योग है। पर वे भी अपने पूर्वजों की इस वंशीयत की हद के पार न जा सके। यद्यपि वे सब मनुष्यों के साथ समता का व्यवहार करने के पूर्ण पक्षपाती थे फिर भी शायद बे-मालूम थोड़ा सा ब्राह्मणत्व का कट्टर अभिमान जो इस प्रश्न के उठाते ही कि प्राचीनकाल में ब्राह्मणों ने सब बातों पर एकाधिपत्य कर रक्खा था स्वाभाविक फूट पड़ता है उनमें छिपा हुआ था। यदि दुर्बलता शब्द का प्रयोग करना अनुचित न हो तो उनकी इस दुर्बलता का एक उदाहरण मुझे याद आता है। आल इंडिया सोशल कान-फरेन्स के एक अधिवेशन में जो १९११ के अन्त में कलकत्ते में हुआ था मैंने पतित जातियों के विषय में एक व्याख्यान देते हुए कहा था कि उनके साथ भी बराबरी का व्यवहार न करने और उन्हें उन्नति का अवसर न देने का मुख्य कारण प्राचीन अभिमानी ब्राह्मणों का अत्याचार था। मेरे पिता ने भी जो उस सभा में उपस्थित थे यह बात नोट की और उक्त शब्द व्यवहार करने के लिये उन्होंने व्यंगपूर्वक मेरा समर्थन किया। उन्हें इससे प्रसन्नता भी हुई और अपने अधिकार का भी स्मरण आया। पर मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मि० गोखले ने 'अभिमानी' (arrogant) शब्द के व्यवहार को प्रायः व्यक्तिगत आक्रमण समझा। उन्होंने निन्दा के भाव से कहा, 'निस्सन्देह यह एक वीरत्व-पूर्ण और सुन्दर वक्तृता थी पर कभी कभी आप बड़े कटु और साहसपूर्ण पद प्रयोग करते हो।" थोड़ी देर बाद एक ऐसे ही मिलते जुलते विषय पर वादानुवाद करते हुए उनके मुँह से

निकला "तुम में अपूर्व विशेषता होने पर भी मुख्यतः हिन्दू भाव भरा हुआ है। तुम माया से आरम्भ और मोक्ष पर समाप्त करती हो।" मैंने जरा चौंक कर उत्तर दिया "मैं यह कब कहती हूं कि मैं हिन्दू नहीं हूं।" इन्हीं दिनों में देश के भविष्य के सम्बन्ध में भी उनसे विशेषकर से बातें हुईं। एक दिन प्रातःकाल साधारणतः राष्ट्रीय बातों के सम्बन्ध में वे कुछ निराश और खिन्न थे और छूटते ही उन्होंने मुझ से पूछा, "भारतवर्ष के सम्बन्ध में तुम्हारी क्या सम्मति है?" मैंने उत्तर दिया कि "मुझे तो मङ्गल होने की आशा है।" फिर बोले, "सन्निकट भविष्य के सम्बन्ध में तुम्हारा क्या मत है?" मैंने विश्वास पूर्वक प्रसन्न होकर कहा, "पाँच वर्ष के भीतर २ हिन्दू मुसलमानों में एका हो जायगा।" उन्होंने उदास होकर कहा, "तुम लड़की की सी बातें कहती हो। तुम कवि हो और बहुत अधिक आशा करती हो। तुम्हारे या मेरे जीवन में तो एका होगा नहीं। पर अपना विश्वास बनाये रक्खो और भर सक इसके लिये यत्न करो।" सन १९१२ के मार्च में बम्बई में सर फीरोजशाह मेहता ने रायल कमीशन के मेम्बरों को एक अच्छी दावत दी थी। वहां कुछ मिनट तक उनसे मेरी बातें हुईं। मैंने उसी समय एक काव्यग्रन्थ प्रकाशित किया था। मेरे सौभाग्य से उस पर लोगों का कुछ ध्यान आकर्षित हो रहा था और लोग उसकी प्रशंसा कर रहे थे। मि० गोखले से थोड़ी देर तक जो मेरी बातें हुईं उनसे उनका इस ओर अविश्वास का भाव प्रकट होता था और उन्होंने पूछा, "क्या लपट अब भी जोर से बल रही है?" मैंने उत्तर दिया, "पहले से भी अधिक जोर से बल रही है।" पर उन्होंने संदेह प्रकट करके और कुछ तेजी से सिर हिलाया और गुड़गुड़ा कर कहा, "मुझे आश्चर्य है कि कितने दिनों तक कि इस बेहद प्रसन्नता और सफलता के तूफान में यह लपट जलती रहेगी।"

भारतवर्ष की सेवा का सौभाग्य।

एक सप्ताह बाद २२ मार्च को लखनऊ में मुसलिम लीग के स्मरणीय अधिवेशन में मुझे उपस्थित होने और व्याख्यान देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह अधिवेशन यह नया नियम स्वीकृत करने के लिये हुआ कि राष्ट्रीय हित और उन्नति की बातों में हिन्दू और मुसलमान दोनों मिलकर कार्य करें। इस नियम को पुराने और नये मुसलमान राजनीतिज्ञों ने एकमत होकर स्वीकार किया और इससे भारतवर्ष की आधुनिक राष्ट्रीय बातों के इतिहास में एक नया युगान्तर उपस्थित हुआ और एक नया आदर्श उत्पन्न हुआ।

लखनऊ से मैं प्रायः कहीं भी रुके बिना सीधी पूना रवाना हुई। वहाँ २५ ता० को पहुंची और २६ ता० के प्रातःकाल मैं फरगुसन कालेज से माननीय मि० परांजपे के साथ सर्वेंट्स् आफ इंडिया सोसाइटी को गई। मैंने इंडियन नेशनल कांग्रेस के जगत्प्रसिद्ध नेता को दुर्बल और अपने उसी पुराने रोग से पीड़ित देखा पर वे उन अखबारों को देखने में व्यस्त थे जो मुसलिम लीग और उसके नये आदर्शों के सम्बन्ध में टीका टिप्पणियों से भरे हुए थे। जब उन्होंने मुझे देखा तो आगे हाथ बढ़ा कर जोर से कहा "वाह, क्या तुम मुझे यह कहने आई हो कि तुम्हारा मत ठीक था?"...और वे मुझ से बेर बेर बड़ी उत्सुकता और अधीरता के साथ पूछने लगे कि इस कानफरेन्स का आन्तरिक भाव क्या था। मैंने उन्हें विश्वास दिलाया कि जहाँ तक कम से कम जवान लोगों का सम्बन्ध है वहां तक राजनीतिज्ञ चाल ही की दृष्टि से नहीं किन्तु यह उनके सच्चे विश्वास और उच्चतर और महान् राष्ट्रीय उत्तरदायित्व के बढ़ते हुए ज्ञान का फल है कि वे ऐसे खुले मन और उदारता से हिन्दुओं से मेल करने के लिये कटिबद्ध हुए हैं। यह कह कर मैंने यह आशा

प्रकट की कि अगली कांग्रेस यदि अधिक नहीं तो कम से कम इतना उदारता तो अवश्य दिखावेगी। मेरी बातें सुनकर उनका थका हुआ और कष्ट से कुम्हलाया हुआ चेहरा प्रसन्नता से दमदमा उठा। उन्होंने उत्तर दिया, "जहाँ तक मेरी शक्ति में है, ऐसा ही किया जायगा।" घंटे भर बाद मैंने देखा कि ऐसी दूर से आकर मैंने उन्हें जो हर्षसंवाद सुनाया उसके जोश से वे थक गये थे पर लौटते समय उन्होंने इस बात का आग्रह किया कि मैं सन्ध्या को फिर मिलूं। जब संध्या को मैं फिर सर्वेण्ट्स् आफ इंडिया सोसाइटी को गई तो मैंने मि० गोखले को विचित्र रूप से परिवर्तित पाया। वे गंभीर, हँसमुख और उनका चेहरा कुछ पीला था पर सुबह की तरह कोई चिन्ता या निराशा का चिन्ह दिखाई नहीं देता था। जब वे मुझे सीढ़ियों पर ऊपर लेजाने को उद्यत हुए तो मैं प्रायः काँप उठी और बोली, "यह क्या! निस्सन्देह आप इन सब सीढ़ियों पर नहीं चढ़ सकते। आप बहुत बीमार हैं।" वे हँसे और बोले, "तुमने मुझमें नई आशा का सञ्चार कर दिया है। अब जीवन संग्राम में लड़ने और काम करने के लिये मुझ में बल आ गया है।" थोड़ा देर बाद चौड़े बरामदे में जहाँ से सूर्यास्त के समय की पहाड़ियों और घाटियों का दृश्य शान्त मालूम होता था उनकी एक बहिन और दो सुन्दर कन्याएँ आगईं और हम लोगों ने आपस में सुन्दर बातें कीं। एकमात्र यही और पहली बार मुझे इस एकाकी और त्यागी देशभक्त के गार्हस्थ जीवन का दृश्य दिखाई पड़ा। उनके चले जाने के बाद हम खिड़की हुई चाँदनी में शान्तिपूर्वक बैठ गये। फिर मि० गोखले के स्वर्णमय स्वर ने आन्तरिक हृदय से निकल कर स्वर्णमय शब्दों द्वारा ऐसा महान्, ऐसा गम्भीर और ऐसा उत्साहवर्द्धक उपदेश दिया कि अबतक उसका प्रभाव मुझपर कम नहीं हुआ है। उन्होंने भारतवर्ष की सेवा करने के असीम सौभाग्य और सुख और स्वत्वों की बात कही। उन्होंने कहा, "मेरे साथ खड़ी होजाओ। ये तारे और पहाड़ियाँ तुम्हारे साक्षी हैं। इनके सामने जन्मभूमि के लिये अपना जीवन और अपनी योग्यता, अपना संगीत और अपनी वक्तृता, अपने विचार और अपना स्वप्न उत्सर्ग करो। हे कवि, पहाड़ की चोटियों से देश की दशा देखो और घाटियों में परिश्रम करनेवाले किसानों और मज़दूरों में आशा का सँदेसा फैलाओ।" जब मैं उनसे विदा हुई तो उन्होंने हर्षसंवाद लानेवाले इस विनीत हरकारे से कहा, "तुमने मुझे नई आशा, नया विश्वास और नया साहस प्रदान किया है। आज रात को मैं खूब चैन से सोऊँगा।"

सम्पादकीय टिप्पणियां ।

नया एक्ट ।

जितने एक्ट अबतक वर्तमान थे उनसे सर्व-साधारण की रक्षा का होना असंभव था। इस ख्याल से कानून रचनेवालों ने एक नया एक्ट पब्लिक से फटी बिल "सर्वसाधारण की रक्षा का बिल" बना दिया है। इसके संबन्ध में कहा गया है कि इङ्गलैंड में ऐसा ही एक कानून है और उसी के आधार पर यह बनाया गया है। हम जानते हैं कि इङ्गलैंड के बड़े बड़े पुरुष वहां जो एक्ट है उसका विरोध कर रहे हैं। और आज नहीं तो कल उसमें परिवर्तन होगा और वह रद्द होगा किन्तु भारत में ऐसा हो सकेगा यह सोचना ही कठिन मालूम होता है। एक बात और है, वहां कानून युद्ध तक ही कानून रहेगा किन्तु यहां पर युद्ध समाप्त होने के ६ मास बाद तक।

यह क्यों ?

इसका जवाब हम देना नहीं चाहते किन्तु इतना कह देना हम अवश्य चाहते हैं कि ऐसा कदाचित इसी कहावत को चरितार्थ करने के लिए किया गया है कि पूर्व पूर्व है और पश्चिम पश्चिम।

बिना मेघ के बिजली ।

अमृत का प्याला होठों से लगने ही को था कि मदान्धों ने उसे छीन लिया। ६ वर्ष से जिस स्वाती की बूँद के लिए हम लोग लौ लगाये बैठे थे, पिछले मास में ही जिसे हम कंठगत समझ चुके थे वह कार्यकारणी कौंसिल कर्ज़न-मेकडानल दल की करतूत से हम लोगों को नहीं मिली।

क्यों ?

क्योंकि जो आजतक man on the spot स्थानीय मनुष्य में विश्वास के सिद्धान्त वाले थे अपनी इच्छा के विरुद्ध काम होते देख अपने सिद्धान्त को छोड़ बैठे हैं। इनकी समझ में लार्ड हार्डिंज की अपेक्षा लार्ड कर्ज़न सर जेम्स मेस्टन की अपेक्षा हयुएट और मेकडानल और लार्ड क्रू की अपेक्षा लार्ड लैन्डसडाउन भारत को और विशेष कर संयुक्तप्रान्त को अधिक समझते हैं और इसलिए इन लोगों की सम्मति अधिक आदरणीय है। यह भी विष के रूप में अमृत ही समझना चाहिये। युद्ध के समय किसी प्रकार के आन्दोलन के हम विरुद्ध थे। हम चाहते थे कि साम्राज्य की समस्त शक्ति युद्ध में लगी रहे, किसी प्रकार का बितंडावाद न उठे किन्तु हमारे लार्डों को यह पसन्द नहीं, वे यह नहीं चाहते कि पिछड़े हुए संयुक्तप्रान्त के निवासी आन्दोलन से अलग रह कर उसकी शक्ति को भूल जांय। अच्छा है युक्तप्रान्त के निवासियों को उचित है कि वे घोर आन्दोलन आरंभ करें, साथ ही लार्ड क्रू और उनके दलवालों का काम यह होना चाहिये कि विषैले सर्प के रहे सहे विष-दन्त को भी वह तोड़ दें। सुधार और उन्नति का विरोध करना इनके प्रकृतगत है, इनसे भलाई की आशा नहीं इसलिए इनके हाथ पैर बाँध इन्हें शक्तिहीन कर छोड़ना ही साम्राज्य के लिए हित है।

गेहूं की रवानगी ।

गेहूं का एक प्रकार से देश में काल सा पड़ रहा है। मँहगी के कारण चारों ओर लोग दुःखी हैं। सरकार की दृष्टि से यह छिपा नहीं है और यह प्रसन्नता की बात है कि वह इस ओर ध्यान दे रही है। उसने अन्न का व्यापारियों द्वारा बाहर भेजा जाना बन्द कर दिया है और अब उसने इस काम को अपने हाँथ में ले लिया है। इससे हमारी समझ में इतना ही लाभ होगा कि व्यापारी जो मुनाफा उठाते

थे न उठा सकेंगे और उनके स्थान पर कुछ मुनाफा सरकार उठालेगी। यह अच्छी बात है और हम आशा करते हैं कि इस मुनाफे की रकम को सरकार कृषकों की सहायता में ही व्यय करेगी। इस सम्बन्ध में कुछ कहना व्यर्थ है किन्तु हम चाहते यह थे कि सरकार ऐसा प्रबन्ध करे कि जब तक देश के प्रत्येक निवासी को भोजन के लिए अन्न न मिल जाय तब तक उसका एक दाना भी बाहर न भेजा जाय।

अबकी बार व्यवस्थापक कौंसिल में सदा की भाँति कितने ही उपयोगी प्रस्ताव उपस्थित किये गये। श्रीमान् मालवीय जी ने कितने ही बड़े बड़े स्वप्न देखे। उन्होंने प्रस्ताव किया था कि सरकार देश की औद्योगिक उन्नति के लिए १२ लक्ष अलग कर दे। उन्होंने कहा था कि गेहूं तबतक बाहर न भेजा जाय जब तक देश में वह ६, १० सेर का न बिकने लगे और भी कितने ही प्रस्ताव उन्होंने किये किन्तु सब की दशा हुई वही जो परम्परा से होती आई है।

नेताओं का मतिभ्रम।

सब से मार्के की बात अबकी बार कौंसिल में हमारे प्रतिनिधियों ने दिखलाई। माननीय रायनिगर ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया था कि देश के समस्त उच्चकक्षा स्कूलों में शिक्षा का माध्यम देशीभाषाएं रखी जाँय। कहना नहीं होगा कि यदि यह प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता तो देश का शीघ्र ही भाग्योदय हो जाता। यह किसी से छिपा नहीं है कि विदेशी भाषा के द्वारा शिक्षा देने से विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने में वास्तविक उन्नति नहीं कर सकता। उसकी मानसिक शक्ति की वृद्धि की अपेक्षा उसके रटने और स्मरण करने की शक्ति पर अधिक दबाव पड़ता है और उसकी प्राकृतिक वृद्धि एक तरह से बिलकुल मर सी जाती है। संसार में एक भारतवर्ष ही ऐसा देश भी है जहां शिक्षा का यह विचित्र क्रम जारी है और सभी लोगों की दृष्टि में यह हानिकर है। हम समझे थे कि सब उपयोगी प्रस्तावों की भाँति इसका भी सरकारी सदस्यों की ओर से विरोध किया जायगा और रद्दी के टोकरे में इसे भी स्थान मिलेगा किन्तु पाठकों को सुनकर आश्चर्य होगा कि सरकारी मेम्बर मि० बटलर तो इसके पक्ष में थे और विरोध करनेवाले सब हमारे भाई ही थे और उनके नायक थे माननीय सुरेन्द्र बाबू। प्रस्ताव के पक्ष में तीन मनुष्य थे मि० बटलर, मा० मालवीय और राजा खुशलपाल सिंह।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग, में बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छापकर प्रकाशित हुई।

मर्यादा।

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ९] अप्रेल सन् १९१५—वैशाख [संख्या ४

चेतावनी।

[लेखक— श्रीयुत श्रीशंकर याज्ञिक ।]

(१)

धर्म कर्म का नाश हुआ है आर्यवर्त में।
वर्षों से हम पड़े हुए हैं दुःखगर्त में॥
खोकर जात्यभिमान आज हम भ्रष्ट हुए हैं।
इतनी ही है कसर नहीं हम नष्ट हुए हैं॥

(२)

कहां गया वह देश-प्रेम वह मेल कहां है।
कहां गया वह अचलनेम सुख बेल कहां है॥
कहां हमारा वीर्य हमारा मान कहां है।
कहां हमारी कला हमारा ज्ञान कहां है॥

(३)

जगत व्याप्त व्यापार कभी जो हम थे करते।
खोकर उसको हाय आज हम भूखे मरते॥
जिस भारत के वस्त्र कभी थे बाहर जाते।
वहीं विदेशी वस्त्र आज हैं पहने जाते॥

(४)

पराधीन हम बने हुए हैं सभी तरह से।
अंधकूप में गिरे हुए हैं सभी तरह से॥
खो बल-पौरुष आज हुए हैं शक्ति-हीन हम।
निज स्वत्वों को भूल बने हैं बलीवर्द सम॥

(५)

किन्तु उठो अब समय तुम्हारा फिर है आया।
यूरोप भर में भारत का है गौरव छाया॥
नया शक्ति-सञ्चार देश में हुआ आज है।
मानो इसने सजा आज उत्कर्ष साज है॥

(६)

हर्षित हो तुम उठो बन्धु अब सोते क्या हो।
मिलो गले से करो ऐक्य अब रोते क्या हो॥
करो नित्य यह यत्न सभी तुम तन मन धन से।
हो भारत-उद्यान पूर्ण सद्भाव सुमन से॥

अमेरिका के विश्वविद्यालय।

[लेखक—श्रीयुत शिवनारायण द्विवेदी।]

प्रत्येक देश की उन्नति और अवनति का आधार विशेषकर उस देश की शिक्षा पद्धति ही होती है। किसी देश की जब अन्य देशों के संसर्ग से उन्नति होने लगती है, तब उस देश की दृष्टि दूसरों की उन्नत शिक्षा, व्यवहार और व्यापार पर जाती है। यदि उस देश की उन्नति वास्तविक और योग्य है तो उसका अनुकरण धीरे २ सब करने लगेंगे। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि अनुकरण सदा अच्छा ही होता है, क्योंकि बहुत बार अनुकरण अन्धश्रद्धा पर भी हुआ करता है। दूसरे ऐसे देशों की उन्नति इतनी धीरे २ होती है कि वह 'कुछ नहीं' सी मालूम हुआ करती है। जिस प्रकार आकाशस्थ हज़ारों तारों का किसी को पता नहीं है और उनका प्रकाश सैकड़ों वर्ष में पृथ्वी पर आकर पहुंचता है, उसी प्रकार किसी देश की 'उन्नति' का शब्द जब हमारे कानों में पहुंचता है उस समय उस देश की उन्नति में बहुत समय लग जाता है।

शिक्षापद्धति के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। किसी विश्वविद्यालय की विशेष प्रसिद्धि ही उसकी उत्तम शिक्षा की सनद नहीं है। क्रिया और प्रसिद्धि का विशेष सम्बन्ध है, किन्तु क्रिया से ही प्रसिद्धि होती है। प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों का अनुकरण जैसे का तैसा कर लेने से हमें लाभ नहीं पहुंच सकता, किन्तु उनकी आन्तरिक स्थिति और हानि-लाभ को देखकर अपने देश काल के अनुकूल बातों को छाँट लेना ही बुद्धिमत्ता है। इस समय केम्ब्रिज और आक्सफर्ड के विश्वविद्यालय बहुत प्रसिद्ध हैं। किन्तु उन्होंने जो उन्नति इस समय तक की है वह बहुत बड़े परिश्रम और देशभक्ति का फल है।

इस समय अमेरिका के विश्वविद्यालय संसार के सब विश्वविद्यालयों से उत्तम हैं। यह राय बहुत बारीक जाँच करनेवालों की है। किन्तु अबतक यह कीर्ति संसारव्यापिनी नहीं हुई, इसमें विश्वविद्यालयों का कोई दोष नहीं है। जिस प्रकार शिक्षा के लिए उन्नीसवीं शताब्दी में इङ्गलैंड और बीसवीं में जर्मनी सर्वश्रेष्ठ रहा, उसी प्रकार से इक्कीसवीं शताब्दी में अमेरिका सर्वश्रेष्ठ रहेगा। संसार भर के सब देशों में अमेरिका जवान देश है—वहां की सब प्रकार की उन्नति बहुत शीघ्रतापूर्वक हो रही है; और शिक्षा का भी यही हाल है।

संसार भर के विश्वविद्यालय अपने सामने जिन उद्देश्यों को रख कर काम करने लगे हैं वे चार भागों में बाँटे जा सकते हैं:—(१) केवल सत्य की खोज करना; (२) संसार में सदाचार और विद्वत्ता का प्रसार करना; (३) सभ्य, शिक्षित और संस्कृत (cultured man or gentleman) मनुष्य बनाना; (४) लोगों को उदरपूर्ति के मार्ग पर लगाना। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्रज्ञ मि० थिंग का कथन है कि पहिले भाग की शिक्षा जर्मन विश्वविद्यालयों में दी जाती है; अमेरिका के विश्वविद्यालय पहिले और दूसरे भाग की शिक्षा देते हैं; अंगरेज़ी विश्वविद्यालय तीसरे भाग की शिक्षा देते हैं और चौथे भाग की शिक्षा जापानी विश्वविद्यालयों में दी जाती है। प्रत्येक देश के विश्वविद्यालयों ने अपने २ उद्देश की पूर्ति के लिए शिक्षणपद्धति के विशेष २ तत्वों का अवलम्बन किया है।

अमेरिका की सरकार ने मि० श्विंग को संसार के सब विश्वविद्यालयों को देखने के लिए भेजा था। उन्होंने सब विश्वविद्यालयों का निरीक्षण करके "Universities of the world." नामक पुस्तक लिखी है। पुस्तक के प्रारम्भ में उन्होंने लिखा है कि—"सब देशों से जर्मनी के विश्वविद्यालय के उच्चतर होने के कारण प्रतिवर्ष हज़ारों अमेरिका के विद्यार्थी जर्मनी जाते थे किन्तु आज अमेरिका के विश्वविद्यालय जर्मनी का मुक़ाबिला करते हैं, इसलिए अब अमेरिका के विद्यार्थियों को जर्मनी जाने की आवश्यकता नहीं है।" सम्पत्ति और प्रसिद्धि में आज भी जर्मनी का 'बर्लिन विश्वविद्यालय' और फ्रांस का 'पेरिस विश्वविद्यालय' अधिक सम्मानित है। किन्तु अमेरिका के विश्वविद्यालय सम्पत्ति, उपकरण और शिक्षा में अब अधिकाधिक उन्नति करते जाते हैं। अमेरिका के कई विश्वविद्यालय सम्पत्ति में पेरिस और बर्लिन के विश्वविद्यालयों से अधिक हैं।

अमेरिका के विश्वविद्यालयों की स्थापना जर्मन विश्वविद्यालयों के आधार पर की गई थी; किन्तु आवश्यक परिवर्तन होते रहने के कारण अब जर्मन और अमेरिकन विश्वविद्यालयों में बहुत कम सादृश्य है। जर्मन विश्वविद्यालयों की शिक्षा का मूल स्वेच्छाचरण पद्धति (Elective System) है। अंगरेज़ी विश्वविद्यालयों में अनिवार्य शिक्षा विशेष है, ये विश्वविद्यालय विशेष शिक्षा देने की अपेक्षा परीक्षा लेने का काम अधिक करते हैं। किन्तु जर्मन विश्वविद्यालय शिक्षा देना अपना कर्तव्य समझते हैं। अमेरिका के विश्वविद्यालय जर्मन विश्वविद्यालयों के समान शिक्षा देते हैं और उन्होंने स्वेच्छाचरण पद्धति की बहुत उन्नति की है। यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि यूरोप के अधिकांश विश्वविद्यालय श्रीमानों, धनवानों और राजाओं के लिए हैं। किन्तु अमेरिकन विश्वविद्यालय प्रजासत्तात्मक राज्यपद्धति के कारण ग़रीबों और प्रजा के लिए हैं। दूसरे देशों में शिक्षित बननेवाले विश्वविद्यालयों में जाते हैं, किन्तु अमेरिकन विश्वविद्यालय स्वयं लोगों के पास जाते हैं। दूसरे देशों के विश्वविद्यालयों का अपने देश की बातों की ओर अधिक लक्ष्य नहीं रहता किन्तु अमेरिकन विश्वविद्यालयों में अपने देश की बातों की ओर ही अधिक लक्ष्य रहता है।

अमेरिकन विश्वविद्यालयों के दरवाज़ों में पांव रखते ही एकता का साम्राज्य दृष्टिगोचर होता है। 'Campus' शब्द सुनते ही अमेरिका के विद्यार्थियों का मुख आनन्द से खिल उठता है। अपने विश्वविद्यालयों के चारों ओर का घेरा (Campus) विद्यार्थियों को अपने घरों से भी अधिक प्रिय जान पड़ता है। वहां विद्यार्थियों को प्रत्येक प्रकार का सुख पहुंचाने का पूरा यत्न किया जाता है। विद्यार्थियों के विश्रामभवन, वाचनालय, क्रीडागृह, वस्तुसंग्रहालय आदि अनेकप्रकार के बने रहते हैं। केवल विश्वविद्यालय ही में शिक्षा पाकर विद्यार्थी का जीवन वास्तविक जीवन बन जाता है। बहुत से विद्यार्थी वहां प्रातःकाल आठ बजे जाते हैं और रात्रि के दस बजे घर लौटते हैं। सात आठ हज़ार विद्यार्थी एकत्रित होकर अपने समय को कैसे आनन्द में बिताते हैं, इसकी कल्पना भी भारत के विद्यार्थी नहीं कर सकते।

भारत के विश्वविद्यालयों में परीक्षा प्रधान किन्तु शिक्षा गौण है। भारत में कलकत्ता, मद्राज, प्रयाग, बम्बई और लाहौर में विश्वविद्यालय हैं और इनमें कई को स्थापित हुए भी पचास साठ वर्ष हो चुके। किन्तु अबतक किसी अध्यापक या विद्यार्थी ने कोई आविष्कार या खोज का काम नहीं किया है। यदि थोड़ी देर के लिए भारतवासियों को मूर्ख भी मान लें तो हमारे यहां अंगरेज़ अध्यापकों की भी कमी नहीं है। पर किसी अंगरेज़ अध्यापक ने भी

कोई आविष्कार नहीं किया। इसका कारण यही है कि हमारे यहां परीक्षा का प्रमाणपत्र देखा जाता है, विद्या और योग्यता नहीं। किन्तु सत्यान्वेषण का त्याग करना विश्वविद्यालयों के नाम के विरुद्ध और निन्द्य है। अमेरिकन विश्वविद्यालयों में परिश्रमी, खोजी और विशेषज्ञ हुए बिना कोई प्रोफ़ेसर नहीं बन सकता। उनके नाम के पीछे पदवियों के अक्षरों की चाहे जितनी पंक्तियाँ हों किन्तु वे प्रथम शिक्षक (Instructor) और फिर अपनी शोध विद्या के अनुसार उपाध्याय और अनन्तर अध्यापक नियत होते हैं।

कालेजों के एकीकरण से अमेरिकन विश्वविद्यालय शक्ति के केन्द्र बन गये हैं। इस व्यवस्था में खर्च कम और लाभ अधिक है। हमारे देश में कालेजों के पृथक्करण के कारण अधिक विषयों की शिक्षा भी नहीं दी जासकती और खर्च भी अधिक होता है। हमारे यहां के विश्वविद्यालयों में चार पाँच विषयों की शिक्षा दी जाती है किन्तु अमेरिका के प्रत्येक विश्वविद्यालय में :—

1. College of Arts and Sciences 2. College of Education, 3. College of Social Sciences, 4. College of Engineering. 5. College of Mines, 6. College of Chemistry, 7. College of Agriculture, 8. College of Law, 9. College of Commerce, 10. College of Medicine, 11. College of Pharmacy, 12. College of Dentistry, 13. Graduate School, 14. University Extension Dept. 15. College of Forestry, 16. Dept. of Biology and Geology, 17. School of Politics, 18. College of Philosophy इन विषयों की शिक्षा दी जाती है। किन्तु हमारे यहां चार पाँच विषयों को छोड़कर अधिक विषयों की शिक्षा नहीं दी जाती।

अमेरिका के प्रत्येक कालेज से "University Studies नामक मासिक और त्रैमासिक पत्र निकलते हैं; किन्तु हमारे यहां के विश्वविद्यालयों से ऐसा नियमित कोई भी पत्र नहीं निकलता। इन पत्रों में वहां के विद्यार्थियों और अध्यापकों के आविष्कारों का वर्णन रहता है। ऐसे पत्रों के विषय ३० से ८० तक रहते हैं। इसके अलावा वहां विद्यार्थियों के सम्पादकत्व में कई मासिक, साप्ताहिक और दैनिक पत्र तक निकलते हैं। केवल विश्वविद्यालय के समाचारों के ही कई दैनिक पत्र निकलते हैं, इससे वहां के विश्वविद्यालयों के विस्तार की कल्पना की जा सकती है।

प्रत्येक विश्वविद्यालय के घेरे Campus में बीस से तीस तक इमारतें बनी होती हैं। उन में शिक्षक, उपाध्याय और विद्यार्थी रहते हैं। प्रत्येक विश्वविद्यालय में ६००० विद्यार्थियों के पढ़ाने के लिए ८०० अध्यापक होते हैं, अर्थात् नौ दस विद्यार्थियों पर एक शिक्षक होता है, इसीलिए अमेरिका के शिक्षक भारत के शिक्षकों से अधिक काम करते हैं और वहां के विद्यार्थी अच्छी तरह अध्ययन करते हैं। अमेरिका के सब प्रोफ़ेसर सप्ताह भर में १६ से २४ घंटे तक पढ़ाते हैं और बाकी समय खोज, आविष्कार और विद्या की वृद्धि में लगाते हैं। भारत वर्ष के कालेजों के दरवाज़े बी० ए० और एम० ए० के विद्यार्थियों के लिए दो तीन घंटे से अधिक नहीं खुलते किन्तु उच्च शिक्षा वाले विद्यार्थियों के लिए अमेरिकन कालेजों के दरवाज़े प्रातःकाल आठ बजे से रात्रि के दस बजे तक खुले रहते हैं। विद्यार्थियों को भोजन बहुधा कालेजों में ही पहुंचा करता है। विद्या रुपये के बदले में बेची नहीं जा सकती, यह भारत का प्राचीन सूत्र है, किन्तु इस समय इसे अमेरिका ने सार्थक किया है। अमेरिका में अध्यापकों को वेतन नहीं बल्कि भेंट दी जाती है। अमेरिका के अध्यापकों के परिश्रम के अनुसार उन्हें बहुत

कम भेंट मिलती है। भारत और अमेरिका के खर्च में ज़मीन आसमान का फ़र्क है। भारत में एक विद्यार्थी साधारण तौर पर १५) रु० मासिक में अपना निर्वाह भलीभांति कर सकता है किन्तु अमेरिका में कम से कम ७०) रु० मासिक में निर्वाह किया जा सकता है। इतनी खर्च की अधिकता होने पर भी अध्यापकों को अधिक से अधिक १२५०) रु० मासिक मिल सकता है, किन्तु भारत में एक कालेज के प्रिन्सिपल का मासिक वेतन २०००) रु० तक हो सकता है। इससे जाना जा सकता है कि भारतीय विश्वविद्यालय खर्च अधिक करते हैं किन्तु काम वहां के अंशांश के बराबर भी नहीं होता।

अमेरिका में विश्वविद्यालयों की वार्षिक फ़ीस ६५) रुपये से अधिक नहीं होती किन्तु भारत में सरकारी कालेजों की फ़ीस वर्ष में सवा सौ रुपया होजाती है। अमेरिका में प्रति सैकड़े तीस, चालीस विद्यार्थियों की फ़ीस माफ हो जाती है और वे शिक्षा मुफ्त पाते हैं, किन्तु भारत में प्रति सैकड़े तीन गरीब विद्यार्थियों को भी फीस माफ करके शिक्षा नहीं दी जाती।

वर्ष में केवल ६५) रु० लेकर वहां के विश्वविद्यालय विद्यार्थियों को बहुत सुख देते हैं। प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों के के लिए एक 'Social Club House' नामक संस्था होती है। उसमें दोपहर को भोजन करने और अपने मित्रों के साथ बैठकर प्रत्येक विषय की चर्चा करने के लिए अलग अलग स्थान मिलता है। प्रत्येक मकान में पानी पीने के लिए आरोग्यनिर्झर (hygeienic fountains) शौचकूप, और हाथ धोने के लिए गरम पानी के नल लगे रहते हैं। प्रत्येक नल के पास साबुन और साफ तौलिया रक्खा रहता है। विद्यार्थियों के लिए पुस्तकों और सामयिक पत्रों का भी प्रबन्ध रहता है। हम जानते हैं कि अमेरिका जैसे व्ययप्रधान देश में विद्यार्थियों को इतना आराम पहुंचाने में वर्षभर की ६५) रु० की फीस पूरी होजाती होगी और इसहिसाब से शिक्षा मुफ्त के बराबर होगई। पर भारत में क्या है?

अमेरिकन विश्वविद्यालयों के पुस्तकभाण्डार साधारण नहीं हैं। प्रत्येक पुस्तकालय की पुस्तकों की संख्या दो लाख से आठ लाख तक है। सामयिक पत्रों की संख्या प्रतिमास एक हज़ार से चार हज़ार तक रहती है। पुस्तकालय इस प्रकार सज्जित रहते हैं कि एक समय में सात सौ विद्यार्थी बैठकर शान्तिपूर्वक पुस्तकें पढ़ सकें। रात्रि के दस बजे तक बैठकर विद्यार्थी वहाँ अपनी ज्ञानपिपासा बुझा सकते हैं। इसके अलावा Seminor Room नामक भिन्न गृह भी बने होते हैं, जिनमें बैठकर दस पाँच विद्यार्थी किसी विशेष विषय पर विचार कर सकते हैं। इस प्रकार विद्यार्थी अपने पठन विषय का अभ्यास भी कर सकते हैं। प्रत्येक विश्वविद्यालय का डाकखाना अलग होता है और प्रत्येक विद्यार्थी को चिट्ठियों का लेटरबक्स भी जुदा २ होता है। उन लेटरबक्सों में विद्यार्थियों के पत्र और उन विद्यार्थियों के विषय में रजिस्ट्रार के पत्र डाल दिये जाते हैं। विद्यार्थी दोनों समय अपने बक्स खोलकर पत्र निकाल लाते हैं।

आधुनिक शिक्षणोपयोगी सामग्रियों से सजाया हुआ एक २ कमरा विद्यार्थियों को दिया जाता है। इसमें विद्यार्थी अपनी पुस्तकें और कालेज के कुछ कपड़े तथा थोड़ी सी और चीज़ें रखते हैं। शिक्षा के अनन्तर स्नान करने की भी प्रथा है, इसीलिए प्रत्येक कमरे के साथ स्नानागार बना होता है। एक समय में डेढ़ सौ विद्यार्थी स्नान कर सकते हैं। स्नानागार में ठंडे और गरम जल के नल, साबुन, तौलिया,

शीशा और कंघा आदि आवश्यक चीज़ें रक्खी रहती हैं। विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों का इलाज भी मुफ़्त किया जाता है। ऐसे विश्वविद्यालय होने पर क्या वे घर से अधिक प्रिय नहीं हो सकते?

अमेरिकन विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों की आरोग्यता पर जितना अधिक ध्यान दिया जाता है, उतना संसार के किसी विश्वविद्यालय में शायद ही दिया जाता हो। विश्वविद्यालय में प्रविष्ट होते ही सब से पहले विद्यार्थी की आरोग्यपरीक्षा (Medical examination) होती है। इस परीक्षा में उसके घर वालों की आरोग्य-विषयक बातें तक मालूम की जाती हैं, विशेष करके पैतृक रोगों की बहुत जाँच की जाती है। प्रत्येक अंग और अवयव की बहुत बारीक परीक्षा की जाती है। फेंफड़े, छाती, आँख आदि अवयवों की परीक्षा यन्त्रों की सहायता से की जाती है। इसके अनन्तर जो अवयव दूषित हों उन्हें सुधारने के लिए एक व्यवस्थापत्र और पुस्तक दी जाती है। इस परीक्षा के बाद विद्यार्थियों को आरोग्यता विषय पर कुछ व्याख्यान सुनने पड़ते हैं। व्याख्यान में प्रत्येक इन्द्रियों के गुण-दोष और उनका उपयोग और दुरुपयोग समझाया जाता है। प्रत्येक विद्यार्थी को व्यायाम अवश्य करना पड़ता है। अमेरिकन विद्यार्थियों को सैनिक शिक्षा भी दी जाती है, किन्तु विदेशी विद्यार्थियों के लिए इसका कुछ नियम नहीं है। अमेरिका में भवन सजाने की एक स्वतंत्र विद्या है; यह विद्या वहां जितनी उन्नति पर पहुंच गई है वह हम लोगों की कल्पना से भी दूर है। यदि किसी को साक्षात स्वर्ग पहुंचना हो तो वह अमेरिका के शिक्षित विद्यार्थियों के सजाये हुए भवन देखे। भारत के विद्यार्थी स्कूलों और कालेजों में जाते हुए समझते हैं कि अब हम 'जेलखाने' में जा रहे हैं और परीक्षा को यहाँ 'कतल की रात' कहते हैं। इसीलिए अमेरिकन विद्यार्थियों के हँसते हुए मुखों की कल्पना करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

पेरिस, बर्लिन, केम्ब्रिज आदि के अत्युच्च और प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों में प्रसिद्ध पदवीधारी प्रोफेसर विद्यार्थियों के प्रेमभाजन नहीं बनते। किन्तु अमेरिका नई दुनिया है, इसलिए इसके सब विचार नये हैं। अमेरिका के प्रोफेसर विद्यार्थियों को अपने घर के बालकों और सगे भाइयों के समान समझते हैं। निरन्तर अध्यापक और विद्यार्थियों में ऐसी मित्रता बनी रहने के कारण विद्यार्थियों की विद्या चौगनी हो जाती है। किन्तु जिस भारत के विद्यार्थी अपने प्रोफेसरों के रोब दिखाने और नाक-भौंह चढ़ाने पर अपनी शंका तक प्रकट करने में हिचक जाते हैं, वे विद्वान् नहीं बन सकते।

मि० श्विंग अमेरिकन विश्वविद्यालयों के विषय में कहते हैं:—

"No longer now students go to Germany for education. Though scholasticism as great as that of Germans is not yet attained, opportunities for research and instruction are equal though not more."

प्रसिद्ध प्रोफेसर फ्रेडिरक पालसन ने अपनी पुस्तक 'यूनिवर्सिटीज़ आव जर्मनी' में भी अमेरिकन विश्वविद्यालयों की ही प्रशंसा की है।

यहाँ तक अमेरिकन विश्वविद्यालयों का बाह्यतुलनात्मक वर्णन हुआ, अब वहाँ की आन्तरिक दशा अर्थात् शिक्षापद्धति का अवलोकन कीजिए। अमेरिका में इष्टि कार्य हाई-स्कूल से ही प्रारम्भ हो जाता है। विश्वविद्यालय में प्रविष्ट होने से पहिले ही विद्यार्थी को अपना उद्देश ग्रहण करना पड़ता है। उद्देश ग्रहण कर लेने से विद्यार्थियों का अधिक समय व्यर्थ नहीं जाता और वे अपना कार्य योग्यता-

पूर्वक सम्पादन कर सकते हैं। विश्वविद्यालयों में प्रविष्ट होते ही विद्यार्थी को अपने उद्देश के अनुसार एक कालेज में नाम लिखाना पड़ता है और अपने विषय के अनुकूल पढ़ाई आरम्भ करनी पड़ती है। जर्मन विश्वविद्यालयों के समान अमेरिका में भी बहुत से विषयों पर केवल व्याख्यान दिये जाते हैं। इन विषयों को 'कोर्सेज' कहते हैं। अमेरिका में परीक्षा के नम्बरों को देखकर विद्यार्थी पास फेल नहीं किये जाते, बल्कि वहाँ यह देखा जाता है कि किस विद्यार्थी ने कितने समय अभ्यास किया है। निश्चित समय की जाँच के लिए वहां 'यूनिट' नियत हैं, अर्थात् अमुक विषय के विद्यार्थियों को इतने युनिट तक व्याख्यान सुनना आवश्यक है। यूनिट एक समय की माप है। उदाहरणार्थ आर्टस् कालेज में बी० ए० की पदवी प्राप्त करने के लिए १२४ यूनिट की आवश्यकता है। ये १२४ यूनिट विद्यार्थी चार वर्ष में पूरे कर सकते हैं, किन्तु बुद्धिमान् और योग्य विद्यार्थी तीन वर्ष में भी कर लेते हैं और बी० ए० बन जाते हैं। जो विद्यार्थी अधिक समय नहीं दे सकते उन्हें १२४ यूनिट पूरे करने में और भी अधिक समय लग जाता है। किन्तु अभ्यास पूरा होना चाहिए फिर पदवी मिलने में अधिक विलम्ब नहीं होता।

इस प्रकार की शिक्षापद्धति बहुत उपयोगिनी और लाभप्रद प्रमाणित हुई है। मान लीजिए कि पहिले साल परीक्षा में ग्रीक और रोमन इतिहास है। यह विषय पहिले और दूसरे वर्ष का होने पर भी पहिले ही वर्ष में पूरा हो सकता है, किन्तु बीजगणित और त्रिकोणमिति का एक वर्ष में पूरा होना अशक्य है, क्योंकि इनमें एक दूसरे से अधिक घनिष्टता रहती है। जिन २ विषयों में एक दूसरे की अपेक्षा नहीं रहती वे जल्दी हो जाते हैं। इसके लिए विद्यार्थी दो तीन घंटे समय और लगा देते हैं-इसमें विश्वविद्यालय को भी लाभ रहता है। उदाहरण के लिए जो विद्यार्थी रसायनशास्त्र का आचार्य बनना चाहता है उसे दस यूनिट अभ्यास करने की आवश्यकता है, किन्तु वह अपने बचे हुए समय में दूसरे विषयों का भी अभ्यास करता है (जैसे-वनस्पतिशास्त्र, सम्पत्तिशास्त्र, रोम का इतिहास)। ऐसी उपयोगी पद्धति संसार में और कहीं नहीं है।

यह पद्धति दूसरे देशों के विद्यार्थियों के लिए और भी अधिक लाभदायक होती है। अमेरिका और भारत के पदवीधारियों में आकाश पाताल का अन्तर है। भारत का ज्यूनियर बी० ए० का विद्यार्थी अमेरिका के ज्यूनियर विद्यार्थी से बहुत पीछे रह जाता है। वहाँ विद्यार्थी विश्वविद्यालयों के आवश्यक विषयों के अलावा अनेक स्वतन्त्र विषयों का अभ्यास भी करते हैं। अमेरिका में शिक्षित और योग्य बनना बहुत सरल और सुलभ है। किन्तु यहाँ बम्बई के ज्यूनियर विद्यार्थी को कलकत्ता विश्वविद्यालय केवल एफ० ए० समझेगा और बम्बई के बी० ए० पास को केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में फिर तीन वर्ष पढ़ाकर बी० ए० की उपाधि दी जायगी। किन्तु अमेरिका के विश्वविद्यालय इन बन्धनों से मुक्त हैं। वहाँ विद्यार्थी में जिन विषयों की कमी होती है वे पूरे करा दिये जाते हैं। उन विषयों की पूर्ति के लिए विद्यार्थी को स्वतन्त्र शिक्षक नहीं रखना पड़ता।

अमेरिकन विश्वविद्यालयों के शब्दकोष में "फेल होना" और "वर्ष व्यर्थ बिताना" ये शब्द ही नहीं है। वर्ष में पूरे समय जो अभ्यास कर सका है वही पास हो सकता है। वहां प्रति सैकड़े ९५ विद्यार्थी उत्तीर्ण होते हैं। इसका कारण यह है कि एक तो वहां अभ्यास उत्तम होता है, दूसरे विद्यार्थी पहिले वर्ष जिस विषय में फेल हुआ हो केवल उसी विषय में दूसरे वर्ष परीक्षा होती है। यह पद्धति इतनी उपयोगी है

कि इसके कारण जर्मनी और अमेरिका में बहुत जल्दी शिक्षितों की संख्या बढ़ गई।

अमेरिका के विश्वविद्यालय सच्ची स्वरलता की मूर्ति हैं। किन्तु इंगलैंड के विश्वविद्यालयों ने ऊपरी बनावट और टीमटाप में हद करदी है। अमेरिका में थोड़े ख़र्च से विद्यार्थी निर्वाह करके विद्वान बन जाते हैं किन्तु इंगलैंड के विश्वविद्यालय इतना ख़र्च एक मास में करा देते हैं जितना अमेरिका में विद्यार्थी दो वर्ष में करते होंगे। इंगलैंड के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय कैम्ब्रिज के ख़र्च की नक़ल देखिए:—

१–कमरे का सामान आदि...	कम से कम	७५०)
२–प्रवेश शुल्क	"	३०)
३–कालेज फीस..... ...	साधारणतः	३१५)
४–कमरे का भाड़ा	"	३७५)
५–भोजन-व्यय	"	२७०)
६–क्लब सोसाइटी आदि का ख़र्च	"	१५०)

किन्तु अमेरिका में प्रवेश शुल्क, कालेज फीस और भोजन व्यय आदि सब कुछ मिला कर ७५) रु० मासिक पड़ जाता है। इंगलैंड के विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों को अनेक प्रकार की पोशाकें बनानी पड़ती हैं और बहुत से व्यर्थ के नियमों से जकड़ा रहना पड़ता है। किन्तु अमेरिका में शिक्षा, स्वास्थ्य और सदाचार पर विशेष लक्ष्य रक्खा जाता है।

भारत में विद्यार्थी वर्ष भर सोया करते हैं पर परीक्षा से एक मास पूर्व रात दिन परिश्रम करके अपना स्वास्थ्य बिगाड़ लेते हैं। पर अमेरिका के विद्यार्थी ऐसा नहीं करते। वहां विशेष अभ्यास देखा जाता है पर यहाँ कोरी दिनों की हाजरी देखी जाती है। अमेरिका में विद्यार्थियों के अभ्यास पर बहुत कड़ी नज़र रक्खी जाती है। छोटी कक्षाओं में तो पढ़ाई पर नित्य प्रश्न किये जाते हैं, किन्तु उच्च कक्षाओं में साप्ताहिक प्रश्न होते हैं। प्रति मास एक घंटे की लिखित परीक्षा भी होती है। प्रत्येक मास की कापियों के नम्बर रजिस्ट्रार के पास भेजे जाते हैं। प्रत्येक विद्यार्थी की प्रति मास की रिपोर्ट भी भेजी जाती है। जिस विद्यार्थी का जिस विषय का अभ्यास कम होता है, उस की सूचना रजिस्ट्रार विद्यार्थी को दे देता है।

अध्यापक को केवल रिपोर्ट भेज देने का अधिकार है। बाकी सब कुछ रजिस्ट्रार करता है। इस प्रकार की व्यवस्था के करण अमेरिकन विद्यार्थियों के लिए 'फेल' शब्द हंसी के सिवा और कुछ नहीं है। अमेरिका में भवभूति की उक्ति "वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जड़े" लागू नहीं होती। ऐसे विश्वविद्यालय को अमेरिकन सच्चा विश्वविद्यालय नहीं समझते। ऐसी पद्धति संसार के और किसी विश्वविद्यालय में नहीं है।

अमेरिका के बी० ए० को सब विषयों का पूरा ज्ञान होता है और उसकी बी० ए० पदवी सार्थक होती है। किन्तु भारत में एक तो बी० ए० पास होते ही लोगों का स्वास्थ्य उन से बिदा होजाता है, दूसरे क्लर्की करने के अतिरिक्त वे और कुछ करने योग्य नहीं रहते।

अमेरिका में विद्यार्थी से यदि कोई अपराध हो जाय तो उसे अध्यापक दण्ड नहीं देते। उसका मामला Students Self-government "विद्यार्थी स्वराज्य" नामक संस्था को दे दिया जाता है। इस संस्था के सभासद सर्वसम्मति से चुने हुए होते हैं। इसके अलावा विद्यार्थियों के हित के लिए प्रत्येक विश्वविद्यालय में Students Council होती है जो विद्यार्थियों की ओर से विश्वविद्यालय को हित की बातें बताती रहती है।

एक दूकान होती है जिस में साझीदार बनकर विद्यार्थी व्यापार करते हैं। अमेरिका में विद्यार्थियों को स्वतंत्र रूप से धार्मिक शिक्षा

नहीं दी जाती पर वाई० एम० सी० ए० नाम की एक स्वतंत्र संस्था होती है जो विश्वविद्यालय से कोई सम्बन्ध न रखने पर भी प्रत्येक विद्यार्थी पर नजर रखती है। धार्मिक आचरण का भार इसी संस्था पर होता है। प्रत्येक विद्यार्थी को इस संस्था से बड़ी मदद मिलती है।

इसके अलावा विद्यार्थियों और दूसरे लोगों की पढ़ाई में सहायता पहुंचाने के लिए रात्रि-विद्यालय खुले रहते हैं, जिन में कुली, मजदूर, कारख़ानों में काम करनेवाले, मुर्दा ढोनेवाले—सब पढ़ते हैं। गर्मियों की छुट्टियों में ग्रीष्म विद्यालय Summer Schools खुल जाते हैं जिनमें पढ़ाई होती है।

इस प्रकार अनेक साधनों के द्वारा अमेरिका-वासियों ने अपने देश को विद्यामन्दिर बना लिया है। शिक्षा का प्रसार करना ही वहाँ के विश्वविद्यालयों का मुख्य ध्येय है। अमेरिका में जो विषय सर्वोत्कृष्ट हैं वे ये हैं:—

१-कृषिशास्त्र (Agriculture), २-फलशास्त्र (Horticulture), ३-वस्तुकला (Civil, Mechanical and Electrical Engineering), ४-खनिजशास्त्र (Mining Engineering), ५-इस्पातकला (Irrigation Engineering), ६-अरण्यशास्त्र (Forestry), ७-अर्थशास्त्र (Political Economy) तथा राजनीतिशास्त्र (Politics), ८-समाजशास्त्र (Social Science), ९-मानसशास्त्र (Experimental Psychology), १०-वैद्यकशास्त्र और शस्त्रक्रिया (Medicine & Surgery), ११-दन्तशास्त्र (Dentistry), १२-औषधिशास्त्र (Pharmacy), १३-भूगर्भशास्त्र और आर्थिक भूगर्भशास्त्र (Economic Geology) १४-शिक्षणशास्त्र (Education), १५-सृष्टिशास्त्र (Physics), १६-रसायनशास्त्र (Chemistry), १७-खगोलशास्त्र (Astronomy) आदि विषय बहुत अच्छी तरह से सिखाये जाते हैं। अमेरिका के कैलीफोरनिया और चिकागो विश्वविद्यालय में संसार की सब से बड़ी दो दुरबीने हैं जिनसे सब आकाशमंडल हथेली की सरसों के बराबर दीखता है।

भारत के विश्वविद्यालय जिस पद्धति पर चल पड़े हैं उसे वे छोड़ते ही नहीं, उसमें उपयोगी और आवश्यक परिवर्तन करते ही नहीं, इसीलिए भारत की शिक्षा अंगभंग और बिना हाथ पैर की है। वह दिन सोने के अक्षरों से लिखकर स्मरण रखने योग्य होगा जिस दिन भारतीय विश्वविद्यालय सुधार की ओर आँख फेरेंगे। *

---

* अमेरिकन विद्यार्थी श्रीयुत कोकटूर, बी० एस० सी० के "Universities of U. S. A." के आश्रय से लिखित। अभी अमेरिकन सरकार ने कानूनी कौंसिल के सामने एक बिल उपस्थित किया है जिसके पास हो जाने पर दीन भारतीय छात्रों को अमेरिका जाकर पढ़ने में अनेक असुविधाएँ होंगी। इससे अपनी जातीय हानि है। भारतीयों को इसका विरोध करना चाहिये। ले०।

मनुष्य उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग क्यों करते हैं ?*

[लेखक—श्रीयुत नर्मदाप्रसाद वर्मा।]

इसका क्या कारण है कि मनुष्य उन वस्तुओं का प्रयोग इतनी अधिकता से करते हैं जो उपकार करने के स्थान में हर प्रकार से उनका अपकार करती हैं और उनको बेहोश करने में सहायक होती हैं ? शराब तम्बाकू, अफीम और और बहुत सी उन्मादक वस्तुएँ इतनी जनप्रिय क्यों हो रही हैं ? इनके प्रयोग की आदत का जन्म ही क्यों हुआ और यह आदत सभ्य और असभ्य जातियों में इतने वेग से क्यों फैली और क्यों अहर्निश फैलती जाती है ? इसका क्या कारण है कि जहां बीयर, शैम्पेन आदि का अस्तित्व नहीं है वहां का जनसमुदाय अफ़ीम या कोकेन व्यवहार करता है ? तम्बाकू का तो कुछ कहना ही नहीं। वह तो सर्वव्यापी और सर्वप्रिय है। मनुष्य इस प्रकार अपने चेतन को नष्ट करने की चेष्टा क्यों करते हैं ?

किसी मनुष्य से पूछो कि उसने मदिरापान क्यों आरम्भ किया और क्यों एक बार आरम्भ करके उसका परित्याग नहीं कर सकता ? उसका उत्तर होगा "मदिरापान बड़ा आनन्ददायक होता है। एक बार मदिरा पीने से मनुष्य का मन लहलहा उठता है, उसका हृत्कमल प्रफुल्लित हो जाता है और फिर सब कोई इसे पीते हैं।" वे लोग जिन्होंने यह विचार करने का कष्ट कभी नहीं किया है कि मद्यपान हानिकारक अथवा लाभदायक होता है यह कहेंगे कि मदिरा का प्रयोग मनुष्य के स्वास्थ्य को ठीक रखता है और उसके बल को बढ़ाता है। वे बहुत सी ऐसी ही बातें बकेंगे जो कि बिलकुल व्यर्थ साबित होचुकी हैं। एक तम्बाकू पीनेवाले से पूछिये कि उसने तम्बाकू पीना क्यों आरंभ किया और अब क्यों पीता है तो कदाचित वह यह उत्तर देगा कि "समय बिताने के लिये और सब कोई पीते हैं इसलिये भी।" अफ़ीम इत्यादि के प्रयोग करनेवालों से ऐसे ही उत्तर मिलने की संभावना है कि "समय बिताने के लिये, मनको प्रसन्न रखने के लिये, सब कोई पीते हैं इसलिये"। यही प्रायः सबके उत्तर होंगे कि 'चित्त को प्रसन्न रखने के लिये, समय बिताने के लिये' 'सब कोई करते हैं इसलिये'। हाथ का चलाना, सीटी का बजाना, सितार का बजाना यह सब बुरा नहीं है परन्तु प्रकृति के भाण्डार का इस प्रकार अपव्यय करना जिसको उत्पन्न करने में इतने धन, इतने परिश्रम का व्यय हुआ है उसका इस प्रकार से दुरुपयोग करना एक अत्यन्त गर्हित कर्म है। तम्बाकू, अफ़ीम इत्यादि को उत्पन्न करने के लिये लाखों मनुष्य दिन रात परिश्रम करते हैं, इतना पसीना बहाते हैं कि यदि वह एक वृहत्कुण्ड में एकत्रित किया जाय तो उसीसे सब खेतों का सिञ्चन हो सकता है। उपजाऊ भूमि के हज़ारों बीघे उनकी उत्पत्ति में लगा दिये जाते हैं। परन्तु ये सब बातें इनके संकुचित मस्तिष्क में नहीं समातीं और ये बड़ी निर्दयता के साथ उसी माल का अपव्यय करते हैं। यही नहीं, इन वस्तुओं का प्रयोग बड़ा हानिकारक है और मानवजाति के बड़े २ दुर्निवार्य दुःखों का उत्तरदाता है। बड़े २ संग्रामों से, संक्रामक रोगों से इतने अधिक मनुष्य नहीं मरते जितने इन वस्तुओं के प्रयोग से। सब आदमी इस बात को जानते और मानते हैं परंतु

* इण्डियन ओपिनियन में प्रकाशित Why do men stupefy themselves शीर्षक निबन्ध का भावानुवाद। लेखक।

तब भी जब वे यह कहते हैं कि समय बिताने के लिए, मनको प्रसन्न रखने के लिए वे तम्बाकू इत्यादि का प्रयोग करते हैं तो उनकी बातें निष्प्रयोजन बकवाद के अतिरिक्त और क्या हो सकती है ?

इसका और ही कारण है। हम बहुत से ऐसे मनुष्यों से बराबर मिलते हैं जो अपनी सन्तान को प्राणों से भी अधिक प्यार करते हैं और उनके लिये किसी प्रकार की हानि उठाने से नहीं हिचकते परंतु वेही लोग शराब, तम्बाकू और अफ़ीम में इतना धन उड़ा देते हैं कि उनके दारिद्र्याभिभूत भूखे बच्चों के खाने के लिए एक पैसा तक नहीं बचता। परिणाम यह होता है कि दुःख के थपेड़े खा खाकर वे थोड़ी ही अवस्था में कराल काल के कवल बन जाते हैं। यदि एक मनुष्य जिसके अनुसरणार्थ दो मार्ग खुले हैं सीधे और उपयोगी मार्ग को छोड़कर टेढ़े और दुःखदायी मार्ग का अवलम्बन करे, अपने प्यारे परिवार के कष्ट निवारण का विचार न करके उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग ही स्वीकृत करे, तो उसके ऐसा करने का कोई साधारण कारण नहीं हो सकता। वह इस विचार से यह नहीं करता कि उसको आनन्द मिलता है अथवा उसका चित्त प्रसन्न होता है, वह किसी बड़े कारण के प्रभाव में पड़कर ही ऐसा करता है।

टाल्सटाय कहते हैं, "वह कारण जहां तक मैं इस विषय में अध्ययन, मनन करने से और दूसरे मनुष्यों के और अपने उस अवस्था के आचरणों को, जब मैं शराब इत्यादि का प्रयोग करता था, भली भाँति देखने से जान सका हूं यह है। जब मनुष्य अपने जीवन का अनुसन्धान करता है तो वह उसमें दो वृत्तियों को पाता है। एक तो अंधी (blind) और शारीरिक (Physical) वृत्ति और दूसरी दृष्टियुक्त (Seeing) और आत्मिक (Spritual) वृत्ति। एक कूकी हुई मशीन की भाँति अन्धी और पाशविक वृत्ति का काम खाना, पीना, सोना, आराम करना, चलना, फिरना है। दूसरी अर्थात् आत्मिक वृत्ति पाशविक वृत्ति पर निर्भर है। वह स्वयं कुछ नहीं कर सकती, वह पाशविक वृत्ति के आचरण को देखा करती है और जब उससे सहमत होती है तो उससे मिलकर कार्य करती है नहीं तो अलग हो जाती है।"

इस जीवनानुसन्धान की समता दिशानिरूपण यंत्र की सुई से की जा सकती है जिसका कि एक किनारा उत्तर और दूसरा दक्षिण की ओर रहता है। जब तक हम लोगों से किया हुआ अनुसन्धान और वह सुई एक ही दिशा का दिग्दर्शन कराते हैं तब तक यह सुई एक अनिर्वचनीय आच्छादन से आच्छादित रहती है परंतु मतिवैपरित्य होते ही भेद तुरंत ज्ञात हो जाता है।

इसी रीति से दृष्टियुक्त आत्मिक वृत्ति जिसको हम अन्तःकरण (concience) के नाम से सम्बोधित करते हैं एक किनारे से उचित और दूसरे से अनुचित का दिग्दर्शन कराती है और उसके अस्तित्व का ज्ञान हमें तब तक नहीं होता जब तक हम उसके दिखाये हुए मार्ग का अनुसरण करते हैं अर्थात् अनुचित को छोड़कर उचित का अवलम्बन करते हैं परंतु जैसे ही उसकी आज्ञा के विरुद्ध हम कोई कार्य करते हैं उसके अस्तित्व का ज्ञान हमें होने लगता है और यह भी मालूम हो जाता है कि किस भाँति पाशविक वृत्ति अन्तःकरण के विरुद्ध चली। एक नाविक जैसे उसे यह बात मालूम हो जाती है कि वह अपनी नाव को उल्टे रास्ते पर लिये जाता है और नाव को रोक देता है और जब तक या तो वह ठीक रास्ते को नहीं जान लेता या इस बात के ज्ञान ही को और विचारों में निमज्जित नहीं कर देता नाव को आगे नहीं बढ़ाता। इसी भाँति प्रत्येक मनुष्य जो पाशविक वृत्ति और अन्तःकरण दोनों के अस्तित्व से अभिज्ञ है तब तक कोई कार्य नहीं कर सकता

जब तक या तो उसमें अन्तःकरण के अनुकूल चलने का साहस या उसके आदेशों का तिरस्कार करने का धृष्टता न हो। या तो उसे अन्तःकरण दर्शित मार्ग पर चलना होगा या उसे अपने से उन चिन्हों को छिपाना पड़ेगा जिनका कि प्रादुर्भाव तब होता है जब अन्तःकरण अवलम्बित मार्ग के प्रतिकूल अपनी सम्मति प्रकट करता है।

सम्पूर्ण मानवीय जीवन इन दो बातों से भरा होता है (१) अपने कार्यों को अन्तःकरण के आदेशों के अनुकूल करना और (२) पूर्ववत् अर्थात् अनुचित का अवलम्बन करके रहने के लिये अन्तःकरण के आदेशों को अपने से छिपाना।

बहुत से पहिली बात करते हैं और बहुत से दूसरी। पहिली बात करने में समर्थ होने के लिये एक ही मार्ग है। वह है नैतिक उन्नति, अपने से अन्धकार को दूर करना और प्रकाश को बढ़ाना जिससे अन्तःकरण द्वारा दर्शित मार्ग अच्छी तरह दिखाई पड़े। अन्तःकरण के आदेशों को अपने से छिपाने के लिये दो मार्ग हैं—एक बाह्य और दूसरा आन्तरिक। बाह्य अवलम्बन में मनुष्य को अपने को कार्य में लगाये रहना पड़ता है जिससे कि अन्तःकरण की बात सुनाई न दे और आन्तरिक अवलम्बन में अन्तःकरण ही को चुप करना पड़ता है। मनुष्य यदि अपने सामने की वस्तु को देखना न चाहे तो दो ही बातें कर सकता है। या तो उधर न देखकर दूसरी ओर अधिकतर चित्ताकर्षक वस्तुओं को देखने लगे या अपनी दृष्टि का ही किसी रीति से अवरोध कर ले। इसीभांति मनुष्य अन्तःकरण के आदेशों को अपने से दो तरह से छिपा सकता है (१) बाह्य अवलम्बन के द्वारा अर्थात् अपने मन को खेल में और विविध प्रकार के कार्यों में लगाने से (२) आन्तरिक अवलम्बन के द्वारा अर्थात् अन्तःकरण को चुप करने से। उन मनुष्यों के लिये, जिनकी कि सदसद्विचार की शक्ति इतनी तीव्र नहीं है, उन चिन्हों को छिपाने के लिये जिनके द्वारा अन्तःकरण उनके अनुचित जीवननिर्वाह की प्रणाली का प्रतिवाद करता है बाह्य अवलम्बन ही पर्याप्त है परन्तु उनके लिये जिनमें विवेक उस अवस्था को पहुंच गया है जब कि कोई अनुचित कार्य करना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव हो जाता है तब किसी प्रकार बाह्य अवलम्बन के द्वारा अपने से अन्तःकरण के आदेशों का छिपाना पर्याप्त नहीं होता। जीवननिर्वाह प्रथा और अन्तःकरण के संयोगाभाव के ज्ञान को छिपाने के लिये बाह्य अवलम्बन पर्याप्त नहीं है। यह ज्ञान मनुष्य को जीवननिर्वाह करने में बड़ी बड़ी कठिनाइयों का सामना कराता है और मनुष्य पूर्ववत् अनुचित रीति से रहने के निमित्त आन्तरिक अवलम्बन द्वारा अन्तःकरण को चुप करने के लिये उन्मादक वस्तुओं के प्रयोग से अपने मस्तिष्क को निकम्मा करने की चेष्टा करता है।

एक मनुष्य अन्तःकरण के आदेशों को न मान कर अपनी इच्छानुसार जीवन निर्वाह करता है। वह यह जानता है कि वह अन्तःकरण के उपदेशों का तिरस्कार करता है परन्तु उसमें इतना मानसिक बल नहीं कि वह अपने जीवन का सुधार कर सके। वह अपने मनको खेल कूद में लगा कर अन्तःकरण के उपदेशों को भूलने की चेष्टा करता है। जब वह निष्फल प्रयत्न होता है तब वह शनैः शनैः उन्मादक वस्तुओं के प्रयोग से अपने सच्चे मित्र अन्तःकरण को नष्ट करने का प्रयत्न करता है। अन्तःकरण के देदीप्यमान उल्का के बुझजाने से निबिड़ अन्धकार फैल जाता है और फिर वह मनुष्य निर्भय होकर कुमार्ग का अनुसरण करता है।

(२)

सम्पूर्ण संसार में उन्मादक वस्तुओं का जो इतना अधिक प्रयोग होता है उसका कारण न

स्वाद है न आनन्द आदि और न समय बिताना। उसका एक मात्र कारण अन्तःकरण के आदेशों को अपने से छिपाना है।

मैं एक दिन सड़क पर चला जा रहा था। बहुत से गाड़ीवान एक स्थान पर एकत्रित होकर कुछ वार्तालाप कर रहे थे। मैंने एक को कहते हुए सुना "यह सत्य है। जब मनुष्य शान्त होता है तो उसे लज्जावनत होना ही पड़ता है" जिस वस्तु के कारण शान्तावस्था में मनुष्य को लज्जित होना पड़ता था वही उन्मत्तावस्था में उसे अच्छी मालूम होती है। उन्मादक वस्तुओं के इतने विस्तृत प्रयोग का प्रधान कारण हमें इन शब्दों में मिलता है। जब मनुष्य अपने अन्तःकरण के प्रतिकूल कोई कार्य करता है तो उसे लज्जित होना पड़ता है; इस लज्जित होने से बचने ही के लिये शराब इत्यादि उन्माद जनक वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है। या जब मनुष्य कोई ऐसा कार्य करने पर प्रस्तुत होता है जो उसके अन्तःकरण के विरुद्ध है परन्तु जिसको करने के लिये उसकी पाशविक वृत्ति बाधित करती है तो वह अन्तःकरण के प्रतिवाद को शान्त करने के लिये इन वस्तुओं का प्रयोग करता है।

मनुष्य जब शान्त अर्थात् अपने होश में होता है तो चोरी करने से, हत्या करने से, वेश्या के यहां जाने से शर्माता है परन्तु उन्मत्त अर्थात् नष्टचेतन मनुष्य इन बातों के करने में नहीं शर्माता। यही कारण है कि जब कोई मनुष्य ऐसा काम करना चाहता है जो उसके अन्तःकरण के विरुद्ध है तो वह पहिले शराब इत्यादि पीकर अपने को बेहोश कर लेता है।

टालसटाय कहते हैं कि "एक मनुष्य ने मेरे कुटुम्ब की एक वृद्धा स्त्री को मार डाला था। अदालत में न्यायाधीश के सामने जो उसने शहादत दी उसे सुन कर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा कि जब नौकरानी चली गई और जब उसके हत्यात्मक कार्य करने का समय आया तब वह खड्ग लेकर अन्तःप्रकोष्ठ में जाने को प्रस्तुत हुआ। परन्तु उसको मालूम हुआ कि होश में वह यह कार्य नहीं कर सकता था। अतः वह लौट आया और दो ग्लास शराब के जो उसने पहिले से तैयार कर रक्खे थे पिये तब उसको कोई ग्लानि नहीं मालूम हुई और उसने स्वच्छन्दता से उस बेचारी वृद्धा को इस असार संसार से उठा दिया। संसार में ९० फीसदी पाप कर्म इसी रीति से किये जाते हैं। पापी लोग अपने साहस को जागृत रखने के लिये मद्यपान करते हैं।"

आधी से अधिक स्त्रियां जो पतित और कुत्सित कर्म करके अपना जीवन निर्वाह करती हैं मद्य ही के प्रभाव से ऐसा करने में समर्थ होती हैं। जितने संसार में बुरे कर्म होते हैं वे अधिकतर उन्मत्त ही मनुष्यों द्वारा किये जाते हैं। वे यह जानते हैं कि मद्य में इतनी सामर्थ्य है कि वह अन्तःकरण को चुप कर सके और इसलिये वे जान बूझ कर उसको प्रयोग में लाते हैं।

मनुष्य अपने ही अन्तःकरण को चुप करने के लिये मदिरादि का प्रयोग नहीं करते परन्तु यदि वे दूसरों से निन्द्य और उनके अन्तःकरण के विरुद्ध कार्य कराया चाहते हैं तब भी वे मद्यादि पिला कर उनको बेहोश और अन्तःकरण रहित कर देते हैं। घमासान लड़ाई होने के पहिले सैनिक लोगों को मदिरा पीने को दी जाती है ताकि वे अपने भाइयों का गला बिना किसी ग्लानि के अच्छी तरह काट सकें। सिवास्टोपूल (Sevastopol) को जिन सिपाहियों ने घेरा था प्रायः सभी मदिरा पिये हुए थे।

जब कोई सेना किसी सुरक्षित गढ़ पर विजय प्राप्त कर लेती है परन्तु लूट मार करने

और उसके अरक्षित निवासियों की हत्या करने से हिचकती है तो उसको मदिरा पीने को दी जाती है और तब वह बड़ी सुगमता से अपना हत्यारा काम करती है। वे ही सैनिक जो थोड़ी देर पहिले हत्या के नाम से डरते और हिचकते थे धरित्री को अपने असहाय अस्त्र-हीन भाइयों के रक्त से रञ्जित करने में कुछ भी आनाकानी नहीं करते।

प्रत्येक मनुष्य को बहुत से ऐसे दृष्टान्त याद होंगे जिनमें मदिरापान किसी अनुचित आचरण की स्मृति को मिटाने के लिये प्रारम्भ किया गया था। इस बात को सभी मानते हैं कि वे ही लोग मदिरा की ओर अधिकतर आकर्षित होते हैं जिनका जीवन निन्दनीय कर्मों के करने में व्यतीत होता है। जब उनका जीवन संग्राम में सदसत् का ज्ञान करानेवाला मित्र अन्तःकरण उठकर उनके अनुचित आचरण का प्रतिवाद करता है तो अपने को लज्जा से और ग्लानि से बचाने के लिये वे उसको चुप करने को बाधित हो जाते हैं और तब वे मदिरा से उसकी जगमगाती ज्योति को शान्त करने की चेष्टा करते हैं। चोर, वेश्या, डाकू इत्यादि इसी कारण से उन्मादक वस्तुओं के प्रयोग के बिना रह ही नहीं सकते।

इस बात को सब जानते और मानते हैं कि अन्तःकरण के धिक्कारने से बचने ही के लिये उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है और जीवन में ऐसे अवसर अवश्य पड़ ही जाते हैं जब अन्तःकरण को चुप करना आवश्यक हो जाता है। इस बात का भी प्रतिवाद कोई नहीं करेगा कि मदिरादि के प्रयोग से अन्तःकरण शिथिल अवश्य हो जाता है। शराब पीने से बेहोश हुआ मनुष्य उन कार्यों के करने से नहीं हिचकेगा जिनको एक संयमी मनुष्य के लिये करना बड़ा कठिन है और जिनको वही उन्मत्त मनुष्य शान्त होने पर निन्द्य और कुत्सित समझेगा। इस से सब कोई सहमत हैं। परन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि जब मद्यपान का परिणाम बुरा नहीं होता, जब मदिरा पी कर मनुष्य चोरी, जीवहत्या विश्वासघात इत्यादि नहीं करते, जब मदिरादि उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग किसी बड़े अपराध के बाद नहीं किया जाता जिससे यह बात प्रमाणित हो कि मदिरा-पान का मुख्य उद्देश्य अन्तःकरण को कुण्ठित करना ही है, जब तम्बाकू, अफ़ीम और अन्य उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग अपराधियों द्वारा नहीं किया जाता परन्तु उन मनुष्यों द्वारा जो ऐसे मार्ग का अनुसरण करते हैं जो दंड्य नहीं कहा जा सकता और जब ये वस्तु अधिक मात्रा में नहीं परन्तु कभी कभी और थोड़ी मात्रा में प्रयुक्त की जाती हैं तो यह कहा जाता है कि ये अन्तःकरण को अवरुद्ध नहीं कर सकतीं। इसीके ज़ोर पर यह कहा जाता है कि भोजन के पश्चात् मदिरा का पीना, सिगरेट का पीना, अन्तःकरण को कण्ठावरुद्ध करने के लिये नहीं परन्तु आनन्दप्राप्ति के लिये होता है; इसका मनुष्य के अन्तःकरण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

यह कहा जाता है कि यदि मदिरादि उन्मादक वस्तुओं के प्रयोग के बाद कोई अपराध न किया जाय, न चोरी की जाय, न जीवहत्या की जाय परन्तु वेही मूर्खता के काम किये जांय जो प्रति दिवस किये जाने के कारण चित्त को आकर्षित नहीं करते अर्थात् कौतुकरहित हो गये हैं तो ये काम स्वयं होते हैं और करनेवाला इनको करने के लिये मदिरा से बाध्य नहीं किया जाता। यह कहा जाता है कि जब मनुष्य कोई दण्ड्य कार्य नहीं करता तो उसे अपने अन्तःकरण को कण्ठावरुद्ध करने की कोई आवश्कता नहीं। यह भी कहा जाता है कि उन मनुष्यों की जीवन प्रणाली, जिनकी प्रकृति का उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग करना एक अवियोज्य भाग हो गया है किसी प्रकार से निन्द्य नहीं होती और यदि मदिरा या तम्बाकू उनको पीने को न मिले तो

भी वे उसी रीति से जीवन निर्वाह करेंगे। लोग इस बात को भी मान बैठे हैं कि उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग उनके अन्तःकरण पर किसी भांति का प्रभाव नहीं डालता।

यद्यपि अपने अपने अनुभव से सब इस बात को जानते हैं कि मद्यपान उनके मानसिक भाव को परिवर्तित कर देता है, मद्य पीकर उस कार्य के, जिसका करना, बिना मदिरा पिये बिल्कुल असम्भव हो जाता है, करने में ज़रा भी नहीं हिचकते। जब कभी उनका अन्तःकरण उनकी जीवन-निर्वाह प्रणाली की निन्दा करता है तो उसको चुप करने के लिये वे उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग करते हैं, वे मदिरादि पीकर अपने जीवन का पक्षपातहीन अनुसाधन नहीं कर सकते और उन्मादक वस्तुओं के नियमित और थोड़ी मात्रा में प्रयोग का वैसा ही परिणाम होता है जैसा कि उनके कभी कभी और अधिक मात्रा में लेने का फल होता है। तब भी मदिरा पीने वाले इस बात को कहे बिना नहीं रहते कि वे उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग अन्तःकरण को स्तम्भित करने के लिये नहीं किन्तु आनन्द प्राप्त करने और चित्त को प्रसन्न रखने के लिये करते हैं।

(१) यदि मदिरा के कभी कभी और अधिक मात्रा में प्रयोग का परिणाम अन्तःकरण का स्तम्भन होता है तो उसके नियमित प्रयोग का भी परिणाम वैसा ही होगा चाहे वह थोड़ी मात्रा में प्रयुक्त की जाय अथवा अधिक में (२) प्रत्येक उन्मादक वस्तु में अन्तःकरण को स्तम्भित करने की सामर्थ्य होती है और इस सामर्थ्य का अभाव तब होता है जब मदिरादि के प्रभाव में पड़कर जीवहत्या करने से, डाकेज़नी और विश्वासघात करने से, मनुष्य ज़रा भी नहीं हिचकता, जब वह उन्मत्तावस्था में ऐसे कार्य कर बैठता है, ऐसी बातें कह डालता है जो शान्त होने पर उसे अरुचिकर ही नहीं वरन निन्द्य और निकृष्ट मालूम होती हैं।

(३) यदि मदिरादि उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग चोरों और डाकुओं से अन्तःकरण को स्तम्भित करने के लिये किया जाता है तो उन मनुष्यों के द्वारा भी जो ऐसे मार्ग का अनुसरण करते हैं जो उनके अन्तःकरण के अनुकूल नहीं है परन्तु जिसको और लोग मान्य और अच्छा समझते हैं। उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग इसलिये अर्थात् अन्तःकरण को कण्ठावरुद्ध करने के लिये किया जाता है। इन उपर्युक्त बातों को अच्छी तरह से समझने के लिये हमको निष्पक्षपात होकर विचार करना चाहिये।

इस बात का प्रतिवाद कोई नहीं कर सकता है कि उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग थोड़ी मात्रा में या अधिक मात्रा में कभी कभी या रोज़ रोज़ गरीब या धनी मनुष्यों द्वारा अन्तःकरण को स्तम्भित करने के लिये नहीं किया जाता। मदिरापान का एक ही कारण हो सकता है और वह है अन्तःकरण को कण्ठावरुद्ध करना और अपने को छिपाना जिनके द्वारा अन्तःकरण अवलम्बित से उन चिह्नों मार्ग का प्रतिवाद करता है।

(२)

उन्मादक वस्तुओं के और विशेषतः तम्बाकू के इतने विस्तृत प्रयोग का यही एक कारण हो सकता है। यह कहा जाता है कि तम्बाकू मनुष्य को प्रसन्न रखती है, विचार करने में उसको सहायता देती है और बिना कोई बुरा परिणाम दिखलाये किसी सामान्य आदत की भांति चित्त को अपनी ओर आकर्षित करती है परन्तु जब कि तम्बाकू पीने की इच्छा हम में उत्पन्न होती है उस समय हम देखें तो यह बात हमें निश्चितरूप से ज्ञात हो जायगी कि तम्बाकू पीने का वही परिणाम होता है जो मदिरा पीने का और मनुष्य जानबूझ कर अपने अन्तःकरण को स्तम्भित करने के लिये तम्बाकू पीता है। यदि तम्बाकू में केवल चित्त को प्रसन्न रखने की सामर्थ्य होती तो उसकी चाह इतनी अधिक न होती जितनी

कि देखी जाती है और मनुष्य ख़ास ख़ास समय इसके प्रयोग की इच्छा न करते। मनुष्य यह कभी न कहते कि बिना भोजन किये दो एक दिवस व्यतीत कर देंगे परन्तु तम्बाकू पीना नहीं छोड़ेंगे।

वह मनुष्य जिसने अपनी वृद्धा स्वामिनी को मार डाला था कहता था कि जब उसके गले पर उसने छुरी फेरी और जब वह बूढी स्त्री भूमिसात् होगई और उस के गले से खून बहने लगा उसमें इतनी शक्ति नहीं रही कि वह अपने हत्यात्मक कार्य को समाप्त कर सके और कान में कहने लगा "मैं उसको समाप्त न कर सका, सोने के कमरे से बैठक में गया और वहां दो एक सिगरट पीने के पश्चात् मुझे में कुछ शक्ति आई।" जब तक उसने अपने अन्तःकरण को तम्बाकू से स्तम्भित नहीं किया तब तक वह इस निन्द्यकार्य को नहीं कर सका। तम्बाकू पीने पर जब उसका अंन्तःकरण मृतप्राय हो गया तब वह सोने के कमरे में गया और अपनी स्वामिनी उस बूढ़ी स्त्री का गला काटने में समर्थ हुआ।

उस समय तम्बाकू पीने की इच्छा उसमें इसलिए उत्पन्न नहीं हुई कि वह तम्बाकू पीकर अपने चित्त को प्रसन्न करे। वह अपने अन्तःकरण को जो कि उसके इस निन्द्य कार्य के सम्पादन में व्याघात स्वरूप हो रहा था स्तम्भित करना चाहता था और इसलिए उसने तम्बाकू का प्रयोग किया।

प्रत्येक मनुष्य जोकि तम्बाकू के ऐन्द्रजालिक जाल में फँस चुका है अपने जीवन को सूक्ष्मतया देखने पर ऐसे बहुत से अवसर देखेगा जब कि तम्बाकू पीने की इच्छा उसमें चित्त को प्रसन्न करने के लिये नहीं परन्तु बहुत से ऐसे विचारों पर विस्मृति का परदा छोड़ने के लिये उत्पन्न हुई जोकि श्यामवर्ण मेघों के समान एकत्रित होकर उसके मनःनभोमंडल को अन्धकाराबृत करते थे। टालसटाय कहते हैं "मैं जब उस समय का ध्यान करता हूं जब मैं तम्बाकू पिया करता था तो यह बात मुझे अच्छी तरह से याद आती है कि तम्बाकू पीने की इच्छा मुझ में तब उत्पन्न होती थी जब मैं किसी बात पर कुछ विचार करना नहीं परन्तु उसे भूलजाना चाहता था। मैं यह जानता हूं कि मुझे बहुत सा कार्यकरना है परन्तु कार्य करने की इच्छा नहीं होती, अतः मैं तम्बाकू पीता हूं। मैंने किसी से मिलने का वादा किया था परन्तु कार्यवश अपनी प्रतिज्ञा को पूरा न कर सका। मैं इस बात को भूलने के लिये तम्बाकू का प्रयोग करता हूं। मैं क्रुद्ध होता हूं और क्रोध में लोगों से बहुत सी अनुचित बातें कह डालता हूं। मैं जानता हूं मुझे ऐसा न करना चाहिये परन्तु मैं अपने जी की बात कहना चाहता हूं, अतः मैं तम्बाकू पीता हूं। मैं जुआ खेलने में बहुत सा रुपया हार जाता हूं इस बात को भूलने के लिये मैं तम्बाकू पीता हूं। मैंने कोई ग़लती की। मैं जानता हूं कि मैंने ग़ल्ती की परन्तु उसे स्वीकार नहीं करना चाहता। अतः मैं तम्बाकू पीता हूं। मैं कोई ऐसी पुस्तक लिखता हूं जो कि प्रचलित मत के प्रतिकूल है परन्तु मैं लिखना छोड़ना नहीं चाहता इसलिए मैं तम्बाकू को पीता हूं।"

तम्बाकू अन्य उन्मादजनक वस्तुओं के सदृश मनुष्य को बड़ी सुगमता से नष्टचेतन तो कर ही देती है और इस पर भी सामान्य मनुष्य उसकी अनुपयोगिता और हानिकारकता को प्रमाणित नहीं कर सकते परन्तु उसमें एक विशेष गुण और है। उसे कितनी आसानी से लोग अपने साथ ले जा सकते हैं। तीन चार सिगरट या सिगार अपनी जेब में रख लिये और जहाँ कहीं अवकाश मिला दम्भ से निकाल कर मुंह में पलीता लगा लिया और उसी के साथ अपने अन्तःकरण को भी भस्मीभूत कर डाला। एक! दो! तीन! और अपने बच्चे

मिथ्य अन्तःकरण के स्थान में एक भस्म का ढेर हो गया। फिर मनुष्य बे-नकेल के ऊँट की भाँति या बिना दिशानिरूपण यन्त्र की नौका की भाँति इधर उधर टकराता फिरता है। अफ़ीम के प्रयोग के लिये या शराब के प्रयोग के लिये किसी न किसी सामग्री की आवश्यकता अवश्य होती ही है और यह सामग्री हर समय अपने साथ रह नहीं सकती परन्तु तम्बाकू के प्रयोग के लिये किसी विशेष सामग्री की आवश्यकता नहीं होती। थोड़ी सी तम्बाकू और एक काग़ज़ का टुकड़ा! बस बेड़ा पार है। और फिर अफ़ीम या शराब के प्रयोग करनेवालों को सब कोई घृणा की दृष्टि से देखते हैं परन्तु सिगरट पीने वालों को तो फैशनेबिल जैंटिलमैन का अनुज्ञापत्र मिल जाता है और फिर बिना किसी रोक टोक के वे सामाजिक अत्याचार किया करते हैं। तम्बाकू और अन्य उन्मादक वस्तुओं में इतना भेद और है। तम्बाकू पीकर मनुष्य केवल उसी बात को भूलता है जिसको वह भूलना चाहता है। शराब इत्यादि का जब तक प्रभाव रहता है तब तक मनुष्य कोई कार्य ठीक तरह से नहीं कर सकता। हम एक ऐसा काम करना चाहते हैं जो कि हमें नहीं करना चाहिये। हम सिगरेट पीकर अपने अन्तःकरण के प्रतिवाद को शान्त कर लेते हैं और कार्य होने के बाद फिर भले चंगे हो जाते हैं। हम ने कोई ऐसा कार्य किया है जिसकी स्मृति हमें कष्ट पहुंचाती है, बस एक सिगरेट या सिगार पिया और उस स्मृति पर विस्मृति का परदा पड़ गया।

इस बात को सभी जानते हैं कि मनुष्य तम्बाकू इत्यादि का प्रयोग आनन्द प्राप्त करने अथवा समय बिताने के लिये नहीं परन्तु अपने अन्तःकरण को जब वह किये हुए या किये जाने वाले किसी अनुचित कार्य का प्रतिवाद करता है कंठावरुद्ध करने के लिये करते हैं। यह तो है ही परन्तु मनुष्य की जीवननिर्वाह-प्रणाली और तम्बाकू पीने की आदत में भी घनिष्ट सम्बन्ध है। मनुष्य जैसे आदमियों की संगति में रहता है वैसा स्वयं भी हो जाता है। अंगरेज़ी किम्वदन्ती A man is known by the company he keeps अर्थात् "आदमी अपनी संगति के अनुसार जाना जाता है" तो सब पर विदित ही है।

बच्चे तम्बाकू पीना कब प्रारम्भ करते हैं? जब उनके बचपन की सरलता उनका साथ छोड़ देती है। इसका क्या कारण है कि अच्छी सङ्गति पाते ही मनुष्य तम्बाकू पीना छोड़ देते परन्तु बुरी सङ्गति में पड़ते ही फिर पीना प्रारम्भ कर देते हैं। करीब करीब सब जुआरी तम्बाकू क्यों पीते हैं? वे स्त्रियां जिनकी कि जीवनप्रणाली अच्छी और अनुकरणीय है सब से कम तम्बाकू का प्रयोग क्यों करती हैं? वेश्याएँ और पागल आदमी क्यों तम्बाकू से इतना प्रगाढ़ प्रेम रखते हैं? आदत तो आदत है ही परन्तु तम्बाकू पीने का प्रधान कारण अन्तःकरण के कण्ठावरुद्ध करने की इच्छा ही है और इस इच्छा की पूर्ति तम्बाकू के प्रयुक्त किये जाने पर हो भी जाती है।

यदि प्रत्येक तम्बाकू पीनेवाले की आदतों को हम सूक्ष्मतया देखें तो हमें यह बात अच्छी तरह ज्ञात हो जायगी कि तम्बाकू में अन्तःकरण को कण्ठावरुद्ध करने की सामर्थ्य कहां तक है। प्रत्येक तम्बाकू पीनेवाला जब विवश होकर तम्बाकू पीने के लिए बाध्य होजाता है तो उन बातों को स्वयं पहिले नहीं भूल जाता है जिन बातों को वह दूसरों से कराना चाहता है और जिनको वह स्वयं तब तक करता है है जब तक तम्बाकू के संलग्न से उसकी बुद्धि कुण्ठित नहीं हो जाती और वह कर्तव्याकर्तव्य-विवेकशून्य नहीं हो जाता। कोई पढ़ा लिखा आदमी इस बात का अनुमोदन नहीं करेगा कि किसी के सुख या शान्ति को नष्ट करना उचित

है बल्कि सभी इसे अनुचित और निन्द्य समझेंगे। जिस कमरे में बहुत से लोग बैठे हैं उसे मैला कर देने से, शोर गुल करने से या और कोई काम करने से जिनसे कि लोगों को दुःख हो सभी हिचकेंगे परन्तु हज़ार में से शायद ही एक ऐसा तम्बाकू पीनेवाला हो जो इस बात का विचार करता हो कि जिस कमरे की वायु को मैं तम्बाकू की दुर्गन्ध से खराब कर रहा हूं उसमें बहुत सी ऐसी स्त्रियां और लड़के भी वर्तमान हैं जिन्होंने तम्बाकू के दिव्य रस का आस्वादन नहीं किया है और न सिगरेट की अग्नि में अपनी बुद्धि को भस्मीभूत ही किया है।

यदि तम्बाकू पीनेवाले अपने सन्निकटस्थ मनुष्यों से यह कहने का कष्ट करते भी हैं कि "आशा है हम लोगों का तम्बाकू पीना आपको अरुचिकर अथवा कष्टदायक न होगा" तो सज्जनता और समाज के नियमों के अनुसार उनको यदी उत्तर दिया जाता है कि "बिल्कुल नहीं। आप स्वतंत्रता से तम्बाकू का प्रयोग कीजिये।" ऐसे उत्तर के देनेवालों में बहुत से ऐसे भी होंगे जो विषैली वायु में श्वास लेना पसन्द न करते हों और तश्तरियों और अन्य अन्य जगहों में सिगार के टुकड़ों को पड़ा देखकर जिनका मन अवश्य विचलित हो उठता हो। यदि बूढ़े या जवान आदमी दूसरों के तम्बाकू पीने में कोई बाधा डालना नहीं चाहते तो बच्चों को उनका तम्बाकू पीना कदापि अरुचिकर नहीं हो सकता। बहुत से आदमी जो अहर्निश सज्जनता और लोकहितैषिता की हामी भरा करते हैं छोटे २ कमरों में तम्बाकू पीने से बिल्कुल नहीं हिचकते। बिना अन्तःकरण के आदेशों पर ध्यान दिये वे हवा को तम्बाकू के धुंएँ से विषैली कर डालते हैं।

बहुत से आदमी ऐसा कहते हैं और मैं भी कहा करता था कि तम्बाकू मानसिक कार्यों में बड़ी सहायता देती है और यह कहना वास्तव में सत्य प्रतीत होता है जब हम एक आदमी के केवल मानसिक कार्य के बाहुल्य पर ही ध्यान देते हैं। जो मनुष्य तम्बाकू का अनन्य उपासक है और जो अपने विचारों के औचित्य और अनौचित्य पर विशेष ध्यान नहीं देता उसे यह ज्ञात होता है कि वह बहुत से विचारों का स्वामी हो गया। उसको यह इस लिए नहीं मालूम होता कि वास्तव में उसके पास बहुत से विचार हैं बल्कि इसलिए कि वह अपने विचारों को अपने कब्जे में रख नहीं सकता।

जब कोई आदमी काम करता है तो उसमें दो वृत्तियां सदा वर्तमान रहती हैं और वह इन वृत्तियों के अस्तित्व से अभिज्ञ भी रहता है। एक वृत्ति जो काम करती है और दूसरी जो काम की प्रशंसा करती है। प्रशंसा जितनी कम और समझ बूझ कर की जाती है काम भी उतना ही कम और अच्छा होता है और प्रशंसा जितनी ही अधिक और बिना समझे बूझे की जाती है काम भी उतना ही अधिक और खराब होता है। जब यह प्रशंसक वृत्ति किसी ऐसी वस्तु के प्रभाव में पड़ जाती है जो उसको स्तम्भित कर देती है तो कार्य अधिक होता है परन्तु वह कार्य अच्छे गुणों से न्यून अवश्य होता है।

'यदि मैं तम्बाकू का प्रयोग न करूं तो मैं लिख नहीं सकता। मैं काम शुरू तो करता हूं मगर जारी नहीं रख सकता। यही प्रायः सभी कहते हैं और यही मैं भी कहा करता था। इस कहने का मतलब क्या है। इस का यही मतलब है कि जो यह कहते हैं उनको या तो कुछ लिखना ही नहीं है या जो उनको लिखना है उससे वे पूर्णतया अभिज्ञ नहीं हैं परन्तु उसे केवल अस्पष्ट रूप से जानते हैं और उनकी अन्तस्थ प्रशंसक वृत्ति उनको यह बात बताती है। यह बात उनको वह तभी तक बताती है जब तक वह तम्बाकू

द्वारा स्तम्भित नहीं की जाती है। यदि हम तम्बाकू का प्रयोग नहीं करते हैं तो या तो जो कार्य हमने प्रारम्भ किया है उसे हमें छोड़ देना पड़ेगा या उस समय तक प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी जब तक हमारा विचार हमारे चित्त में बिलकुल अस्पष्ट न हो जाय। हम अपने इन अस्पष्ट विचारों को समझने का प्रयत्न करेंगे। उन व्याघातों को जो हमें अपने विचारों को अच्छी तरह समझने नहीं देते पराजित करेंगे और एकाग्र मन होकर अपने विचारों को समझेंगे परन्तु जब हम तम्बाकू का प्रयोग कर लेते हैं तो हमारा अन्तस्थ समालोचक कण्ठावरुद्ध हो जाता है और हमारे मार्ग के सब व्याघात एक दम हट जाते हैं। जब हम तम्बाकू पीने से उन्मत्त नहीं थे, उस समय हमको जो अरुचिकर और निन्द्य मालूम होता था वही तम्बाक पीने पर आवश्यक और रुचिकर प्रतीत होने लगता है। जो अस्पष्ट था वह स्पष्ट हो जाता है। जिन व्याघातों ने हमारे मार्ग को अवरुद्ध कर दिया था वे लुप्त हो जाते हैं और फिर हमारी लेखनी बिना किसी रोक टोक के कार्य में प्रवृत्त हो जाती है। हम बहुत सा काम जल्दी जल्दी कर डालते हैं।

(४)

यह क्या सम्भव है कि शराब इत्यादि पीने से जो थोड़ा सा मानसिक परिवर्तन हो जाता है उसका परिणाम बहुत बड़ा हो? "यदि मनुष्य तम्बाकू और अफीम के प्रयोग से या शराब को अधिकता से पीने से गिर कर बेहोश हो जाय तो वास्तव में परिणाम बहुत बड़ा कहा जा सकता है परन्तु थोड़ी तम्बाकू पीने से जो मानसिक परिवर्तन होता है उसका परिणाम बहुत बड़ा नहीं हो सकता" यह बहुधा कहा जाता है। लोग यह मान बैठे हैं कि अन्तःकरण का थोड़ा सा स्तम्भन, सदसद्विवेक की शक्ति का थोड़ा सा शिथिल होजाना जीवन पर कोई बड़ा प्रभाव नहीं डाल सकता। जो लोग यह कह सकते हैं वे यह भी कह सकते हैं कि घड़ी यदि पत्थर पर दे मारी जाय तभी उसको कोई हानि पहुंच सकती है परन्तु यदि थोड़ी सी धूल उसमें चली जाय तो उसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। जिस प्रकार यदि घड़ी के पुर्जे मैले हो जायँ तो घड़ी रुक जायगी उसी प्रकार यदि मनुष्य की अन्तरात्मा थोड़ी सी भी कुण्ठित हो जाय तो वह अपने कर्तव्यों का पालन कदापि नहीं कर सकता।

यह बात स्मरण रखने के योग्य है कि मनुष्य का काम करना उसके हाथ पैरों पर नहीं है परन्तु उसके ज्ञान या चेतना (consciousness) पर है। मनुष्य हाथ पैर से भले ही मोटा ताज़ा हो परन्तु एक बार यदि वह चेतनारहित हो जाय तो वह किसी काम का नहीं रहता। और जब मनुष्य अपने हाथ पैर से काम करने की इच्छा करता है तो उसके ज्ञान या चेतना में कुछ परिवर्तन अवश्य होता है। इसी परिवर्तन को अच्छी तरह समझने पर हम मनुष्य के सब कामों को अच्छी तरह समझ सकते हैं परन्तु ये परिवर्तन बहुत ही सूक्ष्म और दुर्ज्ञेय होते हैं।

रशिया देश का ब्रुलोफ़ एक बड़ा नामी गिरामी चित्रकार हो गया है। एक दिन उसका एक शिष्य उसके सामने एक चित्र लाया। चित्र अच्छा बना हुआ था परन्तु गुरु जी ने थोड़ी सी अशुद्धि निकाल ही दी। शिष्य को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह कहने लगा, "आपने चित्र को बहुत थोड़ा सा ठीक किया है परन्तु तस्वीर बिलकुल बदल गई है"। गुरु जी ने उत्तर दिया कि "शिल्पकला तभी प्रारम्भ होती है जब मनुष्य को इस थोड़े से का विवेक हो जाता है।"

ब्रुलोफ़ का यह कहना शिल्पकला ही के विषय में ठीक नहीं है परन्तु मानवीय जीवन से भी इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब मनुष्य

को इस "थोड़े से" का ज्ञान हो जाता है, जब बहुत से सूक्ष्म और दुर्ज्ञेय परिवर्तन पैदा होने लगते हैं और मनुष्य उनको जान लेता है तभी वास्तविक जीवन प्रारम्भ होता है। जहाँ बहुत से बाह्य परिवर्तन हुआ करते हैं—जहाँ मनुष्य चलते फिरते लड़ते और एक दूसरे का गला काटते हैं वहाँ सच्चा जीवन नहीं होता परन्तु वहीं होता है जहाँ ये छोटे २ सूक्ष्मातिसूक्ष्म आन्तरिक परिवर्तन होते हैं।

रासकोलनिकोफ़* (Raskolinkof) ने अपना सच्चा वास्तविक जीवन तब नहीं व्यतीत किया जब उसने वृद्धा स्त्री या उसकी भगिनी की हत्या की। जब उसने उस वृद्धा स्त्री और विशेषतः उसकी भगिनी के जीवनतन्तु को खड्ग के एक प्रहार से काटा तब उसका जीवन अपने स्वाभाविक प्रवाह से प्रवाहित नहीं हो रहा था परन्तु वह एक मशीन की भाँति था और उसे वह कार्य करना पड़ा जो वह करना नहीं चाहता था। उसने उस समय वह गोली छोड़ दी जो उसमें बहुत दिनों से भरी हुई थी। उसने एक स्त्री को संसार से उठा दिया। दूसरी उसके सामने थी। कुठार उसके हाथ में था—उसने उसका भी काम तमाम किया।

रासकोलनिकोफ़ ने अपना सच्चा स्वाभाविक जीवन तब नहीं व्यतीत किया जब वह वृद्धा की भगिनी से मिला परन्तु केवल उसी समय जब उसने किसी स्त्री की हत्या नहीं की थी, न किसी अपरिचित के घर में हत्या के विचार से प्रवेश किया था, न अपने हाथ में कभी कुठार उठाया था, न अपने कोट में कुठार छिपाया था और जब अपने कमरे में आराम कुर्सी पर लेट कर वह जीवहत्या या किसी निरपराध मनुष्य को दुनिया से उठा देने के विषय में नहीं विचार करता था परन्तु इन बातों पर विचार करता था कि उसे पिटर्सबर्ग (Petersburg) में रहना चाहिये या किसी अन्य स्थान में, उसे अपनी माता से रुपया लेना चाहिये या नहीं उसी समय उसका सच्चा जीवन व्यतीत हुआ था, ऐसे ही समय जब उसकी पाशविक वृत्ति बिलकुल निश्चल थी उसने इस बात का स्थिर किया कि उसे वृद्धा स्त्री को मारना चाहिये या नहीं। ऐसे समय पर मनुष्य को बहुत समझ बूझकर उन सवालों को हल करना चाहिये जो उसके सामने आते हैं और इस समय सब से अधिक भय इस बात का है कि कहीं एक शराब का ग्लास या एक सिगरट रङ्ग भङ्ग न कर दे। ऐसे समय शराब या तम्बाकू पीकर किसी प्रश्न का निरूपण ठीक रीति से नहीं होता। अन्तःकरण कण्ठावरुद्ध हो जाता है और मनुष्य रासकोलनिकोफ़ की भाँति अपनी पाशविक वृत्ति के आधीन हो जाता है।

मनुष्य के ज्ञान या चेतना में जो परिवर्तन होते हैं वे सूक्ष्म और दुर्ज्ञेय तो अवश्य होते हैं परन्तु कभी २ उनका परिणाम बहुत बड़ा होता है। हम अपने मन में किसी बात का निश्चित करते हैं और कार्य करना आरम्भ कर देते हैं। हमारे ऐसा करने के बहुत बड़े परिणाम हो सकते हैं-सम्भव है सैकड़ों घर नष्ट हो जायँ, लाखों रुपये नष्ट हो जायँ, हज़ारों आदमियों की जीवनलीला पर सदा के लिए पर्दा पड़ जाय परन्तु मनुष्य की चेतना में जो बात छिपी थी और जिसका परिणाम यह सब है उससे गुरुतर बात और कोई नहीं हो सकती है। जो कुछ हो सकता है उसकी सत्ता मानवीय चेतना से स्थिर कर दी जाती है।

लोगों को यह न समझ बैठना चाहिये कि जो कुछ मैं कहता हूं उसका इच्छा की स्वतन्त्रता के प्रश्न से कुछ सम्बन्ध है। इस समय इस विषय पर वादानुवाद करना बिलकुल अनावश्यक है। जो मनुष्य चाहे इच्छा की स्वतन्त्रा

* Dostoyetsky लिखित "Crime and punishment" नामक उपन्यास का नायक। अनु०।

कर सकता है या नहीं इस प्रश्न का बिना निर्णय किये ही यह कहना हितकर जान पड़ता है कि चूंकि मनुष्य का कार्य करना चेतना या ज्ञान के सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिवर्तनों पर निर्भर है इसलिए हमें उस अवस्था पर जब कि इन परिवर्तनों के जन्म होने की विशेष सम्भावना है विशेष ध्यान देना चाहिये। जिस तराजू में हमें कोई वस्तु तौलना है उसके पासङ्ग इत्यादि पर हमारा विशेष ध्यान रहता है। इसी प्रकार उस अवस्था पर जब कि इन परिवर्तनों का जन्म होता है हमारा विशेष ध्यान रहना चाहिये। जहाँ तक सम्भव हो हम को अपने और दूसरों को उस अवस्था में रखना चाहिये जहाँ कि हम लोगों के विचार निर्मल और प्रशान्त रहें, जहाँ कि अन्तःकरण की मशीन के बिगड़ने की कोई सम्भावना न हो—हम लोगों को इसके प्रतिकूल नहीं चलना चाहिये, शराब और अन्य उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग नहीं करना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से अन्तःकरण का काम रुक जाता है।

जैसा कि कहा जाचुका है मनुष्य में दो वृत्तियां होती हैं एक आत्मिक और दूसरी पाशविक। जो बातें उसकी आत्मिक वृत्ति से सम्बन्ध रखती हैं उनका भी प्रभाव उस पर पड़ सकता है और जो उसकी पाशविक वृत्ति से सम्बन्ध रखती हैं उनका भी। जैसे कि घड़ी का चलना आन्तरिक मशीन ही के द्वारा ठीक होता है इसी प्रकार मनुष्य को अपने जीवन को, चेतना के ज्ञान के द्वारा ठीक करना चाहिये। और जिस प्रकार उस आन्तरिक मशीन की सफाई पर जिस पर कि घड़ी का ठीक चलना निर्भर है हमें विशेष ध्यान देना पड़ता है इसी प्रकार ज्ञान या चेतना की सफाई इत्यादि पर जिस पर कि मनुष्य की जीवन घड़ी का चलना निर्भर है हमें विशेष ध्यान देना चाहिये। मनुष्य अपनी चेतना ही से काम करने के लिए बाधित किया जाता है। इसका प्रतिवाद कोई नहीं कर सकता, सब कोई इससे सहमत हैं परन्तु कभी कभी अपने को धोखा देने की आवश्यकता पड़ जाती है। हमलोग इस बात के लिए इतने उत्सुक नहीं रहते कि हमारी चेतना ठीक रहे जितना कि इस बात के लिये कि जो कुछ हम करते हैं वह हमें ठीक अन्तःकरणानुकूल प्रतीत हो और इस के साधन के लिये हम उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग करते हैं जो कि चेतना को नष्ट कर डालती हैं।

(५)

मनुष्य शराब या अन्य मादक का प्रयोग समय बिताने के लिए या चित्त को प्रसन्न रखने के लिए नहीं परन्तु अपनी अन्तरात्मा के उपदेशों को भूलने के लिए और पाशविक वृत्तिदर्शित मार्ग का अनुकरण करने के लिए करते हैं। ऐसा करने का कितना भयङ्कर परिणाम होता है यह शराबियों की जीवनी पढ़ने से भली भांति मालुम हो सकता है। राज लोग यदि किसी घर के निर्माण करने में टेढ़े पयमाने को प्रयोग में लावें तो यह सम्भव नहीं कि दीवारें सीधी हों और मकान सुन्दर बनें। जो पयमाना स्वयं इतना नरम है कि ऊंचे या नीचे स्थान को पाकर झुक जाता है वह बनानेवाले को इन बातों का ज्ञान कैसे करा सकता है? परिणाम यह होता है कि जहां वह रक्खा जाता है वहीं ठीक बैठ जाता है और दीवार की ऊंचाई निचाई सब वैसी ही रह जाती है। यही हाल अन्तःकरण के साथ होता है। जीवनानिर्वाह की प्रणाली अन्तःकरण के अनुकूल नहीं होती, अन्तःकरण को जीवन की ऊंचाई-निचाई के अनुसार झुकना पड़ता है। हर एक आदमी के जीवन में यह होता है और प्रत्येक जाति के जीवन में भी ऐसा होता है क्यों कि जाति आदमियों का समूह है।

इस प्रकार अपने अन्तःकरण को कण्ठा बरबद करने के परिणाम को अच्छी तरह समझने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक मनुष्य अपने

जीवन के भिन्न भिन्न आत्मिक परिवर्तनों का सूक्ष्मतया निरूपण करे। ऐसा करने से हर एक आदमी को मालूम होगा कि उसके जीवन में कभी न कभी उसको ऐसा मौक़ा अवश्य पड़ा है जब कि उसका सामना कुछ ऐसे प्रश्नों से पड़ा हो जिनके उचित विवरण पर उसका मानसिक, आत्मिक और दैहिक उत्कर्ष निर्भर हो। इन प्रश्नों को भली भांति समझने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य एकाग्रचित्त हो और एकाग्रचित्त होना कोई साधारण बात नहीं है। यह बहुत ही कठिन काम है। प्रत्येक कठिन कार्य के आरम्भ में एक ऐसा समय होता है जब कि वह कार्य विशेषतया कठिन और कष्टप्रद प्रतीत होता है और जब कि मानवी प्रकृति मनुष्य को उसे छोड़ देने के लिए यथाशक्ति बाध्य करती है। दैहिक परिश्रम पहिले पहल बहुत ही कठिन और कष्टप्रद मालूम होता है। मानसिक परिश्रम उससे भी अधिक कठिन और कष्टप्रद प्रतीत होता है। लेसिंग Lessiug का कथन है कि "जब विचार करना दुष्कर प्रतीत होने लगता है तभी हमारी इच्छा विचार को छोड़ देने की होती है यद्यपि विचार का सच्चा प्रतिफल हमें तभी मिलता है"। जब कभी हमारे सामने ऐसे प्रश्न आ उपस्थित होते हैं जिनका हल करना बहुत ही आवश्यक है तो हमको परिश्रम करना पड़ता है। हम इस परिश्रम से बचना चाहते हैं और यदि कोई दूसरा उपाय नहीं है तो हम उन्मादक वस्तुओं के प्रयोग द्वारा अपनी अन्तरात्मा को स्तम्भित करने की चेष्टा करते हैं जिस से उन प्रश्नों का उचित विवरण न करने के लिए वह हमारी निन्दा न करे। जब मदिरा पीकर हम उन्मत्त हो जाते हैं तो हमारी अन्तरात्मा हमको उन सवालों को हल करने के लिये बाधित नहीं करती। उन्मत्तावस्था के बाद जब हम अपनी प्रकृति में फिर आ जाते हैं तो वे प्रश्न हमारे सामने फिर उठते हैं और फिर उन को हल करने के लिये हम बाध्य होते हैं। हम फिर शराब पी कर अपने अन्तःकरण को स्तम्भित कर लेते हैं। यही क्रम मरण पर्य्यन्त लगा रहता है और कभी हम उन प्रश्नों का विवरण भली भांति नहीं कर पाते। हम यह जानते हैं कि इन्हीं प्रश्नों के विवरण पर हमारी उन्नति निर्भर है परन्तु मदिरादि उन्मादक वस्तुओं के ऐन्द्रजालिक जाल से छुटकारा पाना कोई सहज काम नहीं है। हमारे जीवन की उन्नति भले ही रुक जाय, हम दुःखपङ्क में सदा के लिये भले ही निमग्न हो जाँय परन्तु थोड़े से परिश्रम से बचने के लिए उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग कर के हम अपने अन्तःकरण को अवश्य स्तम्भित करेंगे। धन्य मानवप्रकृति! जिसमें इतना भी बल नहीं कि पाशविक वृत्ति की प्रेरणाओं को रोक सके।

जब कोई मनुष्य गदले पानी के गर्त की सतह पर पड़े हुए किसी बहुमूल्य रत्न को लेना चाहता है परन्तु पानी में घुसने से हिचकता है तो वह क्या करता है? वह बैठे बैठे देखा करता है और जभी पानी स्थिर होने लगता है और उसमें की मट्टी बैठने लगती है तभी रत्न लेने के लिये उसे हिलोर कर वह फिर पङ्किल कर देता है। बहुत से मनुष्य अपने अन्तःकरण के साथ ऐसा व्यवहार करते हैं। जभी उनका अन्तःकरण मदिरादि के प्रभाव से निर्मुक्त होकर अपने कर्तव्यपालन में कटिबद्ध होने लगता है तभी वे शराब पीकर उसे फिर कण्ठावरुद्ध कर देते हैं। यही क्रम मरणपर्यन्त लगा रहता है। जो प्रश्न उनके सामने आते हैं उनका उचित विवरण कभी नहीं हो पाता—वे अज्ञान की दुर्भेद्य भित्ति का भेदन तो अवश्य करना चाहते हैं परन्तु उनकी विचार रूपी कुदाल तो कुण्ठित हो जाती है। वे सफलप्रयत्न कहां से हों।

प्रत्येक मनुष्य को उस समय का स्मरण करना चाहिये जब कि वह तम्बाकू इत्यादि का

प्रयोग किया करता था। उसको अपनी तुलना और मनुष्यों से करनी चाहिये और तब उसे यह बात अच्छी तरह मालूम हो जायगी कि उन लोगों में जो तम्बाकू का प्रयोग करते हैं और उनमें जो नहीं करते बड़ा भारी अन्तर है। जितना ही अधिक मनुष्य अपने अन्तःकरण को स्तम्भित करेगा उतना ही अधिक उसका कर्तव्याकर्तव्य का विवेक मन्द हो जायगा।

(६)

अफीम इत्यादि का प्रभाव मानवजाति पर बहुत बुरा पड़ता है। शराबियों पर शराब के प्रमाणाधिक प्रयोग का प्रभाव भी बहुत बुरा पड़ता है परन्तु शराब के थोड़े २ और प्रासंगिक प्रयोग का समाज पर सबसे भयङ्कर प्रभाव पड़ता है। "हमारे पढ़े लिखे देशवासी भी लज्जा और मान को जलाञ्जलि देकर उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग स्वीकार करते हैं। इससे बढ़कर देश के सच्चे हितैषियों के लिये अधिक उद्वेगजनक बात और क्या हो सकती है।"

परिणाम अवश्य भयङ्कर होंगे क्योंकि जितने धार्मिक, वैज्ञानिक, राजनीतिक और साहित्यिक कार्य हैं वे सब प्रायः उन्हीं लोगों द्वारा किये जाते हैं जो मद्यसेवी हैं, जिनकी अवस्था मदिरा के परिमाणाधिक प्रयोग के कारण ख़राब और कार्य करने के अयोग्य हो गई है। यह कहा जाता है कि वह आदमी जो हमारे धनी भाइयों की तरह भोजन के उपरान्त थोड़ी सी मदिरा पीता है दूसरे दिन जब कोई काम करता है तो अपनी स्वाभाविक अवस्था में रहता है अर्थात् उस पर मदिरा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता और वह अपने सब काम भलीभाँति कर सकता है। यह विचार सर्वथा अशुद्ध और भ्रान्ति उत्पन्न करनेवाला है। जिस मनुष्य ने कल एक बोतल शराब की पीई है वह आज अपनी स्वाभाविक अवस्था में कभी नहीं रह सकता। उस पर निद्रा, तन्द्रा, आलस्य, मानसिक विषण्णता आदि मदिरा के सन्तानगण सभी आक्रमण करेंगे और इनकी वृद्धि एक आध सिगरट या सिगार बड़ी सुगमता से कर सकता है। वह मनुष्य जो मदिरा का नियमित प्रयोग करता चला आया है अपने मस्तिष्क को स्वाभाविक अवस्था पर तभी ला सकता है जब वह एक या दो सप्ताह तक मदिरा और तम्बाकू को बिलकुल छूए नहीं। परन्तु लोग ऐसा बहुत कम करते हैं।

यहां पर यह शंका की जाती है कि अक्सर यह देखा गया है कि वे लोग जो मदिरा और तम्बाकू बिलकुल नहीं पीते उन लोगों से जो कि पीते हैं कहीं ख़राब होते हैं। उनके मानसिक गुण इतने प्रकृष्ट नहीं होते और वे अपने कर्तव्यपालन में इतने दृढ़ नहीं होते। यह भी अक्सर देखा गया है कि वे लोग जो मदिरा का प्रयोग करते हैं उन लोगों की अपेक्षा जो मदिरा पान नहीं करते कहीं अधिक साधुवृत्त और सदाचारी होते हैं। उनमें गुण भी सब से प्रकृष्ट होते हैं।

इसका उत्तर यह है कि पहिले हम यह नहीं जानते कि एक मनुष्य कितनी उन्नति करता यदि वह शराब के पञ्जे में न पड़ जाता और दूसरे यह कि यदि शराब पीने वाला मनुष्य शराब पीकर भी इतने अच्छे काम कर सकता है तो शराब छोड़ देने पर वह इससे भी अधिक अच्छे काम करेगा। मेरे एक मित्र ने मुझ से एक बार कहा और उनका कहना बहुत ठीक है कि यदि कैंट शराब का प्रयोग न करता होता तो उसकी किताबें इतने बुरे और क्रमहीन ढँग पर न लिखी जातीं। मनुष्य की मानसिक अवस्था जितनी नीचो होगा उतना ही वह अपने कामों और अन्तःकरण की असंगतता को न जान सकेगा और इस कारण मदिरा का प्रयोग करके उसे अपने अन्तःकरण को कण्ठावरुद्ध करने की आवश्यकता भी कम पड़ेगी। प्रत्युत वे मनुष्य जो शीघ्रचेतन हैं, जो अपने अन्तःकरण और अपने कामों की असंगतता को बहुत शीघ्र जान सकते हैं मदिरा का प्रयोग

अधिक करते हैं और उसी के ग्रास बन कर शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

इससे यह स्पष्ट है कि अधिकांश वे लोग जो दूसरों का शासन करते या दूसरों को पढ़ाते हैं अपनी स्वाभाविक अवस्था में नहीं होते। यह कोई ऐसी बात नहीं है जिस पर ध्यान न दिया जाय या जो मज़ाक़ में टाल दी जाय। हमारे जीवन में जितनी गड़बड़ मची रहती है और हमारी जितनी निर्बलता है उस सब का कारण मदिरा ही है। जितने अपकृष्ट काम हमारे चारों ओर रोज़ किये जाते हैं उन्हें क्या कोई बुद्धिमान् और शान्त मनुष्य करेगा?

सैकड़ों मीनार इतना धन व्यय करके हर वर्ष बनाई जाती हैं। इतने लोहे का व्यय होता है, मज़दूर लोग इतना परिश्रम करते हैं। हम लोग आनन्द प्राप्ति के लिये उन पर चढ़ते हैं और उतर कर ऐसे ही मीनार और स्थानों में बनवाते हैं। मीनार बनवाने की वस्तुतः कोई आवश्यकता नहीं। क्या शान्त मनुष्य इतना धन व्यर्थ में कभी व्यय करेंगे और विशेषता यह कि जब धन का सदुपयोग और तरीक़ों से हो सकता है। यूरोप की सब जातियाँ बहुत वर्षों से इस बात में पीछे पड़ी हुई हैं कि एक दूसरे की हत्या करने का सब से सुगम उपाय कौन निकाला जाय। वे अपने नवयुवकों की पारस्परिक हत्या करने के लिये इतना परिश्रम करती हैं, पाठशालाएँ खोलती हैं और असंख्य धन व्यय करती हैं। इस बात को सब जानते हैं कि कहीं की जङ्गली जातियाँ इन पर आक्रमण नहीं करेंगी परन्तु सभ्य जातियों की ये सब तैयारियाँ एक दूसरे का गला काटने के लिये की जाती हैं। यह सब जानते हैं कि इन तैयारियों के करने में बड़ा कष्ट होता है, बहुत धन ख़राब होता है परन्तु तब भी तैयारियाँ होती जाती हैं। किस लिये? एक दूसरे की हत्या करने के लिये। इस बात का निर्णय करने के लिये कि कौन किस को हत्या करेगा। बहुत सी जातियाँ आपस में मिल जाती हैं। बहुत सी हत्या सिलाने का भार अपने ऊपर ले लेती हैं और बहुत सी अपने अन्तःकरण के विरुद्ध इस कार्य में योग देती हैं। क्या कभी शान्त प्रकृति मनुष्य ये सब बातें करेंगे? केवल शराबी जिनकी अन्तरात्मा कुण्ठित हो जाती है इस काम को कर सकते हैं। मानव जाति के इतिहास में ऐसा कभी पहिले नहीं हुआ है। मानव जाति आजकल बिलकुल निश्चल हो गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि कोई बाह्य कारण उस को अपने अन्तःकरण के अनुकूल चलने नहीं देता। अन्तःकरण के स्तम्भन के अतिरिक्त और क्या कारण हो सकता है? जिस दिन मानव जाति इस पाप से छुटकारा पावेगी वह दिन उसके इतिहास में सुवर्ण के अक्षरों में लिखे जाने के योग्य होगा। वह दिन अब शीघ्र ही आने वाला है। उन्मादजनक वस्तुओं के बुरे प्रभाव को सब समझने लगे हैं। हमारा बुद्धि अभी तक तिमिराच्छन्न था, ज्ञानसूर्य के उदय होने से तिमिर छिन्न-भिन्न हो गया है। सब बातें अपनी असली हालत में हम को सुझाई देने लगी हैं। हम अपने अन्तःकरण के आदेशों को सुनने लगे हैं। हम लोगों ने मदिरा से भी नाता तोड़ दिया। ईश्वर वह दिन शीघ्र लावे जब सम्पूर्ण मानव जाति मदिरा के प्रभाव से निर्मुक्त हो कर अपने कर्तव्यपालन में कटिबद्ध हो जाय और हम लोग एक दूसरे को भाई कह के गले लगावें। अनैक्य छोड़ कर देशोन्नति के साधन में प्रवृत्ति हो। *

हे अज्ञान तमोविनाशक विभो आत्मीयता दीजिये।
देखें दार्दिक दृष्टि से सब हमें ऐसा कृती कीजिये॥
देखें त्यों हम भी सदैव सबको सन्मित्र की दृष्टि से।
फूल और फल परस्पर सभी सौभाग्य की वृष्टि से॥

(मैथिलीशरण गुप्त)

---

* Tolstov लिखित Why do men stupefy themselves शीर्षक निबन्ध का भावानुवाद।

मातृभाषा में शिक्षा।*

[लेखक—श्रीयुत पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ।]

शिक्षाप्राप्ति और ज्ञानसम्पादन का सब से बड़ा साधन भाषा है। शिक्षा यदि अपनी भाषा में—मातृभाषा में—दी जाय तो इस साधन का महत्व और इसका प्रभाव और भी अधिक हो जाय। चींटी से लेकर विशालकाय हाथी तक और रजःकण से लेकर हिमालय तक एक भी पदार्थ संसार में ऐसा नहीं जिसका सम्पूर्ण ज्ञान आजतक किसी ने प्राप्त किया हो। ज्ञान की सीमा नहीं। ज्ञानसागर की थाह नहीं; वह अगाध है; मर्यादारहित है। इस दशा में ज्ञानसाधन यदि सर्वश्रेष्ठ होता तभी कुछ सफलता की आशा की जा सकती है। तभी उसका शतांश, सहस्रांश प्राप्त किया जा सकता है। साधन जितनाही कठोर, श्रमसाध्य और दुष्प्राप्य होगा, ज्ञान-सम्पादन में सफलता भी उतनी ही कम होगी। शिक्षा बहुत व्यापक शब्द है। उसमें सभी प्रकार की शिक्षाओं का अन्तर्भाव हो सकता है। शिक्षा का अर्थ सीखना है और कोई बात सीखना उसका ज्ञान-सम्पादन करना है। इस दृष्टि से ज्ञान और शिक्षा प्रायः एक ही चीज़ है।

ज्ञानबल से बढ़कर और कोई बल नहीं। शारीरिक बल उसके सामने विशेष महत्व नहीं रखता। शरीरसम्बन्धी बल की अपेक्षा ज्ञानबल ही श्रेष्ठ है। ज्ञानशक्ति से जो पदार्थ प्राप्त हो सकता है, शरीरशक्ति से नहीं। ज्ञान की महिमा का अन्दाज़ा इसीसे कर लीजिए कि ईश्वर की प्राप्ति या उसके साक्षात्कार का साधन भी ज्ञान ही है। वर्तमान युद्ध के मैदान में लाखों सैनिक अपना शरीरबल खर्च कर रहे हैं। रोज़ ही जय-पराजय के समाचार आप अख़बारों में पढ़ते हैं। पर विजयी पक्ष की जीत का एक मात्र कारण आप सैनिकों की शारीरिकशक्ति न समझिये। ऐसा समझना बड़ी भारी भूल होगी। विजय का प्रधान कारण ज्ञानबल ही है। जिन विज्ञानियों, विद्वानों और शास्त्रज्ञों ने युद्ध के विशालाकार जहाज़, काल-मर्दिनी तोपें, नरनाशक गोले, टारपीडो और सबमेरीन आदि का निर्माण किया है वही इस जीत के मूल और प्रधान कारण हैं। वे यद्यपि युद्ध के मैदान में नहीं, वे यद्यपि किसी एकान्त कोठरी में बैठे हुए शास्त्रीय रहस्यों के उद्घाटन में निमग्न हैं, तथापि जीत का कारण उन्हीं का ज्ञानबल है।

सब तरह की उन्नतियां, चाहे लौकिक हों चाहे पारलौकिक, ज्ञान ही की कृपा से होती हैं। अज्ञानियों और अशिक्षितों ने कभी कोई उल्लेख-योग्य उन्नति नहीं की। देश, जाति, समाज, कला-कौशल, वाणिज्य-व्यवसाय आदि से सम्बन्ध रखनेवाली सभी उन्नतियों की जड़ आप शिक्षा और ज्ञान को ही पाइयेगा। जिस ज्ञान, जिस शिक्षा का इतना माहात्म्य है उसकी प्राप्ति का साधन जितना ही सुलभ हो उतना ही अच्छा। अतएव हमारा कर्तव्य है कि हम अपने कल्याण के लिए इस साधन को खूब सुलभ कर दें। यह सुलभता मातृभाषा ही के द्वारा हो सकती है। बरसों की राह महीनों में इसी साधन से तै हो सकती है। इस साधन को सुलभ कर देना बहुत कुछ हमारे ही हाथ में है।

* यह लेख प्रथम प्रान्तीय हिन्दी कानफरेन्स में पढ़ा गया था और श्रीमान् राय देवीप्रसाद पूर्ण की कृपा से प्राप्त हुआ है।

अँगरेज़ी राजभाषा है। उसे तो हमें सीखना ही चाहिये। बिना उसे सीखे हमारा निस्तार नहीं। पर उसका व्यापक प्रचार देश में नहीं हो सकता। इस देश में अँगरेज़ी राज्य हुए कोई डेढ़ सौ वर्ष हुए। पर अब तक फी तीन चार सौ आदमियों पीछे कहीं एक आदमी थोड़ी बहुत अँगरेज़ी जानता है। इस दशा में गाँव गाँव उसका प्रचार होना सम्भव नहीं। और अपने देशभाइयों को अज्ञानान्धकार में पड़े रखना पाप है। उनके इस अन्धकार को दूर करने के लिए अपने भाषाभास्कर के प्रकाश की ज़रूरत है। इस बात को गवर्नमेंट भी मानती है। १७ मार्च को इम्पीरियल कौंसिल में श्रीयुत रायनिङ्कर के प्रस्ताव के सम्बन्ध में गवर्नमेंट की ओर से जो कुछ कहा गया वह इस बात का दृढ़ प्रमाण है। गवर्नमेंट अँगरेज़ी भाषा की शिक्षा का मार्ग तो संकुचित नहीं करना चाहती; पर एक निर्दिष्ट सीमा के भीतर देशी भाषाओं के द्वारा शिक्षादान के मार्ग में बाधा भी नहीं डालना चाहती। सब बातों पर विचार कर के यदि उस मार्ग को अधिक प्रशस्त करने की आवश्यकता समझी गई तो वह वैसा ही करने को तैयार है। उसकी इस कृपा के लिए हमें कृतज्ञ होना चाहिये।

हमारी भाषा हिन्दी है। उसके प्रचार के लिए गवर्नमेंट जो कुछ कर रही है सो तो कर ही रही है। हमें चाहिये कि अपने घरों का अज्ञानतिमिर दूर करने और अपना ज्ञानबल बढ़ाने के लिए हम भी इस पुण्यकार्य में लग जायँ। यह काम अनेक प्रकार से हो सकता है। समाचारपत्र और सामयिक पुस्तक निकालकर इस तिमिर का परदा कुछ कुछ हटाया जा सकता है। अच्छी २ नई पुस्तकें लिखकर और अन्य भाषाओं के उपयोगी ग्रन्थों का अनुवाद कर के सुशिक्षा और ज्ञान की वृद्धि की जा सकती है। स्कूल और पुस्तकालय खोलकर, सभाएँ और सम्मेलन करके, व्याख्यान और उपदेश देकर भी इस कार्य की अंशतः पूर्ति की जा सकती है। जो शिक्षित हैं-जिन्होंने ज्ञानसम्पादन किया है-उन्हीं को इस कल्याणकारी कार्य में आगे बढ़ना चाहिये। घर का मुखिया ही बच्चों और अपने से छोटों की शिक्षा का जवाबदेह समझा जाता है। यदि वह उनकी शिक्षा का प्रबन्ध न करे तो समाज ही नहीं, ईश्वर भी शायद उसे कर्तव्यपराङ्मुख समझे। और अपना कर्तव्य न करना अधिकार का दुरुपयोग करना है, अक्षम्य अपराध करना है, कौटुम्बिक नियम को तोड़ना अतएव पाप करना है। समाज में जो शिक्षित हैं-दूसरों को शिक्षा देने की जिनमें शक्ति है-उनका दरजा भी घर के मुखिया ही के सदृश है। क्योंकि समाज भी एक प्रकार का विस्तृत घर है और उसके सारे मेम्बर-उसके सारे अङ्ग-उस घर के निवासी हैं। इस दशा में समाजरूपी घर के मुखियाजनों का कर्तव्य है कि वे उसके मेम्बरों की शिक्षा का यथाशक्ति प्रबन्ध करें। यदि आप इस कथन के कुछ भी सार समझते हों तो प्रण कीजिये कि वर्ष के बारह महीनों में बारह नहीं तो कम से कम एक मनुष्य में आप हिन्दी का प्रेम अवश्य उत्पन्न कर देंगे, अथवा उसे थोड़ी बहुत हिन्दी अवश्य लिखा देंगे, अथवा उसके लिए हिन्दी-शिक्षा की प्राप्ति अवश्य सुलभ कर देंगे। ईश्वर आपको इस कर्तव्यपालन के लिए शक्ति, उत्साह और अनुराग प्रदान करे!

सम्राट् अशोक।

[लेखक—श्रीयुत दयानन्द चोबे।]

जिस दीपक ने आर्यवर्त में
पुंज प्रभा का दरसाया।
ईसा से भी तीन शताब्दी
पूर्व जन्म जिसने पाया॥
सकल जगत है जिसकी महिमा
वर्णन करता अबतक भी।
जबतक सूर्य चन्द्रमण्डल हैं
बनी रहेगी तबतक भी॥
विस्तृत साम्राज्य था जिसका,
न्यायपूर्ण था जिसका राज।
था अशोक सम्राट् वहा
जिसके थे सारे उज्ज्वल काज॥
जिसने उच्च कलिंग-मान को
मर्दन कीन्हा निज कर से।
अगणित सहस्र वीर को जिसने
मार गिराया निज सर से॥
समरभूमि का दृश्य देखकर
व्यग्रचित्त हो गया अशोक।
हृदय दुखित होगया कुँअर का
प्रकट किया अति दारुण शोक॥
अद्यावधि भगवान बुद्ध का
धर्म दयामय ग्रहण किया।
संसारिक दुःखों के कारण
दुष्कर्मों को छोड़ दिया॥
पटलिपुत्र में धर्म सभा को
आपत तब किया कुँअर।
अन्य देश को सद्उपदेशक
उसने भेजा तेहि अवसर॥
लंका, चीन, मिश्र, ब्रह्मा में
भेजा उसने उपदेशक।
ग्रीस, सीरिया, में भी भेजा
बौद्ध धर्म के संप्रेरक॥
इस प्रकार भूचलित कर दिया
धर्मान्दोलन से उसने।
बौद्ध धर्म को उच्च शिखर पर
और अन्य रक्खा किसने॥
चौदह इसने नियम बनाकर
प्रजा से पालन करवाया।
पत्थर के स्तम्भों पर लिखवा
निज देशों में गड़वाया॥
वृक्ष लगाये गये सड़क पर
वासस्थान नियुक्त हुए।
न्याय, चिकित्सा, पाठालय से
देश नगर सब युक्त हुए॥
उत्पति के अनुसार प्रजा को
चौथाई कर देना था।
पर सुकार्य में औ सुरीति से
फिर वह उनको लेना था॥
सुनस्पेलटियां रहीं उपस्थित
चन्द्रगुप्त के शासन से।
अति उन्नति की योग्य नृपति ने
काज बना निज हाथन से॥
सुन्दर यश का भाजन होकर
फिर तो वह चल दिया अशोक।
अति दुःभित सब हुए प्रजागण
बहुत मनाया उसका शोक॥

गीताञ्जलि।

[लेखक-श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुर।]

गताङ्क की पूर्ति।

(४१)

ये मेरे प्रियतम, तू अपने को छाया में छिपाये सब के पीछे कहां खड़ा है?

सड़क पर लोग तुझे तुच्छ समझकर और धिक्कार देते मार्ग से हटा देते हैं। तुझे अपेक्षा करने के लिए मैं वस्त्र फैलाये बैठा घड़ियां गिन रहा हूं। पथिक आते हैं और एक २ करके मेरे फूल ले जा रहे हैं, मेरे फूलों की डाली प्रायः खाली पड़ गई है।

प्रातःकाल गया और मध्याह्न भी होगया। शाम की छाया में मेरे नेत्र नींद से भर रहे हैं। अपने २ घरों को जानेवाले लोग मेरी ओर देखते हैं, मुसकराते हैं और मुझे लज्जित करते हैं। मैं भिखारी के समान बैठा हूं और अपने वस्त्र के छोर से अपने मुंह को उनकी घूरनेवाली आंखों से छिपाता हूं और जब वह मुझसे पूछते हैं कि तुम क्या मांगते हो, तो मैं अपनी दृष्टि नीचे कर लेता हूं और उत्तर नहीं देता।

हाय? मैं उन्हें कैसे बता सकता हूं कि मैं तेरी बाट देख रहा हूं और यह कि तू ने आने का वचन दिया है। मैं लज्जा के कारण कैसे बता सकता हूं कि मैंने अपनी निर्धनता दहेज़ में देने के लिए रख छोड़ी है। मैं इस पर अपने मनही मन में अभिमान करता हूं। मैं घास पर बैठा आकाश की ओर आशा बँधी दृष्टि डालता हूं और तेरे आगमन सम्बन्ध के अचानक और विचित्र २ स्वप्न देखता हूं। मशालें जल रही हैं, सुनहरी झंडे तेरे रथ के ऊपर उड़ते हैं। जब लोग तुझे रथ से उतर कर मेरी ओर बढ़ते और इस भिखारिणी को पृथ्वी से उठा कर अपने पास बिठाते देखते हैं तो आश्चर्य में डूब जाते हैं।

घड़ियां बीतती चली जाती हैं और तेरे रथ के पहियों की कोई आवाज़ सुनाई नहीं देती। कई जलूस आनन्द-ध्वनि करते हुए चले जाते हैं। क्या तूही है जो चुपचाप छाया में खड़ा है और क्या केवल मैं ही हूं जो विफल तृष्णा में अपने हृदय को रो २ कर बेसुध रखता हूं।

* * * *

(४२)

प्रातःकाल यह इशारा हुआ था कि तू और मैं नाव पर बैठ कर चल देंगे और किसी को भी मालूम नहीं होगा कि किस देश को किस काम के लिये जा रहे हैं। इस समुद्र तट पर तेरी ध्वनि और तेरी मधुर हँसी पर मेरे भजन मधुरता का वस्त्र पहिनेंगे। वे लहरों के समान शब्दों के बन्धनों से स्वतन्त्र होंगे। क्या अभी समय नहीं हुआ है? क्या अभी कुछ काम करना बाकी है? यह लो, नदी के तट पर ही संध्या ने आघेरा। मध्यम प्रकाश में जल के पक्षी अपने घोंसलों में बसेरा करने को उड़े चले जाते हैं।

कौन जानता है कि बेड़ियाँ कब उतरेंगी और डूबते हुए आकाश की अन्तिम चमक के समान नैया रात्रि में कब लीन हो जायगी।

* * * *

(४३)

एक समय वह था कि जब मुझे तेरा आधिपत्य स्वीकार न था। तो भी ए मेरे महा-

राज ! तू साधारण मनुष्यों के समान बिना जाने मेरे हृदय में बिना बुलाये चला आया और अनन्त जीवन की मोहर मेरे जीवन की शीघ्र नाश होनेवाली घड़ियों पर लगा दी।

आज जब मैंने दैवयोग से उनको देखा तो तेरे हाथ की मुहर वहां मिली। इससे मालूम होता है कि मेरे जीवन के भूले बिसरे दिन जिनके साथ सुख दुख लगे हुए हैं मिट्टी में मिले हुए हैं। मुझे बालकों के समान मिट्टी में खेलते देखने पर भी तू ने मुझ से द्वेष नहीं किया और न अपना मुंह मेरी ओर से फेरा। और जिन पदों की ध्वनि मैंने अपने खेल के कमरे में सुनी थी-वह वही है जिसकी आवाज़ एक तारे से दूसरे तारे तक सुनाई देती है।

* * * *

(४४)

सड़क के किनारे पर जहां छाया प्रकाश के पीछे फिरती है और वर्षा-ग्रीष्म के पद पर उपस्थित होती है बाट जोहने और तेरा मार्ग देखने में मुझे आनन्द प्राप्त होता है।

दूत अनजान आकाशों की ओर से संदेश लेकर आते और मुझे नमस्कार करते हुए तेज़ी से आगे निकल जाते हैं। मेरा मन भीतर ही भीतर प्रसन्न है।

सूर्योदय के समय से सायंकाल तक मैं अपने द्वार पर बैठा रहता हूं और मैं जानता हूं कि अचानक वह समय आवेगा जब मैं उसे देख सकूंगा।

इसी बीच में अकेले प्रसन्नचित्त हँसता और आनन्द के गीत गाता हूं और तेरे आगमन की आशा की सुगंध से वायु भरी जारही है।

* * * *

(४५)

क्या तुमने उसकी धीमी चाल की आहट नहीं सुनी ?

वह आता है, वह सदा आता है, हर घड़ी आता है, हर रोज़, हर समय, हर साल वह आता है, वह नित्य आता है, मैंने बहुत से अजान अपने मन की भिन्न २ दशा में गाये हैं परन्तु उन सब के गीतों की कुंजी यही है कि वह आता है वह सदा आता है।

वह वैशाख की सुहावनी ऋतु में जब वायु फूलों की मन्द २ सुगंध से लदी हुई होती है वन के मार्ग से आता है।

वर्षा ऋतु में वह सावन की अँधेरी में बादलों के गर्जनेवाले रथों पर सवार होकर आता है। जब मैं शोक और सन्ताप से पीड़ित होता हूं तब उसके चरणों की आहट मेरे हृदय को हलका करती है और उसके सुनहरी चरणों के छूने से मेरा आनन्द चमक उठता है।

* * * *

(४६)

मैं नहीं जानता कि तू किस समय से मेरे मिलने के लिए निकट आरहा है। सूर्य और चन्द्रमा मुझसे तुझको सदा छिपाये हुए नहीं रख सकते। कई बार प्रातःकाल और सायंकाल तेरे चरणों की आहट सुनाई देती है और तेरा दूत मेरे हृदय के भीतर आता है और मुझे चुप चाप बुलाता है। मैं नहीं जानता कि आज मेरा जीवन विचलित क्यों है? और आनन्द की तरंगें मेरे हृदय में लहर क्यों मार रही हैं। ऐसा मालूम होता है कि अपना काम आज बन्द कर देने का समय निकट आपहुंचा है। मुझे वायु में भी तेरे आगमन का आभास हो रहा है।

* * * *

(४७)

इसकी प्रतीक्षा में प्रायः सारी रात निकल गई। मुझे डर है कि जब मैं थक कर प्रातःकाल सोजाऊं तो वह कहीं चुपके से न आजाय। मित्रो इसके लिए मार्ग खुला छोड़ दो। उसे मना

मत करो। यदि उसके पैरों की आहट से भी मेरी नींद न खुले तो मुझे मत उठाओ। मैं नहीं चाहता कि पक्षियों की चहचहाहट मुझे नींद से उठावे या सवेरे के प्रकाश में वायु के प्रवाह से मेरी आंख खुले। यदि मेरा प्रभु अचानक मेरे द्वार पर आजाय तो मुझे सोने दो।

अहा! मेरी नींद! मेरी प्यारी नींद! वह केवल उसी के हाथ लगने से दूर होगी जबकि वह इस स्वप्न के समान मेरे सामने आकर खड़ा हो जायगा। मेरे प्रभु सब प्रकाशों और रूपों से पहिले तू मेरे नेत्रों के सामने आ। मेरे स्वामी! प्रातःकाल होने के बाद जो आनन्द मेरी आत्मा को प्राप्त हो वह तेरे दर्शनों से उत्पन्न हो और जब मुझे अपने स्वरूप का ज्ञान हो तो उसी दम मैं अपने प्रभु के पास चला जाऊं।

* * * *

(४८)

शांति का समुद्र प्रातःकाल पक्षियों की चहचहाहट की छोटी २ लहरों के साथ उमड़ता है। सड़क के आस पास फूल हँस रहे हैं और बादलों का चीरकर सोने का श्रोत बह निकलता है। परन्तु हम अपने ध्यान में मग्न अपने रास्ते चलते रहे। इन बातों का ध्यान हमने किया। न आनन्द के गीत गाये न बीणा बजाई।

हम गांव में भी नहीं गये। न हमने किसी से बात की, न हँसे और न मार्ग में विश्राम लेने को ठहरे। किन्तु ज्यों २ समय व्यतीत हुआ तेज़ी से कदम उठाते चले गये।

सूर्य आकाश के बीच आपहुंचा है और पक्षी छाया में छिपकर कुहूकुहू कर रहे हैं। मुर्झाये हुए पत्ते दोपहर की उष्ण वायु में वृक्षों की डालियों से टूटकर नीचे गिर रहे हैं, गड़ेरिये का लड़का बड़ की छाया में ऊंघ रहा है, मैं पानी के किनारे लेट गया और मैंने अपने थके हुए हाथ पांव घास पर फैला दिये।

मेरे साथियों ने मेरी हँसी उड़ाई और घमंड से सिर ऊंचा किये हुए जल्दी २ आगे बढ़े चले गये। पीछे फिरकर भी नहीं देखा।

जब मैं नींद से उठा तो तुझे हँसते हुए अपने सामने पाया।

* * * *

(४९)

तुम अपना सिंहासन छोड़ मेरे झोंपड़े में आये। मैं अकेला एक कोने में बैठा भजन गा रहा था। मेरी आवाज़ तुम्हारे कानों तक पहुंची। तुम नीचे उतरे और मेरी कुटी के द्वार पर आकर खड़े हो गये। तुम्हारे महल में सिद्ध गवैये हैं और सदा वहां गीत गाये जाते हैं। परन्तु इस नौसिखुए की आवाज़ से तुम्हारा प्रेम फड़क उठा। संसार के गीतों के साथ एक धीमी आवाज़ मिली हुई है। तुमने उसे सुना और इनाम देने को एक फूल लेकर नीचे आये और मेरी कुटी के द्वार पर आ ठहरे।

जय स्वतन्त्रते !

[लेखक—श्रीयुत भगवन्नारायण भार्गव ।]

जय स्वतन्त्रते ! मातु हमारी ।
जय सुभग-विद्या-सर-सुरभित-
सित-सरोजनी प्यारी ॥

जय २ सान्ति-कान्ति-प्रिय-त्रिभुवन-
मधि छहरावनवारी ।
जय निरमल-अविरल-यस-अमरित
सरित-वहावन वारी ॥

सुखद-सतत-सुचि-स्वाभिमान की
अजय-श्रेय-महतारी ।
पुरुसनु साँचो पुरुस बनावे
जतन कियो तुम भारी ॥

प्रान-प्रिये ! तुम बिन पसुसम सब
ह्वै हैं सृष्टि विचारी ।
तुव प्रताप त करत प्रकासित
सूर चन्द्रमहिं बारी ॥

जग-जीवन-धारनहित बरसत
घन तें सावनवारी ।
अनुपम त्रिविध बयारि भई
कुसुमन विकसावनवारी ॥

मातु ! तुमहिं महिमहिम-महा-छवि
सादर सदय सँवारी ।
आत्म-तेज-करतें विनसाई
अघ-घन-माला-कारी ॥

जननि ! हरहु भारत अज्ञान ।
तुमहिं बहुत जन 'निमर्यादा'
हा हा ! लिय अब मान ॥

अरु अबोध ते वे सबु त्यागत
वृथा आपने प्रान ।
नीति-नियम-विपरीत-काज कों
समुझत वे कल्यान ॥

सदाचार-सेवा कों मानत
अधम-अधर्म महान ।
सज्जनु शास्त्रनु करत निरादर
करि मद-मदिरापान ॥

अम्बे ! निज सन्तानमात्र हित
कीजे बुद्धि-प्रदान ।
अपनि प्रभा ते हिन्द देश मधि
तानहु धरम-वितान ॥

काम क्रोध मद मत्सर असुरन
मारो तीखन बान ।
यासहे सहिं करहु अमर-सद-
गुन-गन-प्रिय-उद्यान ॥

आग की चिनगारी।*

[लेखक—श्रीयुत अम्बिकाप्रसाद पाण्डेय एम० एस० सी०।]

मणिकपुर में 'रमेश' नाम का एक बहुत ही सम्पन्न कृषक रहता था। रुपया उसके पास बहुत था, अन्न भी हर साल खूब हुआ करता था। खूब चैन से दिन कट रहे थे। उसकी ऐसी दशा में देखकर उसके बहुत से पड़ोसी उससे द्वेष रखते थे, उससे निष्कारण क्रुद्ध रहते थे। उसकी ऐसी दशा कैसे हुई? उसका समय इतने सुख से क्यों कट रहा है? ऐसेही अनेक प्रश्न उसके पड़ोसियों के हृदय में रह २ के उठा करते थे।

रमेश के पिता का नाम महेश था। उनकी अवस्था ८० वर्ष से अधिक होगई थी। अब उनसे कोई काम न होता था। चारपाई पर पड़े २ वा सोए २ बेचारे अपना बुढ़ापा किसी प्रकार बिता रहे थे। संसार में अब अधिक ठहरने की इच्छा तो थी नहीं, पर किया क्या जाय? मृत्यु चाहने से तो आती नहीं। रमेश के ज्येष्ठ पुत्र नरेश का विवाह होगया था। मध्यम पुत्र उमेश के विवाह की भी बात चीत चलरही था। कनिष्ट पुत्र दिनेश की अवस्था उससमय सवा-दस वर्ष की थी। तौभी वह हलके २ कामों में, उदाहरणार्थ बैलों को चारा देने में; उनके लिए घास काटने में, अपने बड़े भाइयों की सहायता किया करता था। सारांश यह कि रमेश बड़ा सुखिया था। धन तो था ही, पुत्र भी बड़े योग्य थे। तो फिर उसके यदि दो चार वैरी होई जांय तो इस में क्या आश्चर्य है?

हरीश रमेश का पड़ोसी था, वह भी बहुत सम्पन्न था। महेश और हरीश के पिता गिरीश बड़े मित्र थे। आवश्यकता पड़ने पर सदा एक दूसरे की सहायता किया करते थे। पर अनायास ही उनकी मैत्री ढीली पड़गई। अब वे एक दूसरे की सहायता नहीं करते वरन सदा निन्दा करने में निरत रहते हैं। यदि इस वैमनस्य का कोई प्रत्यक्ष कारण है तो केवल यही कि वे दोनों डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की मेम्बरी के लिए कोशिश कर रहे थे।

रमेश ने बहुत से हंस पाल रक्खे थे। नरेश की स्त्री लक्ष्मी उन हंसों को बहुत चाहती थी। वह रोज़ सवेरे उठ कर उन हंसों को स्वयं बाहर हाक आया करती थी। एकदिन मुहल्ले के छोटे छोटे लड़कों के शोर से भयभीत होकर सब हंस रमेश के घर पर न आसके। किसी तरह हरीश के मकान के पास की एक झोंपड़ी में रात बिताई। लक्ष्मी बहुत सवेरे हंसों के घरमें गई पर वहां हंस उस समय कहां थे। तब उसने विचारा, कदाचित् हमारी सास हमसे पहले यहां आकर उनको न लेगई हों। अतएव सास के पास जाकर बोली, "माता जी! हंस और उनके बच्चे कहां हैं?"

"मैं तो उस घर में गई ही नहीं, मैं क्या जानूं!"

"तब हंस चल कहां दिये? मालूम पड़ता है कोई उन्हें उठालेगया। पर ऐसा करेगा कौन?"

यह बात हो ही रही थी कि दिनेश बाबू पहुंच गए और बोले "क्या है? भावज।"

"बाबू! न जानें हंस कहां चलदिए।"

'अजी तुम्हारे हंस तो कल शाम को यहां आए नहीं। वे हरीश के मकान के पास की

* दास्तदाय के एक लेख के आधार पर लिखित।

एक झोंपड़ी में कल रात को ठहर गए। मालूम होता है उनके बच्चे वहीं होंगे।

लक्ष्मी उनको ढूंढ़ने के लिए उसी ओर चली। इतने सुबह इस तरफ आते हुए देखकर हरीश की स्त्री मङ्गला ने पूछा "क्यों बेटी! क्या सोचकर तू आज इधर को चली है?"

लक्ष्मी—"सुना है कि हमारे हंस कल रात को यहीं कहीं ठहर गए थे। उन्हीं के बच्चों को देखने मैं आई हूं।"

मङ्गला—"अरी तेरे हंस के बच्चे और यहां! हमें दूसरे के हंसों से क्या प्रयोजन? हमारे हंसों ने भी तो इस समय बच्चे दिए हैं।"

बात ही बात में दोनों लड़ने लगीं। यह सुनकर हरीश व रमेश भी वहां पहुंच गये। रमेश को क्रोध अधिक होगया। उसने हरीश की दाढ़ी उखाड़ ली। 'कैसे इसका बदला चुकाऊं, हरीश रात दिन यही सोचा करता था।

उस दिन से दोनों में बोलचाल बन्द हो गई। एक दूसरे को देखना नहीं चाहते थे। लड़ाई दिनोंदिन बढ़ती ही गई।

महेश लड़ाई सुनकर बहुत उदास हुआ। अपने पुत्र को बुलाकर कहा, 'बेटा, बड़े अफ़सोस की बात है, कि ऐसी छोटी चीज़ के लिए तुमलोग लड़ रहे हो। तुम स्वयं विचारो, क्या तीन चार हंसों के लिए अदालत देखना युक्तिसङ्गत है। मानलो कि दिनेश ने उन्हें मार डाला। देखो तो उनका मूल्य ही कितना है। ईश्वर ने तुम्हें काफ़ी ऐश्वर्य दिया है। क्यों पाप का बोझ भारी कर रहे हो? बेटा, बुड्ढे का कहना मान जाओ। आग की चिनगारी को बुझाओ; नहीं तो यह सबको भस्म कर डालेगी।

रमेश बुड्ढे की बात को काहे को सुनता। हरीश से लड़ाई ठनी रही। लड़ाई दिनोंदिन बढ़ती गई। यदि ये दोनों कहीं मिल जाते तो फिर क्या द्वन्द्व युद्ध होने लगता। गालियों की बौछार होने लगती। यदि नदी-घाट पर इनकी स्त्रियां पानी लाने वा कपड़ा कचारने जातीं तो अन्य स्त्रियों के सामने लड़ने झगड़ने लगतीं। इस प्रकार ६ सालतक निरन्तर यह महाभारत जारी रहा। बीच बीच में बुड्ढा पुत्र से कहा करता, "बेटा! अब रहने दो। झगड़ा बन्द करो। बहुत हुआ। अपना काम काज भी तो करो। इस आग में जितनी आहुति पड़ेगी उतनी ही यह प्रचण्ड होती जायगी।"

रमेश पिता की बात को ध्यानपूर्वक सुन लेता था, पर हरीश से लड़ना न बन्द करता।

सातवें साल दिनेश की शादी हुई। उसी गोलमाल में रमेश का एक लँगड़ा बैल खोगया। रमेश की पुत्र-वधू ने कहा "यह उसी मुंहझोंसे का काम है। मैंने अपनी आंखों से देखा है कि वह एक ग्वाले से उसके सम्बन्ध में बातें कर रहा था।"

हरीश ने भी यह बात सुनी। उसके क्रोध की सीमा न रही। उन्मत्त के समान वह रमेश के मकान के अन्दर चलागया और लक्ष्मी से बोला "एरी नीच! परी हरामज़ादी! तूने हमें बैल चुराते हुए देखा है न! अच्छा देख।" यह कहकर उसे एक लात मारा। युवती उस समय गर्भवती थी। चोट लगते ही बेहोश होगई। रमेश वा नरेश उससमय कोई घर पर नहीं था अतएव फिर कोई आपत्ति नहीं हुई। पर रमेश ज्योंही घर वापस आया उसकी स्त्री ने इस घटना को खूब चढ़ाबढ़ा कर उसे सुनाया। यह सुनकर रमेश बहुत ही प्रसन्न हुआ और बारबार बकने लगा 'हरामज़ादे को इसबार कैद ही कराकर छोड़ेंगे।'

पहले रमेश पञ्चों के पास गया, परवे काहे को सुनने लगे। तब उसने कचहरी में नालिश की। नाज़िर को घूस देकर मुक़द्दमा जीत लिया। जजसाहेब ने हुक्म दिया, "हरीश को ५० बेत की सज़ा दी जाय।"

हुक्म सुनते ही हरीश ने अपने साथियों से कहा "अच्छा अब बेंत खा लेने दो पर छूटते ही ऐसी आफत मचाऊंगा जिससे रमेश का सर्वनाश हो जायगा।" यह बात इधर उधर से रमेश के भी कान तक पहुंच गई। रमेश ने तब जज साहेब से कहा 'दोहाई सरकार की। आप विचार करें, हरीश धमकाता है कि छूटते ही रमेश का मकान जला देंगे। उसको काट डालेंगे।'

जज साहेब ने हरीश से पूछा, "क्यों क्या यह बात सच है? तूने ऐसी धमकी दी है?"

हरीश; "मैं कुछ कहना नहीं चाहता। केवल हम ही दोषी हैं।"

वह और बोलना चाहता था पर क्रोध व लज्जा के कारण न बोल सका। उसकी वैसी अवस्था देखकर लोग कहने लगे, 'यह छूटते ही रमेश का कुछ न कुछ अनिष्ट अवश्य करेगा।'

जजसाहेब बड़े मुन्सिफ़मिजाज़ (न्यायशील) थे। बड़ी देर तक सोचते रहे, फिर बोले, 'अजी देखो, क्यों तुम दंगा फ़साद बढ़ा रहे हो? लक्ष्मी गर्भवती थी, उससमय क्या तुम्हें उसको मारना चाहिये था? यदि कुछ बुरा भला होगया होता, तो फिर तुम कहां के होते? अच्छा, सुनो रमेश्वर से तुम माफ़ी मांगो। यदि तुम ऐसा करो तो हम अपना हुक्म बदल देंगे।"

पेशकार ने देखा अरे अब तो धूल लौटाना पड़ेगा। अतएव जज साहेब से बोले, 'हुजूर! यह तो न्याय नहीं है। जो एक बार हुक्म होगया वह कैसे बदल सकता है।'

जज साहेब, "नाज़िर चुप रहो, हम तुम से तर्क करना नहीं चाहते।" और फिर उन्होंने हरीश से वही बात कही। पर रमेश काहे को किसी की बात माने। चाहे जो कुछ हो, माफ़ी तो न मांगेगा। मन में कहने लगा, 'बेंत खालूंगा, पर रमेश से माफ़ी! यह तो कभी न होगा चाहे जो कुछ हो।' वह कांप रहा था और उसके मुंह से एक शब्द भी नहीं निकला।

शाम हुई। रमेश बाबू घर आए। घर पर उस समय कोई था नहीं। स्त्रियां सब नदी तीर चली गई थीं और पुत्र सब बाज़ार से वापस नहीं आए थे। अकेले बैठकर रमेश कुछ सोचने लगा। हरीश की भयङ्कर मूर्ति उसकी आंखों के सामने नाचने लगी। महेश चारपाई पर पड़ा था। अपने पुत्र की आवाज़ सुनकर उसने उसे बुलाया और कई बार पूछा "बेटा कहो! क्या हुआ?"

रमेश—"हरीश को ५० बेंत लगेंगे"।

महेश—"रमेश! यह बड़ी ख़राब बात हुई। तुमने सख्त ग़लती की। इसका बुरा परिणाम तुम्हारे सिर पड़ेगा। अच्छा! वह तो बेंत खायगा, पर उससे तुम्हें क्या लाभ होगा?"

रमेश—"पिताजी! उसे शिक्षा मिल जायगी, फिर ऐसा दुष्कर्म करने का उसे साहस नहीं होगा।"

महेश—"अफ़सोस, अरे अब तो क्रुद्ध हो कर और बुराई करेगा। और वह क्यों न करे, पहले तो तुम्हीं उसे छेड़ते हो। उसका कुछ दोष नहीं है।"

रमेश—हां! उसका कुछ दोष नहीं है। हमारी पुत्रवधू-को एक लात मारगया, और अब धमकारहा है कि घर फूंक देंगे। इसमें भी उसका दोष नहीं होगा।"

महेश एक दीर्घश्वास लेकर बोला, 'बेटा! जो जी में आवे करो। मैं तो घर में पड़ा हूं बाहर जाता नहीं, कुछ समझता नहीं। हां एक बात जानता हूं, तुम दूसरों के दोषों को भली भांति देखसकते हो पर अपने बड़े से बड़े दोष को नहीं देख सकते। केवल तुम्हीं ऐसे नहीं हो, सारी दुनिया ही की यही हालत है। तुम कहते हो "वह दोषी है।" मेरी समझ में नहीं आता यह कैसे होसकता है। भला कहीं एक हाथ से

भी ताली बजती है! यदि तुम कुछ न बोलो, कुछ न करो तो आख़िर वह कितनी देरतक बकेगा? बिना दो की शरारत से झगड़ा होई नहीं सकता। तुम्हीं सोचो, पहले तो तुम्हीं ने उसकी डाढ़ी उखाड़ी था। फिर अदालत को खबर किसने पहले ली? रमेश, तुम्हीं आगे चल रहे हो। तुम बालक हो नहीं; अब तुम बड़े हुए। देखो तुम भूल कर रहे हो। हम तुम्हारे बराबर शिक्षित भी नहीं थे पर हमारे समय में ऐसी दशा नहीं थी। हम और गिरीश बड़े मित्र थे। सदा एक दूसरे की सहायता किया करते थे। हाय! पर इस समय लोग हँस रहे हैं, कहा करते हैं, 'कुरुक्षेत्र के युद्ध से भी यह कलह बढ़ा हुआ है।' ठीक है ये सब तुम्हारे पूर्वजन्म के कर्म के फल हैं सोचो तो सही लड़के भी देखादेखी झगड़ालू हो रहे हैं, दिनेश रात दिन पड़ोसियों की निन्दा किया करता है।"

रमेश पिता की बात चुपचाप सुन रहा था। उसकी आंखों से अश्रुपात हो रहा था।

बुड्ढा बहुत देरतक निरन्तर बोलने के कारण हाँफने लगा। उसका कंठ सूखगया, उसे खाँसी आगई। पर कुछ देर आराम करके फिर बोला, "देखो रमेश! इस मामलेबाज़ी में कितना रुपया ख़र्च होगा। लड़ाई झगड़ा से किसी का फायदा नहीं होता, वरन् दोनों ही को हानि उठानी पड़ती है। अब अपने काम काज में चित्त दो, शान्त रहो, लड़कों की शिक्षा का प्रबन्ध करो। उनकी अवस्था दिनों दिन चली जारही है। यदि तुम्हारा कोई अनिष्ट करे तो तुम प्रतिशोध लेने के लिए व्यस्त मत हो। ईश्वर उसको उसके दुष्कर्म का फल देगा। रमेश अब झगड़ा बन्द करो।"

रमेश ने चुपचाप सब सुन लिया, कुछ उत्तर न दिया। बुड्ढा फिर बोला "बेटा! बुड्ढे की बात मानो। इस झगड़े का अन्त करो। कुछ ऐसा प्रबन्ध करो कि हरीश को सज़ा न मिले।"

रमेश ने एक लम्बी सांस ली। उसने सोचा पिता जी सच कहते हैं। उनकी बात यथार्थ सत्य है। मैं ही पहले शरारत करता हूं.....।

बुड्ढा रमेश को चुप देखकर फिर बोला, 'जाओ रमेश! जल्दी करो। नहीं फिर काम न हो सकेगा।'

महेश यों कह ही रहा था कि स्त्रियां जल लेकर लौट आईं। हरीश को दण्ड मिल गया और उसने फिर घर फूंकने को कहा है, ये संवाद लेती आईं। रमेश सब बातें सुन रहा था। पिता की बातों से जो कुछ शान्ति हुई थी, वह इस संवाद को सुनते ही दूर हो गई।

काम करनेवाला चाहिये, काम की दुनिया में कमी नहीं है। रमेश बाहर जाकर, किसी से कुछ न कहकर, कुछ अगड़म बगड़म करने लगा। कुछ देर के बाद स्मरण हुआ, 'ओः, बहुत देर से तमाकू नहीं खाया'। पर तमाकू थी ही नहीं। ठीक इसी समय हरीश की आवाज़ सुनाई दी, 'अच्छा! तुमने तो मेरी खूब भद उड़ाई। पर बच्चा इसका बदला लूंगा ज़रूर। हरामज़ादे! दस भलेमानसों के सामने तुमने मुझे बेंत लगवाये; अच्छा अब चाहे तूही है या हम हीं। अब तो खून करूंगा।' रमेश तो बहुत शान्त हो गया था पर उसकी बात सुन कर फिर जल उठा।

लक्ष्मी उस समय बरामदे में बैठकर खाना बना रही थी। खाना करीब २ तैयार होगया था। उमेश दिनेश खारहे थे। उनकी मा उन्हें परोस रही थी। तब तक रमेश वहां आकर बोला, "नाश की घड़ी दीख रही है। एक चिलम तमाकू भी नहीं है। अरे ओ दिनेश! भोजन पाकर बाज़ार से आधा सेर कड़ुआ तमाकू ले आना।"

इतना कह कर रमेश अपने घर में जाकर बैठ रहा। दिनेश भी भात खाकर, मां से पैसा

लेकर, तमाकू लेने चला। रमेश उसे बाहर तक पहुंचा कर अन्धकार में चुपचाप खड़ा रहा। भांति २ के विचार बलके मन में उठने लगे। वह सोचने लगा, 'इस समय यदि कोई चोर के समान एक दियासलाई जलाकर मेरे घर में आग लगादे तो.....। पर ऐसा हम होने तो नहीं देंगे। एक बार यदि उसे पकड़पाते तो.....।" उस समय हरीश को पकड़ने के लिए उसकी इच्छा ऐसी प्रबल हुई कि वह अपने मकान के चारों तरफ दबे पांव घूमने लगा। जब वह एक स्थान पर खड़ा हुआ तो उसे मालूम हुआ कि उस कोने पर कोई खड़ा है। वह वहां धीरे धीरे गया पर देखा कि कोई मनुष्य नहीं है पर एक हल वहां पड़ा है। उस समय वह इतना धीरे २ चलरहा था कि वह स्वयं अपने पैरों की आहट नहीं सुन पाता था। फिर उसे भ्रम हुआ कि पूर्वोक्त स्थान पर कोई चीज़ जल रही है। ज्योति बढ़ने लगी, और उस रोशनी की सहायता से रमेश ने देखा कि वहां कोई मनुष्य शिर नीचा किए, गमछा बांधे खड़ा है। उसके हाथ में एक मूज की कूंची है जिसे वह जला रहा है। रमेश घबड़ा गया, उसके रोमांच खड़े होगये, छाती धड़कने लगी। उन्मत्त होकर बोल उठा, "बच्चा! जाने न दूंगा; चाहे जो कुछ हो पर तुम्हें पकड़ूंगा ज़रूर।"

तौभी रमेश उस स्थान पर न जासका। देखते ही देखते वह कूंचा धांय धांय जलने लगा। कुछ देर के बाद छत भी जलने लगी। तब रमेश ने देखलिया कि हरीश वहां निर्भीत खड़ा है।

रमेश उसको पकड़ने के लिए दौड़ा पर हरीश इधर उधर देखकर भाग गया। रमेश लपक कर उसे पकड़ना ही चाहता था कि ठोकर खाकर वह ज़मीन पर गिर पड़ा। उठकर वह फिर दौड़ा और चिल्लाने लगा, "पकड़ो, पकड़ो। चोर है। खून.....।" तब तक हरीश अपने घर पहुंच गया और लौट कर रमेश के सिर में एक लाठी ज़ोर से मारी। चोट बहुत ज़ोर से लगी और चक्कर खाकर वह ज़मीन पर गिर पड़ा। कुछ देर बाद होश हुआ, देखा कि वहां रमेश नहीं है। आग की प्रचण्ड ज्वाला से चारों तरफ दिन समान उजियाला छागया था। हरीश अपने चारों ओर आग देख कर बहुत घबरागया। अपनी छाती पीटने लगा, और सिर धरती पर पटकने लगा। मन में सोचा 'चिल्लायें और लोगों की सहायता मांगें पर अफ़सोस, आवाज़ ही नहीं निकलती। फिर सोचा कि उठके दौड़ूं, पर दौड़ते भी न बना। दो चार क़दम चलकर गिर पड़ा। देखते ही देखते आग ने भयङ्कर रूप धारण किया। आस पास के अन्य मकान भी जलने लगे। उस समय बिना बुलाए बहुत से लोग वहां आ पहुंचे थे। पर किसी ने आग बुझाने का प्रयत्न नहीं किया। सब दूर से यही कह रहे थे, 'पानी लाओ, पानी चाहिये।" आस पास के पड़ोसी बेचारे क्या करें। अपना सँभालें कि दूसरे का। जल्दी २ वे घर में से सब चीजें, कागज़ पत्र आदि निकाल रहे थे। सारांश यह कि किसी ने रमेश की सहायता न की। और सुनिए, आग बढ़ते २ हरीश के मकान तक पहुंच गई। उस समय अग्निसखा पवन भी जोर से बहने लगे। आग की चिनगारी ने अन्त में रमेश और हरीश के मकान को भस्म ही कर डाला किन्तु किसी तरह लोगों ने बुड्ढे की जान बचा ली।

रात भर यह तमाशा जारी रहा। रमेश अपने मकान के पास ही बैठा रहा। बीच बीच में कभी बोल उठता, "यह क्या है? ऐ.....ये लोग कौन.....? क्या किसी से आग नहीं बुझती? अरे वहां जाओ तो सही.....हा! हा! मेरा सब जल रहा है.....वह देखो...।"

एक बार वह उन्मत्त हो घर में घुस गया। जल कर मरा ही चाहता था कि नरेश ने बाहर खींच कर जान बचाई। बहुत से

फफोले उसके शरीर पर पड़ गये थे और वह बेहोश था। होश में आने पर फिर बकने लगा, "ऐ यह क्या! हमारा क्या हो गया? ये लोग कौन हैं.....? हा! हा! मेरा सब जल गया .....वह देखो।"

सुबह होते ही मण्डन मिश्र का लड़का रमेश को बुलाने आया।

"रमेश काका! आपके पिता मरने के पहले आपको देखना चाहते हैं, हमारे साथ चलिये।"

रमेश तो ज्ञानशून्य हो ही रहा था। पुरानी बातें सब भूल गया। बकने लगा, "कौन? बाबा? बुलाते हैं? किसे बुलाते हैं? किसे बुलाते हैं?"

"रमेश काका! आपको बुलाते हैं। आपको देखना चाहते हैं। चलिये हमारे साथ उठिये।" यह कह कर रमेश का हाथ पकड़ उसे अपने साथ ले चला।

बुड्ढा कई जगह जल गया था, इस कारण वह मृतप्राय हो रहा था।

रमेश पिता के पास हताश होकर बैठ गया।

महेश—'बेटा! कहा था कि इस आग की चिनगारी को बुझाओ, नहीं सब कुछ जल जायगा। अब कहो आग किसने लगाई?"

रमेश—"इसी ने बाबा! इसी ने! मैंने इसे पकड़ लिया था पर.....हाय, हाय....."

महेश—"रमेश! मैं भी मर रहा हूं और तुम भी एक दिन मरोगे। बताओ तो सही इस पाप का भागी कौन होगा?"

रमेश चुप रहा, पिता की ओर देखता रहा। एक शब्द भी उसके मुंह से न निकला।

महेश—"बोलो रमेश! बोलो। ईश्वर तो सब देखता ही है पर मैं पहले ही से कह रहा हूं कि तुम्हीं पापी हो!"

रमेश को एकाएक ज्ञान होगया। पिता के दोनों चरणों को पकड़ कर रोने लगा, "बाबा! मैं ही पापी हूं। भगवान हमें माफ करें। पापी .....भगवन.....।" उसकी दोनों आँखों से अश्रुपात होने लगा।

महेश ने फिर एक दीर्घ श्वास फेंका। उसके मुंह का रङ्ग उजला होगया। फिर बोला, "बेटा! बोलो ईश्वर तुम्हें अवश्य क्षमा करेगा। वही पतितपावन है। वह दयानिधि है, उसकी स्तुति करो।" वृद्ध की आंखें भक्ति-अश्रु से भर गईं। कुछ देर बाद वह फिर बोला, "क्यों! बेटा!"

रमेश—"हां! पिता जी।"

महेश—"अब क्या करने की इच्छा है?"

रमेश—(रोकर) "पिता जी क्या कहूं, क्या करूंगा। घर का कारबार कैसे चलेगा?"

महेश—"घर का सब काम ठीक हो जायगा। जिस जगदीश्वर ने जन्म दिया है वही रक्षा करेगा। कोई तकलीफ न होगी। उसकी आज्ञा का पालन करो।" कुछ देर चुप रह कर बुड्ढा फिर बोला, "और फिर यह बात किसी से न कहना। किसी को मत बतलाना आग किस ने लगाई। बेटा! मरते हुए बाप की आज्ञा-प्रार्थना-भूल न जाना। हमारी इच्छा है इस बात को तीसरा न जानें। बस अब तो मैं चला.....।"

... ...

यथासमय इस बात की तहक़ीक़ात होने लगी कि आग कैसे लगी। पर रमेश ने किसी का नाम नहीं बताया। यह देखकर हरीश रमेश के पास पास आया और उसका हाथ पकड़ रो रो कर कहने लगा, "भाई रमेश माफ़ करो।" धीरे २ वे फिर बड़े मित्र हो गये। एक दूसरे की सहायता करने लगे। दूसरे वर्ष अन्न भी खूब हुआ और वे शीघ्र ही पहले समान ऐश्वर्यवान् हो गये।

शिवाजी की समकालीन परिस्थिति।

[लेखक—श्रीयुत तरुण भारत।]

शिवाजी के जन्म के पूर्व की क्या परिस्थिति थी, इसका "शिवाजी की योग्यता" शीर्षक लेख में विचार कर ही चुके हैं। इस लेख में शिवाजी की समकालीन परिस्थिति कैसी थी और उसका उसपर क्या परिणाम हुआ उसका विचार करना है।

शिवाजी की समकालीन परिस्थिति के हमने ६ भाग किये हैं—(१) राजकीय स्थिति (२) धार्मिक स्थिति (३) जीजाबाई के शिक्षण का परिणाम (४) शहाजी के चरित्र का परिणाम (५) दादोजी कोंडदेव के शिक्षण का परिणाम (६) रामदास के सम्बन्ध का परिणाम।

राजकीय परिस्थिति

के विषय में यहां कुछ अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। राजकीय परिस्थिति में कोई विशेष फेरफार नहीं हुआ; वह जैसी पहले थी वैसे ही उनके काल में थी। जो कुछ परिवर्तन हुआ वह सिर्फ इतना ही था कि औरंगजेब दक्षिण का सूबेदार होकर आया था। इस राजपुत्र ने दक्षिण के टुकड़े नोंचने का प्रयत्न किया था। इससे सिर्फ यही ज्ञात हुआ होगा कि दक्षिण के राज्यों में कोई जोर नहीं है—प्रयत्न करने पर धीरे धीरे महाराष्ट्र स्वतन्त्र हो सकता है। धार्मिक परिस्थिति का भी क्रम वही चला था। शिवाजी पर रामदास स्वामी का विशेष प्रभाव पड़ा, इसका हम यहां स्वतन्त्र विचार करेंगे।

२-किस परिस्थिति का और किन कारणों का शिवाजी पर अधिक प्रभाव पड़ा इसका निर्णय करना कठिन है; पर इतना कह सकते हैं कि उसकी माता का शिवाजी के समग्र जीवन पर जितना प्रभाव पड़ा उतना और किसी का नहीं हुआ होगा।

जीजाबाई अच्छे उच्चकुल में उत्पन्न हुई थीं। उनके पिता के और पति के बीच राजकीय बातों के कारण झगड़ा हो जाने से उसे पति ने छोड़ दिया। वह बड़ी मानिनी थी—पति के त्याग देने पर पिता के घर न जाकर वह स्वतंत्र रहने लगी। जिस समय उसका पिता जाधवराव अपने जामाता को पकड़ने के लिए पीछा किये चला जा रहा था, उस समय उसके साथ जीजाबाई भी थी और वह उस समय गर्भवती थी। जब शाहजी ने देखा कि पत्नी को लेकर भागना कठिन है तो उसने बीच में उसे छोड़ दिया। इसके बाद जीजाबाई ने शिवनेर किले में आश्रय लिया। इस विपन्नावस्था का जीजाबाई के मन पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। वह पूर्व ही से बड़ी दृढ़ स्त्री थी। पति और पिता दोनों ने त्याग दिया, पर शिवाजी के जन्म लेने पर उसे कुछ आशा उत्पन्न हुई। साहस, निश्चय, धैर्य, विचारशीलता इत्यादि गुण उसके मन में संकटों की परम्परा के कारण उत्पन्न हुए और इन गुणों का प्रवेश शिवाजी के हृदय में स्वाभाविक ही होगया। अब उसे यह आशा उत्पन्न हुई कि शिवाजी आगे बड़ा होकर नाम कमावे और मुझे अपने जन्म की सार्थकता प्राप्त हो! मानी स्वभाव के कारण उसे यह भी मालूम होता था कि मैं स्वतन्त्र रीति से मान धन प्राप्त करूं। इस कारण शिवाजी ही उसकी एकमात्र आशा—एकमात्र आधार थे। इसलिए उसका अपने पुत्र पर निःसीम प्रेम था, शिवाजी भी अपनी माता से अतिशय प्रेम करते थे, अपनी माता की सलाह लिये बिना वे कोई काम न करते थे और इस व्रत का उन्होंने जन्मभर पालन किया। माता भी योग्य सलाह देती और

उनके कार्य में वृथा विघ्न नहीं डालती थी। अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए उसने शिवाजी का मन शिक्षा देकर शिक्षित किया, पुरानी वीर-कथाएँ बतलाना तो उसका क्रम ही था, पर रामायण, महाभारत में से भी वह अनेक कथाएँ बतलाया करती थी। इन बातों को सुनकर स्वाभाविक ही शिवाजी का मन रोमांचित हो जाता था और उन वीरों के कर्तव्यों के सदृश कृत्य करने का निश्चय मन ही मन होता चला गया। शिवाजी का साहसी स्वभाव देखकर माता को मालूम होने लगा था कि अच्छी शिक्षा से यह आगे अच्छा नाम पैदा करेगा। "शत्रु का नाश कर कुल का उद्धार करनेवाला शक-कर्त्ता अपने कुल में पैदा होनेवाला है, ऐसे देवी ने कई दृष्टान्त दिये हैं पर यह बात कब सत्य होती है ?" इस प्रकार के वाक्य वह शिवाजी से हमेशा कहा करती थी। इसका कितना भारी प्रभाव हुआ होगा यह समझदार मनुष्य को बतलाने की आवश्यकता नहीं। जीजाबाई वीराङ्गना थी और स्वावलम्बन के सिवा उसे कोई अन्य उपाय न था। उसे यह बराबर जान पड़ता था कि मुझे इस दुनिया में कोई विशेष महत्वपूर्ण काम करना है, इसी कारण वह ईश्वर में विश्वास रख शिवाजी को इस महान् कार्य के लिए तैयार कर रही थी। धीरे धीरे शिवाजी का मन इन बातों की ओर लग चला और बाल्यावस्था से ही उनके मन में निश्चय होने लगा कि हम महान् कार्य करेंगे, जगत् में जितने महान् पुरुष उत्पन्न हुए हैं उनका जीवनचरित्र बहुधा माता की शिक्षा से संगठित हुआ है। नेपोलियन, सिकन्दर, अकबर सब पर ही उनकी माताओं का प्रभाव पड़ा है। पर यदि सचमुच किसी का जीवन माता की शिक्षा से ही अधिकतर बना हुआ है तो वह शिवाजी ही का है।

३-जीजाबाई के बाद दादोजी कोंडदेव की शिक्षा का शिवाजी के मन पर क्या प्रभाव पड़ा इसका विचार करना उचित है। दादोजी शाहजी का पुराना नौकर था और उनकी पूना के पास की जागीर की देखभाल करता था। पीछे से शिवाजी को लेकर उनकी माता भी पूने में आकर रहीं। इससे शिवाजी पर भी देखभाल करने का काम उस पर पड़ा। इस पुरुष ने दो काम किये (१) पूना की जागीर की सुव्यवस्था (२) शिवाजी को शिक्षा। दादोजी व्यवस्था करने में बहुत होशियार था। जागीर की देखभाल हाथ में लेने के पहले उसकी दशा बहुत बुरी थी। दुष्काल, युद्ध और वन्य पशुओं के कारण सब वीरान पड़ा था। कुछ खेती न होती थी परन्तु दस साल में ही उसने अपनी व्यवस्था से यह जागीर ऐसी कर दी कि उसका स्वामी फिर अधिक सेना रख सका, अपने किले मज़बूत कर सका और सब विपन्नावस्था जाती रही।

दूसरा काम, शिवाजी की शिक्षा का, उसने उतनी ही योग्यता से किया। दादोजी नेक, ईमानदार, धार्मिक और लोकहितैषी पुरुष था। पहले पहल उसे शिवाजी की उच्छृङ्खलता ठीक नहीं मालूम होती थी। पर धीरे धीरे यह उसे मालूम होने लगा कि शिवाजी के साथ साधारण नियम से व्यवहार करना ठीक नहीं—उसे कुछ लोकोत्तर ही समझना चाहिये। उसने उस वीर को योग्य और पूरी शिक्षा दी थी। दादोजी इतना पवित्र और धर्मभीरु था कि एक बार अपने स्वामी के वृक्षों में से एक आम तोड़ने की उसे इच्छा हुई तो उसके बाद उसने अपना हाथ ही तोड़ डालना चाहा। आखिर बड़ी कठिनाई से हाथ न तोड़ने पर सहमत हुआ। परन्तु उस हाथ की अस्तीन जन्मभर आधी रक्खी। इस पवित्रता का प्रभाव शिवाजी पर कितना हुआ होगा यह बतलाना आवश्यक नहीं। दादोजी की यह इच्छा थी कि शाहजी के समान यह भी कोई भारी राजा का मनसबदार वगैरः कुछ हो—उसे शिवाजी के हृदय

की कल्पना का कुछ अन्दाजा न था। पर इस पुरुष ने तरुण पुरुष की उच्छृङ्खलता को बहुत नरम किया और इसका बड़ा अच्छा परिणाम हुआ। शिवाजी की कल्पना के अनुसार कार्य करने पर वह बड़ी कठिनाई से सहमत हुआ और मरते समय शिवाजी को वह उत्तम उपदेश दे गया। दादोजी को ज़मीन के महसूल की और राज्य की व्यवस्था इतनी उत्तम थी कि शिवाजी ने उसी पर अपनी इमारत खड़ी की। सारांश, इस पुरुष ने भी बहुत बड़ा काम किया था।

३-अब शाहजी के चरित्र का क्या परिणाम हुआ इसका विचार करना उचित है। बहुत कम लोगों ने इसका विचार किया है, और इसका सम्बन्ध राजकीय अवस्था से भी है।

शाहजी बहुत योग्य पुरुष था। शूर, साहसी, निश्चयी, ईमानदार तो वह था ही पर वह बड़ा भारी राजकार्य कुशल भी था। इतना बतला देना बस है कि वह मलिक अंबर का प्रतिस्पर्धी था। उसने कई निज़ामशाही के राजाओं को गद्दी पर बिठलाया और अहमदनगर मुगलों के हाथ में निकल जाते तक वह इनसे लड़ता रहा। उसने अनेक राज्यों के कौशल देखे, ऐसे चरित्र का शिवाजी पर कुछ न कुछ प्रभाव हुआ होगा इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। शाहजी 'पुराने' पंथ का पुरुष था, स्वतंत्रता की उसे आकांक्षा उत्पन्न नहीं हुई थी। निजामशाही डूब जाने के बाद उसने स्वतंत्र राज्य की रचना करने का प्रयत्न नहीं किया, पर उसे भी कभी कभी स्वतंत्रता के विचार आ ही जाते थे, इन विचारों का तरुण पुत्र के मन पर विचार न हुआ होगा यह कहना ठीक नहीं।

दूसरी बात यह है कि शाहजी के जीतेजी शिवाजी के कृत्यों को कोई स्वरूप नहीं मिला था, क्योंकि पिता के जीतेजी 'राजा' बन जाना किंवा अपने नाम के सिक्के निकालना ठीक नहीं मालूम होता था। पिता की मृत्यु के बाद उसे अपने कृत्यों को व्यवस्थित रूप देना पड़ा। शिवाजी जितना मातृभक्त था, उतना ही पितृभक्त भी था।

४-अब बड़ा विवादात्मक प्रश्न शिवाजी और रामदास के परस्पर सम्बन्ध का है।

एक पक्ष का कहना है कि शिवाजी पर रामदास का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। दूसरा पक्ष कहता है धर्म और स्वराज्य का उद्धार करने के लिए शिवाजी को रामदास ही ने तैयार किया। हमारी समझ में ये दोनों पक्ष सत्य को अपनी अपनी ओर खींच रहे हैं जो उन दोनों के बीच में है। इस बात का निर्णय हम यही जानकर कर सकते हैं कि शिवाजी और रामदास की भेंट कब हुई।

शिवाजी को बचपन में जीजाबाई और दादोजी कोंडदेव रामायण और महाभारत की कथाएँ सुनाया करते थे, यह हम ऊपर बतला ही चुके हैं। जब शिवाजी बड़ा हुआ, तो वह साधु पुरुषों के कथा-कीर्तन सुनने जाने लगा। शिवाजी के मन की वृत्ति इतनी धार्मिक हो गई थी कि पहुंच के भीतर जहां कहीं कथा-कीर्तन होता, वहाँ ज़रूर जाता था। जब उसने तुकाराम बाबा से भेंट की तो इस साधु पुरुष ने इस तरुण को स्वामी रामदास के पास भेज दिया। शिवाजी पर रामदास का कितना प्रभाव हुआ, इसका हम निश्चय अभी नहीं कर सकते हैं, हां, इतना अवश्य है कि इसके बाद शिवाजी और रामदास राजकीय और धार्मिक गुरु-शिष्य के नाते से हमेशा बँधे रहे।

इससे यह बात स्पष्ट है कि शिवाजी अपने कार्य के लिए पहले ही तैयार हो चुके थे। उन्हें ज्ञात हो गया था कि राज्य का, धर्म का और देश का उद्धार करना आवश्यक है। इस बात

के लिये उनका मन पक्का भी हो गया था, यह कह सकते हैं। इतना ही नहीं वरन् कार्य किस प्रकार शुरू करना चाहिये, इसका भी वे निश्चय कर चुके थे। शिवाजी ने पहला किला सन् १६४६ में लिया। इतना कार्य करने के पहले वे अपने मन का निश्चय दो तीन वर्ष पहले कर चुके होंगे। हमारी समझ में किस मार्ग का अवलम्बन करना चाहिये यह भी निश्चय उनके मन में हो गया होगा। राजकीय और धार्मिक परिस्थिति के निरीक्षण से उनके मन में इस बात का अंकुर उठा होगा, उस पर उनकी माता ने सिंचन किया और ऊपर बतलाये हुए दो पुरुषों ने उन्हें योग्य शिक्षण दिया, इन सब बातों से उसका मन हमेशा इस महाकार्य के लिए तैयार होता चला जा रहा था। ऐसे समय में रामदास स्वामी से भेंट हुई। अब कोई कहेंगे, तो फिर आप सब ही श्रेय शिवाजी को दे डालते हैं, स्वामी रामदास के लिए कुछ भी नहीं छोड़ते, परन्तु इसका उत्तर हम शीघ्र ही देते हैं।

महाराष्ट्र की राजकीय और धार्मिक परिस्थिति की हम आलोचना कर ही चुके हैं, यह भी बतला चुके हैं कि राज्य, देश, स्वतंत्रता और धर्म की जहां तहां पुकार मच रही थी। ये विचार शिवाजी के मन में ही क्या, वरन् प्रत्येक साधु, संत, गरीब, श्रीमान्, गृहस्थी, संन्यासी, सब के ही मनमें उठ रहे थे। शिवाजी को इस बात का श्रेय है कि उनमें इस परिस्थिति के उपयुक्त कला के योग्य गुण थे, उन्हें अन्तःकरण से जान पड़ता था कि यह कार्य उन्हीं का है और यह ईश्वरी संकेत है, और सबसे भारी बात यह कि इस महापुरुष ने इस परिस्थिति का योग्य रीति से निःस्वार्थ पुरुष की तरह उपयोग किया। फिर इसमें कौन आश्चर्य की बात है कि रामदास को यह जंचने लगा था कि राज्य का, धर्म का, स्वतंत्रता का, उद्धार होना चाहिये। इस स्वामी को भी ये विचार और स्वतंत्र रीति से जँचने लगे। रामदास स्वामी तब से इस बात के प्रयत्न में लगे थे। वे सच्चा धर्म फैलाते, लोगों की नीति सुधारते, और स्वराज्य और स्वतंत्रता की अभिलाषा लोगों के मनमें उत्पन्न करते अपना भ्रमण कर रहे थे, इसी कारण तुकाराम बाबा ने शिवाजी को रामादास के पास भेजा। बस, कार्यकर्त्ता और कार्योत्तेजक की भेंट हो गई, योद्धाओं को तैयार करनेवाले का और इन योद्धाओं को लेकर रणभूमि पर लड़नेवाले सेनापति का सम्मिलन हो गया, मेज़िनी और गेरीवाल्डी एकत्रित हो गये। इसके बाद शिवाजी रामदास की सम्मति सदा लिया करते थे और स्वामी भी इस तरुण पुरुष को सदा योग्य सलाह देते और उत्तेजित करते थे। शिवाजी का मन यद्यपि उच्च विचारों से भरा था और धर्म से संस्कृत था, तथापि आखिर वे एक संसारी प्राणी ही थे मामूली गृहस्थ को तो संसार के बखेड़े से विरति उत्पन्न हो जाती है, समय समय पर हताश हो जाना पड़ता है और कार्यशिथिलता उत्पन्न हो जाती है। फिर छोटी सी जागीर से महाराष्ट्र का तमाम राज्य फेर लेना कितना कठिन कार्य है, इसका विचार भी करना कठिन है, इस मौके के लिए रामदास स्वामी की आवश्यकता थी। वे हमेशा उपदेश देकर उत्तेजित करते रहे। शिवाजी को कई बार उपरति उत्पन्न हुई, राज्यपाट छोड़ कर ईश्वर-भजन में काल बिताने की इच्छा उसने कई बार प्रदर्शित की। ऐसे मौके पर रामदास स्वामी शिवाजी को बतलाया करते थे कि तुम्हारा यही सच्चा धर्म है कि तुम देश का, स्वराज्य का, और धर्म का, उद्धार करो, और इसी में तुम्हें उच्च गति प्राप्त होगी, इसीलिए परमेश्वर ने तुम्हें यहां भेजा है। इस प्रकार शिवाजी से बराबर कार्य करवाते रहे। इससे यह नहीं समझना चाहिये कि उन्हें कार्य करने की योग्यता न थी। नहीं, कार्य करने की योग्यता न रहती तो यह कार्य सिद्ध ही न होता। पर समय समय पर

की कल्पना का कुछ अन्दाजा न था। पर इस पुरुष ने तरुण पुरुष की उच्छृङ्खलता को बहुत नरम किया और इसका बड़ा अच्छा परिणाम हुआ। शिवाजी की कल्पना के अनुसार कार्य करने पर वह बड़ी कठिनाई से सहमत हुआ और मरते समय शिवाजी को वह उत्तम उपदेश दे गया। दादोजी की ज़मीन के महसूल की और राज्य की व्यवस्था इतनी उत्तम थी कि शिवाजी ने उसी पर अपनी इमारत खड़ी की। सारांश, इस पुरुष ने भी बहुत बड़ा काम किया था।

३-अब शाहजी के चरित्र का क्या परिणाम हुआ इसका विचार करना उचित है। बहुत कम लोगों ने इसका विचार किया है, और इसका सम्बन्ध राजकीय अवस्था से भी है।

शाहजी बहुत योग्य पुरुष था। शूर, साहसी, निश्चयी, ईमानदार तो वह था ही पर वह बड़ा भारी राजकार्य कुशल भी था। इतना बतला देना बस है कि वह मलिक अंबर का प्रतिस्पर्धी था। उसने कई निज़ामशाही के राजाओं को गद्दी पर बिठलाया और अहमदनगर मुगलों के हाथ में निकल जाते तक वह इनसे लड़ता रहा। उसने अनेक राज्यों के कौशल देखे, ऐसे चरित्र का शिवाजी पर कुछ न कुछ प्रभाव हुआ होगा इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। शाहजी 'पुराने' पंथ का पुरुष था, स्वतंत्रता की उसे आकांक्षा उत्पन्न नहीं हुई थी। निजामशाही डूब जाने के बाद उसने स्वतंत्र राज्य की रचना करने का प्रयत्न नहीं किया, पर उसे भी कभी कभी स्वतंत्रता के विचार आ ही जाते थे, इन विचारों का तरुण पुत्र के मन पर विचार न हुआ होगा यह कहना ठीक नहीं।

दूसरी बात यह है कि शाहजी के जीतेजी शिवाजी के कृत्यों को कोई स्वरूप नहीं मिला था, क्योंकि पिता के जीतेजी 'राजा' बन जाना किंवा अपने नाम के सिक्के निकालना ठीक नहीं मालूम होता था। पिता की मृत्यु के बाद उसे अपने कृत्यों को व्यवस्थित रूप देना पड़ा। शिवाजी जितना मातृभक्त था, उतना ही पितृभक्त भी था।

४-अब बड़ा विवादात्मक प्रश्न शिवाजी और रामदास के परस्पर सम्बन्ध का है।

एक पक्ष का कहना है कि शिवाजी पर रामदास का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। दूसरा पक्ष कहता है धर्म और स्वराज्य का उद्धार करने के लिए शिवाजी को रामदास ही ने तैयार किया। हमारी समझ में ये दोनों पक्ष सत्य को अपनी अपनी ओर खींच रहे हैं जो उन दोनों के बीच में है। इस बात का निर्णय हम यही जानकर कर सकते हैं कि शिवाजी और रामदास की भेंट कब हुई।

शिवाजी को बचपन में जीजाबाई और दादोजी कोंडदेव रामायण और महाभारत की कथाएँ सुनाया करते थे, यह हम ऊपर बतला ही चुके हैं। जब शिवाजी बड़ा हुआ, तो वह साधु पुरुषों के कथा-कीर्तन सुनने जाने लगा। शिवाजी के मन की वृत्ति इतनी धार्मिक हो गई थी कि पहुंच के भीतर जहां कहीं कथा-कीर्तन होता, वहाँ ज़रूर जाता था। जब उसने तुकाराम बाबा से भेंट की तो इस साधु पुरुष ने इस तरुण को स्वामी रामदास के पास भेज दिया। शिवाजी पर रामदास का कितना प्रभाव हुआ, इसका हम निश्चय अभी नहीं कर सकते हैं, हां, इतना अवश्य है कि इसके बाद शिवाजी और रामदास राजकीय और धार्मिक गुरु-शिष्य के नाते से हमेशा बँधे रहे।

इससे यह बात स्पष्ट है कि शिवाजी अपने कार्य के लिए पहले ही तैयार हो चुके थे। उन्हें ज्ञात हो गया था कि राज्य का, धर्म का और देश का उद्धार करना आवश्यक है। इस बात

के लिये उनका मन पक्का भी हो गया था, यह कह सकते हैं। इतना ही नहीं वरन् कार्य किस प्रकार शुरू करना चाहिये, इसका भी वे निश्चय कर चुके थे। शिवाजी ने पहला किला सन् १६४६ में लिया। इतना कार्य करने के पहले वे अपने मन का निश्चय दो तीन वर्ष पहले कर चुके होंगे। हमारी समझ में किस मार्ग का अवलम्बन करना चाहिये यह भी निश्चय उनके मन में हो गया होगा। राजकीय और धार्मिक परिस्थिति के निरीक्षण से उनके मन में इस बात का अंकुर उठा होगा, उस पर उनकी माता ने सिंचन किया और ऊपर बतलाये हुए दो पुरुषों ने उन्हें योग्य शिक्षण दिया, इन सब बातों से उनका मन हमेशा इस महा-कार्य के लिए तैयार होता चला जा रहा था। ऐसे समय में रामदास स्वामी से भेंट हुई। अब कोई कहेंगे, तो फिर आप सब ही श्रेय शिवाजी को दे डालते हैं, स्वामी रामदास के लिए कुछ भी नहीं छोड़ते, परन्तु इसका उत्तर हम शीघ्र ही देते हैं।

महाराष्ट्र की राजकीय और धार्मिक परिस्थिति की हम आलोचना कर ही चुके हैं, यह भी बतला चुके हैं कि राज्य, देश, स्वतंत्रता और धर्म की जहां तहां पुकार मच रही थी। ये विचार शिवाजी के मन में ही क्या, वरन् प्रत्येक साधु, संत, गरीब, श्रीमान्, गृहस्थी, संन्यासी, सब के ही मनमें उठ रहे थे। शिवाजी को इस बात का श्रेय है कि उनमें इस परिस्थिति के उपयुक्त कला के योग्य गुण थे, उन्हें अन्तःकरण से जान पड़ता था कि यह कार्य उन्हीं का है और यह ईश्वरी संकेत है, और सबसे भारी बात यह कि इस महापुरुष ने इस परिस्थिति का योग्य रीति से निःस्वार्थ पुरुष की तरह उपयोग किया। फिर इसमें कौन आश्चर्य की बात है कि रामदास को यह जंचने लगा था कि राज्य का, धर्म का, स्वतंत्रता का, उद्धार होना चाहिये। इस स्वामी को भी ये विचार और स्वतंत्र रीति से जँचने लगे। रामदास स्वामी तब से इस बात के प्रयत्न में लगे थे। वे सच्चा धर्म फैलाते, लोगों की नीति सुधारते, और स्वराज्य और स्वतंत्रता की अभिलाषा लोगों के मनमें उत्पन्न करते अपना भ्रमण कर रहे थे, इसी कारण तुकाराम बाबा ने शिवाजी को रामादास के पास भेजा। बस, कार्यकर्त्ता और कार्योत्तेजक की भेंट हो गई, योद्धाओं को तैयार करनेवाले का और इन योद्धाओं को लेकर रणभूमि पर लड़ने-वाले सेनापति का सम्मिलन हो गया, मेज़िनी और गेरीबाल्डी एकत्रित हो गये। इसके बाद शिवाजी रामदास की सम्मति सदा लिया करते थे और स्वामी भी इस तरुण पुरुष को सदा योग्य सलाह देते और उत्तेजित करते थे। शिवाजी का मन यद्यपि उच्च विचारों से भरा था और धर्म से संस्कृत था, तथापि आखिर वे एक संसारी प्राणी ही थे मामूली गृहस्थ को तो संसार के बखेड़े से विरति उत्पन्न हो जाती है, समय समय पर हताश हो जाना पड़ता है और कार्यशिथिलता उत्पन्न हो जाती है। फिर छोटी सी जागीर से महाराष्ट्र का तमाम राज्य फेर लेना कितना कठिन कार्य है, इसका विचार भी करना कठिन है, इस मौके के लिए रामदास स्वामी की आवश्यकता थी। वे हमेशा उपदेश देकर उत्तेजित करते रहे। शिवाजी को कई बार उपरति उत्पन्न हुई, राज्यपाट छोड़ कर ईश्वर-भजन में काल बिताने की इच्छा उसने कई बार प्रदर्शित की। ऐसे मौके पर रामदास स्वामी शिवाजी को बतलाया करते थे कि तुम्हारा यही सच्चा धर्म है कि तुम देश का, स्वराज्य का, और धर्म का, उद्धार करो, और इसी में तुम्हें उच्च गति प्राप्त होगी, इसीलिए परमेश्वर ने तुम्हें यहां भेजा है। इस प्रकार शिवाजी से बराबर कार्य करवाते रहे। इससे यह नहीं समझना चाहिये कि उन्हें कार्य करने की योग्यता न थी। नहीं, कार्य करने की योग्यता न रहती तो यह कार्य सिद्ध ही न होता। पर समय समय पर

उसे जित करना और कार्य करते समय फल की आकांक्षा न रखना यही वे बतलाते रहे। रामदास स्वामी का कार्य प्रत्यक्ष न था, वे न सिपाही एकत्रित करते थे, न लड़ने को किसी को बतलाते थे। उनका कार्य अप्रत्यक्ष था, वे लोगों की नीति सुधारते, सच्चे धर्म की कल्पना कर देते और यह प्रतिबिंबित करते जाते थे कि धर्म का उद्धार स्वराज्य के बिना न होगा। स्वामी के कार्य का महत्व यही है और इसी नाते से शिवाजी का और उनका संबंध रहा। उन्होंने प्रत्यक्ष उपदेश किसी को दिया हो तो वह शिवा जी को ही दिया, स्वामी निरेच्छु थे और अपना काल ईशसेवा में बिताया करते थे, पर पीछे से जब आपके अनुयायी बढ़ गये, तब उनके द्वारा कभी कभी प्रत्यक्ष सहायता जैसे समाचार वगैरः गुप्त रीति से पहुंचा देते पर यह भी सहायता अत्यंत परिमित थी।

५-सारांश, देश की परिस्थिति से शिवाजी के समान पुरुष उत्पन्न हुआ। उनमें सब स्वाभाविक गुण थे ही, उन पर माता के शिक्षण का सिंचन हुआ, दादोजी कोंडदेव ने उनकी उच्छृंखलता नियमित की, कथाकीर्तनों से धर्म को मन में जागृति हुई, उच्च विचार उत्पन्न हुए, मालूम होने लगा कि धर्म, स्वदेश, स्वराज्य के उद्धार के लिए परमेश्वर ने मुझे भेजा है, इसमें स्वार्थ की किसी प्रकार बाधा न होनी चाहिये। यह स्मरण रखने के योग्य है कि ऐसे विचारों से ही प्रेरित होकर शिवाजी ने इस महान् कार्य को हाथ में लिया। रामदास स्वामी लोगों के मनों को तैयार कर चुके थे और कर रहे थे। शिवाजी को सदा दैवी शक्ति की प्रेरणा रही और इसी स्फूर्ति से वे तमाम कार्य करते रहे। वे अपने लोगों के, देश के, काल के प्रतिनिधि थे और इसी नाते से वे तमाम कार्य निभाते रहे।

"स्वतंत्रता की प्राप्ति और उपयोग ही मनुष्य को स्वतंत्र होने के योग्य बनाता है।"

युद्ध के बाद भारत।

देश और विदेश चारों ओर आजकल विद्वानों और राजनीतिज्ञों में यह प्रश्न उठ रहा है कि युद्ध के बाद भारत की

स्थिति क्या होगी ?

ब्रिटिश साम्राज्य में उसे कौनसा स्थान मिलेगा, वह स्वतंत्र होगा या नहीं, उसे उसके तुल्य, उसके उपयुक्त स्थान प्राप्त होगा या नहीं, भारतवासियों को मनुष्योचित अधिकार प्राप्त होंगे या नहीं ? इस बात पर विशेष ध्यान पड़ने का कारण यह है कि भारत की राजभक्ति, और ब्रिटेन में अचल विश्वास को देखकर लोगों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा है, जिस बात की उन्हें स्वप्न में भी आशा न थी, दिनदहाड़े जिसका स्वप्न देखकर वे विचलित हो जाते थे, उसे न होते देख वे स्तंभित हो गये हैं और सहृदय, उदार, विद्वान यह चाह रहे हैं कि भारत के स्वप्न सफल हों और उसे उसके योग्य गौरव का स्थान प्राप्त हो।

डा० गिलबर्ट मरे आक्सफर्ड विश्वविद्यालय के एक प्रसिद्ध अध्यापक हैं। आपने अभी लंदन में भारत के

राजनैतिक भविष्य

के विषय में एक व्याख्यान दिया था। व्याख्यान

विचारपूर्ण और उदारता की नीति से भरा हुआ था। उन्होंने कितनी ही बातें कही हैं जिनपर अङ्गरेज़ों और भारतवासियों को शान्तचित्त हो विचार करना चाहिये। उन्होंने कहा है कि इस युद्ध के कारण भारत और इङ्गलैंड में एक भ्रातृभाव पैदा हो गया है, यह दिन दिन गाढ़ा हो रहा है, इस भ्रातृभाव को और भी सुदृढ़ करना भारतवासियों और अङ्गरेज़ों का कर्तव्य है। उन्होंने कहा कि प्रश्न यह उपस्थित है कि यह बड़ा साम्राज्य, जिसके लिए अङ्गरेज़ और भारतवासी आज भाई भाई की भांति गले मिले हुए, फ्लैंडर्स, मिस्र, फारस की झाड़ी आदि में खून बहा रहे हैं, भविष्य में स्वतंत्र मनुष्यों और स्त्रियों का एक बड़ा समाज होगा या खूनखराबे और मारकाट द्वारा यह आपस में ही छिन्न-भिन्न हो नष्ट होगा? या यह साम्राज्य भी बेबिलान, मिस्र, रोम, बेजन्टाइन आदि निरंकुश साम्राज्यों की भांति कुछ दिनों तक चमककर सदा के लिए लुप्त हो जायगा और इस प्रकार से कि कोई उसकी याद भी न करे और न कोई उस के अस्त होने से दुःखी ही हो? उन्होंने कहा है "We must be together. I can see no future for an isolated India; no happy future for a Great Britain which is content to boast that she holds India merely by the sword" अर्थात् हम लोगों का साथ रहना आवश्यक है। विभिन्न, न्यारे भारत के भविष्य में मुझे विश्वास नहीं, साथ ही ब्रिटेन के लिए, जो इसका गर्व करता है कि वह तलवार के ज़ोर से भारत को काबू में किये है, मुझे कोई अच्छे भविष्य की आशा नहीं। दोनों ही साथ रहकर फल फूल सकते हैं। इङ्गलैंड में कितने ही गुण हैं, भारत में कितने ही गुण हैं; भ्रातृभाव के लिए यह आवश्यक है कि एक दूसरे की बुराइयों की ओर ध्यान न देकर गुणों पर ध्यान दें, भारतवासी और अङ्गरेज़ एक दूसरे का मान करना और पारस्परिक प्रशंसा करना सीखें। यदि दोनों एक दूसरे का मान करने लगेंगे, एक दूसरे के गुणों की कद्र करना आरम्भ करेंगे और एक दूसरे की भलाइयों को ग्रहण करना सीखेंगे तो सहज में ही गाढ़ी मित्रता स्थापित हो जायगी।

भारतवासियों को उपदेश देते हुए अध्यापक महोदय ने कहा है:—"जब कि संसार जीवन-संग्राम में लीन है, तुम स्वप्न देखना छोड़ दो। जो बातें हो रही हैं, उनकी ओर, यथार्थता की ओर ध्यान दो, ज्ञान उपार्जन करो, साधारण विवेक को हस्तगत करो, विश्वास करना और विश्वासपात्र होना सीखो, और अपने समाज की सेवा में लीन हो। अपने प्राचीन गौरव का स्वप्न देखना छोड़ो, भविष्य की चिन्ता में लीन हो, और अपने समाज में से उन त्रुटियों को, जिनके कारण भारत आगे बढ़ने में असमर्थ है, जड़ से खोद बाहर करो"। शिक्षा उपयोगी है और हम आशा करते हैं कि भारतवासी इसको ग्रहण करेंगे किन्तु अध्यापक महोदय से हम इतना कह देना अपना कर्तव्य समझते हैं कि अपनी विद्वत्ता के बाह्य पृष्ठस्थ निरीक्षण में, ऊपरी तह को देखरेख में उन प्रवाहों पर उन्होंने विचार ही नहीं किया जिनके कारण बढ़ता हुआ भी भारत गर्त में पटक दिया जाता और लड़ाया जाता है। ये प्रवाह सिविल सर्विस और एङ्गलो-इंडियन लोगों के हैं। इनके मुँह में शक्ति, हुकूमत, हम का खून लगा हुआ है, इनके रहते भारतवासी योग्य होते हुए भी अयोग्य हैं, शक्ति रखते हुए भी शक्तिहीन हैं, क्योंकि ये नहीं चाहते कि भारतवासी भी इनके बराबर के हो जाँय। संयुक्तप्रान्त की कार्यकारिणी कौंसिल का न प्राप्त होना इसका सबसे बड़ा सुबूत है। अध्यापक महोदय ने कहा है "Face facts, beware all together of dreams and dreamlike passions"। हम भी

उन्हें जित करना और कार्य करते समय फल की आकांक्षा न रखना यही वे बतलाते रहे। रामदास स्वामी का कार्य प्रत्यक्ष न था, वे न सिपाही एकत्रित करते थे, न लड़ने को किसी को बतलाते थे। उनका कार्य अप्रत्यक्ष था, वे लोगों की नीति सुधारते, सच्चे धर्म की कल्पना कर देते और यह प्रतिबिंबित करते जाते थे कि धर्म का उद्धार स्वराज्य के बिना न होगा। स्वामी के कार्य का महत्व यही है और इसी नाते से शिवाजी का और उनका संबंध रहा। उन्होंने प्रत्यक्ष उपदेश किसी को दिया हो तो वह शिवा जी को ही दिया, स्वामी निरेच्छु थे और अपना काल ईशसेवा में बिताया करते थे, पर पीछे से जब आपके अनुयायी बढ़ गये, तब उनके द्वारा कभी कभी प्रत्यक्ष सहायता जैसे समाचार वगैरः गुप्त रीति से पहुंचा देते पर यह भी सहायता अत्यंत परिमित थी।

५-सारांश, देश की परिस्थिति से शिवाजी के समान पुरुष उत्पन्न हुआ। उनमें सब स्वाभाविक गुण थे ही, उन पर माता के शिक्षण का सिंचन हुआ, दादोजी कोंडदेव ने उनकी उच्छृंखलता नियमित की, कथाकीर्तनों से धर्म को मन में जागृति हुई, उच्च विचार उत्पन्न हुए, मालूम होने लगा कि धर्म, स्वदेश, स्वराज्य के उद्धार के लिए परमेश्वर ने मुझे भेजा है, इसमें स्वार्थ की किसी प्रकार बाधा न होनी चाहिये। यह स्मरण रखने के योग्य है कि ऐसे विचारों से ही प्रेरित होकर शिवाजी ने इस महान् कार्य को हाथ में लिया। रामदास स्वामी लोगों के मनों को तैयार कर चुके थे और कर रहे थे। शिवाजी को सदा दैवी शक्ति की प्रेरणा रही और इसी स्फूर्ति से वे तमाम कार्य करते रहे। वे अपने लोगों के, देश के, काल के प्रतिनिधि थे और इसी नाते से वे तमाम कार्य निभाते रहे।

"स्वतंत्रता की प्राप्ति और उपयोग ही मनुष्य को स्वतंत्र होने के योग्य बनाता है।"

युद्ध के बाद भारत।

देश और विदेश चारों ओर आजकल विद्वानों और राजनीतिज्ञों में यह प्रश्न उठ रहा है कि युद्ध के बाद भारत की

स्थिति क्या होगी ?

ब्रिटिश साम्राज्य में उसे कौनसा स्थान मिलेगा, वह स्वतंत्र होगा या नहीं, उसे उसके तुल्य, उसके उपयुक्त स्थान प्राप्त होगा या नहीं, भारतवासियों को मनुष्योचित अधिकार प्राप्त होंगे या नहीं ? इस बात पर विशेष ध्यान पड़ने का कारण यह है कि भारत की राजभक्ति, और ब्रिटेन में अचल विश्वास को देखकर लोगों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा है, जिस बात की उन्हें स्वप्न में भी आशा न थी, दिनदहाड़े जिसका स्वप्न देखकर वे विचलित हो जाते थे, उसे न होते देख वे स्तंभित हो गये हैं और सहृदय, उदार, विद्वान यह चाह रहे हैं कि भारत के स्वप्न सफल हों और उसे उसके योग्य गौरव का स्थान प्राप्त हो।

डा० गिलबर्ट मरे आक्सफर्ड विश्वविद्यालय के एक प्रसिद्ध अध्यापक हैं। आपने अभी लंदन में भारत के

राजनैतिक भविष्य

के विषय में एक व्याख्यान दिया था। व्याख्यान

विचारपूर्ण और उदारता की नीति से भरा हुआ था। उन्होंने कितनी ही बातें कही हैं जिनपर अङ्गरेज़ों और भारतवासियों को शान्तचित्त हो विचार करना चाहिये। उन्होंने कहा है कि इस युद्ध के कारण भारत और इङ्गलैंड में एक भ्रातृभाव पैदा हो गया है, यह दिन दिन गाढ़ा हो रहा है, इस भ्रातृभाव को और भी सुदृढ़ करना भारतवासियों और अङ्गरेज़ों का कर्तव्य है। उन्होंने कहा कि प्रश्न यह उपस्थित है कि यह बड़ा साम्राज्य, जिसके लिए अङ्गरेज़ और भारतवासी आज भाई भाई की भांति गले मिले हुए, फ्लैंडर्स, मिस्र, फारस की खाड़ी आदि में खून बहा रहे हैं, भविष्य में स्वतंत्र मनुष्यों और स्त्रियों का एक बड़ा समाज होगा या खूनखराबे और मारकाट द्वारा यह आपस में ही छिन्न-भिन्न हो नष्ट होगा? या यह साम्राज्य भी बेबिलान, मिस्र, रोम, वेजन्टाइन आदि निरंकुश साम्राज्यों की भांति कुछ दिनों तक चमककर सदा के लिए लुप्त हो जायगा और इस प्रकार से कि कोई उसकी याद भी न करे और न कोई उस के अस्त होने से दुःखी ही हो? उन्होंने कहा है "We must be together. I can see no future for an isolated India; no happy future for a Great Britain which is content to boast that she holds India merely by the sword" अर्थात् हम लोगों का साथ रहना आवश्यक है। विभिन्न, न्यारे भारत के भविष्य में मुझे विश्वास नहीं, साथ ही ब्रिटेन के लिए, जो इसका गर्व करता है कि वह तलवार के ज़ोर से भारत को काबू में किये है, मुझे कोई अच्छे भविष्य की आशा नहीं। दोनों ही साथ रहकर फल फूल सकते हैं। इङ्गलंड में कितने ही गुण हैं, भारत में कितने ही गुण हैं; भ्रातृभाव के लिए यह आवश्यक है कि एक दूसरे की बुराइयों की ओर ध्यान न देकर गुणों पर ध्यान दें, भारतवासी और अङ्गरेज़ एक दूसरे का मान करना और पारस्परिक प्रशंसा करना सीखें। यदि दोनों एक दूसरे का मान करने लगेंगे, एक दूसरे के गुणों की कद्र करना आरम्भ करेंगे और एक दूसरे की भलाइयों को ग्रहण करना सीखेंगे तो सहज में ही गाढ़ी मित्रता स्थापित हो जायगी।

भारतवासियों को उपदेश देते हुए अध्यापक महोदय ने कहा है:—"जब कि संसार जीवन-संग्राम में लीन है, तुम स्वप्न देखना छोड़ दो। जो बातें हो रही हैं, उनकी ओर, यथार्थता की ओर ध्यान दो, ज्ञान उपार्जन करो, साधारण विवेक को हस्तगत करो, विश्वास करना और विश्वासपात्र होना सीखो, और अपने समाज की सेवा में लीन हो। अपने प्राचीन गौरव का स्वप्न देखना छोड़ो, भविष्य की चिन्ता में लीन हो, और अपने समाज में से उन त्रुटियों को, जिनके कारण भारत आगे बढ़ने में असमर्थ है, जड़ से खोद बाहर करो"। शिक्षा उपयोगी है और हम आशा करते हैं कि भारतवासी इसको ग्रहण करेंगे किन्तु अध्यापक महोदय से हम इतना कह देना अपना कर्तव्य समझते हैं कि अपनी विद्वत्ता के बाह्य पृष्ठस्थ निरीक्षण में, ऊपरी तह की देखरेख में उन प्रवाहों पर उन्होंने विचार ही नहीं किया जिनके कारण बढ़ता हुआ भी भारत गर्त में पटक दिया जाता और सड़ाया जाता है। वे प्रवाह सिविल सर्विस और एङ्गलो-इंडियन लोगों के हैं। इनके मुँह में शक्ति, हुकूमत, हम का खून लगा हुआ है, इनके रहते भारतवासी योग्य होते हुए भी अभाग्य हैं, शक्ति रखते हुए भी शक्तिहीन हैं, क्योंकि ये नहीं चाहते कि भारतवासी भी इनके बराबर के हो जाँय। संयुक्तप्रान्त की कार्यकारिणी कौंसिल का न प्राप्त होना इसका सबसे बड़ा सुबूत है। अध्यापक महोदय ने कहा है "Face facts, beware all together of dreams and dreamlike passions"। हम भी

यही बात उनसे कहते हैं कि स्वप्न की बातें छोड़ कर यथार्थता की ओर ध्यान दीजिये। जिसके हाथ में शक्ति है वह उसका ह्रास कब स्वीकार कर सकता है? भारत का शासन भारतवासियों की सम्मति से नहीं होता, उनकी उसमें सुनवाई नहीं, हस्तक्षेप कर सकने की बात तो दूर रही, न भारत का शासन कोई वाइसराय या गवर्नर ही करता है। वास्तव में शासन करनेवाली संस्था सिविल सर्विस है। जब तक सिविल सर्विस की परीक्षा विलायत में होती है, जहाँ अधिक संख्या में भारतवासी पहुँच नहीं सकते, जबतक सिविल सर्विस गोरे चमड़ेवालों की बपौती है और १० में ९ की संख्या उनकी है, जबतक सभी कुछ भी शक्ति रखनेवाले पद अङ्गरेज़ों के हाथ में हैं, जब तक भारतवासी केवल लकड़ी काटने और पानी भरनेवाले हैं, जबतक भारतवासियों के भाग्य में क्लर्की के सिवा कुछ नहीं है, तबतक कोरी बातों से कुछ नहीं हो सकता। भारत अब एक राष्ट्र है और इसका अर्थ यह है कि

स्वराज्य

का वह सर्वथा अधिकारी है। कोई भी सभ्य जाति आजतक किसी भी सभ्य जाति को गुलामी के पाश में बांधे नहीं रह सकी। इतिहास इसका साक्षी है। सिविल सर्विस का यह गर्व, कि वह इस बात को तय करे, निश्चित करे कि भारत स्वराज्य के उपयुक्त हुआ या नहीं या कब होगा, धृष्टता और असहनीय है।

अध्यापक महोदय को चाहिये कि वे अङ्गरेज़ों से प्रश्न कर पूछें कि यदि भीतरी झगड़े के कारण आज इंगलैंड पर किसी अन्य जाति का शासन होता, यदि समस्त शासन का कार्य विजेताओं के हाथ में होता, उन्हें ऊँचे पद न मिलते, सेना और नौ-सेना में उन्हें कोई पद न मिलता, अस्त्र-आईन के कारण वे निरस्त्र रहते, देशरक्षा, जननी के मान-मर्यादा की रक्षा के लिए भी वे स्वयंसेवक न बन सकते, वाइसराय से लेकर कलक्टर तक विजेता जाति के होते, शिक्षा का कार्य भी विजेताओं के हाथ में होता, शिक्षा से अधिक रेलों में खर्च किया जाता, जनता अविद्या के अंधकार से ग्रसित होती, केवल क्लर्कों के निमित्त विजेता जाति की भाषा उन्हें पढ़नी पड़ती और सबके ऊपर अपने ही देश में, इङ्गलैंड में ही, यदि इङ्गलैंड के निवासी तुच्छ और हीन गिने जाते, उनके साथ विदेशियों का व्यवहार होता तो इङ्गलैंडनिवासी इसे कैसा समझते?

इतना सब कुछ होते हुए भी भारत शान्त है और उसका विश्वास स्वतंत्रताप्रेमी इङ्गलैंड में अचल है। वह बन्धुता के भाव को तोड़ना नहीं चाहता, वह चाहता है केवल एक बराबर का भाई होना। भारत स्वतंत्र होना चाहता है, वह इसे भिक्षा सदृश नहीं वरन् अधिकार की भांति माँगता है जैसे कोई छोटा योग्य भाई बालिग होने पर अपने बड़े भाई से अपनी जायदाद चाहता है। वह चाहता है कि उसे वे सब अधिकार प्राप्त हों जो संसार में कोई भी बढ़ी से बढ़ी हुई जाति अपने लिए आवश्यक समझती है। भारत चाहता है कि उसके निवासी भारत में वैसे ही स्वतंत्र हों जैसे कि अङ्गरेज़ इङ्गलैंड में स्वतंत्र हैं। वह चाहता है कि उसका शासन उसीके पुत्रों के चुने हुए, उन्हींके भाई प्रतिनिधियों के हाथ में हो। वह चाहता है कि उसके पुत्र सेना और नौ-सेना में ऊंचे से ऊंचे पद पर पहुंच सकें, वह चाहता है कि उसके पुत्रों को अस्त्र-शस्त्र रखने का पूरा अधिकार रहे, वह चाहता है कि वे ही कर लगा सकें और उसे अपने इच्छानुसार खर्च कर सकें, वह चाहता है कि उसके पुत्रों के गृह उनके लिए गढ़ हों जैसे कि किसी अङ्गरेज़ का घर उसके लिए उसका महल होता है। भारत इस सबके साथ चाहता है कि साम्राज्य की कौंसिल में उसके प्रतिनिधि भी सम्मिलित हों और ब्रिटिश साम्राज्य में उसके

पुत्रों का हाथ वैसा ही रहे जैसा कि आयर्लैंड, स्काटलैंड, वेल्स, आस्ट्रेलिया या एफ्रिका के निवासियों का है।

अध्यापक महोदय ! इन बातों को सुनकर आप चौकेंगे। आप कह उठेंगे कि यह बहुत है किन्तु क्या आप कह सकते हैं कि इससे एक रत्ती भी कम दबा आप अपने लिए या आपके भाई अपने देश में अपने लिए चाहते हैं ? जो एक अङ्गरेज़ इङ्गलैंड में चाहता है वही एक भारतवासी भारत में चाहता है और वह बिलकुल स्वाभाविक और उचित है।

यह सब कोरी बातों से नहीं होगा, केवल एक दूसरे के गुणों के ग्रहण करने से न होगा, इसके लिए आवश्यक है उदारता, अर्थ के अहम्भाव, बड़प्पन का गर्व तथा स्वार्थ का बहिष्कार।

यह समय ऐसा न था कि ये बातें कही जातीं किन्तु जब "भारत के भविष्य" पर विचार हो रहा है, जब उसकी भावी स्थिति का निश्चय हो रहा है, जब उदार स्वतंत्रता के प्रेमी, उसके नाम पर बलिदान चढ़ानेवाले अङ्गरेज़ इस प्रश्न पर विचार कर रहे हैं उस समय भारत के हार्दिक विचारों का छिपा रखना, व्यर्थ भय से उसे दबा रखना हम निकृष्ट कर्म ही नहीं वरन् साम्राज्य के प्रति पाप समझते हैं। इसीलिए आज हमने ये बातें कह डाली हैं। हमारा इङ्गलैंड में विश्वास है, सदा अङ्गरेज़ों में विश्वास है और हम आशा करते हैं कि भारत के भावी भविष्य पर धीरता और शीघ्रता से वे विचार करेंगे और भारत के स्वराज्य, औपनिवेशिक स्वराज्य और इङ्गलैंड का दाहिना हाथ होने के स्वप्न को चरितार्थ करने में सहायक होंगे।

मुसलमानों की शासननीति ।

[लेखक--श्रीयुत राधाकृष्ण झा ।]

(१) अफगानों का समय ।

जब से भारतवर्ष का मुसलमानों से सम्बन्ध हुआ है तब से उसकी काया पलट गई है। हिन्दू मुसलमानों में प्रायः सभी प्रकार से विभिन्नता थी। धर्म तो भिन्न था ही, रहन सहन भी पृथक्, सभ्यता न्यारी, भाषा दूसरी, बल पराक्रम असमान;--किसी प्रकार की एकता नहीं देख पड़ता थी। फिर उन लोगों की राज्यशासन-प्रणाली भी विभिन्न क्यों न होती ! भारतवर्ष की आबहवा, इस देश की प्राकृतिक स्थिति ही कुछ ऐसी है कि लोगों को सुखलिप्सु और आलसी बनादेती है। उनके मानसिक विचार दार्शनिक हो जाते हैं पर मुसलमान जिस देश से आये वह ऐसा है कि वहां स्वभाव से ही मनुष्य हट्टा-कट्टा और बलवान् होता है। मुसलमान पहाड़ों में रहनेवाले, तलवार चलानेवाले और शिकार से अपने पेट भरनेवाले थे। फिर ये महात्मा मुहम्मद के चलाये हुए धर्म के अनुयायी। इस धर्म में सब समान हैं--इसमें वर्ण वा जाति के विभाग नहीं हैं; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का भेदभाव नहीं--एकता और संहति दो इसके मूलमन्त्र हैं। इस पर मुहम्मद साहब का यह उपदेश कि धर्म प्राण मुसलमान अपने धर्म और अल्लाह की कीर्ति जी जान से सारे संसार में फैलावें, इसी में उनका लाभ है।

इस लोक में सांसारिक सुख और परलोक में मोक्ष, बस दोनों ही हाथों लड्डू हैं। अब क्या था, एकता, समानता और धर्म की दुहाई इन तीनों के बल मुसलमानों ने असाध्य को साध्य कर दिखाया, जहां गये वहीं उनकी जीत हुई और उनके पैगम्बर के चलाये धर्म का प्रचार बढ़ता गया। ऐसा भी एक समय था जब इस धर्म के आगे किसी शक्ति को ठहरने का साहस न होता था। इसका डंका एशिया, अफ्रिका और यूरोप में सर्वत्र बज रहा था। यूरोप में स्पेन तथा वियेना के शहर पनाह तक इसका झंडा पहुंच गया था, इसी इसलाम धर्म की इस बाढ़ में सोता हुआ दार्शनिक भारतवर्ष भी गोते खाने लगा।

पहले कहा जा चुका है कि आरम्भ में मुसलमानों की चढ़ाई लूट पाट कर क़ाफिरों का धन लेने और अपने पैगम्बर के चलाये धर्म की श्रेष्ठता और अल्लाह की प्रभुता दिखाने के लिए ही हुआ करती थी। उस समय इसलाम ज़ोर पर था। धर्मप्राण मुसलमान के लिए इससे बढ़ कर और कोई पवित्र कार्य ही न था। यह धारा-प्रवाह किसी न किसी रूप से अफ़ग़ान बादशाहों के समय में भी जारी रहा। उनका प्रधान उद्देश्य भी क़ाफिरों को वश में लाना, अपने धर्म का प्रचार करना और इसलाम का झंडा नये २ देशों, नये २ राज्यों में फहराना था।

टेलर साहब ने अपने इतिहास में लिखा है कि मुसलमान इतिहास लेखकों से विदित होता है कि इस काल में बादशाहों के केवल दो उद्देश्य थे,—राज्य विस्तार करना तथा हिन्दुओं को वश में लाना। राज्य विस्तार तो अवश्य हुआ, परन्तु हिन्दुओं का मूलोच्छेद न हो सका। इसलाम का प्रचार करने और भिन्न धर्मियों को इस नये मत का सेवक बनाने का उन लोगों ने चाहे जितना प्रयत्न क्यों न किया हो पर हिन्दूधर्म का लोप न हो सका। अफ़ग़ानों के समय हिन्दुओं को कष्ट अवश्य था पर ऐसे अफ़ग़ान बादशाह भी हो गये हैं जिन के शासन में हिन्दुओं को बहुत कुछ स्वतंत्रता मिली हुई थी। यदि अलाउद्दीन ख़िलजी वा मुहम्मद तुग़लक जैसे कड़े और दुराग्रही बादशाह राज करते थे तो फीरोज़ तुग़लक जैसे दयावान और न्यायी बादशाह भी दिल्ली के सिंहासन पर बैठते थे। तौ भी हिन्दुओं को अपने धार्मिक आचार, विचार वा व्यवहार में पूरी स्वच्छन्दता न थी। जब फीरोज़ तुग़लक जैसे प्रजाहितैषी, उदार-प्रकृति राजा के समय में भी हिन्दू मूर्त्तिपूजा न करने पाते थे, और हिन्दू होने के कारण जज़िया देने को लाचार किये जाते थे, तब दूसरे बादशाहों के समय में क्या होता होगा यह अनुमान का विषय है। परन्तु इतना तो अवश्य सत्य है कि मुग़लों के समय में हिन्दुओं को अधिक स्वतंत्रता थी, धर्म के कारण उन्हें उतना कष्ट, अनादर वा अपमान न सहना पड़ता था।

इस भेद का कारण सहज ही मिल सकता है। अफ़ग़ान बादशाह स्वभाव से ही युद्धप्रिय थे; शारीरिक बलप्रयोग ही में उनका महत्व था। भारतवर्ष उनके लिए सब प्रकार से विदेश था; इसके लिए उनके हृदय में प्रीति होने की सम्भावना न थी। फिर इस पर राजा और प्रजा में विषम धार्मिक प्रभेद। अफ़ग़ान अपने को ईश्वर के वरपुत्र समझते थे; धर्म का जोश उन्हें यहां लाया था। तब क्योंकर सम्भव था कि उस जोश में कमी करके वे भारतवर्ष से मेल-जोल बढ़ाते। मूर्त्तिपूजक हिन्दुओं की सहायता करना, उन्हें राजशासन में अधिकार देना, उनके धार्मिक व्यवहारों में हस्तक्षेप न करना, ये बातें कट्टर अफ़ग़ानों को भला कब सह्य हो सकती थीं? एक और कारण भी हो सकता है,—रणक्षेत्र तथा शासनकार्य दोनों ही में निपुण होना बड़ा ही कठिन है। वीर अफ़ग़ान बादशाह राजनीतिज्ञ भी थे, यह प्रतीत नहीं होता। यदि राजनीतिज्ञ होते, यदि मनुष्य

प्रकृति को समझने और उसके शासन करने की सच्ची योग्यता रखते होते तो भारत का तत्कालीन इतिहास कुछ और ही होता। परन्तु ऐसा न हुआ। विजेता ने सोचा कि भारतवर्ष बाहुबल से दख़ल किया गया है तो तलवार ही के ज़ोर से अधिकार में रक्खा जा सकता है। जब तक विजेता का शारीरिक बल अधिक रहेगा, जब तक कोई अधिक बली आकर उन्हें पराजित न करलेगा, तबतक वे भारत के शासक बने रहेंगे। ऐसा विचार करके अफ़ग़ान अपना सामरिक बल पुष्ट रखने में ही दत्तचित्त रहे। समय २ पर अफ़ग़ानिस्तान, तुर्किस्तान इत्यादि देशों से सिपाही बुला सेना में भरती किये। यहां के लोगों पर विश्वास कर उन्हें सेना में दायित्वपूर्ण अधिकार देना अनुचित समझा। यह उनकी कैसी भूल थी इसका परिचय इतिहास पुकार २ कर दे रहा है। एकमात्र अपनी सामरिक श्रेष्ठता पर भरोसा करके उन बादशाहों ने प्रजावर्ग से मिलना जुलना, उनके सामाजिक जीवन में शामिल होना और उनके प्रति बन्धुभाव प्रदर्शित करना उचित नहीं समझा, जिसका फल यह हुआ कि राजा-प्रजा में प्रेम का सम्बन्ध नाम को भी नहीं स्थापित हुआ—एक के सुख-दुःख से दूसरे को मानो कुछ सम्बन्ध ही नहीं था। एक राजवंश के बाद दूसरा आया और गया—गुलामवंश को हटा ख़िलजियों ने दिल्ली पर आधिपत्य जमाया, ख़िलजी गये तो तुग़लक आये; फिर सैयदों और लोदियों की बारी आई। पीछे इन सब को हटा तैमूर-वंशज बाबर ने अपना प्रभुत्व स्थापित किया। दिल्ली के राजसिंहासन ने कितने ही उलट फेर देखे; विप्लव के बाद विप्लव हुआ; तीन सौ वर्षों में कितने आये और कितने गये; परन्तु प्रजा को मानो इसकी कुछ चिन्ता न थी। वह इन परिवर्तनों को आंखें फाड़ कर बस देख लिया करती थी। प्रजा को राजा के लिए, राजा को प्रजा के लिए सहानुभूति न थी, जो राजा-प्रजा में, शासक और शासित में, दोनों के मंगल के लिए होना उचित था। उधर शासकों ने समझ लिया कि प्रजा सुख में रहे या दुःख में हमारी बादशाही में तो बट्टा नहीं लगता; और इधर प्रजा ने सोच लिया कि "कोउ नृप होइ हमहिं का हानी" यही कारण है कि सम्पूर्ण अफ़ग़ान इतिहास में एक भी ऐसा उदाहरण नहीं है जब लोकमत किसी विशेष राजवंश के लिए सहानुभूति से क्षुब्ध हुआ हो और उसको बचाने के लिए साधारण जनता वा रईसों और राजा महाराजाओं ने यत्न किया हो। कवि आर्नल्ड ने उचित ही कहा है:--

The East bowed low before the blast
In patient deep disdain

She let the legions thunder past
And plunged in thought again.

तिरस्कार से भारत ने झोंके
सशान्ति सामना किया।
सेना की गर्जना देखली,
निज विचार में चित्त दिया॥

(२) मुग़लों का समय।

हिन्दुओं ने मुसलमानी राज्य स्थापित होने के हज़ारों वर्ष पहले ही उन सिद्धान्तों का निश्चय कर दिया था जिनका आज अब बड़े २ अन्तर्जातीय कानूनों (International Laws) की पद्धति से निर्णय होता है। यहां के दूरदर्शी ऋषियों के बनाये शासन-नीति-विषयक नियम, जिनका समावेश मनुसंहिता में है, आज भी सभ्य जगत में सद्यः वा प्रकाशान्तर में माने जाते हैं। मनु ने स्पष्ट ही कहा है कि जो राजा कोई नया देश दखल करे तो उसे उचित है कि वहां के प्रचलित धर्म तथा देवस्थल आदि की रक्षा करे, जागीरें वितरण करे, अपनी नयी प्रजा को घोषणा द्वारा आश्वासन दे, और उस देश के प्रच-

लित, सामाजिक तथा राजकीय नियमों को स्वीकार करे। यदि सम्भव हो तो विजित राजा से मेल कर उसकी सहायता ले, क्योंकि इस प्रकार मित्र राज्य स्थापित करने से राजा के बल की पुष्टि होती है। मनु के लिखे नियमों से अफ़गान राजाओं के समय की प्रथा का मिलान करने पर प्रकृत अवस्था का ज्ञान हो जयगा।

पूर्वोक्त उद्देश्यों को सामने रखकर प्रजाशासन नहीं करने के कारण ही विजित भारतवर्ष में तीन सौ वर्षों तक विप्लव ही होता रहा। जो राजा बली हुआ और अपने अधीनस्थ सरदारों और सेनाओं का योग्य शासन करता रहा वह तो यशस्वी हुआ, और राज्य का विस्तार कर सका, पर जो राजा अभ्याग्यवश इन गुणों से वंचित रहा उसके समय में कुशासन के फल से विप्लव ने सिर उठाया और अन्त में उस राजवंश की इतिश्री हो गई।

मुसलमान बादशाहों में अकबर ही सबसे पहला बादशाह हुआ जिसने उक्त राजनीतिक तत्व को समझा। वास्तव में मुग़लवंश का संस्थापक वही था, और उसे ही भारतवर्ष का—हिन्दू मुसलमानों का—सच्चा राजा बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसका जीवनचरित्र पढ़ने से आरम्भ में ही विचित्रता झलकने लगती है। पराजित शत्रु के प्रति दया दिखाना नवस्थापित राज्य में कितना काम करता है यह अकबर खूब समझता था। उसकी राजनीति सब से निराली थी। उसके पहले मुसलमान बादशाहों ने न वैसा किया था, न उनसे वैसा होना सम्भव ही था। पानीपत की दूसरी लड़ाई के बाद जब प्रभु-भक्त हेमू घायल होकर पकड़ा गया, तब उसी आसन्न-मृत्यु अवस्था में वह अकबर के सामने लाया गया। वही योद्धा जो कुछ ही समय पहले एक बड़ी सेना इकट्ठी कर भारतवर्ष की ओर से मुग़लों का सामना करने गया था—उसके भाग्य ने ऐसा कुछ पलटा खाया कि—घायल और बन्दी होकर अपने शत्रु के सामने हाज़िर किया जाता है। ऐसे समय में पठान बादशाह क्या करते यह कहने की आवश्यकता नहीं। ख़ान बाबा बैरम खां ने प्रचलित नियमों के अनुसार ही युवक बादशाह अकबर से कहा कि आप इस पराजित क़ाफिर का शिर काट अपनी विजयिनी तलवार की प्यास बुझावें। अकबर लड़का था परन्तु भावी महत्व का चिन्ह उसके रोम २ से झलकता था। सच्चे वीर को जैसा चाहिये उसी प्रकार अकबर ने भी पराजित, बन्दी तथा कातर शत्रु को निर्दयता से मारने से साफ़ इनकार किया। परन्तु बैरम कब माननेवाला था, वह जिस रंग में रँग चुका था; उसने जिस पाठशाला में शिक्षा पाई थी उसके विरुद्ध जाना उसकी अवस्था के मनुष्य के लिए कठिन था। बैरम ने झट मरते हुए हेमू का सिर धड़ से अलग कर अपनी शत्रुता की आग बुझाई। पर इस एक घटना ने ही स्पष्ट कर दिखाया कि भारत का भावी सम्राट् किस प्रकार का मनुष्य था। ज्यों २ अकबर की उम्र बढ़ती गई उसके विचार भी प्रौढ़ होते गये और साथ ही भारतशासन की पद्धति भी बदलती गई। अकबर ने मनुसंहिता में कहे गये ऋषियों की बातों का ही प्रयोग करना उचित समझा। सम्भव है कि अबुलफ़ज़ल और फैज़ी जैसे संस्कृत के विद्वानों ने उक्त बातें अकबर को सुझाई हों। जो हो इतना अवश्य सत्य है कि अकबर ने निश्चय कर लिया था कि भारतवर्ष का राज्य केवल बाहुबल पर ही स्थित नहीं रह सकेगा। जबतक इस राज्य की नींव प्रजा के प्रेम तथा सहानुभूति पर न पड़ेगी तबतक इसका चिरस्थायी होना कठिन है। जब तक हिन्दू मुसलमान का मेल न बढ़ेगा, आपस की फूट न मिटेगी, विजेता और विजित का भेदभाव न घटेगा, तब तक वह निश्चिन्त न रह सकेगा। इन उद्देश्यों की पूर्त्ति के लिए अकबर ने कई उपाय किये। मुग़लों ने यद्यपि पानीपत की

लड़ाई में अफ़गानों को परास्त किया था, तथापि बंगाल इत्यादि प्रान्तों में उनका ज़ोर बहुत बढ़ा हुआ था। अफ़गानों को सर करना, मुग़लों के राज्य का विस्तार करना तथा हिन्दू प्रजा को भी मिलाये रखना एक साथ ये तीनों काम संकीर्ण नीति के अवलम्बन से नहीं हो सकते थे। अकबर दूरन्देश था, उसने पहिले हिन्दुओं को, विशेष कर राजपूत वीरों को, वश में करने की ठानी। लड़ाई से वा प्रलोभन से वा मनु के बनाये उपायों से किसी न किसी प्रकार उसने राजपूत नरेशों को अपनी मुट्ठी में कर लिया। क्रमशः सब के सब, केवल महाराना उदयसिंह और अद्वितीय वीर प्रतापसिंह को छोड़, अकबर के मित्र वा सम्बन्धी बन गये। वे बड़े २ पदों पर बिठाये गये, राजपूतों की सेना बनी, और उसके अधिनायक तथा नायक राजपूत राजा ही होने लगे। अब क्या था, राजा के प्रेम और विश्वास पर मुग्ध होकर हिन्दुओं ने प्राण तक अर्पण करना तुच्छ समझा। उन्हें अपनी योग्यता दिखाने तथा अकबर को अपना पक्ष पुष्ट करने का इससे बढ़कर और कौन अवसर मिल सकता था। हिन्दू मनसबदार काबुल या बंगाल के अफ़गानों को सर करने के लिए नियुक्त किये जाने लगे। जो बातें यहां मुसलमानों के इतिहास में कभी नहीं हुई थीं वे अकबर ने कर दिखाईं।

धर्म के नाम पर ईश्वर-भक्ति के बहाने आज तक कितनी खूनख़राबी हुई इसकी गवाही इतिहास पुकार २ कर दे रहा है। हमारा ही धर्म सच्चा है, हम ईश्वर को जो आकार, जो गुण देते हैं वही ठीक है, हम जिस प्रकार उसकी पूजा करते हैं, हमने उसकी उपासना के लिए जो पद्धति बनाई है और जो मन्दिर उठाया है वही ठीक है, मद्भिन्न दूसरों की सब बातें बिलकुल झूठी निःसार हैं। इतना ही नहीं, हम जो कहते हैं या जो करने की सलाह देते हैं दूसरों को भी वही मानना और करना पड़ेगा। यदि न करेंगे तो उन्हें तलवार के जोर से 'सच्चे' रास्ते पर खींच लाना हमारा धर्म है। यही तो आज तक के धर्मयुद्धों की नीति रही है। इन्हीं विचारों से परिचालित होकर ईश्वर के भक्तों ने रक्त की कितनी नदियां बहाईं, और निरपराधियों के रुण्ड-मुण्ड के कैसे २ पहाड़ खड़े किये, उनका अब कौन हिसाब लगा सकता है। कैथलिक और प्रोटेस्टंटों के युद्ध, मुसलमानों क्रुस्तानों की धार्मिक लड़ाइयां, हिन्दुओं और बौद्धों के समर और हिन्दू मुसलमानों के युद्ध ही उनके प्रमाण हैं। पर इन सब लड़ाई-झगड़ों का फल क्या हुआ? कोई किसी दूसरे धर्म का समूल नाश न कर सका। ईश्वर जो था वही रहा। वह न पराजितों के ही पक्ष आया न उसने विजेताओं को ही अपनाया। उसके लिए सब बराबर हैं। सब उसीके जीव हैं। अपनी २ रुचि और बुद्धि के अनुसार लोग उसके रूप की कल्पना कर और उपासना की पद्धति बना लेते हैं। इन विचारों पर चलने के लिए असंकुचित बुद्धि चाहिये, उदार हृदय चाहिये। पर मत-मतान्तर का जोश लोगों को अनुदार और कट्टर बना देता है। मुसलमानों के समय में भारतवर्ष की भी ऐसी ही अवस्था थी। अकबर ने देखा कि धार्मिक प्रभेद के कारण हिन्दू मुसलमानों में बहुत बड़ा वैमनस्य फैला हुआ है और यह कभी सम्भव ही नहीं है कि सब के सब हिन्दू मुसलमान हो जायँ जिससे दोनों का झगड़ा मिटे और बादशाह सुख की नींद सोवे। इस कारण उसने सोचा कि मित्रभाव तथा धार्मिक प्रश्नों में उदारनीति का प्रयोग ही राजनीतिज्ञ का काम होगा। अतएव उसने ऐसाही किया और फल भी आशातीत हुआ। हिन्दुओं को अपने धर्म के कारण जो जज़िया नामक कर देना पड़ता था वह उठा दिया गया। हिन्दू तीर्थयात्रियों से जो कर लिया जाता था वह भी माफ़ कर दिया गया। अब

तक हिन्दू कर्मचारी उच्च पदों पर नियुक्त नहीं होते थे; जोखिम का काम उनके हाथ कभी नहीं सौंपा जाता था। अकबर ने इस रुकावट को भी हटा दिया। हिन्दू मुसलमान दोनों के अधिकार प्रायः बराबर होगये। दोनों अपनी २ योग्यता और कार्यकुशलता से उच्चपदों पर पहुंचने लगे। अकबर बादशाह इस उदारनीति से हिन्दुओं के प्यारे होगये। हिन्दुओं के बराबर कृतज्ञ जाति पृथ्वी पर ढूंढ़ने ही से मिलेगी। प्रेम और राजभक्ति से गद्गद हो हिन्दुओं ने कहना शुरू किया "दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा।"

अकबर के चलाये नियम और उसकी उदार नीति, उसकी मृत्यु के अनन्तर भी कुछ दिनों जारी रही। उसके पुत्र और पौत्र जहांगीर और शाहजहां ने भी अकबरी नीति से ही शासन किया। परन्तु औरंजेब ने आकर सब बातें पलट दीं। औरंगजेब, वीर, परिश्रमी, बुद्धिमान् तथा चतुर राजा था परन्तु उसके विचार बहुत ही संकीर्ण थे। शासकों में--विशेष कर हिन्दुस्तान जैसे देश में जहां अनेक जातियां और बहुत से धर्म प्रचलित हैं--जिन गुणों की आवश्यकता है वे औरंगजेब में बिलकुल न थे। वह अपने धर्म में बहुत पक्का था और मुलनाओं के उपदेश का बड़ा पाबन्द था। इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओं की अवस्था फिर पठानों के समय की सी हो गई। क्रमशः 'काफ़िर' उच्च पदों से हटाये गये। जिन राजपूतों ने मुसलमानों का साथ दे अपने ही भाई बन्धुओं का खून बहाया था उनपर भी अविश्वास होने लगा। बादशाह की कूटनीति से कई सम्भ्रान्त राजपूत वीरों को अपमान सहना पड़ा। घृणित 'ज़जीया' नामक कर फिर से जारी हो गया। मुसलमान कर्मचारियों पर भी इतना अविश्वास किया जाता था कि कोई सच्चे मन से बादशाह की सेवा नहीं कर सकता था। अकबर ने यत्न पूर्व्वक जिन दूषणों को हटाने की चेष्टा की थी (और पीछे उस के पुत्र तथा पौत्र ने भी उस चेष्टा को शिथिल नहीं होने दिया था) उनकी औरंगजेब के समय में फिर वृद्धि हुई। इसी समय से प्रसिद्ध तैमूरवंश के विशाल साम्राज्य का अधःपतन आरम्भ हुआ। औरंगज़ेब ने अपने मुसलमानी राज्य की सीमा को वृद्धि के उच्चतम शिखर पर भी पहुंचाया और साथ ही उसके नाश का मार्ग भी तैयार कर दिया। जब १७०७ ई० में प्रायः ९० वर्ष का बुड्ढा बादशाह इस संसार की लीला समाप्त कर रहा था उस समय उसके जीवन की घटनाएँ उसे बेचैन किये डालती थीं। उस समय उसे विश्वास हो गया था कि अपने कार्यों का फल कुछ तो वह आप भोग चुका है और शेष उसके उत्तराधिकारी भोगेंगे। हुआ भी ऐसा ही। औरँगज़ेब के मरने पर ५०-६० वर्षों ही में मुग़लों का विशाल राज्य तहस नहस हो गया। उसी राज्य के भग्नावशेष पर एक नया दृढ़ साम्राज्य स्थापित हुआ जिसका प्रतापसूर्य आज तक बढ़ रहा है।

प्रेमी का पत्र।

हाल दिल वह है कि जो कहने के शाया* भी नहीं।
और जो चाहूं कि छिपाऊं तो यह इमकां† भी नहीं
बात वह कहनी है कहने में जो शरम आती है।
लब पे आ आके मेरे बात पलट जाती है॥
एक मुद्दत से रहा दिल में छिपाये जो बात।
आज कहता हूं उसे शरम है अब आपके हाथ॥
मेरी हिम्मत नहीं पड़ती के कहूं दिल की मगर।
अब छिपाये से तो छिपता भी नहीं दर्दे जिगर॥
मैं ज़बां से न कहूं हाल बता देंगे मेरा।
मेरे सूखे हुए होंठ और मेरा उतरा चेहरा॥
यह समझ कर तुम्हें लिखता हूं ये बात ऐ प्यारी।
खुद ही जाने मेरे दिल कि न के दुनिया सारी॥
देखना और किसी पर नहो ज़ाहिर यह हाल।
साफ लिखना मुझे दिलमें हो तुम्हारे जो ख्याल॥
अपने मतलब से भी पहले मुझे कुछ कहना है।
यह कि दुनिया में अभी तुमको बहुत रहना है॥
मदभरी अँखड़ियों में शरम का पानी आए।
चार दिन भी नहीं गुज़रे हैं जवानी आए॥
चश्मबद्दूरह अभी आप है ही क्या सिन।
चले आते हैं उमंगों के तरंगों के दिन॥
नशए इश्क जो आखों में कभी पावेगी तुम।
अपना मुह देखके आईने में शरमावेगी तुम॥
लाख घातों से जले दिल को जलायेगा ज़रूर।
कामदेव अपने बिरह बान चलायेगा ज़रूर॥
घाव पर घाव लगायँगे पपीहे अकसर।
फूल से गाल पै मंडलायँगे भौरें अकसर॥
खेलने तुमसे कभी तुमको खिलाने के लिये।
मौसम आयँगे कभी दिलको लुभाने के लिये॥
पूछ लो दिल से जो मानो न हमारा कहना।
है कठिन बात जवानी में अकेले रहना॥
कभी ग्रीष्म कभी बर्षा कभी आयेगा हिमन्त।
कभी आयेगा शरद गाह शिशर गाह बसंत॥
गरम गरमी कि हवा ऐसी कि दिल मुरझा जायें।
ज़िकर फूलों का तो क्या नैनकमल कुम्हला जायें॥
तुन्द झोंकों में हवा की वह हरारत तोबा।
और पसीने की वह गालों पै शरारत तोबा॥
वह दोपहरों की उदासी वह पहाड ऐसे दिन।
काटे कट जाय अकेले यह नहीं है मुमकिन॥
मुहं पे बहना वह पसीने का कभी लहरों में।
भिनभिनाना कभी सारंग का दोपहरों में॥
दिन अगर कट भी गया रात कटेगी क्योंकर।
जिसमें घंटों का तो क्या ज़िकर है पल पल दूभर॥
रात भर तो कोई पत्ता न हिलेगा प्यारी।
दिन मगर रात से जिस वक्त मिलेगा प्यारी॥
ऐसी सनकेगी हवा सुबः को प्यारी प्यारी।
भूल जायेगी वह शब* भर की शिकायत सारी॥
खिलखिला कर इसी मौसम में हँसेंगे कभी फूल।
आपके हंसने पर आवाजें कसेंगे कभी फूल॥
फूल बेले का खिलाने के लिये आयेगी।
चांदनी तुमको लुभाने के लिये आयेगी॥
गर्मी कट जायगी वर्षा न कटेगी लेकिन।
फिर जवानी की वह रातें वह उमंगों के दिन॥
कभी आयेंगी घटाओं में घटाएं काली।
सरपे लायेंगी बलाओं पे बलाएं काली॥
बिजली आ आके अकेले में डरायेगी ज़रूर।
दिल में बिरहन के मगर आग लगायेगी ज़रूर॥
दिलजलों को कभी यों आके जला जायेगा।
कामदेव अपने बिरह बान चला जायेगा॥
दिल धड़क जायगा बिजली के चमकने से ज़रूर।
जी खटक जायगा बादल के कड़कने से ज़रूर॥
झोंके इठलाते हवा के जो कभी आयँगे।
तीर की तरह कलेजे में उतर जायँगे॥
आके बरसेंगे जो रिमझिम कभी बादल बनमें।
बूंदे बन बन के बिरह बान लगेंगे तनमें॥
नदी बढ़ बढ़ के कभी जी को जलायेगी ज़रूर।
धार पानी की कभी दिल को लुभायेगी ज़रूर॥

---

* योग्य। † बस की बात। ‡ ईश्वर तुम्हें बुरी नजर से बचावे।

* रात।

साथ की सखियों को जंगल में भी होगा मंगल।
और बिरहन के लिये होगा भवन में जंगल॥
गुदगुदाती हुई आयेगी हवा सावन की।
जो जलाती हुई आयेगी हवा सावन की॥
साथ लाती है बहारों के झमेले बर्षा।
कहो किस तरह से काटेगी अकेले बर्षा॥
मैंने माना कि गुज़र भी गई बर्षा लेकिन।
काटना होगा शरद का न अकेले मुमकिन॥
कभी खिल खिल के चमेली तुम्हें ललचायेगी।
और कभी कोई सहेली तुम्हें ललचायेगी॥
फूल हर रंग के खिल जायँगे इस मौसम में।
भौंरे फूलों पे नज़र आयँगे इस मौसम में॥
प्यार भौंरे कभी फूलों को करेंगे आकर।
जोड़े सारस के कभी खेलते आयँगे नज़र॥
आके बादल कभी दो चार बरस जायेंगे।
झोंके आ आके हवा के कभी डस जायेंगे॥
जाल डालेंगे कभी तन में हवा के झोंके।
दिल लुभा लेंगे कभी बन में हवा के झोंके॥
सैर करती हुई आयेगी जो नदी पे नज़र।
दिल दुखा जायगा चिड़ियों का तमाशा अक्सर॥
कभी भौंरे कभी सारस कभी हंसों की सफ*।
प्यार ही प्यार नज़र आयगा हर चार तरफ॥
देख कर नशः जिन्हें आखों में आजायेगा।
जो ख्याल आयेगा कुछ रंज बढ़ा जायेगा॥
लाख मुश्किल से यह माना के शरद कट भी गया।
नहीं कटने का भयानक वह हिमंती जाड़ा।
अब हसीनों को भी भाता है गुलाबी जाड़ा।
दिल को छीने लिये जाता है गुलाबी जाड़ा॥
वह वह ऋतु है कि न सरदी है नगरमी इसमें।
किसी कमसिन कि तबियत की है नरमी इसमें॥
चाँदनी रहती है हो योंतो सुहानी अक्सर।
और ही बात है कुछ रात की इस ऋतु की मगर॥
और मौसम तो गुज़र जायँ यह मुमकिन है मगर।
कटना हो जायगा रातों को शिशिर का दूभर॥
अब कहां फूलों पै जोबन कि कोई दिल बहलाय।
अब न मौसम में है वह लुत्फ कि दिल को चैन आय

यह वह मौसम है कि पतझाड़ है सब पेड़ों का।
सैर में अब नहीं बागों के वह अगला सा मज़ा॥
मारे सर्दी के है दो गाम* भी चलना मुश्किल।
है वह ठिठुरन कि कँपा जाता है सीने में दिल॥
कामकाजी भी है सर्दी के सबब से मजबूर।
दिल के बहलाने की है फक्त हसीनों को ज़रूर॥
निकले आते हैं दुशालों पे दुशाले घर घर।
कुछ अजब तरह का जोबन है चढ़ा दुनिया पर॥
और मोसम तो यह माना भी के हो जायँगे अंत।
पर किसी तरह से काटा नहीं कटने का बसंत॥
कूक कोयल की कभी छेड़ेगी दिल का आकर।
भौंरे डालेंगे कभी फूलों पै जादू आकर॥
आम बौराये हुए दिल को लुभायेंगे कभी।
फूल हँस हँस के जले दिल को जलायेंगे कभी॥
चाँदनी तुम को दिखायेगा निखर कर जोबन।
और हँसीनों पर नज़र आयगा घर घर जोबन॥
दिल को बरमायगी† कोयल की कभी कूक आकर।
कटना हो जायगा रातों का अकेले दूभर॥
फूली सरसों कभी आयेगी जो खेतों में नज़र।
कैसे मानू मैं कि रह जायगा काबू दिल पर॥
धीमी धीमी कभी अठलाती हवा आयेगी।
और दिल को कभी बरमाती हवा आयेगी॥
भूल कर तुम जो पहिन लोगी बसंती साड़ी।
तुम को डस जायँगी फागुन की हवाएँ प्यारी॥
होली गाती हुई सुनलोगी किसी को जो कभी।
वह तपिश होगा तबियत में कि घबरायगा जी॥
रंग होला का कुछ इस तरह से छाजायेगा।
एक आलम तुम्हें सरमस्त नज़र आयेगा॥
आयँगी साथ की खेली हुई सखियां कहने।
तुम भी देखा यह सखी फूलों के मेरे गहने॥
मैं पहनती न थी लेकिन न उन्होंने माना।
अब पड़ा है मुझे हमजोलियों में शरमाना॥
दिल मचल जायगा सुन २ के यह बातें अक्सर।
तुम समझ भी नहीं पाओगी यह घातें अक्सर॥
इस तरह जीवन कटना ज़रा मुश्किल होगा।
और पहलू में जब अरमान भरा दिल होगा॥

* कतार।

* गावा। † छेड़ेगी।

और इस सब पै इज़ाफा मेरे दिल की हालत।
मेरे कहने पै है क्या देख लो मेरी रंगत॥
तुम से किस तरह कहूं तुम उसे भूलो प्यारी।
ज़िन्दगी साथ में थी जिसके कि कटनी सारी॥
मैंने जो कुछ भी लिखा दिल को दबाकर लिखा।
सख़्त शर्मा के लिखा सख़्त लजाकर लिखा॥
बात कोई भी मेरे ख़त में मुहब्बत की नहीं।
के बुरी तुमको न मालूम हो ऐ जान कहीं॥
तुम बढ़ाओगी जो हिम्मत तो लिखूंगा भी कभी।
दिलके अरमानों का कुछ हाल मुहब्बत दिल की॥
तुम करोगी मुझे ख़िदमत में अगर आपने क़ुबूल।
समरः जीस्त में समझूंगा हुआ मुझको हसूल॥
काश तुम हमदम व हमराज हमारी होजाओ।
अपना प्यारा मुझे कह दो मेरी प्यारी होजाओ॥

विधवा का जवाब।

महरबां कीजिये बिरहन का यह परनाम क़बूल।
और साथ उनके मेरी पाक मुहब्बत के फूल॥
आपके ख़त से हुई कुछ तो तसल्ली लेकिन।
सख़्त अफ़सोस कि इक़रार नहीं है मुमकिन॥
आप शर्मिंदा हैं क्यों शर्म की बात इसमें है क्या।
होती है वक़्त पे मौक़ूफ़ जमाने की हवा॥
आपने साफ़ लिखा इससे बहुत खुश हूं मैं।
अब जो कुछ मुझको है कहना वह ज़रा और सुनें
जब तलक आप छिपायेंगे, छिपे रा यह हाल।
मुझको आयाथा न आयगा कभी फिर यह ख्याल
हक़ किसी तरहसे अलक़ाब न था प्यारी का।
मुझसी बिरहन का परेशान का दुखियारी का॥
नहीं टूटा हुआ दिल दिल के लगाने क़ाबिल।
मैं सियाबख़्त* नहीं प्यार जताने क़ाबिल॥
मेरी किसमत में अगर प्यार ही होता बारे।
छोड़ जाते मुझे दुनियां में न तनहा प्यारे॥
रहम क्या कुछ मेरी हालत पै न आता उनको।
छोड़ कर मुझको चले जाना न भाता उनको॥
रात दिन मुझको न इस तरह रुलाते स्वामी।
इस तरह दुख में मुझे छोड़ न जाते स्वामी॥
इससे मालूम हुआ ग़म मेरी तक़दीर में है।
और हर तरह से मातम मेरी तक़दीर में है॥
पस यह बेहतर है मुझ से आप मोहब्बत न करें।
मेरी फूटी हुई तक़दीर में शिरकत न करें॥
मुझसे बदबख़्त के मिलने से न कुछ होगा वसूल।
एक अफ़सुर्दः* बना देना है महफ़िल को मलूमा†
अब मेरा दिल कभी खुश हो यह नहीं है मुमकिन।
मेरे नज़दीक बराबर है नहीं रात के दिन॥
ख्वाह से दिल की मेरे मेरी उमंगें भी गईं।
साथ स्वामी के मेरे मेरी तरंगें भी गईं॥
प्राणपति लेगये सब साथ खुशी का सामान।
बेहया जामा है अपना कि निकलती नहीं जान॥
किसी सिंगार के क़ाबिल मेरी हालत न रही।
देखूं आइने में ऐसी मेरी सूरत न रही॥
साथ सेंदूर के स्वामी के बराबर रखकर।
फूंक दी अपनी जवानी भी चितापर रखकर॥
आईना देखना लाज़िम है सुहागिन के लिये।
न कि मुझ ऐसे सियाबख़्त अभागिन के लिये॥
आप कहते हैं कि मौसम मुझे तड़पायेंगे।
मैं यह कहती हूं मेरा रंज घटा जायेंगे॥
आपकी बात सुनें लोग तो क्या सुनके कहें।
आप ही बात कहें और उसे काट भी दें॥
दिलशिकन‡ होती है गरमी की दुपहरें माना।
मुंह पै आयेंगी पसीने की भी लहरें माना॥
मुझको गरमी में मगर आप न तनहा समझें।
कि अकेले में भी दो होंगे "उदासी" और मैं"॥
प्यारी तानों से मधुर गीत सुनाने के लिये।
होगी सारंग मेरा रंज घटाने के लिये॥
जब गजरदम कभी आयेंगे हवा के झोंके।
यह सबक़ मुझको सिखायेंगे हवा के झोंके॥
योंहीं हर रंग का अंजाम जो राहत होगी।
एक दिन ख़त्म यह मेरी भी मुसीबत होगी॥
गुंचे§ हंस हंस के यह कह कहके मुझे देंगे मदद।

---

* भाग्यहीन।

* दुःखी। † दुःख ‡ दिलदहना। § फूल।

"सब्र तलख़्ख़ुस्त* व लेकिन शीरीं दारद" ॥
जब इसी तरह गुज़र जायगी गरमी एक दिन।
और होजायगा बरषा का भी कटना मुम्किन ॥
जब यह देखूंगी घटा झूम के काली आई।
मैं यह समझूंगी की दुख बाँटनेवाली आई ॥
साथ बाँधेंगी मेरे आसुओं का तार घटा।
मैं कहूंगी कि फिर आना मेरी ग़मख़्वार घटा ॥
बिजली तड़पेगी तो समझूंगी मेरा दिल तड़पा।
बेकरारी में मुक़ाबिल के मुक़ाबिल तड़पा ॥
बन में आयेंगे बरसते हुए बादल जो नज़र।
मैं यह समझूंगी कि रोते हैं मेरी हालत पर ॥
क्या सुनायेंगे पपीहे मुझे बानी अपनी।
मेरा ही दुख तो कहेंगे वह ज़बानी अपनी ॥
"पी कहां" जब कभी सुने कि लख़ुन उनका है।
यह समझे कि ज़बां मेरी बदन† उनका‡ है ॥
आग बरषा की हवा दिल में लगायेगी ज़रूर।
मेरी आंसू की झड़ी उसको बुझायेगी ज़रूर ॥
बस इसी तरह गुज़र जायगी बरषा सारी।
और आजायगी कटने की शरद की बारी ॥
फूल खिलते हुए देखूंगी चमेली के अगर।
यह सबक होगा कि दुनिया की है हालतअबतर ॥
कल जो गुंचा था वही आज गुलेतर होगा।
और उसी फूल का कल ख़ाक पै बिस्तर होगा ॥
रंग इसी तरह ज़माने का बदलता है सदा।
एक हालत पे नहीं एक घड़ी भी रहता ॥
भौंरे आयेंगे सबक मुझको सिखाने के लिये।
हाल ना अहलः की उलफत का बताने के लिये ॥
इश्क का अपने किया करते हैं जो लोग इज़हार।
एक साइत भी नहीं उनका मुहब्बत को क़रार ॥
मैं उसी तरह से बिन प्रेम के चाहन वाले।
ख़ुदग़रज होते हैं बनवट के मोहब्बत वाले ॥
मोअतबर होते हैं कब? बात बनानेवाले।
अपने मतलब के लिये प्यार जतानेवाले ॥
अभी इस फूल के आशिक थे अब उस फूल के हैं।
फूल नादां है जो अपना उन्हें आशिक समझे ॥

शरद इस तरह से पल मारते जायेगा गुजर।
बिजली जिस तरह चमकती है घटा में अक्सर ॥
और जो आयेगा बढ़ाते हुए सर्दी को हिमंत।
बात की बात में बस उसका भी होजायगा अंत ॥
चांदनी मुझको लुभायेगी तो क्या आके भला।
मैंने खुद चांद की हालत से सबक यह सीखा ॥
माह कामिल* जो हुआ बद्र† से घट २ के हिलाल‡।
क्या अजब है जो हुआ है मेरी हालत को ज़वाल ॥
चांद पै और मेरी हाल पै निसबत कैसी।
मैं तो इन्सान हूं तक़सीर का जाया ठहरी ॥
झोंके गुलशन के हवा के मुझे बतलायेंगे।
जिनसे मिल आये हैं हम कल न उन्हें पायेंगे ॥
गरज इस तरह हिमंत आके चला जायेगा।
किसी मतवाले को हो नींद का जैसे झोंका ॥
और शिशिर के भी महीने योंहीं कट जायँगे।
मेरी बिगड़ी हुई हालत को पलट जायँगे ॥
बाग़ में फूल नहीं दिल पै उमंगें कैसी।
ऐसे पतझाड़ के मौसम में तरंगें कैसी ॥
लोग ओढ़ेंगे रजाई पै रजाई लेकिन।
आतिशे हिज्र§ से जलती हुई होगी बिरहन ॥
शिशिर इस तरह से जायगा जवानी जैसे।
यों बसन्त आयगा जिस तरह बुढ़ापा आये ॥
कूक कोयल की सुनूंगी तो यह समझूंगी ज़रूर।
कि जुदाई से है जोड़े के यह अपने मज़बूर ॥
और जो चिड़ियों में है यों प्रेम का ताकत पैदा।
हैफ़¶ इनसां पै अगर हो न मोहब्बत पैदा ॥
मुझको बताये हुए आप बतायेंगे यह बात।
रंज व राहत नहीं होती कभी इंसान के हाथ ॥
चंद वह फल है जो कल ख़ाक में मिल जायेंगे।
कुछ बढ़ेंगे तो कभी आम कहे जायेंगे ॥
दाने जो आप बनेंगे वहीं सखियां हैं मेरी।
और मैं वह हूं जो मिट्टी में हो मिल कर मिट्टी ॥
बढ़ने पकने के लिये और बना होगा कोई।
ख़ाक में मिल के बनूं ख़ाक यह किसमत है मेरी ॥

* कड़वा। † मुंह। ‡ पपीहों का। § लोग।

* पूर्णिमा का चांद। † सम्पूर्ण। ‡ द्वितीया का चांद। § वियोग की अग्नि। ¶ शोक।

सरसों फूली हुई आयेगी जो खेतों में नज़र ।
शर्म और रंज से मैं ज़र्द पड़ूंगी अक्सर ॥
शरम आयेगी कि झूंठी है मुहब्बत मेरी ।
प्राणपति के लिये क्यों ज़र्द नहीं मैं ऐसी ॥
साल हो जायगा यों आंख झपकते में बसर ।
कुछ न कुछ मुझको सिखायेगा सबक हर मंज़र* ॥
आपकी सारे ज़माने से हैं बातें न्यारी ।
कहीं बेवा भी पहनती हैं बसन्ती सारी ॥
आपने रंज में शिरकत का किया क़स्द अगर ।
इस इनायत का करूं शुक्र अदायें क्योंकर ॥
ग़म की तासीर को पर आप समझिये न हक़ीर ।
मलिक इंसान को बनाती है यह ग़म की तासीर ॥
ग़म में हम शादो व अंदोह बहम जानते हैं ।
आप क्या रंज की तौकीर को कम जानते हैं ॥
सारी दुनियां की कशाकश से छुड़ाता है यह रंज ।
और इन्सान को इन्सान बनाता है यह रंज ॥
बस दिखाता है ख्यालात की दुनियां यही गम ।
और ईश्वर के है मिलने का ज़रिया यही गम ॥
क़दर क्या जाने वह न्यामत की न हो जिसके पास ।
रोने ही वाले को मालूम है आंसू की मिठास ॥
क्या यह ग़म मुझको न पहुंचायेगा उस मंजिल तक
जिसमें हो जाती है रद्द सारी मुसीबत बेशक ॥
जिस्म खाकी नहीं दिखलाते हैं स्वामी न सही ।
सतह पर अब नहीं पड़ती हैं निगाहें मेरी ॥
जिस किसी ओर निगाह अब मेरी उठ जाती है ।
अपने प्यारे हीकी तसवीर नज़र आती है ॥
अब पपीहे के तरानों में सदा उनकी है ।
और भौरों के भी तानों में सदा उनकी है ॥
कभी कोयल कहैं वह कूक कभी मोर के शोर ।
कभी बादल कभी बनते हैं हवाओं के झकोर ॥
ख्वाब में मुझको कलेजे से लगाने के लिये ।
रोज आते हैं मेरा रंज बटाने के लिये ॥
प्यार करते हैं मुझे मुझको लुभाते भी हैं ।
गुदगुदाते मुझे मुझको हँसाते भी हैं ॥
दिल में स्वामी का मेरे प्रेम भरा है ऐसा ।
कि नहीं और किसी के लिये बाकी कोई जा ॥
दिल नवाज़ी की हूँ मैं आपकी दिल से मशकूर ।
पर करूं क्या कि तबियत से हूँ अपने मज़बूर ॥

सम्पादकीय टिप्पणियां ।

नया कानून ।

विलायती कानून से उसका सादृश्य ।

बड़ी कौंसिल में भारत-रक्षा सम्बन्धी नवीन कानून का मसविदा उपस्थित किये जाने के पहिले सरकार की ओर से कहा गया था कि यह कानून विलायती कानून 'डिफेंस आफ़ दी रीलम एक्ट' के ढाँचे पर ही बनाया जा रहा है। परन्तु अब यह अच्छी तरह प्रकट होगया है कि इस कथन में कितना तथ्य है। न केवल नाम, रूप और उद्देश्य ही में हिन्दुस्थान का कानून विलायत के कानून से भिन्न है, अधिक कठोर है वरन् ब्रिटिश सरकार अपने बनाये हुए कानून में महत्वपूर्ण सुधार करने को राजी भी होगई है। इङ्गलैंड की पार्लामेंट में जब डिफेंस आफ़ रीलम एक्ट का मसविदा उपस्थित किया गया था तो लार्ड्स सभा के कई विद्वान सदस्यों और कानून के विशेषज्ञों ने उसकी धाराओं की तीव्र आलोचना की। उदाहरणतः लार्ड हैल्सबरी ने कहा था—"व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा के लिए जो भवन कई पीढ़ियों से बनाया गया है उसको दूर कर देने की आवश्यकता मैं नहीं देखता।" वह भवन क्या है? अर्थात् नागरिक का यह अधिकार है कि साधारण कानून के अनुसार संगठित न्यायालय में जज और जूरी की उपस्थिति में और विधिपूर्वक गवाहों की दी हुई गवाही के आधार पर उसके अपराध का विचार किया जाय।

---

* दृश्य ।

परन्तु नये कानून के अनुसार जो अदालतें बनेंगी वे एक प्रकार की 'कोर्ट मार्शल' ही होंगी और वे चटपट बिना विलम्ब के फैसला सुना दिया करेंगी। अब प्रश्न यह है कि प्रजाजनों की हिफ़ाजत और बचाव के लिए, निर्दोषों और अपराधियों की एकगति रोकने के लिए जो उपयोगी और हितकर नियम बने हुए हैं उनपर, केवल यह कह कर कि 'अब तो युद्ध का समय है' धूल डाल देना चाहिये या नहीं? लार्ड हैल्सबरी, लार्ड ब्राइस, लार्ड लोरबर्न, लार्ड पारमूर आदि कई अनुभवी और दूरदर्शी सज्जनों ने ज़ोर के साथ उपर्युक्त कानून की धाराओं पर आपत्ति की क्योंकि उन्हें भय है कि उसके प्रयोग से बेचारे निर्दोष को भी अपराधी के साथ कष्ट भोगना पड़ेगा। लार्ड ब्राइस ने कहा—यह प्रस्ताव मुझे अपूर्व मालूम पड़ता है। यदि आक्रमण और अन्तर्देशीय (सिविल) युद्ध की बात होती तब तो अवश्य साधारण अदालतें मिल ही नहीं सकतीं परन्तु जब कि साधारण न्यायालय मौजूद हैं तब अपनी ऐतिहासिक प्रथा में ऐसा असाधारण परिवर्तन करने के लिए कुछ विशेष हेतु बताया जाना चाहिये।" लार्ड पारमूर ने उस कानून के उचित सुधार के निमित्त एक उपयोगी बिल इस आशय का उपस्थित किया कि जिन स्थानों में उस कानून का अमल किया जाय वहां फौजी अदालतों में नहीं वरन् साधारण न्यायालयों में जज और जुरी के समक्ष ही अभियुक्त का विचार किया जाय और फौजी अदालतें इंगलैंड पर आक्रमण होने या युद्ध-जन्य किसी विशेष विपत्ति के उपस्थित होने पर बनाई जायें। सुधार के प्रस्ताव में एक धारा है कि अभियुक्त को अभियोग सूचना मिलने के ४ दिन के भीतर तक यह अधिकार होगा कि वह अपना मुकदमा फौजी अदालत की अपेक्षा साधारण न्यायालय में भेजे जाने की प्रार्थना कर सके। भारतीय बड़ी व्यवस्थापक कौंसिल में गैरसरकारी मेम्बरों ने नये बिल के सुधार के लिए जो जो उपप्रस्ताव यद्यपि वे बहुत हलके थे, पेश किये प्रायः वे सब रद्दी की टोकरी में डाल दिये गये। परन्तु लार्ड सभा में उपयुक्त लार्डों की आपत्ति का वास्तविक फल हुआ और सरकार की ओर से लार्ड चैंसलर ने लार्ड पारमूर के अभिप्राय के साथ न केवल सहानुभूति ही प्रकट की वरन् कानून में तदनुसार सुधार कर देने का वचन भी दिया। इतनाही नहीं, 'टाइम्स' जैसे अनुदार और कट्टर पत्र ने भी लिखा कि इंगलैंड ने इस बात का यश प्राप्त किया है कि विपत्ति के समय में भी उस के कानून का प्रवाह वैसा ही बना रहता है परन्तु नये कानून की कुछ धाराएं "जर्मनी में शोभा पाने योग्य हैं"!

अब इंगलैंड की अवस्था से भारत की तुलना कीजिये। न यहां आक्रमण का भय है न कोई विशेष हलचल या घबराहट ही फैली हुई है। फिर भी प्रभुओं ने एक ही दिन में नये कानून को पास कर डाला और विलायती कानून में सुधार होने के समय तक भी रुकना उचित नहीं समझा। फिर, हिन्दुस्थान के कानून में दो पहलू रक्खे गये हैं। एक कर सम्बन्धी फौज के विरुद्ध अपराधों से हैं जिसके साथ अवश्य समस्त भारतवासियों की सहानुभूति है। परन्तु दूसरा उन अपराधों को भी समेटता है जो साधारण फौजदारी कानून के क्षेत्र में हैं जैसे डकैती, राजनैतिक अपराध और यहां तक कि दो जातियों के बीच विद्वेष भी उत्पन्न करना जिसका विलायती कानून में कहीं पता भी नहीं है! फिर, विलायत में अंगरेज़ों के मुकदमों का विचार उन्हीं के स्वजातीय भाई करेंगे परन्तु यहां हिन्दुस्थान में हिन्दुस्थानी अभियुक्तों का विचार भिन्न जाति और धर्मवाले करेंगे और तिस पर तुर्रा यह कि न जूरीवाले साथ बैठ सकेंगे और न उनके बहुमतात्मक सदृश फैसले के विरुद्ध कोई अपील ही हो सकेगी! पाठकों ने अब देख लिया होगा कि विलायती और भारतीय कानून में कैसा मनोहर सादृश्य है!

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग, में बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छापकर प्रकाशित हुई।

मर्यादा।

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ९] मई सन १९१५ [संख्या ५

यह क्यों।

[लेखक—श्रीयुत ठाकुर शिवनन्दन सिंह बी० ए० ।]

प्रभो ! यह कैसा हृदयविदारक दृश्य है—एक करोड़ बीस लाख सेना यूरोपीय रणभूमि में एकत्र है। १८ करोड़ रुपया नित्य युद्धकुण्ड में स्वाहा हो रहा है ! सिकन्दर, ज़ेरक्सीज़, हनीबाल, सुलादीन, नेपोलियन, चंगेज़ और तैमूर आदि ने मिलकर भी ऐसी ख़ून की नदियां न बहाई होंगी जैसी आज बह रही हैं ! जिस शताब्दी की सभ्यता का मुकुट धारण करनेवाली ही जातियां डूडनाट, ज़ेपलिन, हवाई जहाज़ और नाना प्रकार के अन्य भयंकर यन्त्रों द्वारा एक दूसरे का सर्वनाश कर रही हैं ! संसारमात्र का व्यापार बन्द है, शिल्प, कला, विज्ञान, कृषि आदि सब का काम रुक गया है ! कैन्टन (अमेरिका में) से कैन्टन (चीन में) तक हाहाकार मचा है ! बड़े २ विद्वान मर रहे हैं, वीर और योद्धा कट रहे हैं ; सभ्यता का हृदय तलवार और भाले की नोक वेधे डालती है—पृथ्वी कांप रही है ! प्राणी थर्रा रहे हैं ! प्रलयकाल के अनेक सामान एकत्र हैं ! यह क्यों ?

और फिर यह यूरोपीय महायुद्ध कोई नई चीज़ नहीं है। मानवजाति के आरम्भ से ही हमें युद्ध के आरम्भ का भी प्रमाण मिलता है। जिस देश, जिस जाति या जिस काल के इतिहास को देखिये युद्ध से भरा पड़ा है। प्राचीन आर्यों को अनार्य, कोलभील आदि से लड़ना पड़ा। क्रोधी परशुराम ने अनेकों बार पृथ्वी को क्षत्रियों से खाली कर दिया। मर्यादापुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र को अत्याचारी रावण को दमन करना पड़ा। भगवान श्रीकृष्णचन्द्र को महाभारत सा भीषण युद्ध कराना पड़ा। गत पांच हज़ार वर्षों से भारत में निरन्तर रक्त की नदियां बही हैं—भारत के छोटे बड़े राजे और ज़मींदार

आपस में ही लड़ मरे हैं। राजपूताना क्या समस्त भारत में आन्तरिक युद्ध होता आया। फिर यह अभागा देश विदेशियों के हाथ आया। ग्रीक, सिथियन, हुन्श, ग़ज़नी, ग़ोर, अफ़ग़ान, पठान, तुर्क, तातार और मुग़ल आदि जिसने चाहा भारत का रक्त पान किया। देश छिना; स्वतन्त्रता छिनी; मन्दिर टूटे; पुस्तकालय भस्म हुए; स्त्रियां जलीं, बच्चे दीवारों में चुने गये, ऋषिसन्तान मुसलमान और इसाई बनी; धन, सम्पत्ति, व्यापार, कला, कौशल कुल विदेशियों के हाथ गया—यह क्यों?

इस समय और सुशिक्षित समय में, संसार-मात्र के कल्याण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि (International treaty) हुई; प्रत्येक देशों में प्रत्येक सभ्य राज्यों के दूरदर्शी दूत (Ambassador) रहने लगे कि उनकी सलाह से अथवा अन्तर्राष्ट्रीय पंचायत द्वारा राज्यों के झगड़े तय कर दिये जायँ और राजाओं का व्यक्तिगत शासन-प्रणाली छोड़ साधारण प्रजा की अनुमति से राज्य प्रबन्ध करने के लिए मज़बूर होना पड़ा। राजा-प्रजा में द्वेष का ह्रास और प्रेम की वृद्धि हुई। विद्या की वृद्धि से स्वतन्त्र विचारों की ओर लोगों की प्रवृत्ति हुई। धर्मसुधारकों का प्रभाव बढ़ा; पोप पादरी और पण्डितों की दैवी शक्ति का ह्रास हुआ। लोग परस्पर एक दूसरे का अधिकार और कर्तव्य समझने लगे। स्वार्थ घटा, परोपकार बढ़ा, समष्टिवादियों का बल बढ़ने लगा, राष्ट्र की सम्पत्ति पर प्रत्येक व्यक्ति का समान अधिकार माना जाने लगा। अनेक सभ्य राज्यों में प्रत्येक व्यक्ति को अपने योग्यतानुसार अपना सुधार करने का यथा-सम्भव पूर्ण अवसर दिया जाने लगा। जिस प्रकार रणमूर्ति भगवती दुर्गा को सब देवताओं के अंग-प्रत्यंगों की शक्तियां मिली थीं, उसी तरह हेग नगर में शान्तिमन्दिर की स्थापना में परस्पर विरोध अथवा मैत्री रखनेवाली शक्तियों ने मिलकर सहायता की और वह अनुपम 'अन्तर्राष्ट्रीय शान्तिमन्दिर' सर्वांगपूर्ण बन भी गया।*

प्राचीनकाल के राम-रावण युद्ध से लेकर अर्वाचीन काल के रूस-जापान, इटली-रूम और जर्मनी के भीषण युद्ध तक लोग शान्तिपूर्वक झगड़ा निपटाने का यत्न करते आरहे हैं। रावण को अंगद ने समझाया; दुर्योधन को उस समय के राजनीतिज्ञों ने युद्ध न करने की सलाह दी; महाराणी गान्धारी ने गुरुजनों की भरी सभा में युद्ध के विरुद्ध उपदेश किया; श्रीकृष्णचन्द्र ने पाण्डवों की ओर से दूत बन कर बिना युद्ध किये ही शान्तिमय झगड़ा निपटा देने का पूर्ण प्रयत्न किया।

शुष्यतां राजधानीषु सर्वसम्पन्महोत्सिताम्।
पृथ्वी भ्रातृभावेन भुज्यतां विज्वरा भव॥

पर तो भी कुरुक्षेत्र में १८ अक्षौहिणी सेनाएँ (४७,२३,६२० जन) कट ही गईं। अनन्तकाल

---

*"इस शान्ति मन्दिर के निर्माण के लिए धनकुबेर ऐन्ड्रू कारनेगी ने ३५ लाख मुद्रा प्रदान किया। डच पार्लियामेंट ने ८ लाख ४० हज़ार ज़मीन के लिए दिया। नारवे और स्वीडेन ने पत्थर दिया। हालैंड ने ईंटें दीं। ब्रेज़िल ने लकड़ी और दरवाजे बनाये। बृटेन ने दरवाज़ों के लिए कांच दिये। बेलजियम ने लोहे के किवाड़ दिये। जर्मनी ने बाहर का फाटक बनवाया। इटली ने संगमरमर दिया। फ्रांस ने रंग, पच्चीकारी और चित्रकारी कराई। रूम ने दरी बिछवाई। आस्ट्रेलिया और हेटी ने मेज, कुर्सी दीं। रूस ने एक बहुमूल्य संगेशब का गुलदान दिया। हंगरी ने अत्यन्त सुन्दर शमादान, आस्ट्रिया ने उसके रखने की बहुमूल्य रकाबें, अमेरिका ने कांसे और संगमरमर की मूर्तियां, चीन ने उत्तमोत्तम प्याले, जापान ने मनोहर रेशम के चित्र और स्विटज़रलैंड ने घरहरे के लिए घड़ी दी—इस तरह संसार की सभी शक्तियों की अनुमति और सहायता से शान्तिमन्दिर स्थापित हुआ"—भारतोदय।

से लोग चिल्लाते आरहे हैं कि 'मा युध्यस्व-युद्ध मत करो' पर समय २ पर भीषण युद्ध छिड़ ही जाता है-यह क्यों ?

बात यह है कि सृष्टि बाइबिल-वर्णित रीति से कुल ६ दिन में शान्तिपूर्वक बनकर तैयार नहीं होगई। जिस रूप में हम आज सृष्टि को देखते हैं यह करोड़ों वर्ष के भयानक परिवर्तन का फल है। प्रकृति से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधि, औषधि से अन्न, अन्न से वीर्य और वीर्य से शरीर उत्पन्न हुआ।

प्रकृति का यह एक विलक्षण नियम है कि वह खानेवाले अधिक और खाद्यपदार्थ कम पैदा करती है और प्रत्येक प्राणियों में अपनी जाति बढ़ाने की प्रबल चेष्टा उत्पन्न कर देती है। इसका परिणाम यह होता है कि अपनी जाति बढ़ने और जीवनरक्षा के लिए आवश्यकतानुसार खनिज, वनस्पति, पशु और मनुष्य में-परिमाणु-परिमाणु में स्वभावतः कठिन संघर्ष जारी रहता है। सबल निर्बल को हड़प जाते हैं; योग्य, अयोग्य को निर्मूल कर देते हैं यानी अधिक योग्यतावाले ही फूलते फलते, अपनी जाति बढ़ाने और संसार में जीवित रहते हैं। इस प्राकृतिक और स्वाभाविक संघर्ष या रगड़ारगड़ी को जीवनप्रयास कहते हैं; दूसरे शब्दों में इस संघर्ष, रगड़ारगड़ी या जीवन-प्रयास को युद्ध कहेंगे।

संसार के अन्य प्राणियों के समान मनुष्य-जगत् में भी अपनी जाति बढ़ाने और जीवन-रक्षा का संघर्ष जारी है।

स्त्री और पुरुष के मेल से सन्तान उत्पन्न होती है उसे कुटुम्ब कहते हैं। इस कुटुम्ब के प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे की सहायता और रक्षा करते हैं। धीरे धीरे कई कुटुम्ब एक साथ रहना स्वीकार करते हैं। इस परस्पर के मेल जोल से वे अपना कार्य भलीभांति कर सकते हैं और दूसरे ऐसे ही मिले जुले कुटुम्बों के आक्रमण और अत्याचार से अपनी रक्षा कर सकते हैं। इन कई कुटुम्बों के मेल को फिर्का, कौम या जाति कहते हैं। एक कौम के लोगों को लूट मार नहीं सकते क्योंकि ऐसा करने से फूट पैदा होती है और तब दूसरी कौमों से रक्षा नहीं हो सकती। हां अपनी क़ौम के बाहर दूसरी कौमों की सम्पत्ति लूटना उन्हें काटना मारना सब उचित है।

समीपवासी छोटी छोटी क़ौमें देखती हैं कि एक दूसरे को लूटने से किसी बड़ी क़ौम के आक्रमण के समय वे एक दूसरे की रक्षा नहीं कर सकतीं। अस्तु जैसे कुटुम्ब से क़ौम बनी, वैसे ही कौमों के एकत्र होने से राष्ट्र बन जाता है। इस राष्ट्र के लिए अनेक सामाजिक और धार्मिक नियम बनते हैं। निज राष्ट्र की सीमा को लूटना न चाहिये, खून न करना चाहिये, ऐसा करनेवालों को राष्ट्र की रक्षक राजशक्ति और नेतागण दंड देते हैं, क्योंकि इस तरह की छोटी या बड़ी कोई ऐसी बात करने देने से निज राष्ट्र के व्यक्तियों को दुःख होता है और आपस में बैर बढ़ता है जिसका परिणाम फूट होता है। राष्ट्र में कमज़ोरी आती है और तब इसे दूसरे प्रबल राष्ट्र दबा डालते हैं।

राष्ट्रों की जनसंख्या बढ़ती जाती है। वे सदैव अपनी उन्नति करना चाहते हैं, अपनी वर्तमान दशा को ज़रा सी और अच्छी करना चाहते हैं, अपने आराम में कुछ न कुछ अधिकता करने का प्रयत्न किया करते हैं। आवश्यकताओं के बढ़ने के साथ नये देशों में उपनिवेशन करने की ज़रूरत दीखती है; नये बाज़ारों में प्रभुता जमाना; नये राष्ट्रों को अपना मतावलम्बी बनाना; छल से, बल से, धोखे से, कपट से, विश्वासघात अथवा खुल्लमखुल्ला ज़बरदस्ती से दूसरे राष्ट्रों को आधीन करके उनका सम्पत्ति लूटना, उनकी मेहनत का पैसा छीन लेना;

इस क्षीण, हीन, दुर्बल जाति का रक्तपान करके अपनी जाति को पुष्ट करना ही प्रत्येक राष्ट्र का मुख्य उद्देश्य होता है। राष्ट्र के बाहर जिस कार्य से स्वार्थ सधे वह करना परम धर्म है और जिसके करने से स्वार्थसिद्धि में बाधा पड़े वह कार्य करना भूल है। दूसरे राष्ट्रों से लड़ाई छिड़ जाने पर ख़ून करने से कोई ख़ूनी नहीं कहा जाता—लाखों करोड़ों को क़त्ल करके ख़ून की नदी बहाना, विधवा और अनाथों को तड़पाना, देश में आग लगाकर भस्मीभूत करना या जो कुछ हानि मनुष्य मनुष्य को पहुंचा सकता है, पहुंचा कर भी निज राष्ट्र की स्वार्थसिद्धि करने से लोक और परलोक दोनों बनना माना जाता है। ऐसा करनेवालों को निज राष्ट्र में नाम और मान और मरने पर हरि-धाम प्राप्त होता है। राष्ट्रनीति या राजनीति का दूसरा नाम स्वार्थसिद्धि है। पर दूसरा राष्ट्र यथाशक्ति इस स्वार्थसिद्धि में बाधा डालता है। उस समय रगड़ाझगड़ा आरम्भ होता है और उसका परिणाम भीषण युद्ध होता है।

प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास से ज्ञात होता है कि जो राष्ट्र लड़ने को उद्यत रहते हैं और लड़ने में सब से अधिक उद्योग दिखाते हैं, वे शान्तिप्रकृतिवालों को निकाल बाहर करते हैं और इस तरह युयुत्सु जाति ही स्थायी रूप से बच रहती है—लड़ाकी जातियां पृथ्वी की उत्तराधिकारिणी होती हैं—It is a law of nature common to all mankind, which no time shall ever destroy, that those who have more strength and excellence shall bear rule over those who have less.

जर्मनी के प्रसिद्ध जेनरल बर्नहार्डी का कथन है कि 'शान्त आन्दोलन विषमय होता है, युद्ध करना ही मनुष्य का कर्तव्य है।' यदि स्वार्थवश दूसरे का अधिकार छीनने के लिए नहीं तो अपने देश और राष्ट्र का अधिकार बचा रखने के लिए ही प्रत्येक राष्ट्र को युद्ध के लिये तैयार रहना परम आवश्यक है।

प्रसिद्ध ग्रीष्म ने कहा है कि 'दयाशील और हितैषी राष्ट्रों का क्रमशः निर्मूल और लड़ाकी जातियों की दृढ़ पुष्टि होती है।' यदि दूसरे राष्ट्रों के साथ मैत्री, विश्वास और सद्भाव से आत्मरक्षा के उपायों में हम ढीले होजायँ तो इस ढिलाई में युद्धप्रिय असभ्य जातियों को हम पर चढ़ाई करने का अवसर मिलेगा और सभ्यता के शिखर पर बैठी हुई जातियां रण में हार कर अन्त को धूल में मिल जायँगी।

रोम की सभ्यता, इजिप्ट का महान् पुस्तकालय या भारत के इतिहास या साहित्य का सर्वनाश न हो सकता यदि ये राष्ट्र छोटे छोटे जंगलियों के आक्रमण रोकने के लिए तैयार होते।

हम भारतवासियों का अटल विश्वास है कि महाभारत के होने ही से भारत ग़ारत नहीं हुआ, भारत ग़ारत हो चुका था इसलिए महाभारत हुआ। और फिर महाभारत के हज़ारों वर्ष पश्चात् विदेशी वहशियों के आक्रमण हुए; क्या इस समय तक भारत को संभल जाने का अवसर नहीं था? क्या भारत में इन लुटेरों को रोकने की नई शक्ति का पैदा होना असम्भव था? नेपोलियन से हिलाया हुआ जर्मनी केवल एक शताब्दी में संसार की सम्मिलित महान् शक्तियों को नीचा दिखाने में अकेला अग्रसर हो सकता है; जापान कुल ४० वर्ष में रूस को नीचा दिखा सकता है; पर भारत, महाभारत के पश्चात् ५० शताब्दियों में भी अपने पैरों खड़ा होने में असमर्थ है। क्या महाभारत के बाद का भारत एक शताब्दी पहले की जर्मनी या आधी शताब्दी पहले के जापान से भी गया गुजरा था? और क्या ५००० वर्ष इसके पुनरुत्थान के लिए काफी नहीं थे?

बात यह है कि जिन कारणों से महाभारत सा घरेलू युद्ध हुआ, वे कारण निरन्तर भारत का पीछा करते आये और अब भी उसके पीछे मौजूद हैं। आपस के ईर्ष्या, द्वेष, और स्वार्थ-परता ने ही राष्ट्र के भीतर भीषण युद्ध मचवाया। इन्हीं पापों के कारण पोरस ने सिकन्दर के सन्मुख सर झुकाया, शहाबुद्दीन ने पृथ्वीराज को हराया; लोदी ने मरहठों पर फ़तह पाई, और अन्त को भारत पश्चिमीय बणिकों के हाथ आया।

स्मरण रहे कि भारत में वीर और वीरांगनाओं की कमी नहीं; बल, पुरुषार्थ, उच्चाभिलाष, निश्छलता, साहस, सम्पत्ति, स्वास्थ्य, वीरता आदि अनेक सद्गुणों से भारतवासी सदैव सुशोभित थे और हैं। कमी यदि थी और है तो निज राष्ट्र (Nation) को पहचानने की, देशाभिमान की और देशभक्ति की। इसी त्रुटि से भारत का सर्वनाश हुआ। अकबर आदि अनेक पुराने राजाओं को छोड़ वर्तमान राजा को देखिये कि भारत का महान् राज्य इन्हें अपने बल और पौरुष से मिला या भारतवासियों के पुरुषार्थ से। कुछ युरोपीय इतिहासलेखक अब डींग हांक लें कि भारत अंगरेजों ने तलवार से विजय किया पर सत्य यह है कि पहले तो भारत में तलवार चली ही नहीं और जहां कहीं इससे काम लिया भी गया वहां भारतवासियों ही द्वारा यह कार्य हुआ। प्लासी, अरकट, बक्सर, मद्रास, पञ्जाब, अफ़ग़ानिस्तान क्या बलवे (१८५७) तक में भारतसन्तानों ने ही गोरों के लिये तलवार चलाकर इनका गौरव कायम रक्खा और वे चीन, नैटाल या आज के जर्मनी युद्ध में अपने राजा की आज्ञा पर बिना किसी विचार के गर्दन देने को अग्रसर थे और हैं।

पर इससे क्या मतलब ? राजनीति में कृतघ्नता और विश्वास का अकुर नहीं होता, इसमें मित्रता नहीं, सम्बन्ध नहीं, सहनशीलता नहीं, शान्ति आदि कोई सद्गुण नहीं पाये जाते। महात्मा वाशिंगटन ने जिस समय ये शब्द कहे थे, उस समय ये जैसे सत्य थे, वैसे ही सत्य अब भी हैं और बने रहेंगे कि, "स्वार्थ के सिवा और किसी उद्देश्य पर राष्ट्रों के निरन्तर दृढ़तापूर्वक आचरण करने की आशा करना व्यर्थ है।"

यदि एक राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्र के साथ सद्व्यवहार करता दीखता हो तो उसके व्यवहार की ओट में स्वार्थ अवश्य छिपा है। भारत और बृटेन में घनिष्ट सम्बन्ध है। एक दूसरे के परम शुभचिंतक दीखते हैं। भारतवासी अपने ही सम्राट् के झगड़े की छाया तले पददलित किये जाते हैं; आस्ट्रेलिया में घुसने नहीं पाते; कैनाडा से बलपूर्वक धक्का देकर निकाले जाते हैं; नेटालवालों का कारुणिक रुदन सभ्य संसार का हृदय कँपा देता है। पर बृटेन इन झगड़ों में दख़ल नहीं दिया चाहता है। वह भारतवासियों का असह्य दुःख मेटने में असमर्थ है। लेकिन बेलजियम का जर्मनी से पददलित होना बृटेन नहीं देख सकता। बेलजियम से किसी तरह का सम्बन्ध न होने पर भी बृटेन अपने ख़ास नातेदार जर्मनी* के विरुद्ध लड़ने और बेलजियम की सहायता करने के लिए एकमात्र परोपकार से प्रेरित हो भयंकर युद्ध में आप से आप कूद कर जन और धन दोनों की आहुति दोनों हाथों से दे रहा है।

आक्सफ़ोर्ड और कैम्ब्रिज के विद्यार्थी लड़ाई पर भेजे जा रहे हैं पर उसी विद्यालय में पढ़नेवाले भारतीय विद्यार्थी इस सेवा से भी वञ्चित रक्खे जाते हैं, प्रार्थना करने पर भी वे स्वयंसेवक नहीं बनाये जाते।

इंगलैंड पर विपत्ति आई है, उसका प्रभाव भारत पर भी पड़ रहा है। एक 'एमडन' भारत के व्यापार को भारी धक्का पहुंचा चुका है;

* जर्मनी के कैसर स्वर्गीय महाराणी विक्टोरिया के पुत्री से ब्याहे थे।

निर्भय होकर भारत के प्रत्येक बन्दरगाहों में घुम घुम कर हानि पहुंचा चुका है, पर भारत-वासी केवल हाथ पर हाथ रक्खे मुंह ताकते रह गये, करें क्या ? बेचारे अपंग तो हो गये हैं।

ईश्वर न करे कि कोई दुर्घटना उपस्थित हो, पर मानना पड़ता है कि यह संसार परि-वर्तनशील है-कोई राजा, कोई राज्य, चाहे वह कितना ही अच्छा या बुरा क्यों न हो हमेशा क़ायम नहीं रह सकता। इतिहास हमें बताता है कि एक बार इंगलैंड रोमन्स के हाथ में था। ये विदेशी थे, पर राज्यकार्य में ऐसे कुशल थे कि अपनी प्रजा को भली भांति प्रसन्न और सन्तुष्ट रखते थे। इन विदेशियों ने इंगलैंड पर ३०० वर्ष राज्य किया। पर एक समय आया कि रोमन्स के घर में आक्रमण होने लगा। उन्हें अपने घर की रक्षा के लिए इंगलैंड को छोड़ना पड़ा। रोमन्स ने भी इंगलैंडवालों को लड़ना नहीं सिखाया था। परिणाम यह हुआ कि रोमन्स के लिए इंगलैंडवाले रोते रह गये कि वे उन्हें न छोड़ें पर वे छोड़ भागे और इंगलैंड पर दूसरे वहशियों ने आक्रमण कर २ के उनका देश छीन लिया।

इस कुसमय में भी भारतवासियों को युद्ध शिक्षा से वञ्चित रखना और उन्हें शस्त्रास्त्रों के बन्धन में डालना ठीक नहीं है। इसमें शक नहीं कि कुछ बुद्धिफिरे लोगों ने बम आदि चलाकर दंगा फ़साद किया पर इससे समस्त भारत अविश्वास का पात्र बने यह ठीक नहीं। गरम दलवालों तक का तो अंगरेजों के विरुद्ध कार्य करने अथवा आन्दोलन करने का केवल यही कारण है कि वे अपना हक़, अपना न्यायमय अधिकार चाहते हैं। इस कुसमय में गरमदल वाले तक बृटेन के लिये अपनी जान देने को तैयार हैं। कम से कम अब तो बृटेन को भारत अपना लेना उचित था। बृटेन का यह भय कि 'England's peril is India's opportunity' सर्वथा व्यर्थ और भ्रान्त है।

इसके साथ ही यह भी कहना आवश्यक है कि हम कुछ दिन पहले अपने अधिकार, कर्तव्य, तथा राष्ट्र तीनों को नहीं पहचानते थे। ईश्वर की कृपा और दयालु भारत सरकार की कृपा से हमारी आँखों का परदा उठने लगा है और हम ने निज राष्ट्र और अधिकार को पहचानना आरम्भ कर दिया है। पर अब भी हम भयंकर भूल कर रहे हैं। हम अपने अधि-कार के लिए तो इतने चिल्लाते हैं पर अपने कर्तव्य पर ध्यान नहीं देते।

हर बात में भारत सरकार को दोष देना व्यर्थ है। अब तो, 'यथा राजा तथा प्रजा' का समय रहा नहीं, बल्कि 'यथा प्रजा तथा राजा' की बात सत्य दीखती है। जैसी प्रजा है वैसाही मजबूरन राजा को होना पड़ता है। यदि प्रजा में योग्यता है तो राजा को प्रजा का पक्ष लेना ही होगा। इंगलैंड की सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी पर ध्यान दीजिये। राजा प्रजा के मत-भेद में जीत प्रजा की हुई। फ्रांस पर, अमेरिका पर, फ़ारस, या चीन, आदि जिस किसी देश पर दृष्टि डालिये जीत प्रजा की है। कैनेडा, आस्ट्रेलिया, निउज़ीलैण्ड, क्या नैटाल तक को इंगलैंड ने स्वराज्य दिया या यों कहिये कि देना पड़ा। अस्तु भारत की स्वतन्त्रता भारत-वासियों के हाथ है। यदि हम उसके योग्य बनें, यदि हम में स्वतंत्रता की योग्यता है तो आपसे आप हम स्वतन्त्र बन जायँगे। संसार की कोई शक्ति हमें परतंत्र नहीं रहने देगी।

पर यह सब कुछ करने ही से होगा। 'भाग्य' में होगा तो मिलेगा; दुर्भाग्य के नाम रोना रोने से; हाथ पर हाथ रखकर मुंह ताकने से कुछ नहीं हो सकता। इस पुराने राष्ट्र में नाना प्रकार के दोष उत्पन्न होगये हैं। यह राष्ट्र रोगग्रस्त हो गया है। इस जाति के जीवन-सूत्र में गांठें पड़ गई हैं। यदि हम कड़वी दवा खाने पर तैयार हैं, नश्तर लेकर पुराना मवाद निकालने पर उद्यत हैं, पुरानी गाँठों को खुल-

झाना चाहते हैं, तो हम फिर आरोग्य बन सकते हैं अन्यथा हमारी मृत्यु एक निश्चित वस्तु है।

६ करोड़ भारतवासियों के तन से काबे की बू आती है इससे कुछ अधिक हिन्दुओं को हम छू नहीं सकते वे अन्त्यज हैं। ६ वर्ष के ऊपर की लड़कियों का व्याह करने से बिरादरी में हँसी होती है और हम हँसे जाना पसन्द नहीं करते। ढाई करोड़ विधवाएँ घर के कूड़े करकट की तरह फेंकी जाती हैं। जनसमूह को शिक्षा देने के लिए भारत-सरकार के पास धन नहीं है और न हम अधिक कर देकर उसके कोष की कमी को पूरा कर सकते हैं तो फिर ये मरहले कैसे तय होंगे ? इन गाठों के सुलझाने और राष्ट्र को आरोग्य करने का कौन सा उपाय है ?

सुनिये, भारत की जनसंख्या बहुत बढ़ गई है। अब अधिक बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। चीन छोड़कर भूमण्डल के सभी देशों से यहां अधिक आबादी है, पर साथ ही भारत सा गिरा हुआ देश सारी पृथ्वी पर नहीं है। जर्मनी के कुल ६ करोड़ निवासी (स्त्रियां, बच्चे, बूढ़े और रोगी भी इसी में शामिल हैं) संसार की सम्मिलित महाशक्तियों से अकेले भिड़ कर उनके नाकों दम कर रहे हैं। इङ्गलैंड के करोड़ों लोग भूमण्डल के उस भाग पर राज्य कर रहे हैं जहां सूर्य अस्त नहीं होता। जापान और अमेरिका के मुट्ठी भर मनुष्य धुरन्धर रूस और प्रतापी इङ्गलैंड को रणक्षेत्र में हरा सकते हैं-यह क्यों ?

इस लिए कि उनमें योग्यता है। योग्यता ही एक वस्तु है जिस के ऊपर संसार की सभी बातें निर्भर हैं। जान लेना चाहिये कि योग्यता से राजनैतिक अधिकार प्राप्त होते हैं न कि राजनैतिक अधिकार से योग्यता। यह ठीक है कि राजनैतिक अधिकारों से बहुत जल्द सुधार हो जाता है पर बिना योग्यता हुए वे अधिकार मिलने ही क्यों लगे। पहले अपने को योग्य प्रमाणित करो तो अधिकार मिलेंगे और मज़बूरन दिये जायँगे। स्वर्गीय लार्ड मिन्टो के रिफ़ार्म, बङ्गभङ्ग का पुनः एक किया जाना और नेटाल से टैक्स का उठना आदि प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। अस्तु योग्य बनना और योग्य बनाना ही एकमात्र उपाय है जिससे भारत की सब उलझनें एक साथ ही सुलझ सकती हैं। इस कार्य के लिए एक दूसरे का मुंह न देखें, जो जितना कर सके पक्षपातरहित होकर एक दूसरे के उठाने में तन, मन, धन से लग जाय।

हां, यह भी ख्याल रहे कि बिना स्वार्थत्याग के कुछ नहीं हो सकता। होश सँभालते ही हमें अपने ही परिवार से छुट्टी नहीं मिलती तो भला दूसरों की सहायता हम क्या और कैसे कर ? इससे प्रिय पाठकगण हमारा कर्तव्य है कि हम-

(१) अपनी योग्यता समझकर विवाह करें, बालविवाह कभी न करें।

(२) एकमात्र योग्य सन्तानोत्पत्ति करें और वह भी उतनी ही जितनी को हम सर्वथा सुयोग्य युवा बना सकें।

(३) दर्जन के दर्जन बच्चे न पैदा कर के केवल एक पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न कर और पक्षपातरहित होकर अन्य भाइयों को योग्य बनाने में अपनी शेष सम्पत्ति और शक्ति लगावें। अन्य देशभाइयों को अपना भाई, बालकों को अपना पुत्र और बालिकाओं को अपनी ही पुत्री समझकर योग्य बनावें।

हम लोग दूसरों का मंह ताकना छोड़ दें और शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सब प्रकार की योग्यता प्राप्त कर अपने पैरों पर आप खड़े होने का यत्न करें, बिना ऐसा किये हमें सफलता प्राप्त नहीं हो सकती।

गान्धी स्वागत।

[लेखक-श्रीयुत ठाकुरप्रसाद शर्मा।]

गीतिका छन्द।

(१)

गर्व भारतवर्ष को जिस आर्यकुल के वीर का।
दे रहा संसार साक्षी जिसके अतुलित धीर का॥
प्रेम-परिगर्भित दया का जो परिष्कृत रूप है।
दीन निर्बल हीन-आश्रम जाति का जो भूप है॥

(२)

उदयकालिक दुःख हवशी देश में जिसने सहा।
फिर जहां उज्वल उजाला ज्ञान का जिससे बहा॥
छिप गए कौटिल्य तारे देख जिस आलोक को।
भोग का अवसर मिला जिससे प्रवासी कोक को॥

(३)

राज्य अत्याचार तम का दूर जिससे हो गया।
द्वेष से पूरित कुमुद के मुख मसीका जड़ गया॥
सुःख के पङ्कज खिले जिसके प्रताप प्रकाश से।
हिन्दबासी गुंजते मधुकर बने रस स्वाद ले॥

(४)

देश हवशी से सोई दिननाथ सम नर केशरी।
आगया भारत भगाने दुर्व्यवस्थित शर्वरी॥
जग पड़ो सब भरतखंडी छोड़ दो आलस्य को।
भक्ति के शुचि वारि में करि शौच शुद्ध शरीर हो॥

(५)

बद्ध अञ्जलि अर्घ दो होकर खड़े हित प्रीति से।
शुद्ध चित स्वागत करो वर आर्यकुल की रीति से॥
धन्य गान्धी वीरवर जग जन्म का फल पा लिया
आत्मसुख को तज दिया शिर देश का ऊंचा किया

(६)

हो नहीं सकती प्रशंसा आपके कर्तव्य की।
मेरु ज्यों बावन उठावे गति भई वक्तव्य की॥
पितृगण भी देखकर के आपका साहस उदै।
स्वर्ग में हैं दे रहे आशीस आनन्दित हृदै॥

(७)

राम ही यक वीर ऐसे हो गए इस देश में।
जो गए मर्याद रखने सिन्धुपार विदेश में॥
आपने उससे बड़े जल राशि को लंघन किया।
राम से ड्योढ़े बरस बनवास क्लेश उठा लिया॥

(८)

आपकी पत्नी सती भी गुणमई करुणामई।
राक्षसों के हाथ में श्री सीय सी बन्दी भई॥
पुत्र ने सौमित्र ही सम भाग संगर में लिया।
सिंह होते सिंह सुत आदर्श यह दिखला दिया॥

(९)

ज़ोर सारा मिट गया दशमाथ ज्यों मदवीर का।
शोर जग में मच गया प्रतिरोध निष्क्रय घोर का॥
काम सारे विश्व का करता हुआ निष्काम है।
इसलिए इस युग में गांधी वीरवर श्रीराम है॥

(१०)

चोट खाई शस्त्र से सुधि हीन होकर गिर पड़े।
भूमि रक्तमय हुई अरु प्राण के लाले पड़े॥
दुष्ट मूर्ख पठान की नालिश नहीं तौभी किया।
कौन समता कर सके क्षमता महा दिखला दिया॥

(११)

पुत्र रोगाकुल पड़ा शिर मृत्यु की गोदी दिए।
मित्रगण समझा थके सेवा चिकित्सा के लिए॥
एक दिन भी देखने उसको नहीं घर तक गये।
वाहरी कर्तव्य-दृढ़ता मोह-विजयी बन गये॥

(१२)

सभ्यता की शत्रु जड़िया न्याय अनुमोदित नहीं।
विधि किसी दातव्य उसका हो सही सकता नहीं॥
इसलिए रोगार्त गृहिणी छोड़ कारागृह पड़े।
कौन है गांधी सरिस जो न्याय के हित यों लड़े॥

(१३)

अग्निगत जीवित हुई महिला जहां पति साथ में।
आन ऊँचा पागए संसार के शुचि गाथ में॥

मर्यादा

मनुष्य तेप चला रहा है।

सम्मुख प्रेस, प्रयाग।

हाय हवशी भूमि में इस देश की ललना गई।
क्लेश कहते हो रहा कुलटा सदृश मानी गई॥

(१४)

भीष्म अर्जुन कृष्ण हलधर कर्ण औ कृप द्रोण के।
वंशधर स्वामी कुली हो रह गये यक कोण के॥
दुःख इस अपमान का जाता भला कैसे सहा।
भिड़ गया निर्भीक हो मर्याद पुरुषोत्तम महा॥

(१५)

लोभ होता आत्मसुख का जेल में था क्या धरा।
लोभ होता द्रव्य का क्या घर में था कमती भरा॥
लोभ होना मान का सन्मान क्या प्रस्तुत न था।
लोभ दुर्जय जीतना मतिमान का उद्देश्य था॥

(१६)

बात जो नहिं होसकी इस देश में अबतक किये।
सो हुई उस देश में हिन्दू मुसल्मां मिल गये॥
शब्द धार्मिक द्वेष का क्योंकर सुनाई दे वहाँ।
निष्कपट गांधी सदृश निस्स्वार्थ नेता हो जहाँ॥

(१७)

दुःख हो या दुःख हो कुछ भी नहीं परवाह है।
मानवर्द्धन देश का हो बस यही चितचाह है॥
न्यायनिष्ठा सत्यता औदार्य यश आगार है।
दीन रक्षक वीर गान्धी धर्म का औतार है॥

(१८)

आइये पग लाइये रज नेत्र में अञ्जन करें।
मूर्ति मृदुमय आपकी हिय भक्तियुक्त थापन करें॥
जाति का गौरव बढ़े कारण बने शुचि हर्ष का।
आपका स्वागत करे निस्तार भारतवर्ष का॥

युद्ध।

[लेखक—श्रीयुत मुकुन्दीलाल।]

हमारा जीवन युद्धमय है। सारा संसार एक संग्राम या युद्ध-क्षेत्र है। प्रत्येक क्षण हम किसी न किसी प्रकार की लड़ाई लड़ रहे हैं। यह लड़ाई ही मानवजाति के विकाश और जीवन का मूल कारण है। अपने जीवन की रक्षा के लिए हम प्रकृति से लड़ते भिड़ते हैं। इस लड़ाई के कारण हमारी शक्ति बढ़ती है। हम उद्योग करते हैं। इस उद्योग में हमारा बल बढ़ता है। हम दिन बदिन नई नई बातें सोचते और ढूंढ़ निकालते हैं और नई कला या विद्या सीखते हैं।

एक विचार और सिद्धान्त की दूसरे विचार और सिद्धान्त से लड़ाई (तर्क) होती है। बलवान् विचार की जीत होती है। इस विचार और बुद्धि की लड़ाई में दोनों पक्ष की बुद्धि बढ़ती है। दुर्बल विचारों को बलिष्ट विचारों के सामने सिर झुकाना पड़ता है।

पुराने आदर्शों को नये आदर्शों का सामना करना पड़ता है। एक ज़माने की रीति रस्मों को दूसरे (नये) ज़माने पर अपना सिक्का जमाने के लिए लड़ाई लड़नी पड़ती है। अपने बल को आज़माकर अपनी खूबी दिखानी पड़ती है। अगर कोई पुरानी रस्म या आदर्श वर्तमान समय के लिए ठीक न हो तो उसकी जगह नया आदर्श या रस्म आखड़ी होती है। बात बात पर युद्ध छिड़ जाता है।

अगर जाड़े ने आक्रमण किया तो उसका गर्मी से सामना करना पड़ता है। भूख लगी तो उसको भोजन से मार भगाना होता है।

गर्मी पड़ी तो उसे कोई ठंढक पहुंचानेवाले उपायों से हटाना या शिथिल करना पड़ता है। पर गर्मी जाड़े से लड़ाई वही कर सकते हैं जिन्हें ताक़त है यानी जिनके पास पैसा है। ग़रीब लोगों को जाड़े में जाड़ा सताता है और गर्मी में गर्मी। जीत बलवान की ही होती है।

मनुष्य में बुरी आदतें और भली आदतें दोनों स्वभाव से ही पाई जाती हैं। हीन प्रकृति कुमार्ग की तरफ ले जाती है और अच्छी आदत अच्छा रास्ता बतलाती है। जिस आदमी की बुरी आदतों ने भली आदतों को हरा दिया उसका मटियामेट होगया। जिसकी सद्वृत्ति की जीत हुई वह आदमी बन गया। जो लोग उद्योग करते हैं वे उसका फल पाते हैं। सुस्त आदमी भींक भींक कर मरते हैं।

जातीय जीवन का भी यही हाल है। बलवान राष्ट्र कमज़ोर कौमों को दबा लेते हैं। जो कौम दूसरी कौम के आधीन नहीं रहना चाहती वह अपना बल बढ़ाती है और स्वतन्त्र होने की चेष्टा करती है। इस उद्योग में उसकी शक्ति बढ़ती जाती।

साधारणतः एक जाति दूसरी जाति को पराजय कर उसपर अपनी प्रभुता जमा उससे फायदा उठाती है। लड़झगड़ कर या दांव पच से और मुल्कों पर अपना कब्ज़ा कर लेने की आदत सी लोगों को होगई है और ताक़तवर कौमें अपनी मुराद हासिल करती भी हैं पर उनकी तभी तक चलती है जबतक उनके आधीन देश के लोग कमज़ोर हों या स्वतंत्र न होना चाहें। ज्योंहीं उनको स्वतन्त्र होने की आकांक्षा हुई त्योंहीं वे छटपटाने लगे। इस संघर्षण में कई मनुष्यों को जान से हाथ धोने पड़ते हैं। आदमियों का मारा जाना अच्छी बात नहीं। यह किसी भी देश या जाति के लिए अच्छा नहीं कि उसके लोग नाहक मारे जायँ क्योंकि मनुष्य ही जाति की सम्पत्ति हैं। उनके कम होने से राष्ट्र की क्षति है। इसके अलावा लड़ाई के कारण खलबली मच जाती है, कई कामों में बाधा पड़ती है व्यापार और कलाकौशल को बड़ी हानि पहुंचती है और धन का धूंवां धार होता है इत्यादि.....

लड़ाई की छेड़छाड़ न करना विशेषतः उन्हीं राष्ट्रों का काम है जो स्वतंत्र हैं। युद्ध का अन्त तभी होगा जब हरेक जाति और देश स्वतन्त्र होगा। प्रत्येक जाति का हक़ है कि वह स्वतंत्र रहे और अपना राजकाज खुद चलावे। जबतक और मुल्कों को अपने कब्ज़े में करने की लालच ताक़तवर कौमों के सर सवार रहेगी तबतक लड़ाई की छेड़छाड़ होती ही रहेगी अर्थात् संसार की भिन्न भिन्न जातियों के बीच लड़ाई तब बन्द होगी जब कि सब जातियां साम्राज्य खड़े करने की कामना छोड़ देंगी। उदाहरण के लिए हम अमेरिका की बात कहेंगे। अमेरिका प्रजासत्ताक राज्य है। वहां कोई राजा नहीं। प्रजा में से सबसे योग्य पुरुष ४।५ वर्ष के लिए सभापति चुन लिया जाता है। प्रजाजन सब बराबर हैं। सब राजकाज में सम्मिलित होते हैं, अपने प्रतिनिधियों द्वारा अपनी राय देते हैं और क़ानून बनाते हैं। वे और देशों में अपना राज नहीं फैलाना चाहते हैं अर्थात वे चाहते हैं कि सब देश स्वतन्त्र रहें, अपना अपना राजकाज स्वयं करें और सब प्रजासत्ताक राज्य (Republic) हों। फिलिपाइन द्वीपसमूह अमेरिका के आधीन है। वे उस द्वीप को भी शीघ्र ही स्वतन्त्र कर देना चाहते हैं। उन्होंने १५ वर्ष में फिलिपायन लोगों को स्वराज्य करने योग्य बना दिया। अमेरिका के स्वराज्य और प्रजासत्ताक सुराज्य की खूबी और उदारता और देखिये। चीन में जब मांचू राजा पदच्युत कर दिया गया और प्रजासत्ताक स्वराज्य स्थापित हुआ तो पहले

पहल चीन को प्रजातन्त्र (Republic) राज्य अमेरिका ने ही माना। जब यूरोप के सब राष्ट्र चीन को कर्ज देने लगे तो अमेरिका इस गोष्ठी में सम्मिलित न हुआ क्योंकि कर्ज इस समय तो सहायता के रूप में दिया गया है पर पीछे इसी कर्ज के वसूल करने के बहाने चीन पर हाथ फेरने की नौबत पहुंचनेवाली थी। कोई राष्ट्र उसकी रेलों पर अपना अधिकार करता, कोई उसकी खान' कोई सामुद्रिक व्यापार इत्यादि, कोई व्याजबट्टे में चीन की भूमि थोड़ी थोड़ी करके लेता उंगली पकड़ते पकड़ते पहुंचा पकड़ने की कहावत चरितार्थ होने में कुछ देर न लगती। पर इस समय यह डर नहीं क्यों कि साम्राज्यप्रिय यूरोपीय राष्ट्र स्वयं ही लड़ रहे हैं। इनके पनपने में कितने ही वर्ष लगेंगे तबतक शायद चीन अपने घर को ठिकाने कर लेगा। जहां चीनी प्रजातन्त्र राज्य सुगठित हुआ कि उसके आगे किसी की चलेगी कि नहीं।

भिन्न भिन्न राष्ट्र और देशों के बीच लड़ाई बंद होने का दूसरा कारण यह होगा कि सब सभ्य जातियां देखेंगी कि युद्ध के कारण वाणिज्य-व्यापार को बड़ा धक्का लगता है, कलाकौशल को हानि पहुँचती है, अंतर्जातीय व्यापार तो बिलकुल मिट्टी में मिल जाता है। जाति के बड़े बड़े योग्य पुरुष लड़ाई में काम आते हैं। सब तरह से नुकसान ही नुकसान है। तब अपने स्वार्थ के वश सब देशों के निवासी स्वयं लड़ाई चाहने वाले राजकर्ता, राजा या मंत्री के विरुद्ध खड़े होंगे। वे लड़ाई के खर्च के लिए रुपया नहीं देंगे किन्तु यह बात सम्भव तभी हो सकती है जब राज्य की बागडोर सर्वसाधारण के हाथ में हो। इस वक्त थोड़े से प्रजापतिनिधि और राजमंत्री जो चाहें कर लेते हैं। हम इस बात के दृष्टान्त देंगे। इस युद्ध के आरम्भ होने के समय जर्मनी में कई लोग और प्रजाकी समितियां थीं जो आखिरी दिन तक युद्ध होने के विरुद्ध थीं। जर्मन लोगों को लड़ाकू कौम कहते हैं पर वे इसवक्त बड़े ज़बरदस्त प्रजाहितैषी साम्यवादी Socialist लोग हैं जो अपना दल बांध कर एक दिन निरंकुश जर्मन सम्राट् की मनमानी नहीं करने देंगे। इंगलैंड में भी लड़ाई के चार दिन बाद तक कई अखबार और विचारवान् पुरुष इस युद्ध में सम्मिलित होने के विरुद्ध थे। यहां तक कि मंत्रिमंडल से मार्ले; मेकडानल, बर्नस् और ट्रेवेलियन ने अपना सम्बन्ध इसी बुनियाद पर परित्याग कर दिया कि वे प्रधान मंत्री और वैदेशिक मंत्री से युद्ध में योग देने में सहमत न थे। उन्होंने इस्तीफा दाखिल किया और कहा कि हम अंतर्जातीय लड़ाइयों के विरुद्ध हैं; हम नहीं चाहते कि इंगलैंड इस युद्ध में सम्मिलित हो।

कहने का तात्पर्य यह है कि एक समय आवेगा जब सब लोग इसी प्रकार, सोचेंगे कि नाहक अन्य जातियों से लड़ झगड़ उनपर अपना आधिपत्य जमाना उचित नहीं। और लड़ाई छेड़ कर सभ्यता की चाल ढीली करना देश का अमित धन नष्ट करना और अपने स्वदेश-बांधवों को विकराल रणचंडी के मुंह में देना कहां की सभ्यता है।

वर्तमान युद्ध से साफ पता लगता है कि जो राष्ट्र अन्य राष्ट्रों को अपने अधीन कर और देशों पर अपना आधिपत्य जमाना चाहता है या यों कहिये कि जो जातियां और देशों को हड़पना चाहता है वही इस युद्ध की उत्तरदाता है। जर्मनी को इगलैंड से ईर्ष्या थी कि इंगलैंड बड़ा साम्राज्य है हममी क्यों न उसकी तरह और देशों पर अपना सिक्का जमाते। जरासा बहाना मिलते ही उधर रूस की लार भी टपकी। आस्ट्रिया ने सर्विया को पराजय करना चाहा। जर्मनी ने बेलजियम् पर हाथ फेरा। फ्रांस के प्रजातन्त्र राज्य को अपनी रक्षा के लिए मैदाने जंग में आना पड़ा। इंगलैंड को अपनी मित्रता

और अपने देश की रक्षा के हेतु युद्ध में योग देना पड़ा। सारे झगड़े की जड़ साम्राज्य की आकांक्षा है। अगर जर्मनी अपने देश से सन्तुष्ट रहता और रूस पोलैंड को स्वतन्त्र कर देता, आस्ट्रिया सर्विया को उसके प्रांत दे देता।

इसका इलाज यही है कि कोई देश या राष्ट्र दूसरे मुल्क और कौम पर अपना अधिकार न जमावे। अपने अपने देश का शासन सब लोग खुद करें। अभी कई शताब्दियों तक लोगों में यह भाव उत्पन्न नहीं होगा। अतएव युद्ध अपने भयंकर रूप में फिर फिर मानव जाति का संहार करने आवेगा। युद्ध का अंत जर्मनी, रूस और इंगलैंड के हाथ की बात है। जबतक ये देश उदार नहीं होते और एक दूसरे में विश्वास करना नहीं सीखते तबतक यह खटपट चलती ही रहेगी। इस खटपट की सम्भावना के भय से सब राष्ट्रों को सदैव युद्ध के लिए सुसज्जित रहना पड़ेगा।

हमारा क्या हक है कि हम अपने फायदे के लिए दूसरी कौम पर उसमें सभ्यता फैलाने या शान्ति स्थापित करने के बहाने अपनी प्रभुता जमायें। मैक्सिको अमेरिका महाद्वीप के अंतर्गत है। कुछ महीनों वहां घरेलू झगड़े के कारण अराजकता फैल रही थी और बड़ी गड़बड़ी मचरही थी। पर अमेरिका के प्रजातन्त्र राज्य ने उसमें हस्तक्षेप नहीं किया। कहा लड़भरो अपने घर का प्रबन्ध स्वयं करो; हम बीचबिचाव के बहाने तुम्हारे देश पर हाथ साफ नहीं करेंगे। अगर मैक्सिको यूरोप में होता तो कोई न कोई यूरोपीय राष्ट्र शांति स्थापित करने के बहाने उसपर अपना अधिकार जमा ही लेता। कई साम्राज्यप्रिय जातियां निर्बल देशों में जरा सी गड़बड़ी देख दोचार खून हो जाने पर 'हरे-राम' 'हरेराम' कह कर शान्ति स्थापन करने को आपहुंचती हैं। पर आज वही सभ्य जातियां जान बूझ कर करोड़ों आदमियों की हत्या कर रही हैं। अगर सचमुच ही किसी के दिल में दया होती तो लट्ठ के सामने सिर झुका कर शान्ति करा लेतीं। पर स्वतन्त्रता और जातीय स्वाभिमान ऐसी बला है कि ये जीवित जातियां पराधीन नहीं होंगी और जीते जी अपनी स्वतन्त्रता खो अपने जातीय गौरव को कभी नष्ट नहीं होने देंगी।

मुहम्मद के चरित्र पर एक दृष्टि।

[लेखक-श्रीयुत नारायणप्रसाद अरोड़ा।]

(जन्म ५७० ; मृत्यु ६३२।)

मुहम्मद, अरब का विजयी, मक्का का उपदेशक और एक महान् विप्लव का कर्ता था। वह बड़ा विचारशील और पवित्रप्रकृति पुरुष था। पहले उसकी आर्थिक अवस्था अच्छी न थी, परन्तु विवाह होते ही उसकी आर्थिक अवस्था सुधर गई। तृष्णा और लालच के मार्ग से वह सदा बचता रहा और ४८ वर्ष की उम्र तक उसने अपना जीवन बड़ी सादगी के साथ व्यतीत किया। ईश्वर की एकता का विचार, प्रकृति और तर्क के अनुकूल होने के कारण उसे बहुत रुचा। यहूदियों तथा इसाइयों से कुछ बातचीत करने के बाद वह मक्के की मूर्तिपूजा को घृणा से देखने लगा। उसने अपना यह कर्तव्य समझा कि अपने देशवासियों को पाप की घोर विपत्ति से बचावे और उन्हें मुक्ति का सन्देश सुनावे। वह सदा इसी धुन में लगा रहता था। इसलिए उसने समझा कि मुझे इस प्रकार का कार्य करने के लिए ईश्वरी आदेश है और अपने अन्तःकरण की आवाज़ उसे ईश्वरी फिरश्ते की आवाज़ (देनेवाली) मालूम होने लगी। प्रकृति का यह एक नियम है कि उत्साह में मनुष्य कभी कभी अपने आपको धोखा देने लगता है। मुहम्मद भी इस नियम से न बच सका। उदारता से चाहे हम भले ही इस बात को मान लें कि मुहम्मद के उद्देश निरे भलाई ही के थे किन्तु मानवी दृष्टि से देखने पर हम कैसे कह सकते हैं कि उसका दावा मानने के योग्य था और उसकी युक्तियां अकाट्य थीं।

मक्का के अन्याय के कारण उसे मदीने जाना पड़ा और मदीना जाते ही वह एक साधारण नागरिक से एक राजा बन गया। पहले का सीधासादा उपदेशक मदीना पहुंचते ही सेना का मुखिया बन गया और अपने मन में सोचने लगा कि मैंने तो पवित्रता के लिए तलवार उठाई है। जो परमेश्वर संसार को पाप का फल देने ही के लिए प्लेग और भूकम्प उत्पन्न करता है वही उन पापियों को सुधारने और उन्हें दण्ड देने के लिए अपने सेवकों में शक्ति उत्पन्न कर देता है। कभी कभी राजनैतिक शासन में मुहम्मद को अपना कट्टरपन कम करना पड़ा और बहुत सी बातों में उसे अपने अनुयायियों की इच्छा के अनुसार भी कार्य करने के लिए बाध्य होना पड़ा। बहुधा उसने लोगों की बुराइयों ही को उद्धार का ज़रिया बनाया। अपने मत का प्रचार करने में उसने धोखेबाज़ी, अन्याय, निर्दयता और अपवित्रता से भी काम लिया। जो यहूदी और मूर्तिपूजक लोग लड़ाई के मैदान से भाग गये थे उन्हें भी उसने क़तल करवाया। बार बार इस प्रकार के कार्य करने से उसका चरित्र भी धीरे धीरे दूषित होगया। किन्तु इस तरह के दूषित व्यवहार का कुछ प्रभाव कम करने के लिए उसमें कुछ ऐसे व्यक्तिगत और सामाजिक अच्छे गुण थे जिनका होना एक ईश्वरीय दूत में आवश्यक है ताकि अपने में अपने अनुयायियों की भक्ति बनाये रख सके। उसके जीवन के अन्तिम दिनों में उसे तृष्णा ने बहुत घेर लिया था। एक राजनीतिज्ञ शंका कर सकता है कि उस समय वह अपनी युवा अवस्था के जोश और अपने अनुयायियों के सरल विश्वास पर हँसता होगा।

अपनी सफलता के कारण उसे अपने देवदूत होने पर अधिक विश्वास होने लगा। उसके स्वार्थ और धर्म इस प्रकार मिले हुए थे कि एक दूसरे से अलग नहीं हो सकते थे।

उसे यह सोचने में बड़ा आनन्द मिलता था कि केवल मैं ही एक ऐसा मनुष्य हूं जिसे सारे नैतिक नियमों के पालन करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मुझे ईश्वर ने इन सब बातों से मुक्त कर दिया है। यदि मुहम्मद में उसके पुराने भोलेपन का कोई भी चिह्न बाकी था तो उसके सारे पापों को उसकी निष्कपटता का प्रमाण समझना चाहिये। सचाई की सहायता के लिए झूंठ और फरेब को कम दोषी समझना चाहिये। यदि उसे अपने उद्देश के न्याय-सङ्गत होने और उसकी पूर्ति की आवश्यकता में पूरा पूरा विश्वास न होता, तो वह अपने उपायों की नीचता पर अवश्य चौंक पड़ता। प्रत्येक मनुष्य में चाहे विजयी हो या पुजारी कुछ न कुछ अकृत्रिमता अवश्य होती है। मुहम्मद की यह आज्ञा कि "कैदियों के बेचने के समय इस बात का खास ध्यान रक्खा जाय कि माताएँ अपने बच्चों से अलग न की जायँ," हमें मजबूर करती है कि हम उसके दोषों को बहुत कुछ हलका कर दें।

मुहम्मद को राजसी ठाठ-बाट दिखाने से बड़ी घृणा थी। ईश्वर का दूत अपने घर के नीच से नीच काम करने को तैयार रहता था। वह घर की आग सुलगाया करता था, घर में झाड़ू दिया करता था, भेड़ों को दुहा करता था और अपने हाथ से अपने फटे हुए कपड़े और जूतों को गांठा करता था। यद्यपि उसे तपस्या से नफरत थी और उसे तपस्वी होने का अभिमान भी न था तो भी वह स्वाभाविक रीति से सिपाहियों का सा सादा भोजन करता था। शुभ अवसरों पर वह अपने मित्रों को खूब भोजन कराता था। परन्तु उसके घर में कभी कभी सप्ताह के सप्ताह व्यतीत हो जाते थे और उसके चूल्हे में आग नहीं जलती थी। वह स्वयं शराब नहीं पीता था और इसीलिए उसके अनुयायी भी मदिरा से दूर रहते थे। वह जौ की रोटी खाकर अपनी क्षुधा निवारण करता था। शहद और दूध उसे बहुत रुचिकर थे किन्तु उसका साधारण भोजन खजूर और पानी ही था। सांसारिक भोगविलास में उसे केवल दो चीज़ें प्रिय थी, एक तो स्त्रियां और दूसरे सुगन्ध और इन दोनों की उसके धर्म में कोई सुमानियत न थी। मुहम्मद कहता था कि ये दो प्रकार के आनन्द उसकी ईश्वरभक्ति को बढ़ाने में बहुत सहायता करते हैं। देश के गर्म जल-वायु का परिणाम लोगों पर अवश्य पड़ता है और अरब के लोग भी इसी नियम के वशीभूत थे। किन्तु कुरान के धार्मिक नियमों ने उन्हें बहुत कुछ मर्यादा के भीतर रहने पर बाध्य कर दिया। जहां बेशुमार विवाह किया करते थे वहां उनको केवल चार पत्नियां करने की आज्ञा रह गई। तलाक़ या पति अथवा पत्नी को छोड़ने की प्रथा (divorce) का प्रचार कम किया गया। व्यभिचार के लिए प्राणदण्ड की सज़ा रक्खी गई।

किन्तु अपने घरेलू जीवन में मुहम्मद में भी साधारण मनुष्यों कीसी वासनाएँ थीं और वह देव-दूत के अधिकारों का दुरुपयोग करता था।

क्रैविन।*

[लेखक—श्रीयुत ठाकुरप्रसाद शर्मा।]

कठिन लोह-मंडित जल-गृह में
कैविन बैठा जाता था।
अपने प्रबल यान को धूमा-
नल में से ले जाता था॥
शत्रु-दुर्ग पर तीन घड़ी तक
उसने की गोलाबारी।
अब इस खेल बन्द करने को
हमले की आई बारी॥ १॥

लगता था वह महा भयानक
कम चौड़ा सागर का भाग।
चिन्ह-रहित उसके नीचे था
कहस-मनुज का मृत्यु-विभाग॥
शत्रु पक्ष के जल-यानों का
झुंड वहां तैराता था।
क्रैविन हो स्वपक्ष का नेता
निज झंडा फहराता था॥ २॥

पीछे से जल-यान-प्रबल दल
आगे बढ़ता आता था।
आगे जल-धारा के सन्मुख
नेता उनका जाता था॥
पल भर गर्जन बन्द हुई
पथ-दर्शक से नेता बोला।
रिपु पर प्रबल आक्रमण करने को
जहाज़ आगे डोला॥ ३॥

एक ओर उस सलिल-खंड के
था सागर-तट का विस्तार।
दूजी ओर मग्न जल-निधि में
कपटी नौ-सेना तयार॥
क्रैविन की नौका भी उनकी
ओर फिरी गर्जना हुई।
पर्वत सम जल-राशि उठी जल
नौका सागर मग्न हुई॥ ४॥

ऊपर उसी लोहमंडित जल
गृह में पथदर्शक सरदार।
निज निज रक्षा हेतु भागते
मिले वहां पर अन्तिम बार॥
घंटे सम उस विपद् समय पर
विपलदृष्टि एक आता था।
क्योंकि एक बच जाने को था
द्वितीय विपद में पाता था॥ ५॥

स्वप्न मग्न की भांति मनुजवर
दोनों भूले खड़े रहे।
सेनापति ने वीर मनुज को
भांति वहां यह शब्द कहे॥
'पथदर्शक पहिले तुम जाओ"
सीढ़ी पर वह चला गया।
इतने ही में वीर-शिरोमणि
क्रैविन जल में डूब गया॥ ६॥

---

* अङ्गरेज़ी कवि न्यूबोल्ट की कविता "क्रैविन" का भाषानुवाद।

पुरुषार्थ और एकता।

[लेखक—श्रीयुत गोवर्द्धनदास।]

इस संसार में जन्म लेने का कुछ उद्देश्य है। परमात्मा ने कोई वस्तु निरर्थक नहीं रची और विचार करने से यह मालूम होता है कि प्रत्येक प्राणी को परमपिता ने इस संसार की कर्मभूमि में, किसी न किसी महान् उद्देश के पालनार्थ रचा है।

मनुष्य परमात्मा की सृष्टि में, एक शक्तिशाली अंश होने के कारण तथा स्वयं उसी एक, का अंश होने के कारण पशु आदि अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ गिना जाता है। मनुष्य में विचारशक्ति नारायण की देन है और इसी का सदुपयोग करने से मनुष्य सद्गति को प्राप्त होता है और इसी विचारशक्ति के सदुपयोग से यह मालूम होता है कि इस संसार में प्राणियों को जन्म लेकर कुछ न कुछ करना पड़ता है।

यह संसार कर्मभूमि है। इसमें जन्म लेकर अपनी शक्तियों तथा इन्द्रियों का सदुपयोग कर, सत्कर्म में अपनी प्रवृत्ति को लगाना और अपने जन्म को सफल करना प्रत्येक विचारवान् पुरुष अपना धर्म और कर्तव्य समझते हुए अपने जीवन को संसार के हित के लिए अर्पण कर देते हैं, और यही मानवी जीवन का उद्देश्य है।

यदि हम अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करेंगे तो यह निश्चय है कि दुष्कर्मी होने के कारण पतित हो हम अपने उद्देश्य से विचलित होते हुए अन्त में दुःखसागर में, बारम्बार अनेकों जन्ममरण के दुःख भोगने के अवश्य ही भागी होंगे।

महात्मा तुलसीदास जी के निम्नलिखित वचन के अनुसार:—

"जन्मत मरत दुसह दुख होई"

अभी जन्म का दुस्सह कष्ट भोग कर इस संसार में चरण रक्खा है और यहां फिर भी कष्टों ही का अनुभव कर रहे हैं, पुनः वृद्धावस्था भी बाघिन की भांति मुंह बाए हुए है और अन्त में शरीर छोड़ना भी है, यह समझते और जानते हुए भी हम अपनी शक्तियों का सदुपयोग नहीं करते और अपनी विचारशक्ति को मलीन कर निपट स्वार्थपरायण होने ही में लगा कर स्वयं दुःख के भागी होते हैं और इस पर भी सुख और शान्ति पाने के अधिकारी होने का गर्व रखते हैं।

जब तक अबोध थे तब तक जो किया सो किया "गतस्य शोको नास्ति" पर जब बुद्धिरूपी कमल ज्ञान रूपी सूर्य के उदय होने पर खिल जाता है तो हमें अवश्य ही उसका सदुपयोग कर आनन्दमय होना चाहिये। पर शोक है कि संसार का कार्य निशदिन देखते हुए भी इस की असारता का विचार रखते हुए भी हम कर्तव्यपरायण नहीं होते।

हम पुरुष कहाते हैं। किस गुण से? केवल पुरुषार्थ ही से। भगवान् कहते हैं कि पुरुषों में पुरुषार्थ मैं हूं। तब बिना पुरुषार्थ किये "पुरुष" पद की शोभा नहीं है और पुरुषार्थ ही मनुष्य के प्रत्येक कार्य में सिद्धिप्रद है। बिना पुरुषार्थ किये, बिना शक्ति और इन्द्रियों के सदुपयोग किये हमारी जीवनयात्रा भी दुर्लभ है, यह हम भली भांति जानते हैं और प्रत्यक्ष देखने में आता है कि जब तक हाथ से भोजन उठाकर मुंह में दांतों द्वारा कुचल और चबा कर उदर तक नहीं पहुंचाते तब तक पेट भी नहीं भर सकता तो अब यह निश्चय है कि जब तक कर्म तथा पुरुषार्थ द्वारा हम स्वयं अपनी

उन्नति तथा समाज की उन्नति में कटिबद्ध नहीं होते तब तक केवल उन्नति २ रटने ही से हमारा कार्य नहीं चल सकता अतः कर्म और पुरुषार्थ पुरुष का विशेष धर्म है। और इसके बिना एक क्षण भी व्यर्थ व्यतीत करना, अपनी तथा समाज की उन्नति में बाधा डालना है। इसलिए हमें अब पुरुषार्थ करने में कटिबद्ध होना आवश्यक है और पुरुषार्थ ही देश के लिए उन्नतिशील होने में प्रथम साधन है।

अपनी इन्द्रियों तथा शक्तियों का सदुपयोग करना, उनसे देश तथा समाज अथवा स्वयं अपनी आत्मिक उन्नति का कार्य करना, प्रत्येक प्राणी का कर्तव्य होने के कारण हम यह कह सकते हैं कि समाज की सेवा तथा देश की सेवा ही, दूसरे शब्दों में धर्म और पुरुषार्थ है। संसार के कल्याण के लिए, इस कर्मभूमि में आकर, सत्कर्म द्वारा, उनके हित को अपना ही समझ अपने मानवी जीवन के लक्ष्य में लीन हो जाना और

अयं निजः परोवेति गणना लघु चेतसाम्।
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

इस सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए इस कर्मभूमि में, वीरों, दानियों और भक्तों की भांति कमर कस अपने आप को निछावर कर देना चाहिये।

हमारे शास्त्रों का भी यही सिद्धान्त है और यही कारण है कि प्राचीन समय में समाज के हित ही के लिए ऋषियों ने वर्णव्यवस्था प्रचलित की और वर्णव्यवस्था के अनुकूल अपना आचरण रखते हुए, अपने कर्तव्यों के पालन में रत पुरुष ही अपने जीवन को सार्थक कर सकते हैं।

यही बात महात्मा कबीरदास भी कह गये हैं कि:—

"जननी जने तो भक्त जन, कै दाता कै शूर।
नाहीं तो तू बांझ रहु, काह गँवावे नूर॥

जन्म लेकर सब से पहिला कर्तव्य हमें संसाररूपी कुटुम्ब का हितचिन्तन और उनकी भलाई में सर्वदा कटिबद्ध होना है। इसी कारण देशसेवा प्रथम और मुख्य है क्योंकि—

सब आये इस एक में, डाल पात फल फूल।
कबिरा पीछे क्या रहा, गहि पकड़ा जब मूल॥

अपनी जननी, जन्मभूमि की सेवा, माता पिता और गुरू की सेवा से भी बढ़कर है और वे लोग माता पिता और गुरू कहलाने के योग्य नहीं, जिन्होंने अपनी प्रिय सन्तानों और शिष्यों को जन्मभूमि की सेवा के लिए शिक्षित और उत्साहित नहीं किया और जिन्हें देशसेवा की, सारे संसार को अपना जानने तथा समझने और अनुभव करने की शिक्षा ही न मिली वे अपने माता, पिता, गुरू, सम्बन्धी और मित्र तथा पड़ोसी किम्बहुना स्वयं अपनी तथा अपने कुटुम्ब की भी सेवा नहीं कर सकते। उन्हें तो यह जीवन एक बोझ मालुम होता है और स्वेच्छाचारी होने के कारण वे स्वार्थी और कपटी हो जाते हैं और अन्त में अपने आपको कलंकित कर अपने पुरुषों के भी विमल यश पर पानी फेरते हैं और आनेवाली सन्तानों के हित में भी बाधा डालते हैं।

देशसेवा रूपी यज्ञ में, चारो वर्णों की आवश्यकता है और जबतक प्रत्येक वर्ण के लोग अपने अपने धर्म और कर्तव्य से विमुख रहेंगे तब तक हमारा अभीष्ट सिद्ध नहीं होगा। अतः चारों वर्णों को इस महान् यज्ञ में अपने जीवन की आहुति देनी परम आवश्यक है।

ब्राह्मणों को शुभ मंत्रों द्वारा, क्षत्रियों को वीरता द्वारा, वैश्यों को दान द्वारा और शूद्रों को कठिन से कठिन परिश्रम के कार्यों द्वारा अपने आपको देश के लिए अर्पण करना चाहिये। देश के हित में सब का हित है। देश के यश में सब का यश है और देश के दुःखी होने पर सभी दुःखी होते हैं। इसलिए हमारा और

आपका अब यही कर्तव्य है कि चारों वर्णों में जागृति पैदा करें और उन्हें अपने २ वर्ण धर्म द्वारा निज २ कर्तव्यों में शीघ्र ही लीन देखें। जबतक हम अपने कर्तव्यों को नहीं समझते, उनके पालन में दत्तचित्त नहीं होते तभी तक कष्ट में हैं और जहां हम में अपने गुणों और कर्तव्यों का बोध हुआ और हम लोग अपना २ कार्य करने में दत्तचित्त हुए नहीं कि बस देश-हित का श्रीगणेश होगया।

देशहित में सभी का कल्याण है अतएव सब को मिलकर, एक होकर, एकता के लिए, उन्नतिशील होने का शीघ्र ही प्रयत्न करना चाहिये तभी वास्तविक जीवनोद्देश सफल होगा।

गर्भिणी स्त्री को प्रसव कष्ट क्यों होता है ?

[लेखक—श्रीयुत डाक्टर के० सी० औडी, एम० डी०।]

बायोकेमिक् मतानुसार उसका निदान तथा प्रतिकार।

जीवों के शरीर के सब प्रकार के रसों और झिल्लियों के वास्ते पोटासियम फास्फेट (Potasium phosphate) नामक धात्वाय लवण अत्यन्त आवश्यकीय द्रव्य है। शरीर में इसका परिमाण ठीक रहने के लिए शारीरिक सकल यंत्र आक्सिजन (Oxygen) नामक गैस पैदा करते रहते हैं तथा रक्त के अन्यान्य रासायनिक परिवर्तन करते और तैलिक पदार्थों को साबुन के सदृश पदार्थ में बदलते रहते हैं। जीवनशक्ति के विषय में इसका कार्य अति विचित्र है तथा इसके वर्तमान रहने पर जीवन शक्ति ठीक रहती है।

देह भर में मस्तिष्क ही प्रधान है, यह पोटासियम फास्फेट आक्सिजन नामक गैस की सहायता से शरीर के अण्डलालिक (albumca) पदार्थ के साथ मिलकर ग्रे मैटर (Gray matter) नामक पदार्थ उत्पन्न करता है। इसके अभाव होने पर मस्तिष्क और नसों के कार्य बन्द होकर शिथिलता और मानसिक शक्ति की हानि इत्यादि लक्षण प्रगट करते हैं और नस सम्बन्धी दुर्बलता प्रयुक्त रक्तकणिका और पेशी सब नष्ट हो जाती अथवा सूख जाती हैं और सड़ा खून बहने लगता है। शारीरिक तथा मानसिक कार्य इत्यादि अधिकतर मस्तिष्क के ग्रेमैटर नामक पदार्थ द्वारा होते रहते हैं। गर्भ की दशा में इसके अभाव होने से पेशी और स्नायु-मण्डली शुष्क हो जाने से ज्वरायु ग्रीवा कठिन हो जाती है और प्रसवकाल में नाना प्रकार के कष्ट और दुर्घटनाएँ होने लगती हैं।

यदि मस्तिष्क के ग्रेमैटर नामक पदार्थ का किञ्चित् अंश लेकर खुर्दवीन द्वारा परीक्षा की जावे तो वह अधिकतर विचित्र सजीव कोषों से युक्त दीख पड़ता है। इनमें से कुछ तो बड़ी पूंछवाले मेंढक के बच्चे के सदृश दीख पड़ते हैं और कुछ मकड़ी के सदृश शरीर में चारों ओर पैर फैलाये हुए दीख पड़ते हैं। ये इतने छोटे हैं कि एक इंच की लम्बाई के लिए ५०० से अधिक की आवश्यकता होगी और प्रत्येक सजीव कोष को अलग २ अपना २ सूक्ष्म कार्य करना पड़ता है।

यदि हम लोग सावधानी से परीक्षा करें तो ज्ञात होगा कि पूंछ अथवा उँगलियाँ जो

प्रत्येक सूक्ष्म सजीवकोष से सम्बन्ध रखती हैं और अपनी स्वाभाविक अवस्था में मस्तिष्क में वर्तमान हैं और अपने स्थान से काटी नहीं गई हैं, शरीर में सर्वत्र दौड़ने के लिए तैयार रहती हैं और इनमें से कुछ उँगलियाँ इतनी छोटी हैं कि अँगूठे की मोटाई के बनाने के लिए दस लाख की आवश्यकता है। इनमें से सहस्रों एकत्रित होने से एक नस बनती है। तथा रीढ़ की हड्डी का अधिकांश बनता है जिसके द्वारा मस्तिष्क शरीर के सब भागों से जुड़ा हुआ है। यदि उँगली के किनारे पर हम एक पिन चुभो दें तो इससे हमको कष्ट होगा क्योंकि मस्तिष्क में कुछ छोटे छोटे कोष हैं जिनसे कि लम्बे बाल सदृश सूक्ष्म रेशे उँगली की त्वचा तक लगे हुए हैं जहां पर कि पिन गड़ाई गई है। मस्तिष्क के कोष कष्ट को अनुभव करते हैं और कष्ट को उँगली की ओर आकर्षित करते हैं। इन विचित्र छोटे २ कोषों को स्नायुकोष कहते हैं।

मस्तिष्क और रीढ की हड्डी में स्थित ये स्नायुकोष बारह करोड़ से अधिक कल्पना किये जाते हैं। इन्हीं अपूर्व कोषों द्वारा समस्त शरीर की यथानियम से परिचालना होती है और शरीर के और सब यन्त्र केवल मस्तिष्क के सेवक ही माने जाते हैं। छोटे २ कोष अपनी लम्बी उँगलियों को पेशी, ग्रन्थि, फुसफुस, कलेजा, पेट इत्यादिकों को उत्तेजन करने के लिए शक्ति भेजते हैं। जैसे जब हम हाथ हिलाना चाहते हैं तो मस्तिष्क के कोष जो पेशी से सम्बन्ध रखते हैं हाथ की नसों को शक्ति भेजते हैं और उसी के अनुसार हम काम करते हैं, इसी प्रकार हृत्पिण्ड द्वारा रक्त संचालित होता है, फेंफड़े से सांस लेते हैं। जक्कीत से पित्त बनता है इत्यादि इनके अतिरिक्त और दूसरे यन्त्र भी मस्तिष्क के सम्बन्धी कोषों की आज्ञानुसार काम करते हैं। कोष कई श्रेणियों में बँटे हैं और उनमें से प्रत्येक को अपना २ मुख्य कार्य करना पड़ता है। स्नायु कोष दो भागों में विभाजित किये जाते हैं। प्रत्येक भाग को मुख्य २ कार्य करना होता है। स्नायु-कोष के ये दोनों भाग रीढ़ की हड्डी में विशेष करके दीख पड़ते हैं। एक भाग जो समाचार ग्रहण करता है उसको उँगली के संयुक्त कोष शरीर के बाहर से समाचार देते हैं और दूसरी श्रेणी उँगली के संयुक्त-स्नायु-कोष को उसी स्थान पर उत्तेजन करने के लिए आज्ञा भेजता है अथवा उनको शरीर के सब स्थानों पर उत्तम प्रकार से कार्य करने को भेजता है। उदाहरण-अगर पैर के नीचे गुदगुदाया जावे तो उस पैर के नीचे की गुदगुदी रूप अनिष्ट से बचने वास्ते पैर को हटा लेते हैं। जब हम सोते हैं अथवा हमारे किसी स्थान पर लकवा मारता है तब हम लोग कुछ २ होश से रीढ़ की हड्डी के स्नायु-कोष द्वारा हिल डुल नहीं सकते।

फास्फेट आफ़ पोटास् नामक धात्वीय लवण के अभाव होने से गर्भिणी को प्रसव कष्ट असहनीय होता है। सदैव क्रोध, निराशा और प्रसव होने की चिन्ता समय २ पर इतनी अधिक होती है कि इससे उन्माद रोग तक उत्पन्न हो जाता है और इसके अभाव में शिरो-पीड़ा, स्नायुशूल, ज्वरायुशूल, सम्पूर्ण अथवा असम्पूर्ण लकवा इत्यादि नाना प्रकार के कठिन रोग उत्पन्न होते हैं। और भ्रूण (गर्भ का बच्चा) नीचे शिर हो के न निकलने से नार टूट के उसके कोई २ अंग—हाथ पैर इत्यादि—निकल आने से नाना प्रकार की विपत्तियाँ उत्पन्न होती हैं।

यदि फास्फेट आफ़ पोटास् प्रसव के कुछ दिन पहिले गर्भिणी को दिया जावे तो मस्तिष्क के ग्रे मैटर नामक स्नायुकोष रीढ़ की हड्डी द्वारा इन सब स्नायु कोषों से जो कि योनि और पेरिटोनियम (झिल्ली) में स्थित है उत्तेजन करके यथार्थ रीति से जीवनशक्ति द्वारा भीगा रख के प्रसव कार्य यथासमय में कराते

हैं। इसको यथानुसार प्रयोग करने से प्रसव कष्ट किञ्चित् सामान्यमात्र होगा अथवा कुछ भी न होगा जैसे कि गर्भिणी निद्रित अवस्था में अज्ञात रीति से प्रसव करेगी। वैज्ञानिक अध्यापक डाक्टर कैरी वाकर (Carry Walker) इत्यादिक कहते हैं कि फास्फेट आफ़ पोटास नियमित रूप से व्यवहार करने से मस्तिष्क का ग्रे मैटर नामक पदार्थ गर्भिणी को प्रसवकाल में सर्व प्रकार से रक्षा करने के लिए उपयोगी कार्य करता रहता है। प्रसवकाल में इसका कार्य अर्गट (ergot) के तुल्य है और प्रसूतिका का सब प्रकार से स्वस्थ रख करके अवश्य प्रसव कराता है। अनेक परीक्षाओं द्वारा ज्ञात हुआ है कि फास्फेट आफ़ पोटास् का कार्य धात्रीविद्याभिज्ञ (Mid-wifery) चिकित्सकों के कार्य के अनुसार होता है। जिस समय प्रसव कष्ट हो उसी समय यदि इसका प्रयोग किया जाय तो वह समय २ पर पीड़ा का घटना बढ़ना और प्रसव की निष्फल पीड़ा से उद्धार करके स्वाभाविक नियम से निश्चय ही प्रसव करावेगा। प्रसूतिका के मस्तिष्क में इस धात्वीय लवण का अभाव होने से गर्भस्थ भ्रूण के मस्तिष्क में इस धात्वीय लवण का अभाव होके प्रसव संकट होता है। यह निश्चय है; वैज्ञानिक पण्डित लोग इसको एकदम स्वीकार करेंगे।

आजकल रासायनिक परीक्षा के द्वारा ठीक २ निश्चय किया गया है कि गर्भकाल में रक्त के अवयव (Materials of blood) पूर्ण रूप से बदल जाते हैं। इनमें पानी का अंश बढ़ जाता है और शिर में अण्डलालिक पदार्थ थोड़ा रह जाता है और लाल रक्त कणिकाओं की संख्या अल्प हो जाती है। इन्हीं क्रमों के अदल बदल के साथ रक्त में फेब्रिन और एक्सटैक्टिव पदार्थों की वृद्धि होती है। रक्त में इसके परिवर्तन के साथ इस्पिण्ड में अल्पकाल की वृद्धि होती है। जरायु का संचालन इस समय अत्यन्त कठिन होकर इसका बढ़ाव होता है। यह बढ़ाव केवल बाएँ बेंद्रिकिल में होता है। मनुष्य, पशु, पक्षी, डङ्गिद इत्यादि जितने मृन्मय पदार्थ हैं ऐश्वरिक नियम से पृथ्वी, जल, तेज, वायु, और आकाश इन्हीं चिरप्रसिद्ध पञ्चभूतों द्वारा निर्माणित, वर्द्धित और चलायमान होते रहते हैं। मिट्टी, जल, और वायु, ये तीन महाभूत उक्त धात्वीय लवण रूप विद्यमान हैं। मिट्टी, जल इत्यादि से धात्वीय पदार्थों को वृक्षादि ग्रहण करते हैं, और मिट्टी को उपजाऊ शक्ति कम होने पर चून, क्षार इत्यादि खाद की चीज़ें डाली जाती हैं। उक्त द्रव्यों को वृक्ष लता इत्यादि ग्रहण करते रहते हैं और सब जीव वृक्ष लता शस्य इत्यादि का आहार करके वही धात्वीय पदार्थों को ग्रहण किया करते हैं। कम उपजाऊ भूमि में उत्पन्न शस्य इत्यादि आहार करने से शरीर में धात्वीय द्रव्य का परिमाण पूर्णतः नहीं पहुंचता अथवा आहार करने की वस्तु अच्छी तरह न पच कर के उक्त धात्वीय पदार्थ सम्पूर्णता से गृहीत न होने से अभावज्ञापक लक्षण उपस्थित हो जाते हैं जो नाना प्रकार के रोग कहे जाते हैं। रक्त में उक्त धात्वीय लवण पूर्णतः रहने से शरीरधारण अच्छी तरह होता है। कारण कुछ भी क्यों न हो रक्त में उक्त पदार्थों में से एक दो या उससे अधिक धात्वीय पदार्थ कम होने से (Organic) आरगैनिक पदार्थ व्यर्थ होकर शरीर में अन्यान्य लक्षणादि प्रकाश कर के आवश्यकीय धात्वीय पदार्थ में अभाव ज्ञापन करता है। उक्त अभावज्ञापक लक्षण ही को रोग कहते हैं। रोग केवल अभावज्ञापक लक्षण मात्र है। जर्मनी के प्रधान वैज्ञानिक अध्यापक भिर्चो (Virchow) कहते हैं कि कोषों की बिगड़ी हुई दशा ही को रोग कहते हैं।

सत्य तत्व को बतलानेवाली "बायोकेमिस्ट्री" से सहजही में ईश्वर की सत्ताविषयक और सृष्टिकौशल सम्बन्धी ज्ञान लाभ होता है जैसे

श्वासद्वारा जीव के शरीर से जो अनिष्टकारक कारबन नामक गैस बाहर होता है वह जड़ जीव उद्भिदगणों का वायुरूप जीवन निर्दिष्ट होता है और उनकी आक्सिजन गैस चेतन जीवों की जीवन वायु होता है और चेतन प्राणियों के साथ उद्भिदगणों का परस्पर इसी प्रकार लेन देन का नियम स्थित रहकर संसार के समस्त जीवों का निर्वाह होता है। ईश्वर के इस सब सृष्टिकुशलता का स्वाभाविक परिचय "वायोकेमिक" विज्ञान से विशेष रूप से प्राप्त होता है।

मनुष्यों के जन्म समय में वह जैसे बली होते हैं वैसेही शरीर का गठन, स्वास्थ्य, बल इत्यादि सम्भोग करते रहते हैं। ग्रह प्रकृत नियम से कभी बली और कभी निर्बल होकर ऐश्वरिक कार्य करते हैं। सूर्यादि ग्रह अपनी २ स्थानिक राशिगत बलाबल के अनुसार पृथ्वी के ऊपर यथारीति शक्ति परिचालन करते रहते हैं। मनुष्यगण पृथ्वी के अन्तर्भुक्त जीव हैं उनके ऊपर और ग्रहों की यथासम्भव शक्ति परिचालन क्यों न होगी ? पृथ्वी और सब ग्रह सूर्य के साथ परस्पर आकर्षणीय शक्ति रखने के लिए सौर जगत् के सकल ग्रह ही अपने २ स्थान पर रहकर परिभ्रमण करते हैं--कोई ग्रह भी अपने स्थान से भ्रष्ट नहीं हो सकते हैं। इसी प्रकार परस्पर शक्ति के फलानुसार एक के ऊपर दूसरे की क्रिया सहज ही में हो सकती है जैसे सूर्य और पृथ्वी के पूर्वोक्तरूप परस्पर सशक्तिवश सूर्य पृथ्वी को गर्मी देता है और पृथ्वी से रस खींचता है। इसी प्रकार चन्द्रमा पृथ्वी को रस देता है। इसी प्रकार परस्पर आकर्षणीय शक्तिवश अमावस्या और पूर्णिमा को सूर्य पृथ्वी का रस खींचने के लिए और चन्द्रमा के उसके विपरीत दिशा में स्थित आकर्षणीय शक्ति द्वारा यावतीय रस परस्पर उल्टी चाल से एकचित्त होकर सूर्य के रसाकर्षनानुकूल्य करता है। इसी वास्ते पृथ्वी का जल उमड़ कर प्रबल ज्वार उत्पन्न करता है और उन्हीं तिथियों को जीव के शरीर में रस-धातु प्रबल-चन्द्रमा की शीतलता से अत्यन्त वर्द्धित अथवा सूर्य की आकर्षणशक्ति पूर्ववत् प्रबलता पाकर सब के न्यूनाधिक परिमाण से स्वास्थ्य की कमी होजाती है। सूर्य की चाल के अनुसार हम लोगों की ऋतुओं में भेद होता है। सूर्य जब कर्क राशि पर आते हैं तब श्रावण में पानी बरसता है और सूर्य के कन्या राशि पर आने पर शरद् ऋतु का प्रवेश होता है और जगत् शोभायमान होता है। ऋतुओं के साथ २ मनुष्य के देह की धातुओं में भी परिवर्तन होता है। और कुछ अन्तर भी हो जाया करता है जैसे वर्षा काल में वायु प्रकोप होता है और शरद् ऋतु में पित्तप्रकोप इत्यादि होता है और प्रतिदिन प्रातःकाल कफ, मध्याह्न में पित्त और अपराह्न में वायु प्रकोप होता है।

इसी प्रकार बाल्यावस्था में कफ, मध्य अवस्था में पित्त और अन्तिम अवस्था में वायुप्रकोप प्रबल होता रहता है। इनकी शक्ति का विचार करने से साफ २ विदित होता है कि ग्रीष्म ऋतु में मंगल और रवि प्रबल होते हैं और पित्त की प्रबलता होती है। वर्षाकाल में चन्द्रमा बली होता है इस कारण उसकी शीतलता से कफ संचार होकर वायु का रोक व प्रकोप होता है और जीवन काल के मध्य में ग्रहों के साधारण अधिकार के अनुसार कालभेद होता है।

जीवन काल में प्रथम चार वर्ष तक चन्द्रमा का अधिकार होता है। चन्द्रमा शीत उत्पन्न करता है, उस समय कफ श्लेष्मा की प्रबलता होती है। श्लेष्मा को जीव के बल का आधार कहकर इसको बालाप कहते हैं। बाल्यावस्था में ही जीव के शरीर में उत्तरोत्तर बलाकर्ष बढ़ता है और वही शक्ति बढ़ने का यथार्थ समय है इसी वास्ते स्तन जो श्लेष्माजनक जल-सम्बन्धी पदार्थ होता है उसी समय शरीर का

पोषक होता है। चन्द्रमा मस्तक, उदर इत्यादि के ऊपर आधिपत्य रखता है। इसके उपरान्त दश वर्ष तक बुध का अधिकार होता है। बुध वात, पित्त व कफ़ को समान रखता है। उस समय पूर्वसंचित-यथाक्रमावेश क्रम से काम होना प्रारम्भ होता है। इसी वास्ते इस समय में स्वभाव से ही चञ्चलता, बातचीत करने में चतुराई और बुद्धि का प्रकाश हृदय में आने लगता है। इसी कारण इसी समय बात बोलना इत्यादि जितनी शिक्षा और उनके अनुसार क्रियादि हैं उनमें प्रवृत्ति होती है। बुध मस्तक और जिह्वा के ऊपर अधिकार रखता है। इस देश में चौदह वर्ष की अवस्था में स्त्रियों को प्रायः गर्भवती देखा जाता है। साधारण रीति से चौदह वर्ष की अवस्था से शुक्र का अधिकार होता है। इस समय सब को जवानी होती है। शुक्र रजोगुण का उद्दीपन करता है और वाक्-पटुता, रसज्ञता, विलासिता आदि मनुष्य में होने लगती है। शुक्र ग्रीवा और ज्ञानेन्द्रियों के ऊपर आधिपत्य करता है। इसी प्रकार यथाक्रम से रवि, मंगल इत्यादि आधिपत्य करते हैं। वायोकेमिक के निदान में फास्फेट आफ् पोटास (Phosphate of Potas) मेष राशि चक्र स्वरूप का काम करता है। मेष राशि का मालिक मंगल है और इसके अधिकार के समय साधारण स्त्रियों को गर्भ होता है। मंगल रक्त और ग्रीवा के ऊपर आधिपत्य करता है।

जीवनकाल में शुक्र, रवि और मंगल का साधारणतः शरीर के ऊपर आधिपत्य रहता है और जन्मकाल के ग्रहों का अपने अपने स्थानीय बल के अनुसार कार्य होता है। जन्म-काल में जिन स्त्रियों के शुक्र, रवि और मंगल विरुद्ध होते हैं वे प्रसव के समय निश्चय ही कष्ट पाती हैं। जब हम लोगों के शरीर की धातुप्रबलता स्वभावसिद्ध होती है तब इसके बिगड़ने से स्वास्थ्य का बिगड़ना अवश्य सम्भव है और गर्भस्थित भ्रूण के ऊपर चन्द्रमा का आधिपत्य रहता है। चन्द्रमा मस्तक के ऊपर आधिपत्य रखता है इसी वास्ते भ्रूण का मस्तक पहिले बाहर निकलता है। फास्फेट आफ़ पोटास् गर्भिणी को यथानियम सेवन कराने से प्रसवकालीन नानाविधि संकटों से रक्षा होगी यह बात निश्चय है। प्रसवकाल में इसकी असाधारण क्षमता देखकर धात्री विद्या-भिज्ञ चिकित्सकों को आश्चर्य होता है, अतएव हम सर्वसाधारण गर्भिणी स्त्रियों को इसका नियमित व्यवहार करने की अनुमति देते हैं। इसमें किसी प्रकार का विष नहीं है कि जिससे गर्भिणी को किसी प्रकार की हानि पहुंचे। इसके व्यवहार करने से प्रसूतिका और बालक की रक्षा कवच के तुल्य होती है, इसमें अधिक प्रशंसा नहीं की गई है। इसके व्यवहार से बालक उत्पन्न होते समय किसी प्रकार का गर्भिणी को कष्ट नहीं पहुंचता और दाई आदि को बुलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती और न किसी प्रकार का गर्भिणी का अपमान होता है। डाक्टर इत्यादि को बुलाने के खर्च की आवश्य-कता नहीं पड़ती और न किसी प्रकार का कष्ट उठाना पड़ता है। प्रयोग विधि यह है कि दो ग्रेन मात्रा प्रति दिन प्रातःकाल और सायंकाल सेवन करनी होती है और प्रसवकालीन स्त्रियों को ग्रेन करके प्रति १० दश मिनट पर सेवन कराने से अति स्वल्प समय में निर्विघ्नता से प्रसव होगा इसमें कुछ सन्देह नहीं। दवा गरम पानी के साथ खाने से लाभ अधिक होगा। सबके ज्ञानार्थ इसके बनाने की विधि बताई जाती है:—

पोटासियम नामक धातु गरम पदार्थ, हाइड्रोजन, आक्सिजन नामक गैस और फा-स्फोरस नामक अधातु गरम पदार्थ इन तीनों को परस्पर रासायनिक संयोग द्वारा फास्फेट आफ पोटास (Phosphate of Potas) तैयार होता है।

"प्रेम-पराकाष्ठा ।"

[लेखक—श्रीयुत पं० रामनारायण चतुर्वेदी ।]

प्रियजनों का नित्य दर्शन
भाग्य का फल सभ्य है ।
हृदयाभिनन्दन दर्शनों का
योग भोग अलभ्य है ॥
जीवन वही जीवन सुखी
जो हो दुखी न वियोग में ।
अविरत रहै अनुरक्त हो
प्रियभक्त सा संयोग में ॥
इस हर्ष के उद्यान में
मन मुग्ध कलिका हो खिली ।
नेहसिंचन नीर से हो
भावना धारा मिली ॥
अन्योन्य के शीतोष्णकर
फिर एकमात्रिक भाव हो ।
तल्लीन तन्मय होय तद्गत
सर्वथा तद्भाव हो ॥
दो रूप का पार्थक्य हो
पर बुद्धितुल्य विचार हो ।
अतुल प्रेमा वरन ही से
परम शुद्ध प्रभाव हो ॥
दुर्वासना, दुर्बुद्धि, हठ का
सर्वतः ही अभाव हो ।
इस द्वैत से अद्वैत पथ का
लोक में विस्तार में ।
तव प्रेममय संसार में
सुख भाग्य का संचार में ॥
कामना की रम्य क्यारी
नेह दृग की सींच से ।
होगी हरी आशा भरी
पूरी मनोरथ बीच से ॥
प्रेम भी कोई पदारथ
लोक मायाजाल है ।
सम भाग से मिलता नहीं
सब हेतु अलभ्य प्रवाल है ॥

रसिकेश नटवर की दया
जिसके सदय हिय को मिले ।
सुन्दर हृदय मन्दिर वही
यह रत्नमणि जोती खिले ॥
यों तो पशू जल जीव जन्तू
पक्षि उद्भिज सृष्टि से ।
स्वायत्त समभाविक प्रगटना
है परस्पर दृष्टि से ॥
पर भावना की भूमिका में
हृदस्थ हो अनुराग से ।
दैवी प्रभाव प्रकाशता
प्रकटै सतो की आग से ॥
ज्वाला विरह की सत्यता
प्रणयी कभी सहते नहीं ।
प्रियजन वियोगों की व्यथा
दुख की कथा कहते नहीं ॥
सारे जगत के विघ्न दुख
व्याघात से बहते नहीं ।
जीव जीवन के गए
प्रेमी सुजन रहते नहीं ॥
विश्व का सम्पूर्ण सुख भी
स्वप्न में भाता नहीं ।
मोह माया, रम्य काया,
उनको सुख होता नहीं ॥
प्राण वल्लभ विश्व में
उनके लिए परमेश है ।
मूल जोति विलोप होते
शेष फिर आवेश है ॥
ईश, ऋषि, सुर, शक्र,
विष्णू भी उन्हें भाते नहीं ।
ब्रह्माण्ड के नायक विनायक
भी उन्हें पाते नहीं ॥

अन्य लोक में जाकर गिरा हुआ पुरुष।

[लेखक-श्रीयुत चम्पालाल जौहरी (सुधाकर) ।]

मुझ से बातचीत करने की, अब ईश्वरराय को इतनी चटपटी लग रही थी कि दूसरे रोज कार्यालय का समय बीतते ही वह तुरन्त मेरे पास आया और आतुरता से मुझसे पूंछने लगा, "क्यों भाई, आज भी आपको छुट्टी है या नहीं ?"

मैंने सहज ही हँस कर कहा, "हाँ आओ बैठो।"

मेरी अनुमति पाते ही खुशी खुशी मेरे सामने पड़ी हुई एक आरामकुर्सी पर ईश्वरराय जा बैठा। मैंने भी अपना बाकी कार्य पांच छे मिनट में पूर्ण कर, उससे बातचीत करनी शुरू की। मैंने कहा "ईश्वरराय, वायु में छिद्र करने की कला का ज्ञान मैंने कहां से प्राप्त किया यही जानने की तुम्हारी इच्छा है न ? मैं इस विषय में तुम्हें विस्तारपूर्वक कहूंगा, और इस विषय के सम्बन्ध की कुछ अंगरेज़ी पुस्तकें हैं वे भी तुम्हें पढ़ने को दूंगा। परन्तु मैं ने यह जो ज्ञान प्राप्त किया है वह केवल पुस्तकों से ही नहीं वरन् विशेषकर पृथ्वी पर कूदते हुए पृथ्वी पर न गिर अन्य लोक में जाकर गिरे हुए एक चमत्कारिक पुरुष से प्राप्त किया है, ?"

ईश्वर राय, जो कि मेरी बात अत्यन्त ध्यानपूर्वक सुन रहा था, मेरे अन्तिम वाक्य सुनते ही, बात भली प्रकार न समझा हो, इस प्रकार मुख का भाव दरसाते हुए, बीच ही में बोल उठा, "क्या कहा ? 'पृथ्वी पर कूदते हुए अन्य लोक में जाकर गिरे हुए' किसी पुरुष के पास से आपने यह ज्ञान प्राप्त किया क्या यह बात बिलकुल सत्य है।"

मैंने निश्चयपूर्वक कहा "हां, मैं बिलकुल सत्य कहता हूं। मैंने उस पुरुष को छत की खिड़की से धरती पर कूदते हुए देखा; परन्तु वह धरती पर न गिर करोड़ों मील की दूरी पर किसी नक्षत्र (तारे) में जाकर गिरा।"

इस पर पुनः अविश्वास कर ईश्वर राय ने कहा, "खूब ! यह भी एक नई गप्प है ! आप का मग़ज भी कुछ अजब तरह का है।"

मैंने कहा, "इसके माने क्या ? क्या तुम यही कहना चाहते हो कि मैंने अपने भ्रम-पूर्ण मग़ज़ से यह एक नई बात पैदा कर दी है ? नहीं बिलकुल नहीं। जब तक मनुष्य गूढ़ विद्याओं के प्रान्त भाग पर भी न आया हो, तब तक उन विद्याओं की सामान्य बातें भी उसे तरंगी मग़ज़ की गप्पें ही मालूम पड़ती हैं। यथार्थ बात जानने के लिए जो प्रयास करना पड़ता है, उसके करने में कायरता ही ऐसे वचनों का कारण है।"

मेरे इस प्रकार स्पष्टवाद पर किंचित लज्जित हो ईश्वरराय ने कहा—"तो क्या आपका कहना बिलकुल सत्य है ? यदि ऐसा हो, तो कृपया यह बात सम्पूर्ण कह डालिये।"

सो तो मैंने कहना आरम्भ किया ही था, किन्तु मेरी बात सम्पूर्ण तो नहीं, किन्तु आधी भी सुनने का तुम धैर्य नहीं धारण कर सके। जगत में असंख्य मनुष्य ऐसे ही होते हैं। कोई बात किसी ने कहनी आरम्भ की, तो वह सम्पूर्ण तो दूर रही, आधी भी न सुन, प्रारम्भ ही से उसपर अपना अभिप्राय व्यक्त करने लग जाते हैं और इस प्रकार अपना भूल भरा अभिप्राय रख सच्ची बात को खोटी जान सदैव उससे अनभिज्ञ रहते हैं ! ऐसे मनुष्य यदि ज्ञानवृद्धि में आगे उन्नति न कर सकें तो उस में आश्चर्य ही क्या है ? इस समय मैं तुम्हारा

आस्ट्रियन लाई में अफसरों के रहने का स्थान।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग !

कोई मुख्य दोष प्रगट नहीं करता न करना ही चाहता हूं, किन्तु केवल तुम्हारे हित के लिए ही, प्रसङ्ग छिड़ जाने पर इतनी बात कही है। इस से तुम अपने अन्तःकरण में लज्जित नहीं होगे। अच्छा; तो अब मैं, तुम्हें, उस चमत्कारिक पुरुष का वृतान्त सुनाता हूं:—"

"आज से लगभग चार वर्ष पहिले उस पुरुष से मेरी ताजमहल होटल में भेंट हुई थी। तुम फिर कहीं ऐसा झोटा अनुमान न कर लेना कि मैं उपर्युक्त होटल में भोजन करने के लिए गया होऊंगा। तुम जानते ही हो कि पहिले मैं 'टाइम्स' आफिस में नौकर था। दुनिया भर के विविध साप्ताहिक तथा मासिक पत्रों से उपयुक्त वैज्ञानिक समाचारों का संग्रह करने और उन समाचारों को टाइम्स में प्रकाशित करने के कार्य पर मेरी नियुक्ति थी। कभी कभी मैनेजर को भी प्रसङ्गानुसार मैं सहायता देता था, इसलिए सप्ताह में दो तीन दिन लगभग रात रात भर आफिस में रहना पड़ता था।

"एक दिन मुझे एक संवाददाता द्वारा यह संवाद मिला कि एक वैज्ञानिक विद्वान आस्ट्रेलिया से भारत में आया है और यहां के 'ताजमहल होटल' में ठहरा है। मैं उससे मिलने के लिए अपने एक मित्र को साथ लेकर उक्त होटल में गया। मुझे उस वैज्ञानिक का नाम तथा वह 'होटल के किस कमरे में ठहरा है' आदि कुछ नहीं मालूम था न होटल के व्यवस्थापक से उसका ठीक ठीक पता ही मिला। अतएव कमरे के द्वार पर जैसे अनेक मनुष्य अपने नाम का साइन बोर्ड लगाते हैं, वैसे ही इस वैज्ञानिक विद्वान् ने भी कदाचित अपने कमरे के द्वार पर लगाया हो और उससे शायद उस विद्वान् का पता लग जाय तो लग जाय" ऐसा अनुमान कर हम लोगों ने यह निश्चय किया कि होटल का आधा भाग मैं देखूं और आधा भाग मेरे मित्र देखें।"

इस प्रकार निश्चयकर हम दोनों मित्र उस वैज्ञानिक पुरुष के अनुसन्धान में लगे। मैं अनुसन्धान करता हुआ होटल के चौथे मंजिल तक चला गया और उस मंज़िल के कमरों में उसका अनुसन्धान करने लगा। अभी उस मंज़िल के दो एक कमरे ही देखने पाया था कि मेरा मित्र मुझे ढूंढ़ता हुआ मेरे निकट अत्यन्त वेग से आया और कहने लगा "भाई! ज़रा मेरे मुख की ओर तो ध्यानपूर्वक देखो! मुझे कुछ होगया है या मेरी मिथ्या भ्रान्ति है? भला मेरी आखें तो देखो और कहो कि ये ठीक हैं या नहीं?"

दीनानाथ पहले ही से मसखरा था। उसे इस प्रकार असंगत प्रलाप करते देख मैंने समझा कि वह दिल्लगी कर रहा है। अतएव मैंने उसकी बातों पर कुछ ध्यान नहीं दिया। जब वह बार बार मुझसे कहने लगा तब मैंने उससे कहा "दीनानाथ! तुम्हारा यह स्वभाव यहां भी नहीं गया? जिस कार्य के लिये यहां आये हैं वह कार्य पहले कर लो, पीछे हास्य-विनोद तो है ही।"

इस पर दीनानाथ ने कुछ चिढ़कर कहा—"एक बार जो झूठा या दिल्लगीबाज़ ठहर गया फिर चाहे वह सत्य अथवा गम्भीर बात भी कहे तो पहले वह दिल्लगी ही समझी जायगी! भैया! मैं दिल्लगी नहीं करता सत्य कहता हूं। ज़रा परमेश्वर के लिए कहो मेरी आँखों में कुछ फर्क तो नहीं पड़ गया?"

अब मैंने जाना कि दीनानाथ हँसी नहीं करता किन्तु सच्चे अन्तःकरण से बोल रहा है। अतएव उसके मुंह की ओर क्षणभर स्थिर दृष्टि से देखकर मैंने कहा "तुम्हें कुछ नहीं हुआ और तुम्हारे नेत्र भी मुझे पहले के समान ही दीखते हैं।"

मेरी इस प्रकार बात सुनकर दीनानाथ ने शान्त होकर कहा, "अच्छा तो मेरे साथ इको-

बवें नम्बर वाले कमरे की ओर चलो और ज़रा उसमें देखने का कष्ट करो। वहां मैंने जो देखा यदि आप भी वही देखेंगे तो मैं मानूंगा कि मुझे कुछ नहीं हुआ और न मेरी आँखों में कुछ फर्क पड़ा पर देखना एकदम कमरे के भीतर न चले जाना। कमरे का किवाड़ ज़रा अधखुला रह गया है, उसीमें से देख लेना आप ही सब हाल मालूम हो जायगा।"

मैंने कहा, "अच्छा चलो मैं चलता हूं किन्तु कुछ कहोगे भी कि तुम ने उसमें क्या देखा?"

इस पर दीनानाथ ने ज़रा हँस कर कहा—"एक आदमी ने नाऊ से कहा नाऊ! मेरे सिर में कितने बाल हैं? नाऊ ने कहा जरा धीरज धरो आपके आगे ही आगिरेंगे, गिन लेना! यही अपने प्रश्न का भी उत्तर समझो। कुछ दूर नहीं केवल २०-२५ कदम का फ़ासला है। चलो और प्रत्यक्ष देख लो। जो कुछ होगा आप ही स्पष्ट हो जायगा।"

मैं कुछ न कह दीनानाथ के साथ हो लिया। हम दोनों उस कमरे के पास पहुंचे। कमरे के किवाड़ अधखुले रह गये थे सही परन्तु उसमें से झाँकना असभ्यता समझ मैं रुक गया। इस पर दीनानाथ ने मुझे पीछे से ज़रा ढकेला और कहा "डरते क्यों हो ज़रा आगे बढ़कर देखो न!" मैं भी ज्यों त्यों कमरे के भीतर दृष्टि डालते हुए दरवाज़े के पास गया। वहांसे कमरे के भीतर का दृश्य देखते ही स्तम्भित होगया! मैं क्या देखता हूं कि चार फुट कद का एक छोटा सा मनुष्य सामने दीवार पर दस फुट ऊंचे पर टँगे हुए एक चित्र को धरती से पाँच फुट ऊँचे हवा में बिना किसी वस्तु के सहारे अधर खड़ा हुआ देख रहा है! इस प्रकार आश्चर्यभरा दृश्य देखते ही थोड़ी देर के लिए मैं भी चकित हो खड़ा रहा! मुझे भी दीनानाथ के समान ही मेरी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। चित्रावलोकन में वह इतना तल्लीन था कि हमारे आने की आहट उसे बिलकुल भी ज्ञात नहीं हुई। उसकी पीठ हमारी तरफ थी 'किसी चीज़ पर चढ़कर वह चित्र देख रहा है या सचमुच अधर खड़े खड़े ही वह उसे देख रहा है' इस विषय का स्पष्टीकरण करने के लिए मैंने कमरे का किवाड़ ज़रा ज्यादा खोला और देखा तो मुझे स्पष्ट विदित हुआ कि 'वह किसी भी वस्तु के सहारे नहीं किन्तु वायु में अधर ही खड़ा है!' इतने में वह मनुष्य चित्र को और भी भली प्रकार देखने के लिए हवा ही में दो चार कदम पीछे हटा! अब और भी भली प्रकार स्पष्ट होगया कि उसके पैरों के नीचे कोई भी कठिन वस्तु नहीं है किन्तु जिस समय वह पीछे हटा उस समय ऐसा मालूम होता था कि वह हवा में नहीं वरन् कठिन धरती पर चल रहा है! पीछे हट कर वह अपना मस्तक दाएँ बाएँ, आगे पीछे कर चित्र को देखने लगा। मुझे विश्वास हो गया कि यह मेरा भ्रम नहीं; किन्तु हवा में चलने की सामर्थ्य रखनेवाला कोई जीता जागता मनुष्य ही इस कमरे में है और वह कुछ नाटा होने के कारण धरती पर से चित्र बराबर न देख सकने से अपने सामर्थ्य से अधर हवा में चढ़कर उसे देख रहा है।

इस प्रकार निश्चय कर मैं जहां दीनानाथ खड़ा था वहां आया और उससे कहने लगा, "दीनानाथ! तुम ने जो देखा है वह सत्य है। मुझे भी तुम्हारे समान ही विदित होता है।"

हम पूरी बातें करने भी नहीं पाये कि इतने में उसी कमरे से एक पुरुष निकला और जहां हम खड़े थे उसी के सामने की ओर जहां कि लिफ्ट* (Lift) थी वहां गया। लिफ्ट नीचे उतरी हुई देख, वह कुछ भी विचार न कर

---

* ऊँचे मंज़िलों पर उतरने व चढ़ने का एक प्रकार के स्विङ्ग का झूला।

पास ही एक खिड़की थी वहां गया और तत्काल अदृश्य होगया ! यह देख दीनानाथ एकदम चिल्ला उठा और उस मनुष्य को खिड़की से नीचे गिरा हुआ समझ उस खिड़की के पास दौड़ा हुआ गया। मैं भी उसके पीछे हो लिया। हम दोनों ने खिड़की से झांक कर नीचे देखा; किन्तु वह कहीं भी दिखाई नहीं दिया। इतने में लिफ्ट ऊपर आई। हम चौथे मंज़िल पर थे, यह मंजिल बहुत ऊंचा होने से धरती पर के मनुष्य स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ते थे। इसलिए उस मनुष्य को नीचे उतरकर देखने की आशा से हम लिफ्ट में बैठ नीचे आये; किन्तु वह मनुष्य हमें कहीं भी नहीं दिखाई दिया। अन्त में आस पास दृष्टि डालने पर वह हमें बीच रास्ते में जाता हुआ दिखाई दिया !

दीनानाथ आश्चर्य और सन्देह भरी दृष्टि से, मेरी मुँह की ओर टकटकी लगाकर देखने लगा। सचमुच वह दृश्य आश्चर्यमय ही था और दीनानाथ के हृदय को तो अतिशय उथल पुथल कर डालनेवाला था; परन्तु मैं तो कुछ काल से निगूढ़ विद्या का अभ्यासी था। कुछ समय पूर्व ही से, मनुष्यों में गुप्त रहनेवाले सामर्थ्य-सम्बन्धी तथा ऐसे अलौकिक सामर्थ्य-सम्पन्न पुरुषों के चरित्रसम्पन्न विषयों का, (योग-विद्या और निगूढ़-विद्या के अत्यन्त उच्च-ज्ञाता अपने सद्गुरु के समागम से) मुझे बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त होगया था। तब से उपर्युक्त विद्या के विषय में मेरा मोह और भी प्रबल होने लगा था। अतएव इस समय निगूढ़ विद्या के विषय में मेरा पूर्व परिश्रम कई अंशों में सफल होता जाता था। इससे मुझे दीनानाथ के समान अपार आश्चर्य तो नहीं मालूम हुआ; किन्तु उस पुरुष की वह क्रिया मुझे बड़ी मनोहर और सरल विदित हुई।

हम दस मिनट तक, उसके वापिस आने की आशा से, प्रतीक्षा करते वहां खड़े रहे, इतने में दीनानाथ की दृष्टि सहसा ऊपर की ओर गई। वह मेरे कंधे पर हाथ रखकर आश्चर्य से बोल उठा, "देखो ! वह चौथे मंजिल की खिड़की पर खड़ा हुआ कौन दिखाई देता है?"

मैंने तुरन्त ही ऊपर देखा। देखते ही मालूम हुआ कि वही पुरुष अपने कमरे के सामने की खिड़की में खड़ा हुआ समुद्र की ओर देख रहा है। देखते ही मैंने दीनानाथ से कहा "वह मुझे वही मनुष्य दीखता है, चलो ऊपर जाकर पुनः उसका पता लगावें।"

दीनानाथ तो तैय्यार ही था। हम दोनों पुनः 'लिफ्ट' में बैठ ऊपर गये। उसके कमरे के किवाड़ खुले थे और वह खिड़की में खड़ा खड़ा समुद्र की ओर देख रहा था। हम भी जाकर वहां पर थोड़ी देर तक खड़े रहे। इतने में वह पीछे फिरकर, हमारी ओर देख, कमरे में चला गया।

हम भी उसके पीछे पीछे उसके कमरे में गये और भीतर जाकर, उससे हमने नम्रता-पूर्वक पूछा, "क्षमा करें, मैं आपको जानता नहीं परन्तु अनुमान करता हूं कि आस्ट्रेलिया से आये हुये समर्थ वैज्ञानिक आप ही हैं? मेरी इच्छा आप से मिलने की है।" उसने हाँ कह कर हम से बैठने को कहा। उसकी आज्ञानुसार हम उसके सांकेतिक स्थान पर जा बैठे (ईश्वरराव के और मेरे पूर्व कथनानुसार ही वह पुरुष ज़रा बौना और कृश था।)

थोड़ी देर इधर उधर की बातें कर मैंने उससे पूंछा, "आप निगूढ़ विद्या के अभ्यासी हैं वा सिद्धि प्राप्त (Medium) हैं?"

मेरे इस प्रकार पूछने पर सहज ही हँस कर उसने उत्तर दिया, "महाशय ! आपके इस प्रकार प्रश्न करने की मैं आशा ही कर रहा था और आप के प्रश्न का उत्तर यही है कि, "हां और नहीं; परन्तु इस विषय में आप के पूंछताछ करने का कारण?"

इसके उत्तर में मैंने और दीनानाथ ने जो देखा था उससे कह सुनाया। इसपर उसने कहा :—

"यह मैं जानता हूं कि आप भी जीवन की गुप्त विद्या के प्रेमी और अभ्यासी हैं और इस विद्या में आपका जितना प्रवेश हुआ है वह भी मैं जानता हूं। अतएव इस विद्या के नियमानुसार जिस समय जो कुछ जानने योग्य होगा वह आप को विदित होता ही रहेगा और ऐसा अनुमान होता है कि आपके उपर्युक्त ज्ञान की वृद्धि में मैं निमित्त रूप होऊं। परन्तु यह बात ध्यान में रखिये कि मैं आपको केवल निमित्त रूप होने को कहता हूं। कारण कि मैं अथवा कोई निमित्त-रूप तथा साधन-रूप हो सकता है। जीवन के प्रत्येक रहस्य में ऐसा ही होता है। यह विद्या कोई सिखला नहीं सकता और यदि कोई किसी को सिखलाना भी चाहे तो सीखनेवाला अन्य से सरलतापूर्वक ग्रहण भी नहीं कर सकता। यही इस विद्या की अलौकिकता है अद्भुत सामर्थ्य को प्रगट करने वाले जो जो रहस्य हैं उन रहस्यों का अयोग्य मनुष्यों द्वारा रक्षण हो सकता है; किन्तु इसका वास्तविक ज्ञान कोई अत्यन्त योग्य विरले मनुष्य को ही प्राप्त होता है। अतएव इस समय इन रहस्यों पर इसके रक्षक हा का सत्ता हो रही है और वह इनकी रक्षा के लिए सदा सावधान रहता है। यही कारण है कि इस दिव्य विद्या का सच्चा रहस्य अभीतक किसी अयोग्य पुरुष को प्राप्त नहीं हुआ। विशेष आश्चर्य की बात तो यह है कि किसी को यदि इसका कुछ वास्तविक ज्ञान प्राप्त हुआ और उसने उस ज्ञान का दुरुपयोग करने का विचार किया कि तत्काल ही उस ज्ञान की रक्षकसत्ता उसे उसका रहस्य भुला देती है, और पुनः उतनी योग्यता प्राप्त होने तक, किसी भी प्रकार से उसे वह ज्ञान प्राप्त नहीं होने देती मेरे इतने कहने का कारण यही है कि ईश्वरानुग्रह से और उसीके मूल संकल्प से तुम्हें किसी भी समय कोई अद्भुत ज्ञान की प्राप्ति हो, तो उसे अत्यन्त गुप्त रखना। मनुष्य को, जीवन के किसी रहस्य का ज्ञान प्राप्त करने में किसी अन्य बल की जब पँचगुनी आवश्यकता होती है तब उसके गुप्त रखने में उसे २५ गुना अधिक बल लगाने की भी ज़रूरत होती है। साथ ही जब कभी तुम्हें कुछ भी ज्ञान प्राप्त हो, तो उसका, किसी समय भी, दुरुपयोग न करना। इस उपयुक्त सूचना के पश्चात् मुझे तुम्हें जो कुछ उपर्युक्त विद्या के विषय में कहना है कहता हूं :—

"मैं एक प्रवासी हूं। मैंने पृथ्वी भर में प्रवास किया है और ईश्वर के अनुग्रह से जीवन के जो कुछ रहस्य हैं उनका मुझे कुछ प्रबोध भी हुआ है। इसे यदि तुम्हारे ही शब्दों में कहूं तो 'निगूढ़ विद्या के जो कुछ तत्व हैं, उन्हीं की मुझे कुछ प्राप्ति हुई है।' इस प्रवास के अन्त में मुझे विदित हुआ कि जगत में बहुत ही थोड़े मनुष्यों को इस तत्व का वास्तविक ज्ञान होता है। मैं स्वयं ही अपने को दृष्टान्तरूप मानता हूं। मुझ में रही हुई कोई अयोग्य सत्ता ही मेरी नियामक है और उसीसे मुझ में ज्ञान की प्रतीति होती है। दूसरे जिसे चमत्कार रूप कहते हैं उस प्रकार के प्रयोग के नियमों का उपयोग भी मैं इसी के द्वारा कर सकता हूं अर्थात् जो कुछ मुझ में तुम्हें चमत्कार विदित होता है उसका कारणरूप मुझ में रहनेवाली इस नियामक सत्ता ही को समझो।"

उसके ये सब विचार अपने आर्यशास्त्र से मिलते हुए देख मैंने उससे पूछा, "आपने यह ज्ञान भारतवर्ष ही में प्राप्त किया है या आपको किसी योगी, महात्मा अथवा सत्पुरुष के समागम अथवा स्वानुभव से प्राप्त हुआ है?"

इसके उत्तर में उसने कहा, "तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर भी फिर से 'हां और नहीं' ही है। पाश्चात्य देशों में भी मैं गया हूं और वहां

के ज्ञाता पुरुषों को भी मैंने देखा है । उनके विषय में इतना ही कहना बस होगा कि वे 'अध जल गगरी' के समान छल कपट ही करते हैं । वे जो चमत्कार दर्शाने का प्रयत्न करते हैं, उसकी अपेक्षा वस्तुतः उनमें बहुत ही थोड़ी सामर्थ्य होती है । इसी प्रकार तुम्हारे देश के जिन जिन पुरुषों का मुझे अनुभव हुआ है उनमें कुछ तो जिनमें विशेष महत्व नहीं है, छोटी छोटी बातों को भी छिपा छिपा कर रखने का प्रयत्न करते हुए मैंने देखे हैं । शेष देशों के जिन यथार्थ सामर्थ्यसम्पन्न पुरुषों को मैंने देखा है उनकी ज्ञान सम्बन्धी प्रवृत्ति में मुझे कोई भेद नहीं ज्ञात हुआ । इसका कारण यही है कि सर्व सम्प्रदाय के शास्त्र एक ही 'सत्य' का प्रतिपादन करते हैं । उसमें भेद इतना ही है कि उसका वर्णन वे अनेक प्रकार के रूपों से करते हैं । यही उनकी अलौकिकता है । अतएव इस समय इस विषय का विस्तार करना अनुपयुक्त है । केवल इतनाही जानना काफ़ी है कि प्रत्येक मनुष्य परमात्मा का समान अनुग्रहपात्र है और सबको अधिकार प्राप्त होते ही वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है । उसका निमित्तरूप होनेवाला पुरुष किसी भी देश का हो सकता है; किन्तु अन्त में वह निमित्तरूप ही है । ज्ञान प्राप्त करने की वस्तु तो सब की एक ही है ।

"तुम बस प्रकाश को पाने के योग्य हुए हो यह मैं जानता हूं और इसीलिए यहां मेरा आना भी हुआ है । मैंने जो कुछ क्रियाएँ की हैं, वे तुम ने देखी हैं । ये सब इसीलिए की भी गई थीं नहीं तो इस प्रकार अस्त्राधारी पुरुष अपना प्रयोग करने में निरन्तर अत्यन्त सावधान होते हैं । जो तुम यह मानने लग गये हो कि 'मनुष्यों में इस प्रकार की सामर्थ्य है' तो और देखो आओ इस खिड़की द्वारा मैं वायु में पदसंचालन करता हुआ पृथ्वी पर उतरता हूं ।"

इतना कह वह तुरन्त ही उठा और मुझे भी उसने उठने को संकेत किया । मैंने दत्तनाथ की ओर देखा तो मुझे मालूम हुआ कि उसका हृदय अत्यन्त वेग से धड़क रहा है, उसका मुख पीला पड़ गया है, उसके नेत्र स्थिर हैं और वह घबड़ाया हुआ मालूम होता है ! उसे संकेत द्वारा सचेत रहने की सूचना दे, मैं उठकर खिड़की के पास गया । खिड़की बड़ी थी उसके बीच के किवाड़ बराबर खोलकर वह उसकी देहली पर खड़ा हुआ था । इस समय मुझे भी थोड़ी कँपकँपी छूटने लगी । खिड़की इतने ऊँचे पर थी कि उसके द्वारा धरती की ओर देखते ही हृदय दहल जाता था । मैंने सोचा कि कदाचित् यह मनुष्य विक्षिप्त होगा । यहां से यह कूदेगा और नीचे गिरते ही यदि इसका प्राण निकल जायगा तो हमारी क्या दशा होगी ? परन्तु तुरन्त ही मैं अपनी इस अश्रद्धा पर हंसा और उसकी ओर देखा तो वह दृष्टि के कुछ विलक्षण भावपूर्वक उच्च आकाश की ओर देख रहा है । सहसा एक प्रकार के आवेग से मैं उसे पुकारना एवं पकड़ना ही चाहता था कि वह बिजली की तरह एकदम छिप गया ! मैंने खिड़की द्वारा झांककर नीचे मार्ग की ओर देखा; किन्तु वह कहीं भी दिखाई नहीं दिया । मैं एकदम नीचे उतरा और निर्बलतावश इधर उधर उसका अनुसन्धान करने लगा; किन्तु कहीं भी उसका चिह्न तक न दीख पड़ा ।

हम लौट आए । वह फिर न लौटा । दिन पर दिन बीतने लगे । हम ने उसे अनेक जगह तलाश किया, पत्रों में भी उसके विषय में लिखा, किन्तु किसी प्रकार से भी उसका पता न लगा । किसी भी स्थान में उसके विषय में कुछ सुनाई न दिया—उसका निशान भी दिखाई न दिया ।

इस घटना को बीते आज एक वर्ष होगया । पुनः उसी दिन ठीक उसी तारीख़ को, रात को

मैं अपने घर में गद्दी पर पड़े पड़े कुछ विचार कर रहा था। ठीक मेरे सामने एक खिड़की थी। मैं उठा और खिड़की के पास आ इधर उधर देखने लगा। उस समय मुझे पिछली घटना का स्मरण हो आया और उस समय का सम्पूर्ण चित्र, वह कमरा, वह बात चीत, वह हाव भाव वह खिड़की—यह सभी कुछ मेरी आंखों के सामने आने लगा।

मैं क्या देखता हूं कि उस खिड़की के सामने वही पुरुष खड़ा हुआ मेरी ओर देख रहा है और मुझे देखते ही वह उछल कर खिड़की द्वारा मेरे कमरे में घुस आया! तथा जब उसने निम्नलिखित वृत्तान्त कहा तब तो मेरे आश्चर्य की सीमा ही नहीं रही!

"क्यों कैसी घटना घटित हुई? अपना निर्धारित किया हुआ छोटा सा प्रयोग जिस प्रकार मैंने करना आरम्भ किया उसकी अपेक्षा वह किसी दूसरे ही प्रकार से सिद्ध हुआ। मुझे विदित होता है कि इसके कारण तुम्हीं हो। जिस समय मैं अपने आन्दोलन की गति को तीव्र कर रहा था, उस समय मुझे सहसा पुकारने और रोक रखने की तुम्हारी प्रबल इच्छा और साथ ही उसी समय तुम्हारे हृदय में उत्पन्न हुआ भय, इन दोनों ने मेरे चलते हुए आन्दोलन में किसी समय मेरे अनुभव में न आई हुई एक ऐसी विलक्षण गति प्रगट की जिससे पृथ्वी पर उतरने के बदले मैं उससे दूर जा गिरा!"

इस पर मैंने ज़रा हँस कर कहा "परमेश्वर के लिये स्वस्थ होकर इस रहस्य को स्पष्ट करने की कृपा तो कीजिये। भला एक वर्ष तक आप रहे कहां?"

उसने कहा—"मैंने तुम से अभी कहा उसी प्रकार हुआ; मैं पृथ्वी से दूर जाकर गिरा! परन्तु इस प्रकार मुझे दूर गिरे आज कितना समय हुआ?"

मैंने उत्तर दिया—"पूरा एक वर्ष।"

इस पर उसने चकित होकर कहा, "क्या एक वर्ष? चाहे जितना समय हुआ हो परन्तु मुझे तो कुछ भी मालूम न हुआ—मुझे तो केवल कुछ ही क्षण का समय मालूम हुआ! तुम्हें स्मरण ही होगा कि जिसमें रात और दिन विदित होता है, ऋतु आदि प्रगट होकर जिसे हम लोग समय कहते हैं और जिसकी गणना होती है, इन सब के साथ जब हम पृथ्वी का त्याग करते हैं तब फिर काल अथवा समय ऐसी कोई वस्तु रह ही नहीं जाती। इस पृथ्वी-लोक के व्यवहार के लिये ही समय आदि वस्तुओं की कल्पना कर ली गई है। वस्तुतः समय अथवा काल आदि कुछ नहीं हैं।"

"तो क्या सचमुच आप इस पृथ्वीलोक से कहीं किसी अन्य लोक में जाकर गिरे थे?" मैंने कुछ अधिक चकित होकर पूछा।

इस पर उसने उत्तर दिया कि "मैं सत्य ही कहता हूं और विज्ञान भी इस बात को सिद्ध करता है। सुनो एक वर्ष पूर्व जिस समय मैं खिड़की द्वारा निकला, उस समय मेरी दृष्टि एक चमकते हुए नक्षत्र (तारे) पर लग रही थी और मैं उसी का विचार कर रहा था। मैं आन्दोलन की गति को तीव्र कर रहा था, इतने में तुम आवेशमय हो गये और मुझे पकड़ लेने को तुम्हारी प्रवृत्ति हुई। तुम्हारे चंगुल से छूट जाने के लिये मुझे आकाशस्थ उच्चप्रदेश में आन्दोलन करना पड़ा। उस सम्बन्ध में ज्यों ही मैंने सङ्कल्प किया, त्योंही तुरन्त मैं किसी दूसरी सृष्टि के सुन्दर लोक में जाकर गिरा अर्थात् मैं इस पृथ्वी से दूर जाकर गिरा और किसी अन्य लोक में मैंने प्रवेश किया। इतना होते भी ये सब नियमानुसार होने के लिये जिस समय मैं तुम्हें लाभ पहुंचाने का यत्न कर रहा था, उसी समय एक असाधारण और अत्यन्त महत्व का लाभ मुझे भी प्राप्त हो गया।

"यह घटना केवल आश्चर्यजनक थी, उसे किसी अन्य प्रसङ्ग पर मैं तुम्हें कहूंगा। परन्तु, मैं पृथ्वी से दूर जाकर गिरा और पुनः इस पृथ्वी पर लौट आया, यह विषय इस समय सिद्ध करके नहीं बताया जा सकता; किन्तु इस समय तुम्हें मैं कुछ कहता हूं, और अनुमान करता हूं कि वह उसके लिये पूर्ण प्रमाण स्वरूप है।

"दूसरे अनेक विषयों के साथ ही उस दूर के लोक में एक इस प्रकार का घटना हुई। वह यह कि जिसे हम विद्यालय (College) कह सकते हैं, ऐसे वहां के एक प्रशस्त स्थान में मैं गया और जिसे तुम 'देव' संज्ञा दे सको, ऐसा एक दिव्य व्यक्ति तत्काल वहां पर, वैसे ही दूसरे अनेक व्यक्तियों को कुछ प्रबोध न करता हुआ मुझे विदित हुआ।

"उस देव की दिव्यता और सुन्दरता जो मैंने देखी उसका और जिसे मैं विद्यालय कहता हूं उस अलौकिक स्थान का सविस्तर वर्णन कर मैं तुम्हें आश्चर्यचकित करना चाहता हूं किन्तु उसकी प्रशंसा के लिये उपयुक्त शब्द नहीं मिलते। उसका स्वरूप वाणी से भी बाहर है। तो भी, आगे मैं जो कुछ कहूंगा उस से तुम उसका थोड़ा बहुत अनुमान करलो।

"उस दैवी व्यक्ति ने अपने श्रोताओं से कहा जीवन के परम केन्द्रस्थान में से जब कोई वस्तु इस अण्डकटाह रूप अस्तित्व में आती है तब से अमुक गोलक में अमुक प्रकार से प्रवर्तित जीवन का इतिहास तो हमने जान लिया है। अब एक ऐसे लोक को ले लीजिये जिस पर शरीर अथवा मनुष्य निवास करते हैं। वहां पर निवास करनेवाले अपने अनुज अब स्वयं अपना ही विकास करना आरम्भ करते हुए विदित होते हैं। यह सूचित करने का हेतु यही है कि, तुमने कितना विशेष विकास प्राप्त किया है? यह तुम्हें विदित हो जाय। अब हमें इस प्रकार के आन्दोलन को ग्रहण करना चाहिए कि जिसे ये लोग सूर्य-गोलक कहते हैं उसके भीतर वाले भू नामक लोक के सम्बन्ध में आवें और हम उसके भी आगे जिसकी तुम इच्छा करते हो उस विकास काल को देख और जान लें।"

"जिस समय मैंने 'भूलोक' शब्द श्रवण किया उस समय मेरे मन में दो इच्छाएं प्रगट होती हुई मालूम पड़ीं। जिसमें एक प्रबल विचार यह उत्पन्न हुआ कि मैं पुनः भूलोक में लौट जाऊं और दूसरा अत्यन्त दुर्बल विचार यह हुआ कि मुझे उन लोगों का इतिहास जान लेना चाहिये। अतएव जिस समय उक्त महा-पुरुष ने जो इस लोक से सम्बन्ध रखनेवाले आन्दोलन को हम में प्रसार करना आरम्भ किया कि तत्काल उस दूरस्थ अगम्य सदृश लोक को मैं त्याग रहा हूं ऐसा मुझे विदित हुआ। और उसके साथ ही मैं उसी समय अनेक अद्भुत एवं अवर्ण्य चित्रों को देखते हुए चला। विज्ञान शास्त्र कहता है कि प्रकाश का आन्दोलन एक क्षण में १८६,४०५ मील के प्रमाण से गति करता है। जब कि यही अपनी कल्पना के बाहर की बात है तब विचार की गति के साथ उसी की तुलना करें तो उसकी गति केवल अन्धपरम्परा के समान ही है। यदि विचार की गति गरुड़ के समान मानें तो प्रकाश की गति चींटी के समान माननी चाहिये।"

"हम को यह बताया गया है कि कितने ही तारे अथवा लोकों (नक्षत्रों) का प्रकाश आकाश में हज़ारों वर्षों से निकल चुका है तो भी अभी अभी वह पृथ्वी पर आने की सन्धि में है। उसी प्रकार यह भी बताया गया है कि प्रत्येक विचार, प्रत्येक शब्द तथा प्रत्येक क्रिया जिस प्रकार ध्वनि प्रसरित करती है, उसी प्रकार प्रकाश में चित्रविचित्राङ्कित होकर वह भी प्रसरित होता है और सर्वदा वह उसकी किरणों

द्वारा जहां तहां गति करता है। यदि मैं उस दूर के लोक में रह जाता, तो जो कुछ वृत्तान्त मैंने वहां से आते हुए देखा उसे देखने के लिए मुझे सैकड़ों वर्षों की ज़रूरत पड़ती। सच कहा जाय तो जो कुछ मैंने देखा उसका थोड़ा सा भाग भी सैकड़ों वर्ष बीतने पर भी तुम नहीं देख सकोगे। किन्तु ऊपर कहे अनुसार वहां तो समय कोई वस्तु ही नहीं है।"

"अतएव ज्यों ज्यों मैं अवकाश Space में से इस पृथ्वी की ओर आता गया, त्यों त्यों मैंने उसका वृत्तान्त देखा। किसी समय वह हर आदमी को दिखाई देगा।"

"प्रथम तो सब कुछ मुझे नवीन मालूम हुआ। इस पृथ्वी पर की किसी भी वस्तु को दृष्टान्त रूप देकर उसका स्वरूप नहीं दर्शाया जा सकता। अन्त में मैंने पूर्व के इतिहास के अनेक चित्र देखे। वे मुझे कुछ कुछ समझ में आने लगे, उन चित्रों को मैं कुछ कुछ समझ सका। तुम्हारे देश का गत महाभारत का युद्ध, अद्भुत द्वारिका आदि, एवं पाश्चात्य प्रजा के धर्म-युद्ध Crusade के चित्र मुझे दिखाई दिये। एक वर्ष पूर्व की घटनाओं का चित्र भी इस आवरण के भीतर मुझे दिखाई दिया। पश्चात् मुझे अदृश्य होना था वह भी अन्त में मुझे दिखाई दिया। तत्पश्चात् इस खिड़की द्वारा मैं यहां आकर खड़ा हुआ।"

ईश्वरराय! इतना कहकर अन्त में उसने कहा कि "तुम प्रकाश, विचारद्योतन, इच्छा-शक्ति आन्दोलन तथा वर्णोच्चार के विश्व में प्रवर्तित नियमों को जानते हो, और तुम यह भी जानते हो कि यह विज्ञान शास्त्र से सिद्ध है। परमात्मा तुम्हारा कल्याण करे।"*

हा! गोखले।

[लेखिका—श्रीमती तोरन देवी (लली)।]

फूट गई भाग आज भारत वसुन्धरा की।
नित्त नव विचार निज उन्नति को छूटिगो॥
छूटि गई आश हाय उच्च अधिकारन की।
आहस स्वरूप वेा विशाल थंभ टूटिगो॥
बैरी काल तूने क्रूरता को करि दीन्हों अन्त।
साथहि कपार हाय तेरहु न फूटिगो॥
माननीय गोखले विराजे देवलोक हाय।
भारत अभागे आज तेरो लाल लूटिगो॥ १॥
जानि परती है ये असारता जगत ही को।
मृत्यु पापिनी को हा प्रताप दरशायगो॥
कौन गनती है आज लाखन करोरन के।
उन्नत करेजेन पै बज्र भहरायगो॥
भारतानवासि ही न भारत अकेल नहीं।
गोखले वियोग सर्व जग थहराग गो॥
कैसी बज्र हृदया बनी भी तू वसुन्धरा।
हा! गोखले सपूत तेरी गोद में हेरायगो॥ २॥
डारि शोक सागर के बीच दीन भारत को।
देव लोक जाय हाय गोखले जु बसिगे॥
रंचहू न दीन्ह ध्यान हाय निज प्यारेन पै।
तिन के वियोग केहि भांति वे तरसिगे॥
सांच मानियेगा माननीय रावरे के बिन।
बाहस करोर आज हियरे झरसिगे॥
संवत इकहत्तर अभाग तेरी, फागुन में।
बरस्यो न रंग हाय अँसुआ बरसिगे॥ ३॥

---

* गुजराती "महाकाल" नामक मासिक पत्र से स्वतंत्र रूप से अनुवादित।—अनुवादक।

लोकनायक के रूप में शिवाजी।

[लेखक-तरुण भारत]

१—शिवाजी सम्बन्धी मर्यादा की पिछली संख्याओं में प्रकाशित दो लेखों से पाठकों को यह धारणा हो जाने का डर है कि हमने परिस्थिति को ही सब महत्व देडाला है और शिवाजी के लिए कुछ बाकी न रक्खा तो भी हम शिवाजी की योग्यता पर लेख लिखने का संकल्प कर रहे हैं। हम अपने पाठकों को इस विषय में सावधान करते आये हैं, तथापि हमारा डर झूंठा नहीं है, यह हमें मालूम है इसलिए आगे अब इस शंका को दूर करने का प्रयत्न किया जाता है।

इतिहास के निर्माण में व्यक्ति और प्रवृत्ति का महत्व कितना है यह निश्चय करना बड़ी कठिन बात है। एक पक्ष व्यक्ति को सारा महत्व देता है और यहां तक कहने का साहस करता है कि दुनिया का इतिहास महापुरुषों के चरित्र के सिवा और कुछ नहीं है।* दूसरा पक्ष कहता है कि मनुष्य जाति के दैवसूत्र कुछ ऐसे नियमों से नियमित हैं जो कभी नहीं बदले जा सकते, और जो हम स्पष्टतया जान सकते हैं। इस पक्ष का कहना है कि मनुष्य जाति के कार्यों की दशा निश्चित करने में व्यक्ति का कोई महत्व नहीं है। महापुरुष भी जिस परिस्थिति में रहते हैं, उस परिस्थिति के वे केवल बच्चे मात्र हैं। हमारे दैवसूत्रों को बदलने की उनमें कोई शक्ति नहीं† रहती। शिवाजी के पूर्व चरित्रकार नितांत पहले पक्ष के हैं। इसके दो तीन कारण हैं। एक तो इतिहासलेखन की शैली बदलती आरही है। कहीं का भी प्राचीन इतिहास-ग्रंथ उठाइये, आप उसमें व्यक्ति का महत्व पायेंगे-परिस्थिति का विचार बहुत कम किया नहीं भी मिलेगा। दूसरा कारण यह है कि समकालीन व्यक्ति के कार्यों में उस काल के लेखकों का मन इतना दीप्त हो जाता है कि वे उस व्यक्ति का सच्चा महत्व नहीं जान सकते वे ज़रूर बढ़ाकर लिखेंगे। तीसरी बात यह है कि अपने अपने विषय पुरुषों का चरित्र उसके भक्त अथवा अनुयायी पक्षपात से ही लिखते हैं। उनकी दृष्टि निष्पक्षपात नहीं हो सकती। इन तीन कारणों से प्राचीन ग्रंथकारों ने सब श्रेय अथवा दोष (स्तुतिपाठक किंवा निंदक जिस प्रकार जो हो) शिवाजी को ही देडाला है। धीरे धीरे यह स्थिति बदलती गई है, और परिस्थिति को भी महत्व मिलता गया है* और अब परिस्थिति का विचार शिवाजी के व्यक्तित्व के विचार करने के पहिले किया जाता है। परन्तु, जैसा हम ऊपर कह आये हैं यह निश्चय करना बड़ा कठिन कार्य है कि किसे कितना महत्व दिया जाय। व्यक्ति का महत्व स्पष्ट है और साधारण जनता को तुरन्त जँच जाता है। शिवाजी ने महाराष्ट्र के स्वातंत्र्य और धर्म का उद्धार किया, यह स्पष्ट है और उसे हर आदमी स्वीकार करेगा परन्तु इस कारण परिस्थिति का महत्व हम नहीं भूल सकते। ओलिव्हर क्रामवेल में सब योग्यता थी। उसके विचार ऊंचे थे, और उसने उसी प्रकार प्रयत्न किया पर उसे सफलता प्राप्त न हुई। जो बात इंग्लैंड में १६४७ में सफल न हुई, बड़ी बात १६८८ में बिना रक्तपात के फलीभूत हुई इसका क्या अर्थ है?

* The History of the world is the biography of great men-Carlyle.

† Buckle (History of the Civilization of England).

* यह खयाल रखने की बात है कि Grant Duff ने भी परिस्थिति का थोड़ा बहुत विचार अवश्य किया है।

क्या इसका यह अर्थ नहीं कि क्रामवेल के कार्य के लायक परिस्थिति उत्पन्न नहीं हुई थी? १६४७ में अंगरेज़ लोगों में उस धार्मिक और राजकीय स्वतंत्रता की कल्पना भा न थी, जो क्रामवेल उन्हें देना चाहता था, और इस कारण उसका प्रयत्न सफल न हुआ! परिस्थिति परिपक्व हो जाने पर वही कार्य १६८८ में बिना रक्तपात के हो गया। एक और उदाहरण लीजिये, जान विकलिफ वही कार्य करना चाहता था, जो मार्टिन लुथर ने १५१७ में किया पर जान विकलिफ को जब भी सफलता प्राप्त न हुई पर मार्टिन लूथर ने यूरोप का ही क्या बरन सारी दुनिया का इतिहास बदल दिया! क्या इसमें परिस्थिति का महत्व नहीं दिखाई पड़ता पर ख्याल रखिये कि लूथर का महत्व इससे कम नहीं हो जाता, नहीं, इसीसे व्यक्ति का सच्चा महत्व उसकी सच्ची योग्यता दिखाई पड़ती है। परिस्थिति का विचार दो कारणों से करना ही पड़ता है। एकतो जब हम बड़े बड़े राष्ट्रीय आन्दोलनों के कारण ढूढते हैं तब व्यक्तिविषयक महत्व कम होता जाता है और परिस्थितिविषयक महत्व बढ़ता जाता है। दूसरी बात यह है कि इससे हमें ज्ञात होता है कि व्यक्तिविषयक महत्व के सिवा और कई तत्व भी ऐसे हैं जिनका हमें विचार करना आवश्यक है ताकि हम सब घटनाओं का कार्य-कारण-संबंध सरलता से समझ सकें पर जितने प्राचीन इतिहासों पर (विशेषतः यह बात हिन्दुस्थान के विषय में अधिक घटती है) हम विचार करेंगे उतना ही व्यक्तिविषयक महत्व बढ़ता दिखाई देगा क्योंकि उस काल में व्यक्ति की आकांक्षा-महत्वकांक्षा-पर राजकीय बातें निर्भर रहा करती थीं। इस कारण हमें शिवाजी की योग्यता का दिग्दर्शन दोनों दृष्टि से करना आवश्यक है। ऊपर जैसा कह चुके हैं कि यह काम बड़ा कठिन है क्योंकि दोनों की मात्रा का क्या संबंध है, यह निश्चित करना आखिर कठिन ही है। दो पहाड़ियों के बीच की घाटी में चलना है, और मार्ग टेढ़ा है। तथापि आगामी लेखों में उस मार्ग के तय करने का प्रयत्न यथाशक्ति किया जायगा।

२—शिवाजी का सब से बड़ा भारी महत्व यह है कि परिस्थिति का उन्होंने पूर्ण और योग्य उपयोग किया। उस काल के लोगों की जो इच्छा थी वही उनकी इच्छा थी; उस काल के लोगों का जो ध्येय था वही उनका ध्येय था; उस काल के लोगों की जो महत्वाकांक्षा थी वही उनकी महत्वाकांक्षा थी; उसकाल के लोगों का जो सुख दुःख था वही उनका सुख दुःख था; उस काल के लोगों की जो स्फूर्ति थी वही उनकी स्फूर्ति थी; सारांश, वे अपने काल की परिस्थिति के मूर्तिमंत स्वरूप थे। इतना होने पर भी वे अपने काल को पहिचान सकते थे उन्हें मालूम था कि इस कार्य में ये लोग साथ देंगे, और उनका उपयोग करना हमारा कर्तव्य है। उन्हें आन्तरिक स्फूर्ति हो गई थी कि परमेश्वर ने हमें दुनिया में इसी कार्य के लिए भेजा है। उन्हें विश्वास हो गया था कि ईश्वर इसमें हमें सफलता देगा। यह प्रश्न हो सकता है कि उस परिस्थिति में रहनेवालों में से शिवाजी ही को इतनी भारी स्फूर्ति क्यों हुई? मार्टिन लूथर के समय पोप के घृणित कृत्यों को देखने और समझनेवाले क्या अन्य कोई न थे, पर विटेनबर्ग के चर्च पर पोप के विरुद्ध लेख लिखकर चिपकाने की स्फूर्ति और हिम्मत इसी महापुरुष को क्यों हुई? इस प्रश्न के उत्तर में आप यदि कह सकते हैं तो यही कहेंगे कि परिस्थिति को महत्व है ही, पर उसके उपयोग करने का महत्व व्यक्ति को है, यही उत्तर शिवाजी के लिए भी उपयुक्त है। इसी प्रश्न का एक पहलू और है। स्फूर्ति और कार्य आरम्भ करने की हिम्मत आवश्यक है ही पर उस कार्य की सफलता के लिए अनेक उच्च गुणों की भी आवश्यकता होती है जिनके अभाव से वह

अष्ट कार्य विफल हो जाता है। इन गुणों का हम इस लेख में प्रथम विचार करेंगे। इसके सिवा यह ख्याल रखने के लायक है कि शिवाजी एक ऐसे अद्वितीय व्यक्ति थे कि उनके साथ किसी ने विश्वासघात नहीं किया। उनकी नौकरी में सब जाति और सब कौम के लोग (मुसलमानों को मिलाकर) शामिल थे। यह महत्व बहुत थोड़े महापुरुषों को प्राप्त हुआ है। क्रामवेल, लूथर इत्यादि महापुरुषों को सदा विश्वासघात का डर बना रहता था पर इस पुरुष को न ऐसा डर था और न उसके आदमियों में से किसी ने ऐसा प्रयत्न किया था। इस बात से यह विचार उत्पन्न होता है कि ऐसे कौन इस पुरुष में अद्वितीय गुण थे जिनके कारण लोग उसके सदा विश्वासपात्र बने रहे?

३—सफलता प्राप्त करने के लिए लोकनायक में प्रथम गुण जो चाहिये वह सुन्दर शील है। शीलरहित लोग भले ही धोखेबाजी से चार दिन धूमधाम कर लें पर जीवन में उन्हें सफलता नहीं प्राप्त हो सकती। किसी भी क्षेत्र में जाइये, सुन्दर शील सफलता की नींव दिखाई पड़ेगा। जबतक अनुयायी यह न जान लें कि जिसका हुक्म हम मानते हैं, वह सब दुर्गुणों से रहित है तबतक वे निर्भय हो विश्वासपूर्वक उसका हुक्म न मानेंगे। यदि उन्हें थोड़ी भी शंका हो कि उनका नायक किसी प्रकार उन्हें धोखा देता है तो वे भी इसी प्रकार उससे बर्ताव करने लगेंगे। किसी भी लोकनायक को लेलीजिये, उसमें नाना गुणों का संघ अवश्य मिलेगा। हैदरअली में कुछ दुर्गुण अवश्य थे, पर उसके गुण ही श्रेष्ठ थे और इस कारण ही थोड़े दिनों के लिए राजा बन बैठने की सफलता उसे प्राप्त हुई। बाबर को शराब की आदत थी, पर फतेहपूर सीकरी में पहले जब उसे हार खानी पड़ी तो उसने तुरन्त शराब छोड़ दी। अकबर में कुछ दुर्गुण अवश्य थे पर जिस समय कार्य आ पड़ता था, उस समय वे दुर्गुण उसके आधीन हो जाते थे, वह उनके आधीन नहीं रहता था। जो अपना शील खो देता है, उसके हाथ से कोई महान् कार्य नहीं हो सकता और उसका कृत्य दीर्घस्थायी न होगा। शिवाजी के विषय में इतना ही लिखना बस है कि उनमें किसी प्रकार का व्यसन न था। उनकी फौज में सख़्त नियम था कि स्त्री बालक और दुर्बल पुरुष को किसी प्रकार न छेड़ा जाय। इस नियम को तोड़ने पर प्राणदंड तक भी हो सकता था। एकबार एक सरदार ने एक यवन स्त्री पकड़ ली। सुन्दरी रहने के कारण उसे वह शिवाजी के पास ले आया। उसे छत्रपति ने इतने ज़ोर से धिक्कार दी कि उसने फिर ऐसा काम कभी नहीं किया। शिवाजी अत्यन्त धार्मिक थे यह हम बतला ही आये हैं। उन्होंने कई बार रामदास स्वामी को अपना राज्य प्रदान कर दिया था। इससे ही ज्ञात होता है कि वे निःस्वार्थ होकर स्वराज्य का उद्धार करने को तत्पर हुए थे। उन्हें अपना निज का कोई खयाल न था, यह उनके अनेक कृत्यों और भाषणों से स्पष्ट है। निर्व्यसन, निःस्वार्थ, महत्वाकांक्षाहीन, दयालु, सत्यनिष्ठ, धार्मिक और पापभीरु होने से पुरुष लोकनायक हो सकता है और ये सब गुण शिवाजी में मौजूद थे। उनके अनेक शत्रु थे पर किसी ने यह नहीं लिखा है कि उनमें इस प्रकार का कुछ भी दोष था। लूट करते समय उनका सख़्त हुक्म था कि किसी को किसी प्रकार की शारीरिक व्यथा न पहुंचाई जाय, ग़रीबों के, दुर्बलों के, बालकों के, स्त्रियों के तो वे त्राता और संरक्षक ही थे। इस कारण ये लोग उन्हें देवता के समान मानते थे। दूसरी बात यह ख्याल रखने लायक है कि जिसे राष्ट्रीय कर्तव्य करना है और राष्ट्र को उस कर्तव्य में लगा देना है उसमें किसी प्रकार का दोष रहने से उसका कार्य उतना ही लँगड़ा हो जाता है। वह जोश, वह प्रेम जो सच्चे मन

से स्वार्थत्याग पूर्वक कार्य करने से उत्पन्न होता है उसका आनन्द अपूर्व है और उस कार्य को जो शक्ति प्राप्त होती है वह बहुत काल तक टिकती है। ऐसे गुण शिवाजी में न होते तो शिवाजी का स्मरणमात्र इतना बलदायक न हो जाता! शिवाजी मन के उदार थे इस कारण उनके अनुयायी सदा सन्तुष्ट रहते थे। योग्य काम पर इनाम देना वे अपना मुख्य कर्तव्य समझते थे हो पर उस पुरुष की अन्य प्रकार से वे अच्छी प्रतिष्ठा भी करते थे। उनका व्यक्तिगत जीवन सादा था इस कारण वे मितव्ययी थे। यह मामूली बात है कि श्रेष्ठ पुरुष अपने शरीरमात्र के लिए आवश्यक से ज्यादा कभी नहीं खर्च करते। जो राष्ट्रीय कार्यों के अगुआ होते हैं वे सादे ही होते हैं और इस कारण वे लोगों के प्रिय बने रहते हैं। शिवाजी का धार्मिक स्वभाव इतना प्रज्वलित था कि उन्हें अपने शरीर का कभी ख्याल न रहता था, फिर राज्य धन वगैरः का लोभ कहां? उन्होंने श्रीसमर्थरामदास से इस झगड़े से दूर होने की कई बार इच्छा प्रगट की और प्रत्येक बार स्वामी ने उन्हें सच्चे कर्तव्य की शिक्षा दी। ऐसा धार्मिक पुरुष उच्च और उदात्त विचारों से प्रेरित, प्रज्वलित स्वदेशाभिमान से पूर्ण और धर्म सहिष्णु, जिस कार्य में हाथ डालता उस कार्य में सफलता होना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी।

५—इन्हीं गुणों के अनुसंगी उनमें अनेक गुण थे। वे संकट से डरनेवाले न थे इतना ही नहीं संकट के समय वे स्वतः आगे होते थे। इन गुणों के बिना लोकनायक यशस्वी नहीं हो सकता। जब उसके अनुयायी देखते हैं कि वह अपना जीवन अधिक मूल्यवान समझता है और संकट में दूसरों को डालना चाहता है तो वे हिम्मत के साथ काम नहीं करते। अगुआ के आगे होने से अनुयायी पीछे पीछे दौड़ते चले आते हैं। जितने श्रेष्ठ सेनापति हुए हैं वे सब से प्रथम संकट से भेंट करने जा[illegible]च की घाटी [illegible]पि आगामी जोश पैदा होता है और उसीसे का[illegible] का प्रयत्न अकबर सेना के आगे रहता था। [illegible] बार किलों की दीवारों पर सब से प्रथ[illegible] गई है। औरंगज़ेब ने सामूगढ़ पर अपने हा[illegible] महत्व पांव बँधवा दिये और इसी कारण उसे वि[illegible] पौर प्राप्त हुई। आरम्भ से ही शिवाजी [illegible] सब कार्यों में प्रथम रहते थे और पीछे भी [illegible] यह क्रम न छोड़ा। अफजलखां से त्रस्त रहने पर भी शिवाजी स्वतः मिलने गये। शाइस्ता खां के महल में शिवाजी ही स्वतः घुसे थे। दिल्ली से अकेले वे अपने राज्य में चले आये, इससे उनका अतुल साहस प्रगट होता है। बाबर की सफलता का एक विशेष कारण यह था कि वह अपने को अपने अनुयायियों के समान ही समझता था और उनके समान सब संकट सहने को तैयार रहता था। यह गुण शिवाजी में कुछ ज्यादा ही था। अनुयायियों के आगे चलना ही नहीं वरन् कई बार उनकी सहायता के बिना उनकी जान जोखिम में न डालने की इच्छा से कई कार्य अकेले ही कर आते थे। कहते हैं कि निडर होकर मुगलों की छावनी में भेस बदलकर कई बार वे गये थे। पर इससे यह न समझना चाहिये कि वे केवल साहसप्रिय थे। चातुर्य का उपयोग करने पर ही वे साहस का उपयोग करते थे। विशेषता यही थी कि समय पड़ने पर पीछे हटना वे जानते ही न थे।

६—इन गुणों के साथ एक अत्यन्त आवश्यक गुण बुद्धि है। इस गुण का महत्व बड़ा भारी है और हर कार्य करने में इसकी आवश्यकता होती है। कई बार तो इसी के जोर से सफलता प्राप्त होती है। जितने बड़े बड़े सेनापति और धुरंधर राजनीतिज्ञ पुरुष हुए हैं वे सब इसी महान् शस्त्र के बल से अपने कार्य में सफल हुए हैं। बाबर, अकबर, औरँगजेब, शेरशाह ये सब अत्यन्त बुद्धिमान् और चतुर

हैम्पशायर के ब्रोकनहर्स्ट पार्क में हिन्दुस्थानी अस्पताल का रसोईघर।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

हुए हैं हमारी समझ में शिवाजी की बुद्धिमत्ता इन सब की बुद्धिमत्ता से श्रेष्ठ है क्योंकि प्रत्येक कार्य में उनका अधिकार दिखाई पड़ता है। आक्रमण करना, चालाकी से भाग जाना, न जानते ही आ खड़े होना, चालाकी से हटा देना ये सब कार्य चातुरी और बुद्धिमत्ता के हैं। ख्याल रखने की बात है कि शिवाजी का कोई कार्य विफल न हुआ। शिवाजी की किले की रचना, राजकीय व्यवस्था, लश्कर का संघटन, मुल्की व्यवस्था सब मनन करने के योग्य विषय हैं।* इन्हीं में तो श्रेष्ठता अधिक दीखती है। हम आगे दिखलावेंगे कि इनमें से आजकल के शासन में भी कई बातें सब परिस्थिति बदल जाने पर भी पाई जाती हैं। अफजल खां से भेंट होने पर वे अपनी अटल दूरदर्शिता प्रदर्शित करते हैं। उनका दूरदर्शिता और चातुर्य की जितनी तारीफ की जाय थोड़ी है। केवल बीस साथियों को लेकर शिवाजी बरात बनाकर पूने में घुसे। वहां से साहस के साथ उसके महल में चले गये। इधर दूसरी ओर यह चालाकी की गई थी कि पाँच सौ बैल सींगों में मशालें बांधकर खड़े कर दिये थे और हुकम दे दिया गया था कि इशारा पातेही मशालें जलाकर बैलों को हांक देना और लड़ाई के बाजे बजाने लग जाना। स्वयं शिवाजी ने शाइस्ता खां को इतना डरा दिया कि फिर पूने में ठहरने की उसकी हिम्मत न हुई। उधर दूसरी ओर जो थोड़ी सेना रख दी थी, उसने शाइस्ताखां की फौज को तीन तेरह कर डाला। शहाजी को जब आदिलशाह ने कैद किया तो बड़ी चालाकी से बिना कुछ किये ही उन्होंने पिता को छुड़ा लिया। दिल्ली के जाने के पहले किले का बन्दोबस्त करना, सब राज्य की व्यवस्था कर जाना, वहां से चालाकी से छूट जाना, चतुरता से संभाजी की रक्षा करना और मुग़ल राज्य में से सुरक्षित चले आना यह सब उनकी चतुरता और बुद्धिमत्ता का प्रदर्शक है। दिल्ली जाने में उनकी गलती थी ऐसा कई लोग समझते हैं पर जैसा हमने पहले लेख में दिखा दिया है, उनकी चतुरता और बुद्धिमत्ता ही दिखाई देती है। यहां तक कि राज्याभिषेक में भी उनकी दूरदर्शिता दिखाई देती है। राज्याभिषेक न होने से उनके कृत्य को गदर-बलवे का ही स्वरूप रहता पर राज्याभिषेक होने पर सब के मुंह बन्द होगये। शिवाजी के बनाये हुए किले आज तक विद्यमान हैं और उनकी चतुरता के प्रदर्शक हैं।

७—लोकनायक में एक यह बात और आवश्यक है कि नायक को अपने कार्य की सफलता का पूर्ण विश्वास होना चाहिये। अगर नायक को ही अपने कार्य में सफलता की आशा न हो तो अनुयायियों को कहां से हो सकती है? जितने बड़े बड़े कार्य सफल हुए हैं उन सब के नायकों को उनके विषय में पूर्ण आशा थी। क्रामवेल ने जो लड़ाई जीती है उसके बारे में उसे पहले से ही पूर्ण विश्वास रहता था कि वह जीतेगा। नेल्सन हमेशा आनन्दी और आशावादी रहता था। हालैंड के स्वातन्त्र्य के लिए लड़नेवाले विलियम (दी सायलेंट) ने कभी निराशा का उद्गार नहीं निकाला। उसके पश्चात् विलियम (जो कि १६८८ में इङ्गलैंड का राजा हुआ) ने जो अपने कार्य के विषय में आशा दिखलाई वह अतुलनीय है। सब हालैंड लुई (चौदहवाँ) ले चुका था, उसकी सेना चारों ओर फैल गई थी, उच्च लोगों को अपना कहने के लिए कोई अवसर नहीं रहा था, ऐसे समय में लुई की पराधीनता वह स्वीकार करने को तैयार न था। हालैंड का स्वातन्त्र्य नष्ट हो चुका, इस प्रकार जब उसे इस महान् आक्रमणकर्ता का संदेश मिला तो उसने उत्तर भेजा कि ऐसा कभी नहीं हो सकता, निदान हालैंड के बचे खुचे अङ्ग में

* क्रमानुसार इन विषयों पर भी हमारे लेख आवेंगे।

लोग अपनी जान दे देंगे फिर हमारा स्वातन्त्र्य कैसे नष्ट होगा। और हुआ भी ऐसा ही। हालैंड का स्वतन्त्र्य प्रचंड लुई नष्ट न कर सका। इसी प्रकार जितने स्वदेश के स्वातन्त्र्य के उद्धारक हुए हैं, वे प्रचंडआशावादी हुए हैं-उनके रोम रोम में अपने कार्य की सफलता की आशा पाई जाती है। शिवाजी ने जब कार्य शुरू नहीं किया था, तब से उसे उसके विषय में पूर्ण विश्वास था कि सफलता होगी। "बुजुर्ग" लोग उसे भी कहा करते थे कि "तरुण है इस कारण इसे ऐसा मालूम होता है। चार दिन के बाद सीधा हो जायगा" पर उन्हें निराशा छू भी नहीं गई थी। उन्होंने कोई कार्य शुरू नहीं किया जिसके बारे में उन्हें पूर्ण विश्वास न रहा हो। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि महाराष्ट्र का स्वातन्त्र्य फिर से उसे मिल जायगा और उन्होंने स्वातन्त्र्य प्राप्त करके ही छोड़ा।

६—मानसिक और नैतिक गुणों के सिवा उनमें शारीरिक गुण भी थे। कहते हैं कि शिवाजी का भाषण इतना मनोमोहक होता था कि जिससे वे बोलते वह पूरे कहने में आजाता था। अफजल खां से सन्धि का प्रश्न उठा तो उसने शिवाजी के पास अपना ब्राह्मण वकील भेजा था उसे उन्होंने अपने भाषण से ऐसा मोहित कर लिया कि वह उनका सब कहना मान गया, उस वकील के सामने जब स्वदेशोद्धार का उन्होंने प्रश्न उपस्थित किया तो वह इतना मोहित हो गया कि बोल उठा कि आपके कार्य से मैं पूर्ण सहमत हूं और मेरी पूर्ण सहानुभूति है, पर खान का निमक मैंने खाया है इसलिए मैं उसके विरुद्ध कोई कार्य नहीं कर सकता; तथापि मैं आपके भी विरुद्ध कोई कार्य न करूंगा। वृद्धावस्था के कारण वकील में वह जोश नहीं था जो तरुणों में होना चाहिये, नहीं तो उसका वह भी साथी हो जाता! जयसिंह से जब सुलह की बातचीत चली तो इस अति वृद्ध योद्धा को भी उसने अपने भाषणचातुर्य से मोहित कर लिया और उसने भी उनके कार्य से अपनी पूर्ण सहानुभूति प्रगट की पर जयसिंह मुसलमानों की नौकरी करते करते वृद्ध हो चुका था; अपने मान से वह कई बार हाथ धो चुका था और विजयी पक्ष में वह तुरंत मिल जाता था। इन अनेक कारणों से उसमें कोई जोश नहीं रह गया था। वृद्धों की सदा यही अवस्था होती है। वे निराशावादी, जोश रहित "जैसी बहै बयार पीठ पुनि तैसी कीजै" के अनुसार दासवृत्तिक रहा ही करते हैं पर तरुण उनके विरुद्ध होते हैं। इस कारण इनके कार्य सत्वहीन जीवों को नहीं सुहाते। इसका एक और कारण है कि उन्हें अपने मृतवत् कार्यों की चिंता बड़ी भारी हो जाती है। जो हो, शिवाजी के भाषण से अनेक प्रसंग पर बड़ा भारी कार्य हुआ है। निदान सैनिक में तो यह बड़ा भारी गुण है। बाबर अपने मनोमोहक भाषण से अपनी सेना का उत्साह बढ़ाता रहा। फतेहपुर सीकरी की लड़ाई में इसी कारण उसे विजय प्राप्त हुई नहीं तो शायद हिन्दुस्थान का इतिहास बदल जाता। लड़ाई होने के पहले उसने जो सुन्दर भाषण किया उससे उसके सिपाहियों में ऐसा उत्साह भर गया कि वे बड़े जोश से लड़े और उन्होंने विजय प्राप्त की।

इस सब कार्य को करने के लिए जिस शरीरयष्टि की आवश्यकता होती है वह भी अनुकूल ही थी। वे सरदारों के कुल में पैदा हुए थे जिनका पेशा युद्ध के सिवा और कुछ न था। वे बचपन से पहाड़ पर्वतों में घूमते फिरते थे। उन्होंने भी जन्मभर अविश्रान्त वही कार्य किया। यह ख्याल रखने के लायक है कि मामूली सिपाही की तरह वरन् उससे भी ज्यादा ये सब कार्य स्वतः करते रहे। उन्हें शत्रु की रात दिन चौबीसों घंटे जन्मभर चिन्ता लगी ही रही। विश्राम किसे कहते हैं यह शिवाजी को मालूम नहीं। ऐसी अवस्था में वे

सदा ऐसे प्रचंड कार्य करते रहे। इससे ही उनकी शारीरिक अवस्था ज्ञात हो सकती है। राज्याभिषेक के समय शिवाजी का वज़न ७० सेर था।

६—इस प्रकार शिवाजी निर्दोष, निर्व्यसन, सर्व आवश्यक गुणों से पूर्ण स्वदेशत्राता के रूप में जन्मे थे। इस पुरुष को अच्छी तरह से जान लेना सैकड़ों अनेक पुरुषों को जानना है। दुराग्रह, पक्षपात, अज्ञान, शत्रुता ऐसे अनेक कारणों से कुछ लोग इस महापुरुष को अनेक वीभत्स नामों से पुकारते थे। पर आनन्द की बात है कि यह नासमझी धीरे धीरे दूर हो चली है। नैतिक, मानसिक, शारीरिक आदि सब गुणों से संयुक्त यह महापुरुष महाराष्ट्र में जन्मा, इसी कारण आज महाराष्ट्र का कुछ मूल्य है। महापुरुष की संगति सदा वाञ्छनीय और लाभकारी होती ही है पर संगति नहीं तो स्मृति भी कुछ कम लाभकारी नहीं होती। उसका स्मरण ही प्रचंड उत्साह, जोश और आदर उत्पन्न करनेवाला होता है। उसके कार्य का मनन करना अपने को उसी के काल के दर्पण में देखना है। जिस महापुरुष ने अविश्रान्त श्रम करके प्रज्वलित स्वदेशाभिमान से उत्तेजित हो महाराष्ट्र का उद्धार किया और एक नया राष्ट्र निर्माण कर दिया और जिसकी स्मृति आजभी नई ही जान पड़ती है, वह पुरुष करोड़ों धन्यवाद का पात्र है।

हमारी डायरी।

[लेखक—श्रीयुत शिवप्रसाद गुप्त।]

३ अगहन—(१६-११-१४)

आज मैं साढ़े छै मास के उपरान्त फिर अपनी दिनचर्या लिखना प्रारम्भ करता हूं। मुझे पाँच दिन पूर्व ही इसे प्रारम्भ करना उचित था क्योंकि मैंने इङ्गलिस्तान १४ नवम्बर को छोड़ा था किन्तु सागर इतना अस्थिर था कि ३ दिन तक सर उठाना दुस्तर होगया। अपनी कोठरी में बिस्तर पर लेटकर ही समय व्यतीत करना पड़ा, खैर।

यह वृत्तान्त मैं केवल अपने निज के लिए नहीं लिखता किन्तु अपने प्रिय मित्र मर्यादा के सम्पादक महोदय की आज्ञा से मर्यादा के के पाठकों के लिए ही यह लिखा जारहा है इस से यह उचित है कि मैं उन्हें यह बताऊं कि मैं साढ़े छै मास तक क्या करता रहा और कहां कहां घूमा और क्या २ अनुभव प्राप्त किये और इतने दिनों तक चुप क्यों रहा और प्रति दिन दिन भर का अनुभव क्यों नहीं अंकित करता गया। ये सब प्रश्न हैं जिनका उत्तर देना मुझे उचित है। अन्तिम प्रश्न का उत्तर मैं नहीं देना चाहता और मुझे आशा है मेरे प्रिय दयालु पाठक मुझे इसके लिये अवश्य ही क्षमा कर देंगे।

बाकी प्रश्नों का उत्तर मैं धीरे २ दूंगा और सहृदय पाठक मेरे आगे का वृत्तान्त पढ़ कर उसे स्वयं समझ जायँगे।

मैं.....को सिकन्दरिया नगर छोड़ फिर जहाज़ पर सवार हो मारसेल्स के लिए रवाना हो गया था। दिन में मारसेल्स पहुंच गया था। रास्ते में कुछ विशेष घटना नहीं हुई,

सिवा इसके कि २ दिन समुद्र में अत्यन्त डावांडोल रहा और मेरा जहाज़ ११ हज़ार टन का होते हुए भी इस भांति हिल रहा था जैसे गंगा जी पर बरसाती हवा में डोंगी हिलती हो। लहरें जहाज़ की छत पर से होकर गुज़र जाती थीं और यात्री बेचारे अपनी २ कोठरी में पड़े या छत पर कुर्सी पर पड़े रहकर समय व्यतीत किया करते थे।

यहां पर यह भी बता देना उचित होगा कि जहाज़ दो प्रकार से हिलता है एक तो अगल बगल और दूसरे आगे पीछे। पहिले प्रकार के हिलने को करवट लेना रोलिङ्ग (Rolling) कहते हैं और दूसरे प्रकार को पैंग लेना पिचिङ्ग (pitching) कहते हैं। पिचिङ्ग रोलिंग से भयंकर है। पिचिंग के समय मनुष्य का माथा घूमने लगता है और पेट में का अन्न पानी मुंह के राह बाहर निकल आता है। जिन मनुष्यों का ऐसे समय में जी नहीं मिचलाता उन्हें अच्छा नाविक कहा जाता है।

हम लोगों ने अपना टिकट विख्यात कुक कम्पनी की कोठी के मार्फत नहीं लिया था क्योंकि ये महाशय भारतवासियों के विशेष मित्र हैं और उनपर अधिक प्रेम के कारण उन्हें निराले में या कोनेकाने में ही जहाज़ पर जगह देते हैं जिस में हिन्दुस्थानियों को उन अंगरेज़ों से दुःख न पहुंचे जो कि भारत में रहकर उस सिद्धान्त को भूल जाते हैं जिसके लिये उनके देश में बड़ा नररक्त बहाया गया है अर्थात् दासत्व की प्रथा उठाने में जो कार्य अंगरेज़ जाति ने किया है उसे ये महापुरुष लोग बिलकुल भुला देते हैं और बिचारे पंगु भारतवासियों से बड़ा ही अनुचित व्यवहार करते हैं। यही नहीं कुक महाशय की और बहुत कीर्ति है जिसके कारण हम लोगों ने उन से बचना ही निश्चय किया था।

५ अगहन-शनिवार (२१-११-१४)

और अपने टिकट दूसरी कोठी के मारफत लिये थे किन्तु मारसेल्स में पहुंचने पर हमें अपने कोठीवाले का कोई भी मनुष्य बन्दर पर सहायतार्थ नहीं मिला किन्तु कुक के कई मनुष्य यात्रियों के सहायतार्थ बन्दर पर उपस्थित थे किन्तु हमें उनसे कुछ भी सहायता नहीं मिल सकी। हम लोगों ने एक दूसरे यात्रीवाल के मारफत अपने असबाब का प्रबन्ध कराया। मैं एक बात यहां अन्यत्र की कह देना चाहता हूं जिसके लिए कदाचित पाठकगण मुझे क्षमा करेंगे। मुझसे एक विदेशी ने बात करते हुए कहा था कि अंगरेज़ जाति ने अमेरिका में दासत्व की प्रथा उठाने में जो असंख्य धन तथा मनुष्यों के प्राण होम दिये थे उसका कारण केवल यही नहीं था कि उन लोगों का हृदय मानव ऐक्य के भाव से पवित्र हो गया हो और उन्होंने इतना बलिदान केवल मानव अधिकार व स्वतन्त्रता के लिए कर दिया हो। उसका विचार तो यह है कि यह बलिदान नहीं किन्तु व्यापार था क्योंकि स्पेनिश जाति को गुलामों के बदौलत सस्ता माल बनाने में सहायता मिलती थी और इस कारण अंगरेज़ों को उनके मुकाबिले में कठिनाई पड़ती थी। इसी को दूर करने के लिए उन्होंने इतना नुकसान उठाया था किन्तु उसका फल यह निकला कि स्पेनवालों का व्यापार चौपट हो गया और अंगरेज़ों ने एक २ पाई के दस २ रुपये से अधिक व्यापार से भर पाये। जरा विचार करने से और यह देखने से कि आजकल ये पाश्चात्य जातियां अपने अधीनों के साथ कैसा व्यवहार करती हैं यह विचार कुछ २ ठीक प्रतीत होता है।

हम लोग

१० अगहन १९७१-बृहस्पतिवार (२६-११-१४)

को मारसेल में उतरकर और असबाब को एक यात्रीवाल के पास छोड़ और यात्रीवाल का एक आदमी ले हम लोग नगर देखने चले। पहिले हम लोग एक गिर्जाघर

देखने गये जो एक पहाड़ी पर स्थित था। सुन्दर सड़कों से होते हुए हम लोग गिर्जाघर की पहाड़ी के नीचे पहुंचे वहां से एक लिफ्ट (ऊपर लेजानेवाले यन्त्र) पर बैठ हम लोग ऊपर पहुंचे। यह गिर्जाघर बड़ा प्राचीन है। १६वीं शताब्दी में यह निर्माणित हुआ था, यह मेरी देवी का गिर्जा कहा जाता है, इसके भीतर जाने से एक प्रकार का धर्मभाव उत्पन्न हो जाता है। यह भाव वैसा ही है जैसा किसी धार्मिक मनुष्य के हृदय में किसी देवस्थान में जाने से उत्पन्न होता है। यहां पर ईसामसीह की मूर्ति सूली पर चढ़ी हुई एक ओर रक्खी है और प्रधान वेदी पर माता मेरी बालक ईसा को गोद में लिये खड़ी है और इधर उधर देवतागण आकाश में उड़ रहे हैं। इनके अतिरिक्त और बहुत से देवी-देवताओं की मूर्तियां यहां रक्खी हैं, बहुत से राजाओं के मुकुट भी यहां रक्खे हुए हैं जिन्होंने समय २ पर धार्मिक युद्ध किया है।

जिस प्रकार अपने देश में देवस्थान में जाते समय यात्री लोग फूल पत्र दियाबत्ती इत्यादि अर्चनार्थ ले जाते हैं उसी प्रकार यहां भी मोमबत्ती लेजाने की रिवाज है। सभी लोग छोटी बड़ी मोमबत्ती लेकर जाते हैं जो ईसा की सूली पर विराजमान मूर्ति के सामने मन्दिर का पुजारी जला देता है। वहीं पर एक ताले से बन्द छोटा सा बक्स रक्खा है जिसमें जो कुछ द्रव्य श्रद्धालु यात्री चाहते हैं डाल देते हैं। यह द्रव्य अपने देश की प्रथा के अनुसार अब पुजारियों के जेब में नहीं जाता। पहिले यहां भी ऐसा ही होता था किन्तु अब उससे मन्दिर की रक्षा होती है व अन्य सार्वजनिक उपकार के काम में लगाया जाता है।

बाहर यहां भी दीन पुरुष व स्त्रियां भिक्षा मांगने के लिए खड़ा रहता हैं जिन्हें देखकर हृदय विचलित जाता है। देखें यह कुप्रथा संसार में कब तक रहती है कि जिसके कारण समाज में कुछ तो ऐसे लोग होने हैं जिनके पास बिना मेहनत मशक्कत के हाथ पैर हिलाये बिना ही इतना धन दूसरों के पसीनों से कमाया हुआ समाज की कुप्रथा के कारण आजाता है कि वे उसे व्यय करना ही नहीं जानते और जानें भी तो अपने ऊपर व्यय नहीं कर सकते क्योंकि मानुषिक आवश्यकताओं से वह कहीं अधिक होता है, निदान उन्हें अपच हो जाता है और धन अपव्यय के मार्ग से चला जाता है। इस अपव्यय के बहुत मार्ग हैं और उनका अधिकतर वर्णन यहां पर्वंगविरुद्ध है। यह निराला ही विषय है जो समाजसंगठनशास्त्र में लिखा जाना चाहिये—और कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं जो बेचारे हाथ पैर से बेकार या अन्धे अपाहिज होते हैं और स्वयं रोटी नहीं कमा सकते उन्हें इन मनुष्यों के सामने हाथ फैलाना पड़ता है जिन्हें लोग भूलकर समृद्धिशाली भाग्यवान् कहते हैं। वास्तव में इन्हें हत्यारे, चोर व डाकू के नाम से संकेत करना अधिक ठीक व सच्ची बात होगी। खैर।

यहां से होते हुए हम लोग अजायबघर देखने चले। सड़क की शोभा का वर्णन करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है किन्तु दिग्दर्शन करा देना उचित जान इतना लिख देता हूं कि सड़क अत्यन्त चौड़ी व खूबसूरत थीं। दोनों ओर चौड़ी २ जगह गाड़ियों इत्यादि के लिये थी। एक ओर से जाने के लिए बनी थी दूसरी ओर से आने के लिए। बीच में चौड़ी पटरी मनुष्यों के चलने के लिए बनी थी जिसके दोनों ओर ऊँचे २ वृक्ष लगे थे। वृक्ष वसन्त ऋतु के कारण पुष्प तथा नरम कोपलों से भरे थे जिनमें प्रकृति ने इतना सुहावना हरा रंग भर दिया था कि जिससे बीच की पटरी हरी देख पड़ती थी। मन्द २ वायु पत्तों को हिलाती थी और सारी जगह को विचित्र प्रकार की सुगन्धि से भरे देती थी। हमें यह दृश्य दिल्ली की चाँदनी चौक·

वाली सड़क याद आगई जिस समय यह नगर अपने यौवन पर होगा जब इसे संसार की सब से बड़ी शक्तिशालिनी जाति की राजधानी होने का गौरव प्राप्त रहा होगा तब इसमें कैसी शोभा रही होगी वह इसके टूटे फूटे खँडहर ही बता सकते हैं। जाओ किसी उन पियावों (Sic) पर जो अब भी चांदनी चौक के बीच में वर्तमान हैं और उनसे पूछो कि तुम्हारी अवस्था नरपति अकबर के समय क्या थी तो तुम्हें यदि हृदय है तो ठीक उत्तर मिलेगा और तुम अश्रु-पूरित आंखों से लौटोगे।

अब हम लोग ११ अगहन १९७१ शुक्रवार २७-११-१४ को अन्नायव घर में पहुंच गये। यह एक बड़े सुन्दर स्थान में है। बीच में एक बहुत बड़ा फुहारा है उसके ऊपर स्वतंत्रता देवी की एक विशाल मूर्ति है। जिस रथ पर यह मूर्ति विराजमान है उसे चार बैल खींचते हैं, उन्हीं नांदियों के मुख से जल की धारा गिरती है और ऊंचे नीचे ३ सरोवरों में से होती हुई बाग में चली जाती है।

इस विशाल भवन के कई जुदे २ विभाग हैं। हम लोगों ने इसके दो विभाग देखे। एक में बड़े २ विख्यात मूर्तिनिर्माणकर्ताओं की बनाई हुई सैकड़ों मूर्तियां हैं, दूसरे में चित्रों का संग्रह है। यहां पर निरीक्षक ने मुझे एक बड़ा चित्र दिखाया जिसका मूल्य दस लाख पाऊंड अर्थात् डेढ़ करोड़ रुपया दिया गया है। मेरी बुद्धि में यह सब अमीरी चोचले हैं। मैं यह नहीं कहता कि चित्रकार चित्र बनाने में बुद्धि की तथा विद्या के सीमान्त तक नहीं पहुंच गया है किन्तु एक चित्र के लिए इतना व्यय जब कि देश में करोड़ों मनुष्य क्षुधाग्नि में जल रहे हों यही प्रकट करता है कि संसार में न्याय नहीं है 'जबर्दस्त का ठेंगा सर पर' यह सभी जगह चलता है। न्याय का जामा पहने हुए अन्यायी सभी जगह विराजमान हैं और इनसे गरीबों को बचाने का कठिन परिश्रम कभी न कभी संसार भर को एक साथ मिलकर करना पड़ेगा।

इस भवन में एक विभाग है जिसमें ऐसे जन्तुओं की अस्थिपिंजरों का संग्रह है जो अब संसार में नहीं हैं अर्थात जिनकी नसल नष्ट होगई है किन्तु मरम्मत के कारण वह विभाग बन्द था और हम लोग उसे नहीं देख सके।

यहां से अब रेल घर पहुंच अपना २ सामान सँभाल हम लोगों ने यात्रा प्रारम्भ की। हमें रास्ते में बहुत सी छोटी २ नदियों, नालों व पहाड़ियों को पार करना पड़ा। फ्रांसीसी देश की विख्यात नदियों को जिनके बारे में इतना पढ़ रक्खा था देख २ हँसी आगई। वे काशी की वरुणा नदी से बड़ी नहीं निकलीं किन्तु इन्हीं को काट काट कर इस प्रकार नहरें बना दी गई हैं कि जिनके कारण सारा देश हरा भरा होगया है। मैंने बंगदेश को भली प्रकार नहीं देखा है किन्तु फ्रांस को देख एकबारगी "सुजलां सुफलां शस्यश्यामलां मातरम्" जबान पर आगया।

मुझे फ्रांस देश को दक्खिन से उत्तर तक पार करने में २४ घंटों से अधिक लगा था किन्तु मैं सत्य कहता हूं कि मुझे एक इञ्च भी भूमि ऐसी नहीं दीख पड़ी जिस पर हरियाली न हो। पहाड़ की चोटियाँ तक लता, गुल्म और घास से परिपूर्ण थीं। नाना प्रकार के धान यहां देखने में आये। सब्ज़ी व तरकारियों की खेती भी बहुत बड़ी मिकदार में थी। बहुत सी प्रकार की भाजियां वनस्पतियां व अन्य ऐसी चीज़ें कांच के गमलों के नीचे या कांच के घरों में बन्द थीं। बञ्जर, ऊसर या उजाड़ का नाम भी यहां नहीं था। बड़े बड़े हरी २ घासों से लहलहाते हुए मैदानों में गोसन्तान स्वच्छन्दता से विचर रही थीं। घोड़ों व भेड़ों के लिये भी अनेक रम्यस्थान घासों से लहलहा रहे थे।

यहां पर पशु निडर हो विचर रहे थे। यहां की यह अवस्था देख भारत की डींग पर हँसी आगई। दया धर्म की पुकार मचानेवाले और झूंठी गप्पों से संसार को सर पर उठानेवाले हिन्दुओं की बस्तियों में भी इसका शतांश प्रबन्ध गोसन्तान तथा पशुओं के लिये नहीं है जैसा कि इन हिंसक देशों में देखने में आया। इन छै महीनों में मुझे एक पशु भी ऐसा नहीं मिला जो दुःखी, अपाहिज, निर्बल या आहत हो। यह अवस्था देख स्वामी रामतीर्थ के यह वचन स्मरण हो आये कि भारत का धर्म मुर्दा है व अन्य देशों का जीवित–भारत में धर्म का नाम लेकर शोर मचाया जाता है किन्तु और देशों में धार्मिक जीवन है अर्थात् अन्य देशों में धर्म चल अवस्था में है और भारत में अचल अवस्था में है।

इसी प्रकार इधर उधर देखते कभी प्रसन्न होते कभी खिन्न होते थे पर रेल अपना कार्य हमारी प्रसन्नता या खिन्नाभाव के लिए नहीं छोड़ती थी, वह तो ५०, ६० मील की गति से दौड़ी हुई चली जाती थी। उसके सामने नदी पहाड़ बन कुछ भी नहीं थे। कहीं नीचे ऊपर कहीं पहाड़ के हृदय को छेद कहीं नदी के सिर पर सवार वह बेतहाशा भागी चली जाती थी। इसी प्रकार भागते २ संध्या होगई और हम लोग खाने पीने की फिक्र में पड़े। कुछ रेल के उपहारगृह में खा पी दूसरी गाड़ी में सवार हुए और रात भर चलकर विख्यात 'परी' (Paris) नगर में पहुंच गये। इस विचार से कि इस नगर को फिर भलीभांति देखेंगे २ घंटा समय रहने पर भी हम लोग स्टेशन छोड़ बाहर नहीं गये। ८ बजे दूसरी गाड़ी पर सवार हो फिर रवाना होगये और १२ बजे के निकट 'केलन' पहुंचे। वहां से एक छोटे अग्निबोट पर सवार हो इङ्गलिस्तान को प्रयाण किया। अंग-रेज़ी खाड़ी बेतहाशा उछल कूद रही थी। नाव की छत पर जहां हम लोग बैठे थे बराबर लहरें पानी फेंक रही थीं। सब असबाब इत्यादि भीग गया। उस समय जितने लोग उस छत पर थे सभी उलटी कर रहे थे। मैं भी एक कोने में बैठा तमाशा देख रहा था। खैर किसी प्रकार राम २ करके जहाज़ डोवर पहुंचा और हम लोगों ने अपने प्रभुओं की जन्मभूमि में पदार्पण किया। अंगरेज़ कुलियों ने सलाम कर असबाब उठा रेल में रख दिया। रेल सीटी दे चल दी। ३, ४ घंटे के बाद हम लोग 'चेरिङ्ग-क्रास' स्टेशन पर पहुंच गये। यहां पर मेरे एक मित्र मुझे लेने आये थे उनके साथ जा ६ मई को एक मकान में ठहर गया।

इङ्गलिस्तान में मैंने क्या २ देखा इसका विस्तृत वर्णन फिर कभी पृथक् लिखूंगा किन्तु इस दिनचर्या को पूर्ण करने के लिए इतना लिख देना आवश्यक है कि मैंने यहां ६ मई से लेकर १४ नवम्बर तक ६ महीने ६ दिन निवास किया।

मई, जून, जुलाई इन ३ मासों में इस देश के प्रधान नगर अर्थात् आकसफोर्ड, कैम्ब्रिज एडिनबरा, ग्लासगो, लीड्स, मानचेस्टर, डब-लिन, ब्लाकपूल, पार्डिघम व आइरन देखे। इस उपर्युक्त देख भाल को हम लोगों ने ३१ जुलाई तक समाप्त कर दिया था और यह विचार था कि अगस्त के प्रथम सप्ताह में जर्मन देश में जाऊं किन्तु इसी बीच में यूरोपीय महाभारत का सूत्रपात होगया और हम लोग एक प्रकार से लन्दन में बन्द होगये। पहिले तो यही विचार होता था कि २०वीं शताब्दी में लड़ाई नहीं होगी यदि प्रारम्भ भी हुई है तो शीघ्र समाप्त हो जायगी पर ऐसा नहीं हुआ। घर भी लौटने का प्रबन्ध निष्फल हुआ। ३ मास तक इसी आगे पीछे में पड़े रहने के उपरान्त १४ नवम्बर को अमेरिका के लिए पयान कर दिया।

१७ पौष १९७१ शुक्रवार १-१-१५।

आज मुझे इस देश में आये प्रायः १ मास ४ दिन होगये किन्तु मैंने यहां का कुछ वृत्तान्त अंकित नहीं किया—कारण आलस्य।

कलतक मैं न्यूयार्क में ही था। कल ही वहां से चलकर बोस्टन नगर में आया। न्यूयार्क किस प्रकार का नगर है, वहां कौन २ वस्तुएँ देखने योग्य हैं उनका समाचार फिर कभी यदि सयोग हुआ तो लिखूंगा, इस समय कल रेल की यात्रा में जो कुछ देखा है उसी को अंकित करने की इच्छा है।

न्यूयार्क से बोस्टन प्रायः रेल द्वारा ५ घंटे का रास्ता है। इस हिसाब से इसकी दूरी भी २०० मील से कम नहीं है। हम लोग १२ बजे दिन की गाड़ी से चलकर ५ बजे सायंकाल यहां पहुंचे थे। आज का दिन बड़ा सुहावना था, धूप निकली हुई थी, प्रकृति को छटा देखने का खूब आनन्द आरहा था। जिस मार्ग से मेरी गाड़ी जा रही थी वह नाना प्रकार के सुन्दर दृश्यों से पूर्ण था—मार्ग में अनेक छोटे २ ग्राम थे किन्तु ग्राम के नाम से आप लोग अपने देश के टूटे फूटे टपकते हुए छप्परों तथा मट्टी की दीवालों के घरों का अनुमान मत कर लीजियेगा। ग्राम से केवल इतना ही तात्पर्य है कि घनी बस्ती नहीं छिट फुट दस २ बीस २ गृहों का समूह है। किन्तु ये सब गृह सुन्दर ईंटों अथवा लकड़ी के बने हुए थे, सब की खिड़कियों में पर्दे लगे हुए थे। खिड़कियों की राह भीतर का दृश्य भी मनोहारी देख पड़ता था। छोटे २ पौधों के गमले भीतर दृष्टिगोचर होते थे, टेबुल, कुर्सी भी देख पड़ती थी। धूप के कारण बाहर डोरी की अर्गनी बांध कर कपड़े भी सूखने को डाले हुए थे जिनके देखने से ज्ञात होता था कि घर में रहनेवाले क्षुधित निर्वस्त्र मनुष्य नहीं हैं किन्तु सांसारिक सुख की सामग्री से भरपूर सुखी मनुष्यों का यह वासस्थान है। यहां यह भी कह देना अनुचित न होगा कि अमेरिका में जीवननिर्वाह का व्यय बहुत अधिक है अर्थात् जिस प्रकार से यहां मामूली श्रेणी के मनुष्यों को रहना पड़ता है उसमें बड़ा व्यय होता है इसी कारण यहां मजूरी भी अधिक मिलती है—मामूली फावड़े से ज़मीन खोदनेवालों को भी ८ घंटे दिन में काम करने के बदले प्रायः ३ डालर मिलते हैं जो १) रु० के बराबर प्रतिदिन हुआ। मैं आपके मनोरञ्जनार्थ एक मेमार अर्थात् मकान बनानेवाले राज के गृह का समाचार सुनाता हूं:—

न्यूयार्क में एक हमारे पूर्वपरिचित अंग-रेज़ सज्जन के पुत्र रहते हैं। आप यहां मेमारी का काम करते हैं। आपकी आय ५ डालर प्रतिदिन है। आपने मुझे एक दिन अपने घर भोजनार्थ बुलाया था। आप न्यूयार्क के बाहर रहते हैं। चौमंज़ले पर आपका निवासस्थान है। आपके पास २ कमरे हैं। एक में सोने व बैठने का प्रबन्ध है दूसरे में भोजन करने और पाक का प्रबन्ध होता है। आपके बैठने के कमरे में सुन्दर गलीचा बिछा है। एक ओर उत्तम पीतल का पलँग पड़ा था जिस पर खूब साफ बिस्तर था, बीच में मेज थी ५, ६ अच्छी कुर्सियां थीं, २ आलमारियों में पुस्तकें भरी थीं और इधर उधर ताकों पर सजावट के सामान थे। ऐसे सामान अपने देश में ज़मींदार साहूकारों की तो क्या गरीबों को लूटनेवाले वकीलों तथा बड़ो २ तनख्वाह से भी सन्तोष न कर ऊपरी आमदनी करनेवाले डिप्टियों के घर में भी नहीं देखने को मिलते। इसपर तारीफ यह कि यहां उनके पास कोई नौकर भी नहीं सिर्फ गृहपत्नी ही भोजन इत्यादि बनाती हैं, बर्तन मांजती हैं और घर को भी साफ करती हैं किन्तु घर के सब पदार्थ आरसी के भांति चमकते थे और सब वस्तुएँ अपने २ स्थान पर थीं। अब आपके भोजन का हाल सुनिये! प्रथम तो चकोतरा जिसे माहुलाबी

भी कहते हैं आया फिर एक प्रकार का मांस आया, पीछे ३ प्रकार की तरकारी आई, फिर अंडों का बना सलाद आया, अन्त में फिर फल आये जिसमें अंगूर भी थे, अन्त के फल को छोड़ कर बाकी इनका रोज का भोजन था। कांटे, छुरी भी सभी उत्तम चांदी की कलई के थे, बर्तमान बर्तन भी साफ और दुरुस्त थे, पास ही नहाने का घर भी बड़ा साफ सुथरा था और घर में एक पियानो बाजा भी था। मैंने इस वृत्तान्त को विस्तारपूर्वक से इसी कारण लिखा है जिसमें यहां के रहन सहन का अन्दाज़ा अपने देशवासियों को लग जावे, यहां आमदनी भी अधिक है और इसीके साथ आवश्यकताएँ भी अधिक हैं। लोग कमाते भी हैं और व्यय भी करना जानते हैं, बटोर के रखते नहीं और यही कारण है कि उनकी आमदनी जब घटने लगती है तो हाथ पर हाथ धर वे सन्तोष कर चुप नहीं बैठते किन्तु आकाश पाताल एक कर देते हैं यहां तक कि देश के निरीक्षकों को झख मार कर उनकी बात सुननी पड़ती है और केवल सुननी ही नहीं उसी के अनुसार कार्य भी करना पड़ता है नहीं तो दूसरे ही दिन बड़े साहेब कान पकड़कर कुर्सी से उतार दिये जाते हैं और दूसरा मनुष्य वहां नियत किया जाता है। खैर।

हां मार्ग के ग्रामों में डाकघर, तार, बिजली की रोशनी टेलीफोन, नल का पानी, नल द्वारा मैल के बहाने का प्रबन्ध इत्यादि सब कुछ है यह यहां की मामूली आवश्यकताएं होगई हैं जिनके बिना काम ही चलना कठिन है।

मैंने उर्दू तथा हिन्दी के काव्यों में खिज़ां अर्थात् पतझड़ का वर्णन बहुत पढ़ा है किन्तु कभी देखने का सौभाग्य नहीं मिला था वह यहां देखने में आया। २०० मील की यात्रा में एक इञ्च भी ऐसी पृथ्वी नहीं मिली जो बरफ से न ढकी हो। एक वृक्ष भी ऐसा नहीं देखा जिस पर एक भी पत्ती हो, हां बेदमा और के पेड़ कहीं २ पत्ती सहित देख पड़ते थे किन्तु अधिकांश वे ही वृक्ष थे जिन पर शहतूत से पत्र लगे थे। किन्तु सब नीरस थे और सूख कर लालिमामिश्रित पीत वर्ण के होगये थे। उनपर सूर्य की लाल किरणें पड़ने से जो अनोखी शोभा देख पड़ती थी उसका वर्णन मेरी लेखनी नहीं कर सकती। अहा! ऐसा प्रतीत होता था कि मानो जंगल में आग लगी है और वह धीरे २ सुलग रहा है। हवा के झोंके से बरफ के रेणु धूल की भांति उड़ रहे थे और सारी प्रकृति में नीरसता छा रही थी केवल प्रचण्ड हिम का राज्य था। कैलासनिवासी शंभूनाथ के ताण्डवनृत्य के लिए यह स्थान बड़ा ही उपयुक्त जान पड़ता था।

चलते २ थक कर सूर्य भगवान अस्ताचल में निवासार्थ बैठ गये। देखते २ क्षितिज से सूर्य की अंतिम लालिमा का भी लोप होगया किन्तु आकाश में निशाकर का राज्य होगया। रजनीनाथ अपनी सोलहों कला से निकल आये और बरफ पर अपनी ज्योत्स्ना फैलाने लगे। रेल सर्प की भांति इधर उधर चक्कर लगाती जा रही थी जिससे चन्द्रदेव कभी सामने कभी पीछे कभी बगल में आजाते थे। इसीभांति थोड़ी देर में हम बोस्टन के निकट पहुंच गये। दूर से ही नगर का दृश्य देख पड़ने लगा। धीरे २ गाड़ी स्टेशन पर पहुंची और आज का दिन खतम हुआ।

२० पौष १९७१ सोमवार ४-१-१५।

शुक्रवार १ तारीख को प्रातःकाल प्रायः कुछ नहीं किया, सायंकाल युनिटेरियन चर्च Unitarian Church (यह एक प्रकार की धार्मिक संस्था है जो ईश्वर में विश्वास करती है किन्तु किसी पुस्तक को या किसी विशेष व्यक्ति को ईश्वरीय पुस्तक व मनुष्य का बचानेवाला नहीं मानती अर्थात् ईसा, मूसा, मोहम्मद इत्यादि महात्माओं

को वह समाज ईश्वर का पुत्र या पैगम्बर इत्यादि नहीं समझता किन्तु उन्हें महान् पुरुष जान कर उनका सन्मान करता है) में नव वर्ष के नवीन दिन का महोत्सव था वहीं के निमन्त्रण पर हम लोग इस नगर में आये थे, वहां गये। एक बड़े कमरे में वहाँ के सभापति महाशय हम लोगों को लेगये। हम लोग भी एक किनारे खड़े होगये। सैकड़ों नर नारी वहां आये। सभी सब से हाथ मिला अपना २ नाम इत्यादि बताते थे, यह एक पारस्परिक सम्मिलन था। एक घंटे के उपरान्त यह दृश्य समाप्त हुआ, उसके उपरान्त दो भारतवासी सज्जन उनमें से एक तो अध्यापक जगदीशचन्द्र बोस व दूसरे लाला लाजपतराय यहां उपस्थित थे। इन लोगों की ब्रह्मसमाज तथा आर्यसमाज के विषय में छोटी २ वक्तृताएं हुईं बाद में नीचे जा जलपान कर अतिथि लोग अपने २ घर गये। लेखक भी वहां से अपने निवासस्थान पर आ भोजन कर बाजार को गये। वहां "प्रकृति की पुस्तक" (The book of nature) नामक एक खेल देखने चला गया। यह चलती तस्वीरों के मिस से दिखाया गया था। ये तस्वीरें रेमांड एल० डिटमर (Raymand L. Ditmars) महाशय ब्रूपार्क पशुशाला (Zoological Gardens) के निरीक्षक की बनाई हुई उनके ३ वर्षों के अनुभव का फल है। इसमें नाना प्रकार के जीवों का हाल था।

२ तारीख शनिवार को दोपहर के भोजन का निमन्त्रण 'बीसवीं शताब्दी क्लब' (Twentieth Century Club) से मिला था। यहां भी मैं गया था। यहां कोई ३०० मनुष्य उपस्थित थे। दर्वाज़ा ठीक १ बजे खुला। दर्वाज़े के पास भोजन करने-वालों की भीड़ थी। अपने देश के जेवनार के सदृश थी, सभी पहिले भीतर घुसने के उत्सुक थे। धक्कमधक्का तो नहीं कह सकते किन्तु उसी के निकट दृश्य होगया था। भोजन के बाद फिर उपर्युक्त कक्ष के दो भागों में महानुभावों की वक्तृताएं हुईं। अध्यापक महाशय ने अपने अद्भुत आविष्कारों का वर्णन किया और लाला जी ने देश की स्थिति की चर्चा की इसके बाद ऊपर सुलफेबाजों का कोठरी में जमाव हुआ। इस छोटे से कमरे में कोई ५०। ६० विद्वान बैठे थे किन्तु सभी सिगरेट पी रहे थे। कमरा धूए से भरा था। सर्दी के भय से कोई दर्वाज़ा नहीं खुला था। इससे और भी कष्ट था। खैर यहां पर अनेक प्रश्न उपर्युक्त दोनों महाशयों से हुए अधिकतर प्रश्न लाला जी से हुए जिनका उत्तर उन्होंने अपने तजुर्बे के कारण बड़ी उत्तमता से दिया। इन प्रश्नावली से यह मालूम हुआ कि यहां के विद्वानों को भारत का कुछ समाचार नहीं मालूम है और जो कुछ उन्हें मालूम है वह नितान्त भ्रममूलक व स्वार्थियों द्वारा ही ज्ञात हुआ है। उन लोगों को यह जानकर आश्चर्य होता था कि भारतवासी अपने बच्चों को मार नहीं डालते अथवा उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में २ करोड़ मनुष्य केवल क्षुधा से मर गये किन्तु उसी समय २५ वर्षों में करोड़ों मन गल्ला प्रति वर्ष विदेश जाता रहा अथवा विदेशियों तथा स्वदेशियों के बीच में झगड़ा होने से न्याय नहीं होता अथवा देश के बने हुए सूती माल पर देश में ही चुंगी लगती है जिसमें विदेशी माल को हानि न हो इन बातों को जान कर उन्हें अचम्भा होता था। सायंकाल यह सभा समाप्त हुई और मैं वहां से उठ भोजन कर महाकवि शेक्सपियर का नाटक "किङ्ग जान" देखने चला गया।

रविवार ३ तारीख को मध्याह्न भोजन के उपरान्त महात्मा 'अमरसन्त' Emerson की समाधि देखने गया। नगर के बाहर १२ मील पर एक ग्राम है उसी के निकट एक श्मशान है जिसका नाम स्लीपी हालो Sleepy hollow निद्रा खंड है उसी में इस महात्मा की समाधि है। समाधि पर एक बिना गढ़ा हुआ सुन्दर संगमर्मर का ढोंका रक्खा है। आसपास हजारों

समाधियां हैं यहां जाने में बर्फ के ऊपर चलना पड़ा था जिस प्रकार बालू में पैर धँसता है उसी प्रकार बिना २ पैर हिमबालुका में धँस जाते थे। कई जगह पैर फिसक जाने से गिरा भी। सर्दी बहुत थी रात्रि को कहीं नहीं गया।

बोस्टन नगर में ही प्रथम २ युरोपीय लोगों ने आकर अपना अधिकार इस देश में फैलाया है इससे यह नगर बड़े ऐतिहासिक महत्व का है।

जब अठारहवीं शताब्दी के मध्य में अंगरेज़ों के ज़ुल्म से तंग आकर एमेरिका निवासियों ने दासत्व शृङ्खला को तोड़ने के लिए कटिबद्ध हो कृपाण उठाई थी वह भी प्रथम २ इसी नगर से प्रारम्भ हुई थी। स्वाधीनता के युद्ध के चिन्ह व स्मरणस्तूप यहां अनेक हैं जिन्हें देख हृदय गद्गद हो जाता है। संसार की विचित्र लीला है 'काने चाटे कनौड़े मेंट' की कहावत बहुत सत्य है। गुलामी के पंजे में पड़े हुए देशों में स्वतंत्रता की लड़ाई जब प्रारम्भ होती है तो वह प्रथम २ थोड़े ही मनुष्यों का समूह हुआ करता है। किन्तु यदि स्वतन्त्रता की विजय हुई तो यही छोटा दल देशभक्तों के दल के नाम से समय के पत्र पर अंकित होता है और आनेवाली जाति इन्हें सम्मान से देखती हैं, इनका अनुसरण करती है और ये युवकों के हृदयमन्दिर में स्थान पा पूजे जाते हैं किन्तु यदि दुर्भाग्यवश गुलामी का जुआ हटानेवाले वीरों की हार होती जाती है तो वेही विद्रोही बागी पुकारे जाते हैं और भविष्य जाति उनके नाम से जालिमों के डर के मारे डरती है। अपने को प्रतिष्ठित समझनेवाले लोग इन्हीं देशभक्तों को दुष्ट, दुरात्मा, पापी कहकर पुकारते हैं और उनसे घृणा करते हैं। हा! काल की विचित्र गति है। क्रमशः।

रे मन !

[लेखक—श्रीयुत भगवन्नारायण भार्गव।]

काहे खिन्न होय तू रे मन !
आलसनिद्रा सोवै।
सांसारिक दुख दल लखि लखि किमि
विह्वल तू अब होवै॥
ईश्वर आराधन मधि लगि जा
आपद सब नस जैहैं।
या जग के परिवर्तन तोकों
नेकहुं क्लेश न देहैं॥ १॥

सदुपकार महँ तन मन धन तें
निशिदिन सकल बितावो।
अन्तरीय आनँद रस पाके
जीवन फल तुम पावो॥
मद मत्सर कामादि पाप सब
अबहिं चित्त ते काढ़ो।
सात्विकभाव साधि सत सों पुनि
प्रेम करो तुम गाढ़ो॥ २॥

सत्य शान्ति जल ते अपुण्य की
पावक भ्रान्ति बुझावो।
"सत्यं जयति नाऽनृतं" ऐसो
जग कों वाक्य सुनावो॥
धर्म हेतु तुम असहनीय हू
घोर दुःख सह जावो।
और "स्वधर्मे निधनं श्रेयः"
येही गायन गावो॥ ३॥

आत्मदेश को मान कबहुं प्रिय !
क्षीण होन ना दीजो।
"मानधनानां मानं प्राणाः"
याको सुमरन कीजो॥
आलस खेद त्यागि जगमाहीं
कर्मवीर बन जावो।
"काज सिद्धि उद्योग ते होवै"
इमि कहि सबनु जगावो॥ ४॥

स्वार्थत्याग पुरुषार्थ आपनो
तेज अहित प्रकटा दो।
और अनुद्यम घोर घटा को
घटा २ बिनसा दो॥
विद्या सुरस पान ते कबहूं
तनिकहु नाहिं अघावो।
अरु सत-ज्ञान-गान के सच्चे
गायक तुम बन जावो॥ ५॥

अशोक के शिलालेख।

[लेखक—श्रीयुत रमाशंकर अवस्थी।]

भारत के प्राचीन इतिहास के स्मारक जैसे ऊँची मीनारें (pyramids) हैं और चीन के पुरातन चिह्न दीवारें कहकहा आदि हैं, वैसे ही यदि कहा जाय कि, भारतवर्ष के एक समय के इतिहास-प्रदर्शक अशोक सम्राट् के स्तम्भ और शिला-लेख हैं तो कुछ अत्युक्ति नहीं होगी। परन्तु, इनमें कुछ विशेषता भी है क्योंकि, केवल इनसे प्राचीन इतिहास का स्मरण ही नहीं होता किन्तु कुछ सच्चा ज्ञान भी होता है। इन शिला-लेखों से भारतवर्ष के उस समय का ज्ञान होता है जब कि, भारतवर्ष का कीर्ति-मार्त्तण्ड चीन, फारस और ग्रीस आदि देशों तक विस्तृत था। इनसे इस देश की पुरातन राजनीति, शासननीति तथा व्यवहारनीति का भी कुछ पता लगता है। सम्राट् अशोक के इन शिला-लेखों में यद्यपि सब अथवा अधिकतर धार्मिक राजाज्ञाएं ही हैं परन्तु इनके बीच में कहीं कहीं पर कुछ इतिहास-चर्चा भी है, जो अशोक के समयस्थ देशों और शासकों का कुछ परिचय कराती है।

सम्राट् अशोक ने अपने राज्याभिषेक के १३ वा १४ वर्ष पश्चात् चौदह राजाज्ञाएं प्रकाशित की थीं* उन्हीं को शिलांकित कराके भिन्न भिन्न स्थानों पर स्थापित कराई थी। पूर्ण सम्भावना है कि, उनमें से कुछ शिला-लेखों का नाम निशान मिट गया हो परन्तु, आज भी जिन स्थानों में ये शिलाएँ हैं वे स्थान कपूर्दागिरि (अटक के पश्चिमोत्तर में,) खालसी के निकट (जमुना के तट पर,) गिरिनार (गुजरात में,) धौली (उड़ीसा में) और जौगदा (उड़ीसा के दक्षिण में चिल्का झील के तट पर) हैं। इन शिलाओं में अंकित १४ राजाज्ञाओं का सारांश निम्न लिखित है :—†

(१) जीवहत्या की मनाही।

(२) जड़ी बूटी आदि औषधियों के संवर्द्धन करने की सम्मति तथा उन देशों के नाम जिनमें इनका प्रबन्ध किया गया है।

(३) धार्मिक समारोह (अनुसन्धान) होने का आदेश।

---

* Les Inscription de Piyadasi. Mr. Senart.

† 1st Valume of Corpus Inscriptionum Indicarum ; 1877.

(४) धर्मप्रतिष्ठा की घोषणा ।

(५) धार्मिक मंत्रियों तथा प्रचारकों की नियुक्ति की विज्ञप्ति ।

(६) मनुष्यों के सामाजिक तथा गृहजीवन के सम्बन्ध में उचित शिक्षा देनेवाले उपदेशकों की नियुक्ति की विज्ञप्ति ।

(७) संसारव्यापी धार्मिक सहिष्णुता की घोषणा ।

(८) मृगया आदि मनोरंजक कार्यों के स्थानों में धार्मिक और पवित्र मनोरंजक कार्यों के करने का उपदेश यथा दया, दान और सेवा आदि ।

(९) धार्मिक शिक्षाओं तथा उचित उपदेश करने की प्रतिष्ठा ।

(१०) सत्य धर्म प्रचार में सच्ची वीरता ।

(११) दान करने से भी धार्मिक उपदेशों के करने की प्रशंसा अधिक बताई ।

(१२) संसारव्यापी धर्म (बौद्ध) पर विश्वास करने और ग्रहण करने का निवेदन किया ।

(१३) कलिंग की जीत तथा पांच ग्रीक राजाओं की सूची और इन देशी तथा विदेशी राज्यों के नाम जहां धर्मप्रचारक भेजे ।

(१४) इन राजाज्ञाओं को शिलाओं पर अधिक संख्या में खुदवाने और प्रकाश करने का निवेदन किया ।

पूर्वोक्त राजाज्ञाओं में इतिहास की दृष्टि से द्वितीय, पंचम तथा तेरहवीं आज्ञा महत्वपूर्ण है ।

दूसरी आज्ञा में अशोक के समय के हिन्दू राजों के नाम दिये गये हैं जिनमें औषधि प्रचार किया गया था ।

तक्षशिला, तासली और समाया आदि तो अशोक के ही हस्तगत थे परन्तु इनके अतिरिक्त यवन (बैक्ट्रिया), कम्बोज (काबुल), गान्धार (कन्धार), सौराष्ट्र (काश्मीर आदि), महाराष्ट्र (महाराष्ट्रदेश), पेतनिका (दक्षिण भारत-भाग), पुलिन्द (दक्षिण भारत-भाग), प्रतिस्थान (पूना आदि), अन्ध्र (दक्षिण भारत-भाग), भोज (मालवा), नाभक और नाभापन्ती आदि चौदह राज्यों पर भी सम्राट् अशोक के प्रभुत्व की छाया थी और इन राज्यों में भी औषधि प्रचार किया गया था । भारत के अन्तिम दक्षिणीय भाग में कोला, पाण्ड्य, सत्यपूत, कलशपूत और टम्बापन्ती आदि राज्य स्वतन्त्र थे पर वहां भी अशोक की दूसरी आज्ञा का प्रचार था ।

पंचम तथा कई आज्ञाओं में अशोक के अफसरों के नाम आये हैं वे निम्नलिखित हैं । जैसे पुरुष (कार्यकर्ता), धर्ममहामात्र (धर्म प्रचारक), प्रदेशक (सूबेदार), प्रतिवेदक या अन्तमहामात्र (धर्मोपदेशक) और विबुध (धार्मिक प्रचारक) आदि हैं ।

तेरहवीं आज्ञा में उन ग्रीक राजाओं के नाम हैं जिनके साथ अशोक की सन्धि हुई थी।

अन्त्योक (Antiochus) सीरिया का, तुरमाये (Ptoleunj) मिश्र देश का, अन्तकीन (Antigona) मेसीडोनिया का, माका (Magas) मारीन का, और सिकन्दर (Alexander) इप्रिस का राजा था।

इन १४ आज्ञाओं के अतिरिक्त कई और आज्ञाएं प्रकाशित की गई हैं ।

एक शिलांकित आज्ञा धौली और जौगढ़ा में प्राप्त हुई है जिसमें अशोक की आज्ञा तुसाली राज्य के प्रबन्ध के सम्बन्ध में हैं । उसी आज्ञा में उज्जयिनी तथा तक्षशिला में धार्मिकोत्सव प्रति तृतीय वर्ष में होने की घोषणा है । एक दूसरी आज्ञा भी इन्हीं दो स्थानों में प्राप्त है जिसमें तुसाली और समाया राज्यों के शासननियम अंकित हैं ।

दो राजाज्ञाएं रूपनाथ (जबलपुर के निकट) और सहसराम (बनारस के दक्षिण में) प्राप्त हुई

हैं, जिनमें २५६ प्रचारकों को भिन्न २ देशों में भेजने की विज्ञप्ति है।

बैरत में (दिल्ली के निकट) एक राजाज्ञा में अशोक के धर्म विश्वास तथा प्रचारकों के कार्य की चर्चा है।

प्रयाग के स्तम्भ में जिसमें अशोक के बाद कई अन्य राजाओं के लेख हैं, अशोक की द्वितीय रानी का भी एक लेख है जिसमें उन्होंने धर्म शिक्षा के सम्बन्ध में उपदेश किया है।

कुछ गुफाओं के ऊपर भी खुदे हुए लेख मिलते हैं जिनमें नागार्जुनी (गया के निकट) खण्डागिरि (कटक के दक्षिण में) रामगढ़ (मध्यप्रदेश में) और बारबर की गुफाएं विशेष परिचित हैं। बारबर के गुफा-लेख में यह लिखा है कि, यह आज्ञा अशोक के वंशज दशरथ के द्वारा अंकित कराई गई है, और खण्डागिरि तथा उदयागिरि की आज्ञाएँ कलिंग के राजा की खुदवाई हुई हैं।*

स्तम्भ पाँच हैं और इनमें दो दिल्ली में, एक प्रयाग में, एक लौरिया में (भूपाल) और एक सांची में (भूपाल) हैं। इन सब में अशोक की ६ आज्ञाएं एक ही प्रकार की अंकित हैं किन्तु दिल्ली के स्तम्भ में दो अधिक अंकित हैं। इसी स्तम्भ को फीरोज की लाट कहते हैं।

स्तम्भों पर की सब आठ आज्ञाओं की सूची यह है।

(१) अपने धार्मिक कार्यों को हृदय से और उत्तरदायित्व के साथ करने का उपदेश किया।

(२) धर्म को दया, दान, सत्यता और पवित्रता के साथ करने को कहा।

(३) स्वयं प्रसन्नता और पाप से बचने को कहा।

(४) रज्जुकों (उपदेशकों को) प्रजा को धर्म उपदेश करने को सौंपा।

(५) कई प्रकार के विशेष जीवों की हत्या को मनाही की।

(६) इच्छा प्रकट की कि, प्रजा बौद्ध हो जावे।

(७) आशा की कि, यह नियम जनता को सुपथ-प्रदर्शक होंगे।

(८) अपने किये हुए कामों को गिनाया और अपनी धर्मवृत्ति के लिए तथा प्रजा को चित्त से धर्मानुगमन के लिए कहा।

प्रार्थना।

प्रभु निज विमल ज्योति दिखरावो।
बुद्धिपूर्वक करें कर्म हम,
हिय की मैल मिटावो ॥ १ ॥
छल अरु कपट कुटनीती कहँ
बेगहिं काट हटावो ॥ २ ॥
आत्मठगी कर लोडर बनने
की अभिलाष दुरावो ॥ ३ ॥
अहं वयं के 'दम्भ तिमिर हित'
विनय रविहिं प्रकटावो ॥ ४ ॥
आह मिटै "आमीण" जनों की
यह सुधि सबहिं दिलावो ॥ ५ ॥

---

* 1st Volume of corpus Inscriptionum Indicarum ; 1877.

(२)

[ग्रामीण बोली]

अब हम प्रभु तजि कहवां जाईं ।
स्वारथ में सब अपने भूले
केसे व्यथा सुनाईं ॥ १ ॥

तजैं गांठि मतलब सब हमको
कौन कौन दुख गाईं ॥ २ ॥

मेला, ठेला, रेल, कचहरी,
सगरौं मुक्का खाईं ॥ ३ ॥

मांगे सहेबवा मारि रुपैया
तुहईं बतावा कहां पाईं ॥ ४ ॥

ऐसन मन होला भागि उहां से
तोहरे पसवां आईं ॥ ५ ॥

दिन भर करत करत मरिजाईं
तबौ न पेट भर खाईं ॥ ६ ॥

लड़िका औ मेहरारू रोवै
रतिया रोइ बिताईं ॥ ७ ॥

तुहऊं झूठै ईश्वर बनलवाय
तोहसे बहुत का बताईं ॥ ८ ॥

उठा चला संगे हमरे तू
भारत दशा देखाईं ॥ ९ ॥

जे देखी ते जानी दुख के
का "ग्रामीण" सुनाईं ॥ १० ॥

"ग्रामीण" ।

महात्मा गोखले ।

[लेखक—श्रीयुत भगवन्नारायण भार्गव ।]

जो साँचो स्वदेश-अभिमानी,
जो विद्या अनुरागी ।
जाको आतम तन मन धनते,
देशभक्ति प्रिय लागी ॥
जो राखत राष्ट्रीयभाव जिय,
ज्यहिं स्वधर्म अति प्यारो ।
सोइ सुजन परम उपकारी,
प्रिय तारो देस हमारो ॥

आज भारतमाता का हृदय घोर दुःख से भर रहा है, राष्ट्रीयता के नभमण्डल से एक मुख्य नक्षत्र का अस्त होगया, कर्मण्यता का क्षेत्र विक्षिप्त और तेजहीन प्रतीत होता है, देशसेवा के सरोवर के कमल कुम्हलाये दीख पड़ते हैं, उद्योग और अध्यवसाय के सेवकों में घबराहट मालूम होती है, परोपकार के नाटकपात्रों ने दृश्य के बिना पूरे हुए ही पटाक्षेप कर दिया है । शोक ! शिक्षा और स्वराज्य का मधुरगान गानेवाला मराल गोपाल कलरव को बन्द करके अपने धाम पहुंच गया परन्तु स्मरण रहे कि उस ध्वनि की गूंज भारत से न जाने पावेगी ।

जिनकी नस २ में प्राचीन वीर्यधुरन्धर महाराष्ट्रों का रक्त सञ्चरण कर रहा था, जो नित्यप्रति स्वार्थनिष्ठा के मूल के नाश के प्रयत्न में लगे रहते थे और जो प्रेमपूर्वक कर्तव्यतत्परता की बेल का सिञ्चन किया करते थे वेही सर्वप्रिय भारतमनमोहन गोपाल कृष्ण इस वसुधा को त्याग कर चले गये ।

इन्हीं भारत-हृदय-सरोज-विकसानेवाले महात्मा महापुरुष ने लोकोपकारार्थ सन् १८६६ ईसवी में एक पवित्र विप्र कुल में जन्म लिया था । बाल्यावस्था में ही आपको भावी महत्ता

के शुभ लक्षण आपके मोददायी आकार से प्रकट होते थे। यद्यपि आपके पिता जी की आर्थिक दशा बहुत अच्छी नहीं थी तथापि "शिक्षाप्रेमी" गोखले के पिता ने आपको पढ़ाना आरम्भ किया। प्रारम्भिक शिक्षा के पश्चात् स्थानीय कालेज से सन् १८८२ में एफ० ए० पास किया और पूना के डेकन कालेज में बी० ए० पढ़कर बम्बई के एलफिन्सटन कालेज में परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। आपकी गणना सदैव उत्तम श्रेणी के विद्यार्थियों में की जाती थी और आपके अनुकरणीय सच्चरित्र से सहपाठियों ने अनेकों लाभ उठाये। यद्यपि आपने अंगरेज़ी शिक्षा भली प्रकार से पाई थी तथापि आज कल के अनेकों अंग्रेजी पढ़े हुए नवयुवकों के समान आप पाश्चात्य बातों के अन्ध, अधम व राष्ट्रीय भावहीन अनुगामी कदापि स्वप्न में भी नहीं थे। कालिज छोड़ने के पश्चात् आप "शिक्षा सम्बन्धी दक्षिणी सभा" (Deccan Education Society) के सदस्य हो गये क्योंकि शिक्षा से तो आपको जन्म से ही उत्कृष्ट प्रेम था। उसी समय आप फर्गूसन कालिज पूना में इतिहास व सम्पत्तिशास्त्र के अध्यापक होगये। फिर आपने बीस वर्ष तक ७५) मासिक वेतन पर उसी महाविद्यालय की सेवा व उसीके द्वारा देशोपकार करने के लिए प्रतिज्ञा की। आप कुछ काल पश्चात् उसके प्रिंसिपिल होगये। आपने इस महाविद्यालय के लिए बहुत काम किया। वहीं आप न्यायाधीश रानाडे के कृपापात्र हुए और उनसे विविध उपदेशों को पाकर उन्होंने संसार के नाटकालय में उनका भली प्रकार प्रयोग किया। १४ वर्ष तक इन दोनों महापुरुषों ने साथ २ सम्पत्तिशास्त्र व राजनीतिशास्त्र का अध्ययन और मनन किया और भारतवर्ष के लिए अनेक श्रेयस्कर कार्य किये। जिन दिनों आप अध्यापक थे उस समय आप देशसेवा व परोपकार के कार्यों से सर्वदा सम्बन्ध रखते थे। सन् १८८७ में न्यायाधीश रानाडे के इच्छानुसार आप त्रैमासिकपत्र (Quarterly Juarnal) का सम्पादन करने लगे और फिर देशसुधार के लिए 'सुधारक' के उपसम्पादक होगये।

उसके बाद Bombay Provincial Congress (बम्बई की प्रान्तीय कांग्रेस सभा) के मंत्री चार वर्ष के लिए होगये और फिर १८९७ में भारत की राष्ट्रीय महासभा (Indian National Congress) के उपमन्त्री होगये। इस अवस्था में आपके उत्कृष्ट ज्ञान और कर्तव्यपरायणता का मनुष्यों पर ऐसा गम्भीर प्रभाव पड़ा कि वे लोग आपको ज्ञान का सूर्य समझने लगे। उसी वर्ष बम्बई की सार्वजनिक सभा ने आपको भारतीय आर्थिक दशा व व्यय के निमित्त कमीशन में साक्षी देने के लिए चुना—इस विषय में आपने इङ्गलैंड जाकर महती योग्यता प्रकट की। उस समय जबतक आप वहां रहे बराबर भारतीय विषयों पर ही व्याख्यान देते रहे। इंगलैंड से लौटने के बाद आप १९०० ई० में बम्बई के लाट की कौंसिल के मेम्बर होगये। सन् १९०२ में आपने फर्गूसन कालेज से आज्ञा पाकर वहां के मुख्याध्यापक की पदवी २५) मासिक पेन्शन पर छोड़ दी पर उसी वर्ष आप सर फीरोज़शाह मेहता के स्थान में बड़े लाट की कौंसिल के मेम्बर होगये तब से बराबर आप निर्वाचित होते रहे।

बजट पर आपकी प्रथम वक्तृता जो २६ मार्च १९०२ ई० में हुई साधारण पुरुषों व राजकीय जनों की मति में बड़ी प्रभावशाली समझी गई। तब से अब तक आपने बजट के सम्बन्ध में बारह वक्तृताएँ दीं जिन्होंने भारतसचिव और बड़े लाट को आश्चर्य में डाल दिया। सन् १९०५-०६ के बजट के सम्बन्ध में लार्ड कर्ज़न ने लिखा था कि "ईश्वर ने आपको असाधारण योग्यता से युक्त किया है जिसको आपने अपने देश की सेवा में स्वतन्त्रतापूर्वक लगा रक्खा

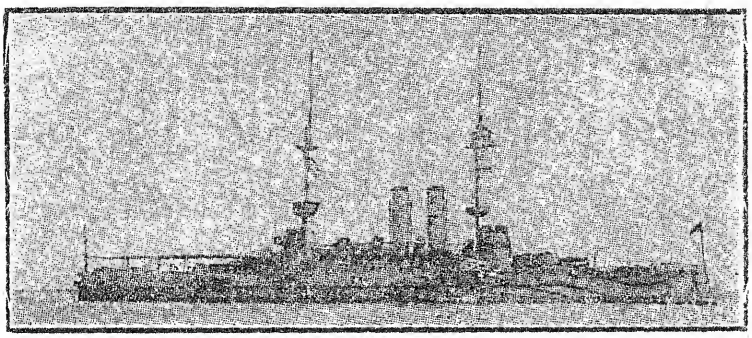

"गोलियथ" नामक जहाज़ ।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग ।

है।" जब लार्ड मिण्टो ने सन् १९०६ की बजट-सम्बन्धी वक्तृता सुनी तब उन्होंने कहा था कि "इङ्गलैंड के अग्रगण्य वक्ताओं में भी मि० गोखले के समान योग्यपुरुष शायद ही कोई हो।"

आपने बड़े लाट की कौंसिल में भारत के हित के लिए बहुत से अच्छे अच्छे काम किये जैसे सेना सम्बन्धी व्यय के आधिक्य की निन्दा, इस्पातकला (Irrigation Engineering) में अधिक व्यय पर ज़ोर देना, भूमि पर राजकीय कर की न्यूनता के लिए प्रार्थना, नमक पर टैक्स कम करने के लिए उद्योग करना, वैज्ञानिक रीति से कृषि के उत्कर्ष के लिये कृषिसम्बन्धी बैंकों की स्थापना के हेतु विज्ञप्ति, औद्योगिक और वैज्ञानिक शिक्षा के लिए प्रयत्न और १९११ में आपने 'प्रारम्भिक शिक्षा' का बिल पेश किया था। जब आपने टैक्स लगाने के सिद्धान्त में परिवर्तन के लिए ममस्पर्शिनी वक्तृता दी थी तब सर गाई फ्लीटवुड विल्सन ने यह कहा था "माननीय मि० गोखले को देखकर मुझे ग्लैडस्टन का स्मरण आता है। एक बार अधिक कार्य करने से ग्लैडस्टन अस्वस्थ होगये। उनसे डाक्टर ने आराम करने के लिए कहा तो उन्होंने डाक्टर के उपदेश पालनार्थ टर्की भाषा पढ़ना आरम्भ कर दिया। उसी प्रकार मुझे कोई संदेह नहीं कि मि० गोखले के वैद्यों ने इन्हें अधिक काम करने को मना किया है, उसी आज्ञा को मानने के लिए इन बचे हुए पन्द्रह मिनटों में आपने सब चीज़ों पर टैक्स लगाने के सिद्धान्त की आलोचना के समान छोटे से विषय पर वक्तृता दे डाली।" और उन्होंने यह कहा था कि "बजटसम्बन्धी सभा मि० गोखले के बिना ऐसी है जैसे शेक्सपियर का 'हैमलेट नामक नाटक हैमलेट बिना" अथवा मुद्राराक्षस नाटक 'राक्षस' के बिना।

परन्तु आपकी निपुणता केवल बजट व कौंसिल ही से परिबद्ध न थी। आपके वास्तविक लोकहितकर कार्य तो देश की उत्तेजना और उसकी उन्नति में दृष्टिगोचर होते हैं:—

१२ जून सन् १९०५ में आपने सर्वेंटस् आव इंडिया सुसाइटी नामक सभा स्थापित की जिसका प्रधान स्थान पूना में रक्खा गया। इसका उद्देश्य यह था कि अपने देशवासियों को नागरिकता (Citizenship) के कर्तव्य और उत्तरदायित्व की शिक्षा दी जावे। इसी वर्ष आप कांग्रेस के सभापति निर्वाचित किये गये और "रानाडे साम्पत्तिक संस्था" (Ranade Economic Institute) स्थापित की गई। फिर आप बम्बई की ओर से भारतीय राजनैतिक दशा के विवेचन के लिए इङ्गलैंड भेजे गये, वहां पर आपने पचास दिनों में पैंतालीस वक्तृताएँ दीं जिनसे वहां के विद्वज्जन मुग्ध और चकित हो गये। वहां से जब आप अपने गृह को लौटे तो काशी कांग्रेस के सभापति बनाये गये। १९०६ ई० में कांग्रेस के प्रतिनिधि होकर इङ्गलैंड पधारे और लार्ड मार्ले के साथ अपरिबद्ध शासनप्रणाली के सम्बन्ध में बहुत मननपूर्ण बातें कीं—वहां से जब आप लौटे तो आपके एक महान् कार्य के परिणामरूप सूरत सभा का अधिवेशन न हुआ।

आप जब सन् १९०८ में इङ्गलैंड पधारे तो लार्ड मार्ले को आपने भारतीय राजनैतिक जटिल समस्याओं के सुलझाने में बहुत सहायता दी।

आपके दो प्रसिद्ध कार्य भारत कभी नहीं भूलेगा एक तो अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा-सम्बन्धी उद्योग, दूसरे दक्षिण अफ्रिका के भारतीयजनों की राष्ट्रीय अवस्था सुधारसम्बन्धी महती चेष्टा। १९१२ में आप दक्षिण अफ्रिका जाकर जनरल बोथा से मिले और आपने भारत का गौरव बचाया—उस समय यद्यपि आप रुग्णावस्था में थे तथापि कुछ परवाह न की और यही कहा कि एक पुरुष के लिए समस्त भारत हानि नहीं उठा सकता है।

इसके पश्चात् बड़े लाट ने कहा था कि अफ्रिका सम्बन्धी असुविधाएँ मि० गोखले की सहायता से व उनकी राजनीति के नियमानुसरण से शान्त हुई। यद्यपि आपका सार्वजनिक प्रारम्भिक शिक्षा का प्रस्ताव प्रचलित न हो सका तथापि भारतीय जनों के हृदयों में उसका अंकुर जम गया है और वे उसके प्रचार की सिद्धि के लिये मार्ग पाकर सोत्साह प्रयत्न करेंगे। मार्ग प्राप्त करना ही दुष्कर होता है जब किसी महापुरुष ने इस विषय में सहायता दे दी तो फिर साहसी जनसमुदाय उसके लिये हृदय से चेष्टा करने लगता है।

आपके जीवन के अन्तिम वर्ष पबलिक सर्विस कमीशन के सम्बन्ध में व्यतीत हुए। जब आप रायल कमीशन के मेम्बर नियुक्त हुए तब आप पंद्रह हज़ार रुपया प्रति वर्ष प्राप्त होने के अधिकारी हुए थे परन्तु आपने जब देखा कि इस अवस्था में बड़े लाट की कौंसिल के सभ्य का पद त्यागना पड़ेगा त्योंही शीघ्र आपने उसको अस्वीकार किया और उस सभा में रहते हुए कमीशन का कार्य करने लगे। सन् १९१३-१४ में आप इस कमीशन की रिपोर्ट तैयार करने में सहायता देने गये थे परन्तु शोक! कि वह रिपोर्ट अब उनके हस्ताक्षर के बिना ही निकलेगी। यह निस्सन्देह सत्य है कि यदि आप जीवित रहते तो भारत और इङ्गलैंड का शासन-विधि-सम्बन्धी सम्मेलन अवश्य करा देते।

सबसे बड़ा उपकार आपने "भारत सेवक समिति" नामक सभा से किया जिसका पूर्ण उद्देश्य यही है कि संसार के कार्यक्षेत्र में "राजनीतिज्ञ सन्यासियों" को भेजे जो कि इस देश के राष्ट्रीय जीवन की विच्छिन्न शक्ति में ऐक्य उत्पन्न करें। केवल हिन्दू मुसलमान व ईसाईयों ही के नहीं किन्तु आप समस्त भारतीय जनों के प्रेमी थे। आप भली प्रकार जानते थे कि यदि हम अपने देश के शासन में भाग लेना चाहते हैं तो प्रथम हमको राजनीतिज्ञान, बहुत विद्याध्ययन व आत्मत्याग परमावश्यक हैं। आपने समस्त भारत से प्रार्थना की थी कि जो लोग इसमें केवल धर्मभाव से कार्य करना चाहें वे इसके सदस्य हो जावें, बस आपके शब्द सुनते ही अनेकों आत्मत्यागी परोपकारी जन प्रतिवर्ष उस सभा के सदस्य होते जा रहे हैं। इस सभा का मुख्य स्थान भी बहुत अच्छे नगर (पूना) में रक्खा गया है जहां राजनीति ज्ञान प्राप्त करने के हेतु एक पुस्तकालय है जो समस्त भारत में श्रेष्ठ है। इस सभा में एक सभ्य होता है जो इसका अध्यक्ष कहलाता है, कुछ साधारण परिसभ्य होते हैं और कुछ सदस्य शिक्षाप्राप्त्यर्थ भी रहते हैं। यह सभा हम लोगों को शिक्षा देती है कि हम स्वच्छन्द सेवा व आत्मत्याग द्वारा मातृभूमि से हार्दिक प्रेम प्रकट करें, विविध जातियों में प्रेमभाव उत्पन्न कर और औद्योगिक व वैज्ञानिक शिक्षा में विशेषतः स्त्रियों व नीच जातियों की शिक्षा में सहायता दें। हम लोगों ने अभी इसका दस वर्ष का ही काम देखा है अभी भविष्य काल में इसके लिए दीर्घ उन्नतिक्षेत्र पड़ा हुआ है।

आपके अनुभवशील और तेजोपूर्ण कार्यों को देखकर हृदय प्रेमतरङ्गों से उमड़ने लगता है। आप कठिनाइयों से कदापि हतोत्साह नहीं हुए क्योंकि "विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रति हन्यमानाः प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति" अपने मार्ग में आए हुए विघ्नों को काटकर अपना मार्ग सरल और सुगम बना लेते थे। सन् १९०५ से ०९ तक जो घोर असुविधाओं का समय था आपने अपनी बुद्धिप्रखरता और साहस, आत्मसंयम और शान्ति से सब दुर्घटनाएँ दूर करदी थीं क्योंकि न तो आप राजविरोधी थे न आप राजा के शब्दमात्रों के अनुकरण करनेवाले थे। आप राजनीति को

अच्छी प्रकार समझकर कार्य करते थे। आप किसी अन्याय को सहन नहीं कर सकते थे जो सत्य होता था बेधड़क कह देते थे। सन् १९०८ के बजट की वक्तृता में आपने बड़े लाट से कह दिया था कि "सरकार अवश्यमेव सब गड़बड़ों को न्याय से सहसा दबा सकती है परन्तु वास्तव में न तो पुलिस के डंडे की न सिपाही की बरछी की किन्तु केवल राजनीतिज्ञता, बुद्धिमत्ता और साहस की ही आवश्यकता है। और मनुष्यों को इस योग्य बनाना चाहिये कि वे अपने कल्याण को समझें ऐसा करने के लिए कुछ शासनविधि के अन्तरङ्ग भागों का पूरा २ परिवर्तन करना पड़ेगा।" यदि अब वह परिवर्तन हो गया है तो हमको समझना चाहिये कि यह सब गोखले की उस शक्ति का प्रभाव है जो इङ्गलैंड के आन्तरिक भाव भारत को और भारत की वास्तविक दशा इङ्गलैंड को समझाती थी। राज्यसम्बन्धी दो विरोधी पक्षों से आप बहुत दूर थे, आप मध्यस्थ थे, सदा अपनी बुद्धि अन्तःकरण व सत्य के अनुगामी थे। आपही के देशवासी जब आपसे द्रोह करते थे तो आप उनको अपनी सहनशीलता और शान्तात्मा से अशान्तिरहित करते थे। आपको इसकी कुछ परवाह न थी कि लोग आपकी निन्दा करें, आपका साथ छोड़ दें, आपका निरादर करें यहां तक कि आपका देशीय कार्य भी बन्द कर दें तौभी कुछ नहीं परन्तु आप वह पुरुष न थे कि जो अपने देशोत्कर्ष के मूल से हाथ धो बैठते। जो कुछ आप स्वयमेव भारत की उन्नति के हेतु उचित समझते थे वही करते थे और कहते थे। सन् १९०७ में प्रयाग की वक्तृता में आपने कहा था कि "मैं चाहता हूं कि हमारे देशवासी अपने देश में वैसे ही होवें जैसे और देशों में वहां के मनुष्य; जाति आदि का विचार त्याग कर उन्नतिमार्ग पर सब मिलकर चलें। भारत समस्त राष्ट्रों में राजनैतिक, औद्योगिक, धार्मिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक और कलासम्बन्धी उच्चस्थान पावे" आपने अपना जीवन भारत की राष्ट्रीय दशा व शासनविधि सुधारने के सम्बन्ध में व्यतीत किया। कौन्सिल में यद्यपि आपके विरोधी बहुत थे आपको सलाह देनेवाला कोई न था तथापि अपनी योग्यता व अद्वितीय श्रम से आपने राजनीति व शासनप्रणाली का परिपक्वज्ञान प्राप्त कर लिया था।

वास्तव में ईश्वर के सिवा और किसी की सहायता के आप भूखे न थे क्योंकि आप अपनी कुशाग्र व कुशल बुद्धि से परिश्रम व अध्यवसाय का सदा पूरा २ सेवन किया करते थे। आपका उपदेश भी सबके लिये यही रहता था कि परिश्रमी बनकर देशोपकार करो और धन, द्रव्य, पद और प्रतिष्ठा के लालची न बनो। इस बात को आपने सिद्ध करके भी दिखला दिया। जब आपको के० सी० आई० ई० की पदवी सम्राट् की ओर से दी जानेवाली थी तो आपने स्वाभाविक नम्रतापूर्वक उसे अस्वीकार किया।

एक बार जब आप श्रीमती सरोजनी नायडू के साथ चाँदनी रात में बैठे थे आपने उनसे कहा था "ये तारे और पहाड़ियां तुम्हारे साक्षी हैं, इनके सामने अपनी जन्मभूमि के लिए अपना जीवन, अपनी योग्यता, अपना संगीत, अपनी वक्तृता, अपने विचार व अपना स्वप्न उत्सर्ग करो। पहाड़ व घाटियों में देश की दशा देखो और घाटियों से परिश्रमीजनों की दशा देखो और उनमें आशा का सँदेशा फैलाओ।"

अहो! कैसे साहस, आशा व विश्वास के उत्पन्न करनेवाले वचन हैं। क्या ऐसे माधुर्यमय देशभक्तिभावभरित, उत्साहपूर्ण और राजनीतिविशिष्ट वाक्यों को सुनानेवाले माननीय गोखले यहां से सदा के लिए चले गये? नहीं २ यह असम्भव है। उनकी आत्मा का सत्प्रभाव अब भी भारत में—नहीं नहीं—समस्त संसार में, राजा और रङ्क के हृदय में सञ्चालन कर रहा

जीवन से शिक्षा लेकर कार्यक्षेत्र में साहस कूद पड़ना चाहिये और स्वार्थ त्याग कर स्वदेशोपकार में तत्पर होना चाहिये। ईश्वर से हमारी यही प्रार्थना है कि,

देवैं ऐसे तिय नर-बर वे सतरत नित जे होवें।
अस अधिकार राजलोलुप ह्वै देसकीर्ति जनि खोवैं॥
सत्व समर माहीं स्वदेस के द्रोही-जननु पछारें।
करि स्वतंत्रता-सेवन अपनो जीवन सदा सँवारें॥
राखैं श्याम भरोस, निज करतब महँ चितधरें।
नासैं सकल स्वदोस, सदाचार मूरति बनें॥

आशा विफल हुई।

आयो एक भ्रमर विकासित सरोज पास,
मंजु मकरन्द के सनेहजाल परि कै।
तौलौं कुसुमार दिवाकर विदा ह्वै गयो,
मुंदिगो सरोज भौंर ठौरै रह्यो डरि कै॥
बीतैगी विभावरी प्रकाश भानु दैहैं तब,
जैहौं कहूं बाहर सुपासों हौं निकरि कै।
सोंचत ही रहिगो उपाय इमि जौलौं वह,
तौलौं गज तोरयो आय पांखुरी पकरि कै॥

"कुसुमाकर"

नैतिक-साहस।

[लेखक—श्रीयुत विश्वनाथ देव।]

"साधुता का बल नैतिक और शारीरिक साहस है। इसी के बल सभी सच्चे साधुमनुष्य तथा साध्वी स्त्रियां सांसारिक हास्य और घृणा की परवाह नहीं करते।"

"जो कोई प्रतिदिन एक दो विघ्नों का सामना नहीं करता, मनुष्य-जीवन से क्या शिक्षा मिलती है उसे उसने नहीं सीखा।"

मेरा वक्तव्य विषय 'नैतिक-साहस' है अतः 'शारीरिक-साहस' का समावेश पूर्णतया इस लेख में नहीं हो सकता, किन्तु यत्रतत्र प्रकरणानुसार इसकी चर्चा अवश्य की जायगी।

'नैतिक-साहस' वही शक्ति है कि जिसके बल, जिस विषय को हम लोग ठीक जानते हैं उसी को कहते और करते हैं। अतः शारीरिक-साहस सर्वदा नहीं किन्तु बहुधा नैतिक-साहस का अवश्य साथ देता है। हम लोगों को बहुधा नैतिक-साहस अपने परिणामस्वरूप शारीरिक वेदनाओं को सहन करने के लिए उत्तेजित करेगा। नैतिक-साहस मन का और शारीरिक-साहस शरीर से सम्बन्ध रखता है किन्तु मन और शरीर में परस्पर इस प्रकार का घनिष्ट सम्बन्ध है कि मनुष्य-जीवन में एक प्रकार के साहस को दूसरे प्रकार के साहस से पृथक् करना मुझे असम्भव सा जान पड़ता है। मानुषिक साहस के जितने उदाहरण हैं उनमें नैतिक-साहस तथा शारीरिक साहस परस्पर मिले हुए हैं। जहां पर शारीरिक वेदना सहन करने की दृढ़ता है वहां पर कर्तव्य का ज्ञान भी है। परन्तु जहां पर किसी मनुष्य में शारीरिक साहस कम से कम बहुत ही थोड़ा नैतिक साहस का बोध कराता है वहां पर नैतिक-साहस कहीं अधिक जतलाता है, क्योंकि ऐसी

बहुत सी चीजें हैं जिनको सहन करन में शारीरिक वेदना सहन करने की अपेक्षा अधिक कठिनता पड़ती है; किन्तु नैतिकसाहस सत्य के लिए उन सबों को सहन करने में सक्षम है। यही नैतिकसाहस हम लोगों को अपना कर्त्तव्य कर्म सम्पादन करने के लिए सर्वदा सुदृढ़ बनाये रखता है। इसी के बल सब विघ्नबाधा, लोकपरिहास, क्षति तथा कष्ट सहते भी हम लोग जिसको ठीक जानते हैं उसी को सोचते, कहते और करते हैं। इस प्रकार का साहस सर्वोन्नत है तो भी हम लोगों को सचराचर इसकी आवश्यकता है; हमें अपने जीवन में प्रतिदिन क्या प्रायः प्रति घंटे ही इसी साहस को दिखलाना पड़ता है।

यही सर्वोत्कृष्ट वीरत्व है जिसे हम लोग अपने जीवन में प्रतिदिन दिखलाते हैं; क्योंकि यह चरित्र का बल है जिसकी तुलना दूसरी शक्तियों के साथ करने से वे दुर्बल जान पड़ती हैं। यह वही शक्ति है जो वय या स्त्री, पुरुष का भेद न करके शारीरिक बल या दुर्बलता की अपेक्षा न करके प्रत्येक के हृदय में बल का सञ्चार करती है; सिवा इसके हम लोगों की अवस्था के साथ २ यह बढ़ती जाती है तथा बहुधा हम लोग प्रत्येक का शारीरिक बल जितना ही ह्रास होता जाता है उतना ही वह प्रबल होती जाती है।

प्रत्येक दशा में सत्य बोलना नैतिक साहस है। जब हम लोग अपने किए हुए अपराध को जान जाँय तब उसकी लज्जा से न डरना किन्तु निर्भय होकर अपना अपराध स्वीकार कर लेना नैतिक साहस है। साधु होने से लज्जित न होना, सचमुच अपने को यथातथ्य प्रकाशित करना नैतिक साहस है। दूसरों के साथ तुलना करने से यदि हम लोग दरिद्र ठहरें, दुर्बल जान पड़ तथा अज्ञान हों तो इससे लज्जित न होना नैतिक साहस है। साधारणतः दूसरों के साथ तुलना करने से यदि हम लोग निकृष्ट ही ठहरें परन्तु इससे लज्जित न होकर बल्कि सभी दशाओं में किसी मनुष्य की परवाह न करके केवल अपने कर्त्तव्य कर्म तथा ईश्वर की ओर अपना लक्ष्य रखकर, आडम्बर शून्य निष्कपट एवं साधुभाव से अपने कर्तव्य कर्म को सम्पादन करने की यथासाध्य चेष्टा करें तो हमारा ऐसा करना नैतिक-साहस है। बहादुरी से विपत्ति का सामना कर हृदय में भावी मङ्गल की आशा धारण कर तथा विपत्तिरूप मेघ के भीतर शुभ सूर्य को पाकर, शान्त एवं अविचल चित्त से दुःख, नैराश्य तथा शोक को सहन करना नैतिक-साहस है। 'रेनेलटेलर' नामक एक पञ्जाबी अफसर की जीवनी में जो कि अभी हाल ही में छपी है, लिखा है कि वह सम्पूर्णतया निर्भीक बहादुर था, वह केवल युद्ध ही में नहीं और न शारीरिक दुःख ही सहने में निर्भय था किन्तु अपने जीवन के प्रतिदिन के कार्य में निडर रहा करता था। वह ईश्वर को छोड़ कर और किसी से नहीं डरता था। ईश्वर के अतिरिक्त और किसी से न डरना नैतिक साहस है। मनुष्य के कर्तव्य कर्म का बहुत बड़ा हिस्सा इस प्रकार के साहस में आजाता है। इसके होने से सभी अच्छे गुण सहायक रूप से इसमें आजाते हैं। इसका अभिप्राय यही है कि आप मनुष्यों के सामने इन गुणों को दिखलाने में लज्जित नहीं होते हैं। नैतिक साहस का ठीक यही अर्थ है कि हम लोग साधु और गुणी होने में लज्जा न करें। वस्तुतः यह एक उन्नत गुण है जो कि सब से अधिक प्रतिष्ठा के योग्य है; क्योंकि वही मनुष्य सच्चा मनुष्य है जो इसको पूर्णतया और सचमुच प्राप्त करता है और किसी बात को ठीक ठीक जानकर उसको करने के लिए साहस करता है। परन्तु तो भी मुझे सन्देह ही है कि इस प्रकार के सर्वोन्नत गुण का जितना आदर होना चाहिये साधारणतः उतना

नहीं होता। कभी २ तो ऐसे मनुष्यों की हंसी उड़ाई जाती है। संसार में बहुधा इसका दर्जा शारीरिक साहस से कम ही दिया जाता है जोकि मन शरीर से जितना बड़ा है उतना ही इससे बड़ा है।

किन्तु शारीरिक साहस, बहादुरी तथा बल को इनकी योग्यता से कहीं अधिक महत्व देना प्रधानतः नवयुवकों की स्वाभाविक प्रवृत्ति ही होगई है और जो मनुष्य अपना सम्पूर्ण कर्तव्य कर्म सम्पादन करने के लिए दृढ़तापूर्वक यत्न करता है किसी भी कठिनता से नहीं डरता उसका नैतिक मान उसी प्रकार कम समझा जाता है। उदाहरणार्थ स्कूल के विद्यार्थियों की प्रवृत्ति की ओर ध्यान दीजिये—क्या वे लड़के जो खेल में घोड़े पर चढ़ने या सामान्यतः शारीरिक स्फूर्ति और बल में दूसरों से तेज हैं अपने को उन लड़कों से जो कि पढ़ने में परिश्रमी हैं, सहनशील हैं तथा सुशील एवं अच्छे हैं, अधिक योग्य नहीं समझते? इससे मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि मैं शूरतासम्बन्धी खेलों को तुच्छ समझता हूं; मैं जानता हूं कि उनका मूल्य बहुत अधिक है; मुझे विश्वास भी है कि ये पुट्ठों के साथ चरित्र को भी सबल करते हैं। किन्तु चरित्र बहुत बड़ी चीज़ है और पुट्ठे चरित्र नहीं हैं। निश्चय ही ज्ञान और सत्यासत्य-विवेचन-शक्ति कोमल या सुन्दर शरीर की अपेक्षा कहीं अधिक महत्व की है। क्या प्रसन्न-चित्त, निःस्वार्थता और दयालुता आदि गुण शारीरिक बल से बड़े नहीं हैं? क्या राम और अर्जुन का बड़प्पन उनकी बहादुरी की अपेक्षा उनके साधुस्वभाव के कारण अधिक नहीं है? जब हम लोग इन प्रश्नों को सोचते हैं तब इनके उत्तर में 'हां' अवश्य कहते हैं किन्तु जैसा हम लोग सोचते हैं वैसा कार्य सर्वदा नहीं करते। शायद सर्वदा हम लोग सोचते ही नहीं। यदि हम लोग उतना दूर तक सोचें तो नैतिक विषयों का प्रतिष्ठा कहीं अधिक हो और ये हमारी आँखों के सामने अधिक रहें किन्तु ये छिपे रहते हैं।

मैंने अभी कहा है कि चरित्र-बल जिसको हम लोग नैतिक साहस कहते हैं कभी २ सम्मानित न होकर हम लोगों का उपहास कराता है। इसका कारण भी यही है कि लोग सोचते नहीं। लोग सोचते तो नहीं किन्तु दूसरों का अनुकरण करते हैं; पृथ्वी पर या किसी भी छोटे खण्ड में जहां वे रहते हैं प्रचलित मतों को देख कर उन्हीं का अनुकरण करते हैं। इसका परिणाम यही होता है कि कोई भी नूतन वस्तु कितना ही अच्छी क्यों न हो यदि उस समय के प्रचलित मत से वह न मिलती हो; तब उसके केवल नये ही होने के कारण प्रायः लोग उसकी अवज्ञा करते हैं। पृथ्वी की दैनिक गति तथा सूर्य के चतुर्दिक उसकी वार्षिक परिक्रमा आदि सिद्धान्तों को आजकल के मनुष्य वैसाही मानते हैं जैसा कि वैज्ञानिकों ने इन्हें प्रमाणित किया है। किन्तु अभी थोड़े ही दिन हुए कि इन सर्वमान्य सिद्धान्तों की यूरोप का सबसे बड़ा वैज्ञानिक अवज्ञा करता था। सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में जब गैलिलियो ने इन सिद्धान्तों को स्थिर किया तब ये असम्भव और अधार्मिक कहे गये और उस बड़े वैज्ञानिक को इस प्रकार के सिद्धान्त मानने, सिखलाने या पुष्टि करने से पोप ने मना कर दिया। वैज्ञानिक ने अपने धर्मगुरु पोप की आज्ञा स्वीकार करली; किन्तु आजकल सभी मनुष्य जानते हैं कि गैलिलियो सच्चा और पोप झूठा था।

अब आप देखें कि किसी नूतन वस्तु को एक बड़े वैज्ञानिक के सम्मुख प्रचार करने में कुछ एक महान् पुरुष के साहस से बढ़कर अधिक नैतिक साहस की आवश्यकता है। एक विचित्र वस्तु को जनसमुदाय में प्रचार करने के लिए मनो-बल की भी आवश्यकता है। एक

साधारण छाते ही को ले लीजिये। एशिया में इसका प्रचार बहुत दिनों से है; परन्तु यह सुन कर शायद आपको आश्चर्य होगा कि इङ्गलैंड में इसका प्रचार हुए डेढ़ सौ वर्ष से अधिक नहीं हुए हैं पहले पहल १७५० ई० में मि० जोन्स हैनवे छाते को वहां ले गया जो चीन तथा पूर्वीय दूसरे २ प्रान्तों में रह चुका था। लोग कहते हैं कि वर्षा के दिन जब वह छाता लगाये गलियों में घूम रहा था, तब मनुष्य और लड़के उसकी ओर मुंह बना बना कर चिढ़ाते थे और उसपर कंकड़ तक फेंकते थे। आप देखें कि ऐसी छोटी बात के लिए कि मनुष्य छाते का उपयोग समझें अत्यधिक नैतिक-साहस की आवश्यकता थी। आप यह भी देखें कि नैतिक धुन ने अन्त में विजय लाभ भी की है कि प्रायः प्रत्येक इङ्गलैंडनिवासी इस वस्तु को अब अनिवार्य वस्तु की तरह धारण करता है जो कि १५० वर्ष पहले अस्वाभाविक एवं हास्यप्रद समझी जाती थी।

इसी प्रकार हम लोग सभी कार्य तथा उद्योगारम्भ में बहुधा अनुत्साहित किये ही जाते हैं, किन्तु अन्त में विजय-लाभ के लिए हम लोगों को अध्यवसाय एवं साहस की आवश्यकता होती है। भूतपूर्व बेकन्सफील्ड की जीवनी में इस प्रकार के साहस का जानने-योग्य एक दृष्टान्त है। उस शताब्दी के बृटिश-हाउस-आफ्-कामन्स के बड़े २ वक्ताओं तथा राजनीतिज्ञों में से एक ये भी थे। पहले पहल जब वे पार्लियामेंट में बोले तो उनकी हंसी उड़ाई गई। इसमें सन्देह नहीं कि उनका ढंग तथा आकृति कुछ विलक्षण थी। किसी प्रकार उनको अपनी वक्तृता बन्द ही करनी पड़ी, पराजित तो हुए किन्तु उन्होंने हिम्मत न छोड़ी। जब उन्होंने अपना आसन ग्रहण किया, भावी महत्व-प्रदायक साहस के साथ बोल उठे कि हमने कई बार अनेक विषयों का आरम्भ किया है और बहुधा अन्त में सफलता भी प्राप्त की है, महाशय, स्मरण रहे कि इस बार यद्यपि मैं चुपचाप बैठ जाता हूं, तथापि एक दिन ऐसा आवेगा कि जिस दिन आप मेरी बात अवश्य सुनेंगे। वे इसी धुन में लगे रहे और सचमुच ऐसा समय उपस्थित हुआ कि सम्पूर्ण इङ्गलण्ड उनके वाक्यों पर मोहित होगया। ऐसा ही हुआ है और समयान्त पर्यन्त ऐसाही होगा। लोग नैतिक खूबी की ओर अन्धे रहते हैं, किन्तु जिसमें दत्तचित्त रहने का साहस है अन्त में उसकी प्रतिष्ठा होगी और वह माना जावेगा।

लार्ड लारेन्स की जीवनी का लेखक १८५७ के पञ्जाब के अत्यन्त नाजुक समय को वर्णन करता हुआ निम्नलिखित मन्तव्यों को प्रकाश करता है, साहस दो प्रकार के हैं एक प्रकार का साहस सर्वदा उत्फुल्ल रहता है; ईश्वर जिस को आशाशील प्रकृति प्रदान करते हैं उसी में इस प्रकार का साहस परिलक्षित होता है। इस प्रकार के मनुष्य विपद से चिन्तित होना क्या उस पर ध्यान ही नहीं देते; वे बारूद भरी सुरङ्ग तथा तोपखाने के बीच हँसते मुख और प्रसन्नचित्त से विचरा करते हैं। किन्तु इससे भी उच्चतर एक दूसरे प्रकार का साहस है। यह धीर और युक्तिपूर्ण साहस दायित्वपूर्ण शासक ही में परिलक्षित होता है जो सम्पूर्ण विषयों को अपनी आखों से देखने में दृढ़संकल्प रहते हैं, विपद उपस्थित होने पर उसके अङ्गप्रत्यङ्ग की जांच पड़ताल करते हैं। जय पराजय होने से किस प्रकार लाभ या हानि होगी उसकी पूर्ण उपलब्धि करते हैं तथा दूसरे भी आवश्यकतानुसार इसकी उपलब्धि करें इसके लिये यत्नवान रहते हैं और विपत्ति उपस्थित होने पर जिस प्रकार इसका व्यतिक्रम किया जायगा इसके पूर्वही व्यय तथा जय वा पराजय की सम्भावना का विचार कर यथासाध्य सम्भव को असम्भव सा कर डालने में कृत-संकल्प रहते हैं। पहले ही सब बातें देख लेना, राजनीतिज्ञों के समान विचार करना ऐसे

ही मनुष्य का खास हक है जो किसी के कहने या ख्याल करने की परवाह न कर प्रशंसा वा निन्दा की प्रतीक्षा न कर इसका फल कैसा ही क्यों न हो सत्यकार्य करने में दृढ़संकल्प रहते हैं और समय आपड़ने पर आत्मोत्सर्ग भी कर बैठते हैं। अर्थात् बागिन्द्रिय-संयम, अपनी प्रबल इच्छाओं का दमन तथा सत्यसंकल्प में जो कुछ बुराई हम लोगों में प्रवेश कर गई है उसको दृढ़ानुरक्ति द्वारा बहादुरी से मार भगाने में नैतिक साहस पूर्ण रूप से दिखाया जा सकता है। किन्तु अपने पड़ोसियों के प्रति उन विषयों के लिए जिनको हम लोग बुरा समझते हैं, दोषारोपण करने से नैतिक-साहस नहीं दिखाया जा सकता। पहले पहल अपने ही कुविचारों पर विजयलाभ करना उचित है। हम लोगों का पहला कर्त्तव्य अपने ही प्रति मनोयोग करना है; और हम लोगों को केवल इसी एक कर्त्तव्य-कर्म सम्पादनार्थ अनेक कार्य करने पड़ेंगे, बहुत से शत्रुओं से संग्राम करना पड़ेगा तथा नैतिक साहस दिखलाने के लिये अनेक अवसर उपस्थित होंगे, क्योंकि मनुष्य के सबसे भयानक शत्रु उसके हृदय की बुरी इच्छाएँ तथा बुरे कर्म हैं। इन्हीं सब शत्रुओं के विरुद्ध हम लोगों में से प्रत्येक को जीवन-व्यापी संग्राम करना पड़ेगा।

मैं कह चुका हूं कि सत्य साहस बुद्धि ही पर स्थिर रहता है। इसकी पुष्टि के लिए दृढ़-संकल्प भी अत्यावश्यक है। नैतिकभाव को लेकर यह कहा जा सकता है कि संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसको बलवती इच्छा प्राप्त नहीं कर सकती। जीवन धारणार्थ जितनी वस्तु आवश्यकीय हैं दृढ़ मनोरथ के लिए सब कुछ सम्भव हैं। जब किसी अच्छी वस्तु के लिए दृढ़मनोरथ का अभ्यास जोर शोर से किया जाता है तब यह असम्भव वस्तु को सम्भव सा कर सकता है। यदि आपका संकल्प दृढ़ एवं साहसपूर्ण हो तो आप जो चाहें हो सकते हैं। हम सभी जानते हैं कि जिस मनुष्य का संकल्प दृढ़ है उसका प्रभाव दूसरों पर किस तेजी के साथ पड़ता है; यह प्रभाव केवल नैतिक ही नहीं है किन्तु कुछ अंश में शारीरिक भी है। निश्चय ही यह प्रभाव अपने मन तथा शरीर पर अधिकतर पड़ता है। मनुष्य के दृढ़ संकल्प का प्रभाव उसके शरीर पर इतना पड़ता है कि रोगाक्रान्त सिपाही भी युद्धजनित मनोत्तेजना में भयानक बुखार से मुक्त सा हो अपने बिस्तर से उठ खड़ा होता है। मैं स्वयं इस प्रकार के एक दृष्टान्त को जानता हूं। दृढ़ संकल्प विफल मनोरथ नहीं होता, यह अवश्यही फल लाता है।

इस प्रकार के साहस का एक जानने योग्य दृष्टान्त जिसको आप दृढ़ संकल्प ही कहें, बाबर की जीवनी में दिया है। यह किसी बीमारी से मुक्त होने का नहीं किन्तु दूसरे की बीमारी को अपने ऊपर ले लेने का एक दृष्टान्त है। एल्फिन्स्टन के कथनानुसार बाबर एशिया में सबसे बढ़कर प्रशंसनीय राजा हुआ है। सरल स्वभाव के साथ २ उसमें बड़ा साहस भी था और अध्यवसाय उसकी असाधारण प्रज्ञाशक्ति सी हो रही थी। 'तवारीखिए बाबर' नामक पुस्तक में उसने अपने साहसिक कर्मों का वर्णन ऐसे निष्कपट और सरल ढंग से किया है कि सभी का दिल उधर खिंच जाता है। वह यथार्थ मनुष्य था; उच्च और साधू था किन्तु मनुष्योचित कमी से बचा भी नहीं था। उसका जीवन ही विचित्र है; किन्तु उसकी मृत्यु का ढंग जैसा कि इतिहास में वर्णित है उससे भी विचित्र है। ऐसा लिखा है कि जब हुमायूं रोगाक्रान्त हुआ और मृतप्राय हो रहा था, तब बाबर ने अपने पुत्र को बचाने के लिये आत्मोत्सर्ग की प्रतिज्ञा की। अतः हुमायूं के बिस्तर के चारों ओर कुल समय सच्चे हृदय से ईश्वर की प्रार्थना करते हुए तीन बार उसने भ्रमण किया और अन्त में

बोल उठा कि हमने इससे इसकी बीमारी को ले लिया। सम्भव है कि पिता के दृढ़ संकल्प ने उस पुत्र के हृदय में स्वस्थ होने का अटल विश्वास पैदा कर दिया हो। कम से कम इतना तो निःसन्देह सच है कि उस दिन से हुमायूं अच्छा और बाबर क्षीण होने लगा। खैर इस घटना का कुछ और ही कारण हो किन्तु मुसलमानों का इस कथा पर हमारे वर्णन का सा विश्वास है। और साधारणतः मेरा यह विचार है कि हम सब इस बात को अवश्य स्वीकार करेंगे कि जब मनुष्यसंकल्प का उपयोग तेजी से किया जाता है तब यह ईश्वरेच्छा में भी कुछ प्रभाव डाल देता है क्योंकि यदि ऐसा न हो तो ईश्वरप्रार्थना से अभिप्राय ही क्या है यह वही बल है जो ईश्वर से प्राप्त होता है अर्थात् जो ईश्वर की प्रार्थना करते हुए उसमें तन्मय होने से प्राप्त होता है, जो मनुष्यों को, जैसा मेरा विश्वास है सच्चा साहस प्रदान करता है। इस प्रकार के साहस को शारीरिक या मानसिक वेदना, आपत्ति और क्लेश कोई भी नहीं पराजय कर सकता है।

हम अपने सबों के अभ्यास करने योग्य कुछ बातों को कहकर इस लेख की समाप्ति किया चाहते हैं। जिसको हम लोग ठीक समझें उसी को अपने सम्पूर्ण हृदय, मन, आत्मा तथा बलपूर्वक सुदृढ़ एवं अचल नैतिक साहस के साथ, ईश्वर, कर्त्तव्य तथा हिताहित ज्ञान के सिवा और किसी से न डर कर करें। हमलोगों को भी अपने शत्रुओं को जीतना है, वे ये हैं मूर्खता, क्रोध, अमिष्ट भाषण, मद तथा अहंमन्यता ये शत्रु कभी विश्राम नहीं करते, इनका दमन केवल दृढ़ साहस तथा अविश्रान्त उत्साह ही द्वारा हो सकता है।

हम लोग अपनी अत्यधिक परीक्षा नहीं कर सकते। अतः हम लोगों के साहस का संस्कार प्रज्ञा द्वारा हो सकता है किन्तु सत्यपथ का एकबार निश्चय हो ही जाने से हम लोगों को उस पर दृढ़ संकल्प के साथ लिपट जाना चाहिये। अपने में केवल दृढ़ता ही होने से हम लोग अपने निकटवर्ती मनुष्यों को उत्साहित कर सकते हैं। यदि हम लोग सबल हैं तो वे भी सबल होंगे। किन्तु यदि हम लोग निर्बल हैं तो उनकी गति भी रुद्ध हो जायगी। मुझे भय है कि शायद विचारशून्यता या निर्बलता के कारण हम लोग जनसमुदाय ही का अनुकरण करने की ओर अधिक झुक जाते हैं और कुकर्म करने तक उनका पीछा नहीं छोड़ते। उसी प्रकार मुझे और भी भय है कि शायद अपनी विवेचनशक्ति तथा आत्मा के विरुद्ध भी बहुधा हम लोग कुछ कर डालते हैं। यदि ऐसी ही बात है तो साहस अपना प्रत्यक्ष कर्तव्य होते हुए इस कायरता के लिए क्या हम लोग दोषी नहीं हैं? नैतिक दृष्टि से मान लीजिये कि हम लोग डूबते हुए बेकेनहेड नामक जहाज़ में सिपाही के पद पर नियुक्त हों और तब यदि अपने अफसर की आज्ञा पाकर अपनी २ जगहों पर न डट गये तो क्या हम लोग नैतिक विचार से भीरु एवं कर्तव्यरहित नहीं हैं? क्योंकि अपनी आत्मा ही अपना आज्ञादाता अफसर है; और कालेज हम सब विद्यार्थियों के लिये एक जहाज़ सा है, जिसे हम लोगों को अपने २ स्थान पर रहकर ठीक २ खे लेजाना है और इसके बन्दरगाह तक निरापद पहुंचा देना है।

ईश्वर के अतिरिक्त और मनुष्यों से न डर कर दिलेर एवं दृढ़ होने का यत्न कीजिये। किसी भी कार्य में जिसको आप करने जाते हैं या जिसके विषय में कुछ कहते हैं, अपने हृदय में केवल यह विचार रहने दीजिये कि—क्या यह कार्य ठीक है या नहीं? और यदि आपकी आत्मा इसे सत्य बतलावे तो आप किसी भी बाधा से न डर कर उसको दृढ़तापूर्वक कीजिये और कहिये। कुछ आपके साथी आपके विरुद्ध भी हो सकते हैं और कभी २ तो सारे मनुष्यों

के प्रीतिभाजन तक भी नहीं हो सकते हैं किन्तु इसकी परवाह न कर दृढ़ एवं बहादुर बनिये, क्योंकि ईश्वर आपके पक्ष में है। जबतक आप जानते हैं कि आपका संकल्प सत्य है, लोग आपको कैसा भी क्यों न ख्याल करें उसकी परवाह न कीजिये। जबतक आप अपने अंतःकरण की आज्ञा पालन करते हैं तबतक सत्यता के साथ उसकी आज्ञा पालन करते चले जाइये। पवित्र-हृदय अच्छे प्रकार दिलेर हो सकता है क्योंकि उसको किसी का भय नहीं रहता। अतः जो ठीक हो उसी को कीजिये तथा साहस रखिये; ईश्वर-प्रदत्त कवच पहिन सबल बने रहिये और उसी की सहायता से हम सब अपने प्रत्येक पड़ोसी को सहायता तथा उत्साह देने के लिए कुछ कर सकते हैं, कठिन जीवन-यात्रा के पथ को कुछ सहज बना सकते हैं—अर्थात् यदि कोई मनुष्य नैतिक निर्बलता के कारण पदच्युत हो जाय तो उसकी जगह दूसरे को नियुक्त करना, छिन्न-भिन्न दल को उत्साहित कर बलवान बनाना, तब सजकर जीवन-यात्रा के कठिन मार्गों को पार करते हुए अन्त में ईश्वर को प्राप्त करना उसी की सहायता से हो सकता है।

इन सब का सिद्धान्त यही है कि ईश्वर से डरिये और उसकी आज्ञाओं का पालन कीजिये क्योंकि यही मनुष्य का सम्पूर्ण कर्तव्य है, क्योंकि ईश्वर हमारे प्रत्येक गुप्त या प्रगट अच्छे या बुरे कर्म का विवेचन करता है।

सम्पादकीय टिप्पणियां।

नया मन्त्रिमंडल।

मँझधार में जोड़ी बदलनी पड़ी! कहते हैं कि उदारदल का मंत्रिमंडल युद्ध के कठिन काम को अच्छी तरह सम्हाल सकने में असमर्थ था, 'टाइम्स' आदि बिलाती पत्र और नेता उसकी कार्यवाहियों पर टीका-टिप्पणियां किया करते थे, इसलिए मंत्रिमंडल में भारी उलट-फेर करना आवश्यक होगया। अब जो नया मंत्रिमंडल तैयार हुआ है, वह गंगाजमुनी या संयुक्त मंत्रिमंडल है। उसके २२ मंत्रियों में १२ उदारदल के, ८ कान्सरवेटिव या लकीर के फकीर, १ मज़दूर दल के और एक लार्ड किचनर पक्षहीन है। लार्ड कर्ज़न, लैंसडौन आदि भारतवासियों के सुपरिचित मित्र और सर एडवर्ड कार्सन आदि अलस्टर में बलवे का झंडा उठानेवाले भी अब अधिकारारूढ़ हुए हैं।

जब सारा मंत्रिमंडल उदार दल का था तभी बेचारे भारतवासियों को क्या मिल गया, अबतो शायद मुंह खोलने की भी गुंजायश नहीं है। जिन नये अनुदार मंत्रियों का प्रवेश हुआ है, उनका व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली है और यह समझना असंगत नहीं है कि उनके ऊपर उदार मंत्री किसी तरह हावी न हो सकेंगे। ऐसी अवस्था में हमारा रामही मालिक है!

लार्ड क्रू अब भारतमंत्री नहीं रहे और उनका वियोग हमारे लिए खेदजनक है। यह सच है कि लार्ड क्रू भारतवासियों के स्वत्वों के उत्साही समर्थक नहीं थे; उन्होंने २५ अगस्त १९११ में सरकारी खरीते में प्रान्तिक स्वराज्य में दिये हुए वचन का खंडन करके भी बड़ी भारी गलती की, जिससे भारतवासियों के हृदय को चोट पहुंची। परन्तु फिर भी यह उल्लेखयोग्य है कि लार्ड हार्डिंग के परामर्श को मानकर वे बंग-भंग को रद्द करने के लिए राज़ी हो गये, उन्होंने इंडिया कौंसिल में भारतवासियों के निर्वाचित

प्रतिनिधि को स्थान देने के लिए बिल उपस्थित किया, जो पास नहीं हुआ और अन्त में संयुक्तप्रान्त के लिए कार्यकारिणी कौंसिल की स्थापना का समर्थन और लार्ड सभा के विरोध का प्रतिवाद किया। इन सब बातों के लिए भारतवासी उनको सराहेंगे। लार्ड क्रू मंत्रिमंडल में अब भी बने हुए हैं परन्तु उनका पद और कार्य अब दूसरा है। नये भारतमंत्री का नाम है मि० आस्टन चेम्बरलेन, जो एक प्रसिद्ध पिता के पुत्र हैं। भारतवासियों के प्रति ये किस नीति का अवलम्बन करेंगे, यह अभी देखना ही है।

चिरंजीलाल बागला डिस्पेन्सरी, हाथरस।

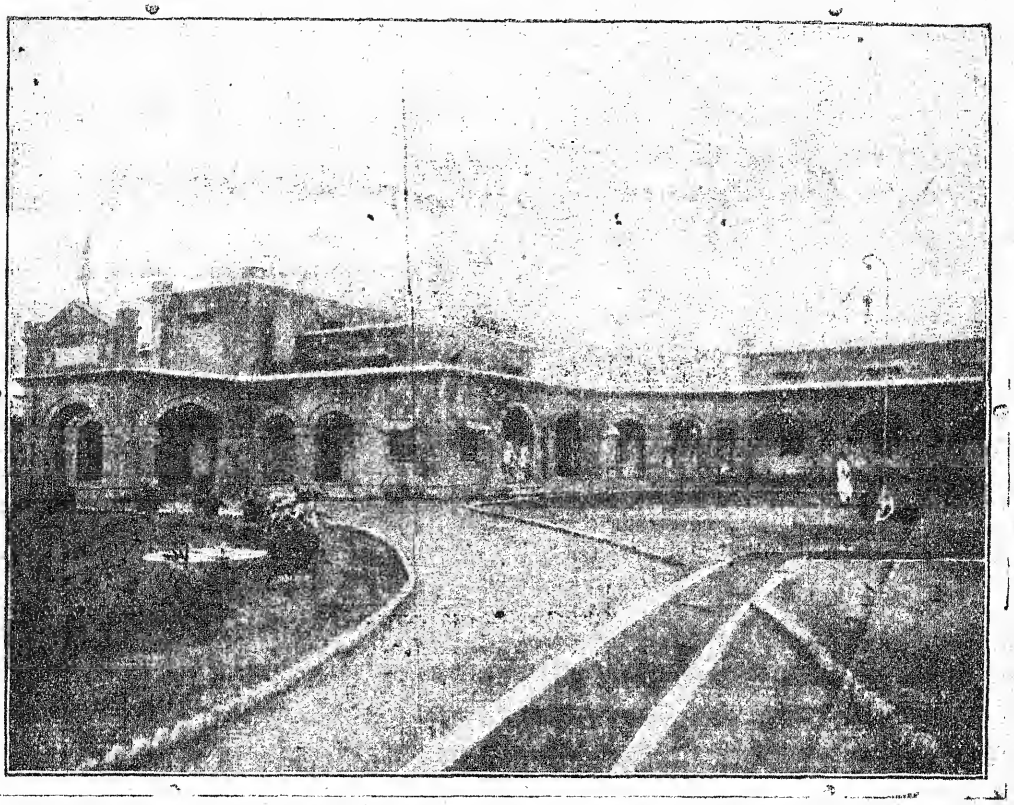

अलीगढ़ जिले के हाथरस नगर में जो सरकारी अस्पताल था और जिसे बने ४६ वर्ष होगये वह हाथरस के लिये बहुत छोटा और अपर्याप्त था। इस लिये हाथरस के प्रसिद्ध रईस, बकर, मिलओनर और अनरेरी मैजिस्ट्रेट सेठ चिरंजीलाल बागला ने ५३०००) रु० की लागत से एक नया विशाल और सुन्दर अस्पताल बनवा दिया है। इस नये अस्पताल का नाम इस समय "चिरंजीलाल बागला डिसपेन्सरी हाथरस" है। पुराने अस्पताल में केवल १५ मरीजों के रहने के लिये स्थान था पर नये में ४० मरीज रह सकते हैं। नये अस्पताल में एक उमदा "आपरेशन रूम" बना है और आंखों की परीक्षा करने के लिये एक कमरा अलग बनाया गया है और चार कमरे ऐसे बनाये गये हैं जिनमें बड़े अस्पतालों के समान रोगी किराया देकर रह सकते हैं। यह अस्पताल २७ अप्रेल सन् १९१४ को अलीगढ़ के कलक्टर मि० मैरिसे सी० आई० ई० द्वारा खोला गया था।

विशेष कान्फरेन्स।

सन् १९३३ में यह तय हुआ था कि आगरा प्रान्त में कौंसिल गवर्नमेंट स्थापित की जाय। कुछ अनुदार सज्जनों की चाला से संयुक्तप्रान्त को यह नसीब न हुआ। बड़ी बड़ी कठिनाइयों के बाद दो वर्षों से यह मसला राजनीति के रंगमंच पर आया। सन् १३-१४ में यहाँ तक यह बढ़ा कि सर जेम्स मेस्टन और लार्ड हार्डिंग की सिफारिश के ज़ोर पर भारतसचिव ने इस मन्तव्य को पार्लामेंट के सभ्यों के सामने उपस्थित किया। लोग यह समझे कि अब देर नहीं है और अब कौंसिल मिल गई किन्तु लार्डों के विरोध के कारण आशा निराशा में परिणत हुई; उन लोगों ने कहा कि अधिकतर जनसंख्या इस सुधार को नहीं चाहती. कुछ थोड़े से शिक्षित मनुष्य ही इस सुधार के पक्ष में हैं। यह भी कहा गया कि संयुक्तप्रान्त में हिन्दू मुसलमानों में वैमनस्य बहुत है और कौंसिल की स्थापना से यह और अधिक बढ़ जायगा क्योंकि हिन्दू चाहेंगे कि एक सभ्य हिन्दू हो और मुसलमान चाहेंगे कि वह मुसलमान हो। इन पोच दलीलों का मुंह तोड़ जवाब देने के लिए ३० मई रविवार को प्रयाग में हिन्दू मुसलमान, राजा, नवाब, रईस और गरीब, जमींदार और साधारण मध्यम श्रेणी के मनुष्यों ने मिलकर एक विशेष कान्फरेंस की। सभापति थे राजा महमूदाबाद! आज के पहिले ऐसी सभा पहिले कभी इस प्रान्त में नहीं हुई थी। लार्डों की दलीलों की धज्जियां उड़ाई गईं और एक गवर्नर-इन-कौंसिल लीग की स्थापना हुई। इस लीग का उद्देश्य नियमबद्ध कार्यवाहियों द्वारा कौंसिल की स्थापना के लिए आन्दोलन करना होगा। लार्डों के हम इसलिए कृतज्ञ हैं कि उनकी बदौलत संयुक्तप्रान्त भी सजीव हो उठा और अब आशा होती है कि यह भी उन्नति की सीढ़ी पर दिन प्रतिदिन ऊँचा होता जायगा।

युद्ध की स्थिति!

प्रायः वैसी ही है। गेलेशिया में कभी जर्मनों की विजय होती है और कभी उनकी हार होती है। पश्चिमीय रणक्षेत्र में मित्रदल की सेना "कुतरने" के काम में लगी हुई है। इस समय प्रिज़मिस्ल के चारों ओर घमासान युद्ध हो रहा है। प्रायः एक सप्ताह में एक लक्ष जर्मनों का नरमेध हो चुका है। रूसियों को भी पीछे हटना पड़ा है किन्तु विगत दो चार दिवसों से रूसी सेना फिर सफलता प्राप्त कर रही है। नूतन बात इस माह में यह हुई है कि डार्डेनेलीज में तुर्कों ने अंगरेज़ों के दो तीन युद्ध-पोत डुबो दिये हैं, साथ ही इटली भी मित्रदल का साथ दे रणक्षेत्र में उतर आया है। इसने आस्ट्रिया पर विजयलाभ करना भी आरम्भ कर दिया है। इटली के आजाने से आस्ट्रिया की तबाही निश्चित सी है। मित्र दल को इससे बहुत लाभ पहुंचेगा साथ ही जर्मनों को बड़ी हानि भी उठानी पड़ेगी।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग, में बद्रीनाथ पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित हुई।

मर्यादा।

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ९] जून सन् १९१५–ज्येष्ठ [संख्या ६

देश-भक्ति।

[लेखक–एक एम० ऐ० एल० एल० बी० ।]

सृष्टि के आदि में अर्थात् जब मनुष्य की इस संसार में प्रथम उत्पत्ति हुई, उस समय की दशा का अङ्गरेज़ तत्त्ववेत्ताओं ने जो वर्णन किया है उसमें वे कहते हैं कि इस आदि युग में मनुष्य किसी भी प्रकार के समाज में संगठित नहीं थे। प्रत्येक मनुष्य अपनी २ व्यक्तिगत तथा स्वतंत्र आजीविका प्राप्त करने का प्रयत्न करता था। उस समय केवल अपने २ पेट भरने की चिंता के सिवा और कोई उद्योग इन लोगों में न था। ये लोग जंगल में रहते, किसी खोह वा कंदरा में पशुओं के समान रात्रि काटते, वस्त्रों का काम वृक्षों की छाल तथा पत्तों आदि से लेते, तथा अपने आहार आदि का प्रबंध पशुओं को मार कर कर लेते थे। जब इस नित्यकर्म में शरीर की अस्वस्थता आदि के कारण बाधा आने लगी तब ये लोग खाने पीने का सामान संचित करने लगे। किन्तु जो लोग बलवान थे वे इस प्रकार संचित किया हुआ आहारादिका सामान अपना बल दिखाकर बलहीनों से छीन ले जाते थे। किन्तु वे लोग भी ऐसे छीने हुए माल की पूरी रक्षा नहीं कर सकते थे, क्योंकि उनसे जो अधिक बलवान होता था, वह उनसे भी छीन लेता था। सारांश 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत उस काल में पूरी तरह से चरितार्थ होती थी। आज कल के समय में भी यह नियम इस संसार में पाया जाता है; किन्तु उस युग और इस युग में इतनाही अन्तर है कि उस समय यह बात व्यक्तियों में पाई जाती थी और अब यह राष्ट्रों में देखी जाती है। आजकल जिस राष्ट्र का सैनिक दल बढ़ा चढ़ा एवं बन्दूक, तोपें विज्ञान के नूतन आविष्कारों के आधार पर बनी हुई होती हैं, उसी

की जीत होती है । अस्तु । ऐसी स्थिति में आदि युग में बलवान से बलवान मनुष्य भी किसी प्रकार सुरक्षित नहीं था, क्योंकि उसे इस बात का भय सदा लगा रहता था कि मुझसे जो अधिक बलवान होगा वही मेरी इस सम्पत्ति का नाश कर डालेगा और होता भी ऐसा ही था। इस स्थिति में रहते हुए जब बहुत काल बीता और इस प्रकार का जीवन जब मनुष्यों को असह्य कष्टपूर्ण जी उबानेवाला और रसहीन मालुम हुआ, तब उन्होंने उसमें विचित्रता लाने का प्रयत्न किया। मनुष्य स्वभाव से ही विचित्रता पसंद करता है। एकही बात उसको कभी सन्तुष्ट नहीं रख सकती। ऐसी स्थिति में उन लोगों ने दल बांध कर रहना आरंभ किया। इससे मनुष्यों के छोटे २ दल जहां तहां दिखाई देने लगे। अब जब कभी लड़ाई झगड़ा होता तो व्यक्तिगत न होता किन्तु इन दलों के बीच होता। ये दलही आजकल के भिन्न २ समाज राष्ट्रों के प्रारम्भिक रूप हैं । एकही दल में रहने के कारण एक दूसरे को अपने मन का भाव समझने की आवश्यकता मनुष्यों को जान पड़ी और इसके लिए उन्होंने भिन्न २ प्रकार के शब्दों का उपयोग करना आरंभ किया । ये विचित्र शब्द ही इस समय की भिन्न२ भाषाओं के प्रारम्भिक रूप थे। इस प्रकार इन सब लोगों के एक जगह समावेश होने तथा वर्षा आदि से बचने के लिए इनको झोपड़ियों की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। सारांश भिन्न२ दलों का संगठन होने से इन लोगों को संसारयात्रा के साधनों की आवश्यकता बढ़ती गई और 'आवश्यकता आविष्कारों की जननी है' इस कहावत के अनुसार ये उन आवश्यकताओं को पूरा करते रहे। इसी प्रकार विवाह आदि संस्कार भी जारी हुए और भिन्न२ कुटुम्बों का श्री गणेश हुआ। इस समाजसंगठन में एक बात विशेष ध्यान देने योग्य यह है कि इस प्रकार दल बांध कर रहने में प्रत्येक मनुष्य को अपनी २ व्यक्तिगत स्वतंत्रता के कुछ अंश को तिलाञ्जलि देनी पड़ी। इन दलों के पहले वे चाहे जो कार्य स्वतंत्रता से कर सकते थे, किन्तु ये लोग जबसे किसी विशेष दल के समासद हुए तब से उनको इस प्रकार अपना व्यवहार रखना होता था जिससे उस दल के किसी अन्य समासद को नुकसान न पहुंचे। अर्थात् इस दल में रहने के लिए या दूसरे शक्तिवालों से अपनी रक्षा करने के लिए इनको अपने स्वार्थ का कुछ त्याग करना और दूसरों के फायदे की ओर यदि नहीं तो नुकसान की ओर ध्यान देना आवश्यक हो गया। इससे यह सिद्ध हुआ कि समाज का संगठन आदि काल में थोड़ा बहुत अपने अपने स्वार्थ का त्याग करने से हुआ। यह बात हमको विशेष कर ध्यान में रखनी चाहिये। किन्तु जब भिन्न भिन्न कुटुम्ब होने से इन दलों की जनसंख्या बढ़ती ही गई एवं आवश्यकता के अनुसार एकही दलके भिन्न २ मनुष्य अपने तथा दूसरों के हित के लिए भिन्न२ उद्योग करने लगे तब फिर इस प्रत्येक दल में वही पहली त्रुटि दिखाई देने लगी। अब फिर प्रत्येक दल में जो अधिक बलवान था वह दूसरों का वित्त और स्त्रियां आदि हरण करने लगा। जब यह स्थिति कष्टदायक हुई तब इन दलों के मनुष्यों ने किसी विशेष मनुष्य को समाज की रक्षा का भार देना आवश्यकीय समझा, अपने में से ही सबके मतानुकूल एक मनुष्य को राजा नियत किया, इसकी आज्ञा के अनुसार चलना स्वीकार किया और इसने इसके पलटे इन सब लोगों की रक्षा का प्रबन्ध करने का वचन इन लोगों को दिया। इस विषय में इन तत्त्ववेत्ताओं में मतभेद है। कोई कहते हैं कि इस समय 'राजा' नियत नहीं किया गया किन्तु अपने में से बहुमत से कई मनुष्यों को चुन कर उनको शासनभार सौंपा गया। अर्थात् कुछ इस समय राजकीय (monarchy) और कुछ प्रजासत्ताक पद्धति का

(democracy) आरंभ होना बतलाते हैं। चाहे जो मत सही हो इसमें सन्देह नहीं है कि इस समय शासनप्रणाली की आवश्यकता इन दलों के लोगों को जान पड़ी और उनके तथा शासकों के बीच पूर्व निर्दिष्ट करार हुआ। शासन की व्यवस्था करने में इन लोगों ने अपने एक और स्वत्व का त्याग किया। यह स्वत्व इनकी स्वतंत्रता थी। अबतक जब किसी से किसी बात पर अनबन हो जाती तो ये स्वयं ही उससे बदला ले लेते थे किन्तु अब इनको शासक की मुंह की ओर ताकना आवश्यक हुआ। इसमें हमको दो बातें विशेषरूप से स्मरण रखनी चाहियें। एक यह कि इस बार भी अपने और अपने साथियों के हित के लिए इनको अपने स्वार्थ (स्वतंत्रता) के कुछ अंश का त्याग करना पड़ा। दूसरी बात यह कि शासक की नियुक्ति के समय शासक और शासितों में एक प्रकार का करार—चाहे वह खुले शब्दों में हुआ हो या नहीं—हुआ। निदान इतना तो सब को मानना ही होगा कि अपने धन जन की रक्षा ही इन शासकों की नियुक्ति का हेतु था।

स्वार्थ के लिए त्याग।

ऊपर इस बात पर अधिक ज़ोर दिया गया है कि 'समाज का संगठन तथा शासकवर्ग की नियुक्ति के समय मनुष्यों को अपने निज के हित के लिए कुछ अपने स्वत्वों का त्याग करना पड़ा।' अर्थात् दूसरे शब्दों में एक प्रकार इस समय से इनको दूसरे के हित की ओर ध्यान देने की आवश्यकता हुई। इसी बात को अध्यात्मविद्या (Psychology) के तत्वों से इस भाग में सिद्ध करने का प्रयत्न किया जायगा।

माता का अपने गर्भ की रक्षा का प्रयत्न करना अपनी ही रक्षा का प्रयत्न करना है, क्योंकि इस गर्भ की स्थिति में गर्भस्थ बालक माता के शरीर का एक अवयव ही होता है। अतएव माता इस स्थिति में अपने ही हित के लिए, अपने ही शरीर की रक्षा के लिए गर्भ की रक्षा करती है। किन्तु बालक का जन्म होने पर यह स्थिति बदल जाती है। अब बालक उसके शरीर का अवयव न होकर एक भिन्न तथा स्वतन्त्र जीव हो जाता है। इस समय इस बालक की रक्षा माता अपना ही दूसरा स्वरूप जानकर करती है। किन्तु इस समय की तथा इसके पूर्व की गर्भ समय की वृत्ति में अन्तर पड़ जाता है क्योंकि गर्भ समय में माता को अपने निज की ही रक्षा करनी होती थी, किन्तु पहले प्रेम के कारण अब दूसरे जीव की रक्षा करनी होती है अर्थात् स्वार्थवृत्ति से परहितवृत्ति (सहानुभूति) का इस प्रकार (अर्थात् स्वार्थ द्वारा ही) प्रादुर्भाव होता है।

इसी प्रकार आरम्भ में मनुष्य के सब प्रयत्न केवल अपने हित के लिए होते हैं। विकाशवादियों का (evolutionists) यह सिद्धान्त है कि वनस्पति जन्तु एवं प्राण विश्व में प्रत्येक व्यक्ति का अखंडरूप से 'आत्मरक्षा' के लिए संग्राम चलता रहता है। इस संग्राम में शक्तिवान व्यक्ति अपनी रक्षा करते हैं और शक्तिहीनों का नाश होता है। इसी को 'जीवन संग्राम' कहते हैं। यह संग्राम इस जगत में स्वयंभू है। यह अनादिकाल से चला आरहा है और इसी प्रकार चलता रहेगा। इसका उदाहरण ऊपर के विवेचन में सृष्टि की उत्पत्ति के समय की मनुष्य की स्थिति में दिया ही गया है। आगे चलकर उसमें यह भी दिखाया गया है कि किस प्रकार मनुष्य अपने ही हित के लिए, इस 'जीवनसंग्राम' में ही, समाज-संगठन तथा शासकों को नियुक्त कर अपने स्वार्थ को परहित वृत्ति वा सहानुभूति में परिणत करते हैं। यह परिवर्तन इस प्रकार होता है:—

प्रथम मनुष्य अपने हित या सुख का साधन समझ कर रुपया, कीर्ति, पुण्य आदि

का संचय करता है। अर्थात् इन वस्तुओं से उसे कुछ भी प्रेम नहीं रहता। केवल अपने सुख सम्पादन के लिए बरबश हो इन चीजों को उसे प्राप्त करना होता है। किन्तु कुछ समय के अनन्तर वह उद्देश्य—वह सुख का उद्देश्य—उसकी आंखों से दूर हो जाता है और वह इन वस्तुओं को, रुपये कीर्ति आदि को ही अपना उद्देश्य समझ जाता है। इसी प्रकार से प्रथम मनुष्य केवल अपने हित, अपनी रक्षा के लिए स्वार्थ का त्याग एवं परहित साधन करता है, किन्तु कुछ काल बीतने पर परहित साधन तथा स्वार्थ का त्याग ही उसके उद्देश्य हो जाते हैं। इसके सिवा जिस सुख या रक्षा के लिए वह स्वार्थ का त्याग तथा परहितसाधन करता है, वह जब उसे इन साधनों में ही अर्थात् स्वार्थ-त्याग में ही मिल जाय तब भला वह इन साधनों ही को क्यों न प्राप्त करे?

इस विवेचन से यह सिद्ध हुआ कि मनुष्य जन्म से ही स्वार्थपरायण होता है और अपना स्वार्थसाधन करते २ ही वह स्वार्थ के त्याग को अपना अवलम्ब समझ लेता है। परन्तु यद्यपि आदिकाल में मनुष्य स्वभाव से ही स्वार्थी उत्पन्न होता है तो भी कुछ काल के अनन्तर स्वार्थत्याग रूपी संस्कार जन्म से ही उसमें दृढ़ हो जाता है, कारण यह कि वह संस्कार उसे परम्परा से—अपने पूर्वजों से—माता पिता आदि से प्राप्त होता है। किन्तु यह बात सृष्टि के आदि काल में नहीं पाई जाती। केवल कुछ समय बीतने पर सभ्यता (civilization) की वृद्धि के साथ २ इस संस्कार की—स्वभावज ज्ञान की—वृद्धि होती जाती है। इससे यह बात सिद्ध हुई कि जितनी पुरानी जिस राष्ट्र की या समाज की सभ्यता होगी उतनी ही दृढ़ उस राष्ट्र वा समाज के मनुष्यों की स्वार्थत्याग वृत्ति होगी। दूसरे शब्दों में जिस परिमाण में समाज संगठन होकर शिक्षा आदि का प्रचार होगा उसी परिमाण से परहितसाधन वृत्ति की वृद्धि होगी जिस राष्ट्र या समाज में यह वृद्धि न पाई जाय उसे किसी प्रकार राष्ट्र न समझना चाहिये अथवा यदि वह राष्ट्र समझा भी जाय तो वह सृष्टि के नियमों का अपवाद-स्वरूप होगा।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या सचमुच ही परहित साधन से मनुष्य का निज का हित हो सकता है? यह प्रश्न सहज ही उत्पन्न होता है, क्योंकि यह कैसे संभव है कि आप भला करें दूसरे का और इस भला करने में आपका नुकसान न होकर उलटा आपका लाभ ही हो? इस प्रश्न को हम बहुत ही सहज रीति से हल कर सकेंगे यदि हम समाज और उस समाज के प्रत्येक व्यक्ति—सभासद—के बीच कुछ घनिष्ठ सम्बन्ध सिद्ध कर सकें अर्थात् यदि हम यह सिद्ध कर सकें कि एक का हित दूसरे के हित पर अवलम्बित है सत्य ही इन दोनों में हम ऐसा गहरा सम्बन्ध पाते हैं। बल्कि यही कहना होता है कि ये दोनों एक ही वस्तु के दो भिन्न भिन्न रूप हैं। उदाहरणार्थ प्रत्येक व्यक्ति अपने निज के जीवन की रक्षा करता देखा जाता है और इस रक्षा को हम स्वार्थप्रेरित नहीं तो और क्या कह सकते हैं? किन्तु इसके साथ २ जब हम यह देखते हैं कि प्रत्येक मनुष्य अपनी कीर्ति, द्रव्य या कुटुम्ब परिवार का नाश होने पर अपने प्राणों का भी त्याग करने के लिए भी कटिबद्ध हो जाता है तब उसके रक्षारूपी प्रयत्न को हम केवल स्वार्थप्रेरित कैसे कह सकते हैं? सच तो यह है कि समाज में रह कर जो एक प्रकार का महत्व उसको प्राप्त होता है, इस कारण ही वह अपने जीवन को अमूल्य समझता है और यह महत्व समाज का हित करने से ही प्राप्त होता है।

किन्तु इसके पलटे जैसे स्वार्थ में परहित पाया जाता है वैसे ही दूसरों के हित करने की उदार कामना में भी स्वार्थ की झलक पाई जाती है। क्योंकि मनुष्य वही कार्य करता है जिसके

करने की वसे इच्छा होती है। और किसी भी कार्य करने की मनुष्य को इच्छा तभी होती है जब उसके करने में वह अपना हित देखता है यह बात समाजसंगठन के इतिहास से सिद्ध हो चुकी है।

किन्हीं २ का मत है कि मनुष्य या व्यक्ति का समाज से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता। मनुष्य के निज के कुछ नैसर्गिक स्वत्व होते हैं इत्यादि। किन्तु यह सिद्धान्त ठीक नहीं है। हां यह बात निःसन्देह सत्य है कि व्यक्ति तथा समाज का हित एक दूसरे पर अवलम्बित है। उदाहरणार्थ, नैसर्गिक स्वत्वों ही की बात लीजिये। इस सिद्धान्त के उत्पादक रूसो का कथन है कि मनुष्य जन्म के समय स्वतन्त्र रहता है अर्थात् समाज के नियमों से किसी प्रकार वह बद्ध नहीं रहता। किन्तु यह बात सत्य नहीं है। जन्म से ही बालक पर समाज राष्ट्र तथा कुटुम्ब की बातों का तथा स्थिति का प्रभाव पड़ता है और वह अपने स्वभाव बुद्धि आदि का बहुत सा हिस्सा परम्परा से अपने माता पिता आदि से, प्राप्त करता है। ऐसी स्थिति में नैसर्गिक स्वत्वों का सिद्धान्त कहां तक ठीक हो सकता है ? जो विद्वान् व्यक्ति का समाज से कुछ भी सम्बन्ध होना नहीं स्वीकार करते वे नवजात बालक की आत्मा को एक कोरे कागज़ के टुकड़े की उपमा देते हैं किन्तु सच कहा जाय तो उसकी आत्मा को कथा प्रबन्ध के एक शब्द या वाक्य की उपमा देना चाहिये। क्योंकि जैसे वह शब्द या वाक्य पूरे कथा प्रबन्ध से अपना सम्बन्ध दर्शाता है और जैसे उस शब्द या वाक्य का पूरा २ अर्थ उस कथा प्रबन्ध और उस शब्द या वाक्य का सम्बन्ध जाने बिना नहीं जाना जा सकता, वैसे ही इस नवजात बालक की आत्मा के संस्कारों का पूर्णतया आप तब तक नहीं जान सकते, जबतक कि आप इस आत्मा का जिस समाज में यह उत्पन्न हुआ है उस समाज से तथा उसमें प्रचलित रीति रिवाज, सभ्यता आदि से सम्बन्ध नहीं जान लेते।

कुछ और विद्वानों का मत है कि मनुष्य वह नैसर्गिक स्वत्व शिक्षा से प्राप्त करता है। शिक्षा से उसको शक्ति, व्यक्तित्व और स्वतंत्रता प्राप्त होती है। यह ठीक है किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वह समाज के विरुद्ध किसी प्रकार के स्वत्व प्राप्त करता है। उलटे इस मत से तो व्यक्ति का समाज पर अवलम्बित रहना और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है। क्योंकि कोई भी मनुष्य 'आत्मशिक्षित' हो नहीं सकता और यह भी कहना उपयुक्त नहीं कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से शिक्षा प्राप्त करता है। कारण मनुष्य की शिक्षा का आरम्भ जन्म से ही हो जाता है और व्यावहारिक शिक्षा पूरी होने पर भी वह अविच्छिन्न रूप से जारी रहता है। यह शिक्षा किसी एक व्यक्ति से वह प्राप्त नहीं करता, किन्तु जिस समाज में वह उत्पन्न होता है उस समाज की भाषा और साहित्य के द्वारा वह शिक्षा प्राप्त करता है। ऐसी ही पुस्तक लिखने की बात है। यह कहा जाता है कि अमुक २ मनुष्य ने अमुक २ विषय पर पुस्तक लिखी है। वह मनुष्य भी उस पुस्तक के प्रथम पृष्ठ पर अपना नाम लिखता है और उस विषय के प्रमाणभूत लेखकों के नाम जिनसे वह सहायता लेता है, पुस्तक की प्रस्तावना या पुस्तक के अन्त में लिखता है। पर वस्तुतः उसे अपना नाम पुस्तक के किसी छिपे स्थान में लिखकर अपने प्रमाणभूत लेखकों के नाम प्रथम पृष्ठ पर लिखने चाहियें। कारण जो विचार बहुधा लेखक प्रकट करते हैं, किसी न किसी पुराने लेखक के होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक लेखक 'शब्दचोर' नहीं तो 'विचारचोर' तो अवश्य होता है।

मनुष्य का समाज पर अपने प्रत्येक कार्य के लिए अवलम्बित रहना, उद्योग धन्धों की

बात में और भी स्पष्टरूप से दीख पड़ता है। हम लोग व्यवहार में कहते हैं कि अमुक अमुक मनुष्य 'स्वोद्यमलब्ध प्रतिष्ठ' (Self-made) है। परन्तु यह बात वैसी ही असम्भव है जैसी आत्म-शिक्षित की है। यह मनुष्य केवल उन अवसरों का जो समाज उसको देता है उनका सदुपयोग कर लेता है। सिवा इसके, उसका उद्योग, वगैर पालिसी की रक्षा, बाज़ार जहां से कच्चा माल वह पाता है और मज़दूर और रेल बन्दर आदि की सहायता के, कैसे चल सकता है? अर्थात् यदि कच्चा माल समाज के लोग उसको न बेचें, यदि मज़दूर उसके उद्योग में सहायता न करें, यदि रेल आदि उसका माल ढोने को तैयार न हों, एवं पुलीस आदि उसकी रक्षा सर्वप्रकार न करें, तो वह कैसे अपने उद्योग में सिद्धि प्राप्त कर सकता है? सारांश, यदि समाज का अस्तित्व और उसकी सहायता न हो तो किसी भी व्यक्ति का एकाक्षण भी काम नहीं चल सकता।

इस विवेचन से यह सम्यक् रूप से सिद्ध हो जाता है कि व्यक्ति तथा समाज के हित एक दूसरे पर निर्भर हैं। अर्थात् यदि मनुष्य समाज का भला करे तो उसका भला आप ही आप हो जाता है, और अपना ही भला कोई करना चाहे तो भी थोड़ा बहुत समाज का हित होता ही है। एक बात इससे और सिद्ध होती है और वह यह है कि जितना समाज उन्नत होगा, उतने ही व्यक्ति भी उन्नत होंगे। व्यक्ति का उन्नत वा अवनत होना समाज के उन्नत वा अवनत होने पर निर्भर है। इससे यह उपदेश हमें ग्रहण करना चाहिये कि जो कोई अपनी निज की उन्नति चाहे, उसे समाज की उन्नति करने का यत्न करना चाहिये। सिवा इसके यह बात उपदेश के तौर पर ग्रहण नहीं करनी चाहिये, वरन् इसको अपना कर्तव्य समझना चाहिये। यह कर्तव्य क्योंकर हुआ इसका विवेचन आगे चल कर किया जायगा।

जब कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य से कुछ रुपया उधार लेता है तब यह उसका 'कर्तव्य' होता है कि वह उसका रुपया अदा करदे। इस प्रकार जब हम ऊपर के विवेचन से स्पष्ट देखते हैं कि समाज हमारे जन्म से लेकर मृत्यु तक—नहीं २ परजन्म में भी हमारी सहायता करता है, हमको सर्वप्रकार सुशिक्षित, धनबल सम्पन्न बनाता है, हमारी चोर डाकू शत्रु आदिकों से रक्षा करता है, तब क्या हमारा यह 'कर्तव्य' नहीं कि हम उसकी उन्नति करें, उसका हित साधें? पुनः यदि इस समाजहित के साधन से हमारा नुक्सान हो तब तो कदाचित् मनुष्य कुछ आपत्ति कर सकता है; पर जब इसके विरुद्ध हमारा हित ही इससे होता है, जैसा कि ऊपर दिखाया गया है, तब तो हमें 'देशहित' को अपना 'पवित्र कर्तव्य'—'धार्मिक कर्तव्य'—ही समझना चाहिये। हम तो यह कहते हैं कि जैसा हमारा सनातन वैदिक धर्म पांच "ऋण' बतलाता है, वैसे ही यह छठा ऋण 'देश-ऋण' है। या यों भी कह सकते हैं कि इस 'देश-ऋण' में ही पांचों ऋणों का समावेश हो जाता है।

'भक्ति' शब्द 'भज सेवायाम्' इस संस्कृत धातु से बना है। अर्थात् 'भक्ति' के लिए पर्याय शब्द सेवा, प्रेम, अनुराग हो सकता है। देश की भक्ति करना अर्थात् देशसेवा करना यही अर्थ उपयुक्त होगा। देश की भक्ति क्यों करना चाहिये यह बात तो पूर्व में बताई ही जा चुकी है। हमारे ऋषिमुनियों ने धर्म तथा समाज का संगठन इस सुन्दर प्रकार से किया था जिससे सहज ही देश का हित हो जाता था तथा उनके अनुसार चलने से अब भी हो सकता है। उदाहरणार्थ, प्रातः स्नान करने का नियम इस देश की परिस्थिति तथा प्रकृति के अनुकूल ही चलाया गया था। ऐसे ही देवताओं के पूजन के लिए जो पुष्प हों वे अपने हाथ से लगाये पौधों के ही हों। यह नियम सहज ही में हमारे

स्वास्थ्य की रक्षा का कारण हो जाता था। एक क्या वरन् जितने नियम आदि बनाये गये थे सब से कुछ न कुछ देश का हित होता ही था, किन्तु आजकल इनका कोई पालन नहीं करता इस कारण सहज ही होनेवाले हित का अभाव देख पड़ता है। एक हिन्दी के आधुनिक प्रसिद्ध लेखक ने उचित ही कहा है कि हमको 'अवस्था देखकर व्यवस्था बदलनी चाहिये'। सत्य ही इस नियम के अनुसार न चलने ही से बहुत से दोष हमारे समाज तथा धर्म में घुस गये हैं। जैसे, पूर्व में हमारे मन्दिर सुप्रसिद्ध विश्वविद्यालय तथा गरीब अपाहिजों की रक्षा करने के साधन थे, किन्तु आज हम क्या देखते हैं ? उन्हीं मन्दिरों के आचार्य विद्याहीन, लण्ठ और व्यसनों में रत पाये जाते हैं। दूसरों का सुधार करना तो अलग रहा वे अपना ही सुधार नहीं कर सकते। इसपर तुर्रा यह कि जिन विषयों का उनको ज्ञान नहीं उन विषयों में भी वे अपनी राग अलापते हैं! यह हुई मन्दिरों की बात, ज़रा हमारे धर्म के आचार्य ब्राह्मणों की भी दशा देखिये। ये अब भी अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने को ही अपना धर्म समझते हैं। अपने उदरपोषण को ही जगत का हित समझते हैं। 'अहिंसा परमोधर्मः' का तत्व तो कदाचित् आजकल के ब्राह्मण नामधारियों को छू तक नहीं गया! अहो! यह दुर्दशा !! यह अधःपात !!! यह उन्हीं ब्राह्मणों के वंशज हैं जिन्होंने देश-जगत् के हित के सामने अपने हित को सर्वदा तुच्छ समझा था। यह उन्हीं ब्राह्मणों के वंशज हैं जिन्होंने स्वतः जंगल में रहकर, सर्व सत्ता क्षत्रिय आदि वर्णों के हाथ में दे दी थी, जो सदा सर्वदा ईश्वरचिन्ता में निमग्न रहते थे, ईश्वरनिर्मित जगत् के हित में रत रहते थे। अब भी किसी प्रकार इनमें जो सद्गुण बच गये हैं उनके स्वीकार करने से हम मुख नहीं मोड़ते हैं। किन्तु,

'संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते।'

इस नियमानुकूल इनकी अपकीर्ति, इनके गौरव का नाश देखकर बलात् ऐसी बातें कहनी पड़ती हैं। इस पर भी हर्ज नहीं। अभी समय है। अब भी ये चेतें तो अपना तथा समाज का सुधार बहुत ही थोड़े काल में कर सकते हैं। बुद्धिमान मनुष्य गिरने पर उठने की कोशिश करते हैं, वहीं पर पड़े नहीं रहते। इस विषय पर स्वर्गवासी पं० माधवप्रसाद जी मिश्र ने क्या ही सुन्दर उपदेश किया है। वे कहते हैं:—

'चढ़ता है सो गिरता भी है,
पर गिरकर जो उठे नहीं।
उससे बढ़कर शोच्य जगत में,
मिल सकता कब मनुज कहीं॥
साधु वृत्त कन्दुक सम गिर कर,
बेर बेर ऊपर आते।
वृत्तहीन मृतपिण्ड सदृश गिर,
तुरत धूलि में मिल जाते॥
उठते हैं वे वीर पुत्र,
जिनको पितरों का है अभिमान।
नहीं उठाने से उठते वे,
जारज कायर मृतक समान॥
पैरों में गिर ठोकर खाना,
यह कब किसको प्यारा था।
उठना और उठाना सबको,
यह एक काम हमारा था'॥ आदि।

सत्य धर्म।

कई महाशयों का कथन है कि हम यदि अपने धर्म का सुधार करें, अपने धर्म के अनुकूल चलें तो हम तुरन्त ही उन्नतावस्था को प्राप्त होंगे। किन्तु प्रश्न यह उठता है कि 'सत्य धर्म' क्या है? क्या केश, नख, आदि बढ़ानेवाले पाखण्डव्रत धारण करनेवाले, चम् भोलानाथ महादेव के पूर्णभक्त, गांजा भांग आदि सेवन करनेवाले, भीख मांग अपना उदर पोषण करने-

वाले, आधुनिक 'साधु' महात्माओं को दान देना ही 'सत्य धर्म' है? क्या किन्हीं मतमतान्तरवाले मन्दिरों में जा पद दर्शन कर, मर्यादा लेकर, मुंह से राधाकृष्ण का भजन कर, अपने स्वतः को भक्त श्रेष्ठ मानना; किन्तु अपने व्यवसाय में नौ रुपये के सौ रुपये करना, असत्य बोलना, और सर्वप्रकार नृशंसता का परिचय देने में कसाई से भी बढ़ जाना ही 'सत्य धर्म' है? यदि यह नहीं तो क्या अपनी जाति में अपनी शुद्धता सिद्ध कर 'आठ कनौजिये नौ चूल्हे' की शेखी बघारना, किन्तु नौकरी के समय नीचातिनीच लोगों का जूंठन साफ करना, और दूसरों की अनुपस्थिति में छिपे हुए चाहे जो वस्तु अखाद्य अस्पृश्य आदि खाना यही 'सत्य धर्म' है? कहां तक कहा जाय ऐसी कितनी ही परस्पर विरोधी बातें 'धर्म' के नाम से हमारे देश में आजकल प्रचलित हैं जिनको देख सुन कर प्रत्येक विचारवान मनुष्य का मस्तक लज्जा से नीचा हो जाता है। अस्तु। अब 'सत्य धर्म' किसे कहना चाहिये इस बात का विवेचन यहां पर संक्षिप्तरूप से किया जाता है। प्रत्येक धर्म में 'परोपकार' धर्म का प्रधान अंग माना गया है। हमारे सनातन वैदिक धर्म में तो 'अहिंसा परमो धर्मः' यह सिद्धान्त परोपकार की पराकाष्ठा का द्योतक है तथा सच्चा धर्म सच्चा पुण्य 'परोपकार' ही है यह सर्वप्रकार सिद्ध किया गया है। श्रीवेदव्यास जी महाराज ने स्पष्ट ही कहा है कि :—

'परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।'

अथवा श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी के शब्दों में :—

'परहित सरिस धर्म नहिं भाई,
परपीड़ा सम नहिं अधमाई॥'

अर्थात् परोपकारसा 'धर्म वा पुण्य' नहीं और परपीड़ा के समान 'अधर्म' संसार में नहीं है।

सिवा इसके, यह बात सब लोग मानते हैं कि ईश्वर-भक्ति करना सर्वोत्कृष्ट धर्म है। ईश्वर-भक्ति का अर्थ चाहे जो हो, हमतो इसका यही अर्थ समझते हैं 'ईश्वर की सेवा करना या ईश्वर को संतुष्ट करना'। इसके चाहे जितने मार्ग हों, उसके संतुष्ट करने का एक सत्य और निश्चित मार्ग नीचे लिखा है। अखिल विश्व, चर अचर, जड़ चेतन, सब कुछ उस परमेश्वर का बनाया हुआ है यह सर्वमान्य सिद्धान्त है। इस सिद्धान्तानुसार ईश्वर इस जगत का पिता हुआ, और अखिल विश्व उसकी सन्तान। पिता को अपने प्यार के बदले अपने पुत्र के प्यार से अधिक आनन्द तथा सन्तोष होता है। इसी प्रकार क्या जगत्पिता परमेश्वर अपनी सन्तान अखिल विश्व का लालन देखकर सन्तुष्ट न होगा? अवश्य ही होगा। अतएव सबसे सुलभ तथा सत्य मार्ग परमेश्वर को संतुष्ट करने का यह है कि उसकी सन्तान अखिल विश्व का सर्वप्रकार हित किया जाय। सर्वप्राणियों की रक्षा करना, सर्व जगत् के मनुष्यों से सहानुभूति दिखाना, नीच हो या ऊँच, सबल हो या निर्बल, दीन हो या श्रीमान, सबको एक आंख से एक समान देखना, उनके क्लेशों को दूर करना, और यथाशक्ति सर्व जगत को सुखी करने का प्रयत्न करना, सबसे सुखकर और सुगम मार्ग परमेश्वर को सन्तुष्ट कर परमपद प्राप्त करने का है। इसके विरुद्ध, मनुष्य, चाहे जितना योग साधे, चाहे जितना वेद और उपनिषदों के ज्ञान समुद्र का मथन करे, चाहे जितना द्वैत, अद्वैत, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदि के पचड़े में पड़ चक्कर खाता रहे और अपने परमपद को पहुंचा हुआ माने, चाहे वह अपने को ब्रह्म ही क्यों न समझे जब तक वह मनुष्यमात्र के परोपकार करने की इच्छा नहीं रखता और इस प्रकार की इच्छा के साथ ही साथ, उस इच्छा को कार्य में परिणत नहीं करता,

राइट आनरेबिल मिस्टर आस्टन चेम्बरलेन, नये भारत-मन्त्री।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

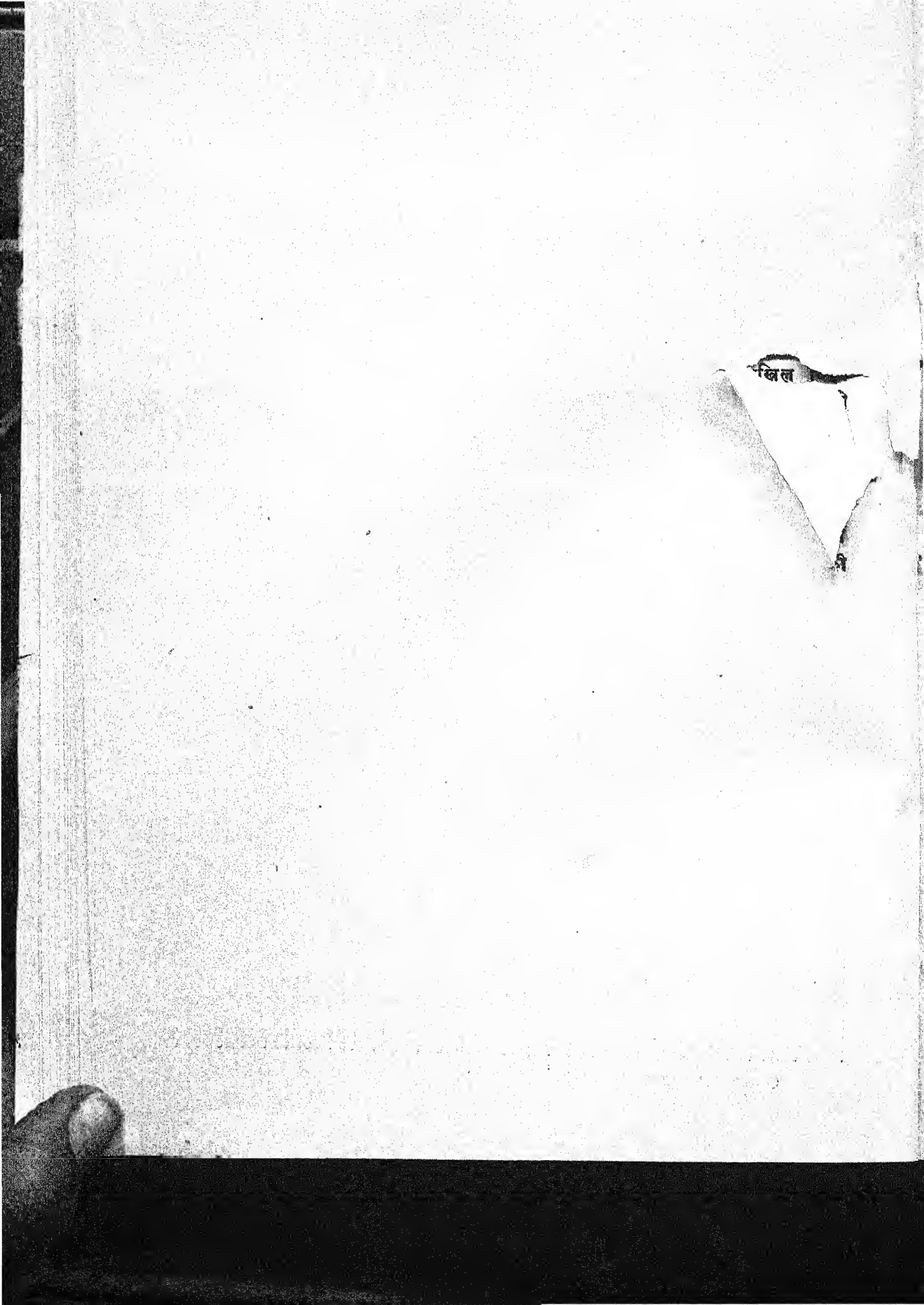

तब तक वह कदापि सच्चा ज्ञानी या ब्रह्मवेत्ता नहीं हो सकता। वह ज्ञान सच्चा ज्ञान नहीं, वह योग सच्चा योग नहीं, वह भक्ति सच्ची भक्ति नहीं; यह सब संसार को धोखा देने का आडम्बरमात्र है, साधनसामग्री है। क्योंकि 'परोपकाराय सतां विभूतयः' अर्थात् साधुओं का प्रधान लक्षण परोपकार है। इस प्रकार धर्म की दृष्टि से भी यह बात सिद्ध है कि परोपकार करना ही श्रेष्ठ धर्म है।

ऊपर यह सिद्ध किया गया कि अखिल विश्व का, प्राणिमात्र का, हित करना ही श्रेष्ठ धर्म है। किन्तु हम अब तक 'स्वदेश' के हित पर ही ज़ोर दे रहे थे। यह क्यों? इसका कारण यह है जैसा पूर्व में कहा गया है, कि परहित वृत्ति का उद्भव स्वार्थवृत्ति से ही होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि परहित वृत्ति की वृद्धि क्रम २ से होती है। अर्थात् जितना अभ्यास परहित वृत्ति का बढ़ता जायगा, उतना ही परोपकार का परिमाण बढ़ता जायगा। पूर्व में अपना कुटुम्ब, फिर मित्र का कुटुम्ब, फिर अपने समाज के दूसरे मनुष्य, फिर अपना पूरा समाज इसके अनन्तर अपना देश और इसके अनन्तर दूसरे देश, और अन्त में अखिल मनुष्यमात्र इस प्रकार परोपकार की परिधि बढ़ती जायगी। किन्तु आरम्भ में ही सब मनुष्यों के हित करने की बात मनुष्य के हित में जमा नहीं सकती। अतएव मनुष्य की परहित वृत्ति की वृद्धि, पूर्व-संस्कार और अभ्यास पर अवलंबित है। यह बात पूर्व में कही गई है कि जितना समाज उन्नत होगा उतनी ही परहितवृत्ति की वृद्धि होगी। अतएव हमारे भारत की सभ्यता को देखते हुए तो प्रत्येक भारतवासी को प्राणिमात्र का परोपकार करना चाहिये—निदान, इतना नहीं तो अपने स्वदेश का हित तो अवश्य ही साधना चाहिये।

परन्तु हमें तब अत्यन्त खेद होता है जब हम यह सोचते हैं कि सच्चे देशहित साधने-वाले इनेगिने भारतवासियों के विपक्ष में सैकड़ों देशद्रोही कुलांगार अब भी इस देश में वर्तमान हैं। क्या यह भारत की सभ्यता को देखते हुए सुसमाचार है? क्या यह बात भारत की उन्नति दर्शाती है? कदापि नहीं। इस पर भी सैकड़ों क्या करोड़ों भारतवासी अपनी पुरानी सभ्यता का डंका पीटते हैं, अपने पूर्वजों के यश को अपना ही यश मानते हैं। हम यह नहीं कहते कि हमको अपने पूर्वजों की कीर्त्ति पर गर्व न करना चाहिये, वा अपनी सभ्यता को सर्वोच्च न मानना चाहिये। हम भले ही इन बातों को करें, किन्तु इनके साथ ही साथ हमको अपनी निज की कीर्त्ति सम्पादन करनी चाहिये। हमें अपने पूर्वजों से बढ़कर नहीं तो उनके तुल्य तो अवश्य बनना चाहिये।

इसलिए प्रिय देशबन्धुगण! आपसे सविनय यही निवेदन है कि आप यथाशक्ति देश-हित सम्पादन कर अपनी पहिली कीर्त्ति प्राप्त कीजिये, अपने देश के जन धन की रक्षा कीजिये, अपनी परम्परागत सभ्यता के योग्य बनिये। किन्तु यह स्मरण रखिये कि यदि ऐसा करने में हम इस समय चूकेंगे तो हम इस जन्म में अपकीर्ति और पर जन्म में नरक के भागी होंगे।

कई मनुष्यों का कथन है कि इस कलियुग में हमारी उन्नति कदापि नहीं हो सकती। कारण हमारे हिन्दुओं के शास्त्रानुसार दिन पर दिन हमारी अवनति का होना ही पाया जाता है। प्रथम तो इस कथन को हम मानते ही नहीं। द्वितीय, यदि इसको सत्य मानकर चला जाय तो भी हमें इस प्रकार हताश न होना चाहिये। यह ऊपर बताया ही गया है कि देशहित साधना मनुष्य मात्र का 'कर्तव्य' है। जब यह कर्तव्य सिद्ध हो चुका, तब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द के वचनानुसार हमको कर्तव्य के फल की आशा कदापि न करनी चाहिये॥

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान ने कहा है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥

पुनः कर्तव्य वह वस्तु है जिसका फल उसकी पूर्ति पर अवलंबित नहीं रहता। कार्य में परिणत किया हुआ कर्तव्य का सूक्ष्म अंश भी सिद्धि का दाता और विघ्नों का हरण करने-वाला होता है। इसीलिए भगवान् मधुसूदन गीता जी में कहते हैं कि—

नेहाभिक्रम नाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

अर्थात् आरम्भ किये हुए कर्म का नाश नहीं होता न उसमें किसी प्रकार रुकावट होती है और धर्म का, कर्तव्य का अल्पांश भी बड़े २ भयों से मनुष्य को बचाता है। इससे यह तो सिद्ध है कि देशहित के साधन से उन्नति अवश्य होगी ही। किन्तु इसके विपक्ष में यदि हम देशहित साधन न करें तो अवश्य ही हमको अवनति के गड्ढे में गिरना होगा। ऐसी स्थिति में प्रिय देशबन्धुगण! आपसे हमारी हाथ जोड़ यही प्रार्थना है कि इन दो मार्गों में से जो आपको सुन्दर, सहज, श्रेयस्कर मार्ग प्रतीत हो, उस ही को आप ग्रहण कीजिये। आप जैसे सभ्य शिरोमणियों से अधिक कहना क्या अनुचित न होगा।

एक राष्ट्रीय आवश्यकता।

[लेखक—श्रीयुत भगवन्नारायण भार्गव।]

अब अस नर-वर चहियतु स्वाम।
जे सांचे जिवतें नित परहित
करहिं स्वतन्त्र सुकाम॥
अरु सेवें भारत-जननी-सुचि
चरन-कमल करि भक्ति।
आत्म-त्याग उर ज्योति अरावें
सहि निज सुकृतनु शक्ति॥
सब भाखिबे निरभय होवें
जग किनु करे विरोध।
निज सुधर्म पालनु महँ नास
सकल अहित अवरोध॥
सत-विद्या उरझद प्रेमा हों
पावन ज्ञान निधान।
सुभग राष्ट्र-जीवनु सजाविबे
देव प्रानहु दान॥
देस-सत्व-संग्राम माहिं
जे पावें नाम प्रवीर।
अपरनु सुख त बच होहिं ना
दुख महँ तनिकु अधीर॥
अतुल-साहसी काज-कुसल हों
शिल्प-कलानु प्रवीन।
चित नित हुलसित राखें होवें
कबहुं न दीन मलीन॥
अहङ्कार तजि स्वाभिमान की
सरन गहें सब लोग।
त्यागें काम कोह मद लोभहु
मत्सर मोह कुभोग॥
सुचरित-पवन सुद्ध करि जिनको
थल २ सकल-स्वदेस।
मूरखता-अन्याय-तिमिर को
राखें कतहुं न लेस॥
जीवनु की रण-भूमि माहिं जे
पावें जय अभिराम।
करि उद्योग कर सु-तेजमय
प्रियतम-भारत-धाम॥
अब अस नरवर चहियतु स्वाम॥

सहयोग समितियां ।

[लेखक—श्रीयुत भगवन्नारायण भार्गव ।]

"If the System of Co-operation can be introduced and utilized to the full, I foresee a great and glorious future for agricultural interests of this country (H. M. The King Emperor; 13th Dec. 1611.)

"यदि सहकारिता की प्रणाली का प्रचार व सदुपयोग भली प्रकार हो जावे तो मुझे विश्वास है कि इस देश की कृषि-सम्बन्धी दशा महाप्रतापी व समृद्धि शालिनी हो जावेगी" (श्रीमान् राजराजेश्वर पञ्चम जार्ज के वचन, १३ दिसम्बर सन् १९११) ।

भारत एक कृषि प्रधान देश है और यहां के कृषकजन प्रायः इतने धनाढ्य नहीं होते कि बिना ऋण लिये वे अपनी कृषि का कार्य अच्छी प्रकार चला सकें। उनके ऋण देनेवाले प्रायः साहूकार होते हैं जो कि उनसे मनमाना ब्याज लेते हैं और उतने ही ब्याज पर बेचारे कृषकों को ऋण लेना पड़ता है क्योंकि उसके बिना उनका काम चल ही नहीं सकता । ये साहूकार लोग अपने कर्ज़दारों की दुर्दशा से अत्यन्त लाभ उठाते हैं, जब कर्ज़दार आपत्ति में होता है तब वह यह नहीं विचारता है कि ब्याज उससे अन्याय से लिया जा रहा है जैसे कि कोई मनुष्य जब किसी नदी में डूबा जा रहा हो तब वह कूलस्थ मनुष्यों से यह नहीं ठहराता है कि यदि वे उसको बचा देंगे तो वह क्या देगा, जो कुछ वे मांगते हैं वही उसको देना पड़ता है ।

यहां के कर्ज़ देनेवाले लोग बड़े चालाक होते हैं वे रुपया तो उधार दे देते हैं परन्तु उसके बदले में बाज़ार की अपेक्षा कम मूल्य पर अनाज ले लेते हैं । वे यह भी जानते हैं कि ब्याज का व कर्ज़दार के विश्वासपात्रत्व का सम्बन्ध रखना चाहिये अर्थात् यदि कर्ज़दार अधिक विश्वसनीय है और उसके पास अच्छी ज़मीन है तो वे उससे कम ब्याज लेते हैं पर वह भी १८ । १९ रु० सैकड़े से कम नहीं होता और यदि किसी कर्ज़दार की आर्थिक व कृषि सम्बन्धी दशा सन्दिग्ध होती है तो वे उससे ३७), ३८) सैकड़े ब्याज लेते हैं और यदि वह ऋण नहीं चुका सकता है तो कभी २ उसकी ज़मीन भी लेली जाती है । इससे यह प्रतीत होता है कि कृषक की ज़मींदारी एक प्रकार से ऋणयुक्त करने की ज़मानत है । यदि कृषक समय पर ऋण न चुका सके तो ब्याज दूना कर दिया जाता है और फिर ब्याज पर ब्याज लिया जाता है । कभी २ तो ऐसा भी देखा गया है कि ब्याज मूल ऋण से दस बारह गुना हो जाता है यह भी बेचारे कृषकों को भोगना पड़ता है, यद्यपि वे कभी २ अपने साहूकारों को अपने क्षेत्र में उत्पन्न तृण शाक ईंधनादि भी बिना मूल्यही दे देते हैं । ऐसी दशा में यही प्रतीत होता है कि कृषक अपनी श्रमोत्पत्ति को प्रायः साहूकारों को ही दे डालता है, केवल अपने व अपने कुटुम्ब के पोषणार्थ कुछ रख लेता है । यहां पर यह विचारणीय है कि दुष्काल के दिनों में इन बेचारों की क्या दशा होती होगी । उन दिनों में तो धनाढ्य साहूकार भी इनको ऋण न देते होंगे क्योंकि फसल अच्छी तरह होने की आशा के अभाव से कृषकजन अविश्वासपात्र हो जाते हैं, ऐसे समय में कृषक बहुत रहन देते हैं और यदि उस ऋण को नहीं चुका सकते हैं तो उनकी ज़मीन भी चली जाती है और वे महा शोचनीय दशा को प्राप्त हो जाते हैं । जब स्थानीय

अकाल होता है तब उस स्थान के कृषक लोग सहर्ष खाद्य पदार्थों के लिए अधिक मूल्य नहीं दे सकते और उस समय यदि किसी दूसरे स्थान में अच्छी फसल हो गई हो तो ये लोग वहां के साधारण मूल्यवाले खाद्य पदार्थों को भी नहीं खरीद सकते क्योंकि वे तो पहले ही दुष्कालपीड़ित होने से धनहीन रहते हैं। इस से ज्ञात होता है कि यहां पर दुष्काल विशेषतः कृषि प्रधान मनुष्यों की धनहीनता और ऋण के कारण होता है। कृषकों की तो यह दशा है साथ ही ऋण और कृषि-सम्बन्धी शिल्पों की भी दशा धन की न्यूनता के कारण भारत में शोचनीय हो रही है।

इन दुर्दशाओं को दूर करने के लिए प्रयत्न करना हमारा परम कर्तव्य है। यहां की दशा तभी सुधर सकती है जब ऋण लेने के नियमों में कुछ परिवर्तन किया जावे। कृषकजनों को रुपया थोड़े ब्याज पर मिल जाया करे और वे फजूलखर्ची न करें जैसे कि वे बहुधा किया करते हैं। लड़की के विवाह में यदि दो सौ रुपयों से काम चलता हो तो पांच सौ रुपये का ऋण ले लेते हैं और बहुत से व्यर्थ कामों में नष्ट करते हैं यह सब उपाय सहयोग-समितियों और बैंकों ही से हो सकता है।

इन्हीं समितियों के द्वारा दुष्कालपीड़ित कृषकों के लिए रुपये अलग रक्खे जा सकते हैं, कृषि की और अन्य स्थानीय शिल्पों की उन्नति के हेतु पूंजी की वृद्धि की जा सकती है और शिल्पकारों का निकृष्ट ऋण लेना दूर हो सकता है।

ऐसी समितियां रफ़ाईसन् (Raffaisen) और शुल्ज़ी (Schulze) नामक जर्मनों ने सन् १८४९ में स्थापित की थी और इनका सिद्धान्त जर्मनी, डेन्मार्क, स्विज़रलैंड और इटली में लाभकारी प्रमाणित हुआ। भारत में इनका प्रादुर्भाव १९०४ में हुआ और दो साल में ऐसी २ समितियां आठ सौ बन गईं। यद्यपि मद्रास में सहयोगनिधियां पहिले से ही प्रचलित थीं परन्तु वे ऐसी गुणमयी और लाभदायिनी न थीं। पूर्णरीति से इनका प्रचार ऐक्ट सन् १९१२ से हुआ। आजकल इन समितियों की संख्या बारह हज़ार से अधिक है। उनमें छः लाख सदस्य हैं और पांच करोड़ रुपयों से अधिक पूंजी है।

अब जिस २ स्थान में ये समितियां हैं वहां पर कृषकों की दशा पूर्वकाल की अपेक्षा अधिक अच्छी है। एक कृषक की साख पर ऋण देना व ब्याज लेना निर्भर नहीं है वरंच कुछ व्यक्तियों के समुदाय की सामूहिक साख के आधार पर ऋण दिया जाता है। इस प्रकार निर्धन कृषकों को हानि नहीं पहुंचती।

साख दो प्रकार की है, प्रथम तो वह साख जो ऋणदाता ऋणकर्ता की करता है, द्वितीय वह जो कि ऋणकर्ता ऋणदाता से प्राप्त करता है अर्थात् यह प्रतिज्ञा कि वह उचित समय पर ऋण उतार देगा। इन्हीं दोनों साख के आधार पर कृषकसमूह उचित ब्याज पर ऋण पाता है। इन नियमों के अनुसार संयुक्तप्रदेश में ब्याज केवल १२॥) सैकड़े लिया जाता है। साधारण ऋणदाता लोग यहां १८) से ३७) रु० और मध्यप्रदेश में १८ से २५ रु० सैकड़े तक ब्याज लिया करते हैं।

ये समितियां मुख्यतः तीन भागों में विभक्त हैं। १–ग्रामीण। २–नागरिक। ३–प्रधान समितियां।

१ ग्रामीण—इनके सभ्य अधिकतर कृषि प्रधानजन होते हैं। इनमें सभ्यों की ज़िम्मेदारी अपरिमित होती है और सदाचारी पुरुष ही सदस्य किये जाते हैं। एक ग्राम अथवा अनेकों समीपस्थ ग्रामों के दस आदमी मिलकर एक समिति बना लेते हैं. इन बैंकों से जो आर्थिक

लाभ होता है वह रक्षित भंडार में डाला जाता है। पीछे वह विमुक्त किया जाता है। ऋण प्रामिसरी नोट पर दिया जाता है। ऋण की ज़मानत में जेवर आदि रजिस्ट्रार की सम्मति से, जो सरकार की ओर से प्रत्येक समिति के लिए नियत किया जाता है लिया जाता है। इसके सिवा एक निरीक्षक (Inspector) भी प्रत्येक प्रान्त में रहता है। इन समितियों से रजिस्टरी फीस नहीं ली जाती।

२ नागरिक—ये नगर के शिल्पकारों, मज़दूरों, लेखकों आदि के लाभार्थ स्थापित की जाती हैं। इनकी संख्या ग्रामीण समितियों से न्यून होती है और इनमें सदस्यों की ज़िम्मेदारी परिमित होती है और इनमें सदस्यों के सदाचार पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता।

३ प्रधान—१९०४ के ऐक्ट में इन पर विवेचना नहीं की गई थी। १९१२ के ऐक्ट में इसका पूर्णतया प्रादुर्भाव हुआ। ये भी अब बहुत प्रान्तों में हैं। इनका काम एक बैंक की पूँजी को अधिकता से दूसरे बैङ्कों की कमी को पूरी करना है।

परन्तु प्रधान बैंक सदा अपना काम पूरा २ नहीं कर सकतीं क्योंकि कभी २ उनकी भी आर्थिक दशा अच्छी नहीं रहती और उन्हें भी कहीं से सहायता लेनी पड़ती है। अतएव अनेकों प्रान्तों में यह आवश्यकता हुई है कि प्रान्तिक बैंक स्थापित किये जायँ। बर्मा, बम्बई, मध्यप्रदेश में ऐसे बैंक स्थापित हैं। सर्व प्रकार के बैंकों को ध्यान रखना चाहिये कि रक्षित भांडार (Reserved funds) का धन चाहे जैसे व्यय न होने पावे। कोई यदि कहे कि थोड़े से धन के उठ जाने में कोई हानि नहीं तो यह ठीक नहीं क्योंकि यदि धन थोड़ा है तो उससे थोड़ी सहायता तो अवश्य मिलेगी और व्यर्थ उठा देने में हानि अवश्य होगी। रक्षित भांडार से यह भी लाभ है कि इसकी अच्छी दशा देखकर मनुष्यों को विश्वास उत्पन्न होता है और सब से मुख्य लाभ यह है कि सदस्यों में अच्छा ऐक्य हो जाता है।

इस बात का भी विचार सब बैंकों में होना चाहिये कि आवर सम्पत्ति पर रुपया उसी समय उधार दिया जाय जब कि उस जायदाद को साहूकारों के हाथों से बचाना हो और यह भी देख लेना चाहिये कि जो मनुष्य सदस्य होना चाहता है उसे कहीं अन्यत्र का ऋण तो देना नहीं है। यदि दे चुका है अथवा इतना देना है कि सहयोग समितिवाले सहायता कर सकें तो उसको सभ्य बनाने में कोई हानि नहीं, अन्यथा नहीं बनाना चाहिये।

अब यह बतलाना उचित प्रतीत होता है कि इन सब प्रकार के सहकारी बैंकों की उन्नति होने के लिए सदस्यों में कौन २ गुण होने चाहियें।

(१) प्रत्येक सभ्य को सत्यरत और सदाचारी होना चाहिये और अन्य सदस्यों से सज्जनतापूर्वक व्यवहार करना चाहिये। इन सदस्यों में से जो हीनाचार हो जाता है वह बहिष्कृत कर दिया जाता है।

(२) सदस्यों को ऐसा स्वभाव डालना चाहिये कि वे नियत समय पर ऋण उतार दें यदि वे दुष्काल के कारण नहीं दे सकते तो समय बढ़ा दिया जाता है।

(३) सदस्यों को विशेषतः शिक्षा दी जानी चाहिये इस बात की कि वे कर्तव्यपरायण हों।

सहयोगसमितियोंवाले बैंकों से तीन प्रकार के लाभ होते हैं:—

(१) साम्पत्तिक (२) कृषि सम्बन्धी (३) आत्मिक।

(१) (क) ग्रामीण ऋणदाता जो घाव अपने ब्याजरूपी शस्त्र से कृषकों के सम्पत्तिरूपी शरीर में कर देते थे वे दूर होगये हैं।

(ख) कृषकों का प्राचीन ऋण दूर हो जाता है।

(ग) दुष्काल निवारणार्थ एक अपूर्व शस्त्र सुसज्जित है।

(घ) रक्षित भण्डार के धन से अनेक लोकोपकारी शिल्पकला आदि की वृद्धि होती है।

(ङ) मुकदमों में धन कम व्यय होता है।

(च) यदि कृषकजन चाहें तो अपने प्राचीन रेहनदारों से भी वंचित व्याज पर ऋण ले सकते हैं क्योंकि अब उनके मनमाने व्याज पर ऋण लेनेवालों से उनके पास रुपया फालतू रहता है।

(छ) प्रत्येक सदस्य मितव्ययी हो जाता है। बङ्गदेश में ऐसे बैंक जब नहीं थे, मनुष्यों को विवाह में धूमधाम से निमन्त्रण भोजनादि के लिए ऋण लेना पड़ता था परन्तु अब यह बात नहीं है। पूर्वकाल में ग्रामवालों को अन्य सहवासियों से विवाहादिक में स्पर्धा करने के लिए ऋण लेना पड़ता था परन्तु अब तो जो इन बैंकों के सदस्य हैं उनको परस्पर के ऋण के लिए अनुयोगाधीन होना पड़ता है अर्थात् यदि उनमें से एक अपना ऋण न दे सका तो शेष सभ्यों को मिलकर देना होता है इसलिए वह पुरानी चाल दूर होगई है।

(२) कृषिसम्बन्धी लाभ—(क) कृषकों की आर्थिक दुर्दशा दूर होने पर उन्हें बुरी भूमि से भी अच्छी फसल प्राप्त होती है।

(ख) समय २ पर सरकार से बीज व बैलों के लिए ऋण मिल जाता है।

(ग) ऋतुजनित असुविधाएँ कुल्यादिकों द्वारा दूर हो जाती हैं।

(घ) कृषकों को सस्ता खाद और विदग्ध जन-परीक्षित शस्त्रादिक मिल जाते हैं।

(ङ) ग्रामीण बैलों की वृद्धि के लिए अच्छे गुणवाले बहुत बैल सुगमता से प्राप्त हो जाते हैं।

(३) आत्मिक लाभ—(क) सदस्यों को परस्पर सहायता देने का स्वभाव पड़ जाता है। इनमें से यदि कोई आदमी नियम नहीं जानता है तो दूसरे बतला देते हैं और ऋण के लेने देने में भी एक दूसरे की सहायता करते हैं।

(ख) परोपकार की शिक्षा अच्छी मिल जाती है। प्रत्येक सदस्य संपूर्ण बैंक के लिए परिश्रम करता है परन्तु स्वार्थ पर ध्यान नहीं देता।

(ग) सदाचार, संयम, दूरदर्शिता, शक्तिशालिता, श्रमस्वभाव और स्वाभिमान इन सबों की उन्नति होती है।

(घ) सहानुभूति, प्रेम और धर्मरति के विचारों का वितान तन जाता है और ऐक्य की सुरभित पवन चलने लगती है।

(ङ) लोग अधम जातियों से घृणा नहीं करते वरञ्च उनको भी ईश्वर का बनाया हुआ जानकर अपना सहयोगी मानते हैं।

(च) जब मनुष्य व्यापार करते हैं तो उन्हें शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है। यदि वे अनपढ़ हों तो अपना हिसाब कैसे रख सकते हैं, प्रामीसरी नोट पर हस्ताक्षर करना और पास बुक आदि पढ़ना उनके लिए असम्भव है। जो पढ़े होते हैं वे स्वयं वंचित नहीं किये जा सकते हैं। सारांश यह है कि इन बैंकों से बड़ा उपकार होता है और यदि अच्छे नियमानुसार अपना कार्य ये अच्छी तरह चलाते जायँ और इनके सदस्य भी पुरुषार्थी हों तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि एक दिन भारत में इनके द्वारा बहुत उन्नति हो जायगी।

इन बातों पर विचार करके हम भारतवासियों को उचित है कि ऐसा प्रयत्न करें जिससे अधर्म, अज्ञान, ईर्ष्या और मात्सर्य का अन्धकार, धर्म, ज्ञान, प्रेम और सहानुभूति के उत्कृष्ट प्रकाश से सर्वथा दूर होजाय, अविद्या और दरिद्रता की मूर्तियों का बहिष्कार शीघ्र ही इस देश से कर दिया जावे और हम सब उत्साहपूर्ण होकर विद्या देवी का सेवन करके पवित्रोन्नति के मार्ग पर विघ्नों को दूर करते हुए ईश्वर में विश्वास करके वास्तविक मनुष्यों के समान गमन करें।

विचित्र अभिनयकर्ता।*

[लेखक—श्रीयुत महावीरप्रसाद पोद्दार।]

(१)

मुझे जब की बात कहनी है उसके प्रायः छै मास पूर्व कलकत्ते के प्रसिद्ध अलायन्स बैंक में चोरी हो गई थी। इसमें सन्देह नहीं कि यह चोरी उसी बैंक के कोषाध्यक्ष हरेन्द्रनाथ और उसके सहकारी भुवनचन्द्र ही की करतूत थी। चोरी होने के बाद ही से वह दोनों लापता थे। पुलीस ने बहुतेरा सिर मारा पर अभी तक उनका पता नहीं लगा।

मैं यूनियन थियेटर का मालिक हूं। उस समय हम लोगों के पृष्ठपोषक हेमेन्द्र बाबू ने 'काश्मीर-गौरव' नाम का एक नाटक लिखा था। यह उनकी पहिली ही रचना होने पर भी मैं उसे खेलने को राज़ी था, इसका क्या कारण था सो बुद्धिमान् पाठक स्वयं समझ सकते हैं। उस समय मेरे मन को इसी बात की चिन्ता सता रही थी कि क्या उपाय किया जाय कि खेलवाले दिन खूब भीड़ हो।

कई दिन सोचते २ मुझे एक तरकीब सूझी उसे कार्यरूप में लाने के लिए मैं हेमेन्द्र बाबू से भेंट करने गया।

सात बजे का समय होगा। हेमेन्द्र बाबू बिछौना छोड़ कर चाह पीने बैठे ही थे। मुझे देखतेही आग हो गये। बड़ी रुखाई से बोले, अब क्यों? फिर कहीं फेर बदल कराने चले हैं क्या? ऐसा हो तो यह सीधा मार्ग पड़ा है अपने घर की राह लीजिये; अब मैं एक शब्द की कौन कहे एक कामा तक नहीं बदलूंगा। आपको सौ दफे गर्ज हो मेरा नाटक खेलिये चाहे न खेलिये। आपको नाटक क्या दिया आफत मोल ले ली। सब कामों की एक हद होती है पर आपने तो नाकों दम कर दिया। नित्य आज यह बदल दीजिये, वह ठीक कर दीजिये, यहां ऐसा कर दीजिये, वहां से यह निकाल दीजिये लगाये रहते हैं कोई कहां तक बरदाश्त करेगा। इससे अच्छा है कि आप मेरी पुस्तक लौटा दीजिये मैं बाज आया उसके खेल से। मैं अपने नतीजे को पहुंच न गया। यह सब मेरी ही बेवकूफी थी! और देखिये।

इधर मेरी हँसी रोके न रुकती थी। मुझे हँसते देखकर वह और अधिक बिगड़ कर बोले, "जी हाँ आपका हँसना तो ठीकही है! इसमें कुछ लगता थोड़े ही है! अगर आपको मालूम होता कि इससे लेखक के हृदय को कितनी चोट लगती है, कैसा दुख.....इस बार मैंने ज्यों त्यों हँसी रोकी और उनकी बात काटकर बोला अजी ठहरिये साहब, ठहरिये, उस काम के लिए मैं नहीं आया हूं और ही बात है।

मेरी बात सुनकर उनका क्रोध दूना हो गया। वह झुंझला कर बोले—"तो फिर अब तक कहा क्यों नहीं?" फिर थोड़ी देर चुप। चाह पीने के बाद कहा, "तो दूसरा कौन काम है?"

"बतलाता हूं, सुनिये, मैं चाहता हूं कि आपका नाटक खूब ठाट बाट से खेला जाय।"

मेरी बात सुनकर नाट्यकार फूले न समाये। मुस्कराकर बोले, "देखिये देवेन्द्र बाबू, कल रात को खटमलों के मारे आंख तक नहीं लगी! तबियत बड़ी खराब है। झुंझलाहट में

* प्रवासी से अनुवादित।

यदि आपको कुछ कह सुन दिया हो तो माफ कीजियेगा। फिर क्या कहना था? हां तो आप क्या करने कहते हैं।"

मैंने जो तरकीब सोची है वह एक दम निराली है। आप और मैं काश्मीर चल कर.....

हेमेन्द्र बाबू बीच ही में मेरी बात काट कर बोले, काश्मीर चल कर? ऐं, देवेन्द्र बाबू आप कहते क्या हैं? काश्मीर भारत की उत्तरी सीमा पर हम लोग चलेंगे? यह ठीक नहीं वह असम्भव है; दूसरी कोई तरकीब हो तो बतलाइये।"

हेमेन्द्र बाबू शरीर से जैसे मोटे हैं, स्वभाव के भी वैसेही आलसी हैं। एक जगह से दूसरी जगह जाना उनके लिए यमराज के यहां जाने के बराबर है। आलस्य ही तक नहीं, एक बाधा और भी थी, दूसरे ब्याह को नई स्त्री मनीषा थी। "वृद्धस्य तरुणी भार्या" वाली कहावत सर्वत्र की भांति यहां भी चरितार्थ होती थी। इस अधेड़ अवस्था में वे थोड़ी मनीषा पत्नी के पीछे पागल से हो रहे थे। सदा उसके पल्ले के कोने बांधे रहना चाहते थे। इसीसे मुझे उनके काश्मीर जाने से इन्कार करने पर कोई सन्देह न हुआ। मैं तो उसके लिए पहिले ही तैयार होकर आया था।

मैंने हँसते हुए उन्हें समझा कर कहा—"अजी नहींनहीं। मैं सचमुच काश्मीर जाने को थोड़े ही कहता हूं। तीन महीने आप और हम किसी गँवई गांव में चलकर छिप रहें। इधर मेरे चेले चांटी पत्रों में खबर उड़ावेंगे कि—"यूनिवर्सल थियेटर के मालिक 'काश्मीर-गौरव' के नाट्यकार को साथ लेकर काश्मीर के ऐतिहासिक चित्र संग्रह करने और वहां की रीति रिवाज का अनुभव प्राप्त करने काश्मीर गये हैं! इस बार बहुत खर्च करके बिलकुल नये ढङ्ग से काश्मीर गौरव खेला जायगा! अबतक कोई नाटक इस ठाट बाट से नहीं खेला गया है न आगे खेले जाने की आशा है! इत्यादि २।"

उसके बाद लिखेंगे आज उन्होंने अमुक पर्वत दृश्य का फोटो लिया है। आज अमुक २ विषयों में खोज की है। इत्यादि। "इतने ही से समझ लीजिये कि जब हम लोग तीन महीने के बाद लौटेंगे तब सारे कलकत्ते में शोर मच जायगा। और खेलवाले दिन वह भीड़ होगी कि कितने ही लोग जगह न पाने के कारण लौट जायँगे।"

मैं जब बड़े ढङ्ग से अपनी कल्पना की कलम से भविष्य का चित्र खींच कर उनकी आंखों के सामने रख रहा था उस समय तकिये के सहारे बैठे हुए आखें फाड़कर प्रशंसमान दृष्टि से वे मेरी ओर देख रहे थे और जान पड़ता था मानों कल्पना द्वारा प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि प्रथम रजनी के अभिनय की आमदनी के अनगिनत रुपये और नोटों का बण्डल सामने धर कर वे गिन रहे हैं। मेरे इस अनुमान का यह कारण है कि जिस समय मैं यह सब काल्पनिक बातें उनके सामने बना रहा था, उस समय उनके दोनों मोटे होठों के बीच से रह २ कर हँसी यों चमक रही थी ज्यों सावन भादों में बिजली चमका करती है। हंसी को वह रोकना चाहते थे पर वह रुकती न थी।

मेरे कह चुकने पर वह बड़े उत्साह से बोले,—"वाह! वाह! देवेन्द्रबाबू आपकी भी क्या ही अनोखी सूझ है! बस यही कीजिये, यही। शाबास इस सूझ को। वाह! मैंने तो ऐसी अनोखी तरकीब कभी नहीं सुनी।"

"तो आप चलने को मुस्तैद हैं?"

"मैं! क्या अन्याय है, मैं! मैं कहां चलूंगा? देखिये मुझे एक बड़ी पाजी बीमारी है, बीच बीच में उसका दौरा हो जाता है; आजकल तो

उससे बहुत तङ्ग आ रहा हूं। आप अकेले ही जाइये न ?"

उहँ यह नहीं हो सकता, सब मिट्टी में मिल जायगा। हम दोनों को साथ ही जाना चाहिये!"

हेमेन्द्र बाबू थोड़ी देर कुछ सोच कर बोले,—"पर इस काम में कोई आफत आने का डर तो नहीं है ? मान लीजिये किसी ने देख ही लिया तो फिर ? अच्छा यह तो कहिये चलियेगा कहां ?"

"यह अभी ठीक नहीं रात ही तो यह बात सूझ पड़ी और इस समय आपसे पूछने चला आया कि यह किया जाय तो कैसा। चलना ऐसी जगह चाहिये जहां कलकत्ते के बहुत ही थोड़े आदमी हों; छिपकर रहने की जगहों का क्या अकाल है ? और उसके लिए बड़ी दूर जाने की क्या आवश्यकता है ! अभी उस दिन हरेन्द्र और भुवन बैङ्क पर हाथ साफ करके चलते बने और अब तक पता न लगा ? मेरा तो विश्वास है कि वह पास ही के किसी गांव में छिपे बैठे हैं और इधर पुलीस सारे शहर की धूल छान रही है। अस्तु, आपने रामनगर का नाम कभी सुना है ?"

"नहीं। क्यों ? वहां क्यों ?"

"वह जगह जाड़े में ऐसी निर्जन हो जाती है जैसे मरुभूमि। वहां नाम बदल कर रहने से कोई हम लोगों की खबर न पा सकेगा। रामनगर के पास ही एक नदी है, आंझ सवेरे आप उस नदी के किनारे टहलियेगा, इससे आपका शरीर भी खूब स्वस्थ हो जायगा।"

"मैं बिलकुल अस्वस्थ नहीं हूं, उस गँवई गांव में चलकर स्वास्थ्य सुधारने की मुझे कुछ आवश्यकता नहीं है और बात भी क्या एक दो दिनों की है। तीन तीन महीने, बापरे बाप !

बहुत तर्क वितर्क होने के बाद हेमेन्द्र बाबू ने इस विषय में भलीभांति सोच विचार कर उत्तर देने को कहा, मतलब यह कि नई स्त्री से सलाह करके जवाब देंगे।

(२)

बड़ी युक्तियों और भविष्यत् के सब्ज़ बाग दिखाने के बाद अन्त में हेमेन्द्र बाबू को राज़ी किया।

सप्ताह भर के अन्दर हम लोग रामनगर जाने को स्टेशन पहुंचे। टिकटें खरीद कर गाड़ी में बैठने के बाद हेमेन्द्र बाबू ने जो मुहर्रमी सूरत बनाई वह जन्म भर याद रहेगी। ऐसा शोक तो उन्हें पहिली स्त्री के मरने पर भी नहीं हुआ था ! विचारे की सूरत पर तरस आता था ! स्टेशन से मैंने दो अंग्रेज़ी अखबार खरीद लिये थे—उन दोनों ही में हम लोगों के काश्मीर जाने की बड़ी लम्बी चौड़ी खबरें थीं। उन्हें पढ़ते समय ऐसा जान पड़ता था मानों सचमुच हम लोग काश्मीर जा रहे हैं।

यथासमय हम लोग रामनगर पहुंच गये। गांव बहुत छोटा है। सब का सब खाली ही पड़ा है। इससे बिना तकलीफ के ही हम लोगों को मकान किराये पर मिल गया। घर के मालिक को समझा दिया कि मेरे मित्र का स्वास्थ्य खराब है सो वहां हम लोग हवा पानी बदलने के लिए ठहरेंगे। वह आदमी झट से बोला—"हवा बदलने की ऐसी दूसरी जगह नहीं मिलने की साहब ! किसी को हवा बदलनी होती है तो डाक्टर यहीं आने की सलाह देते हैं।"

पांचही सात दिन बाद वासन्ती पवन बहने लगा। एक दिन मैंने हेमेन्द्र बाबू से पूछा "कहिये स्थान कैसा है ?'

वह मुंह भारी करके बोले, "अरे छिः छिः ऐसे स्थान पर भी आदमी आते हैं। न कोई गाने बजाने का अड्डा न राग न रंग। गांव क्या है स्मशान है। बैठे २ जी घबरा जाता है, न कोई

काम न काज। संध्या को तो दैनिक अंगरेज़ी पत्र आजाते हैं पर सारा दिन कैसे कटे ?"

आते समय कलकत्ते से हेमेन्द्र बाबू सौसे अधिक पुस्तक अपने साथ लाये थे पर कुछही दिनों में बैठे २ सबकी सब पुस्तकें पढ़ कर समाप्त कर डालीं; इसी से अब बेकारी अखरती थी।

थोड़ी देर चुप रह कर फिर बोले, कहिये कितने दिन बीत गये ? मेरे तो नाकों दम आ गया। इस मैले कुचैले घर में बैठे २ मैं तो पागल होगया। कहीं ज़रा घूम आने का भी सुभीता नहीं है, मैं मोटा ऐसा बे हिसाब हूं कि रास्ते में निकलने से लड़के पीछे हो जायँगे। कुशल इतनी ही है कि इस गांव में लड़के अधिक नहीं हैं। नहीं तो आज तक सचमुच मुझे पागल बना छोड़ा होता।

मेरे लिये ये बातें आज कुछ नई न थीं। नित्यही यह रोना सुनना पड़ता था। हँसी रोक कर मैंने इतना ही कहा हम लोगों को आये बीस दिन हो गये, अब केवल सत्तर दिन और बाकी हैं। उसके बाद फिर पौबारह है, ख्याल कीजिये फिर कैसी चमक दमक से सौभाग्य सूर्य आपके भाग्याकाश में उदय होगा।"

"जी हां तब तक जिन्दा रहा तो पर यहां तो वोंहीं मेरी जान निकल रही है। अगर बीचही में दुलक गया तो यह सौभाग्य कौन भोगेगा! अभी सत्तर दिन है। बाप रेबाप एक युग का युग पड़ा है! नहीं मैनेजर साहब, इससे तो कलकत्ते लौट चलिये तो अच्छा; सच कहता हूँ यहाँ की हवा मेरे लिए असह्य हो गई है। स्वास्थ्य भी खराब हो चला है। इधर वहां घर में पड़ा कोई कराह रहा है उसकी भी चिन्ता सता रही है।"

मुझे तो पहिलेही मालुम था कि हेमेन्द्र बाबू इन बीसही दिनों में पत्नी विरह में यक्ष की भांति व्याकुल होकर हाय तोबा मचा देंगे। उस बात को टाल कर मैंने कहा, "लेकिन अब तो लौटने का कोई चारा नहीं है।"

एक ठण्ढी सांस लेकर हेमेन्द्र बाबू चुप हो रहे।

(३)

उस दिन हेमेन्द्र बाबू को डेरे पर अकेला छोड़ कर मैं बाज़ार में एक दूकान पर काग़ज़ खरीदने गया था।

वहां देखा दुकान के अन्दर तख्ते पर बैठा हुआ एक आदमी उस दिन का अखबार ज़ोर से पढ़ रहा था और कुछ बेकार आदमी पास बैठे सुन रहे थे। वह आदमी जो मज़मून पढ़ रहा था वह हम लोगों के भ्रमण का मनगढ़न्त इतिहास था।

मैंने एक जिस्ते कागज़ के लिए एक रुपया दे कर बाकी पैसे फेरने को कहा! मैं पैसों के लिए खड़ा था इसी बीच में एक दुबले पतले फटे पुराने कपड़े पहिने हुए आदमी ने आकर एक पैसा फेंक कर चाह मांगी। मैंने मन में कहा ऐसे दीन मनुष्य भी चाह पीते हैं? उस आदमी को अपनी ओर घूरते देखकर मुझे बड़ा अचरज हुआ। बहुतेरा सोचा पर याद न पड़ा कि उसे पहिले भी कहीं देखा है। यह कहना व्यर्थ है कि मैं बहुत भयभीत हो गया था। उसका घूरना देखकर मुझे निश्चय हो गया कि मैं उसे नहीं पहिचानता तो क्या हुआ वह मुझे ज़रूर पहिचानता है। मेरे भय का यह कारण था कि कहीं उसने पत्रों में मेरे काश्मीर जाने और वहां खोज करने के समाचार पढ़े हों और यहां वह मुझे प्रत्यक्ष विद्यमान देख भंडाफोड़ मेरा सारा का सारा खेलही न बिगाड़ दे। हम लोगों की सारी पोल खुल जायगी और इस धोखेबाज़ी का समाचार आजही कल में देश भर में फैल जायगा। चिन्ता के मारे चित्त चञ्चल हो गया। मनही मन

अपने पर बहुत झुंझुलाया। कहना भूल गया कि उस दिन के पत्रों में हम लोगों के काश्मीर पहुंच कर अनेक तथ्यों के आविष्कार करने का सम्वाद छपा था।

अस्तु। रुपये के बाकी पैसे पाते ही मैं यथासम्भव जल्दी २ पैर उठा कर घर की ओर बढ़ा; पर दोही चार कदम रक्खे थे कि पीछे से किसी ने पुकारा, "अजी साहब! अजी देवेन्द्र बाबू।"

मैंने पीछे फिर कर कहा—"आप भूलते हैं साहब! मेरा नाम देवेन्द्र बाबू नहीं है।"

क्यों साहब, आप झूठ क्यों बोलते हैं! मैं आपको खूब पहिचानता हूं। पर उसे जाने दीजिये, कृपया पांच मिनट ठहर कर मेरी दो बातें सुनते जाइये। थियेटर में जाकर तो आप के दर्शन होने के नहीं।

मेरे परिचय के सम्बन्ध में उस व्यक्ति ने ऐसा निश्चित भाव दिखलाया कि मुझे चुप रहना पड़ा। लाचार खड़े होकर मैंने पूछा "आप मुझसे क्या चाहते हैं?"

वह कहने लगा—मैं एक अभिनेता हूं। बचपन ही से मुझे अभिनय का शौक है। इतनी ही उम्र में प्रहसन से लेकर विद्यासुन्दर नाटक तक सभी में खेल चुका हूं। मुझ में अभिनय करने की शक्ति है, पर कोई जामिनदार न मिलने के कारण कलकत्ते के किसी थियेटर में मेरी नौकरी न लगी। मेरे अभिनय करने की क्षमता का प्रमाण पाये बिना कोई विश्वास नहीं करना चाहता। मैंने इतनी देर मार्ग में आपका समय नष्ट किया इसके लिए क्षमा कीजियेगा। मेरी प्रार्थना है कि एक बार मुझे काम देकर देखिये वास्तव में मुझे अभिनय करना आता है या नहीं!"

उसकी बातों से यह तो मालुम हो गया कि उसे अभी तक हम लोगों के काश्मीर जाने की खबर नहीं है। पर कौन जाने कि आध ही घण्टा बाद उसे इस बात का पता नहीं लगेगा समझ में नहीं आया कि क्या करूं। यदि उसे नौकरी न दूं और योंही विदा करदूं तो वह अवश्य ही लोगों में मुझ से भेंट होने की बात प्रगट कर देगा, फिर तो मुझे लोगों में मुंह दिखाने की जगह न रह जावगी। फिर?

अन्त में मैंने गम्भीरता से कहा,—ओह ठीक है! अच्छा तो आप काहे का पार्ट अच्छी तरह खेल सकते हैं!

जान पड़ता है खुशी में भर जाने के कारण उसने मेरी बात नहीं सुनी, वह बोला "जी मैं बहुत थोड़ी तनख्वाह पर राजी हूं।"

मुश्किल से हँसी रोककर मैंने कहा, "चलिये थोड़ी दूर तक मेरे साथ चलिये, राह में बातें करते जायँगे। अच्छा आपको काम देने के पूर्व एक बार आपकी परीक्षा लेनी आवश्यक है क्योंकि हम देख तो लें कि आप में अभिनय करने की शक्ति है। आपतो जानते हैं कि यूनियन थियटर के नौकर नौकरानी तक काम पड़ने पर अभिनय कर सकते हैं? तो क्या आपके गांव में कोई रामेश्वर थियेटर भी नहीं है? क्या कोई ठीके का काम भी नहीं मिलता?"

उसने ठण्ढी सांस लेकर कहा, "जी नहीं न ठीके का न और अन्य प्रकार का, कोई काम नहीं मिलता इसीसे घर बैठा हूं।"

"पर आप तो नाट्य जगत् से बड़ी दूर पड़े हुए हैं।"

"हां कारण यह है कि मैं अकेला नहीं हूं, मेरी एक छोटी लड़की भी है।"

"कलकत्ते में भी तो बहुतेरे अभिनेता लड़के लड़कियों को साथ लेकर रहते हैं।"

"जी हां उनकी वैसी ही चलती भी तो है। पर मेरे ऐसा बेकार आदमी कौन से कलेजे पर कलकत्ते जाकर रहे? गरीब की लड़की सभी

की आँखों में खटकेगी, मेरी बेटी उनकी दुरदुराइट से सूख जायेगी, इसीसे कलकत्ते आकर रहने का साहस नहीं होता। जन्म भर इसी गांव में पड़े रहना मञ्जूर है पर मै बच्चे को उठाकर यमराज के मुंह में नहीं डालूंगा। वही मेरे जीवन की सर्वस्व है!"

"यही, यही आपका आर्ट है!"

"मेरा आर्ट! आप देवेन्द्रबाबू करते क्या हैं? ऐं—" वह उछल पड़ा।—"मेरा तो आपसे कहना है कि मैं एक अभिनेता हूँ और शिक्षा पाने पर आगे और भी अधिक उन्नति कर सकता हूं! पर वह सब चूल्हे में गया! आप मुझसे थियेटर के स्टेज बुहारने का काम लें और महीने २ तनख्वाह दिये जायँ तो वही मेरे लिए बहुत है। लड़की को दो समय खाने को मिल जाय यही क्या थोड़ा है। चूल्हे में गया आर्ट फार्ट! चाहिये केवल रुपया, रुपया देवेन्द्रबाबू रुपया! दूसरों के लड़के भरपेट खापीकर हँसते खेलते फिरते हैं वैसे ही मैं भी अपनी लड़की को रखना चाहता हूं—बस इतना कर दीजिये देवेन्द्रबाबू और अधिक मैं कुछ नहीं चाहता।

"आप जो चाहते हैं यह कौनसी बड़ी बात है। एक दिन आपकी तनख्वाह से ही यह सब होकर बहुत बच जायगा।"

"क्या इसकी भी आशा है, देवेन्द्र बाबू? क्या यह भी होगा?"

एक बार परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने पर झट २ आपका महीना बढ़ जायगा—होगा क्यों नहीं?"

'पर साहब, यह कहां होता है? बरसों से मैं थियेटरों के दरवाजों पर धक्के खाते फिरता हूं पर मेरी ऐसी फूटी किस्मत है कि कहीं भी काम नहीं मिलता। हां तो साहब आप क्या कहते हैं?"

"हां आपका नाम क्या है?"

"जी मेरा नाम प्राणपद पान है।"

"तो प्राणपद बाबू आपका अभिनय देखे बिना तो मैं आपको काम देने में असमर्थ हूं और सोच देखिये इसमें मैं कोई बेजा बात नहीं कहता हूं।"

"नहीं बेजा क्या है? तो आपसे खबर पाऊँगा?"

"हां तो मैं क्या कह रहा था? मेरे पास से आपको खबर मिलने में थोड़ी देर लगेगी। 'काश्मीर गौरव' नाटक का अभिनय आरम्भ होने पर आप एक पत्र लिखकर मुझे स्मरण करा दीजियेगा। सम्प्रति कुछ दिनों मैं यहां नहीं रहूंगा, कल ही सवेरे की ट्रेन से काश्मीर जाऊंगा। अखबारों में आज हम लोगों के काश्मीर पहुंच जाने की खबर निकल चुकी है। इससे आज आपके साथ मेरी भेंट होने की बात किसी पर प्रगट मत कीजियेगा। तो हां आपकी बात मुझे याद रहेगी।"

उसे मेरी बातों का यक़ीन न हुआ वह चुपचाप खड़ा रहा। उसके दोनों होंठ कांप रहे थे। परमात्मा जानता है, इससे अधिक आशा देने की शक्ति मुझ में न थी।

"आपने आज मेरे साथ जो भलमनसी की है वह मुझे सदा याद रहेगी। पर देवेन्द्र बाबू आपने मेरा उपकार क्या किया? मैं तो वैसा का वैसा बेकार ही बना रहा!"

"नहीं २ आप निराश मत होइये; मैं शीघ्र ही आपको पत्र लिखूंगा।"

पर उस समय नहीं मालूम था कि विधि की विडम्बना में फँस कर उसी दिन उसे बुलाना पड़ेगा।

(४)

मैंने डेरे पर आकर देखा कि हेमेन्द्र बाबू बिछौने पर नाक बजा रहे हैं।

उन्हें जगाकर कहा, "लीजिये चीज़ पत्र समेट कर तैयार हो जाइये—आज ही यहां से खिसकना पड़ेगा।"

उन्होंने विस्मित होकर कहा "बात क्या है?"

"बात है मेरा सिर! यहां एक अभागा छोकरा है वह मुझे पहिचानता है। मैं उससे कह आया हूं कि आज ही काश्मीर जायँगे। इसीसे कहता हूं चीज़ पत्र समेट लीजिये, आज ही टल जाना चाहिये, कल्ह जिसमें वह हम लोगों को देख न पावे।"

हेमेन्द्र बाबू लेटे हुए थे इस बार उठकर बोले—"तो हम लोगों को कलकत्ते चलना होगा न?"

"अरे नहीं नहीं यह कैसे होगा? और कहीं शरण लेनी पड़ेगी।"

"क्यों? हम लोग क्या चोर हैं? अच्छा देवेन्द्र बाबू इस तरह यहां से वहां खराब होने फिरने से क्या यह अच्छा न होगा कि मैं कलकत्ते लौट जाऊँ? वहां खूब खबरदारी से किवाड़े बन्द कर मैं घर में घुस कर बैठा रहूंगा, कोई पता न पावेगा। वह सब से अच्छा होगा!"

मैंने उनकी बात अनसुनी कर दी।

× × × ×

उस समय सन्ध्या हो चली थी। घर में चारों ओर अँधेरा छागया था। हम लोग नौकर के रोशनी लाने की बाट देख रहे थे। कई मिन्टों बाद रोशनी लेकर एक अनजान सज्जन कमरे में आये। उसे देखकर मैं जितना नहीं चौंका था उससे अधिक उसकी बात सुनकर चौंक पड़ा। हजरत कहते क्या हैं कि हमीं लोग बक से चोरी करके भागनेवाले असामी हैं और वह पुलीस इन्सपेक्टर है, हमीं लोगों को गिरफ्तार करने आये हैं!

हम दोनों ने आपस में एक दूसरे की ओर देखा। समझ लिया कि जैसी दशा आपड़ी है उससे अब असल नाम छिपा कर झूंठा नाम बतलाने से काम न चलेगा।

मैं पहिले हिम्मत बांधकर आगन्तुक इन्सपेक्टर से बोला—"आप साहब भूलते हैं! मेरा नाम देवेन्द्र नाथ पात्र है—मैं यूनियन थियेटर का मालिक हूं और इनका नाम हेमेन्द्रनाथ पोड़ाल है; इनका घर भी कलकत्ते में है। नाहक़ हम लोगों को दिक़ मत कीजिये।

वह हम लोगों की बातों से ज़रा भी विचलित न हुआ।

मेरी जेब में मेरे नाम के कार्ड थे मैंने एक कार्ड निकाल कर कहा—"यह देखिये मेरे नाम का कार्ड है।"

उसने वैसेही अविचलित रूप से कहा, "इसमें क्या रक्खा है? इसमें ऐसी तो कोई खास बात नहीं है जिससे आपकी निर्दोषता प्रमाणित हो सके। फिर आपने देवेन्द्र बाबू के नाम का कार्ड चुरा नहीं लिया इसी का क्या सबूत है? मैं ये सब बातें नहीं सुनना चाहता; आप लोग मेरे साथ आइये, बाहर मेरे सिपाही खड़े हैं। आपको जो कुछ कहना सुनना हो सो थाने में चल कर कहिये सुनियेगा। चलिये २ उठिये!" इतना कहकर वह मेरी ओर बढ़ा।

"खबरदार मूख! हाथ लगाया तो बिना सत्यानाश किये न छोड़ूंगा। जान रखना मैं ऐसा वैसा आदमी नहीं हूं, मैं यूनियन थियेटर का मालिक हूं, मुझे मामूली आदमी मत समझना। फिर पैरों पड़ कर क्षमा मांगने से भी माफ नहीं करूंगा तेरा सत्यानाश किये बिना नहीं मानूंगा।"

फिर भी वह अटल था। मेरी ओर देख कर बोला हरेत की होलिया में जैसा लम्बा कद, ऊँचे गाल और मूछ मुड़ाये लिखा है वह

सब ज्यों का त्यों आपसे मिलता है और भुवन की होलिया में सिर के बाल उड़े हुए, उम्र पचास साल, बेहद मोटा जो लक्षण बतलाये गये हैं वह सब इन साथी साहब में मिलते हैं। व्यर्थ का बखेड़ा न कीजिये, चुपचाप मेरे साथ चले आइये।"

बहुत गर्ज कर हेमेन्द्र बाबू बोले, एक दम बना बनाया गदहा है! बबा रे अहमक कलकत्ते भर में क्या भुवन के सिवा और कोई मोटा है ही नहीं?"

"अजी जनाब यह तो किसी और से जाकर पूछियेगा, न मैं जानता हो हूं न सुनना ही चाहता हूं।"

हेमेन्द्र बाबू दांत पीस कर बोले—"मैं तुम्हें कहे देता हूं अब भी सम्हल जाओ, अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। अपनी खैरियत चाहो तो चले आओ। नहीं मैं तुम्हें सहज में नहीं छोड़ूंगा। भुवन ही दुनिया भर में एक मोटा है यह कौन बात है? पर हां वह ज़रूर मोटा था और मालूम होता है मैं भी ज़रा मोटा आदमी हूं लेकिन इसी से मेरे भुवन होने का क्या प्रमाण पाया?"

उसने मज़ाक से हँस कर कहा,—"और इसी का क्या प्रमाण है कि आप भुवन नहीं हैं? प्रमाण में तो आप लोगों के पास बस यही एक देवेन्द्र बाबू के नाम का कार्ड भर है लेकिन इसका साक्षी कौन है कि आप लोगों में से एक देवेन्द्र बाबू हैं! जाने दीजिये सब हो गया, अब मेरे साथ चलिये; यों व्यर्थ खोने के लिए मेरे पास समय नहीं है।"

अब मुझसे चुप न रहा गया; क्रुद्ध होकर बोला,—"चुप रहो, ज़रा ठहरो! अच्छा सुनो, मैं यदि यहां के किसी आदमी से साबित करा दूं कि मैं हरेन्द्र नहीं हूं तब तो फिर हम लोगों से कोई मतलब न रहेगा?"

हेमेन्द्र बाबू ने अथाह सागर में सहारा पाकर झटपट पूछा—"उसी आदमी की बात कहते हैं जिससे आज राह में आपकी भेंट हुई थी?"

इन्सपेक्टर ने कहा—"हमारी जान में तो हमने यहां के किसी आदमी से पूछना बाकी लगाया नहीं।"

"हां यहां एक ऐसा आदमी है जो मुझे खूब पहिचानता है;—और वह भी यहां का नया नहीं पुराना रहिवासा है।"

"खैर उसका नाम बोलिये।"

मैंने कहा,—"उसका नाम—" कैसी आफत है। नाम भी मुझे याद नहीं पड़ता है! सच कहने में क्या हर्ज़ है मुझे उसके नाम याद रखने की कुछ भी आवश्यकता न जान पड़ी थी। उस समय तो केवल पीछा छुड़ाने के लिए कह दिया था,—"आपकी बात मुझे याद रहेगी।" बड़ी देर तक सोचने पर मुझे उसका नाम याद न पड़ा; थोड़ी देर चुपचाप खड़े रहने बाद बोला,—"साहब उसका नाम तो नहीं याद पड़ता।"

"देख लिया, बहुत हो गया! चलिये मालूम हो गया कि यह सब आपके बहाने हैं।"

मैंने रोक कर कहा—"नहीं, नहीं, आज ही पहिले पहिले उससे मुलाकात हुई थी इसीसे नाम ठीक याद नहीं पड़ता है, थोड़ा २ याद पड़ता है—ज़रा ठहरो मैं बतलाता हूं।"

निराशा से व्यथित होकर हेमेन्द्र बाबू बैठ गये।

पुलिस इन्सपेक्टर ने कहा, "बहुत देर देख लिया अब नहीं देख सकता, चलिये २ उठिये आप लोग!"

आफत देखकर मैंने अपनी सारी स्मरण शक्ति लगाकर उसका नाम याद किया। मैंने बड़ी तत्परता से कहा,—"उसका नाम—उसका नाम—हां प्रणापद पान है।"

उसने अपने पाकेट बुक में यह नाम दर्ज कर लिया। फिर बोला,—"उससे कहां भेंट होगी!"

"यह मैं कैसे बतला सकता हूं? इस गांव के किसी आदमी को जाकर पूछो। और सुनो, मैंने अब इस गांव के एक ऐसे आदमी का नाम बतला दिया है जो मुझे पहिचानता है। अब भी अपनी खैरियत चाहो तो उसे बुलाकर अपनी भूल दुरुस्त करलो, तुम्हारे लिए आत्मरक्षा का यह अन्तिम सुयोग है।"

अच्छा! और मैं भी आप से कहे देता हूं कि यदि वह आदमी खोजने पर भी न मिला तो उसके लिए आपही भोगेंगे।"

उसने जँगले के पास जाकर एक छोटी सी सीटी बजाई, उसके बाद दबी जबान से किसी को कहा, जाओ जी यहाँ प्राणपदपान नाम का कोई आदमी है उसे बुला लाओ और उससे पूछना कि क्या आज यूनियन थियेटर के मालिक देवेन्द्र बाबू के साथ उसकी भेंट हुई थी?"

फिर वह वापस आकर हम लोगों के पास बैठ गया। जो आदमी प्राणपद को बुलाने गया था बड़ी उत्सुकता से हम लोग उसकी प्रतीक्षा करने लगे। ओफ, कैसे दुःख से उतना समय कटा था! कितना समय हम लोगों ने उत्सुकता से काटा था। बैठे २ उका जाने के कारण इन्सपेक्टर बाहर चला गया।

हठात् हेमेन्द्र बाबू बोले,—"सुनते हैं कुछ? जान पड़ता है आदमी लौट आया है, यह सुनिये वह बातें कर रहे हैं।

कुछ मिनट और बीत गये। इन्सपेक्टर ने अकेले घर में आकर कहा,—"प्राणपद बाबू से मेरे आदमी की भेंट हुई; और उन्होंने भी कहा कि आज सबेरे देवेन्द्र बाबू से उनकी भेंट हुई थी। पर इससे क्या हुआ? आप दोनों में से कौन देवेन्द्र बाबू हैं यह मुझे कैसे मालूम हो? प्राणपद बाबू बैठे अपनी लड़की को कहानी सुना रहे हैं—इस समय नहीं आसकेंगे। अब व्यर्थ देर करने से क्या लाभ—चलिये थाने में।"

मैंने निराशा से बहुत दुःखित होकर पुकारा—"हे भगवन्!" सच कहने में क्या डर है। मेरा हृदय उस समय निराशा से भर गया था। मेरी अन्तिम आशा निष्फल होगई!

अधीर होकर मैं घर में टहलने लगा; प्राणपद क्या बोला, बदमाश ने क्या कहा कहिये तो?"

"मेरे आदमी की ज़बानी मालूम हुआ कि वह कहता है जान पड़ता है देवेन्द्र बाबू मेरा नाम तक याद न रख सके और जब उन्होंने मेरा कोई उपकार नहीं किया तो मैं हीं क्यों उनकी बेगार करने जाऊँ?"

मैं बैठ गया। मुझे चारो ओर अन्धकार दिखाई देने लगा। शरीर सन सन कर रहा था। मेरी दशा देख इन्सपेक्टर भी अधीर हो गया। बोला—"शायद उसके नाम एक चिट्ठी लिखने से काम बन जाय। आप चिट्ठी लिखना चाहें तो मैं थोड़ी देर ठहर सकता हूं।"

मैं मेज़ पर से कागद कलम उठाकर चिट्ठी लिखने बैठा। उसने रोक कर कहा—अँहँ यह नहीं, आप उसे कोई बात सिखा दें तो फिर क्या होगा? मैं बोलता हूं आप लिखिये, यह ठीक होगा।"

लाचार मैंने उसकी बात मान कर कहा—"अच्छा आप ही बोलिये क्या लिखना होगा।"

उसने कहा हाँ लिखिये "श्रीयुत प्राणपद महाशय समीपेषु,—

महाशय—"

"हां लिख चुका—आगे बोलिये आगे।"

वह बोलने लगा—"मैंने इतनी देर में भली भांति समझ लिया कि आप में अभिनय करने

की अद्वितीय शक्ति है। यह जानकर आज से आपको अपने थियेटर में एक सौ रुपये मासिक में अभिनेता के पद पर नौकर रक्खा। मैं जब तक थियेटर में रहूंगा तबतक आपको नौकरी से न छुड़ाऊंगा।"

चुपचाप अचरज से मैं उसकी ओर देखने लगा। कुछ देर बाद वाक्शक्ति लौट आने पर मैंने उससे पूछा—

"आप कौन हैं महाशय?"

उसने मुसकुरा कर कहा, "क्यों आपका ताबेदार प्राणपद पान—अभी जिसे एक सौ रुपये मासिक वेतन पर नौकर रक्खा है। अब हस्ताक्षर कीजिये।"

अब प्राणपद की अभिनव अभिनय-दक्षता में मुझे कुछ भी सन्देह न रह गया। इससे चुपचाप मैंने उस पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये।

प्राणपद मुसकुरा कर बोला—"नमस्कार महाशय! तो अब चलता हूं।"

कान्यकुब्जाधिपति श्री हर्षवर्धन।*

[लेखक—श्रीयुत बालमुकुन्द बाजपेयी।]

पाश्चात्य पुरातत्वविद् विद्वानों की कृपा से महात्मा ईसा के ३०० वर्ष पूर्व तक का भारत का तिथि सम्वत सहित धाराबाहिक इतिहास अथवा वे बातें जिन्हें पाश्चात्य पुरातत्वविद् इतिहास मानते हैं और जिनसे जातीय उत्थान के लिए बहुत कुछ मालूम हो सकता है—भलीभांति विदित हो गई हैं। यों तो चन्द्रगुप्त मौर्य्य से भी तीन सौ वर्ष पूर्व के मगध के तत्कालीन मुख्य राज्य राजगृह के राजाओं का नाम गिनाना तथा उसी प्रान्त के या निकटवर्ती और भी दो एक राजघरानों का दृढ़ आधार पर, स्थूल परिचय करा देना, संभव हो गया है; पर इससे अधिक इन ३०० वर्षों के इतिहासस्वरूप जो घटनाएँ जानी जाती हैं उनमें से अधिकांश के सम्बन्ध में अभी तक पुरातत्ववेत्ता आचार्य एक मत नहीं हो सके हैं। चन्द्रगुप्त मौर्य्य के समय से ऐतिहासिक सामग्री का वह अभाव नहीं है परन्तु जिस प्रकार किसी २ समय का पर्य्याप्त इतिहास प्राप्त है उसी भांति एकाध शताब्दी घोर अन्धकाराच्छन्न भी है तथा किसी २ स्थल पर विशेष महत्वपूर्ण घटनाओं के सम्बन्ध में भी मान्य इतिहासज्ञों में मतभेद उपस्थित है। उदाहरणार्थ, हमारे प्रचलित सम्वत के नायक महाराज विक्रमादित्य के काल और व्यक्तित्व की अभी तक निर्विवाद मीमांसा नहीं हुई है।

मूर्ख, धर्मान्ध शत्रुओं की कृपा से स्वयं भारतवासियों के लिखित इतिहास ग्रन्थों का

---

* वि० विन्सेण्ट ए० स्मिथ के "भारत का प्राचीन इतिहास सिकन्दरी चढ़ाई युक्त" नामक ग्रन्थ के आधार पर लिखित।

नवानगर के जाम साहब भी हिन्दुस्थानी सेना के साथ लड़ाई पर गये हैं। इस चित्र में आप लन्दन के इंडिया आफिस से निकलते हुए दिखाये गये हैं। घायलों के लिए स्टेन्स में आपने अपने खर्च से एक अस्पताल भी स्थापित किया है।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

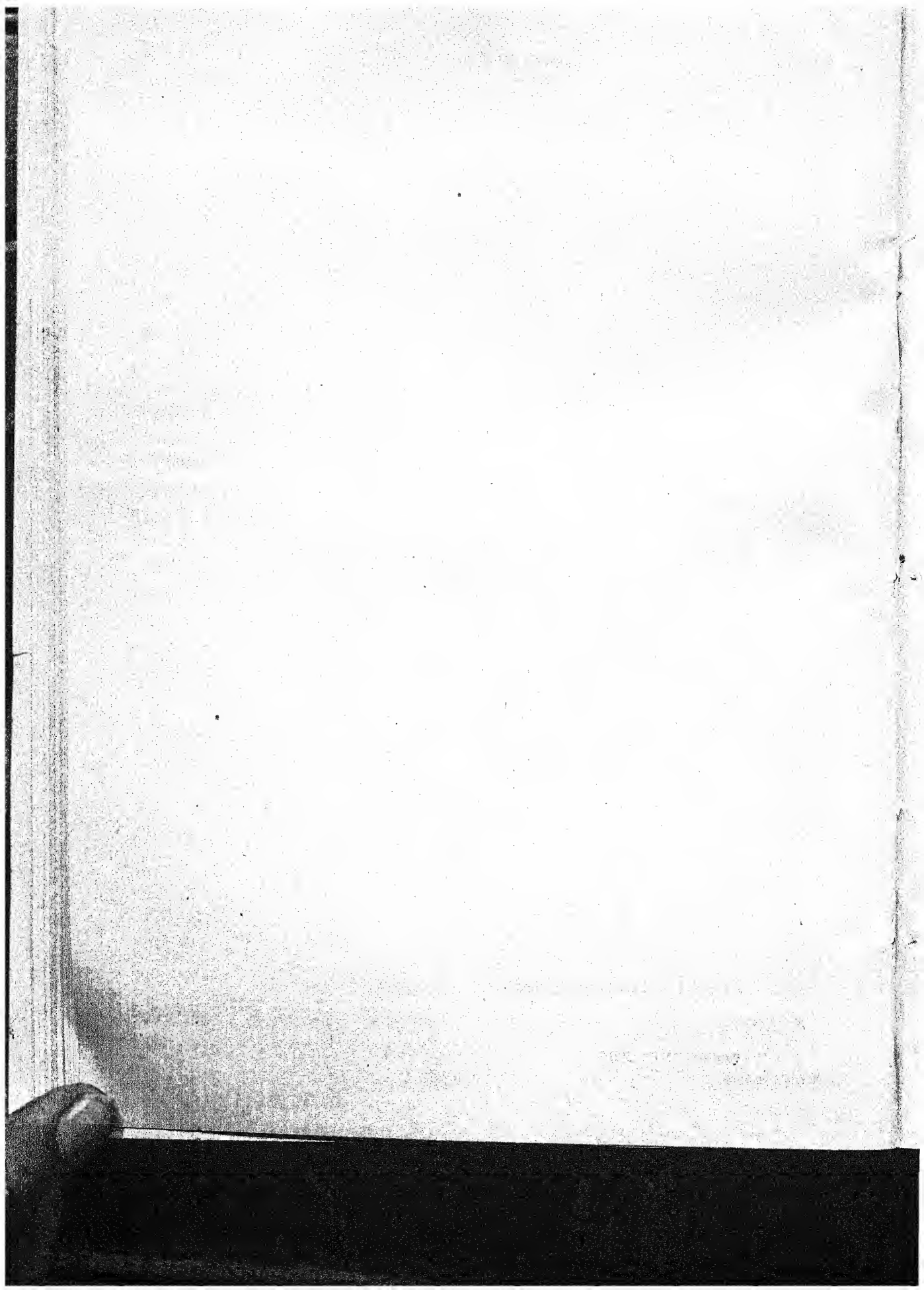

कहीं पता न होने पर भी * अध्यवसायी, परिश्रमी, इतिहासप्रेमी पाश्चात्य विद्वानों के लिए सकल प्रकार की ऐतिहासिक सामग्री का अभाव न हुआ और उन्हें सहस्र सहस्र साधन्यवाद बधाई है जिन विदेशियों ने अपने आदर्श तथा ज्ञान के अनुसार इससामग्री से पूर्ण लाभ उठाने में कोई कसर नहीं उठा रक्खी; यद्यपि अभी भी बहुत कुछ करना है और बहुत राख छाननी है। भारतवासी इतिहास का मूल्य समझते थे, इतिहास की रक्षा भारत में अनेक उपायों से की जाती थी यह स्पष्ट है परन्तु साथ ही यह भी निर्विवाद है कि, भारत के गत ढाई हज़ार वर्ष के नष्टप्राय इतिहास के आंशिक उद्धार का श्रेय पाश्चात्य पण्डितों को ही प्राप्त है। खनामधन्य डा० भण्डारकर आदि दो एक भारतीय विद्वानों ने भी उपर्युक्त अगाध पाण्डित्यसाध्य पुण्यकार्य में अच्छी सहायता दी है तथा दे रहे हैं† परन्तु यह सहायता समुद्र में बिन्दु के समान है और शतांश गौरव की भी अधिकारिणी बनाने के योग्य नहीं।

किसी जाति का प्रकृत इतिहास भिन्न मतावलम्बी, भिन्न आदर्शधारी, सहानुभूति-शून्य विजातीय लेखक की लेखनी से लिखा जाना सम्भवपर नहीं है, यदि यह सिद्धान्त निर्भ्रान्त हो तो भारतीय इतिहास-लेखकों का विदेशी विद्वानों पर किसी प्रकार का दोषारोपण करना असङ्गत है। प्रत्येक घटना को, महापुरुषों के चरित्रों को, सामाजिक रीति नीति को, कला कौशल के उत्थान पतन के क्रम को, धार्मिक विश्वासों तथा सम्प्रदायों और उनके संस्थापकों को अपनी सभ्यता, अपने आदर्श के चश्मे से देखना एवं तदनुसार उनपर प्रकाश डालना प्रत्येक लेखक के लिए सर्वथा स्वभावसिद्ध है। अतएव विदेशियों के परिश्रम के लिए हम उनके कृतज्ञ हैं। यह हमारा—भारतवासियों का—कर्तव्य है कि, उनकी प्राप्त की हुई सामग्री से पूर्ण लाभ उठा कर, जातीय उत्थान के अनुकूल, जातीय आदर्श स्थापक, आर्य जाति की कीर्ति तथा भ्रान्त बातों का स्पष्ट प्रदर्शक-अपना प्रकृत इतिहास लिखें। जातीय किम्बा राष्ट्रीय जागृति तथा उत्थान के लिए राष्ट्र के प्राचीन इतिहास की अनिवार्य आवश्यकता है यह सर्ववादि सम्मत है। वर्तमान समय में हमें अपने पूर्वजों की वीरतापूर्ण कहानियों, और उनकी शासनप्रणाली जानने की जितनी आवश्यकता है उतनी विज्ञान की नहीं है। अस्तु।

---

* हमारे पुराणों में ऐतिहासिक राजाओं की अभ्रान्त नामावली दी हुई है, इसमें अब किसी को विवाद नहीं है। यदि यूरोपियन विद्वानों के मतानुसार ईसा की तीसरी चौथी शताब्दी में लिखे हुए, हमारे धर्मग्रन्थों में भी इतिहास की अवहेलना नहीं की गई है तो यह कैसे मान्य हो सकता है कि इसके पश्चात् सहसा हमारी प्रवृत्ति ऐसी हो गई कि पुस्तकों को सम्पूर्ण उपेक्षा कर शिलालेख, जयस्तम्भ आदि अधिक स्थायी साधनों द्वारा ही इतिहास को रक्षा करना हमने उचित समझा। यह कलङ्क निस्सार है। कुछ छोटी मोटी प्रान्तीय इतिहासों की प्राप्य पोथियां इस बात का प्रमाण है। उपस्थित विषय का पूर्ण विचार इस स्थान पर असंभव है। संक्षेप में, शिलालेख, जयस्तम्भ, ताम्रपत्रादि अधिक स्थायी इतिहास सामग्री तो बच गई परन्तु पुस्तकें असभ्यों से न बचीं।

† ऐतिहासिक अनुसन्धान के हेतु पूर्व बङ्ग में "बरेन्द्र अनुसन्धान समिति" नामक एक प्रभावशाली संस्था भी कुछ वर्षों से स्थापित हुई है और अच्छा काम कर रही है। यदि हम भूलते नहीं हैं तो इङ्गलैंड के एक प्रसिद्ध विश्वविद्यालय से जो नवीन सर्वाङ्ग सुन्दर तथा नूतनतम प्रमाणित तथ्यों से पूर्ण भारतीय इतिहास ग्रन्थ प्रकाशित होनेवाला है उसके निमित्त बङ्गदेश का इतिहास लिखने का भार इसी समिति पर है।

जिस इतिहास के उद्धार का उल्लेख किया गया है वह भारत के पतन का इतिहास है। परन्तु हमारे सौभाग्य से इस पतनकाल में भी सुदूर भूतकालिक गौरव की परिचायक उच्च आदर्शप्रदर्शक घटनाओं का, वीर गाथाओं का, प्रतापी सम्राटों के अनुकरणीय राज्य-प्रबन्ध के मनोहर दृश्यों का अभाव नहीं है। हूणों की लूटमार के उपरान्त पञ्जाब देश में हर्षवर्धन नामक एक प्रतापी सम्राट् ईसा की सातवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में हो गया है। उसका संक्षिप्त इतिहास "मर्यादा" के पाठकों की सेवा में अर्पित है। मनोयोग पूर्वक पढ़ने से विदित होगा कि हर्ष परम धार्मिक, उदारवेत्ता, राज-काज में निपुण और वीर पुरुष था। इस वैज्ञानिक युग में भी उसके सदृश दूरदर्शी, ईश्वरपरायण सम्राट् के दर्शन मिलना सहज नहीं है।

समसामयिक ग्रन्थ द्वय।

समकालीन दो साहित्यिक ग्रन्थों की कृपा से हर्षवर्धन के समय की मुख्य मुख्य घटनाओं का बहुत कुछ विवरण मिलता है। इसी की छठीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत के इतिहास लेखक को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है सातवीं के प्रारम्भ में वे काफूर हो जाती हैं। सामान्य शिला-लेख तथा मुद्राओं की सामग्री के अतिरिक्त प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनसंग—जिसने ईसवी ६३० से ६४४ तक समग्र भारत में पर्यटन किया था—लिखित अमूल्य भ्रमण ग्रन्थ तथा हर्षवर्धन के राजकवि भूदेववाणकृत अपने आश्रयदाता का स्तुत्यात्मक ऐतिहासिक काव्य यही दो ग्रन्थ हैं जिनसे हर्ष का इतिहास लिखने में बड़ी सहायता मिलती है। इनके अतिरिक्त राजकीय चीनी इतिहासों से भी बहुत कुछ सहायता मिलती है।

हर्ष की प्रारम्भिक स्थिति।

छठीं शताब्दी के अन्त में थानेश्वर-कुरुक्षेत्र के राजा प्रभाकरवर्धन ने अपने पड़ोसी छोटे मोटे राजाओं मालव प्रदेश, पश्चिमोत्तर पञ्जाब के हूणों तथा राजस्थान के गुर्जरों पर विजय प्राप्त कर अच्छी ख्याति पाई। इस राजा की माता पाटलिपुत्र के प्रसिद्ध गुप्त राजवंश की, जिसका सूर्य अब अस्त हो चुका था, कन्या थी। इस कारण उसकी (प्रभाकर वर्धन की) राज्यविस्तार करने की लालसा को प्रोत्साहन मिला तथा सफलता प्राप्त करने में भी सहायता मिली। ई० ६०४ में इसने अपने ज्येष्ठ पुत्र राजवर्धन को, जिसकी अभी मसें भीज रही थीं, विपुल सेना के साथ पञ्जाब की पश्चिमोत्तर सीमा पर हूणों की किसी टुकड़ी का दमन करने के हेतु भेजा और छोटा पुत्र हर्ष जो युवराज से चार वर्ष छोटा था तथा अधिक प्रेमपात्र था, घुड़सवारों की सेना लेकर बड़े भाई के बहुत पीछे २ चला। युवराज तो पहाड़ों में घुसकर शत्रु को ढूंढ़ने लगा, इधर हर्ष पहाड़ों के पदतल में, जहां आखेटयोग्य जीवों की बहुलता थी, आनन्द से विचरने लगा। इसी अवसर में पन्द्रह वर्ष के हर्ष को समाचार मिला कि, ज्वर के कारण उसके पिता की शारीरिक अवस्था बड़ी ही शोचनीय हो रही है। अति शीघ्रतापूर्वक राजधानी को लौट कर उसने देखा कि पिता के बचने की कोई आशा नहीं है। शत्रु को परास्त कर राज्यवर्धन के लौटने के पूर्व ही रोग ने अपना काम पूरा किया और प्रभाकरवर्धन बड़े परिश्रम से प्राप्त विशाल राजपाट छोड़ कर चलता बना। इस समय उसकी वीरता कुछ भी न कर सकी और उसकी भी वही गति हुई जो सामान्य मार्ग के भिक्षुक की हुआ करती है।

युवराज की राज्यप्राप्ति और मृत्यु।

कुछ दर्बारी हर्ष को सिंहासन पर बैठाना चाहते थे परन्तु समय रहते राज्यवर्धन के

लौट आने के कारण उनका उद्योग निष्फल हुआ और यथासमय युवराज ने राजमुकुट धारण किया। सिंहासनासीन होते ही उसे अपने बहनोई कन्नौज के राजा गृहवर्मन मौखारी के, मालवा के राजा द्वारा, मारे जाने का दुखदायी समाचार मिला। हर्षकी बहिन राज्य श्री इस को ब्याही थी जिसके साथ घातक ने बड़ा ही नीचा बर्ताव किया। चोर लुटेरों की स्त्री की भांति बेड़ियां डाल कर वह कैद की गई। अपनी भगिनी का बदला लेने के लिए नवयुवक राजा शीघ्रतावश हाथियों आदि को हर्ष के साथ पीछे छोड़ कर केवल दस हज़ार अश्वारोही सेना लेकर चढ़ दौड़ा। मालवा के राजा पर विजय प्राप्त करने में उसे अधिक प्रयास नहीं करना पड़ा परन्तु मालवराज के सहायक गौड़ देश के राजा शशाङ्क ने प्रलोभनों द्वारा विजयी राजा को मंत्रणा के निमित्त सम्मत किया और धोखे से उसका वधकर डाला। हर्षोत्पादक विजय संवाद के साथ ही साथ हर्ष को बड़े भाई की अकालमृत्यु का दुखदायी समाचार भी मिला। उसकी विधवा भगिनी ने किसी प्रकार भाग कर विंध्य के जङ्गल में शरण ली है, यह भी उसने सुना परन्तु राज्य श्री किस स्थान में छिपी है, यह निश्चित रूप से उसे न विदित हुआ।

हर्ष का सिंहासनारोहण।

हर्ष को सिंहासन पर बैठाने में परिजनों को कुछ आगा पीछा हुआ। परन्तु अराजकता में व्यतिक्रम और अराजकता से देश को हानि पहुंचते देख आमात्यों को बाध्य होकर उत्तराधिकार का निर्णय करना पड़ा। हर्ष से अवस्था में कुछ बड़ा, राजपुत्रों के बाल्यकालीन सहपाठी भण्डी नामक हर्ष के एक चचेरे भाई के अनुरोध से सचिवों ने हर्षवर्धन से राज्य भार ग्रहण करने की प्रार्थना की। परन्तु राजपुत्र को न जानें क्यों यह निवेदन स्वीकार करने में सङ्कोच हुआ। कहा जाता है कि, राज्यभार ग्रहण करने के पूर्व उसने दैवीबलसम्पन्न एक प्रामाणिक बौद्ध से शकुन उठवाया और उत्तर अनुकूल मिलने पर राज्याधिकार ग्रहण किया। इस पर भी दैव कोप से बचने के लिए उसने कुछ दिनों तक राजानुरूप अभिधान नहीं ग्रहण किया और नम्रतापूर्वक अपने को कुमार शिलादित्य ही कहता रहा।

इन विचित्र सामान्य बातों से यह अनुमान होता है कि हर्ष के मार्ग में कोई बाधा अवश्य थी और इसी से राज्यप्राप्ति के हेतु पैतृक अधिकार की अपेक्षा स्वजनों के निर्वाचन पर ही निर्भर रहना उसने अधिक उचित समझा। सिंहासनारूढ़ होने के ५।६ वर्ष बाद तक वह स्पष्टरीत्या अपने को राजा घोषित करने में हिचकता रहा और उसका तिलकोत्सव ई० ६१२ में हुआ।* हर्ष का स्वतंत्र संवत भी प्रचलित हुआ और ई० ६०६, जिस वर्ष उसने राज्यभार ग्रहण किया था, हर्ष संवत का प्रथम वर्ष है।† चाहे जिस कारण से थानेश्वर के राजमंत्रियों ने हर्ष को राजा बनाने में

---

* चीनी यात्री ने लिखा है कि हर्ष वैश्य था, संभवतः इसी ओर यहां सङ्केत किया गया है। मि० स्मिथ ने भी प्रसिद्ध यात्री के इस कथन पर पूर्ण विश्वास नहीं किया है। निस्सन्देह हुएनसङ्ग को यह भ्रान्त समाचार मिला। यदि हर्ष वैश्य होता तो अन्ततः राजवर्धन उस पर कभी विश्वास न करता और जिस समय वह शीघ्रतावश अपने बहनोई का बदला लेने को केवल अश्वारोहियों को लेकर चढ़ दौड़ा था हाथी और पैदल सेना हर्ष के अधिकार में न छोड़ता इत्यादि। और भी घटनाएं ऐसी हैं जिनका पूर्वापर विचारने से यात्री का भ्रम स्पष्ट हो जाता है।

† प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता मि० कीलहार्न के अनुसार २० शिलालेख ऐसे प्राप्त हो चुके हैं जिनमें हर्ष संवत का प्रयोग है।

आगा पीछा किया हो परन्तु यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि झण्डी की सम्मति सर्वथा उचित थी और उसके मनोनीति हर्ष ने बहुत ही शीघ्र अपनी योग्यता का परिचय देकर यह प्रमाणित कर दिया कि राजमुकुट का प्रकृत अधिकारी वही था।

भगिनी का उद्धार।

राज्याधिकार प्राप्त करने के पश्चात् हर्ष का प्रथम कर्त्तव्य अपने अग्रज का वध करनेवाले से प्रतिशोध लेना और विधवा राज्यश्री का उद्धार करना था। इन दोनों में अन्तिम का महत्व अधिक समझ कर शशाङ्क का पीछा करना छोड़ उसने राज्यश्री की रक्षा के हेतु प्रस्थान किया। उसकी यह शीघ्रता अत्यन्त सामयिक प्रमाणित हुई क्योंकि जिस समय पहाड़ी सरदारों के साथ विंध्य के घोर जङ्गल में वह उस स्थान पर जहां राज्यश्री के होने का पता लगा था पहुंचा उस समय उद्धार की आशा छोड़कर वह (राज्यश्री) परिचारिकाओं सहित उस कार्य के लिए प्रस्तुत हो चुकी थी जो केवल भारतीय ललनाओं के ही बांट में पड़ा है। अरक्षित अवस्था में भारतीय स्त्रियां अग्निदेव से अधिक अपना रक्षक किसी को नहीं समझतीं और राज्यश्री भी अपने परम रक्षक के अङ्क में रक्षा पाने के लिए उद्यत थी।

शशाङ्क के विरुद्ध हर्ष के आक्रमण का विस्तृत वर्णन प्राप्त नहीं है और यह स्पष्ट है कि भाग बचने में उसे (शशाङ्क को) बहुतही सामान्य क्षति उठानी पड़ी। यह पता लगता है कि ईसवी ६१८ तक वह अधिकारच्युत नहीं हुआ था परन्तु सम्भवतः इसके कुछ ही दिनों पीछे उसके राज्य पर कन्नौजी झण्डा फहराने लगा।

राज्यविस्तार।

बौद्धधर्म की सम्मितीय शाखा के सिद्धान्तों में निपुण असाधारण बुद्धिमती अपनी युवती भगिनी का उद्धार करने के पश्चात् हर्षवर्धन विधिवत समग्र उत्तर भारत को एक छत्र के आधीन करने की धुन में लगा। इस समय उसकी सेना में ५००० हाथी, २०००० घोड़े और पचास हज़ार पैदल थे। इस प्रबल सेना की सहायता से उसने उत्तर भारत रौंद डाला। न ऐसा कोई क्षत्री बचा जिसके अस्त्र उसने न रखा लिये और उसकी आज्ञा न माननेवालों में कोई राजा भी ऐसा न बचा जिसे उसका लोहा न मानना पड़ा हो। जब तक यह नहीं हो गया तब तक चीनी यात्री के ओजस्वी शब्दों में "न तो हाथियों के हौदे उतारे गये और न सैनिकों ने अपने सन्नाह खोले।" साढ़े पांच वर्ष में समग्र उत्तर और पश्चिम तथा बङ्ग के अधिकांश भाग पर उसकी पताका फहराने लगी। इस अवसर में उसकी सैनिक शक्ति भी इतनी बढ़ गई कि अब वह साठ हज़ार हाथी और एक लाख घोड़े आवश्यकता के समय रणक्षेत्र में उपस्थित कर सकता था। इस प्रकार विशाल राज्य का स्थापन करने के उपरान्त हर्ष ने छत्तीस वर्ष तक बिना चिन्ता के राज्य किया। इस शान्तिपूर्ण दीर्घकाल और अपनी महान् शक्ति का उसने सुव्यवस्थित शासन करने में उपयोग किया।

सम्भवतः ६३३ ईसवी के बाद और ६१८ या ६४१ के पूर्व, जिस वर्ष हूएनसंग ने वल्लभी की यात्रा की थी, हर्ष ने वल्लभी राज्य पर आक्रमण किया। परिणाम में वल्लभी राजा ध्रुव भट्ट द्वितीय को सोलहों आने हार खा कर भरोच के राजा की शरण लेनी पड़ी। अन्तिम राजा कदाचित् सोलंकी सम्राट् का, जिसका वर्णन अभी किया जायगा, भरोसा रखता था। फिर भी अन्त में वल्लभी के राजा ध्रुवभट्ट को* हर्ष

* सौराष्ट्र और मालवा के मध्य में अथवा वर्तमान काठियावाड़ के पूर्व में मैत्रक कुलोत्पन्न भट्टार्क नामक एक सरदार ने पांचवीं शताब्दी के अन्त में

से सन्धि कर सामंत होना स्वीकार करना पड़ा। साथही हर्ष की पुत्री के साथ उसका पाणिग्रहण भी हो गया। अनुमानतः इसी चढ़ाई में आनन्दपुर, कच्छ, दक्षिणी सौराष्ट्र आदि राज्यों का भी जो ई० ६४६ में पश्चिमी मालवा राज्य के अन्तर्गत समझे जाते थे पराभव हुआ क्योंकि पश्चिमी मालवा राज्य बल्लभी का करद राज्य था। हर्ष का अन्तिम अभिलषित आक्रमण बङ्गोदधितटस्थ गञ्जाम प्रान्त के निवासियों पर ई० ६४३ में हुआ।

एक बार असफलता।

हर्ष की भांति नर्मदा के उस पार दक्षिण में चालुक्य या सोलंकी वंश के पुलकेशिन द्वितीय ने भी अपने राज्य का बड़ा विस्तार किया था।* दक्षिण भारत में उसकी वही स्थिति थी जो हर्षकी उत्तर में। हर्ष से अपना प्रतिद्वन्दी न देखा गया और उसने पुलकेशिन का भी मान भंग करने की अपने मन में ठानी। उत्तर भारत के तत्कालीन प्रसिद्ध सेनाध्यक्षों सहित वह स्वयं अपनी विपुलवाहिनी सेना लेकर चढ़ दौड़ा। परन्तु दक्षिणी सम्राट् ने नर्मदा के घाटों को ऐसा रोका कि हर्ष को हार मान कर लौटना पड़ा। यह घटना ई० ६२० के लगभग की है। हर्ष ने छः वर्ष तक निरन्तर और २६ वर्ष तक समय समय पर युद्ध किया। इस दीर्घकालव्यापी विजयचर्या में हर्ष को केवल एक बार मुख मोड़ना पड़ा। उसमें उचित से अधिक अभिमान न उत्पन्न होजाय कदाचित् इसीलिए परमात्मा ने यह व्यवस्था की थी।

राजत्व के अन्तिम दिनों में मालवा, गुजरात तथा सौराष्ट्र के अतिरिक्त हिमालय से लेकर नर्मदा तक सम्पूर्ण देश पर उसका निर्विवाद प्रभुत्व था। शासनकार्य अवश्य ही स्थानीय राजाओं के हाथों में था परन्तु पूर्व में आसाम सरीखे दूर देश का भूपति और सुदूर पश्चिम में उसका जामात्र बल्लभी का राजा सम्राट् की आज्ञा पालन करने को बाध्य थे।

शासनप्रणाली।

काल की महिमा के कारण शासनप्रणाली की ओर ही हमारी दृष्टि अधिक आकृष्ट होना उचित है। प्रजा की बातों की उपेक्षा करने और नीचातिनीच कर्मचारियों को साक्षात् देवता माननेवाले यदि हर्ष के इतिहास का यह पृष्ठ पढ़ सकें तो बड़ा लाभ हो सकता है। अपने विशाल साम्राज्य का नियंत्रण तथा शासन का निरीक्षण अक्लान्त उद्योगपूर्वक हर्ष स्वयं करता था। स्वेच्छाचारी शासकों पर निर्भर रहना उसे पसन्द नहीं था। वर्षा ऋतु के सिवा जिन दिनों भ्रमण करना बड़ा ही कष्टसाध्य होता है, वह निरन्तर दुष्टों का दमन और शिष्टों का पालन करता हुआ भ्रमण करता रहता था। मुग़लों के समय की सी परम सुखदायी उपकारिकाओं का (राजकीय शिविरों का) तब तक आविष्कार न हुआ था अतः हर्ष को डालों और घास फूस के पथ-प्रासादों से ही सन्तोष करना पड़ता था*। ये झोंपड़े प्रत्येक

बल्लभी का राज्य स्थापित किया था। सातवीं शताब्दी में बल्लभी बड़ा समृद्धिशाली राज्य था। हूएनसंग ने जिन दिनों राजधानी बल्लभी को देखा था, अर्थात् ६४१ से ६४२ ईसवी में उन दिनों वह महानगरी थी तथा नालन्द की भांति बौद्ध शास्त्र की विद्यापीठ समझी जाती थी। ई० ७७० में अरबी आक्रमणकारियों ने इस नगर का विनाश किया।

* लगभग ५५० ईसवी के सोलंकी चालुक्यों के वंश के पुलकेशिन नामक एक महापुरुष ने वातापी नगर पर अधिकार कर राज्य-स्थापन किया। इसका पौत्र पुलकेशिन द्वितीय अपने घराने में बड़ा प्रतापी हुआ। वातापी आज भी बीजापुर जिले में बादामी के रूप में वर्तमान है।

* बहुत सम्भव है कि यह लेखक का भ्रम हो। हमारे प्राचीन साहित्य में स्थान २ पर वितानों तथा

विश्राम स्थान पर बना लिए जाते थे और चलते समय जला दिये जाते थे।

दो शताब्दी पूर्व भारत भ्रमण करनेवाले अपने स्वदेशी अग्रगामी फाहियन की† भाँति हुएनसंग पर भी शासन-प्रणाली का प्रभाव बहुत अच्छा पड़ा और उसके मत से दया धर्म पर वह अवलम्बित थी। राजस्व का मुख्य द्वार भूमि-कर था। कृषकों से उपज का ६ठा भाग लिया जाता था। आजकल के विपरीत अन्यान्य कर बहुत ही लघु थे। राज कर्मचारियों को पुरस्कार में जागीर दी जाती थी। राजकीय सार्वजनिक कार्यों के हेतु बाध्य होकर परिश्रम करनेवालों को पारिश्रमिक दिया जाता था। प्रजा को व्यक्तिगत राजकार्य या सेवा बहुत ही कम करनी पड़ती थी। विभिन्न धर्मानुयायी समाजों को सम उदारतापूर्ण दान देने की व्यवस्था थी।

उद्दण्ड अपराधों की नितान्त कमी थी परन्तु स्थल अथवा जल मार्ग फाहियन के समय के से सुरक्षित न थे। सम्पूर्ण भारत-भ्रमण में फाहियन पर एक बार भी लुटेरों की कृपा नहीं हुई थी परन्तु हुएनसंग को दो तीन बार यह विपत्ति उठानी पड़ी। दारुण कारागार साधारण दण्डविधि थी। यात्री महोदय का कथन है कि "बन्दियों की सुध ही नहीं ली जाती थी, चाहे मरें या जीएँ मनुष्यों में मानों उनकी गणना ही न थी।" भयानक पापियों के हाथ, पैर, नाक, कान आदि काट लिये जाते थे। माता पिता के प्रति पवित्र पुत्र धर्म का पालन न करनेवालों के प्रति भी यही दण्ड-व्यवस्था थी। परन्तु ऐसे दण्डों के बदले में कभी २ दयावश निर्वासन भी हो जाया करता था। अपराधों के लिए अर्थदण्ड की व्यवस्था थी। जल, अग्नि, विष आदि द्वारा परीक्षा करना सत्य निर्णय करने का बहुत ही सुन्दर उपाय समझा जाता था। चीनी यात्री ने इन उपायों का अनुमोदन किया है।

सम्राट् का विद्या-प्रेम।

प्रत्येक प्रान्त में सार्वजनिक घटनाओं का इतिहास संग्रह करने को वेतनभोगी कर्मचारी नियुक्त थे। "बुरी और भली, विपत्तिजनक और कल्याणकारी" दैवी घटनाओं को लिपि-बद्ध करना उनका कर्त्तव्य था। महत्वपूर्ण ऐतिहासिक शिलालेखों की रचना में इनका उपयोग होता था परन्तु दुर्भाग्यवश अब उपर्युक्त राजकीय इतिहासों की एक चिट भी उदाहरणार्थ दुष्प्राप्य है। शिक्षा का विशेषतः ब्राह्मणों और बहुसंख्यक बौद्ध साधुओं में प्रचार अत्यधिक था। राजद्वार में पाण्डित्य का बड़ा आदर होता था। सम्राट् हर्षवर्धन केवल विद्वानों का आदर ही नहीं करता था वह स्वयं भी शोभन लेखन-कला में पूर्ण निपुण और प्रसिद्ध ग्रन्थकार था। एक व्याकरण ग्रन्थ के अतिरिक्त तीन सुलभ संस्कृत नाटकों तथा अनेक रचनाओं का वह प्रणेता माना जाता है। भारतमें अनेक ग्रन्थकार सम्राट् हो गये हैं, हर्ष अनोखा नहीं हुआ। हर्ष के नाटकों में "नागानन्द" जिसका आधार एक बौद्ध उपाख्यान है, श्रेष्ठ श्रेणी के नाट्य ग्रन्थों में गिना जाता है। "रत्नावली" तथा "प्रियदर्शिका" नामक उसकी अन्य नाटिकाएँ भी विचारों और शैली की सरलतार्थ अति प्रशस्य हैं यद्यपि मालिकता का

शिविरों का उल्लेख हुआ है। हर्ष भले ही घास-फूस के झोंपड़ों से ही यात्रा में अपना काम चला लिया करता रहा हो परन्तु शिविरों का आविष्कार ही तब तक भारत में नहीं हुआ था यह समझ में आने की बात नहीं है। जिस जाति के साहित्य ग्रन्थों में शामियानों तथा खीमों का बारम्बार वर्णन मिलता है, वह शिविरों को बनाने में असमर्थ थी, यह कौन मान लेगा।

† फाहियन ने ३९९ से ४१५ तक भारत में भ्रमण किया था।

उनमें अभाव है। "प्रभुचरित्र प्रशंसात्मक, प्रशंसनीय तथा सजीव वर्णनों का समूह, रोष-कारी, महाकुरुचिपूर्ण तथापि अति चतुरता का परिचायक और एक कल्पित इतिहास ग्रन्थ का रचयिता बाण हर्षाभित साहित्य-सेवियों का मुकुटमणि था" इस पूर्वापर विरुद्ध परिचय के लेखक ने इस वर्णन में अपनी विचित्र रुचि का जिसे कुरुचि न कहेंगे परिचय दिया है।

धार्मिक स्थिति।

अशोक की रक्तपिपासा एक ही युद्ध में बुझ गई थी। हर्षका ४२ वर्ष के बाद, प्रायः साठ वर्ष की प्रौढ़ावस्था में क्षत्रित्व से मन हटा। ऐसा प्रतीत होता है कि अन्तिम दिनों में उसने संसारप्रसिद्ध अशोक को अपना आदर्श बना लिया था। फलतः बुद्ध भगवान् के शान्तिपूर्ण उपदेशों की ओर हर्ष ने अधिक ध्यान देना प्रारम्भ किया। पहले होनयान और पीछे महायान सम्प्रदाय की ओर उसकी रुचि बढ़ी। वह साधुओं की भांति जीवन व्यतीत करने लगा और बौद्ध धर्म के प्रधानाङ्ग अहिंसा धर्म का बड़ी दृढ़ता से पालन करने लगा। धर्म की जड़ पुष्ट करने की इच्छा उस की इतनी प्रबल हो उठी कि, आहार, निद्रा, जल तक वह भूल गया। किसी भी जीव का बध न करने तथा मांस न खाने की उसने आज्ञा प्रचारित की। इस राजाज्ञा का विपरीताचार करनेवालों को प्राणदण्ड देने की व्यवस्था की गई। ऐसे अपराधी को क्षमा मिलनी दुष्कर थी।

दीन, रोगी, और यात्रियों की सुविधाओं के हेतु उसने संस्थाएं स्थापित कीं। नगरों और ग्रामों में धर्मशालाएं बनवाई गईं जिनमें भोजन, जल तथा आवश्यकता पड़ने पर बिना किसी प्रकार की रोक टोक के औषधि देने का प्रबन्ध था। हिन्दू देवताओं तथा बौद्ध धर्म सम्बन्धी क्रियाओं के हितार्थ उसने अनेक संस्थाएं स्थापित कीं। जीवन के अन्तिम दिनों में बौद्ध धर्म का पक्ष वह अधिक करने लगा और बहुत से बौद्ध मठ उसने बनवाये। बौद्ध धर्मानुसार स्तूपों का निर्माण करवाना पुण्यकार्य समझा जाता था, हर्ष भला क्यों चूकने लगा, उसने सहस्रों स्तूप प्रायः ६५, ६६ हाथ ऊंचे बनवा डाले परन्तु वे केवल बांस और लकड़ी के बनवाये गये एक का भी चिन्ह तक न बचा। हर्ष के समय में बौद्ध धर्म क्षीण होने लगा था फिर भी बौद्ध साधु बहुत थे। चीनी यात्री के अनुसार मठ-निवासियों की संख्या दो लक्ष थी।

हर्ष के समकालीन ग्रन्थकारों ने धार्मिक दशा का बड़ा ही गड्डायमुनी चित्र खींचा है। राजघराने के भी व्यक्ति धार्मिक विश्वास के सम्बन्ध में पूर्ण स्वतंत्र थे। हर्ष के पिता को सूर्य भगवान का इष्ट था। नित्यप्रति वह माणिक्य के अर्घ्यपात्र से लाल कमलों की अँजुलियां अपने आराध्यदेव को देता था। हर्ष के अग्रज राज्यवर्धन और भगिनी राज्यश्री बौद्ध धर्म में विश्वास करते थे। हर्ष की अपने पैतृक धर्म पर तो श्रद्धा थी ही परन्तु जैसा उल्लेख हो चुका है वह बौद्धधर्मका भी सन्मान करता था। उसने महादेव, सूर्य तथा बुद्धदेव के विशाल मन्दिर बनवाये। चीनी यात्री हुएनसंग के पाण्डित्य और ओजस्विता का हर्ष पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि अपने अन्तिम दिनों में वह बौद्ध धर्म की महायान शाखा का प्रबल पक्षपाती हो गया, यद्यपि पूर्व से वह हीनयान शाखा के सम्मितीय पंथ के उपदेशों से ही परिचित था। राजघराने की यह धार्मिक अवस्था जनता की धार्मिक दशा का प्रतिबिम्बमात्र है।

यद्यपि उत्तर भारत में हर्ष के समय में बौद्ध धर्म का वह दौर दौरा नहीं था जो कुछ

शताब्दियों पूर्व था तथापि बौद्धों की संख्या कम नहीं थी। हिन्दू या बौद्ध धर्म की तुलना में जैन धर्म हर्ष के समय में भी पूर्व की भांति नगण्य ही था। हर्ष के समय तक हिन्दू धर्म की दशा बहुत कुछ सुधर चुकी थी एक की दशा जिस परिमाण में सुधर चुकी थी प्रतिद्वन्दी बौद्ध धर्म की दशा उसी के अनुसार शोचनीय भी हो चुकी थी। भारत के अधिकांश प्रान्तों में प्राचीनकाल की भांति पुनः शिव, विष्णु आदि देवताओं की प्रतिष्ठा हो चुकी थी।

सनातनधर्मी हिन्दू तथा अन्य धर्मावलम्बी शान्तिपूर्वक एकत्र निवास करते थे। बहुत से ऐसे लोग भी थे जो दैवी आशीर्वाद के लिए दोनों धर्मों के देवताओं को पूजने में कुछ भी सङ्कोच नहीं करते थे। ऐक्य का साम्राज्य था, धार्मिक विद्वेष का कहीं लेश भी न था परन्तु बङ्ग का राजा शशाङ्क जिसने हर्ष के भ्राता राज्यवर्धन को धोखे में डालकर मारा था, "काबुल का गधा" था। यह कट्टर शैव था और बौद्ध धर्म के संहार करने का इसने बड़ा प्रयत्न किया परन्तु वह स्वयं न रहा। गया के जिस पवित्र बोधि वृक्ष की अशोक असाधारण भक्ति करता था उसे इसने उखड़वा कर जला दिया* पाटलिपुत्रस्थ बुद्धदेव पदाङ्कित शिला तुड़वा डाली और मठों का नाश कर उनके अधिवासियों को भगा दिया।

अकबर तथा अन्यान्य भारतीय सम्राटों की भांति हर्ष भी प्रतिद्वन्दी धर्माचार्यों का धार्मिक शास्त्रार्थ बड़ा प्रसन्नता से सुनता था। महायान मार्ग के प्रतिपादन में हुएनसंग की युक्तियां उसने बड़ी प्रसन्नता से सुनीं। खण्डन मण्डन के निमित्त हिन्दू धर्माचार्यों को भी वह सभा में बुलाता था परन्तु कभी २ पक्षपातशून्य विचार करने में असमर्थ हो उठता था। अपने अतिथि चीनी विद्वान की हार उसे असह्य थी। एक दिन हर्ष समाचार मिला कि प्रतिद्वन्द्वियों की घृणित प्रेरणा से हुएनसंग के प्राण लिये जानेवाले हैं। संवाद पाते ही उसने घोषणा की कि,

"यदि धर्मशास्त्री की उंगली भी कोई स्पर्श करेगा तो उसे प्राणदण्ड दिया जायगा, विरोधी वक्तृताओं की जीभ निकलवा ली जायगी परन्तु उसके उपदेशों से जो लाभ उठाना चाहते हैं उन्हें कोई भय नहीं है।"

हुएनसंग के जीवनचरित लेखक ने सरलता पूर्वक यह भी लिख डाला है कि इस घोषणा के प्रचारित होते ही भ्रान्त प्रतिद्वन्दी मौन साध गये।

यदि बौद्ध धर्म के तिब्बती इतिहासकार तारानाथ की बात सच हो जो उसने जनश्रुति के आधार पर लिखी है तो यह मानना पड़ता है कि वैदेशिक धर्मों के प्रति हर्ष का उदार भाव नहीं था। लिखा गया है कि मौल स्थान या आधुनिक मुल्तान के निकट उसने लकड़ी का एक विशाल मठ बनवाया। उसमें उसने विदेशी धर्मोपदेशकों को टिका कर कई महीने तक उनका भली भांति सत्कार किया और अन्त में मठ में आग लगवा दी। फलतः कोई १२००० उपदेशक और उनके ग्रन्थ भस्म हो गये। इस अत्याचार के कारण शकों और पारसियों के धर्मों की एक शताब्दी तक बड़ी ही हीन अवस्था रही। कहा जाता है कि, खुरासान निवासी एक जोलाहे ने जूराष्ट्रियन* धर्म को जीवित रक्खा।

धार्मिक सहासभा।

हर्ष और हुएनसंग की बङ्गाल में भेंट हुई थी। जिन दिनों सम्राट् प्रवास में था हुएन-

* कहा जाता है बोधि वृक्ष का अशोक के अन्तिम वंशधर पूर्ण वर्मन ने कुछ दिनों के बाद पुनः रोपण किया। ये मगध के एक साधारण राजा थे।

* पारसी लोग इसी धर्म के अनुयायी हैं।

संघ के भाषणों से वह इतना प्रसन्न हुआ कि उसके उपदेशों का सम्यक् प्रचार करने के अभिप्राय से उसने राजधानी कन्नौज में एक महासभा करने का सङ्कल्प किया । गङ्गा के दक्षिण तट पर बड़े समूह के साथ सम्राट् हर्ष और उत्तर तट पर उसके सहायक कामरूप के अधिपति कुमार ने कन्नौज के लिए प्रस्थान किया । धीरे २ सुखपूर्वक चलते २ नब्बे दिन में वह कन्नौज पहुंचा । कन्नौज पहुंचने पर उपर्युक्त राजा कुमार बल्लभी के राजा ध्रुव भट्ट (हर्ष का दामाद) तथा अन्य १८ करद राजाओं ने उसका स्वागत किया। स्वागत-कारियों में चार हज़ार विद्वान बौद्ध साधु, जिनमें एक सहस्र प्रसिद्ध नालन्द विश्वविद्यालय के थे, तीन सहस्र जैन विद्वान और अनेक ब्राह्मण भी थे ।

महासभा के हेतु गङ्गा तट पर एक विशाल मठ और देवालय बनवाया गया। देवालय के सौ फुट ऊंचे एक बुर्ज में बुद्ध भगवान की मनुष्याकार सुवर्ण प्रतिमा स्थापित की गई। ऐसी ही राजभार की एक और छोटी प्रतिमा नित्य शोभायात्रा में घुमाई जाती थी; पीछे पीछे बीस राजा और तीन सौ हाथी चलते थे । हर्ष स्वयं प्रतिमा पर छत्र लगाकर चलता था और उपस्थित करद राज्यों में प्रधान कामरूप का राजा कुमार चमर हिलाता था। हर्ष दूसरे हाथ से मोती, सुवर्ण पुष्प इत्यादि अमूल्य पदार्थ लुटाता रहता था । अपने हाथों से प्रतिमा को स्नान कराकर हर्ष रत्नजटित सहस्रों वस्त्र नित्य चढ़ाता था । भोज के पश्चात् सार्वजनिक भाषण होता था । बहुत दिनों तक यह क्रम चला । महासभा की इतिश्री एक विचित्र घटना द्वारा हुई । एक दिन अस्थायी मठ में अग्निदेव की कृपा हो गई और अधिकांश मठ भस्म होगया । जब तक सम्राट् स्वयं प्रज्वलित अग्नि में नहीं घुस गया तब तक वह न बुझी । दारुण दृश्य अवलोकनार्थ अनुयायी भूपति वर्ग के सहित हर्ष बड़े स्तूप पर चढ़ा । उतरते समय एक धर्मोन्मत्त व्यक्ति ने उसे कृपाण से मार डालने की चेष्टा की परन्तु भावी घातक तुरन्त पकड़ लिया गया और हर्ष ने स्वयं उससे बड़ी पूंछतांछ की । पकड़े हुए मनुष्य ने स्वीकार किया कि बौद्ध धर्म की ओर अधिक ध्यान देने के कारण कुछ उत्तेजित ब्राह्मणों ने इस कुकर्म में उसे प्रवृत्त किया था । यह रहस्य प्रगट होने पर पांच सौ प्रसिद्ध २ ब्राह्मण पकड़े गये और प्रवीणतापूर्वक किये हुए प्रश्नों के उत्तर में उन्हें भी स्वीकार करना पड़ा कि धार्मिक द्वेष के कारण अग्निबाणों द्वारा मठ में आग लगाई गई और यह आशा की गई थी कि परिणामस्वरूप उत्पन्न होनेवाली व्याकुलता और व्यग्रता में सम्राट् के प्राण लिये जा सकेंगे। निस्सन्देह दारुण कष्ट देकर स्वीकारोक्ति प्राप्त की गई तथा सम्भवतः पूर्णतया असत्य थी। परन्तु पांच सौ ब्राह्मणों को निर्वासन दण्ड दिया गया ।

सर्वस्व दान ।

राजधानी का धर्मसङ्घ समाप्त होने पर सर्वस्व-दान-यज्ञ देखने के निमित्त हर्ष ने अपने अतिथि से प्रयाग चलने की प्रार्थना की । यद्यपि चीनी यात्री कष्टसाध्य गृहाभिमुख यात्रा करने को अधिक उत्सुक था तथापि सौजन्यवश वह आमंत्रण अस्वीकार न कर सका और प्रयाग के लिए उसने सम्राट् के साथ पयान किया । स्वयं हर्ष के कथनानुसार वह प्रति पांचव वर्ष अपने पूर्वजों की रीत्यानुसार गङ्गा यमुना के पवित्र सङ्गम पर एक महासभा किया करता था और पांच वर्ष का सञ्चित धन दीन दुखियों तथा विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों में वितरण कर देता था । पांच ऐसी महासभाएँ वह कर चुका था; यह छठी थी । इस सर्वस्व दान यज्ञ में करद राजा भी पधारे थे । दीन, हीन, अनाथ, साधु तथा

पण्डित सब मिलाकर कोई पांच लक्ष मनुष्यों की भीड़ हुई थी। इनके अतिरिक्त विशेष रूप से निमंत्रित विद्वान ब्राह्मण और उत्तर भारत के सब सम्प्रदायों के साधुगण भी आये थे। यह यज्ञ ढाई महीने में सम्पन्न हुआ। इसका श्रीगणेश एक प्रकाण्ड शोभायात्रा द्वारा हुआ जिसमें सब सामंत राजा और उनके सहचरगण सम्मिलित हुए थे। समयानुसार, धार्मिक उपासना की शैली विचित्र थी। प्रथम दिवस बुद्धदेव की प्रतिष्ठा पूजा हुई और बहुमूल्य वस्त्र तथा अन्यान्य मूल्यवान पदार्थ बांटे गये। द्वितीय तथा तृतीय दिन शिव और सूर्य का पूजन हुआ परन्तु प्रथम दिन जितना धन वितरण किया गया था उसका आधा इन देवताओं की पूजा उपलक्ष्य में वितरित हुआ। चौथे दिवस दस सहस्र प्रसिद्ध बौद्ध धर्माचार्यों को दक्षिणा दी गई। प्रत्येक को सौ मोहरें, एक मोती और सूती कपड़े, उत्तमोत्तम भोजन, पानी, पुष्प तथा सुगन्धित द्रव्य प्रदान किये गये। परवर्ती बीस दिन तक ब्राह्मणों के बड़े भारी समूह का सम्मान किया गया। इसके बाद दस दिन तक जैनियों और दस दिन तक अन्य धर्मावलम्बियों की बारी आई। तत्पश्चात् दस दिन तक दूर देशों के भिक्षकों को भिक्षा दी गई। तदनन्तर एक महीना दीनों, अनाथों तथा विकलाङ्गों की इच्छा पूर्ण करने में लगा। इस भांति पचहत्तर दिनों में सम्राट् ने पांच वर्ष का संगृहीत सम्पूर्ण धन दान कर दिया और घोड़े, हाथी, आदि सैनिक प्रसाधनों के अतिरिक्त जो राज्य की रक्षा और सुशासन के हेतु आवश्यक थे, उसके पास कुछ भी न रह गया। धन और द्रव्य के अतिरिक्त सम्राट् ने अपने रत्न और सम्पूर्ण आभूषण, वस्त्र और सामग्री बिना किसी विचार के बाँट दिये। सर्वस्व दान कर चुकने पर उसने अपनी भगिनी राज्यश्री से एक साधारण पुराना वस्त्र मांग कर धारण किया और इस बात पर उसने आनन्द अनुभव किया कि उसका पांच वर्ष का सञ्चित धन पुण्य कार्य में लग गया। किसी सम्राट् का प्रति पञ्चम वर्ष अपना सर्वस्व दान कर देने का दृश्य बड़ा ही विलक्षण है। यह भारत की विचित्रता है। संसार के इतिहास में ऐसा उदाहरण मिलना दुर्घट है। सांसारिक जीवन में विराग उत्पन्न होने पर राजपाट का मोह छोड़ उदासीन वृत्ति धारण कर ईश्वराराधन में रत हो जाना एक बात है; और सम्राट् के समस्त कर्तव्यों का पालन करते हुए यथासमय तथा आवश्यकतानुसार दान धर्म करते हुए अवशिष्ट सर्वस्व प्रति पञ्चम वर्ष दीन दुःखियों को बांट देना सर्वथा भिन्न है। पांच वर्ष तक राज-पदानुरूप वस्त्र, रत्न और आभूषण संग्रह करना और पांचवें वर्ष निर्मोह होकर सब पर कुशा रख देना और नये सिरे से फिर क का कि की पढ़ना उसी देश के सम्राट् के किये हो सकता है जहां भगवान् श्रीकृष्ण ने कर्मयोग की पवित्र सुरसरि-धारा बहाई हो और रामचन्द्र जैसे पितृभक्त, लक्ष्मण सरीखे ब्रह्मचारी, सीता तुल्य सती, भरत जैसे भाई, राजर्षि जनक सम ज्ञानी, व्यास सरीखे ग्रन्थकार, वाल्मीकि जैसे कवि, पातञ्जलि जैसे वैयाकरण, गौतम बुद्ध सरीखे त्यागी, अशोक जैसे धर्म-प्रचारक सम्राट् ने जिस देश की रज पूत की हो उसी देश में हर्ष जैसे कर्मवीर दानी का जन्म हो सकता है। संसार में सभ्यता फैलानेवाले इसी आर्यावर्त का हर्ष भी बालक था, जिस भूमि की शोभा एक दिन युधिष्ठिर जैसे सत्यवक्ता और कर्ण जैसे दानी ने बढ़ाई थी।

हूएनसंग की गृहाभिमुख यात्रा !

सर्वस्व-दान-यज्ञ पूर्ण होने के बाद सम्राट् ने हूएनसंग को दस दिन तक और रख कर विदा किया। चलते समय सम्राट् और कामरूप के राजा कुमार ने बहुत सी सुवर्ण मुद्राएं

तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुएं उसको भेंट कीं। परन्तु धर्मप्राण यात्री ने कुमार का भेंट किया हुआ एक रोएंदार भूशिरस् या ग्रीवाप्रच्छद (Fur lined cape) तो स्वीकार किया और उसने कुछ न छुआ। व्यक्तिगत सुखभोग के लिये तो उसने धन नहीं लिया परन्तु स्थल मार्ग से चीन पहुंचने के लिए आवश्यक मार्गव्यय रखे स्वीकार करना ही पड़ा। मार्गव्यय बड़ी उदारतापूर्वक दिया गया था और यात्री महोदय ने भी उदारतापूर्वक उसे स्वीकार कर लिया। तीन सहस्र सुवर्ण और दस सहस्र रौप्य मुद्राएं हाथी पर लदवा कर उसके साथ की गईं। उद्भित नामक एक राजा उसे सकुशल साम्राज्य की सीमातक भेज आने के लिए साथ किया गया। प्रायः छ महीने में धीरे २ चलकर वह जलन्धर (पञ्जाब) पहुंचा। यहां एक महीने विश्राम ले कर वह नवीन रक्षकों के साथ सिंधुनद पार कर खोतान आदि होता हुआ ई० ६४५ की वसन्त ऋतु में अपने घर पहुंचा। भारतयात्रा उसकी निष्फल नहीं हुई। बीस घोड़ों पर लाद कर ६५७ अपूर्व ग्रन्थ, बुद्धदेव की सोने चांदी तथा चन्दन की प्रतिमाएं और डेढ़ सौ शारीरिक अवशिष्टांश वह ले गया।

धर्मवीर हुएनसंग के शेष जीवन की चर्चा कितनी ही संक्षिप्त क्यों न हो, इस स्थान पर कुछ अप्रासङ्गिक अवश्य है। परन्तु जिस महात्मा की कृपा से सातवीं शताब्दी के भारतीय सम्राट् के जीवनचरित्र की विस्तृत आलोचना संभवपर है, उसके अनुकरणीय शेष जीवन विषयक दो चार पंक्तियों के लिए उदार पाठकों की दृष्टि में लेखक कोपभाजन कदापि नहीं ठहर सकता। हुएनसंग ने स्वदेश पहुंच कर अपना शेष जीवन साहित्यसेवा द्वारा राष्ट्र तथा धर्म को पुष्ट करने में व्यतीत किया। भारत से वह बहुत से ग्रन्थ अपने साथ ले गया था यह पूर्व ही कह चुके हैं; इनमें से ई० ६६१ तक उसने १७४ ग्रन्थों का चीनी भाषान्तर कर डाला। तीन वर्ष तक शान्तिपूर्वक विश्राम लेकर ई० ६६४ में वह देवताओं की पंक्ति में स्थान पाने के लिए इस मृत्यु लोक से चल दिया। हुएनसंग बौद्ध संसार में विद्वत्ता और धार्मिक पवित्रता में शिरोमणियों में परगणित होता है। वास्तव में घर से दूर पन्द्रह वर्ष के कठिन परिश्रम से सैकड़ों उत्तमोत्तम पुस्तकें प्राप्त कर उसने अपने साहित्य और धर्म की अनूठी सेवा की। विदेशयात्रा उसकी सार्थक हुई। हमारे भारतीय भाई जो विदेश से केवल दृश्य देखकर कोरे चले आते हैं और हंस की चाल चलने के फेर में पड़ कर कव्वे की चाल भी भूल जाते हैं, उन्हें सातवीं शताब्दी के इस असभ्य धर्मवीर चीनी की ओर एक बार दृष्टिपात करना उचित है।

हर्ष का चीन से राजनैतिक संसर्ग।

हुएनसंग के भारत-भ्रमणवृत्त और उसके जीवनचरित से हर्षविषयक प्रत्यग्र (Latest) समाचार मिलता है। हर्ष की दृष्टि भारत की सीमा में अवरुद्ध न थी। उसने चीनी साम्राज्य से राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित किया। ई० ६४१ में हर्ष ने एक ब्राह्मण राजदूत चीन के दरबार में भेजा जो ६४३ में लौटा। राजदूत ब्राह्मण के साथ चीनी सम्राट् ने भी अपना दूतदल भेजा। यह दूतदल हर्ष के पत्र का उत्तर भी लाया और ई० ६४५ में स्वदेश लौटा। ई० ६४६ में चीनी सम्राट् ने द्वितीय अभियान भेजा जिसका प्रधान वांग-हूयेन-ट्सो था जो प्रथम अभियान में द्वितीय अधिकारी था। परन्तु द्वितीय अभियान कुअवसर में भारत पहुंचा।

हर्ष का देहावसान और साम्राज्य का विनाश।

ई० ६४४ में उपर्युक्त सर्वस्वदान के पश्चात् की कोई उल्लेखनीय घटना हर्ष के समय की

विदित नहीं है। तीन वर्ष तक और जीवित रह कर वह ६४७ ई० के अन्त में या ६४८ के आदि में इस जरामरणग्रस्त शरीर को त्याग कर स्वर्गवासी हुआ। हर्ष के मरते ही साम्राज्य छिन्नभिन्न हो गया। अर्जुन वा अरुणाश्व नामक एक राजमंत्री ने राज्यापहरण किया। इसी के समय में द्वितीय चीनी अभियान भारत पहुंचा पर राज्यापहारी दुष्ट अरुणाश्व ने दूत-दल के साथ अतिही मलिन वर्ताव किया। रक्षकों को उसने मरवा डाला और अभियान की सम्पत्ति लूट ली। परन्तु प्रधान राजदूत और उसके सहयोगियों ने भाग कर नैपाल में प्राण बचाये। तिब्बत का तत्कालीन राजा स्ट्रांग-सानगम्पू बड़ा शक्तिशाली था और चीन की एक राजकुमारी उसकी अर्धांङ्गिनी थी। तिब्बत के एक सहस्र घुड़सवार और सात हज़ार नैपाली सेना की कुमुक से अभियान के प्रधान पदाधिकारी वांग-हूयेन-त्सी ने अर्जुन को नीचता का अच्छा प्रतिफल दिया और अन्त में उसे बन्दी कर चीन ले गया।

योग्य उत्तराधिकारी के अभाव में हर्ष का स्थापित किया हुआ विशाल राज्य इस प्रकार मट्टी में मिल गया और प्रायः सौ वर्ष के बाद कन्नौज के फिर इतिहास के पृष्ठ पर दर्शन होते हैं। हम पहलेही कह चुके हैं कि, गत पचीस सौ वर्ष का इतिहास भारत के पतन का इतिहास है और इस काल में हर्ष जैसे प्रतापी समाट् का दर्शन यत्रतत्र यदा कदा ही होता है। हर्ष के जन्म से उसके वंश का ही गौरव बढ़ा ऐसा नहीं है; ऐसे महापुरुष, राजनीतिनिपुण, धर्मपरायण प्रजा-पालन-रत सम्राट् से भारतमाता भी धन्य हुई। हर्ष का जीवनचरित बीसवीं शताब्दी के जन्म प्रकाश में भी खरा सुवर्ण ही जँचता है। यह हम लोगों के सौभाग्य का विषय है कि देशभक्तों को उत्साहित और अनुप्राणित करनेवाले तथा अदीक्षितों में जातीय गौरव का बीज वपन करनेवाले पूर्वजों के चरित्र-चित्र उपस्थित किये जा सकते हैं। जातीय उत्थान की चेष्टा के अवसर पर ऐसेही प्रकाश स्तम्भों से अन्धकार दूर होता है।

ग्रीष्मागमन।

[लेखक—श्रीयुत मन्नालाल द्विवेदी "द्विजलाल"।]

कैसा विश्व विश्वकर्ता ने
रचा महा विस्मयकारी।
जिसकी अनुपम मोददायिनी
रचना देख बुद्धि हारी॥
सृष्टि काल से करते आते
ज्ञान-बीन वर विज्ञानी।
तो भी रंचमात्र अब तक है
महिमा नहीं गई जानी॥ १॥

जल थल अनल पवन अम्बर रच
अमित जीव जग विस्तारे।
दिनकर और निशाकर विरचे
अगनित दीप्तिमान॥
किये मनुज बल बुद्धि ज्ञानकि बाद सम्राट्
स्वावलंबकार और रख कर
नाना विधि पशु प्रकृति भिन्न और काम-
महामनोहर सुवर्ण मुद्राएं

काल चक्र फिर कभी न रहता
यह है प्रकृति-नियम अभिराम ।
प्रातकाल मध्यान् यथाक्रम
रविगत हुए हुई शुचि शाम ॥
शीतकाल में शीतवायु अति
तन से सही न जाती है ।
वही बसन्ती वर मलयानिल
मन को मुग्ध बनाती है ॥ ३ ॥
उस अखिलेश लोकनायक ने
अटल नियम है निरधारे ।
जिनसे सदा विश्व भर के हैं
होते स्वयं कार्य सारे ॥
प्रकृति नियम आधीन यहां से
चला गया ऋतुराज बसंत ।
स्थापित हुआ राज्य ग्रीषम का
धारण करके प्रभा अनन्त ॥ ४ ॥
अब ऋतुराज साज सज्जित नहिं
रम्यारण्य दृष्टि आते ।
पुष्पवाटिका में विचरण कर
वैसा नहीं मोद पाते ॥
शीतल मंद सुगन्ध बसन्ती
मारुत अवन मोदवाला ।
प्रखर असैह्य तीव्र तन तापक
प्रकटीं सूर्य रश्मिमाला ॥ ५ ॥
सुधामयी कल कंठ कोकिला
ध्वनि वैसी न सुनाती है ।
भ्रमरावली सुमन तरुओं पर
उड़ने दृष्टि न आती है ॥
मृगगण शांत मोदयुत वैसे
क्रीड़ारत न दिखाते हैं ।
झरना गिरि समूह से झर २
अब जल नहीं बहाते हैं ॥ ६ ॥
वे आराम धाम सुखमा के
फूले जहां पुष्प अभिराम ।
मलयानिल के मंद झकोरे,
गाती भ्रमरावली ललाम ॥
करते जहां विहार विहँगगन
नंदन बन का जो उपमान ।
नष्ट हुई उनकी निदाघ में
हा मन मुग्धकरी वह शान ॥ ७ ॥
लघु सरिता सर आदि जलाशय
हुए सभी जल से खाली ।
उनके चारों ओर वर्तिनी
नष्ट हुई सब हरियाली ॥
प्रलय मीनगण का आ पहुंचा
वे चिंतित देखे जाते ।
जल क्षय से सानन्द उन्हें हैं
बकुले बीन २ खाते ॥ ८ ॥
विहँगावलि ने किया यहां से
मान सरोवर का प्रस्थान ।
अब प्रवास प्रेमी पथिकों बिन
मारग सभी हुए सुनसान ॥
दिन परिणाम बढ़ा तैसे ही
क्षीण हुआ रजनी का मान ।
शंकर भाल नेत्र ज्वाला सम
प्रलय काल के प्रकटे भान ॥ ९ ॥
दस बजते २ भवनों के
द्वार बंद हो जाते हैं ।
चार बजे पर्यंत मार्ग में
मनुज दृष्टि नहिं आते हैं ॥
हाट बाट जो जन समूह से
संकुल महा मोदकारी ।
वहां पवन अब धूल उड़ाती
पावक तुल्य उष्ण भारी ॥१०॥
धनी व्यक्ति खस की टटियों में
सोते हैं पर्यंक बिछाय ।
चारों ओर वारि सिंचनकर,
घर पर चंदन लेप लगाय ॥

पान हेत जल स्वच्छ सुराही
का मिश्रित गुलाब आला।
सौंफ काचनी का सेवन है
बिजना त्यों बिजलीवाला ॥११॥

पवन कराल रूप धारण कर
बनी उष्णता का आगार।
करती विकल विशेष स्पर्श से
मानों सहस्रानन फुंकार॥

प्रस्तर आतप तप्त हुए हैं
दहक रहे जैसे अंगार।
प्राणिमात्र को ग्रीष्मकाल में
जल हो गया सुधा का सार ॥१२॥

इन उपचारों से श्रीकाया
रंच चैन नहिं पाती है।
प्रखर रूप से अमित उष्णता
विकल विशेष बनाती है॥
नित मध्यान् काल त्यों रजनी
करवँट लेते जाती है।
स्वेद धार अविरल बहती है
निद्रा किन्तु न आती है ॥१३॥

आतप तप्त पतित सुमनों से
छादित वनस्थली सारी।
व्याकुल श्रमित श्रमैं चारों दिशि
जीव दुखित काननचारी॥
भूमि स्पर्श से मृदु चरणों में
झलका यों छवि पाते हैं।
कमल कोष जिस भांति वराटक
रुचिर विशेष दिखाते हैं ॥१४॥

मृगगण तृषित विकल जल आशा
मृग तृष्णा में भ्रमैं विहाल।
होता व्यर्थ परिश्रम सारा,
झुलसाती है लू विकराल॥
गज केहरि मयूर औ विषधर
स्वाभाविक निज वैर भुलाय।
आतप से संतप्त हुए सब
छिपे एक झाड़ी में आय ॥१५॥

होती वृष्टि अँगार गगन से
मृगगण श्याम रंगकारी।
खग सब नीरव तरु कोटर में
छिपे देख आतप भारी॥
पशुगण चरना छोड़ जुगाली
करते हैं बैठे चुपचाप।
महि खनि श्वान अचेत पड़े हैं
भूल गया सब वृथा प्रलाप ॥१६॥

लेमनड सोडावारि बर्फ से
नहीं ताप तन का जाता।
इंग्लिश फैशन का वर बँगला
रवि किरणों से गरमाता॥
करके कोटि यत्न नहिं पाते
यहां शांति जब जेंटिलमैन।
शिमला, डलकमंड, मंसूरा,
दार्जलिंग में करते चैन ॥१७॥

भारत के अति दीन कृषकगण
सहकर भस्मकरी यह घाम।
जिनके पादत्राण नहीं पद में,
नहीं वस्त्र का तन पर नाम॥
दुखिया दुखित चित्त से करते
संतत निज खेतों में काम।
पाते पेट पूर्ण भोजन नहिं
हा! पलभर भी नहीं विराम ॥१८॥

बड़े वेग से उठे बवंडर
वारिद तुल्य रूप धारी।
रजरूपी जल को बरसाते
वायु शब्द गर्जन भारी॥
धुन्धकार से सकल दिशाएं
होतीं अनुरंजित सविशेष।
कोई दृष्टि नहीं आता है
वृक्षावली छोड़ निःशेष ॥१९॥

शीतल वायु नहीं होता है
गत होते रजनी युगयाम।
श्रमजीवी पुरुषों की तब २
त्वचा हुई कर्कश औ श्याम॥
यों मध्यान समय दिनकर की
रश्मि राशि शोभा पाती।
ज्यों कल्लोल लोल सागर में
जल धारा हो लहराती॥२०॥
महिलाओं के मुख मंडल पर
शोभित स्वेदबिंदु की जाल।
मानो रति नायक ने गूंथे
मुक्ताफल वर कोष मृणाल॥
जिह्वा बार २ अपनी वे
सूखा धरन चलाती हैं।
आतप तप्त, तप्त कंचन का
कांति समान दिखाती हैं॥२१॥
द्रवीभूत हिम हुआ हिमालय
यह विचार मन आता है।
जीववृन्द को दुखित देख
गिरि अश्रुधार बरसाता है॥
गंगा सिंधु सदृश सरितों का
अब रह गया न्यून विस्तार।
देखी नहीं किसी की जाती
सदा एकसी गति संसार॥२२॥

बालकों को वर्णमाला सिखाने का सुगम उपाय।

[लेखक—एक शिक्षक।]

शिक्षण शास्त्र के नेताओं का कथन है कि बालकों की शिक्षा कष्टदायक प्रतीत न होकर रोचक प्रतीत होनी चाहिये जिससे वह इसे प्रेम से ग्रहण ही न करते चले जायँ परन्तु उनकी इच्छा दिन प्रति दिन इस तरफ प्रबल होती चली जाय।

बालकों का स्वभाव है कि वह गाने बजाने, नाच, खेल, कूद, आदि को अधिक पसन्द करते हैं अतः वर्णमाला सिखाने के लिए सबसे उत्तम उपाय यही होगा कि खेल कूद आदि द्वारा ही उनकी चित्तवृत्ति एकाग्र की जाय जिससे दिलबहलाव के साथही साथ उनको शिक्षा भी मिलती चली जाय।

आदि में कुछ २ गाने का आश्रय लेना लेखक को ठीक मालुम होता है जिससे शब्द द्वारा बालक के कान को शिक्षा मिलती है। यह गाना किसी पद्य का नहीं बल्कि बिनामात्रा* के साधारण शब्दों का उच्चारण होना चाहिये। बिना मात्रा के शब्दों की एक ऐसी सूची बनानी चाहिये जिसमें शब्दों की संख्या वर्णमाला के अक्षरों की संख्या से तिगुनी या चौगुनी हो और वर्णमाला का प्रत्येक अक्षर तीन चार बार इन शब्दों के आदि में आवे जैसे नीचे के चार शब्दों के आदि में का है

कमल, कलम, कपट, कसर,

सूची तैयार होने के पश्चात् पाठक एक शब्द बोले और बालकों को लम्बी राग के साथ इसको उच्चारण करने को कहे जिससे उनको तमाशा भी मालुम हो और स्वयंही शब्द के पृथक २ भाग करना भी सीख जायँ जैसे।

कमल	क	म	ल
सपट	स	प	ट
परख	प	र	ख

* बिना मात्रा के शब्दों से मेरा तात्पर्य उन शब्दों से है जिनमें अकार के सिवा और कोई मात्रा न हो।

इस प्रकार शब्द के खंड करने का अभ्यास उस सूची से करा चुकने के पश्चात् दूसरा पाठ यह होगा कि प्रत्येक शब्द के प्रथम अक्षर के उच्चारण के बाद बालक ठहर जावें जैसे।

शब्द	दिल में बोले	उच्चारण करके बोले
बतक	(ब... त... क...)	ब...
सड़क	(स... ड़... क...)	स...

इस अभ्यास से बालकों को किसी भी शब्द का प्रथम अक्षर बोल देना आजायगा परीक्षार्थ उनको ऐसे शब्दों का प्रथम अक्षर भी बताने को कहा जाय कि प्रथम अक्षर के सिवा और कोई बिना मात्रा का न हो जैसे,

पाठक का प्रश्न "कमीज" शब्द का प्रथम अक्षर क्या है।

बालक का उत्तर (मनमें क मी ज) क

यहां तक तो बालक के कान व मुख से काम लिया गया आगे दृष्टि की भी आवश्यकता है। दृष्टि से काम लेने के लिए अब बालकों के हाथ में चित्रों की पुस्तक या ताश† देने चाहियें जिसमें चित्र के साथही वर्णमाला का अक्षर लिखा हो।

याद रहे बालकों को अभी अक्षर पहिचानना कठिन है इसलिए उनके मनबहलाव के लिए चित्र दिखलाकर उसका नाम बता देना चाहिये। नाम का उच्चारण बालक से भी सुना जावे यह अभ्यास इतना होना चाहिये कि किसी भी चित्र को देख कर बालक उसका नाम बता दे। इसके बाद फिर वही पुराना पाठ दुहराया जाना चाहिये याने चित्र को देख बालक उसका नाम आप ही बता चुकने के पश्चात् उस शब्द को लम्बी राग से उच्चारण करके उसका प्रथम अक्षर बतावे जैसे :—

† ऐसी पुस्तकें और ताश बाजार में बहुत मिलते हैं पुस्तकों के दाम तो अक्सर दो पैसे से अधिक नहीं होते।

पाठक—यह चित्र काहे का है?

बालक—बतक का

पाठक—बतक शब्द के अक्षरों का पृथक २ उच्चारण करके प्रथम अक्षर बताओ।

बालक—ब त क—ब

इस तरह बालकों को ऐसा अभ्यास हो जाना चाहिये कि चित्र को देखते ही उस चित्र के नाम के प्रथम अक्षर का आपही उच्चारण कर दे।

यहां पर बालक को अब यह बताना चाहिये कि जिस अक्षर का वह उच्चारण कर रहा है उसका आकार कैसा है। चित्र को देख बालक जब अक्षर का उच्चारण करे तो उसकी दृष्टि चित्र के पास ही लिखे उस अक्षर की आकृति की तरफ फेरनी चाहिये जिससे उच्चारण के साथ ही साथ उस उच्चारण किये हुये अक्षर की आकृति उसके हृदय पर अंकित हो जाये। उच्चारण के साथ ही अक्षर को बता देने के अभ्यास के बाद अक्षर को देख कर उसके उच्चारण का अभ्यास कराना चाहिये परन्तु ऐसा करते समय स्मर्णशक्ति को बढ़ाने के लिए चित्र को हाथ से छिपा लेना चाहिये। पुस्तक के पृष्ठ पर चित्र के पास (बिना चित्र के देखे) के अक्षर को देखकर जब उसका उच्चारण करना सीख जाय तो दूसरी पुस्तकों के ऊपर के पृष्ठ पर लिखे हुये बड़े २ अक्षरों का उच्चारण परीक्षार्थ करवाना चाहिये। यदि वह इस परीक्षा में सफल हो जाय तो समझना चाहिये कि वर्णमाला के अक्षर उसको बहुत अच्छी तरह आगये। इस रीति बिना बालक के हृदय पर यह अंकित करा देना कि किस बोले हुये अक्षर का कैसा आकार है और किस आकार के अक्षर का कैसा उच्चारण है बहुत कठिन है।

कदाचित पाठक यह कहें कि इस भांति शिक्षण में तो समय बहुत लग जायगा और हम

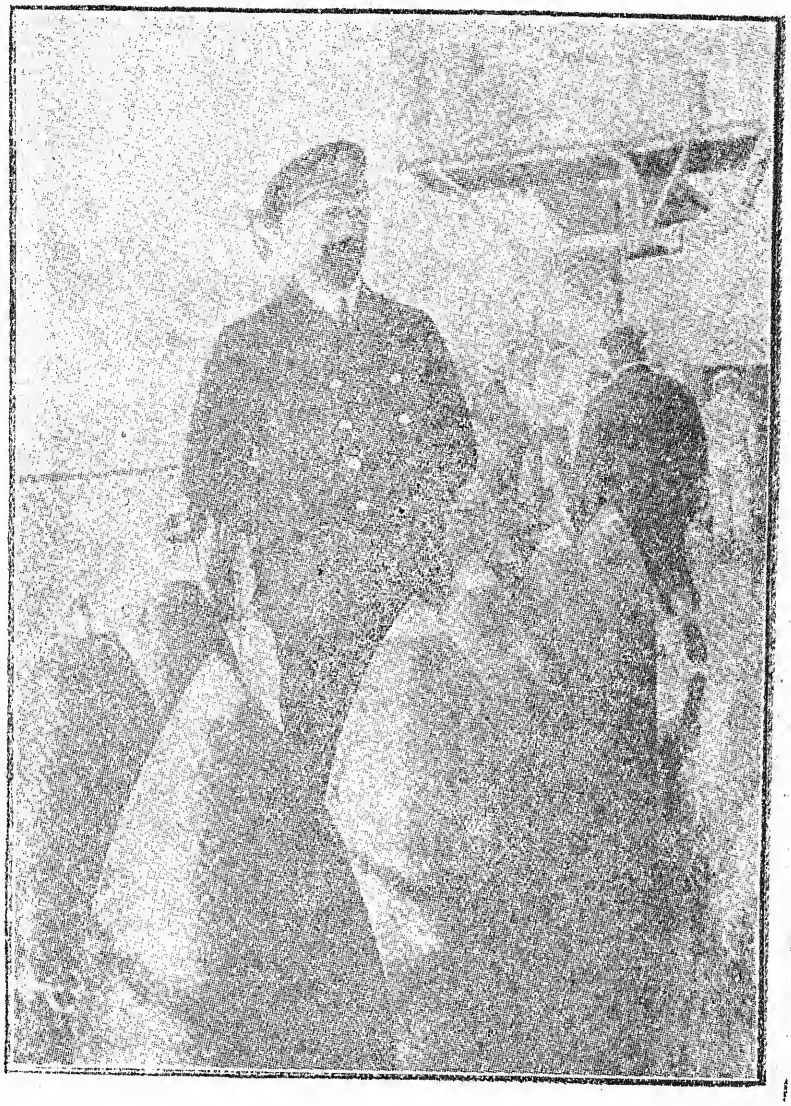

डार्डनेलीस के मुहाने में एक ब्रिटिश जङ्गी जहाज़ पर १२ इंच के गोले दिखाये गये हैं जो तुर्की किलों पर चलाये जाते हैं।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

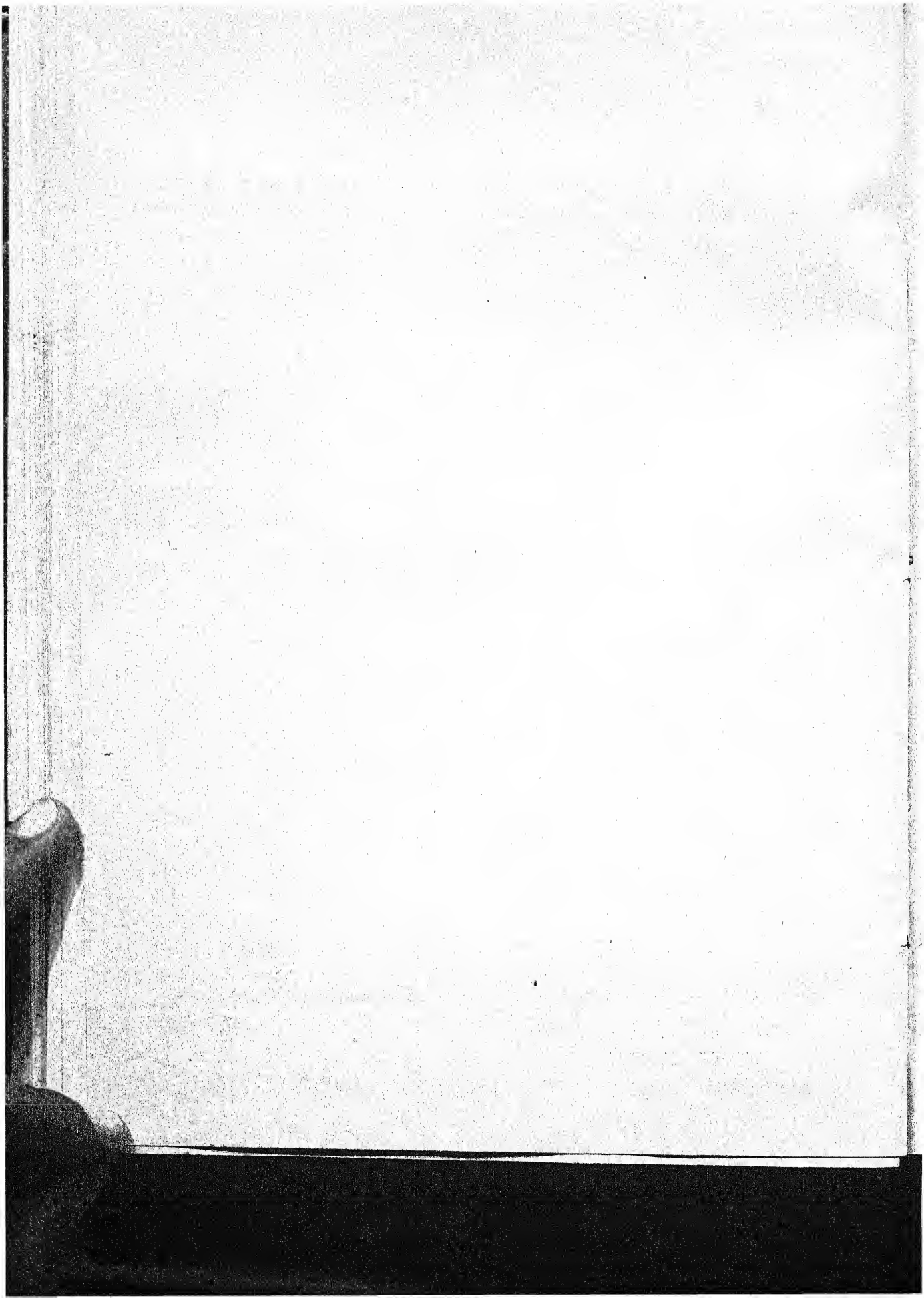

को कष्ट भी पूरा उठाना पड़ेगा परन्तु याद रखना चाहिये पाठक आप स्वयं कष्ट उठाकर उन कोमलहृदय बालकों का जो शिक्षार्थ उनके सुपुर्द किये गये हैं कष्ट ही दूर नहीं करते बल्कि बातों ही बातों में दिल बहलाव के साथ वर्णमाला के सारे अक्षर पढ़ाते हैं जिसमें उनको कई चपतों और रुदन की भी बचत हो गई। दूसरी बात यह है कि पुराने ढंग से जिस आयु के बालक वर्णमाला सीखते हैं इस ढंग से उससे कम आयु के बालक चाह के साथ सीख सकते हैं और पाठक को 'हौवा' नहीं समझते।

पाठकों का परम कर्तव्य है कि जहां तक हो सके बालकों को शिक्षा सहज से सहज और रोचक से रोचक रीति पर स्वयं कष्ट उठाकर या अधिक समय लगाकर भी दें ताकि उनका मस्तिष्क कोमलावस्था में तो ठीक रहे इसके बिगाड़ने के लिए आगे की वर्तमान भारतीय शिक्षा ही बहुत है।

कला और स्वदेशी।*

[लेखक—श्रीयुत परशुराम चतुर्वेदी।]

यदि आप भारतवर्ष के प्रसिद्ध नगरों में किसी उस दूकान पर जायँ जहां विदेशी यात्री बहुधा जाया करते हैं तो आपको ऐसे गढ़े हुए काठ के टुकड़ों तथा नक़ासीदार पीतल के बर्तनों के बीच में जो कि बिलकुल पुराने पड़ गये हैं ऐसी वस्तुएँ दिखलाई देंगी जिन पर चित्रकारी तथा सुई का काम भलीभांति किया गया है और जिनके ऊपरी भाग को देखने से जान पड़ता है कि ये भारतवर्षीय निर्माण-कौशल की अवनति के खासे नमूने हैं। ये ही वस्तुएँ जो कभी प्रायः प्रत्येक बाज़ार में मिला करती थीं और जो भारत के निवासियों के लिए धन समान थीं और लगभग गत तीन सहस्र वर्षों तक जोकि उनके विदेश भेजे जानेवाली वस्तुओं के मूल-मन्त्र थीं आज बड़ी कठिनता से मिलती हैं; ये अब "पुरानी चीज़" कहलाती हैं। इनको अमेरिका के परीक्षक तथा जर्मनी के संग्राहक (Collectors) अपने कौतुकागारों अर्थात् म्यूजियम्स में रखने के लिए ले जाते हैं और इस प्रकार की वस्तु बनाने की शिक्षा इनके द्वारा यूरोप में दी जाती है। वहां इनके विषय पर यूरोपीय कारीगरों के लाभार्थ Journal of Indian art इत्यादि पत्रों में लेख प्रकाशित किये जाते हैं और इन पर Technical Schools और Schools of art में व्याख्यान दिये जाते हैं। क्योंकि यद्यपि कारीगरों की निर्माणशक्ति कितने दिनों से पश्चिमीय वाणिज्य द्वारा नष्ट होगई है तथापि यह अभी कलतक हम लोगों में वर्तमान थी और अभी आजतक कुछ न कुछ जीवित अवस्था में है।

सुदूर २ आविष्कारों के लिए भारतीय विधान एक ऐसी सामग्री है जो कभी घट नहीं सकती। किन्तु क्या कभी आपने यह विचार किया है कि ये सभी आविष्कार प्राचीन समय के हैं और इस आधुनिक अंगरेज़ी भारत ने कुछ भी सुन्दर तथा काल्पनिक वस्तु उत्पन्न नहीं किया है, प्रत्युत हमारे प्राचीन २ ऐसी वस्तुओं का नाश भी कर डाला है? किसी

* यह लेख डाक्टर ए० के० कुमार स्वामी के अङ्गरेजी लेख "दी आर्ट ऐण्ड स्वदेशी" का अनुवाद है। ले०

स्वदेशी दूकान में आप कहीं भी भारतीय आविष्कार के उदाहरण न पायेंगे जिसको प्राचीन भारतीय कारीगर अपना धन समझता था और जिसे दैनिक कार्यों में भी व्यवहार की जानेवाली एक साधारण सी वस्तु पर—उन रेशमी बूटेदार वस्त्रों पर जिनसे गृहणियां सुशोभित की जाती थीं, उन पीतल के बर्त्तनों पर जिनमें हम लोग नित्यशः खाते पीते थे, उन क़ालीनों पर जिन पर हम नंगे पैर टहला करते थे तथा उन चित्रों पर—व्यय किया करता था जिनमें श्रीराधा देवी का प्रेम अथवा प्रकृति की छटा दिखलानी होती थी। आप वहां ये बातें कभी न पाइयेगा किन्तु आपको वहां वही वस्तुएँ दीख पड़ेंगी जिनमें यूरोप की वाणिज्य-वाली वस्तुओं की नक़ल की गई है और जिनका कुछ बुरा होने पर भी कुछ अधिक ही मूल्य रक्खा गया है। आपको काले भूरे रंगे हुए वस्त्र मिलेंगे जिन पर रंग तो खूब चटकीला है पर जो टिकाऊ नहीं; यात्रावाले ट्रङ्क मिलेंगे जिन पर इन्द्र-धनुष के सभी रंग दिखलाये गये हैं पर जो आधे साल भी नहीं ठहर सकते और जूते की रोशनाई, स्याही, साबुन तथा क़लम इत्यादि सभी वस्तु रँगीली ही दिखलाई देगी। हमारे अर्थशास्त्र के जाननेवाले तथा राजनीतिज्ञ लोग बहुधा केवल बाहरी चमक दमकवाली ही वस्तुओं की वृद्धि में अधिक यत्न कर रहे हैं। मैं अभी दिखलाऊंगा कि यह भी सफलता के साथ नहीं होता। किन्तु कुछ देर के लिए एक दूसरे विषय पर दृष्टि डालिये।

आप यह भलीभांति जानते होंगे कि राष्ट्रीयता का सब से उत्तम आदर्श सेवा है। पर क्या कभी आपने यह विचार किया है कि भारतवर्ष सम्पत्ति तथा राजनीतिविषयक बातों में स्वतन्त्र होते हुए यूरोप द्वारा आन्तरिक अवस्था में आधीन होने के कारण जीवित रहने तथा मरने के लिए भी कभी आदर्श नहीं कहा जा सकता? जैसा कि एक भारत-प्रेमी अंगरेज़ ने हाल ही में लिखा है, "आधुनिक शिक्षा तथा आधुनिक व्यापार के आदर्शों द्वारा बिगड़ा हुआ भारतवर्ष सुन्दरता का ज्ञान होने पर भी कभी अपने ऊपर अनुकम्पा तथा दया नहीं कर सकता।" क्या कभी आपने यह अनुभव किया है कि यूरोप के कई एक कारीगरों को इस बात में विश्वास है कि जब कभी यूरोपीय कला में कोई नवीन उत्तेजना आयेगी तो वह पूर्व ही से फिर आयगी। क्या कभी आपने सोचा है कि जब भारत एशिया में एक बड़ा भारी राजनैतिक बल था और जब इसने जावा को बसाया तथा चीन को उद्बोधित किया था उस समय में भी यह अपनी कला ही में अत्यन्त निपुण था? क्या कभी आपके मन में यह नहीं आया है कि उसे सौन्दर्यशाली बनाना मेरा उतना ही कर्तव्य है जितना उसे नैतिक बनाना तथा यह कि निस्संदेह बिना सौन्दर्य के नीति कभी नहीं होती और न बिना नीति के सौन्दर्य ही होता है? अपने चारों ओर भारत की बिगड़ी दशा पर तनिक दृष्टि फेरिये और देखिये वाणिज्य के समक्ष हमारी कला कैसी है, किस प्रकार किरोसिन तेल के टीन में जल भरा जा रहा है, किस प्रकार बिजली की शक्ति द्वारा खींचे गये दस्ते खपड़ों का काम दे रहे हैं, किस प्रकार हम लोग यूरोप के पहनावों की नक़ल कर रहे हैं; किस प्रकार हमारे छोटे २ गांव समुद्र तटस्थ नगरों की भांति शीशों तथा कृत्रिम पुष्पों से सजाये गये हैं तथा किस प्रकार हमारे घरों में हारमोनियम और ग्रामोफोन का आदर हो रहा है। ये ही ऊपरी तथा नाश करनेवाली बातें इस बात के सच्चे प्रमाण हैं कि "हमारे आत्माओं के भीतर किसी बड़ी भारी दुर्मति का समावेश होगया है।"

इस बात में विश्वास रखिये कि हम लोगों की इस निर्दयता से तथा माध्यमिक शिक्षा-प्रणाली की चाह घटादेने से हमलोगों की निर्बलता ही प्रकट होती है; सबलता नहीं।

ध्यान रहे कि भारतवर्ष का पुनरुत्थान केवल राजनीति ही विचारने और सम्पत्ति शास्त्र के देखभाल करने से नहीं, किन्तु कला कौशल से होगा। ऐसे २ भौतिक विषयों पर ही केवल विचार करने से हमारी गई दशा फिर नहीं फिर सकती। इसके लिए हमें प्राचीन कला की उन्नति का स्वप्न अवश्य देखना होगा।

हमलोगों में इस जीवन के सौन्दर्य का न होना हमलोगों के भारत पर प्रेम न करने का प्रत्यक्ष प्रमाण है क्योंकि भारत हालही में सभी राष्ट्रों से अधिक सुन्दर था। हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन की यह निर्बलता है कि हम लोगों का भारत के साथ प्रेम नहीं। हमलोग इङ्गलैंड को प्यार करते हैं और हमलोग उस आगे की लुभानेवाली सम्पत्ति से प्रेम करते हैं जो हम लोगों की इस वैज्ञानिक उन्नति तथा कला विस्मृति के कारण कुछ ही दिनों में आधुनिक यूरोपीय वाणिज्य द्वारा यहां स्थापित होने चली आरही है। इस प्रकार राष्ट्र कभी नहीं बनते। इसलिए मैं आप से मिष्टर हैवेल की भांति कहना चाहता हूं कि "अपनी कला तथा अपने उद्योग के पुनरुत्थान के लिए गवर्नमेंट से प्रार्थना करनी छोड़ दो। तुम अपने योग्य कार्य निश्चयपूर्वक स्वयं कर सकते हो और तुम्हारे सफल होजाने पर कोई गवर्नमेंट तुम्हारे नैतिक स्वत्वों को अस्वीकार नहीं कर सकती। तुम अपनी खोई हुई भारत की कला शक्ति के सुधार के हेतु फिर प्रयत्न करो। इसके करने से तुम्हारे कार्यों में एक जीवन शक्ति का संचार होगा जो आजकल तुमलोगों में दिखलाई नहीं देती।"

अब इसे व्यावहारिक रूप में देखिये। सब से अधिक भारतवर्ष के व्यवसायों की हानि कला की अवनति से हुई है और इसी के कारण इनके पुनरुत्थान में सन्देह भी पाया जाता है। भारतीय सङ्गीत की उपेक्षा करने से सङ्गीत यन्त्रों के बनानेवाले की जीविका मारी गई और उनकी वंशपरम्परा से आती हुई वह निपुणता भी चली गई। अब गायकों की भी वृत्ति जाती रही और बाहर के देशों से लगभग १५ लाख रुपयों के बाजे हमारे यहां प्रति वर्ष आने लगे। विचार कीजिये इसमें दूनी हानि हुई है क्योंकि न केवल हम लोगों ने वस्तुओं के ही रूप में धन नष्ट किया है किन्तु इसके साथ ही ऐसे मनुष्यरूपी धन का भी नाश कर डाला है जो इनके बनाने में दक्ष और सिद्धहस्त थे। और यदि भारतवर्ष प्रत्येक वर्ष सैकड़ों लाख रुपये ग्रामोफ़ोन में व्यय करने के लिए धनी रहता तो भी यह हानि ज्यों की त्यों बनी रहती।

ग्रामीण जुलाहों की भी वही दशा है। भारतीय रँगाई की ओर ध्यान नहीं दिया गया और न इनसे प्रेम ही किया गया। फल इसका यह हुआ कि जुलाहों की जीविका मारी गई और अब उनको खेत बोने और पहले ही से भरे हुए कामों में नौकरी करने की आवश्यकता हुई। अब यह भी देखने में आता है कि हम लोगों ने हाथों की कारीगरी से बनाई गई उच्चकोटि की वस्तुओं से ध्यान खींच कर केवल व्यावहारिक विषयों पर ही इसे लगाये हुए अधिकतर मैन्चेस्टर के कारखानों में जिस प्रकार परिश्रम कराया जाता है उसी भांति कराने का विचार कर रहे हैं। इससे बालकों की स्वस्थता आदि ही से चली जायगी और इस प्रकार राष्ट्रीय शक्ति में कुल्हाड़ा लगेगा। बात तो यह है कि हम लोग उस कारीगरी को पहचानते ही नहीं। स्मरण रखिये इङ्गलैंड के विषय में वहां के लोग कहा करते हैं कि हमलोगों के बड़े २ नगरों में जनसंख्या लगभग उतनी ही है जितनी आज छः शताब्दियां हो चुकीं इङ्गलैंड और वेलस दोनों में मिलाकर थी, किन्तु आधुनिक मनुष्यों की अवस्था अधिक शोचनीय है, इनके घर अधिक भद्दे, इनके आवश्यक अधिक अनि-

श्रित और इनकी दशा उनमें से सब से दरिद्र मनुष्य से भी अधिक निकृष्ट है"। विचार कीजिये कि अंगरेज़ जाति के दशांश लोग उन कारखानों में ही मर जाते हैं जिन्हें कारागार अथवा पागलखाना कहना चाहिये। अतएव इस क्षणस्थायी नैतिक युद्धानल में अपने राष्ट्रीय बल की आहुती दे देना मत भूलिये किन्तु ध्यान रखिये कि इस काल के ही द्वारा आप अपने प्राचीन कौशल और व्यापार को और भी निश्चित रूप में ला सकेंगे और इसे ठीक आधार पर ले आने से ही हम लोगों को फिर सुख मिल सकता है क्योंकि इस संसार में ऐसी कोई भी मनोहर वस्तु देखने में नहीं आती जो सौन्दर्य के आधार पर न बनी हो।

दूसरा व्यावहारिक रूप में उदाहरण लीजिये "मिर्ज़ापुर में बने हुए कालीनों की कभी उनके स्वच्छ, पक्के और चमकीले रंग के कारण प्रशंसा की जाती थी, किन्तु इस समय उनकी तुलना उन वस्तुओं से की जाती है जिनमें रंग और बनावट का भद्दा उदाहरण पाया जाता है। इनकी अवनति के कारण अब नील के रंग anilinedyes और विदेशी बनावट होगये जिनके द्वारा एक ऐसा व्यवसाय मारा गया है जिससे थोड़े ही दिन हुए उन्नति की आशा की जाती थी"। अब देखिये, केवल बुरी चाह के होने तथा कलाकौशल की पहचान के न होने से ही रंग बनानेवालों और कालीन तय्यार करने-वालों का नाश हो गया और इसी कारण भेजे जानेवाली वस्तुओं के वाणिज्य के पुनरुत्थान की सम्भावना भी जाती रही।

बात तो यह है कि बिना कला-विषयक ज्ञान प्राप्त किये भारत की कारीगरी की उन्नति फिर कभी हो ही नहीं सकती। सस्ते-पन के आधार पर यूरोप के साथ स्पर्धा करना आत्म-घात करना है। यदि करना है तो युग के विषय में स्पर्धा क्यों नहीं करते? इसके साथही सस्तेपन ही में ऊंचा होने का यत्न करना नाश का घर है क्योंकि "बिना कला के उद्योग करना पशुत्व के समान है"।

स्वदेशी को नैतिक शस्त्र से कुछ अधिक अवश्य होना चाहिये। इसको कला-सम्बन्धी धार्मिक आदर्श भी बनाइये। मैंने राष्ट्रीय मतावलम्बियों को स्वदेशी वस्तु के प्रयोग करने के लिए आपस में उत्साह देते हुए मुंह से बलिदान शब्द लाते हुए सुना है। लज्जा की बात है कि हम उसे बलिदान कहते हैं। कम से कम आज की भांति इसको कभी भी धन तथा गुण का बलिदान नहीं होना चाहिये यदि हम लोग भारतीय कला को प्यार करते हैं तथा इसे समझते भी हैं तो हमें यह जानना चाहिये कि भारत का कारीगर, यदि अभी भी हम लोग उसे बनाने दें तो ऐसी वस्तु बना सकता है जैसी कहीं नहीं मिल सकती और हमें इस प्रकार सुन्दरता के साथ सुशोभित भी कर सकता है जिस प्रकार आधुनिक यूरोप को कितना ही धन व्यय करने पर कोई वस्तु कभी नहीं कर सकती। यदि हम चाहें तो आज भी देवता की भांति रह सकते हैं, किन्तु हम तो आज मिश्र के मांस-पात्रों (Flesh-pots) पर लिपटे हुए हैं और इसी कारण हमारे धन का उचित रूप से ह्रास भी हो रहा है।

इसलिए मुझे धनियों से यह कहना है कि आपके लिए स्वदेशी रंग से रँगी हुई बना-रसी साड़ी के लिए ढाई सौ रुपये व्यय करना यद्यपि विदेशी रंग से रँगी हुई का दोहो सौ मूल्य क्यों न हो, किसी स्वदेशी कारखाने के लिए जिसमें नित्र और कपड़े तय्यार होते हों उसके दस गुना दान देने से कहीं अच्छा है और निर्धनों से भी यही प्रार्थना है कि वे भी अपनी योग्यता के अनुसार उसमें कुछ जोड़ दें क्योंकि अग्निपुराण में लिखा है कि "दरिद्र मनुष्य का छोटा से छोटा भी मन्दिर बनवा

देना धनी मनुष्य के बड़े से भी बड़े देवालय बनवा देने से कम कीर्त्तिकर नहीं है"।

यह भी स्मरण रहे कि राष्ट्रीय धन के विचार से थोड़ी सी भी वस्तुओं पर का चिर-स्थायी अधिकार अधिक वस्तु विषयक क्षणिक अधिकार से अधिक अच्छा है। पांच शताब्दियों तक ठहरनेवाली वस्तुओं का बनानेवाला पचास वर्ष ठहरनेवाली वस्तु के बनानेवाले से कहीं अधिक जाति का काम कर सकता है। इसी भांति वह जुलाहा जिसका सच्चा काम वंशपरम्परा से चला आ रहा है अपने देश के लिए क्षणस्थायी काम करनेवाले से अधिक कुछ कर सकता है। अपनी इच्छाओं का बढ़ाना ही नहीं किन्तु जो कुछ हो उसे अच्छा बनाये रखना भी सभ्यता है।

अतएव भाइयो! आओ हम लोग कला से प्रेम इसलिए ही न करें कि इसके द्वारा हमें सुख समृद्धि प्राप्त होगी प्रत्युत इसलिए कि यह हमारा परम कर्त्तव्य है। यह वह द्वार है जिससे होकर हम परोक्ष से प्रत्यक्ष समय में आ सकते हैं, यह उन विचारों का मूल कारण तथा उस कल्पना का सार भाग है जिससे हमें एक राष्ट्र में होना है। यह कल्पना कम नहीं किन्तु पहले से अधिक बलवती और अधिक सुन्दर है और यह संसार की सभी जातियों को उदारता के साथ सौन्दर्य प्रदान करने-वाली है।

शनिग्रह।*

[अनुवादक—श्रीयुत चन्दीप्रसाद।]

"छायायाः गर्भसम्भूतं वन्दे भक्त्या शनैश्चरं।
नीलाञ्जन चय प्रख्यं रविसूनं महाग्रहं ॥१॥"

पुराणादि शास्त्रों में शनिग्रह सूर्य के पुत्र माने गये हैं। शनि की जन्मकथा पुराणों में जिस प्रकार लिखी है, हम पहिले वैसी ही लिखेंगे। प्रजापति विश्वकर्मा ने संज्ञा नाम की एक कन्या भगवान् सूर्यदेव को प्रदान की किन्तु यह कन्या सूर्यदेव का प्रचण्ड तेज सहने में अशक्त होकर पिता के घर चली गई। जाने के समय वह छाया नाम्नी कन्या स्वामी के घर रख गई। इसी छाया के गर्भ से शनि का जन्म हुआ। दूसरे मत से यह है कि प्रजापति विश्वकर्मा ने सूर्यदेव को तेज ह्रास करने की आज्ञा दी। सूर्यदेव के तेज कुछ प्रशमित करने पर उससे एक चक्र निर्मित हुआ—

"शातितं चास्य यत्तजस्तेन चक्रं विनिर्म्मितं ॥"

इस प्रकार शनि की उत्पत्ति हुई। रविसूत, छायापुत्र, मन्द, नीलवास, भास्करि, और वक्र प्रभृति शनि के नाम कथित हैं। सब ही के मत से शनि क्रूर ग्रह है; उनके दृष्टि करने से जीव का सर्वनाश हो जाता है। कहा गया है कि शनि की क्रूर दृष्टि उनकी पत्नी के शाप के प्रभाव से हो गई थी। इसीलिए शनि से सब देवता भय करते हैं। गणेश को देखा था, इसी-लिए उनका मस्तक उड़ गया था। भगवान

* बङ्गभाषा के सुप्रसिद्ध मासिक पत्र 'भारतवर्ष' में प्रकाशित बङ्गभाषा के सुलेखक श्रीयुत प्रादोरवर घट क के शनिग्रह लेख का अनुवाद।

नारायण ने शनिदेव की दृष्टि से बचने के लिए अनेक दिन गण्डकी नदी में छुप कर शालिग्राम शिला प्रस्तुत की थीं। शनि वार भी अच्छा नहीं है।

पूर्वकाल में शनिग्रह किस निमित्त इतना निन्दनीय हो गया था, सो स्थिर नहीं किया जा सकता। सब देशों में अति पुरातन काल से लोगों का यह विश्वास था (अब भी है) कि शनिग्रह ही से हमें कष्ट मिलता है। लोकव्यवहार में देखा जाता है कि शनिवार को कोई भी शुभकार्य अनुष्ठित नहीं होता है। यहूदी जाति के लोग शनिवार को कोई भी वैषयिक कर्म नहीं करते हैं। चासर (Chaucer) नामक प्राचीन अंग्रेज कवि अपने काव्य में शनि को देवता कल्पना कर उससे इस प्रकार कहलाता है :—

"यह सत्य है कि हमारा पथ बहुत दूर है, एवं हमें बहुत काल तक उसी पथ पर भ्रमण करना होता है, तथापि हमारी जो क्षमता है वह क्या किसी और की भी है? मैं ही जलवृष्टि कर समुद्र में तूफान पैदा करता हूं; मेरे ही प्रभाव से लोगों को उद्बन्धन अथवा फांसी होती है; मेरे ही कटाक्ष से सतत राजविद्रोह होता है; एवं सब प्रकार से प्रजा की हानि होती है; जितने हृदयविदारक क्रन्दन, जितने गुप्तविष प्रयोग, जितनी प्रतिहिंसा अथवा जितने दण्ड मेरे प्रभाव से होते हैं उतने और दूसरे ग्रह की दृष्टि से नहीं होते; प्रकाण्ड अट्टालिका भूमिसात होती है; बड़े बड़े दुर्ग विपक्ष के अधिकार में चले जाते हैं, सुदृढ़ प्राचीर गिर कर टूट जाती है—यह सब मेरे ही कर्म हैं। सर्दी, खांसी, बात एवं महामारी; हमारी दृष्टिमात्र से घटित होती हैं।"

जिस प्रकार हम अंग्रेज़ कवि को शनिग्रह के प्रभाव के सम्बन्ध में आलोचना करते हुए देखते हैं उसी प्रकार रूस के एक बड़े दर्शनतत्वविद् कवि को भी मानवावस्था के ऊपर शनिग्रह के अद्भुत प्रभाव के सम्बन्ध में उल्लेख करते हुए देखते हैं। उसने कहा है—"जहां शनिग्रह है वहीं दुर्दशा है।" शनि का नाम तक लेना महापाप है, यह उसकी धारणा है!

पृथ्वी की समस्त जातियाँ शनिग्रह को इस प्रकार अनिष्ट का मूल कहकर भय करती हैं। इसका कारण क्या है? यह गम्भीर रहस्य-भेद करने में हम असमर्थ हैं।

दूरवीक्षण (दूरवीन) यन्त्र द्वारा देखने से भी शनिग्रह इस सौर जगत के अन्यान्य ग्रहों से विभिन्न दिखाई देता है! इसके नौ चन्द्र हैं, एवं इस ग्रह के विषुवण के निकटवर्ती कुछ थोड़े से चक्र हैं। जितना ही इन चक्रों का व्यापार पर्यालोचित किया जाता है उतना ही वह विस्मयकर प्रतीत होता है। इस सौर जगत में जितने ग्रह हैं, बुध एवं शुक्र को छोड़कर और सब ग्रहों के एक व उससे अधिक चक्र हैं किन्तु शनिग्रह की तरह चक्र और किसी ग्रह में नहीं दिखाई देता है।

ज्योतिषिक दूरवीक्षण (Austronomical telescope) द्वारा देखने से यह चक्र दिखाई पड़ता है एवं इस चक्र में कुछ अंश सुवर्ण की तरह पीला और उज्ज्वल दिखाई पड़ता है। इस चक्र का कुछ अंश अर्द्धस्वच्छ और छायायुक्त है।

पृथ्वी से सूर्य का जितना दूरत्व है उससे साढ़े नौगुण दूर अर्थात् ८०८०००००० नब्बे करोड़ नब्बे लाख मील दूर पर शनि की कक्षा अवस्थित है। पृथ्वी से वृहस्पतिग्रह का जितना दूरत्व है उससे दुगनी दूर पर शनिग्रह अवस्थित है। इस पृथ्वी से हम सूर्य का जो आकार देखते हैं, शनिग्रह के उपरि भाग से देखने से सूर्य की आकृति उसके शतांश की एकांश मात्र अर्थात् पाय नक्षत्र की तरह सूर्य की आकृति

दिखाई पड़ती है। सूर्य के उत्ताप की भी उसी प्रकार कम होने की सम्भावना है।

दृष्टिविज्ञान एवं आलोक तत्व के नियमानुसार हम समझ सकते हैं, कि विप्रकृष्टत्व वशतः दूर की वस्तु छोटी दिखाई देती है, एवं इसी प्रकार उत्ताप भी कम हो जायगा। अतएव अङ्क शास्त्र और प्राकृतिक विज्ञान इस विषय में हमारा सहाय है। हम बातें अङ्कशास्त्र ही द्वारा जान सकते हैं। शनिग्रह सूर्य से दूरी पर अवस्थित है, इससे शनिग्रह के उपरिभाग पर से यदि सूर्य को कोई देखे, तो वह सूर्य को निश्चय ही नक्षत्र के बराबर क्षुद्र देखेगा। इस प्रमाण को अनुमान कहना होगा।

दूरवीक्षण द्वारा देखने से बहुत साफ दिखाई देता है कि शनिग्रह सूर्य की रश्मि द्वारा ज्योतिषमान है, कारण कि सब देशों से ज्योतिर्विदगणों ने लक्ष्य किया है कि शनिग्रह के ऊपरी भाग में चक्र की छाया पड़ती है। और किसी समय यह भी देखा जाता है कि ग्रह-पिण्ड की छाया चक्र के ऊपर पड़ती है। हमने जिस अवस्था में उसकी परीक्षा की थी, उस समय ग्रहपिण्ड की छाया चक्र के ऊपर दिखाई पड़ती थी।

इस समय स्वभावतः यह प्रश्न पाठकों के मन में उत्पन्न हो सकता है कि अङ्क शास्त्र एवं दृष्टिविज्ञान के मत से शनिग्रह से सूर्य की आकृति नक्षत्राकार दिखाई पड़ती है, यह अनुमान से भी सिद्ध है किन्तु दूरवीक्षण द्वारा चक्र की छाया ग्रहपिण्ड के ऊपर ग्रहपिण्ड की छाया चक्र के ऊपर जिस प्रकार साफ दिखाई पड़ती है, यदि प्रकृतपक्ष में सूर्य नक्षत्राकार होता तो उस नक्षत्राकार सूर्य की खल्पज्योति शनिग्रह के ऊपर इस प्रकार छायापात नहीं कर सकती। हमारी इस पृथ्वी से किसी नक्षत्र के आलोक पर इस प्रकार छायापात होते हुए नहीं दिखाई देता है। प्राकृतिक तत्वविद् पण्डितगण ने इस विषय को लेकर बहुत चिन्ता की है। नक्षत्राकार सूर्य किस प्रकार शनिग्रह पिण्ड और चक्र को इस प्रकार तीव्र आलोक द्वारा समुद्भासित करता है, यह वर्तमान काल में भी एक विषम वैज्ञानिक समस्या हो रही है।

स्वच्छ काच के खण्ड द्वारा जो लैन्स तैयार होता है, उसके द्वारा आलोक की गति कुञ्चित, प्रसारित, वर्द्धित, अथवा समान्तर की जा सकती है। दूरवीक्षण यन्त्र द्वारा हम बहुदूरस्थ ज्योतिष मण्डल को जो वर्द्धित आकार में देखते हैं वह केवल यन्त्रमध्यस्थित कुछ लैन्सों ही के कारण है। वायुमण्डल काँच की भी अपेक्षा परिष्कार और स्वच्छ है, सुतरां शनिग्रह का वायुमण्डल यदि लैन्स के आकार का ही गठित हो, तो नक्षत्राकार सूर्य शनिग्रह के उपरिभाग से आवश्यक मत वृहदाकार एवं तेजोमय दिखाई पड़ सकता है। विश्वदेव ने हमारे इस क्षुद्रादपि क्षुद्र देह के दृष्टि ज्ञान के लिए चक्षु के मध्य में भी कुछ जल के लैन्स कर दिये हैं। यह सब देखने से मालूम होता है, कि इस अनन्त विज्ञान के अनन्त वैज्ञानिक शिल्पी ने शनिग्रह के सूर्य से दूर अवस्थित होने के कारण उसके वायुमण्डल को लैन्स के आकार का ही बनाया है। *

शनिग्रह की कक्षा भी इलिप्स आकार की है। इस कक्षा के एक फोकस में सूर्य अवस्थित है। अपनी कक्षा में घूमने के समय शनिग्रह कभी सूर्य के पास आ जाता है और कभी

* यह लेखक का अनुमानमात्र है। अबतक किसी वैज्ञानिक ने यह बात नहीं कही है। शनिग्रह का चक्र समष्टि जिस कारण से शनिग्रह के मध्यभाग में अवस्थित है, तो शनिग्रह का वायुमण्डल निश्चय ही इस चक्रसमष्टि के ऊपर अवस्थित है सुतरां वह पार्थिव वायुमण्डल की तरह चक्राकार न होकर किसी प्रकार Concavo and convex लेन्साकार भी होना ही चाहिये।

अपेक्षाकृत दूर चला जाता है। निकट आने पर ८५८,०००,००० माईल, एवं दूरस्थ होने पर ९६०,०००,००० मील व्यवधान होता है। २९ वर्ष, ५ महीने, १७ दिन में शनिग्रह एक बार सूर्य को वेष्टन कर लेता है।

पृथ्वी से हम शनिग्रह को प्रथम श्रेणी के नक्षत्र की तरह समुज्ज्वल देखते हैं; सूर्य से बहुत दूर अवस्थित होते हुए भी शनिग्रह की उज्ज्वल प्रभा एक विस्मय का कारण है एवं इसीलिए उसका अवस्थान ज्योतिर्मय कहते हुए भी सन्देह हो सकता है; किन्तु दूरवीक्षण यन्त्र द्वारा देखने से मालूम होता है कि ग्रह का छाया चक्र के ऊपर पड़ती है और सूर्य के अवस्था के अनुसार किसी समय देखा जाता है कि चक्रसमष्टि की छाया ग्रह के ऊपर पड़ती है। शनिग्रह अथवा उसके चक्र के दीप्तमान होने से ऐसी छाया न दिखाई देती। सूर्य की ज्योति शनिग्रह के ऊपर से प्रतिभात होने के कारण वह ज्योतिष्मान दिखाई देता है। पृथ्वी की तरह शनि भी अपना मेरु अवलम्बन कर घूमता है, इसलिए उसमें भी दिवा रात्रि होती हैं। दश घंटा, २९ मिनट, १७ सेकन्ड के समय में वह अपना अङ्गावर्त्त समाप्त करता है, सुतरां दिवारात्रि का परिमाण ५ घंटा मात्र है।

इस ग्रह के उत्तर एवं दक्षिण के केन्द्र स्थान विशेष चपटे मालूम होते हैं। शनि के मध्यप्रदेश का व्यास एवं केन्द्र के स्थान का व्यास को तुलना करने से ६८३० मील का प्रभेद दिखाई देता है। इसके द्वारा मालूम होता है कि शनिग्रह के केन्द्र का चपटापन एक बटे तीन सौ मात्र है किन्तु शनिग्रह का केन्द्र-चाप एक बटे ग्यारह अंश है। शनिग्रह की केन्द्र स्थानीय परिधि २१४००० मील एवं विषुवत रेखा की परिधि २३६००० मील है। किन्तु उसके पदार्थ समष्टि का आणविक गुरुत्व पार्थिव पदार्थ समष्टि के गुरुत्व का अपेक्षा कम है। और क्या, वह जल की अपेक्षा भी कम है।

शनिग्रह के मध्यप्रदेश में मेखला की तरह छायायुक्त कुछ चिह्न दिखाई देते हैं, इन चिह्नों के स्थानविशेष का आवर्तन लक्ष्य करने से देखा जाता है कि ठीक १० घंटा, २९ मिनट और १७ सेकेन्ड में चिह्नित स्थान घूम आता है। इन्हीं लक्षणों के द्वारा ज्योतिर्विद पण्डित लोग शनिग्रह की आह्निक गति समझ सके हैं।

इस ग्रह की आकृति विशाल होते हुए भी मङ्गल, पृथ्वी, शुक्र अथवा बुध ग्रहों की अपेक्षा उसकी आह्निक गति का द्रुतवेग है। हमारी इस पृथ्वी का ३६५ दिन रात में वर्ष समाप्त होता है, शनिग्रह के २४,६३१ आवर्तन होने पर उसका एक वत्सर समाप्त होता है।

वृहस्पति ग्रह के मेरु एवं विषुव रेखा के परस्पर के समकोण में अवस्थित होने के कारण इस विशाल ग्रह के शीत और ग्रीष्मकाल के उत्ताप में बहुत अधिक पार्थक्य नहीं होता है शनिग्रह की विषुव रेखा के साथ मेरु का ६००$_0$′.१″.७२″ कोण दिखाई पड़ता है।

शनिग्रह की ग्रीष्म ऋतु पार्थिव सात वर्षों से कुछ अधिक की होती है। इसी परिमाण से शरद, शीत, एवं वसन्त ऋतु होते हैं। १५ वर्ष से (कुछ कम) के अन्तर उसकी दिवारात्रि समान होती है एवं १५ वर्ष के अन्तर ही उसका अयनान्त (Solotices) होता है। इन सब अपूर्व व्यापारों के साथ शनिग्रह की विशाल चक्र समष्टि, एवं कुछ चक्रों की बात सोचने पर किसी अपूर्व ज्योतिर्मयी शोभा का आभास पाया जाता है।

इस ग्रह के वार्षिक गति के अनुसार किसी समय उसका उत्तर केन्द्र और किसी समय उसका दक्षिण केन्द्र सूर्य द्वारा आलोकित होता है। इसीलिए उसका चक्र पृथ्वी से नाना

प्रकार का मालूम होता है । जिस समय सूर्य शनिग्रह की विषुवत रेखा के ऊपर होता है उसी समय पृथ्वी से उसका चक्र प्रायः नहीं दिखाई देता है। छोटी २ दूरबीनों से वह बिलकुल दिखाई नहीं देता है, खूब बृहदाकार यन्त्र से भी वह भली प्रकार नहीं मालूम पड़ता है, ग्रह के दो पार्श्व सूक्ष्म ज्योति रेखामात्र दिखाई देती हैं।

ग्यालिलीने भी जिस समय शनिग्रह के चक्र को देखा था तब वह सम्भवतः अयनान्त के समीपवर्ती था। इसके कई एक वर्ष बाद ग्यालिली भी अपनी क्षुद्राकृति की दूरबीन द्वारा शनि के चक्र को न देख सकने से विस्मयापन्न हुआ था। किन्तु बाद के ३० वर्षों के बीच ज्योतिर्विदगण विशेष यत्न एवं अध्यवसाय द्वारा शनिग्रह को देखकर चक्रविषयक सकल बातें स्थिर कर सके थे। हम क्रम से वे सब लिखेंगे।

मध्यमाकार की दुरबीन से देखने से भी चक्र के तीन विभाग लक्षित होते हैं। ग्रहपिण्ड से सर्वापेक्षा दूर पर जो चक्र है; उसका वर्ण कुछ मलीन बोध होता है, मध्य चक्र सर्वापेक्षा उज्ज्वल है एवं ग्रह का निकटस्थ चक्र सर्वापेक्षा मलीन और छायायुक्त दिखाई देता है। सर जान हारसेल ने इस कृष्ण वर्ण के चक्र के बीच में से शनिग्रह के कुछ चन्द्र देख कर स्थिर किया था कि सम्भवतः यह चक्र किसी स्वच्छ वस्तु का बना हुआ है।

इसके कुछ काल बाद एमेरिकन ज्योतिर्विद बंड ने अपनी बृहत दूरवीक्षण यन्त्र द्वारा शनिग्रह के निकटस्थ कृष्ण वर्ण के चक्र को देखा था। उसके बाद डूज नामक अंगरेज़ ज्योतिर्विद ने भी ६॥ इञ्च व्यास युक्त दूरबीन द्वारा इस अर्द्ध स्वच्छ चक्र को देखा था। इस चक्र के बीच में से भी शनिग्रह की पार्श्वरेखा (outline) साफ दिखाई पड़ती है।

शनिग्रह के यह काल वर्ण के चक्र एक २ कर के बढ़ते जाते हैं। जिस समय बंड एवं डूज नामक दो ज्योतिर्विदों ने वह देखा था तब वह खूब उत्कृष्ट दूरबीन द्वारा देखे बिना नहीं दिखाई पड़ता था। उत्कृष्ट यन्त्र से भी वह बहुत कष्ट करके दिखाई पड़ता था। इस समय वह ४ इञ्च व्यासयुक्त दूरबीन से भी दिखाई पड़ सकता है।

सर्वापेक्षा बाहर के चक्र का व्यास १७३,५०० मील, और उसका अभ्यन्तरस्थ व्यास १६३,५०० मील है सुतरां इसके चक्र का विस्तार १०,००० मील है। मध्यवर्ती चक्र का वहिर्व्यास १५०,००० मील, अभ्यन्तर व्यास ११३,१४० मील और विस्तार १८३०० मील है। इन दो चक्रों के मध्यस्थल में जो कृष्ण वर्ण की रेखा दिखाई पड़ती है वह दोनों चक्र का व्यवधान मात्र है, उसका विस्तार १७५० मील है। छायायुक्त चक्र मध्यम चक्र के साथ मिला हुआ है। इससे शनिग्रह पिण्ड का व्यवधान १०,१५० मील है सुतरां शेषोक्त चक्र का विस्तार ६००० मील है।

इस प्रकार विशालाकृति के तीन चक्र किस प्रकार समान होकर रहते हैं? पूर्व ही कहा है कि शनिग्रह द्रुत गति से अपना अक्षावर्त समाप्त करता है एवं प्रायः साढ़े २९ वर्ष में अपनी दूरवर्ती कक्षा में सूर्य को वेष्टन करता है। इन दो प्रकार की गति होते हुए भी चक्र विचलित अथवा स्थान भ्रष्ट नहीं होता है, यह अतीव विस्मयकर व्यापार है।

ग्यालिली ने भी सोचा था कि शनिग्रह के दो पार्श्व दो तारे हैं किन्तु वे तारे नहीं हैं। जिस समय इस ग्रह का विषुवण अर्थात् दिवारात्रि समान होती हैं उसी समय उसका चक्र पृथ्वी से रेखा की तरह दिखाई पड़ता है।

क्रमशः शनि अपनी कक्षा में घूमकर सूर्य से जितनी दूर जाता है उतना ही उसका चक्र

स्पष्ट दिखाई पड़ता है। १८५५ अब्द में (सात वर्ष बाद) चक्र सर्वापेक्षा विस्तृत देखा गया था।

इस समय के बाद से चक्र फिरता रहा है, फिर सात वर्ष बाद (१८६२ अब्द में) अदृश्य हो गया। १८६८ अब्द में चक्र दूसरी ओर से विस्तृत देख पड़ा यह १८५५ अब्द की विपरीत अवस्था थी।

पार्थिव हिसाब के २९ वर्ष, ५ मास, १७ दिन बाद शनिग्रह सूर्य को एक बार प्रदक्षिण करता है इसलिए १८१८ अब्द में इस ग्रह का चक्र १८४६ अब्द की तरह* ही देखा गया था।

सूर्य के चारो तरफ घूमने के समय दो बार सूर्य के साथ इसका समसूत्रपात होता है। इस कारण १४ बरस, ८ महीने, २३ दिन, १२ घंटे के अन्तर में यह चक्र हमारी पृथ्वी से रेखा की तरह दिखाई पड़ता है।

१९०१ अब्द में सेप्टेम्बर मास की २६ तारीख को यह चक्र अदृश्य (अर्थात् रेखामात्र) हो गया था। इस तारीख के बाद से चक्र क्रमशः बढ़ने लगा। १९१५ अब्द की ८वीं फरवरी को यह चक्र सर्वापेक्षा विस्तृत दिखाई पड़ेगा। १८५५ साल की तरह वह ग्रहपिण्ड की बांई ओर दिखाई देगा। १९१५ अब्द की दिसम्बर मास में शनिग्रह सूर्य की ठीक विपरीत अवस्था में (७वें स्थान) में आवेगा। अतएव उस समय रात्रि में शनिग्रह के चक्र को देखने में बड़ी सुविधा होगी।

चक्र समय समय पर रेखा की तरह का दिखाई पड़ता है उसका कारण यह है कि चक्र दल में बहुत छोटा होता है। सब चक्र का एकत्र व्यास १७३,५०० मील होते हुए भी वह दल में १०० मील से अधिक नहीं होता है।

* १८४६ अब्द की २२वीं नवम्बर को शनिग्रह का चक्र रेखा की तरह दिखाई दिया था।

यह पतले अथच बहुत वृहदाकार चक्र किस शक्तिबल से शनिग्रह को वेष्ठित किये रहते हैं? अधिकन्तु वह स्थानच्युत नहीं होते हैं, चूर्ण विचूर्ण होकर ग्रहपिण्ड के ऊपर नहीं पड़ते हैं, यह क्या अतीव विस्मयकर व्यापार नहीं है?

लापल्यास नामी फरासीसी वैज्ञानिक ने प्रथमतः इस विषय का अनुसन्धान किया था। वह अङ्कशास्त्र द्वारा जान सका था, कि इस प्रकार का पतला चक्र किसी प्रकार नहीं ठहर सकता है इसलिए उसने सिद्धान्त कर लिया था कि अनेक पृथक चक्र समकेन्द्रस्थ होकर (Concentric) पृथक २ भाव से शनिग्रह को वेष्ठन कर सकते हैं। लापल्यास ने यह भी कहा था कि इस चक्र का १० घंटे से कुछ अधिक समय में एक आवर्त होना आवश्यक है नहीं तो मूलग्रह के प्रचण्ड आकर्षण से वह चूर चूर हो जाय। लापल्यास ने अङ्कशास्त्र के द्वारा इन दो आवश्यक विषयों के विषय में सोचा था। परवर्ती ज्योतिर्विद्गण ने यह स्थिर किया कि यह दोनों अवस्थाएँ शनिग्रह के चक्र में विद्यमान थीं। अर्थात् यह चक्र १० घंटा ३२ मिनट में एक बार घूमता है एवं आजकल के वृहदाकार दूरबीन यन्त्र द्वारा असंदिग्ध रूप से यह भी प्रतिपन्न हो गया है कि एक केन्द्र को अवलम्बन कर बहुत से चक्र हैं।

किन्तु इनके सिवा और भी बातें हैं। लापल्यास ने जो स्थिर किया था उसमें भी अनेक विपत्ति घटित हो सकती हैं। इस प्रकार के कुछ चक्रों के मध्यस्थ प्रकाण्ड ग्रह के आकर्षण में रहकर घूमते रहने से थोड़े ही समय में चक्रों की गति विपर्यय हो सकती है एवं शीघ्र ही चक्रों के साथ मूलग्रह के साथ एक भयङ्कर संघर्ष होजाने की भी संभावना है। इस प्रकार के संघर्ष होने से चक्र एक बार ही टूट जायगा

साथ ही साथ वह मूलग्रह का भी यथेष्ट अनिष्ट कर देगा।

लापल्यास ने यहीं तक सोचा था। इसके बाद लगभग अर्द्ध शताब्दी तक उसकी इस बात पर किसी ने हड़ताल नहीं फेरी लापल्यास के ऊपर टिप्पणी करने की किसी को साहस नहीं हुआ और इसीलिए यह बात कुछ दिनों उसी तरह रह गई।

१८५० अब्द के नवम्बर मास में बंड नामक ज्योतिर्विद ने एमेरिका के हारवर्ड मान मन्दिर से पहिले पहिल देखा था कि अभ्यन्तरस्थ वैगन के रंग के चक्र में कुछ आलोक दिखाई पड़ता है। दूसरी रात को यह आलोक और भी साफ दिखाई दिया इसलिए उसने सोचा कि वह दूसरा छायामय अर्द्धस्वच्छ चक्र है। इसी साल २५ नवम्बर को इङ्गलैंड से डाराज नामक ज्योतिर्विद ने यह चक्र देखा था। उसके बाद पृथिवीस्थ अपरापर ज्योतिर्विदगण ने इसे देखा था। छायामय चक्र पहिले नहीं था, यह एक नूतन व्यापार है, इस प्रकार की धारणा अधिकांश वैज्ञानिकों की हो गई थी।

इसके बाद पियर्स और मेकसवेल नामक पण्डितों ने स्थिर किया था कि यह चक्र किसी कठिन व तरल पदार्थ से गठित है। यह भी स्थिर हुआ था कि यह चक्र क्रमशः वर्द्धित होता था।

सर्व प्रथम हाईचेनस (Huyghens) नामक ज्यातिर्विद ने नाप कर स्थिर किया था कि चक्र का विस्तार २३६,६७१ मील है। इसके बाद हार्सेल ने नाप कर देखा कि यह २६२९७ मील है। आजकल यह नापे से इतना २८३०० मील मालुम हुआ है। यह सब परिणाम स्वीकार करने से मालुम होता है कि प्रति वत्सर शनि के इस चक्र का आयतन २९ मील बढ़ता है।

शनि की यह चक्र समष्टि किस पदार्थ द्वारा निर्मित है? पहिले कहा है कि लापल्यास ने इसको कठिन पदार्थ का बना हुआ माना था एवं अनेक पतले २ चक्र एकत्र हैं ऐसा सिद्धान्त किया था। अङ्कशास्त्र के मत से यह चक्र कुछ काल तक अवस्थित रह सकते हैं किन्तु मूल-ग्रह की गति, आकर्षण, चक्र समष्टि की गति एवं परस्पर आकर्षण इत्यादि लेकर अवस्था ऐसी जटिल और विपज्जनक होगी कि अल्प-काल ही में इस चक्र समष्टि अथवा मूलग्रह के परस्पर संघर्ष में किसी समय एक प्रलय-काण्ड उपस्थित हो जायगा।

सब प्राकृतिक व्यापारों की पर्य्यालोचना करने से बोध होता है कि इस विश्व में इस प्रकार की दुर्घटना अति विरल है। महाकाल-प्रलय प्रभृति का शास्त्र में उल्लेख होते हुए भी वे कभी बहुत दिनों बाद होती हैं। किन्तु जिसमें प्रति मुहूर्त प्रलय की शङ्का करनी पड़े ऐसी सब अवस्थाएँ प्राकृतिक नियम के विरुद्ध हैं। यह सब विचार कर वैज्ञानिक पंडितों ने स्थिर किया है कि शनिग्रह की चक्र समष्टि किसी कठिन पदार्थ की निर्मित है।

बंड नामक ज्योतिर्विद ने अनुमान किया था कि अभ्यन्तरस्थ छायामय चक्र अथवा और सब चक्र किसी तरल पदार्थ के बने हैं। बंड ने सोचा था हम जिसे पथ्वी से चक्राकार देखते हैं हो न हो, वह बहु विस्तृत जल समुद्र चक्राकार में ग्रह को घरे हो। केवल यही नहीं, यह जलराशि क्रमशः ग्रहपिण्ड के निकटवर्ती होती जाती है। पीछे वैज्ञानिक पण्डित यह मत भी छोड़ने को बाध्य हुए थे।

चक्र कठिन पदार्थ भी नहीं है, तरल भी नहीं है, तब वह है क्या?—यह प्रश्न वैज्ञानिकों के हृदय में बहुत दिनों तक उदित था।

और एक अवस्था की विवेचना करना बाकी है—अर्थात् असंख्य छोटे २ खंड एकत्र होकर यह चक्रसमष्टि निर्मित हुई है। रात्रि-

काल में आकाश मण्डल में जो सकल उल्का-पिण्ड दृष्टिगोचर होते हैं, इसी प्रकार के असंख्य उल्कापिण्ड के एकत्र होने से इस चक्र की सृष्टि हुई है। अन्त में वैज्ञानिक पण्डितों ने यही सिद्धान्त निश्चित किया कि यह छोटे २ टुकड़े कठिन अथवा तरलाकार भी हो सकते हैं और वह सब खंड किसी प्रकार वाष्प द्वारा भी आच्छन्न हो सकते हैं। प्रत्येक टुकड़ा स्वाधीन भाव से अपनी गति में ग्रहपिण्ड को वेष्टन करता है। इस मत में कोई भी आपत्ति नहीं।

१८८६ अब्द में केम्ब्रिज विश्वविद्यालय ने इस विषय की मीमांसा करने के उद्देश्य से एक पुरस्कार प्रदत्त किया। क्लार्क मेक्सवेल नाम के वैज्ञानिक का लिखित प्रबन्ध ही सर्वश्रेष्ठ माना गया और उसे ही पुरस्कार मिला। उसने अङ्कशास्त्र द्वारा यह सुन्दर रूप से प्रतिपादित किया था कि पृथक् २ असंख्य खंडों के शनि-ग्रह के आकर्षण में अवस्थित होने से वे सब मिलकर यह चक्रसमष्टि गठित कर सकते हैं। वह सब टुकड़े जिस जगह पर खूब घने होते हैं उसी जगह पर सूर्य का आलोक प्रति-भात होकर अधिकतर समुज्ज्वल दिखाई देता है। जिस जगह यह टुकड़े नहीं हैं वह कृष्ण वर्ण का दिखाई देता है। और जिस स्थान में यह बहुत कम है वह धोर वर्ण का दिखाई देता है।

शनिग्रह के दोनो केन्द्र की अपेक्षा मध्य-प्रदेश में माध्याकर्षण शक्ति अधिक है इसीलिए वह टुकड़े ग्रह के मध्यस्थल ही चक्राकार हो अवस्थित हैं।

पूर्वकाल में ज्योतिर्विद् पंडितगण ने शनि ग्रह के आठ चन्द्र देखे थे। इन आठों चन्द्रों के नाम, शनिग्रह से उनका दूरत्व एवं उनके परिभ्रमणकाल की तालिका नीचे देते हैं।

चन्द्र का नाम	दूरत्व	परिभ्रमण			
	मील	दिन	घं०	मि०	से०
मिमास	११७,०००	०	२२	३७	५
एनसिलाडस	१५०,०००	१	८	५३	७
टेथिस	१८६,०००	१	२१	१८	२६
डायोन	२३८,०००	२	१७	४१	१०
हिया	३३२,०००	४	१२	२५	१२
टियन	७७१,०००	१५	२२	४१	२७
हाईपारियन	९३४,०००	२१	६	३८	२४
ईयापेटस	२२२५,०००	७९	७	५६	२३

१९०४ अब्द में प्रोफेसर ई० सी० पिकारिंग ने शनिग्रह के नवम चन्द्र का आविष्कार किया है। इस चन्द्र का नाम पड़ा है "फिवि" वह लगभग १॥ डेढ़ बरस में शनि के चारो तरफ एक बार घूमता है एवं उसका शनिग्रह से ८०००,००० अस्सी लाख मील दूरत्व है।

हमारे पार्थिव हिसाब के अनुकूल सूर्य्य शनिग्रह के उत्तर में १५ वर्ष रहता है सुतरां शनिग्रह के केन्द्र स्थान की दिवारात्रि का परिणाम भी इसी प्रकार है। जिस समय शनि-ग्रह के उत्तर केन्द्र में १५ वर्ष का दिन होता है उसी समय उसके दक्षिण केन्द्र में १५ वर्ष की रात होती है परवर्ती १५ वर्ष की उत्तर केन्द्र में रात्रि एवं दक्षिण केन्द्र में १५ वर्ष का दिन हो जाता है।

इसमें सन्देह नहीं कि शनिग्रह का वायु-मण्डल बहुत घना है। उसके चक्र के निकट गुहाङ्ग में जो मेखला की तरह कुछ चिह्न दिखाई पड़ते हैं वह निश्चय ही मेघमाला है। इन सब मेघों के ऊपर सूर्य किरण उच्छ्रित होने ही से यह सब समुज्ज्वल मेखला की तरह दिखाई पड़ते हैं।

हमने जो शनिराह का विवरण दिया पृथ्वी के प्रधान २ ज्योतिर्विद् उसे प्रमाण करते हैं।

अब हम इस तत्व की फिर आलोचना करेंगे। शनिग्रह में वर्तमानकाल में जो अवस्था है उसमें वहां पर समुद्र का अवस्थान सम्भव नहीं है। इस ग्रह का समस्त जल मेघाकार हो आकाश-मण्डल में भासमान है एवं इस ग्रह की अब भी तरुण अवस्था है। सब वैज्ञानिकों का यही मत है कि अब भी पिण्ड अग्निवत लोहितवर्ण का है। अतएव इस विशाल ग्रह में वृक्ष, लता, तृण, अथवा कोई और प्रकार की जीवोत्पत्ति अभी नहीं हुई है। यह पृथ्वी जब शीतल हो जावेगी एवं चन्द्र की तरह जल और वायु-शून्य होकर जीवनहीन हो जावेगी, उस समय, हो न हो, शनिग्रह जीवों के वासोपयोगी होवेगा।

शनिग्रह के पदार्थ समष्टि का आपेक्षिक गुरुत्वप्राय जल के बराबर है। इसलिए कोई कोई वैज्ञानिक अनुमान करते हैं कि पृथ्वी से हम शनिग्रह का जो आकार नाप कर देखते हैं वह निश्चय ही उसकी मेघमाला के समेत है। असल ग्रहपिण्ड के दृश्यमान मेघ समेत आकृति की अपेक्षा बहुत छोटी होने की सम्भावना है। इस कारण से उसका गुरुत्व कुछ कम दिखाई पड़ता है। बोध होता है कि पार्थिव हिसाब के अनुकूल बहुत युगयुगान्त काल अतीत होने पर शनिग्रह के ऊपर के भाग में समुद्र अवस्थान करेगा। उस समय वह भी पृथ्वी की तरह नाना प्रकार के के जीवों की आवास स्थान होगा; वैदिक महर्षिगण ने ब्रह्माण्ड की अवस्था सोच कर विस्मयोत्फुल्ल नयन हो कहा है कि अद्धा वेद?—अर्थात् कौन कह सकता है? हम भी इससे अधिक कुछ नहीं कह सकते। विश्व अनन्त है, और मनुष्य के ज्ञान और बुद्धि की सीमा है। इसीलिए हम जितना ही ज्ञान लाभ करते हैं, उतना ही हम ब्रह्माण्ड की कार्य-प्रणाली की अपार महिमा देखते हैं, एवं हम मनुष्य कितने तुच्छ हैं यह सोच कर हताश हो जाते हैं।

युद्धक्षेत्र की सैर। *

बहिनो!

उस दिन की सैर अभी आप भूली न होंगी। उस दिन आपने कोई बड़ी लड़ाई नहीं देखी थी। मैदान में पहुंचते ही अड्डों की खुदाई हम लोग देखकर लौट आई थीं। अनन्तर कुछ युद्ध भी हुआ था किन्तु वास्तव में वह जिसे युद्ध कहना चाहिये वह न था। बहुत सी बहिनों को उस दिन यह शिकायत थी कि उन लोगों ने युद्ध नहीं देखा। उनकी यह शिकायत ठीक थी किन्तु इसका भी कुछ कारण था।

मैं जान बूझकर आप लोगों को ऐसे स्थान पर ले गई थी जहां पर आपको भीषण युद्ध न दिखाई दे। सिंह का शिकार देखनेवालों को जिन्होंने पहिले कभी सिंह का शिकार देखा नहीं है सिंह का शिकार नहीं दिखाया जाता क्योंकि सम्भव है कि नया देखनेवाला सिंह का गर्जना सुनकर, उसका तड़पना देखकर, डर जाय, मचान से नीचे गिरपड़े, बेहोश हो जाय अस्तु इसी कारण से नये शौक़ीनों को पहिले शूकर आदि का शिकार दिखाया जाता है। जब वे एक दो बार देखते देखते अभ्यस्त हो जाते हैं, जब उनका कलेजा पोढ़ा हो जाता है तब

* यह लेख विशेषकर "स्त्री दर्पण" के लिए लिखा गया था।

फिर उन्हें शिकारी लोग सिंह का शिकार दिखाने ले जाते हैं।

इसी नीति के अनुसार उस दिन मैंने आपको भीषण युद्ध नहीं दिखाया। आपने यह नहीं देखा कि युद्धक्षेत्र में सेना समुद्र की लहरों की भांति कैसे हिलती डोलती है, आपने यह नहीं देखा कि शत्रुओं के सामने आने पर पूर्णिमा के चन्द्रमा को देखती हुई, मतवाली समुद्र की लहरों की भांति सेना कैसे उतावली हो गुथ जाने को बढ़ती है। रक्त रूपी फेन इधर उधर उड़ते कैसे दिखाई देते हैं। आपने यह भी नहीं देखा था कि जो शरीर कुछ ही देर पहिले हँस बोल रहा था, जिसमें सब कुछ कहने और करने की शक्ति थी, वह खड़े ही खड़े एक शब्द के होने ही कैसे उलट जाता है। संज्ञाहीन मुंह से रक्त टपकते हुए सवार को लिये हुए घोड़ों का पागल की भांति इधर उधर दौड़ना और फिर गोली लगने से वहीं ढेर होकर गिर जाना यह सब आपने नहीं देखा था। साथ ही इनसे कितनी ही अधिक भीषण बातों को आप लोगों ने नहीं देखा था। धीरे धीरे इन सब बातों को मुझे दिखाना है।

अच्छा तो आइये! आज फिर चलने का कष्ट उठाइये। बालबच्चों को घर ही पर रहने दीजिये। समझ लीजिये महिला-समिति के अधिवेशन में चल रही हैं। बड़े लेक्चरारों की भांति मैं यह कहना उचित नहीं समझती कि मैं आपका बहुत सा समय नहीं लूंगी। मैं पहिले से ही सावधान किये देती हूं। समय आपको बहुत देना होगा संभव है कहीं युद्ध-क्षेत्र में खड़े ही खड़े कई दिन बीत जायँ। इसलिए कहती हूं ज़रा दिल को मज़बूत कर लीजिये। बुद्धि, विवेक, धीरता और वीरता को साथ लेकर चलिये, देखिये आज की सैर कैसी है?

* * * * *

लीजिये हम लोग पहुंच गए। यह स्थान भी देखा हुआ सा मालूम होता है किन्तु कुछ ठीक तौर से इस समय हम लोग इसे पहचान नहीं पा रहे हैं। देखिये यह एक आदमी इसी तरफ़ आता दिखाई दे रहा है। इससे पता चल जायगा। अरे, यह तो हमीं लोगों के पास आता हुआ मालूम देता है।

आइये तब तक हम लोग इस जगह पर बैठ कर कुछ जलपान करलें। बहुत दूर चल चुके हैं। कुछ आराम ही मिल जायगा, साथ ही पेट में भी कुछ पहुंच जायगा।

अभी हम लोग खा ही रहे थे कि लीजिये वह मनुष्य आ गया. अरे यह तो कोई भूखा सा मालूम पड़ रहा है। यह तो एक दम हम लोगों के खाने पर टूट पड़ा, और भोजन उठा कर भागा चाहता है। किन्तु सूरत से यह भला आदमी मालूम होता है। देखिये, इसका कारण इससे पूंछती हूं। "सुनती थी पश्चिमीय मर्द बड़े नियम से चलनेवाले होते हैं। कम से कम दुनियाँ की दृष्टि में वे स्त्रियों का बड़ा मान करते हैं, इसके विपरीत तुम्हारा यह कर्त्तव्य कैसा है? या क्या स्त्रियों पर डाका डालना तुम्हारा काम है?" यह क्या? इस प्रश्न को सुन कर तो यह रोने लगा। अब देखिये यह कुछ कहता है। "मैं बड़ा भूखा हूं, पेट की ज्वाला से शरीर जल रहा है। मैं चोर नहीं, डाकू नहीं, एक भला आदमी हूं। मेरे शरीर में भी आप लोगों के सदृश ही रक्त बह रहा है, किन्तु लाचार होकर मैं असद्व्यवहार करने पर उतारू हुआ था।" मेरे यह कहने पर कि "अच्छा, बैठ कर भोजन कर लो," उसने कहा "नहीं घर पर भूख से हमारी जननी के प्राण निकल रहे हैं पहिले उसे अन्न पहुंचा कर ही मैं अपने उदर में कुछ डाल सकता हूं।"

भोजन मिल जाने पर बहुत धन्यवाद दे वह जाने को तैयार हुआ; और कहने लगा

"आप लोग बैठी रहें, मैं अभी वापस आता हूं और आप लोगों की सेवा करूंगा।" यह अच्छा ही हुआ, यह यहां का रहनेवाला है, इसके साथ घूम कर हम लोग बहुत सी बातों को देख सकेंगी।

लीजिये हम लोग भोजन कर बैठी ही हैं कि वह आ गया। अब इससे पूछना चाहिये कि हम लोग कहां हैं, यह स्थान कौन सा है, और उसकी यह उज़ाड़ दशा कैसी है। देखिये वह उत्तर में कहता है—"यह बेलजियम की राजधानी ब्रूसल्स है। थोड़े दिनों से इसपर जर्मनों ने कब्ज़ा कर लिया है। अब यह भिखमङ्गों का शहर हो गया है। निवासियों के पास किसी प्रकार का सामान बाक़ी नहीं है। रोज़गार भी अब सिवा भीख मांगने के और कोई नहीं रहा है। अब हम लोग आगन्तुकों से कुछ मांग कर पेट पालते हैं। दिन रात योंहीं कार चलता है।

कहीं भी अपनी हँसी खुशी का सामान नहीं, थियेटर सब बन्द हैं, होटल सब बन्द हैं। बड़ी खराब दशा हो रही है।

हम लोग मित्रदल की सहायता की बाट बड़ी उत्सुकता से निहार रहे थे किन्तु उनका कहीं पता न था। एक ओर यह दशा थी दूसरी ओर रोज़ ही जर्मनों के पास पहुंचते जाने की खबर दिल को दहलाये देती थी। मित्रदल की सहायता कोरी बातों की रह गई, अगणित जर्मन सेना के सामने थोड़े से वीर बेलजियम कुछ न कर सके, और आज हम लोगों की यह दशा है। जर्मन सेना अब पेरिस की ओर बड़े वेग से बढ़ी जा रही है। इतना कह उसने निगाह नीची कर ली, आँखें डबाडब भर आईं और उनमें से मुक्ता के समान आंसू झरने लगे। उसकी दशा देख कलेजा दहल गया। अच्छा अब बहुत स्वस्थ हो लिये, आइये अब कुछ चल कर देखें। देखिये यह हम लोगों का पथ-प्रदर्शक कह रहा है कि कल बृहस्पतिवार को ऐन्टवर्प से विजयी जर्मन सेना दक्षिण की ओर गई है। वानबूलों की सेना बाम अङ्ग में है और वह साम्ब्रे की ओर बढ़ी है दाहिनी ओर से वान क्लुक की सेना मार्न की ओर बढ़ रही है और घोड़सवारों (शह सवारों) की सेना है। ये सब ब्रिटिश सेना का चेनल की ओर से नई आई हुई सेनाओं से सम्बन्ध तोड़ देने के लिये बढ़ रही है। इतनी बड़ी बड़ी तोपें जो लीज़ के क़िले को तोड़ फोड़ चुकी हैं, इस समय आगे हैं। हम आपको इसी जर्मन सेना की ओर लिये चल रहे हैं।

वह देखिये फ़रासीसी घोड़सवार भी साम्ब्रे के उस पार पड़े हुए हैं। इनकी छुट्टा लड़ाई या जर्मन उलहान और ड्रेगरन सवारों से हुई थी। विजय श्री भी इनके हाथों आती दिखाई देती थी। किन्तु जर्मन सेना के पास प्रति घंटे सहायक सेना पहुंचती जाती थी। आख़िर में विवश हो इन लोगों को नदी के पास की ओर हट जाना पड़ा। अब यहां पर दोनों ओर की सेनाएं एकत्र हो रही हैं, दोनों तरफ खूब तैयारियां हो रही हैं, शीघ्र ही यहीं कहीं पर भीषण युद्ध आरम्भ होगा। यदि आप लोगों को युद्ध देखना है तो यहीं ठहर जाइये, संध्या भी हो रही है, आगे हम लोग जाने भी न पावेंगे। अब रात्रि में यहीं विश्राम करिये, कल रणक्षेत्र का दृश्य देखियेगा।

* * * * *

प्रातःकाल होगया। चलिये आज कहीं न कहीं भीषण युद्ध दिखाई देगा। ये बादल जो इतने ज़ोर शोर से उमड़े हुए हैं बिना बरसे न जायँगे।

लीजिये हम लोग रणक्षेत्र में पहुंच गये। यह देखिये इस ओर मित्रदल की सेना ही खड़ी हुई है।

यह बृटिश सेनानायक कहता है कि फ्रेंच सेना शार्लिरोइ (Charleroi) में पड़ी हुई थी।

वहीं पर बृटिश सेना भी पहुँच गई। सर जान फ्रेंच के पास ७००००० सैनिक और २८० तोपें थीं। बानक्लुक की जर्मन सेना भी सामने मैदान में थी। सेना के सफ़रमैना (Advanced Guards, Patrols) में भी कहीं कहीं मुठभेड़ होगई। दिन भर पैदल सेना और गोलन्दाज़ों ने योंहीं कुछ काम किया। वे तोपों के लिए आन बना रहे थे। यह ख़बर मिल चुकी थी। एक बड़ी भारी जर्मन सेना आरही है। यह तय हो चुका था कि ब्रिटिश और जर्मन सेना धावा नहीं वरन् रक्षा कर लड़ेंगी। संध्या समय दक्षिण की ओर से दूर से गड़रररडम की ध्वनि सुनाई देने लगी। कुछ लोगों का यह ख्याल था कि नामूर के क़िले पर जर्मन की तोप गरज रहीं हैं, किन्तु वास्तव में ध्वनि साम्ब्रे (Sambre) के युद्ध से आरही थी। वान बूलो की सेना फ्रेंच सेना को ध्वंस कर रही थी। शार्लिरोई पर भी भीषण युद्ध हुआ। दिन में ५ बार विजय का पासा कभी फ्रेंचों का कभी जर्मनों का पड़ा। कभी उस पर फ्रेंचों का और कभी जर्मनों का क़ब्ज़ा हो जाता था। आख़ीर में क्रप की तोपों ने आग उगलना शुरू किया. शहसवार शहसवारों से जुट गये, पैदल पैदल से भिड़े, तलवारें चमकने लगीं, दो बार फ्रेंच सैनिकों ने जर्मनों को पीछे हटा दिया, मालूम हुआ कि विजय फ्रेंच सेना की होगी। किन्तु परिणाम बिल्कुल विपरीत हुआ। जर्मन पीछे हटते ही और तेज़ी से आगे बढ़ते थे और संध्या होते होते उन लोगों ने शार्लिरोई पर क़ब्ज़ा कर लिया। यह एक नाममात्र का युद्ध था, वास्तव में फ्रेंच सेना के दाहिने भाग पर जर्मनों ने बड़ी भारी विजय प्राप्त की। वे सामने की ओर घुस गये। इसका फल यह हुआ कि मित्रदल की सेना नामूर से अलग हो गई। और दूसरे ही दिन नामूर के क़िले ने आत्म समर्पण कर दिया। फ्रेंच सेनानायक ने हम लोगों को इस युद्ध की ख़बर नहीं दी। हमारे अफ़सरों को यह विदित नहीं था कि जर्मन सेना ने विजय लाभ की है और वह विजय से मस्त हमारी ओर बढ़ी आ रही है। अभी वायुयानों और स्काउटों ने ख़बर दी है कि जर्मन सेना कम से कम संख्या में हमारी सेना से दुगनी है। अब कुछ ही समय बाद सम्भव है भीषण युद्ध होगा।

* * * * *

अफ़सर से बात कह कर हम लोग आकर सेना से दूर एक पेड़ के नीचे बैठ गये। सेना में बड़ी चहल पहल दिखाई देती थी। समय तीन का रहा होगा। एक दम गरररडम, गररररडम, की आवाज़ से पृथ्वी कांपने लगी। मालूम हुआ कि जर्मन सेना ब्रिटिश सेना पर बेतहाशा टूट पड़ी। घोड़सवार स्काउटों ने ख़बर दी कि जर्मन सेना आगे की ओर मैदान में दावती चली आ रही है। इसी समय जर्मन गोलन्दाजों ने अग्निवर्षा शुरू की। देखिये वह पैदल सेना गोलो चलाती हुई कितनी भीषणता से बढ़ती आ रही है। मालुम होता है वे समझते हैं कि जीवन कोई चीज़ ही नहीं और उस की ममता उन्हें है ही नहीं। देखिये देखिये ब्रिटिश सेना ने भी यह जवाब देना शुरू किया। खड्डों से ब्रिटिश सैनिक गोलो चला रहे हैं। उधर देखिये उस टीले से ब्रिटिश तोपें कैसी विकरालता से आग उगल रही हैं। प्रायः २५ मील का यह फ्रन्ट है, सभी जगह से आग बरसाई जा रही है। तोपों की ध्वनि के कारण कान के परदे फटे जा रहे हैं। अरे वह देखिये उस टोले पर क्या हुआ। कुछ ही देर पहिले वहां पर कितने ब्रिटिश गोलन्दाज़ थे किन्तु अब वहां पर लोथही लोथ दिखाई दे रही हैं। किन्तु यह क्या! गोलन्दाज़ी अब भी कैसी जारी है! अरे! अरे! वह देखिये वह लोगों में एक सैनिक है। उसके पैर कट गये हैं। किन्तु तब भी वह अपना कर्तव्य पालन करता ही

मि० मैटेनिया ने ब्रिटिश युद्धक्षेत्र से लौटने के बाद ६० नं० की पहाड़ी पर या उसके आसपास जो युद्ध हुआ उसका पहिले पहिल ऊपर दिया हुआ चित्र लिया। सिपाहियों को आगे बढ़ने का हुक्म दिया गया है और वे खाई में से निकलकर आक्रमण कर रहे हैं। कुछ सिपाही मट्टी के दर्जनों बोरों में मट्टी ले जा रहे हैं कि जर्मनों से छीनी हुई खाई को बनावें।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

जाता है। वह देखिये लोथों पर बैठा हुआ वह तोपों को कैसे छोड़ रहा है। लीजिये वह जर्मन गोला उसी पर आकर गिरा, और उसका भी अन्त हो गया।

यह देखिये यह गोली चलाते हुए सैनिकों पर यह गिद्ध कैसे घुमड़ा रहे हैं। मालूम होता है इन्हें गोलियों का भय ही नहीं और ये ज़िन्दा ही सैनिकों को उठा ले जावगे। इन पर सैनिक रह रह कर गोलियां भी चला देते हैं। किन्तु वे भागते भी नहीं। अरे वे तो और भी नीचे आ गये, अब तो ये बिलकुल सैनिकों के सिर पर ही उड़ रहे हैं। ये तो कुछ गिराते भी नज़र आते हैं। क्या कबूतरों की भांति गिद्ध भी यहां पर सिखलाये हुए होते हैं। नहीं नहीं यह नहीं हो सकता आगे चल कर इसका मर्म किसी से पूंछना चाहिये। आप लोग यहीं ठहरी रहें मैं उस अफ़सर से पूंछ कर अभी आती हूं।

सुनिये वह कहता है कि ये गिद्ध नहीं ये जर्मन वायुयान हैं। ये ऊपर से बम के गोले गिराते हैं किन्तु इन गोलों में धड़ाका नहीं होता, न इनसे किसी की जान लो जाती है। ये अजीब गोले हैं। गिरते ही इनसे काला धुआं चारों ओर फैल जाता है। फल यह होता है कि धुआं फैलने से अन्धकार हो जाता है। उस समय गोलों के चलने से यह पता चल जाता है कि गोलन्दाज़ किस स्थान पर है। बस फिर उन पर ऊपर से बम गिराये जाने लगते हैं। ऊपर से वे अपने गोलन्दाज़ों को इशारा कर यह भी बतलाते हैं कि वे गोले किस ओर छोड़ें।

वह देखिये जर्मन पदल सेना किस तैश से बढ़ आई है। लीजिए ब्रिटिश सैनिक भी वहां उन पर टूट पड़े। कैसा घमासान युद्ध हो रहा है। वह देखिये जर्मन सेना पीछे हट रही है। ब्रिटिश सैनिक, आहा, जान को हथेली पर रख कर कैसे टूट पड़े हैं। वह देखिये एक सैनिक गिर पड़ा। उसका ब्रिटिश साथी उसे पीठ पर लादे ले जा रहा है। हैं वह तो पीठ पर सवार ही सवार गोली दागता जाता है। वाह रे वीर, आख़िर हो तो हमारे स्वदेशी भाई ही।

देखिये, देखिये वह जर्मन सेना उस जङ्गल पर टूट पड़ी है। वह क्या वह तो एक दम नष्ट हो गई। जर्मनों ने समझा था कि उनकी गोलन्दाज़ी के कारण जङ्गल की तोपें नष्ट हो गई हैं, किन्तु बात वैसी नहीं थी। गोलन्दाज़ चुपों चाप रह गये थे, अवसर आते ही उन्होंने बाढ़ दागी और जर्मन सेना वहीं पर डलट गई। किन्तु देखिये, इससे जर्मन हताश नहीं हुए हैं। पीछे से सैनिक फिर आगे बढ़ते चले आते हैं। लीजिये अब की बार उन्होंने जङ्गल पर कब्ज़ा जमा लिया।

जर्मन सेना चारों ओर भर रही है। सम्हल कर देखिये लड़ना वह जानती ही नहीं। बलती आग में कूदना ही उन्होंने लड़ना समझ लिया है। इस समय जर्मन सेना प्रायः १५०००० सैनिक हैं, इसके विपरीत ब्रिटिश सेना में हद से हद ८००००० हैं। देखिये वह वान क्लूक की सेना बढ़ती आरही है। पूर्व की ओर से वह देखिये वान पूलो के सैनिक भी आ पहुंचे। ब्रिटिश सैनिक भी जानतोड़ कर लड़ने लगे। वह देखिये वह घोड़ा कैसा भागा जा रहा है। जिधर जाता है उसे गोली की दायँ, दायँ, सुनाई देती हैं। किसी ओर निकल भागने का उसे मौक़ा ही नहीं मिलता अरे उस पर तो एक सवार भी है। हाय, हाय, उसके मुंह से कैसा रक्त बह रहा है। लीजिये उस सैनिक को कुचलता हुआ वह घोड़ा भागा जाता है। अरे वह सैनिक प्यासा है। देखिये वह पानी के लिए कैसा चीत्कार मचा रहा है। अरे यह तो सैनिकों का ढेर सा लगा जा रहा है। संध्या भी हो रही है। किन्तु लड़ाई वैसे ही जारी

है। मालुम ही नहीं होता कि इसका कभी अन्त होगा।

हैं, यह क्या? वह ब्रिटिश सेना दक्षिण भाग की ओर कैसे दबती जा रही है। मालूम होता है अब यह पीछे खिसक कर विश्राम करेगी। अब तो अंधेरा भी हो गया और लड़ाई भी हलकी होती जाती है। देखिये देखिये वह जर्मन सेना और आगे बढ़ आई। ब्रिटिश आहत सैनिकों को उठाकर वह अस्पताल में भेज रही है। ब्रिटिश तोपों को भी उसने हस्तगत कर लिया है और मालूम होता है अब वह भी पड़ाव डालेगी। चलिये हम सब भी बहुत देर से आई हुई हैं। घर चलें और बाल बच्चों को इस भीषण युद्ध का हाल सुनावें।

आपकी
उमा नेहरू।

आदर्श-पुरुष।

[लेखक—श्रीयुत प्रेमदास वैष्णव।]

इन प्राचीन महा-पुरुषों को
बार बार अभिवादन कर।
सब प्रकार से हैं हम देते
धन्यवाद! शतशः सादर॥
इन आदर्श-दिव्य-पुरुषों के
सुन सुनकर अनुकरण सभी।
पाते हैं शिक्षा उत्तम जिसका
न अन्य को ज्ञान कभी॥ १॥
सत्वर अन्य-प्राण-रक्षा के
हेतु हृदय-प्रमुदित होकर।
शिवि राजा ने निज शरीर का
मांस समस्त दिया प्रियवर॥
निज तनु के सम्पूर्ण अस्थि
देवों के हाय! मांगने पर।
दे डाले नृपवर दधीच ने
पर उपकार बृहत लखकर॥ २॥
वामन ने बलि को वंचन कर
दृढ़ बंधन में बाँध दिया।
तौ भी वह प्रतिकूल न होकर
निज तन तकको दान दिया॥
बचने को निज सत्य डोमघर
हरिश्चन्द्र नृप जाय बिके।
स्वयं बेंचकर सुत रानी को
हैं प्रख्यात नाम उनके॥ ३॥
लोक्य हेतु सम्पूर्ण-प्रजा के
कैसे कैसे कार्य महान।
पृथु नृप ने थे किये आज भी
कविजन करते हैं गुणगान॥
राम समान पुत्र को भी वन
दिया शीघ्र होकर दृढ़-हीय।
स्वयं प्राण भी तजा भूप
दशरथ ने पर पाला प्रण-खोय॥ ४॥
तज राज्याभिषेक पितु आज्ञा
से होकर प्रमुदित मन में।
चले गये श्रीराम अहो!
अतिशय दुर्गम निर्जन वन में॥
राज मिला था बिन प्रयास पर
उसको तत्क्षण छोड़ दिया।
उत्तम-भ्रातृ-स्नेह भरत ने
भू-मंडल में प्रकट किया॥ ५॥
अति सुकुमारी जनकपुत्रिका
पांव पयादे ही प्रियवर।
पतिसेवा हित चली गई
वन दुस्तर में हर्षित होकर॥

जिसने निर्वासित निज सुत को
किया उसीके प्रिय-सुत को ।
माना कौशल्या निज सुत से
बढ़कर धन्यवाद उसको ॥ ६ ॥

लक्ष्मण भी तज आत्म-सौख्य
निज बंधु-भक्ति अनुपम प्यारे !
किये सज्जनों में प्रस्तुत
गाते हैं यश बुध जन सारे ॥
हनूमान ने स्वामिकार्य के
हेतु महासागर तर कर ।
रिपुपुर में निर्भीक हो किया
कार्य समस्त उचित दृढ़तर ॥ ७ ॥

पितु के कार्य सिद्ध करने को
जा निषाद के निकट तुरंत ।
लिया भीष्म ने ब्रह्मचर्य-व्रत
अति कठोर सब भांति दुरंत ॥
जान पांडवों ने जननी-
आज्ञा-उच्छेदन दुखदाई ।
ब्याह लिया द्रुत एक द्रौपदी
को सहर्ष पाँचो भाई ॥ ८ ॥

मोरध्वज प्रमुदित हो आरे
से निज तनु को चिरा दिया ।
पर हा हा ! उन किसी भाँति
का वैमनस्य द्विज से न किया ॥
जगत्पिता होकर के भी
श्रीकृष्णचन्द्र ने अति सत्वर ।
धोया विप्र सुदामा के पद
निजकर-कमलों से सादर ॥ ९ ॥

इन सब सुकृतों के बदले पाये
वे हर्ष, सौख्य, कल्याण ।
अक्षय कीर्त्ति छई है उनकी
अभिनवसी सम्पूर्ण-जहान ॥
उत्तम शुचि वृक्षों के उत्तम
फल होते हैं है यह रीति ।
इससे हे पाठको ! सदा करिये
स्वधर्म ही पर दृढ़ प्रीति ॥१०॥

विज्ञप्ति ।

स्त्रियों की विशेष संख्या

जुलाई मास के प्रथम सप्ताह में ७ तारीख को प्रकाशित होगी । लेख चुटीले, पठनीय और मनन करने योग्य हैं। स्त्री पुरुष के संबन्ध के विषय में कितनी ही बड़े मार्के की बातें कही गई हैं। आवरण पृष्ठ पर एक बहुत ही सुन्दर ब्रह्मचारी के हाथ में खड्ग देते हुए भारतमाता का चित्र है । और भी अनेक रङ्गीन मन हरने-वाले चित्र हैं।

विषय-सूची इस प्रकार हैं ।

(१) देवियों का विवाद (कविता)–पं० माधव शुक्ल ।

(२) स्नेहलता–श्रीमती जुमेला खातून ।

स्नेहलता के संबन्ध में ऐसा लेख अभी तक किसी भी, क्या अङ्गरेजी, बङ्गला, मराठी या हिन्दी के पत्र या पत्रिकाओं में नहीं निकला । एक २ शब्द मनन करने के योग्य हैं ।

(३) भारत की राष्ट्रीय उन्नति तथा स्त्री जाति–एक विनीत देशभक्त ।

यह लेख एक प्रसिद्ध देशभक्त का लिखा हुआ है। बातें साफ साफ बिना संकोच कही गई हैं। स्त्रियों को अधिकार देने के विरोधियों को इस लेख को पढ़कर बहुत सी बातें मालूम होंगी ।

(४) अभिमन्यु और सुभद्रा (कविता)-ठाकुर किशोर सिंह।

(५) स्त्रियां और राष्ट्र-पं० माधवराव सप्रे बी० ए०

लेख में क्या है सो शीर्षक से ही प्रगट है। लेखक भी हिन्दीसंसार के एक जगमगाते नक्षत्र हैं। इसीसे लेख का अनुमान पाठक कर सकते हैं।

(६) शिशु-पालन-श्रीमती किशनमोहिनी नेहरू।

इस लेख को पढ़ कर माताएं अच्छी शिक्षा ग्रहण करेंगी।

(७) हिन्दू धर्म में स्त्रियों का स्थान-श्रीमती कुन्ती देवी।

इस लेख में यह दिखलाया गया है कि स्त्रियों को आदर और स्वतंत्रता हिन्दू धर्म में सब से अधिक प्राप्त है।

(८) धनार्जन और नारीजन-श्रीयुत कपिलदेव मालवीय।

के० डी० मालवीय के नाम से मर्यादा के पाठक भली प्रकार परिचित हैं। चुटीलेपन और कड़ुवाहट में यह लेख पहिलेवालों से कम नहीं।

(९) स्त्रियों के अधिकार- श्रीमती कमला देवी श्रीवास्तव।

(१०) भारत के उद्धार में स्त्रियों का भाग-श्रीमती एनीबीसेन्ट।

(११) सुतवती सीता (कविता)-पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय।

(१२) माता-श्रीमती रामेश्वरी देवी नेहरू।

लेख बहुत सुन्दर है। माताओं के सामने वर्तमान समय में कौनसी समस्याएं उपस्थित हैं उनका इसमें दिग्दर्शन कराया गया है।

(१३) भावी महिलाएँ-श्रीयुत मंज़रअली सोख़ा बी० ए० एल० एल० बी०।

लेख बड़ा गवेषणापूर्ण है, भविष्य की स्त्रियों का चित्र देख स्त्री को दासी समझने-वालों को तनिक विचार करना पड़ेगा।

(१४) भारत-माता और ब्रह्मचारी (कविता)-

(१५) सामाजिक संगठन में स्त्रियों का स्थान-सम्पादिका।

लेख मार्के का है, एक एक बात तौल कर कही गई है। पढ़ने से पाठक पाठिकाओं को सामाजिक संगठन की कितनी ही मार्के की बातें मालूम होंगी।

रंगीन चित्र।

भारतमाता और ब्रह्मचारी।
यशोदा का गोदोहन।
तुर्की महिला।
स्वर्गीय सुख।
तपोवन में सीता और लव, कुश।
अभिमन्यु और सुभद्रा।

ग्राहकों की सेवा में जुलाई के प्रथम सप्ताह में संख्या भेजी जायगी। संख्या दोबारा नहीं भेजी जायगी। जो ग्राहक नहीं हैं उन्हें यह संख्या ॥=) में दी जायगी। विशेष अंक बहुत कम संख्या में छपा है, मांग बहुत है जिन्हें लेना स्वीकार हो उन्हें ॥=) भेज पहिले से ग्राहकों में नाम दर्ज करा लेना चाहिये।

मैनेजर
मर्यादा।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग, में बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित हुई।

मर्यादा ।

सचित्र मासिक पत्रिका ।

दशवां भाग, दशवां खण्ड ।

आषाढ़-अगहन ।

(जुलाई—दिसम्बर)

१९७२ ।

वार्षिक मूल्य तीन रुपया ।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग ।

वर्णानुक्रमिक विषय-सूची।

विषय	पृष्ठ से पृष्ठ तक
१–अभिमन्यु और सुभद्रा (कविता) ठाकुर किशोर सिंह	३०–३१
२–अरबों की अवनति या टुवर्स संग्राम–श्रीयुत कृष्ण बिहारी मिश्र बी० ए०	३७६–३७९
३–आत्मत्यागियों का स्वर्गारोहण (कविता)–श्रीयुत तुकाराम	२९५–
४–आशीर्वाद–"भारतसुत"	१०४–
५–ईश-विनय (कविता)–श्रीयुत नृसिंह नाथ त्रिपाठी	३८७–
६–उठहु आलस को त्यागहु (कविता)–श्रीयुत कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०	३५६–
७–उत्तरा और अभिमन्यु (कविता) श्रीयुत ठाकुर किशोरसिंह बारहठ	३७२–३७५
८–उपदेशपूर्ण ऐतिहासिक बातें–श्रीयुत धानूलाल श्रीवास्तव	२६०–२६२
९–ऋतुमती कन्या का विवाह शास्त्रसम्मत है–एक संस्कृत का एम० ए० कट्टर सनातनी	८३–८८
१०–कड़ी समालोचना के कारण–श्रीयुत कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०	२०९–२१२
११–कवित्व–पं० श्रीहरिहर सुरूप शर्मा शास्त्री विद्याभूषण	२४०–२४४
१२–क्या स्त्री पुरुष के समान है ?–श्रीहरिहर सुरूप शास्त्री	८९–९५
१३–क्यों रोते हो ?–रोनेवाला	२९६–३०१
१४–गेहूँ की पैदावार का युद्ध पर प्रभाव–श्रीयुत सिद्धनाथ	२३६–२४०
१५–चित्र-परिचय (कविता)–श्रीयुत विष्णुदेव सिंह	२५४–२५६
१६–चित्र परिचय (कविता)–श्रीयुत किशोरी लाल गोस्वामी	४०५–४०९
१७–जीवन–श्रीयुत नन्दकिशोर दुबे	३५०–३५१
१८–तपोवन (कविता)–श्रीयुत भगवन्नारायण भार्गव	३११–३१२
१९–दर्शन शास्त्रों के सिद्धान्त–श्रीयुत कमलापत एम० ए० सेशंस जज, धौलपुर	२४५–२५३
२०–दीनों के साथ श्रीमानों की सहानुभूति (कविता)–श्रीयुत पन्नालाल वैश्य	१६४–१६५
२१–देवियों का विवाद (कविता)–पं० माधव शुक्ल	१–२
२२–धनार्जन और नारीजन–श्रीयुत कपिलदेव मालवीय	४८–५३
२३–धान–श्रीयुत नन्दकिशोर शर्मा फार्म सुपरिंटेन्डेन्ट	१२०–१२७
२४–नारीजीवन का प्रश्न (कविता)–श्रीमती तोरन देवी (लली)	९४–९५
२५–पटने में अशोक-स्तम्भ–श्रीयुत विश्वनाथ त्रिपाठी	१५५–१५६
२६–पतङ्ग-पतन (कविता)–श्रीयुत गोकुलचन्द्र शर्मा	१५६–

विषय	पृष्ठ से पृष्ठ तक
२७-पदार्थ और उस पर कुछ विचार-श्रीयुत भीधर बाजपेयी	१९९–२०१
२८-पनामा पैसेफिक प्रदर्शिनी-श्रीयुत शिवप्रसाद गुप्त	१८२–१९९
२९-प्रातश्री (कविता)-श्रीयुत कविरत्न पं० सत्यनारायण	२१८–
३०-प्रार्थना-	१०४–
३१-पालतू पशु-प्रोफेसर रतनचन्द रावत	३१६–३२०
३२-प्रेम-पयोनिधि (कविता)-श्रीयुत किशोरीलाल गोस्वामी	३०५–३०६
३३-प्रेमी (कविता)-श्रीयुत किशोरी लाल गोस्वामी	१५४–
३४-बबुआ का मकतब-श्रीयुत छबीलेलाल गोस्वामी	१३०–१३४
३५-ब्रह्माण्ड में तुमुल संग्राम-श्रीयुत राधानाथ टंडन	१४९–१५४
३६-भारत की राष्ट्रीय उन्नति तथा उसकी जाति-एक विनीत देशभक्त	१७–२९
३७-भारतमाता की कामना (कविता)-पं० माधव शुक्ल	५४–
३८-भारतवर्ष के उद्धार में स्त्रियों का भाग-श्रीमती एनी बीसेंट	६३–६५
३९-भारत के अकाल पर एक नज़र-श्रीयुत शुकदेव सिंह	३४३–३४७
४०-भारत-सिक्का-इतिहास-श्रीयुत भगवद्दारायण भार्गव बी० ए०	३९५–३९८
४१-भावी मुसलमानियाँ-श्रीयुत मंज़र अली सोख़ा बी० ए० एल० एल० बी०	६५–७७
४२-महमूद पुत्र मासूद-पं० कृष्ण बिहारी मिश्र	३०१–३०५
४३-महाकवि डान्टे-श्रीयुत शिव-नारायण द्विवेदी	२६३–२७१
४४-महापुरुष सन-यात-सेन-"नारायण"	३६७–३७१
४५-महिलाओं की स्वास्थ्यरक्षा के लिये आवश्यकीय उपाय-श्रीमती हेमन्तकुमारी देवी	११५–१२०
४६-माता-श्रीमती रामेश्वरी देवी नेहरू	५५–६७
४७-मितव्यय-श्रीमती कुमारी कृष्णाबाई ठाकुर एम० ए०	१०५–११०
४८-मिश्र-बन्धु-विनोद-पं० माया शंकर बी० ए०	२०५–२०७
४९-मिश्र-बन्धु-विनोद-श्रीयुत महेन्द्रनाथ चतुर्वेदी	३५२–३५३
५०-मुसलमानों की आश्चर्यजनक उन्नति-श्रीयुत ब्रजमोहन लाल वर्मा	२५६–२६०
५१-मैं जासूस कैसे होगया ?-श्रीयुत रुद्रदत्त भट्ट	४१२–४१५
५२-युगपरिवर्तन (कविता)-श्रीयुत माधव शुक्ल	३९९–
५३-युद्ध के अनन्तर भारत-	२८०–२८७
५४-युद्ध से हानि-श्रीयुत शिव-नारायण द्विवेदी	३८७–३९१
५५-यूरोपीय महाभारत के कारण-वही पुराना फ्रांन्सप्रवासी आधुनिक "जेनेवानिवासी"	३६०–३६६
५६-राष्ट्रीय जागृति की मीमांसा-पं० माधवराव सप्रे बी० ए०	१७५–१८२
५७-वर्षा-विनोद (कविता)-श्रीयुत लक्ष्मणसिंह	१४८–१५९
५८-विधवा का कर्तव्य-प्रोफेसर हरि रामचन्द्र दिवेकर एम० ए०	७८–८१
५९-विश्वदास (कविता)-कृष्णाकर	३५४–

विषय	पृष्ठ से पृष्ठ तक
६०-वीरबाला को संदेश (कविता)-श्रीमती तोरन देवी (लली)	३८०-३८१
६१-शङ्कराचार्य का समय-श्रीयुत राधामोहन गोकुल जी	३२१-
६२-शिवाजी की राज्यव्यवस्था-तरुण भारत	१३४-१४०
६३-शिवाजी के विषय में विदेशियों का मत-तरुण भारत	३२२-३२५
६४-शिवाजी के उद्देश-तरुण भारत	३६६-४०५
६५-शिवाजी के विरुद्ध आक्षेपों पर विचार-तरुण भारत	२७२-२७६
६६-श्रीकृष्णचरित्र का गूढ़ आशय-लाला कन्हैयालाल एम० ए०	३८१-३८६
६७-श्रीमती एनी बीसेन्ट का व्याख्यान	३३३-३४३
६८-सन्तान-शास्त्र-श्रीयुत त्रिलोकनाथ माथुर	१२७-१२६
६९-समय और उसका उपयोग-श्रीयुत तोताराम गुप्त बी० ए०	२३१-२३६
७०-सम्पादकीय टिप्पणियाँ	१६६-१६८
७१-सम्पादकीय टिप्पणियाँ	२२२-२३०
७२-सम्पादकीय टिप्पणियाँ	२८७-२६४
७३-सम्पादकीय टिप्पणियाँ	३५६-३५८
७४-सम्पादकीय टिप्पणियाँ	४१६-४२२
७५-समाज-सुधार का क्रम-श्रीयुत लक्ष्मी शङ्कर अवस्थी	३०६-३१०
७६-सर फीरोज़शाह मेहता	३४७-३५०
७७-सामाजिक संगठन में स्त्रियों का स्थान-श्रीमती उमा देवी नेहरू	६६-१०३
७८-साबोनारा-एक जापानप्रवासी	२१८-२२२
७९-सुतवती सीता (कविता)-पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय	८१-८२
८०-सुधार का मूलमंत्र-श्रीयुत लक्ष्मीनारायण शर्मा	१५६-१६३
८१-स्वर्गीय सुख (कविता)-पं० माधव शुक्ल	८८-
८२-स्त्रियाँ और राजू-पं० माधवराव सप्रे बी० ए०	३२-३६
८३-स्त्रियों के अधिकार-श्रीमती कमला देवी श्रीवास्तव	६०-६३
८४-स्त्रियों के कर्तव्य-श्रीमती शारदा सुमन्त बी० ए०	१११-११४
८५-स्त्रियों का कर्तव्य-श्रीयुत हृदयनाथ कपूर	२७६-२८०
८६-स्त्रियों की उच्च शिक्षा-श्रीयुत वेणीप्रसाद	३१२-३१६
८७-स्त्रीशिक्षा पर एक दृष्टि-श्रीयुत तोताराम गुप्त बी० ए०	४०६-४१२
८८-हमारा पुस्तकालय	३५८-३५६
८९-हमारा पुस्तकालय	४१५-
९०-हमारी डायरी-श्रीयुत शिवप्रसाद गुप्त	१४०-१४८
९१-हमारी डायरी-श्रीयुत शिवप्रसाद गुप्त	३२५-३३३
९२-हमारी उन्नति-श्रीयुत बालाप्रसाद शर्मा	३६१-३६४
९३-हिन्दी और मराठ-श्रीयुत मुंशी देवीप्रसाद	२०१-२०५
९४-हिन्दी की अपील (कविता)-श्रीयुत गिरिजादत्त 'कविविभव'	२०८-
९५-हिन्दू समाज की कुदशा पर एक दृष्टि-श्रीयुत विश्वेश्वर दयालु चतुर्वेदी	१५७-१५६
९६-हिन्दू समाज का संगठन-श्रीयुत रुद्रदत्त भट्ट	२१३-२१८
९७-हे आर्य भारत !-श्रीयुत भगवन्नारायण भार्गव	२१२-

मर्यादा।

सचित्र मासिक पत्रिका।

सम्पादिका—श्रीमती उमादेवी नेहरू

स्त्रियों की विशेष संख्या।

देवियों का विवाद।

[लेखक—श्रीयुत माधव शुक्ल।]

[स्थान हिमालय; एक ओर से लक्ष्मी और शक्ति और दूसरी ओर से विद्या का प्रवेश।]

लक्ष्मी।

(१)

खबरदार कोइ चूं मत करना मेरा है संसार।
मेरा ही अधिकार जगत में मैं ही हूं सरदार॥
बड़े बड़े गढ़ कनक भवन सब मेरे ही हैं खेल।
फैल रही है सकल भुवन में मेरे यश की बेल॥

(२)

आंख उठाकर जिसको देखा बस कर दिया निहाल
मेरी कृपा बिना जग फिरता भूँखा औ कंगाल॥
बड़े बड़े विद्वान धनुर्धर रटते मेरा नाम।
सच तो यह मुझ पर ही निर्भर है सब जग का काम

(३)

जग सुख हैं जितने प्रकार के मैं ही सब की खान
विद्या बुद्धि वीरता मैं हीं, मैं ही हूं अभिमान॥
मेरे ही चोचले तीर्थ व्रत पुण्य धर्म के काज।
मेरा ही है नाम रत्नमणि, स्वाधीनता, सराज॥

(४)

जर्मन अमेरिका को देखो लण्डन चीन जपान।
मेरी चरण धूलि को पाकर कहलाते धनवान॥
राकफेलर कारनेगी जैसे अगणित मेरे दास।
मेरी कृपा बिना भारत के होते निस्स उपास॥

(५)

यद्यपि मैं हूं इसी स्वर्गसम पुण्यभूमि की बाला।
हिमगिरि जिसके यश गौरव की मौन फेरता माला
यहि अगाध रत्नाकर मेरा रहने का स्थान।
भर्ता मेरे जग के रक्षक स्वयं विष्णु भगवान॥

(६)

किन्तु किया था इस भारत ने ही मेरा अपमान।
इससे देखो आज बन रहा है दुःखों की खान॥
चलो हटो बस यह निश्चित है मेरा है सब साज।
मेरे ही नामों की माला फेरे सकल समाज॥

शक्ति।

(१)

यह क्या, यह क्या, क्या बकती है ओ गर्वीली नार।
क्या तू बस हो गई बड़ी कर लेने से सिंगार॥
भूल सरासर बकनेवाली बस मत कर अभिमान।
मेरे आगे छोटेपन की डींग न कर अज्ञान॥

(२)

नहीं जानती क्या तू मेरे बल पौरुष का हाल?
छुटी छोकरी भरी गरब में लगी फुलाने गाल॥
जाकर तनिक पूछ भर्ता से जो मेरा भी दास।
मेरा तुझ को बतलायेगा वह पूरा इतिहास॥

(३)

जो मेरे हैं भक्त कभी वे तुझे न देंगे मान।
रहा उन्हीं में कभी किसी दिन सारा हिन्दुस्थान॥
जिस दिन से इस भाग्यहीन ने मेरी सेवा छोड़ा।
उस दिन से मैंने भी इससे अपना नाता तोड़ा॥

(४)

नहीं जानती जिस दिन मेरी भृकुटि कुटिल चढ़ जाती
तू दबती फिरती है सन्मुख मेरे कभी न आती॥
मैं पल छिन में सारे जग को तहस नहस कर डालूं
चाहूं जिसे बना सिंहासन चाहूं जिसे निकालूं॥

(५)

देख प्रतक्ष आज यूरप पर हुआ हमारा कोप।
तनिक सोच तो तेरा प्रभुता कहां हो गई लोप॥
जर्मन और बृटिश राजों में निकल पड़ी तलवार।
लाखों मम नरमेध यज्ञ में आज हो रहे छार॥

(६)

मूरख तेरा सोना चांदी मणि मानिक सिंगार।
देख हमें लोहा प्यारा है आभूषन तलवार॥
तू चंदन के लेप लगाती मैं रक्तों से न्हाती।
पहले मैं आन बनाती पीछे तुझे बिठाती॥

(७)

जब भारत था मेरा सेवक थे अर्जुन से वीर।
अब तक थे प्रताप पृथ्वी ओ शिवा सरिस रनधीर
बस इस जग में मेरा सेवक ही जग का सरदार।
खबरदार अब कभी न कहकर व्यर्थ बढ़ाना रार॥

विद्या।

(१)

ठहरो ठहरो दोनों मिल कर व्यर्थ रार मत ठानो।
हटो कामलो तनिक बुद्धि से बात हमारी मानो॥
लक्ष्मी तुम हो बड़ी चंचला गंभीरता नहीं है।
शक्ति तुम्हें भी रिसके आगे सूझे कुछ न कहीं है॥

(२)

देखो लक्ष्मी तुममें है एक दोष बड़ा ही भारी।
तुमको चोर चुरा ले जाता चलती कुछ नहिं प्यारी
औ फिर तुम हो कृपन दान देते ही चट घट जाती
विद्वानों की भरी सभा में नहीं मान भी पाती॥

(३)

तुम रहती हो जहां वहां पर दोष फैलते सारे।
नित्य लड़ाई होती, होते बन्धु बन्धु से न्यारे॥
यही हेतु है कभी तुम्हें भारत ने नहिं अपनाया।
वह मेरा था सेवक इससे ऊंची पदवी पाया॥

(४)

मैं हूं अति गंभीर चोर भी नहीं चुराने पाता।
जितना करो दान मेरा धन दूना बढ़ना जाता॥
मैं सभ्यता सिखाती तम के सारे दोष नशाती।
तू मनुष्य को नरक दिखाती मैं सुरपुर ले जाती॥

(५)

तुम भी सुनो शक्ति प्यारी हठ और दुराग्रह छोड़ो।
हो कर सावधान अपना मनटुक सुबुद्धि में मोड़ो॥
मेरे बिना तुम्हारी भी सब शोभा है बेकार।
हुआ वृद्ध जहँ सेवक मेरा हँसे देख संसार॥

(६)

उदाहरण में तू यूरोप रण को देती है मान।
पर तू तनिक सोच क्या हां बस तेरी ही हैशान॥
व्योमयान तोपें एक छिन में कोटिन नर संहार।
अद्भुत रण कौशल आदिक ये किस के हैं व्यापार॥

(७)

तेरा बड़ा गर्व लख मैंने यह कर्तब फैलाया।
योरप के इस महायुद्ध में नीचा तुझे दिखाया॥
इससे व्यर्थ करो मत दोनों आपस में अभिमान।
जग का सारा भार हमीं पर मैं ही जग की जान॥

(८)

शान्त रहो आओ हम मिल कर अपना हिन्द उठावें
अधिक दुःख वह भोग रहा है उसको उच्च बनावें
हम तुम तीनों बहन जहां हैं वहां पुण्य सुरधाम
वहिं हरिचंद दधीच अर्जुन हैं वहीं कृष्ण औ राम

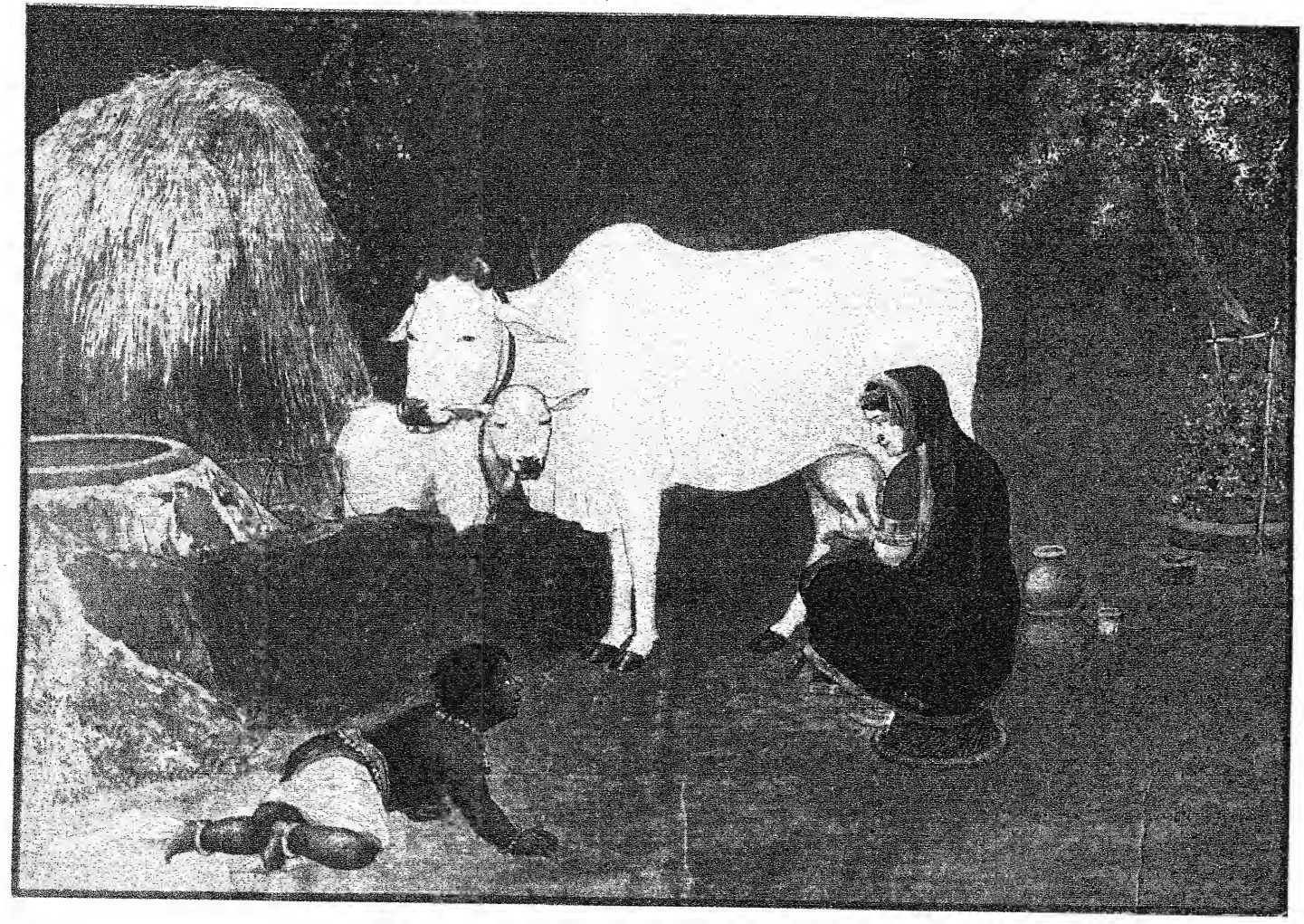

यशोदाका गोदोहन।

U. Ray & Sons, Calcutta.

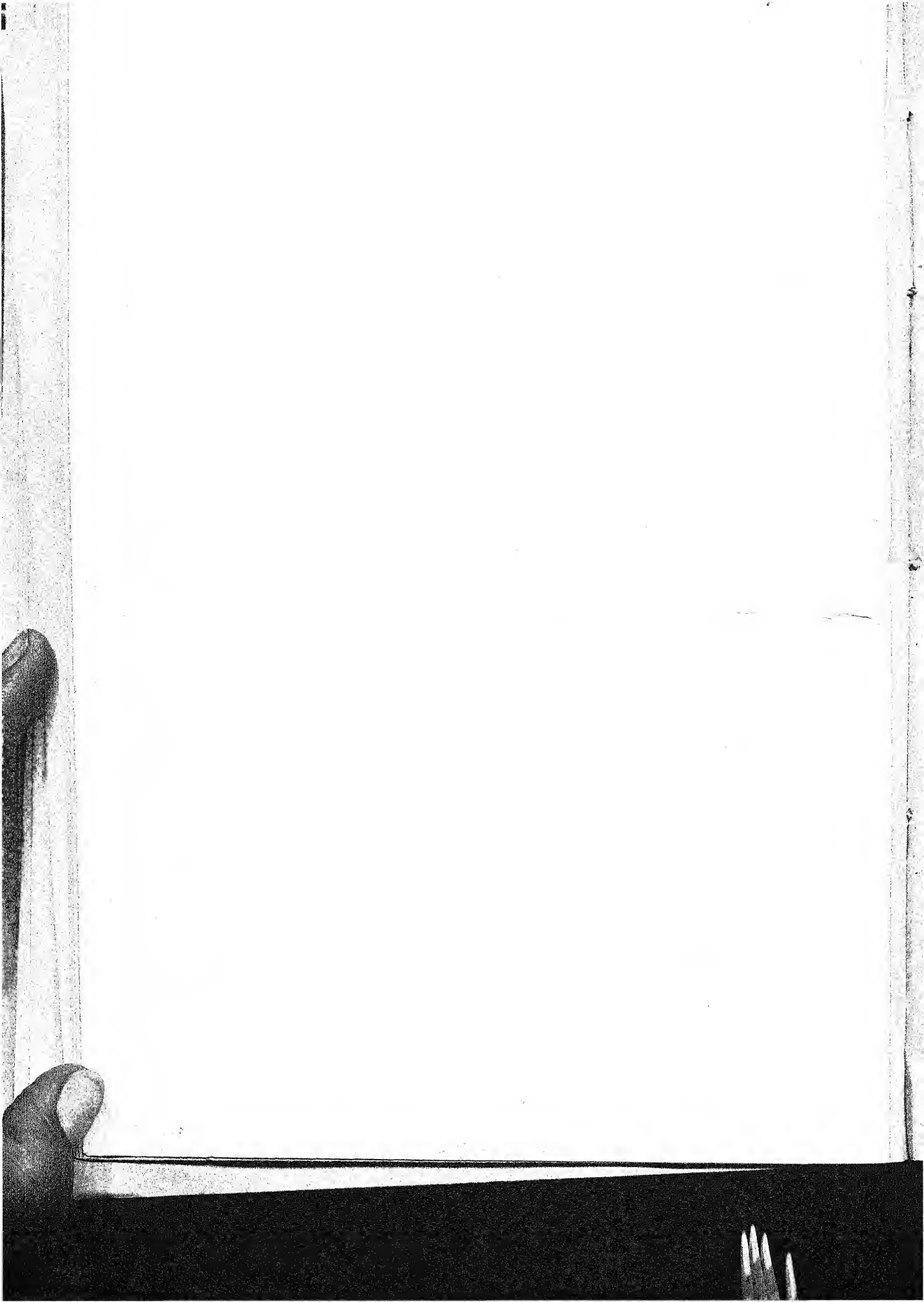

भारत की राष्ट्रीय उन्नति तथा स्त्री-जाति।

[लेखक—एक विनीत देशभक्त।]

भारत में राष्ट्रीय उन्नति की लहर।

आ कई वर्षों से इस देश में चारों ओर से एक नवीन जागृति के चिह्न दिखाई दे रहे हैं चारों ओर ही सुधार, परिवर्तन, ऐक्य तथा उन्नति के आशाजनक शब्द सुनने में आते हैं और यद्यपि इस नवीन जागृति का वास्तविक प्रभाव अभी तक भारतीय मनुष्यसमाज की एक बहुत ही थोड़ी सी संख्या पर पड़ा है तथापि यह जागृति इतने विविध क्षेत्रों तथा इतने विविध रूपों में दिखाई देती है कि उसे भारत की सार्वजनिक अथवा राष्ट्रीय जागृति कहना कदापि अनुचित प्रतीत नहीं होता। निस्सन्देह यदि देखा जाये तो राष्ट्रीयता अर्थात् भारत में एक प्रबल, प्रबुद्ध तथा स्वतंत्र राष्ट्र की रचना करना ही इस समस्त जागृति का मूलमंत्र है। इस अद्भुत जागृति के विविध क्षेत्रों में से चाहे कोई एक विद्वान समाजसुधार को ही अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य क्यों न बना बैठा हो, चाहे कोई दूसरा अर्वाचीन शिक्षा के विस्तार को ही उन्नति का एकमात्र उपाय क्यों न समझता हो और कोई तीसरा राजनैतिक आन्दोलन को ही समस्त उन्नति का प्राण क्यों न मानता हो; इतना ही नहीं वरन् विविध देशसेवकों तथा देशभक्तों के बीच राष्ट्रीय उन्नति के वास्तविक उपायों के विषय में प्रबल मतभेद भी क्यों न हो तथापि इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि अपने अपने विचारानुसार विविध उपायों द्वारा प्रत्येक सच्चे देशसेवक का अन्तिम लक्ष्य अथवा उद्देश्य केवल एक ही है—अर्थात् इस प्राचीन देश को शताब्दियों की अधोगति, अवनति तथा अपमान के गड्ढे से निकालकर उसे अमेरिका, जर्मनी, इंगलैण्ड, जापान इत्यादि के समान एक उन्नत, सबल तथा सम्मानित राष्ट्र बनाना।

वास्तव में यह भारतीय जागृति की लहर उस वृहत् एशियायी जागृति का एक अंग है जिसने सबसे पहिले आज से लगभग ४५ वर्ष पूर्व जापान में अपना वेग दिखलाना आरम्भ किया था। इस प्रबल प्रवाह ने चालीस वर्ष के अल्पकाल में ही जापान को संसार के निर्बलतम राष्ट्रों की पंक्ति में से निकाल कर सबसे अधिक बलवान तथा सबसे अधिक उन्नत राष्ट्रों की श्रेणी में स्थान दिया। सन् १९०४—०५ के रूस जापान युद्ध में मदोद्धत यूरोपियन राष्ट्रों को पहिली बार इस आश्चर्यजनक एशियायी जागृति के चमत्कार का बोध हुआ। धीरे धीरे इस एशियायी उन्नति की तरंगों ने चीन के निश्चल जलाशयों को भी हिलाना आरम्भ किया और सन् १९१२ की चीनी राज्यक्रान्ति के समय से संसार को पता लग गया कि देशभक्त जापानियों का चीन के युवकों तथा युवतियों को पढ़ाया हुआ पाठ निष्फल नहीं गया था। रूस जापान युद्ध के समय से ही भारतवासियों के मुर्झाये हुए हृदयों में भी परिवर्तन तथा उन्नतिशीलता की तरंगें वेग के साथ हिलोरें मारने लगीं। उस समय के निकट ही इस प्राचीन भूमि में नवीन राष्ट्रीयता का जन्म हुआ और यद्यपि वे अनेक लोग जिन्हें धन तथा उच्च पदवियों ने स्वार्थी अथवा अधिक आयु ने कायर बना दिया है अभी तक भी इस नवीन आन्दोलन का पूर्ण रीति से साथ नहीं देते तथापि इस विषय में भारत के अधिकांश नवयुवकों का बढ़ता हुआ उत्साह इस बात का प्रमाण है कि यह देश भी अब इस एशियायी जागृति के प्रवाह से पूरा पूरा लाभ उठाये बिना नहीं रह सकता।

आज हम इस छोटे से लेख द्वारा अपने पाठक तथा पाठिकाओं को केवल यह बतलाया चाहते हैं कि इस सार्वात्मिक राष्ट्रीय चेष्टा के

पवित्र कार्य में भारत की स्त्रीजाति को क्या भाग लेना उचित है । उस भाग को लेने के लिए हमारी स्त्रियों को क्या क्या तैयारियां करनी होंगी अथवा उनके प्राचीन आदर्श में क्या क्या परिवर्तन करने होंगे और अग्रगामी चीन तथा जापान की राष्ट्रीय चेष्टाओं से हम इस विषय में कौन २ सी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

इस महान कार्य में स्त्रियों के भाग लेने की आवश्यकता।

सबसे प्रथम स्त्रीजाति के मनुष्यत्व में पूर्ण विश्वास रखते हुए अर्थात् यह मानते हुए कि पुरुष तथा स्त्री दोनों बृहत् मनुष्यजाति के एक समान दो अंग हैं हम कह सकते हैं कि जो उन्नति पुरुष तथा स्त्री दोनों को साथ लेकर न चलती हो उसे मनुष्य जाति की उन्नति कहना सर्वथा मिथ्या है। इसके अतिरिक्त अर्वाचीन समय में कोई भी महान् आन्दोलन बिना स्त्री तथा पुरुष दोनों की तथा दोनों की सहानुभूति को साथ लिये वास्तविक सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। विशेष कर भारत की वर्तमान अवस्था में जो लोग बिना सामाजिक सुधार, सामाजिक उत्थान तथा सामाजिक परिवर्तन के किसी प्रकार की भी राष्ट्रीय उन्नति अथवा राजनैतिक उन्नति की आशा करते हैं वे एक असम्भव स्वप्न देखते हैं और सामाजिक सुधार, सामाजिक उत्थान तथा सामाजिक परिवर्तन बिना भारतीय स्त्रियों की पूर्ण सहानुभूति के सर्वथा असम्भव है। दूसरे शब्दों में बिना अगणित सामाजिक कुरीतियों, निरर्थक बन्धनों, अवनतिमूलक अंधविश्वासों तथा सड़ीगली रूढ़ियों का नाश किये देश में नये जीवन का संचार नहीं हो सकता। बिना इस नये जीवन के राजनैतिक संघटन तथा राजनैतिक उन्नति की आशा करना व्यर्थ है और बिना भारतीय स्त्रियों की पूर्ण सहानुभूति के इन कुरीतियों, बन्धनों इत्यादि के विध्वन्स का प्रयत्न करना भी केवल व्यर्थ परिश्रम है। हमें भारतीय मनुष्यसमाज में एक अर्वाचीन राष्ट्र की नींव को पक्का करना है और जैसा हम अभी कह चुके हैं भारत के पुरुष तथा स्त्रियां दोनों ही भारत-माता की एक समान सन्तान तथा इस भारतीय मनुष्य समाज के एक तुल्य अंग हैं।

स्त्रियों की उदासीनता तथा उनके कारण।

किन्तु हमें स्वीकार करना पड़ता है कि अभी तक हमारी राष्ट्रीय उन्नति के इस महान् कार्य में स्त्रियों का भाग अत्यन्त कम रहा है। केवल कम नहीं वरन् हमारी अनेक भगनियाँ देश की वास्तविक उन्नति के मार्ग में रुकावट तक सिद्ध होती रही हैं। यह शोकमय दृश्य अधिकतर उस सामाजिक सुधार के सम्बन्ध में देखने में आता है जिस सुधार को कि हम ऊपर सार्वाङ्गिक राष्ट्रीय उन्नति का एक आवश्यक अंग बतला चुके हैं। किन्तु इसके अतिरिक्त जिस प्रकार के हमारी अशिक्षित अथवा अर्धशिक्षित स्त्रियों के अंध विश्वास हमें सामाजिक सुधार से पीछे हटाते हैं उस ही प्रकार कभी कभी हमारी माताओं तथा पत्नियों की अदूरदर्शिता तथा उनकी स्वार्थबुद्धि हमारे अनेक उत्साही युवकों को स्वार्थत्याग तथा आत्मोत्सर्ग के मार्गों से भी रोकती है। सच यह है कि इस समय तक हमारी राष्ट्रीय उन्नति की शिथिलता के अनेक कारणों में से एक मुख्य कारण यह है कि हमारे सांसारिक जीवन की साथी, देश की भावी सन्तान की उत्पादक, रक्षक तथा शिक्षक, हमारी स्त्रियां अभी तक इस कार्य के महत्व को नहीं समझी हैं अथवा वे अभी तक हमारे कार्य में उचित रीति से हमारा हाथ बटाने में असमर्थ हैं। देश का आधा जीवन ही इस परिवर्तन की लहर की ओर से एक प्रकार सर्वथा उदासीन है।

पाठक! हमें क्षण भर के लिए इस बात पर विचार करना होगा कि अभी तक भारत की

स्त्रियों ने हमारी राष्ट्रीय उन्नति के कार्य में इतना कम भाग क्यों लिया है? इस सर्वव्यापी राष्ट्रीय लहर का प्रभाव इनके ऊपर इतना कम क्यों पड़ा है? और इस राष्ट्रीय जागृति के समय एक ही घर के भीतर पुरुषों के जाग जाते हुए भी स्त्रियां प्राचीनत्व तथा स्थितिपालकता की माया-न्वित नींद में क्यों पड़ी सो रही हैं?

हम एक वाक्य द्वारा इन समस्त प्रश्नों का उत्तर देकर फिर उस उत्तर के विविधि अंगों की व्याख्या अपने पाठकों के सन्मुख रखने का प्रयत्न करेंगे। हमारा उत्तर यह है कि प्राचीन समय से स्त्रीजाति के विषय में हमारा आदर्श इतना हीन रहा है, आज दिन तक इस सम्बन्ध में हमारे अधिकांश विचार इतने संकुचित हैं और स्त्रियों को हमारे समाज में इतनी कम स्वतंत्रता दी गई है कि उन्हें अपने व्यक्तित्व (individuality) के विकास का कभी भी अवसर नहीं मिला और इस व्यक्तित्व के विकास के न होने के कारण ही वे आज राष्ट्रीय उन्नति में उचित भाग लेने में असमर्थ हैं।

व्यक्तित्व के विकास का अभाव।

कोई भी मनुष्य अथवा मनुष्यसमाज किसी उन्नतिशील आन्दोलन का साथ केवल उस दर्जे तक ही दे सकता है जिस दर्जे तक उसे अपनी व्यक्तिगत मानसिक शक्तियों को विकास देने तथा अपने व्यक्तिगत विचारों के अनुसार कार्य करने में स्वतंत्रता प्राप्त हो। जिस प्राणी की मानसिक शक्तियां बिना विकास पाये ही मुर्झा जाती हों अथवा जिसे अपने व्यक्तिगत विचारों के अनुसार कार्य करने में स्वतंत्रता प्राप्त न हो उससे उन्नतिशीलता की आशा करना निष्फल है। आजकल की राष्ट्रीय उन्नति के लिए और विशेषकर प्राचीनत्व की माया रूपी बेड़ियों में जकड़ी हुई एशियायी जातियों के उद्धार के लिए जाति के प्रत्येक व्यक्ति में उसके व्यक्तित्व के विकास होने का अवसर देना सबसे बड़ी आवश्यकता है। यह व्यक्तित्व का विकास व्यक्तियों की न्यूनाधिक स्वतंत्रता पर निर्भर करता है। यही कारण है कि परतंत्र जातियों के लोग अधिकतर उन्नतिशील होने के स्थान पर स्थितिपालक होते हैं।

किन्तु इस सम्बन्ध में यह मानना पड़ता है कि केवल भारत ही में नहीं वरन् कम वा अधिक समस्त संसार ही में अभी तक पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अपने व्यक्तित्व के विकास का बहुत कम अवसर मिलता रहा है। उन्हें अपने विचारों के अनुसार कार्य करने में पुरुषों की अपेक्षा बहुत कम स्वतंत्रता प्राप्त रही है। संसार के अधिकांश भाग में पुरुष तथा स्त्री का सम्बन्ध हमें 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' के शंकनीय सिद्धान्त ही का स्मरण दिलाता रहता है। प्रायः हर देश में कम वा अधिक स्त्री को पुरुष की दासी अथवा उसके चित्त को प्रसन्न करनेवाला एक खिलौना ही माना गया है। भेद केवल इतना है कि जबकि अन्य उन्नतिशील देशों—यहां तक कि चीन तथा जापान जैसे एशियायी देशों—के पुरुष तथा स्त्रियां भी इस विषय में अपने पुरातन विचारों के दोषों को समझते हुए उन विचारों को पीछे छोड़ते जाते हैं भारत के पुरुष तथा स्त्रियां अभी तक अपने उन पुरातन आदर्शों में ही चिमटे हुए बैठे हैं।

स्त्रियों के विषय में हमारे प्राचीन आदर्श की हीनता।

हमें दुःख के साथ कहना पड़ता है कि हमारे प्राचीन स्मृतिकार तथा शास्त्रकार भी स्त्रीजाति के विषय में अधिक उच्च विचार स्थिर न कर सके। हमारे अधिकांश प्राचीन ग्रन्थों में स्त्री केवल पुरुष को सन्मार्ग से गिराने का एक जाल ही मानी गई है। बड़े से बड़े तपस्वियों की तपस्या को भंग कर उन्हें स्वर्ग के मार्ग से नीचे गिराने का स्त्री ही सब से उत्तम

साधन समझी गई है। स्त्रियों के लिए स्वतंत्रता का विचार अथवा उनकी व्यक्तिगत उन्नति का विचार कहीं ढूंढ़े से भी नहीं मिलता। इसके विपरीत स्त्रियों को स्वतंत्रता दिये जाने के विरुद्ध अनेकानेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए मनुस्मृति के निम्न-लिखित थोड़े से श्लोकों से पाठकों को पता लग जावेगा कि भगवान मनु जैसे स्मृतिकार भी अपने समय के इस अमानुषिक विचारों से ऊपर न उठ सके।

मनुस्मृति के पांचवें अध्याय के १४७वें श्लोक में लिखा है कि स्त्री चाहे बालक हो, चाहे जवान हो और चाहे बूढ़ी हो किन्तु कोई छोटे से छोटा कार्य भी घर के भीतर भी अपनी स्वतंत्र इच्छा से न करे। उससे अगले ही श्लोक में मनु महाराज लिखते हैं :—

बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने।
पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतंत्रताम् ॥१४८

अर्थ स्पष्ट है। इस ही विचार को दोहराते हुए नवें अध्याय में फिर लिखा है :—
असतंत्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैः स्वैर्दिवा निशम् ॥

अर्थात्—पुरुषों को चाहिये कि रात दिन स्त्रियों को अपने वश में करके रक्खें। फिर वही 'बालकपन में पिता रक्षा करे, जवानी में पति और बुढ़ापे में पुत्र' कहकर मनु भगवान बताते हैं—"न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति" अर्थात् स्त्री स्वतंत्रता दिये जाने के योग्य नहीं है।

जहां जहां मनु भगवान ने स्त्री के कर्तव्यों का वर्णन किया है वहां वहां भी हमें घर के बिछौने, बरतनों आदिक को साफ़ करना, भोजन पकाना इत्यादि का ही वर्णन मिलता है। (देखो अ० ५ श्लोक १५०, अ० ६ श्लोक ११ इत्यादि) हम अपने हाथ से घर का काम करने को स्त्री अथवा पुरुष किसी के लिए भी अपमानजनक नहीं समझते किन्तु हम इस बात के भी विरोधी हैं कि इस प्रकार के कार्यों को ही स्त्री जाति का मुख्य व्यवसाय समझ लिया जावे। इससे भी बढ़कर मनु भगवान स्त्री को आदेश करते हैं कि :—

विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः।
उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः ॥
(५—१५४)

अर्थात् पति चाहे सदाचार से गिरा हुआ, किसी दूसरी स्त्री के साथ भोग करनेवाला और समस्त गुणों से रहित भी क्यों न हो तौभी नेक स्त्री का कर्तव्य है कि सदैव देवता के समान उसकी पूजा, सेवा इत्यादि करती रहे।

निस्सन्देह स्त्री जाति की परतंत्रता अथवा उनके दासत्व पर मोहर लगानेवाले इससे अधिक कठोर शब्द और कोई नहीं हो सकते। स्त्री को दण्ड देने के विषय में मनु का कथन है कि :—

भार्या पुत्रश्च दासश्च प्रेष्यो भ्राताच सोदरः।
प्राप्तापराधास्ताड्याः स्यू रज्वा वेणुदलेन वा ॥
(८—२९९)

अर्थात्—स्त्री, पुत्र, दास, नौकर और सगा छोटा भाई, ये यदि कोई अपराध करें तो इन्हें रस्सी से अथवा बांस से पीटना चाहिये।

हमने अनेक बार मनुस्मृति के तीसरे अध्याय के—"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" इस श्लोक को उद्धृत किये जाते हुए सुना है। किन्तु ऊपर के समस्त श्लोकों को सामने रखते हुए हम इस 'पूजा' के कुछ भी अच्छे अर्थ नहीं लगा सकते। हमें तीसरे अध्याय के ६१वें श्लोक में ही मनुजी की इस 'नारी पूजा' का एक मात्र उद्देश्य दिखायी दे जाता है। नवें अध्याय के २६वें श्लोक में भी मनु महाराज "सन्तानोत्पत्ति" को ही स्त्री की पूजा (?) का एक मात्र कारण बतलाते हैं और पूजा की सामग्री भी ज़ेवर, वस्त्रादिक ही बताये गये हैं।

सच यह है कि प्राचीन समय के अन्य अनेक विद्वानों के समान मनुजी के विचार भी स्त्री जाति के स्वभाव के विषय में अत्यन्त गिरे हुए

थे । मनुजी हमें स्पष्ट शब्दों में बतलाते हैं कि स्त्री स्वभाव से ही पुरुष को अपनी शृङ्गार चेष्टा में फँसाकर बिगाड़नेवाली है। वह दूसरे अध्याय के २१३वें श्लोक में लिखते हैं :—

"स्वभाव एष नारीणां नराणामिह दूषणम् ।"

अध्याय ९ में स्त्रियों के स्वभाव के विषय में इस प्रकार के अवाच्य शब्दों का प्रयोग किया गया है :—

"नैता रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि संस्थितः ।
सुरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते ॥१४॥
पौंश्चल्याच्चलिताच्च नैस्नेह्याच्च स्वभावतः ।
रक्षिता यत्नतो ऽपीह भर्तृष्वेता विकुर्वते ॥१५॥
एवं स्वभावं ज्ञात्वा ऽस्य प्रजापतिनिसर्गजम् ।
परमं यत्नमातिष्ठेत्पुरुषो रक्षणं प्रति ॥१६॥
शय्यासनमलङ्कारं कामं क्रोधमनार्जवम् ।
द्रोहभावं कुचर्यां च स्त्रीभ्यो मनुरकल्पयत् "॥१७॥

हमारे पाठक तथा पाठिकाएँ हमें क्षमा करें। ऊपर के चारो श्लोकों में प्रकट किये हुए भाव तथा विचार इतने पतित, घृणित तथा अमानुषिक हैं; वे समस्त स्त्री-समाज के लिए इतने अपमानजनक हैं कि हम इस स्थान पर इन श्लोकों का भाषानुवाद करने का साहस नहीं करते। मनुस्मृति तथा अन्य अनेक प्राचीन ग्रन्थों से इस ही प्रकार के और भी अनेकानेक उद्धरण दिये जा सकते हैं किन्तु हमें इस दुःखकर कार्य को इससे अधिक आवश्यकता दिखाई नहीं देती। निस्सन्देह अपने पूर्वजों की भूलों अथवा त्रुटियों को दर्शाना किसी के लिए भी सुखकर नहीं हो सकता । परन्तु एक ओर तो मनुष्य-जाति की वास्तविक उन्नति की अभिलाषा रखनेवाले किसी भी मनुष्य को सत्य के स्वीकार करने में संकोच नहीं करना चाहिये और दूसरी ओर भारतीय स्त्री जाति की भावी उन्नति तथा देश के भावी कल्याण के लिए परमावश्यक है कि हम अपने यहां की स्त्रियों की वर्तमान स्थिति तथा उनके इस समय तक के आदर्शों की भली प्रकार परीक्षा करलें।

इस बात को स्वीकार करते हुए कि हमारी स्त्रियों की वर्तमान स्थिति कदापि सन्तोषदायक नहीं है हमें दुःख के साथ दोहराना पड़ता है कि प्राचीन समय में भी स्त्री जाति के विषय में इस देश के अधिकांश विद्वानों के आदर्श उदार, न्याय्य अथवा उच्च न थे और बहुत दर्जे तक हमारी स्त्रियों की वर्तमान अधोगति प्राचीन आदर्शों की निकृष्टता का ही उत्तरफल है।

मनु से हटकर यदि हम अधिक अर्वाचीन समय की ओर ध्यान देते हैं तो भी दृश्य अधिक सन्तोषदायक प्रतीत नहीं होता । गोस्वामी तुलसीदास जी की वह अद्वितीय कविता जिसने गत तीन सौ वर्षों में विशेष कर उत्तरीय भारत के हिन्दुओं पर बहुत प्रबल प्रभाव डाला है और जिसमें निस्सन्देह कविताकी सुन्दरता के अतिरिक्त अनेक स्थानों पर कूट कूटकर उच्च नैतिक तथा दार्शनिक सिद्धान्त भी भरे हुए हैं अभागी स्त्रियों के विषय में अपने समय की हवा से ऊपर न उठ सकी । रामायण में अनेक स्थानों पर ही "त्रिया चरित्र" अत्यन्त अपमानसूचक तथा घृणित अर्थों में वर्णन किया गया है। नीचे लिखे हुए पदों को पढ़कर सहस्रों वर्षों के अन्याय से दबी हुई स्त्रियां भले ही प्रसन्न हों किन्तु कोई आत्मगौरव के पवित्र सिद्धान्त में विश्वास रखनेवाली स्त्री उन्हें सुनना तक सहन नहीं कर सकती :—

सत्य कहहिं कवि नारि सुभाऊ ।
सब बिधि अगम अगाध दुराऊ (अयोध्या)
ढोल गँवार शूद्र पशु नारी ।
ये सब ताड़न के अधिकारी (सुन्दर)

हम आशा करते हैं कि इन कतिपय उद्धरणों द्वारा पाठकों को हमारे इस कथन की सत्यता का विश्वास होगया होगा कि प्राचीन समय से स्त्रियों के विषय में हमारे आदर्श इतने हीन रहे हैं कि उन्हें स्वतंत्रता का प्रदान किया जाना अथवा अपने व्यक्तित्व के विकास का अवसर दिया जाना नितान्त असम्भव था।

हीन आदर्शों का परिणाम।

निस्सन्देह इस ही प्रकार के संकुचित तथा अनुदार विचारों का परिणाम है कि आज दिन तक हमारे देश के अनेक बड़े बड़े विद्वान तथा देशभक्त स्त्रियों के विषय में अधिक उच्च भाव प्रकट नहीं कर सकते। वे स्त्रियों को किसी प्रकार की स्वतंत्रता देना जाति के लिए हानिकारक समझते हैं। उन्हें स्त्रियों के मनुष्यत्व अर्थात् उनके व्यक्तित्व को विकास देने की कोई आवश्यकता ही दिखाई नहीं देती। इसमें से अनेक स्त्रियों को अंगरेज़ी पढ़ाने अथवा उन्हें वैज्ञानिक तथा अन्य उच्च शिक्षा देने तक के विरोधी हैं।

इन लोगों के अनुसार स्त्रियों को अधिक से अधिक थोड़ी सी भाषा पढ़ा देना जिससे वे अपने सम्बन्धियों के साथ पत्रव्यवहार कर सकें, उन्हें थोड़ी सी मज़हबी शिक्षा दे देना अथवा सीना, पिरोना, भोजन पकाना सिखा देना ही उनके लिए पर्याप्त से अधिक शिक्षा है। इस प्रकार के लोग जब स्त्रियों को अपनी जिह्वा अथवा लेखनी द्वारा उपदेश देने लगते हैं तो एक पातिव्रत धर्म के अतिरिक्त उन्हें और कोई भी विषय सूझ नहीं पड़ता।

हम पातिव्रतधर्म के विरोधी नहीं हैं। हम स्वीकार करते हैं कि प्रत्येक विवाहिता स्त्री का धर्म है कि वह एक पति को छोड़कर किसी भी दूसरे पुरुष की ओर विषय की लालसा से न देखे। ऐसे ही प्रत्येक अविवाहिता कन्या अथवा स्त्री को उचित है कि वह चरित्र को दूषित न होने दे। किन्तु साथ ही हम स्त्रियों के लिए इस धर्म को पालन करना उतना ही ठीक, उतने ही और केवल उतने ही महत्व का समझते हैं जितना कि प्रत्येक विवाहित पुरुष के लिए पत्नीव्रत धर्म को पालन करना। यदि पुरुष को केवलमात्र पत्नीव्रत धर्म ही स्वर्ग के द्वार तक नहीं पहुंचा सकता तो स्त्रियों को इस प्रकार के उपदेश देना केवल उनकी श्रद्धा पर अनुचित ज़ोर देना है तथा उन्हें भ्रम में डालना है। यदि पुरुषों को एक पत्नीव्रतधर्म के अतिरिक्त और भी सहस्रों बातों के सीखने की आवश्यकता है तथा उन्हें और भी सहस्रों विषयों पर उपदेश व्याख्यान दिये जा सकते हैं और दिये जाते हैं तो कोई कारण नहीं कि स्त्रियों के लिए भी और अनेक अधिक उच्च तथा अधिक आवश्यक विषयों पर उपदेश क्यों न दिये जावें। हम कहे बिना नहीं रह सकते कि हमारे देश की स्त्री-शिक्षा अथवा स्त्री-उपदेशों में पातिव्रत धर्म पर उचित से कहीं अधिक ज़ोर दिया जाता है। हम यह भी कहे बिना नहीं रह सकते कि असमय तथा कुसमय स्त्रियों के सम्मुख केवल पातिव्रत धर्म के ही राग अलापना ठीक वैसा ही प्रतीत होता है जैसा कि कोई स्वेच्छाचारी विजेता अथवा शासक मौके बेमौके अपनी पाददलित प्रजा को राजभक्ति के ही उपदेश सुनाता रहे। इतना ही नहीं वरन् जिस प्रकार उस स्वेच्छाचारी शासक के इस प्रकार के उपदेश सूचित करते हैं कि उसके हृदय में अपनी प्रजा की राजभक्ति के विषय में कुछ सन्देह है ठीक उस ही प्रकार स्त्रियों को रात दिन पातिव्रत धर्म के ही व्याख्यान देना इस बात को सिद्ध करता है कि व्याख्याता के विचार स्त्री जाति के स्वभाव तथा उनके स्वाभाविक चरित्र के विषय में अत्यन्त हीन हैं।

इसके अतिरिक्त अनन्य पतिनिष्ठा अथवा एक बिके हुए दास के समान पति की आज्ञाओं का अनियत आज्ञापालन एक ऐसा आदर्श है जिसे हम स्त्रीजाति के लिए अपमान-सूचक तथा उनकी उन्नति के लिए बाधक समझते हैं। हम समझते हैं कि किसी भी स्त्री अथवा पुरुष को इस प्रकार अपनी आत्मा किसी भी दूसरे के हाथ न बेचनी चाहिये। मनु का यह कथन कि पति चाहे दुराचारी भी क्यों न हो तो भी स्त्री उसकी देवता के समान पूजा करे हमें घृणित तथा अमानुषिक प्रतीत होता है। हमें विश्वास

है कि इस विषय में स्त्री जाति का भावी आदर्श सीता, द्रौपदी तथा दमयन्ती के आदर्शों से भिन्न तथा उनसे अधिक उच्च होगा।

आदर्श परिवर्तन की आवश्यकता।

आवश्यकता केवल इस बात की है कि जिस समय हम एक बार किसी विषय में अपने प्राचीन आदर्श की हीनता को समझ लेवें अथवा इस बात को जान जावें कि वह आदर्श हमारी भावी उन्नति में बाधा डालनेवाला है तो निर्भीकता के साथ तुरन्त उस आदर्श को त्याग कर अधिक उपयोगी, अधिक न्याय्य तथा अधिक उच्च नवीन आदर्श को स्वीकार करलें। वास्तव में संसार का कोई भी आदर्श चाहे वह कितना भी उच्च क्यों न हो सदा के लिए मनुष्यजाति का मार्गप्रदर्शक नहीं रह सकता। जिस प्रकार ज्यों ज्यों एक यात्री आगे को बढ़ता जाता है त्यों त्यों उसके सामने का दिङ्मंडल बदलता जाता है ठीक उस ही प्रकार समय के साथ २ अर्थात् नवीन स्थिति, नवीन आवश्यकताओं तथा मनुष्यजाति की उन्नति के साथ साथ प्रत्येक राष्ट्र अथवा जाति के पुरातन आदर्शों का थोड़ा बहुत बदलते रहना स्वाभाविक तथा आवश्यक है। जीवित जातियां सदैव नवीन स्थित, नवीन आवश्यकताओं तथा नवीन विचारों के अनुसार अपने आदर्शों को पलटती रहती हैं और जो जाति अपने पूर्वजों की त्रिकालदर्शिता इत्यादि अंधविश्वासों में फँसी हुई हर काल में उन पूर्वजों के स्थापन किये हुए अपने पुरातन आदर्शों में ही चिमटी रहती है वह अपने इस पाप के प्रायश्चित्त रूप उन्नति तथा जीवन के मार्ग से हटाई जाकर धीरे धीरे अवनति तथा मृत्यु की ओर जाने लगती है। निस्सन्देह इस विषय में एक विद्वान जापानी लेखक ने सच कहा है:—

Progressiveness and conservation are inconsistent अर्थात् उन्नतिशील होना और सनातनत्व से चिमटे रहना ये दोनों बातें परस्पर विरोधी हैं।

न्याय तथा समता का व्यवहार।

हम ऊपर कह चुके हैं कि पुरुष तथा स्त्री दोनों ही मनुष्यजाति के एक तुल्य अंग हैं। हमारे इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक देशसेवक अथवा मनुष्यजाति के सेवक के लिए आवश्यक है कि उसे स्त्रीजाति के मनुष्यत्व में पूर्ण विश्वास हो। मनुष्यजाति की वास्तविक उन्नति के लिए आवश्यक है कि स्त्री तथा पुरुष के बीच न्याय तथा समता का व्यवहार हो। आवश्यक है कि प्रत्येक स्त्री तथा पुरुष की व्यक्तिगत मानसिक तथा नैतिक शक्तियों को स्वतंत्रता के साथ विकसित होने का पूरा पूरा अवसर दिया जावे। पुरुष तथा स्त्री दोनों की शिक्षा का यही वास्तविक उद्देश्य होना चाहिये और इस उद्देश्य की दृष्टि से स्त्रियों को ठीक उस ही प्रकार की उच्च से उच्च साहित्य सम्बन्धी तथा विज्ञान सम्बन्धी शिक्षा मिलनी चाहिये जिस प्रकार की पुरुषों को मिलती है। इस सम्बन्ध में स्त्रियों को यात्रा आदिक के वे सब अधिकार तथा अवसर प्राप्त होने चाहियें जो पुरुषों को प्राप्त हैं। बिना इस प्रकार की समता के स्थापन किये अर्थात् बिना स्त्रियों के मार्ग से अनेक अनुचित रुकावटों के दूर किये स्त्रियों की वास्तविक मानसिक तथा नैतिक उन्नति असम्भव है। परदा, छोटी उम्र के विवाह इत्यादि की अनुचित प्रथाएँ जितने शीघ्र कथामात्र शेष करदी जावें उतना ही शुभ है। परदे के विषय में हम इस बात को कदापि स्वीकार नहीं करते कि जब तक समस्त स्त्रियां शिक्षित न हो जावें उस समय तक उन्हें परदे में रखना आवश्यक है। इस प्रकार की लचर दलीलें करनेवाले या तो स्वभाव से ही स्त्री को पुरुष की अपेक्षा अधिक नीच समझते हैं अन्यथा उनके लिए अधिक उपयुक्त हो यदि वे भारत के अशिक्षित पुरुषों को

जिनकी संख्या करोड़ों है परदे के भीतर रहने का उपदेश दें। यदि हमारी अनेक स्त्रियां इस प्रकार के अपमान को अपमान अनुभव नहीं करतीं तो इसका कारण केवल यह है कि शताब्दियों के अन्याय तथा भ्रष्ट निग्रह ने—इस अन्याय ने जो धर्म (?) के नाम पर उनके साथ लगातार किया जाता रहा—उनकी आत्माओं को इतना गिरा दिया है कि वे अन्याय को अन्याय ही नहीं समझतीं तथा उनकी आत्मा के भीतर उच्च आकांक्षाएँ उत्पन्न ही नहीं होतीं।

चीन तथा जापान से शिक्षा।

हम ऊपर संकेत कर आये हैं कि चीन तथा जापान की आर्वाचीन राष्ट्रीय चेष्टाओं से हम इस विषय में बहुत कुछ अमूल्य शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। कुछ समय पूर्व उन दोनों देशों में भी स्त्रीजाति के विषय में ठीक वैसे ही अनुचित विचार प्रचलित थे जैसे इस समय तक भारत में हैं। प्राचीन चीन में जब कि प्रत्येक बालक की शिक्षा के लिए पाठशालाएँ होती थीं बालिकाओं को घर के कामकाज के अतिरिक्त और किसी प्रकार की भी शिक्षा दिया जाना निषिद्ध था। चीन की स्त्रियाँ अपने यहाँ के नीच तथा निर्दय पुरुषों की दृष्टि में सुन्दर तथा सुकुमार दिखाई देने के लिए बचपन से ही एक विचित्र प्रकार से अपने पैरों को कसती थीं और उन्हें बढ़ने से रोकती थीं। किसी भी भले घर की स्त्री का दूसरे घर के लोगों को दिखाई दे जाना अत्यन्त अपमानसूचक समझा जाता था और जब कभी कोई स्त्री एक स्थान से दूसरे स्थान को जाती थी तो जिस गाड़ी में वह बैठी होती थी उसके चारों ओर परदों का पड़ा होना अत्यन्त आवश्यक था। जापान के इतिहास में यद्यपि परदे का रिवाज कहीं नहीं मिलता तथापि आज से केवल पचास साठ वर्ष

चीन के जगत्प्रसिद्ध देशभक्त तथा चीनी राज्यक्रान्ति के प्रधान रचयिता डाक्टर सुनयात सेन की पुत्रियाँ जिनमें से बड़ी अन्य अनेक चीनी युवतियों के साथ एमेरिका में शिक्षा पारही हैं।

पूर्व तक इस देश में पुरुष शिक्षा तथा स्त्री शिक्षा के आदर्शों में ठीक वैसा ही अन्तर था जैसा भारत में। मध्यकालीन जापान के शास्त्रकार भी स्त्री को स्वतंत्रता के योग्य नहीं बताते थे आज से साठ वर्ष पूर्व जापान में भी स्त्री, पुरुष की केवल एक आज्ञाकारी दासी अथवा उसके चित्त को प्रसन्न करने के लिए केवल एक खिलौना ही समझी जाती थी। उस समय कई शताब्दियों से जापान में एक पुस्तक प्रचलित थी। जिसकी एक न एक प्रति प्रायः प्रत्येक घराने में रक्खी होती थी। इस पुस्तक का नाम "ओज़ादाई डाकू" था जिसका शब्दार्थ "स्त्रियों के लिए महान उपदेश" है। इस पुस्तक में पिता, भाई, पति, ससुर तथा ज्येष्ठ पुत्र का अनियत आज्ञापालन ही स्त्री का सबसे बड़ा धर्म बतलाया गया है। पुस्तक में एक वाक्य आता है जो मनुस्मृति के पाँचवें अध्याय के उस १४८वें श्लोक का शब्दशः अनुवाद प्रतीत होता है जिसे कि हम इस लेख में ऊपर उद्धृत कर चुके हैं।

किन्तु आज इस विषय में चीन तथा जापान दोनों देशों की दशा सर्वथा पलटी हुई है। चीन में पैर बाँधने की प्रथा दिनों दिन वेग के साथ लोप होती जा रही है यहाँ तक कि यदि कोई छोटे पैरोंवाली स्त्री आजकल सभा आदिक में जाती है तो वह बड़े बड़े जूते पहर कर और उनकी खाली जगह को रुई से भर कर अपने पैरों के छोटेपन को छिपाने का प्रयत्न करती है। चीन की जो पुत्रियाँ पहिले घर की चारदीवारी के भीतर बन्द रहती थीं अब उनकी सार्वजनिक शिक्षा और उच्च से उच्च साहित्य तथा विज्ञानसम्बन्धी शिक्षा के लिए देश में अनेक स्कूल, कालेज, मेडिकल कालेज इत्यादि खुले हुए हैं और अनेकानेक खुलते जाते हैं। इससे भी बढ़कर आज दिन चीन की अनेक युवतियाँ समुद्रयात्रा कर अमेरिका तथा इंगलैंड के अनेक विश्वविद्यालयों में सर्वोच्च शिक्षा ग्रहण कर रही हैं। अर्वाचीन चीन की एक और बात भारत के युवकों तथा युवतियों के लिए ध्यान देने योग्य यह है। १९१२ की चीनी राज्यक्रान्ति के समय चीन की अनेक युवतियों ने अपनी एक पृथक सेना बनाई थी! इन वीरा युवतियों ने मरदाना वेष धारण कर पुरुषों के समान शस्त्र हाथ में लिए, राज्यक्रान्ति की अनेक लड़ाइयों में भाग लिया और इनमें से अनेकों ने अपनी प्यारी जन्मभूमि की स्वतंत्रता के नाम पर लड़कर अपने प्राण तक न्योछावर किये। हमें विश्वास है कि स्त्रियों की जिस शारीरिक अथवा मानसिक निर्बलता को हम उनकी स्वाभाविक निर्बलता समझ बैठे हैं वह अधिकतर केवल शताब्दियों के भ्रष्ट निग्रह तथा अनुचित शिक्षा का ही परिणाम है और एक तुल्य अवसर मिलने पर स्त्रियां किसी शुभ कार्य में पुरुषों से पीछे नहीं रह सकतीं।

जापान में चीन से भी कहीं बढ़कर परिवर्त्तन देखने में आता है। कुछ समय हुआ एक जापानी विद्वान ने अपने यहां की स्त्रियों के प्राचीन आदर्श तथा उनकी नवीन आकांक्षाओं की तुलना करते हुए लिखा था :—

Forages the Japanese woman has been placed at an immense disadvantage in competition with man. The time is now at hand when she is no longer content to be slave. Her humiliations she is determined to push into the past and keep them there, and claim equal respect and hapipness with man.....
The cry now is that women are no longer to be as pet birds in a cage for the amusement of man, or as dolls to be played with by him, and that she must be regarded as a human being even beforeIshe is regarded as a woman. (Gends Mimada)

अर्थात्—शताब्दियों से जापानी स्त्री को पुरुष के मुकाबले में (उन्नति करने के लिए) अत्यन्त ही प्रतिकूल स्थिति का सामना करना पड़ा है।

अब वह समय आरहा है जब कि जापानी स्त्री क्षणभर के लिए भी पुरुष की दासी बने रहने से सन्तुष्ट न होगी। उसने दृढ़ संकल्प कर लिया है कि वह अपनी (पिछली) मानहानियों को भूतकाल में ढकेल कर उन्हें वहां ही परिमित करदे और पुरुष के साथ बराबर के मान तथा बराबर के सुख का दावा करे.....

यह ध्वनि गूँज रही है कि स्त्रियां अब क्षण मात्र भी पुरुष के विनोद के लिए तोते अथवा मैना के समान पिंजरें में बन्द नहीं रह सकतीं और न उसके खेलने के लिए गुड़ियां ही बनी रह सकती हैं और यह कि स्त्रियों को स्त्रियां समझने से भी पहले उनके मनुष्य होने का विचार रखना होगा।

एक दूसरा जापानी विद्वान अधिक हाल में जापानी स्त्रियों के प्राचीन धर्म-शास्त्र "ओन्ना दाईगाकू" के दोष दर्शाते हुए लिखता है :—

The day when woman can be regarded as the private property of man in this country has for ever passed away.

अर्थात्—वह दिन जब कि स्त्री पुरुष की व्यक्तिगत सम्पत्ति समझी जा सकती थी अब जापान में सदा के लिए बीत चुका।

निस्सदेह जापान में स्त्रीजाति की अवस्था इस समय पूर्व की अपेक्षा सर्वथा पलटी हुई है और किसी किसी बात में अनेक यूरोपियन देशों की अपेक्षा भी वहां कहीं अधिक उन्नति है। पिछली शताब्दी के अन्त के दिनों में उस देश के एक प्रसिद्ध देशभक्त तथा नवीन जापान के प्रधान रचयिता मिस्टर फुकुज़ावा ने "ओन्ना दाईगाकू" के विरुद्ध इसकी एक एक बात को काटते हुए "शीन ओन्ना दाईगाकू" नाम की एक नई पुस्तक लिखी है। "शीन ओन्ना दाइगाकू" का शब्दार्थ 'नई स्त्रियों के लिए महान उपदेश' है। इस पुस्तक में लेखक ने स्त्री तथा पुरुष की समता का प्रतिपादन किया है। थोड़े ही दिनों के भीतर यह ग्रन्थ जापानी स्त्रियों का नवीन धर्मशास्त्र बन गया है।

चीन की अनेक युवतियां में से दो जिन्होंने मरदों के समान फौजी वेषधारण कर सन् १९१२ की चीनी राज्यक्रान्ति की अनेक लड़ाइयों में भाग लिया।

जापान में ६ वर्ष की प्रारम्भिक शिक्षा बालकों तथा बालिकाओं दोनों के लिए एक समान क़ानूनन आवश्यक है। अशिक्षित स्त्री इस समय समस्त देश में ढूंढ़े से भी नहीं मिलती। जबकि एक ओर भारत की ३१ करोड़ आबादी में से यहां के समस्त सरकारी तथा ग़ैर सरकारी पाठशालाओं, स्कूलों तथा कालेजों में केवल ६,५४००० लड़कियां शिक्षा पाती हैं जिनमें यूरोपियन गर्ल्स स्कूलों की यूरोपियन लड़कियां भी शामिल हैं दूसरी ओर जापान की केवल ५ करोड़ ३० लाख आबादी में से सन १९११ में वहां के केवल प्रारम्भिक स्कूलों में ही २७ लाख लड़कियां शिक्षा पाती थीं। अनेक मिडिल स्कूलों, हाई स्कूलों, नार्मल स्कूलों, कालेजों इत्यादि के अतिरिक्त उस देश में केवल स्त्रियों ही के लिए दो बड़े बड़े "हायर नार्मल स्कूल हैं जिनमें स्त्रियों को हाई स्कूलों की अध्यापिकाएं बनने के लिए शिक्षा दी जाती है। स्मरण रहे कि जापान के हाई स्कूलों में बालक तथा बालिकाएं ११ वर्ष की शिक्षा पूरी करने के पश्चात् प्रवेश करती हैं। उन हाई स्कूलों की शिक्षा हमारे यहां के हाई स्कूलों की शिक्षा से नहीं वरन् हमारे कालेजों की शिक्षा के साथ तुलना करने योग्य है। और वहां के "हायर नार्मल स्कूल" हमारे देश के टेक्निकल कालेजों से कहीं उच्च श्रेणी की संस्थाएं हैं। हम इस छोटे से लेख में जापानी स्त्रियों की शिक्षा के विषय में अधिक लिखने में असमर्थ हैं। तथापि अपने पाठकों तथा पाठिकाओं के हृदयों पर जापानी स्त्री की वर्तमान स्थिति को अंकित करने के लिए हम यह और बता देना आवश्यक समझते हैं कि उस देश में केवल स्त्रियों ही की शिक्षा के लिए एक पृथक "स्त्री विश्वविद्यालय" है जहां पर लगभग दो हज़ार जापानी युवतियों को साहित्य तथा विज्ञान सम्बन्धी सर्वोच्च शिक्षा दी जाती है। और इस पर भी आज ४२ वर्ष से प्रतिवर्ष अनेकानेक जापानी युवतियां यूरोप तथा विशेषकर अमेरिका के विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए जाती हैं। पाठक पाठिकाओं को यह भी जान लेना चाहिये कि अधिकांश जापानी युवतियां कम से कम २१ वर्ष की आयु हो जाने पर तथा बहुत सी उसके भी पश्चात् विवाह करती हैं।

शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् समस्त जापानी स्त्रियां केवल घर बार के काम तक ही अपने कर्मक्षेत्र को परिमित नहीं रखतीं। जापान के रेलवे स्टेशनों, डाकख़ानों, तारघरों, तिजारती दफ़्तरों, कारख़ानों, सरकारी दफ़्तरों इत्यादि में सहस्रों जापानी स्त्रियां अपनी लेखनी तथा बुद्धि द्वारा स्वतंत्र जीविका लाभ करती हैं। अनेक स्त्रियां डाक्टरी द्वारा भी विपुल धन कमाती हैं। और विशेषकर वहां के प्राइमरी, मिडिल तथा हाई स्कूलों में सहस्रों ही स्त्रियां राष्ट्र के बालक तथा बालिकाओं को शिक्षा देने का शुभ कार्य करती हैं। अनेक ही समाचार पत्रों तथा पत्रिकाओं की सम्पादिका तथा लेखिका हैं।

स्त्रियों ही की जापान में अनेकानेक सभा समितियां हैं। जिनमें सब से प्रसिद्ध इस समय Ladies' Patriotic Association (स्त्रियों के लिए देशभक्ति की सभा) नाम की एक सभा है जिसकी सैकड़ों शाखा समितियां हैं, जिसके सभासदों की संख्या आठ लाख है और जिसके पास इस समय चन्दों का मिला हुआ २५ लाख रु० के लगभग धन है। शान्ति तथा युद्ध दोनों अवसरों पर यह देशभक्त सभा वास्तविक देश सेवा के अनेक कार्यों में लगी रहती है। देश-भक्तिपूर्ण साहित्य का फैलाना सभा के अनेक कार्यों में से केवल एक है। विशेषकर रूस जापान युद्ध के समय इस सभा ने जो जो आश्चर्यजनक कार्य किये और देशभक्ति तथा आत्मोत्सर्ग के जो जो चमत्कार दिखलाये वे वास्तव में मनुष्यजाति के गौरव को द्विगुण कर-देनेवाले हैं।

सारांश यह कि चीन तथा जापान दोनों एशियायी देशों की स्त्रियों ने अपने पुरातन आदर्शों का तिरस्कार करते हुए अर्वाचीन उदार विचारों की सहायता द्वारा एशियायी जागृति के प्रवाह से पूरा पूरा लाभ उठाया है ऐसी अवस्था में समझ में नहीं आता कि हमारे देश की स्त्रियां ही इस राष्ट्रीय जागृति की लहर से सदा के लिए बाहर क्यों रहें? कोई कारण नहीं दिखाईदे ता कि वे भी अपने पुरातन आदर्शों की न्यूनताओं को समझती हुई अपनी उन्नति द्वारा देश तथा मनुष्य समाज की अर्वाचीन उन्नति में पूरा पूरा भाग क्यों न लें? हमें विश्वास है कि भारत की भावी स्त्री पुरुष के साथ अपनी समता का प्रतिपादन करती हुई देश तथा मनुष्य समाज को अपने तथा अपने पति से ऊपर स्थान देगी और आत्मा की पवित्रता में विश्वास रखती हुई अपनी अन्तरात्मा को सब से ऊपर रक्खेगी। विवाहिता रहकर अथवा अविवाहिता रहकर अपने व्यक्तित्व को पूर्ण विकास देना और अपने व्यक्तिगत विचारों के अनुसार देश तथा मनुष्य समाज की सेवा करना वह अपने जीवन का पवित्रतम उद्देश्य समझेगी। जब तक यह न होगा तब तक देश के सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक जीवन में पर्याप्त तथा वास्तविक उन्नति का होना असम्भव है।

भारत के देशभक्त पुरुषों से प्रार्थना।

अन्त में हम अपने देश के शिक्षित पुरुषों तथा शिक्षित स्त्रियों से पृथक पृथक एक एक शब्द कह कर इस लेख को समाप्त करते हैं।

हमारे देश के पुरुषों में से जो लोग अपने को देशभक्त बतलाते हैं किन्तु स्त्रियों को थोड़ा बहुत अपने अधीन रखना आवश्यक समझते हैं उनसे हम केवल संसार भर के समस्त देशभक्तों के पूजास्पद इटली देश के सुप्रसिद्ध देशभक्त जोज़फ़ मैज़िनी के निम्नलिखित शब्दों में प्रार्थना करते हैं:—

Cancel from your minds every idea of superiority over women. You have none whatsoever.

Long prejudice, an inferior education, anda perennial legal inequality and injustice, have created that *apparent* intellectual inferiority which has been converted into an argument of continued oppression.

... ...

Consider woman, therefore, as the partner and companion, not merely of your joys and sorrows, but of your thoughts, your aspirations, your studies and your endeavours after social amelioration. Consider her your equal in your civil and political life. Be ye the two human wings that lift the soul towards the ideal we are destined to attain.

(Joseph Mazzini)

अर्थात्—स्त्री जाति की अपेक्षा अपनी श्रेष्ठता के प्रत्येक विचार को अपने मस्तकों से बाहर निकालदो। तुम में कोई किसी प्रकार की भी श्रेष्ठता नहीं है।

दीर्घकाल के पक्षपात, निकृष्ट शिक्षा और निरन्तर व्यावहारिक असाम्य तथा अन्याय ने मिलकर उस ऊपरी मानसिक हीनता को गढ़ रक्खा है जो हीनता के लगातार अत्याचार के लिये एक दलील बनालो गई है।

... ...

तुम दोनों इस प्रकार के दो मानवी पंख बन जाओ जो आत्मा को उड़ाकर उस आदर्श की ओर ले जाय जिस आदर्श तक पहुंचना कि हमारे लिए निर्णीत है।

भारत की शिक्षित स्त्रियों का राष्ट्र की ओर विशेष दायित्व।

अब से अन्त में हम अपने देश की शिक्षित युवतियों का आह्वान करते हैं :—

युवतियों! स्मरण रक्खो इस विषय में पुरुषों की अपेक्षा तुम्हारा दायित्व कहीं अधिक बढ़कर है। क्षण भर के लिए स्त्रियों की एक पृथक जाति मानते हुए अपने हृदयों पर इस सत्यता को अंकित कर लो कि गिरे हुए राष्ट्रों के समान गिरी हुई जातियां भी अधिकतर अपने बल ही खड़ी हो सकती हैं। निस्सन्देह भारतीय स्त्री का उद्धार करना पुरुष तथा स्त्री दोनों का कर्तव्य है किन्तु जिस समय तक तुममें से अनेक जापानी स्त्रियों के समान "अपनी पुरानी मानहानियों को भूतकाल तक परिमित कर देने का दृढ़ संकल्प" न कर लेंगी उस समय तक पुरुष के लिए मानुषिक निर्बलताओं से ऊपर उठकर तुम्हारे बन्धनों को तोड़ डालना अत्यन्त दुष्कर है। तुम इस विषय में स्वयं अपने कर्तव्य को समझो। साहस के साथ शताब्दियों के बन्धनों को तोड़कर अर्वाचीन उदार शिक्षा द्वारा अपने पूर्ण मनुष्यत्व को प्राप्त करो। तुम स्वयं उदार स्त्री शिक्षा के उचित तथा विस्तृत प्रबन्ध द्वारा अपनी अशिक्षित अथवा अर्धशिक्षित बहनों को प्राचीनत्व की अंधकारमय माया से बाहर निकालो। उन्नत राष्ट्रों के इतिहासों के अध्ययन द्वारा देश तथा मनुष्य समाज की ओर अपने कर्तव्य का निश्चय करो। आवश्यक है कि तुम स्वयं अपने स्त्रियां होने से भी पूर्व अपने मनुष्य होने का विचार रक्खो। फिर जब तुम एक बार अपनी आत्मा के सन्मुख देश तथा मनुष्य समाज की ओर अपने कर्तव्यविशेष का निश्चय कर लोगी तो संसार की कोई भी शक्ति तुम्हारे तथा तुम्हारे मानुषिक कर्तव्य के बीच में न आ सकेगी। जब कभी अपनी अन्तरात्मा सन्तुष्ट रखने का प्रश्न तुम्हारे सन्मुख हो तो स्मरण रक्खो कि अन्तरात्मा की आज्ञा के सन्मुख माता, पिता, पति, सास तथा श्वसुर सब की आज्ञाएँ तिरस्कार्य हैं। इस प्रकार के विचारों को सामने रखते हुए ही तुम देश के धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन में उचित भाग लेने के समर्थ हो सकती हो।

निस्सन्देह तुममें से अनेक विवाहिता रहकर ही देश की ओर अपने कर्तव्यों का भली प्रकार पालन कर सकती हैं। हम पुरुष तथा स्त्री दोनों के लिए विवाहित जीवन ही को नैसर्गिक जीवन समझते हैं। किन्तु इस अभागे देश की असाधारण तथा निसर्ग विरुद्ध वर्त्तमान अवस्था में यदि तुममें से कुछ अविवाहिता रहकर भी देश तथा राष्ट्र की सेवा में अपना जीवन व्यतीत करदें तो कौन आश्चर्य है? गोखले तथा लाजपतराय जैसे हमारे विचारवान नेता अनेक बार देश में पोलिटिकल अर्थात् राजनैतिक सन्यासियों की आवश्यकता प्रकट कर चुके हैं। हमें विश्वास है कि वह दिन देश के भविष्य के लिए अत्यन्त शुभ तथा धन्य होगा जिस दिन हमारी अनेक युवतियां भी देशप्रेम के पवित्र उन्माद में डूबी हुई विवाहित जीवन के सुख सौख्य को तिलाञ्जलि दे, निःस्वार्थ व्रत धारण कर अपने कष्टसहन तथा आत्मत्याग द्वारा राष्ट्रीय जागृति के महान् कार्य को एक आश्चर्यजनक पवित्रता प्रदान करेंगी।

अभिमन्यु और सुभद्रा।

वीरमाता का पुत्र को उपदेश।

[लेखक—ठाकुर किशोरसिंह।]

[१]

अब हुआ सुभद्रासूनु सुसज्जित समरक्षेत्र को।
नव मुंडमाल पहिनाय मुदित करने त्रिनेत्र को॥
दे सुमित्र* को आदेश रज्जरथ को कर रखने।
तब गया जननि के निकट स्वयं सन्नाह† पहिनने॥

[२]

यह आर्य्यजाति की प्रथा सदा से है चलि आई।
स्तनपान कराकर सुकुट बँधाती सुत को माई॥
नीराजन करके प्रिया कमर में खड्ग बँधाती।
रणक्षेत्र गमन से प्रथम हर्ष कर वलय‡ दिखाती॥

[३]

माता ने मस्तक सूंघ पुत्र को हृदय लगाया।
अरु उष्ण अपत्य-स्नेह-जनित-प्रेमाश्रु बहाया॥
चुंबित कर गौर कपोल लगी स्तन-पान कराने।
लखि बार बार विधु-वदन लगी सुत को समझाने॥

[४]

तव वय किशोर है वत्स! देह सुकुमार तुम्हारी।
मूछों की रेखा चंद्र-वदन पर नहीं प्रसारी॥
नहिं दांत दुग्ध के गिरे अभी तक पले प्यार में।
खेले हो द्वारावती-पुरी§ के शुभागार में॥

[५]

हे पांडुवंश-तरु-पुष्प! पूर्ण शिक्षा नहिं पाई।
अरु व्यूह-भेद की तुम्हें अभी कुछ कला सिखाई॥
सीमन्तोत्सव तक नहीं गर्भ में कवच ली थी।
मातुल मधुरिपुने तभी तुझे रणविद्या दी थी॥

[६]

पाई है तुमने पुत्र! जनक से रण की शिक्षा।
मामा से तुमने सुनी सकल सिद्धान्त समीक्षा॥
दोनों ने मिलकर गूढ़ मंत्र सब तुम्हें सिखाये।
इससे लघु वय में तात! महारथ पद तुम पाये॥

[७]

इसही से तुम हो बने पुत्र! रणविषय-विशारद।
गंधक सम नाशन हेतु सकल कौरवकुल-पारद॥
मामा हों कंसारांति तात हों अर्जुन जिसके।
विद्या वा बल की कमी कभी क्या होती उसके॥

[८]

कर शौर्य जिन्हों का स्मरण लोक सब कंपित होते
उनही के सम-बल-वीर्य पाकशासन के पोते!॥
अब तक जो मातुल और जनक से शिक्षा पाई।
प्रिय वत्स! उसीकी आज परीक्षा-वेला आई॥

[९]

सुत! अनुत्तीर्ण कहिं देख परीक्षा में मत होना।
तव तात कमाया नाम कहीं उसको न डुबोना॥
या तो दुर्विजयी शत्रुगणों पर जय पा आना।
रण आहुति देकर स्वीय नाम शेष कि हो जाना॥

[१०]

सुत! तुम हो लघुवय धार्त्तराष्ट्र अतुलित बलधारी
पर तृण समूह को क्या न भस्म करती चिनगारी
या तो तुम बनकर उग्र, तूल ज्यों उन्हें जलाना।
या कुरु-कुल-प्रलय-पयोद-वारि में खुद बुझ जाना

[११]

अतुलितबल-आकरसुपय पिया मम तुमने बालक
लगतेही जिसकी धार निकलती छेद शिला तक॥
मेरा वह बलकर दूध भूलकर भी न लजाना।
तुम वत्स! देखना कहीं पीठ रिपुको न दिखाना॥

[१२]

तव निर्मल यशः शरीर मुझे सुत! अतिगमता* है
तेरे इस भौतिक देह में न मुझको ममता है॥
या तो मैं विजयी, मरा तुम्हें या वीर! सुनूंगी।
मम 'वीर-प्रसविणी' नाम तभी सार्थक समझूंगी

---

* अभिमन्यु का सारथी। † टोप (झिलिम)। ‡ कड़ा (चूड़ा)। § द्वारका।

* कृचिका होता है।

[१३]

दोला में बिठला पुत्र! तुम्हें मैं जभी झुलाती।
तब निकट बैठ मैं वत्स! गीत यह नित्य सुनाती॥
"मरना है प्राकृत धर्म विकृति जग में है जीना।
निज जन्मभूमि-रक्षार्थ वीर! मरना ही जीना॥"

[१४]

शिशुपन का वह उपदेश नहीं सुत! भूले होगे।
आशा है; शिक्षा वही आज चरितार्थ करोगे॥
देखो वह निर्जर-वृन्द व्योम में विचर रहा है।
तव शुभागमन की राह स्वर्ग में देख रहा है॥

[१५]

लखि जन्मभूमि पर-दलित आत्म-उत्सर्ग न करता
वह कायर नर जीवनोद्देश्य से निश्चय गिरता॥
पर-दास्य भाव से जन्मभूमि को तात छुड़ाना।
सुत! न्हाकर धारातीर्थ वीरगति को तुम पाना॥

[१६]

जो कवचअभेद्य सुपुत्र! जनक ने तुम्हें पिन्हाया।
वीरोचित सुन्दर वेश देख मेरे मन भाया॥
इस वीर वेश का वत्स! निभाना पूरा बाना*।
निज जन्मभूमि-रक्षार्थ वीर! तिल २ हो जाना॥

[१७]

हम अधिक क्या कहें वत्स! आर्यकुलधर्म यही है।
इसलिए वीर अभिमन्यु! यही शुभ आशिष दी है॥
सुत! कुरुसत्ता† का नाश कभी करते मत हटना।
निज जन्मभूमि रक्षार्थ वीर! तिल २ हो कटना॥

[१८]

माता ने कह इस भांति पुत्र सिर मुकुट धराया।
फिर एक बार तब और वक्ष से उसे लगाया॥
अरु कहा; शीष को नमा कलंकित इसे न करना।
निज जन्मभूमि रक्षार्थ वीर तिल २ हो गिरना॥

[१९]

तब निज जननी के अङ्घ्रि-युगल में सीस नमा कर।
वे महारथी अभिमन्यु खड्ग निज हस्त सम्हा कर॥
करने तब भीषण लगे प्रतिज्ञा सहज चाव से।
अरु बोले यह मृदु गिरा अकृत्रिम वीरभाव से॥

[२०]

है अनहोनी; अभिमन्यु युद्ध में पीठ दिखावे।
पड़ी की अथवा ठौर अँगूठा उसका आवे॥
माता! हो निश्चिंत; नहीं बोलना बोल बड़ा हूं।
धरिणी भी वह नहिं धुजै जहां मैं वीर खड़ा हूं॥

[२१]

मम कोप-अग्नि में भस्म शलभ-कौरव-कुल होगा
या तेरा हो यह पुत्र युद्ध में आहुति होगा॥
यदि शत्रु शोण की नदी युद्ध में नहीं बहाऊं।
जीवित रह अर्जुन-पुत्र कभी मैं नहीं कहाऊं॥

[२२]

देखेंगे दानव देव युद्ध-कौशल सब मेरा।
कर दूंगा सार्थक आज स्तन्य शौर्य्याऽऽकर तेरा
लक्ष्मण† यदि कुरुकुलदीप नहीं मैं आज बुझाऊं।
जीवित रह अर्जुन तनय कभी मैं नहीं कहाऊं॥

[२३]

यह कहकर सुतने फेर जननि पद शीश छुआया।
माता ने आत्मज उठा स्नेह से हृदय लगाया॥
वह चला जननि के नयन प्रेम से जलका रेला।
आदरयुत सुतने उसे मुकुट पर निज के झेला॥

[नोटः—इससे आगे अभिमन्युका उत्तरा के महल में जाकर अपनी कमर में खड्ग बँधाने का विषय है।]

(शेष आगे)

---

* प्रतिज्ञा। † परशत्रु (कौरव कुल) के अधिकार का।

* दुर्योधनका ज्येष्ठ पुत्र।

स्त्रियां और राष्ट्र।

[लेखक-पं० माधवराव सप्रे।]

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः—मनुः
गृहे लक्ष्म्याः स्त्रियाः सततमबला मानविभवैः—
वराहमिहिर

राष्ट्र की उन्नति या अवनति के साथ स्त्रियों का क्या संबंध है? यदि इस प्रश्न का उत्तर संक्षेप में दिया जाय तो कहना होगा कि राष्ट्र की उन्नति या अवनति स्त्रियों की उन्नति या अवनति पर अवलंबित होती है। परंतु इस बात पर भी ध्यान देना चाहिये कि 'राष्ट्र' और उसकी 'उन्नति' अत्यन्त मिश्र (Complex) भाव हैं। इनसे समाज की बहुत ऊंची और पक्व दशा सूचित होती है। ऐसी अवस्था में केवल स्त्रियों की स्थिति ही किसी राष्ट्र की उन्नति और अवनति के लिए सम्यक कारण नहीं हो सकती। इसके अनेक कारण हो सकते हैं जैसे राज्यपद्धति, धर्म, सामाजिक नीति, उद्योग, व्यापार शारीरिक सामर्थ्य, शिक्षा आदि। इन सब कारणों का विचार इस लेख में नहीं किया जा सकता। यहां सिर्फ इस बात का विचार करना है कि राष्ट्रों की उन्नति और अवनति से स्त्रियों का क्या संबंध है। यह एक प्रकार से सामाजिक विषय कहा जा सकता है। क्योंकि इसमें स्त्रियों की दशा का ही विशेष विचार करना है। स्त्रियों की दशा का कुछ हाल जानने के लिए हमको इस बात का विचार करना चाहिये कि हमारी कुटुम्ब और गृहस्थिति कैसी है? हमारी विवाहपद्धति में क्या दोष हैं, स्त्री पुरुषों का परस्पर संबंध क्या है, स्त्रियों को किस प्रकार के अधिकार प्राप्त हैं। उन्हें कैसी शिक्षा मिलती है और उन्हें स्वाधीनता कितनी है? यदि इन बातों का प्रमाणसहित विचार करलिया जाय तो यह सिद्धान्त स्थापित किया जा सकता है कि स्त्रियों की उन्नति या अवनति पर राष्ट्र की उन्नति या अवनति अवलंबित होती है।

कहा गया है कि राष्ट्र की उन्नति के अनेक कारण होते हैं। उनमें से समाजस्थिति विशेष करके गृहस्थिति या कुटुम्बव्यवस्था अर्थात् स्त्री पुरुषों के परस्पर संबंध ही को इस लेख में प्रधान कारण माना है। सब लोग जानते हैं कि व्यक्तियों से कुटुम्ब, कुटुम्ब से समाज और समाज से राष्ट्र बनता है। समाज की जैसी दशा होगी—भली या बुरी—वैसी ही राष्ट्र की भी होगी। समाज अथवा राष्ट्र का पहिला घटक या अवयव (Organism) कुटुम्ब ही कहा जा सकता है। जब तक व्यक्तियां भिन्न भिन्न अकेली और स्वतंत्र रहती हैं तब तक उनका समुदाय समाज या राष्ट्र नहीं हो सकता। अतएव यदि हम समाज अथवा राष्ट्र की उन्नति के लिए किसी एक संस्था को मूल कारण कहें तो वह कुटुम्ब ही है। कुटुम्ब स्त्री और पुरुष दोनों के मिलने से बनता है। इस नियम के अनुसार भी यही सिद्ध होता है कि राष्ट्र की उन्नति में स्त्रियों का महत्व जानने के लिए हमको सब से पहिले कुटुम्बव्यवस्था ही का विचार करना चाहिये। अर्थात् यह जानना चाहिये कि स्त्रियों का और पुरुषों का परस्पर संबंध क्या है और स्त्रियों की दशा कैसी है। इस विषय की चर्चा करने के लिए इतिहास और समाज शास्त्र के कुछ सिद्धान्तों की सहायता ली जायगी।

पहिले इस बात को सोचना चाहिये कि वर्तमान समय में हमारी स्त्रियों की दशा कैसी है, यह दशा कब से चली आ रही है और इसके सुधार का प्रश्न क्यों खड़ा हुआ। यद्यपि इस देश का प्राचीन इतिहास प्रायः लुप्त

अभिमन्यु और सुभद्रा।

Mohila Press, Calcutta.

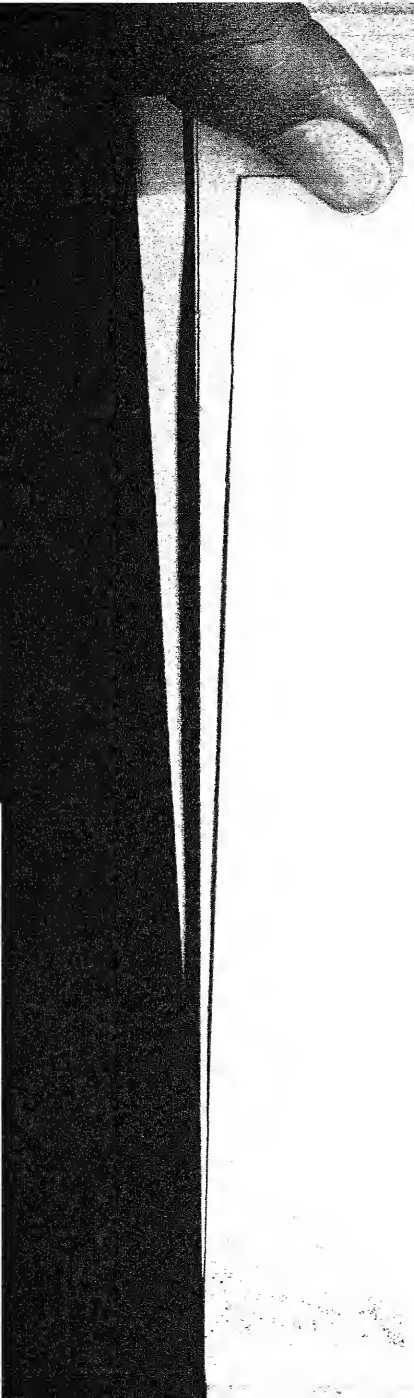

है और उसके विषय में अनेक वादग्रस्त पक्ष उपस्थित किये गये हैं तथापि इसमें सन्देह नहीं कि आर्यावर्त में बसनेवाले आर्यों का आर्यत्व और उनका उत्कर्ष ईसाई सदी के बहुत पहिले ही नष्ट हो गया था। आर्यों के आशापूर्ण और उत्साहजनक धर्म में बहुत परिवर्तन हो गया था, उनकी सामाजिक स्थिति बदल गई थी और स्त्रियों की दशा भी बिगड़ गई थी। स्त्रियों के विषय में यह समझ हो गई थी कि उनमें पुरुषों की अपेक्षा योग्यता बहुत कम है; वे स्वतंत्रता से रहने योग्य नहीं हैं; उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति कुमार्ग की ओर है; और यह कि ईश्वर ने उन्हें सदा पुरुषों की अधीनता में ही रहने के लिए उत्पन्न किया है। हिन्दू स्त्रियों की यह शोचनीय स्थिति अनेक सदियों तक बढ़ती ही चली गई। वह वर्तमान समय में भी वैसी ही बनी है। परन्तु जब से इस देश में अंग्रेजी शिक्षा का आरम्भ हुआ और पश्चिमीय देशों के निवासियों से हमारा निकट सम्बन्ध बढ़ने लगा तबसे इस देश में अनेक विषयों के सुधार की चर्चा होने लगी। सार्वजनिक शिक्षा का प्रभाव सचमुच अद्भुत होता है। इससे नई २ बातें मालूम होती हैं, नूतन संस्थाओं का हाल जान पड़ता है, सृष्टि के विषय में अनेक चमत्कारपूर्ण सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त होता है, विचारपद्धति में परिवर्तन हो जाता है और मानवजीवन की आकांक्षाओं का विकास होने लगता है। इन बातों से शास्त्र, समाज और राज्यव्यवस्था में बड़े बड़े परिवर्तन हो जाते हैं। शिक्षा के द्वारा मनुष्य की सब शक्तियों का विकास होते ही राष्ट्रीय जीवन में स्फूर्ति और हलचल उत्पन्न होने लगती है और अनेक आवश्यक बातों में सुधार करने का यत्न किया जाता है। विचारक्रान्ति से जो बड़े बड़े परिवर्तन हुए हैं उनके उदाहरण प्रायः सब देशों के इतिहासों में पाये जाते हैं। जब से पूर्व और पश्चिम का सम्बन्ध हुआ तभी से विचारक्रान्ति का आरंभ होने लगा। बड़े बड़े गहन विषय हमारे सामने उपस्थित हुए और धार्मिक, सामाजिक, औद्योगिक तथा राजकीय सुधारों की ओर हमारा मन झुकने लगा। सारांश यह है कि हम लोगों में राष्ट्रीयता के भाव की जागृति के साथ साथ स्त्रियों के विषय में भी विचार करने की इच्छा उत्पन्न हुई।

राष्ट्र की उन्नति के लिए आदर्श कुटुम्ब व्यवस्था अथवा हितकारक गृहस्थिति की अत्यन्त आवश्यकता है। इससे राष्ट्र की स्थिरता, एकता, उत्कर्ष और विशिष्ट परंपरा की वृद्धि हुआ करती है। मनुजी ने बहुत ठीक कहा है "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः"। इस वचन में बहुत गम्भीर अर्थ है। समाजशास्त्र के सिद्धान्तों का विचार करने से इसकी सत्यता के विषय में कुछ भी संदेह नहीं रह जाता। कहना नहीं होगा कि कुटुम्बव्यवस्था से समाज को एकता, स्थिरता और दृढ़ता होती है तथा राष्ट्र का उत्कर्ष होने लगता है। जिस कुटुम्बव्यवस्था में स्त्रियों का यथोचित आदर नहीं होता, उनकी शिक्षा, स्वाधीनता और उनके अधिकारों की ओर कुछ ध्यान नहीं दिया जाता वह समय पाकर राष्ट्र के लिए हानिकारक हो जाती है। अब कुटुम्बव्यवस्था की उत्क्रान्ति के कुछ नियमों के अनुसार यह देखना चाहिये कि स्त्रियों से समाज तथा राष्ट्र का हित कैसे होता है।

सुप्रसिद्ध समाजशास्त्रवेत्ता स्पेंसर का कथन है "मानव जाति की बाल्यावस्था में न किसी प्रकार की राज्यव्यवस्था होती है और न किसी प्रकार की कुटुम्बव्यवस्था। स्त्री पुरुषों का सम्बन्ध और माता पिता पुत्र आदि नाते, मूल स्थिति में रहनेवाले मनुष्यों में, उसी तरह अनियमित होते हैं जिस तरह कि वे पशुओं में पाये जाते हैं। जिन लोगों में कुछ राज्यव्यवस्था होती है उन्हीं लोगों में कुटुम्बव्यवस्था भी देख पड़ती है। इससे यह सिद्ध है कि कुटुम्ब-

व्यवस्था (अर्थात् स्त्री पुरुषों का नियमित सम्बन्ध) और राज्यव्यवस्था का घना संबन्ध है।" भिन्न भिन्न देशों के पुराणग्रंथों में कुछ ऐसी कथाएं पाई जाती हैं जिनसे उक्त सिद्धान्तों का बहुत मेल है। महाभारत में श्वेतकेतु और दीर्घतमा ऋषियों की कथा है। उससे यही बोध होता है कि प्राचीन समय में स्त्री पुरुषों का सम्बन्ध अनियमित था—"अनावृताः किलपुरा स्त्रिय आसन् बरानने। कामचारविहारिण्यः स्वतंत्राश्चारुहासिनि।" इस अनियमित व्यवहार को बंद करने के लिए उन ऋषियों ने विवाह और कुटुम्ब की मर्यादा कर दी।

समाजशास्त्र का दूसरा सिद्धान्त यह है "इस संसार में मनुष्यजाति के अस्तित्व की स्थिरता का यह कारण नहीं है कि मनुष्य अन्य प्राणियों के समान समुदाय अथवा समाज बना कर रहते हैं; किन्तु उसका कारण यह है कि मनुष्य जाति के समाजरूपी ऐसे भिन्न २ और अनेक भाग हो गये जो परस्पर शत्रुता से रहने लगे।" इसका विस्तृत विवेचन यहां नहीं किया जा सकता। तात्पर्य यही है कि मनुष्यजाति के भिन्न २ समुदाय वा समाज आपस में शत्रुता करके कलह लड़ाई और युद्ध करने में लगे रहते हैं। एक समाज दूसरे समाज को पराजित करने और उसका नाश करने का यत्न किया करता है। इसमें सन्देह नहीं कि जब मनुष्य स्वयं अपना एक विशिष्ट और स्वतंत्र समाज (जाति) बना लेते हैं तब वे अपने समाज में एकता और प्रेम से रहा करते हैं। परन्तु अन्य समाजों से कलह करने की उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति ज्यों की त्यों बनी रहती है। अतएव यदि मनुष्य जाति को इस संसार में चिरकाल रहना हो—यदि मानवजाति के अस्तित्व का नाश होने न देना हो तो प्रत्येक समाज को सुदृढ़, बलवान और सामर्थ्यवान होना चाहिये। इस हेतु की सिद्धि के लिए कुटुम्बव्यवस्था, गृहस्थिति और स्त्री पुरुषों के नियमित सम्बन्ध की बहुत आवश्यकता है। स्त्री पुरुषों के परस्पर सम्बन्ध को नियमित कर देने से विवाह की पद्धति उत्पन्न होती है, कुटुम्ब संस्था स्थापित होती है, माता-पिता-पुत्र आदि नाते निश्चित हो जाते हैं, समाज के घटक—कुटुम्बों में एकता होने लगती है, सन्तान की वृद्धि होती है, एक जाति बन जाती है, जात्याभिमान उत्पन्न होता है और पूर्वजभक्ति तथा स्वदेशप्रेम जागृत होता है। सारांश यह कि ज्योंही स्त्रियों के साथ अनियमित व्यवहार बन्द करके नियमित व्यवहार किया जाता है त्योंही स्त्रियों की उन्नति के साथ साथ समाज और राष्ट्र की भी उन्नति होने लगती है।

विवाहपद्धति के संक्रमण का इतिहास बड़ा मनोरंजक और शिक्षादायक है। उसके देखने से यही बात सिद्ध होती है कि विवाह की पद्धति में ज्यों ज्यों सुधार होता गया त्यों त्यों स्त्रियों की उन्नति होती गई और समाज तथा राष्ट्र का भी उत्कर्ष होता गया। समाज की प्रथम अवस्था में लोगों की प्रवृत्ति युद्ध की ओर अधिक थी। जो लोग युद्ध में पराजित हो जाते उन्हें दासत्व में रहना पड़ता था। विजयी समाज के लोग जिस समाज की स्त्रियों को पकड़ लाते, उनके साथ विवाह करते, उनको दासी बनाकर अपने घर में रखते, उनको बेच डालते या दान कर देते थे। इन सब बातों के उदाहरण इतिहासों में पाये जाते हैं। विजयी लोग स्त्रियों को अपनी निज की मिल्कियत समझते थे इसलिए स्त्रियों को कुटुम्ब के प्रधान पुरुषों की अधीनता ही में रहना पड़ता था। कुछ समय के बाद लड़ाइयां बंद हुईं, देश में शांति स्थापित हुई, व्यवहार के नियम, कायदे और कानून बने और राज्य की व्यवस्था होने लगी। तब स्त्रियां भी दासत्व से मुक्त हुईं और उनकी योग्यता बढ़ने लगी। उनके विषय में प्रेम आदर आदि उच्चभाव प्रगट होने लगे।

एक पत्नीत्व का नियम बन जाने से उनमें पातिव्रत्य धर्म बढ़ने लगा। स्त्रियों की योग्यता और स्वाधीनता के बढ़ जाने से अबलाभिमान और स्वयंवर की प्रथा शुरू हुई। इसी समय विवाह-पद्धति पर धर्म का भी असर होने लगा। प्रायः सब धर्मों की प्रवृत्ति सामाजिक विषयों पर नियम बनाने की ओर देख पड़ती है। इससे विवाह को धार्मिक विधि का स्वरूप प्राप्त हो गया और प्रत्येक स्त्री के लिए विवाह एक आवश्यक संस्कार बन गया। इसका यह परिणाम हुआ की स्त्रियों की बहुत सी स्वाधीनता मर्यादित हो गई। इधर कुछ दिनों से पश्चिमीय देशों में विचारक्रान्ति बहुत शीघ्रता से होने लगी है और धार्मिक नियम शिथिल हो गये हैं इसलिए वहां स्त्रियों की स्वाधीनता बढ़ती जाती है। वे अपने नर पुरुषों ही के समान स्वतंत्र मानने लगी हैं और अपने स्वत्वों की रक्षा का यत्न कर रही हैं।

उक्त वर्णन का सारांश यह है कि पहिले पहल स्त्रियां पुरुषों की मिल्कीयत समझी जाती थीं अर्थात् उन्हें दासत्व में रहना पड़ता था। इसके बाद उन्हें कुछ स्वतंत्रता मिली और स्वयंवर तथा एकपत्नीत्व के हक़ भी मिले। इसी समय स्त्रियों में ऐसे अनेक सद्गुणों का विकास हुआ कि जो राष्ट्रीय जीवन के लिए अत्यंत हितदायक हैं। अनन्तर स्त्री पुरुषों का सम्बन्ध धार्मिक नियमों से मर्यादित कर दिया गया। इससे स्त्रियों के स्वत्वों की बहुत हानि हुई और हिन्दुस्तान में बालविवाह की कुरीति जारी हुई। वर्तमान समय में पश्चिमीय देशों में विवाह को कौल-करार का रूप देने का यत्न हो रहा है। समाजशास्त्रियों की दृष्टि से इस सुधार में बहुत लाभ देख नहीं पड़ता। विवाह-पद्धति के संक्रमण की यही भिन्न भिन्न अवस्थाएं हैं। प्रत्येक अवस्था में समाज और राष्ट्र का कुछ लाभ हुआ है और कुछ हानि। यदि इस लाभहानि की चर्चा यहां की जाय तो लेख बहुत बढ़ जायगा अतएव सिर्फ इस बात का विचार किया जायगा कि समाजशास्त्र की दृष्टि से विवाह की किस पद्धति को अत्युत्तम कहना चाहिये। इसी के साथ संक्षेप में इस बात का भी विचार किया जायगा कि हमारे यहां विवाह की जो पद्धति प्रचलित है वह राष्ट्रीय उन्नति की दृष्टि से हितदायक है या नहीं? इसके लिए यह सोचना चाहिये कि विवाह के मुख्य उद्देश्य क्या हैं और वे किस विवाहपद्धति से सफल हो सकते हैं?

स्पेन्सर के मत के अनुसार विवाह का पहिला उद्देश्य यह है कि मनुष्य समाज का अस्तित्व चिरकाल बना रहे और इसकी उत्तरोत्तर उन्नति होती रहे। दूसरा उद्देश्य यह है कि अपत्य का उत्कर्ष हो अर्थात् सन्तान सशक्त और अधिक हो। तीसरा उद्देश्य यह है कि विवाहित स्त्री-पुरुषों का हित हो और इनके वृद्ध माता-पिताओं को सुख मिले। पहिले दो उद्देश्य सामाजिक हित के हैं और तीसरा व्यक्ति के हित का है। ये उद्देश्य तभी सफल हो सकते हैं जब कि पुरुषों के समान स्त्रियों को भी राष्ट्रीय जीवन का एक यथार्थ अंग माना जाय। इस विषय में स्पेंसर साहब कहते हैं—"साधारण लोगों में स्त्री पुरुषों के विवाह सम्बन्ध में सिर्फ इसी बात पर ध्यान दिया जाता है कि विवाहित स्त्री पुरुषों को और वर्तमान पीढ़ी को सुख मिले। परन्तु यह भूल है। यथार्थ में इस बात की ओर अधिक ध्यान देना चाहिये कि भविष्यत पीढ़ियों पर अर्थात् समाज और राष्ट्र पर उसका क्या परिणाम होगा। कुटुम्ब की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये जिससे अपने समाज और राष्ट्र की उत्कर्षावस्था की परम्परा चिरकाल बनी रहे।" आपने "समाज की उत्कर्षावस्था की परम्परा" पर बहुत ज़ोर दिया है। जिस विवाहपद्धति से यह परम्परा बिगड़ जाने का भय हो वह समाज के लिए कभी हितदायक हो नहीं

सकती। उक्त उद्देश्यों को एकत्र करके उत्तम और निकृष्ट विवाहपद्धतियों के कुछ सामान्य लक्षण निश्चित किये गये हैं। इनके विषय में स्पेन्सर साहब की राय सुनिये—

"विवाह की वही पद्धति अब से अच्छी कही जा सकती है जिससे समाज का अर्थात् स्त्रीपुरुष और सन्तान का उत्कर्ष हो, बालमृत्यु की संख्या कम हो; सन्तान के पालन-पोषण में मातापिता को अधिक कष्ट न हो। इस हेतु की सफलता के लिए संतानोत्पत्ति के पहिले स्त्रीपुरुषों की आयु का बहुत सा भाग स्वयं अपनी उन्नति करने में व्यतीत होना चाहिये। अर्थात् स्त्री पुरुषों का विवाह सम्बन्ध प्रौढ़ अवस्था में ही होना चाहिये।

"विवाह की उस पद्धति को निकृष्ट कहना चाहिये जिसमें बालमृत्यु की संख्या अधिक हो; बालविवाह से छोटी उमर में संतानोत्पत्ति होने लगे; संतानोत्पत्ति और अन्य परिश्रमों के कारण स्त्रियों की मृत्यु शीघ्र होने लगे; विवाहित स्त्रीपुरुषों में प्रेम और आदर न रहे; संतान अशक्त, डरपोक और निरुत्साही हो जाय और वृद्ध मातापिताओं की ठीक ठीक हिफाजत न हो सके।"

अब पढ़नेवाले स्वयं सोच लें कि हिन्दुस्तान में जो विवाहपद्धति और कुटुम्बव्यवस्था प्रचलित है वह उक्त सिद्धान्तों के अनुसार उत्तम है या निकृष्ट। यदि हम अपनी वर्तमान गृहस्थिति, कुटुम्बव्यवस्था, संतानों की शक्ति और स्त्रियों की दशा पर कुछ ध्यान दें तो मालुम हो जायगा कि स्पेन्सर ने निकृष्ट विवाहपद्धति के जो लक्षण कहे हैं वे सब हमारे समाज में पाये जाते हैं। इस शोचनीय अवस्था का वर्णन करने और उसके सुधार के उपायों का चिंतन करने के लिये एक स्वतंत्र लेख की आवश्यकता होगी।

इस बात से हम लोग परिचित हैं कि वर्तमान समय में हमारा समाज और राष्ट्र कैसी हीन दशा को पहुंच गया है और हमारी स्त्रियों की कैसी अवनति हो गई है। राष्ट्र की उन्नति के विषय में समाजशास्त्र के सिद्धान्तों से यह बात मालूम हुई कि स्त्रीपुरुषों का वैवाहिक संबन्ध प्रौढ़ अवस्था में होना चाहिये और संतानोत्पत्ति के पहिले उनकी आयु का बहुतसा भाग अपनी उन्नति करने में व्यतीत किया जाना चाहिये। इन तत्त्वों पर ध्यान न देने से राष्ट्र की बहुत हानि होती है।

ऐतिहासिक प्रमाणों से भी उक्त सिद्धान्त की सत्यता प्रतीत होती है अर्थात् यह बात मालूम हो जाती है कि स्त्रियों की उन्नति से राष्ट्र की उन्नति और स्त्रियों की अवनति से राष्ट्र की अवनति होती है। अरिस्टाटल का कथन है कि ग्रीस देश के निवासी अपनी स्त्रियों को गुलामों के समान नहीं मानते थे, किन्तु वे उन्हें अपने ही समान राष्ट्रोन्नति के लिए सहायक समझते थे। वे उनकी शारीरिक, मानसिक और नैतिक उन्नति के लिए सदा दत्तचित्त रहा करते थे। यूनानी स्त्रियों के विषय में लिखा है:—

The Greeks made physical as well as intellectual and moral education a science as well as a study. Their woman practised graceful, and in some cases, even atheltic exercises. They developed by a free and healthy life, those figures which remain everlasting and unapproachable models of human-beauty.*

यही कारण है कि वे बारबेरियन लोगों पर अपना अधिकार जमा सके। एक रोमन ग्रंथकार का कथन है "रोमन लोग अपनी स्त्रियों के साथ, यूनानियों की अपेक्षा अधिक अच्छा बर्ताव करते हैं इसलिए यूनानी राष्ट्र से रोमन

* ये वाक्य किंग्सले के ग्रंथ से लार्ड एवबरी ने अपने "use of Life" नामक ग्रंथ में उद्धृत किये हैं।

राष्ट्र अधिक बलवान् है।" यह बात इतिहास-प्रसिद्ध है कि रोम ने एक छोटे से शहर से बढ़ते बढ़ते सारी दुनिया पर अपना अधिकार जमा लिया था। जिस तरह रोमन राष्ट्र की उन्नति विस्मयकारक है उसी तरह उसकी अवनति भी अत्यंत हृदयद्रावक है। रोमन जाति के उत्कर्ष के समय रोमन स्त्रियों में पातिव्रत्य, स्वावलंबन, स्वार्थत्याग, धैर्य आदि जो गुण देख पड़ते थे वे सब उनकी अवनति के समय नष्ट हो गये थे। उन अच्छे गुणों के स्थान में दुराचार, अज्ञान, कलह इत्यादि दुर्गुणों का साम्राज्य स्थापित हो गया था। गिबन नामक इतिहासकार लिखता है "प्यूनिक वार के बाद थोड़े ही दिनों में रोमन राष्ट्र की नीति की जड़ (गृहस्थिति अर्थात् स्त्रियों की दशा) बिगड़ गई जिसका फल यह हुआ कि अन्त में उनका लोकसत्तात्मक राज्य भी नष्ट हो गया। इसका क्या कारण है कि बारबेरियन लोगों को यूनानियों ने जीत लिया, यूनानियों का पराभव रोमन लोगों ने किया और रोमन राष्ट्र को जर्मन लोगों ने नष्ट कर डाला? इतिहास साक्षी है कि बारबेरियन स्त्रियों से यूनानी स्त्रियों की दशा अच्छी थी, यूनानी स्त्रियों से रोमन स्त्रियों की दशा अच्छी थी और रोमन स्त्रियों से जर्मन स्त्रियों की दशा अच्छी थी। रोमन इतिहासकार टैसिरस लिखता है कि जिस समय जर्मन लोग बन में रहा करते थे उस समय भी उनकी कुटुम्बसंस्था अच्छी दशा में थी। सारांश यह है कि परशियन, ग्रीक रोमन और जर्मन राष्ट्र एक दूसरे से बढ़कर हैं और इसका कारण यही है कि उनकी सामाजिकस्थिति अर्थात् कुटुम्बसंस्था, गृहस्थिति, स्त्रीपुरुषों का संबन्ध, उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है।

अब हिन्दुस्तान के विषय में कुछ विचार किया जायगा। राजकीय स्वतंत्रता अथवा राष्ट्रीय उन्नति की दृष्टि से यह देश अत्यंत निकृष्ट अवस्था में है। समाज की अनेक कुरीतियों को सुधारने के लिए वर्तमान समय में जो आन्दोलन जारी है उससे सिद्ध होता है कि हमारी सामाजिक अवस्था भी बहुत बिगड़ गई है। सामाजिक सुधार के अनेक विषयों में हमारी स्त्रियों की दशा पर भी बहुत विचार किया जाता है। क्या हमारी राष्ट्रीय अवनति और स्त्रियों की वर्तमान दुर्दशा से कुछ संबन्ध नहीं है? कुटुम्बसंस्था और विवाहपद्धति के बिगड़ जाने से शारीरिक शक्ति का ह्रास हो गया है, समाज की उन्नति के लिए जो गुण आवश्यक हैं उनका लोप हो गया है, राष्ट्रीय जीवन नष्ट हो गया है और इस देश के निवासी सदियों से पराधीनता का दुःख भोग रहे हैं। प्यारे पाठको! दुनिया के नक्शे की ओर देखिये और इस बात को सोचिये कि आज लगातार हज़ार बारह सौ वर्ष से पराधीनता की शृङ्खला में बँधा हुआ देश इस अभागे बूढ़े भारत के सिवा, और कौन है! इस बात को भी सोचिये कि हिन्दुस्तान के अतिरिक्त किन किन देशों में बालविवाह की प्रथा और स्त्रियों की पराधीनता जारी है और उनकी सामाजिक तथा राष्ट्रीय स्थिति कैसी है। कह आए हैं कि विवाहपद्धति और राष्ट्रीय उन्नति का परस्पर संबन्ध है। हमारी अवनति का, स्त्रियों के साथ हमारा बर्ताव ही, एक प्रधान कारण है।

हमारी सामाजिक दुर्दशा और राष्ट्रीय अवनति बहुत दिनों से चली आ रही है। भारत की सुदशा तथा उन्नति के दिन, अति प्राचीन भूतकाल की अँधेरी छाया में ढक से गये हैं। इस पर से साधारण लोगों की यह राय हो गई है कि इस देश में अच्छी राज्यव्यवस्था और अच्छी समाजस्थिति कभी थी ही नहीं। हिन्दुस्तान के इतिहास पर जो साधारण ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं उनके पढ़ने से यही राय अधिक पुष्ट हो गई है। वेद, महाभारत, रामायण आदि में जो इतिहास की बातें हैं वे कवि की कपोलकल्पनाएं मालूम होती हैं! यद्यपि प्राचीन भारत

की श्रेष्ठता और सभ्यता का इतिहास जानने के लिए उक्त ग्रंथ अत्यंत महत्व के हैं तथापि इस लेख में उन विदेशी ग्रंथकारों ही की सम्मति को स्वीकार किया गया है जिन्होंने हमारी सामाजिक और राजकीय स्थिति के विषय में प्रत्यक्ष अपने अनुभव से कुछ लिख रक्खा है। आशा है कि इन बातों को प्रमाण मानने में हम आनाकानी न करेंगे।

इस देश पर विदेशियों की कई चढ़ाइयां हुईं उनमें सबसे पहिली चढ़ाई सिकन्दर की मानी जाती है। इस बादशाह के इतिहासकार ने उस समय के हिन्दुओं की शूरता, पराक्रम, आवेश आदि गुणों की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। वह लिखता है कि हिन्दू अन्य एशियाटिक लोगों की अपेक्षा ऊंचे, मज़बूत और शूर हैं। सिकन्दर के मरने पर जब सेल्यूकस अपनी सेना लेकर इस देश पर चढ़ाई करने के लिए आया तब उसे मगध देश के राजा चन्द्रगुप्त के सामने अपनी हार माननी पड़ी। जब दोनों में सन्धि हो गई तब सेल्यूकस ने चन्द्रगुप्त के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया। सेल्यूकस ने मेगास्थेनिस नाम का अपना एलची चन्द्रगुप्त के दर्बार में रक्खा था। उसने हिन्दुस्तान की राजकीय तथा सामाजिक स्थिति के विषय में जो कुछ लिख रक्खा है उससे उस समय के हिन्दुओं की उन्नति का पूरा पता लग जाता है। तात्पर्य यह है कि ईसाई सदी के ३०० वर्ष पहले यह राष्ट्र उन्नत अवस्था में था। उस समय बालविवाह की प्रथा जारी नहीं थी। हुएनसंग के लेखों से भी हिन्दुओं की शूरता, पराक्रम आदि का बोध होता है। एक अरब इतिहासकार ने लिखा है कि "एशिया खंड के निवासियों में हिन्दू एक विशेष प्रकार की जाति है। राजपद्धति, तत्वज्ञान, शारीरिकसामर्थ्य और वर्ण की शुद्धता के विषय में वे बहुत प्रसिद्ध हैं।" इस प्राचीन इतिहास की ठीक ठीक जांच करने से यह जान पड़ता है कि पोरस, चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य, शालिवाहन, पुलकेशी, शिलादित्य आदि राजाओं के समय, अर्थात् सातवीं सदी तक हमारा राष्ट्र उत्कर्षावस्था में था और हमारी सामाजिक स्थिति तथा स्त्रियों की दशा अच्छी थी। परंतु यहां मुसलमानी रियासत के स्थापित होने के समय, अर्थात् दसवीं से चौदहवीं सदी तक, उक्त उत्कर्षावस्था का नाश हो गया।

इस उत्कर्षावस्था के नाश का कारण क्या है? इसका पता लगाने के लिए हमको, आठवीं सदी से बारहवीं सदी तक, हिन्दुस्तान के इतिहास का निरीक्षण करना चाहिये। इस समय की प्रधान घटना यही है कि हिन्दूधर्म और बौद्धधर्म में परस्पर स्पर्धा होते होते प्राचीन आर्यधर्म का रूपान्तर हो गया। इस धर्मक्रान्ति ही में हमारे राष्ट्र की अवनति अर्थात् समाज और स्त्रियों की दुर्दशा, का बीजारोपण हुआ! शंकराचार्य ने दिग्विजय करके बौद्धधर्म को इस देश से निकाल दिया; परन्तु इन दो धर्मों के युद्ध में, पहले ही से कुछ बिगड़ा हुआ हिन्दूधर्म लँगड़ा हो गया! फल यह हुआ कि जातिनिर्बंध, शाकाहार, मूर्तिपूजा, आध्यात्मिक तत्वज्ञान, परलोक तथा प्रारब्धवाद, बाल-विवाह तथा स्त्रियों का पराधीनता आदि अनेक धार्मिक और सामाजिक बातों का ज़ोर पहले से और अधिक बढ़ गया! बस यहीं से हमारी शारीरिक दुर्बलता, सामाजिक दुःस्थिति, स्त्रियों की दुर्दशा और राष्ट्र पतितावस्था का आरंभ हुआ! हिन्दू लोग अपने धार्मिक तथा पारलौकिक वादविवादों में इतने निमग्न हो गये थे कि अफ़गान और तुर्क लोगों से पराजित होने पर भी, वे सचेत नहीं हुए! जिस राष्ट्र ने, एक समय जगद्विजयी यूनानियों की चढ़ाइयों को विफल कर दिया था; वही राष्ट्र अब इतना दुर्बल, भीरु, निस्तेज और पराक्रमहीन हो गया कि, महमूद ग़ज़नवी के अत्याचार से अपने देवमंदिरों और स्त्रियों की रक्षा नहीं कर सका।

हम यहां हिंदुस्तान की राष्ट्रीय अवनति की अपमानकारक पूरी कहानी नहीं कहना चाहते। संक्षेप में यही कहना है कि इतना बड़ा प्राचीन उन्नत और वैभवशाली राष्ट्र थोड़े ही दिनों में मुसलमानों के आधीन हो गया और एक गुलाम बादशाह ने, केवल पचीस वर्ष में, यहां मुसलमानी रियासत की जड़ जमा दी।

अब यह मालूम हो गया कि धर्म के अनिष्ट बन्धनों से चार पांच सौ वर्षों में समाज की दशा बिगड़ गई, विवाहपद्धति में परिवर्तन हो गया, स्त्रियों की पराधीनता बढ़ गई और अन्त में राष्ट्र का भी पतन हो गया। धर्म के अनिष्ट बन्धनों से यह देश कैसा दैववादी हो गया था सो देखिये। विजय नगर के राजा ने एक बार सभा में अपने पंडितों से पूछा कि हम लोग मुसलमानों से हमेशा हार क्यों खा जाया करते हैं? उस समय ब्राह्मणों ने उत्तर दिया "महाराज! यह कलियुग है, हमारे शास्त्रों में पहिले ही से भविष्य लिख रक्खा है कि ये सब बातें अवश्य होंगी। भाग्य में लिखी बातें कौन टाल सकता है?" मुसलमानों के ज़ुल्म से बालविवाह की पद्धति और दृढ़ हो गई और स्त्रियों की दशा यहां तक पराधीन हो गई कि उन्हें अपना सारा जन्म परदे के अन्दर ही व्यतीत करना पड़ा। इस विवाहपद्धति का असर हिन्दुस्थान के मुसलमानों पर भी होने लगा। दूरदर्शी अकबर के ध्यान में आ गया कि इससे समाज की बहुत हानि होगी। तब उसने एक क़ानून बनाया कि सोलहवें वर्ष के पहिले लड़कों का और चौदहवें वर्ष के पहिले लड़कियों का विवाह नहीं होना चाहिये परन्तु यह क़ानून बहुत दिनों तक चल न सका। सारांश यह है कि राजकीय ज़ुल्म और धर्म अहितकारक बन्धनों से स्त्रियों की विवाहपद्धति, स्वाधीनता और उनके अधिकारों में बहुत हानिकारक परिवर्तन हो गये जिनके कारण यह राष्ट्र वर्तमान अवनत दशा को पहुंच गया है। इतिहासकार टालबाइस व्हीलर लिखता है 'जबतक हिन्दुस्ताननिवासी छोटी छोटी बालिकाओं का विवाह छोटे छोटे बालकों के साथ करते रहेंगे, तब तक उनकी संतान छोटे बच्चों से अधिक अच्छी दशा में कभी रह न सकेंगी। स्वाधीनता और स्वराज्य के आंदोलन में वे निस्तेज और बलहीन हो जायँगे। राजकीय उन्नति का उपयोग करने के लिए वे किसी प्रकार की शिक्षा से समर्थ नहीं हो सकेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि शिक्षा के प्रभाव से उनकी बुद्धि में गंभीरता आजायगी और वे किसी गंभीर तथा प्रौढ़ मनुष्य के समान बातें करने लगेंगे परन्तु सब कुछ होते हुए भी उनका आचरण असहाय बालकों ही के समान बना रहेगा।"

अन्त में यही कहना है कि समाजशास्त्र के सिद्धान्तों और इतिहास के प्रमाणों से इस लेख में यह सिद्ध किया गया है कि जिन राष्ट्रों में स्त्रियों की विवाहपद्धति, सामाजिक दृष्टि से हितदायक होती है और उनकी स्वाधीनता तथा हक़ पर पूरा ध्यान दिया जाता है, वे उन्नति के मार्ग में एक एक क़दम आगे बढ़ते चले जाते हैं। और जो राष्ट्र इन बातों पर ध्यान नहीं देते वे निस्तेज और बलहीन होकर पराधीनता की कड़ी ज़ंजीर में बंध जाते हैं। आशा है कि इस लेख के पढ़नेवाले राष्ट्र और स्त्रियों के परस्पर संबंध पर उचित विचार करेंगे और स्त्रियों की वर्तमान दशा में सुधार करने के लिए उचित उपायों का अवलम्बन करेंगे।

शिशु-पालन।

[लेखिका—श्रीमती किशन मोहिनी नेहरू।]

ह एक ऐसा विषय है जिसके सम्बन्ध में स्त्रियों को थोड़ा बहुत ज्ञान अवश्य होना चाहिये। विशेषकर हमारे बालकों का जीवन और स्वास्थ्य इसी पर अवलम्बित हैं। हमारे देश में यदि १०० बच्चे पैदा होते हैं, तो प्रायः उनमें से ३० या ४० एक वर्ष की अवस्था तक भी नहीं पहुंचने पाते दूसरे वर्ष इतने नहीं मरते मगर इसके बाद से फिर बहुत मरते हैं। अब हमको विचार करना चाहिये कि इसका क्या कारण है। और देशों में भी ऐसा होता है की नहीं? विलायत में १००में से १० बालक इसी तरह मरते हैं। यह भी बहुत ज़्यादा है। परन्तु २-३ वर्ष की अवस्था के अनन्तर वहां यहां के बराबर मौतें नहीं होतीं। फिर हमारे देश में इतनी ज़्यादती का क्या कारण है?।

१—पहिला कारण तो यह है कि इतनी छोटी अवस्था में बच्चों की जान स्वयम् बहुत ही नाज़ुक होती है, ऐसी अवस्था में ज़रा सी भी भूल या लापरवाही का नतीजा बुरा होता है।

२-दूसरे कुछ बालक कुदरती तौर पर कमज़ोर पैदा होते हैं; उनके बचने की आशा प्रथम ही से कम होती है।

३-तीसरे जिस बच्चे के माता पिता कमज़ोर होते हैं उनकी ज़िन्दगी का भय सर्वदा बना ही रहता है।

४-कोई मा बाप ऐसे देखे जाते हैं जिनका कोई बच्चा नहीं जीता। डाक्टर लोगों की राय है कि इसकी वजह कोई न कोई बीमारी है जो मा या बाप या दोनों ही में होती है। कुछ पुराने सज्जन कहते हैं कि वह अगले जन्म के कर्म का फल है, जिसका जितना लेना है वह लेकर चला जाता है। अपने अपने मत के अनुसार लोग डाक्टरों से इलाज करवाते हैं। कोई पण्डितों से पूजापाठ करवाते हैं। बाज़ बहिनें सत्संग भी इसलिए करती हैं परन्तु जहां तक सुना है नतीजा कुछ भी नहीं निकलता है। इसके अतिरिक्त और भी बहुत से कारण बच्चों के मरने के हैं उनमें से विशेषकर अपथ्य खाद्य, माता की लापरवाही, सूखे की बीमारी, दस्त और छूत की बीमारियां जैसे माता, कुकुर खांसी इत्यादि। एक मर्तबा कोई बीमारी हो जाती है तब और बीमारी के होने में देर नहीं लगती है इसलिए बीमारी का इलाज फौरन ही करवाना चहिये। मगर ज़्यादा मुनासिब यह है कि ऐसी कोशिश की जाय कि किसी भयानक बीमारी की मुसीबत उठानी ही न पड़े। बच्चे की बीमारी में बड़ी भारी मुसीबत का सामना होता है।

जितनी ही छोटी अवस्था का बालक होगा उतनी ही ज़्यादा तकलीफ़ उसे उठानी पड़ती है। और छोटी अवस्था के बच्चे को बीमारी भी बहुत जल्दी होती है क्योंकि वह बलहीन इतना होता है कि किसी तकलीफ़ को बर्दाश्त नहीं कर सकता और जल्दी ही से बीमार हो जाता है।

बड़ी "माता महारानी" से बचने का तरीक़ा आजकल सारी दुनिया जानती है। इसलिए उसका ख़ास तौर पर ज़िक्र करने की कोई आवश्यकता नहीं। इतना ज़रूर कहना पड़ता है कि अब भी ऐसे लोग बहुत हैं जो टीका लगाने से डरते हैं। ऐसे लोग सर्वदा ही धोखा खाते हैं। जिन बच्चों को टीका लगता है वेही माता महारानी के शिकार हो जाते हैं और यदि भाग्यवश वे अच्छे भी हो गये तो उनका चेहरा तो ज़रूर ही खराब हो जाता है। काना हो जाना तो इस बीमारी में कोई बात ही नहीं है। १०० मे से ९० आदमियों की आंखें माता दबी के भेंट होती हैं।

जो इस क़िस्म की छूत की बीमारियां हैं उनका बचाव सिर्फ़ इसीसे हो सकता है कि बच्चों को इनसे दूर रक्खा जाय। इसका उपाय सिर्फ़ यही नहीं है कि अन्य बीमार बच्चों के पास उन्हें न जाने दे बल्कि घर द्वार, जल, भोजन वस्त्र इत्यादि चीज़ों में सफ़ाई रखना भी आवश्यक है। गन्दगी ही से इन छूत की बीमारियों का भय रहता है। बाज़ घरों में बच्चों को घर से बाहर ही नहीं निकलने देते, छः महीने के बच्चे घर से बाहर नहीं निकलने पाते हैं। यह बच्चों के लिए बहुत ही हानिकारक होता है। साफ़ हवा और धूप बच्चों के लिए बहुत लाभदायक और हितकर चीज़ होती है। इन चीज़ों से बच्चों की तन्दुरुस्ती पर बहुत अच्छा असर पड़ता है।

यदि बच्चों को प्रकृति के नियमों के विरुद्ध न चलाया जावे तो वही प्राकृतिक नियम बच्चों को तन्दुरुस्त बनाने में पूरी सहायता देंगे।

देखिये पहाड़ों का अच्छी हवा मनुष्य को खुद बखुद कितना स्वस्थ बना देती है। वहां रहकर अगर बच्चे की तन्दुरुस्ती पर ध्यान न भी दिया जाय तो कोई ख़ास नुकसान नहीं हो सकता है। परंतु शहरों में बन्द मकानों में जहां कभी न तो धूप का गुज़र हो न साफ़ हवा ही आती हो कितना ही ध्यान रखिये कभी तन्दुरुस्ती ठीक नहीं रह सकती है। ऐसी जगहों में रहकर स्वास्थ्य पर कितना अधिक ध्यान देना चाहिये इसका अनुमान सहज ही में हो सकता है। जहां तक संभव हो बच्चे को ऐसी कोठरी या कमरे में रखना चाहिये जहां धूप और हवा का गुज़र आसानी से हो और बच्चों के खुराक पर भी ध्यान देना बहुत ज़रूरी है। इस में ग़लतियों का नतीजा बच्चों और माँ बाप के लिए बहुत तकलीफ़ का कारण होता है। सूखे की बीमारी ज़्यादातर इसी वजह से होती है। और भी बहुत सी बीमारियां जिनका मेदे से ज़्यादा सम्बन्ध है (यद्यपि यह ज़ाहिरा नहीं मालूम होता) अकसर मेदे की ख़राबी से शुरू होती हैं। अगर इस बात का ख्याल रक्खा जाय कि खुराक ऐसी मिले कि जो उनके मोआफ़िक हो, और ज़्यादा बदपरहेजी कभी न होने पावे तो बच्चे बहुत तन्दुरुस्त रहें। हिन्दुस्तान में यह आम बात है कि ऐसे बच्चों को जो साबू दाना नहीं हज़म कर सकते हैं लड्डू पेड़े दिये जाते हैं। बाज़ वक्त अगर मां परहेज़ कराना भी चाहती है तो दादी उसके हाथ में लड्डू देही देती है, या किसी के यहां जाव तो वह भी कोई ऐसी ही चीज़ खाने को देदेते हैं।

छोटे बच्चों के लिए मां के दूध से बढ़कर कोई अन्य वस्तु नहीं और ऐसा बहुत कम होता है कि मां का दूध बच्चे को हज़म न हो। यह अकसर देखा गया है कि मां का दूध पनीला या कम होने से बच्चा उसपर निर्भर

नहीं रह सकता। इसका इलाज डाक्टर से हो सकता है।।मां अगर अपनी और बच्चे की तकलीफ बचाना चाहती है तो दूध बंधे हुए वक्तों पर पिलाना चाहिये। इससे बच्चे को बहुत फ़ायदा पहुंचता है।

२ महीने की उम्र तक दिन में २-२ घंटे के बाद और रात में ३ घंटे के बाद दूध पिलाना चाहिये। तीसरे महीने हर तीन घंटे बाद। आठवें महीने के बाद से ४ घंटे के बाद दूध पिलाना बिलकुल काफ़ी है और इस उम्र से रात का दूध पिलाना धीरे २ बिलकुल बन्द कर देना चाहिये।

मां का दूध ८-९ महीने के बाद से बिलकुल बन्द कर देना अच्छा है। इसके पूर्व थोड़ा २ करके गौ के दूध की आदत डालनी बहुत ज़रूरी है। शुरू २ में दिन में एक दफ़ा और अगर यह हज़म हो जावे तो २ दफ़ा पिलाना चाहिये। इसी तरह से कुछ रोज़ में मां के दूध की आदत सहज ही छूट जाती है।

एकबारगी बच्चे की खुराक कभी नहीं बदलनी चाहिये चाहे बच्चा छोटा हो चाहे बड़ा। कुछ बच्चे ऐसे होते हैं जिनको मां का दूध किसी वजह से बिलकुल नसीब नहीं होता और पैदा होने के वक्त से ही गौ का दूध हज़म कर लेते हैं। ऐसे बच्चों की मां बड़ी खुशक़िस्मत है क्योंकि उसे कोई दिक़त नहीं उठानी पड़ती। बहुत से बच्चों को गौ का दूध सिर्फ इसलिए नहीं हज़म होता है कि यातो उसमें पानी बिलकुल नहीं मिलाया गया या कम मिलाया गया। इनको अगर नीचे लिखे हुए हिसाब से दूध और पानी दिया जाय तो कुछ समय बाद वे आसानी से गौ का दूध हज़म करने लगते हैं।

अवस्था	दूध	पानी
एक दिन	एक पाव	४ पाव
एक हफ़्ता	,, ,,	३ पाव
अवस्था	दूध	पानी
एक महीना	,, ,,	२ पाव
दो महीना	,, ,,	१॥ पाव
तीन महीने	,, ,,	१ पाव
छः महीने	,, ,,	॥ पाव
नौ महीने	३ ,,	१ पाव

गौ के दूध में मां के दूध के मुक़ाबले में चिकनाई (यानी घी) करीब करीब बराबर होती है और शक्कर बहुत कम होती है। इसलिए पानी मिलाने से घी और शक्कर की मात्रा दोनों कम हो जाती है। यदि दूध और पानी का हिसाब बराबर हो तो घी आधा हो जावेगा और शक्कर तिहाई से भी कम इसलिए अगर इतनी शक्कर मिला दी जाये कि दूध का फीकापन बिलकुल न मर जाय तो अच्छा है। चिकनाई मिलाने की तरकीब यह है कि मक्खन मटर के दाने के बराबर हर दफ़ा दूध की खूराक के साथ मिला दिया जाय मगर इन बातों की ख़ास ज़रूरत नहीं। कोशिश इसकी होनी चाहिये कि जहां तक जल्द मुमकिन हो बच्चा ख़ालिस दूध जल्द हज़म करने लगे और उसीके साथ यह ख्याल रखना चाहिये की हर दफ़ा पानी कम करने के बाद बच्चे के हाज़मे में फर्क़ तो नहीं आता।

गौ का दूध कभी बग़ैर उबाले हुए बच्चे को नहीं देना चाहिये और दूध का बर्तन हर वक्त साफ़ रहना चाहिये। ज़रा सी गन्दगी से बाज़ वक्त बच्चे को दस्त आने लगते हैं और तब ख्याल यह किया जाता है कि दूध हज़म नहीं होता है। दूध ऐसी जगह रखना चाहिये जहां गर्द और मक्खियां न हों।

छोटी उम्र से बच्चे को रोज़ नहाने की आदत डालनी बहुत मुफ़ीद है। गर्मी में मामूली ठंढे पानी से और सर्दी में ऐसे ठंढे पानी से जिसकी सर्दी मर गई हो। ज़्यादा गर्म पानी के नहलाने से बच्चे को हवा लगकर बुख़ार वग़ैरः हो जाने का ख़ौफ़ होता है।

बाज़ माताएँ सर्दी में कपड़े इस क़दर पहना देती हैं कि बच्चे को सर्दी बरदाश्त करने की आदत बिलकुल नहीं रह जाती। बहुत ज्यादा कपड़ों से कोई फ़ायदा नहीं। कपड़े सिर्फ इतने होने चाहियें कि बच्चा सर्दी न खाय।

दो, एक, बुरी आदतें भी बच्चों को ऐसी बुरी पड़ जाती हैं जो कभी कभी बड़ी उम्र तक नहीं छूटती जैसे "तुतलाना"। छोटे बच्चे कुछ न कुछ सब तुतलाते हैं और चूंकि मा बाप को अपने बच्चे का तुतलाना अच्छा मालूम होता है इसलिए वह उसको साफ़ बोली सिखाने की ज़ियादा कोशिश भी नहीं करते। बच्चों में जो एक माद्दा कुदरती नक़ल करने का होता है उसकी वजह से वे खुद ही ठीक ठीक बोलना सीख जाते हैं मगर बाज़े बड़ी उम्र तक दुरुस्त नहीं बोलते। एक डाक्टर साहब हैं जिनके मुख से "र" नहीं निकलता। किसी ज़माने में वह रोटी को "लोटी" कहते होंगे मगर अब और भी बहुत सी इस तरह की मिसाल हैं। मा बाप की कोशिश के सिवा इसका कोई इलाज नहीं।

दूसरी बुरी आदत "हकलाने" की है जो कई कारणों से होती है। प्रायः इसका कारण सिर्फ कमज़ोरी होती है और ताक़त आने से ज़बान ठीक हो जाती है। अधिकतर बच्चे जो हकलाते हैं वह बहुत तेज़ी से बोलने की कोशिश करते हैं। हकले बच्चों को कभी जल्दी नहीं बोलने देना चाहिये बल्कि हर वक़्त कोशिश करनी चाहिये कि वे आहिस्ता २ बोलें। इस तरह हकले २ बच्चों की ज़बान बहुत जल्द दुरुस्त हो जाती है। मगर यह बहुत मेहनत का काम है।

बच्चे का पालना भी बड़ा मुश्किल और मेहनत का काम है। अगर ठीक तौर पर पाले जायँ तो उसके बदले में फल यह मिलता है कि उनके बीमारी की तकलीफ़ बहुत कम उठानी पड़ती है। कुछ स्त्रियों का मत है कि इन सब बातों से क्या होना है। यह अङ्गरेज़ी चोचले हैं। हमारे बच्चे तो योंही पल जाते हैं। इसका जवाब यह है कि अङ्गरेज़ बच्चे बमुकाबले हिन्दुस्तानी बच्चों के ज़्यादा तन्दुरुस्त और मज़बूत होते हैं। इसकी वजह क्या है? अङ्गरेज़ कुछ जादू के ज़रिये से तो अपने बच्चों को ऐसा नहीं बना देते बल्कि इन्हीं छोटी २ बातों का ध्यान रखते हैं जिनकी हमारी बहिनें कुछ परवा नहीं करतीं।

हिन्दू धर्म में स्त्रियों का स्थान।

[लेखिक—श्रीमती कुन्ती देवी।]

भारतवर्ष में कोई ३०।३५ वर्ष से एक प्रकार का नया युग सा आ गया है। हर तरह की उन्नति की चर्चा चारो ओर से सुनाई देती है। कहीं राजनैतिक आन्दोलन है तो कहीं समाज सुधार है। कहीं धार्मिक समारोह है तो कहीं साहित्य-सेवियों का सुखद सम्मेलन है। इन सभी प्रकार के आन्दोलनों के अतिरिक्त स्त्री जाति की वर्त्तमान दुरवस्था दूर करने तथा समाज में मानमर्यादा बढ़ाने के लिए भी आन्दोलन हो रहा है। इस आन्दोलन में हमारी अनेक सुशिक्षिता बहिनें भी हैं और हमारे कुछ उत्साही स्त्री-शिक्षाप्रेमी और स्त्री-जाति के उन्नतिकामी भाई भी शामिल हैं।

देश के कल्याण के लिए मैं इसे अच्छा सगुन समझती हूं। बीसवीं शताब्दी के अन्त में जब इसका इतिहास लिखा जायगा तो स्त्री-जाति की उन्नति का व्याख्यान इस इतिहास का एक प्रसिद्ध भाग होगा।

इस समय भारत में ही नहीं बल्कि सारे संसार में स्त्री-जाति के अन्दर एक नवीन उत्साह की लहर उठ रही है। धनवान, धन-हीन, विद्वान और मूर्ख सब की सब यह बराबर अनुभव कर रही हैं कि स्त्रियों को अधिक हितकारी बनाने का समय आ गया है।

जिस प्रकार यूरोप, अमेरिका इत्यादि देशों की स्त्रियां इस उत्साह से पूरित हैं उसी भांति भारतीय ललनाओं में भी यह उत्साह लहरें मार रहा है।

पश्चिमीय देशों का वर्तमान प्रभुत्व जगत में विख्यात है। उसका मूल कारण वहां की देवियों की उत्तम शिक्षा ही है।

क्या भारतवर्ष में भी कभी स्त्रियों की ऐसी ही उत्तम दशा थी?

इस बात को कोई भी बुद्धिमान पुरुष अस्वीकार नहीं कर सकता कि भारत भी किसी समय अपनी देवियों ही के प्रताप से समस्त भूमण्डल में एक शिक्षक के उच्चासन पर आसीन था।

एतद्देश प्रसूतस्य……(मनु।)

का प्रसिद्ध वाक्य मैं अपने इस दावे की पुष्टि में गर्वपूर्वक पेश कर सकती हूं।

प्राचीन समय में जबकि पुरुष अन्धकार में डूबा हुआ था आर्य देश में स्त्रियां अति माननीय समझी जाती थीं। प्राचीन इतिहासों में, रामायण और महाभारत में जो यूरोपीय देशों के साहित्यों से सहस्रों वर्ष पहिले की बनी हुई है लिखा रक्खा है कि स्त्रियां अपने प्रेम और उपदेश से अपने पतियों की बड़ी सहायक थीं यहां तक कि सीता और द्रौपदी की भांति वनवास तक में भी उनका साथ देती थीं। स्त्रियां सर्वसाधारण व्यवहारों में शामिल होती थीं और वे बड़े आदर की दृष्टि से देखी जाती थीं। यह बात भी स्मरण रखने योग्य है कि भारत के प्राचीन काल में मनु अथवा दूसरे धर्मशास्त्रकारों ने स्त्रीधन-सम्बन्धी जो क़ानून बनाये हैं वे अद्वितीय हैं और यद्यपि उन्हें प्रचलित हुए बहुत ज़माना हो गया है तदपि पश्चिमीय देशों में कोई भी कानून उनसे अच्छा अब तक नहीं बन सका है।*

देश के उन्नति या अवनति की आँच कैसे की जा सकती है?

मार्टिन साहेब का कहना है कि "किसी राष्ट्र के सामा-

* खेद से कहना पड़ता है कि ये कानून प्रायः सर्वथा प्रशंसनीय नहीं हैं। सं०

जिक, नैतिक, तथा राजकीय स्थिति का सम्यक अवलोकन करना हो तो यह देखना चाहिये कि उस राष्ट्र में स्त्रियों के साथ पुरुष कैसा बर्ताव करते हैं। स्त्री से देवी के समान बराबर का व्यवहार करना अथवा वैषयिक सुखार्थ उसका उपयोग करना उन्हें पसन्द है या वह उसे केवल बोझ के बैलों के समान देखते हैं। इसमें से प्रत्येक बात सृष्टि के इस साधारण नियम से सम्बद्ध है कि प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। उदाहरण के लिए हमें पूर्व और पश्चिम दिशा की ओर दृष्टिपात करना चाहिये। पूर्व में स्त्रियां गुलामी में डूबी हुई हैं और इसलिए देखते हैं कि पूर्व का राष्ट्र भी अज्ञानांधकार में डूबा हुआ है। पाश्चात्य प्रदेशों में स्त्रियां उच्चासन पर आसीन हैं और वहां के राष्ट्र भी उन्नति के उच्च शिखर पर विराजमान होकर स्वतंत्रता के सुख का अनुभव करते हैं।

इस सिद्धान्त से किसे इनकार हो सकता है। देश या जाति का सुधार निस्सन्देह देश और जाति के माताओं पर निर्भर है। नेपोलियन का यह वचन प्रसिद्ध है कि "तुम मुझे अच्छी माताएं दो मैं तुम्हें एक महान जाति बना दूंगा।" किसी जाति की उन्नति का पता लगाने के लिए हमें यह अवश्य देखना होगा कि इस देश या जाति में सुशिक्षित पुरुषों और स्त्रियों की क्या संख्या है। उनके सदाचार की मर्यादा क्या है। उनमें परस्पर व्यवहार कैसे होते हैं। उनके सामाजिक जीवन में देवियों का कैसा स्थान है। जिस जाति में मनुष्य विद्या रत्न से भूषित होते हैं, देवियों का सत्कार होता है, कन्या और पुत्र में कोई भेद नहीं समझा जाता है वह जाति सभ्य और उन्नतिशील कही जा सकती है और यही देश और जाति की उन्नति तथा सभ्यता की कसौटी है।

प्राचीन काल में यदि हमारे देश की अवस्था उन्नत थी तो उसका मूल कारण यही था कि स्त्रियों को बड़े आदर के भाव से देखा जाता था और

स्त्री पुरुषों में समान भाव

का नियम उपस्थित था। भगवान मनु का वाक्य है।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रै तास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला क्रियाः" ॥

जिन कुलों में नारियों की पूजा अथवा सत्कार होता है वहां दिव्य गुण, दिव्य योग, और दिव्य सन्तान होते हैं और जहां इनका अनादर होता है वहां उनकी सब क्रिया निष्फल हो जाती है।

पुरुष और स्त्री के बराबरी का भाव हिन्दुओं के धर्म और Ethics (सदाचार) के उस वृहत् भवन का कोण—पाषाण है जो इतने युग तक संसार के अल्प समालोचकों के आक्रमण की परवाह न करता हुआ समय के हेर फेर और नाश करनेवाली शक्तियों के आगे अड़ा खड़ा रहा है। इसलिए भारतवर्ष में जो कुछ पुरुष के लिए मांगा जाता है वही स्त्री के लिए भी मांगा जा सकता है। हिन्दुओं के धार्मिक, सामाजिक, तथा सांसारिक मर्यादा के अनुकूल पुरुष अथवा स्त्री के लिए कुछ भी पक्षपात न होना चाहिये।

बराबरी का यह भाव आर्य साहित्य में बड़े ही बलपूर्वक प्रकाश किया गया है। ऋग्वेद में एक मन्त्र आया है जिसमें स्पष्ट शब्दों में यह बतलाया गया है कि "एक ही वस्तु के समभाग होने के कारण स्त्री और पुरुष सब प्रकार बराबर है।" इसलिए दोनों को सांसारिक अथवा धार्मिक सब कार्यों में मिलना और बराबर का हिस्सा लेना चाहिये।

आर्य धर्म में जो उच्चस्थान देवियों को प्राप्त हैं वह किसी और मत में नहीं है। अंजील, कुरान, और ज़िन्दावस्था ने पुरुष के पापों का भार स्त्री के सिर पर डाला है। स्त्रियों की

उत्पत्ति और पुरुष की अधोगति का वर्णन करने में ओल्डटेस्टामेंट (पुरानी अंजील) ने इस भाव को पुष्ट किया है "कि स्त्री पुरुष के सुखार्थ बनाई गई है। इस लिए उसका कर्तव्य पूर्ण रीति से पुरुष की आज्ञापालन था।" वह अंजील स्त्री को, शैतान के हाथ में पवित्र पुरुष को जिसके साथ वह स्वर्ग का सुख भोगती थी, लोभाने और गिराने के लिए कारण ठहराती है। इस समय पर आदम का पहिला विचार पाप के बोझ को स्त्री के कन्धे पर डाल देने का था। न्यूटेस्टामेंट Testament में सेंटपाल दिखलाते हैं कि आदम की अधोगति के कारण स्त्री, स्त्री-संसार में पाप, दुःख और मृत्यु लाने का कारण हुई। हाल में लोकप्रिय ईसाई धर्म इस भाव को हटाने का प्रयत्न करता रहा परन्तु पादरियों के सब प्रयत्न करने पर भी वह भाव ईसाई देशों में जो स्त्रीत्व भाव के ऊपर प्रशंसाओं का ढेर लगाया गया है उसके पीछे छिपा हुआ पड़ा है। यह कैसे सम्भव हो सकता है कि एक मनुष्य जो Genesis जेनीसिस में दिये हुये वृत्तान्त को अक्षरशः सत्य समझता है इस भाव को जो कि वहां दिया हुआ है कि स्त्री मनुष्य के लोभ और पतन का कारण होकर इस संसार में पाप, दुःख और मृत्यु लाई, अस्वीकार करे? इस मनुष्य के लिए जो बाईबिल में लिखे वृत्तान्त को स्वीकार करता है कोई दूसरा द्वार नहीं खुला है।

यह एक भारतवर्ष ही ऐसा देश है जहां वैदिक ऋषियों के हृदय में कभी भी ऐसे भाव नहीं उठे न ऐसे झूठे विचार वेद के नियम रचयिताओं के लेख में प्रकाश किये गये हैं। आर्य शास्त्रकारों ने इस बात को भली भांति जान लिया था कि दोनों स्त्री पुरुष बराबर हैं और सकल संसार के सम्मुख यही कहते थे कि स्त्रियों का स्वत्व में, स्वतन्त्रता में, विद्योपार्जन में, शिक्षा में, धर्म में पुरुष के समान अधिकार है।

लूईजेकोलियट Bible in India के प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक का कहना है कि "वैदिक भारतवर्ष स्त्रियों का सम्मान पुरुषों के तुल्य करता था।"

वेदों के समय से उतर कर उस समय पर आने से जब कि पुराण और महाभारत आदि लिखे गये थे हम देखते हैं कि पुरुष और स्त्री के बीच वही बराबरी का भाव जीवित रक्खा गया और वही नियम माने जाते थे जो कि वेदों के समय में थे। जिन्होंने रामायण पढ़ा है स्मरण करेंगे कि सीता जी का चरित्र कैसा उदाहरणीय है। वह शुद्धता, पवित्रता और दया धर्म की साक्षात् मूर्ति थीं। वह अभी तक भी समस्त जातियों और धर्मों की हिन्दू स्त्रियों के हृदय में श्रेष्ठ स्त्रीत्व का पूरा नमूना बनी हुई है। संसार भर के धार्मिक इतिहास में

दूसरी सीता जी

नहीं मिलेंगी। उनका जीवन अद्भुत था। वह ईश्वर के अवतार की तरह पूजी जाती हैं जैसे "ईसा" ईसाइयों में पूजे जाते हैं। भारतवर्ष ही एक मात्र देश है जहां यह विश्वास प्रचलित है कि ईश्वर पुरुष तथा स्त्री दोनों ही के रूप में अवतार लेता है।

प्राचीन भारत की स्त्रियां जीवन के प्रत्येक विभाग में पूर्णरूप से स्वच्छन्द थीं। वे ज्योतिष, गणित, दर्शनशास्त्र, न्याय, तथा साहित्य में पटु होती थीं। जिन्होंने उपनिषद् तथा वेदों के दार्शनिक भागों को पढ़ा है वे जानते हैं कि गार्गी और मैत्रेयी दो बड़ी सत्यवेत्ता स्त्रियों ने याज्ञवल्क्य के साथ, जो वैदिक विद्या में प्रतिष्ठित ऋषियों में से एक थे, शास्त्रार्थ किया था। शंकराचार्य और मंडन मिश्र के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ में मध्यस्थ का कार्य करने के लिए एक आर्य देवी से ही प्रार्थना की गई थी। महाभारत में हम सुलभा एक ऐसी योगिनी का वृत्तान्त पढ़ते हैं जिसने राजा जनक की सभा में अपने

अद्भुत बल, और बुद्धि का चमत्कार दिखाकर सब को चकित कर दिया।

भारत की इस पतित अवस्था में भी आपको भारतीय विदुषियों के उदाहरण बतलाये जा सकते हैं। आज दिन भी इस गये गुज़रे आर्यावर्त में बहुत सी जीवित योगिनियां हैं जो कि आध्यात्मिकत्व में ऊँचे चढ़ चुकी हैं। इनमें से बहुत सी योगिनियां मनुष्यों की आध्यात्मिक गुरु होती हैं। श्रीरामकृष्ण १९वीं शताब्दी के सबसे बड़े महात्मा ने एक योगिनी से ही आध्यात्मिक तत्वों को सीखा था। जब

भारत स्वतन्त्र था

भारतवासियों का हृदय भी स्वतंत्र, उन्नत, निष्कपट तथा असंदिग्ध था। इस लिए भारतीय पुत्रियां भी अपने विचार तथा कार्य में पूर्ण रीति से स्वतंत्र थीं। वह विद्यालिक और साथ ही साथ साध्वी भी होती थीं। वह राज्य के कार्य सम्पादन करती थीं। अवसर पड़ने पर वे स्वदेश के लिए युद्ध भी करती थीं। उनकी वीरता के उदाहरण इतिहासप्रसिद्ध है। अस्तु सुवर्णमय भारत के सुदिनों में भारतीय स्त्रियां धार्मिक उत्साह, वीरता, विद्या, आत्मोत्सर्ग तथा सच्चरित्रता के लिए प्रसिद्ध थीं।

स्त्रियों के ऊंचे राजनैतिक अधिकार ग्रहण करने, देश शासन करने, नियम बनाने, सबके साथ न्याय करने तथा न्यायालयों में अपने पक्ष का स्वयम् प्रतिपादन करने के बहुत से उदाहरण पाये जाते हैं।

यदि ऐसी २ बातों के होते हुए भी आक्षेप हो सकता है कि हिन्दूधर्म स्त्रियों को वेदाभ्यास करने से रोकता है या उन्हें धर्म में कोई स्थान नहीं देता तो हम इतनाही सोचकर सन्तोष कर सकती हैं कि हमारे इन भाई और बहिनों की आंखें उन सत्य बातों की ओर नहीं खुली हैं जो उनके विशेष विश्वास या धर्म की सीमा से बाहर स्थित है। वेदों की यह विशेष आज्ञा है कि कोई विवाहित पुरुष किसी धार्मिक कर्म की रीतियों को बिना अपनी भार्या को साथ लिए हुए नहीं करेगा यदि वह ऐसा करेगा तो उसका कर्म अपूर्ण और अक्षम्य रहेगा और उसका पूरा फल उसे नहीं प्राप्त होगा क्योंकि भार्या पति के आध्यात्मिक जीवन की साथी और हिस्सेदार समझी जाती है और इसीलिए संस्कृत में उसे सहधर्मिणी कहा गया है। यह भाव बहुत प्राचीन है। उतना ही प्राचीन है जितनी की आर्य जाति।

एमेरिका को अपनी सभ्यता और अपनी स्त्रियों की

स्वतन्त्रता का घमण्ड

है। पर हमें मालूम है कि कितना कम अधिकार और कितने थोड़े स्वत्व स्त्रियों को वहां प्राप्त हैं। इस बात का दावा किया जाता है कि ईसाई धर्म ने स्त्रियों की दशा को उन्नत किया है। पर इसके विरुद्ध इतिहास हमको बतलाता है कि यह ईसाई धर्म ही शताब्दियों से स्त्रियों के धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक स्वतन्त्रता की राह में अड़ा रहा है। ईसाइयों ने स्त्रियों का सम्मान करना सिखाया नहीं है बल्कि अन्य धर्मावलम्बियों से सीखा है। Sir Monier William साहब कहते हैं। "यूरोप की स्त्रियों की अपेक्षा हिन्दुस्थानी स्त्रियां विशेष अधिकार रखती हैं। यूरोप और एमेरिका की अपेक्षा भारतवर्ष में स्त्रियों के पीटनेवालों की संख्या बहुत कम है। वह कदापि सच्चा हिन्दू नहीं जो हर स्त्री के शरीर को ईश्वर के मन्दिर के तुल्य पवित्र नहीं समझता। वह जाति के बाहर है जो स्त्री के शरीर को अनादर, घृणा तथा क्रोध से छूता है। मनु जी कहते हैं कि "स्त्री के शरीर को पुष्प से भी खींचकर न मारे क्योंकि वह पवित्र है।"

इसी कारण से हिन्दू लोग स्त्रियों को प्राणदंड नहीं देते देते।

हिन्दू धर्मानुसार जो सम्मान स्त्रियों का होना चाहिये अब उसकी अधिक मीमांसा की आवश्यकता नहीं मालूम होती और सौभाग्यवश अब वह समय नहीं कि हमें यह पूछने की आवश्यकता पड़े कि स्त्रियां किस प्रकार उन्नति कर सकती हैं। पश्चिमीय देशों की भांति पूर्वीय देशों की स्त्रियों को पूर्ण विश्वास कर लेना चाहिये कि यथार्थ प्रयोग से ही उनका सुधार सम्भव है। जब तक वह मूर्खा हैं वह अवश्य दुखी रहेंगी वह कदापि पुरुषों के कलाकौशल तथा व्यापार में शामिल नहीं हो सकतीं। उन्हें पढ़ाइये। उनमें प्रबन्ध विषयक शक्ति उत्पन्न कीजिये फिर देखिये किस शीघ्रता से उनकी दशा बदलती है। विद्या और फलदायक समाजों के बना देने से ही स्त्री स्वतंत्रता तथा विद्वत्ता प्राप्त हो सकती है। कविवर शैरीडन (Sheridan) का कथन है कि "स्त्रियां हम पर राज्य करती हैं इस कारण हमें उनको निपुण बनाना चाहिये हम उन्हें जितना प्रवीण बनायेंगे उतने ही हम स्वयं प्रवीण बनेंगे और स्त्रियों के सुशिक्षित होने से ही पुरुष बुद्धिमान हो सकता है।"

धनार्जन और नारीजन।

[लेखक—श्रीयुत कपिलदेव मालवीय।]

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि बिहारी ने अपने 'सतसई' के आरम्भ में जो दोहा लिखा है उससे वे केवल वैज्ञानिक तत्वज्ञ ही नहीं, वरन् सामाजिक तत्वज्ञ भी सिद्ध होते हैं। संस्कृत और हिन्दी के कवियों में से प्रायः सब ने अपने ग्रन्थ के आदि में ईश्वर का स्मरण किया है। पर इस अवसर पर जैसी सूक्ष्म दृष्टि और प्रखर बुद्धि कालिदास और बिहारी ने दर्शायी है वैसी कदाचित ढूढ़े जाने पर भी अन्य लेखकों में विरले ही प्राप्त होगी। बिहारी ने लिखा है

"मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जातन की झांई परे, श्याम हरित दुति होय॥"

वास्तव में पुरुष इस संसार में अपनी प्राथमिक दशा अथवा अपने रंग या रूप विशेष से समाज की स्थिति पर अधिकार नहीं प्राप्त कर सकता। पहिले इस प्राथमिक दशा पर स्त्री का प्रभाव पड़ता है और इसके पड़ते ही उसकी काया पलट जाती है। तदनन्तर इस अन्योन्य प्रभाव से संगठित नर और नारी समाज स्थिति का भार अपने ऊपर उठाते हैं। राधिका की झांई पड़ते ही कृष्ण का श्यामवर्ण से हरितवर्ण हो जाना इसी सत्यसिद्धान्त को भासित करता है। कालिदास ने भी 'रघुवंश' के आदि में लिखा है

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ॥

यहां पर कवि, स्त्री और पुरुष को पृथक नहीं समझता। दोनों एक दूसरे से उसी प्रकार मिले हुए हैं जैसे शब्द अपने अर्थ से मिला रहता है। शब्द से अर्थ को विलग करना केवल शाब्दिक न्याय है वास्तविक नहीं। इसी प्रकार नर नारी का सम्बन्ध और कार्य भेदरहित है।

यह तो हुई कवियों की बात। यथार्थ बात देखने में इसके प्रतिकूल विदित होती है। सृष्टि के प्रारंभ से लेकर आजतक समाज में स्त्री और पुरुष को भिन्न २ कार्य दिया गया है। कुछ देशों ने तो स्त्री को एक दूसरी योनि मान रक्खा है। डारविन ने मनुष्य योनि प्राप्त करने के पहिले जीव का कई योनियों में जाना सिद्ध किया है। कुछ लोगों ने स्त्री को पुरुष के योनि के पहिले की योनि मान रक्खा है। इसीके बूते

पर आज भी स्त्रियों के स्वत्व पुरुषों के स्वत्व से न्यून ही रक्खे जाते हैं। पर इस लेख में हम इस येनि मत पर मौनव्रत धारण कर स्त्रियों के धनार्जन स्वत्व, शक्ति और तत्सम्बन्धी सामाजिक परिवर्तनों की आलोचना करेंगे।

विचार कर देखने से यह प्रतीत होता है कि धन उपार्जन करने के ढंग समाज के ढंग के साथ ही समय समय पर बदलते रहते हैं। प्रारंभ में जब मनुष्य भेड़ चराकर और कहीं २ पर खेत जोतकर जीवन निर्वाह करते थे उस समय जिन वस्तुओं की उन्हें आवश्यकता होती थी वह सब उन्हें अपने वंश ही में प्राप्त होती थी उस समय कोई चौक और हाट नहीं थी। क्रय और विक्रय के सब कार्य प्रत्येक वंशवाले अपने घर ही में कर लेते थे। जिसे जिस पदार्थ की आवश्यकता होती उसे वह या तो अपने आप उत्पन्न करता अथवा उसके वंश में से अन्य कोई उसे पैदा कर देता। प्रत्येक वंशवालों के साथ उनका करघा और हल रहता था। समाज की यह सबसे पुरातन दशा थी। इसके भी पूर्वकाल में मनुष्य पृथक् पृथक् रहते और अपना अपना प्रबन्ध अपने आप करते थे। पर उस समय कोई समाज नहीं था। समाज का बनना मनुष्यों के मिलने पर आरंभ होता है। अब हमें विचार यह करना है कि इस दशा में धनार्जन कैसे होता था और स्त्रियों का उससे क्या सम्बन्ध था? यदि धन का अर्थ रुपया अथवा सिक्का समझा जाय तब तो यह पुरातन समाज अत्यन्त दरिद्र था क्योंकि उस समय कोई रुपया पैसा नहीं था पर हम धन से केवल रुपया पैसा न समझकर उन सब पदार्थों को समझते हैं जो उनके कार्य के थे और जिनके लिए उन्हें परिश्रम करना पड़ता था। ऐसे पदार्थों की सूची बनाने में कोई लेखक अनुमान और कल्पना का बहिष्कार नहीं कर सकता। फिर भी अनुमान और कल्पना इस सम्बन्ध में बहुत कुछ सत्य हैं क्योंकि जिस प्रकार गणित में दो सम्बन्धों के विदित होने से एक तीसरा सम्बन्ध ज्ञात हो जाता है उसी प्रकार इतिहास में भी समय विशेष की दो चार बातों के विदित होने से दो एक बातें और भी निकल आती हैं। अस्तु अनुमानतः उस पुरातन समाज के लोगों को भोज्य पदार्थ और पहिनने के पदार्थों की आवश्यकता रही होगा। भोज्य पदार्थ के लिए उन्हें, हल बैल अन्न के लिए, और धनुष बाण मांस के लिए आवश्यक हुये होंगे। दूध के लिए उन्होंने गायें पाली होंगी। कपड़ों के लिए उन्होंने भेड़ें पाली होंगी और फिर करघे का भी प्रयोग किया होगा। अब मार्के की समस्या यह उत्पन्न होती है कि इन पदार्थों में से स्त्रियों ने किन २ को उत्पन्न किया होगा? अथवा इनमें से किन २ वस्तुओं का प्रयोग उनके हाथ में रहा होगा?

बहुमत से इस अवस्था में स्त्रियों के कार्य खेतों से अनाज का लाना, निराना, उन्हें साफ करना और उनके भोजन पकाना, मांस पकाना, भेड़ों से ऊन कतरना और करघे से उनके वस्त्र तयार करना, गायें दुहना इत्यादि २ समझे जाते हैं। यदि हम इन्हीं कार्यों का आधुनिक शब्दकोष के अनुसार विभाग करलें तो व्यापार के सब कार्य (वस्त्र बुनना) इत्यादि स्त्रियों के हाथ में थे, और शेष आवश्यकीय वस्तुओं का उत्पादन कुछ पुरुषों के हाथ में और कुछ स्त्रियों के हाथ में।

आजकल की दशा इसके नितान्त विपरीत है। कौन कह सकता है कि संसार का समग्र व्यापार स्त्रियों के हाथ में है, अथवा शेष वस्तुओं के सम्पादन में उनका वही विशेष भाग है जो पूर्वकाल में था? इसके विपक्ष में यह कहा जाता है कि पुरातन समाज और आधुनिक समाज में बहुत अन्तर हो गया है और आजकल के विस्तृत व्यापार और नवीन शक्तियों की लगाम स्त्रियां धारण नहीं कर सकतीं। हमारी समझ में यह ठीक नहीं है। हम यह

नहीं कहते कि आवश्यकीय पदार्थों के उत्पादन का सब भार स्त्रियों पर छोड़ दिया जाय; ऐसा कहना हमारे तात्पर्य के विरुद्ध है क्योंकि इस लेख में हम यह दिखलाना चाहते हैं कि आवश्यकीय वस्तुओं का उत्पादन केवल पुरुष के हाथ में भी सौंपना असंगत है। आधुनिक काल में व्यापार का विभाग किस रीति पर किया गया है इसे जानने के लिए हमें वर्तमान व्यापार के अंग प्रत्यंग की परीक्षा करनी होगी।

सम्पत्ति-शास्त्र के अनुकूल वर्तमान व्यापार में भाग लेनेवाले पांच भिन्न २ समूह हैं। रुपया लगानेवाला (Capitalist), भूमि या प्राकृतिक शक्तियों का स्वामी (Landlord), कार्य करनेवाले मज़दूर (Labourer), ठीकेदार या प्रबन्धकर्ता (entrepreneur) और रक्षा करनेवाली सरकार (Government)। इसके देखने से यह ज्ञात होता है कि वर्तमान व्यापार की सञ्चालिनी, स्त्रियां तभी हो सकती हैं जब वे इन पांचों शक्तियों की स्वामिनी होवें। पर घर का मालिक पुरुष होता है। रुपया पैसा धन दौलत सब के स्वामी नरदेव होते हैं। ऐसे ही कहीं २ वैधव्य दुख दुर्दलित, समाज पददलित, तथा विवेकरहित दो एक स्त्री कुछ धन की स्वामिनी हों तो हों नहीं तो हिन्दू स्त्री जाति की जाति धनहीन है। ऐसी दशा में पहिली दो शक्तियों की स्वामिनी तो स्त्रियां हो ही नहीं सकतीं। बची मज़दूरी। मज़दूरों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या बहुत कम है। एक तो अच्छी रकमवाली मज़दूरी स्त्रियों को मिलती ही नहीं, रही कम रकमवाली जगहमें भी कई एक कारणों से विशेषतः पुरुष ही लगाये जाते हैं। केवल दो एक वस्तु के उत्पादन करने में स्त्रियों की संख्या मज़दूरी में विशेष रहती है। पर इस प्रकार तो लड़कों से भी मज़दूरी ली जाती है और केवल इतने के बूते पर यह तर्क नहीं किया जा सकता कि स्त्रियां मज़दूरी में विशेष भाग लेती हैं। स्त्रियों ने अपनी ट्रेड यूनियन अवश्य ही कहीं कहीं पर स्थापित करली है और इससे इनका कुछ लाभ भी हुआ है पर पुरुषों की अपेक्षा इनकी कोई गिनती नहीं है।

प्रबन्धकर्ता या ठीकेदार अथवा व्यापार का सञ्चालक (entrepreneur) भारतवर्ष के लिए एक नवीन वस्तु है। यहां तो वही मनुष्य खेत जोतता है, वही बोता है, वही बेचने का प्रबन्ध करता है, वही बेचता है और वही रुपये लाने की चिन्ता करता है। पर पाश्चात्य देशों की प्रथा भिन्न है और यदि यह भिन्नता न होती तो वहां का व्यापार भी वैसा ही शिथिल होता जैसा हमारे देशों का है। अस्तु आजदिन इसी ठीकेदार की तूती बोलती है। बिना इनके कोई व्यापार ही नहीं होता। इनका काम, यह ढूंढ़ निकालना रहता है कि किस स्थान पर किस समय कौनसी वस्तु बिक सकेगी। इसके अतिरिक्त ये महाशय व्यापार के संचालन का सम्पूर्ण भार अपने ऊपर ले लेते हैं और रुपया लगानेवाला रुपया लगाकर अलग हो जाता है। अब यदि प्रत्येक व्यापार की अलग २ जांच की जाय तब भी इस काम पर स्त्रियों को पाना दुर्लभ होगा। वास्तव में यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि किसी देश में भी स्त्रियों को यह गौरवान्वित और धनभूत पद नहीं प्राप्त हुआ है। अब रही पांचवीं शक्ति अर्थात् गवर्नमेन्ट। सरकारीसेवकों के चुनाव की वोट सरीखी साधारण वस्तु तक तो अभी इस वृहद संसार और दीर्घाकार भूमंडल में केवल ७ या ८ छोटे २ स्थानमात्र में स्त्रियों को प्राप्त हुई है और सो भी २५ वर्ष के कठिन परिश्रम और निरन्तर यत्न के पश्चात्। ऐसी अवस्था में स्त्रियों का सरकारी सेवक अथवा मंत्री पद प्राप्त करने की बात, अभी स्वप्न से भी अतीत ही समझनी चाहिये।

इस प्रकार स्त्रियां व्यापार के वृहद् लाभ से वञ्चित् रक्खी जाती हैं। अभीतक जो कुछ हमने लिखा है वह विशेषतः मैन्यूफैक्चरिंग व्यापार से सम्बन्ध रखता है। अब तनिक इनकी कृषि-

सम्बन्धी दशा पर दृष्टि फेरिये। भारतवर्ष में सेवाय पछोरने बीनने निरवई करने की मज़दूरी के स्त्रियों को अन्य कोई धनार्जन विधान खेतों में नहीं दिया जाता। अन्य जितने कार्य होते हैं वे यातो पुरुषों द्वारा सम्पादित होते हैं अथवा यदि स्त्रियों द्वारा सम्पादित भी हुये तो इनमें उनकी ऐसी परतन्त्रावस्था रहती है कि उन्हें धन नहीं प्राप्त होता। इससे यह प्रत्यक्ष है कि औद्योगिक तथा कृषि-सम्बन्धी दोनों प्रकार के व्यापारों के लाभों से स्त्रियां वञ्चित रक्खी जाती हैं। हम यह पहिले ही दिखला चुके हैं कि पुरातन समाज में ये दोनों कार्य प्रायः स्त्रियों ही के हाथ में थे अतः यह प्रश्न हो सकता है कि आधुनिक समाज ने स्त्रियों से इस प्रचुर लाभ छीनने के बदले में उन्हें कौनसा मावज़ा दिया है?

सच पूछिये तो समाज ने इस क्षति के पूरी करने के लिए उन्हें कुछ भी नहीं दिया है। हम सरकारी नौकरी, कृषि-सम्बन्धी और औद्योगिक व्यापार में इनकी पराधीनता और धनहीनता दिखला चुके हैं। अब केवल व्यक्तिगत पेशे (Professions) शेष रहे। इस कक्षा में वकालत, डाक्टरी, साधारण नौकरी और नृत्य गान प्रभृति कार्य आते हैं। वकालत तो स्त्रियां केवल नाटक और उपन्यास में करती हैं। डाक्टरी वे एक परिमित संख्या में करती हैं। साधारण नौकरी उन्हें यातो दूकानों में या रेलों में या अमीरों के घरों में प्राप्त हो जाती है, पर डाक्टरी और साधारण नौकरी में मिलाकर भी समाज के सम्पूर्ण धन का एक अत्यल्पांश स्त्रियों के हस्तगत होता है।

नृत्यगान इत्यादि रोचक कृत्यों में भी पुरुषों की आय स्त्रियों की अपेक्षा अधिक है। प्रत्येक नाटक कम्पनी को पुरुष-पात्रों के वेतन में कुल मिलाकर स्त्री पात्र के वेतन से कहीं अधिक व्यय करना पड़ता है। इसका एक कारण है। अभाग्यवश स्त्रियों का कला-कौशल और गुण सीखना भी निरापद नहीं है। भला जिस समाज में कला नहीं वहां बला छोड़कर और क्या हो सकती है, पर चन्द्रमा के श्वेत तेज में कालिमा की भांति स्त्रियों के कला के साथ एक लांछना अवश्य चलती है। इस सम्बन्ध में दो प्रकार के तर्क किये जाते हैं जिनका सूक्ष्मरूप से उल्लेख और सूक्ष्मतर रूप से समाधान हम यहां किये देते हैं। पहिले तो यह कहा जाता है कि पेशे-वाली स्त्रियों में कला कौशल के साथ ही साथ व्यभिचार अदैव मिश्रित रहता है और यद्यपि प्रगट रूप से ऐसा प्रतीत नहीं होता तथापि स्त्रियों में कला बढ़ाने के उपायों का परिणाम केवल पापों के वृद्धि में संघटित होता है किन्तु एक अमर और अटल नियम मैं यहां लिखे देता हूं। यदि स्त्री रक्षित कला-कौशल से कहीं कहीं व्यभिचार की वृद्धि होती है तो साथ ही साथ सच्चा प्रेम और गाढ़ा प्रेम क्या वस्तु है इसका भी प्रथम दर्शन मनुष्य-मात्र को इन्हीं कलाओं के द्वारा होता है। जिस समाज में कलाकौशल नहीं है वहां प्रेम कदापि नहीं रहता और जहां प्रेम नहीं है वहां विवाह की प्रथा भी नहीं रह सकती। प्रेम कोई बाहरी पदार्थ नहीं है वह मनुष्य की अन्तर्गत एक शक्ति है और जिस प्रकार मनुष्य की अन्तर्गत मनन शक्ति को जागृत करने के लिए विद्याभ्यास की आवश्यकता होती है ठीक उसी प्रकार प्रेमशक्ति को जागृत करने के लिए स्त्रीरक्षित कलाकौशल की आवश्यकता है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि हम उसी स्त्री से प्रेम कर सकते हैं जिसकी कला विशेष पर हम मुग्ध हो जायँ। इसका अर्थ यह है कि कला विशेष पर मुग्ध होना हमारे एक आन्तरिक शक्ति को जागृत करता है और हम उचित पात्र से सम्बन्ध करने पर उस शक्ति द्वारा अपना सुख और समाज का हित साधन कर सकते हैं। बहुत प्राचीनकाल में विवाह की पद्धति से मनुष्य अनभिज्ञ थे पर स्त्री-पुरुष का शारीरिक संबन्ध तब भी था। उस समय कोई भेद और पृथक

विभाग नहीं था कोई जोड़े न थे। धीरे २ जिस प्रकार मनुष्यों में प्रेमशक्ति जागृत हुई उन्होंने विशेष स्त्री और विशेष पुरुष का विभाग करना प्रारंभ किया। कुछ लोगों का यह मत है कि जिस प्रकार मनुष्य में स्वार्थ की वृद्धि हुई उसने पदार्थों को अपनाना आरंभ किया। पर अन्य पदार्थों में और स्त्रियों के अपनाने में भेद था। उस समय से लेकर आजतक स्त्रियों को अपनाना अपने को उस स्त्री से कैद करना है और स्वभावतः मनुष्य की भोग-विलास की इच्छा इसके विरुद्ध प्रेरणा करती हैं। इससे यह प्रत्यक्ष है कि जिस समय हमारे पूर्वज अपने को किसी स्त्री या कुछ स्त्रियों से कैद करने चले थे उस समय वे स्वार्थसिद्धान्त से प्रेरित नहीं हुए थे प्रत्युत उनमें एक नई शक्ति का सञ्चार हुआ था और उसका नाम प्रेम है। पर प्रेम शक्ति अपने आप नहीं उत्पन्न हो गई। यह संभव है कि दो एक मनुष्यों में वह अपने आप उत्पन्न हो जाय पर जाति की जाति और समूह के समूह में वह इस प्रकार नहीं उत्पन्न हो सकती। जब कलाकौशल की उत्पत्ति हो लेती है तब प्रेम शक्ति जागृत होती है। संसार के सभ्यता के इतिहास पर विचार करने से यह प्रत्यक्ष बात होता है कि सब समूहों में विवाह की प्रथा एक साथ ही प्रचलित नहीं हुई थी। कहीं सौ वर्ष पीछे कहीं दो सौ और कहीं उससे भी अधिक। पर जहां कहीं वह हुई है वहां सौन्दर्य या कला ने प्रेम की शक्ति को जागृत किया है और तब मनुष्यों के हृदय इस प्रथा अथवा उसी प्रकार की अन्य प्रथाओं की ओर झुके थे। समाज की स्थिति विवाह प्रथा के बिना आज कैसी होती यह मैं नहीं अनुमान कर सकता, पर जैसी वह है उसके लिए समाज स्त्रीरक्षित कला का अत्यन्त अनुगृहीत है।

इसे जाने दीजिये यहां तो स्त्री और पुरुष की तुलना हो रही है। पक्षियों में फौज के सिपाही जिस प्रकार रक्खे जाते हैं क्या वह कुछ कम व्यभिचारोत्पादक है? वास्तव में वह अधिक भयंकर है। हमारे देश में जो लाखों गोरे सिपाही रहते हैं उनके व्यभिचार के लिए सरकार की ओर से प्रबन्ध किया जाता है! पर फिर भी सिपाहियों की वीरता की प्रशंसा होती है और उनका आदर होता है। प्रजा की "मा बाप" का कर्तव्य बहुतों की लायल्टी स्तंभित चक्षु में अनुचित हो ही नहीं सकता। पर हमारा तात्पर्य केवल यह दिखलाना है कि कला-कौशल और गुण, स्त्रियों के सम्पर्क से भ्रष्ट समझे जाते हैं और इस प्रकार भी स्त्रियों की आर्थिक दशा शोचनीय बनी रहती है।

दूसरा तर्क जो कला-कौशल का वृद्धि के विरुद्ध किया जाता है वह यह है कि भारतवर्ष ऐसे देश में इनकी आवश्यकता नहीं है। इनपर धन व्यय करना धन का नाश करना है और जितना धन इनपर व्यय किया जा सकता है उसे शिक्षा-प्रचार इत्यादि पर व्यय करना चाहिये। निस्सन्देह भारत का उद्धार बहुत कुछ शिक्षा-प्रचार पर निर्भर है। पर थोड़ा देर के लिए मान लीजिये कि यहां सम्यक् रूप से शिक्षा-प्रचार होगया तब इस सम्बन्ध में हमारी क्या आवश्यकताएँ होंगी। पुराण और इतिहास में भारत के सुदिन में अप्सराओं के नृत्य गान और भिन्न कलाओं का उल्लेख मिलता है। शिक्षा हमें समृद्धि मार्ग पर ले चलने के लिए एक विधान मात्र है पर जिस समय हम वहां पहुंच जाते हैं उस समय भी हमें देशभर के लिए ऐसी कलाओं की आवश्यकता होती है। अतः कलाओं का त्याग करना वर्तमान अवस्था से भी पीछे जाना है।

इस किंचित विषयातीत चर्चा को छोड़कर हम पुनः स्त्रियों की धनार्जन-सम्बन्धी दशा का विचार करते हैं। प्राचीन काल के हिसाब से स्त्रियों की दशा में एक बृहद परिवर्तन हुआ है और आर्थिक विचार से वे पुरुषों की अपेक्षा

सर्वत्र बलहीन हैं। इस सम्बन्ध में यह प्रश्न उठता है कि उन्हें धन की आवश्यकता क्या है; उन्हें धन से या अर्थ से प्रयोजन क्या है? यह तो अर्थ का अर्थ पूछना हुआ। पर फिर भी हम इसे यहां स्पष्ट किये देते हैं।

महाकवि भवभूति ने लिखा है कि :—

अन्तःकरणतत्वस्य दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात्
आनन्दग्रन्थिरेकोयमपत्यमिति बध्यते॥

हां, घरविशेष में स्त्री और पुरुष के बीच में यह सिद्धान्त सत्य है। यहां पर स्त्री और पुरुष को मिलानेवाला पुत्र होता है पर समाज में स्त्री और पुरुष को मिलानेवाला धन होता है। घर में स्वत्व नहीं चलते, प्रेम चलता है; समाज में प्रेम नहीं स्वत्व चलता है। स्वत्व सांसारिक शक्तियों से प्राप्त होता है और सांसारिक शक्तियों में धन मूर्तिमान शक्ति है। जाति जाति और देश देश में प्रेम, धन के कारण होता है। इंगलैंड का अपने उपनिवेशों से प्रेम सम्राट अथवा प्रजा के प्रत्येक व्यक्ति के चित्त की कोई ज्वाला नहीं है। वह एक धनप्रेरित लिप्सा है। जाति जाति और देश देश में युद्ध धन के कारण होता है। जर्मनी इंगलैंड प्रभृति देशों का आधुनिक रणकांड धन-प्रेरित है। प्रेम एक भाववाच्य तरंग है। घर में यह काम देता है पर घर में भी जहां स्त्री ने पुरुष से कोई अधिकार स्वत्व की भांति मांगा वहां इसका उपाय निष्फल हो जाता है, क्योंकि स्वत्व एक कर्तृवाच्य तरंग है और धन से पुष्टि प्राप्त करता है। जब तक स्त्रियों का कार्य घर में है तब तक वे किसी प्रकार धन के बिना भी निर्वाह कर सकती हैं पर जिस समय वे समाज में, प्रवेश करती हैं और अपने स्वत्वों की ओर ध्यान देती हैं उस समय उन्हें धन की आवश्यकता पड़ती है। वोटाभिलाषिणी रमणियों के आन्दोलन को अभी सफलता नहीं प्राप्त हुई अथवा कम प्राप्त हुई है; क्योंकि स्त्रियों के पास धन नहीं है। इसका यह अर्थ नहीं कि सफ्रेजिस्ट सोसाइटीज़ के पास धन नहीं है पर बात यह है कि स्त्री जाति के पास धन नहीं है। पुरुष के दबाने पर स्त्री को पराजित होना पड़ता है क्योंकि स्त्री धनहीन है अतः पुरुष की इच्छा के विरुद्ध नहीं चल सकती। और यह दशा इंगलैंड ऐसे देशों में है जहां बहुत सी स्त्रियां भी अपनी रोज़ी कमाती हैं। भारतवर्ष की स्त्रियों ने भी अब घर से समाज में पैर रक्खा है इन्हें भी अब अपने स्वत्वों की ओर ध्यान देना होगा अतः इन्हें भी धनार्जन करना होगा। लेख बढ़ जाने से अब हम केवल समाज और घर के भेद से हमारा क्या तात्पर्य है इसे दिखलाकर इस लेख को समाप्त करते हैं।

घर में स्त्री और पुरुष निःसन्देह कालिदास के अनुसार "वागर्थाविवसम्पृक्त" हैं क्योंकि इन्हें प्रेम की शृंखला बांधती है, पर समाज में यदि प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक स्त्री जो जिनसे जहां मिले प्रेमशृंखला से बद्ध हो जायँ तो कैसा ही भयंकर विपत्ति उपस्थित हो। साधारणतः समाज में जब पुरुष दूसरी स्त्री से मिलता है तब उसका व्यवहार सांसारिक रीति पर उसी प्रकार होता है जैसा दो पुरुषों के बीच में, अथवा दो स्त्रियों के बीच में। क्या दो पुरुषों के बीच में अपने अपने कार्य के लिए धन की आवश्यकता नहीं होती? जहां समता है वहां दोनों पक्ष में स्वावलम्बन की सामर्थ है; और स्वावलम्बन और धन समाज-चक्र में पर्यायवाचक शब्द हैं। इसलिए यदि समता की ममता है तो नारीजन को भी धनार्जन करना होगा।

भारतमाता की कामना।

[लेखक—श्रीयुत माधव शुक्ल।]

ऐ ऋषिकुल का दीप! समुज्ज्वल चिन्ह वंश का।
एकमात्र अवशेष आर्यगढ़ खंड ध्वंस का!
हवन कुण्ड का धूम्र! श्रान्त आशा का सुस्थल!
आर्य परिश्रम बिन्दु! सूर्य भारत कुल मंडल!
हिन्द सुदिन प्रतिबिंब! सतत आशा की खूटी!
पुरखन की स्मृति! भरत वंश संजीवन बूटी!
रणकौशल का दाग! श्रोत शुचि आर्य रक्त का!
कुल कीरति का कोश! शस्त्र भारत अशक्त का!
तव मस्तक हो जाय हिमालय हिम किरीटमय।
दोनों बाहु विशाल विंध्य से विस्तृत अतिशय॥
शस्यश्यामला भूमि हृदय तव होय विशाला।
वत्स! जाह्नवी यमुन स्फटिक सी हों गर माला॥
द्वीपपुंज हों चरण होय पट विस्तृत सागर।
तू ही हो इस भरतखंड का एक प्रभाकर॥
सिंह सामने खड़े रहैं नितहीं नतमस्तक।
चिरजीवित रह पुत्र भूमि रविमंडल अब तक॥

भारतमाता का अपनी सन्तान को उपदेश।

प्यारे सुत! लोशस्त्र मान पुनरुज्जीवित कर।
शास्त्र मनन कर हो प्रबुद्ध मम मुख लाञ्छन हर॥
ब्रह्मचर्य बलसे विनाश कर दुसह विषादा।
थाप विश्व में सुत! अखंड मेरी "मर्यादा"॥

माता।

[लेखिका—श्रीमती रामेश्वरी नेहरू—सम्पादिका स्त्री दर्पण।]

और "माता" ये कैसे प्यारे शब्द हैं। इनमें न जाने कौन मोहनी शक्ति भरी है कि इन के उच्चारण ही से शुष्क हृदय हरा हो जाता है और इनके कर्णगोचर होते ही प्रेम और स्नेह की लहरें हृदय तट पर उमड़ने लगती हैं।

माता के प्रेम और सच्चे स्नेह की महिमा का कौन पूर्ण रूप से गान कर सकता है? माता के महत्व को कौन बता सकता, और इस संसार में माता की शक्ति की कौन तुलना कर सकता है? माता मनुष्यमात्र को केवल जीवन दान ही नहीं देती, न केवल बालपन में अपने दुग्ध से उसके शरीर की पुष्टि ही करती है, वरन् अपने बालकों के द्वारा समस्त मानसिक संसार पर शासन करती है। माता की शक्ति महान् है और माता का स्थान पवित्र और उच्च है। परन्तु कितनी माताएं इस उच्च आसन को ग्रहण करने योग्य होती हैं? और कितनी अपनी इस अतुलनीय शक्ति का प्रयोग करना जानती हैं?

पुरातनकाल में भारतवर्ष में और संसार के अन्य स्थानों में भी माता बड़े आदर की दृष्टि से देखी जाती थी। बहुत से पुत्र-पौत्रों की माता से बढ़कर सौभाग्यवती और पूजनीय स्त्री कोई दूसरी नहीं थी। ऐसी ही स्त्री दर्शनीय समझी जाती थी और अन्य स्त्रियां अपनी लड़की बालियों के शुभ कार्यों में उसके हाथ लगाने को अपना सौभाग्य समझती थीं। व्याह के अवसर पर अब भी गुरुजन और माता पिता स्त्रियों को यही आशीष देते हैं कि ईश्वर उन्हें पुत्र पौत्र से सम्पन्न करें, वे फलें, फूलें और बड़े परिवार की माता बनें। हमारे धर्म में भी माता दुर्गा, लक्ष्मी आदि कई देवियों का पूजन होता आया है जो समस्त संसार की माताएं मानी गई हैं। माता का आदर और महत्व यूरोप में भी मध्यकाल में इतना बढ़ा हुआ था की मैडोना रूप में साक्षात् माता का पूजन किया जाता था।

माता इतने आदर की दृष्टि से क्यों देखी जाती थी? बहुत से पुत्रों की माता का क्यों इतना मान होता था? कोरे भावमय विचारों को दूर करके यदि आजकल की व्यावहारिक दृष्टि से इस प्रश्न को देखा जाय तो इसका एक यही उत्तर हो सकता है, कि सभ्यता की उस प्रारम्भिक अवस्था में अपने अस्तित्व के बनाये रखने के लिए बहुत से पुत्रों की आवश्यकता थी और इसीलिए पुत्रों की जननी "माता" आदर और सम्मान की दृष्टि से देखी जाती थी। उन दिनों मनुष्यसमाज छोटे छोटे कुटुम्बों में विभाजित था। इनमें परस्पर वैरभाव और लड़ाई-झगड़े चले चलते थे। अपनी रक्षा अन्य मनुष्यों और बन के जंगली पशुओं से करने के लिए यह आवश्यक था कि कुटुम्ब बड़ा हो जिसमें बहुत से कुटुम्बी आत्मरक्षा करने में एक दूसरे के सहायक हों। इस आवश्यकता की पूर्ति माता के हाथ में थी इसीसे माता का आदर होने लगा। और फिर ज्यों ज्यों माता और पुत्र के परस्पर के सम्बन्ध में सभ्यता का रंग रोग़न चढ़ता गया त्यों त्यों यह आदर सत्कार बढ़ता ही गया।

माता स्नेह की मूर्ति है, स्त्री माता रूप में प्रेम का मूर्तिमान् स्वरूप है। यह भी एक कारण है जिससे सन्तानवती स्त्रियों का आदर होता आया है।

मनुष्यशरीर को जिस भांति भोजन की आवश्यकता है उसी भांति मनुष्य हृदय को प्रेम की आवश्यकता है। जैसे हमारा शरीर बिना भोजन के सूख जाता है वैसे ही हमारा हृदय भी बिना

प्रेम के भूखा जाता है। संसार की वर्तमान दशा में यह प्रेम बाल्यावस्था में हमको जितना माता से मिलता है उतना किसी और से मिलना सम्भव नहीं। इसीसे इस अवस्था में हमें अपनी माता ही संसार की अन्य समस्त वस्तुओं से अधिक प्यारी लगती है और उसी से हमें सबसे बढ़कर सुख और आनन्द मिलता है। जिस माता के अस्तित्व पर बालपन में हमारा सुख आनन्द इस प्रकार निर्भर था उस माता के नाम ही का आदर करना मनुष्यों का धर्म हो गया और हर जननी को वे अपनी माता का स्मरण कर आदर की दृष्टि से देखने लगे। जिस माता का पद इस आदर और सन्मान का केन्द्र था उस माता के पद को ग्रहण करने की किस की चाह न होती। इसका परिणाम यह हुआ कि स्त्रियों में माता बनने की इच्छा प्रबल होने लगी। हर स्त्री के लिए माता बनने की चाहना करना एक स्वाभाविक बात हो गई। इसके अतिरिक्त स्त्रियों में इस इच्छा के इतने प्रबल होने का एक और कारण भी है। मनुष्य का स्वभाव एक विचित्र रूप से संयुक्त है। इसमें स्वार्थपरता और परहित सेवन दोनों ही गुण विद्यमान हैं। केवल अपने पेट में अन्न भर लेने और तन पर वस्त्र डाल लेने से कोई स्त्री, पुरुष जो मनुष्य कहाने योग्य है सुखी नहीं रह सकता। अतएव स्त्री, पुरुष दोनों ही को अपना जीवन स्वादिष्ट बनाने के हेतु किसी ऐसी वस्तु की आवश्यकता है जिसकी सेवा करना वह अपना कर्तव्य समझें और जिसके हेतु वह अपना सारा जीवन व्यतीत करें। सभ्यता की पुरातन और वर्तमान दशा में विशेष करके स्त्री को यह वस्तु एकमात्र बालक ही में मिलती है जिसकी देख रेख में, जिससे प्रेम करने में, जिसके लिए चिन्ताएं उठाने में वह अपना सारा समय व्यतीत करती है। इस प्रकार केवल एक बालक ही माता के जीवन का सहारा है, माता का सुख है, माता का आनन्द और उसका आराम है। युवावस्था को प्राप्त की हुई स्त्री को बालक बिना घर और संसार कैसा सूना दिखाई देता है। पहिले पहिल जब ऐसी स्त्री अपने नवप्रसूत बालक को अपनी स्नेह भरी छाती से लगाती है तो उसका हृदय किस अपूर्व आनन्द का अनुभव करता है, इसका वर्णन भला मेरी तुच्छ लेखनी क्या कर सकती है आज वर्षों से कवियों के काव्यों और चित्रकारों के चित्रों का यह उपलक्ष्य बन रहा है फिर भी विचार किया जाता है कि कोई माता के आनन्द और सुख का पूर्ण रूप से वर्णन करने में सफल नहीं हुआ है।

इस सब आनन्द और सुख का कारण किसी अंश तक यह है कि स्त्री जिसे भाँति भाँति की सामाजिक रुकावटों के कारण अपने स्नेह-वात्सल्य और अन्य शक्तियों के प्रयोग का अन्यथा अवसर नहीं मिलता अपने बालक के प्रति उन सब को लगा देती है।

आनन्द, दुःख और कष्ट बहुत कुछ मानसिक विचारों पर अवलम्बित हैं। और हर स्त्री पुरुष के मानसिक विचार देशकाल के प्रचलित धर्म और नैतिक नियमों के अनुसार बनते हैं। पूर्व वर्णित प्राचीन काल में स्त्री की सब से बड़ी आकांक्षा माता बनना था जिसकी पूर्ति से वह अपूर्व सुख और आनन्द का अनुभव करती थी। आज दिन भी बहुत से देशों में युवती स्त्रियों के हृदय माता बनने की तीव्र अभिलाषा से भरे रहते हैं। संसार की अधिकतर स्त्रियां अब भी माता बनना अपना एक पवित्र और आनन्दमय कर्तव्य समझती हैं। परन्तु संसार की अन्य वस्तुओं के सदृश मनुष्य के विचार भी परिवर्तनशील हैं। बहुधा देखा गया है कि जो बातें एक ज़माने में अच्छी और नीति-नियमानुसार समझी जाती हैं, सभ्यता के दूसरे दौर में उन्हीं को बुरा और निन्दनीय माना जाता है। आजकल इस सम्बन्ध में भी मनुष्यों के विचारों में एक अद्भुत परि-

वर्तन होता दिखाई दे रहा है। पूर्वकाल में सन्तानोत्पत्ति मनुष्य के कर्तव्यों में से एक समझा जाता था। यहां तक कि भारत में तो व्याह भी, किसी सांसारिक सुख के अभिप्राय से नहीं, वरन् इस पवित्र कर्तव्य को पूरा करने के हेतु किया जाता था। व्याह करना प्रत्येक सांसारिक स्त्री पुरुष का धर्म था। आजकल के नये विचारों के प्रभाव में यह विचार दिन दिन महत्व में घटता जाता है। व्याह करना वा सन्तान उत्पन्न करना अब स्त्री पुरुषों का कर्तव्य या धर्म नहीं रहा है। व्याह जीवन की भोग विलास की वस्तुओं में से एक समझा जाता है, और व्याह के पश्चात् भी सन्तानोत्पत्ति कुछ आवश्यक नहीं मानी जाती। स्त्रियों की माता बनने की इच्छा दिन २ घटती जाती है। माता बनकर बालक की देख रेख में व्यर्थ समय नष्ट करना उन्हें अच्छा नहीं लगता। फ्रान्स और अमेरिका में प्रति दिन सन्तानोत्पत्ति घट रही है। पहिले तो स्वतंत्र स्वभाववाले स्त्री पुरुषों के एक बड़े समूह को व्याह करना ही रुचिकर नहीं और फिर जो स्त्री पुरुष व्याह करते भी हैं उनमें से बहुतेरे बालकों का होना रोक देते हैं। बहुतेरी स्त्रियां बालकों को एक अनावश्यक झगड़ा समझ कर उनसे दूर ही रहना पसन्द करती हैं। दशा बदल गई है, विचार दूसरे हो गये हैं, सभ्यता नई है। परिणाम यह है कि जिन कारणों से स्त्री के हृदय में माता बनने की प्रबल इच्छा विद्यमान थी वे कारण अब धीरे धीरे लोप हो रहे हैं। स्त्रियों की दशा में बड़ा भारी परिवर्तन हो चला है। उनका कार्यक्षेत्र अब शनैः शनैः बढ़ रहा है। उनके हाथों में अब केवल बालक और गृहस्थी ही दो ऐसी वस्तुएं नहीं रही हैं जिन पर वे अपनी शक्तियों का प्रयोग और मानसिक गुणों का विकाश कर सकें। वह घरों से बाहर निकल सकती हैं। उनकी मानसिक शक्तियां वैसे ही विफलित की जारही हैं जैसे पुरुषों की। उनकी आँखें खुल गई हैं और अब वे पुरुषों के अधीन रह घरों में बैठ कर बच्चे पालना पसंद नहीं करतीं। स्वतंत्रता और स्वावलम्बन का स्वाद अब उन्होंने भी चख लिया है और वे अपने पुरुषों के कमाये हुए रुपयों पर निखट्टुओं की भांति मज़े से अपना उदर पालन नहीं किया चाहतीं। वे आर्थिक स्वतंत्रता लाभ किया चाहती हैं और संसार में पुरुषों ही के समान सिर उठाकर, सच्ची स्वतंत्रता के साथ अपना जीवन व्यतीत करना उनका लक्ष्य है। अमेरिका की एक बड़ी भारी ग्रन्थकर्त्री ने अपनी एक पुस्तक में भले घराने की गृहस्थ स्त्रियों के सम्बन्ध में लिखा है कि "ये सुस्त स्त्रियां जिन्हें कार्य करके खाना रुचिकर नहीं है हमारे समाज में जोंक के समान लपटी हुई हैं। गृहरक्षा के बहाने वे नित दिन घरों में पड़ी खाटें तोड़ा करती हैं और अपने पतियों के परिश्रम से कमाये हुए रुपये को अच्छे वस्त्र और आभूषण बनाकर पहिनने, थिएटर तमाशों में जाने और लोगों से मिलने मिलाने में ख़र्च करके खुश रहती हैं। ऐसी स्त्रियों में नाममात्र को स्वाभिमान नहीं है, वे बिना काम किये खाना बुरा नहीं समझतीं और अपने शरीर को बेचकर वे सांसारिक ऐश्वर्य को ख़रीदती हैं।" पश्चिम की बड़ी बड़ी बुद्धिमती विदुषी स्त्रियों में जो आजकल सहस्रों स्त्रियों को पीछे लेकर चल रही हैं ये विचार फैल रहे हैं! ये विचार बहुत उच्च हैं और सच्ची स्वतंत्रता से भरे हुए हैं परन्तु माता के भावों को दमन करनेवाले और माता के कार्यों में बाधा डालनेवाले हैं। आर्थिक स्वतंत्रता लाभ करने के अभिप्राय से ही अमेरिका और यूरोप में क्वांरी स्त्रियों के अतिरिक्त सहस्रों व्याहता स्त्रियां कलों, कारख़ानों, दूकानों, दफ़्तरों आदि में काम कर रही हैं। ऐसी स्त्रियों को कई कई घन्टे घरों से बाहर रहकर कार्य करना होता है। ऐसी अवस्था में ये अपने बाल-बच्चों की

देखभाल भला क्या कर सकती हैं? परिणाम यह होता है कि इन देशों में सन्तानोत्पत्ति दिन दिन घट रही है और जिन स्त्रियों के बालक हैं भी वे उनकी शिक्षा और पालन-पोषण का कार्य भली प्रकार नहीं कर सकतीं। इसके लिए भी उपाय सोचे जारहे हैं। अमेरिका की एक विदुषी लेखिका लिखती हैं कि Bottle-institutes के नाम से दुधमुंहे बालकों के लिए भी क्यों न आश्रम खोले जायँ? जहां नवप्रसूत बालक आरम्भ ही से भेज दिये जाया करें। ऐसा करने से बालक का पालन-पोषण उससे अच्छा होगा जैसा कि आजकल बहुतेरे घरानों में होता है। जब बालक थोड़ा बड़ा हुआ तो "किन्डर गार्टन स्कूल" में भेजा जा सकता है और फिर पबलिक स्कूल बोर्डिंग हाउस और कालेज इत्यादि तो पहिले से ही खुले हैं। इस प्रकार माता के कार्य में बाधा डाले बिना ही बालक इन सब आश्रमों में अपनी अवस्था के अनुसार रक्खा जा सकता है और वहां से विशेष रूप से सीखे पढ़े शिक्षकों के आधीन रहकर वह एक अच्छा नागरिक बन सकता है। इस प्रकार माता अपने ज्ञानानुष्ठान के धंधों में लगी रह सकती और अपनी स्वतंत्रता को जारी रख सकती है। उधर बालक के पालन-पोषण और शिक्षा में भी किसी भांति का फ़र्क़ नहीं आसकता।

हम भारतवर्ष की माताओं को ये विचार कैसे अस्वाभाविक जान पड़ते हैं। हम यह सुनती आई हैं कि जो स्त्री जननी नहीं उसका जन्म ही निष्फल है। पुत्र उत्पन्न करना और उनके पालन पोषण में समय व्यतीत करना यही हमारे जीवन का लक्ष्य है। इसीमें रत रहकर हम अपने आप को गृहलक्ष्मी, गृह देवी, पूज्य जननी और न जानें क्या क्या समझ रही थीं। अपने इस गृहस्थी के आसन पर विराजमान होकर हम अपने आपको इस पापमय संसार से पृथक और उच्च जान रही थीं। हमारे ग्रन्थकार भी हमें बहुत कुछ बढ़ावे चढ़ावे देकर हमें पूजा तक का पात्र बतलाते थे। आज ये नवीन विचार हमें क्या सुनाई दे रहे हैं? यह अन्तर अवश्य है कि वे पाश्चात्य देवियों के हैं। परन्तु पश्चिम की विदुषी ललनाएं हमारी ही तो बहिनें हैं उनमें और हम में अन्तर ही क्या है?

अब प्रश्न यह है कि माता की यह अधोगति, उसका अपने उच्च आसन से इतना नीचे गिरना कहां तक संसार के लिए कल्याणकारक हो सकता है? निस्सन्देह जिन विचारों का उल्लेख ऊपर किया गया है वे पश्चिम में भी अभी तक सर्वप्रिय नहीं हुए हैं तिस पर भी वहां के विद्वानों और विचारवानों में यह बड़े वेग से फैल रहे हैं और धीरे धीरे इनका प्रभुत्व सर्वसाधारण पर होता जाता है। इस कथन की पुष्टि में फ्रांस और अमेरिका का उदाहरण दिया जा सकता है जहां दिन दिन सन्तानोत्पत्ति घट रही है। फ्रांस में यह रोग इतना बढ़ गया है कि वहां फौज में भर्ती करने के लिए काफ़ी पुरुषों का मिलना कठिन हो रहा है। फ्रांस में आजकल किसी वस्तु की इतनी कमी नहीं है जितनी मनुष्यों की है। इस अभाव को दूर करने के लिए अनेक उपाय किये गये हैं। सरकार की ओर से बालबच्चों के पिताओं और परिवारवाले मनुष्यों की भांति २ से रियायत की गई है। उनकी आय पर कर बहुत कम लिया जाता है। तिस पर भी मनुष्यगणना बढ़ती नहीं दिखाई देती।

जबतक संसार का कार्य उन संख्याओं के अनुसार चल रहा है जो आजकल प्रचलित हैं, और जब तक अलग अलग जातियों और अलग अलग देशों को अपनी रक्षा एक दूसरे से करनी है तबतक हर देश और हर जाति के लिए अपनी संख्या को घटने न देना आवश्यक है। आजकल के यूरोपीय महायुद्ध ने इस कथन की सार्थकता को पूर्णरूप से सिद्ध कर

दिया है। जर्मनी, फ्रांस, इङ्गलैंड, इटली प्रत्येक देश इस समय अपने एक एक मनुष्य को किस लालसा की दृष्टि से देख रहे हैं। इस युद्ध में उसी देश के जीतने की अधिक सम्भावना है जिसकी माताओं ने अधिक पुत्र उत्पन्न किये हैं। इसलिए माताओं का तिरस्कार किसी भांति और कभी भी वाञ्छनीय नहीं है। आजकल की नीति यह है कि जो बात देश और जाति के लिए हितकर है वही सब व्यक्तियों को करनी उचित है। इसलिए माता का आदर सत्कार आज भी वैसा ही होना उचित है जैसा पूर्व-काल में अब से कई शताब्दियों पहिले था।

माता के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है उसका अधिकतर सम्बन्ध पश्चिम की स्त्रियों से है। हमारे भारतवर्ष की दशा भिन्न है। यहां अभी तक इन विचारों का समावेश नहीं हुआ है। यहां भी माताएँ अपने उच्च आसन से गिर गई हैं परन्तु इसका कारण वह नहीं जो पश्चिम में है। यहां उसका दूसरा ही कारण है। स्पष्ट शब्दों में हमारे देश में मनुष्यों की माताओं ने पशुओं की माताओं का पद ग्रहण कर लिया है। यहां जैसे खो, पुरुष, खाते, पीते सोते, उठते, बालक से युवा होते हैं वैसे ही वे बालकों के माता पिता होजाते हैं। माता पिता होना भी एक स्वाभाविक कर्म समझा जाता है। जैसे पशु, पक्षियों को बालक होते हैं वैसे ही भारतीय माताएं भी बालक जनती हैं। १०, १२ वर्ष अधिकतर इससे भी छोटी अवस्था में ब्याही जाकर, १४, १५ वर्ष या इससे भी छोटी अवस्था में वे बालक जनना प्रारम्भ कर देती हैं; और फिर मृत्यु पर्यन्त बालकों की वर्षा प्रति वर्ष होती ही रहती है। ऐसी माताओं को न बालक होने का कुछ सुख आनन्द ही होता है न वे बालकों के प्रति अपना कर्तव्य ही पालन कर सकती हैं। प्रथम तो वे स्वयम् ही मूर्खा अनपढ़ी होती हैं और फिर यदि ऐसी स्त्री पढ़ी लिखी भी हो तो इस अवस्था में जब कि शरीर क्षीण, पैसे से हाथ तङ्ग और बालकों की बहुतायत से मन व्याकुल है वह कर ही क्या सकती हैं? भारतवर्ष की साधारण माता का दृश्य ऐसा हृदयविदारक है कि एकबार उसको देखकर कोई यह विश्वास नहीं कर सकता कि ऐसी माताओं के बालक कभी भी देशोद्धारक और वीर हो सकते हैं। ये उलटे देश पर भारस्वरूप हैं।

साधारण हिन्दू कन्या ८, १० वर्ष की अल्पावस्था में ब्याही जाती हैं। ससुराल आते ही सास, ननदों की कठोरदृष्टि देख और कड़ी आलोचना सुन बेचारी सरल स्वभावा बालिका की देह पहिले ही आधी रह जाती है। वह सहमी हुई ज्यों त्यों दिन काटती है कि इतने ही में वर्ष डेढ़ वर्ष के भीतर ही यह १३, १४ वर्ष की बालिका माता बन जाती है। माता बनते ही बहुधा इस नादान बालिका को रोग लग जाते हैं। शरीर दिन दिन क्षीण होता जाता है तिस पर हर वर्ष डेढ़ वर्ष पश्चात् एक बालक अवश्य जन्म लेता है। २५, २६ वर्ष की अवस्था में यह कन्या ७, ८ बालकों की माता हो बूढ़ी हो जाती है। धन पास नहीं घर का धन्धा भी सब अपने ही सिर है। बालकों की शिक्षा दीक्षा का उचित प्रबन्ध भी धनाभाव से नहीं हो सकता। इतने बालकों की देख रेख, भोजन बनाना, और घर का सब धंधा करना उसी एक क्षीण शरीरवाली रोगी २५ वर्ष की बुढ़िया पर पड़ता है। वह कहां तक इन सब को सम्भाल सकती है। फल यह होता है कि बुरी परवरिश के कारण भारत में आधो आध बालक ४, ५ वर्ष की अवस्था के भीतर ही परमधाम को सिधार जाते हैं। जो बच जाते हैं उनमें से बहुधा पुरुषार्थहीन, बलहीन, रोगी होते हैं। यह अवस्था पश्चिम की अवस्था से भी ख़राब है। ऐसी आबादी बढ़ाने से भी कोई लाभ नहीं है। इससे तो बालकों का न उत्पन्न होना ही अच्छा है।

भारतवर्ष में मनुष्यों की संख्या बढ़ाने की इस समय इतनी आवश्यकता नहीं है जितनी पुरुषार्थी, मानसिक और शारीरिक बल से सम्पन्न देश के प्रेम में रत, देशसेवक वीर उत्पन्न करने की। ऐसे मनुष्य उन बालिका माताओं की कोख से उत्पन्न नहीं हो सकते जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। इस लिए भारतवर्ष में माताओं का सुधार अवश्य और शीघ्र होना चाहिये।

पूर्व और पश्चिम दोनों देशों की स्त्रियों को यह भले प्रकार समझ लेना चाहिये कि स्त्री का प्रथम कर्तव्य माता बनना और योग्य माता बनना है। हर स्त्री पुरुष का अपने शारीरिक, आर्थिक और मानसिक बल के अनुसार अपनी जाति और देश के लिए सेवक और रक्षक पैदा करना परम कर्तव्य है।

भारत में और समस्त संसार में जब स्त्रियों को अपना उचित स्थान मिल जायगा, जब वे पूर्णरूप से स्वतन्त्रता लाभ कर लेंगी, जब वे मानसिक और शारीरिक बल से पूर्णतः सम्पन्न होंगी, जब वे एक बार फिर माता के कर्तव्यों को समझ लेंगी तब वे इस योग्य होंगी कि वे ऐसे बालकों को उत्पन्न करें जिनसे देश और जाति का कल्याण हो। तब ही वे पुनः अपने पुराने उच्च आसन को ग्रहण कर सकेंगी और फिर एक बार पूजे जाने की अधिकारिणी होंगी।

स्त्रियों के अधिकार।

[लेखिका—श्रीमती कमला देवी श्रीवास्तव।]

स्त्री और पुरुष के स्वत्व समान हैं। परन्तु समय के हेर फेर से कुछ ऐसा हो गया है कि यह बात कुछ अस्वाभाविक सी जचने लगी है। अब स्त्रियों की हीनता सिद्ध करने ही में सामाजिक स्थिरता की पराकाष्ठा समझी जाती है। हमें नीचे दर्जे का प्राणी साबित करने के लिए स्वार्थी पुरुष धार्मिक पुस्तकों के प्रमाण देते हैं; सामाजिक अशान्ति के नाम पर लोगों से अपील कर उन्हें भयभीत करते हैं। नवीनता की दोहाई कर लोगों को चौंकाते हैं, और स्त्रियों को इसी पतित अवस्था में बनाए रखना अपना परम कर्तव्य समझते हैं।

निस्सन्देह स्त्रियां आज गिरी दशा में हैं। पुरुष हमपर बहुत काल से अन्याय करते चले आए हैं। हम केवल उनकी दया की पात्र ही रह गई हैं। हमारे निज के स्वत्व पुरुषों के अधिकारों से कहीं कम हैं। किन्तु सदा यह हाल नहीं था। ज्यों २ आप प्राचीन समय की ओर चलते जाइये त्यों २ समाज में स्त्रियों का पद पुरुषों के बराबर होता जायगा। संसार के सब कामों में स्त्रियां पुरुषों के बराबर हिस्सा लेती थीं। भोजन के लिए दोनों बराबर प्रयत्न करते थे। असभ्य अवस्था में तो स्त्रियां भी पुरुषों के साथ लड़ाई लड़ने जाती थीं और शत्रु स्त्री के साथ उतनी ही कठोरता और निर्दयता का व्यौहार होता था जितना की पुरुष शत्रु के साथ। यह बात वर्तमान समय में भी किसी २ जंगली समुदाय में सुनी जाती है।

समाज के विकास के साथ साथ व्यक्तियों के संबंध में भी अन्तर पड़ गया। अकेला एक ही व्यक्ति मानवजीवन के प्रत्येक अंग की उचित पूर्ति करने में अपने को असमर्थ पाने लगा और इसी अभिप्राय से समाज का कार्य बांट दिया गया। कुछ प्राणी किसी काम को करने लगे और कुछ किसी को। धीरे २ कुछ

काम श्रेष्ठ समझे जाने लगे और इनके करने-वाले भी बड़े माने जाने लगे। फिर क्या था बड़ों ने इन कामों के करने का अपने और अपनी संतान के नाम ठेका सा लेलिया और दूसरों को इनके करने से यथाशक्ति वंचित रक्खा। यही जड़ है सारे सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक भेदभाव की।

अब यहां यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि अगर स्त्रियां पुरुषों के बराबर थीं तो क्या कारण है कि वे इतनी असहाय अवस्था को पहुंच गईं। आजतक स्त्रियों का प्राधान्य किसी अंश में भी क्यों नहीं हुआ? भारतवासियों के लिए इस प्रश्न का उत्तर देना बहुत कठिन नहीं। यहां पर वर्णभेद की लीला से सभी लोग परिचित हैं। वर्ण विशेष का व्यक्ति दूसरे वर्ण-वालों से बढ़कर माना जाता है। आप जानते हैं मनुष्य जन्म से स्वतंत्र है परन्तु सांसारिक बंधनों में पड़कर वह ऊंचा नीचा बन जाता है। सामाजिक त्रुटियों के कारण उसे अपनी व्यक्तिगत उन्नति करने के उचित अवसर प्राप्त नहीं होते और इसी कारण वह अपनी शक्तियों का पूर्ण विकास नहीं कर पाता और निम्न श्रेणी का मनुष्य हो जाता है। अवसर का न मिलना ही बहुत कुछ इसका जिम्मेदार है। जिन जातियों को आत्मोन्नति के अवसर अधिक मिलते हैं वही आज उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर चढ़ी हुई है। वे जातियां जिनकी उन्नति का द्वार पर—शक्ति ने अवरुद्ध कर रक्खा है दूसरों से दबी हुई हैं और वही नीच भी मानी जाती हैं। इन जातियों के व्यक्ति दायित्वपूर्ण कामों के अयोग्य समझे जाते हैं। अब यदि कहा जाय कि स्वभावतः पराधीन जातियां बड़े २ कामों के करने के योग्य नहीं हैं तो यह कितने अन्याय की बात होगी। उनके ऊपर तो "जबरदस्त का ठेंगा" है। उन्हें बढ़ने के पूरे मौके ही नहीं दिये जाते। यही दशा स्त्रियों की है।

पुरुष अधिक बलवान हैं, शक्तिसम्पन्न हैं और इसी कारण अपने को स्त्रियों के भाग्य का फैसला करने का हकदार समझते हैं। लेकिन स्त्रियों को जब मौका मिला है स्त्रियों ने अपनी शक्ति का चमत्कार दिखाया है। वेदों की बहुत सी ऋचाओं की स्त्रियां ही प्रकाशिका हैं। दुर्गा देवी ने महिषासुर आदि दैत्यों को मारकर देवताओं को संकट से बचाया था। रानी केकई ने रणक्षेत्र में महाराजा दशरथ के प्राण बचाये थे। मंदालसा के दर्शन विज्ञान ने तत्कालीन बड़े २ मुनियों को चकित कर दिया था। विद्यावती के गणित शास्त्र की गणितज्ञ आजतक मुक्तकंठ से सराहना करते हैं। सीता महारानी के चरित्र की तुलना करने को बिरले ही पुरुष ढूंढने से मिलेंगे। लक्ष्मी बाई ने जिस वीरता और कुशलता से सैन्य संचालन किया उससे इतिहासज्ञ अभिज्ञ हैं। मीराबाई ने जो भक्ति-रस का प्रवाह बहाया उसकी पवित्र धारा में स्नान कर आज तक सहस्रों भक्त शान्ति का आनन्द लाभ करते हैं। अहिल्याबाई और रज़िया बेगम आदि के शासन-क्रिया-कुशल होने में कौन संदेह कर सकता है? राजपूताने की क्षत्राणियों का इतिहास किसी जाति के भी स्वदेश और स्वजाति गर्व के लिए काफ़ी है।

इन उज्ज्वल नामों के उल्लेख से मेरा यह तात्पर्य है कि मैं अपने भाइयों का ध्यान स्त्रियों की वर्तमान अवस्था की ओर आकर्षित करूं और यह दिखाऊं कि यदि स्त्रियों की दशा सुधारी जाय और उन्हें भी चेतन प्राणी मान कर समाज में बराबर अधिकार दिये जायँ तो स्त्रियां जो आजकल पुरुषों पर भार समझी जाती हैं बड़े काम की हो सकती हैं और इस पतित जाति के उद्धार में बड़ा भाग ले सकती हैं। मैं विशेषतः भारतवर्ष की ही स्त्रियों के विषय में अपने विचार प्रगट करना चाहती हूं। यूरोप की स्त्रियां जिस उन्नत अवस्था को पहुंच गई हैं उस अवस्था तक अभी हमारे यहां के पुरुष ही

नहीं पहुंच सके हैं स्त्रियों की कौन कहे। लेकिन इससे यह साफ़ प्रगट होता है कि किसी जाति के अभ्युदय का पता उस जाति की स्त्रियों की अवस्था को देखकर अनुमान किया जासकता है।

हमारी बाधाएँ।

पश्चिमीय देशों में लड़के और लड़कियां समान भाव से देखी जाती हैं। वहां लड़की के पैदा होने पर घर की रोशनी बन्द नहीं कर दी जाती। उन्हें कन्या के जन्म पर उतना ही आनन्द होता है जितना पुत्र के। वहां तो बहुधा लोग यही चाहते हैं कि पहिला बच्चा कन्या हो परन्तु यहां उसके बिलकुल विपरीत है। सामाजिक कुप्रथा ही इस प्रचलित भेदभाव की जड़ है। इसका पाप ठहरौनी पिशाचिनी के सर पर है। मुसलमानी समय के मज़हबी और राजनैतिक कारण दूर हो गये, परन्तु अब भी हमारे सामाजिक नियम हमारी शिष्टता के माथे पर कलंक की कालिमा लगा रहे हैं। स्नेहलता आदि बंगाल की कुमारियों का हृदयभेदी वृत्तान्त पढ़कर पाठकों ने, यदि पाषाण हृदय के न होंगे तो अवश्य खून के आंसू बहाये होंगे! एक सभ्य जाति की संतान को इस भीषणता के साथ अपने मातापिता का संकट काटने के लिए अपने को भस्म करना पड़े यह कितनी लज्जा की बात है।

दूसरी बात स्त्री शिक्षा का प्रश्न है। अब तो यह बात सभी मान गये हैं कि समाज के पूर्ण विकास के लिए स्त्री-शिक्षा का होना परमावश्यक है। अब स्त्री-शिक्षा की चर्चा भी कुछ अधिक है। आशा है कि थोड़े समय में इसका उचित प्रबन्ध हो जायगा यद्यपि इस ओर जितना ध्यान दिया जाना चाहिये उतना नहीं दिया जाता। स्त्री-शिक्षा एक महान् विषय है। इसका सविस्तर वर्णन करने के लिए एक स्वतंत्र लेख होना चाहिये और इसके लिए समय, धन, और अवकाश की बहुत ज़रूरत है। लेकिन हमारे सामने अभी और बातें हैं जिनमें स्त्रियों के साथ अन्याय होता है और थोड़े से आत्मबल से काम लेने से वह दूर हो सकता है। हमारे यहां विवाह कई प्रकार के प्रचलित हैं किन्तु यहां पर मैं केवल उनका दिग्दर्शनमात्र ही कराऊंगी।

विवाह एक अति पवित्र सामाजिक सम्मेलन है। लेकिन यहां तो विवाह धार्मिक आभूषणों से सुसज्जित होने के कारण और भी श्रेष्ठ संस्कार हो गया है। सामाजिक दृष्टि में तो यह मृगतृष्णा की भांति खूब चमकता है। परन्तु वास्तविक व्यवहार में यह बिलकुल हसी खेल सदृश हो जाता है। यदि ऐसी बात न होती तो बालविवाह ऐसी हास्यास्पद प्रथा अभी तक कैसे बचने पाती। विवाह बड़े महत्व का मानव-संगठन है। इसमें स्त्री पुरुष एक दूसरे के भावों और आचार-विचारों पर मोहित होकर ही अपने को एक दूसरे से आबद्ध करते हैं। परन्तु यहां तो हृदय में भाव उदय होने ही नहीं पाते, विचारों का परिपक्व होना तो दूर, विचार करना तक नहीं आता और विवाह हो जाता है। वैवाहिक जीवन की ज़िम्मेदारियों से पति-पत्नी दोनों ही नितान्त अनभिज्ञ होते हैं और इसी का यह परिणाम है कि भारतीय सन्तान इतनी निकम्मी होती है।

विवाह संस्कार में स्त्रियों का बड़ा तिरस्कार होता है। बालविवाह में तो भला बालक बालिका दोनों ही के गलों पर कुठार चलाया जाता है परन्तु अनमेल विवाह भी एक बड़े तमाशे की चीज़ है। भला साठ वर्ष के बूढ़े के साथ आठ वर्ष की कन्या का विवाह कर देना कहां का न्याय है? मनु महाराज ने जो दस तरह के विवाह बतलाये हैं उनमें गंधर्व विवाह को छोड़ कर सब में पुरुषेच्छा ही की प्रधानता की झलक है। पुरुषों को हर तरह की सुविधा है। पति पत्नी के जीते हुए भी जो चाहे जितने विवाह कर सकता है। परन्तु एक बार विधवा

को जिसने पति का मुंह भी नहीं देखा, जिसने यह भी नहीं जाना कि विवाह है क्या वस्तु, उसे आजन्म विद्रोह और विरह की अग्नि से संतप्त कराते रहना, भारत के लाड़िलों ही को शोभा देता है। भारतवर्ष में तो स्त्री नितान्त ही उपेक्षणीय वस्तु है। वह केवल पुरुषों की इच्छाओं की पूर्ति का साधनमात्र है नहीं तो यह अंधेर कैसे हो सकता था कि विषयलिप्सा से एक पुरुष मन चाहे विवाह कर सकता और स्थानिक आवश्यकता पर एक ही स्त्री कई पुरुषों की पत्नी भी बना ली जा सकती। बहु-विवाह की प्रथा तो हमारे उच्च वर्णों में बड़े गर्व के साथ प्रचलित हैं और पहाड़ों पर एक स्त्री के कई पति होना एक साधारण बात है।

पर्दे की प्रथा ने तो भारतीय स्त्रियों को अजायबखाने का एक अनोखा जन्तु बना रक्खा है। ये संसार की गति से नितान्त अनभिज्ञ रहती हैं और घर के भीतर की गन्दी वायु के सेवन से क्षीणकाय भी हो जाती हैं। दशा इतनी खराब हो गई है कि विपत्ति आने पर ये अपनी रक्षा तक नहीं कर सकतीं। पुरुषों के लिए हर प्रकार की स्वतंत्रता है। भारतवासियों के विचार से स्त्री एक ऐसी अधम प्राणी है जो सब कुछ सहन करने के लिए बनाई गई है।

मैं अभी केवल सामाजिक अन्याय की ओर ही अपने भाइयों के चित्त को आकर्षित करना चाहती हूं क्योंकि इसका निवारण करना इनके आधीन है। परन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिये कि स्त्रियों के और कष्ट और दुःख नहीं हैं। राजनैतिक और सामयिक झगड़ों का उल्लेख मैंने अभी जान बूझ कर नहीं किया है क्योंकि अभी पुरुष ही इनके पूर्ण उपयोग से वंचित है।

भारतवर्ष के उद्धार में स्त्रियों का भाग।

[लेखिका—श्रीमती एनी बीसेन्ट।]

इस बात को सब लोग स्वीकार करते हैं कि जब तक किसी देश के स्त्री-पुरुष मिलकर उसकी उन्नति के लिए प्रयत्न नहीं करते तब तक वह संसार के राष्ट्रों में उच्च स्थान ग्रहण नहीं कर सकता। स्त्री पुरुषों में किस प्रकार मिलकर कार्य हो इस विषय में मतभेद हो सकता है, और भिन्न भिन्न समाजों ने इस विषय पर भिन्न भिन्न दृष्टियों से विचार किया है; पर इस बात को सब लोग मानते हैं कि राष्ट्रीय उन्नति के लिए जिस प्रकार उच्च श्रेणी के मनुष्यों की आवश्यकता है उसी प्रकार उच्च श्रेणी की स्त्रियों की भी आवश्यकता है। आज आधुनिक भारतवर्ष में स्त्रियों का स्थान अप्राकृतिक और अनिश्चित है और इसका मुख्य कारण यह है कि पिछली शताब्दी में भारतवर्ष में दो सभ्यताओं का साथ साथ प्रचार रहा है और देश की अवस्था के कारण पुरुषों का चरित्र एक सभ्यता से और स्त्रियों का चरित्र दूसरी सभ्यता से संगठित हुआ है। सब बातों में स्त्रियां अपनी पूर्वीय बातों को ग्रहण करती रहीं, साथ ही पुरुष पश्चिमीय (यूरोपीय) बातों को ग्रहण कर रहे हैं और इसी कारण आपस में स्त्री-पुरुष मिलकर कार्य नहीं करते। धर्म में पुरुष की स्त्री के साथ कोई सहानुभूति नहीं है और न स्त्री की पुरुष के साथ सार्वजनिक जीवन में कोई सहानुभूति है। इससे दोनों दुर्बल हो गये हैं और दूना नुकसान हो रहा है; विचारशीलता के बिना धार्मिक जीवन सङ्कीर्ण हो गया है और

आदर्श के बिना सार्वजनिक जीवन दुर्बल हो गया है। भारतवर्ष न्यायालयों और गृहों में विभक्त हो गया है; यह दोमुँही एकता के स्थान में दो अलग अलग खण्डों में विभक्त हो गया है और यद्यपि इन खण्डों में कितनाही प्रेम क्यों न हो पर ये दो ही हैं एक नहीं।

यद्यपि स्त्री में पूर्वीय (देशीय) भाव है पर पुराने ढङ्ग की वह पूर्वीय स्त्री नहीं है, उसका ज्ञान नष्ट हो गया है पर भक्ति अभी तक मौजूद है; सार्वजनिक जीवन में अब वह कोई भाग नहीं लेती पर गृह में उसकी प्रभुता बनी हुई है। भारतवर्ष के आधुनिक और प्राचीन इतिहास से यह स्पष्ट है कि आजकल की दशा अत्यन्त शोचनीय है और वह प्राचीन आदर्श की भद्दी नकल है। प्राचीन भारतवर्ष की आदर्श रमणियां वीरत्व के सांचे में ढली थीं। दमयन्ती से उसके पति के राजमन्त्री और राजपुरुष सलाह लेते थे, दमयन्ती ने अपने पति को जूआ खेलने से निषेध किया; सीता अकेली और शत्रुओं से घिरी रहने पर भी निर्भय डटी रही और अपने सुख की ज़रा भी परवा न करके शान्तिपूर्वक बन को गई; गार्गी ने बड़े बड़े पण्डितों से शास्त्रार्थ किया और बड़े से बड़े पण्डित को परास्त कर दिया; कुन्ती ने अपने पुत्रों को वीरत्वपूर्ण परामर्श दिया; गान्धारी वीरों और सुखियों की सभा में अपने हठी पुत्र को डांटने के लिए चली गई। और राजपूताने और महाराष्ट्र की वीर स्त्रियां उनकी उत्तराधिकारिणी बनीं; ये रमणियां अपने पतियों को सभा में सलाह देती थीं, आवश्यकता पड़ने पर उनके साथ युद्ध में लड़ती थीं, गद्दी पर रक्षक (eRgtens) के रूप में बैठती थीं, रानी होकर राज्य करती थीं। ताराबाई, चांद बीबी और अहिल्या बाई को कौन नहीं जानता। अहिल्या बाई तो उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में मौजूद थी। यह अङ्गरेज़ी शिक्षा का ही फल है कि स्त्री पुरुष अलग अलग हो गये हैं। इसीसे स्त्रियों में हीनता आ गई है और जीवन की परिपूर्णता में वे अलग हो गई हैं और इसीसे पुरुषों को अनेक कठिनाइयां उपस्थित हुई हैं और उनका प्रभाव और उनकी देशभक्ति कम हो गई है क्योंकि स्त्री पुरुष की महत्ता को उकसानेवाली है और बिना स्त्री के यज्ञ करके हम देवताओं को तृप्त नहीं कर सकते।

अतएव भारतवर्ष के उद्धार के लिए उसकी बालिकाओं को एकान्त से निकलकर फिर सार्वजनिक जीवन में अपनी पुरानी जगह पर आना चाहिये, जिससे पिछली शताब्दी में वे हट गई हैं और जिससे मातृभूमि को बड़ा नुकसान हुआ है उन्हें उन पश्चिमीय (यूरोपीय) स्त्रियों की, जो आर्थिक अवस्थाओं के कारण जीवन-संग्राम में पुरुषों की प्रतिद्वन्द्विनी हो गई हैं, नकल करने की ज़रूरत नहीं है। इससे उन यूरोपीय स्त्रियों से उत्पन्न होनेवाले बच्चों को बड़ी हानि होती है, जन्मविरुद्ध कठिनाइयों के कारण उनकी शक्ति कम हो जाती है; स्त्री पुरुष से बड़ी नहीं है पर उसका अङ्ग है और पुरुष भी उसका अङ्ग है। स्त्री और पुरुष मनुष्यत्व की दो आँखें हैं और उनकी सब बातों के देखने के लिए भिन्न भिन्न दृष्टियां होने पर भी उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है और एक आंख जो देख सकती है उसकी अपेक्षा उनकी दृष्टि चौड़ी हो जाती है। पर कृत्रिम रूप से स्त्री और पुरुष किसीके कार्य को सीमाबद्ध नहीं करना चाहिये; हरएक को अपनी अपनी योग्यताओं को पूर्ण रूप से विकसित करना चाहिये और उनके लिए कानून या रीतिरस्म के कारण किसी कार्य में योग्यता प्राप्त करने का निषेध नहीं होना चाहिये। मनुष्यजन्म धारण कर आदमी जो काम कर सकता है उसे वह निश्चय ही करेगा यदि वह किसीको नुकसान नहीं पहुंचाता।

स्त्रियों को शिक्षा देना सबसे अधिक आवश्यक है; दर्शन, साहित्य विज्ञान और कलाकौशल के खजाने पुरुषों के समान स्त्रियों के लिए भी खुले रहने चाहियें। ज्ञान का कोई भंडार ऐसा न हो जिसमें स्त्री या पुरुष जाति की ताली लगी हो। सती स्त्रियों की आवश्यकता है और पण्डिता स्त्रियों की भी आवश्यकता है और नवीन भारत, स्वतंत्र लोगों के भारत की नींव को गहरी खोदने और उसे दृढ़ बनाने के लिए स्त्री और पुरुष दोनों की बुद्धिमत्ता की ज़रूरत है। स्त्री का धर्म, दर्शन और विज्ञानपूर्ण होना चाहिये और विज्ञान को भी धर्म का दास होना चाहिये। वह जिन सत्यपूर्ण बातों को सीखेगी उनका पुरुष की अपेक्षा बहुत अधिक उपयोग करेगी क्योंकि पुरुष जैसे जन्म ही से कानून बनानेवाला (Born Legistator) होता है वैसे ही स्त्री जन्म ही से शासन करनेवाली (Born administrator) होती है।

भारतवर्ष के उद्धार के लिए स्त्रियों के लिए सब क्षेत्र खुले रहने चाहियें; उनके हाथ स्वतंत्र रहने चाहियें और उनके कार्यों में किसी प्रकार की बाधा नहीं होनी चाहिये। स्त्री और पुरुष इसलिए नहीं बनाये गये हैं कि एक दूसरे को गुलाम बनावें किन्तु इसलिए कि स्त्री और पुरुषों में जो जो विभिन्नताएं हैं जीवन को परिपूर्ण करने में उनका वे उपयोग करें। मातृभूमि के लिए पुरुषत्व और स्त्रीत्व दोनों का उत्सर्ग होना चाहिये क्योंकि उन्हीं की एकता में भारतवर्ष की शक्ति, दृढ़ता और स्वतंत्रता है।

भावी महिलायें ।

[लेखक—श्रीयुत मंजरअली सोख्ता बी० ए० एल० एल० बी० ।]

मानवी इतिहास सांसारिक घटनाओं की ऐसी लड़ी है जो टूटना नहीं जानती। मानवी विचार, भाव और आन्दोलन अपने २ प्रभाव समाज पर डालते हैं। कुछ समय में धीरे २ ये विचार, भाव और आन्दोलन ज़ोर पकड़ कर मानवी स्वभाव, आदतों और संस्थाओं का रूप धारण कर लेते हैं। इसलिए वर्तमान और भूतकाल के सम्बन्ध को कार्य और कारण का सम्बन्ध कहना और भविष्यकाल को इन दोनों का परिणाम कहना एक वास्तविक रहस्य का वर्णन है।

ऐसी दशा में भविष्य के सम्बन्ध में भविष्यद्वाणी करने में किसी आन्तरिक शक्ति अथवा आकाशवाणी की आवश्यकता नहीं। गत घटनाओं को देखने और उनके प्रभावों की भली भांति परीक्षा और तुलना करने से हमको आनेवाली बातों की भी थोड़ी बहुत ख़बर मिल सकती है। वर्तमान घोर युद्ध के आने की सूचना यूरोप के नीतिज्ञ मुद्दतों से दे रहे थे और यह नीतिज्ञ ज्योतिषी और देवता होने का दावा नहीं करते। अन्य कर्मक्षेत्रों में भी बहुत सी बातें इसी तरह पहिले से जानी जा सकती हैं। मज़हबी या मुल्की घटनाओं के सम्बन्ध में हम मनुष्य जाति के इतिहास को देखकर बहुत कुछ राय आनेवाले परिवर्तनों के बाबत दे सकते हैं। यह ज़रूर है कि इन भविष्यद्वाणियों का झूठ निकलना असम्भव नहीं परन्तु साथ ही यह देखते हुए कि वह गत घटनाओं के एक निश्चित परिणाम हैं हम उनको मिथ्या और भ्रमजनक अनहोनी भी नहीं कह सकते।

साम्प्रदायिक और राजनैतिक विषयों की अपेक्षा किसी सामाजिक विषय पर आगमवाणी करना अत्यन्त सुगम है क्योंकि साम्प्रदा-

यिक और राजनैतिक विषयों में तबदीली अक्सर ऐसे अचानक परिवर्तनों द्वारा भी होती है जिनका देखने में भूतकाल से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। मगर पहिले तो यह शंका ही निर्मूल दूसरे हमारे सामाजिक विषय ऐसे घोर और हैं अचानक परिवर्तनों से सुरक्षित हैं। मानवी सामाजिक घटनाओं की चाल एक ऐसे बहु-श्रुत और अनुभवी पुरुष की चाल है जिस पर आसपासवालों की शीघ्रगामी और हड़-बड़ी कोई प्रभाव नहीं डाल सकती। इस कारण इस चाल के प्रत्येक पग को हम भली प्रकार देख सकते हैं और इसके लक्ष्य का नक़शा भी यथासम्भव उतार लेना हमारे शक्ति से बाहर नहीं।

इस प्रश्न के हल करने में कि आया स्त्री का भविष्य क्या होगा और आनेवाली दुनिया उसको किस दशा में देखेगी, सामा-जिक संगठन में उसके अधिकार और कर्तव्य क्या होंगे हमको पहिले उन सारी घटनाओं पर विचार करना होगा जिन्होंने भूतकाल में उसकी किस्मत का फैसला किया और यह विचार हमको बतला देगा कि स्त्री को वर्तमान दशा किन वजहों का नतीजा है। दूसरे हमको उन सारी शक्तियों और परिवर्तनों का अनुमान करना होगा जो इस काल में पैदा हुई हैं और जिनकी प्रबल धारा के प्रवाह ने आख़िर-कार स्त्री को भी अपने गोद में लेकर उन्नति के दूसरे मंज़िल की ओर बहा दिया है।

वर्तमान दशा में स्त्री और पुरुष की तुलना करने से हमको कुछ बातें विशेषता के साथ प्रधान दिखाई देती हैं। जैसे स्त्री का एक प्रकार से पुरुष के आधीन और उसकी सम्पत्ति होना। उसका मानसिक, शारीरिक, आर्थिक अर्थात् हर अवस्था में तुच्छ और हीन और पुरुष से बदतर होना और साथ ही साथ ज़्यादा सुन्दर, कोमल और श्रृङ्गाराभिलाषिणी होना। यह सब बातें ऐसी हैं जिनसे कोई इन्कार नहीं कर सकता और मानवी इतिहास के आरम्भ से इनका अस्तित्व प्रत्येक मानवी समुदाय में पाया जाता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि आया ये अन्तर प्राकृतिक और स्वाभाविक हैं अथवा केवल कालचक्र के परिणाम? और यदि स्वाभा-विक नहीं हैं तो मानवी समाज की वे कौन सी बातें हैं जो इनके जन्म का कारण हुईं। वे बातें अब भी मौजूद हैं या नहीं और अगर नहीं हैं तो इनकी जगह किन शक्तियों ने ले ली है और यह शक्तियां संसार को किस ओर लिये जा रही हैं? इन्हीं प्रश्नों के उत्तर देने का उद्योग हम अपने इस लेख में करेंगे और इन उत्तरों का युक्तियुक्त होना या न होना ही हमारी भविष्यद्वाणियों को विश्वासयोग्य या मिथ्या साबित कर देगा।

सजीव संसार के तमाम समूहों में चाहे वह अदना हो या आला, इन्सानी हो या हैवानी, नर अपनी मादा से कुछ बलवान और मज़बूत होता है और मादा को बच्चे का प्रेम नर से ज़्यादा होता है। यही एक सर्वव्यापी अन्तर है जो सृष्टि के आरम्भ से उनमें पाया जाता है और इस विचार से हम इसको प्राकृतिक या स्वाभाविक कह सकते हैं। इसके अतिरिक्त प्रकृति ने कोई और अन्तर इन दोनों की दशा और रचना में पैदा नहीं किया। पशुओं में या प्राचीन मानवी समूहों में नर और मादा मान-सिक, नैतिक और आर्थिक अर्थात् हर दशा में एक दूसरे के बराबर होते हैं। इस वजह से उनके सम्मिलित जीवन और आपस के सम्बन्ध केवल सृष्टि के जारी रहने का ही ज़रिया नहीं होते वरन वे सांसारिक कशमकश को कम करके उनके जीवन के सुखों को दुगुना कर देते हैं।

पशुओं में ऐसी मिसालें भी असंख्य मौजूद हैं जिनमें नर और मादा में कोई चिरस्थायी

सम्बन्ध नहीं होता। बच्चे के पालन और रक्षा का भार केवल माता बेचारी को उठाना पड़ता है। प्राकृतिक नियमों के अनुसार जिम्मेदारी हमेशा सामर्थ्य और योग्यता के अनुकूल प्रदान की जाती है और यदि मादा दिमागी, नैतिक या आर्थिक दशा में किसी प्रकार नर से कम होती तो यह असम्भव था कि सन्तान की रक्षा और सन्तान के जारी रखने का प्रसिद्ध भार उस पर डाला जाता। प्रकृति का इस कार्य के लिए उसको नियत करना इस विचार को और भी पक्का करता है कि मादा किसी हैसियत में नर से कम नहीं।

पशुओं के वह समुदाय जिनमें नर और मादा के आपस के सम्बन्ध चिरस्थाई होते हैं उपर्युक्त समूहों से कुछ श्रेष्ठ ख्याल किये जाते हैं। इन समूहों की दशा को भलीभाँति देखने से मालूम होता है कि नर और मादा का सम्मिलित जीवन सांसारिक कठिनाइयों को कम कर तथा बच्चे की परवरिश को आसान करके दोनों शरीकों के सुखों को ज़्यादा कर देता है। कुछ स्वभावतः और कुछ इन खूबियों से परिचित होकर मनुष्य जाति ने सम्मिलित जीवन के प्रश्न को अनेक प्रकार हल करके निज समुदाय में प्रचलित किया है और आज तक वह एक न एक रूप में प्रत्येक मानवी समुदाय में प्रतिष्ठित है। मगर वर्तमान सम्मिलित जीवन की पशुओं या मनुष्यों के भूतपूर्व सम्मिलित जीवन से तुलना करने पर मालूम होता है कि उसमें वे गुण बाक़ी नहीं हैं जो उसके उत्पत्ति का कारण हुए थे। वर्तमान दशा में स्त्री, समाज के शरीर का एक निरर्थक अवयव सी होगई है केवल एक बेकार अंग सी समझी जाती है और सभ्य मानव समाज में तो वह अपने पालन और जीविका के लिए पुरुष की ऐसी आश्रित होती है जैसे बच्चा अपनी माता का। सांसारिक जीवन की कठिनाइयों में वह पुरुष की सहायता नहीं करती। अपने पति और औलाद के जीवन की आवश्यक सामग्रियों के सम्पन्न करने में वह कोई भाग नहीं लेती। कुटुम्बी भार के अतिरिक्त पुरुष धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक मसलों के सुलझाने की आपत्तियों में फँसा रहता है और इन कामों में भी उसको कोई सहायता स्त्री से नहीं मिलती। सारांश यह कि यह शारीरिक बेकारी और मानसिक अन्तर दोनों के सम्मिलित जीवन के सुखों को कम और फ़ायदों को छिन्न भिन्न करके स्त्री और पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों को पशुओं से भी बदतर बना देता है। अब देखना यह है कि आख़िर वह क्या बातें थीं जिन्होंने यह सारे घृणित, असह्य और हानिकर नतीजे पैदा किये।

हमने ऊपर बयान किया है कि प्रकृति ने नर और मादा की रचना में सिवा इसके कि नर मादा से कुछ बलवान और मज़बूत होता है और कोई भेद नहीं रक्खा। वैज्ञानिकों की सम्मति है कि प्राकृतिक नियमों का एक मुख्य उद्देश सृष्टि का जारी और सुरक्षित रखना है। और इस वजह से प्रत्येक समुदाय के व्यक्तियों में वे बातें पैदा की जाती हैं जो उनके सांसारिक जीवन की स्थिरता के निमित्त आवश्यक हों। कीड़े, मकोड़े, पशु, मनुष्य सब के जीवन पर विचार करने से इस राय का सत्य और ठीक होना सिद्ध होता है। और इस मसले की रोशनी में मानवी जीवन पर दृष्टि डालने से विदित होता है कि स्त्री की शारीरिक कमी और दुर्बलता सन्तान की रक्षा और स्थिरता का एक साधन है।

प्राचीन मानवी सम्प्रदायों में किसी गरोह के जीवन का अवलम्ब (दारमदार) केवल उसकी शारीरिक प्रबलता और मज़बूती पर होता था। "सर वाइबल आफ़ दी फिटस्ट" (योग्यतम की जीत) के मसले का पैदा किया हुआ तूफ़ान आज तक संसार में जोरो शोर

के साथ मौजूद है मगर पूर्व मानवी सम्प्रदायों में यह Fitness योग्यता केवल शारीरिक प्रबलता और मज़बूती पर निर्भर थी। कभी न कभी प्रत्येक समूह को अपनी स्थिति के लिए शत्रुओं से मोक़ाबिला करना पड़ता था और इसकी कफ़लता या निष्फलता पर इस गरोह के संसार में रहने या मिट जाने के प्रश्न का फैसला होता था। इस युद्ध में पुरुष का हिस्सा स्त्री से बहुत अधिक होता था। ज़ाहिर में इसका कारण यह था कि पुरुष की प्रबलता और मज़बूती उसको इस काम के योग्य साबित करती थी। मगर इसका वास्तविक अभिप्राय यह मालूम होता है कि इन युद्ध और संग्रामों में पुरुष का विनाश सन्तान की रक्षा और स्थिति पर वह प्रभाव न डाल सकता था जो स्त्रियों के विनाश से पड़ता। बर्नार्ड शा ने अपने वर्तमान घोर संग्रामसम्बन्धी लेख में व्यङ्ग से यह कहा है कि अगर जर्मनों की उन्नति शताब्दियों के लिए रोक देना अभीष्ट है तो विजय के पश्चात् जर्मन स्त्रियों का ख़ातमा कर दो क्योंकि अगर इन स्त्रियों के होते हुए २५ सैकड़ा पुरुष भी इस जाति के रह गये तो कुछ ही समय में जनता और उन्नति के क्षेत्र में यह जाति अपना वर्तमान गौरव प्राप्त कर लेगी। किसी देश की स्त्रियों की संख्या का एकबारगी कम हो जाना उसके भावी सन्तानों के जारी रहने और उन्नति करने पर पुरुषों की संख्या के कम हो जाने से दूनी ज़्यादा प्रभाव डालता है। इस कारण प्रकृति ने स्त्री को इस प्रकार के विनाश से सुरक्षित रखने के लिए पुरुष को मज़बूत बना दिया है और समाज की रक्षा का काम उसके सुपुर्द किया है, इसलिए शारीरिक कमज़ोरी या कोमलता कोई दोष नहीं बल्कि जातीय रक्षा, उन्नति और स्थिरता का एक ज़रीया है और इस आधार पर स्त्री कदापि किसी प्रकार के अनादर और अपमान के योग्य नहीं।

परन्तु मानवी समुदायों में इस दुर्बलता का नतीजा स्त्री के लिए अत्यन्त हानिकारक साबित हुआ है। किसी सजीव समूह का प्रारम्भिक दशा में शत्रु से अपनी रक्षा करना और उसपर विजय प्राप्त करना उसका श्रेष्ठ और प्रसिद्ध कर्तव्य समझा जाता है। इस कर्तव्य के पालक स्वभावतः धीरे २ अपने आप को उस समुदाय से उच्च और श्रेष्ठ विचारने लगते हैं जिसमें इसके पालन का भाव नहीं होता। इसी शारीरिक प्रबलता और इसी आत्मिक उत्तमता के विश्वास में उन सारी शारीरिक और मानसिक शक्तियों के अन्तरों का रहस्य छिपा है जो आज के दिन स्त्री और पुरुष की दशा में पाया जाता है।

बाहरी हमलों से अपने आपको बचाने और सुरक्षित रखने की आवश्यकता ही धीरे २ गवर्नमेन्ट क़ायम होने का कारण हो जाती है। चूंकि स्त्री इस आवश्यकता की पूर्ति में कोई बड़ा हिस्सा नहीं लेती इसलिए इस संस्था के आरंभ ही से इसका उसके साथ कोई असली सम्बन्ध नहीं होता। गवर्नमेन्ट से बिलकुल अलग होना अन्त में उसको दुनिया के कारबार में पुरुष का शरीक होने के स्थान पर उसका आधीन और सेवक बना देता है। इस प्रकार पुरुष के शारीरिक उत्तमता के साथ २ बल्कि उसके द्वारा मानसिक, नैतिक और आर्थिक उत्तमता भी प्राप्त हो जाती है। इन उत्तमताओं को प्राप्त कर लेने के बाद मानवी स्वभावानुसार पुरुष बराबर उनको क़ायम रखने में उद्योगी रहता है। इस उद्योग का फल यह होता है कि सभ्यता और राष्ट्रीय भाव की उन्नति पुरुषों के अधिकारों और दशा में बहुत बड़ा अन्तर पैदा कर देती है किन्तु साथ ही साथ स्त्रियों को उससे उनकी अपेक्षा बहुत कम लाभ पहुंचता है।

इन उपयुक्त प्राकृतिक और स्वाभाविक कारणों के अतिरिक्त एक कारण और भी था जो कुछ २

इन्हीं से सम्बन्धित है और महत्व के विचार से इनसे कम नहीं। वर्तमान काल में जब कि किसी जाति का जीवन ख़तरे में होता है तो उस समय व्यक्तिगत और सामाजिक अधिकार आवश्यकतानुसार ज़ब्त कर लिये जाते हैं। व्यक्तिगत और सामाजिक स्वतंत्रता राष्ट्र की रक्षा पर न्यौछावर कर दी जाती है। प्राचीन काल में चूँकि राष्ट्रीय रक्षा का प्रश्न ही सब में महत्वपूर्ण और कठिन विषय था इसलिए व्यक्तिगत स्वतंत्रता और व्यक्तित्व का पैदा होना ही असम्भव था। समाज सब कुछ थी किसी व्यक्ति की कोई हस्ती न थी। और जब इस सारी समाज का एकमात्र उद्देश केवल राष्ट्रीय रक्षा था तो स्त्री का एक अत्यन्त हीन और समाज का व्यर्थ अवयव न समझा जाना ही आश्चर्य की बात होती।

उन्नति का युग आया। जोतना बोना आरंभ हुआ। मनुष्य जाति जो अबतक पशुवत् भ्रमण करती फिरती थी स्थानिक होने लगी। शान्ति और सुरक्षा की वृद्धि हुई। मज़हब फैले। कला कौशल और व्यापार सभ्यता के साथ २ बढ़ने लगे। राष्ट्रीय रक्षा का प्रश्न कुछ महत्वहीन होने लगा और जातीय उन्नति और उद्धार के विचार ने उसकी जगह लेकर समस्त मानवी घटनाओं में एक घोर परिवर्तन पैदा कर दिया।

अन्य बातों के साथ २ गवर्नमेन्ट का भाव और उद्देश दोनों कुछ २ बदल गये। जबतक राष्ट्र-रक्षा का प्रश्न ज़ोर शोर के साथ सामने था उस समय तक ऐसा मालूम होता था कि समाज केवल गवर्नमेन्ट की बेहतरी के लिए स्थापित है। मगर इस युग में जनता को यह अनुभव होने लगा कि गवर्नमेन्ट स्वयं समाज की बेहतरी का एक जरीया है। इस विचार ने मानवी राजनैतिक जीवन की बिलकुल काया पलट दी।

दूसरी ओर मज़हब के अभाव ने मानवी स्वभाव और उद्देशों में एक बड़ी ज़बरदस्त तबदीली पैदा करदी। मनुष्य जाति को यह शिक्षा मिली कि भौतिक संसार से उत्तम और श्रेष्ठ एक नैतिक संसार भी है। मनुष्यों में नैतिक स्वतंत्रता और आत्मिक गुणों के बीज बोये गये। मानवी सामाजिक जीवन में जो स्थान केवल बल या पाशविक शक्ति को प्राप्त था वह नैतिक बड़प्पन और मनुष्यत्व की ख़ूबियों के सामने मंद पड़ने लगा।

यह परिवर्तन कोई साधारण परिवर्तन न था। बात तो यह है कि यदि मानवी इतिहास के पाशविक कशमकश के सिलसिले पर कोई उन्नति की अटूट प्रकाशमयी रेखा दिखाई देती है तो वह यही परिवर्तन है यह मनुष्य जाति की सहस्रों वर्ष की कमाई है और इसी पर उसकी सारी सभ्यता और उन्नति का दारमदार है। केवल बल या पाशविक शक्ति के प्रभाव का समाज से लुप्त हो जाना और मानवी कर्तव्य और अधिकारों का नैतिक आधारों पर स्थिर होनाही सामाजिक जीवन का मुख्य उद्देश मालूम होता है अब इसी उद्देश की प्राप्ति की ओर समस्त मानवी सभ्यता की प्रवृत्ति है। यह उद्देश अभी प्राप्त नहीं हुआ। केवल बल या पशुत्व अन्तर्जातीय जीवन में अब भी एक बड़ा ज़बरदस्त हिस्सा लेते हैं और मानवी पारस्परिक सम्बन्ध भी अभीतक इसके प्रभाव और करतूतों से रहित नहीं। मगर इतना ज़रूर है कि सभ्य सामाजिक जीवन में बिलकुल और अन्तर्जातीय जीवन में एक हदतक मानवी कर्तव्य और अधिकार नैतिक अवलम्बों पर स्थिरता से कायम हो चुके हैं। केवल बल या पशुत्व अब उनपर अपना प्रभाव डालने में असमर्थ है। इतिहास को ध्यानपूर्वक देखने से विदित होता है कि अगर मानवी उन्नति इन्हीं मार्गों पर कायम रही जो वह अपनी स्थिति के आरंभ से ग्रहण किये हुए है तो सम्भव है कि मानवी संसार से केवल बल या पशुत्व का प्रभाव तथा गौरव एक दिन बिलकुल मिट

आय। अब भी जैसा कि हमने कहा उसका प्रभाव बहुत कुछ मिट चुका है और इस कारण उन मानवी संख्याओं में जो प्राचीन काल में लाचारी से इसी पर अवलम्बित थे एक घोर परिवर्तन होना निश्चित है।

उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त और कुछ बातें विशेषता के साथ ध्यान में रखने के योग्य हैं। इनमें से पहिली बात विद्या की वृद्धि है। ज्ञान दुनिया के सारे परिवर्तनों का कारण होता है। ज्ञान और बुद्धि की वृद्धि मनुष्य के दिलो दिमाग में एक विशालता और उत्तमता पैदा कर देती है। नतीजा यह होता है कि वे बातें जो अब सन्तोषप्रद और निर्दोष मालूम होती थीं अब बिलकुल व्यर्थ और हानिकर विदित होती हैं और साथ ही उनमें एक तबदीली की आवश्यकता पतीत होने लगती है। मगर चूंकि परम्परापूजन मानवी स्वभाव के अन्तर्गत है और दूसरे विद्वान और विचारवानों की संख्या हर समाज में मूर्खों, संकुचित दृष्टि-वालों से कम होती है इसलिए बहुत सी बातों के व्यर्थ और निष्फल साबित हो जाने के बाद भी उनमें तबदीली कर देना कोई सहज काम नहीं होता। मगर यह देखते हुए कि मनुष्य का अज्ञान, उसकी संकुचितदृष्टि और आत्मिक दुर्बलता उसके परम्परा पूजन और हठधर्मी का कारण होती है हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि अगर संसार में विद्या प्रचार इतना हो जावे कि विद्वान और विचारशीलों की संख्या मूर्खों और अविद्वानों से बढ़ जावे तो मनुष्य की उन्नति के मार्ग से बहुत सी बाधाएँ दूर हो जावें और भावी जीवन की बहुत सी आपत्तियों का सदा के लिए अंत हो जावे।

वर्तमानकाल की तुलना प्राचीनकाल से करने से मालूम होता है कि वर्तमान समय में मानवी ज्ञान का भंडार प्राचीनकाल से अत्यन्त अधिक है। शिक्षा प्रचार की इच्छा और चेष्टा उसके कारण उपाय और उसके प्रभावक्षेत्र में वर्तमानकाल ने भूतकाल पर विजय प्राप्त की है और यदि सांसारिक उन्नति अपने पुराने मार्गों पर स्थिर रही तो निस्सन्देह विद्याप्रचार दिन प्रति दिन फैलेगा और यह शिक्षा का वैज्ञानिक प्रचार बहुत से उन बातों को हल कर देगा जो अब हल होते मालूम नहीं होते।

विद्या के द्वार स्त्रियों के लिये ऐसे बन्द नहीं। वह पहिले की भांति विद्या से वंचित नहीं रक्खी जातीं और यद्यपि अब भी उनकी राह में सैकड़ों रुकावटें हैं फिर भी पहिले से उनकी दशा बहुत अच्छी है और दिन प्रति दिन और भी अच्छी होती जाती है। शिक्षा प्रचार के साथ स्त्री की दशा में कोई परिवर्तन का न होना असम्भव है। इल्म की तरक्की किसी समुदाय में एक घोर परिवर्तन उत्पन्न किये बिना नहीं रहती।

दूसरी बात साम्प्रदायिक शिथिलता है। मज़हब परम्परा पूजन का मूल है। इसका प्रभाव रीति रिवाजों को अमृत पिलाकर अमर कर देता है, बुद्धि के आक्रमणों से उनको वञ्चित रखता है और स्वयं ज्ञान को अपना आधीन बना कर पुरानी लकीर का फ़क़ीर बने रहने पर मज़बूर करता है। प्राचीन समाजों में स्त्री और पुरुष को स्थान पुरुष की श्रेष्ठता और स्त्रियों की हीनता और दुर्बलता के आधार पर मिला था। पुरुष के शारीरिक बल और विज्ञान और सांसारिक विषयों की भिज्ञता ने इस प्रबन्ध में एक ऐसी असलियत की झलक पैदा कर दी थी जिसने स्वयं स्त्रियों की ही दृष्टि को चौंधिया दिया था। सम्प्रदायों ने प्रचलित होकर सोने पर सोहागा चढ़ाया। उन्होंने इस अन्तर को भौतिक संसार ही तक परिमित नहीं रक्खा किन्तु आध्यात्मिक संसार तक पहुंचा दिया। नतीजा यह हुआ कि यदि स्त्रियों को सांसारिक दङ्गे कभी अपनी दुर्दशा से परिचित भी होने देते तो साम्प्रदायिक लोरियां

फिर इनको अपनी प्राचीन निद्रा की तरंगों में मग्न कर देतीं। मज़हब ने स्त्री को पुरुष के आधीन रखने में जो भाग लिया है वह किसी और बात ने नहीं लिया और यदि इस शक्ति की प्राचीन प्रबलता बाक़ी रही होती तो स्त्रियों के लिए सर उठाने का उद्योग करना अब भी असम्भव होता।

इतिहास के भिन्न २ शिक्षाओं में से एक प्रधान शिक्षा यह भी है। साम्प्रदायिक युग का अन्त हो चुका। मज़हब अपना प्राचीन गौरव और शासन खो चुका और मानवी जीवन आज के दिन उसका वैसा आधीन नहीं जैसे कि पहिले था। मज़हब के पक्षपाती कहेंगे कि साम्प्रदायिक भावों में कमी नहीं है बल्कि साम्प्रदायिक मतभेद और धार्मिक हठ कम हो रहा है। दूसरा समुदाय कहेगा कि मज़हब के प्रभाव की कमी नहीं बल्कि साम्प्रदायिक गरोहबन्दी और पाखण्डों में कमी है। यह सब सूरतें हमारे आलोच्य विषय पर एक ही प्रभाव डालती हैं। धार्मिक कट्टरपन और हठ की कमी समाज के दोषों का निवारण करना सुगम कर देती है और धार्मिक प्रभाव का बजाय साम्प्रदायिक संगठन के कारण होने के व्यक्तियों में ज्यादा होना सामूहिक उन्नति को कम करने की अपेक्षा अधिक कर देता है। सारांश यह कि हर प्रकार मज़हब की वर्तमान दशा स्त्री पुरुष की सामाजिक अवस्था को उन नियमों पर स्थिर नहीं रख सकती जिन पर वह प्राचीनकाल में कायम थी।

तीसरी बात यह है कि सभ्यता की उन्नति ने बड़ी समस्याएँ मानवी जीवन में पैदा कर दी है। अनेक प्रकार की विद्याओं और भांति २ के धन्धों के कारण लोगों के विचार और स्वभाव में घोर परिवर्तन होगया है। नतीजा यह है कि एक पुरुष और स्त्री को एक दूसरे के साथ अपना समस्त जीवन व्यतीत कर देना उतना सहज नहीं रहा जितना कि वह प्राचीनकाल में था। इसके अतिरिक्त सांसारिक जीवन की आवश्यकताएँ इतनी बढ़ गई हैं कि स्वयं पुरुष को अपने को जीवित रखना कठिन होगया है फिर स्त्री और बालकों का भार कैसे उठ सके। इसलिए पहिले तो स्वयं पुरुष विवाह से भागने लगे हैं। दूसरे स्त्री केवल पुरुष की उपजीविनी होने के स्थान पर स्वयं अपनी जीविका प्राप्त करने की अभिलाषिणी होती जाती है। यह अभिलाषा उचित हो या अनुचित लाभप्रद हो या हानिकर स्त्रियों में उत्पन्न ही नहीं होगई है बल्कि बढ़ती जाती है। समाज में कोई ज़रिया इस वृद्धि के रोकने का उपस्थित नहीं। बल्कि यह सूरतें पैदा हो रही हैं जो इसे और भी शक्तिसम्पन्न और दृढ़ बना देंगी। आर्थिक दशा में स्त्री का पुरुष से स्वाधीन हो जाना एक ऐसी ज़बरदस्त बात है जो अकेले वर्तमान सामाजिक संगठन के उलट पुलट देने के लिए पर्याप्त है और उन सारे दोषों का निवारण कर सकती है जो प्राचीनकाल से स्त्री और पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों में पाये जाते हैं।

अब हम लगभग उन सब सिद्धान्तों और दशाओं का वर्णन कर चुके हैं जिन पर प्राचीनकाल में स्त्री की सामाजिक अवस्था कायम की गई थी और हमने यह भी देख लिया कि वह सिद्धान्त और वह बातें नहीं रहीं। उनका स्थान नवीन शक्तियों ने ले लिया है। अब देखना यह रहा है कि ये नवीन शक्तियां और नये सिद्धान्त स्त्रियों के भावी समाज को किस ओर ले जायँगे।

केवल बल या पशुत्व के युग का अन्त हो जाना, नैतिक आदर्शों का फैलना और व्यक्तित्व और समता के भावों का उत्पन्न होना स्त्रियों के स्वत्वाभिलाषी आन्दोलन के आधारिक स्थम्भ थे। यह सत्य है कि इन परिवर्तनों के उत्पन्न करने में स्त्री ने समुचित और असली भाग नहीं लिया। मगर इनके

प्रभावों से उसने असीम लाभ उठाया है। गवर्नमेंट के भाव और उद्देश्यों के बदल जाने ने उन प्राचीन कठिनाइयों को दूर कर दिया जो स्त्री को इस संस्था में असली हिस्सा लेने के अयोग्य बनाती थीं। केवल शारीरिक दुर्बलता, हक़तलफी और अत्याचार का कारण नहीं रही और अब इस आधार पर कोई गवर्नमेंट में हिस्सा लेने से विमुख नहीं रक्खा जा सकता। कारण यह है कि साधारणतः अब शारीरिक बल द्वारा समाज या सरकार की सहायता करना ही सर्वप्रधान कर्तव्यपालन नहीं समझा जाता। राष्ट्रीय रक्षा का प्रश्न बजाय जान के अब माल की बिना पर हल कर लिया गया है। और चूंकि इस धन के एकत्र करने में स्त्री और पुरुष में भेद नहीं किया जा सकता इसलिए गवर्नमेंट में हिस्सा लेने का दोनों को समानाधिकार प्राप्त है। वह विशेषता और वह उत्तमता जो इस संस्था में पुरुष को प्राचीन काल में सिद्धान्त और आवश्यकता के अनुसार प्राप्त थी उन नियमों और आवश्यकताओं के बदल जाने से क़ायम नहीं रही। वर्तमान सोसाइटी के माने हुए सिद्धान्त और आवश्यकताएँ कोई नियमित तथा स्वाभाविक बाधा स्त्री के पोलीटिकल उन्नति के क्षेत्र में उपस्थित नहीं करतीं। ऐसी दशा में शासन संस्था का प्राचीन काल के भाँति पुरुष के आधीन रहना और स्त्री का उससे कोई सम्बन्ध न होना सर्वथा असम्भव है। अभी तक जो परिवर्तन इस संस्था में उपस्थित हो चुके हैं हमारे तर्क को पुष्ट करते हैं। इन तबदीलियों पर ग़ौर करने से और साथ ही उन घटनाओं को ध्यान में रखने से जो चारों ओर स्त्रियों की दशा में पैदा हैं यह प्रतीत होता है कि गुज़श्ता तबदीलियां उन परिवर्तनों की अपेक्षा कुछ भी नहीं है जो भविष्य अपने गोद में खेला रहा है।

पोलीटिकल संसार की तो यह दशा है सामाजिक क्षेत्र में इल्म की तरक्की, धार्मिक हठ का कम होना और स्वतंत्रता से जीविका उपार्जन की इच्छा और उद्योग सब यही विश्वास दिला रहे हैं कि स्त्री की दशा बदलनेवाली है। विद्या समता के भावों को उत्पन्न करके स्वतंत्रता की अभिलाषा को सींच रही है। धार्मिक कट्टरपन का ह्रास अपनी गाथा अपनी वर्तमान स्थिति द्वारा घोषित कर रहा है। परम्परा पूजन के दिन हो चुके और अब स्त्री को पुरुष के आधीन रखना उसकी शक्ति से बाहर है। जब देवताओं की स्थिति स्वयं ही डगमगा रही है तो साधारण मनुष्य का किसी को इञ्च भर देवता मानते जाना मुमकिन नहीं। इसके अतिरिक्त स्त्रियों की, आर्थिक दशा में पुरुषों से अपने आप को स्वाधीन कर लेने की इच्छा और उद्योग जो नित्यप्रति दिखाई दे रहा है स्त्री की सामाजिक दशा को बिलकुल बदल देने का संदेशा दुनियावालों को सुनाता है। इसके द्वारा स्त्री और पुरुष के आपस के सम्बन्ध समता के आधारों पर कायम होंगे और स्त्री को वह कार्य-स्वतंत्रता और विचार स्वातंत्र्य प्राप्त होगा जो अपने जीवन के आरम्भ ही से वह खोये बैठी हैं।

यहां पर यह आपत्ति की जा सकती है कि चूंकि पुरुष की शारीरिक रचना प्रकृतवश उसको ज़्यादा काम करने के योग्य बनाती है इसलिए प्रतियोगिता का मसला जो वर्तमान सामाजिक संगठन की मूल है कभी इस आन्दोलन को हरा भरा नहीं होने देगा। पहिले तो यह शारीरिक अन्तर ऐसा अन्तर नहीं कि कोई ज़बरदस्त प्रभाव स्त्री की दशा पर डाल सके। कुछ ही शताब्दियां इस बात को और भी साबित कर देंगी। दूसरे कोई कारण नहीं है कि आनेवाली सोसाइटी इस विषय में स्त्रियों के साथ खास रियायत न करे। तीसरे अगर यह दोनों बातें न भी हों तो भी यह Free Competition प्रतियोगिता का मसला केवल इतना साबित करता है कि पुरुष स्त्री की अपेक्षा ज़ादा खुशहाल रहेगा। गरज़े

कि किसी दृष्टि से देखिये भूत और वर्तमान काल यह पुकार पुकार कर कह रहे हैं कि भविष्य में स्त्री बजाय पुरुष का आधा अंग होने के सोसाइटी का आधा अंग होगी। और बजाय शूद्र की पदवी और कर्तव्यों के उसको वैश्य, क्षत्री और ब्राह्मणों की पदवी और अधिकार भी प्राप्त होंगे। जनता की सम्मति इसके विरुद्ध होगी परन्तु कभी जनता ने आनेवाले परिवर्तनों को पहिले से स्वीकार नहीं किया।

यहां पर यह कहा जा सकता है कि अगर वह बातें जिनपर हमने अपने दावों को कायम किया है नवीन हैं तो संसार को उनके परिणाम और लक्ष्यों का ज्ञान नहीं हो सकता। शताब्दियों की प्रतीक्षा और देखभाल के बाद मुमकिन है कि उनके वास्तविक उद्देश्य का पता लग सके और यदि यह बातें नवीन नहीं हैं तो जब युगों में वह कोई समुचित परिवर्तन स्त्री की दशा में पैदा न कर सकीं तो भविष्य में इनसे क्या आशा हो सकती है?

हम पहले ही कह चुके हैं कि ज़माने की चाल एक वृद्ध मनुष्य की चाल है जिसपर चारों ओर की शीघ्रता और हड़बड़ी अपना कोई प्रभाव नहीं डाल सकती। यह सारी बातें जिनका हमने ऊपर वर्णन किया है मानवी इतिहास के शुरू से इस चाल पर अपना प्रभाव डाल रही है। यह ज़रूर है कि इस चाल की मंदगति को शीघ्रता में बदल देना उनकी शक्ति से बाहर है। मगर इस चाल की मन्ज़िल मक़सूद (लक्ष्य) यही बातें नियत करती ह। और इस मञ्जिल पर पहुंचने के लिए समीपस्थ रास्ते और पगडंडियां भी यही बतलाती हैं इसलिए हम उनसे शताब्दियों से परिचित हैं और उनके प्रभावों का अनुमान करना हमारे लिए असम्भव नहीं। नवीन हम उनको इसलिए कहते हैं कि एक तो भूतकाल में उनका समाज पर ऐसा प्रभाव न था जितना अब है दूसरे कुछ काल पूर्व स्त्री जाति उनके प्रभावक्षेत्र से बिल्कुल बाहर थी। मगर अब संसार पर दृष्टि डालने से विदित होता है कि पुरुष के कशमकश ने एक घोर प्रभाव समस्त मानवी समाज पर डाला है यहां तक कि अब स्त्री को उसके दायरे से बाहर रखना असम्भव होगया है। नतीजा यह है कि स्त्री जाति में एक तूफान पैदा हो गया है। उन्नति के मैदान में यह समुदाय भी वही तर्ज अखतियार कर रहा है, उन्हीं मार्गों पर चल रहा है जिनके अनुकरण से पुरुष को सांसारिक गौरव प्राप्त करने में कृतकार्यता हुई है। वह संसारव्यापी हलचल जो इस समय स्त्री जाति में उपस्थित है किसी प्रकार से उन घोर आन्दोलनों से कम नहीं जो भूतकाल में मानवी समाज को सर से पांव तक हिला चुके हैं। जिन्होंने दासत्व को संसार से मिटा दिया, जिन्होंने गवर्नमेन्ट को परास्त कर केवल समाज के उद्धार और उन्नति की सेवा उसके सुपुर्द की, जिन्होंने मज़हबी पक्ष और हठ को कम करके मज़हब को फिलासफी का आधीन बनाया। भेद इतना है कि इन सब आन्दोलनों में पुरुष ने, सामाजिक, राजनैतिक और साम्प्रदायिक अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह का पताका उठाया था और वर्तमान आन्दोलन में स्त्री पुरुषों के अत्याचारों का जुवां अपने कन्धे से अलग कर देने में उद्योगी है। जो २ बातें पुरुष की सफलता का कारण हुई थीं स्त्रियों के लिए भी मौजूद हैं। जिन २ निअमों और शक्तियों ने पुरुष का साथ दिया था वे स्त्री के भी साथ हैं। यदि सांसारिक इतिहास के प्रमाण असत्य नहीं हैं तो थोड़े ही शताब्दियों में ये भी कृतकार्य और सफल होंगी।

किसी समुदाय की उन्नति की पहिली सीढ़ी अपनी दुर्दशा से परिचित हो जाना है। यह सहज नहीं क्योंकि विरोधिनी शक्तियां जो उसकी अचेतता की कारण होती हैं कोई उपाय उसके क़ायम रखने का उठा नहीं रखतीं। परन्तु

एक बार अपनी वास्तविक दशा से परिचित होने के पश्चात् अपनी ज़ंजीरों के तोड़ने का उद्योग न करना मानवी स्वभाव के विरुद्ध है। स्वतंत्रता, उन्नति और उत्कर्ष के भाव प्रत्येक समूह और प्रत्येक व्यक्ति में प्रकृति ने उत्पन्न किये हैं और एक बार पूर्ण रीति से भड़क उठने के बाद बिना अपना उद्देश्य पूरा किये संसार ने उनको शान्त होते हुए नहीं देखा।

युगों पददलित रहने के पश्चात् स्त्री जाति भी अपनी अकथनीय दुर्दशा से परिचित हो चली है। इसने भी अपने अधिकारों को अब अनुभव करना शुरू किया है। इसमें भी ऐसे सज्जन और समुदाय उपस्थित होने लगे हैं जो इस समुदाय की स्वतंत्रता और स्वत्व पर अपने प्राण अर्पण करना जीवन का लक्ष्य समझते हैं। सोते हुये को जगाने का उद्योग हो रहा है। उनको यह विश्वास दिलाया जाता है कि पुरुष उनके साथ अन्याय पर कटिबद्ध हैं। उनकी सांसारिक दशा मनुष्यत्व से गिरी हुई है। समाज में पुरुष सब कुछ हैं वह कुछ भी नहीं। संसार की समस्त उत्तम और मनोहर बातें पुरुष अपने हाथ में ले रक्खी हैं और स्त्रियों के लिए सिवा अपने पुरुष सम्बन्धियों की निकृष्ट चाकरी के और कुछ नहीं छोड़ा। पिता, पति, सन्तान इन्हीं की सेवा में अपनी उम्र को बिता देना उसके सांसारिक जीवन का मुख्य उद्देश्य है।

"एकै धर्म एक व्रत नेमा,
काय वचन मन पति पद प्रेमा" ॥

सारे कलाकौशल, सारे हुनर सब पुरुष के लिए है। विद्या और सारे मानसिक काम केवल पुरुष के लिए हैं। समाज के बनाने, बिगाड़ने और उस पर शासन करने का ठेका भी हमेशा के लिए इन्होंने ले रक्खा है। इसलिए समाज की उस सारी संस्थाओं का जिनसे रुपया पैदा किया जाता है उसी के आधीन रहना ज़रूरी है। रहे बेकारी के काम जैसे मिलना जुलना, खेलतमाशा, घूमना फिरना सो इनकी बाबत अवश्य मतभेद है। पश्चिमीय पुरुष स्त्रियों को इनमें भाग लेने से वंचित नहीं रखते लेकिन पूर्वीय मनुष्य चूंकि स्त्री के अधिक शुभ-चिन्तक हैं यह देख कर कि इन बेकार बातों का प्रभाव मानवी स्वभाव पर अच्छा नहीं पड़ता स्त्रियों को इससे भी सुरक्षित रखते हैं।

आखिर इस सर्वव्यापी बहिष्कार का कारण क्या है? यह कारण स्त्री के लिए बहिष्कार से भी अधिक आनन्दमय है और अभिमानजनक है। वह यह है कि स्त्री हीनबुद्धि, संकुचितहृदय और संकुचित विचार की होती है। प्रकृति ने ही इसको निकम्मा बनाया है। ऐसी दशा में पुरुष का कर्त्तव्य है कि जो कुछ उसके हक़ में उचित समझे वह करे। साथ ही साथ अपनी हीनता को अनुभव करते हुए स्त्री का यह कर्त्तव्य है कि जो पुरुष उसके लिए करे उसी को अपनी उन्नति और उद्धार का ज़रिया समझ कर चुप चाप सहा करे। विद्या और स्वतंत्रता मनुष्य में व्यक्तित्व और मान पैदा कर देती हैं और व्यक्तित्व ऐसी जनता के लिए जिसको प्रकृति ने ही हीनबुद्धि और हीन बनाया है कभी उपयोगी और लाभदायक नहीं हो सकता। इस कारण विद्या और स्वतंत्रता की स्त्री को आवश्यकता ही नहीं बल्कि यह गुण उसके हक में बहुत हानिकारक है। प्रत्येक विचारवान मनुष्य का कर्त्तव्य है कि इन आपत्तियों से अपनी स्त्रियों को सुरक्षित रक्खे।

स्त्रियों का शिक्षित समुदाय और उसके पक्षपाती इन सब लगो बातों को स्वीकार करने के लिए तय्यार नहीं। उनकी सम्मति में स्त्रियों और पुरुषों के अधिकारों में किसी प्रकार का भेद करना मनुष्यत्व और न्याय के विरुद्ध है। सामाजिक संस्थाओं में स्त्री और पुरुष को उन्नति करने के समान अधिकार और अवसर मिलने चाहियें। इन अवसरों से लाभ उठाने के लिए दोनों समुदायों को एक सी शिक्षा और दीक्षा

मिलनी चाहिये। वह स्त्री की वर्तमान दशा को केवल उसकी पूर्व अविद्या और कुशिक्षा का नतीजा ख़याल करते हैं। पुरुष को यदि ऐसी शिक्षा क्रम से इतने काल तक मिलती तो मुमकिन था कि वह स्त्री से भी अत्यन्त अधिक दुर्दशा को पहुंच गया होता। दूसरे इन लोगों का दावा है कि अगर स्त्री में प्रकृति ही ने कोई दोष उत्पन्न कर दिये हों तो मनुष्यत्व इसमें है कि वह मिटाये जावें। अगर मिट न सकें तो इसके प्रभाव से स्त्री को सुरक्षित रखने के उपाय सोसाइटी को मोहय्या करने चाहियें। अगर स्त्री हीनबुद्धि है तो शिक्षा न देना, उसे सांसारिक तज़ुर्बों से विमुख रखना उसके इस दोष को रफ़ा नहीं कर सकता बल्कि ऐसी अवस्था में सोसाइटी का कर्त्तव्य यह है कि उसकी शिक्षा की ओर पुरुष की शिक्षा से अधिक ध्यान दें। अगर वह संकुचित दृष्टि और संकुचित विचारवाली है तो उसे निरपराधी बँधुई रखना चक्की, मसाला, तवा को उसके जीवन का उद्देश्य बनाना तथा उसके साथ स्वेच्छा का निरंकुश व्यवहार करना उसकी संकुचित दृष्टि के दूर करने का उपाय नहीं।

तात्पर्य यह कि इस गरोह के विचारानुसार हर सूरत में समाज स्त्री का अपराधी है। तरक्की वह कीली (pivot) है जिस पर समस्त संसार चक्कर खा रहा है। उत्तमोत्तम भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति की प्राप्ति ही मानवी जीवन का मुख्य उद्देश्य मानी गई है। फिर कोई कारण नहीं कि उस सर्वश्व उद्देश्य की प्राप्ति से स्त्री जाति विमुख रहे। यदि आधा संसार अज्ञान, बेकारी और संकुचितहृदयता के अन्धकार में फँसा रहा तो समाज के लिए विकाश के सिद्धान्त के अनुसार श्रेष्ठतम दशा को पहुंचना सर्वथा असम्भव है। स्त्री और पुरुष की किस्मतें एक दूसरे के साथ बँधी हुई हैं। स्त्री जाति को दुर्दशा में रख के पुरुष स्वयं अपनी उन्नति के मार्गों को बन्द करता है।

यदि उपर्युक्त तर्कनाएँ सही हैं और यदि आन्दोलनों और शक्तियों की चाल मालूम करने में भूल नहीं हुई तो आनेवाली दुनिया स्त्री जाति की दशा में एक विशाल परिवर्तन देखेगी। वह देखेगी कि पुरुष अपने देवत्व के सिंहासन से उतरकर केवल एक मनुष्य आमे में आगया है और स्त्री अपने वर्तमान गुमनामी और लाचारी से निकल कर समाज के सारे कारोबार में उसकी सहायक और संगिनी है। वह देखेगी कि बनाव, शृङ्गार और कोमलता ही स्त्री जाति के सांसारिक जीवन का एकमात्र उद्देश्य नहीं रहा। और न वह सुन्दरता और खुशअदाई की पुतलियां बनकर अपने ग्राहकों के लोभाने पर मजबूर है कि वे उनको अपनी दासी बनाकर दुनिया की कशमकश से मुक्त कर दें। वह दुनिया देखेगी कि स्त्री भी एक सचेत, ज्ञानी, अनुभवी, चाहकी, उत्साही सदस्य मानवी समाज की है और इस समाज में उसको पुरुष के समान प्रतिष्ठा और अधिकार प्राप्त हैं।

स्त्री पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध न्याय और मनुष्यत्व पर अवलम्बित होंगे और इन सम्बन्धों के कायम करने में, इनके जारी रखने में और इनको तोड़ देने में क़ानूनन, उसूलन और अमलन पुरुष और स्त्री को समान अधिकार हासिल होंगे। पुरुष स्त्री के कर्मों का पूरा अधिकारी न होगा। उसकी मर्ज़ी स्त्री के लिए प्राकृतिक आईन का असर न रक्खेगी बल्कि एक दूसरे की प्रसन्नता और अप्रसन्नता का प्रभाव एकला एक दूसरे पर पड़ेगा।

ज़िन्दा जलाये जाने की प्रणाली और कन्या वध की कुप्रथा दुनिया से उठ चुकी, अब चार बीवियां और सर्वदा विधवा रहने का मसला भी समाज से उठ जावेगा। पुरुष और स्त्री का संग आग और रुई का मेल न

समझा जावेगा। समाज की सारी शक्तियां इन दोनों को अलग २ रखने में और यदि अलग न रख सकें तो उनके बदनाम, ज़लील और तंग करने में सर्फ़ न होंगी बल्कि इन दोनों का संग दो जीवित सहप्राणियों का संग समझा जायगा जिनको एक दूसरे से स्वतंत्र सम्मिलन का अधिकार प्राप्त हो। और जिनके लिए यह स्वतंत्र सम्मिलन मानसिक और सांसारिक उन्नति और उद्धार का मुख्य कारण हो। बालक बालिकाओं का साथ २ शिक्षादीक्षा पाना, शिक्षित होना और एक दूसरे के संग और साथ से, बिना समाज का अपराधी बने, जीवन के सुख और फ़ायदे उठाना, समाज के शरीर में एक नई रूह फूंक देगा। लड़का कुटुम्ब का मान और गौरव और लड़की माता के जीवन की आपत्ति और क्लेश न समझी जावेगी। न उस अभागी की उत्पत्ति पर अश्रुपात करने की आवश्यकता होगी। क्योंकि पुत्र और पुत्री अपने माता पिता के जीवन में समान भाग लेंगे।

यह सब परिवर्तन स्त्री के सौन्दर्य्य, कोमलता और नम्रता को कम कर देंगे। ये उसमें मज़बूती, साहस और स्थिरता पैदा करेंगे। स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात् कार्मिक अनुभव उसके स्वभाव पर अपना वृहद् प्रभाव डालेंगे जो उसके आत्मिक बल को अधिक और दृढ़ बना देंगे। बजाय मोम की पुतली होने के अपनी और अपनी सामाजिक दशा का बनाना बिगाड़ना उसके हस्तगत होगा। नैतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों में वह सदा के लिए एक निरन्तर पाठशाले में आरंभिक दशा में रहनेवाली शिष्य न रहेगी। सांसारिक प्रलोभनों से बचने के लिए उसको बँधुई रहने तथा पुरुष के अदैव के पथप्रदर्शन की आवश्यकता न होगी। उसके नैतिक भाव, उसके ज़ाती तालीम और तजुरबों के नतीजे होंगे। और बाहिरी और बेगाने दबाव उसको अपने जातीय नियमों और ग्रहण किये हुए मार्गों से हटा न सकेंगे। सारांश यह कि वह हर प्रकार अपनी और अपने क़िस्मत की स्वामिनी होगी और उसकी किस्मत किसी एक विशेष पुरुष के साथ नहीं बल्कि समाज के साथ सम्बन्धित होगी।

यह कहना कि इन गुणों से सम्पन्न स्त्रियां अच्छी माताएँ साबित न होंगी, या यह कि इन सद्गुणों की स्थिति स्त्रियों के हृदयों से माता बनने की अभिलाषा को कम कर देगी कोरी मूर्खता है। प्रथम तो मशहूर और प्रसिद्ध माताओं की जीवनी यह बतलाती है कि उनकी प्रसिद्धि केवल उनमें इन्हीं गुणों के होने पर निर्भर थी। दूसरे पुरुष में सांसारिक कर्तव्यों के पालन के भार ने स्त्री की ओर से कोई चिरस्थायी विरोध नहीं पैदा किया। पुरुष के लिए स्त्री में अब भी वही आकर्षणशक्ति बाकी है जो प्राचीन काल में थी। फिर स्त्री में किसी इस प्रकार के परिवर्तन का पैदा होना विश्वास के योग्य नहीं। नातजुर्बेकारी, साहस की हीनता मूर्खता, संकुचितहृदयता, अव्यवस्थितचित्तता के होते हुए कोई स्त्री अपने बच्चे की योग्य सहायक और पथप्रदर्शक नहीं हो सकती। यह कहना कि इन दोषों का न होना स्त्रियों को अच्छी माताएँ बनने के असमर्थ बना देगा भूल ही नहीं बल्कि मूर्खता है। असलियत यह है कि इन दोषों का न होना और उपर्युक्त सद्गुणों की उपस्थिति ही मातृत्व के मसले को बड़ी खूबी से हल कर देगा। इसका जो प्रभाव सामूहिक मानवी दशा पर पड़ेगा उसके वर्णन की आवश्यकता नहीं।

रहा पत्नीत्व और वैवाहिक संबंध सो मित्रता के सिद्धान्त में परिणित हो जावेगा। स्त्री अब भी अपने पति की सहयोगिनी और मित्र समझी जाती है। मगर वास्तव

में वह सहयोगिता और मित्रता केवल बिस्तर और चौके तक ही परिमित है। वर्तमान दशा में मानवी सारे उच्चभाव पुरुषों ही के भाग में है। दूसरे पुरुष और स्त्री में एक ऐसी मानसिक घाटी है जिसका पार करना आसान नहीं। यह बातें तो एक ओर रहीं। इन दोनों के बेकारी के काम भी एक दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं। गरज़े कि यह सारी बातें जो एक सच्चे मित्र और साथी में होना आवश्यक है इन दोनों में नहीं है बल्कि वर्तमान दशा में वह पैदा ही नहीं हो सकतीं फिर यह सहयोगिता और मित्रता किस प्रकार की है वह मित्र जो अपने साथी का जीवन है उत्तम से उत्तम कार्यों को न समझ सके, न उनसे सहानुभूति कर सके, न उनमें हिस्सा ले सके मित्र नहीं बल्कि ग़ैर है। या अगर मित्र भी समझा जावे तो एक बहुत ही बेकार मित्र है। ऐसी दशा में अगर बजाय एक बेकार सी वस्तु के पुरुष को एक ऐसा मित्र मिलजावे जिसमें मित्र के सब सद्गुण हों तो उसको कोई शिकायत का अवसर नहीं। आनेवाले युग की स्त्रियां पुरुष की शताब्दिक सहयोगिनी न होंगी बल्कि वास्तविक सहयोगिनी होंगी। इस प्रकार पत्नीत्व के सिद्धान्त का सुलझाव भी आनेवाली सभ्यता में वर्तमान सुलझाव से अत्यन्त अधिक पवित्र और सुखप्रद होगा। यह अवश्य है कि मानवी स्वभाव के अनुसार ,जिस वस्तु की आदत होती है वही पसन्द भी होती है। यह भी ज़रूर है कि एक मित्र चाहे वह कितना ही दुख सुख का साथी क्यों न हो एक दास से अधिक काम का नहीं होता। मगर क्या किया जाय जब गुलाम अपनी ज़ंजीरें तोड़ने पर तुल गया हो और कोई आशा उसके बन्दी रखने की बाक़ी न रही हो तो यह अच्छा होगा कि वह दुश्मन के बजाय अपने दुख सुख का साथी रहे।

स्त्रियों की भावी सन्तान उपयुक्त परिवर्तनों की एक उत्तम नमूना होंगी। इन परिवर्तनों से हम कितनाही अप्रसन्न क्यों न हों हम इनको कितनाही हानिकर क्यों न समझें किन्तु ये परिवर्तन स्त्रियों की दशा में अवश्य पैदा होंगे उनका अस्तित्व में आना या न आना अब हमारी इच्छा पर निर्भर नहीं। हमारी प्रसन्नता या अप्रसन्नता उनपर कोई प्रभाव नहीं डाल सकती। उनका रोक देना हमारी शक्ति से बाहर है। दुनिया की हालत उनको अटल बना रही है। फिर उनको आते देखकर कुढ़ना भूल और उनके रोकने का उद्योगी होना मूर्खता है। अटल परिवर्तनों का विरोध उन परिवर्तनों की बदमज़गी का और बढ़ा देने के अतिरिक्त और कोई बात पैदा नहीं कर सकता। दूरदर्शिता और बुद्धिमानी सर्वदा उदार हृदय से और आनन्दपूर्वक उनका स्वागत करती हैं। जो मनुष्य किसी प्रबल धारा के प्रवाह के विरुद्ध पैरने का उपाय करता है वह स्वयं ही अपने विनाश का कारण होता है और धारा के साथ २ बहकर डूबते हुए भी किनारे लग जाते हैं।

दुनिया बदल चुकी है और बदलती जाती है ऐसी दशा में वह आदर्श जो एक दूसरे ही संसार से सम्बन्ध रखते हैं कायम नहीं रह सकते। जब दुनिया ही बदल गई तो उन आदर्शों के कायम रखने का उद्योग करना बिजाय हानि के कोई लाभ नहीं पहुंचावेगा।

विधवा-कर्तव्य।

[लेखक—श्रीयुत हरि रामचन्द्र दिवेकर।]

हमारे भारतवर्ष की प्राचीन स्थिति कुछ भी हो, आज उसकी अत्यन्त निकृष्टावस्था है। इसीलिए हर एक भारत की सन्तान का आज प्रधान कर्तव्य यही है कि इसे उन्नत करने की चेष्टा करे और अपने मरसक अपना कर्तव्य पालन कर, चाहे वह तिल भर ही क्यों न हो, उसे उन्नत करके अपने को कृतार्थ समझे। हमारे सब कर्तव्य आज इसी दिशा की ओर झुके रहने चाहियें। जिस प्रकार प्राचीन काल के आचार-विचार आज की बदली हुई परिस्थिति में काम नहीं आते हैं, उसी प्रकार उन्नत अवस्था में रहनेवाले देशनिवासियों के भी आचार विचार, अवनतावस्था में रहनेवाले हम लोगों के लिये अनुपयुक्त ही हैं। कर्तव्याकर्तव्य कालमानानुरूप बदलते जाते हैं। यह सिद्धान्त अर्वाचीन नहीं, अत्यन्त प्राचीन है। महाभारतकार भी लिखते हैं:—

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे।
अन्ये कलियुगे नृणां युगमानानुरूपतः॥

अर्थात् आज हमें भी कर्तव्याकर्तव्य विचार करते हुए परिस्थिति को देखकर ही निश्चय करना चाहिये। शांतता के समय में सिपाहीगीरी का काम करना सबों का कर्तव्य नहीं है। पर वही कर्तव्य अशांतिकारक दिनों में बदल जाता है और विद्यार्थी, मजूर, दूकानदार, साहूकार—स्त्रियां तक भी—युद्ध करना अपना कर्तव्य समझने लगती हैं। इसी दृष्टि से इस छोटे से लेख में विधवा-कर्तव्य का विचार किया जानेवाला है।

हमारे समाज के सम्मुख विधवाओं का प्रश्न आज उपस्थित है और समाज के धुरीण लोग उसका भिन्न भिन्न दृष्टियों से विचार कर रहे हैं। पर जहां तक मुझे ज्ञात है उनकी दुर्दशा सुधारने के दोही मार्ग दिखाये जाते हैं। प्रथम उन्हें सुशिक्षा देकर अपना उदर निर्वाह करने को समर्थ करना और दूसरा उन्हें पुनरुद्वाह करने की अनुज्ञा देकर फिर से सांसारिक बनाना। प्राचीन दृष्टि के लोगों को ये दोनों मार्ग संमत नहीं है। लोग मेरे अभिप्राय को ठीक ठीक समझें इसलिए प्रथम ही मैं यह कह देना उचित समझता हूं कि मैं केवल पुराणप्रिय नहीं हूं। साठ साठ वर्ष के बूढ़े किसी कोमल द्वादशवार्षिका कुमारी से विवाह करें और आठ वर्ष से भी छोटे वय में विधवा हुई स्त्री जन्म भर विधवा ही बनी रहे यह मेरा मत नहीं है। मैं विधवोद्वाह का विरोधी नहीं हूं इतना ही नहीं, पर इस कार्य से सहमत भी हूं। परन्तु मेरी केवल यही इच्छा है कि आजकी परिस्थिति में क्या विधवाओं का यही कर्तव्य है?

हमारे घर में जब कुछ प्रबन्ध नहीं होता है और उसकी आवश्यकता हमें प्रतीत होती है, तो हम प्रायः दूसरों की ओर देखते हैं। दूसरे लोग अपने घरों में वही प्रबन्ध जिस प्रकार से करते हैं, प्रायः हम भी उसी प्रकार से अपने घरों में करने का यत्न करते हैं। विधवाओं की शोचनीय दशा जब हमारे समाजधुरीणों के ध्यान में आई और उसको बदलने की आवश्यकता प्रतीत हुई, सामाजिक रीति से उनका ध्यान आधुनिक सभ्य व सर्वोन्नत पाश्चात्य समाज की ओर झुका और उस समाज की विधवा-व्यवस्था इनके मन में भर गई। 'पाश्चात्य समाज उन्नत है और उनके यहां विधवाओं की व्यवस्था इस प्रकार से की जाती है, अर्थात् वही व्यवस्था हमें भी हितकर होनी ही चाहिये'—बस इसी विचार

से पूर्वोक्त आदर्श समझे जाने लगे और उनका अवलम्ब होने लगा। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि जिस उन्नत और सौभाग्ययुक्त दशा में पाश्चात्य देश हैं, उसमें यह व्यवस्था कल्याणप्रद है। पर जो देश या समाज इस दशा में नहीं हैं उनके लिए यह व्यवस्था हितकारिणी है या नहीं इसका विचार किया जाना चाहिये। यदि पक्व विचार से यही सर्वसम्मत ठहरे तो मुझे कुछ कहना नहीं। पर यदि यह हमारी वर्तमानावस्था के योग्य न हो तो इन विचारों को योग्य दिशा की ओर शीघ्र ही—जब तक नई व्यवस्था पूर्णतया रूढ़ न हो जाय तबतक ही—बदलने का यत्न करना चाहिये। इसी विचार से मेरे इस विषय पर के क्षुद्र विचार आज मर्यादा के पाठकों के सम्मुख उपस्थित किये जाते हैं। आशा है कि इन पर योग्य विचार होगा।

आज की दशा का विचार किया जाय तो सहज में समझा जा सकता है कि प्यारी भारत-माता की लगभग सब तरह से अवनति होगई है। अपने व्यक्तिविषयक स्वार्थ और स्वसुख में निरत होकर बचे खुचे समय में इस दुःख-पीड़िता माता का दुःख दूर करने का इलाज नहीं हो सकता। सुहृद्, और रोगरहिता माता की पूछताछ, खाने, पीने, चैन और मज़ा उड़ाने के लिए बाहर खेलने को जाते जाते, पैरों में बूट पहिनते पहिनते 'माता जी! ठीक तो है, कुछ दुःख तो नहीं है?' पूछने से हो सकती है। पर जब वही जन्मदा, सर्वसुखदा माता व्याधि से पीड़ित हो, बिछौने से जड़ी हो, दुःख से कहरा रही है और बेचैनी से इस करवट से उस करवट पर तड़फ़ रही है, तब खाली मज़ा उड़ाते हुए उसकी चिन्ता नहीं की जा सकती। उन विलापों को सुन मातृभक्त पुत्र स्वसुख के विषय में अत्यन्त उदासीन हो जाता है, और दिन रात माता की चिन्ता में बेचैन रहता है। यदि प्यारी माता को मरने न देना हो, तो पुत्रों को यही करना होता है। माता चंगी हो जाने पर मज़ा उड़ाने को भरपूर अवसर मिलता है, पर यदि एक बार जननी गतप्राय हो जाय तो फिर न मिलेगी। भारतमाता का विलाप सुन अनेक मातृभक्त अपने स्वार्थ और सुख पर लात मार कर उसकी सेवा में सक्त हो रहे हैं। गृहस्थाश्रम में रहकर सुख भोगना बहुत युवकों ने छोड़ दिया है और किसी का मत इसके विरुद्ध नहीं है। फिर क्या ऐसी दशा में यह उचित होगा कि जिन्हें प्राचीन नियमानुसार संसार से छुटकारा प्राप्त होगया है, उन्हें फिर से संसार चक्र करने का और इस प्रकार प्यारी मातृभूमि की सेवा से उन्हें विमुख करने का यत्न किया जाय?

मेरी विधवा बहिनो! यह कल्पना मन से आज उखाड़ डालने से संसार अमृतमय है। पुनरुद्वाह के लिए प्रवृत्त करनेवालों की मीठी मीठी बातों से भूलकर सन्मार्ग से बहक न जाओ। स्वयं आंखें खोलकर देखो कि विवाहिता स्त्रियों में कितनी स्त्रियां उस आनन्द का अनुभव कर रही हैं, जिसकी झलक तुम्हें दिखाई जा रही है? केवल पराये की बुद्धि पर विश्वास मत करो। तुम्हारी प्यारी भारत-माता तुम्हारे साहाय्य की अपेक्षा कर रही है। तुम्हारे कई प्यारे भाई उसका दुःख दूर करने के लिए संसारसुख का त्याग करने पर कटिबद्ध हो रहे हैं। ऐसी दशा में क्या मातृ-दुःख से तुम्हारा कोमल और दयामय हृदय न पिघलेगा? और क्या तुम इन टूटे हुए संसार-बन्धनों को फिर से अपने आसपास समेट कर मातृसेवा की पवित्र कर्तव्यबुद्धि से अपना मुख मोड़ोगी? नहीं नहीं! तुम्हारे चेहरे कह रहे हैं कि यह निर्घृण कार्य तुम से न होगा। जब अपनी माता चँगी हो जाय तो फिर तुम्हें सुखोपभोग से वंचित रहने का कुछ कारण नहीं है। फिर तुम सुख से जितना सुख

और आनन्द तुम्हें करना हो, उपभोग करो। पर तब तक ऐसा करना तुम्हारे लिए उचित नहीं, हितकर नहीं और कल्याणप्रद भी नहीं। इसलिए उठो, कमर बांधो और भारत-हित की एक अत्यन्त सुलभ पर अत्युपयुक्त रीति का अवलम्ब करो।

हमारी भारत माता का दुःख दूर करने का एक सुलभ उपाय उसकी सब सन्तान को सुशिक्षित करना है। मातृभक्त गोखले महोदय ने माता की आकृति की भली भांति चिकित्सा कर निदान करके यही मात्रा उपयुक्त ठहराई और यही मात्रा घिस कर देने की चेष्टा की। पर निर्घृण काल ने उन्हें वैसा करने के पूर्व ही इस संसार से खींच लिया। रोगियों की शुश्रूषा करने का काम स्वभावतः ही स्त्रियां अच्छी रीति से कर सकती हैं। उसमें भी विशेषतः जो मात्रा घिस देने में अधिक कौशल्य और परिश्रम की आवश्यकता नहीं, उसको तो अत्यन्त सुगमता से करने के योग्य स्त्री जाति ही है। क्या हमारी विधवा बहिनें यह सुलभ कार्य न करेंगी और अपने प्यारे जेठे भाई गोखले महाशय की मनोकामना पूरी करके उनकी आत्मा को सुख देने का यत्न न करेंगी। इस अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के कार्य को विद्वत्ता की अपेक्षा नहीं, धन की आवश्यकता नहीं, और शारीरिक शक्ति की भी ज़रूरत नहीं। केवल स्वार्थत्याग, अल्प सन्तोष और कार्यपूर्ति की उत्कट लालसा की ही अपेक्षा है। और इन गुणों में, आशा है, कि हमारी विधवा भगिनियां पुरुषों से कभी न हारेंगी।

इस कार्य को करने के लिए कुछ पुरुषों ने कमर बांधी है, पर पुरुषों के कुछ सहज गुण इस कार्य में बाधा डालते हैं। छोटे छोटे गावों में जाकर बच्चों को शिक्षा देने का काम कठिन नहीं है। पर साहसप्रिय, यशःप्रार्थी पुरुषों को आकर्षित करने योग्य गुण उनमें नहीं है। पुरुषों की महत्वाकांक्षा को इसी कार्य के करने में योग्य विस्तार पाने का अवसर नहीं मिलता और इसी कारण से थोड़े ही दिन में इस कार्य से उसका जी ऊब उठता है और अन्य देशहित के कार्यों की ओर उसका चित्त आकृष्ट होकर वह इस काम को छोड़ देता है। अन्य पाश्चात्य देशों में यह बालशिक्षा का कार्य प्रायः स्त्रीवर्ग के ही हाथ में है और इसका यही कारण है कि यह कार्य पुरुषों के हाथों से निभ नहीं सकता। अन्य कार्य जिनमें शारीरिक शक्ति, मानसिक सामर्थ्य तथा साहस की आवश्यकता है, स्त्रियों के हाथों से पार नहीं पड़ सकते। उनके लिए पुरुषों की ही अपेक्षा है। अर्थात् यह सहज काम स्त्रीवर्ग को ही अपने हाथों में लेना चाहिये। फिर भी बच्चों को पढ़ाने के लिए जिस प्रेम और वात्सल्य की आवश्यकता है, वह भी पुरुषवर्ग से स्त्रीवर्ग में अधिक होने के कारण इस कार्य के लिए स्त्रियां ही योग्यतर हैं।

विधवा स्त्रियों को इस काम के करने में एक और भी सुभीता है। ऊपर कहा जा चुका है कि इस कार्य में द्रव्य प्राप्ति होने की आशा न होने से संसारी पुरुष इस कार्य को करने में दत्तचित्त न होंगे। संसार छोड़े हुए पुरुष बहुत थोड़े हैं; साधु या वैरागी लोग यदि यह काम हाथ में ल तो बहुत शीघ्रता से इसमें यशः-प्राप्ति हो सकती है। पर इन लोगों से आज तो भारत को बहुत ही कम आशा है। आज तो ये लोग केवल भारभूत ही हैं। इसलिए यदि विधवा स्त्रियां जिनका संसारपाश छूट जाता है, इस कार्य को हाथ में लें, तो उनकी आवश्यकताएं कम होने से जो कुछ थोड़ी बहुत प्राप्ति हो उसी में वे संतुष्ट रह सकती हैं और कार्य को भली भांति निबाह सकती हैं। हमारे गरीब गंवई के लोग धन नहीं दे सकेंगे पर यदि कोई वैराग्ययुक्त विधवा स्त्री वहां जाकर उनके बच्चों को विद्यामृत पिलाने लगे, तो उसे वे भूखी या उघाड़ी कभी न

तुर्की महिला

Mohila Press, Calcutta.

और
पर त
नहीं,
नहीं।
हित
रीति

एक
क्षित
माता
निदा
यही
निर्मू
संसा
का क
सकट
में आ
नहीं,
योग्य
बहिन
प्यारे
पूरी
न व
कार्य
आव
ज़रू
और
अपेक्ष
हमा
हारे

से व
गुण
गावें
कठि
पुरुष
नहीं

रहने देंगे। संसारपाश पीछे न होने से ये स्त्रियां मन पर धार लें तो इनमें संतुष्ट रह सकती हैं। फिर भी इस कार्य के लिए अधिक विद्वत्ता की अपेक्षा न होने से थोड़ी पढ़ी लिखी विधवा स्त्रियां भी यह काम कर सकती हैं। इस प्रकार से संसारमुक्त समझा भी गया हुआ स्त्रीवर्ग देशहित को अत्यन्त उपयुक्त हो सकता है।

बहिनो! यदि तुम्हें यह मार्ग पसंद हो और इसका अवलम्ब करने का धैर्य हो तो उठो और कमर बांध कर यह काम करके भारत माता का उद्धार करो। समाजधुरीणो! क्या आप भी इस पर ध्यान देंगे?

सुतवती सीता।

[लेखक—श्रीयुत पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय।]

छप्पै।

(१)

कुसुम सुकोमल अल्प वयस दो बालकवाली।
रहित केश विन्यास प्रकृति पावन कर पाली॥
एक आध गहने पहने साधारण वसना।
मुख गँभीरता नहिं जिसकी कह सकती रसना॥
यह देवि स्वरूप कौन है बन भूतल में भ्राजती।
कुसुमित पौधों के मध्य में पादप मूल विराजती॥

(२)

बन निवास के समय निम्न वह विटप मनोहर।
जो अवलोकी गई परम पतिरता निरन्तर॥
तरु अशोक के तले पुरी लंका में प्रति पल।
जिसका विकशित हुआ अलौकिक चारुचरितबल॥
वह तपोभूमि में, जहांसे रामचरित धारा बही।
यहउसी सतीकीअतिरुचिरमातृमूर्तिहैलसरही॥

(३)

निकट विलसते लवकुश नामक युगल तनय हैं।
भोले भाले परम सरलता निधि मुदमय हैं॥
पति वियोग विधुरा व्यथिता के प्रिय सम्बल हैं।
दुख पयोधि में विवश पड़ी के पोत युगल हैं॥
परितापवंतचितसुतरुहितयुगकलसेहैंसलिलमय।
वकहृदयसदनतमबलितकेज्योतिमान हैं दीपद्वय॥

(४)

एक नव कुसुम अग्रज को अवलोक लिये कर।
फिर करते आलाप देख जननी से वियतर।
हुआ कुसुम के लिये द्वितिय बालक भी चंचल।
औ जा बैठा निकट एक पादप प्रसून फल॥
प्रिय सुमनतोड़नेकेसमबजोप्रफुल्लतामुखलखी।
वहअतिअनुपमहैप्रातरविप्रभाकमलपरआवसी॥

(५)

कुसुम लाभ उसके अवलोकन का विनोद मिल।
अति सुन्दरता संग उठा है आनन पर खिल॥
या राकापति अंक विकचता उफन पड़ी है।
अथवा खिले गुलाब में अरुणता उमड़ी है॥
नन्दनकाननकेअतिकलितविकसितकिसीप्रसूनपर
अथवा अनुपमतासँगलसीस्वर्गज्योतिकमनीयतर

(६)

पा सन्मुख कर कुसुमवान बालक को सीता।
हस्त कमल के साथ उसे पकड़े हो प्रीता॥
जिस रसालता मृदुता सँग है समालाप रत।
हो सकता है वह भावुकजन को ही अवगत॥
अवलोक बदन गंभीरता उठी तर्जनी कलामय।
कलनीयकान्तभावोंबलितनहिंहोता किसकाहृदय

(७)

माता है मानव जीवन की नींव जमाती।
उसे पूत उन्नत उदार है वही बनाती॥
ज्यों सोनार भूषण-स्वरूप का है निर्माता।
वों ही है माता-विचारजन-हृदय-विधाता॥
बालक उर मृदुमहिबीचजो मातोती हैबीजवय।
फल बहुविबलाताईवहीदोषअंकुरितयथासमय॥

(८)

शिव मुख पर कर्त्तव्य बुद्धि यह बहुव्यंजित है।
उससे उसकी गुरु गँभीरता अति रंजित है॥
जो प्रसून उनका बालक है उन्हें दिखाता।
मंजुल बचन वही उनके मुख पर है लाता॥
वे जिस वत्सलता सरसता से हैं बातें कह रहीं।
वहकेवलअनुभवनीयहैसुकथनीयकथमपिनहीं॥

(९)

क्या वह यह कहती हैं ऐ उर उदधि कलाकर।
तेरे जैसा ही प्रसून भी है अति सुन्दर।
प्राणि नयन रंजिनी परम न्यारी छविवाली।
तव कपोल अधरों सी है इसकी भी लाली॥
कोमलता इस पर वैसिही है लसती मनमोहती।
तेरे तन की सुकुमारता जैसी हूं अवलोकती॥

(१०)

है समानता तुझ में और सुमन में इतनी।
किन्तु तात इसमें गुण गरिमायें हैं कितनी॥
बहुत प्यार करके सप्रेम सुर शीश चढ़ावे।
या पांवों से मसल धूल में इसे मिलावे॥
पर यह सुवास तजता नहीं यों रहता है एक रस।
कैसे ही उनमें बिरसता नहिं होती जो हैं सरस॥

(११)

यह सुरभित केवल तिल ही को नहीं बनाता।
निज सुगंधि दे रज का भी है मान बढ़ाता॥
निज प्रफुल्लता से नर ही को नहिं पुलकाता।
बनता है बहु मधुप कीट का भी सुख दाता॥
जो हैं जग में अच्छे सुमन क्या कह उन्हें सराहिये।
उनकी गुण ममता विकचता होती है सब के लिये

(१२)

यह प्रसून कांटों में ही रहता पलता है।
पर कैसी इसमें सुमधुरता कोमलता है॥
पड़ कुसंग में कभी नहीं वे निजता खोते।
जो भावुक गंभीर उच्च रुचि के हैं होते॥
जैसे समीप की पवन को यह करता है परिमलित
वैसे उनका सहवास भी होता है बहुगुण बलित॥

(१३)

अल्प मोल का फूल मणि मुकुट का है मंडन।
मोहित होता है उस पर पुहुमी पति का मन।
अमर वृन्द मस्तक पर है वह शोभा पाता।
वह सुवर्ण भूषण को भी है सकुवि बनाता॥
क्यों?क्याबहबतलादूं तुझे! सुनऐसुअन सुकौशली
सब काल रही सन्मानिता वसुधा बीच गुणावली

(१४)

जितनी वस्तु अवनि मंडल में हैं दिखलाती।
उन सब को मैं विविध गुणों पूरित हूं पाती॥
सुअन सभी को तुम विचार दृग से विलोककर।
उनके गुणगण गहो बनो कुल कुमुद कलाधर॥
करपल्लव शोभित कुसुम केसकलसुगुणपहलेगहो
जिससे इसकी अवहेलना देवोपम शिशु से न हो

(१५)

मेरे जो में यही लालसा है ऐ प्यारे।
तेरे पिता सदृश तेरे गुण होवें न्यारे॥
प्रजा पुंज रंजन सुनीति तेरी हो वैसी।
पूत-चरित-रघुकुल-रवि की भू में है जैसी॥
सब काल सत्य संकल्प सत्कर्मनिरत संयत रहो
निज पूज्य जनक के तुल्यतवजीवनरहितकलंक हो

ऋतुमती कन्या का विवाह शास्त्रसम्मत है।

[लेखक—एक संस्कृत का एम० ए०, कट्टर सनातनी।]

हिन्दू समाज में जितनी सामाजिक कुरीतियां और कुसंस्कार फैले हुए हैं उन सब की जड़ कम उम्र का विवाह है। इस बाल-विवाह की कुरीति से हिन्दू समाज की कैसी अधोगति हुई है यह प्रत्येक बुद्धिमान मनुष्य अवश्य अनुभव करता होगा। इस कुरीति से पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां अधिक सताई जाती हैं। पहले तो स्त्रियां पढ़ाई नहीं जातीं और यदि पढ़ाई भी गईं तो छोटी उम्र में विवाह हो जाने से उनका पढ़ना फौरन बन्द कर दिया जाता है। इस तरह से हिन्दू समाज का आधा अंग ज़बर्दस्ती मूर्खता के गढ्ढे में पड़ा हुआ है। छोटी उम्र में विवाह हो जाने से बारह वर्ष से कम उम्रवाली हज़ारों विधवाएँ दुःख की आहें भरती हुई उन कष्टों और दुःखों को सह रही हैं जो उनपर उनके कठोर-हृदय मातापिताओं के डाले हुए हैं। बहुत सी स्त्रियों के तेरह या चौदह वर्ष की उम्र में सन्तानोत्पत्ति होने से, कमज़ोर और रोगी सन्तानों का भारतवर्ष में वृद्धि हो रही है और कम उम्र की माताएं स्वयं भी या तो आजन्म रोगी और कमज़ोर रहती हैं अथवा सन्तानोत्पत्ति के समय में ही मृत्यु की शिकार होती हैं। इसी तरह की अनेकों कुरीतियां और कुसंस्कार इसी बाल-विवाह की कुरीति के परिणाम हैं। अतएव यह स्पष्ट है कि यदि बालविवाह की कुरीति को उठाकर लड़कियों का विवाह ऋतुमती होने के बाद किया जाय तो ऊपर लिखी गई जितनी बुराइयां हैं सब आपसे आप दूर हो जायँगी। पुराने ख़याल के लोग जो बालविवाह के पक्षपाती हैं, कहा करते हैं कि ऋतुमती का विवाह न सिर्फ शास्त्रनिषिद्ध ही है बल्कि भारतवर्ष में कभी भी प्रचलित नहीं था। इस लेख का तात्पर्य यह सिद्ध करना है कि ऋतुमती का विवाह पूर्णतया वेद और शास्त्र-विहित है और प्राचीन भारतवर्ष में युवती ही का विवाह होता था और उचित समझा जाता था। हम इस बात को वेदों के गृह्य और धर्मसूत्रों के, स्मृतियों के, तथा पुराणों के प्रमाणों से इस लेख में सिद्ध करने का यत्न करेंगे। प्राचीन ग्रन्थों और शास्त्रों में इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि प्राचीन भारतवर्ष में यह कोई धर्म-संबन्धी आवश्यक बात नहीं थी कि प्रत्येक कन्या का विवाह अवश्य हो।

सब गृह्यसूत्रों में विवाह उन स्नातकों के लिए लिखा है जो गुरुकुल में ब्रह्मचर्य और विद्याध्ययन को समाप्त कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहते हैं। प्राचीन समय में गृहस्थ के लिए अग्निहोत्र करना आवश्यक कर्त्तव्य था और यह गृह्याग्नि-उपासना बिना स्त्री की सहायता के नहीं हो सकती थी। इस अग्निहोत्र उपासना में पत्नी का निरन्तर संग अत्यन्त आवश्यक था। अतएव गृह्यसूत्रों में लिखा है कि "समाप्यैतमग्निमुपहरन्ति" अर्थात् पति और पत्नी दोनों विवाह समाप्त होने पर विवाहाग्नि को पति के घर में लाकर उसकी निरन्तर उपासना करें। क्या यह संभव है कि उस समय की छोटी उम्र की लड़कियां पति के गृह में जाकर एक सुयोग्य पत्नी के उन कर्त्तव्यों को कर सकती रही होंगी जो गृह्यसूत्रों और धर्म-शास्त्रों में लिखे हुए हैं। विवाह के समय में जो मन्त्र पढ़े जाते हैं उनसे साफ़ २ मालूम होता है कि प्राचीन समय में स्त्री और पुरुष दोनों विवाह के समय युवक और युवतियाँ होती थीं नकि बालक और बालिका। वे मंत्र हमें विवाह के उपरान्त निकट भविष्य में होनेवाले पति-पत्नी के सम्मिलन के तथा पत्नी के पतिगृह

की स्वामिनी होने की बातें बतलाते हैं। कुछ मंत्रों में तो विवाह के उपरान्त ही पति-पत्नी के सहवास के बारे में ऐसे खुले लफ्ज़ों में लिखा गया है जिन्हें वही मनुष्य कह सकता है जो पत्नी के सहवास की आशा लगाए हुए है। इस तरह के कुछ मंत्र नीचे लिखे जाते हैं जिनसे जान पड़ेगा कि बालविवाह की स्वभावविरुद्ध रीति प्राचीन समय में नहीं थी और कन्याओं का विवाह उनके युवती होने पर किया जाता था।

"उदीर्ष्वातः पतिवती ह्येषा विश्वावसु नमसा गीर्भिरीले। अन्यामिच्छ पितृषदं व्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि" ॥

हे विश्वावसु! (विवाह के देवता) इस स्थान से उठो, क्योंकि इस कन्या का विवाह समाप्त होगया। हम लोग सूक्तों से और दण्डवत करके विश्वावसु की स्तुति करते हैं। अब किसी दूसरी कुमारी के पास जाओ जोकि अब तक अपने पिता के घर हो और विवाह करने की अवस्था के चिन्हों को प्राप्त कर चुकी हो। वह तुम्हारा भाग होगी, उसे जानो।

"उदीर्ष्वातो विश्वावसो,नमसेलेमहे त्वा।
अन्यामिच्छ प्रफर्व्यं सञ्जायां पत्यासृज" ॥

हे विश्वावसु! इस स्थान से उठो। हम तुम्हें दण्डवत करके तुम्हारी पूजा करते हैं। अब किसी दूसरी कुमारी के पास जाओ जिसके अंग प्रौढ़ता को प्राप्त हों। उसे एक पति से मिलाकर पत्नी बनाओ।

"प्र त्वा मुंचामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वा बध्नात्सविता सुशेवः। ऋतस्ययोनौ सुकृतस्य लोके अरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि" ॥

हे कुमारी! सुन्दर सूर्य ने तुझे (कुवांरेपन) के बन्धनों से बांधा है। अब हम लोग तुझे इन बन्धनों से छुड़ाते हैं। हम तुझे तेरे पति के साथ ऐसे स्थान में रखते हैं जोकि सचाई और पुण्य का घर है॥

"इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन्गृहे गार्हपत्याय जागृहि। एना पत्या तन्वं संसृजस्वाधाजिर्वीविदथमावदाथः॥"

तुझे सन्तान हो। अपने घर का कामकाज सावधानी से कर। अपना शरीर अपने इस पति के शरीर के साथ एक कर और बुढ़ापे तक पति के घर में प्रभुत्व कर।

"सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजा॥"

पहिले सोम तुझे अंगीकार करता है, तब तुझे गन्धर्व अंगीकार करता है, तेरा तीसरा स्वामी अग्नि है और तब चौथी वेर मनुष्य तुझे अंगीकार करता है।

"सोमो ददद्गन्धर्वाय गन्धर्वो दददग्नये।
रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम्" ॥

सोम ने यह कन्या गन्धर्व को दी, गन्धर्व ने उसे अग्नि को दिया, और अग्नि ने उसे धन और सन्तति के साथ मुझे दिया है।

ये दो मन्त्र बहुत महत्व के हैं। इन ऋचाओं से जाना जाता है कि कन्या विवाह किये जाने के पहिले इन तीनों देवताओं को अर्पण की जाती थी। सायण इनकी व्याख्या इस तरह करते हैं—"अनुपजातपुरुषसम्भोगेच्छावस्थां स्त्रियं सोमोलेभे। स च सोम ईषदुपजातभोगेच्छावस्था तां गन्धर्वाय प्रादात्। स च गन्धर्वो विवाहसमयेऽग्नये प्रददौ। अग्निश्च मनुजाय भर्त्रे धन पुत्रैः सहितामिमां प्रायच्छदिति"। अर्थात् ऐसी स्त्री को, जो युवती नहीं हुई, सोम ग्रहण करता है। उसके युवती हो जाने पर उसे गन्धर्व ग्रहण करता है। विवाह के समय उसे गन्धर्व अग्नि को देता है और अग्नि से धन और पुत्र के साथ भर्ता उसे ग्रहण करता है।"

इसके सम्बन्ध में अत्रि स्मृति और भी साफ २ लिखती है:—"पूर्वं स्त्रियः सुरैर्भुक्ताः सोम गन्धर्ववह्निभिः। भुज्यन्ते मानुषैः पश्चान्नते दुष्यन्ति कर्हिचित्॥ व्यंजनेषु च जातेषु सोमो

भुक्ते च कन्यकाम्। पयोधरेषु गन्धर्वा रजस्यग्निः प्रतिष्ठितः॥" ये दोनों श्लोक अनुवाद करने के योग्य नहीं हैं। संस्कृत जाननेवाले पाठक समझ जायँगे। अतएव ऋतुमती का विवाह वेदमंत्रों तथा स्मृतियों से भी सिद्ध है।

सातवीं भँवरी फिरने के समय पति पत्नी को सम्बोधन करके कहता है:—"सखा सप्तपदा भव सखायौ सप्तपदा वभूव सख्यन्ते गमेयं सख्यात्ते मायोषं सख्यान्मे मा योष्ठास्समावाव संकल्पावहै संप्रियौ रोचिष्णु सुमनस्यमानौ। इहमूर्जमभिसंवसानौ सन्तौ मनांसि संव्रता। सुमचित्तान्याकरम्। सात्वमस्य मूहममूहमस्मि सा त्वं द्यौ रहं पृथ्वी त्वं रेतोऽहं रेतोभृत् त्वं मनोऽहमस्मि वाक् त्वं सामाहमस्यृक्त्वं सामामनुव्रता भव पुंसे पुत्राय वेत्तवै स्त्रियै पुत्राय वेत्तवा पहि सूनृते॥" "हम लोगों ने सात भांवर फिर लिया है अब हम एक दूसरे के परम सखा हो गये। न हमारा तुम से कभी वियोग हो न तुम्हारा हम से। हम दोनों एक हों। हमलोग प्रसन्न हृदय और परस्पर प्रेम के साथ एक दूसरे की सलाह लें। अब हम दोनों का मन, कर्त्तव्य और इच्छा एक हैं। तुम ऋक हो हम साम हैं, हम द्यौः हैं तुम पृथ्वी हो, हम रेत हैं तुम रेतः की धारण करनेवाली हो, हम मन हैं तुम वाणी हो। हमारी अनुगामिनी हो जिसमें पुत्र और धन की प्राप्ति हो। मिष्टभाषिणी! आओ।" क्या ये वचन "अष्टवर्षा गौरी" से कहे जाने के योग्य हैं? क्या ये उत्साह के साथ गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हुए एक युवक के वचन हैं, अथवा कम उम्र बालक और बालिका के? यह पाठक स्वयं विचार करें।

यहां तक वेदों के प्रमाण दिये गये अब कुछ पौरुषेय गृह्यसूत्रों और स्मृतियों के प्रमाण दिये जायँगे। हरएक गृह्यसूत्र की पुस्तकों के विवाह प्रकरण में ये बातें लिखी रहती हैं—किस समय विवाह होना चाहिये, किस घर की लड़की के साथ विवाह करना चाहिये, लड़की में और उसके रिश्तेदारों में कौन २ से गुण और दोषों का निरीक्षण करना चाहिये इत्यादि। यदि युवती का विवाह धर्मविरुद्ध होता तो गृह्यसूत्रों में, जहां बहुत से दोष लड़कियों के लिखे हैं, यह भी लिखा होता कि उस लड़की से विवाह न करना चाहिये जो युवती हो। इस तरह का कोई निषेध हमें गृह्यसूत्रों में नहीं मिलता इसलिए यह काफ़ी सबूत है कि गृह्यसूत्र के समय में ऋतुमती का विवाह प्रचलित था।

सांख्यायन गृह्यसूत्र में लिखा है:—उत्तरायणे शुक्लपक्षे विशिष्टव्यतीपातादिवर्जिते विवाहलग्नमन्वीक्ष्य तस्मिन्नरूपिते कन्यामस्पृश्य मैथुनामसमानार्षेयां लक्षणोपेतां परिणयेत।" अर्थात् "उत्तरायण में, शुक्लपक्ष में, शुभ दिन में वर ऐसी ब्रह्मचारिणी का पाणिग्रहण करे जो कुमारी हो, उत्तम लक्षणों से युक्त हो, समान गोत्र की न हो और सुशील हो।" यदि ऋतुमती का विवाह धर्मविरुद्ध होता तो यह अवश्य लिख दिया जाता कि "वह ऐसी कुमारी का पाणिग्रहण करे जो ऋतुमती न हो।" किन्तु इस तरह का कोई निषेध यहां पर नहीं है।

आश्वलायन गृह्यसूत्र में लिखा है:—बुद्धिरूपशीललक्षणसंपन्नामरोगामुपयच्छेत।" अर्थात् "वर ऐसी कुमारी का पाणिग्रहण करे जो बुद्धिमती हो, सुन्दरी हो, सुशीला हो, और रोगी न हो"। यहां पर भी ऋतुमती का कोई निषेध नहीं है।

जैमिनि गृह्यसूत्र में लिखा है:—"पितृभ्यामनुज्ञातो जायां विन्देतानग्निकां समानजातीयामसगोत्रां मातुरसपिण्डाम्।" अर्थात् "वर अपने माता पिता की आज्ञा से ऐसी कुमारी के साथ विवाह करे जो अनग्निका हो, समानवर्ण की हो, समान गोत्र की न हो।" यहां पर नग्निका का अर्थ अमरकोश में इस तरह लिखा

है "नग्निका अनागतार्तवा" अर्थात् नग्निका उसे कहते हैं जिसके मासिक धर्म न होता हो। अतएव अनग्निका उसे कहते हैं जिसके मासिक-धर्म होता हो। ऊपर लिखा है कि "ऐसी कुमारी के साथ विवाह करे जो अनग्निका हो" अर्थात् जो ऋतुमती हो। इस गृह्यसूत्र में साफ साफ ऋतुमती का विवाह लिखा गया है। अन्य गृह्यसूत्रों में भी कहीं ऋतुमती के विवाह का खण्डन नहीं किया गया है।

विवाह के चौथे दिन चतुर्थी-कर्म होता है। आजकल जैसे सब संस्कार प्रहसन की तरह किये जाते हैं उसी तरह चतुर्थी-कर्म भी नकल की तरह कर दिया जाता है। पहले चतुर्थी कर्म का तात्पर्य यह था कि कम से कम तीन रात तक तो पति और पत्नी विवाह के बाद ब्रह्मचर्य और पवित्रता के साथ रहें। किन्तु आजकल इस चतुर्थी कर्म की कोई ज़रूरत नहीं क्योंकि आजकल छोटी २ लड़कियों का विवाह होने से यह भय नहीं कि पतिपत्नी तीन दिन तक भी ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकते।

गोभिल गृह्यसूत्र में लिखा है :—"नावुभौ तत्प्रभृति त्रिरात्रमक्षारलवणाशिनौ ब्रह्मचारिणौ भूमौ सहशयानाम्"। अर्थात् "पति और पत्नी विवाह दिन से आरम्भ कर तीन रात तक नमक इत्यादि कामवर्द्धक वस्तुओं को न खाते हुए, ब्रह्मचर्य धारण करते हुए ज़मीन पर एक साथ शयन करें।

जैमिनि लिखते हैं :—"त्रिरात्रमक्षार लवणाशिनौ ब्रह्मचारिणौ भूमौ संवेशनौ सहशयानाम्। ऊर्ध्वं त्रिरात्रात् संभवः।" अर्थात् "तीन रात तक ब्रह्मचर्यपूर्वक एक साथ शयन करने के बाद, चौथे दिन पति-पत्नी का संयोग उचित है।

आपस्तम्ब में लिखा है :—"त्रिरात्रमूर्ध्वोरात्रः शय्या ब्रह्मचर्यं क्षारलवणवर्जनं च।" इसमें भी वही बात लिखी है।

तीन रात्रि तक इस हठात् ब्रह्मचर्य का तात्पर्य यह था कि कामोत्पत्ति करनेवाले कारणों के होते हुए भी काम विकार का न पैदा होना और ब्रह्मचारी रहना पति पत्नी दोनों के लिए प्रशंसा का कारण था और ऐसा विश्वास किया जाता था कि जितने अधिक दिनों तक विवाह के उपरान्त स्त्री पुरुष का संयोग न होगा उतनी अच्छी सन्तान उत्पन्न होगी। अब आपही बतलाइये कि "अष्टवर्षा गौरी" को इस तीन रात के ब्रह्मचर्य से रहने के नियम की क्या आवश्यकता है? क्या जिसके रजोधर्म नहीं हुआ उसके लिए यह कह जा सकता है कि "तीन रात तक ब्रह्मचर्यपूर्वक रहने के बाद चौथे दिन पति-पत्नी का संयोग हो।"

जब हम स्मृतियों को देखते हैं तब हमें रजो-धर्म के पहिले ही विवाह करने के वचन मिलते हैं। किन्तु स्मृतियों के पहिले के ग्रन्थों में हमें कहीं भी रजोधर्म के पहिले स्त्री का विवाह होने का प्रमाण नहीं मिलता। स्मृतियों में भी प्राचीन स्मृति में—जैसे मनुस्मृति में—हमें ऋतुमती के विवाह के विरुद्ध बहुत थोड़े वचन मिलते हैं। किन्तु नवीन स्मृतियों में जैसे नारद-स्मृति, पाराशर स्मृति इत्यादि में—हमें ऋतुमती के विवाह के विरुद्ध बहुत से श्लोक मिलते हैं। जितनी ही नवीन स्मृति होगी उतनी ही अधिक वह ऋतुमती के विवाह के विरुद्ध होगी।

आपस्तम्बस्मृति में लिखा है:—"विवाहे वितते यज्ञे संस्कारे च कृते यदा। रजस्वला भवेत्कन्या संस्कारस्तु कथं भवेत्॥ स्नपयित्वा तदा कन्यां अन्यवस्त्रैरलंकृताम्। पुनर्मेध्या इतिं हुत्वा शेषं कर्म समाचरेत॥" अर्थात् "प्रश्नः—जब विवाहसंस्कार हो रहा हो उस समय यदि कन्या ऋतुमती हो जाय तो विवाह संस्कार किस तरह से समाप्त हो?। उत्तरः—कन्या को स्नान कराकर, दूसरा वस्त्र पहिना कर, हवन कराकर, शेष विवाह-कर्म पूरा करो।"

अत्रि स्मृति में लिखा है:—"विवाहे वितते

तन्त्रे होमकाल उपस्थिते। कन्यामृतुमतीं दृष्ट्वा कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः॥ हविष्मत्या स्नापयित्वा अन्यवस्त्रे रलंकृताम्। युजातामाहुतिं कृत्वा ततः कर्म प्रवर्तते॥" इसका भी वही अर्थ है जो ऊपर के श्लोक का है।

अब आप ही बताइये कि ऋतुमती का विवाह प्रचलित नहीं था तो इसके लिखने की क्या आवश्यकता थी।

मनु लिखते हैं:—"नोद्वहेत् कपिलां कन्यां नाधिकांगीं न रोगिणीम्। नालोमिकां नातिलोमां नवाचाटां न पिंगलाम्॥ नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम्॥ न पक्षप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम्॥ यस्यास्तु न भवेद्भ्राता ना विज्ञायेत वा पिता। नोपयच्छेत तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशंकया॥" अर्थात् कपिल बालोंवाली, अधिक अंगवाली, रोगिणी, बिना बालोंवाली, बहुत बालोंवाली, कठोर वचनवाली, नक्षत्र वृक्ष नदी इत्यादि के नामोंवाली, कन्या से विवाह न करे। जिसके भाई न हो, जिसके पिता का पता न लगे उसस पुत्रिका धर्म से डर कर (जिसका प्रथम पुत्र अपने नाना की गोद धर्म से देना पड़े उसको "पुत्रिका" कहते हैं) विवाह न करे।"

ऊपर कन्या के दोषों में यह कहीं नहीं लिखा कि "ऐसी स्त्री से विवाह न करे जो युवती हो"।

आगे मनु लिखते हैं:—"उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च। अप्राप्तामपि तस्मै कन्या दद्याद्यथाविधि॥" अर्थात् "कुल आचारादि से उच्च और सुन्दर तथा गुणों में बराबरवाले वर को कन्या (चाहे वह कन्या (अप्राप्त) कम उम्र भी हो) यथाविधि पिता दे दे।"

"काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि। न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्॥" अर्थात् "चाहे कन्या ऋतुमती होकर मरने तक घर में बैठी रहे परन्तु गुणहीन वर को कन्या कभी न दे।"

"त्रीणिवर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती। ऊर्ध्वंतु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम्॥" अर्थात् "रजस्वला कन्या तीन वर्ष तक प्रतीक्षा करे, फिर अपने बराबर गुणवाले पति को वर ले।"

मनु के इन ऊपर के श्लोकों में यद्यपि ऋतुमती के विवाह का निषेध साफ साफ शब्दों में तो नहीं किया गया तथापि उसका समर्थन भी नहीं किया गया, बल्कि एक तरह पर रजोधर्म से पहिले विवाह करना अच्छा लिखा गया है। आगे मनु लिखते हैं:—

"योऽकामां दूषयेत् कन्यांस वध्यो बधमर्हति। सकामां दूषयंस्तुल्यो न वधं प्राप्नुयान्नरः॥" अर्थात् "जो.....इच्छा न करनेवाली कन्या से गमन करे तो वह उसी समय वध के योग्य है और उसकी इच्छा.....।"

"कन्यां भजन्तीमुत्कृष्टं न किंचिदपि दापयेत्। जघन्यं सेवमानां तु संयतां वासयेद्गृहे।"

मनु के इन ऊपर के श्लोकों में "सकामा" अर्थात् "गमन की इच्छा रखनेवाली" ऐसा लिखा गया है और साथ ही साथ "कन्या" अर्थात् "कुवारी" भी लिखा गया है। "सकामा" इत्यादि शब्द क्या कभी उसके लिए कहे जा सकते हैं जो ऋतुमती न हो? यह आपही विचारिये। बात यह है कि जिस समय मनुस्मृति बनी उस समय दोनों विवाह प्रचलित थे अर्थात् ऋतुमती का भी विवाह होता था और जो ऋतुमती नहीं होती थी उसका भी विवाह होता था। मनुस्मृति में ऋतुमती के विवाह का निषेध खुले शब्दों में कहीं नहीं किया गया है। हां मनुस्मृति के बाद की स्मृतियों में ऋतुमती का विवाह बहुत ही निषिद्ध समझा जाने लगा और उसका बहुत कड़े शब्दों में खण्डन किया जाने लगा। किन्तु ये स्मृतियां उस समय की बनी हुई हैं जब हिन्दू धर्म बड़ी गिरी दशा को पहुंच गया

था और बाल-विवाह का प्रचार कई कारणों से पूरी तरह से हो चुका था। ऐसी अवस्था में वेद, गृह्यसूत्र, तथा मनुस्मृति के मुकाबिले में इनका प्रमाण कभी नहीं माना जा सकता।

पुराणों में भी अनेकों कथाएं मिलती हैं जिनसे मालूम पड़ता है कि प्राचीन समय में ऋतुमती का विवाह शास्त्रविहित समझा जाता था। स्वयंवर की प्रथा क्या है? क्या प्राचीन समय में छोटी लड़कियां इत समझदार होती थीं कि वे स्वयंवर में आ पति को स्वयं वरती रही हों? यह अ हो सोचिये। लेखविस्तार के भय से हम अ प्रमाण यहां पर देना नहीं चाहते। इतनेही प्रम उन लोगों को चुप करने के लिये काफी हैं जो विवाहसंशोधन में तथा अन्य सामाजि संशोधनों में शास्त्र की धमकी दिया करते हैं

स्वर्गीय सुख।

[लेखक—श्रीयुत माधव शुक्ल।]

धन सम्पति सर्वस्व कुबेर सो हो भरी।
वा रत्नों की हार लटकती हो लरी॥
हाथी झूमें पड़े झूमते हों खड़े।
देते हों सन्मान घनो मानी बड़े॥
तोरण वन्दनवार पताका औ ध्वजा।
अति चित्रित घर सुघर वस्तुओं से सजा॥
विविध पुष्पमय फुलवारी क्यारी रची।
रत्नजटित पर्यङ्क सेज कोमल बिछी॥
तहँ बैठी रतिरूप सर्वस्वी रमासी।
नख सिखलौं बहुविधि आभूषन से लसी॥
किन्तु न उसके गोद एक यदि लाल है।
तो वह सारा खेल व्यर्थ जंजाल है॥
आहा! देखो अभी भोर नहिं है निरा।
शान्त प्रकृति के अङ्क कुसुम सा वह खिला॥

निज सोती मा का जीवन अवलम्ब है।
वक्षस्थल लोटता प्रसून कदम्ब है॥
स्वच्छप्रेम का पुञ्ज यही सुख मूल है।
निज भविष्य आशा की जननि दुकूल है॥
माता के मुख में मुख अपना जोरता।
प्रेमपूर्ण नयनों से आकृति हेरता॥
ठुनकाता सा देखो ज्यों वह कह रहा।
उठो उठो मा उठो सवेरा हो गया॥
लेकल मुझको जननि! अङ्क लै द्वार को।
लखै मुझे जग मैं देखूँ संसार को॥
वश में जग कर रहा यही आनन्दमुख।
सकल सम्पदापूर्ण यही स्वर्गीय सुख॥

मर्य्यदा

स्वर्गीय सुख

Printed by
H. V. SEKNE & BROS.

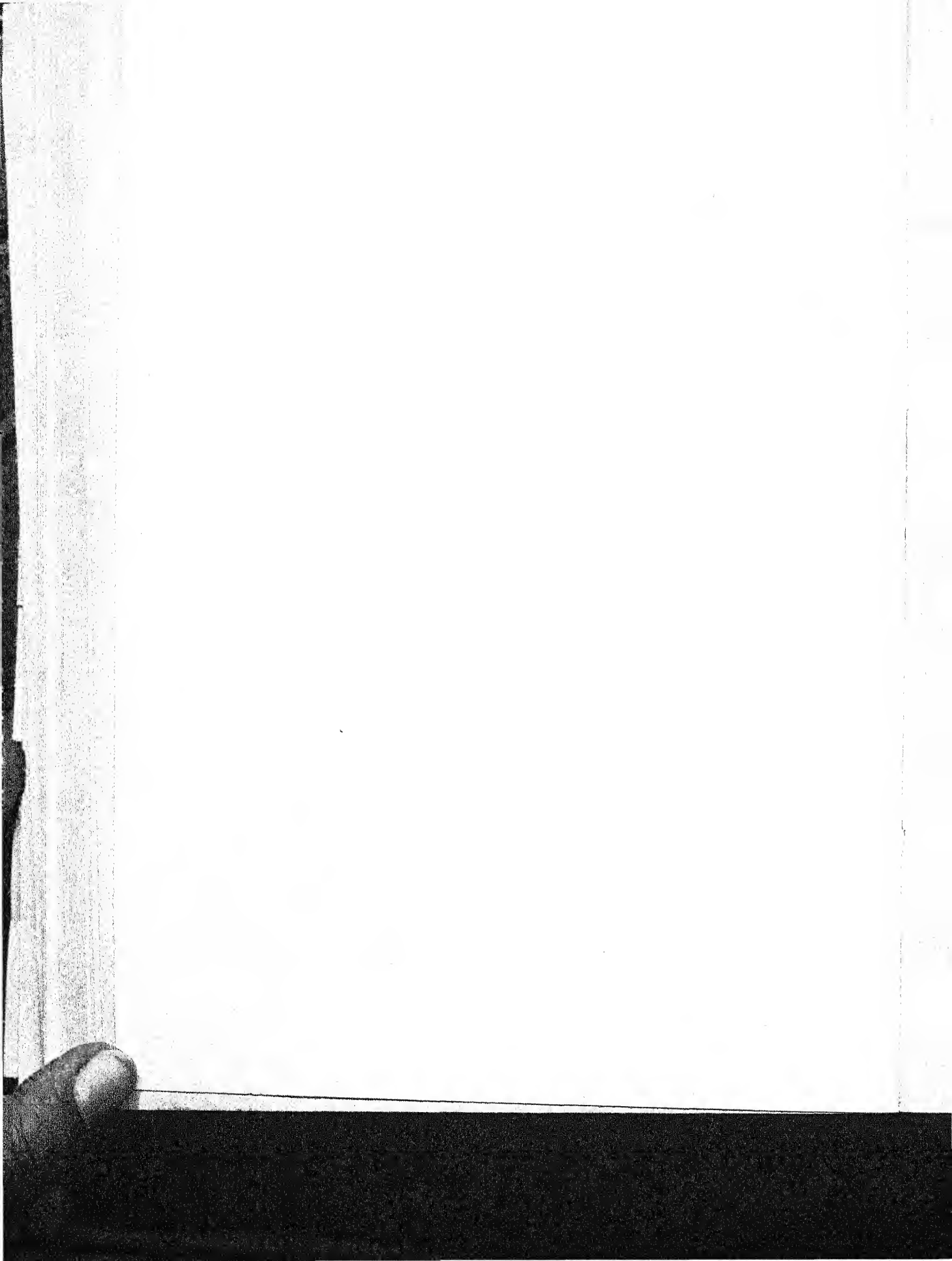

क्या स्त्री पुरुष के समान है ?

लेखक—श्रीयुत श्रीहरिहरसुरुप शर्मा, शास्त्री विद्याभूषण ।

यह एक जटिल प्रश्न है, जिस पर इस समय सारा ही सभ्य संसार बड़े ध्यान से विचार कर रहा है। एक ओर तो हमारे सामने पश्चिम की 'सफरेजिस्ट' स्त्री का नमूना है, जिसे पश्चिमी सभ्यता का परिपक्व फल कहना अनुचित न होगा; और दूसरी ओर भारत की वह पर्दानशीन स्त्री है, जिसका बिना डोली बाहर निकलना सहज नहीं। पहले प्रकार की स्त्रियों ने जहां मर्दों के बराबर शिक्षा प्राप्त कर उनके साथ सब कामों में बराबरी का दावा करते करते पार्लामेन्ट में अपने स्वत्वों के लिए लड़ना आरम्भ कर दिया है, वहां दूसरे प्रकार की स्त्रियां घर में पड़ी पड़ी बाहर की दुनिया से एकदम अनभिज्ञ रह अपना सारा जीवन अन्धकार में काट देती हैं। उनका अपने स्वत्वों के लिए लड़ना झगड़ना तो दरकिनार, बेचारी मर्द के साये से भी बेंत की तरह काँपती हैं।

पूर्व और पश्चिम के इस भारी भेद को कुछ नवशिक्षित सहन नहीं कर सके हैं। इस समानता के दौर में, जब कि चारों वर्ण बराबर बतलाये जा रहे हैं, ऊँच नीच का भेद उठाने के लिए सिर तोड़ कोशिशें की जा रही हैं, वर्णाश्रम धर्म पर चौका लगाने की तदबीरें सोची जा रही हैं, तब यह सवाल भी उठना स्वाभाविक ही है कि स्त्री पुरुष के समान है या नहीं ? वह पुरुष की दासी क्यों ? पुरुष ही उसका दास क्यों नहीं ? यदि पत्नी पति को देवता मान कर पूजती है तो पति परमात्मा का कभी भी उसे पूज्य दृष्टि से निहारना अनुचित क्यों है ? जब पुरुष पढ़ सकते हैं तो क्यों नहीं स्त्रियां भी पढ़ लिख कर बी० ए० एम० ए० की डिग्रियां धारण करें ? पादरी लोग तो आकर भारतवर्ष की स्त्रियों की इस करुणा दशा पर अश्रुधारा बहाकर 'खुदावन्द ईसू' की दुहाई देते ही थे, इधर हमारे भी कुछ भाइयों का कोमल हृदय पिघला। कुछेक ने तो यहां तक साहस कर डाला कि अपनी लड़कियों को यहां की यूनिवर्सिटियों की परीक्षाएँ पास करा विदेश भेज दिया, जहां से वे परीक्षोत्तीर्ण हो पूरी मेमसाहिबा बन कर लौटी हैं।

पश्चिमी स्वतन्त्रता और स्त्री-पुरुष की मित्रता के भाव पर मुग्ध होकर हमारे नवशिक्षित ऐसे बेढंगे प्रश्न करने के लिए बाध्य हो जाते हैं। एक विदेशयात्री भारतीय युवक जब महिलाओं को कालेज जाते हुए, पियानो (Piano) बजाते हुए, नई से नई किताबें पढ़ते हुए, लेक्चर फटकारते, उपन्यास लिखते और घोड़ा दौड़ाते हुए देखता है तो वह कर्तव्यविमूढ़ सा हो जाता है। वह तत्काल ही "पश्चिमीय स्त्री की ऊँची दशा" (The higher position of woman in the west) के सिद्धान्त को मान बैठता है, जोकि मिशनरी और पाश्चात्य सभ्यता के अन्य प्रचारकों द्वारा एशिया में भेजे जाने के लिए पेटेंट हो चुका है। जिन अंगरेज़ी किताबों में वे विचरण करते हैं उनमें उन्हें मोटे अक्षरों में लिखा मिलता है कि स्त्री का दर्जा पुरुष के सर्वथा समान है एक नमूना लीजिए:—

"The woman is not the servant of man much less his slave. She is his companion, his assistant, love of his love and flesh of his flesh. In proportion as the moral sense becomes devloped

among a people, she increases in dignity and in liberty; in that sort of liberty that is not exemption from duty and order, but enfranchisment from all servile dependence."

—Lamennais.

किन्तु हिन्दू दम्पती का सम्बन्ध कुछ और ही भाव लिये हुए है। हिन्दू विवाह करता है पितृऋण से मुक्त होने के लिए, विषयवासनाओं की तृप्ति के लिए नहीं। पशुओं की तरह हर घड़ी—जब चाहे तभी अपनी स्त्री से सम्भोग नहीं कर सकता; उसके लिए उसूल हैं—नियम हैं, जिनके अनुसार साल भर में बहुत थोड़े दिन उसे विषयभोग के लिये मिलते हैं, और वह भी किसी अन्य उद्देश्य से नहीं, धर्म की आज्ञा पालन करने के लिये। हिन्दू का विवाह-सम्बन्ध अटल है, वह मित्रता के मृणाल तन्तु से आबद्ध नहीं होता, किन्तु धर्म की सुदृढ़ निगड़ से जकड़ा होता है। स्त्री और पुरुष का दुनिया का ही नहीं परलोक का भी साथ है। हिन्दू स्त्री यही चाहती है कि उसका पति जन्म-जन्मान्तर में वही रहे। वह जानती है कि पिछले पापों से दुनिया में उसका पति उसके हाथ से जाता रहा, पर स्वर्ग में मिलेगा। वह उसको पक्का विश्वास रहता है। हिन्दू स्त्री खूब जानती है कि पति एक होता है,—एक ही दफा होता है, बार बार नहीं होता। इसीसे उसके जी में विधवा होकर या तलाक़ लेकर नया बालम करने की इच्छा नहीं है। पति की मारपीट से हिन्दू स्त्री नहीं ऊबती, क्रुद्ध होकर वह अदालत में नहीं जाती, क्योंकि उसकी सादी अदालत में रजिस्ट्री नहीं होती, है बल्कि कर्म के साक्षी देवताओं को आड़े करके अग्नि के सामने होती है, उसका सांसारिक कोई सम्बन्ध नहीं है, किन्तु धार्मिक है।

हिन्दू स्त्री का सौन्दर्य नहीं बिकता है। उसपर मुग्ध होकर सैकड़ों रसिक उसे प्रेम-पत्र लिखें, और फिर वह परीक्षा कर किसी किसी जानबाज़ प्रेमी के प्रेमपाश में आबद्ध हो—यह बखेड़ा हिन्दू ललना के साथ नहीं है। जब तक वह लड़की है, या बाप उसे जो जान से पालते हैं; तरुणी होने पर प्रियतम के हृदय की स्वामिनी बनती है परन्तु यह नहीं कि पति देवता ही उसे अपने आनन्द की गेंद बनाये इधर उधर खेलते फिरें, कभी बाइसिकल पर ले उड़ें; कभी थियेटर की सैर कराएँ, कभी बागों और ठंडी सड़कों पर मटरगश्त लगाएँ; बल्कि वह मा बाप की भी प्यारी रहती है, उसके बिदा होने के समय मातापिता की आंखों के आंसू थामे नहीं थमते। और तो और शकुन्तला को पतिगृह भेजते समय बनवासी ऋषि कण्व और आर्या गौतमी तक विह्वल हुए बिना नहीं रहे थे। बड़े खेद से कण्व ने कहा था—

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं
संस्पृष्टमुत्कण्ठया,
कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुष
श्चिन्ता जड़ं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं
स्नेहादरण्यौकसः,
पीड्यन्ते गृहिणः कथं न तनया
विश्लेषदुःखैर्नवैः।

हिन्दू स्त्रियों को अनादृत बतलानेवाले, प्रेमार्द्र हृदय के अन्तस्तल से उठे हुए, स्नेह-वारि-सिञ्चित इन शब्दों को ध्यान से पढ़ें। एक बार वे सीने पर हाथ रखकर सोचें कि हिन्दू स्त्री का कितना आदर है। कितना मान है। पिता के घर में, कन्या दशा में, दैवी भाव से वह 'दुर्गा' मान कर पूजी जाती है; सास उसे बड़े आदर से 'लक्ष्मी' समझ कर घर में लेती है। पतिगृह में वह 'बहू' कहलाती है; सास ससुर नए मा बाप मिलते हैं, जेठ देवर उसे देख कर फूले नहीं समाते। यह बात और जातियों में कहां? प्रेम की रीति निबाहनेवाले हिन्दू गृहस्थ को छोड़ अगाध प्रेम के इस

निर्मर्याद समुद्र की उत्ताल तरंगमालाएँ और कहीं नहीं देख पड़तीं।

जिन जातियों में रूप के साथ प्रेम है, उनमें स्त्रियों के रूप का दोपहर ढलते ही उनकी मानमर्यादा भी कूच कर जाती है। परन्तु हिन्दू स्त्री की आयु ज्यों ज्यों अधिक होती है, मान बढ़ता जाता है, बेटे, पोते, नाती और बहुओं की वह प्यारी होती है, वे सब उसके पुजारी बनते हैं, जब तक जीती है घर की सरदार रहती है, और जब मर जाती है, तो बेटे पोते बड़ी श्रद्धा भक्ति से उसके शव के साथ शंख घड़ियाल बजाते चलते हैं, फूल बरसाते हैं, वह मानुषिक अवधि को लांघ कर देवी बन जाती है, यहां तक कि उसकी रथी के नीचे से बच्चों को निकालना शुभ समझा जाता है।

किन्तु इतना मान अर्पण करने पर भी हिन्दू स्त्री को कभी इस रास्ते न देखा, उसे हमेशा पति सेवा ही में व्यग्र देखा, पति के बराबर होने की असम्भव और अनुचित अभिलाषा उसने कभी प्रकट न की और करे भी कैसे, जबकि उसके आत्मा में प्रकृति की सत्ता पुरुष से स्वतन्त्र नहीं मानी गई, पूर्ण प्रकृति को परमात्मा में लीन बतलाया गया है।

मनुसंहिता में लिखा है :—

"द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्द्धेन नारी तस्यांस विराजमसृजत् प्रभुः॥"

अपने देह के पुरुष और स्त्री रूप दो विभाग कर परमात्मा ने विराट् सृष्टि विस्तार की। श्रुति का भी यही कहना है कि आद्य दशा में परमात्मा एक ही रहता है, और सृष्टि दशा में उसी में से प्रकृति का आविर्भाव होता है, सन्तानोत्सव होने के बाद फिर उसका परमात्मा में ही तिरोभाव हो जाता है। बृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है कि सृष्टि के पहले आत्मा एक ही था उसे रमण करने के लिए प्रकृति की आवश्यकता हुई (क्योंकि अकेले रमण नहीं हो सकता), अतः परमात्मा द्विधा विभक्त हो स्त्री और पुरुष बन गया। इसीसे यह आत्मा आधे चने की तरह रहता है, विवाह के बाद स्त्री इसे पूरा करती है। यह प्रकृति पुरुष का सम्बन्ध यहीं खतम नहीं होता, दूर तक इसका आभास मिलता है। * प्रश्नोपनिषद् में कात्यायन के प्रश्न करने पर भगवान् पिप्पलाद ने यह उत्तर दिया था कि प्रजाकाम प्रजापति ने तप किया और फिर मिथुन उत्पन्न किया। रयि (प्रकृति) और प्राण (पुरुष) इन दोनों के संयोग से प्रजा की सृष्टि होती है। सूर्य पुरुष और चन्द्रमा प्रकृति है। संवत्सर प्रजापति है, उसके दक्षिण और उत्तर दो अयन हैं, उनमें दक्षिणायन प्रकृति और उत्तरायण पुरुष है। मास प्रजापति है, उसमें शुक्ल पक्ष पुरुष और कृष्ण पक्ष प्रकृति है। अहोरात्र प्रजापति है, उसमें दिन पुरुष और रात्रि प्रकृति है। द्युलोक पुरुष है और मर्त्यलोक प्रकृति है; इन्द्र के सेवन करने से ही पृथ्वी में शस्य की उत्पत्ति होती है। वीर्य पुरुष और रज प्रकृति

---

* "·····प्रजाकामो वै प्रजापतिः सतपोऽतप्यत, सतपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते। रयिं च प्राणं चेत्येतौमे बहुधा प्रजाः करिष्य इति। आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा·····। संवत्सरो वै प्रजापतिस्तस्यायने दक्षिणञ्चोत्तरञ्च। (तद्ये ह वै तदिष्टापूर्तं कृतमित्युपासते ते चान्द्रमसमेव लोकमभिजयन्ते त एव पुनरावर्त्तन्ते, तस्मादेते ऋषयः प्रजाकामा दक्षिणम्प्रतिपद्यन्ते।) एष ह वै रयि र्यः पितृयाणः। ·····मासो वै प्रजापतिस्तस्य कृष्णपक्ष एव रयिः शुक्लः प्राणस्तस्मादेते ऋषयः शुक्लपक्षइष्टिं कुर्वन्ती-तर इतरस्मिन्। अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रयिः (प्राणम्वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते। ब्रह्मचर्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्या संयुज्यन्ते।) अन्नं वै प्रजापतिस्ततोह वै तद्रेतस्तस्मादिमाः प्रजाः प्रजायन्त इति। तद्धैतत प्रजापतिव्रतं चरन्ति ते मिथुनमुत्पादयन्ते।"

(प्रश्नोपनिषद्।)

है। इसी सम्बन्ध का नाम हिन्दू शास्त्रों में "दाम्पत्य" सम्बन्ध है। हिन्दू दम्पती पितृ-ऋण से मुक्त होने के लिए पुत्रोत्पत्ति करते हैं, देवऋण से मुक्त होने के लिए अग्निहोत्र करते हैं, और वास्तविक मुक्ति पाने के लिए ब्रह्मचर्य एवं सदाचारपूर्वक सम्भोग करते हैं; सांसारिक झमेलों की अपेक्षा परमार्थ साधन करना उनका मुख्य उद्देश्य है। पुरुष का धर्म यज्ञ-प्रधान है, और स्त्री का तपःप्रधान। हिन्दू स्त्री पतिपरायणा—पति की चेरी रहना ही परम तप, परम कर्तव्य और परम सौभाग्य समझती है। उसकी इस पवित्र धारणा को डिगाना, उसके पापशून्यहृदयाल बाल में समानता का विषदिग्ध बीजरोपण करना महापाप है। पुरुष में पुरुषशक्ति के बीज और स्त्री में स्त्री शक्ति के बीज की पुष्टि करना ही युक्तिसंगत है। वह शिक्षा कभी फलदायिनी नहीं हो सकती जो पुरुष को स्त्रीप्रकृति और स्त्री को पुरुष प्रकृति बनाने के लिए दी जाती है। स्त्री को परिपूर्ण स्त्री बनाना ही उपयुक्त शिक्षा है, स्त्री को पुरुष बनाने की चेष्टा करना बंजर में बरसने के समान निष्फल और हवा में महल बनाने की भाँति असम्भव है। माता को माता बनाना ही उसके लिए शिक्षा है, उसको पिता बनाने की चेष्टा करना प्रमाद और धृष्टतामात्र है। हम कभी नहीं कहते कि स्त्रियों को शिक्षिता मत बनाओ, उनकी ज्ञानचक्षुएँ मत खोलो क्योंकि विद्या और ज्ञान की अधिष्ठात्री वीणा-पाणि माता सरस्वती भी स्त्री के ही बाने में हैं—किन्तु उनको ऐसी शिक्षा से सदा ही वञ्चित रक्खा जाय जिसके बुरे परिणाम से सीता और सावित्री के पवित्र आदर्श को वे भुला बैठें। यदि हम से पूछा जाय तो हम यही कहेंगे—चाहे कोई बुरा ही क्यों न माने—कि, गार्गी और मैत्रेयी बनने की अपेक्षा सीता और सावित्री, दमयन्ती और पद्मिनी बनना ही आर्यललनाओं का परम कर्तव्य है। सीता और सावित्री का अनुकरण करना और उन्हीं को हिन्दू स्त्री का आदर्श बताना अधिक प्रिय मालूम होता है। प्रकृति का ज्ञान मातृभावमूलक है ज्ञानमूलक नहीं। अतः जिससे मातृभाव का उच्छेद होने की आशंका हो वह शिक्षा कदापि श्रेयस्कर नहीं।

जो लोग यूरोप की उन्नति पर डाह करते हैं और हर बात में भारत को उसी के समकक्ष बनाने के लिए नये नये उपाय सोचा करते हैं, उनसे हमारा यही कहना है कि वे कम से कम भारतीय स्त्रियों को तो वहां की समानता और स्वतन्त्रता का सबक न सिखायें। एक बार धीरतापूर्वक वे पूर्व और पश्चिम की स्त्री के हाल पर मनन करें और फिर बतलाएं कि क्या वे यूरोप की सी ही समानता स्त्रियों को देना चाहते हैं? हिन्दू लड़की को घर घर ढूढ़ने के लिए चाय की पार्टियों, नाच और गिर्जे की प्रदर्शिनियों, प्रीतिभोजनों तथा ग्रीष्मकाल के निवास-स्थानों के अँधेरे जंगलों में अपने जीवन भर के लिए खाना पीना तलाश करने के हेतु नहीं भटकना पड़ता। विवाह में स्वतन्त्रता के नाम से यह कितना अनर्थ है! स्त्री की समानता का पाठ पढ़ानेवाले यूरोप में कुरूप स्त्री का विवाह होना नितान्त असम्भव है। वह अभागिनी तो मानो विवाह की मंडी का कूड़ा है जिसे मैनेजर लोग कूड़े के टोकरे में फेंक देते हैं। किन्तु भारत में कोई ही ऐसी दुखिया होगी जिसका एक बार विवाह न होगया हो चाहे वह कैसी ही कुरूप, बेडौल और बेवज़ा क्यों न हो। क्या पूर्वीय स्त्री जिसे यौवन प्राप्त होते ही पति घर और जीवन का निश्चित आधार मिल जाता है, विवाह की मंडी की इन प्रेम की भिखारिनों से जो समानता के मद से बेसुध की गई हैं, हज़ार बार अधिक सुखी और सन्तुष्ट नहीं है?

हिन्दू समाज पर एक भारी दोष यह भी आरोप किया जाता है कि उसमें स्त्रियों का

अनादर है, अपेक्षा है, उनकी पूरी पूरी अवहेला है। चाहे इस कथन में किसी अंश में कुछ सत्य भी हो किन्तु यह भी सत्य है कि यह बात बहुत ही अतिरञ्जित करके कही जाती है। परन्तु इसमें हिन्दू शास्त्रों का कोई दोष नहीं। शास्त्रों में स्त्रियों का आदर सत्कार करने की अलङ्घ्य आज्ञा है। भगवान मनु का यह आज्ञा-पत्र सदा ध्यान देने योग्य है—

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः,
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।
शोचन्ति जामयो यत्र विनश्त्याशु तत्कुलम्,
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा।" इत्या०

महाकवि कालिदास ने शब्द और अर्थ की भांति गुंथे हुए जगत् के मातापिता—गौरी और शंकर को प्रणाम करते समय माता पार्वती का नाम पहिले लेकर प्रकृति स्त्री के प्रति आदरातिशय दिखलाया है—

"वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये,
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।"

तैत्तिरीय उपनिषद् में स्नातक को उपदेश देते समय पिता और आचार्य से पहले माता की आज्ञाकारिता का उपदेश दिया गया है—"मातृदेवोभव"। यही कभी आम बोलचाल तक में इस क़ायदे का पालन किया गया है। सीताराम, राधाकृष्ण, गौरीशंकर, माबाप, मातापितरौ ही कहा जाता है, रामसीता या कृष्णराधा कहते किसी को न सुना। विपत्ति के समय में भी जितनी मा याद आती है उतना और कोई नहीं। यही क्यों, 'मा' जैसा हृदय-द्रावक, मधुर और वात्सल्यपूर्ण दूसरा शब्द भी तो नहीं है। कौन्तेय और कौशल्यानन्दन के सम्बोधन पाण्डव तथा दशरथ की अपेक्षा अधिक प्रिय, ओजस्वी एवं चित्ताकर्षक प्रतीत होते हैं। इन सब बातों की ओर देखते कैसे कहा जा सकता है कि हिन्दू स्त्री अनादृत है, उसकी कुछ पूंछ नहीं? भले घरानों में अबतक स्त्रियों का आदर ज्यों का त्यों विद्यमान है। पिछले दिनों तक महापतिव्रता चित्तौड़ की रानियों की रायें बड़े विकट अवसरों पर भी बड़ीगों की सम्मतियों से कम नहीं समझी जाती थीं (किन्तु वे पति की बराबरी का दावा नहीं करती थीं) और क्यों न हो? व्यास, वाल्मीकि, राम, कृष्ण, नल और युधिष्ठिर, अर्जुन और भीष्म, बुद्ध और शंकराचार्य, प्रताप और पृथ्वीराज जैसे महामहिमशालि महात्मा, विद्वान एवं वीर, देश, जाति और धर्म के सेवक नर-रत्नों की प्रसविनी किस भांति पूजा और आदर की भूमि नहीं है? जिस दिन तक करुणा और वात्सल्यमयी आदर्श माताओं के जीवन हमारे हृदयफलक पर कृतज्ञता की मसी से चित्रित रहेंगे, जिस दिन तक उनके प्रति प्रगाढ़ सम्मान और अनपायिनी भक्ति दिखाने के लिए हम उद्यत रहेंगे, उस दिन तक लाख अवनत होने पर भी हमारा सिर उन्नत रहेगा—हम अस्तित्ववान् रहेंगे।

हिन्दू समाज की परतन्त्र या मातहत अबला ने अपने हृदय की सबलता का अनेक बार प्रमाण दिया है। बहुत पीछे न जाकर एकबार चित्तौड़ की टूटी दीवारों और वहां की पवित्र धूलि से जाकर पूछिये।

इन्हीं परतन्त्र वीर बालाओं की प्रशंसा में भारतेन्दु ने लिखा है:—

"धनि धनि भारत की छत्रानी। वीर कन्यका वीर प्रसविनी वीर वधू जग जानी। सती सिरोमनि धरम धुरन्धर बुधि बल धीरज खानी; इनके जस की तिहुं लोक में अमल धुजा फहरानी॥"

एक हिन्दी कवि ने क्या अच्छा कहा है:—

"नाहर केश भुजङ्ग मणि, 'पतिव्रता को गात'।
शूरा शस्तर कृपण धन, मुए लगाओ हाथ॥"

भारत की परतन्त्र ललना पतिविरहकातरा होकर उसी के साथ चिता में समा जाती

हैं—'श्मशानाग्नि' में नश्वरदेह को भस्म कर देती हैं; यदि किसी अबाध कारणवश उसे जीवन धारण ही करना पड़ता है तो भी वह सारा समय ब्रह्मचारिणी रह कर संन्यासिनी बन कर पति का स्मरण करते करते घर के एक कोने में बैठ कर काट देती है, उस समय पति के 'विरहाग्नि' में अपने आपको तपाती रहती है; किन्तु प्राण रहते परपुरुष के चिन्तनमात्र से भी अपने अन्तरात्मा को कलंकित कर 'विषयाग्नि' में नहीं कूदती! यही भारत की सती, भारत की पतिव्रता और भारत की आदर्श माता का सौवर्ण चरित्र है जिसके लिए अनेक आपत्तियाँ सही जा सकती हैं; सुधारकों के ताने कान दबोच कर सुने जा सकते हैं और कितने ही मानवी देवी के इस दिल दहलाने-वाले दृश्य छाती कड़ी कर देखे जा सकते हैं। परमाराध्या, तपस्विनी, संसारपवित्रता-विधा-यिनी, मंगलमयी, सौम्य मूर्ति का मन ही मन ध्यान कर हम गर्दो ऊँचे हो जाते हैं, हमारे गौरवरवि की प्रखरता सारे संसार को चका-चौंध में डाल देती है। भारत की देवियों की—इसी लोकोत्तर परतन्त्रता—नहीं, तन्मयता के भाव पर मुग्ध हो फ़ारिस की ज़बान के माहिर एक शायर ने सीता को बहिष्ट कर क्या ही अच्छा कहा है—

"रवां रामो बिरादर चूं जमन गंग,
मियानश जानकी चूं सरसुती रंग।
तनशरा पैर हन उरियाँ न दीदा,
चो जाँ अन्दर तनो तन जाँ न दीदा॥"

(फ़ारसी रामायण।)

नारी जीवन का प्रश्न।

[लेखिका—श्रीमती तोरन देवी (लली)।]

क्या यह सत्य नहीं है बहिनों!
योग्य हृदय में करो विचार।
हमीं रहेंगी अंधकार में,
क्यों होगा भारत उद्धार॥

जननी सम उस ऊंचे पद पर,
हम अपने को पाती हैं।
सहधर्मिणि व अर्धांगिनि,
दुनियां में कहलाती हैं॥

किन्तु कहां तक हम सब,
इसका ध्यान हृदय में लाती हैं।
सचमुच इस जीवन में हम,
कितना कर्तव्य निभाती हैं॥

"कुछ भी नहीं" हमें, यह,
कहने में होता है दुःख अपार।
हमीं रहेंगी अंधकार में,
क्यों होगा भारत उद्धार॥

यह बतलाना नहीं अशिक्षा ही,
हम में होरही प्रधान।
शिक्षित भी हैं तो हमको बस,
वही चार अक्षर का ज्ञान॥

फूट कलह वा वैर जानतीं,
हानियुक्त झूंठे अभिमान।
दुनियां के सद्गुण क्या जानें,
विदित नहीं जब उनका नाम॥

नारीजीवन जीवन क्या है,
इसी भाव का है संचार।
हमीं रहेंगी अंधकार में,
क्यों होगा भारत उद्धार॥

शिक्षित होने पर भी,
यदि हम नहीं करेंगी इसका ध्यान।
गौरान्वित हो देश हमारा,
सबका होवे ऊंचा ज्ञान॥

हो सुयोग्य सन्तान हमारी,
पावे दुनियां में सन्मान ।
सब के उच्च हृदय में होवे,
प्यारे भारत का अभिमान ॥
यदि हम इसका नहीं करेंगी,
साहस से उद्योग प्रचार ।
हमीं रहेंगी अंधकार में,
क्यों होगा भारत उद्धार ॥
पा कर हाय विदेशी शिक्षा,
वैसी ही बन जावेंगी ।
यदि हम अपने देश धर्म पर,
ध्यान नहीं कुछ लावेंगी ॥
फ़ैशन ही पर सब शिक्षा का,
अन्त हाय दिखलावेंगी ।
धर्म सनातन को हम,
कोरी मूरखता बतलावेंगी ॥
कौन लाज रक्खे भारत की,
जीवित हो किसके आधार ।
हमीं रहेंगी अंधकार में,
क्यों होगा भारत उद्धार ॥
आपतियों से घिरा हिन्द था,
एक समय वह आया था ।
अपने उच्च हृदय का परिचय,
जब हमने दिखलाया था ॥
दीनों के रक्षार्थ हमीं ने,
सुख अपना बिलगाया था ।
समरक्षेत्र में हमने अपना,
रक्त पवित्र बहाया था ॥
पूर्ण रूप से यही भाव तब,
रहा हृदय में लहरें मार ।
हमीं रहेंगी अंधकार में,
क्यों होगा भारत उद्धार ॥
किन्तु आज यवनों का ऐसा,
घोर घृणित अन्याय नहीं ।
हम हों उन्नतियुक्त जगत में,
यह तज और उपाय नहीं ॥
इतने पर भी भारत के हित,
होती रंच सहाय नहीं ।
अशिक्षिता शिक्षित सब सम हैं,
ध्यान किसी का हाय नहीं ॥
आश्चर्य है हमको अब भी,
होवे यदि यह नहीं विचार ।
हमीं रहेंगी अंधकार में,
क्यों होगा भारत उद्धार ॥
जिन्हें बात कह कर करने का,
रहता है स्मर्ण अपार ।
कठिन प्रतिज्ञा कर, जो लेती हैं,
आगे बढ़ने का भार ॥
जिन्हें और कुछ ध्यान नहीं है,
छोड़ एक निज देश सुधार ।
जो सिखलाती हैं दुनियां को,
करना देश धर्म का प्यार ॥
जिनका प्रश्न अदैव बढ़ी है,
उनकी गिनती है दो चार ।
हमीं रहेंगी अंधकार में,
क्यों होगा भारत उद्धार ॥
अस्तु ! अन्त में यह विनती है,
कृपया इस पर करिये ध्यान ।
लोप न हो जावे भारत का,
पूर्व समय का ऊंचा मान ॥
उन्नति अवनति का कारण,
बस, होती स्त्री जाति महान ।
इससे बनें कर्मवीरा अब,
सब से पावें शुभ सम्मान ॥
(तली) प्रश्न यह कभी न भूलो,
जिसका ही यह है सब सार ।
हमीं रहेंगी अंधकार में,
क्यों होगा भारत उद्धार ॥

सामाजिक संगठन में स्त्रियों का स्थान।

मानवी संसार के दो भाग हैं। स्त्री और पुरुष। इन दोनों की संख्या लगभग बराबर है। इन दोनों के आपस के सम्बन्ध ऐसे घनिष्ट होते हैं कि संसार में उनकी उपमा मिलनी कठिन है। इन दोनों की किस्मतें सम्मिलित होती हैं और एक दूसरे पर ये बराबर बुरे या भले प्रभाव डालती रहती हैं।

सम्प्रदाय, सदाचार और कानून इन सब का एकमात्र उद्देश्य स्त्री और पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों में स्वच्छता, सरलता और प्रेम उत्पन्न करना है। समाज की स्थिति और उन्नति इन्हीं दोनों के आपस के सम्बन्ध, प्रेम और सहानुभूति के यथोचित होने का नतीजा है। मानवी संसार के ये विचित्र अंग हर प्रकार से एक दूसरे के आश्रित हैं और हमारा समाज इन्हीं दोनों के मिश्रित उद्योगों का फल है।

सांसारिक रचना के शुरू से वे दोनों एक दूसरे के साथी हैं। हमारे समाज का सारा जाल इन्होंने मिल २ कर अपने हाथों से बिना है। न्याय की बात तो यह है कि पुरुष को मेहनत ज्यादा करनी पड़ी। परन्तु बेचारी महिलाओं को दुःख अधिक झेलना पड़ा। प्रकृति ने ही पुरुषों को मज़बूत बना कर परिश्रम करने योग्य बनाया था। स्त्री की कोमलता और नम्रता ने उसकी मुसीबतों को और भी बढ़ा दिया, उनको चिरस्थायी बना दिया। ख़ैर! यह सब भूतकाल की कहानी है। बुरे भले जैसे हुआ इन दोनों ने संसार का काम चलाया और इस काम की रवा-रवी में जो कुछ भूलें, जो कुछ अत्याचार होगये हैं उन पर विलाप करना व्यर्थ है। परन्तु भविष्य के लिए सावधानी आवश्यक है।

मगर वे भूल थीं क्या? निन्दा नहीं किन्तु सुधार के लिए उन पर ध्यान देना ज़रूरी है।

सब से बड़ी भूल यह थी कि पुरुष ने सामाजिक जाल बिनने का सारा भार अपने ऊपर ले लिया। उसकी सुन्दरता और सूक्ष्मता के सब रहस्य अपने आधीन कर लिये। स्त्री से कहा कि हम तो इस कठिन काम में फँसे हैं। हम बड़ा कष्ट सहते हैं। तुम केवल इतना करो कि हमारे शारीरिक सुखों का ज़िम्मा ले लो बाकी हम सब कर लेंगे। स्त्री ने देखा कि सस्ती छूटी सांसारिक प्रपंच में कौन पड़े। पुरुष को शारीरिक सुख देना कोई बड़ी बात नहीं। इनको सामाजिक जाल बिनने की कठिनाइयों में मग्न रहने दो। स्वयं चैन करो। इनकी उमंग पूरी होगी। अपनी कोई हानि नहीं।

यह दोनों की भूल थी। सामाजिक जाल ऐसा न था जिसे पुरुष अकेला बिन सकता। और साथ ही इस काम से सर्वथा विलग होना स्वीकार कर लेने ने स्त्री जाति को दीन-दुनिया कहीं का न रक्खा। दोनों ही का पतन हुआ। सामाजिक जाल के फन्दों में ऐसी गांठें पड़ने लगीं जिनका सुलझाना असम्भव होगया। पुरुष अपने शारीरिक सुखों के लिए स्त्री का आश्रित होगया और स्त्री उसकी सेवा के अतिरिक्त और किसी योग्य न रही।

राजमद सब मदों का राजा है। इसकी लत बुरी होती है। एक बार पड़ जाने पर मनुष्य का पीछा कदापि नहीं छोड़ती। इसके नयनहीन प्रभाव में मनुष्य को दूसरों की हानि-लाभ का ध्यान नहीं रहता। बहुधा अपनी ही सुध भूल जाती है। किसी अपने आधीन का स्वाधीन होजाना अत्यन्त दुःखदायी होता है और मनुष्य अन्य सांसारिक क्लेशों का सहन करना स्वीकार करता है, पूर्व इसके कि उसका कोई प्रेमी स्वतन्त्र हो।

दूसरे नशों की भांति यह नशा भी हवसनाक होता है, कभी इसकी तृप्ति नहीं होती।

प्रयोग के साथ २ इसकी लालसा बढ़ती ही जाती है। सब से बड़ा अवगुण इस नशे का यह है कि जिन अभागों पर इसके मतवालों का शासन होता है वे नित्य अधोगति को प्राप्त होते जाते हैं। उनमें से समस्त सद्गुणों का विनाश होता जाता है। असाहस, संकोच और भीरुता के रोग उनको आ घेरते हैं और कुछ काल में भेड़-बकरी के समान दूसरों के शासन के सहनशील और अभ्यासी ही नहीं बल्कि आश्रित हो जाते हैं। इसलिए स्त्री, पुरुष समाज सभी को इस प्रबन्ध से हानि हुई। परन्तु एक ओर तो इस नशे की उन्मत्तता ने, दूसरी ओर इसके विनाशक प्रभाव ने स्त्री, पुरुष दोनों को नयनहीन रक्खा और वे सुगम से सुगम विषयों के देखने और समझने से विमुख रहे।

यदि इस नशे का अन्धकार इन मतवालों की दृष्टि पर छाया न होता तो वे सब के सब भलीभांति देख लेते कि स्त्री संसार में केवल पुरुष की सुखपात्र ही होने के लिए नहीं उत्पन्न की गई। वे देख लेते कि सामाजिक जाल का कोई ऐसा फन्दा नहीं जिसको पुरुष स्त्री की सहायता बिना पूर्ण रीति से बिन सके और उनको यह भी विदित हो जाता कि समाज की उन्नति और उद्धार पुरुष की अपेक्षा स्त्री की उन्नति पर अधिक निर्भर है और स्त्री को पुरुष की अर्द्धांगिनी कहने की जगह वे उसको समाज का श्रेष्ठ अङ्ग विचारते, इस प्रकार वे सहस्रों सामाजिक त्रुटियां दूर होगई होतीं जो आज मानवी उन्नति के मार्ग में बाधक हैं।

सोसाइटी क्या है? वह कोई मेशीन नहीं जो अपनी हरकत के लिए किसी वाह्यशक्ति के आधीन हो। मेशीन का कोई गुण भी इसमें नहीं होता।

यह मनुष्यकृत नहीं किन्तु एक प्राकृतिक संस्था है। इसमें शरीर है, इसमें जीव है, इसमें दिमाग है अतएव इसमें वे सब लक्षण हैं जो एक मनुष्य में होते हैं और इसको एक जीवित जागृत व्यक्ति कहना अत्युक्ति नहीं।

इसी सजीव वस्तु के जिसे हम समाज कहते हैं स्त्री पुरुष दोनों अङ्ग हैं। इन्हें शरीर और रक्त कहिये, हृदय और मस्तिष्क कहिये, हाथ पैर कहिये, कुछ भी कहिये, बात यह है कि इन दोनों की शक्ति, सहानुभूति, प्रेम और त्याग, समाज के संगठन के लिये ज़रूरी हैं। एक का विनाश दूसरे के सुख का कारण नहीं हो सकता और न इसमें समाज ही को कुछ लाभ हो सकता है। समाज अपनी उन्नति के लिये इन दोनों की उन्नति को मोहताज है। परन्तु स्त्री की दुर्गति समाज को जितनी हानि पहुंचाती है, उतनी पुरुष की दुर्गति नहीं पहुंचा सकती। सुनने में यह बात विचित्र और अविश्वस्त समझ पड़ती है। परन्तु असलियत यही है और स्त्री का जो सम्बन्ध समाज से है उसको भलीभांति अनुभव करने से हमको इसका विश्वास हो जायगा।

परन्तु इसकी परीक्षा हो कैसे?

सरल रीति यह है कि समाज के प्रबन्ध और संगठन को हम analyse कर डालें और अलग २ उसके हर एक अवयव को देख कि उसके साथ स्त्री का क्या सम्बन्ध है।

जिस प्रकार एक व्यक्ति की विविध हैसियतों का अलग २ ज़िक्र किया जाता है, जैसे उसकी मानसिक, शारीरिक, आर्थिक, नैतिक-दशा इत्यादि का, इसी प्रकार समाज की भी यही स्थितियां होती हैं और यदि यह मालूम हो जावे कि इनमें से हर एक के साथ स्त्री का क्या सम्बन्ध है, वे उन पर क्या प्रभाव डालती हैं और उनका केवल बनाना बिगाड़ना कहां तक स्वयम् उसी की दशा पर निर्भर है तो हम इसका स्थान समाज में भलीभांति नियत कर सकते हैं।

सब से पहिले समाज के स्वास्थ्य तथा शारीरिक आरोग्यता को देखें कि इनकी स्थिति और वृद्धि में स्त्री क्या भाग लेती है। यह कहां तक केवल उसकी दशा के साथ बद्ध है और उसका प्रभाव समाज की इस हैसियत पर पुरुष से अधिक होता है वा नहीं।

व्यक्तियों के समूह को समाज कहते हैं। इसमें प्रत्येक व्यक्ति भिन्न २ होती है और हर एक व्यक्ति की उपर्युक्त दशाएँ एक दूसरे से अलग २ होती हैं। स्वास्थ्य और शारीरिक बल की भी यही दशा है। फिर सामाजिक स्वास्थ्य और शक्ति क्या है? मानो इन्हीं भिन्न २ व्यक्तियों के सम्पन्न स्वास्थ्य और बल ही सामाजिक स्वास्थ्य और बल है।

एक व्यक्ति के स्वास्थ्य का ज़िम्मेवार कौन है? माता वा पिता? एकाव्यक्ति की सेहत और आरोग्यता का दारमदार किस पर अधिक होता है? माता पर या पिता पर? इन प्रश्नों का एक ही उत्तर है! माता ज़िम्मेदार है और उसी पर पिता से अत्यन्त अधिक भार होता है। बालक महीनों माता के गर्भ में रहता है। उसी के रुधिर से उसकी परवरिश होती है। माता की शारीरिक दशा का उस पर अधिक प्रभाव पड़ता है। शारीरिक दशा तो एक ओर रही, माता के विचार भी उस छोटे से जीव पर ऐसे प्रबल संस्कार डालते हैं, जिनका विश्वास आना भी कठिन है। तात्पर्य यह कि जन्म लेने से पूर्व ही मनुष्य स्त्री से संस्कारित होना शुरू हो जाता है और बहुधा यह संस्कार ऐसे होते हैं जो उसके जीवन भर के साथी हो जाते हैं।

जन्म लेने के बाद भी बच्चा दो वर्ष स्त्री ही के रुधिर से पलता है, जो अब दूध के रूप में उसे मिलता है और इस अवस्था में भी उसका स्वास्थ्य और बल केवल मां की शारीरिक आरोग्यता के आधीन होता है। यदि माता रोगी है, यदि माता बलहीन है, यदि उसमें कोई मानसिक दोष है तो इन सब का प्रभाव उस ग़रीब बच्चे पर जीवन भर के लिये पड़ जावेगा। साथ ही पिता के स्वास्थ्य का बच्चे की दशा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और यदि पड़ता है तो इतना कम कि जिसकी तुलना माता के प्रभावों से करना मूर्खता है।

दूध छूटने के बाद लगभग १० वर्ष तक दिन रात का बच्चे का साथी कौन होता है? माता या पिता? उसकी ख़बरगीरी कौन करता है? उसकी सफ़ाई, उसके खिलाने, पिलाने का ज़िम्मेदार कौन है? उसके सोने जागने, उठने बैठने, खेलने कूदने की देखभाल की मुसीबत किसके हिस्से में है? और कौन वर्षों तक इसे अपना सुख विचार हँसी खुशी सहन करता है। माता या पिता?

इन प्रश्नों का एक ही उत्तर है। १० वर्ष की अवस्था तक प्रत्येक बालक हर बात में अपनी माता के आधीन होता है न कि अपने पिता के और वे १० साल हर बच्चे के भावी जीवन के बुनियादी पत्थर होते हैं। इन्हीं की मज़बूती पर उसके सारे जीवन का आधार होता है।

हम यह कह चुकी हैं कि व्यक्तियों का समूह ही समाज है फिर जब हर व्यक्ति अपने स्वास्थ्य और मज़बूती के लिये स्त्री के ऐसी आधीन है तो यह कहना कि सामाजिक स्वास्थ्य और प्रबलता केवल स्त्री के स्वास्थ्य और आरोग्यता पर निर्भर है अत्युक्ति नहीं और जिस समाज में स्त्रियां दुर्बल होंगी, उसकी सेहत खराब होगी उस समाज की दशा कदापि अच्छी नहीं हो सकती।

दूर क्यों जाइये अपने ही घर को देख लीजिये। शिक्षा की न्यूनता, बालविवाह, बाला और युवा विधवाओं की संख्या और इसके अतिरिक्त वे कुप्रथाएँ जिन्होंने स्त्री को सर्वथा

पशुओं के समान बना दिया है। आपके समाज के स्वास्थ्य और दशा पर क्या प्रभाव डालती हैं? १२ वर्ष की माताएँ दो २ तीन २ वर्ष की विधवाएँ सैकड़ों बल्कि लाखों की तादाद में मौजूद हैं। स्त्रियों के शरीर और उनकी चेष्टाएँ देखिये। इससे आपको अपने पतन का सारा रहस्य प्रतीत हो जायगा। शहर की सड़कों पर मनुष्य झुण्ड के झुण्ड जाते हुए दिखलाई देते हैं, थोड़ी देर ठहरिये और इनकी ओर ध्यान दीजिये। यौवन, शक्ति और प्रसन्नता का चिन्ह इनके मुखों पर लेशमात्र नहीं है। १६ वर्ष की वृद्ध स्त्रियों और २५ वर्ष के बूढ़े पुरुषों का दिल दुखानेवाला दृश्य बिना इस अभागे देश के संसार के किसी अन्य देश में आपको दिखाई न देगा। जिस्म टूटे हुए, वक्ष संकुचित, गर्दनें पतली २, हाथ, पांव सूखे हुए, मतलब यह कि हर अङ्ग से यह टपकता हुआ कि स्वास्थ्य, मज़बूती, प्रबलता से ये सदा के लिए हाथ धो बैठे हैं।

इन झुंडों में यदि कुछ अंगरेज़ और मेमें भी दिखाई दे जावें तो इन दोनों की तुलना और भी आखें खोल देंगी। दोनों की दशाओं में ज़मीन और आसमान का अन्तर पाइयेगा। उनका क़द, उनका शरीर और उनका तेज देख कर यह विचार होने लगता है कि यह किसी दूसरे दुनिया के निवासी हैं।

इन बातों पर ग़ौर करने से हम यह देख सकती हैं कि प्रत्येक समाज की आरोग्यता लगभग तीन चौथाई उस समाज की स्त्रियों पर और एक चौथाई पुरुषों पर निर्भर होती है और संसार में कोई जाति अपनी स्त्रियों के स्वास्थ्य पर अच्छी तरह ध्यान दिये बिना कदापि उन्नति के शिखर पर नहीं पहुंच सकती।

समाज के स्वास्थ्य की तो यह दशा है। यदि इसकी मानसिक अवस्था पर ग़ौर किया जावे तो वह शारीरिक दशा से भी अधिक स्त्री के आश्रित और आधीन है। मनुष्य जाति ने इस प्रश्न को नज़र अन्दाज़ रक्खा। इन्होंने आरम्भ ही से स्त्री की दिमाग़ी हालत की ओर ध्यान नहीं दिया, वह उसको अनावश्यक समझते रहे और इस भूल से हमारे समाज को जो हानि पहुंची उसका अब पूरा अनुमान करना असम्भव है।

हम दिखा चुकी हैं कि बालक के स्वास्थ्य का भार स्त्री पर होता है परन्तु यहीं पर स्त्री की उपयोगिता समाप्त नहीं होती। वह बालक की दाई होने के साथ २ उसकी गुरू भी होती है। १० वर्ष तक बालक का मस्तिष्क अत्यन्त ही कोमल और प्रभावग्राही होता है और इस काल में जिस ओर चाहे उसको फेर सकते हैं और उसमें वह बीज भलीभांति डाल सकते हैं जो आगे चलकर फले फूले। और इस १० वर्ष का जैसा कि हमने ऊपर बयान किया प्रकृति ने स्त्री ही को रक्षक बनाया है। मनु भगवान् ने माता को बालक का प्रथम और श्रेष्ठ गुरू माना है। मुहम्मद साहब और ईसादि ने इसका समर्थन किया है। वर्तमान शिक्षा और उन्नति ने यह पूर्ण रीति से सिद्ध कर दिया है कि बालक के मस्तिष्क को भलीभांति विकसित करने के लिए एक ऐसे विद्वान और बुद्धिमान गुरू की आवश्यकता है जो किसी युवक की शिक्षा से अधिक ज्ञानी हो क्योंकि बालक की शिक्षा सब से कठिन है। ऐसी दशा में वह गुरू जो निरक्षर हो, कैसे अपना कर्तव्य पालन कर सकता है। मनुष्य जाति यह न समझो कि वह महिलाओं को विद्याहीन रख कर मानवी अर्धोभाग अर्थात् स्त्रियों ही को विमुख नहीं रखती, किन्तु दूसरे अर्धभाग (पुरुषों) की शिक्षा की जड़ को भी काट देती हैं।

मनुष्य जाति सदैव विद्या के पक्ष में रही और विद्याप्रचार के लिए शोर व गुल करने से कभी नहीं चूकी परन्तु साथ ही बुद्धिमानी देखिये कि स्त्रियों को मूर्ख रखकर प्रत्येक

व्यक्ति के जीवन के शुरू के १० वर्ष विद्याहीन बना कर समाज को कितनी हानि पहुंचाई, विशेष कर ऐसी दशा में जब कि सब मानते हैं कि यह १० वर्ष शिक्षा के विचार से हर मनुष्य के जीवन के तत्व होते हैं। माता अपने सब गुणों को सुगमता से बालक को प्रदान कर सकती है। गाना, बजाना, चित्रकारी और कविता सारांश यह कि सब सद्गुण जो कि माता में हों और जिनमें वह प्रवीण हों ऐसा विशाल प्रभाव बालक पर डालते हैं और इतनी शीघ्रता से वह उनको ग्रहण कर लेता है, जिसका कोई परिमाण नहीं। पढ़ने लिखने की भी यही दशा है, हँसते, बोलते, खेलते, कूदते वह इतना सीख लेता है कि पाठशाला की वर्षों की शिक्षा भी उसको नहीं सिखा सकती। शोक की बात है कि मानवी संकुचित विचार ने इस सब से बड़े, सब से उपयोगी और अल्प व्यय पाठशाला की स्थिति को ही मिटा दिया है और इससे जो अकथनीय हानि समाज को हुई वह सब पर विदित है। मानवी आधे संसार का विद्याहीन रहना दूसरे आधे भाग को भी बिना हानि पहुंचाये नहीं रह सकता।

स्त्रियों की मूर्खता का फल मनुष्य जाति के लिये अत्यन्त हानिकर हुआ, इसने समाज की उन्नति को हर प्रकार रोका। इसीका प्रभाव है कि मूर्खता आजतक हमारे समाज में विद्या और बुद्धि पर अधिकार किये हुए है। साम्प्रदायिक झगड़ों का तूफान इसी के कारण आजतक शान्त नहीं होने पाता, बुद्धि और ज्ञान इसी दुःखदायी कारण से अपना स्वाभाविक स्थान समाज के अन्दर पाने में कृतकार्य नहीं होते। पुरुष अपनी विद्या के कारण कहीं से कहीं पहुंच जावें परन्तु स्त्रियों की अविद्या उनको पुरानी लकीर का फकीर बनाये रहती है और उनका प्रभाव पुरुषों को अपने आधीन कर के परम्परागामी बनाये रखता है। बड़ी २ बातें तो दूर रहीं छोटे छोटे विषयों पर ध्यान दीजिये, विधवा-विवाह सिद्ध होगया कि हिन्दू शास्त्र के विरुद्ध नहीं है। कानून भी पास होगया कि विधवा-विवाह जायज़ समझे जावें। यह भी स्वीकार हो चुका कि हिन्दू विधवाओं की दुर्दशा अनिर्वचनीय है और इससे समाज को अत्यन्त हानि हो रही है परन्तु विधवा-विवाह शुरू नहीं होने पाते। बालविवाह की विपत्तियों से सब परिचित हो चुके यह मान लिया गया कि इसमें सिवा हानि के कोई लाभ नहीं मगर फिर भी वह किसी के रोके नहीं रुकता और आजतक वह उसी ज़ोर शोर से प्रचलित है जैसा पहिले था। छुआछूत को लीजिये सारा सभ्य और शिक्षित समुदाय इसको मान गया है कि इससे ज्यादा निष्फल और हानिकारक और बेहूदा रिवाज संसार की किसी जाति में पैदा नहीं हुआ। लेकिन क्या कीजिये किसी को अपने मातामह, किसी को अपनी धर्ममाता, किसी को अपनी माता के ख्याल से सदैव इस कुप्रथा का पालन करना पड़ता है। यही नहीं कि महिलाएँ ही इन बातों की मुरीद हों बल्कि बाल्यावस्था में पुरुषों के दिल और दिमागों पर इन्हीं स्त्रियों द्वारा वे संस्कार चिरस्थायी पड़ जाते हैं कि फिर वह जीवनपर्यंत मिटाये नहीं मिटते और वे बेचारे भी अपनी अवस्था इन्हीं उलझनों में व्यतीत कर देते हैं।

महिलाओं का अशिक्षित होना समाज की उन्नति में सब से ज्यादा बाधा डाल रहा है और इसका दूर होना समाज के उद्धार के लिए पुरुषों की मूर्खता के दूर होने से ज्यादा ज़रूरी है। क्योंकि पुरुष की मूर्खता का प्रभाव बालक पर स्त्री की मूर्खता के प्रभाव के मुक़ाबले में कुछ भी नहीं पड़ता और बाल्यावस्था के संस्कार बहुधा ऐसे प्रबल और चिरस्थायी होते हैं कि वे मनुष्य का संग तमाम उम्र नहीं छोड़ने और इन बातों से यह सिद्ध होता है कि समाज की दिमागी हैसियत भी जितनी स्त्री के आधीन है उतनी पुरुष के नहीं। क्योंकि इस प्राकृतिक

नियम पर सामाजिक संगठन में दृष्टि नहीं रक्खी गई, मानवी उन्नति और समाज-संगठन की अक्षीम हानि हुई।

अब नैतिक दशा को लीजिये। शारीरिक और मानसिक दशाओं के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया वह इस विषय में भी सत्य प्रतीत होता है। स्त्री के नैतिक स्थिति के प्रश्न को हल करने में भी मनुष्यों ने बड़ी भूल की और स्त्री की नैतिक दशा का जो घनिष्ट सम्बन्ध समाज के साथ है उसकी विशेषता को कमी न समझे।

* * * * *

अभाग्यवश स्त्री के सदाचार के विषय को समाज ने पागलों और अभियुक्तों के सदाचार के सदृश हल किया। यह मान लिया गया कि स्त्री अत्यन्त दुर्बल वस्तु है। सांसारिक घटनाओं के तूफान से बचने के लिए उसको स्वयम् आंतरिक शक्ति और बल से सम्पन्न होने की आवश्यकता नहीं बल्कि ज़बरदस्ती दबाव और जब्र से उसे उन मार्गों पर स्थिर रक्खो कि जिन पर उसका चलना लाभदायक हो। उसको अपने कर्म करने के लिये स्वाधीन कभी न करो। बाल्यावस्था में वह अपने माता पिता की, युवा अवस्था में अपने पति की, वृद्धावस्था में अपने पुत्र की अधीनता और रक्षा में रहे। और इन सब का बराबर यह कर्तव्य रहे कि उसको कुमार्ग पर न चलने दें। जो मनुष्य कार्यों में स्वाधीन नहीं होता उसमें नैतिक शक्ति नहीं पैदा हो सकती। और इस कारण मानवी समाज में प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक स्त्रियों की नैतिक दशा को वे ही नियम और आईन अपने आधीन बनाये हुए हैं जिनके होते हुए किसी व्यक्ति में नैतिक जिम्मेदारियों की उत्पत्ति होना असम्भव है। इन बातों का परिणाम यह हुआ है कि स्त्रियों और पुरुषों के स्वभावों में बड़ा अन्तर हो गया, स्त्री में वीरता, स्वतंत्रता, गौरव, स्थिरता इत्यादि गुणों का पता नहीं रहा, बल्कि इनकी जगह, भीरुता, असाहस, संकुचित दृष्टि आदि के घातक रोग पैदा हो गये।

स्त्रियों के सदाचार में इतना हीन बनाकर पुरुष ने समाज को कुछ लाभ नहीं पहुंचाया। हम दिखा चुकी हैं कि माता की शारीरिक दुर्बलता, माता की मानसिक दुर्गति सन्तान पर कैसा प्रभाव डालती है। परन्तु नैतिक हीनता विनाशक होने में इन सबसे ज़्यादा ज़हरीली और दुःखदायी है। अपने ही देश की दशा देखो, यहां की स्त्रियां नैतिक भाव से सर्वथा शून्य हैं। इनसे काम करने की स्वाधीनता ले ली गई है। दिन में एक घर से दूसरे घर जाने के लिए उनको एक रक्षक की आवश्यकता होती है। एक शहर से दूसरे शहर तक जाने की तो बात क्या, अपने ही घर में वह अकेली नहीं रह सकती, अपने ही घर के एक हिस्से से दूसरे की ओर अंधकार में जाना उनके लिए असम्भव है। संसार की कोई वस्तु नहीं जो उन्हें भयभीत न बनाये। संसार का कोई पदार्थ नहीं जिससे उनको रक्षित होने की आवश्यकता नहीं, और जिससे वे स्वयम् अपनी रक्षा कर सकें। संसार के किसी विषय में अपनी राय क़ायम करने में वे अभागी या असमर्थ हैं और यदि राय क़ायम कर भी लें तो किन्हीं दबावों के होते हुए उसपर चलना उनके लिए असम्भव है। तात्पर्य यह कि कांपते, कँपकपाते, दबकते-दबकाते, अपने घर की चारदीवारियों के अन्दर एक दूसरे से बेकार कांव २ करते-जलते-झुलसते वह अपना सांसारिक जीवन व्यतीत करती है। नतीजा क्या है? इसका दुःखदायी फल यह है कि हमारे पुरुष अपने घरों ही के शेर रह गये हैं। घरों के बाहर अन्य देशवालों के सम्मुख उनकी वही दशा है जो हमारी उनके सामने। गुलामों की खासियतें वे अपनी माताओं से ग्रहण करते हैं। लरज़ना, भयभीत होना उनके स्वभाव में होता है। स्वतंत्रता का

महत्व नहीं जानते। सिद्धान्तों का गौरव नहीं पहचानते। और अच्छे नियमों से परिचित होने पर भी वे अपने में उनके अनुकरण की शक्ति और साहस नहीं पाते। सामाजिक अत्याचार हों तो, राजनैतिक अत्याचार हों तो ये बन सब का आहार बन जाते हैं। इन अत्याचारों के मिटाने में साहस, त्याग तथा जीवनदान की आवश्यकता है। और इन सद्गुणों का उनमें लेश नहीं। हो कैसे, जब घरों में ही यह सद्गुण उच्छिन्न हैं तो देश में कहां से आवें, इन सद्गुणों के न होने से जैसी हम अपने घरों में हैं, वैसे ही हमारे पुरुष अपने देश में कांपते-कपकपाते, दबकते-दबकाते आपस ही में एक दूसरे से चांव २ करते, जलते-भुनसते अपने सांसारिक जीवन को समाप्त करते हैं। स्त्रियों को असाहस, निकम्मा तथा दुर्बल बना-कर पुरुष का स्वयम् इन दुर्गतियों से वञ्चित रहना कठिन था। बालक किसी दशा में अपनी माता के प्रभाव से रहित नहीं रह सकता। जो आज बालक है वह कल बड़ा होगा परन्तु यह बड़प्पन बाल्यावस्था के संस्कारों को मिटा नहीं सकता। जो संस्कारिक सम्बन्ध माता, पिता का बच्चे के साथ है, वही सम्बन्ध बाल्या-वस्था का युवा और वृद्धावस्था के साथ होता है।

माता की त्रुटियां और दोष बालकों में तत्काल आ जाते हैं। क्योंकि इन्हीं बालकों से समाज बनता है—इस समाज का जीवन भी इन कमज़ोरियों से विलग नहीं रह सकता। हम अनुभव करें, अथवा न करें परन्तु वास्तव में संसार की शासनकर्त्री स्त्रियां हैं। भावी सन्तानों की किस्मत उनके हाथ में होती है। इन्हीं सन्तानों के पालन और शिक्षा पर किसी जाति की उन्नति और अवनति का फ़ैसला होता है। जिसने यह कहा है कि-"The hand that rocks the cradle rules the world." असत्य नहीं कहा, अत्युक्ति नहीं की किन्तु एक गूढ़ रहस्य का वर्णन किया है। ऐसी दशा में किसी जाति के नैतिक सुधार और उन्नति का एक ही द्वार है। वह यह कि स्त्रियों में नैतिक भाव तथा स्थिरता पैदा करना। बिना इसके जाति का सदाचारी होना कठिन और असम्भव है।

अब रही आर्थिक दशा। प्रसिद्ध की दृष्टि से वह और दशाओं से कम नहीं। इसमें बड़ाभारी उलझाव है। इसकी गांठों को सफलता से सुलझाना, मानसिक अथवा नैतिक दशाओं की अपेक्षा अत्यन्त कठिन है।

इस दशा की विशेषता क्या है। स्त्री की बेकारी और पुरुष का अकेले जीविका प्राप्त करने का उद्योगी होना। यह प्रबन्ध प्रकृति के नियमों के प्रतिकूल है। सिवा सभ्य मानवी संसार के और किसी मनुष्य और पशुओं के समुदाय में यह बात नहीं पाई जाती। नर और मादे का मिश्रित उद्योग अपने और अपने सन्तान के पालन में लगता है। फिर सभ्य संसार शेष संसार से विलग क्यों है और उसका यह बिलगाव समाज पर क्या प्रभाव डालता है।

हमारी सम्मति में उसकी हानियों की कोई सीमा नहीं। यह कुटुम्ब के पालन को कठिन बना देता है, बालक की शिक्षा में बाधक होता है, स्त्री को निकम्मा, संकुचित-विचार और दुर्बल बना देता है। सांसारिक परीक्षा और अनुभवों से महरूम रखता है। पुरुष को वह अभिमानी बना देता है। स्त्री को उसके ऐसा आधीन कर देता है कि पुरुष उसकी कोई प्रतिष्ठा नहीं करता। अन्तिम परिणाम यह होता है कि पुरुष का घमंड पराकाष्ठा को पहुंच जाता है, और स्त्री की सेवा का, गुलामी से अन्तर करना कठिन हो जाता है।

स्त्री के दिमाग़ और नैतिक गुणों को काम में लाने का अवसर नहीं मिलता। इसलिए यह

शक्तियां निमूल हो जाती हैं। स्त्री और पुरुष के शारीरिक और मानसिक दशाओं में इतना अन्तर हो जाता है जो दोनों के सम्बन्ध को सारहीन और नीरस बना देता है, दोनों में शारीरिक सम्बन्ध के अतिरिक्त और कोई सम्बन्ध,नहीं रहता। सारांश यह कि इस मिथ्या आचार का यह परिणाम होता है जो हम आज देख रहे हैं। हमारी वर्तमान सामाजिक दुर्दशा शताब्दियों से इन्हीं कुमार्गों पर चलने का नतीजा है।

मानसिक और सांसारिक कामों में स्त्री, पुरुष की बराबरी नहीं कर सकती। परन्तु इसलिए जो थोड़ी बहुत वह कर सकती है उससे भी उसे विमुख रखना कौनसी बुद्धिमानी है। स्त्री, पुरुषों का मिलकर काम करना जीविका प्राप्त करने की कठिनाइयों को सुगम कर देगा। यदि स्वयं स्त्री काम से भागे तो दूसरी बात है। परन्तु उसके किसी काम को तुच्छ समझने के क्या मानी। जो पुरुष निकम्मा होता है उसको कितनी अपमान की दृष्टि से लोग देखते हैं और उसका निकम्मापन कितनी जल्दी उसको तुच्छ और हीन बना देता है। परन्तु संसार की विचित्रता देखो कि स्त्री को ज़बरदस्ती निकम्मा बनाने में यह अपना गौरव समझता है।

हमारी सम्मति में स्त्रियों में काम करने की योग्यता पैदा करनी चाहिये, और उनको पूरे अवसर काम करने के देने चाहियें। बिना इसके किसी स्त्री का चरित्र संगठित नहीं हो सकता और वह मानसिक और शारीरिक गुण पैदा नहीं हो सकते जो सन्तान को सुशिक्षित और होनहार बनाने के लिए आवश्यक हैं।

अब हम अपने विषय पर हर पहलू से विचार कर चुकीं, हमने देख लिया कि चाहे किसी ओर से देखें प्रकृति ने स्त्री को अत्यन्त प्रसिद्ध बनाया है। उसको पुरुष से अधिक ज़िम्मेदारी का पद प्रदान किया है। इसका प्रभाव मानवी समाज पर पुरुष से अत्यन्त अधिक होता है और इस प्रभाव के श्रेष्ठ और लाभदायक बनाने के लिए यह आवश्यक है कि स्त्री की शिक्षा में पुरुष से अधिक ध्यान और उद्योग किया जावे। इसमें स्त्री का ही लाभ नहीं। किन्तु पुरुषों को केवल स्वार्थ के लिए, यदि ये अपनी उन्नति और उद्धार चाहते हों, तो इस मार्ग पर चलना चाहिये।

यह असम्भव है कि स्त्री को निकम्मा और अधूरा रखकर पुरुष कोई चिरस्थायी उन्नति संसार में कर सके। गन्दे स्रोत से स्वच्छ और सुन्दर जल की आशा करना भूल है। दुर्बल और मुर्दा जड़ों से मोटे और बड़े वृक्षों की अभिलाषा रखना भूल है। अधूरे और कमज़ोर आधारों पर विशाल भवनों के डट जाने की आशा व्यर्थ और निर्लाभ है, ऐसी आशाएं संसार में कभी पूरी नहीं होतीं। और इनमें मग्न रहनेवाले अपने को और दूसरों को हानि पहुंचाने के अतिरिक्त कोई लाभ प्राप्त नहीं करते।

यदि वृक्ष को सुफलित और हराभरा रखना हो तो उनकी जड़ों की दृढ़ता की ओर ध्यान दो। यदि विशाल और चिरस्थायी भवन बनाना हो तो प्रथम अटल और चिरस्थायी नींव डालो। यदि इसकी विशेषता को समझने में ग़लती की, यदि इन्हें साधारण बातें समझ कर अधूरा छोड़ दिया तो अपनी आशाओं के ढेर, अपने पैरों के नीचे देखोगे।

स्त्रियों के सुधार और उद्धार पर पुरुषों की उन्नति और उद्धार निर्भर है। और स्त्रियों ही की उन्नति में जातीय उन्नति और गौरव है। हमारी वर्तमान दुर्दशा, हमारी भूलों का दुःखदायी परिणाम है।

पुरुष न स्त्री की पदवी को सामाजिक प्रबन्ध में नहीं पहिचाना, और उसका अनादर करके उसको केवल अपना सुखपात्र समझ कर मानवी समाज की उन्नति और गौरव के मार्ग को सदैव के लिये बन्द कर दिया। परन्तु अभी कुछ नहीं गया है। सर्वदा सोते रहने से देर में जाग जाना भी अच्छा है।

आशीर्वाद ।

अब संसार समर में जाओ मेरे प्यारे लाल ।
एक हाथ में विद्याबल हो दूजे में करवाल ॥ १ ॥
मन प्रसन्न हो हृदय तुष्ट हो,
तनु मृगेन्द्र सा सुदृढ़ पुष्ट हो,
सदा स्वार्थ की अग्नि बुझाना देश-प्रेम-जल डाल ।
अब संसार० इत्यादि ॥ २ ॥
सदा धर्म-बल से दृढ़ रहना,
अन्यायी की कभी न सहना,
मर्यादा की रक्षा करना मेरे सुन्दर बाल ।
अब संसार-समर० इत्यादि ॥ ३ ॥

"भारत सुत"

प्रार्थना ।

रवि शशि सिर्जनहार प्रभु मैं विनवत हौं तोहि ।
पुत्र सूर्य सम तेजयुत जग उपकारी होहि ॥
होहि पुत्र प्रभु राम सम अथवा कृष्ण समान ।
वीर धीर बुध धर्मदृढ़ जगहित करै महान ॥
जो प्रभु पुत्री होय तो सीता सती समान ।
अथवा सावित्री सरिस धर्म शक्ति गुन खान ॥
रक्षा होवै धर्म की बढ़ै जाति को मान ।
देश पूर्ण गौरव लहै जय भारत सन्तान ॥
मैं अबला अति दीन प्रभु पै तुव शक्ति अपार ।
हरहु अशुभ शुभ दृढ़ करहु बिनवहुं बारंबार ॥
मूक होय वाचाल पंगु चढ़इ गिरिवर गहन ।
जासु कृपा सो दयाल द्रवउ सकल कलिमल दहन ॥
नील सरोरुह श्याम तरुन अरुन वारिज नयन ।
करउ सो मम उर धाम सदा छीर सागर सयन ॥
कुंद इंदु सम देह उमारमन करुना अयन ।
जाहि दीन पर नेह करहु कृपा मर्दन मयन ॥

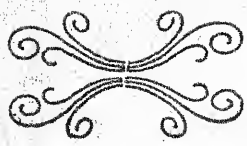

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग, में बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित हुई ।

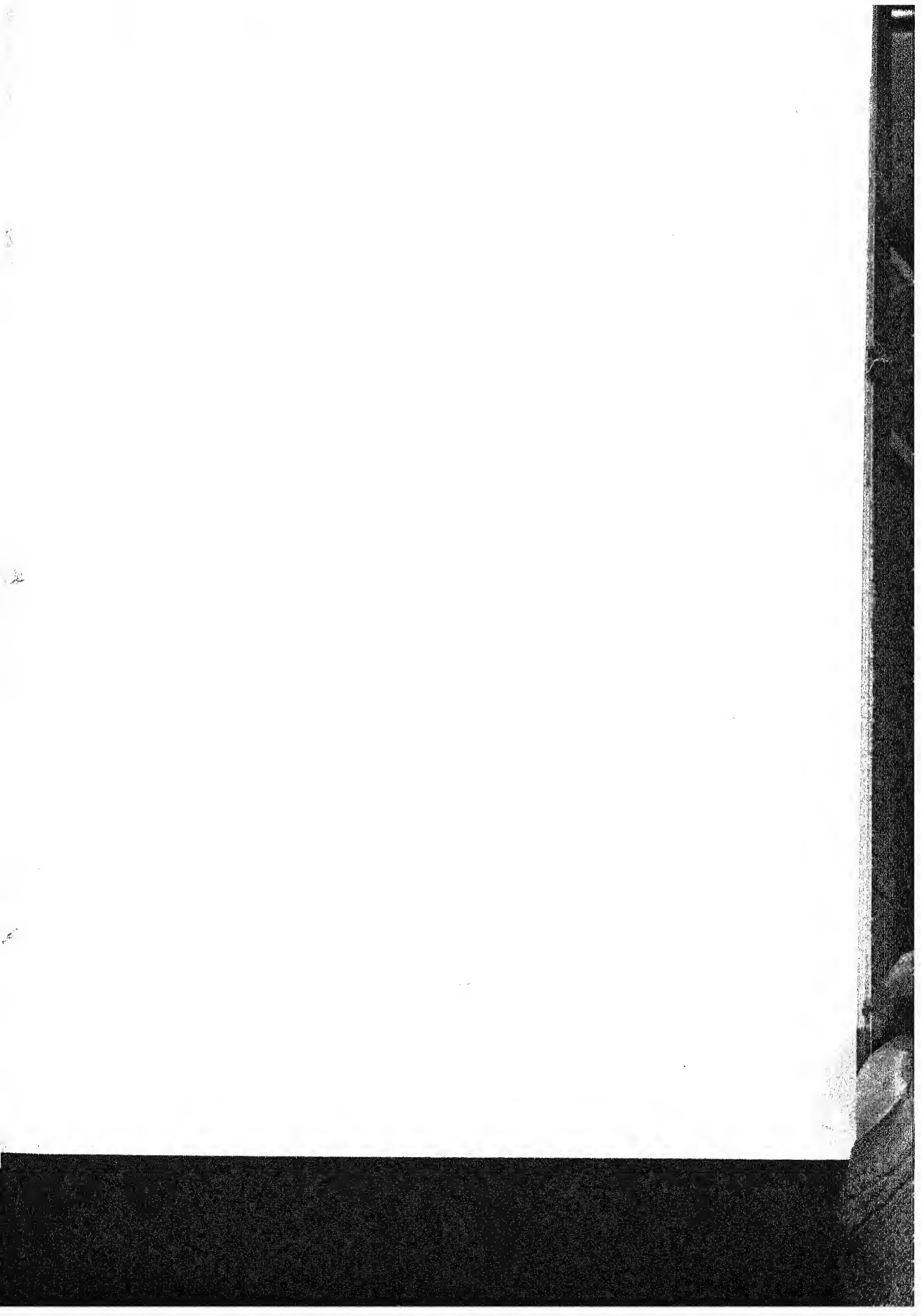

प्रेमी ।

BURMAN PRESS, CALCUTTA.

भाग १०] अगस्त सन् १९१५-श्रावण [संख्या २

मितव्यय।*

[लेखिका-श्रीमती कुमारी कृष्णाबाई ठाकुर एम० ए०।]

मितव्यय का अर्थ एक दो शब्दों में नहीं बतलाया जा सकता। यह सब लोग जानते हैं कि जहां तक हो सके कम खर्च करना ही मितव्यय है; पर इस व्याख्या से पूरे अर्थ का बोध नहीं होता। कम खर्च करना और किफ़ायत से रहना किसी को अखीकार नहीं: पर इस विषय में सब की राय एक नहीं हो सकती कि कहां खर्च करना चाहिये और कहां नहीं। इसका कारण यह है कि जिस समय जैसी आवश्यकता हो वैसा खर्च किया जाता है। पर इसमें भी सन्देह नहीं कि मितव्यय के विषय में ध्यान रखने योग्य जो सामान्य बातें हैं, मितव्यय से ध्यान हटानेवाले जो प्रसंग और कारण हैं, मितव्ययी होने के लिये जो तैयारी करनी पड़ती है और मितव्यय में बाधा न पड़ने देने के लिये जिस सावधानता की आवश्यकता है, उस पर पूरा ध्यान देने से मितव्ययी होने में कुछ सुगमता अवश्य होगी।

धन का उपयोग व्यय ही है। यदि धन का व्यय न हो तो उसका रहना न रहना बराबर है। जिस प्रकार व्यय के लिये धन की आवश्यकता होती है उसी प्रकार व्यय का भी कुछ न कुछ कारण होता है। ये कारण अनेक प्रकार के हैं परन्तु उन सब का अन्तर्भाव साधारणतः निज निर्वाह, दानधर्म, सुख, भोगविलास और तरह तरह की इच्छाओं और सुविधाओं में होता है। इन सब के लिये व्यय की भिन्न भिन्न मर्यादाएं हैं। जिस कार्य के लिये व्यय किया

* खेद है कि देर में आने के कारण यह लेख विशेष संख्या में न निकल सका। सं०।

जाता है उस कार्य के महत्व और व्ययी मनुष्य की सामर्थ्य के अनुसार ही वह व्यय होना आवश्यक है। इस आवश्यकता पर अमल करना जिसने सीख लिया है उसे हम मितव्ययी कह सकते हैं।

खर्च का कम और अधिक होना खर्च करनेवाले की हैसियत, उसकी मंडली, हौसले और स्वभाव पर निर्भर करता है। यदि और सब खर्च तोड़ भी दिये जायँ तो कम से कम भोजन और वस्त्रों के लिये खर्च करना ही पड़ता है। परन्तु मनुष्य का कुछ ऐसा स्वभाव है कि अकेले रहने में और अकेले जीव के लिये ही खर्च करने में उसे उतना आनन्द नहीं मिलता और समाज का भी ऐसा बन्धन होता है कि उसे कुछ दूसरे मनुष्यों का भी खर्च चलाना पड़ता है। इस परहित-व्यय के बदले में उसे उन मनुष्यों से भिन्न भिन्न प्रकार से सुख और समाधान प्राप्त होता है।

इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य को अपने लिए और अपने हित-सम्बन्धियों के लिए खर्च करना पड़ता है। इस आवश्यक व्यय से जो मनुष्य भागता है उसे कृपण या कंजूस कहते हैं। कंजूस आदमी धन की असली कीमत नहीं जानता—वह उसे साधन के बदले साध्य समझता है और जिन लोगों के लिए धन खर्च करना आवश्यक है उन्हीं लोगों को वह धन के लिए खर्च कर देने पर आमादा होता है। कंजूसी को वह अच्छा नहीं समझता है—वह खुद उसकी बुराई करता है पर यह नहीं जानता कि वह स्वयं कंजूस है। वह अपने को मितव्ययी और औरों को फ़जूलखर्च समझता है। परंतु आवश्यकताओं को कोई अनावश्यक नहीं कर सकता, उनकी पूर्ति करने के लिए कंजूस को भी विवश होना पड़ता है। इन आवश्यकताओं के अर्थ जो व्यय होता है उसकी मर्यादा वे आवश्यकताएं ही हैं। परन्तु संग सोहबत के कारण मनुष्य की वासनाएँ बेहद बढ़ती जाती हैं और धीरे धीरे आवश्यकताओं की मालिका में उनका भी अन्तर्भाव होता है। मनुष्य यदि असावधान हो तो यह काम बड़ी फुर्ती और आसानी से होता है। इस प्रकार जब उसके शौक़, शौक़ नहीं बल्कि जीवन-प्रयोजन हो जाते हैं तब 'दिलदारों' में उसकी गणना होने लगती है और फिर जब वह अपना खर्च कम कर देता है तो उस मंडली में उसकी इज़्ज़त भी कम हो जाती है। इसलिए उस मंडली की रहन-सहन उसके खर्च की दूसरी मर्यादा होती है।

आवश्यकता, शौक़ और रहन सहन के अतिरिक्त अपनी हैसियत की रू से भी अनेक बार खर्च करना पड़ता है। जो आदमी जिस हैसियत का है उसे उस हैसियत के अनुसार खर्च करना होता है। मनुष्य की हैसियत, उसकी दौलत, खान्दान, विद्या, पराक्रम, जान-पहचान, रिश्तेदारी तथा ऐसी ही मान्यता बढ़ानेवाली बातों पर निर्भर करती है। हर एक मनुष्य कुछ न कुछ हैसियत रखता है और उस हैसियत को रखने और बढ़ाने की भी उसे इच्छा होती है। इस कारण हैसियत के साथ खर्च भी बढ़ता है और यह खर्च की तीसरी मर्यादा है।

यदि यह हैसियत केवल धन पर ही निर्भर करती तो कोई बात नहीं थी; क्योंकि मितव्ययी मनुष्य के लिये व्यय की मर्यादा यही है कि वह अपनी आमदनी से अधिक खर्च न करे। इस मर्यादा को लांघ जाना अनुचित है। पर हैसियत केवल धन या आमदनी से ही निश्चित नहीं होती। कभी कभी निर्धन परिवार में जन्म पाया हुआ मनुष्य अपनी विद्वत्ता और पराक्रम से ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित हो जाता है। धनवानों और बड़ी हैसियतवालों से उसे मेलजोल रखना पड़ता है। उसे अपनी हैसियत बनाये

रखने के लिये आमदनी से अधिक खर्च करना पड़ता है। ऐसी अवस्था में मितव्यय का पालन बड़ादुष्कर कार्य होता है और ऐसे ही समय पर सावधानता के साथ अपनी आय-मर्यादा की रक्षा करने में कोई बात उठा न रखनी चाहिये।

मितव्यय का कांटा इतना नाज़ुक है और उसे ठहराना बड़ा कठिन है, तथापि मनुष्य मितव्ययी होने की चेष्टा करता ही है; क्योंकि अन्य प्राणियों से मनुष्य में अधिक दूरदृष्टि होती है। उसमें आगा पीछा सोचने की सामर्थ्य होती है। कल की चिन्ता उस पर हर दम सवार रहती है। वह जानता है कि उसे आजन्म अपना खर्च चलाकर उन लोगों का भी खर्च चलाना है जिनकी जीविका उसी पर निर्भर है।

आजन्म खर्च चला सकने के दो ही मार्ग हैं। एक, भरपूर धन कमाना और दूसरा, कमाई से कुछ बचत करते रहना। पहिला मार्ग अच्छा तो है पर सब के लिये सुगम नहीं। धन उपार्जन करना बड़ा कठिन काम है। केवल कर्तृत्व, उद्योग, व्यवहारदक्षता, चतुरता और साहस होने से ही काम नहीं चलता। इन सब गुणों के रहते हुए भी प्रायः देश और समाज की विकट परिस्थिति के कारण और समझ में न आने से जिस वस्तु को हम 'दैव' कहते हैं उसके कारण धन उपार्जन करना बड़ा ही कठिन कार्य होता है। इसलिए धन उपार्जन करने का यथाशक्ति प्रयत्न तो करना ही चाहिये; पर इसके साथ ही केवल इसी पर निर्भर न रहते हुए और दूसरे सुगम मार्ग का अनुसरण करना चाहिये। वह सुगम मार्ग यह है कि अपनी आमदनी से कुछ बचत करते रहो।

इस प्रकार बचत करने की बुद्धि केवल मनुष्यों में ही नहीं होती कभी कभी चींटियों और मधुमक्खियों जैसे प्राणियों में मनुष्यों से भी अधिक देखने में आती है। मितव्ययी मनुष्य चींटी के समान नित्य बचत किया करता है; क्योंकि सब दिन परिश्रम करने की सामर्थ्य नहीं रह सकती।

इसी स्वाभाविक दूरदृष्टि पर अभ्यास किया जाय तो मितव्यय के विषय में उसे उपदेश ग्रहण करने की आवश्यकता न होगी। परन्तु क्षणिक सुख अथवा मान्यता की इच्छा से वह दूरदृष्टि से बँधे हुए नियम को भंग कर देता है और आमदनी से अधिक खर्च कर डालता है। ऐसा करने से मान्यता तो बढ़ती है; पर आमदनी से खर्च अधिक बढ़ने के कारण उसे कर्ज़ करना पड़ता है और कर्ज़ पर कर्ज़ करके वह अपनी शान बनाये रखने की चेष्टा करता है।

इस प्रकार दूसरों को फँसाते हुए भी उसको कभी कल नहीं पड़ती। ऋण बढ़ता जाता है और उसके जीते जी ही उसका भंडा फूटने की नौबत आती है। कभी कभी दिवाला भी निकल जाता है।

ऐसी अवस्था में अपनी शान बनाये रखना तो दूर रहा; वह मुश्किल से अपना गुज़ारा कर सकता है। शान की आदत पड़ने से बचत नष्ट होती है और उपार्जन करने की सामर्थ्य भी जाती रहती है। फिर उसकी दुर्दशा का कुछ न पूछिये! जिस मान्यता के लिये वह मितव्यय को त्याग देता है वह मान्यता तो उससे भागती ही है और वह अपने सुख और समाधान से भी हाथ धो बैठता है। इस दुर्दशा में उसका अन्त हो जाता है और अन्त न भी हुआ तो भी उसके बाल-बच्चों और अन्य आश्रितों के पालनपोषण की ज़िम्मेदारी समाज पर आ गिरती है। अपनी कर्तव्यविमुखता से अपने बालबच्चों को दूसरों का मुंह निहारना पड़े! यह सोच कर उसे कितना दुःख होता होगा! जिसमें थोड़ा भी स्वाभिमान होगा उसे निःसन्देह मरणप्राय क्लेश होगा।

परन्तु यह दुरवस्था बहुत धीरे धीरे आती है जिससे उसके तीव्रतर परिणामों को और

अच्छी तरह ध्यान नहीं जाता। इसलिए मितव्ययी होने और बने रहने के लिए दूरदृष्टि और सावधानता की अत्यन्त आवश्यकता है। अनेक बार आत्मसंयमन भी करना पड़ता है। यह संयमन जरा जरा सी बातों के लिये करना होता है। बड़े २ अवसरों पर कभी कभी आत्मसंयमन सुगमता से हो सकता है और इसलिए जरा जरा सी बातों की ओर ध्यान नहीं जाता।

मितव्ययी रहने में स्वाभिमान का बड़ा उपयोग होता है। इसलिए स्वाभिमान को जागृत रखना चाहिये। ऋण करना, फिर वह एक ही पैसे का ऋण क्यों न हो, बड़ी लज्जा की बात है। ऋण से प्राप्त होनेवाली मान्यता बनावटी होती है। जिस मनुष्य में कुछ भी स्वाभिमान है वह कभी ऋण करके दूसरों को फँसाना न चाहेगा, न कभी दूसरों के एहसान के नीचे सिर झुकाये रहेगा। अर्थात् मितव्ययी होने के लिए दूरदृष्टि, आत्मसंयमन और स्वाभिमान इन तीन बातों की परम आवश्यकता होती है। जिस किसी में इन गुणों का अभाव हो वह यदि स्वभाव से ही कृपण न हो तो अमितव्ययी और फजूलखर्च अवश्य होगा।

हमारे आपके जीवन में ऐसे अवसर अनेक आते हैं जब मितव्यय से च्युत होना पड़ता है। यदि ऐसे अवसरों को ध्यान में रक्खा जाय तो उन अवसरों पर मितव्ययी होना उतना ही सुगम होगा। पैसा बटोर कर गाड़ रखना तो निरी कंजूसी है। परन्तु जो मनुष्य यथार्थ में मितव्ययी है वह बड़ी सादगी से रहता है और कभी आमदनी से अधिक खर्च नहीं करता। अमितव्यय का कारण विशेष करके कोई आदत या शौक़ हुआ करता है। अमीर बनने का शौक़, बड़े कहलाने का शौक़, खूबसूरत बनने का शौक़ आदि कई ऐसे शौक़ हैं जो हमारे सिर पर सवार होने की घात में लगे रहते हैं। यह तो नित्य का ही अनुभव है कि अपना कोई पड़ोसी गरीब होने पर भी बाज़ार से अगर कांच की कुछ दिखौआ चीज़ें ले आता है तो हम भी चाहते हैं कि ऐसी चीज़ हमारे यहां सुशोभित हों। पड़ोसियों से अधिक कीमती पोशाक पहनने की इच्छा भी किस प्रकार मितव्यय को भुला देती है यह कहने की आवश्यकता नहीं। ऐसे मौकों पर यह सोचना चाहिये कि इस समय हम जो खर्च करना चाहते हैं वह यदि न करें तो क्या हमारा कोई काम रुक जाता है? और यदि नहीं रुकता है तो क्या फजूलखर्ची से मन को खींच न लेना चाहिये? देहातों के मुकाबले शहरों में, विशेष कर के दूकानों पर और मेले-तमाशों में मन को मोहनेवाली वस्तुओं का मानो हम लोगों को आत्मसंयमन से गिराने के लिए ही संग्रह किया जाता है। ऐसे अवसरों पर साधारण लोग बेहिसाब खर्च करके 'मियां मुट्ठी भर तो दाढ़ी हाथ भर' की कहावत चरितार्थ करते हैं। इस लिए ऐसी जगहों में जाने से पहिले ही इस बात का मनोनिग्रह कर लेना ठीक होता है कि वहां जाकर हम कोई भी ऐसी वस्तु न खरीदेंगे जिसके बिना हमारा काम चल सकता है। बड़े शहरों में ट्राम और मोटर गाड़ियां, 'छै पैसे में हर चीज़' और तरह तरह के खेल तमाशे मितव्यय के मार्ग में विघ्नस्वरूप हैं यह कहने की आवश्यकता नहीं।

बहुत से लोगों की यह आदत होती है कि जब वे कोई आवश्यक वस्तु खरीदने के लिए बाज़ार जाते हैं तो मनोहर वस्तुओं के खरीदने में अपना जेब खाली कर देते हैं। अब इन वस्तुओं के खरीदने का कारण उनसे पूछिये तो यही जवाब मिलेगा कि देखने में अच्छी और दाम में सस्ती थीं। उनकी चाहे कोई आवश्यकता हो या न हो। हमसे भी गरीब लोग जब ऐसी वस्तुओं को खरीदते हैं तो हमारा क्या दिवाला निकला जाता है! परन्तु यह तर्कवाद ठीक नहीं। सच पूछिये तो गरीब की फ़जूलखर्ची का अनुकरण न करके अमीर होकर भी

अधिक खर्च न करने का उदाहरण गरीबों के सामने रखना चाहिये।

खैर, यह तो बहुत मामूली बातों की बात हुई; अब ज़रा कपड़े लत्ते, जेवर, शादी-ब्याह और और जलसों में होनेवाले खर्च पर गौर कीजिये। आजकल मितव्ययी कहलानेवाले लोग भी कपड़े लत्ते में अधिक खर्च करने लगे हैं। पोशाक चुस्त और दुरुस्त तो ज़रूर ही होनी चाहिये; पर आजकल लोग फैशन की ओर अधिक ध्यान देते हैं। यह हमारे कहने का मतलब नहीं है कि कपड़ों की सुन्दरता पर कोई ध्यान ही न दे; परन्तु पहिले यह देख लेना चाहिये कि कपड़े साफ और सुथरे, चुस्त और दुरुस्त तथा टिकाऊ हैं या नहीं और फिर अपने काबू के अन्दर उनकी मनोहरता भी बढ़ाई जाय तो कोई हानि नहीं। कपड़ों में इस तरह किफायतशारी करने से यार दोस्त उपहास करेंगे; परन्तु इस उपहास से डरने का कोई प्रयोजन नहीं है। अवसर आने पर दान या दीनों की सहायता करते समय पीछे न हटना ही उस उपहास का मुंहतोड़ जवाब है। जिसके यार-दोस्त शौकीन और रुपया उड़ानेवाले हैं उन्हें बारंबार उपहास सहना होगा। यदि उपहास सह कर उन पर अपना प्रभाव डालने का धैर्य और सामर्थ्य हो तो कोई बात ही नहीं है; और नहीं तो ऐसे लोगों का साथ ही छोड़ देना ठीक है। ऐसे लोगों की मेल-मुलाकात से फायदा तो कुछ होता नहीं उलटे अधिक खर्च करके भी कृपण कहला कर इन लोगों की दृष्टि में नीचा देखना पड़ता है। निराले में निखट्टू की तरह बैठ रहना भी ठीक नहीं; परन्तु बिना कारण ऐसे लोगों के यहां बैठक रखने से सिवा हानि के कोई लाभ नहीं होता। इसलिए मितव्ययी मनुष्य को इन बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

ब्याह-शादियों में हम लोगों को फ़जूलखर्ची की मानों बान ही पड़ गई है। होली में जैसे वीभत्स शब्द वैसे ही ब्याह शादियों में रुपया उड़ाना और कर्ज़ करना केवल क्षम्य ही नहीं बल्कि शिष्टसम्मत और कभी कभी प्रशंसनीय भी होता है। विवाह जैसे सुमङ्गल समय में अपने गुणों का प्रकाश करने के बदले अदूरदृष्टि और फ़जूलखर्ची जैसे अवगुणों का साम्राज्य फैलाना न जाने कौनसी बुद्धिमानी है! विवाह, यज्ञोपवीत आदि समारम्भ बार बार नहीं आते और ऐसे अवसरों पर जो अतिथि आते हैं उनका यथेष्ट सत्कार भी अवश्य किया जाना चाहिये। इसलिए यहां दिलदारी की लगाम ढीलने का प्रयोजन होता है तथापि ऐसी ढील किस काम की जिससे घोड़े सरपट भागने लगें और काबू के बाहर हो जायँ? इसलिए लगाम ढीलते हुए भी उसे खींचे रहने के लिये तैयार रहना चाहिये। ऐसे मौकों पर कर्ज़ काढ़नेवाले लोग निर्धन श्रेणी में तो होते ही हैं किन्तु मध्यम श्रेणी में भी देखने में आते हैं। निर्धन मनुष्य यदि अधिक व्यय करके कर्ज़ करे तो उसकी अदूरदृष्टि, अज्ञान और अल्प आय का विचार करते हुए उसका यह काम क्षम्य न होने पर भी उतना दोषी नहीं है। परन्तु मध्यम श्रेणी के सुशिक्षित और चतुर लोग भी कर्ज़ करके ब्याह करें और इसीमें पुरुषार्थ समझें तो यह बड़ी लज्जा की बात है। इस निःसत्व पुरुषार्थ और प्रतिष्ठा में उन्हें न जाने क्या आनन्द मिलता होगा और न जाने वह आनन्द कबतक रहता होगा! कभी कभी यह दो दिनों का आनन्द दो पीढ़ियों तक मर्म में चोट पहुंचाता रहता है। यह जानकर भी उसकी उपेक्षा कर क्षणिक गौरव के लिए अपनी और दूसरों की कितनी हानि होती है इसका विचार कौन करता है?

हमारे कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि पास यथेष्ट धन होने पर भी कभी एक पैसा खर्च न हो। मतलब केवल इतना ही है कि जितना खर्च हो, अपनी आमदनी के अन्दर हो। उसमें उपराचढ़ी की कोई बात न हो। अमुक

ने एक घोड़े की गाड़ी बनाई तो हम दो घोड़ों की बनावेंगे। उसने सौ ब्राह्मणों को भोजन कराया तो हम एक हज़ार को करावेंगे। उसके घर की स्त्रियों ने सौ सौ रुपये के दुशाले ओढ़े तो हम दो दो सौ के उढ़ावेंगे, इस तरह की ऊपरा-चढ़ी करने से कोई अमीर तो होता नहीं और न उसकी इज्जत ही बढ़ती है; उलटे उसके सिर पर कर्ज़ सवार होता है और वह बेवकूफ बनता है। इन बातों पर हर एक मनुष्य को ध्यान देना चाहिये और रुपया उड़ाने से बाज़ आकर अपनी आमदनी के अन्दर ही सदा खर्च रखना चाहिये। ब्याह-शादी जैसे मौकों पर ही मितव्यय की परीक्षा होती है।

बहुत से लोग कहेंगे कि "आप मितव्ययी होने के लिए क्या बतलाती हैं, भिखमंगे और कंजूस की तरह हाय पैसा! करते हुए सारा जन्म बेमज़ा कर देने का उपदेश देती हैं। ऐसे जीने से न जीना ही अच्छा!" परन्तु ये लोग शब्दों से डर कर अर्थ का अनर्थ करते हैं और सच्चे मार्ग से दूर रहते हैं; ऐसे लोगों पर जितनी दया की जाय थोड़ी है! कारण मितव्यय का अर्थ कृपणता या कंजूसी नहीं है; मितव्ययी मनुष्य फ़ज़ूलखर्च से अधिक उदार हो सकता है और अनेक बार होता भी है। मितव्यय को दरिद्रता तो किसी हालत में नहीं कह सकते; क्योंकि मितव्ययी मनुष्य की आवश्यकताएँ मर्यादित होती हैं और इसलिए उनकी पूर्ति करने में दिक्कत नहीं उठानी पड़ेगी और वह कभी असन्तुष्ट नहीं रहता। आगे की फिक्र उसे नहीं घेरती और दरिद्रता के कष्ट भी उसे नहीं झेलने पड़ते। यही नहीं किन्तु कितने ही घर-फूंक-तमाशा देखनेवाले और बेपरवाह मनुष्यों को जिल्लत से बचाने में वह समर्थ होता है।

यद्यपि यह नहीं बतलाया जा सकता कि मितव्ययी मनुष्य को अमुक नियम का पालन करना चाहिये तथापि यह बतलाया जा सकता है कि वह किस प्रकार अपना खर्च नियमित करे। हर एक मनुष्य के ध्यान में यह बात जम जानी चाहिये कि मुझे अथवा मेरे भाईबन्दों को कभी दूसरों का मुंह न निहारना पड़े; यही नहीं किन्तु समय पर दूसरों के दुःख दूर करने की भी सामर्थ्य बनी रहे। प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि वह सब से पहिले अपनी आवश्यकताओं को देखता रहे और अपनी आमदनी से अमुक अंश बचत करने का नियम करके बाकी आमदनी से खर्च चल सकता है या नहीं उसे यह भी देखते रहना चाहिये। यदि उतने में खर्च नहीं चलता है तो यह सोचना चाहिये कि किन वस्तुओं का खर्च कम करने से काम चल सकता है ऐसी जो वस्तुएं हों उन्हें धीरे धीरे आवश्यकताओं की फेहरिस्त से हटा देने की चेष्टा करनी चाहिये। परन्तु इस चेष्टा में केवल धनसंग्रह ही उद्देश्य न होना चाहिये; बल्कि बेमतलब का खर्च न करना और अपनी योग्यता से बढ़कर रहन-सहन की आदत न डालना ही उद्देश्य होना चाहिये।

धनी मनुष्यों के पास कभी कभी इतना धन हो जाता है कि विपदावस्था की चिन्ता न करते हुए वे मनमाना खर्च कर सकते हैं; परन्तु उन्हें भी खर्च करते समय एक बात पर अवश्य ध्यान देना चाहिये। निर्द्धन मनुष्य धनी मनुष्यों का बहुत कुछ अनुकरण किया करते हैं और विशेष करके मध्यमश्रेणी के मनुष्य कम से कम खर्च के काम में अमीरों की बराबरी करना चाहते हैं। इसलिए धनी मनुष्यों का यह कर्तव्य है कि वे अपनी जिम्मेदारी को पहिचान कर अपने से कम धनी मनुष्यों को अपने उदाहरण से मितव्ययी बनाने का उद्योग करते रहें। यदि वे नये नये फैशनों को ईजाद न करें और अपनी हैसियत के अनुसार सादे ढंग से रहें तो वे बहुतों को आमदनी से अधिक खर्च अथवा अमितव्यय से बचाने का यश प्राप्त करेंगे इसमें सन्देह नहीं।

स्त्रियों के कर्तव्य।*

[श्रीमती शारदासुमन्त बी० ए० कृत।]

लगभग दस वर्ष से महिलापरिषद् का आरम्भ हुआ है और उसमें धर्म और जाति की भिन्नता पर लक्ष्य न रखते हुए केवल स्त्रियों की उन्नति के प्रश्न की चर्चा होती है। अन्य समाजों की तरफ से ऐसी परिषदें होती हैं तो आर्यसमाज की तरफ से तो होना ही चाहिये। क्योंकि स्त्री-जाति की उन्नति करना पवित्र गृहिणी, सुत्र माताएँ और साध्वी स्त्रियां उत्पन्न करके भारतवर्ष का उदय करना ही आर्यसमाज के महान् संस्थापक, सांसारिक सुधार के लिए अद्वितीय प्रयास करनेवाले नररत्न स्वामी दयानन्द जी सरस्वती का मुख्य मन्त्र था। स्त्री-जाति का इस महात्मा ने विशेष उपकार किया है। बीच के समय में स्त्रियों की पदवी बहुत ही नीची समझी जाती थी और उन्हें शूद्रों की तरह विद्या से वञ्चित रक्खा जाता था। उस शोचनीय स्थिति से छुटकारा पाकर आज हम ऐसे महान् समारम्भ में एकत्र हुई हैं इसके लिए विशेष करके स्वामीजी ही कारणभूत हैं।

लोकमत के शिक्षण और आपस के विचारों के दिखलाने के लिये ऐसी परिषदों की बेशक ज़रूरत होती है। परन्तु धीरे २ अब समय बदलता जाता है। अब केवल विचार प्रकट करके अथवा भाषण देकर बैठ रहने का समय नहीं। विचारों को कार्य में परिणत करने का समय आगया है।

यह प्रश्न स्वतः उठता है कि इस प्रवृत्ति के समय में स्त्रियों का क्या कर्तव्य है?

जगत् के आरम्भ से ही स्त्री-पुरुष के कार्यक्षेत्र में भिन्नता है। जो जो काम पुरुष कर सकते हैं वे सब स्त्रियां नहीं कर सकतीं और न उन्हें करना ही उचित है। भविष्य की प्रजा उत्पन्न करने के लिये और उसके लालन-पालन के लिये प्रत्येक स्त्री को समय देना पड़ता है। यह पवित्र और प्रेममय आवश्यकता है। इसी आवश्यकता के कारण स्त्रियां पुरुषों का काम नहीं कर सकतीं। इससे कुछ जगत का नुक़सान नहीं। इस पवित्र कर्तव्य को ध्यान में रखकर स्त्री-पुरुषों के कर्तव्य भिन्न भिन्न बनाये गये हैं। विचार करने पर तीन प्रकार के मुख्य कर्तव्य स्त्रियों के हिस्से में आते हैं:—

(१) गृहव्यवस्था—घर के काम की व्यवस्था करना, और अपने कुटुम्ब और अपनी तन्दुरुस्ती का ख्याल रखना।

(२) बालकों का सँभालना और उनको शिक्षा देना।

(३) सामाजिक सेवा।

ये तीनों कर्तव्य बड़े ही गम्भीर हैं और जगत के सुख-दुःख का आधार इन्हीं पर निर्भर है। जो गृहिणी इन कर्तव्यों का उत्तम रीति से पालन करेंगी वे सच्चे गृहिणीपद को प्राप्त कर सकेंगी। ऐसी उत्तम गृहिणी होने के लिये स्त्री-शिक्षा की बड़ी आवश्यकता है। व्यवहार में कुशलता और चतुराई से संसार में काम करने के लिये जो बुद्धि मनुष्य को ईश्वर ने दी है उसके विकाश के लिये, संपूर्ण जीवन

---

* यह श्रीमती शारदा सुमन्त मेहता बी० ए० नाम्नी गुजराती महिला का "आर्य-महिला-परिषद्" में प्रमुख के पद से दिये हुए भाषण का अनुवाद है। अनुवाद श्रीयुत गंगाप्रसाद मेहता बी० ए० ने किया है। खेद है देर से आने के कारण यह लेख विशेष संख्या में न जा सका। सं०।

को आनन्दमय बनाने के लिये, जीवन सार्थक करने के लिये, ज्ञानवान् तथा योग्यतावान् होने के लिये शिक्षा परम आवश्यक है। योग्य शिक्षा से रहित मनुष्य और पशु में कोई भेद नहीं रहता।

यह बात लक्ष्य में रखनी चाहिये कि शिक्षा का अर्थ दो चार पुस्तकों का पढ़ डालना या बी० ए०, एम० ए०, पास कर लेना मात्र नहीं है। किन्तु शिक्षा का अर्थ मन का संपूर्ण साङ्गोपाङ्ग विकास है। केवल बुद्धि ही की उन्नति करना बस नहीं यद्यपि यह एक हमारी आवश्यकता तो है ही। आत्मा को पुष्पवत् खिलाने की आवश्यकता है। बुद्धि के सामान्य विकास के साथ साथ मातापिता द्वारा उत्तम संस्कार पड़ें तभी उत्तम प्रजा हो सकेगी।

स्त्री-शिक्षा के विषय में बहुत कुछ चर्चा हो चुकी है। इसकी बाबत मुझे सिर्फ यह कहना है कि जैसे पुरुष सामान्य ज्ञान के उपरान्त अपने अपने धन्धे की शिक्षा प्राप्त करता है वैसे ही स्त्रियों को जिस परिस्थिति में जीवन व्यतीत करना हो उसके योग्य शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। इस जमाने में इसकी खास जरूरत है। कारण यह कि पहिले तो कुटुम्ब की स्त्रियां साथ रहती थीं तो बहुत सा शिक्षण उन्हें घर में ही घर की प्रथा के अनुसार मिलता था। एक दूसरे को देखकर वे बहुत कुछ सीख सकतीं थीं। परन्तु आजकल हम लोगों में संयुक्त कुटुम्ब में रहने की पद्धति घट गई है। विदेश में वा पृथक् रहने से स्त्रियों को स्त्रियोचित शिक्षण न मिलने से बड़ी हानि होती है। सब विषयों में अपनी स्थिति त्रिशंकु जैसी हो गई है। संक्रान्ति के समय में-ज़माने के पलटने के वक्त ऐसा ही होता है परन्तु उपाय अपने हाथ में है।

यह निर्विवाद है कि ऊपर के कहे हुए कर्तव्यों का पूर्ण रूप से पालन करने के लिये स्त्री-शिक्षा की ज़रूरत है।

गृह-व्यवस्था।

पुरुष धन उपार्जन करता है। उस धन का योग्य व्यय किस रीति से करना चाहिये यह स्त्री के हाथ की बात है। इसलिए अर्थ-विद्या हरेक युवती को अच्छी तरह से जाननी चाहिये। कुटुंब के तथा अपने आरोग्य को बनाये रखने के लिए आरोग्य-शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करना बहुत जरूरी है।

पुरुष पैसा कमाना जानता है। कुटुंब के भरण-पोषण के लिए उत्तम पुष्टिकारक भोजन, कपड़े, शिक्षा इत्यादि के प्रबन्ध में उचित खर्च करना और आपत्ति के समय के लिए कुछ बचा रखना ये बातें स्त्रियों को सीखनी चाहियें। मर्यादाबद्ध व्यय से घर का प्रबन्ध अच्छा और उसकी स्थिति सदा सन्तोषदायक रहती है।

आरोग्य-शास्त्र स्त्रियों को बहुत उपयोगी होता है। यह जानना बहुत जरूरी है कि घर में और घर के आस-पास सफाई रहती है या नहीं और रसोई, पानी, दूध, शाक, भाजी इत्यादि सभी वस्तुओं में आरोग्य के नियमों की पाबन्दी होती है या नहीं। घर के आगे कूड़ा करकट फेंकना तथा पड़ोस में गंदगी फैलना ये देखने में ज़रा ज़रा सी बातें आरोग्यता के लिए हानिकारक होती हैं। सफाई न रहने से मच्छर, मक्खी और अनेक तरह की बीमारी पैदा करनेवाले कृमि पैदा हो जाते हैं। सफाई का हरेक बात में स्त्रियों को ख्याल रखना चाहिये। कसरत, खुली हवा और पौष्टिक भोजन का सेवन कर अपनी शरीर-संपत्ति बढ़ाना हमारा कर्तव्य है। इन बातों पर अच्छी तरह लक्ष्य होने ही से अपनी सन्तान निर्बल और तेजहीन होती है। यदि हमारे शरीर तन्दुरुस्त होंगे तभी अपने कर्तव्य बराबर ठीक होते चले जायँगे। बलहीन स्त्रियां अपने लिए और अपने कुटुम्बियों के लिए भाररूप हो जाती हैं। इसलिए आरोग्यता का पूरा ख्याल रखना उचित है। जब तक स्त्रियों

अर्ल बीचैम्प, मि० विरल और लार्ड हाल्डेन।

ऊपर इंगलैंड के भूतपूर्व मंत्रिमंडल के तीन मंत्रियों के चित्र हैं जिन्होंने देशभक्ति के भाव से प्रेरित होकर अपने पद परित्याग कर दिये कि उनकी जगह विपक्ष दल के लोग चुने जायँ। विलायत में उनके इस कार्य की बड़ी प्रशंसा हुई है।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

की शारीरिक उन्नति न होगी तब तक अपनी सांसारिक उन्नति होना असंभव है और उन्नति करने के मुख्य साधन कसरत, स्वच्छ वायु और पुष्टिकारक खाद्यपदार्थ हैं। ये बातें जानते सभी हैं परन्तु तदनुसार आचरण बहुतही थोड़े करते हैं। यदि इन बातों पर ध्यान न दिया जायगा तो दिन पर दिन हमारी अधोगति निःसन्देह होगी।

स्त्रियों का दूसरा कर्तव्य बालकों का सँभालना और उनकी शिक्षा है।

बालक भविष्य की प्रजा हैं। उन पर सारे जगत् का आधार है। इस बात का प्रायः विस्मरण हो जाता है। बारह २ बरस की गुड्डे-गुड़ियों के खेल में लगी हुई लड़कियां माता बन जाती हैं। वे किस रीति से इस कर्तव्य की गंभीरता समझ सकती हैं? बालक एक प्रकार का खिलौना है और उसी तरह से पाला पोसा जाता है यह एक बड़ी भूल है। उसकी तन्दुरुस्ती के लिये बहुत सावधान रहना पड़ता है। कन्याशालाओं में इस विषय का पूर्ण शिक्षण देना उचित है। जब कभी बालक माता को कामकाज में हैरान करता है, या देवदर्शन को जाने से रोकता है, या रात को निद्रा में खलल डालता है तो वे लड़कों को अफीम खिलाती हैं। यह रिवाज बहुतही हानिकारक है। बालक का शरीर बहुतही खराब हो जाता है। यदि माताएँ इस अफीम खिलाने की प्रथा को न छोड़ें तो सरकार को इसके छुड़ाने का प्रबन्ध करना चाहिये।

अपने बालकों की तन्दुरुस्ती ही का सिर्फ माताओं को ख्याल न करना चाहिये बल्कि उनकी मानसिक और नैतिक उन्नति करने का काम उन्हीं का है। बालक प्रायः शैशवावस्था से माता के पास रहता है और इसी उम्र में भले-बुरे की छाप उसके मगज़ पर लगती है, इसलिए उसी समय उसमें नीति का बीजारोपण करना उचित है। यह बहुत कष्टसाध्य है। दृष्टान्त ही मनुष्य का उत्तम शिक्षक है। बालक स्वतः माता पिता के चालचलन का अनुकरण करने लगता है। मातापिता का चालचलन और रहनसहन अच्छा होगा तो लड़के वैसाही सीखेंगे। मावाप यदि मनोनिग्रह करेंगे तो यही गुण लड़कों को सिखाना न पड़ेगा। वे अपने आप सीख लेंगे। यदि गृह-शिक्षा उत्तम आधार पर होगी तो ही उत्तम स्त्री-पुरुष उत्पन्न होंगे। गृह-शिक्षा में तीन विषयों पर ध्यान देना आवश्यक है।

(१) अच्छा चालचलन।

घर में बड़ों के सन्मुख शान्तवृत्ति, स्वार्थत्याग और बन्धुभाव विशेषरूप से सीखने चाहियें। आपस के संभाषण और खेल में कभी बच्चों को अपशब्दन बोलने देना चाहिये।

'वाणी की शुद्धता' यद्यपि एक साधारण सी बात मालूम होती है परन्तु इसकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिये।

(२) उच्च आदर्श।

बालकों के हृदय में बहुत ऊँचे मनोभावों का समावेश करना चाहिये। ऊँचे आदर्श होने ही से उनका शुद्ध व्यवहार होगा और बड़े बड़े कार्य सिद्ध होंगे।

(३) सच्चरित्रता, मन की दृढ़ता, निर्भयता, मनोनिग्रह इत्यादि सद्गुणों का सिखाना हमारा परम कर्तव्य है। कहते हैं कि जापान में कभी लड़के रोते सुनाई नहीं देते। रोना किसे कहते हैं वे यह समझते ही नहीं। यह क्या बतलाता है? मन के भाव लोक के दिखलाने के लिये नहीं होते किन्तु वे मन में ही रखने के लिये होते हैं। रास्ते में छाती कूटना और मुंह फाड़ फाड़ कर रोना ये मन की दुर्बलता जाहिर करते हैं। मनोविकारों को वश में रखना, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर इन हरेक रिपु

को अपने कब्ज़े में रखना इनके बश हमें कभी होना ही नहीं यही हमारा बड़ा धर्म है।

एक जापानी स्त्री एक दिन बहुत शोकग्रस्त थी। उसका लड़का लड़ाई में गुजर गया था। इसका समाचार उसे मिला था। एक सज्जन ने उससे पूछा "मैन, क्यों रोती हो! क्या तुम्हारा लड़का लड़ाई में मारा गया है जिस कारण से तुम रो रही हो" उस स्त्री ने उत्तर दिया "भाई, मैंने अपने पाँच लड़के लड़ाई में भेंट किये हैं। अब मुझे शोक इस वास्ते है कि मेरे पास अब एक भी और पुत्र नहीं रहा कि मैं देश की भलाई के लिए उसे लड़ाई में भेजूं।" यही सच्चा धैर्य है। Who is the noblest woman? She who has given more sons to die for the fatherland. अर्थात् "सब से सुन्दर स्त्री कौन है? वह जिसने मातृभूमि के प्राण विसर्जन करने को अपने अधिक बालक दिये हैं।"

गृहकार्य और बालकों के शिक्षण के पश्चात् जिसे अवकाश हो या नौकर-चाकर रखकर वक्त बचाया जा सके या कोई विधवा हो मतलब यह कि जिसे अनुकूलता हो उन्हें अपना समय व्यर्थ न नष्ट करना चाहिये। देवदर्शन, पूजा, हवन, मन्त्रोच्चार आदि में सब समय लगा देना इस समय के अनुकूल नहीं। इस युग का तो सेवाधर्म ही सब से बड़ा धर्म है। दूसरे लोगों को हमारे समय की बहुत ज़रूरत है। बेशक आत्मोन्नति की हमें उपेक्षा न करनी चाहिये। परन्तु परोपकार भी हमारा बड़ा धर्म है। तन, मन, धन से सदा ही परोपकार करना चाहिये। कीमती कपड़ों और शादियों में बहुत सा धन केवल अपना बड़प्पन दिखाने ही के लिए खर्च कर दिया जाता है। परन्तु अपना देश इतना निर्धन है कि इन बातों में बहुत सा खर्च कर डालना केवल मूर्खता ही है। देश के गरीब लोगों की तरफ, लोगों की शिक्षा की तरफ, रोग से पीड़ित जनसमाज की तरफ जरा नज़र डालनी चाहिये। ये सब हमारे ही करने के काम हैं।

शिक्षा के लिए बहुत से धन की जरूरत होती है। पढ़ी-लिखी दाइयों की इतनी कमी है कि शहर शहर में इस प्रकार की शिक्षा देने-वाली क्लासें खोलनी चाहियें। जो औरतें व्यर्थ अपना समय नष्ट करती हैं उनके लिए यह उत्तम धन्धा है। इससे स्वार्थ के साथ परमार्थ की भी सिद्धि होती है।

जिन्हें बहुत समय न मिलता हो उन्हें थोड़ी २ मदद देना आवश्यक है। सीने-पिरोने की कक्षाएँ खुलवानी चाहियें और जिन स्त्रियों की इल्म और किसी तरह के हुनर सीखने की इच्छा हो तो उनके समय के अनुकूल स्कूल खुलवाकर शिक्षा का प्रचार करना चाहिये। ऐसी क्लासें जहां हों वहां हमें सहायता देनी चाहिये। इस तरह से हम अबला जाति भी देशसेवा के कार्य में मदद कर सकती हैं।

एक बार ज्योंही हम लोगों को ज्ञान प्राप्त होगा त्योंही अपने आप सभी जागृत हो जायँगे। केवल जागृति की औषधि चाहिये। अब ऊंघने का वक्त नहीं। दूसरे देशों के साथ पारस्परिक स्पर्धा में यदि हम पीछे रह जायंगी तो फिर आगे न आसकेंगी। अतएव अपनी उन्नति के लिए समयानुकूल धर्माचरण में तत्पर हो जाओ, प्रभु सत्कार्य की सदा सहायता करता है।

महिलाओं की स्वास्थ्य रक्षा के लिये आवश्यकीय उपाय।*

[लेखिका-श्रीमती हेमन्त कुमारी देवी।]

स्वास्थ्यहीन और शक्तिहीन व्यक्ति यदि जीवित भी रहे तो उसको मृतक समझना चाहिये। शक्ति का भण्डार जिसका समाप्त होगया है, काम करने की सामर्थ्य लुप्त होगई है शरीर बेवस और नसें कठोर परिश्रम से थकीं, मांसपेशियाँ भी दुर्बल होगई हैं वहां सदा ही अशान्ति और मृत्यु का राज्य विराजमान समझना चाहिये। जिस शरीर में मन प्रतिदिन नया २ काम करने में उत्साहित नहीं होता है, संसार के हज़ार २ कामों के आह्वान पर ध्यान नहीं देता वहां जीवन की धारा बहुत ही शीर्ण नदी के सदृश मन्दगति से बहती है। लोग दीर्घ जीवन के लिये लालसा रखते हैं परन्तु जरा-जीर्ण शरीर को कोई भी नहीं चाहता। जराजीर्ण होने से मृत्यु ही माँगते हैं। शक्तिहीन जरा-जीर्ण वृद्धा हज़ार वर्ष भी जिन्दा रहे तो मानव-समाज का किसी भांति से कल्याण नहीं है वरन् वह समाज को भार है। जो वृद्धि को प्राप्त होता है परन्तु जीर्ण नहीं होता, जिसमें प्रवीणता नये नये ज्ञान की खोज में नवीन जीवन के समान प्रकाशित होती है परन्तु जराग्रस्त नहीं होती, जिसमें शक्ति का कार्पण्य नहीं है, आशा, निराशा और निर्जीवन के सागर में चिर-मग्न नहीं रहता हम लोग ऐसे नीरोग और दीर्घजीवन को चाहते हैं।

उस प्राणमय आनन्दमय जीवन के प्राप्त करने में जीर्ण शरीर को संस्कार करने की आवश्यकता होती है परन्तु समाधिग्रस्त तरुण चित्त को फिर से जीवित करने की विशेष आवश्यकता रहती है।

वयोवृद्धि के साथ ही साथ शरीर के शोणितकोष में एक तरह की मिट्टी के समान पदार्थ जम जाता है। क्रमशः वह धमनी और मांसपेशी को भर देता है। यह वस्तु ही शरीर की सजीवता को हर लेती है। इस हानिकारक पदार्थ को शरीर से दूर करने के लिये आहार के ऊपर दृष्टि, प्रचुर व्यायाम और निश्वास-प्रश्वास लेना इन तीन बातों का अवलम्बन करना चाहिये।

आहार के विषय में मैं इतना ही कहना चाहती हूं कि खट्टे फल का ज्यादा खाना अथवा भोजन के साथ दही का विशेष सेवन ऊपर कहे हुए सृष्टि बढ़ानेवाले पदार्थ को घटा देता है।

व्यायाम शरीर को पुष्ट और यौवन की नांई बना देता है। जो नियम से व्यायाम करती हैं वे कभी जराग्रस्त नहीं होतीं। व्यायाम से भूख बढ़ती है और खाद्य पदार्थों को ग्रहण कर शरीर का क्षय रुकता है। इन सब कामों के लिये बहुत सी आक्सिजन वायु की ज़रूरत होती है। व्यायाम के समय श्वास-प्रश्वास क्रिया अधिक होकर आक्सिजन के अभाव को मिटा देती है।

बहुतेरे आदमी यह कहते हैं कि देश की वर्तमान अवस्था में महिलाओं के व्यायाम का किसी प्रकार प्रबन्ध नहीं है। परन्तु यदि इस पर विचार किया जाय तो महिलाओं के ऊपर व्यायाम का प्रबन्ध निर्भर है।

रमणी समाज का एक अङ्ग है। सुतरां रमणी की शारीरिक और मानसिक अवनति

* खेद है कि देर में आने के कारण यह लेख विशेष संख्या में न निकल सका। सं०।

होना समाज को शक्तिहीन अवश्य करेगा। व्यक्तिगत उत्कर्ष और सामाजिक उन्नति इन दोनों के लिये महिलाओं की स्वास्थ्योन्नति आवश्यक है। स्त्री यदि दुर्बल हो और परिपुष्ट न हो तो रोगी हो ही जावेगी। जो लोग भोग चुके हैं वे अच्छी तरह जानते हैं कि चिररुग्ना स्त्री संसार में किस प्रकार चिन्ता और व्यय बढ़ाने के कारण हैं। सन्तान भी अपुष्ट अवस्था में जन्म ग्रहण करने से तुरन्त जननी की धातुगत विकलता के कारण रोगी बनकर अकाल में कालकवलित होती है।

प्रश्न हो सकता है कि महिला व्यायाम किस प्रकार से करेंगी? उनको इतना समय ही कहां है? इसके उत्तर में मैं यह कहती हूं कि उनका नित्य प्रति का काम व्यायाम का काम दे सकता है। इसके लिये डम्बिल प्रभृति विलायती वस्तुओं की आवश्यकता नहीं होती है। सब को मालूम है कि गृहकर्म महिलाओं से सम्पादित होते हैं। हरेक गृहकार्य करने का समय यदि महिलाएँ अपने २ अङ्गचालना के ऊपर दृष्टि रखकर नियत करें तो यथेष्ट होगा। शारीरिक सौन्दर्य ईश्वरदत्त भूषण होने पर भी उसकी उन्नति मानवविज्ञान के आधीन है। पश्चिमी लघु व्यायामप्रणाली ने महिलाओं का अङ्गसौष्ठव बढ़ाने में यथेष्ट सहायता दी है और दे रही हैं। मुंह के लावण्य न बढ़ने पर भी एक भांति के विज्ञानसम्मत व्यायाम से शारीरिक सौष्ठव बढ़ सकता और मुंह का भद्दापन अधिक अंश में ढक जाता है। कहना बाहुल्य है कि हम लोगों के नित्यप्रति के गृहकर्म में व्यायाम और पश्चिमी लघुव्यायाम दोनों का फल और उपपत्ति एकही है। देश-भेद से आचार का भेद होना संभव है। भारतवर्ष में प्राचीन प्रथा के अनुसार गृहकर्म स्त्रियों द्वारा किये जाते हैं और पश्चिमी जगत् में नौकरों द्वारा इसलिए वहां की युवतियों को खुले मैदान में व्यायाम की आवश्यकता होती है। भारतवर्ष की महिलाओं के लिए समय के अभाव से नित्यप्रति के काम को व्यायाम की भांति करना और समझना चाहिये, दूसरा उपाय नहीं है।

दरिद्रियों के घरों में महिलाओं को परिश्रम बहुत करना पड़ता है यह बिल्कुल ठीक है। जब उनका बिना परिश्रम निर्वाह ही नहीं तब उनको व्यायाम करने के विचार से काम करना ज़रूरी है। इससे परिश्रम का डर मिट जावेगा और मन में प्रफुल्लता आजावेगी।

धनी लोगों के घरों में इसके विपरीत है। गृहकार्य में परिश्रम का अभाव होने से कुलांगनाओं को व्यायाम का पूरा अवसर नहीं मिलता। धन की गर्मी के मारे भोजन बनाने से भी वे बड़ी घृणा करती हैं। आत्माभिमान और आत्ममर्यादा इन दोनों में भेद मालूम न होने से मन का संकोच नहीं जाता।

जो स्त्रियां गृहकार्य में श्रमविमुख हैं वे सुदीर्घ अवसर को परचर्चा और दिवानिद्रा में न लगाकर यदि छत के ऊपर उन्मुक्त वायु में पदचारणा अथवा घर में लगे हुए बगीचे में जल सींचने आदि काम में समय को व्यतीत करें तो शरीर की उन्नति हो सकती है। परन्तु परिताप इतना ही है कि सुनिद्रा और श्रमाभाव के कारण उन लोगों के शरीर बहुतही मोटे होकर सारा जीवन निकम्मा हो जाता है।

महिलाएँ अगर अपनी २ कन्याओं को बाल्यावस्था से शारीरिक उन्नति की शिक्षा दें तो बड़ी होने पर स्वस्थ और सबल पुत्र व कन्याओं की जननी बन सकती हैं और बुढ़ापे में शरीर अटूट रख सकती हैं।

विशुद्ध वायु जीवमात्र का प्राणाधार है। थोड़ी ही देर तक खुली हुई जगह में घूमने से स्वास्थ्योन्नति हो सकती है—दवा, आहार और वस्त्र से जो नहीं हो सकता है वह विशुद्ध वायु से होता है। जब मन विकल रहता है कुछ

अच्छा नहीं लगता, मस्तक क्लान्त रहता है तब घर छोड़ कर बाहर निकलने की इच्छा होती है और उस समय ज्यादा दूर तक घूम आने से तबियत ठीक हो जाती है यह सब जानते हैं।

सहज निश्वास-प्रश्वास से फुसफुस का थोड़ा सा अंश काम करता है। उसके ऊपर का आधा भाग वायु से नहीं भरता है। नगर-वासियों के फुसफुस का ऊपर का अंश अचल रहने के कारण गर्दा, धुंआं और अन्यान्य बीजाणु भर जाते हैं। मनुष्य आहार के बिना ज्यादा दिन तक जी सकता है परन्तु बिना हवा कुछ मिनट भी नहीं जी सकता, वायु ही हम लोगों का सर्वश्रेष्ठ आहार है। इस वायु को जो लोग उत्तम रूप से ग्रहण कर सकते हैं वे दीर्घजीवी और स्वास्थ्यसम्पन्न होते हैं। सिर ऊंचा कर धीरे धीरे श्वास खींचने पर जब तमाम फुस-फुस हवा से भर जाता है तब कई एक सैकिन्ड श्वास रुक कर धीरे धीरे प्रश्वासवायु को निकालना पड़ता है इस प्रकार दीर्घ निश्वास और प्रश्वास अभ्यास करने से स्वास्थ्य की उन्नति हो सकती है और जीवनशक्ति बढ़ कर दीर्घ जीवन लाभ हो सकता है।

हम लोगों की श्वासक्रिया किस प्रकार की है।

हम लोगों की प्रश्वासक्रिया में और आग के प्रज्वलन में कुछ प्रभेद नहीं है। हम लोग जो कुछ भोजन करते हैं उससे कारबन पैदा होता है और आक्सिजन हम लोगों को हवा से श्वास के द्वारा मिलती है। परन्तु इसकी प्रक्रिया वैसी है जैसी आग जलने की होती है। भोजन करने के बाद आहार का कारबन और हाईड्रो-जन उड़ जाता है परन्तु हवा की आक्सिजन के साथ मिल कर वह कार्बोनिक एसिड और जल बनाता है, ठीक ऐसेही जैसे किसी चीज़ को जलाने से होता है। प्रोफेसर लिबिग (Liebig) का मत है कि शरीर का कारबन और हाईड्रो-जन श्वास से खींची हुई आक्सिजन से मिल कर शारीरिक उत्ताप पैदा करता है। ऐसेही आग जलने से होता है। इस प्रक्रिया से फी सेकिंड में १० से १२ भाग हवा की आक्सिजन खून के कारबन के साथ मिल कर कारबोनिक एसिड पैदा करती है जो नाइट्रोजन के साथ प्रश्वासक्रिया के द्वारा फेंफड़े से निकल जाती है। इसी अनुमान पर डाक्टर कारपेन्टर (Doctor Carpenter) कहते हैं कि 'सैरिक' खून फेंफड़े के अन्दर जाकर कारबोनिक एसिड गैस (Carbonic acid gas) को निकाल देता और आक्सिजन को ले लेता है। सारांश यह है कि प्रश्वास-क्रिया से कारबोनिक एसिड (Carbonic acid) निकल जाता और आक्सिजन रुक कर रह जाती है।

देखने से मालूम हुआ है कि प्रत्येक युवा व्यक्ति प्रति श्वासक्रिया के द्वारा ३०.५१ घन इंच वायु को निकालता है। इस हिसाब से एक मिनट में १६ बार प्रश्वास होने से ४८० घन इंच वायु निकलती है और इसमें कारबो-निक एसिड का हिस्सा १०० में ४.६ है। सुतरां कारबोनिक एसिड (Carbonic acid) प्रति घंटे में १.३४८ घन इंच हम लोगों के शरीर से निकल जाता है। डाक्टर आरनट (Doctor Arnott) का मत है कि आदमी को फी मिनट में २० घन इंच हवा की आवश्यकता होती है।

लिबिग (Liebig) साहब कहते हैं कि जो युवा व्यक्ति थोड़ा सा व्यायाम करते हैं वे कारबन का तेरह सही नौ बटे दस औंस २४ घंटे में खर्च करते हैं। यह कारबोनिक एसिड गैस (Carbonic acid gas) के रूप में आदमियों के चमड़े और फेंफड़े से निकल जाता है। कारबो-निक एसिड गैस (Carbonic acid gas) में रूपान्तर होने के लिए तेरह सही नौ बटे दस औंस कारबन (Carbon) को ३७ औंस आक्सि-

जन (Oxygen) की ज़रूरत होती है। गरम मुल्कों में शरीर का वोझा ६० औंस और सर्द मुल्कों में ३० औंस की दिन घटता है।

अशुद्ध वायु से शरीर को हानि।

जो हवा प्रश्वास से निकलती है वह फिर श्वास से ग्रहण करने के पहिले विशुद्ध हवा से मिलनी चाहिये। यह निश्चय हो चुका है कि जब एक कमरे में बहुत से आदमी एकत्र होते हैं तब उस जगह की हवा रक्त शुद्धि के लिए ठीक नहीं रहती और यदि वही हवा श्वास से ली जाय तो रक्त को साफ करना तो दूर वरन् खून में मिल कर वह और भी बीमारियां उत्पन्न करती है। लिविग (Liebig) साहब के हिसाब से एक युवा व्यक्ति दैनिक ३२॥ औंस आक्सिजन शरीर में लेता है और उसके खून की तौल (सैकड़ा पीछे ८० हिस्सा जलीय पदार्थ निकल कर) २४ पौंड होती है। इस प्रकार हवा यदि श्वास से ली जाय तो वह शरीर में एक न एक समय में विष उत्पन्न करती है।

मानवशरीर में खून के कुल हिस्सों का वोझा ३० पौंड है। यह हर तीन मिनट में फुस-फुस के वायुप्रकोष्ट के अन्दर होकर जाता है और श्वासक्रिया से विशुद्ध होता है। यदि अशुद्ध वायु बहुत देर तक हम लोग नाक के द्वारा लें तो उसका खराब फल साफ दिखलाई देता है। बहुत से काम ऐसे हैं कि जिनमें आद-मियों को अशुद्ध हवा लेनी पड़ती है जिसके फल से असमय बुढ़ापा, पाचन शक्ति की क्षीणता, मानसिक दुर्बलता और यक्ष्मा आदि रोग हो जाते हैं।

अशुद्ध वायु के कारण केवल यक्ष्मा ही नहीं होता वरन् बहुत से श्वास के रोग जैसे खांसी, निमोनिया आदि हो जाते हैं। गत वर्ष की रिपोर्ट देखने से मालूम होगा कि भारतवर्ष में यक्ष्मा से मरनेवाले पुरुषों की अपेक्षा उसी रोग से मरनेवाली स्त्रियों की संख्या बहुत अधिक है। अतएव देख पड़ता है कि क्षयरोग स्त्रियों को ही विशेष सताता है। यदि खांसी और निमोनिया की संख्या भी इसमें जोड़ी जाय तो श्वास रोग में बहुत ही अधिक स्त्रियां मरी हैं। इससे हम लोगों को यह शिक्षा मिलती है कि विशुद्ध वायु ही मानवजीवन के लिए एक-मात्र अवलम्बन है।

हम लोगों के फेंफड़े से कारबोनिक एसिड गैस (Carbonic Acid gas) निकलना ईश्वर की इच्छा है। यह देखा गया है कि हम लोगों के फुसफुस से जो कारबोनिक एसिड निक-लती है वह साधारण वायु से आधी भारी होती है। यदि उसको निकलने न दिया जाय तो मृत्यु अवश्य ही होगी परन्तु भारी हवा निक-लने के समय वाष्प नाइट्रोजन (Nitrogen gas) और अन्यान्य पदार्थों के साथ मिली हुई रहती है। डाक्टर थाम्सन (Thomson) का मत यह है कि ६ ग्रेन भाफ हर मिनट में हम लोगों की श्वांस से निकलती है। यह भाफ बाहर की ठंढी हवा में श्वास लेने से साफ २ जान पड़ती है। डाक्टर कारपेन्टर (Doctor Carpenter) कहते हैं कि हम लोगों के चमड़े और फेंफड़े से प्रतिदिन ३ से ४ पौंड तक जल निकलता है। फुसफुस की पतली वायु इस प्रकार से भाफ के साथ मिलकर साधारण हवा की अपेक्षा हलकी हो जाती है और इस कारण से जल्दी २ ऊपर को चढ़ जाती है। इससे साफ जान पड़ता है कि घर में हवा का संचार होने के लिए ऐसा प्रबन्ध होना चाहिये कि ऊपर की कारबोनिक एसिड गैस (Carbonic acid gas) फिर श्वास के द्वारा न लेली जावे। यदि यह न किया जावे तो फल यह होगा कि कारबोनिक एसिड गैस (Carbonic acid gas) ज़्यादा भारी होने के कारण नीचे उतर आयेगी और अशुद्ध वायु रह जावेगी।

हवा सञ्चार होने में बेफिकरी।

अशुद्ध वायु होने से जो हानि होती है उसको सब जानते हैं। घर ऐसा बनाना चाहिये जिसमें हवा और उजेला अच्छी भांति प्रवेश करे। बीमारी के लिए डाक्टर को कितना ही रुपया दिया जाता है परन्तु यदि घर में हवा और उजेले के लिए उतना रुपया लगाया जावे तो डाक्टर को हमेशा रुपया देने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। घर में विशुद्ध वायुसंचार का अर्थ यह है कि हमेशा हवा साफ आती जाती रहे और अशुद्ध हवा को निकाल दे क्योंकि हवा आंख से दिखलाई नहीं देती इस कारण इसका दोष हमेशा मालूम नहीं पड़ता और इसीलिए आदमी हमेशा अशुद्ध वायु श्वास के द्वारा लेकर सन्तुष्ट रहते हैं। परन्तु पानी की बात और है कारण इसका यह है कि इसका रङ्ग और स्वाद हम लोग जान सकते हैं। यदि हवा का गुण भी इसी तरह से हम लोगों को मालूम हो जाय तो अशुद्ध वायु से भी हम लोगों की वैसी ही घृणा होजाय। परन्तु अभ्यास इस भांति का है कि लोग शारीरिक हानियां उठाते हुए भी अपनी भलाई की ओर ध्यान कम देते हैं। यदि हर एक आदमी को यह ज्ञान होता कि स्वास्थ्य के लिए विशुद्ध वायु की उतनी ही ज़रूरत है जितनी कि भोजन वा वस्त्र की है तो विशुद्ध वायु की सुविधा के लिये भी निर्मल जल की तरह परिश्रम किया जाता।

लखनऊ में २० वर्ष पहिले ऐसे घर थे कि जिनके कमरों में खिड़कियां थीं ही नहीं यदि किसी में एक खिड़की हुई तो परम सौभाग्य की बात समझी जाती थी। परन्तु विद्या के प्रचार से अब वे बातें न रहीं। तब भी रसोई घर का हाल बड़ा ही बुरा है; धुंआं निकलने का कोई प्रबन्ध ही नहीं रहता।

आवश्यकीय विमल वायु का परिमाण।

हम लोग बहुधा देखते हैं कि एक कमरे में जो लम्बाई और चौड़ाई में १४ वर्ग फीट है और ऊँचाई में ६ से ८ फीट है—अर्थात् कमरे की कुल जगह १५६८ घन फीट से कम होती है—६ या ७ आदमी सोते हैं, कमरे में अँधेरा है फर्श मिट्टी का है, खिड़की अगर हुई तो एक है, बहुधा होती ही नहीं इसकी खिड़की भी २०×१६ इंच से बड़ी नहीं है। अगर हवा आती भी है तो केवल द्वार से।

डाक्टर कारपेन्टर का मत यह है कि एक आदमी २४ घंटे में लगभग १० घन फीट कारबोनिक एसिड (Carbonic acid) तैयार करता है। यदि कोई आदमी हज़ार घन फीट कमरे में रहे तो बाद २४ घंटे में अपने १०० में एक हिस्सा कारबोनिक एसिड (Carbonic acid) वायुमण्डल में छोड़ेगा। चमड़े से जो कारबोनिक एसिड (Carbonic acid) निकलता है वह इसके अतिरिक्त है। हम लोगों का आहार, कपड़ा इत्यादि उतना बीमारी का कारण नहीं है जितना कि अशुद्ध वायु क्योंकि इससे संक्रामक रोग बड़ी जल्दी दूसरे आदमी पर आक्रमण करते हैं। स्वस्थ रहने के लिए हर एक आदमी को ६०० फीट जगह होनी चाहिये।

मनुष्यों का विश्वास।

मनुष्यों का यह विश्वास है कि यदि हवा दरवाजे या खिड़की द्वारा घर में घुसे तो घर की वायु का संचार ठीक २ होता है लेकिन यह उनकी भूल है। वे नहीं समझते हैं कि हवा भी किसी जातीय पदार्थ की नाईं किसी जगह में भर सकती है जैसे कि पानी बोतल में। विमल वायु कमरे की हवा को तभी साफ कर सकती है जब कि भीतर की हवा को निकलने का रास्ता हो। यह तभी हो सकता

है जब कि हवा का बोझा बढ़ जाता है और ठण्ढी हवा घुस कर समता रखती है। यह स्रोतहीन वायु मानवस्वास्थ्य के लिए उत्तम नहीं हो सकती। अङ्गरेज़ लोगों के घरों में खिड़की और द्वार होने पर भी छत में भी हवा निकलने की जगह होती है। इसका उद्देश्य यह है कि जब घर के नीचे के भाग में ठंढी हवा घुसे तब भीतर की गर्म हवा ऊपर के रास्ते से निकल जाय। घर के अन्दर की और बाहर की हवा का उत्ताप एक सा होना चाहिये तब घर की हवा विशुद्ध हो सकती है।

अशुद्ध वायुसेवन का विषमय फल।

आपने सुना होगा कि कभी २ कोयला जलाने के समय कारबोनिक एसिड (Carbonic acid gas) से निकल कर आदमी का प्राण नाश किया है। परन्तु यदि बाहर की हवा लग सके तो कारबोनिक एसिड गैस (Carbonic acid gas) कुछ कर नहीं सकता। यह देखा गया है कि यदि मनुष्यों की श्वास-प्रश्वास की वायु किसी जगह में जमा हो और यदि कुल १५ भाग वायु में प्रश्वासित वायु १ भाग हो तो आदमी का स्वास्थ्य नष्ट होना आरंभ हो जावेगा किन्तु यदि प्रश्वासित वायु का हिस्सा विशुद्ध वायु से अधिक हो तो शीघ्रही मृत्यु होजावेगी।

इसका सारांश यह है कि यदि रमणियों की स्वास्थ्योन्नति करनी है तो घर को हवादार बनाना चाहिये और उन्हें नित्य प्रति गृहकार्यों को व्यायाम समझ कर आलस्य त्याग कर करना चाहिये।

धान।

[लेखक—श्रीयुत नन्दकिशोर शर्मा, फार्म सुपरिनटेनडेंट।]

संसार में जितने नाज हैं उनमें से धान एक ऐसी जिन्स है जिस पर कि पृथ्वी के अधिकांश मनुष्यमात्र का आधार है। अनुभव से जाना जाता है कि ५४ फीसदी मनुष्यमात्र की गुज़र चावल पर है और बाक़ी ४६ फीसदी में गेहूं, चना, ज्वार, बाजरा, मक्का इत्यादि आजाते हैं। इसलिए ऐसी हालत में ज़ाहिर है कि धान की खेती कैसे महत्व की है। समय का प्रभाव है कि चावल का इस्तेमाल रोज़बरोज़ बढ़ता जाता है। जहां लोग इसको जानते भी न थे अब वहां पर दिन दूनी रात चौगुनी इसकी तरक्की हो रही है। चावल की रिवाज इतनी अधिक है कि मामूली लोगों के यहां भी यह रोज़ाना खाया जाता है। मध्यम व अव्वल श्रेणी के लोगों के यहां तो यह एक रोज़मर्रा की भोजन की सामग्री है।

धान की उत्पत्ति।

धान अपनी असली हालत में शुरू शुरू में हिमालय पर्वत की घाटियों—ख़ास करके ओरीज़ा की घाटी में—पाया गया जहां पर कि वहां के ग़रीब लोग तीन चार हाथ लम्बे बांस के सिरे पर एक छोटी सी लम्बी गहरी डलिया को (बुन्देल खण्ड में इसको लहड़ी करके पुकारते हैं) बांध कर फ़सल पर धान के पौधों के ऊपर लहरा कर धान इकट्ठा कर लेते हैं। इस धान के सिरे पर करीब २ दो अंगुल लम्बी दुम सी होती है। चावल इसका लाल खुशबूदार और

एच० आर० एच० श्रीमान् प्रिंस आफ वेल्स अपनी पल्टन के साथ जा रहे हैं

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

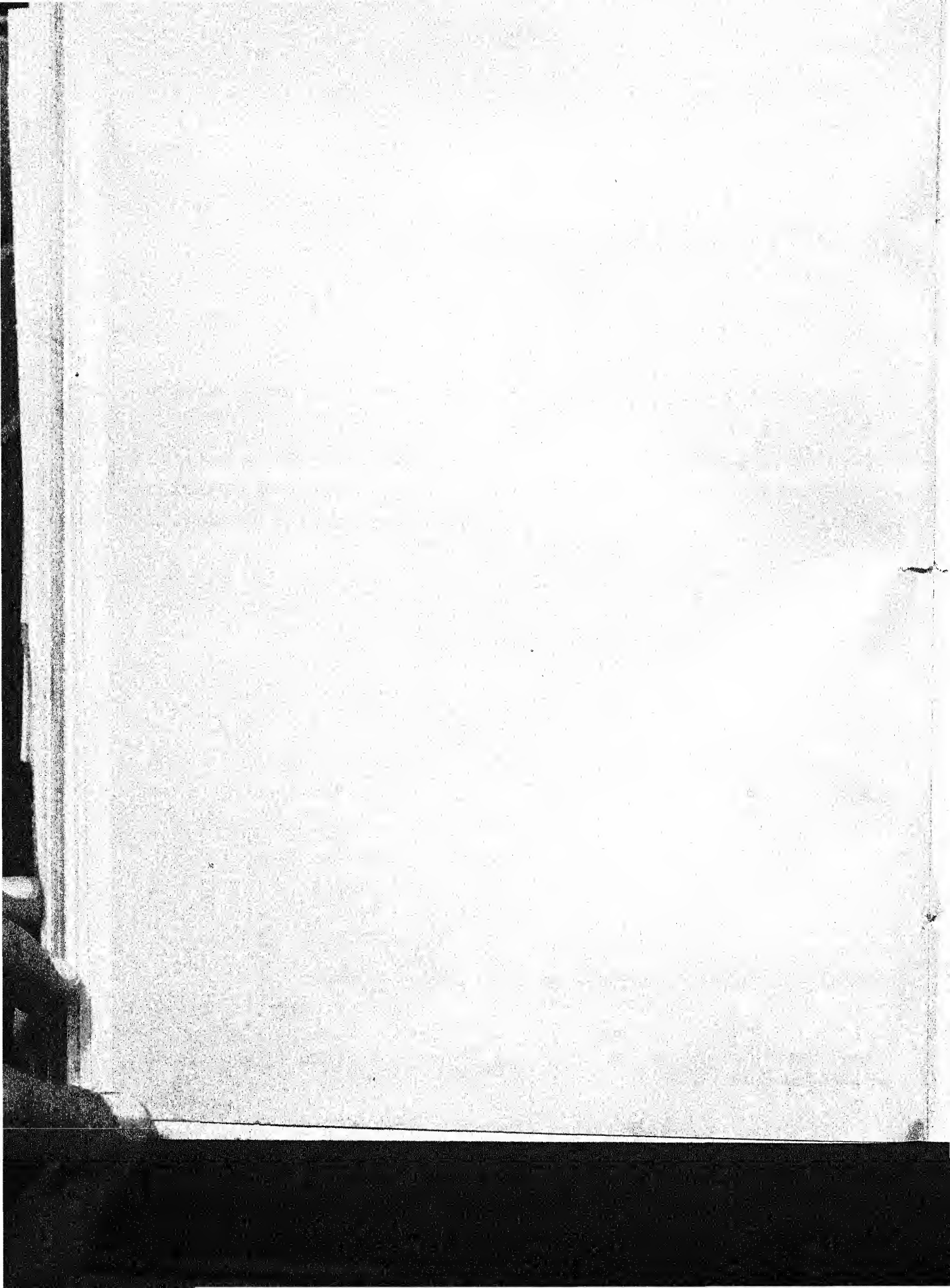

एक ख़ास स्वाद का होता है। बाज़ लोगों का ख्याल है कि जितने किस्म के धान आज दुनिया में बोए जाते हैं वे सब इसी हिमालय घाटी से पैदा हैं चाहे इसकी बनावट, स्वाद, ज़ायका, रंग, रूप बिलकुल ही अलग है। ज़मीन, पानी, आब, हवा और खेती के ढंग इन सब से ऊपर लिखी बातों में फ़र्क आजाता है यही कारण है कि विद्वानों ने धान का नाम ओरीज़ा सेटीवा (Oriza Sativa) रक्खा है।

धन्य है परमात्मा को कि यह महत्व भी अपने ही देश आर्यावर्त को प्राप्त है कि धान की उत्पत्ति इसी देश में हुई और यहां से ईसामसीह के २८२२ वर्ष पहिले चीन देश में ले जाया गया। जिन दिनों कि रूम अपनी उन्नति के शिखर पर पहुंचा हुआ था उन दिनों चावल का व्यापार हिन्दुस्तान और रूम में अच्छी तरह से होता था। अरब के लोग धान को फारस और अरब लेगये और फिर वहां से मिसर को गया और वहां से सिसली को और फिर सिसली से मूर लोग स्पेन को ले गये जहां पर कि आज धान की खेती ऐसी होती है कि उसका हाल जानकर लोगों को अपनी हालत और पैदावार में तरक्की करनी चाहिये यानी हमारे देश की पैदावार से स्पेन की पैदावार करीब २ सतगुनी फी एकड़ अधिक होती है। कहावत है कि गुरू तो गुड़ रह गये और चेला चीनी हो गये। आठवीं शताब्दी में पहिले पहिल धान स्पेन में प्रगट रूप से पाया गया और पन्द्रहवीं शताब्दी के शुरू में वहां की सरकार ने इसकी खेती बढ़ाने का विशेष प्रयत्न किया। सन् १५२१ ई० में इटली के राजा पञ्चम चार्ल्स ने अपने राज्य में धान की खेती कराई। सन् १६४७ ई० में गवर्नर बरकले ने कुछ हिन्दुस्तान का धान इङ्गलैंड से बरजीना देश को भेजा लेकिन सन् १६९४ ई० तक अमेरिका में धान की खेती अच्छी तरह से नहीं फैली। इन्हीं दिनों एक सौदागरी का जहाज़ जो कि हिन्दुस्तान से जा रहा था तूफान से बह कर केरीलोना (Carilona) के किनारे जा लगा, जहाज़ के कप्तान ने कुछ धान का बीज स्मिथ साहब को दिया और उन्होंने उसे अपने बाग़ में बोया। सन् १७४५ ई० में यही धान केरीलोना के नाम से नई दुनिया में बहुत फैल गया। मामूली तौर से धान की खेती सब जगह हो सकती है।

धान की किस्में।

दुनियां में जितनी किस्में धान की हैं उतनी किसी नाज की नहीं है। यह सच है कि एक ही धान जगह जगह पर अलग अलग नाम से पुकारा जाता है फिर धान की हज़ारों किस्में ऐसी हैं कि जो एक दूसरे से रंग, रूप, स्वाद इत्यादि में बिलकुल अलग अलग हैं—आमतौर से इनका विभाग चार किस्मों में किया जा सकता है:—

(१) पसई—जो कि कुदरती तौर से नीची जगहों में अपने आप पैदा होता है और जिसको कि गरीब आदमी बीन कर खाते पीते हैं।

(२) जेठवा धान—जो कि फागुन या चैत में बोया जाता है और बैसाख या जेठ में काटा जाता है।

(३) कतकी धान यह जेठ आषाढ़ में बोया जाता है और कुआर कातिक में काटा जाता है।

(४) अगहनी धान—यह वह धान है जिसकी बेड़ लगाई जाती है। आषाढ़ सावन में बेड़ लगाते हैं और फिर करीब एक महीने के बाद उसे उखाड़ कर खेत में रोपते हैं और फिर इसकी फसल अगहन पूस में तैयार होती है।

हमारे देश में जल और वायु के परिवर्तन से अक्सर जगहों में आबहवा भी बदलती गई है, इसलिए फसलों के रोपने और तैयार होने

में भी एक जगह से दूसरी जगह में थोड़ा बहुत भेद पड़ता है।

ऊपर की चार किस्मों में से तीसरी और चौथी खास महत्व की चीज़ें हैं। देश में दरिद्रता अधिक होने से सबसे प्रिय और लाभदायक बात वही है जो कम से कम लागत, मेहनत और समय में पैदा हो कर लोगों के काम आने लगे। इस मतलब को पूरा करने के लिये कतकी धान है, इन धानों में अधिकांश ऐसे हैं जो कि मोटे होते हैं और खाद रूखापन लिए होते हैं और इनमें भूसी का हिस्सा ज्यादा होता है। और महक तो किसी किसी में ही नाममात्र होती है।

चौथी किस्म में वह धान है जो कि बारीक, पतले, लम्बे, खुशबूदार होते हैं और ज़्यादातर खुश हाल लोगों के काम में आते हैं। तिजारत के लिहाज़ से इन धानों की खेती में अधिक लाभ है।

धान जिन्स ऐसी है कि जब तक जगह जगह पर तजरबा करके यह मालूम न कर लिया जाय कि किस जगह पर कौन सा धान अधिक पैदा होता है तब तक किसी धान के ख़ास तौर पर बोने के लिए किसी ख़ास जगह के लिए सिफारिश नहीं की जा सकती है। इस बात को जानने के लिए लोगों को चाहिये कि अपने आस पास के सरकारी खेती फार्म सुपरिंटेंडेन्ट साहब से पूछ लें। दयालु सरकार ने जगह ब-जगह खेती के फार्म रिआया के फायदे के ही लिये जारी कर रक्खे हैं। सिवा खास खास जगहों के जहां कि पानी काफी मिलता है और लोग मिहनती हैं ज्यादातर धान छिरकवा बोया जाता है। जो कुछ तजरबे अब तक हुए हैं उनसे साबित हुआ है कि बनिस्बत छिड़कवा बोने के बेड़ लगाकर धान की खेती ज्यादा फायदेवर है। छिरकवा बोने से एक तो बीज बहुत लगता है। औसतन बीस सेर फी एकड़ बीज डाला जाता है जब कि अगर बेड़ लगाई जावे तो एक एकड़ के लिये तीन सेर मोटे धान और पतले धान डेढ़ सेर काफी होते हैं। ध्यान देने लायक बात है कि बीजही में कितनी बचत है। अगर बीज दस सेर का बिकता हो तो छिड़कवा बोने में दो रुपये का पड़ेगा और अगर बेड़ लगाकर बोना है तो मोटे धान का बीज करीब पांच आने का और पतले धान का करीब तीन या चार आने का बीज लगेगा। जो कोई सौ पचास एकड़ धान की खेती करता है उसको एक बड़ी रकम की बचत तो बीज में ही हो जाती है फिर छिरकवां बोए हुए की बनिस्बत बेड़ लगाये हुए धान की पैदावार कहीं ज्यादा होती है। औसतन करीब करीब दूनी पैदावार होती है। अस्तर्रा फ़ार्म में किरोल नामी धान की पैदावार छिटकवां बोने से तो १४ मन फी एकड़ हुई और बेड़ लगाकर बोने से ४८ मन फी एकड़ हुई! पस इससे साफ प्रगट है कि बेड़ लगा कर बोना बहुत ही फायदेमन्द है।

यह सब लोग जानते हैं कि खेत जैसा बलवान् होगा उतनी ही पैदावार अधिक होगी और खेत को बलवान् करने का तरीका सिवा इसके कि खेत में काफ़ी खाद दिया जाय और मेहनत से उसकी कमाई की जाय दूसरा और कोई उपाय नहीं है। अविद्या और नासमझी के कारण खाद काफी नहीं मिलता। इस कमी को पूरा करने के कितने ही उपाय हैं। अव्वल यह कि धान के खेतों को गर्मी के दिनों में जोत कर डाल दिया जाय ताकि खेत में धूप लग जाय और धूप, हवा, रोशनी, गर्मी की वजह से बहुत से पृथ्वी के खाद्यपदार्थ चैतन्य अवस्था में आजाते हैं जो कि फसल के लिए खाद का काम देते हैं और दूसरा फ़ायदा यह है कि बारिश होते ही ज़मीन आसानी से और जल्द बोने के लायक़ तैयार हो जाती है और खेत में घास वगैरः और नुक़सान पहुंचानेवाले कीड़े पतंगे नहीं रहते हैं। दूसरा तरीक़ा खेत को

बलवान् बनाने का यह है कि धान की फसल कटने के बाद उसी धान की नमी में चटरी मटरी का बीज डाल दिया जाता है और एक दफे हल चला कर जोत दिया जाता है जिससे कि एक फसल की फसल मिल जाती है और छीमीदार फसल होने के कारण खेत बलदार बन जाता है। धान की फसल के बाद उसी खेत में गेहूं की फसल लेना खेत को बहुत बलहीन करना है।

धान का बीज और उसकी छानबीन।

फसल की पैदावार ज्यादातर बीज के अच्छे होने पर मुनस्सिर है। बुवाई के लिए बीज को अच्छी तरह से फटक लेना चाहिये ताकि हलके और खोखले दाने सूप से अलग हो जायँ। सूप से साफ़ किये हुए बीज की निमक के पानी से जाँच करनी चाहिये। जो बीज निमक के पानी में ऊपर आजाय वह बोने लायक नहीं और जो नीचे बैठ जाय वह बोने लायक है और ज़रूर उगेंगे। निमक का पानी तैयार करने का तरीक़ा यह है कि ११ सेर पानी में १ सेर पिसा हुआ बारीक निमक मिला दो और इस बारह सेर पानी से बीज जाँच करते जाओ—जो कुछ पानी बच रहे उसे गाय, बैल, भैंस को चारे के साथ खिला सकते हैं। आम के आम गुठलियों के दाम। निमक के पानी से बीज की जांच भी हो गई और काम में भी आगया।

बीज का बोना।

जाँच किये हुए बीज को कंडे या उपले की राख में मिला कर कुछ पानी का छींटा देकर एक दिन रात रख छोड़ना चाहिये इससे उसमें अखुवे निकल आते हैं। बेड़ लगाने की गर्ज से करीब आठ गज लम्बे और आठ गज चौड़े टुकड़े में तीन सेर चुना हुआ और जाँच किया हुआ और राख में रक्खा हुआ बीज घने तौर से एकसां बो देना चाहिये। इतने टुकड़े की बेड़ एक एकड़ भूमि के लिये काफी होती है।

छिटकवा बोने के लिए इसी तरह के तैयार किये हुए बीज को खेत में छिटका जाता है। धान की खेती के लिए पानी की ज्यादा ज़रूरत होती है और खेत के चारों तरफ मेंड होती है ताकि खेत में पानी रोक लिया जाय। कहावत है कि पान धान नित अशनान। पानी भरे हुए खेत में ही हल चलाया जाता है और ऐसी हालत में उसमें पेटला या सरावन या हेंगा फेरा जाता है जो कि बैलों से रुदने से खूब कीचड़ हो जाती है, जब खेत इस तरह पर अच्छी तरह से तैयार हो जाता है उस समय बीज छिटक दिया जाता है और बाद में हलका सा पानी भर देते हैं। जब बीज तीन चार अंगुल का हो जाता है तब खेत से पानी निकाल देते हैं और फिर चार पांच दिन बाद पानी भर दिया जाता है, जब पौधे एक बालिश्त के हो जाते हैं उस वक्त पानी भरे हुए खेत में हलका पाटा फेर देते हैं। जब धान फूट आवे और दूध उसका खुश्क होकर चावल तैयार हो तो उस वक्त पानी की ज़रूरत नहीं रहती है इसलिए कृषक को उचित है कि स्वाती नक्षत्र व्यतीत हो जाने पर या इस नक्षत्र के कुछ दिन रहते ही धान के खेत का पानी निकाल देवें।

बेड़ लगाने के लिए लगते ज्येष्ठ से आधे ज्येष्ठ तक बीज बो देना चाहिये और जब पौधे करीब ४० दिन के हो जायँ उस वक्त उनको उखाड़ कर जहां लगाना मंजूर हो वहां लगा देना चाहिये। बेड़ लगी हुई जगह को हर वक्त तर रखना चाहिये, कम से कम उसमें तीसरे चौथे दिन पानी जरूर देना चाहिये और बेड़ को उखाड़ने के समय उसमें काफी पानी भरा हुआ होना चाहिये ताकि उखाड़ने में जड़ें न टूट जायँ। जिस खेत में बेड़ लगाना हो उसमें

भी कम से कम एक बालिश्त की उँचाई में ज़रूर पानी भरा होना चाहिये। बेड़ लगाने का तरीका यह है कि एक डोरी लेकर खेत की सीध में लगाना चाहिये। उन्हीं उखड़े हुए पौधों में से दो दो पौधे एक एक बालिश्त की दूरी पर गाड़ देना चाहिये। जब पहली लैन इस तरह से गड़ जाय तो दूसरी लैन इसी तरह से गाड़देना चाहिये। ध्यान सिर्फ इस बात का रहे कि एक पौधे से दूसरे पौधे में करीब एक बालिश्त का फासला रहे और एक जगह में दो पौधे से ज्यादा न गड़ने पावें। बेड़ के उखड़े हुए पौधों को लगाने से पहिले किसी पानी भरी हुई जगह में एक एक बंडल करके अच्छी तरह से पानी में हिलोर लेना चाहिये ताकि पौधे की बारीक जड़ें एक एक से अलग हो जायँ। जब पौधे गड़ चुकें तब खेत में पानी दो दिन तक रुका रहना चाहिये बाद में पानी निकाल देना चाहिये। धान के खेत में हर वक्त पानी न भरा रहने देना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से पौधे की जड़ों को धूप और हवा नहीं मिल सकती है जिसके बिना पौधे अच्छी तरह से परवरिश नहीं पा सकते हैं। किसी हालत में तीन दिन से ज्यादा एक बारगी खेत में पानी रुका हुआ न रहना चाहिये। इसी तरह करते हुए छिटकवा बोया हुआ धान कुवार में और बेड़ का लगाया हुआ धान कातिक, अगहन में पक कर तैयार हो जाता है।

छिटकवा धान बोने के लिये करीब दस सेर फी बीघे के बीज पड़ता है और अगर इसी को बेड़ लगा कर बोया जाय तो एक बीघे के लिए दो सेर मोटा धान और एक सेर बारीक धान की बेड़ काफी होती है। पस प्रिय पाठकगण सोचो तो सही कि बेड़ लगाकर बोने में कैसा फायदा है कि एक तो करीब आठवें हिस्से के बीज लगता है और पैदावार करीब तिगुनी होती है। सन् १९१३-१४ में संयुक्तप्रान्त में ७४९११२ एकड़ में धान बोया गया था। बीस सेर फी एकड़ बीज मान कर और एक रुपये का दस सेर बीज मानते हुए १४९८२२४) का बीज खर्च हुआ। अगर यही बेड़ लगा कर बोया गया होता तो करीब १४९०००) रुपये का बीज लगता यानी १३४९२२४) रुपये की बचत तो सिर्फ बीज में होती और अधिक पैदावार से भी मुनाफा होता वह अलग रहा। हां यह जरूर है कि बेड़ लगाने में मेहनत और थोड़ा खर्च होता है बिना मेहनत और खर्च के तो दुनिया में कोई चीज़ नसीब नहीं होती फिर इससे डरना फजूल सी बात है। इस तरह काम-काज में लगे रहने से बहुत कुछ फायदे हैं। सब से पहिले तो बहुत से लोगों का रोजगार लगा रहता है और काम में लगे रहने के कारण फजूल की बातों के लिये फुरसत नहीं मिलती। मसलन लड़ाई दंगे इत्यादि और जब रुपया ज्यादा पैदा होता है तब दुनिया की सब सुख की सामग्री मिल सकती है जिसके द्वारा अपना वा पराया इस लोक का और परलोक का साधन सिद्ध होता है।

धान की पैदावार।

हम लोग अपने मुंह कैसे ही मियांमिट्ठू बनें और हर वक्त यही सपना देखते रहें कि पिदरे सुल्तां बद लेकिन अब समय उन्नति का है और जब कि घर बैठे दुनिया के सारे हालात मालूम होते हैं तो आश्चर्य है कि हम लोगों की गिनती किसी में भी नहीं। इसका कारण यही है कि हम लोगों ने विद्याभ्यास किया नहीं, कृषि कर्म को तुच्छ समझा। ध्यान देकर देखिये तो सही कि धान पैदा करने में भी हम लोग कहां हैं जब कि भारतवर्ष कीसी आबहवा मौसम सारे संसार में कहीं नहीं।

देखिये नकशा पैदावार धान अपने देश और दूसरे देशों का मुकाबिला बाबत फसल सन् १९१३ :—

मुल्क	रकबा धान एकड़ में	पैदावार धान मनों में	औसत पैदावार फी एकड़ मनों में	कैफियत
स्पेन	६६००००	६६६१२००	६६.३०	
इटली	३६०००००	१४५२४८००	४०.१४	
मिसर	२५४००००	१०२०००००	४०.१४	
जापान	७३६३००००	१६११०७२००	२५.५४	
अमेरिका	८२७००००	१४०६२४००	१७.०२	
हिन्दुस्तान	७०५८००००	७६६१४२४००	१०.८२	

यह नकशा एगरीकलचरेल जरनल आफ़ इन्डिया सफा ३३३ सन् १६१४ के आधार पर है। नकशे से साफ जाहिर है। दुनिया में सब से ज्यादा अपने देश में धान की खेती होती और साथ ही साथ सब से कम पैदावार का औसत है। क्या यह अभाग्य की बात नहीं है कि इसी देश की चीज़ और इसी जगह इसका ऐसा अनादर? किसी ने सच कहा है कि जो जिस को जितना चाहता है उतना ही वह चीज़ उसको चाहती है। शुरू में लिखा जा चुका है कि पहिले पहिल मुल्क स्पेन में आठवीं शताब्दी में धान इसी देश से अन्य देशों के ज़रिये पहुंचा और बारह सौ बरस में वहां यह हालत हो गई कि यहां के बनिस्बत सतगुना पैदा होने लगा। क्यों न हो जिसने खोजा है उसने पाया है। जो लोग इस समय भी तरक्की न कर सकें उनसे ज़्यादा अभागा कौन हो सकता है? दयालु सरकार ने ज़गह जगह पर कृषि-प्रयोगशालाएँ खोल रक्खी हैं जहां पर कि हर किस्म के कृषि सम्बन्धी प्रयोग होते हैं और जो फायदेमन्द साबित होते हैं उनका प्रचार किया जाता है। बुन्देलखंड में अतर्रा फार्म में ही बहुत सी किस्म के धानों की जाँच की गई और उनमें नीचे लिखे धानों की पैदावार फी एकड़ जो हुई है वह यहां मनों में दर्ज है:—

धान	छिटकवां बोने से।	बेड़ लगाकर बोने से।
किरीयोल	४८	१४
गुरमुटिया	३६	१७
परेवा	३७	१५

इस पैदावार के देखने से मालूम होता है कि धान में किस क़दर ज़्यादा पैदावार करने का मौका है। इस मौके पर यह भी लिख देना काफी है कि अतर्रा फार्म के धान के खेतों में कोई खाद छै सात साल से नहीं दी जा रही है और फसल तो सालाना ली ही जारही है। ध्यान देने की बात है कि अपने देश की औसत पैदावार को अगर दुगना भी कर सकें तो देश में कितना अधिक नाज, रुपया और सुख हो?

धान को नुकसान पहुंचानेवाले कीड़े और उनसे बचने का उपाय।

धान की फसल को ज़्यादा नुकसान एक बदबूदार मक्खी से होता है जिसको गन्धी कहते हैं। बाज बाज दफे तो इससे इतना ज़्यादा नुकसान होता है कि खेत के खेत साफ हो जाते हैं और मन दो मन धान भी फी बीघे नहीं मिलता। जिस वक्त धान फूलने का समय होता है और धान में दूध पड़ता है उस वक्त यह

मक्खी नज़र आने लगती है और यह नहीं कि एकाध खेत में ही दिखाई पड़े बल्कि कोसों दूर तक फैलती है और जिस तरह से मच्छर लोहू का प्यासा होता है उसी तरह से यह मक्खी धान के दूध को चूस लेती है पस फिर सिवा भूसी के रह क्या जाता है।

इस मक्खी के नुक़सान से बचने के लिये एक सहल उपाय है लेकिन वह उपाय जभी फायदेमन्द हो सकता है कि अड़ोसी पड़ोसी सब मिल कर काम करें। कोई यह चाहे कि अपने ही खेत में उपाय कर लूं और नुकसान से बच लूं सो मुम्किन नहीं है जब तक कि अड़ोस पड़ोस के सब किसान अपने अपने खेत में उपाय न करें। इसीलिए किसी महात्मा ने सच कहा है कि दूसरे की भलाई में अपनी भलाई समझनी चाहिये। उपाय यह है कि जब यह गन्धी खेतों में नज़र आने लगे तो खेतवालों को एक जाल झिरझिरे टाट का बनाना चाहिये। जाल किसी शकल का बनाय जा सकता है लेकिन सबसे अच्छा इस तरह से बनता है कि दो लम्बे बांस और दो छोटे बांस का पहिले एक चौखटा बना लिया जाय यानी दो बांस चार चार हाथ लम्बे लो फिर दोनों लम्बे बांसों के सिरे पर एक एक छोटा बांस बांध दो यह एक चौखटा बन जायगा। इस चौखटे पर कोनों से चार लम्बे बांस करीब पांच पांच हाथ लम्बे बांध दो और इन पांच पांच हाथ लम्बे बांसों के दूसरे सिरे पर एक बांस चौखटे के लम्बे चार हाथवाले बांस के बराबर बांध दो और फिर चौखटे के एक एक सिरे से एक एक लम्बा बांस उस सिरे पर जहां कि पांच पांच हाथ वाला बांस बांधा गया है बांध दो और फिर एक झिरझिरा टाट इस बांस के ढांचे पर चढ़ा दो और अब गन्धी के पकड़ने का जाल तैयार है। जब गन्धी खेत में दिखाई पड़े फौरन इस जाल को काम में लाओ और अपनी फसल को बचा लो। काम में लाने का तरीका यह है कि हवा के उल्टे रुख इस जाल को धान के पौधों पर जल्दी से घसीटो। हवा की वजह से टाट फूलेगा और खेत की बहुत कुछ गन्धी पौधों पर से इस जाल में आजायँगी। खेत के एक तरफ़ से जाल घसीटना शुरू करो जब खेत के दूसरे किनारे पर पहुंचो जाल को उलटा करके पकड़ी हुई गन्धियों को किसी खाली टीन के कनस्टर में इकट्ठा करते जाओ। एक दफे के घसीटने में पांच पांच सेर तक गन्धी पकड़ी जाती हैं। टीन के कनस्टर में एक बोतल तेल मिट्टी और आठ बोतल पानी मथा हुआ होना चाहिये ताकि गन्धी उसमें मरती जायँ। यह इकट्ठी की हुई गन्धी एक आला दर्जे का खाद होता है। पस प्रिय पाठकगण एक पंथ दो काज सिद्ध होते हैं। गन्धी पकड़ कर धान के खेत को बचाते हैं। और साथ ही साथ एक आला दर्जे का खाद पाते हो। सच है आम के आम आम और गुठलियों के दाम इसी को कहते हैं। जैसा कहा जा चुका है गन्धियों के नुकसान से तभी बच सकते हो जब कि सब आस पास के खेतवाले अपने अपने खेत में यही तरकीब काम में लावें अगर एक दो आदमी अपने खेत से गन्धी दूर करेगा तो कुछ फायदा नहीं हो सकता क्योंकि पास पड़ोस से यह फिर उड़ कर आ जायँगी। खेती का काम ऐसा है कि जो कुछ काम मेल से होता है वह दूसरी तौर से मुम्किन ही नहीं है और यही सोच कर दयालु सरकार ने जगह जगह सहकारी-समितियों का प्रचार किया है। धान की खेती का सबसे बड़ा दुशमन गन्धी है और वैसे तो और भी हैं जैसे पानी, धान का गुबरैला, टिड्डा, छबुन्दा इत्यादि। इन सब के नुकसान से बचने का उपाय सिवा इसके कि इनको जाल से पकड़ कर इन्हें मार डाला जाय और कोई दूसरा सहल उपाय नहीं है। किसी खेत से सालहा साल धान की ही फसल लेना मुनासिब नहीं क्योंकि खेत बल-

हीन हो जायगा और धान को नुक्सान पहुंचाने-वाले कीड़ों का जखीरा हो जायगा। पस धान की फसल के बाद धान की नमी में ही चटरा मटरा किस्म की छीमीदार फसलें बो देनी चाहियें। इन छीमीदार पौधों में ईश्वर ने एक अद्भुत ताकत दी है कि वे हवा से नाइट्रोजन (पौधों के लिये एक खास खाद्य पदार्थ है जिसके बिना कि पौधे पैदा हो ही नहीं सकते हैं) लेकर भूमि में जमा कर देते हैं जिससे कि भूमि अधिक बलदार हो जाती है और एक फसल भी बिना किसी अधिक मेहनत के हासिल हो जाती है।

बाज बाज जगह यह रिवाज है कि धान की फसल के बाद उसी खेत में गेहूं की फसल करते हैं। यह अच्छी रिवाज़ नहीं है क्योंकि ऐसा करने से खेत बलहीन हो जाता है और दोनों फसलें कम पैदा होती है। मसल मशहूर है कि "दुविधा में दोऊ गये माया मिली न राम" पस काम वह करना चाहिये कि जिससे थोड़े से थोड़े समय में अधिक से अधिक लाभ हो सके। प्रिय पाठकगण अब सोने का समय नहीं है पस जागो और चेतो वरना जो रहा सो रहा। यही मौका है जो कुछ कृषि में उन्नति करना है वह करो ताकि अपना पराया और देश का भला हो।

लाख लाख धन्यवाद है उस परमात्मा को कि हम लोग ऐसे राज्य की छाया में हैं जहां कि सूरज देवता कभी अस्त नहीं होते और जहां कि शान्ति और न्याय सूरज की रोशनी की तरह सब अन्धकार को दूर करके विद्या और कलाकौशल के अभ्यास का पूरा अवसर मिल रहा है। परमात्मा ऐसे राज्य को सदैव अमर रक्खे ताकि अमन चैन के साथ सब विद्याओं में उन्नति करते हुए यह लोक और परलोक सिद्ध हो।

सन्तान-शास्त्र ।

[लेखक—श्रीयुत सिद्धनाथ माधव ।]

प्रति वर्ष के अनुसार इस वर्ष भी पूने में वसंत-व्याख्यान-माला हुई। कई उत्तमोत्तम निबन्ध पढ़े गये। डा० नरहर गोपाल सर देसाई जी ने "सन्तान शास्त्र" पर एक भावपूर्ण वक्तृता दी; उसी का सारांश पाठकों की सेवा में उपस्थित किया जाता है :—

सन् १८७१ और १९११ की मर्दुम-शुमारी के अङ्कों की तुलना की जाय तो मालूम होता है कि, सन् १८७१ की मर्दुम-शुमारी से सन् १९११ की मर्दुमशुमारी में सैकड़े पीछे १० हिन्दुओं की संख्या कम हुई है। लोक-संख्या का यह ह्रास, करीब ४० वर्षों में हुआ है, इस कारण हमारी अवनति का डर हमको अधिक मालूम नहीं होता। परन्तु यदि इसी परिमाण से प्रत्येक ४० वर्ष की अवधि में सैकड़े पीछे १० लोक-संख्या कम होती जाय तो यह समय भी आसकता है जब कि हिन्दुओं की संख्या बिल-कुल ही कम हो जायगी।

हिन्दू जन-संख्या के ह्रास के बालविवाह, बाल-वैधव्य इत्यादि कारण बतलाये जाते हैं। परन्तु इन कारणों में सत्यांश बहुत कम है।

हमारे देश के बालकों की मृत्यु-संख्या दिन व दिन बढ़ती जाती है; युवा पुरुषों में सैकड़े पीछे ५० निपुत्रिक रह जाते हैं; जिनकी सन्तान से देश का कल्याण हो सकता है, ऐसे विद्वान और शक्ति-शाली पुरुष अविवाहित रह जाते हैं; इन सब बातों से ही हमारी जन-संख्या घटती जा रही है। यदि इस कमी को रोकना है तो देश के सब लोगों को सु-प्रजा-जनन-शास्त्र के तत्व जानने चाहियें। इस शास्त्र का ग्रीक नाम (Eugenics) युजेनिक्स है और अंगरेज़ी भाषा में इसे होमोकल्चर कहते हैं। इस शास्त्र की उन्नति अभी २५ वर्षों में हुई है तथापि इसके तत्व अमेरिका और यूरोप में बड़ी तेज़ी के साथ फैल रहे हैं।

इटली देश में मेंडले नामक एक मिशनरी साहब होगये हैं। यही इस शास्त्र के आद्य-प्रवर्तक थे। इन्होंने कई प्रयोग कर यह सिद्ध किया कि दो भिन्न गुणवाले प्राणियों का संयोग होने से जो प्रजा उत्पन्न होती है वह उन भिन्न२ गुणों को धारण करती है। अगर माता पिता भिन्न स्वरूप के हुए तो उनकी सन्तान में माता व पिता दोनों के गुण-दोष आजाते हैं। उपदंश, मलेरिया, सोमल (Sic), शराब इत्यादि विषों का परिणाम बीजामृत पर होकर उनका असर आगे होनेवाली सन्तान में भी रहता है। पर जिन गुणों अथवा अवगुणों का परिणाम बीजामृत पर नहीं होता—अर्थात् जो गुण संपादन किए हुए होते हैं, वे सन्तान में नहीं देखे जाते। उदाहरणार्थ जिस कुत्ते की पूँछ कटी हुई हो उसकी सन्तान कटी पूंछवाली नहीं होती। उसी तरह जिन माता-पिताओं ने टीका लगाया है उनकी सन्तान में शीतला के प्रतिकार करने की शक्ति (Immunity) उत्पन्न नहीं होती। माता पिता ऊँचे होने पर भी उनकी सन्तान छोटी पैदा होती है; और मा बाप ठिंगने होने पर भी सन्तान ऊँची पैदा होती है। एक स्त्री को दिमाग़ की कमज़ोरी का रोग था। उसको नीतिमान् पति से चार पुत्र हुए; इनमें तीन पुत्र अच्छे निकले और एक शराबी निकला। उसी स्त्री को शराबी पति से जो सन्तान हुई वे सब शराबखोर निकलीं। मधु-मेह से पीड़ित एक दम्पति को पांच लड़के हुए उनमें तीन को मधु-मेह रोग था। इन सब अनेक उदाहरणों का मनन पूर्वक अभ्यास कर शास्त्रज्ञों ने यह सिद्धान्त निश्चित किया है कि माता पिता में जो गुण होते हैं, वे होनेवाली सन्तान में आधे या चौथाई या कुछ न कुछ ज़रूर पाये जाते हैं। पोर्चुगीज़ लोग अफ्रीका में गये तब उन्होंने वहां के लोगों से बेटीव्यवहार शुरू किया। इस संयोग से जो प्रजा पैदा हुई वह अति क्रूर निकली; इसका कारण यह था कि उस सन्तान में अपनी माताओं के अवगुण अधिक आगये। इसलिए अच्छी सन्तान होने के लिए नीरोग और गुणवान माता पिताओं की बड़ी आवश्यकता है।

भारतीय ऋषियों ने भी इस विषय पर विचार किया है। हिन्दुओं के विवाह के समय तीन पीढ़ियों के नाम का उच्चार करने की शास्त्राज्ञा है। इसका कारण यह है कि अगर तीन पीढ़ियों में किसी पुरुष को कोई ऐसा रोग हुआ हो जिसका असर बीजामृत पर होगया है तो वह उपस्थित पुरुषों को मालूम हो जाय और विवाह-सम्बन्ध दृढ़ करने या न करने का विचार किया जाय। इस विषय का सम्बन्ध वैद्यक से होने पर भी आर्य ऋषि-मुनियों ने इसका समावेश धर्म-शास्त्र में किया है। इसका कारण यह है कि धर्म-शास्त्र होने से सामान्य लोग भी इधर ध्यान देंगे। विवाह-सम्बन्ध दृढ़ करने के पूर्व कुल देखना चाहिये, ऐसी शास्त्राज्ञा है। "कन्या का विवाह अच्छे कुल में करना चाहिये, यदि कन्या के अनुरूप गुणवान् पति न मिले तो आजन्म अविवाहित रहना उत्तम है" ऐसी मनु जी की आज्ञा है। जिस कुल में जातकर्मादि संस्कार नहीं होते, जिस

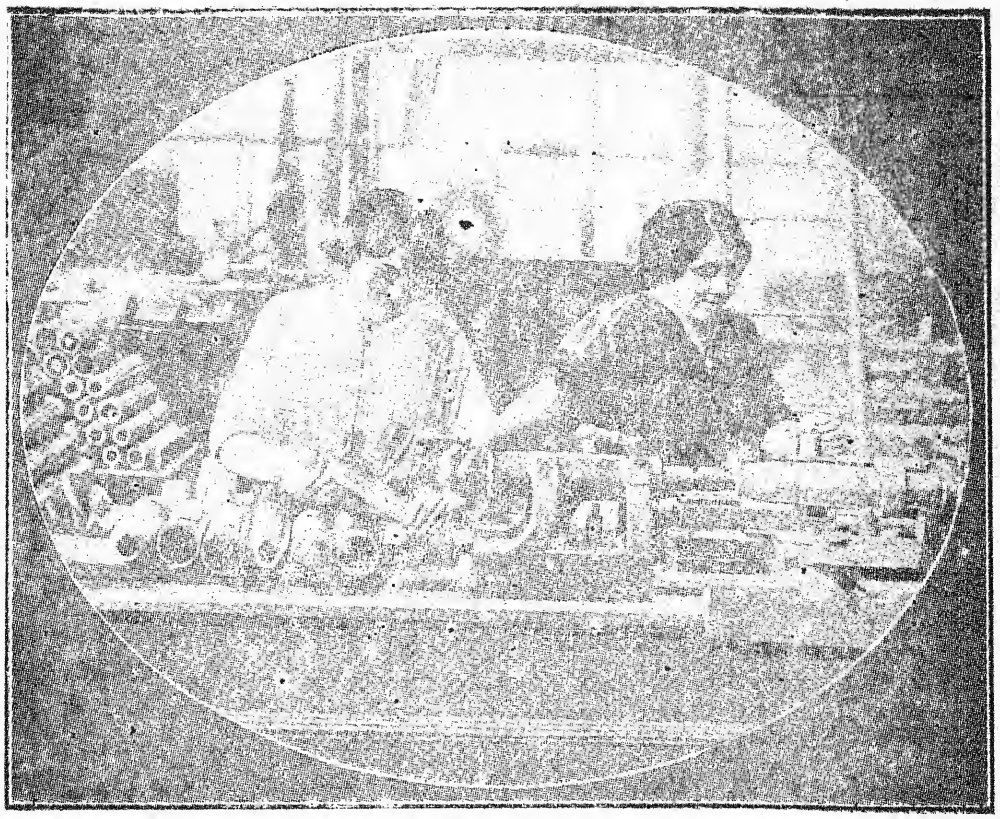

फ्रेंच रमणियां गोले बना रही हैं।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

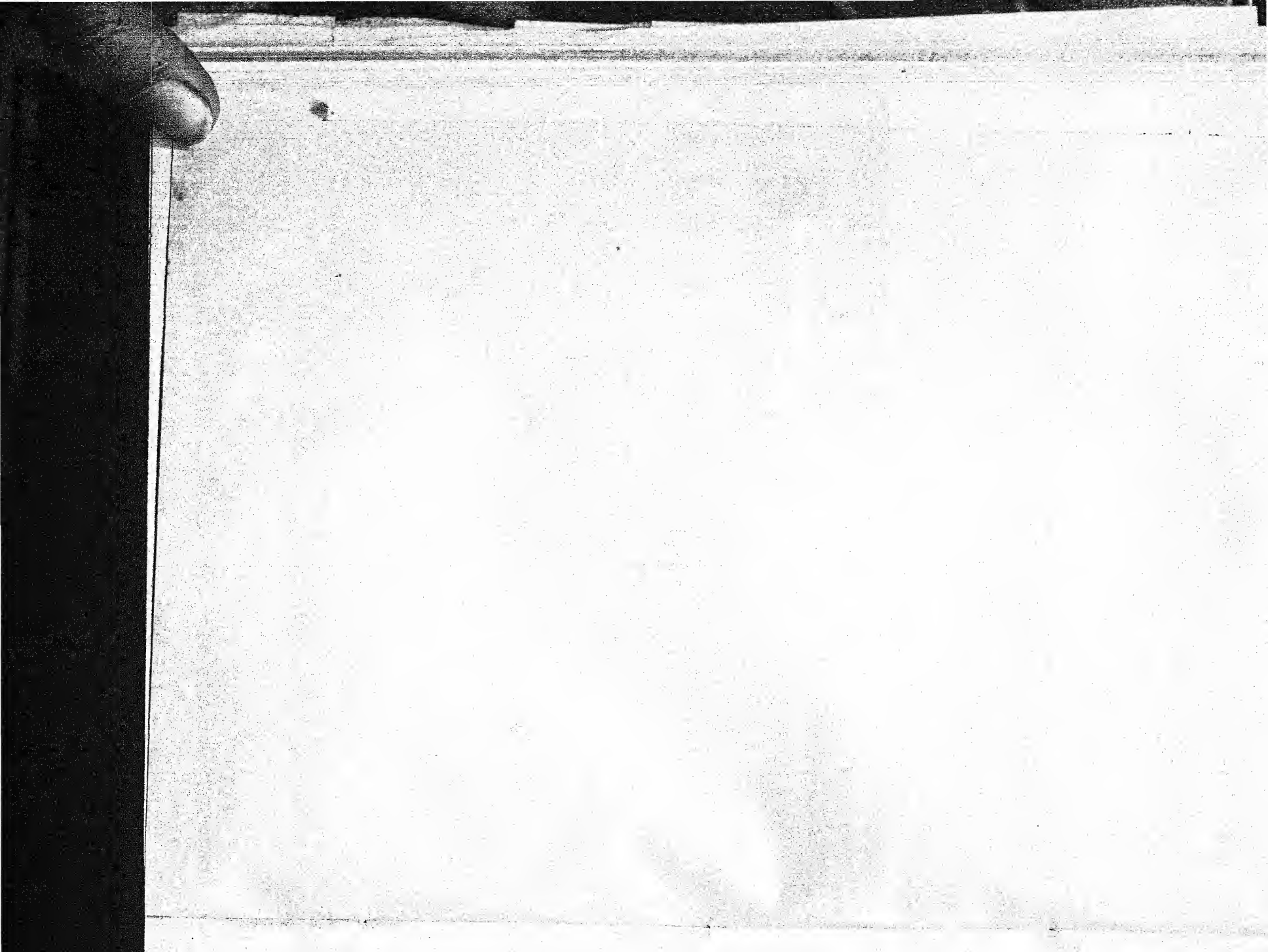

कुल में कन्याएँ अधिक होती हैं, जिस कुल में विद्या का नाम भी नहीं है, जिस कुल में ववासीर, क्षय, अग्निमांद्य, अपस्मार, कुष्ट इत्यादि रोग पाये जाते हैं, उस कुल से विवाह-सम्बन्ध कभी नहीं करना चाहिये। सगोत्रियों से विवाह सम्बन्ध करने से होनेवाली सन्तान अंधी, मूर्ख अथवा पागल होती है, ऐसी शास्त्राज्ञा है।

पच्चीस वर्ष की अवस्था में विवाह करना चाहिये, कारण उसके बाद सन्तान कम पैदा होती है, ऐसा अनुभव है। आजकल प्रीति-विवाह (Love marriage) की ओर लोगों का अधिक ध्यान है परन्तु प्रीति-विवाह सन्तान-शास्त्र से सम्मत नहां है। कारण प्रेमीजन सम्बन्ध करते समय एक दूसरे के दोषों की ओर ध्यान नहीं देते। जिन लोगों को ऐसे रोग होगये हैं, जिनकी औषधि नहीं हो सकती, ऐसे लोगों का समाज से कुछ सम्बन्ध नहीं होना चाहिये। ऐसे लोगों की क्या व्यवस्था करनी चाहिये यह प्रश्न अभी हल नहीं हुआ। अमेरिका में ऐसे लोगों को किसी दूर जगह पर रखते हैं पर अभी इस उपाय से कुछ फायदा नहीं हुआ।

सुप्रजा-जननशास्त्र के नियमों के अनुसार रक्त की गड़बड़ न हो इसीलिए हिन्दुओं में जाति निर्माण हुई हैं। गुण-कर्म के अनुसार ऊँच अथवा नीच जाति समझी जाती है, यह बात सत्य है। पर मनु जी ने एक जगह कहा है कि अपने जाति के अनुसार कर्म न होने पर इच्छानुसार धन्धा करे परन्तु दूसरी जातियों से सम्बन्ध कर रक्त को न बिगाड़े। वर्णसंकर होने से कुल क्षय होता है यह बात इतिहास से सिद्ध होती है। खालडियन्स, प्लेबियन्स, रोमन्स वगैरः जातियों के ह्रास होने का कारण वर्णसंकरता है। हिन्दुओं में जब तक वर्णव्यवस्था ठीक तौर से थी, तब तक हिन्दुओं की उन्नति होती रही। जब ब्राह्मण गर्विष्ट होगये, क्षत्रियों को मत्सर ने आ घेरा तब एक दूसरे को नीचे गिराने का प्रयत्न करने लगे अर्थात् जातियों के बन्धन शिथिल होते गये और अन्त में वर्णसंकर होकर हमारी अवनति होने लगी। इस वर्णसंकरता को बुद्धदेव ने और भी बढ़ाया। ब्राह्मणों का महत्व घटाने की इच्छा से इन्होंने सब जातियों को एक करने की कोशिश की। बौद्ध धर्म का उच्छेद करने का प्रयत्न श्रीशंकराचार्य जी ने किया परन्तु उनके बाद संन्यस्त वृत्ति और ब्रह्मचर्य की ओर लोगों की प्रवृत्ति हुई और गुण और शीलसम्पन्न सन्तान की उत्पत्ति कम होती गई। हमारे धर्मशास्त्रों में सुप्रजा-जननशास्त्र के तत्व पाये जाते हैं परन्तु उन तत्वों की ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता, इसलिए हमारी अवनति होती गई है।

अब यदि हम चाहें कि भारत में भीष्मपितामह जैसे दृढ़निश्चयी, अर्जुन जैसे वीर और श्रीकृष्ण जैसे राजनीति-निपुण पुरुषरत्न उत्पन्न हों तो हमें चाहिये कि नीति-युक्त आचरण कर गुण-शील-युक्त प्रजा निर्माण की ओर अधिक ध्यान दें। हमारे समाज में इस सु-सन्तान-शास्त्र का प्रसार जितनी जल्दी हो उतनी ही अधिक उन्नति होने की आशा करना क्या व्यर्थ हो सकता है?

बबुआ का मकतब।

[लेखक—श्रीयुत छबीलेलाल गोस्वामी।]

(१)

लाला अजुध्या परशाद मुख़्तार बिहार के प्रसिद्ध नगर पटने के एक रईस हैं। आपके पिता साधारण वृत्ति के थे, पर आपने अपनी मुख़्तारी से ख़ूब ही रुपये पैदा किये। जिस समय आपकी मुख़्तारी चल रही थी उस समय अच्छे अच्छे बारिस्टर भी आपके सामने आने में हिचकते थे। सच को झूँठ और झूँठ को सच करा देना आपके बाएँ हाथ का खेल था। सौ में नब्बे मुकद्दमें आप जीत लेते थे। अदालत भी आपके गुणों से परिचित थी पर आप जिस ढंग से मुकद्दमें को लड़ते थे, वह सब जान बूझ कर भी अदालत को आप ही के पक्ष में सम्मति देनी पड़ती थी। बिहार के बड़े बड़े अन्याय-परायण जिमींदार तक आप से पूँछ कर तब कोई कुचक्र रचा करते थे। जिसके विरुद्ध आप अदालत में खड़े हो जाते, फिर उसका निस्तार कठिन हो जाता था। आपने अपने इन्हीं अद्भुत गुणों के कारण मनों रुपये बटोरे हैं। और अभी तक न जाने और कितने रुपये जोड़ते, पर अब चार वर्ष से आपने अपना यह व्यवसाय छोड़ दिया है। मुख़्तारी छोड़ने का मुख्य कारण आपके पुत्र की मूर्खता है। आपका पुत्र वकील है और उसमें आपके गुणों का अभाव है। बरसों आपने अपने पुत्र को अन्याय के पाठ पढ़ाये पर उसके कूढ़ मग्ज़ में आपकी एक भी शिक्षा न घुसी। यहां तक कि एक दिन चिढ़कर आपके पुत्र ने कहा—"साहब! या तो आप मुख़्तारी छोड़ दें या मैं ही वकालत छोड़ दूं। मेरे साथी वकील रात दिन मुझे ताना मारा करते हैं। अब वह समय नहीं रहा कि पुरानी अंधाधुंधी चली जाय।" बस इसीसे दुःखी होकर आपने मुख़्तारी छोड़ दी है। अब आप घर ही पर बैठे रहते हैं किन्तु घर पर बैठे ही बैठे आप साल में दो चार ऐसे मुकद्दमें खड़े करवा देते हैं कि जिन्हें लोग याद करें।

आपकी अवस्था इस समय कोई पचास वर्ष की है परन्तु आपके हौसले अभीतक सोलह वर्ष के छोकड़ों से कम नहीं है। सफेद बालों को ख़िजाब से काले करके, आंखों में आगरे का सुरमा लगाकर, दांतों में लखनऊ की मिस्सी जमाकर, ओठों पर पान की लाली चढ़ा कर और मुंह से तम्बाकू का धुवां छोड़ते हुए जिस समय आप अपनी शान में जाते हैं वह दृश्य देखते ही बनता है।

संध्या को हवा खाने के समय जब आपकी जोड़ी गाड़ी नन्हींजान के दरवाजे पर खड़ी होती है और उसमें से उतर कर आप कोठे पर तशरीफ ले जाते हैं, उसी समय यह पता लगता है कि आप किस कैंड़े के आदमी हैं। वह गोल चौगोसिया टोपी, लम्बा चपकन, हाथ भर चौड़ी मोहरी का पायजामा और कामदार जूता आपको किसी नव्वाब साहब का फर्जन्द सा साबित करता है। इतना सब होने पर भी आपको अपने 'धरम' का पूरा खयाल रहता है। रामनवमी पर बाबा प्रागदास की ठाकुरबाड़ी में आप अपने खर्च से लौंडों का नाच कराते हैं। जन्माष्टमी पर तो कोई ही ऐसी गणिका होगी जो आप से पुरस्कृत न होती होगी। भाँड़-भगतियों के आप अवैतनिक संरक्षक हैं।

आपकी आन्तरिक अभिलाषा राय बहादुर बनने की थी सो वह भी पूरी हो चुकी है। अब

आप बेनागा आठवें दिन साहब से मिलने नहीं जाते। साहब बहादुर भी 'समुद्री बुड्ढे' से पिंड छूटा जान बहुत ही सन्तुष्ट हैं।

(२)

एक दिन सन्ध्या को लाला साहब ने अपने पुत्र बाबू शिवदयाल को जो विकालत करते थे बुला कर कहा–"बबुआ अब पांच साल का हो चुका है, इसलिए उसका मकतब होना बहुत ही लाजिमी है।"

शिवदयाल–"मकतब! मकतब तो मुसलमानों में होता है?"

लाला साहब–"हिन्दुओं में क्या नहीं होता?"

शिव०–"होता है, पर अब यह बन्द होना चाहिये।"

लाला०–"तो क्या अब लड़के न पढ़ाये जायँगे?"

शिव०–"क्यों न पढ़ाये जायँगे पर हां मकतब के बदले में विद्यारम्भ किया जायगा।

लाला०–"फिर क्या तुम्हारा इरादा शाश्तरी (हिन्दी) पढ़ाने का है?"

शिव०–"जी! हां।"

लाला०–"बड़े अफसोस का मुकाम है कि तुम ख़ानदानी रस्मो-रिवाज़ से मुंह मोड़ते जाते हो!"

शिव०–"मकतब क्या हम लोगों का खानदानी रिवाज है?"

लाला०–"बेशक! इसमें भी कोई पूछने की बात है? मैं हमेशः से देखता आ रहा हूं।"

शिव०–"साहब! यह प्राचीन रीति नहीं है, कुछ दिनों से होगई है। अपने यहां की प्राचीन परिपाटी तो कुछ और ही थी।"

लाला०–"तुम तो बात बात में तवारीख की तरफ झुक जाते हो। मैं हर एक बात में पंडितों की नकल करना मुनासिब नहीं समझता।"

शिव०–"इसमें पण्डितों की नकल क्या है? अपने यहां से जो बातें चली गई हैं और दूसरों के यहां से जो बातें अपने यहां चली आई हैं, उन्हें बदल लेना ही बुद्धिमानी है।"

लाला०–"यानी—?"

शिव०–"मकतब की रीति उठाकर अक्षरारम्भ की परिपाटी चला दी जाय।"

लाला०–गोया उर्दू की जगह में शाश्तरी की तालीम दी जाय?"

शिव०–जी! हां, यही मेरा अभिप्राय है।"

लाला०–"तुम अपना 'अभीपराय' अपने पास रक्खो। मैं ऐसी फिजूल और नाकिस राय को हर्गिज पसन्द नहीं करूंगा।"

शिव०–"किन्तु मैं बबुआ को हिन्दी ही पढ़ाना चाहता हूं। पहिले घर की विद्या पढ़ा दी जाय, फिर बाहर की देखी जायगी।"

लाला०–"ख़ैर, तुम्हें अख़्तियार हासिल है अपने बच्चे को जो मुनासिब समझो पढ़ाओ मैं अब इस मुआमिले में हर्गिज दखल न दूंगा।"

शिव०–आपतो असन्तुष्ट हो गए। मैंने अङ्गरेज़ी, उर्दू और हिन्दी तीनों का मिलान करके देखा है कि हिन्दी को कोई भी भाषा नहीं पाती। हिन्दी में जो लिखा जाता है, वही पढ़ा भी जाता है और थोड़े ही दिनों में इसका अभ्यास हो जाता है। आपने यदि हिन्दी पढ़ी होती तो आप फिर उसके विरुद्ध कुछ भी न कहते।"

लाला०–(त्योरी बदलकर) चे खुश! मुझे समझाने आए हैं। बस, अब मैं तुमसे गुफ़्तगू करना नहीं चाहता।"

निदान शिवदयाल को वहां से उठ जाना पड़ा।

(३)

कई दिनों तक मकतब का घोल मठोल होता रहा पर लाला साहब अपनी ज़िद से बाज नहीं आये। अन्त में एक दिन इस विषय के निर्णय के लिए एक पञ्चायत बैठी. उसमें इस प्रकार विचार हुआः—

"शाशतरी और उर्दू का झगड़ा इनदिनों ज़ोर पकड़ता जा रहा है, मगर मैं इस झगड़े को बहुत बुरा खयाल करता हूं।" लाला साहब ने कहा।

बाबू विशेशरपरशाद ने कहा,–"बेशक, बेशक! मैं आपकी राय से इत्तफाक करता हूं।"

मुंशी जगन्नाथपरशाद–"मुसलमानों और हिन्दुओं में नाइत्तफाकी पैदा करने में इस झगड़े ने बहुत बड़ा हिस्सा लिया है।"

मासटर कैलासनरायन ने कहा–"आपका फर्माना बजा है। हिन्दू मुसलमानों में मेल रहने के लिए यह मुनासिब है कि हिन्दू लोग उर्दू ही में अपने बच्चों को तालीम दें।"

लाला साहब–"वाह, वाह! क्या अच्छी बात कही है! बेशक आपकी राय काबिले क़द्र है।"

बाबा प्रागदास ने कहा–"आप लोगों का कहना ठीक है क्योंकि हिन्दी के लिए एक नया झगड़ा खड़ा करना ठीक नहीं है।"

बाबू विशेशरपरशाद–"बाबा जी! शाशतरी तो आप लोगों की और मसतूरात (स्त्रियों) की ज़बान है, हम लोगों को इससे क्या गरज़?"

बाबा प्रागदास–"ठीक है, धर्मावतार!"

लाला साहब–"मेरी बीबी शाशतरी पढ़ी हुई है, बस जब कोई ख़त शाशतरी में आता है मैं उससे सुन लेता हूं और उसीसे जवाब भी लिखवा देता हूं। आज तक मेरा तो कोई काम शाशतरी के बग़ैर रुका नहीं है।"

बाबा प्रागदास–"सच है धरम मूरत।"

मासटर कैलासनरायन–"मेरी बीबी शाशतरी में ख़ूब मश्शाक है। यहां तक कि बाबा तुलसीदास की रामायन बआसानी पढ़ लेती है। पस इससे ज़ियादह शाशतरी की हिमायत हम लोग नहीं कर सकते।"

लाला साहब–"मगर जनाब! आजकल के नातज़रिबेकार लड़के शाशतरी ही के लिए मरे जारहे हैं!"

इसी समय कमरे में पैर रखते रखते मुंशी राधेकिशन ने कहा–"लाला साहब! आदाब अर्ज़ है!"

लाला साहब–"बन्दगी अर्ज़ है। आइए तशरीफ लाइए। कहिए आपका मिज़ाज तो अच्छा है?"

मुंशी राधेकिशन–"जी! आपकी इनायत है।"

बाबा प्रागदास ने कहा–"मुंशी जी! आशीर्वाद।"

मुंशी राधेकिशन–"आहा, आप भी बिराज रहे हैं। परनाम।"

बाबू विशेशरपरशाद–"कहिए मुंशी जी! क्या राय ठहरी?"

मुंशी राधेकिशन–"साहब! बिरादरी के लोग सख़्त नाराज हैं। अगर मकतब न होगा तो कोई भी शरीक न होगा।"

बाबा प्रागदास–"जो सब की सम्मति है वही होना चाहिये।"

लाला साहब–"बिरहमन बचन परमान। अब मकतब ही का ठीक रहा।"

इस पर सब ने एक साथ 'बजा है', 'दुरुस्त है', 'ठीक है' और 'बेशक बेशक' की आवाज़ों से शाशतरी को उड़ा दिया और मकतब का पक्का हुआ।

(४)

उदास होकर शिवदयाल ने अपनी स्त्री चमेली से कहा–"लो अब लड़का मौलवी साहब ही के आधीन होगा ।"

चमेली–"पंचायत ने यही निश्चय किया ?"

शिवदयाल–"पंचायत कैसी ? वहां तो पूरी धींगाधींगी थी ।"

चमेली–"लाला जी की जिद थी, सो उन्होंने अपनी ही बात रक्खी ।"

शिवदयाल–"हिन्दुओं का घोर अधःपतन हुआ ।"

चमेली–"सच तो यह है कि हिन्दू नाम की कोई जाति ही इस संसार में नहीं रही । जिस जाति को अपनी मातृभाषा का ही अभिमान नहीं, वह जाति अपने को हिन्दू किस मुंह से कहती है ?"

शिवदयाल–"यदि तुम स्वीकार करो तो मैं अपने माता पिता से अलग हो जाऊं क्योंकि मैं बालक को हिन्दी ही पढ़ाना चाहता हूं ।"

चमेली–"अलग होने का कोई प्रयोजन नहीं । मैं स्वयं उसे हिन्दी पढ़ाया करूंगी और किसी को पता भी न लगने दूंगी ।"

शिवदयाल–"हां यह बात तो तुमने अच्छी सोची है । वे उर्दू पढ़वाएं और चुपचाप तुम हिन्दी पढ़ाओ ।"

चमेली–"बस जिस दिन मकतब की सायत निकलेगी उसी दिन से मैं भी हिन्दी पढ़ाना आरम्भ कर दूंगी ।"

शिवदयाल–"मैं तुम्हारी इस सम्मति से सहमत हूं ।"

निदान इसी निश्चय के अनुसार जिस दिन मौलवी साहब मकतब कराने आए, उस दिन मकतब के पहिले ही चमेली ने चुपचाप 'श्रीगणेशायनमः' करा दिया और इसके पीछे मौलवी साहब ने 'बिसमिल्लहउलरहमानुर्रहीम' कराया। मकतब में लाला साहब ने हज़ारों रुपये खर्च किए थे । कई दिनों तक बड़ी धूम धाम से महफिलें होती रही थीं

(५)

ऊपर की घटना को तीन वर्ष बीत चुके हैं, बबुआ नित्य दो घंटे मौलवी साहब से पढ़ता है, अब उसके किसी स्कूल में भर्ती होने की बात है । एक दिन लाला साहब ने बबुआ को अपने पास बुला कर उसकी परीक्षा ली, पर वह अपना लिखा खुद न पढ़ सका और दूसरों की लिखी हुई उर्दू भी ठीक ठीक न पढ़ सका। इस पर लाला साहब ने मौलवी साहब से जवाब तलब किया । मौलवी साहब ने ताने के ढंग से कहा:—

"जनाब यह उर्दू है, इसके पढ़ने में बहुत वक्त दरकार है । यह आपकी शाशतरी नहीं कि घोल कर पिला दी जावे ।"

इसी समय शिवदयाल के एक मित्र नानकचन्द ने कहा–"अच्छा, बबुआ ! अब हिन्दी की भी परीक्षा दे दो ।"

लाला साहब–"क्या बबुआ हिन्दी पढ़ता है ।"

नानकचन्द–" जी ! हां, इसकी मां ने इसे हिन्दी पढ़ाया है ।"

इस बात को सुन कर प्रथम तो लाला साहब बहुत कुढ़े, पर जब बबुआ ने हिन्दी में योग्यता प्रकट की तब लालाजी ने कहा–"हिन्दी में तो यह खूब ही मश्शाक है ।"

नानकचन्द–"अब हिन्दी के बारे में आप क्या राय रखते हैं ।"

लाला साहब–"बेशक ! मेरी बहुत बड़ी भूल थी, जो मैंने बबुआ को उर्दू के झमेले में

फँसाया। मुझे तो आज हिन्दी के जौहर दिखाई दिये।"

बाबू विशेशरपरशाद ने कहा–"हिन्दी में जो लिखा जाता है, वही पढ़ा भी जाता है। और तअज्जुब तो यह है कि नानकचन्द की घसीट भी इसने बआसानी पढ़ली, साथ ही हिन्दी के अखबार भी यह मजे में पढ़ लेता है।"

मुंशी राधेकिशन–"उर्दू के अखबार तो इससे पढ़े ही नहीं जाते।"

बाबा प्रागदास–"जी हां, धर्मावतार।"

लाला साहब–"खैर, तो अब मेरी राय में बबुआ को मदरसे में अङ्गरेज़ी के साथ दूसरी जबान हिन्दी ही पढ़ाई जाय।"

बाबा प्रागदास–"ठीक है, धरम मूरत।"

लाला साहब–"बाबाजी! आप अच्छा दिन देख कर मुझे भी हिन्दी पढ़ाइए, मैं हिन्दी की खूबियों पर निहायत ही खुश हुआ हूं।"

निदान, फिर तो कितने ही हिन्दीद्रोहियों ने लाला साहब के साथ साथ हिन्दी पढ़ी। अब ये लोग कभी हिन्दी की निन्दा नहीं करते।

शिवाजी की राज्यव्यवस्था।

[लेखक–तरुण भारत।]

शिवाजी की योग्यता समझने के लिए उसकी राज्यव्यवस्था का भी अभ्यास करना आवश्यक है। उसकी राज्यव्यवस्था के मोटी तरह से चार भेद किये जा सकते हैं (१) अष्टप्रधान मंडल। (२) मुल्की व्यवस्था। (३) किले और (४) लश्कर। इन प्रत्येक के विषय में यहां अलग अलग विचार करना है।

(१) अष्टप्रधान मण्डल।

राष्ट्र के इतिहास में शिवाजी के समान पुरुष का महत्व बहुत अधिक है। टिप्पू सुलतान, वेलिंग्टन आदि रणभूमि पर पराक्रम करनेवाले पुरुष कितने ही मिलेंगे। उसी प्रकार पिट और वेलस्ली के समान राजकार्य-कुशल पुरुष भी अनेक मिलेंगे। पर इन दोनों बातों में जिसने प्रवीणता प्राप्त की है ऐसा शिवाजी के समान निरक्षर और संस्कृतिहीन पुरुष अप्राप्य है और इसीसे शिवाजी की अद्वितीय योग्यता दर्शित होती है। किसी को परम्पराप्राप्त आधार और अनुभव तो किसी को अनुकरणीय उदाहरण मिल जाता है; पर शिवाजी को कुछ भी प्राप्त न था। ऐसी स्थिति में भी शिवाजी ने राज्य की चिरकालीन दृढ़ता के लिए अनेक संस्थाएँ निर्माण कीं। देशकाल के मान से यथायोग्य, दृढ़ता के मान से पूर्ण दृढ़, उपयुक्तता के मान से वे सर्वव्यापी संस्थाएँ ऐसी थीं और इसी कारण सैकड़ों वर्ष बीतने पर भी बिल्कुल विपरीत परिस्थिति में से पार पाते पाते उनके कुछ मूलचिन्ह आज भी विद्यमान हैं। इन्हीं में से "अष्ट-प्रधान मंडल" मुख्य संस्था थी। इन संस्थाओं के तत्व दूरदृष्टि के थे और इस कारण स्वसंरक्षण और राज्यवर्धन ये दोनों काम महाराष्ट्र कर सके। औरंगजेब की प्रचंड

शक्ति का सामना कर विजय प्राप्त करने में इन संस्थाओं का बहुत उपयोग हुआ। इसी कारण महाराष्ट्र की स्वतन्त्रता कुछ काल तक कायम रह सकी और संस्थाओं की गति अवरुद्ध होने के कारण ही इस सत्ता का नाश हुआ।

शिवाजी के अष्ट प्रधानों के नाम ये हैं :—

फारसी नाम।	संस्कृत नाम।	कर्तव्य।
१—पेशवा।	पंत प्रधान।	मुख्य दीवानगीरी।
२—मुजुमदार।	पंत अमात्य।	मुलकी वसूल और हिसाब।
३—सुरनीस।	पंत सचिव।	राज्य के सब दफ़्तरों की देखभाल।
४—वाकनीस।	मंत्री।	राजा के खानगी कार्य की देखभाल।
५—डबीर।	सुमंत।	परराज्य से व्यवहार रखना।
६—सरनौबत।	सेनापति।	सब फौज की व्यवस्था रखना।
७— ०	न्यायाधीश।	सब झगड़ों का फैसला करना।
८— ०	पंडितराव।	धर्म खाते का मुख्य।

पेशवा की तनख़्वाह लगभग साढ़े चार हज़ार रुपये महीना, अमात्य की साढ़े तीन हजार, और बाकी प्रधानों की लगभग तीन हजार रुपये महीने थी। आजकल के अङ्गरेज़ी राज्य के वेतन से अगर इसकी तुलना की जाय तो ये वेतन अयोग्य नहीं जान पड़ते। ख्याल रखने की बात है कि उस समय रुपये की कीमत आजकल से बहुत ज्यादा थी।

इन सब में पेशवा मुख्य था, और वह दूसरों पर देख रेख रखता था। राजा के बाद पेशवा का ही दर्जा मुख्य था और वह सिंहासन के पास दहिनी ओर प्रथम स्थान पर बैठता था। मुल्की और लश्करी व्यवस्था पर उसकी देखभाल रहती थी और राज्य की प्रत्येक घटना के लिये वह जिम्मेदार था। सेनापति के हाथ में सब लश्कर का तावा था और वह राजा के बाईं ओर प्रथम बैठता था। अमात्य, सचिव और मंत्री ये तीनों अनुक्रम से पेशवा से नीचे बैठते थे। नाना कार्यों के विभाग होकर प्रत्येक विभाग के लिये एक एक जिम्मेदार रहता और इस कारण उस कार्य में उसे प्रवीणता प्राप्त हो जाती थी, पर यह ख्याल रखना चाहिये कि सिर्फ दो प्रधानों को छोड़ दूसरों को लड़ाई पर जाने के लिये भी तैयार रहना पड़ता था। यह केवल समय का परिणाम था।

शिवाजी के इस प्रधानमंडल की तुलना हिन्दुस्थान के राज्यप्रबन्ध से की जा सकती है। स्थितिवैचित्र्य अथवा कालांतर के कारण कुछ फर्क जरूर दीख पड़ेगा, पर बात एकही है। पेशवा का स्थान गवर्नर-जनरल ने लिया है; उसके नीचे सेनापति, उसके नीचे मुल्की प्रधान यानी अमात्य, उसके नीचे परराज्य से व्यवहार रखने वाला प्रधान यानी सुमंत; हिन्दुस्थान की कौन्सिल में मंत्री, पण्डितराव, और न्यायाधीश इन तीनों को स्थान नहीं है। अङ्गरेज सरकार धर्मविभाग को अपने हाथ में ले नहीं सकती। मंत्री प्राइवेट सेक्रेटरी के समान था। तथापि शिवाजी का खानगी सेक्रेटरी और था, और उसे भी आजकल के प्रायवेट सेक्रेटरी के समान प्रधानमंडल में स्थान नहीं था। मंत्री उससे श्रेष्ठ था और उसे इस मंडल में स्थान था। न्यायाधीश के बदले आजकल लीगल मेम्बर रहता है। परिस्थिति भिन्न रहने के कारण आजकल इंपीरियल एक्सि-

क्यूटिव कौन्सिल में एक दो और प्रधान हैं। अष्टप्रधान इसका अर्थ सिर्फ आठ प्रधान नहीं- कभी ज़्यादा तो कभी कम भी रहते थे। अष्ट-प्रधान को एक सामान्य शब्द समझना चाहिये पीछे राजा अल्पवयस्क होने के कारण एक प्रतिनिधि और प्रधान उत्पन्न हुआ जो राजा के बाल्यकाल में उसका कार्य करता था।

शिवाजी ने इस अष्टप्रधान की कल्पना कहां से उठाई, यह एक प्रश्न है। अगर मुसलमानी राजनीति देखेंतो यह स्पष्ट दीख पड़ेगा कि मुसलमान राजा पूरी तरह खुदमुख्तार रहते थे, उन्हें अपने अधिकार किसी को देना न सुहाता था। अष्टप्रधान अथवा कौन्सिल की रचना का तत्व ही यह है कि राजा के एकतंत्री अधिकार कम न हों और मंत्रियों को कोई अधिकार न होवे केवल आज्ञा के पालन करनेवाले नौकर रहें। यानी मुसलमानी राजनीति ऐसी विकसित नहीं हुई थी कि उससे शिवाजी ने कोई लाभ उठाया होता। अब रही हिन्दू राजनीति की बात। पुराने ग्रन्थों के परिशीलन से यह पता लगता है कि हिन्दू राजाओं के समय अष्टप्रधान की उपस्थिति थी और प्रधानों को स्वतंत्र अधिकार भी रहते थे। बार बार बतला ही चुके हैं कि शिवाजी को रामायण, महाभारत पढ़ने का विशेष शौक था और इन्हीं ग्रन्थों से उसने लाभ उठाया होगा ऐसी कल्पना की जा सकती है। समय के हेर फेर से प्रत्येक कल्पना में कुछ अदल बदल होती है, इसी प्रकार मूल कल्पना में शिवाजी ने भी कुछ अदल बदल किया था।

शिवाजी ने ऐसी योजना बना दी थी कि बिना रोक टोक के चलती रहे पर उसके पालन न करने के कारण बहुत नुकसान हुआ। प्रधान को स्वतंत्र जागीर नहीं दी गई थी, न अधिकार वंशपरंपरा के लिये थे। उन्होंने अपने प्रधान अनेक बार बदले; योग्यता ही अधिकार मिलने का साधन था। इन प्रधानों ने अनेक संकट सहे थे, और अपने कार्य में बड़े प्रवीण थे।

शिवाजी की सब योजना के दो प्रधान उपयोग थे (१) स्वराष्ट्र-संरक्षण और (२) राज्य-संवर्धन। बहुधा दूसरे राज्यों को एक और काम करना पड़ता है वह यह कि अंतःशत्रुओं से बचाव करना चाहिये पर शिवाजी के राज्य में यह प्रश्न उठाही नहीं। और जगहें इतिहास में गदर, बलवा दिखलाई देगा, पर शिवाजी के राज्य में जहां मुसलमान हिन्दू सब तरह के लोग रहते थे यह डर उत्पन्न ही नहीं हुआ। यह राज्य कुछ अंश में लोकसत्तात्मक था, ऐसा कह सकते हैं। देशसेवा करने का यहां प्रत्येक को अवसर था इससे राज्य बहुत दृढ़ होता गया। राज्य के अंदर फौज रखने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी। हमेशा फौज पर-राज्य में अथवा सरहद पर बनी रहती थी। शिवाजी के राज्य में बहुत से मुसलमान थे, पर एक भी मुसलमान विद्रोही न निकला। यह शिवाजी की राज्यव्यवस्था का ही परिणाम हो सकता है। पर-राज्यों को छोड़ कर कई मुसलमान शिवाजी की नौकरी में आकर रहे थे। उस समय आज कल की अथवा मुसलमानी राज्य की प्यूनिटिव पुलिस का कोई काम नहीं था।

ऊपर कह ही आये हैं कि शिवाजी के समय वेतन नगद मिलता था और नौकरी वंशपरंपरा नहीं चलती थी। वेतन के बदले जागीर देने से ये सरदार राजा के हित को छोड़ अपना हित देखने लग जाते हैं और शीघ्रही बलवान होकर राज्य को तोड़ने लग जाते हैं। नौकरी वंशपरंपरा चले तो बेपरवाह हो जाते हैं और दुर्गुण उनमें समा जाते हैं। फिर यह कोई प्रकृति का नियम नहीं कि पिता के समान पुत्र भी हो इतिहास में इसके विपरीत कई बार देखा गया है अथवा यों कहो कि इतिहास इसी बात का साक्षी है। एक योग्य पुरुष अपनी योग्यता से उत्तम स्थिति को पहुंचता है और उसका पुत्र उसी स्थिति में पैदा होने के कारण उसे खो बैठता है। ये दुर्गुण शिवाजी की

मृत्युवाण ।

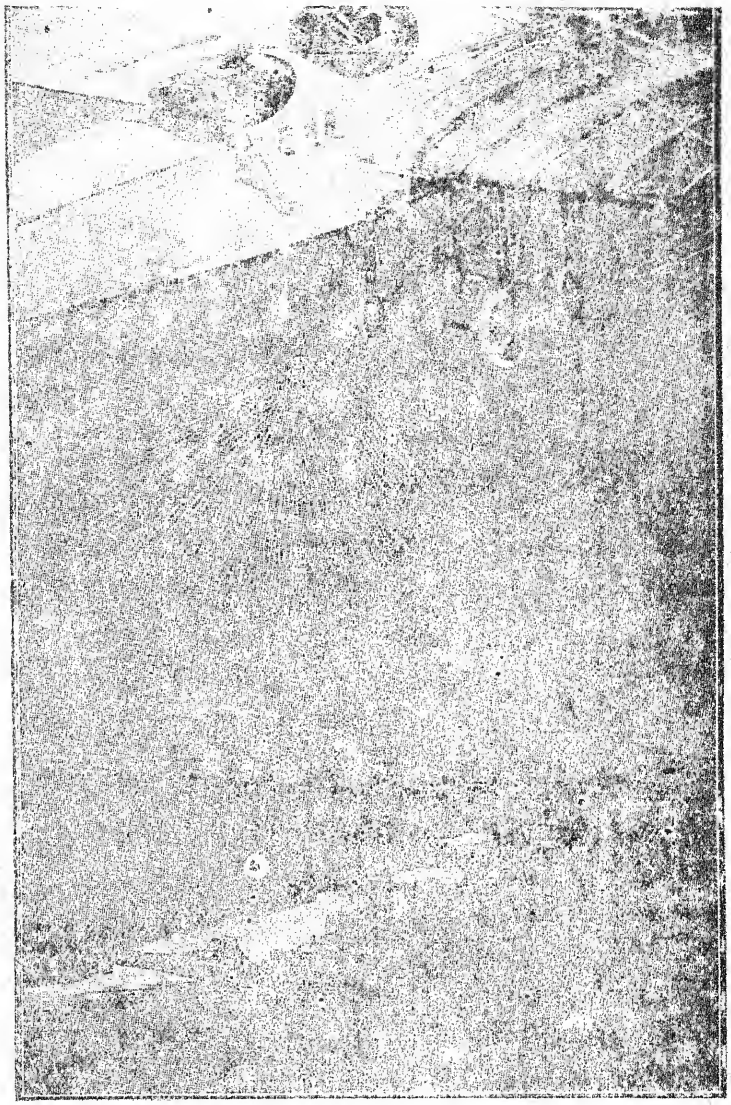

ऊपर जो हवाई जहाज है वह बाण की सूरत की स्टील की पांच पांच सो गोलियां एक बार फेंक रहा है। जब ये ५०० गज ऊपर से फेंकी जायँ तो कल के जोर से २०० गज के क्षेत्रफल में फैल जाती हैं। इस नई गोली से आदमी मर जाता है।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग ।

योजना के कारण राज्य में उसके समय न समा सके, पर पीछे से जब इस योजना का अमल न हुआ तो वे बड़े जोर से उत्पन्न हुए और जैसे मुसलमानी राज्य की उस कारण से दुर्गति हुई उसी प्रकार महाराष्ट्र की सत्ता का भी नाश हुआ *।

(२) मुल्की व्यवस्था।

तीसरे लेख में बतला ही चुके हैं कि मुल्की व्यवस्था के विषय में शिवाजी को दादोजी कोंडदेव से बहुत शिक्षा मिली थी। राज्य का विस्तार ज्यों ज्यों बढ़ता गया त्यों त्यों यह व्यवस्था कायम होती गई। पहिले ज़मीन का लगान अनाज के रूप में वसूल किया जाता था और ज़मींदार अथवा ठेकेदार उसे सरकार में जमा करता था। शिवाजी ने ये दोनों बातें बन्द कर दीं। ज़मीन की पैमाइश कर उसका लगान कायम कर दिया गया और उसे वसूल करने के लिए सरकारी अमलदार नियत हुए। पहले ज़मीनदार अथवा ठेकेदार लगान वसूल किया करते थे। इस कारण इन लोगों से प्रजा को बहुत कष्ट होता था। वाजबी से ज्यादा वसूल करना और सरकार में कम पटाना यह इनका नियम ही था। इस दोष को दूर करने के लिए शिवाजी ने कमावीसदार, महालकरी, सूबेदार वेतन पानेवाले सरकारी अमलदार नियत किये। ज़मीन की पैमायश कर खातेदार के नाम पर चढ़ाना और सरकारी लगान के लिए इकरारनामा लिखवाकर ज़मीन उसके सुपुर्द करना यह रीति शिवाजी ने चलाई। लगान वसूल करते समय उत्पत्ति का दो-पंचमांश से ज़्यादा न लिया जाता था। लगान किश्त करके वसूल किया जाता था।

इन मुल्की अमलदारों को फौजदारी अधिकार भी रहते थे। दीवानी का कोई स्वतन्त्र प्रबन्ध न था। गाँव पंचायत की संस्थाएँ उस समय उपस्थित थी और इन झगड़ों का फैसला इन्हीं द्वारा होता था। विशेष प्रसंग पर आस-पास के गाँव के प्रमुख लोग पंच बनाये जाते थे और उनका फैसला अमल में लाने के लिए सरकारी अमलदार मदद दिया करते थे। उस समय के कायदे हिन्दू धर्मशास्त्रों में से थे और कई बातों में मुसलमानी प्रचलित रीतियां भी स्वीकार कर ली जाती थीं।

मुख्य प्रधान-मण्डल में से पंत-अमात्य और पंत-सचिव इन दो अधिकारियों के हाथ ज़मीन महसूल की सब व्यवस्था थी। पंत-अमात्य लगान वसूल हुआ या नहीं यह देखता और पंतसचिव सब हिसाब की देख-भाल किया करता था। आजकल के रेविन्यू मेम्बर और फायनन्स मेम्बर के समान ये दो अधिकारी थे।

शिवाजी के मुल्क के स्वराज्य और मोगलाई ये दो विभाग थे। सम्पूर्णतया जो प्रदेश अधिकार में था वह स्वराज्य और दूसरों के राज्य में स्थित पर शिवाजी को कर महसूल वगैरः देने वाला प्रदेश मोगलाई कहलाता था। शिवाजी के अधिकार में जो मुल्क था उसका वर्णन यों है:- १-वंशोपार्जित पूना की जागीर। २-मालवप्रांत-इसमें आजकल मावल, सासवड, जुन्नर और खेड़ ये ताल्लुके आते हैं। इसमें अठारह पहाड़ी किले थे। ३-वाईसतारा और कहाड़प्रान्त-आजकल के सतारा ज़िले का पश्चिम भाग। इसमें पन्द्रह किले थे। ४-पन्हालाप्रान्त-कोल्हापूर का पश्चिम भाग। इसमें तेरह किले थे। ५-दक्षिणकोकन-आजकल का रत्नागिरी ज़िला। इसमें जलदुर्ग शामिल होने के कारण ५८ किले थे। ६-उत्तर कोकन-आजकल का थाना जिला। इसमें बारा किले थे। ७-बागलान भिवक-आजकल के नाशिक ज़िले का पश्चिम भाग। इसमें ६२ पहाड़ी किले थे। ८-प्रान्त वनगड़-आज-

* इस विषय पर हमने "प्रभा" में स्वतंत्र लेख लिखा है उसका नाम है "महाराष्ट्र की सत्ता के नाश के कारण" वहां पर इस विषय में विस्तृत विचार किया है (लेखक)।

कल के धारवाड़ ज़िले का दक्षिण भाग। इसमें २२ किले थे। ९–बेदनूर, कोलार और श्रीरंगपट्टन–आजकल का मायसोर का राज्य। इसमें अठारह किले थे। १०–प्रान्तक नटिक–इसमें १८ किले थे। ११–प्रान्तवेलूर–आजकल का अकटिका ज़िला। इसमें २५ किले थे। १२–प्रान्त तंजोर। इसमें ६ किले थे। ये प्रदेश "स्वराज्य" में थे। इसके सिवा परराज्य में से कई प्रदेश थे जो तरह तरह के कर दिया करते थे। प्रत्येक प्रांत में सूबेदार नाम का आजकल के कलेक्टर के समान अधिकारी रहता था। प्रत्येक प्रान्त के दो या तीन उपविभाग थे जिन्हें महाल कहते थे। प्रत्येक महाल का लगान लगभग पौन लाख से सवा लाख तक रहता था। यानी शिवाजी के स्वराज्य का नगद महसूल लगभग पचास लाख था, ऐसा अंदाज कर सकते हैं। सूबेदार का वेतन १००) रुपये महीना था। उस समय रुपये की कीमत ज्यादा थी इसका यहां ख्याल रखना चाहिये। "स्वराज्य" में लूट वगैरः का कोई उपद्रव न हो सकता था। वहां रैयत को ज़मीन महसूल के सिवा कोई अन्य कर न देना पड़ता था। मुल्की व्यवस्था में लश्करी अधिकारियों को कोई अधिकार नहीं था। प्रत्येक गांव में एक पटेल, एक कुलकर्णी, और दो तीन गांव मिल कर एक कमावीसदार इतने अधिकारी रहते थे, और इन पर एक तरफदार, अथवा तालुकदार अथवा महालकरी रहता था। तालुकदार से ऊपर का अधिकारी सूबेदार था। प्रत्येक महाल का लगान नाना किलों में ले जाकर रखने की रीति थी। यहां भी ख्याल रखना चाहिये कि इन अधिकारियों को न तो जागीर मिलती थी, न वंशपरंपरा के अधिकार ही प्राप्त हो सकते थे। प्रत्येक को वेतन प्रत्येक माह सरकारी खज़ाने से मिलता था। मंदिरों के नाम पर ही केवल ज़मीन दी जाती थी या कभी कभी विशेष पराक्रम करनेवाले को ज़मीन इनाम मिल जाती थी।

(३) किले।

महाराष्ट्र देश भर में आजकल टूटे फूटे सैकड़ों किले दिखाई पड़ते हैं। ये सब किले शिवाजी के समय के हैं और इस महापुरुष की दूरदृष्टि और राजकार्यचातुर्य की साक्षी दे रहे हैं। इनकी उपयोगिता देखकर मुसलमानी राज्य के सब किले उन्होंने दुरुस्त करवाये और रायगढ़, प्रतापगढ़, सिंधदुर्ग ऐसे नाना नये किले भी बनवाये। इन किलों के तीन प्रकार हैं। पानी में अथवा अन्तरीप पर बनवाये हुए को जज़ीरा या दुर्ग कहते हैं। पहाड़ी किले के चारों ओर गढ़ या मैदान के किले को भूमिकोट या सिर्फ कोट कहते हैं और तीसरे पहाड़ी किले, रायगढ़, प्रतापगढ़, पन्हालगढ़ ये पहाड़ी किले हैं; सिन्धुदुर्ग, सुवर्णदुर्ग ये जज़ीरे हैं; बीजापूर, सोलापूर इत्यादि भूमिकोट किले हैं। भूमिकोट को शिवाजी विशेष महत्व नहीं देते थे। विशेष उपयोगी थे पहाड़ी किले और दुर्ग किले, ये कठिन पहाड़ियों पर बनवाये जाते थे ताकि शत्रु की पहुंच न हो सके। किलों में सब प्रकार का बन्दोबस्त रहता था, इस कारण घेरा पड़ने पर भी शत्रु का कुछ वस नहीं चलता था। महाराष्ट्र की भौगोलिक रचना ही ऐसी है कि इन किलों की रचना बहुत अच्छी हो सकती थी।

प्रत्येक किला और तन्मर्यादापरिविष्ट प्रदेश शिवाजी के राज्य की मालिका का एक एक मणि ही था। इस मालिका ने महाराष्ट्र के राज्य को दृढ़ कस दिया था और यही उसकी शक्ति थी। इन्हीं किलों के सहारे शिवाजी के आश्चर्यजनक कार्य सफल हुए। इन्हीं के कारण लूट वगैरः सुरक्षित पहुंच जाती थी। शिवाजी का प्राप्त किया हुआ द्रव्य इन्हीं किलों के बनवाने में और उन्हें सुरक्षित रखने में खर्च होता था। इन्हीं किलों के कारण महाराष्ट्रों का पराक्रम मनोरंजक भी जान पड़ता है। रायगढ़ का किला

शिवाजी की राजधानी थी। कनटिक प्रान्त में जिंजी नाम का किला अपने अधिकार में उन्होंने बड़े परिश्रम और खर्च से कर रक्खा था। इस किले का कितना उपयोग हुआ है, इसका दिग्दर्शन हम पहले लेख में करा ही चुके हैं। सारांश यह कह देना ठीक होगा कि यदि यह किला होता तो महाराष्ट्र का स्वराज्य इस महापुरुष के बाद शीघ्र ही अस्त न हो जाता। सिंहगढ़ ने तो तानाजी मालसुरे को अमर कर दिया है। प्रतापगढ़ का ख्याल आते ही अफजलखाँ की पराक्रमी चढ़ाई का ख्याल आजाता है। सालेर और पटा इन किलों ने बहुत धन की प्राप्ति करा दी है। थर्मापिली की समता प्राप्त करनेवाला रांगना शिवाजी की जान बचानेवाले महाराष्ट्र अथवा हिन्दुस्थान के बाजी प्रभूरूपी लिओनिदास का ख्याल दिलाता है! दिलेर खां को भागने के लिये भूमि भी न देनेवाले मुरारबाजी का नाम पुरंदर किले से संगठित ही है। पन्हाला और विशालगढ़ ये प्राचीन काल से महाराष्ट्र की रक्षा करते आये हैं। अलीबाग और मालवन ये शिवाजी के जंगी जहाज़ों के आदि स्थान हैं। जिस किले में यह महापुरुष उत्पन्न हुआ वह शिवनेर किला हम किस प्रकार भूल सकते हैं! सारांश, महाराष्ट्र किलों ने भी ऐसा बड़ा नाम कमाया है!

प्रत्येक किले पर एक एक मराठा हवालदार और उसके हाथ के नीचे उसी की जाति के सहायक किले के नाना भागों की रक्षा के लिए रहते थे। यहां और दूसरे अधिकारी एक सबनीस (बहुधा ब्राह्मण) और एक प्रभुकारखाननीस रहते थे। किले की रखवाली और बन्दोबस्त का काम हवालदार के हाथ में था। जमाबन्दी का काम सबनीस के हाथ में और किले के आसपास के प्रदेश की देखभाल भी वही करता था। दाना, घास, बारूद, गोला, मरम्मत वगैरः का काम कारखाननीस करता था। इस प्रकार किलों का काम सुरक्षित चलता था।

(४) लश्कर।

किलों की व्यवस्था से शिवाजी की फौज की व्यवस्था की कल्पना हो सकती है। फौज के दो भेद हैं—(१) घुड़सवार और (२) पैदल। घुड़सवार से पैदल ज्यादा थी। दस पैदल सिपाहियों के ऊपर एक नायक, पचास पर एक हवालदार, सौ पर एक जुमलेदार, एक हज़ार पर एक हजारी नाम का अधिकारी, ऐसे पांच हजार पर एक सरनौबत नाम का अधिकारी था। घुड़सवार की भी व्यवस्था इसी प्रकार की थी। पच्चीस सवारों पर एक हवालदार, पांच हवालदारों पर एक जुमलेदार, दस जुमलेदारों पर एक सूबेदार, दस सूबेदारों पर एक पंच हज़ारी नाम का अधिकारी रहता था।

फौज को वेतन नियमित समय पर देना चाहिये यह शिवाजी का सख़्त नियम था। लोगों की तरफ का बाकी लगान वसूल कर अपना वेतन पूरा कर लें, ऐसा कभी न होने पाता था। नये सिपाही नौकरी में रखते समय उनके चालचलन की पुराने सिपाही जब जमानत देते थे तब वे रक्खे जा सकते थे। तथापि सिपाहियों की कभी कमी न हुई—सदा हज़ारों सिपाही नौकर मिलते ही थे।

शत्रु के मुल्क में चढ़ाई और लूट करने के विषय में शिवाजी ने बड़े सख़्त नियम बना रक्खे थे। किसी भी ब्राह्मण, स्त्री, किसान, गाय, बालक और दुर्बल मनुष्य को किसी प्रकार की भी तकलीफ न होने पाती थी। सब लूट सरकार में जमा होती थी तथापि लूट लानेवाले को योग्य इनाम दिया जाता था। लूट का सामान छिपाने से बड़ी कड़ी सज़ा होती थी। चढ़ाइयों में जो पराक्रम दिखलाते थे उनका दरबार में योग्य मान किया जाता था और पदवी-प्रदान इत्यादि से संतुष्ट किये जाते थे। युद्ध में जो मर जाते उनके आप्त-स्वकीयों को योग्यता के अनुसार नौकरी मिलती थी। लूट

के इरादे से शिवाजी जहां जाते वहां का धन वे बड़ी चतुरता से ढूँढ़ निकालते थे। गुप्त बातों का पता लगाने में वे अत्यन्त प्रवीण थे। इस कारण लोगों की समझ ऐसी होगई थी कि भवानी देवी उन्हें सब बातें बतला देती है।

शिवाजी के जंगी जहाज़ों के बारे में भी हम कुछ जान सकते हैं। दर्यासागर, इब्राहीम खां और मायनाक भंडारी ये तीन सज्जन इन जहाज़ों के मुख्य सरदार थे। जहाज़ी बेड़ा बढ़ाने की शिवाजी की बहुत इच्छा थी। अंगरेज़ लिखते हैं—"स्वतः वह नाविक नहीं था यह अच्छा हुआ! नहीं तो उससे समुद्र भी न बचा होता" उन्हें समुद्र बहुत प्रिय था। बचपन में वे पहाड़ में आकर रहे थे। सिन्धु-दुर्ग का किला बनवाने में उन्होंने विशेषरूप से बहुत श्रम किया था। समुद्र पर भी उनके आदमियों ने अनेक पराक्रमी कार्य किये हैं।

इस प्रकार शिवाजी की राज्यव्यवस्था थी और प्रत्येक स्थान पर उनकी अतुलनीय कुशलता दृष्टिगोचर होती है। इनमें से अनेक तत्व आज की परिस्थिति में भी प्रचलित हैं, यही उनके कार्य और कल्पना की महत्ता है।

हमारी डायरी।

[लेखक—श्रीयुत शिवप्रसाद गुप्त।]

(पूर्व प्रकाशित से आगे)

सोम, मंगल, बुधवार को अर्थात् ४,५,६ तारीखों में कोई विशेष घटना नहीं हुई। केवल ६ की रात्रि को एक डाक्टर के घर में गया था, इन महाशय को बोतल बटोरने का व्यसन है, जिस प्रकार बहुत से लोग स्टाम्प, सिक्का, तितली, मक्खी इत्यादि बटोरते हैं आप उसी भांति बोतल बटोरते हैं। आपके यहां भिन्न २ प्रकार की ३०० बोतलें हैं, ऐसी २ सुन्दर, कुरूप व विचित्र बोतलें हैं कि देख कर बटोरनेवाले की बुद्धि व उपज की सराहना करनी पड़ती है। यह है स्वतन्त्रता का प्रसाद। जब मनुष्य चिन्तारहित होता है तो उसे बड़ी २ बातें सूझती हैं। यहां पर एक बोतल की गर्दन १॥ गज लंबी देखी, व दूसरी केवल आधे इञ्च में सब कुछ थी। एक गुलाब की फल के आकृति की था। कहां तक कहें हर प्रकार की बोतलें थीं, मछली, पुरुष, जूता, रेलगाड़ी, शमादान इत्यादि रूपों की बोतलें यहां थीं।

वृहस्पतिवार ता० ७ जनवरी को हम लोग हारवर्ड विश्वविद्यालय देखने गये, यह विश्वविद्यालय बोस्टन नगर के पास केम्ब्रिज ग्राम में स्थापित है। एमेरिका विद्या की खान है यहां कई सौ विश्वविद्यालय अथवा गुरुकुल हैं। हार्वर्ड का विश्वविद्यालय एमेरिका के उत्तम गुरुकुलों में से एक अत्यन्त उत्तम समझा जाता है। यह इस देश की सबसे प्राचीन विद्यापीठ है। मैं इसका संक्षिप्त वृतान्त फिर लिखूंगा। यहां इस गौरव को दिखाने के लिए केवल इतना ही लिखना अलम् होगा कि एक एमेरिकन रमणी का पुत्र बड़ा विद्या-

रसिक था व पुस्तकों से उसे इतना प्रेम था कि एक अत्यन्त उत्तम पुस्तकालय अपने घर पर बना रक्खा था। यह होनहार अनुभवी विद्वान इसी हार्वर्ड विश्वविद्यालय का विद्यार्थी था। दुःख से कहना पड़ता है कि इस मनुष्य की सांसारिक लीला का अन्त विख्यात टाई-टानिक पोत के डूबने के साथ हो गया। इस विद्यारसिक की दुःखिनी माता ने अपने पुत्र के स्मारक में उसकी पुस्तकों के भंडार को विश्व-विद्यालय को दान दिया किन्तु विश्वविद्यालय में कोई सरस्वतीभवन नहीं था इस कारण अपने प्यारे पुत्र के स्मारकचिन्हस्वरूप यह देवी एक भवन बनवा रही हैं जिसमें २० लाख पुस्तकों के रखने की जगह होगी और इसके निर्माण में प्रायः ६० लाख रुपया व्यय होगा। यह एक देवी का दान है। ऐसे २ यहाँ कई नर-नारी-पुंगवों की कीर्ति यात्रियों के नेत्रों को सुख देने के लिए एकत्र है।

यहां घूमते हुए हम लोग विख्यात अध्यापक सी० आर० लैनमैन (C. R. Lanman) के यहां गये। आप संस्कृत विद्या के रसिक हैं। आपका स्वभाव ऐसा निर्मल बच्चों का सा है कि आपसे थोड़ी देर भी यदि किसी को वार्तालाप का अवसर मिलता है तो उसका मन आपकी सरलता की ओर सहज में ही आकृष्ट हो जाता है। आपने किस प्रकार हमलोगों से प्रेमालाप किया यह यहां कहना व्यर्थ है। आपकी बैठक जिसमें ये अपने पठन-पाठन का कार्य करते हैं संस्कृत तथा पाली पुस्तकों से भरी हुई है। ऐसी प्राचीन २ संस्कृत की पुस्तकें आपके यहां देखीं जो काशी में बड़े २ विद्वानों के यहां जल्दी दृष्टिगोचर नहीं होतीं। आप वास्तव में इस समय हिन्दूधर्म तथा बौद्ध-धर्म की छानबीन में लगे हैं और आपके परिश्रम से जो संस्कृत के ग्रन्थ यहां से निकल रहे हैं वे बड़ी योग्यता से संपादित होते हैं और बड़े ही उपयोगी हैं किन्तु मेरे ऐसे अल्पबुद्धि मनुष्य के भी इस उत्तम कार्य को देख आंखों से आंसू निकल पड़े और एक ठंढी आह खींचनी पड़ी। क्यों ? इसीलिए कि जो काम हमारे देशी विद्वानों के करने का है उसे विदेशी विद्वान् कर रहे हैं और हम बैठे चुपचाप तमाशा देखते हैं। हा ! हमारे प्रातःस्मरणीय विद्यावारिधि विद्वानों में इस ओर क्यों इतनी उदासीनता है यह समझ में नहीं आता। मुझे फिर २ रह २ कर यही ख्याल होता है कि हमारे विद्वान् जहां एक ओर अपने अपने विषय में अद्वितीय विद्वान् हैं तहां दूसरी ओर दासत्व ने, स्वतन्त्र विचार के अभाव ने उन्हें उपयोगी कामों की ओर से इतना उदासीन बना दिया है जिसका ठिकाना नहीं। हां, अब कुछ नवयुवक विद्वान् उत्साह दिखाते हैं किन्तु इनका उत्साह अभी मतमतान्तर और साम्प्रदायिक झगड़ों के ऊपर नहीं उठा और इनकी अभी स्वतन्त्र विचार करने की ओर रुचि नहीं गई। जहां एक ओर आर्यसामाजिक विद्वान्, यद्यपि इस सम्प्रदाय में वास्तविक विद्वानों की संख्या गिनीचुनी ही है, जो काम करते हैं वह वास्तविक छानबीन न करके इस विचार से ही प्रेरित हो कार्य करते हैं कि पुराने हिन्दू अथवा आर्यग्रन्थों में अमुक २ बात नहीं होनी चाहिये क्योंकि वे ऐसा समझते हैं। बस फिर क्या जहां उन्हें अपने पक्ष के निर्बल करनेवाली कोई बात मिली उसे काट फेंका, किसी को अलार्ष कह दिया, किसी को पीछे से मिलाई हुई कह दिया।

मैं यह नहीं कहता कि संस्कृत की पुस्तकों में पीछे से मिलावट नहीं हुई किन्तु पुस्तक का उसकी योग्यता से परिच्छेद होना चाहिये न कि विचारकर्ता के पूर्वकल्पित विचारों के मत के अनुसार। आर्यसमाज जैसी उदार संस्था के लिए यह बड़े लाञ्छन की बात है कि उनके विद्वान् ऐसे संकुचित विचार के हों।

दूसरी ओर अपने को सनातनधर्मी कहनेवाले विद्वानों के बड़े अंश का तो इस ओर

ध्यान ही नहीं गया है, उन्हें तो महात्मा मुहम्मद के दूसरे खलीफा उमर का पैरोकार समझा जावे तो ठीक होगा, जिनका विचार यह था कि संसार में दो प्रकार की ही पुस्तकें हो सकती हैं एक पवित्र कुरान के खिलाफ और दूसरी उसके मुताबिक और उनके ख्याल के मुवाफिक दोनों प्रकारों की पुस्तकों की आवश्यकता संसार को नहीं है। इसी विचार से प्रेरित हो आपने सिकन्दरिया के विख्यात पुस्तकालय को जलाने का घृणित नहीं मूर्खता का कार्य किया था। किन्तु जिन लोगों का ध्यान उधर गया है वे निरे अर्द्धशिक्षित श्रेणी के लोग हैं जो बनी हुई इमारत को ढहाने का कार्य उसके निर्माण करने के बनिस्बत अच्छा कर सकते हैं।

मैं इस प्रसंग को यह लिखे बिना नहीं छोड़ सकता कि अब समय आगया है कि जहां एक ओर गुरुकुल के विद्वान् निरर्थक परिश्रम को छोड़ वास्तविक ज्ञानान्वेषण में लग जावें वहां दूसरी ओर काशी के विद्वत्परिषद् से भी मेरी यह प्रार्थना है कि वह मतमतान्तर के झगड़ों को छोड़ केवल खोज-सम्बन्धी कार्य में लगे। यदि ऐसा करना वे उचित न समझें तो कम से कम इतना तो अवश्य करें कि एक शाखा अपने परिषद् की ऐसी बना दें जो केवल ज्ञानान्वेषण (research) के कार्य में लग जावे।

मुझे भय है कि यह वार्ता अथवा विज्ञापन बढ़ता जाता है किन्तु बिना अच्छी तरह लिखे हुए मेरा मन नहीं मानता पाठक क्षमा करेंगे।

हार्वर्ड प्राच्य ग्रन्थमाला (Harward Oriental Series) के सम्पादक उपर्युक्त विख्यात विद्वान् चार्लस् रोकवेल लैनमैन महोदय हैं। यह माला हार्वर्ड विश्वविद्यालय की ओर से प्रकाशित व मुद्रित होती है। इसमें अभीतक निम्न ग्रन्थ-सुमन विकसित हो चुके हैं :—

१–आर्यसूर कृत–"जातकमाला"–देवनागरी अक्षरों में।

२–विज्ञान भिक्खु कृत–"सांख्य-प्रवचन"–भाष्य रोमन अक्षरों में।

३–Henry Clarke Warren कृत Buddhism in Translation.

४–राजशेखर कवि कृत प्राकृत का नाटक ग्रन्थ "कर्पूर मंजरी"–नागरी अक्षरों में।

५–६–शौनक कृत–"बृहद्देवता"–नागरी में अंगरेज़ी के अनुवाद सहित।

७–८–अध्यापक W. D Whitney अनुवादित "अथर्व वेद"।

९–शूद्रककृत–"मृच्छकटिक"–नाटक का अंगरेज़ी अनुवाद।

१०–Vedic Concordance–वैदिक अनुक्रमणिका–अध्यापक Maurice Bloomfield कृत।

११–पूर्णभद्रकृत–पञ्चतन्त्र–नागरी में।

१२–पञ्चतन्त्र का दूसरा संस्करण–उत्तम भूमिका सहित।

१३–पञ्चतन्त्र का तृतीय संस्करण ४ पृथक् पाठों सहित।

१४–काश्मीरी पञ्चतन्त्र–"तन्त्राख्यायिका।"

१५–भारविकृत–"किरातार्जुनीय"–जर्मन भाषा में।

१६–कालिदास कृत–"शकुन्तला"।

१७–"योगसूत्र"–व्यास के भाष्य तथा वाचस्पति मिश्र की टीका सहित–अंगरेज़ी में।

१८–१९–"तैत्तिरीय संहिता"–अंगरेज़ी अनुवाद।

२०–ऋगवेद में कई बार आये हुये मन्त्रों का समूह Rigveda Repetitions,

२१–२२–२३–भवभूति कृत–"उत्तर रामचरित्र" मूल अंगरेज़ी अनुवाद सहित।

२४–२५–बुद्ध साम्प्रदायिक कथा–Boodhist Legend.

२६–२७–२८–कृष्णमिश्र कृत–प्रबोधचन्द्रोदय मूल व अंगरेज़ी अनुवाद सहित।

२९–३०–विक्रमचरित्र अथवा सिंहासन द्वात्रिंशक। उपर्युक्त पुस्तकमाला को देखने से पता लगता है कि ये पाश्चात्य विद्वान् कितना अधिक परिश्रम संस्कृत के उद्धार करने व उसी के साथ २ आर्य भारतीय सभ्यता का जगत में प्रचार करने के लिए कर रहे हैं।

इस सब परिश्रम के लिए हिन्दू जाति को उपर्युक्त अध्यापक लैनमैन के प्रति सदा श्रद्धा तथा सम्मान पूर्वक भक्ति करनी पड़ेगी। इतना ही नहीं हिन्दू जाति पर इनसे भी बढ़कर उपकार जिन महाशय ने किया है उनका नाम हेनरी क्लार्क वारन Henry Clarke Warren है। आपने पचास हज़ार मुद्रा का दान इस निमित्त इस विश्वविद्यालय को दिया है कि उसके व्याज की आय से यह पुस्तकमाला बराबर छपती रहै। कितने सेठ, साहूकार, महाजन, राजा, बाबू अपने देश में हैं जो ऐसे पवित्र कार्य में एक कौड़ी भी दान देते हों और दें भी क्यों! क्या उन्हें और उपयोगी कामों से धन बचता है जो इस व्यर्थ के टंटे में लगावें! उन्हें नाचमुजरे, गौरांग भोजन, श्वेतमूर्तिस्थापन इत्यादि शुभ कार्यों के सामने इसका कहां ख्याल है। खैर इस महात्मा को जितना साधुवाद दिया जाय थोड़ा है। इनका संक्षिप्त पवित्र वृत्तान्त भी अध्यापक लैनमैन का लिखा पाठकों की भेंट है:—

"थोड़ा समय हुआ हेनरी वारन हमारे मध्य से उठ गये। आपके वसीयतनामे की शर्तों को देख हार्वर्ड के मित्रों के मुख से एकबारगी साधुवाद निकल पड़ा। इसका कारण यह था कि अपने संकल्पद्वारा आप क़न्सी गलीवाला अपना सुन्दर निवासस्थान विश्वविद्यालय को दे गये। इस भवन में एक समय अध्यापक बैक (Beck) रहते थे। इसके अतिरिक्त १५ हज़ार डालर आपने "हार्वर्ड प्राच्य ग्रन्थमाला" के लिए, १० हज़ार डालर दांत के रोगों की शिक्षा के लिए पाठशालार्थ व एक अन्य उतनी ही रकम "अमेरिकन प्राचीन वस्तु शास्त्र संग्रहालय" के निमित्त छोड़ गये।

"आप एपिक्युरियन सिद्धान्त के इतने भक्त थे कि आपका नाम अब इस दानपत्र के छपने के उपरान्त बहुत से हार्वर्ड के पुत्रों को विदित होगा। अबतक आपका नाम उन पर भी विदित न था। यद्यपि यह दान एक बड़े महत्व का विषय है किन्तु आपकी कीर्ति इसी से बस नहीं हो जाती। आपके जीवन के कुछ महान् कार्यों की बातें नीचे पढ़ अपने नेत्रों को कृतार्थ कीजिये।

"आपका जन्म बोस्टन में १८ नवम्बर १८५४ को हुआ था। शैशवावस्था में गाड़ी पर से गिर पड़ने के कारण आपकी पीठ में बड़ी चोट आई थी जिसके कारण आप यावज्जीवन कुबड़े रहे। इस घटना के कारण संसार की बड़ी क्षति हुई क्योंकि आपकी मानसिक प्रतिभा असाधारण श्रेणी की थी व उसमें पवित्र चरित्र, निस्पृह भक्ति तथा उच्च विचार के मिल जाने से एक प्रकार सोने में सुगन्धि मिल गई थी।

"किन्तु इस दुर्घटना के कारण आपको संसार में अपनी शक्तियों की परीक्षा का अवसर बहुत न्यून हो गया। बचपन तथा यौवनावस्था में अपने इस अंगभंग के कारण आपको संसार में वे बहुत से सुअवसर नहीं मिले जो दूसरों को मिल जाते हैं किन्तु आप शूरवीरों की भांति हताश नहीं हुए और अपने उद्यम में लग गये।

"आपकी विशाल प्रतिभा का अन्दाजा आपके उच्च विचारों से जो इतनी अवस्था में विरलोंही

में पाये जाते हैं, लगने लगा। अभी आप कालेज में ही थे कि दर्शन के इतिहास में अपनी लगन के कारण आप अध्यापक पामर (Palmer) के प्रेमभाजन बन गये। आप धीरे २ प्लेटो, कांट व शोपेनहार के बुद्धिमान् शिष्य बन गये। आपकी स्वाभाविक रुचि काल्पनिक प्रश्नों की ओर अधिक थी इसका पता हमें आपकी बौद्ध-धर्म-सम्बन्धी विद्वत्तापूर्ण खोजों से लगता है। किन्तु इसी के साथ आपका ध्यान जगत की वस्तुओं की ओर भी न्यून नहीं था। हमें इसका निश्चय हो जाता है कि आप एक बड़े प्रतिभाशाली वैज्ञानिक भी हो जाते क्योंकि आप में वस्तुओं के छानवीन की अपार शक्ति थी। आप वनस्पति शास्त्र के अध्ययन में अपने अनुवीक्षण यन्त्र का बड़ा ही सदुपयोग करते थे। आपने रसायन शास्त्र का भी अध्ययन किया था व जीवन पर्यन्त एक उत्तम मत्स्यागार aquarium आपके निकट सदा ही आपकी बुद्धि के प्रसार की साक्षी देने को बना रहता था। किन्तु बहुधा विवश होकर आपको इन विषयों की जांच पड़ताल में दूसरों की खोज पर ही सहारा लेना पड़ता था और इसी कारण आपकी जानकारी इन वैज्ञानिक विषयों में बहुत थी और आपने इनको अपने अन्य कठिन परिश्रमवाले कार्यों के बीच में मनबहलाव की तरह रख छोड़ा था। कभी २ जब आप अपना निर्दिष्ट काम करते बहुत थक जाते तो यात्रियों के भ्रमणवृत्तान्त तथा उपन्यास भी पढ़ा करते थे किन्तु आपकी बुद्धि इतनी प्रखर थी कि आप कभी जर्मन, कभी डच, कभी फरासीसी, स्पानिश व रूसी भाषा में यह मनबहलाव का कार्य करते थे।

"आपके विशेष अध्ययन का विषय जिसमें आपने ख्याति पाई है प्राच्य दर्शन शास्त्र था इसमें भी विशेष करके बौद्ध-धर्म-सम्बन्धी। इस अध्ययन में आप किसी विशेषमत के खोजने की बुद्धि से प्रवृत्त नहीं हुए किन्तु विशाल शास्त्रीय तत्व के अन्वेषण करने की बुद्धि से ही आप इस कार्य में लगे। आपने हार्वर्ड में ही संस्कृत पढ़ना आरम्भ कर दिया था व बी० ए० पास हो जाने के उपरान्त अध्यापक लैनमैन से तथा उनके शिष्य अध्यापक ब्लूमफील्ड से उसका अधिक अध्ययन किया। आपकी १८८४ में लण्डनयात्रा और वहां राइस-डेविड महाशय से भेंट आपके पाली भाषा के अध्ययन में जीवन अर्पण कर देने में अधिक उत्साहवर्धक हुई।

"आपका प्रथम लेख एक बौद्ध धर्म-सम्बन्धी कथा पर प्राविडेन्स जर्नल Providence Journal में १८८४ के २७ अक्तूबर वालेअंक में प्रकाशित हुआ। इसके बाद 'छींक' के विश्वास पर एक लेख अमेरिकन ओरियंटल सोसाइटी के जरनल में निकला, फिर आपका लेख Transaction of the International Congress of Orientalists at London में प्रकाशित हुआ। फिर इसके बाद Journal of the Pali Text Society of London में भी प्रकाशित हुआ, किन्तु ये लेख उस विशाल पोत के पेंदे में की एकाध चैलियाँ थीं जिसे उन्होंने अपने उच्च विचार को स्वरूप देने के लिए अभी प्रारंभ ही किया था।

"आपको अपने समय की न्यूनता तथा भिन्न भिन्न शक्तियों का पूरा ज्ञान था इसीसे आपने उसे उन महान् कार्यों की ओर नहीं लगाया जिनकी खोज में अनेकानेक विद्वानों ने अपना समय खो दिया किन्तु कुछ विशेष लाभ न उठा सके किन्तु उन्होंने अपना समय एक अनोखे व नये कार्य में लगाना उचित समझा।

"परिश्रम से अध्ययन करने का फल इन्हें यह मिला कि थोड़े दिनों में पाली के ये पाश्चात्य विद्वानों में एक उत्तम विद्वान गिने जाने लगे। १८९६ में आपकी प्रथम पुस्तक Buddhism in Translations निकली। वारन महाशय की पुस्तक

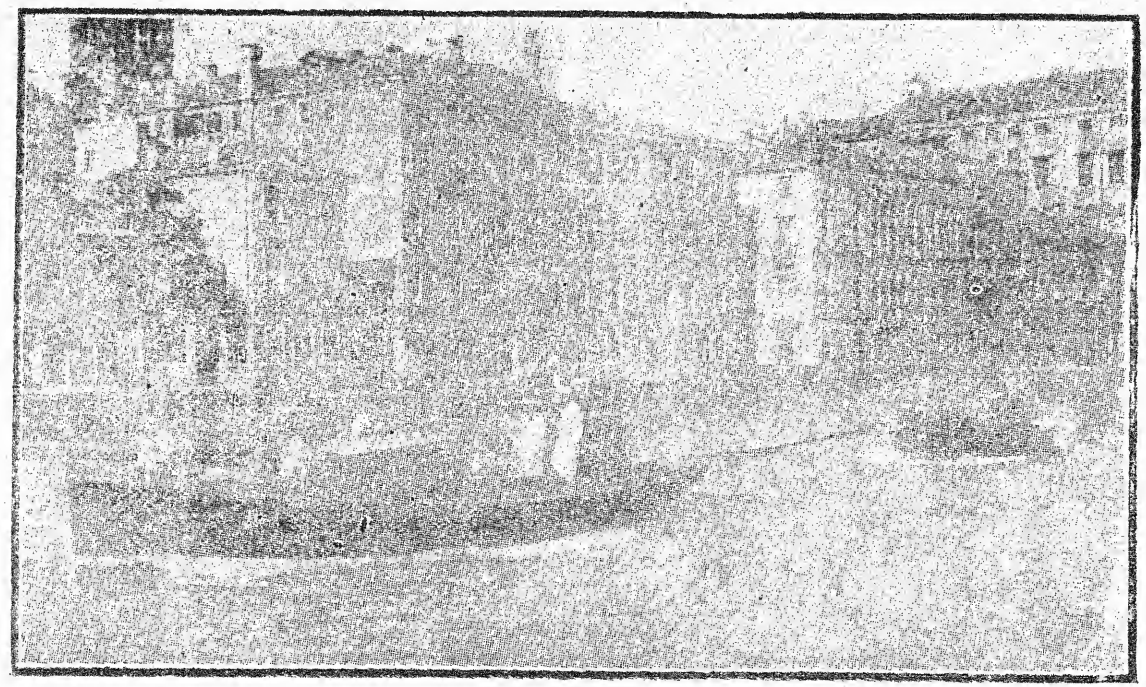

इटालियन मांझी बोट द्वारा जंगी जहाज़ पर पहुंचाये जा रहे हैं।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

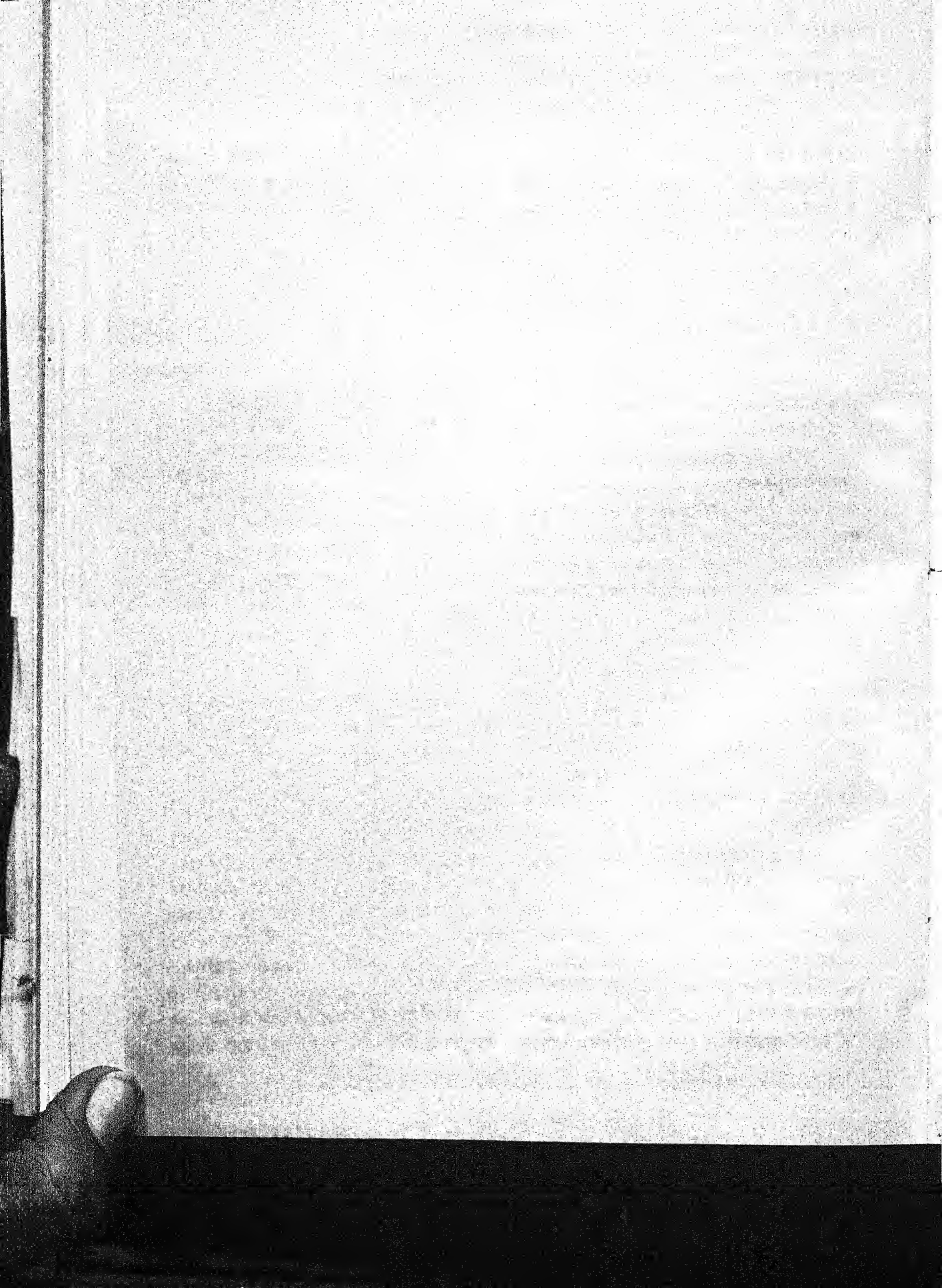

का मसाला विद्यास्रोत के मुहाने से प्राप्त किया हुआ था इसी कारण आपकी पुस्तक की योग्यता अधिक है और यह अत्यन्त प्रामाणिक समझी जाती है और आपको अपनी पुस्तक के विषय में इङ्गलैण्ड, फ्रांस, निदरलैंड, भारतवर्ष तथा लंका के विद्वानों की सम्मतियाँ पढ़ कर वास्तविक व सच्चा सन्तोष हुआ था।

"आपको कुछ दिन बाद लंका के सुभूति महाशय से भेंट करके बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ था। यह विख्यात तपस्वी, जिनकी सादगी तथा प्रेम पर चिलडर्स, फासवाल व राईडेविड Childers, Fousboll, Rhys Davids प्रभृति विद्वान मोहित थे, उन्होंने बड़े सौजन्य से वारन महाशय की प्रशंसा कर उनके उत्साह की वृद्धि की थी और हस्तलिखित पुस्तकों के संग्रह में आपकी बड़ी सहायता भी की थी। स्याम के नरपति ने अपने सिंहासनारूढ़ होने की पच्चीसवीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में बौद्ध धर्म के 'त्रिपतिका' नामक ग्रन्थ को ३९ भागों में मुद्रित करा के बड़ा यश कमाया था (यह एक बड़ा उत्तम उपाय वर्षगांठ मनाने का है। इस देश में बहुत अधिक सभ्य देशों के नरपति आतशबाजी छुड़ा कर यह कार्य करते हैं)। इस पुस्तक की प्रतियां संसार के उत्तम २ पुस्तकालयों को भेंट की गईं थीं। वारन महाशय ने हार्वर्ड पुस्तकमाला को बड़ी उत्तमता से सुनहरी जिल्दों में पिरो कर आपकी भेंट की थी। उसके उपलक्ष्य में इनको त्रिपतिका की ग्रन्थावली पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

"बौद्धधर्म' के प्रकाशन के बहुत पूर्व ही वारन महाशय बुध घोष प्रणीत 'Way of Purity' ग्रन्थ से भलीभांति परिचित थे। इस ग्रन्थ का अपूर्व संस्करण प्रकाशन करने का आपका सच्चा संकल्प था किन्तु उसे पूरा होते देखने का सौभाग्य आपको नहीं मिला किन्तु ह्विटनी, चाइल्ड व लेन (Whitney, Child and Lane) की भांति आशा है कि इनका भी परिश्रम निष्फल न जावेगा। बुध घोष की पुस्तक व वारन के परिश्रम का हाल यहां थोड़ा देना उचित है।

"विक्रम चतुर्थ शताब्दी में बुध घोष एक बड़ा विख्यात पण्डित होगया है। आपकी शिक्षा हिन्दू धर्म के अनुसार उत्तम प्रकार की हुई थी, आप बौद्धधर्म में प्रवेश करने के उपरान्त एक बहुत बड़े लेखक होगये हैं। इन्हें भारत का औगस्टाइन सन्त (St. Augustine) कहना अनुचित न होगा। आपका 'विशुद्धिमार्ग' ग्रन्थ बौद्धधर्म का एक प्रकार विश्वकोष है। अध्यापक चाइल्डर के कथनानुसार यह ग्रन्थ सूक्ष्म तथा उत्तम भाषा में लिखा हुआ अपूर्व ग्रन्थ है। वारन महाशय इसका सूक्ष्म मूल संस्करण मुद्रित कराना चाहते थे उसी के साथ आप इसका उत्तम अनुवाद भी अनेक अन्य विशेषताओं के सहित निकालना चाहते थे। इस पुस्तक में बुध घोष महाराज ने अनेक पूर्व विद्वानों के कथनों का उदाहरण भी दिया है। वारन महाशय पुस्तक की उपयोगिता बढ़ाने के लिए इन उदाहरणों को खोजकर उनके स्थान का पता लगाकर उसकी भी एकतालिका इसके साथ देना चाहते थे।

"इस कार्य के लिए ताड़ पत्र पर लिखी हुई आपके पास ४ भिन्न भिन्न पुस्तकें थीं। प्रथम ब्रह्मदेश की पुस्तक इंडिया आफिस से अंगरेज़ों की कृपा से इन्हें उधार मिली थी और दो सिंघलाक्षर में अध्यापक डेविड्स से प्राप्त हुई थी। पाली मूल ग्रन्थ का सम्पादन वारन महाशय सम्पूर्ण कर चुके थे। इसके अतिरिक्त अनेक लिपिभेदों को भी वे ठीक कर चुके थे जो बर्मी अक्षरों तथा दूसरे संस्करणों में पाये जाते थे किन्तु अभी (Apparatus criticus) के पूरा करने में अत्यन्त परिश्रम का काम बाकी है। अंगरेज़ी अनुवाद का एक तिहाई कार्य हो चुका है जो आपकी बौद्धधर्म नाम की पुस्तक में प्रकाशित होचुका है और आधे प्रमाणों का पता भी उन

ग्रन्थों से लग चुका है जिसके आधार पर बुध घोष ने अपनी पुस्तक को लिखा था।

"अगर वारन महाशय का ग्रन्थ कभी प्रकाशित हुआ तब इसका पता लगेगा कि उनके सम्पादन का ढंग ऐसा था कि उसका अनुसरण अन्य शब्दशास्त्र के तथा उच्च श्रेणी की भाषाओं के अथवा सेमिटिक ग्रन्थों के सम्पादन करने में बड़ा सहायक हो सकता है और आपकी योग्यता इस श्रेणी की प्रतीत होगी कि जो केवल हार्वर्ड की ही नहीं किन्तु अमेरिकन विद्वत्ता का माथा भी ऊँचा कर देगी, यह आशा की जाती है कि उनका यह कार्य पूरा किया जायगा। यदि यह आशा पूर्ण हुई तो उसका फल उस महान् पुरुष का उत्तम स्मारक समझा जावेगा जो हार्वर्ड विद्यालय का एक प्रेमी पुत्र था।"

हार्वर्ड विद्यालय।

केम्ब्रिज-मासाचस्टेट।

मंगलवार १२ जनवरी।

संयुक्तप्रदेश में उच्च शिक्षा की यह सब से प्राचीन विद्यापीठ है। मासाचस्टेट खाड़ी के उपनिवेशान्तरगत सार्वजनिक समिति द्वारा २८ अक्टूबर १६३६ में यह स्थापित हुआ था। इसका जन्म जान हार्वर्ड महाशय के कृपादान से सम्भव हुआ था। आप मासाचस्टेट उपनिवेश के अन्तर्गत चार्लसटाउन के गिर्जे के उपदेशक थे। आपका यह दान १६३८ में हुआ था व १६३६ में विद्यालय को आपका नाम देकर आपकी कीर्ति चिरस्थायिनी की गई। इस विश्वविद्यालय ने १६४२ में अपना कार्य प्रारम्भ किया था। यह विद्यालय जहां स्थापित हुआ था उस ग्राम का नामकरण केम्ब्रिज हुआ। इसका प्रधान कारण यही था कि इस उपनिवेश के अधिकांश प्रधान पुरुष इङ्गलैंडान्तरगत केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के छात्र थे। हार्वर्ड महाशय स्वयं इमैनुअल विद्यालय, केम्ब्रिज के उपाधिधारी विद्वान थे।

New England's first fruits 'नवीन इङ्गलैंड के प्रथम फल' नामक लेख में जो १६४३ में प्रकाशित हुआ था इस विश्वविद्यालय का इतिहास इस भांति पाया जाता है : "ईश्वर ने जब हमें सहीसलामत यहां पहुंचा दिया और हमने उसकी कृपा से जब अपने निवासस्थानों का निर्माण कर लिया व अपनी आवश्यक जीविका का प्रबन्ध भी कर लिया व परमात्मा के उपासनार्थ स्थान भी बना लिये व अपने शासनार्थ राजकीय प्रबन्ध भी कर लिये तब हमें उच्चशिक्षा के प्रचार व प्रसार का विचार हुआ। यह विचार हमें इस कारण उत्पन्न हुआ कि कहीं हम लोग अपनी गाथा को इस अभाव के कारण मूर्ख पादरियों के हाथ में न छोड़ जावें क्योंकि हमारा सामयिक पादरीसमाज एक न एक दिन काल के गाल में अवश्य ही चला जावेगा। हम इसका विचार ही कर रहे थे कि ईश्वर ने हार्वर्ड महाशय के हृदय को अपनी कृपा से प्रेरित किया, आप एक ईश्वरीयकृत विद्याव्यसनी पुरुष थे, आपने अपनी सम्पत्ति का आधा अंश लगाकर एक विद्यालय स्थापित कराना चाहा, आपकी सम्पूर्ण सम्पत्ति १७०० पाउंड थी। आपने इस विद्यालय को अपना पुस्तकभंडार भी दे दिया, आपके बाद एक अन्य दानी पुरुष ने ३०० पाउंड दान किया व इसके अनन्तर अनेक और पुरुष इस यज्ञकुण्ड में आहुति डालते गये। इस यज्ञ को संपूर्ण करने के लिए बाकी धनरूप सामग्री औपनिवेशिक संघशक्ति ने प्रदान की। विश्वविद्यालय ने सर्वसम्मति से केम्ब्रिज में स्थापित हो प्रथम आहुति डालनेवाले पुरुष हार्वर्ड के नाम को ग्रहण किया।"

हार्वर्ड महाशय का दान व्यक्तिगत दानों में प्रथम दान था जिसने अमेरिकन इतिहास का माथा ऊंचा किया है; उसी के साथ साथ १६३६

का औपनिवेशिक विधान प्रथम इस प्रकार का विधान था जिसने अमेरिका में उच्च शिक्षा की जड़ जमाई।

१६४२ के विधान के अनुसार हार्वर्ड विश्वविद्यालय की प्रधान सभा बनी जिसको यहां Overseers कहते हैं व १६५० के नियम के अनुसार हार्वर्ड विद्यालय की प्रधान समिति का निर्माण हुआ। इन नियमों के बन जाने से विद्यालय एक संस्था के स्वरूप में आगया जिसमें एक प्रधान, पांच सभ्य व एक कोषाध्यक्ष की अन्तरङ्ग समिति के अधिकार में सब सम्पति आ गई और यही समिति प्रधान सभा की अनुमति के अनुसार सब कार्य करने की शक्ति से विभूषित की गई। इसके बाद बहुत से नियम व उपनियम बनते बदलते रहे, १७८० में "विद्यालय" विषयक विधान बना व अभी तक इस विद्यालय की जड़ इसी विधान पर स्थापित है।

सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दियों में इस विद्यालय के अधिकांश प्रधान आस पास के गिर्जाओं के उपदेशक ही होते हैं केवल जान राजर्स (१६८२-१६२४) व जान लेवर्ट (John Rogers and John Leverett) (१७०८–२४) ये दो महाशय जनता से लिये गये थे। इन प्रधानों में सबसे विख्यात इन्क्रीज मैथर (Increase Mather) (१६८५-१७०१) व एडवर्ड होलिओक (Edward Holyoke) (१७३७-१७६७) थे।

उपनिवेश में जो कट्टर धार्मिकों तथा विशालबुद्धि विचारशीलों में एक प्रकार का युद्ध होता रहा उसमें यह विश्वविद्यालय प्राचीन समय से ही उदारदल का साथी रहा किन्तु खुल्लमखुल्ला झगड़ा १७०० में हुआ। यह झगड़ा काटन मैथर (Cotton Mather) के चुनाव के महत्व पर उठा जो कट्टर दल के नेता थे व आपको चुनाव में सफलता प्राप्त नहीं हुई। इस घटना से कट्टर कैलविनिस्टिक (Orthodox Calvinistic) दल को अपनी कमजोरी का भलीभांति पता लग गया। इस घटना से दुःखित हो मैथर महाशय कनैक-टिकट में जो दूसरा विद्यालय स्थापितहो चुका था उसमें जा मिले और आप १७१८ में इलिहूया के (Elihu yah) महाशय से जो लण्डन के एक दानी व्यापारी थे अपने प्रभाव के कारण एक अच्छी रकम इस नवीन विद्यामन्दिर के लिये लेली (इस विश्वविद्यालय का नाम अवथाले हैं)। १८वीं शताब्दी में १७३५-१७४५ की घटना से विश्वविद्यालय के इतिहास में एक और उदारता की लकीर खिंच गई। यह घटना प्रधान धर्मशिक्षक व अन्य-शिक्षकों के उस धार्मिक आन्दोलन के कठिन प्रतिवाद करने के कारण ही उपस्थिति हुई थी जो Great Awakening अर्थात् विशालजागृति के नाम से विख्यात है। इस विद्यालय ने जार्ज ह्वाइट फील्ड George White Field. नामी पादरी का घोर प्रतिरोध किया जिसके विचारों ने नवीन इङ्गलैण्ड को हिला रक्खा था। यहां के धार्मिक उदार विचार का स्रोत १८०५ में संपूर्ण वेग से प्रवाहित हो चला जब कि खूब झगड़े के बाद पवित्र हेनरी वारे (Rev Henry Ware) जो युनिटेरियन (Unitarian) मत के नेता थे उनका निर्वाचन विश्वविद्यालय की धार्मिक शिक्षा की गद्दी पर होगया। यह गद्दी होलिस (Hollis) गद्दी के नाम से विख्यात है। इस निर्वाचन का फल यह हुआ कि केलविनिस्ट दल ने इस विश्वविद्यालय से अपनी सारी सहानुभूति हटा ली और उन लोगों ने १८०२ में ऐंडोवर थियोलोजिकल सिमनरी (Andover Theological Seminary) व १८२१ में ऐमहर्सट कालेज (Amherst College) की नींव डालदी। आधी शताब्दी से अधिक हार्वर्ड कालेज खुल्लमखुल्ला युनिटेरियन सिद्धान्त पर चलता रहा और इसकी सहायता मासचस्टेट के रईस लोग बोस्टन (Boston) से करते रहे।

१७वीं व १८वीं शताब्दी में यद्यपि इस विद्यालय को सार्वजनिक कोष से सहायता मिली किन्तु इसका प्रधान कार्य व्यक्तिविशेष की ही उदारता से चलता रहा। १७वीं शताब्दी की सब से बड़ी रकम मैथ्यु हालवर्दी (Mathew Holworthy) का १००० पाउंड का दान था। १८वीं शताब्दी में सब से बड़ा दान थामस हालिस (Thomas Hollis) का था। आप इंगलिश नानकोनफरमिस्ट (English Nonconformist) दल के पादड़ी थे। आपने बहुसंख्यक पुस्तकों व धन के अतिरिक्त १७२१ में हालिस (Hollis) गद्दी स्थापित की जो उत्तरी एमेरिका की सब से पुरानी धार्मिक गद्दी है।

प्रजाक्रान्ति के समय कालेज ने एमेरिका का पक्ष लिया था और मासाचस्टेट के प्रायः सब देश-भक्तों का नाम कालेज में है क्योंकि इन्होंने प्रायः यहीं से विद्या प्राप्त की थी। १७७६ में जब अंगरेज़ों ने बोस्टन नगर खाली कर दिया तब प्रातःस्मरणीय महात्मा जार्ज वाशिङ्गटन (George Washington) को इस विद्यालय ने L. L. D. की उपाधि प्रदान करके अपने कालेज को सन्मानित किया। आप पूर्व के शीतकाल में यहीं केम्ब्रिज में डेरा लगाये हुए थे।

राष्ट्रक्रान्ति के महायुद्ध के समय विश्व-विद्यालय की सम्पत्ति केवल १७००० पाउंड ही मात्र थी। इसके अतिरिक्त कुछ और आय भी जायदादों से थी। यह सब सम्पत्ति कांटिनेन्ट तथा मासाचस्टेट उपनिवेश के ऋण में लगी हुई थी। इस कारण राष्ट्रदल की जीत में ही कालेज की भलाई व उसके जीवित रहने की आशा लटकी हुई थी। इस बहादुरी तथा देश-भक्ति का फल यह हुआ कि लडाई के उपरान्त इसकी सम्पत्तिराशि का मूल्य १८२००० डालर कूता गया जो सब की सब अच्छी जगह हिफाज़त से लगी हुई थी। १९वीं शताब्दी में भी यह धनराशि कालेज के पुत्रों तथा मित्रों की उदारता से बढ़ने लगी, यहां तक कि उसकी दशा आज देखने योग्य है।

(क्रमशः)

वर्षा-विनोद।

[लेखक—श्रीयुत लक्ष्मणसिंह।]

द्रुतविलम्बित छन्द।

दुखद ग्रीष्म-ताप रहा नहीं;
रसमयी वर्षाऋतु आगई।
प्रकृति ने अब धारण हैं किये,
नवल-लोल-दुकूल* नये नये ॥ १ ॥

भवन में वन में सुठि छा रही,
रुचिरता चिर-ताप-विनाशिनी।
विपद का लवलेश रहा नहीं;
नवसुधा वसुधा पर ही मिला ॥ २ ॥

गगन में शुचि-श्याम गजेन्द्र से,
घुमड़ि, घेरि, घने घन घेरते।
अवनि पै युत पल्लव सोहते,
सफल पादप-पुञ्ज हरे हरे ॥ ३ ॥

---

* वस्त्र।

सलिल से परिपूरित हो रही,
नव-नवा शुचि श्याम तृणावली।
हरित-भूमि-सोहाग-स्वरूपिणी-
विलसती बहु इन्द्र-वधू* लखो॥ ४॥
विमल शीतल-अम्बु प्रवाहिता-
रसवती सरसीव तरङ्गिणी।
मधुर-कोमल मंजु प्रवाह से,
हृदय की कलिका विकसा रही॥ ५॥
सरस, शीतल, सौरभ से सनी-
प्रबल-पावस-पौन-प्रवाह में।
दश दिशा अभिमोदित हो रहीं-
विपुल, पावन-बुन्द समूह से॥ ६॥
नव वधू-चपला† उत रोष से-
कल, कठोर-कटाक्ष चला रही।
विनय से, नय, से नहिं मानती,
मचलती, चलती फणिनी समा॥ ७॥
सजल-श्याम-घटा अवलोकि के,
मुदित मोर नचावत मोरिनी।
विपिन में लु विहङ्गवरूथ त्यों-
ध्वनि लगा, कल-गान सुना रहे॥ ८॥
विपिन में विरहाग्नि-विथा बढ़ा-
कलित-वेणु विनिन्दक कंठ से।
वन-विनोद-प्रसक्त पपीहरा-
दुखद प्रश्न करै, कहु! "पीकहां"॥ ९॥
सुखद-शासन के उपकार से,
शुभ-शृङ्गारवती धरिणी हुई।
विपुल झींगुर, कीर, अलाप से-
विजय-शङ्ख निनादित हो उठे॥ १०॥

ब्रह्माण्ड में तुमुलसंग्राम।

[लेखक-श्रीयुत राधानाथ टंडन।]

एक ज्योतिषी का कथन।

वा चकवृन्द! यदि आप कभी अँधेरी रात में आकाश के तारामंडल की ओर ध्यान देकर देखेंगे तो प्रत्यक्ष होगा कि एक घंटे के भीतर कितने ही तारे इधर उधर टूटते हैं। ये तारे चमकते हुए बड़े वेग के साथ चलते दिखाई देते हैं। इनकी चमक केवल एक पलभर या इससे भी कम दीखती है। इसके अतिरिक्त उल्कों की बौछारें भी बहुधा रात में देखने में आती हैं। परन्तु इन उल्कों का एक विचित्र कौतुक तो रात्रि को किसी नियत समय पर ही दिखाई देता है।

सन् १८६६ नवम्बर की एक रात्रि में 'सर रावर्ट बाल' को एक विलक्षण अग्नि की बौछार दिखाई दी। इस दृश्य का वृत्तान्त आप यों लिखते हैं:—

रात बड़ी सुहावनी थी। चांद का आकाश में कहीं पता तक न था। अगणित उल्के न केवल अपने समूह से आकाश को आच्छादित ही किये हुए थे, प्रत्युत अपने प्रकाश और तेज़ चमक से इसकी शोभा को और भी बढ़ा रहे थे। उसी दिन संध्या को मैं अपने रोज के काम में लगा हुआ दुर्बीन से 'शुक्रपटल'

---

* बीरबहूटी। † दामिनी।

(Nebular) का निरीक्षण कर रहा था। मैं यह जानता था कि उल्कों की एक बौछार का पता ज्योतिषियों ने लगाया है, पर मैं इसको अचानक देखने की आशा नहीं रखता था। रात के दस बजे का समय था जब कि एक नौकर ने मुझको अचानक दुर्बीन से आकाश की ओर कुछ उल्कों को देखने के लिए कहा। देखते ही दो दो तीन तीन उल्के तले ऊपर चलते दिखाई दिये। दो तीन घंटे तक मैंने ऐसा कौतुक देखा जिसको कि मैं कभी नहीं भूल सकता। उल्के बढ़ते ही गये यहां तक कि कभी २ बहुत से एक साथ ही दिखाई दिये। कभी तो हमारे सिर पर से, कभी दहिने और कभी बाएँ जाते दिखाई दिए पर सब पूर्व दिशा ही से आते थे। जैसे रात बढ़ी सिंह नक्षत्र जी क्षितिज के ऊपर आते हुए दिखाई दिये। इस समय उल्कों की बौछारों का एक अजीब कौतुक देखने में आया। सब उल्के सिंह नक्षत्र से ही निकलते हुए मालूम होते थे। कभी २ उल्के हमारी ही तरफ आते हुए दिखाई देते पर थोड़ी ही देर में स्थिर नक्षत्र की तरह चमक कर फिर अन्तर्धान हो जाते थे। बहुधा उल्कों के झपट कर अन्तर्धान होने के बाद भी उनके प्रकाश की लकीर कई मिनिट तक बनी ही रहती थी। कितने हज़ार उल्के दिखाई दिये इसका अनुमान करना असम्भव जान पड़ता है।

यह टूट कर अलग चलनेवाले सितारे जो कि उल्के कहलाते हैं एक नियमित समय पर ही बराबर नज़र आते हैं। प्रातःकाल के उल्के सन्ध्याके उल्कों से दुगने से भी अधिक होते हैं। सबसे अधिक तो दो या तीन बजे ही के लगभग दिखाई देते हैं। परीक्षा करके देखा जाय तो मालूम होगा कि उतरते साल में चढ़ते साल से दुगने उल्के दीख पड़ते हैं। ज्योतिष में इन उल्कों का महल उत्तम रीति से दिखाया गया है। यह उल्के वे पदार्थ हैं जिनसे संसार बना हुआ है। इसी से सैटर्न (Saturn) के चारों ओर का छल्ला बना हुआ है। ज्योतिषी लोगों से जिन्होंने जङ्गलों, मैदानों में भ्रमण करते हुए उल्कों को पृथ्वी पर गिरा पाया है पूछने से मालूम होगा कि उल्का एक ठोस पदार्थ है। कभी तो लोहे का और कभी पत्थर का बना हुआ होता है। यह बहुत ठंडा और काले रंग का होता है। यह शून्य में से पृथ्वी के चारों ओर के वायुमंडल में एक सेकन्ड में २० मील की चाल से प्रवेश करता है। पर पृथ्वी स्वयं एक सेकन्ड में लगभग १८ मील की चाल से घूमती है। अतएव जब उल्का पृथ्वी के सामने आता है, तो इसकी चाल हम लोगों को एक सेकंड में ४४ मील से अधिक मालूम होती है। पर यदि यह पृथ्वी का ही पीछा करे तो इसकी चाल एक सेकंड में ८ या १० मील से अधिक नहीं मालूम होती। इसके वायु में घुसते ही इसकी रगड़ और रुकावट से यह आपेक्षिक वेग तुरन्त ही घट जाता है। वायु की रगड़ से गर्मी पैदा हो जाती है जिससे यह ठोस पदार्थ जल उठता है और इसीकी रगड़ से इसके जल उठने से जो रोशनी पैदा होती है वही हमारे देखने में आती है।

उल्काओं का वेग और उनसे निकली हुई उष्णता।

हिसाब लगाने पर मालूम हुआ है कि उल्कों का औसत वेग वायु में प्रवेश करने पर बन्दूक की गोली के वेग से सौगुना होता है और यह कि गोली का वेग गोली को १० डिगरी फरनहैट तक गरम कर देने के लिए पर्याप्त है। अतः वायु की रगड़ से पैदा हुई गर्मी उड़ती हुई चीज़ के वेग के वर्ग के अनुपात (?) में है। उल्के की उड़ान इतनी तेज़ है कि इससे पैदा हुई गर्मी कारतूस के उड़ान की गर्मी से दस हज़ार गुनी अनुमान की जाती है।

इतनी गर्मी एक छोटे से उल्के को गरम कर देने के लिए इतनी अधिक है कि इसको

चमका कर फिर टुकड़े २ कर डालती है । गर्मी से पैदा हुई रोशनी, उल्के के निवह (Mass) और उसके चाल के वेग पर निर्भर है, जिससे यह मालूम होता है कि अधिकतर यह जल्दी से बुझ जाने वाले उल्काओं का निवह बहुत ही छोटा है। यह निवह तौल में एक ग्रेन अनुमान किया जाता है, नहीं तो रोशनी इससे भी अधिक पैदा हो । बहुधा वायु को बड़े बड़े निवहों के उल्काओं का सामना करना पड़ता है, यहां तक कि यह उल्के चाल के वेग से पैदा हुई गरमी को सहन कर पृथ्वी पर ठोस अवस्था में ही गिर पड़ते हैं। उल्कों के बड़े २ टुकड़ों को मिला कर तौला जाय तो प्रत्येक ५० या ६० सेर के लगभग उतरता है । पर ऐसे बड़े २ पतनक्षेत्र उल्कों में कम पाये जाते हैं । लेखा लगाने पर मालूम हुआ है कि कमसे कम दो करोड़ उल्के प्रतिदिन वायु में प्रवेश करते हैं । ये अधिकतर सूर्य और चांद की रोशनी और बादलों के कारण बिलकुल दिखाई नहीं देते।

उल्कों की रोशनी कितनी दूर पर दिखाई देती है।

ऊपर का अङ्क अंधेरी रात में उल्कों की थोड़ी ही संख्या के निरीक्षण करने से मिला है। यदि उन उल्काओं की भी गणना की जाय जो दुर्बीन के बिना दिखाई नहीं देते तो उनकी गिनती २० गुनी हो जाय । जब ज्योतिषी आकाश की ओर दुर्बीन लगा कर देखता है तो उसको उल्के बड़े वेग के साथ दृष्टिक्षेत्र में चलते दिखाई देते हैं । अपवादित चमकीले उल्के जिनको कि अग्नि के गोले कहते हैं वायु में वेग के साथ प्रवेश करते ही जल उठते हैं और रोशनी की सूरत में धरती से ८० या १०० मील की दूरी पर नज़र आते हैं। वे उल्के जो पृथ्वी की अपेक्षा बहुत धीरे चलते हैं केवल ६० मील की दूरी पर ही दिखाई देते हैं। साधारण उल्के तो ७० मील की ऊंचाई पर ही चमक उठते हैं। अधिकतर उदाहरणों में इनकी चमक बहुत थोड़ी देखी गई है। बहुत से उल्के ४० या ५० मील की उंचाई तक ही में खतम हो जाते हैं । पर अग्नि के गोले तो ५ या १० मील ही की उंचाई पर देखे गए हैं । उल्कों की चमक कितनी दूर तक रहती है यह बात उस कोण पर निर्भर है जो इसके गिरने से बनता है।

उल्कों का आकार और उनकी बनावट ।

कुछ उल्के विशेष कर विरल अग्नि के गोले अपने वास्तविक आकार से बहुत बड़े दीखते हैं। कभी २ उनका व्यास चांद के व्यास के आकार का दीखता है जिससे यह परिणाम निकलता है कि उनका वास्तविक व्यास कई सौ फीट होगा। पर यह सब माया जान पड़ती है। वास्तव में उत्तम से उत्तम उल्के जब वायु में प्रवेश करते हैं तो तौल में ५०० सेर से अधिक नहीं अनुमान किये जाते और न उनका व्यास ही १० फीट से अधिक होता है। उल्कों की सबसे बड़ी निवह जो अबतक पृथ्वी पर पाई गई है वह ३०० सेर से भी कम बैठी है । अधिकतर उल्के बालू के एक दाने से बड़े नहीं होते। इनका बड़ा डील केवल इनके चारों ओर की गरम वायु और धुंए के प्रकाश हो जाने से मालूम पड़ता है।

उल्कों के ऊपर की पपड़ी एक इञ्च के शतांश से अधिक मोटी नहीं होती । इसका पतलापन इस बात से जान पड़ता है कि वायु जिसमें यह बड़े वेग के साथ चलता है इसके ऊपर के पिघले हुए पदार्थ को उड़ा ले जाती है। ज्योंही फिर ऊपर का हिस्सा झिल्ली के सूरत में बनता है त्योंही वह वायु के झोंके से अलग हो जाता है। पृथ्वी पर गिरने पर केवल एक पतली चमकीली झिल्ली ऊपर रह जाती है।

यह छिलका वास्तव में छोटे २ बुलबुले-युक्त एक काला शीशा होता है। यह अधिकतर लोह के 'आक्साइड' (Oxide of iron) से बना है, और इस कारण चुम्बक के गुण से बहुत सम्पन्न है। उल्कों के ऊपर का छिलका और इसका अवशेष भीतरी पदार्थ दोनों बिलकुल एक दूसरे से भिन्न होते हैं। एक विशेष बात इस छिलके के ऊपर यह है कि इसके ऊपर जहां तहां बहुत से गढ़हे होते हैं जो अंगूठों के चिन्ह से जान पड़ते हैं जैसा कि नीचे के चित्र में दिखाया गया है। यह अवस्था वायु और गर्मी के भिन्न प्रभाव के कारण हो जाती है।

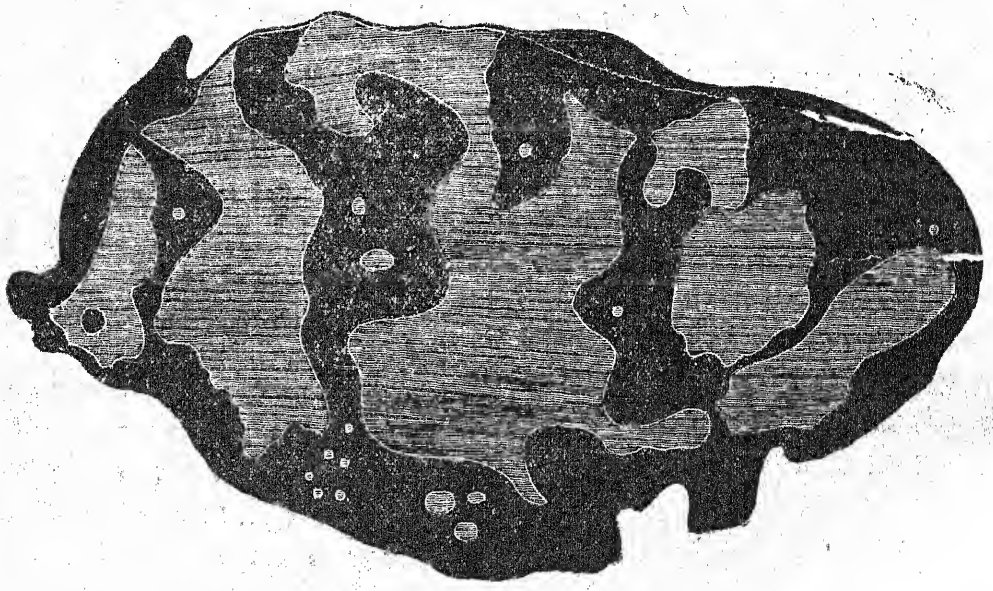

एक उल्के का चित्र जिसमें जहां तहां गर्मी के कारण बने हुए गढ़हे दीख पड़ते हैं।

उल्कों की गरज दामिनी की गरज के सदृश है।

उल्कों के पृथ्वी पर गिरते ही बड़े वेग से शब्द होता है। इनकी चमक और शब्द से ऐसा जान पड़ता है मानो दामिनी स्वयं आकाश से उतरी हो। इस शब्द का कारण वास्तव में दोनों में एकही है। उल्का अपने वेग से वायु को हटा देता है। यह अपने सामने की वायु पर बड़ा दबाव डालता है जिससे इसका ताप-परिमाण तुरन्त बढ़ जाता है, पर इस दबाव के साथ ही इसके पीछे की जगह शून्य हो जाती है जिसमें सामने की दबी हुई वायु बड़े आवेश के साथ इस शून्य स्थान में पहुंचती है जिसके कारण एक बड़ा शब्द उत्पन्न होता है जो कि दामिनी की गरज के सदृश जान पड़ता है। इसकी चाल से उत्पन्न गर्मी उतने ही निवह के कोयले के जलाने की गर्मी से सैकड़ों गुनी अधिक होती है। जितनी गर्मी वर्तकीय धातु को गलाने के लिए आवश्यकीय है उससे भी कहीं अधिक गर्मी इस उल्के से पैदा होती है। इस गर्मी और वायु के दबाव ही से उल्कों से इतना शब्द पैदा होता है।

खोद कर निकाला गया।

जर्मनों के कार्य करने के उपाय कैसे परिपूर्ण होते हैं यह इस चित्र में अच्छी तरह दिखा गया है। पास ही गिरे हुए घरों से दरवाजे और खिड़कियां निकाल ली गई हैं कि जर्मन सिपाही को जमीन के नीचे अपनी जगह पर सुख मिले और यह ध्यान देने की बात है कि दरवाजे की चटाई भी नहीं छोड़ी गई है। यह स्थान उनके अधीन ६ महीने से है पर आशा है कि अब नये लोग उस पर शीघ्र अधिकार करेंगे।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

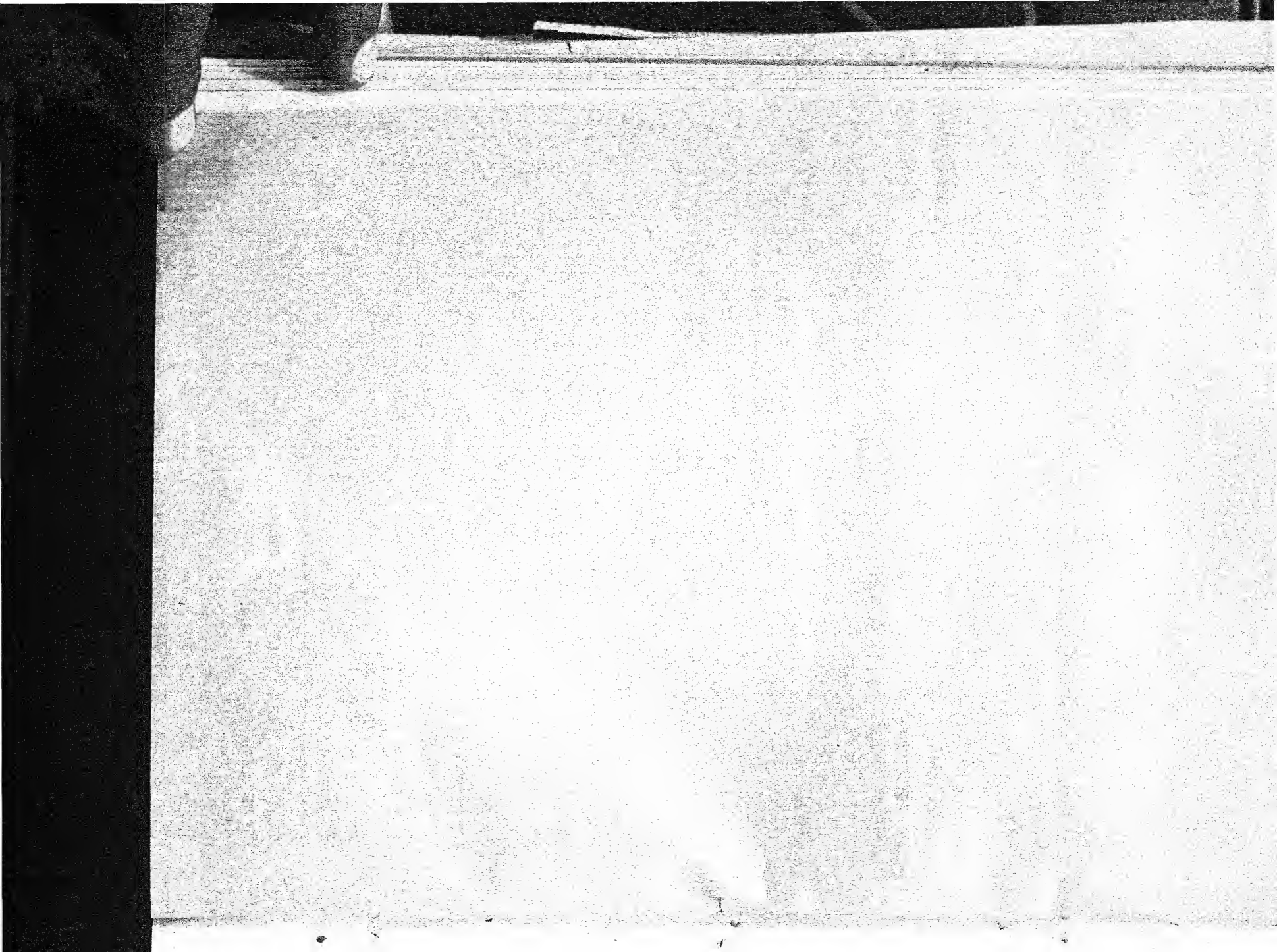

मैक्सिको में उल्का गिरने का एक वृत्तान्त।

संध्या हो गई थी। लगभग नौ बजे थे जब कि एक महापुरुष कुछ घोड़ों को चारा खिलाने के लिए एक बाड़े में पहुंचे। ज्योंही उन्होंने बाड़े में पैर रक्खा था कि अक्समात् सिसकारी का शब्द सुनाई दिया। यह शब्द बिल्कुल ऐसा था जैसा एक गरम वस्तु को ठंडे पानी में डालने से होता है। उसके बाद तुरन्त ही एक बड़े ज़ोर का शब्द हुआ और बाड़ा एक दम से स्फूरज (Phosphorus) की सी रोशनी से चमक उठा। वायु में भी कुछ प्रज्वलित चिंगारियां दीखने लगीं। यह महापुरुष अचम्भे में खड़े ही रहे और वह वायु में लटकती हुई रोशनी गुम हो गई। केवल उन्हें थोड़ी सी रोशनी जैसी कि एक दियासलाई के जलाने से होती है ज़मीन पर नज़र आई। इस शब्द को सुनते ही कुछ लोग अपने २ मकान से उसके पास दौड़ते हुए आए। घोड़े इस घटना से घबड़ा गए थे। इन्हीं को सम्हालने के लिए ये लोग भी उसे मदद देने लगे। सब एक दूसरे का मुख निहार २ पूछने लगे कि यह क्या मामला है। लोग उस बाड़े में जाते डरते थे। थोड़ी देर में बची बचाई रोशनी भी गुम हो गई। तब लोग साहसपूर्वक प्रदीप लेकर इधर उधर देखने लगे कि क्या कारण है जिससे ऐसा हुआ। अन्त में उन्होंने एक गढ़हे को देखा जिसमें एक अग्नि का गोला विद्यमान था। सब लोग यह डर कर कि कहीं भक से जल न उठे दूर हट गए। थोड़ी देर बाद फिर लौटे और गढ़हे में एक गरम पत्थर सा उन्हें दिखाई दिया। दूसरे दिन फिर वहां आने पर उन्हें एक लोहे का टुकड़ा सा मिला। तमाम रात तारे बरसते रहे पर उन्हें कोई भी धरती पर गिरता हुआ न दीखा।

कई तरह के उल्के।

उल्कों के वास्तव में दो बड़े भाग हैं। एक तो वह जो बिल्कुल ही पत्थर से बने हों और दूसरे वह जो बिल्कुल ही लोहे से। इन दोनों के बीच में भी और कई तरह के उल्के हैं जो दोनों के योग से बने होते हैं। उल्कों के लोहे में ८० से ९५ सैकड़ा तक लोहा और ६ से १० सैकड़ा तक 'निकल' (Nichel) रहता है। निकल (Nichel) के होने से लोहे में मोर्चा नहीं लगने पाता। उल्कों का पत्थर उन खनिज पदार्थों से बना है जो पृथ्वी और लावा में पाये जाते हैं। यह बात जानने की है कि आङ्गार (Carbon) बहुधा हीरे के सूरत में उल्कों में पाया जाता है। कर्टज़् (Quartz) तो इसमें बिल्कुल ही नहीं पाया जाता। जितने मूलतत्व अबतक मालूम हुए हैं उनका निहाई हिस्सा हीलियम (Helium) को लेकर इन उल्काओं में पाया जाता है। अधिकांश में ये तत्व पाये जाते हैं:—लोह, निकल, मङ्गक (Magnesium) खटिक (Calcium), अलीग्यूनियम (Aluminium), आङ्गार (Carbon), ओषजन (Oxygen), गन्धक (Sulphur), सातू (Silica) तथा स्फूरज (Phosphorus) पर थोड़े परिमाण में हैड्रोजन (Hydrogen), मांगल (Manganese), कोवाल्ट (Cobalt), तांबा (Copper), क्षार (Sodium), रांगा (Tin) पोटाश (Potassium), नेत्रजन (Nitrogen) आदि तत्व भी पाये जाते हैं। बहुधा सोना, चांदी, सीसा आदि भी इनमें मिले होते हैं। पर एक महत्व की बात जाननेयोग्य यह है कि चेतन पदार्थ का नाम निशान तक भी इनमें नहीं रहता जिससे यह जान पड़ता है कि इस संसार में परे कहीं भी जीवधारी नहीं हैं।

उल्के कहां से आये?

पत्थरों के आकाश से गिरने का विचार प्राचीन ही समय से चला आता था, पर विज्ञान

के ज्ञाता लोग अभी हाल ही तक इस विचार को मिथ्या समझते थे। अब यह बात स्पष्ट होगई है कि अगणित ऐसी चीज़ें आकाश के अवकाश को घेरे हुए हैं और गुरुताकर्षण के नियम के अनुसार सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाया करती हैं। सिंह नक्षत्र से निकलनेवाले उल्कों की बौछार की भिन्न गति से ज्ञात हुआ है कि उनके सूर्य के चारों ओर भ्रमण करने की पांच कक्षाएँ हैं। एक महत्व की बात इस बौछार के सम्बन्ध में जिसको कि लिओनिड्स (Leonids) कहते हैं यह है कि इसकी कक्षा बृहस्पति और शनि की कक्षाओं को काटती हुई नहीं जाती बल्कि वारुणी की कक्षा को काटती हुई जाती है।

इन बातों से स्पष्ट है कि ये उल्के जो हम लोगों को बहुधा थोड़े ही मील की दूरी पर चमकते हुए जान पड़ते हैं वास्तव में बड़ी दूर से टूट कर आते हैं। इनका स्थान हमारे वायु-मंडल के बहुत परे है। यह बात अब बिल्कुल दृढ़ होगई है कि ये उल्के न तो वायुमंडल से ही सम्बन्ध रखते हैं और न पृथ्वी से। इनका सम्बन्ध वास्तव में ब्रह्माण्ड से ही है। ज्योतिषियों का भी कथन है कि उल्कों का जैसे नियमानुसार सूर्य की परिक्रमा करना जैसा कि परीक्षा करने से ज्ञात हुआ है इस बात का प्रबल प्रमाण है कि इनका मूलस्थान ब्रह्माण्ड ही है।

अब मुझे विश्वास है कि हमारे वे पाठक जो बहुधा आकाश के दृश्य को देख कर चकित हो जाया करते हैं और इनको जानने के लिए बड़े उत्सुक रहते हैं आकाश सम्बन्धी इन थोड़ी सी बातों को जानने से बहुत कुछ लाभ उठायेंगे।

यह सब विज्ञान ही का प्रभाव है कि हम लोग आजकल वे चमत्कारिक बातें जो कि हम लोगों को थोड़े ही दिन पहले स्वप्न सी प्रतीत होती थीं प्रत्यक्ष देखते और सुनते हैं। परमात्मा की अपार सृष्टि के एक छोटे से भाग का हाल जानकर जो चित्त में प्रसन्नता उत्पन्न होती है उसका पाठकगण ही अनुमान कर सकते हैं।

प्रेमी।

[लेखक—श्रीयुत किशोरीलाल गोस्वामी।]

बरसि रह्यो है बूंद बादर बिसेस, बन,
बागन बहार बेस बनक बनाई है।
डोरी हारि डारन कदम्बन की, कौतुक, कै,
पटुली सुहाई तामें रुचिर लगाई है॥
बाम दिसि बाम अभिराम लै, बिराजि, तापैं,
प्रेम पूरि प्रेमी, पेंग मारत सवाई है।
पिय के हिये सों लगि, हौंसनि, हाहा, कै, हेरि,
कंठैं, भुज मेली तिया सुखमा समाई है॥ १॥

पटने में अशोक-स्तम्भ ।

[लेखक–श्रीयुत विश्वनाथ त्रिपाठी ।]

जिस भारत का नाम सुनकर आज हमें छींक आती है तथा हम नाक भौंह सिकोड़ते हैं क्या उसकी दशा पूर्व में ऐसी ही शोचनीय थी ? नहीं !! पूर्व में भारत जैसा सभ्य और माननीय तथा गौरवसूचक था वैसा पृथ्वी-तल में कोई भी देश न था। पूर्व भारत ही का काम है कि आज अमेरिका, यूरोप और जापान अपनी विजयपताकाएँ फहरा रहे हैं । तब आज हम क्यों अपनी दीन दशा का परिचय देते हैं ? उत्तर में यही कहा जा सकता है कि जितनी चीज़ें वहां देशहितकारक, पाण्डित्य तथा सभ्यताजनक हैं यहां वे घृणा की दृष्टि से देखी जाती हैं। पर इस परिवर्तनीय संसार में घृणा कबतक अपना डेरा जमा सकती है जहां रात दिन दुःख दूर करने के लिए प्रयत्न हो रहे हैं ? अठारहवीं सदी तक इस घृणा का डेरा पूरे तौर से जमा रहा। कारण यह था कि रोग के अनुकूल औषधि नहीं मिली। लेकिन उन्नीसवीं सदी में ज्योंही विज्ञानरूपी औषधि (Science) दी गई त्योंही घृणा रसातल को पधारी। वैज्ञानिक औषधि को पीते ही बहुत सी अप्रकाशित बातें प्रकाशित होने लगीं। यहां तक कि ज़मीन के नीचे की भी चीज़ें जो असम्भव रूप से छोड़ दी गई थीं प्रकाशित होने लगीं। उनमें से एक को मैं लिखता हूं। पटने का प्राचीन नाम पाटलिपुत्र है । यहां पर नन्द, मौर्य, वंश के अनेक राजाओं ने राज्य किया। उनमें से अशोक का पद अति ही उच्च है। इनका चरित्र केवल शिलालेखों तथा यात्रियों ही के द्वारा मिलता है। पर इनकी राजधानी से कोई बात नहीं मालूम हुई। कारण यह कि राजधानी में कोई ऐसी चीज़ न रह गई थी जो इनके चरित्र को चरितार्थ कर सकती। लेकिन आज राजधानी ने भी यह बात सिद्ध कर दी कि अशोक अवश्य ही पटने का राजा था । यात्रियों ने बताया था कि अशोक विद्या के बड़े ही प्रेमी थे। उन्होंने एक वृहत् पाठशाला स्थापित की थी जिसमें देशदेशान्तर के विद्यार्थी पढ़ा करते थे और रहते भी थे सो आज उत्तम रीति से सिद्ध होगया।

पटने में गुलज़ार बाग़ एक छोटासा स्टेशन है। उसी के निकट कुम्हड़ार नामक महल्ले के स्तूपान्तर से एक अति विशाल तथा सुन्दर अशोक का महल निकला है। पहले उस महल का कुछ भी नाम निशान देखने तथा सुनने में नहीं आता था। कारण यह था कि महल ज़मीन के ७०।८० फीट नीचे दबा पड़ा था। ऐसी अवस्था में महल का होना असम्भव प्रतीत होता था। पर असम्भव शब्द उन्हीं के लिए है जो अज्ञान समुद्र में डूबते उतराते रहते हैं और जो वैज्ञानिक हैं उनके लिए तो कुछ भी असम्भव नहीं है। इस बात का साक्षी हमारा भारतवर्ष पूर्व से ही है क्योंकि अशोक के राज्यकाल के मकानों तथा अति सन्तोषदायक बातों का पता बड़े २ इतिहासवेत्ताओं से भी न लगा। तब यह बात सिद्ध हो चुकी थी कि राजधानी में मकानों का पता लगना असम्भव है। पर हिन्दुस्थान ने अपने पुराने आविष्कार को स्मरण कर इन बातों का पता भलीभांति लगा दिया । यह उसके लिए गौरव की बात है। जो महल निकला है वह ईंटों का बना हुआ है। उसके खम्भे पालिश किये हुए पत्थर के हैं जो ५ फीट चौड़े और ३० फीट लम्बे हैं । शिला-स्तम्भों की संख्या १०० और कोठरियों तथा बड़े बड़े भवनों (Halls) की संख्या क्रमशः १५० और ३० है । ईंटों की चौड़ाई तथा लम्बाई देखकर लोग दांतों उँगली काटते हैं क्योंकि ईंटें २ फीट लम्बी और १ फीट

चौड़ी हैं। महल पुराना होने पर भी ईंटें बहुत कम खसकी हैं। इससे अनुमान किया जा सकता है कि महल कितना मजबूत होगा। जिस पत्थर पर लेख लिखे गये हैं वह बहुत चिकना पत्थर है। लेख पढ़ना सहज नहीं है क्योंकि वे उस वक्त की प्रचलित भाषा में लिखे गये हैं। पर जो भारतनिवासी नवयुवक महाशय खुदवा रहे हैं वे सब विद्या में निपुण हैं। उनसे पूछने से मालूम होता है कि वह अशोक का वृतान्त है। उसमें अशोक ने यह दिखाया है कि, "मैं किस तरह प्रजापालन करता था तथा विद्या का प्रेमी था और मेरे सब सत्कार्य परिश्रम, शूरता और विद्या के द्वारा हुए। जीवमात्र पर दया ही सब से बड़ा धर्म है।" इति अशोकोपदेशः। उन्होंने लिखा है कि, "हे पाटलि जबतक तू रह तबतक विद्या और दया से परिपूर्ण रह।"

पतङ्ग-पतन।

[लेखक—श्रीयुत गोकुलचन्द्र शर्मा।]

उड़ते उड़ते कटी पतङ्ग।
चढ़ी हुई थी नभ में ऊँची
जमा हुआ था रंग॥ उड़ते०॥

फर २ फर २ फहराती थी;
आशा-लता सी लहराती थी।
कुक २ उठती उपजाती थी
उर में ओज-तरंग॥ उड़ते०॥

रंग बिरंगी सहविहारिणी,
इधर उधर थीं हृदय-हारिणी।
एक एक को देख छोड़ कर
होती थीं उत्तुङ्ग॥ उड़ते०॥

सुमति-सुधा पी प्रेम-मग्न हो,
अपने २ लक्ष्य-लग्न हो।
बढ़ २ कर वे मचा रही थीं
उन्नत-जीवन-जङ्ग॥ उड़ते०॥

कुटिल काल ने चक्र चलाया,
कुमति कूट ने खेल खिलाया।
स्वार्थ-राज्य ने देखो हा! हा!!
पलटा कैसा ढङ्ग॥ उड़ते०॥

अहङ्कार ही हृदय समाया,
बस आपस में हुआ सफाया।
प्रेम-तन्तु को तोड़ आ घुसा
घर में फूट-मतङ्ग॥ उड़ते०॥

नीचे खड़े प्रशंसा करते,
जोश लड़ाने को जो भरते।
'वो काटा, वो काटा' कह कर
लगे लूटने अङ्ग॥ उड़ते०॥

देश, जाति अति वैभवशाली,
हुए इसी विध से सब ख़ाली।
बन्धु-वैर ने किया न किस का
कह दो तो रसभङ्ग॥ उड़ते०॥

हिन्दू समाज की कुदशा पर एक दृष्टि।

[लेखक–श्रीयुत विश्वेश्वरदयालु चतुर्वेदी।]

यह एक अत्यन्त ही खेदजनक विषय है कि हमारे यहां के योग्य से योग्य पुरुष भी अंध-विश्वास और कुरीतियों के अनुयायी हैं। वे अपने विचारों को कार्य में स्वतन्त्रतापूर्वक परणित करने को सर्वथा असमर्थ हैं। वे कहते कुछ हैं और करते कुछ क्योंकि कुरीति (Custom) रूपी डायन उनके सामने मुंह फैलाये हुए खड़ी रहती है जिसके जीतने की उनमें सामर्थ्य नहीं है। हम सत्य ही एक ऐसे गुलामी के जाल में अपने आप चले जा रहे हैं जिसे न कोई राजनैतिक नियम ही रोक सकता है और न कोई राज-संस्था ही उसे छुड़ा सकती है। और वह निष्ठुर कुरीति (Custom) रूपी पिशाचिनी हमारे समाज के जीवन के रक्त को पी रही है। जब तक ये नाशकारक कुरीतियां यहां मौजूद हैं तब तक हमारी आशाएँ केवल नैराश्यनद में बहने के लिए ही हैं, उन्नति के लिए उद्योग करना केवल निरर्थक है और हमारी सफलता केवल असफलता की प्रतिमा है।

सब से पहिले हमें अपनी प्राचीन दशा, बालविवाह पर दृष्टि डालनी चाहिये, वह एक ऐसा पौधा है जो भारत की उपजाऊ भूमि को छोड़ संसार भर के किसी अन्य स्थान में नहीं उपजता। उस अवस्था में विवाह का किया जाना जब कि विवाह करनेवाले विवाह के अर्थ को ही न समझें यह विचित्र बात इस देश में ही परिमित है। उन बच्चों की शादी का ठेका जो अभी पलने में झूल रहे हैं या जिनका विवाह वृद्ध दादी के मरने के पहिले इसलिए किया जाता है कि मरते समय पौत्रवधू को देख वह अपनी आखें ठंडी करे (चाहे पौत्र का हृदय भले ही दग्ध होले) हमारे देश ही के ठेकेदारों में पाया जाता है। हमारे विवाह की प्रथा आज विदेशीय संसार को चकित कर रही है। इस कुरीति से बढ़कर हमारी उन्नति का शत्रु और अवनति का कारण कोई दूसरा नहीं है जिसके कारण हमारे होनहार नवयुवकों के गले में एक भारी चक्की का पाट जीवनयात्रा के प्रारम्भ होने के पहिले ही डाल दिया जाता है। इससे बढ़कर कोई दूसरा नीच बन्धन नहीं है जिसके होने से एक स्त्री व पुरुष को जन्म भर क्लेश और दुःख के पाश में बँधना पड़े।

सत्य ही इससे बढ़कर संसार के परदे पर कोई अन्य पाशविक और अधमता का कृत्य नहीं हो सकता कि एक अज्ञात आशापूर्ण कन्या एक वृद्ध के लिए जिसका एक पैर कब्र में लटक रहा है अर्पण की जाय—नहीं नहीं बलि की जाय। क्या आश्चर्य है यदि इन बातों के होते हुए हमारे यहां के दम्पती केवल दूध और पानी के सदृश हों जो देखने में स्वच्छ और भले प्रतती हों किन्तु स्वाद में किञ्चित मिठास नहीं, बाह्यरूप में उनका जीवन कितना ही आनन्दमय और शान्तिप्रद क्यों न दिखाई पड़े किन्तु वास्तविक दशा का दृश्य शयनगृह में प्रगट होता है जब कि हमारे यहां के जाया पति एक दियासलाई की तरह छोटी २ बातों पर जल उठते हैं। क्या आश्चर्य है जब कि अन्य देशों के बालक और बालिकाएँ पढ़ने लिखने वा खेलने में समय व्यतीत करते हों तो आपके यहां के बालक, विधवा और रँडुओं की संख्या बढ़ाते हों। क्या आश्चर्य है कि बाल्यावस्था में विवाहित छोटी सी माता और छोटे से पिता के साथ ही हम स्वयं भी सम्पूर्ण अङ्गों में छोटे रह जायँ।

जब तक हमारे यहां विवाह की रीति न बदली जायगी, जब तक हम अपने यहां उस अवस्था तक विवाह न करेंगे जब तक कि कन्या और वर विवाह के दायित्व को अच्छी तरह समझ लें, जबतक हम कुमारी अवस्था को वैधव्य दशा से श्रेष्ठ न समझेंगे तबतक उन्नति की आशा और देश का सुधार केवल दुष्कर ही नहीं किन्तु असम्भव सा मालूम होता है। हमारे यहां की कन्याएँ और लड़के विवाह का अर्थ यही समझते हैं कि विवाह के वक्त अच्छे २ गहने व आभूषण पहिनेंगे, बाजे बजेंगे और आतशबाज़ी छूटेगी, बरात आयेगी और पालकी में बैठेंगे। अहा! एक बच्चे को इससे अधिक लुभानेवाली बातें और क्या होंगी। वह विचारी अज्ञात बालिका नहीं जानती कि इस तमाशे के पीछे जो वस्तु आरही है वह बड़ी ही भयंकर है।

तत्पश्चात् हम अपनी कुलबधुओं की दशा देखें! वास्तविक शिक्षा से अपरिचित, सच्ची और सांसारिक अमूल्य बातों से अनभिज्ञ, मिथ्याचार और अन्ध कुरीतियों में लिप्त (हमें शर्म से मस्तक झुका के कहना पड़ता है) वे अन्य पशुओं से किसी प्रकार सुदशा में नहीं है। और यह प्रत्यक्ष है कि यदि हमने उन्हें एक अंधकारमय जीवन में डाल रक्खा है तो उन्होंने भी हमको अवनति की सबसे नीची सीढ़ी पर पहुंचा दिया है। अन्य देशों में जहां नारियां आनन्द और मोद का कारण होती हैं वेही हमारे यहां क्लेश और चिन्ता की उत्पादक हैं।

स्त्रियां जो जीवनयात्रा के लिये एक सहायक मानी जाती हैं, जो दुःखों को आधा और सुखों को दुगना करती है वे हमारे यहां खेद का कारण और भार के रूप में हैं। हमारे यहां वे नारियां अब अत्यन्त ही अल्प हैं जिनके लिये एक यूरोपीय विद्वान कहता है "That makes a home Heaven on earth" अर्थात् "जो पृथ्वीतल पर ही स्वर्ग की आभा दिखा देती है।"

पत्नी शब्द के वास्तविक अर्थ को हमने समझा ही नहीं है, परदे का रिवाज इतने अनुचित रूप में बढ़ गया है कि पति पत्नी आपस में सबके सामने बातें करें तो यह बेहयाई की आखिरी हद मानी जाती है। उनकी बीमारी की दशा में यदि उनका पति परिचर्या में शामिल होता है तो विकट उपहासपात्र बनता है। उनको बुलाने के लिए एक विचित्र रूप से पुकारा जाता है न कोई नाम है, न कोई अन्य विशेषण प्रयोग किया जाता है।

फिर विधवाओं की दशा में ध्यान जाता है, उनकी दशा का चित्र देखकर एक पाषाणहृदय भी कांप जाता है। "बालवैधव्य" यह एक ऐसा पदार्थ है जिसकी पैदावार हिन्दुस्थान के अतिरिक्त संसार के किसी हिस्से में नहीं होती और उसका आधिपत्य केवल इस हतभाग्य भारतवर्ष में ही है। इस समय इस देश में सात लाख से अधिक बालविधवाएँ मौजूद हैं और बड़ी उम्र की विधवाओं को मिलाकर यह मालूम हुआ है कि बंगाल, गुजरात व कुछ अन्य प्रान्तों को मिलाकर प्रत्येक पांच स्त्रियों में एक विधवा है। इसका मूल कारण अधिकांश में कुछ हो सकता है तो वही हमारा गाढ़परिचित बालविवाह है।

बंगाल में कुलीन ब्राह्मणों में एक व्यक्ति दस २ विवाह कर लेता है। आप सोचें कि एक पुरुष के पीछे दस विधवाएँ जो प्रायः बालविधवाएँ होती हैं, अपने जीवनों को नरक के सदृश यमयन्त्रणा भोगने के लिए तैयार कर रही हैं। संसार के जितने शोकप्रद और दुःखी पदार्थ हैं हिन्दू विधवा की अवस्था उन सबसे अधिक शोचनीय है। मृत्यु जो अन्यजनों को एक भीषण पदार्थ है वह उसकी एक चिरशान्तिप्रदायिनी सखी है। वह ऊंचे हाथ करके ईश्वर

से कभी कोई चीज़ मांगती है तो वह "मौत" है। निस्सन्देह सती होने से जो अग्नि में जलने का थोड़ा सा कष्ट होता था वह अब बन्द कर दिया गया है और उसकी जगह विरह की अग्नि में जलने के महान् कष्ट को देदी गई है।

जब तक हम इन बालविवाह और बहुविवाह के बन्द करने का हार्दिक प्रयत्न नहीं करते तबतक हमें शर्म से अपना मुंह सभ्य जातियों के आगे छिपाना पड़े तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। लाखों कन्याएँ प्रतिवर्ष बालविवाह की वेदी पर भेंट चढ़ाई जाती हैं। लाखों ही अपने अन्धकारमय जीवन में कष्ट भोग रही हैं। क्या हम अपने कान और आंखें नहीं खोलेंगे—हां अपना हृदय भी—क्या हम उन्हें शिक्षा* न देंगे? एक धार्मिक शान्तिप्रद शिक्षा जिससे वे एक पूर्व समय के सदृश हिन्दू गृहिणी बन सकें।

"सुधार का मूलमंत्र ।"

[लेखक-श्रीयुत लक्ष्मीनारायण शर्मा ।]

भारतवर्ष में आजकल सुधार की धूम मची हुई है। जिधर देखो उधर सुधार की ध्वनि और सुधारकों की मूर्तियां ही दिखाई पड़ती हैं। कहीं धार्मिक सुधार, तो कहीं सामाजिक; कहीं राजनैतिक तो कहीं आर्थिक। सारांश यह कि चारों ओर सुधार की ही ध्वनि गूंज रही है। परन्तु औरों को तो जाने दीजिये स्वयं सुधारकों के अगुआ एवम् सुधारक संस्थाओं के प्रधान तथा मंत्री भी प्रायः पूरे ढोंगिया ही दीखते हैं। केवल दूसरों को उपदेश देनेवाले और स्वयं गुरुघंटाल, जीवन-मुक्त, कुछ न करनेवाले ही हैं।

गोस्वामी तुलसीदास ने सत्य कहा है:—

"पर उपदेश कुशल बहुतेरे।
जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥"

दुर्भाग्यवश आजकल हमारी संस्थाओं की बागडोर ऐसे ही मनुष्यों के हाथ में है कि जो नियम और सिद्धान्तों की उपेक्षा करते हुए संस्थाओं को अपनी कीर्ति फैलाने और स्वार्थसिद्धि का एकमात्र साधन समझते हैं। और ऐसे ही मनुष्यों—धर्म के हिंसकों, जाति और देश के शत्रुओं, निज आत्मा के हनन करनेहारों—ने ही तो बड़े बड़े महात्माओं के परिश्रम को धूल में मिला दिया है।

---

* शिक्षा किसे कहते हैं इस विषय में हरबर्ट स्पेन्सर का यह मत है—"जिस ज्ञान को पाकर मनुष्य यथार्थ रूप अपनी शारीरिक और मानसिक उन्नति करते हुए सदाचारयुक्त लौकिक वा पारलौकिक बातों को सुलभता से ग्रहण करसके उसका नाम शिक्षा है। भारतीय ललनाओं की आधुनिक शिक्षा दोषपूर्ण है। उसमें धार्मिक शिक्षा का अभाव है। एक विदेशीय विद्वान के कथनानुसार "Drink deep or touch not" अर्थात् "या तो उन्हें पूर्ण शिक्षा दो या बिलकुल कोरी ही रक्खो।" हमको चलना अधिक उत्तम होगा क्योंकि जब तक हम उन्हें पूर्ण रूप से शिक्षिता न बना लें हमारे लिये उनको अधूरी विद्या लाभ के स्थान में हानिकारक ही होगी। लेखक।

देखिये एक कवि कहता है:—

"If every man would see
To his own reformation,
How very easily
You might reform a Nation."

अर्थात् "यदि प्रत्येक मनुष्य अपने ही सुधार की ओर ध्यान देता तो कितनी अधिक सरलतापूर्वक आप एक जाति का सुधार कर सकते थे।"

पाठकवृन्द* ! आप इस बात को भली प्रकार जानते होंगे कि व्यक्तियों ही के समुदाय को समाज या जाति कहते हैं। इससे पता चला कि व्यक्तियों ही के आचार पर समाज तथा जाति का आचार निर्भर है। जब समाज का प्रत्येक सभ्य अपने आचारों को सुधार ले तो अवश्य ही समाज के आचार स्वयं सुधर जावें। अतः सभा और सोसाइटियों के बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है, So-called Resoutions (नाम के ही प्रस्तावों) के पास करने की आवश्यकता नहीं है, लेक्चरबाज़ी तथा मेज़ों के तोड़ने से कोई कार्यसिद्धि नहीं हो सकती; वरन् यदि आप चाहते हैं कि हमारी जाति का सुधार हो तो प्रथम कर्तव्य यह होना चाहिये कि केवल लेक्चरबाज़ी तथा प्रस्तावों ही के प्राप्त करने से सन्तुष्ट न हों। किन्तु दूसरों को उपदेश करने के पूर्व ही अपने आचारों को सुधारेंगे और इसी भांति प्रस्तावों के पास—नहीं नहीं प्रविष्ट—करने के पूर्व ही अपने को उन प्रस्तावों के अनुकूल आचरण करने योग्य बनालें। इसी बात पर दृष्टि न डालने का यह परिणाम है कि आजकल के सभा-समाज और बड़ी २ कानफरेंसें अत्युत्तम नियम रखते और प्रस्ताव पास करते हुए भी इस आर्य जाति का उद्धार करने में पूर्णतया फलीभूत नहीं हो सकीं। नियमों का बनाना तथा प्रस्तावों का पास करना एक सरल बात है परन्तु तदनुसार बर्तना कुछ टेढ़ी खीर है और हम में यही बड़ी भारी त्रुटि—नहीं, नहीं, आत्मिक निर्बलता—है कि जिस समय हम समाज या सभा में बैठते हैं तब तो दनादन सुधार के प्रस्ताव पास कर डालते हैं परन्तु जहां सभा को छोड़ घर आये कि बस उनका ध्यान ही नहीं रहता और रहे भी क्यों वहां तो स्वार्थ ने डस रक्खा है। फिर वही बात होती है कि "कथा के बेंगन और और खाने के और।"

अब मैं आपकी सेवा में स्पष्टतया यह निवेदन करना चाहता हूं कि किन २ साधनों के बरतने से जातिसुधार हो सकता है।

यह तो आपकी सेवा में निवेदन किया ही जा चुका कि सामाजिक दशा व्यक्तियों की दशा पर निर्भर है अर्थात् यदि एक जाति उन्नति के शिखर पर पहुंची है तो केवल उसके सदस्यों के आचरणों के फल से और यदि दूसरी अधोगति को प्राप्त हो रही है तो वह भी उसके सभ्यों ही की कृपा है। अतः मैं जो कुछ निवेदन करूंगा वह इसी अभिप्राय से होगा कि हमारे पाठकों में से प्रत्येक इस निवेदन को पढ़कर विचार करें और फिर यदि उनको उत्तम जान पड़े तो तदनुसार कार्य करके मेरे परिश्रम को सफल करें, क्योंकि उनको जान लेना उचित है कि वे भी जाति के एक अङ्ग हैं।

१—पाठकों में प्रायः सब ने राजा हरिश्चन्द्र की कथा सुनी होगी, हरिश्चन्द्र लीला तथा नाटक भी देखे होंगे। परन्तु क्या कभी किसी ने उनके अनुकूल आचरण करने—अर्थात् जो कुछ कह दिया उससे पीछे न हटने का भी विचार किया है? और यदि विचार भी किया है तो क्या तदनुसार आचरण करने की भी चेष्टा की है? और यदि की हो तो क्या आपने उनके समान अपने वचन को पूरा करने का

* इस लेख में पाठक शब्द का पुरुष और स्त्री दोनों के लिए प्रयोग किया गया है। ले०।

मर्यादा

एक बहादुर आस्ट्रेलियन खुरपी की तरह संगीन चला रहा है।

डारडानेलीज़ में हमारे वीर सिपाहियों ने जो बहादुरी के काम किये उन की बहुत सी बात मालूम हो रही हैं। गैलीपोली प्रायद्वीप के गा ा टेपी में जो लड़ाई हो रही थी उसमें एक आस्ट्रेलियन जो बड़ा ऊंचा और बड़ा ताकतवर आदमी था एक तुर्की खाई में कूद पड़ा। उसने पांच आदमियों को संगीन से भूसे के समान काट गिराया।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

सौदा पुत्र-कलत्र और राज्य परित्याग करने की बात तो दूर उसकी जगह कुछ कष्ट सहने तथा कुछ समय व्यय करने द्वारा भी मोल लिया है? मैं जहां तक समझता हूं आपकी आत्मा इसका उत्तर नहीं देगी। क्या ऐसी दशा में कहा जा सकता है कि उनके जीवनचरित्र को विचार-पूर्वक देखा है ? ऐसे पढ़ने से—नहीं, नहीं, तोता पाठ से—कोई लाभ नहीं होगा। यदि आप जीवनचरित्र पढ़ते हैं तो क्यों नहीं उससे शिक्षा ग्रहण करते ?

२—तुलसीकृत रामायण को सभी ने पढ़ा होगा नहीं तो सुना तो अवश्य होगा। और यदि पढ़ा नहीं तो रामलीला तो अवश्यमेव देखी होगी। परन्तु जब हम देखते हैं कि भरत के जीवन से कोई शिक्षा नहीं ग्रहण की जाती तो हमारे शोक की कोई सीमा नहीं रहती। क्या आप रामायण के बड़े बड़े प्रेमियों को भरत के विरुद्ध आचरण करते हुए नहीं देखते ? भरत के जीवन को देखिये—पिता राज्य देता है, माता दिलाती है, बड़े भाई जिसको कि वास्तव में राज्य मिलना चाहिये वह भी उनको राज्यसिंहासन पर बैठने की आज्ञा देते हैं, गुरूजी भी कहते हैं कि पिता की आज्ञापालन में ही भला है परन्तु भरत ही हैं कि यह बात ज़ानते हुए कि राज्य पर वास्तविक मेरा कोई अधिकार नहीं है और श्रीरामचन्द्रजी इसके अधिकारी हैं राजसिंहासन पर चरण नहीं रखते वरन् श्रीरामचन्द्र की चरणपादुकाओं को सिंहासन पर रखते हैं और इस प्रकार केवल वचन से ही नहीं वरन् कार्य द्वारा अपनी भक्ति जो कि भाई के प्रति उनको है दिखाते हैं और हमें उदाहरण बनकर उपदेश देते हैं कि "अपने हक पर संतोष रक्खो और दूसरों का छीनने की चेष्टा तो क्या यदि कोई दे तो भी उसे ग्रहण न करो। परन्तु देखो एक बात और याद रक्खो कि यह जान कर कि यह हमारा तो है ही नहीं अपने भाई की सम्पत्ति को नष्ट भी न होने दो वरन् अपने भाई को हानि न पहुंचे इस हेतु उसकी सम्पत्ति की रक्षा करना भी अपना मुख्य कर्तव्य समझो।"

३—इसी रामायण में हम श्रीरामचन्द्र को देखते हैं कि जिन्होंने पिता की आज्ञा पालन में अपने राज्य को छोड़ दिया और इसीलिए लोग उनकी प्रशंसा भी किया करते हैं। परन्तु हम इस बात के वर्णन करने में उनकी कोई महत्ता नहीं समझते क्योंकि ऐसा तो प्रताप, और सब से बढ़कर भीष्म ने भी किया है वरन् हमें तो उनकी महिमा जतानेवाली एक और ही बात दिखाई पड़ती है और उसी का हम आज वर्णन भी करेंगे। अहा! इस बात का ध्यान आते ही हमारा शिर श्रीरामचन्द्र के चरणकमलों में जा गिरता है और लज्जा के कारण फिर उठने की शक्ति नहीं रखता क्योंकि उनमें जो गुण थे—नहीं, नहीं, मर्यादा-पुरुषोत्तम जो उपदेश हमको तुलसीकृत रामायण आरण्य काण्ड के निम्नलिखित दोहे से देते हैं, हमने तदनुकूल आचरण करना तो क्या कदाचित् उस पर ध्यान भी न दिया होगा—

"सीता हरण तात जनि,
कहेहु पिता सन जाय।
जो मैं राम तो कुल सहित,
कहहि दशानन आय॥

जिस समय सीता जी की खोज में वन में घूमते हुए श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण जी सहित जटायु के पास पहुंचे जहां कि वह पड़ा पड़ा सिसक रहा था और उसी अवस्था में उसने उनको यह हृदय-विदारक समाचार कि 'रावण सीता जी को हर ले गया है' सुनाया और साथ ही यह भी कहा कि अब मैं देह को छोड़नेवाला हूं तो उस समय श्रीरामचन्द्र जी ने जो कुछ जटायु से कहा उस भाव को यह दोहा विदित कर रहा है।

अर्थ—हे तात जटायु! सीता के रावण द्वारा हरे जाने का समाचार पिता जी से मत कहना (क्योंकि दशरथजी का देहांत हो चुका था और गुसाईंजी के कथनानुसार उनकी मोक्ष हुई नहीं थी तथा अब जटायु भी सुरपुर ही जाता है जहां कि महाराजा दशरथ गये थे और अतः कवि के कथनानुसार संभव है कि वहाँ उन दोनों की भेंट हो और महाराज दशरथ अपने प्यारे पुत्र की कुशल भी पूँछ बैठें) क्योंकि यह समाचार उनको दुःख पहुंचावेगा और संभव है कि वह यह विचारें कि जब रामचन्द्र अपनी स्त्री की भी रक्षा न कर सका तो राज्य की क्या रक्षा कर सकता था। यदि मैं राम हूं तो रावण ही सपरिवार पिताजी को यह सब समाचार सुना देगा (यहां भी वही भाव है कि मृतक आपस में मिलते हैं—संभव है कि उनके लिए कोई स्थान विशेष हो—अर्थात् रावण जब सपरिवार राम के हाथ से मार दिया जायगा तो वह ही यह समाचार उनको सुनायेगा) क्योंकि इससे पिताजी को शोक के साथ हर्ष भी होगा। वे समझ लेंगे कि रामचन्द्र यदि किसी कारणवश (पाठक जानते ही होंगे) सीता को खो बैठे थे तथापि बन में होते हुए भी बिना अपनी अयोध्या से किसी प्रकार की सहायता लिये—नहीं, नहीं, चाहे भी—रावण को सकुल, नाश करने तथा सीता को वापिस लाने में समर्थ हुए।

प्रिय पाठकगण! क्या ही सुन्दर उपदेश हमको रामायण से मिलता है। वास्तव में प्रत्येक स्त्री—नहीं, नहीं, प्रत्येक मनुष्य का धर्म है कि स्वयं अपने स्वत्वों की रक्षा कर सके और किसी को उसकी किसी चीज़ के हड़प करने का साहस न हो। और यदि कोई ऐसा करे तो उसमें इतनी सामर्थ्य हो कि अपनी चीज़ वापिस ले सके तथा उसे इतना दण्ड दे सके कि फिर किसी को ऐसा करने का साहस न हो।

परन्तु यहां तो बात ही दूसरी है। हम केवल जीवन-चरित्र के अध्ययन पर ही ठहर जाते हैं, उससे सबक लेकर सदाचारी तथा कर्मवीर बनने की चेष्टा नहीं करते। यही कारण है कि हम ऐसे २ उत्तम शिक्षाप्रद जीवनचरित्र पढ़ते हुए भी अधोगति को प्राप्त हो रहे हैं। ये गाथाएँ—नहीं, नहीं, जीवनचरित्र तथा इतिहास—केवल श्रवण पवित्र करने के लिए नहीं हैं, वरन् शिक्षा ग्रहण करने के निमित्त हैं।

मित्रो, बताइये कि जब आप अपने पूजनीय पूर्वजों के गुणों को खो बैठे—नहीं, नहीं, उनके जीवनचरित्रों से भी शिक्षा नहीं ग्रहण करते—तो आप उनकी संतान कहलाने के कहांतक योग्य हैं? और आपका अपने भूतकाल पर अभिमान करना तथा यह डींग हांकना कि हमारे पूर्वज ऐसे थे, वैसे थे कहां तक ठीक है? निम्नलिखित कविता—यह उर्दू की है, क्षमा कीजिये, भाव इसका बहुत उत्तम है—किसी कवि ने आपही के लिए बनाई है:—

"जिनको दावा है कि हम बेटे बड़े बापों के हैं।
उनको करने होंगे अब जौहर असालत के अयां[१]॥
वरना वापिस लेने होंगे अपने सब दावा उन्हें।
और भुलाना दिल से सब होंगी बड़ों की दास्तां॥

क्योंकि

वह दिन अब गुज़रे कि करदेते थे छोटों को बड़ा।
इत्तफाकात[२] जहां[३] या इनकला[४] बातें जमाँ[५]॥
अब बड़ाई का है इस्तहक़ाक[६] पर सारा मदार।

अतः

है तुम्हारी अब तुम्हारे हाथमौत और ज़िंदगी॥
हो तुमही अपने मसीहा[८] और तुमही हो जांसितां[९]

३—फुटबाल का खेल आपने देखा होगा। जिन्होंने नहीं देखा है उनकी जानकारी के लिए

---

१ प्रकट। २ घटनाएँ। ३ संसार। ४ परिवर्तन। ५ समय। ६ हक। ७ निर्भर। ८ ईसा जो मुर्दा को जीवित कर देते थे अतः वैद्य। ९ प्राण लेनेवाले।

हम किनारे पर के चित्र से दिग्दर्शन करायेंगे। केन्द्र में प्रत्येक बाज़ी के आरम्भ में गेंद रक्खी जाती है और सामने ये जो गोल हैं यह प्रत्येक पार्टी (दल) का एक एक गोल है। दोही दलों से यह खेल होता है।

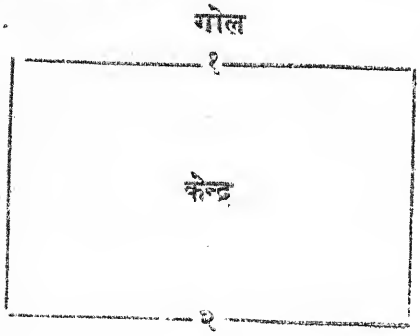

प्रथम केन्द्र में गेंद रक्खी जाती है। एक पार्टी का आदमी उसको ठोकर से दूसरी पार्टी की ओर बढ़ाता है। दूसरी पार्टीवाले उसको पहिली पार्टी की ओर लौटाते हैं अर्थात् किक (ठोकर) के उत्तर में किक होता है। बस फिर गुत्थमगुत्था आरम्भ हो जाती है। प्रत्येक पार्टी अपने सामने के गोल में होकर गेंद को निकालने का प्रयत्न करती है। गोल में होकर गेंद को निकालना इसी को गोल करना कहते हैं। गोल का अर्थ अंगरेज़ी में उद्देश्य का है तो यहां गोल करने का अर्थ किसी पार्टी का अपने उद्देश्य में फलीभूत होना है। जिस समय मैच होता है घंटों एक बाज़ी को हो जाते हैं। युवकों के बड़ी चोटें आती हैं परन्तु वे उस समय चोटों पर ध्यान नहीं देते क्योंकि उस समय उन्हें अपने उद्देश्य में फलीभूत होने की धुन समाई रहती है। अन्त में एक पार्टी दोनों में से फलीभूत होती ही है परन्तु होती वही है जिसके कि युवक दूसरी पार्टी के युवकों की अपेक्षा अधिक परिश्रमी, उद्योगी, बलवान तथा कष्ट सहने पर भी अपने उद्देश्य से हटनेवाले नहीं होते हैं।

इस खेल के वर्णन का तात्पर्य इस समय क्या है? यह कि प्रत्येक मनुष्य को खेल के गोल की भाँति कोई उद्देश्य रखना चाहिये और उस उद्देश्य में जीतोड़ कर फलीभूत होने का प्रयत्न करना उचित है। बस फिर कोई शक्ति ऐसी नहीं जो कि फिर सफलता में बाधक हो सके। यह सम्भव है कि एक दो बार सफलता न हो परन्तु स्मरण रखिये कि अन्त में अवश्य आप कृतकार्य होंगे।

बस आप जो कुछ कहें उससे पूर्व अपने को अपने कथन के अनुमोदन में उदाहरण बना लीजिये, पूर्वजों के जीवनचरित्र से सबक लीजिये और अन्त में अपना कोई उद्देश्य रखिये—धार्मिक वा सामाजिक चाहे जैसा सुधार हो और फिर भरसक किसी की परवाह न करते हुए उसकी पूर्ति का प्रयत्न कीजिये, परमात्मा अवश्य सहाय करेंगे।

दोनों के साथ श्रीमानों की सहानुभूति।

[लेखक—श्रीयुत पन्नालाल वैश्य।]

दोहा।

करत रह्यो निःसार बहु, नाना ऊहापोह।
निमिष मात्र तौ चित्त धरि, चिदानन्द सन्दोह॥

छन्द रोला।

(१)

यद्यपि विभव विचित्र प्रताप चहूंदिशि छायो।
तथा नराधिप भये महाराजा पद पायो॥
भयो अङ्क आतङ्क अवनि पै जिनको अङ्कित।
निज यश हतौ बढ़ाय कलानिधि कियो कलङ्कित॥

(२)

चतुर तुरङ्गी चाल चमू चतुरंगी गाढ़ी।
धीर वीर बानैत शूर सावन्तन बाढ़ी॥
शत्रुविजय कौ विरद द्विरद जनु बाँधे डोलत।
कहि कड़खा कड़खैत बन्दिजन जय जय बोलत॥

(३)

कहँ लगि वर्णन करौं अनेकन गुण सो पूरे।
चञ्चल चपल ललाम सुभग सुन्दरता रूरे॥
मेचक कुञ्चित केश मृदुल सौरभ घुंघरारे।
नवदल मुकुलित कंज मंजु लोचन अनियारे॥

(४)

बने ठने शृङ्गार हार चन्दन चर्चित तन।
वचन रचन में चतुर वीरता करत हरत मन॥
हैं उपरोक्त गुणन सों नर जग माहिं अलंकृत।
भये अनभये एक कहतगति जिनकी सकुचत॥

(५)

अतिहि दीन बलहीन अकारन जिनकों पीड़त।
राजकाज मिस नित्य अहर्निश सुख कों मीड़त॥
पीसें डारत तिनहिं चैन छिन लैन देत नहिं।
राज पुरुष बनि आप दाप करि तिनतन चितवहिं॥

(६)

कछुनहिं सुनत पुकार क्रुद्ध कृत्तान्त रूप गहि।
देत दपटि ललकार तरेरे त्यौर दृगन लहि॥
ऐसे अधिकारिन कौ होत न प्रतीकार जहँ।
उक्त दुराचारिन कौ नाहि न तिरस्कार तहँ॥

(७)

शोचनीय तिनके हैं वे प्रभुता प्रताप वर।
सुबस बसहिं किमि ऐसे देशरु ग्राम नगर घर॥
चिन्तनीय वह चमू चारु चित्रित चखचौंधे।
कलित ललित कलधौत विभूषण पूषण कौंधे॥

(८)

नानाविधि शृङ्गार अर्गजा अङ्ग विलेपन।
नाहिन उचित कदापि शयन स्वच्छन्द अचेतन॥
अन्तःपुर अरुशिधिर चँदोवे चारु अँबारी।
नहिं शोभा को सजत वाटिका अरु फुलवारी॥

(९)

पकरि शुकादिक पंछिन कौं बन्धन में डारत।
महिषादिकन लड़ाय आप कौतुकहि निहारत॥
निज मन प्रफुलित करत अन्य जीवन कों पीड़ा।
होत उन्हैं जो खेद ताहि लखि लहत न व्रीड़ा॥

(१०)

खेलत पासे खेल हरखि चौपरहि बिछावत।
चौपट करि गृहकाम धर्म धन धाम नसावत॥
व्यर्थ समय को खोय मनहिं कछु विलग न आनत।
निपट तमोगुण रूप मनोरंजन तिहि मानत॥

(११)

तजिय व्यसन सुख सेज मुकुरकर केश उलटना।
पलटि वेष जहँ लेश ओज आतङ्क प्रकटना॥
हृदय कान दै सुनिय दीन दुखियन की रटना।
देखिय पलक उघारि परम पतितन की घटना॥

(१२)

रंचक उनकी ओर कृपा की कोर किये तें।
होंयँ परम सन्तुष्ट मनहुं सर्वस्व दिये तें॥
सुनिवो मन की बात अहै उपकारहि जिनको।
मधुर बोलिवो है जीवन आधारहि तिनको॥

(१३)

सो यदि कीनौ नाहिं कहा पुनि करी बड़ाई।
जल थल सेना जोरि अनेकन लरी लड़ाई॥
रिपुदल जीते कितकि सार निकस्यो का तिनते।
वे बैरी नहिं जिते कटत जर नय तरु जिनते॥

(१४)

धनो द्रव्य धरि गेह महाजन धनी कहाये।
चौखूँटी अरु गोल करोरन ते न अघाये॥
अरब खरब लौं जोरि अधिक व्यापार बढ़ायौ।
भरयो धनद सम कोष तदपि सन्तोष न आयौ॥

(१५)

धने लाभ के हेत मिलावत विष रस माहीं।
करत अधर्म अनेक जिनहिं मन शंका नाहीं॥
घृत में जैसे मज्जा व अरई करि मन्थन।
जीरे अजवाइन से लघु बीजन में मरु कन॥

(१६)

ऐसी मति प्रतिकूल मूल व्यापार उखारत।
त्यागि सत्य व्यवहार कुकृत करि दरहि विगारत॥
करी लाभ की चाह हानि कौ मारग लीनौ।
शुद्ध सुवस्तु दिखाय कपट कौ सम्पुट दीनौ॥

(१७)

फिर कैसे व्यवहार चलै जहँ ऐसी निष्ठा।
देत दैव कों दोष जबै नसि जात प्रतिष्ठा॥
ऐसी उदरपालना कों धिक अरु जीवन कों।
कौन दण्ड दैहैं प्रभु ऐसे अधम नरन कों॥

(१८)

कहा कियौ धन जोरि नहीं व्यय करिवौ जान्यौ।
कियौ न विद्या पठन शठन कौ वचन प्रमान्यौ॥
विद्वानन की रीझि न जानी जान्यौ स्वारथ।
बिना यथारथ बोध जनम सब कियौ अकारथ॥

(१९)

लखे भ्रातगण दीन वसन मैले मन फीके।
तिनतें नैन चुराये नाहिन भेंटे नीके॥
देखे जिनके बड़े पेट भूषन तनधारी।
तिन कौही सतकार कियौ करि गौरव भारी॥

(२०)

भोग आपके कौ शतांश है जिनकौ पालन।
परत पांवड़े तुमकों सो उन तन कौ लालन॥
करहु नेक चित चेत तुम्हारे बान्धव ऐसे।
उनकौ हूं शुभ देनु विचारहु अपनौ जैसे॥

(२१)

पढ़े अनेकन ग्रंथ कहाय बहुश्रुत बुधजन।
नाटक त्रोटक चम्पू अरु इतिहास पुरातन॥
ऊँचे आसन बैठि करत उपदेश अनेकन।
आप सु संचित करत कहत औरहि त्यागहु धन॥

(२२)

विद्या पढ़ि हू रह्यौ मोह मत्सरता औ छद।
नहिं त्यागे दुर्व्यसन पान रत रहे छके मद॥
गयौ न मन तें ईर्षा द्वेषरु वादवितण्डा।
किन लक्षन सों जानहिं बुध तिनकी बुधि पण्डा॥

(२३)

कैतिक मुन्शी भये तथा अरबी के फ़ाजिल।
बाँधि फ़जीलत की पगड़ी कहलाये कामिल॥
कक्षा चढ़े अनेक पढ़े कालेज पढ़ाई।
सीखे ला, साएन्स, उचित डिगरीहू पाई॥

(२४)

पढ़े बड़े कालेज बड़ौ पदहू जिन पायौ।
अकस्मात अभिमान उक्त पदवी पर आयौ॥
अब अपने भ्रातन कों बहुत घृणा करि देखत।
सांचे सरल स्वभाव तिनहिं मूरख करि लेखत॥

(२५)

कलावन्त श्रीयुक्त बड़ौ अपने कों मानत।
बन्धु जनन सों मिलन माहिं निज हेठी जानत॥
यह नहिं उनकों जोग विचारहिं निज मन माहीं।
करहिं दीन पर नेह दया उर राखि सदाहीं॥

(२६)

करत काज सब स्वामी के सन्मुख अति जीसों।
पै परोक्ष में हूं कीजै ताहि विधि ही सों॥
सांचौ स्वामी परब्रह्म बहु नैनन निरखत।
तासों किमि दुरि सकै हिताहित जो जग परखत॥

(२७)

जाकी शक्ति अनन्त अगोचर अद्भुत माया।
करत विश्व प्रतिपाल अकारन सब पर दाया॥
होय बोध चित चारु शोध कीजै सो सतपथ।
नित नव बाढ़हि प्रेमपुञ्ज सिधि होंहि मनोरथ॥

सम्पादकीय टिप्पणियां।

आशा या दुराशा।

आज इङ्गलैंड और ब्रिटिश साम्राज्य को भारत का जितना कृतज्ञ होना चाहिये यह किसी से छिपा नहीं है। हमें इसके कहने में संकोच नहीं कि यदि भारत से सेना अङ्गरेज़ी, और देशी रणक्षेत्र में न भेजी जा सकती, यदि भारत की स्थिति भयावह होती और यहां से सेना का हटाना युक्तिसङ्गत न होता तो इसमें सन्देह नहीं कि ब्रिटिश वीरवाहिनी सेना आज रणक्षेत्र में वह काम न कर सकती जो आज वह कर रही है। यह कहना भी अत्युक्ति न होगा कि वह जर्मन आक्रमणकारियों का मुकाबला भी न कर सकती। इस दृष्टि से देखने से यह सबको मानना पड़ेगा कि आज इङ्गलैंड की कीर्तिपताका भारतवासियों के सहारे नभमंडल में फरफरा रही है। भारतवासी इस बात को मानते हैं, उदार अङ्गरेज़ भी विचित्र स्थिति को देख कर या सच्चे हृदय के कारण इस बात को स्वीकार करने से मुंह नहीं मोड़ रहे हैं।

हम यह सब इस लिए नहीं कहते कि भारतवासियों ने कोई बड़ा काम किया है। हम मानते हैं कि उन्होंने केवल अपना कर्तव्य पालन किया है यद्यपि साथ ही साथ बहुत से अङ्गरेज़ों और भारतवासियों की दृष्टि में यह कहना भी अयुक्तिसंगत न होगा कि भारतवासियों के साथ जैसा व्यवहार किया जाता था उसकी अपेक्षा जो काम उन्होंने किया वह सहस्रों गुणा अधिक था। अस्तु। हमतो इतना ही कहेंगे कि भारतवासियों ने अपना कर्तव्य पालन किया, वे उसके लिए पुरस्कार नहीं चाहते, वे उसके लिए कोई भिक्षा नहीं मांगते, वे स्वत्वों के लिए गिड़गिड़ाते नहीं किन्तु वे चाहते हैं कि जैसे उन लोगों ने अपना कर्तव्य पालन किया है वैसेही इङ्गलैंड और साम्राज्य भी उनके प्रति अपना कर्तव्य पालन करे। भारतवासियों को मनुष्योचित अधिकार और स्वत्व प्राप्त हों। अपनेही घर में उनके साथ विदेशियों और पैरियों का सा व्यवहार न किया जाय, वे अविश्वास की दृष्टि से न देखे जायँ, उन्हें सेना तथा अन्य विभागों में ऊंचे से ऊंचे पद प्राप्त हों और कम से कम एक गोरे चमड़ेवाले जर्मन और आस्ट्रियन की भांति, अपने ही देश में, उन्हें अस्त्र शस्त्र रखने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त हो। साथही साथ वे कहते हैं कि यह सब न भी सही तो कम से कम शिक्षा का प्रबन्ध पूर्णरूप से उनके आधीन रक्खा जाय और उसमें सरकार या किसी अफसर को किसी प्रकार से हस्तक्षेप करने का अधिकार न रहे। भारतवासियों की यह आशा है, देखना यही है कि यह दुराशा का रूप धारण करती है या नहीं?

यह सबको स्वीकार करना पड़ेगा कि भारतवासियों की दशा अब बदल गई है। इस युद्ध ने यह प्रमाणित कर दिया है कि धीरता में, वीरता में, सहनशक्ति में किसी भी अन्यजातीय मनुष्य से वे कम नहीं। देश में स्थित तथा विदेशों में गए हुए भारतवासियों से यह सब बात छिपी नहीं, दिन दिन मनुष्योचित समता का भाव इनके हृदय में अंकुरित हो रहा है, इस भाव को दूर करना सहज न होगा। इङ्गलैंड के राजनीतिज्ञों को यह सब पहिले से समझ लेना चाहिये।

युद्ध के अन्त होने पर साम्राज्य के सब अङ्ग मिलेंगे, भविष्य के लिए, साम्राज्य की

नीति स्थिर होगी, किसका क्या कर्तव्य होगा, किसे क्या अधिकार प्राप्त होंगे, एक की राय से युद्ध छेड़ा जायगा या युद्ध छिड़ने के पहिले सबको राय देने का बराबर का अधिकार प्राप्त होगा, ये सब बातें तय होंगी। भारत का कहना है कि साम्राज्य-रक्षा में उसने किसीसे कम भाग नहीं लिया। यह सत्य है कि भारत-वासी स्वयं-सेवक नहीं बने। उन्होंने रणयज्ञ में मुंडों की आहुति नहीं दी किन्तु इसका उन्हें अधिकार न था, उन्हें सैनिक शिक्षा देना, अस्त्र-शस्त्र रखने की उनको स्वतंत्रता प्रदान करना, सरकार अदूरदर्शिता के कारण उचित नहीं समझती। ऐसी अवस्था में जो कुछ वे कर सकते थे उन्होंने किया। उनपर किसी प्रकार का लांछन नहीं लगाया जा सकता और सब प्रकार से उन सब अधिकारों को पाने के वे अधिकारी हैं जो इङ्गलैंड, वेल्स, स्काटलैंड, कैनेडा, आस्ट्रेलिया या दक्षिण एफ्रिका के निवासियों को प्राप्त हैं या होंगे। स्वतंत्रता के प्रेमियों को इस ओर ध्यान देना चाहिये।

बहुत कुछ संभव है कि जो अभी हमारे चारण हो रहे हैं, जिनकी ज़बान हमारी प्रशंसा के गीतों के गाने से इस समय थकती ही नहीं, अवसर बीता हुआ देखकर कंटक-स्वरूप हमारे मार्ग में खड़े हो जायँ और हमें किसी भी प्रकार के अधिकारों के प्राप्त करने के अनुपयुक्त सिद्ध करने लगें। कहने लगें कि इनमें शिक्षा नहीं, इनमें योग्यता नहीं, इनमें आत्मबल नहीं, इनमें शक्ति नहीं, ये पूर्व देश के वासी हैं जहां प्रजासत्ताक शासन की प्रणाली कभी फूली नहीं, फली नहीं और बहुत सोच समझकर, जांच-कर इन्हें कोई अधिकार देना ही उचित होगा। इन चालों की काट के लिए हमें तैयारी पहिले से करनी चाहिये। अभी आन्दोलन का समय नहीं, किन्तु साथही साथ इसका अर्थ यह भी नहीं है कि हम जनता को उस समय के आन्दोलन के लिए न तैयार करें। पैम्फलेटों, व्याख्यानों, सभाओं द्वारा हमें जनता को बतला देना चाहिये कि हमारी आवश्यकताएँ क्या हैं, हम क्या चाहते हैं और क्यों चाहते हैं? इससे जनता में राजनैतिक ज्ञान फैलेगा साथ ही साथ हमारा हाथ बटाने में वह भी अग्रसर होगी।

इङ्गलैंड के राजनीतिज्ञों का स्वर बदल रहा है। वेलंटाइन शिरोल तथा उनकी ही दृष्टि से देखनेवाले मि० लवट फ्रेज़र, भारत की प्रशंसा के गीत गाते गाते उकता गये, वे फिर अपनी चिरपरिचित आत्मा का दिग्दर्शन कराने को उतावले हो रहे हैं। हम लोगों से कहा जाने लगा है कि युद्ध के बाद क्या होगा, भारत का सम्बन्ध कैसा रहेगा, साम्राज्य में उसे कौनसा स्थान मिलेगा, यह सब स्वप्न देखना मूर्खता नहीं अन्याय है। यह समय विवादग्रस्त विषयों के आन्दोलन का नहीं किन्तु इसी समय में विला-यत में यह चर्चा हो रही है कि युद्ध के बाद उपनिवेशों और साम्राज्य के सम्बन्ध में कौन से फेरफार की आवश्यकता है। मि० बानर ला कह रहे हैं कि सन्धि के समय उपनिवेशों की भी राय ली जायगी किन्तु हम लोगों को विदित नहीं कि इंडिया आफिस और मि० चेम्बरलेन क्या सोच रहे हैं?

* * * * * *

हमें इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना है, कहना भी हो तो हम कहीं क्या सकते हैं; भारत के भाग्य का निपटेरा इंडिया आफिस के हाथ में है और जो उसे उचित समझ पड़े वही ठीक, किन्तु तब भी हम इतना कह देना चाहते हैं कि आज के भारत में और लार्ड लैंसडाउन, मेक्डानल, सिडेनहम या लार्ड कर्ज़न ही के भारत में बड़ा अन्तर है। आधुनिक भारत का कहना है कि उसकी राजभक्ति कसौटी पर कसी जाने पर खरी साबित होगई है और ऐसी दशा में राजभक्ति में सन्देह होने के कारण ज़िन

सुधारों से वह वंचित था वे अब उसे मिल जाने चाहियें।

सुअर = भारतवासी = १५०)।

जे० ई० आर० बार्न्स नामक एक अङ्गरेज़ बनारस में सरकारी जेलर हैं। आप शिकार के शौकीन हैं। अस्त्र-शस्त्र पास रखने से यह होता ही है। एक दिन सन्ध्यासमय शिकार की मौज के आप वशीभूत हुए। बन्दूक लेकर आप निकल पड़े किन्तु आप कहीं जंगल, या पहाड़ी पर नहीं गये जेल के हाते में ही आप एक ओर चले गये। वह भी ऐसी जगह नहीं जो बस्तीसे दूर हो या जहां मनुष्यों का आना-जाना असंभव हो! अंधेरे में आप जाकर छिप रहे। सामने ही झुरमुट में अँधियारे में एक जीव आपको हिलता डोलता नज़र आया। आपने यह सोचने का कष्ट नहीं उठाया कि जीव कौनसा है। आप समझे थे कि सुअर होगा किन्तु वास्तव में सुअर है या नहीं यह जानने की तनिक भी आपने चेष्टा नहीं की। करते भी क्यों सुअर में पर होते ही हैं यदि वह उड़कर चला जाता तो फिर उसका ज़िम्मेवार कौन होता? आपने बन्दूक चला ही तो दी। जब सुअर को उठाने के लिए गये तो आपको मालूम हुआ कि आपने धोखा खाया। वह जीव सुअर नहीं वरन् काला आदमी था। साहब के पक्ष में इतनी बात अवश्य है कि आपने तुरन्त इस घटना की रिपोर्ट कर दी और कुछ छिपाया नहीं। अस्तु, मुकदमा चला। साहब ने कहा अँधेरे में काली शकल देख मैंने सुअर समझ गोली चलादी और फिर मनुष्य को जेल के हाते में आकर घास छीलने का कोई अधिकार न था। मुकदमा मजिस्ट्रेट के इजलास में था और उन्होंने साहब पर एक काले आदमी की जान लेने के लिए १५०) जुर्माना किया।

इसके पहिले एक बार एक अङ्गरेज़ को एक काले आदमी की जान लेने के लिए १२०) जुर्माना हुआ था। अब १५०) हुआ है। काले मनुष्य के जीवन के मूल्य में अब ३०) की वृद्धि हुई, बाज़ार में दर ऊंची हुई है इससे हम प्रसन्न हैं। किन्तु प्रश्न यह है कि यदि जे० ई० बार्न्स के स्थान पर कोई काला मनुष्य होता और काले आदमी ने अंधेरे में सफेद जीव देख और उसे बगुला या बतख़ समझ बार्न्स की हत्या कर डाली होती तो क्या होता? बार्न्स का जीवन-मूल्य १२०) ठहराया जाता, १५०) ठहराया जाता या काले हत्याकारी को उसकी 'Culpable negligence' घोर असावधानी के लिए कालापानी या फांसी होती?

एक बात और है। बार्न्स साहब जान लेकर तथा १५०) दे छूट जाने पर प्रसन्न नहीं हुए, विपरीत इसके जुर्माने के कारण आपको दुःख हुआ और मजिस्ट्रेट के फैसले के खिलाफ आपने अपील की। बात ठीक ही थी साहब ने गोली चलाई अब कोई काला आदमी ज़बर्दस्ती जान देने को आ बैठे तो उनका दोष ही क्या? किन्तु उनकी सुनवाई नहीं हुई। सेशन जज ने मजिस्ट्रेट का फैसला बहाल रक्खा। हम साहब के साथ सहानुभूति प्रकट करते हैं। एक काली जान के लिए १५०) बेशक बहुत है और फिर ऐसी अवस्था में जब कि असावधानी के लिए सुबूत संसार में ढूंढ़े नहीं मिल सकते।

यह प्रसन्नता की बात है कि संयुक्तप्रान्त की सरकार का ध्यान इस घटना की ओर आकर्षित हुआ है और वह इस सम्बन्ध में कुछ करना चाहती है। ऐसी अवस्था में अब न्याय के होने में सन्देह नहीं।

अभ्युदय प्रेस से ज़मानत की मांग और माननीय मालवीय जी का उत्तर।

अभ्युदय प्रेस के सम्बन्ध में गवर्नमेंट ने माननीय पं० मदनमोहन मालवीय जी से जो

ज़मानत मांगी थी उसके उत्तर में उन्होंने नीचे लिखा पत्र गवर्नमेंट को भेजा :—

माननीय चीफ सेक्रेटरी,
यू० पी० गवर्नमेंट,
नैनीताल।

महाशय,

सन् १९१० के प्रेस ऐक्ट की दफा ३ (२) के अनुसार आपने ३० जुलाई १९१५ को मेरे नाम यह नोटिस जारी किया कि मैं इलाहाबाद के डिस्ट्रिक्ट मेजिस्ट्रेट के पास २५००) रु० की ज़मानत दाखिल करूं, उसकी मैं प्राप्ति स्वीकार करता हूं। यह नोटिस इसलिए जारी किया गया है कि अभ्युदय प्रेस ने, जिसके विषय में सन् १८६७ के ऐक्ट नं० २५ की दफा ४ के अनुसार मैंने १८ जनवरी १९०८ और ११ जून सन् १९०८ को डिक्लेरेशन दिया था, साप्ताहिक 'अभ्युदय' के २६ जून १९१५ के अङ्क में "फ्रेंच काले सैनिक और ब्रिटिश काले सैनिक में भेद" शीर्षक का लेख छापा था और उस लेख के छापने से संयुक्तप्रान्त की गवर्नमेंट को यह मालूम होता है कि यह प्रेस ऐसे विषयों के छापने के लिए काम में लाया जाता है जिनसे सम्भव है या जिनका यह असर हो सकता है कि हिन्दुस्थानी सिपाही अपनी राजभक्ति से डिगें या उनमें सम्राट् के प्रति अथवा ब्रिटिश इंडिया में कानून से स्थापित गवर्नमेंट के प्रति अप्रीति उत्पन्न हो। अर्थात् दूसरे शब्दों में यह कि सन् १९१० के ऐक्ट १ की धारा ४ अन्तर्धारा (१) में जो बातें वर्णित हैं उनके छापने के लिए यह प्रेस काम में लाया जाता है। मुझे खेद है कि एक ऐसा लेख, जिसके विषय में गवर्नमेंट ने इतना भारी एतराज़ किया है, अभ्युदय प्रेस में छपा और 'अभ्युदय' पत्र में प्रकाशित हुआ। पर साथ ही मैं अपना कर्तव्य समझता हूं कि मैं यह निवेदन करूं कि संयुक्तप्रान्त की गवर्नमेंट ने इस लेख का अभिप्राय ठीक ठीक न समझने के कारण अपनी ऐसी सम्मति स्थिर की है और न्याय की रीति से इस लेख का वह अर्थ नहीं हो सकता जो गवर्नमेंट ने लगाया है। इस नोट में 'अभ्युदय' ने कोई नई बात नहीं लिखी थी, फोनिक्स नेटाल से प्रकाशित होनेवाले "इंडियन ओपीनियन" नामी पत्र के २६ मई के अङ्क में १२२ पृष्ठ पर 'अभ्युदय' के सम्पादक ने एक नोट देखा जिसमें गोल्डकोस्ट के एक पत्र से कुछ अंश उद्धृत करके उसने लिखा कि उस पत्र की वे बातें ध्यान देने के योग्य हैं जिनमें उसने एफ्रिका के काले फ्रेंच सिपाहियों के श्रेष्ठ होने के सम्बन्ध में टिप्पणी की है और यह भी दिखलाया है कि उसकी समझ में उस भेद का कारण क्या है। उस पत्र ने यह लिखा था :—

"वीरता, साहस और सूझ के गुणों में फ्रेंच सेनीगेलीज़ सिपाही हमारे सिपाहियों से क्यों बढ़े चढ़े हैं? इस कारण का पता उस भेद पर ध्यान देने से लगता है जो ब्रिटिश और फ्रेंच एफ्रिकन जातियों को शिक्षा देने और उनपर शासन करने के क्रम में है। फ्रेंच एफ्रिकन काली प्रजा को फ्रांस से प्रेम करने की शिक्षा दी जाती है और सिखाया जाता है कि वे उसे अपनी माता के समान समझें जो उनका भला करने के लिए उत्सुक रहती है और यदि वे अपनी योग्यता दिखावें तो उनका वैसा ही आदर-सन्मान करने को सदा तैयार रहती है जैसा अपने गोरे पुत्रों का। ब्रिटिश लोग इत्यादि—" (यू० पी० गवर्नमेंट की राय के आदर के लिए लेख का शेष भाग नहीं छापा जाता।)

इस बात को विशेष ध्यान में रखकर कि इस समय एक बड़े युद्ध में साम्राज्य निमग्न हो रहा है, और जो बहुत शीघ्र समाप्त होता नहीं दिखाई देता, "अभ्युदय" के सम्पादक को भी यह प्रतीत हुआ कि गोल्डकोस्ट के पत्र का यह कथन—कि हमारे सम्राट् के एफ्रिकन सिपाही बहादुरी, साहस और सूझ के गुणों में फ्रेंच एफ्रिकन सिपाही के बराबर क्यों नहीं

होते हैं और उसकी यह सम्मति कि उसका कारण दूर किया जाना चाहिये, ये दोनों बातें गवर्नमेंट के—ब्रिटिश प्रजा के प्रतिनिधियों के—ध्यान में लाने के योग्य हैं। इसलिए 'अभ्युदय' के सम्पादक ने ऊपर उद्धृत किये हुए नोट का चलता हुआ अनुवाद पिछले २६ जून के 'अभ्युदय' में—तुलना केवल फ्रेंच काले (एफ्रिकन) सिपाही और ब्रिटिश काले (एफ्रिकन) सिपाही में नियमित करके—प्रकाशित किया और उसपर अपनी ओर से केवल यह टिप्पणी कर दी कि गोल्डकोस्ट के पत्र की सम्मति बिलकुल ठीक है। 'इन सीज़न एन्ड आउट आफ़ सीज़न' इन शब्दों का अनुवाद "अवसर और बिना अवसर" है। किन्तु कुसंयोग से टाइप बैठाने की गलती से पहिले 'अवसर' की जगह 'अफसर' ('व' की जगह 'फ') छप गया। पर दीठ डालते ही यह भूल साफ मालूम हो जाती है और मुझे आशा है कि इसके कारण सरकारी अनुवादक भ्रम में नहीं पड़े होंगे।

पर जैसा अनुवाद छपा था उससे भी उस लेख का, जिसपर विचार हो रहा है, यह अर्थ स्पष्ट था कि गोल्डकोस्ट के पत्र ने फ्रेंच एफ्रिकन सिपाही और ब्रिटिश एफ्रिकन सिपाही की योग्यता का मुकाबला किया—हिन्दुस्थानी सिपाही के विषय में एक शब्द भी नहीं लिखा गया था—और उसने गवर्नमेंट को—ब्रिटिश प्रजा के प्रतिनिधियों को—सुझाया था कि सम्राट् के एफ्रिकन सिपाहियों को शिक्षा देने और उनपर शासन करने के क्रम में सुधार किया जाय जिसमें वे भी वीरता, साहस और सूझ के गुणों में फ्रेंच सेनीगेलीज़ सिपाहियों के बराबर हो जायँ। और सुधार का यह उपाय बताया कि ब्रिटेन उन्हें ऐसी शिक्षा दे कि वे इंगलैंड और ब्रिटिश साम्राज्य से प्रेम करें, जैसा कि गोल्डकोस्ट के पत्र के मतानुसार, "फ्रांस अपनी काली एफ्रिकन प्रजा को शिक्षा देती है कि वह फ्रांस से प्रेम करे और ऐसा प्रेम करे कि उसे अपनी माता के समान समझे जो उसके हित के लिए सदा उत्सुक रहती है और यदि वह अपने को योग्य सिद्ध करे तो उसका वैसा ही आदर सन्मान करने को तैयार रहती है जैसा अपने गोरे पुत्रों का।"

परन्तु यदि मान भी लिया जाय कि किसी भ्रम से यह समझा जाय कि वह टिप्पणी हिन्दुस्थानी सिपाही से सम्बन्ध रखती है तब भी उसका स्पष्ट अर्थ यही हो सकता है कि भारत सरकार सम्राट् के भारतीय प्रजाजनों की शिक्षा और शासन की प्रणाली को उसी निर्दोष रीति से सुधारने की आवश्यकता की ओर ध्यान दे, जिसका प्रस्ताव ब्रिटिश एफ्रिकन प्रजा के सम्बन्ध में किया गया है और जो देशभक्ति और राजभक्ति को मिलाकर एक करता है, जिससे भारतीय सिपाही के लिए अपनी सैनिक योग्यताओं को पूर्ण रूप से विकसित और प्रकाशित करना सम्भव हो सके!

संयुक्तप्रान्त की गवर्नमेंट के प्रति उचित आदर-बुद्धि रखते हुए भी मुझे यह कहना पड़ता है कि मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि जो लेख ब्रिटिश एफ्रिकन या हिन्दुस्थानी सिपाही की शिक्षा और उसके साथ होनेवाले वर्ताव को सुधारने की ओर ध्यान दिलाता है, जिससे कि वे साम्राज्य की सेवा करने के लिए उच्चतम वीरता, साहस और सूझ के गुणों का संग्रह कर सकें और जो ऐसी प्रणाली के अवलम्बन किये जाने की सलाह देता है जिससे निस्सन्देह सम्राट् और साम्राज्य के प्रति उन सैनिकों की राजभक्ति बढ़े और गाढ़ी हो, वह लेख कैसे "हिन्दुस्थानी सिपाहियों को उनकी राजभक्ति से डिगाने और सम्राट् या ब्रिटिश भारत में न्याय से स्थापित गवर्नमेंट के प्रति अप्रीति उत्पन्न करने की सम्भावना रख सकता है।"

मेरी यह इच्छा नहीं कि एक प्रेस के स्वामी होने का जो उत्तरदायित्व मुझपर है उसको मैं

कम करके दिखलाऊं। परन्तु लोक के हित का ध्यान मुझे इस बात पर मजबूर करता है कि मैं यह दिखाऊं कि संयुक्तप्रान्त की गवर्नमेंट की आज्ञा से एक और कैसा अन्याय हुआ है। अभ्युदय प्रेस तीन समाचार-पत्र और मासिक-पत्रों को छापता है, 'अभ्युदय' और 'मर्यादा' हिन्दी में और 'क्रूसिबिल' अंगरेज़ी में! गवर्नमेंट अच्छी तरह जानती है कि प्रथम दो पत्रों का सम्पादन मेरे भतीजे पं० कृष्णकान्त मालवीय करते हैं और तीसरे के सम्पादक मि० रामदास कृष्ण हैं। सरकार ने जिस लेख को दोषी समझा है वह केवल "अभ्युदय" ही में छपा था, "मर्यादा" और "क्रूसिबिल" ने कोई अपराध नहीं किया है। यदि गवर्नमेंट 'अभ्युदय' के उस लेख छापने पर—जिसका छापना हद से हद यह कहा जा सकता है कि अविवेक की बात थी—कड़ाई से अपनी अप्रसन्नता दिखलाना उचित समझती थी तो वह उस पत्र के छापने और प्रकाश करनेवाले से ज़मानत मांगकर वह बात वैसी ही अच्छी तरह कर सकती थी। परन्तु जो क्रम उसने ग्रहण किया है उससे, विना न्याय के आभास के भी, उन दो मासिकपत्रों का छापना भी और प्रेस का और सब काम भी बन्द कर दिया गया है।

ऊपर लिखी बातों को ध्यान में रख मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता है कि विना कोई जवाब मांगे प्रान्तीय गवर्नमेंट ने जो ज़मानत जमा करने के लिए मुझे सूचना दी है वह बिलकुल अन्याययुक्त है और मैं अपने साथ न्याय करते हुए उसका पालन नहीं कर सकता। परन्तु इसलिए कि प्रेस एक्ट के अनुसार प्रान्तीय सरकार के निर्णय के विरुद्ध मुझे कोई चाराकार नहीं, मैं विवस हूं कि जो एकही दूसरा मार्ग मेरे लिए खुला है उसका मैं अवलम्बन करूं, अर्थात् प्रेस को बन्द कर दूं और जहां तक शीघ्र हो सके उसको अलग कर दूं।

मैं ज़िले के मेजिस्ट्रेट को सूचना देता हूं कि अभ्युदय प्रेस इसी मंगलवार को बन्द हो जायगा।

प्रयाग, ८ अगस्त, १९१५ } भवदीय, इत्यादि
मदनमोहन मालवीय।

—०—

माननीय पं० मदनमोहन मालवीय,
बी० ए०, एल० एल० बी०,
इलाहाबाद।

नैनीताल, २४ अगस्त १९१५।

महाशय,

मुझे आपके ८ अगस्त के पत्र की प्राप्ति स्वीकार करने की आज्ञा मिली है, जो उस सरकारी आर्डर के विषय में था जिसमें अभ्युदय प्रेस के सम्बन्ध में आपसे उसके रजिस्टर्ड स्वामी होने के कारण ज़मानत मांगी गई थी। उस आर्डर का मुख्य कारण २६ जून १९१५ के साप्ताहिक 'अभ्युदय' में प्रकाशित एक लेख था। आप अपने पत्र में कहते हैं कि प्रान्तीय सरकार ने उस लेख का विपरीत अर्थ समझ लिया है और प्रान्तीय सरकार ने उसका जो अर्थ लगाया है वह ठीक नहीं है। आप कहते हैं कि वह लेख एक एफ्रिकन पत्र में प्रकाशित टिप्पणी का चलता हुआ अनुवाद है और यह कि उसका अभिप्राय ब्रिटिश एफ्रिकन सिपाहियों की शिक्षा और शासन-क्रम को उन्नत करने के लिए सरकार को सलाह देना था; जिससे कि उनमें वीरता और अपनी सूझ से काम करने के गुण की वृद्धि हो।

२—उत्तर में मुझे कहना है कि लेफ्टिनेंट-गवर्नर 'अभ्युदय' के लेख की यह व्याख्या स्वीकार नहीं कर सकते। उसका मूल-रूप चाहे जो रहा हो, उसको उसके वर्तमान हिन्दी स्वरूप में पढ़ना होगा और उसे उसी तरह समझना पड़ेगा जैसा किसी साधारण हिन्दी पाठक को उसका बोध होगा। लेख को उसके यथार्थ रूप में देखते हुए, कहीं उसमें एफ्रिका का

हवाला नहीं मिलता और आरम्भिक पंक्ति में 'सिङ्गाली' इस अस्पष्ट शब्द के सिवा कहीं कोई बात ऐसी नहीं है जो बतलाती हो कि साधारण हिन्दुस्थानी पाठक की जानी हुई के अतिरिक्त किसी अन्य 'काली सेना' का वहां प्रयोजन है। द्वितीयतः, यदि यह निष्कर्ष निकाला जाय कि फ्रेंच पदोन्नति का मार्ग खोलकर अपने काले सैनिकों की उन्नति करते हैं, तो उसका प्रत्याहार उस बर्ताव के वर्णन से हो जाता है जो कहा गया है कि अंगरेज़ अपने 'काले सैनिकों' के साथ करते हैं। तृतीयतः, वह वर्णन बिलकुल ग़लत है; लेख का अन्त इस प्रकार है:—

"....."

३—इसलिए लेफ्टिनेन्ट-गवर्नर को खेद है कि शाब्दिक अर्थ और साधारण अभिप्राय के अनुसार वे उस लेख को सामान्य हिन्दू पाठक को यही विश्वास कराने की सम्भावना रखनेवाला समझ सकते हैं कि अंगरेज़ हिन्दुस्थानी सिपाहियों के साथ वैसा ही बर्ताव करते हैं जैसा कि ऊपर कहा गया है। ऐसा कथन हर समय में पूर्णतः मिथ्या है; परन्तु वर्तमान समय में, जब कि सम्राट् के सब प्रजाजन हमारे वीर हिन्दुस्थानी सैनिकों का सन्मान करने के लिए एकमत हैं, उसका प्रकाशन विशेषतः अनिष्ट है। उसके प्रभाव और अभिप्राय का अनुमान करने के लिए सरकार ने 'अभ्युदय' के रेकर्ड (सरकारी लेखे) को फिर से देखा। मालूम हुआ कि युद्ध में इङ्गलैंड की प्रवृत्ति के विषय में एक आपत्तिजनक लेख के कारण पारसाल सम्पादक को चेतावनी दी गई थी और दूसरे अवसरों पर इलाहाबाद के ज़िला मजिस्ट्रेट उन्हें नेक सलाह दे चुके हैं। इसलिए वर्तमान अपराध को अपवाद-स्वरूप एकमात्र अविवेक की बात समझ लेना असम्भव था; और अधिक हानि पहुंचाने से समाचार-पत्र को रोकने के लिए कार्यवाही करना आवश्यक हो गया।

४—इस कार्यवाही पर प्रान्तीय सरकार ने बड़े ध्यानपूर्वक विचार किया और अन्त में प्रेस के अधिक दुरुपयोग के विरुद्ध प्रेस के स्वामी से ज़मानत माँगने के कानूनी अधिकार को काम में लाकर सन्तोष करने का निश्चय किया गया। यह समझा गया कि सम्पादक को समझाना बुझाना व्यर्थ होगा; और यह विचार किया गया कि जिस प्रेस में पत्र छपता है उसके स्वामी का पत्र की नीति पर अपना प्रभाव डालना एक ऐसा दायित्व है, जिसका प्रयोग यथोचित, युक्तिपूर्वक और कानून के अनुसार भी किया जा सकता है। यहां मैं कह सकता हूं कि खानगी तौर से आप सम्पादक पर, जो आपके भतीजे हैं, जो प्रभाव अनुमानतः डाल सकते हैं, उसका ख्याल नहीं किया गया।

५—लेफ्टिनेन्ट-गवर्नर को व्यक्तिगत वार्तालाप में ये विचार आपको समझाने का अवसर मिल चुका है। पिछले १२ महीनों में 'अभ्युदय' में प्रकाशित कई ऐसे लेख आपने दिखलाये हैं जिनमें अंगरेज़ों के कामों की प्रशंसा और जर्मनों के आचरण की निन्दा की गई है; साथ ही कविताएँ भी दिखाई हैं, जिनमें हिन्दुस्थानी सिपाहियों को राजभक्ति और वीरता के काम करने के लिए बढ़ावा दिया गया है। ८ अगस्त के पत्र में आपने उस उत्तरदायित्व को स्वीकार किया था, जिसकी चर्चा ऊपरी अंश में की जा चुकी है; और २६ जून-वाले उस लेख के छापे जाने पर आपका खेद-प्रकाशन लेफ्टिनेंट-गवर्नर सहर्ष स्वीकार करते हैं, जिसके विषय में आपने उन्हें बतलाया है कि प्रेस ऐक्ट के अनुसार नोटिस पाने के पहिले आपने उसको कभी देखा या सुना नहीं था। उन्हें विश्वास है कि आप की यही इच्छा है कि 'अभ्युदय' को ब्रिटिश सरकार के प्रति राजभक्ति की प्रवृत्ति से किसी समय न डिगना चाहिये।

६—कानूनी कार्यवाही की आवश्यकता हुई, इस बात से सर जेम्स मेस्टन को उतना ही दुःख हुआ जितना आपको हुआ होगा। अब उन्हें सन्तोष है कि भविष्य में 'अभ्युदय' का संचालन आप अपनी ही निरीक्षकता में करेंगे, और २६ जून के लेख के लिए समाचार-पत्र में मार्जन करना भी वे आप ही के निर्णय पर छोड़ते हैं। ऐसी परिस्थिति में मैं सूचित करता हूं कि प्रान्तीय सरकार ज़मानत की माँग परित्याग करेगी। तदनुसार ३० जुलाई का नोटिस वापस ले लिया जायगा।

आपका...इत्यादि,
चीफ सेक्रेटरी।

मालवीय जी का उत्तर।

चीफ सेक्रेटरी के उपर्युक्त पत्र का मालवीय जी ने इस प्रकार उत्तर दिया :—

"आपका १७८०-३-४७३ नं० पत्र मिला। ऐसी अवस्था में जब कि सरकार ने प्रेस ऐक्ट के अनुसार मेरे नाम निकले हुए नोटिस को वापस लेने का निश्चय किया है, मैं इस निर्णय के लिए सर जेम्स मेस्टन को धन्यवाद देने के सिवा इस विषय में और कुछ नहीं कहना चाहता।

अभ्युदय प्रेस तुरन्त अपना काम फिर शुरू करेगा और "अभ्युदय" अपने आगामी अंक में आवश्यक स्पष्टीकरण और संशोधन प्रकाशित कर देगा।"

मुक्ति।

हमने इधर यह यत्न किया था कि प्रत्येक मास के प्रथम सप्ताह में "मर्यादा" ग्राहकों की सेवा में उपस्थित हो जाय। इस यत्न में हम कृतकार्य भी हुए थे किन्तु "मेरे मन कुछ और है कर्ता के कुछ और"; सब प्रकार से तैयार होने पर भी "मर्यादा" उचित समय पर न भेजी जा सकी।

क्यों ?

क्योंकि प्रेस ऐक्ट की चपेट में आकर वह मूर्छित हो गई थी। "अभ्युदय" पत्र में एक लेख छप गया था जो सरकार की दृष्टि में आपत्तिजनक था। "अभ्युदय" पत्र से ज़मानत न मांगकर सरकार ने प्रेस से ज़मानत मांगी। प्रेस के स्वामी की दृष्टि में यह आज्ञा अन्यायोचित थी और ऐसी दशा में ज़मानत देने की अपेक्षा उन्होंने प्रेस को बन्द कर देना अच्छा समझा। इस कारण से मर्यादा न प्रकाशित हो सकी और अब सरकार के ज़मानत का हुक्म वापस ले लेने पर वह ग्राहकों की सेवा में उपस्थित हो रही है। पाठक समझ सकते हैं कि ऐसी दशा में वे "मर्यादा" को दोषी नहीं ठहरा सकते।

संसारी नियम के अनुसार अपराध का दोषी कोई न कोई होना ही चाहिये। "मर्यादा" नहीं दोषी है तो कुसूर किसका है ? कुछ लोग कहेंगे प्रेस ऐक्ट का, जिसके कारण एक निरपराधी भी एक अपराधी की भांति सज़ा का अधिकारी हो सकता है। कुछ लोग कहेंगे कि अपराध यू० पी० गवर्नमेंट का है जिसने "अभ्युदय" पत्र को दोषी ठहराकर अभ्युदय प्रेस को दोषी ठहराया किन्तु हम इन दो दलों में से किसीसे भी सहमत नहीं।

हम यू० पी० गवर्नमेंट को दोषी नहीं ठहरा सकते क्योंकि हम जानते हैं कि शक्ति का हाथ में होना इस बात की अपेक्षा करता है कि वह काम में लाई जाय, उसका प्रयोग किया जाय। इसके साथ ही साथ यू० पी० गवर्नमेंट का कहना है, चाहें हम उससे सहमत हों या नहीं, कि सम्पादक से कुछ कहना व्यर्थ समझा गया और इसीलिए प्रेस के अध्यक्ष का ध्यान आकर्षित करने, उसे उसके उत्तरदायित्व का ज्ञान कराने के लिए यही उचित समझा गया कि प्रेस से ज़मानत मांगी जाय, इन सबही कारणों से हम यू० पी० सरकार को दोष नहीं लगा सकते। साथही हम

प्रेस ऐक्ट

के माथे भी कलंक नहीं मढ़सकते। अच्छा है वा बुरा, न्यायोचित है या अन्यायोचित, वह अपनी शक्ति के अनुसार काम करता है, अपनी सीमा का उल्लंघन नहीं करता, यद्यपि उसकी शक्ति असीम है, और उसकी कुदृष्टि से कोई बच नहीं सकता। ऐसी अवस्था में फिर यही प्रश्न उठता है कि आखिर

अपराधी कौन है ?

सच्चा उत्तर इसका यह है कि हम और आप जिन्होंने प्रेस ऐक्ट को जन्म लेने दिया। यह सत्य है कि उसका जन्म हम लोग रोक नहीं सकते थे, यह भी सत्य है कि हमारे दो नेताओं ने उसका विरोध किया था, किन्तु इसके साथही साथ यह भी सत्य है कि प्रेस ऐक्ट के पास हो जाने पर भी पत्र निकलते रहे। यदि उस समय समस्त पत्र एक साथ बन्द हो गये होते तो फिर अब एक एक कर उनके बन्द होने की नौबत न आती

भारतीय कांग्रेस।

अबकी बार कांग्रेस की बैठक बम्बई में होगी। सभापति का आसन सर एस० पी० सिनहा सुशोभित करगे। खेद से कहना पड़ता है कि यह चुनाव उपयुक्त नहीं है। सभापति के व्यक्तित्व पर सभा की सफलता बहुत कुछ निर्भर होती है। किन्तु जो कुछ होना था हो गया, अब उस सम्बन्ध में कुछ कहना या उसके कारण उदासीन हो बैठ रहना उचित नहीं। अबकी बार का अधिवेशन बड़े महत्व का होगा। अब भारत पुराना भारत नहीं रहा है। अब वह अपने पैरों आप खड़े होने का स्वप्न देख रहा है, साथही विलायत में साम्राज्य संगठन पर विचार की चर्चा हो रही है। यह तय होनेवाला है कि युद्ध के अन्त होने पर साम्राज्य के अङ्गों को (भारत की इनमें गिनती नहीं है) साम्राज्य में कौन-सा स्थान प्राप्त होगा ? ऐसी दशा में भारत का चुप रहना उचित नहीं होगा। उसे अपनी आवाज़ बुलन्द करनी होगी। लायल्टी के ट्रम्प के ताश उसे बड़ी सहूलियत से खेलना है, ऐसी अवस्था में यह बहुत आवश्यक है कि सब नेता एकत्र हो विचार करें और भारत-सचिव को भविष्य की कार्यवाही के लिए उचित परामर्श दें।

सम्मेलन।

हम लोग निराश हो चुके थे। आशा नहीं थी कि लाहौर में इस बार सम्मेलन हो सकेगा किन्तु बड़ी प्रसन्नता की बात है कि पंजाबी भाइयों ने अपनी और मातृभाषा की लाज रखली। सम्मेलन के लिए प्रबन्ध होने लगा है। स्वागतकारिणी, प्रबन्धकारिणी समिति आदि बन गई हैं। समय और सभापति के चुनाव के विषय में लोगों से सम्मति मांगी गई है। सभापति का चुनाव बहुत सोच समझकर होना चाहिये। पंजाबी भाई अभी हिन्दी के प्रेमी नहीं हैं, सम्मेलन के नाम पर उनका एकत्र होना सहज नहीं। ऐसी अवस्था में सभापति के व्यक्तित्व पर सब कुछ निर्भर है। उसमें यदि चुम्बक शक्ति हुई तो वह भूले भटकों को सभा में खींच ला सकता है। इन सब बातों पर विचारकर हमारी राय में यदि कर्मवीर मोहन-दास कर्मचन्द गांधी सभापति चुने जायँ तो सम्मेलन को सफलता प्राप्त हो सकती है। समय के सम्बन्ध में हमें इतना ही कहना है कि मोहर्रम की छुट्टी के दिन अच्छे होंगे। दिसंबर में कांग्रेस का समय है, कितनेही लोग उसे भी सम्मेलन से कम महत्व की संस्था नहीं समझते, ऐसी अवस्था में एक ही समय में दो ऐसी महत्वशाली संस्थाओं का अधिवेशन उचित न होगा।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग, में बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित हुई।

बरफ में खाई खोद रहे हैं · उन पर तिनके जम आये हैं।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

MOHILA PRESS
Calcutta.

मर्यादा

सचित्र मासिक पत्रिका ।

भाग १०] सितम्बर सन् १९१५-भादों [संख्या ३

राष्ट्रीय जागृति की मीमांसा ।*

[लेखक-पं० माधवराव सप्रे बी० ए०]

भिन्न भिन्न नाम ।

यह बात हर कोई मानेगा कि हिन्दुस्थान की दशा में बहुत कुछ परिवर्तन हो रहा है—हिन्दुस्थान में नई जागृति उत्पन्न हो रही है। वह वर्तमान जागृति भिन्न भिन्न नामों से पुकारी गई है । पचीस तीस साल के पहिले कहा जाता था कि हिन्दुस्थान 'संक्रमण' अवस्था में है। करीब दस बारह साल के पहले लोग कहते थे कि हिन्दुस्थान 'अशान्ति' की अवस्था में है। परन्तु अब कहा जाता है कि हिन्दुस्थान अपने 'पुनरुज्जीवन' के मार्ग पर है । इस विषय पर दिल्ली के रे० सी० एफ एण्ड्रूज साहब ने अंगरेज़ी में 'The Renaissance in India' नाम की एक पुस्तक भी लिखी है। यह सब लोगों के पढ़ने योग्य है । इसमें हमारी राष्ट्रीय जागृति की बहुत अच्छी मीमांसा की गई है। इस जागृति के

* यह लेख 'इन्डियन रिव्यू' में सन् १९१२ के दिसम्बर महीने की संख्या में प्रकाशित एक लेख के आधार पर लिखा गया है।

लिये जो भिन्न भिन्न नाम दिये गये हैं उनमें से हम समझते हैं, पुनरुद्धार ही बहुत ठीक है। क्योंकि इस नाम से हिन्दुस्थान के प्राचीन इतिहास की परम्परा से संयुक्त वर्तमान दशा का ठीक ठीक ज्ञान हो जाता है।

अर्थ का बोध।

हिन्दुस्थान की 'संक्रमण' अवस्था कहने से हमें यह नहीं मालूम होता कि संक्रमण किस वस्तु का और किस प्रकार हो रहा है। हमें इस संक्रमण के कारणों तथा उसके फलों के विषय में कुछ भी बोध नहीं होता। जो कुछ मालूम होता है वह केवल यही कि परिवर्तन हो रहा है और वह अब रुक नहीं सकता। हिन्दुस्थान की 'अशान्ति' कहने से तो हमें 'संक्रमण' की अपेक्षा भी बहुत थोड़ा हाल मालूम होता है। इस शब्द से केवल यही ज्ञात होता है कि गम्भीर जल में कुछ हलचल शुरू हो गई है। हमें यह बात नहीं ज्ञात होने पाती कि यह पानी कुछ देर के बाद बह कर फिर स्वच्छ नहरों में बहेगा या वहीं नीचे जमी हुई मिट्टी को भी अपने में मिलाकर और भी अधिक गदला हो जावेगा। परन्तु हिन्दुस्थान का 'पुनरुज्जीवन' कहने से हमारे मन में निश्चित अर्थ का बोध हो जाता है। यह नाम बिजली के प्रकाश के समान है जिसकी सहायता से हमारा पूर्व इतिहास हमें याद हो आता है, हमारी वर्तमान अवस्था की बहुत सी गूढ़ बातों का निर्णय हो जाता है और हमारे भविष्य के मार्ग की दिशा भी निश्चित रीति से देख पड़ने लगती है। पुनरुज्जीवन ही से हमारे राष्ट्र की सच्ची जागृति का बोध होता है।

पश्चिमीय शिक्षा का आरम्भ होने के पहले हमारी दशा।

हिन्दुस्थान के पुनरुज्जीवन के विषय में—अपनी राष्ट्रीय जागृति के विषय में कुछ जानने के पहले हमको अपने देश की उस अवस्था का ज्ञान होना चाहिये जो यहां पर अंगरेज़ी राज्य के आरम्भ होने के पहिले थी। अथवा यह कहिये कि हमको अंगरेज़ी शिक्षा के शुरू होने के पहिले के, अपने देश के आन्तरिक इतिहास का ज्ञान होना चाहिये। जब हम उस समय का इतिहास जानने का प्रयत्न करते हैं तब हमें यह देख कर अत्यन्त खेद होता है कि वह समय अज्ञानमय तथा अन्धकारमय था। हमारे देश में उस समय उत्साही सुधारक और कर्मवीर पुरुष बहुत ही कम थे। मुसलमानों ने अपने आधिपत्य के समय हिन्दुओं को बहुत दुःख दिया था। इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओं का राष्ट्रीय जीवन लुप्त हो गया और मुसलमानों की राजकीय सत्ता भी जाती रही! यदि हिन्दुओं के जीवन में अभिमान करने योग्य उस समय कोई बात थी तो वह केवल मरहठों की धार्मिक—राजनैतिक हलचल ही थी। यदि उस समय अंगरेज़ मरहठों के बढ़ते पराक्रम को रोक न सकते तो आज हिन्दुस्थान में मरहठों ही की सत्ता पाई जाती। अस्तु। उस समय का हिन्दुस्थान बुद्धि, शक्ति और युक्ति में अत्यन्त जीर्ण दशा में था। देश में चारों ओर ज्ञान और प्रकाश के बदले अज्ञान और अँधियारा ही छाया हुआ था। मुसलमानों के विस्तीर्ण राज्य के टुकड़े टुकड़े होगये थे; हिन्दुओं की स्वाधीनता पर फ्रेंच और अंगरेज़ जैसी बुद्धिवान्, शक्तिवान् और युक्तिवान् जातियों के हमले हो रहे थे; सारे देश में अराजकता, कुप्रबन्ध और अशान्ति देख पड़ती थी। किसी को भी राष्ट्रीय कर्तव्य का उचित मार्ग सूझ नहीं पड़ता था। ऐसी अवस्था में हिन्दुओं के सामने यह विकट प्रश्न उपस्थित हुआ कि अब हम अपना राष्ट्रीय अस्तित्व कैसे कायम रख सकेंगे? वे लोग हैमलेट के समान, "To be or not to be" अर्थात् जिन्दा रहें या मर जायँ, इसी चिन्ता में निमग्न हो गये! अपनी बुद्धि,

शक्ति और युक्ति में अविश्वास होने के कारण उन्हें अपनी राष्ट्रीय उन्नति का कोई उपाय सूझ नहीं पड़ा? तब वे लोग अपनी प्राचीन संस्थाओं और प्रथाओं के पहिले से भी अधिक संरक्षक (Conservative) बन गये! वे सोचने लगे कि संसार में हिन्दू जाति का अस्तित्व तथा हिन्दू संस्थाओं का जीवित रहना तभी सम्भव है जब हम लोग अपनी प्राचीनता के कट्टर संरक्षक बन जाँय। यदि उन्नति न होगी तो न सही; अस्तित्व तो बना रहेगा। बस इस संरक्षक बुद्धि का फल यह हुआ कि उन लोगों का जीवन और उनकी विचारपद्धति बिलकुल नियमित, संकुचित और एक ही साँचे में ढली सी होगई। कई पीढ़ियों की पराधीनता, आत्मविश्वास के अभाव तथा अंधपरम्परा के कारण इस देश के सर्वसाधारण लोग और भी गहरी तथा अंधेरी खाइयों में गिर गये। साहित्य, तर्कशास्त्र, कलाकुशलता, संगीत, चित्रकारी आदि विषयों में, जो किसी राष्ट्र के जीते जागते साक्षी हैं, कुछ भी उन्नति न होने पाई। लोग ऐसा समझने लगे कि अब हममें नई नई बातें ढूंढ़ निकालने की कोई शक्ति ही नहीं है। वे सोचने लगे "प्राचीनकाल के लोगों ही में यह शक्ति थी। अब हमारा काम केवल उनकी नकल करना है—उनकी स्थापित की हुई सब बातों की पूरी पूरी रक्षा करना ही है।"

उस समय के इतिहास को पढ़ने से हमें अच्छी तरह मालूम हो जाता है कि एक उन्नत राष्ट्र ने अपनी अवनति किस प्रकार कर ली। उस समय के साहित्य के पढ़ने से यह बात प्रगट हो जाती है कि केवल अंधपरम्परा के कारण—पुरानी लकीर के ही फकीर होने के कारण—भारत ने अपने को किस तरह गारत कर लिया। हिन्दुस्थान उस समय अपने आप को नहीं पहचानता था। इस अज्ञानयुग (Dark age) का ज़ोर इतना बढ़ गया था कि उसने हिन्दुस्थान के उन्नतिशील राष्ट्रीय जीवन ही को तहस नहस कर दिया। लोगों को यही मालूम होता था कि हमारे पूर्वज किसी समय उन्नति के शिखर पर चढ़े थे; अब हमारे लिये आगे कुछ उन्नति का मार्ग ही नहीं है! आगे बढ़ने को हमारे लिये कोई रास्ता ही नहीं है! "सुवर्ण युग" अथवा सत्ययुग पहले ही होगया; अब तो कलियुग का ज़माना है! तात्पर्य यह है कि जातिभेद के दृढ़ बन्धनों के कारण लोगों की व्यक्तिविषयक स्वाधीनता नष्ट होगई; संसार भर में होनेवाला व्यापार रुक गया; ज्ञान का भंडार बन्द कर दिया गया और यह देश अपनी राष्ट्रीय मृत्यु के मार्ग में लग गया। महाराष्ट्र और कुछ हिस्सों को छोड़ देश भर में स्वदेशाभिमान का लोप होगया। सामाजिक अस्तित्व के लिये विशिष्ट जातियों का महत्व बढ़ा देना पड़ा और कुछ जातियों का महत्व इतना घटा दिया गया कि वे लोग 'अछूत' समझे जाने लगे! यह वृत्तान्त हमारे देश का उस समय का संक्षिप्त इतिहास है जब अंगरेज़ों ने यहां अपने राज्य की जड़ जमा ली और पश्चिमीय शिक्षा तथा सभ्यता का प्रचार करना आरम्भ किया।

पश्चिमीय शिक्षा का परिणाम।

पहले पहल हिन्दुस्थान में पश्चिमीय शिक्षा और सभ्यता का परिणाम बहुत ही आश्चर्यजनक हुआ। बंगालियों में एक नूतन जीवन का संचार होगया। खूब अंगरेज़ी बातों की नकल की जाने लगी। यही हाल और और प्रान्तों में भी न्यूनाधिक देख पड़ने लगा। परंतु हिन्दूपन को अलग करके एकदम अंगरेज़ी बातों का प्रचार कर देना कोई सहज काम न था। प्राचीन परम्परा के अनुसार हमारे देशभाइयों का यह स्वभाव ही है कि जहांतक हो सके वे पुरानी बातों का संरक्षण करने के लिये सिर तोड़ परिश्रम करें। कुछ समय तक हमारी प्राचीन संरक्षक बुद्धि अथवा स्वाभिमान और अंगरेज़ीपन में बहुत भयंकर युद्ध

होता रहा। परन्तु ज्यों ज्यों देश में चारों ओर पश्चिमीय सभ्यता और शिक्षा का प्रचार बढ़ाके से बढ़ने लगा त्यों त्यों अज्ञान युग के प्राचीन संस्कार भी शिथिल होने लगे। अब उस समय के केवल संरक्षक, अतएव संकुचित विचारों को नूतन, सत्य, सजीव और प्रगमनशील (Progressive) विचारों का सामना करना पड़ा। पश्चिमीय शिक्षा और सभ्यता से जो युक्तिवाद और बुद्धि की स्वतन्त्रता (Rationalism) उत्पन्न होती है उसके सामने कल्पित शक्ति, बड़ी उम्र और स्थान की पवित्रता के विषय में कृत्रिम विचार बहुत समय तक टिकने नहीं पाते। हमारे प्राचीन विचारों को ऐसे नूतन विचारों से सामना करना पड़ा जो हरदम "क्यों और कैसे" पूछा करते हैं, जो केवल शब्दों के आडंबर पर विश्वास करके चुप नहीं रह सकते और जो परीक्षा तथा निरीक्षण के सब सामान देकर लोगों को अपने सिद्धान्तों की सत्यता सिद्ध करने के लिये पुकारा करते हैं। सारांश यह है कि हमारे अज्ञानयुग के विचाररूप किले पर इस पश्चिमीय शिक्षा और सभ्यता ने अपने नूतन विचाररूप गोले बरसाना शुरू कर दिया। लगभग पौन शताब्दी तक यह काम बराबर जारी रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि हमारे प्राचीन विचाररूप किले की कृत्रिम दृढ़ता नष्ट हो गई और अब उसको जलाकर भस्म कर देने के लिये केवल एक चिनगारी ही की आवश्यकता थी।

जापान का विजय।

जिस चिनगारी की आवश्यकता थी वह समय के आते ही जल उठी। उसका उद्गम जापान देश में हुआ। सन् १९०४ ईस्वी में सब दुनिया इस बात को सुनकर चकित हो गई कि इतने बड़े रूस की जलसेना को छोटे से जापान की जलसेना ने सुशिक्षा के सुहाने से हरा दिया। रूस और जापान के युद्ध की खबरें सुनकर हिन्दुस्थानियों के मन में जापान के अद्भुत प्रभाव के विषय में पूज्यभाव उत्पन्न होने लगा। अन्त में जापान की जीत हुई और हिन्दुस्थान अपनी गहरी नींद से जाग उठा। बस, पुराने अज्ञान युग के संकुचित बन्धनों को काट कर लोगों ने सदा के लिये अपनी राष्ट्रीय उन्नति का एक नया मार्ग बना लिया। इस जागृति से हमारे देशवासियों को अपने भविष्य का सुचिन्ह देख पड़ने लगा, उन्हें राष्ट्रोन्नति के मार्ग पर चलने की अत्यन्त आवश्यकता जान पड़ने लगी और उन्हें यह विश्वास होगया कि हममें भी आगे बढ़ने की शक्ति है। किसी भूतकाल में प्राप्त की हुई उन्नति उन्हें आगे बढ़ने के लिये और दुनिया के जिन्दा राष्ट्रों में गिने जाने के लिये ज़ोर से उद्यत करने लगी। अब यह राष्ट्रीय जागृति किसी तरह रोकी नहीं जा सकती थी। जापान के विजय ने हिन्दुस्थानियों को राष्ट्रीय जीवन के विषय में एक नया पाठ पढ़ाया है और पुनरुद्धार का यह समय हिन्दुस्थान के वर्तमान इतिहास में सुवर्णाक्षरों से चिरकाल तक अंकित रहेगा।

जागृति का प्रधान लक्षण।

हमारी इस नूतन जागृति का प्रधान लक्षण 'स्वदेशी' ही है। स्वदेशी से अन्य देशों की उन सब बातों को रोकने का विचार किया जाने लगा जिनके अनुकरण से हिन्दुस्थान की बहुत हानि हो रही थी। इससे यह नहीं समझना चाहिये कि स्वदेशी के विचार से लोग फिर भी अपनी ही सब बातों की बिना समझे बूझे, रक्षा करने में लग गये। नहीं; इस नवीन विचार ने लोगों को यह भी बतला दिया कि सब विदेशी बातों पर भी अनुचित कटाक्ष नहीं, करना चाहिये। इस समय के नये विचारवाले लोग कहने लगे कि हमें गुण ग्रहण करना है, चाहे वह गुण अन्य देशवासियों से ही क्यों न प्राप्त हो। यदि यह कहा जाय कि लोग अपनी

ही बातों की, बेसमझे बूझे, संरक्षा करने में लग गये; तब तो यही कहना पड़ेगा कि पिछले अज्ञानयुग की जीत होगई और पश्चिमीय सभ्यता तथा शिक्षा का कुछ भी असर नहीं हुआ। यथार्थ में स्वदेशी के भावों से प्रेरित होकर लोग कहने लगे "हिन्दुस्थान भी कोई चीज़ है; नहीं वह एक समय बहुत बड़ा प्रसिद्ध राष्ट्र था। वह अब फिर भी उन्नति कर सकता है। हमें चाहिये कि वर्तमान समय की आवश्यकता के अनुसार कर्म मार्ग में प्रवृत्त हों। हम अपने प्यारे देश को, एक ओर अज्ञानयुग के स्वार्थ-पूर्ण, संकुचित और मिथ्या विचारों में सड़कर मर जाने से बचावें और दूसरी ओर प्रभाव-शाली पश्चिमीय सभ्यता में विलीन तथा नष्ट होने से उसकी रक्षा करें।" तात्पर्य यह है कि पश्चिमीय शिक्षा के अमर्यादित भड़कीलेपन से हमारे देशभाइयों में स्वाभिमान के बदले पर-अभिमान का जो रोग पैदा हो गया था उसको हटाने के लिये स्वदेशी के द्वारा यत्न किया गया अर्थात् इसके द्वारा अपनेपन का उचित अभिमान और परायों से गुणग्रहण करने की आवश्यकता, ये दोनों बातें उचित रीति से बतलाई गईं।

स्वदेशी का भाव।

"स्वदेशी" में, अर्थात् हमारी नूतन राष्ट्रीय जागृति में, बहुत अच्छे अच्छे भाव हैं। सबसे पहिले इसमें स्वदेशप्रेम कूट कूट कर भरा है जो "वंदेमातरम्," "हिन्दुस्थान हमारा" आदि राष्ट्रीय गीतों से व्यक्त होता है। दूसरे, इन गीतों में करुणस्वर से यही कहा गया है कि हमारी प्यारी भारतभूमि अपने लक्ष्य से बहुत दूर है। तीसरे, इनमें ज़ोर देकर यह भी कहा गया है कि भावी उन्नति के लिये उन्हीं उपायों का अवलम्बन करना होगा जिनसे दुनिया के अन्य सभ्य देशों की उन्नति हुई हैं। संक्षेप में स्वदेशभक्ति, स्वदेश की दुर्दशा पर खेद और स्वदेशोद्धार का निश्चय, यही स्वदेशी के मुख्य तीन भाव हैं। आश्चर्य और खेद है कि हिन्दु-स्थान और इंगलैंड में इस स्वदेशी हलचल का ठीक ठीक भाव कुछ लोगों की समझ में नहीं आया। उनकी दृष्टि से इस स्वदेशी में केवल मातृभूमि के लिये उचित से अधिक प्रेम व्यक्त होता था। वे लोग इस बात को नहीं समझ सके कि हिन्दुस्थानी अपनी राष्ट्रीय उन्नति के लिये पश्चिमीय सहायता का त्याग नहीं कर सकते। सामयिक विकारों के वश होकर वे यह समझ बैठे कि "स्वदेशी" पश्चिमीय सभ्यता तथा अंगरेज़ी राज्य के विरुद्ध एक बलवा है! सच बात तो यह है कि "स्वदेशी" की जागृति तोप के गोले के समान थी जिसने अज्ञानयुग के हानिकारक विचारों को नष्ट करके हम लोगों को अपनी राष्ट्रीय उन्नति के सच्चे मार्ग पर ला दिया। कैसे आश्चर्य की बात है कि इसपर कुछ विदेशियों का भ्रम और हमारी न्यायप्रिय सरकार की अप्रसन्नता हो गई। परन्तु अब विकारों का समय व्यतीत हो गया है और हमारी सरकार भी शान्त रीति से इस विषय का विचार कर सकती है। यूरोप के वर्तमान महायुद्ध के समय हिन्दुस्थानियों ने अंगरेज़ी सर-कार के विषय में जो सहानुभूति और राज-निष्ठा प्रगट की है तथा प्रत्यक्ष लड़ाई में तन, मन, धन से जो सहायता दी है उससे "स्वदेशी" की उपयुक्तता स्वयं सिद्ध हो जाती है। अतएव भूलना नहीं चाहिये कि "स्वदेशी" की—इस नूतन जागृति की—जो मीमांसा यहां की गई है वही निर्भ्रान्त और सत्य है। इस जागृति से हिन्दुस्थानी समाज का स्वाभाविक विकास ही प्रगट होता है; इसमें किसी प्रकार का हानिका-रक विरोध, मत्सर या द्वेषभाव नहीं है।

आकांक्षाएं।

इस राष्ट्रीय जागृति से हमारे देश में राज नैतिक, औद्योगिक, सामाजिक और शिक्षा-

सम्बन्धी अनेक आकांक्षाएं उत्पन्न हुईं। उनमें से कुछ का विवेचन करना आवश्यक है। देशी व्यापार की उन्नति के लिये बंगाल में 'बायकाट' पर ज़ोर दिया गया। जब हम बायकाट की पद्धति पर अच्छी तरह से विकाररहित होकर विचार करते हैं तब मालूम हो जाता है कि यह सर्वथा अयोग्य नहीं है। हरएक स्वतंत्र राष्ट्र में स्वदेश के व्यापार की रक्षा के लिये कुछ न कुछ संरक्षक प्रतिबन्ध अवश्य रक्खे जाते हैं। ऐसा करने से उस देश को बहुत लाभ होता है—यदि वह देश दूसरे देशों से व्यापार में कम दर्जे का हो तो उसको अपनी उन्नति करने के लिये समय और सहायता मिल जाती है। हिन्दुस्थान में विलायती कपड़ों ही का अक्सर बहिष्कार किया जाता था। सोचिये, क्या कपड़े के व्यापार में हिन्दुस्थान के लाभ की दृष्टि से अन्याय नहीं हो रहा है? कुछ समय के पहिले बम्बई के गवर्नर साहब को विवश होकर कहना पड़ा था, "उन्नति की आशा तब तक नहीं की जा सकती जब तक लंकाशायर का बना हुआ माल यहां ठूंस ठूंस कर भरा जायगा।"—There is really no hope for normal progress so long as Lancashire guides the trend of things. क्या ऐसी अवस्था में बायकाट का जारी रहना अथवा किसी संरक्षक प्रतिबंध का अवलम्ब करना युक्तिसंगत नहीं था? इसमें संदेह नहीं कि जब तक बहिष्कारपद्धति जारी रही तब तक देशी व्यापार की उन्नति के बहुत से आशाजनक चिन्ह देख पड़ते थे।

पहले ज़माने में हिन्दुस्थान का व्यापार सारी दुनिया में चमकता था। व्यापारके लिये कपास, अनाज आदि जिन चीज़ों की आवश्यकता होती है वे इस समय भी हिन्दुस्थान में उत्पन्न होती हैं और पहले से अधिक होती हैं। सब प्रकार के कच्चे माल की इतनी अधिक उपज होने पर इस देश के व्यापार की उन्नति क्यों नहीं होती? व्यापार की उन्नति के लिये संरक्षक उपायों की जितनी आवश्यकता है उतनी ही कुछ अन्य बातों की भी है। हमें अपने व्यापार और उद्योग धंधों की उन्नति के लिये कुछ पश्चिमीय उपायों को स्वीकार करना चाहिये; हमें शारीरिक मेहनत करने में अपनी मानहानि नहीं समझनी चाहिये; जिस व्यवसाय में हमारी स्वाभाविक प्रवृत्ति हो उसी में मन लगाकर काम करना चाहिये; पश्चिमी देशों के अच्छे अच्छे निपुण आदमियों से इस विषय की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये और व्यापार-सम्बन्धी दुनिया भर की वर्तमान आवश्यकताओं पर उचित ध्यान देना चाहिये। यह काम केवल बायकाट से अथवा स्वदेशी के संकुचित भावों से सिद्ध नहीं होगा। वह अत्यन्त उदार भावों ही से सफलतापूर्वक किया जा सकता है। जब हम ऐसा करेंगे तभी हमारी आधिभौतिक उन्नति हो सकेगी। हमारे समाज में अबतक अज्ञानयुग का बहुत सा असर देख पड़ता है। राष्ट्रीय जागृति—हिन्दुस्थान के पुनरुद्धार—सच्ची स्वदेशी—का संचार हमारे देशभाइयों की नस नस में अबतक नहीं हुआ है। इसके लिए शिक्षा की बहुत आवश्यकता है। ऐसी शिक्षा का प्रचार तो बहुत हो चुका है जिसने हमें विद्यार्थी बनने के बदले परीक्षार्थी बना दिया है! अब हमें उस शिक्षा की आवश्यकता है जो अमेरिका और जापान में प्रचलित है; जो हममें स्वतन्त्रतापूर्ण विचार उत्पन्न करे और जिसे प्राप्त करके हमें गली गली मुंह ताकना न पड़े। यही बात हमारे परमपूज्य बादशाह पंचम जार्ज के शब्दों में इस प्रकार कही जा सकती है:—

"You have to conserve the ancient learning and simultaneously to push forward western science."

अर्थात् हम लोगों को अपनी प्राचीन परम्परा की उचित रक्षा करके पश्चिमीय विज्ञान

की नूतन शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये। यही 'स्वदेशी' का सच्चा भावार्थ है। यदि यथार्थ में ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है तो हम लोगों को माननीय गोखले के शिक्षासम्बन्धी प्रस्ताव (बिल) को 'पास' कराने का यत्न करना चाहिये और यदि इसके 'पास' होने में कुछ आशंका हो तो सर्वसाधारण को उस प्रस्ताव के मूलतत्वों के अनुसार शिक्षा प्रचार के लिए स्वयं अपना स्वतंत्र प्रबन्ध करना चाहिये।

हमारी राजनैतिक आकांक्षा भी वर्तमान जागृति ही का परिणाम है। यह हमारा भाग्य है कि परमेश्वर ने हमें अंगरेज़ सरकार के राज्य में रक्खा है। सब लोग विश्वासपूर्वक यही आशा करते हैं कि हमारी सरकार हमें राष्ट्रीय उन्नति के ठीक ठीक मार्ग की ओर जाने के लिये सहायता करेगी। परन्तु सामाजिक विकास के नियमों के अनुसार हिन्दुस्थान की पूरी उन्नति तभी हो सकती है जबकि सब राष्ट्रीय विषयों में राजा और प्रजा का एकमत हो जाय, दोनों के अधिकारों और कर्तव्यों का उचित मिश्रण हो जाय और इस देश के निवासियों को अपने देश की वास्तविक भलाई करने के लिये कुछ अधिक सत्ता मिल जाय। अर्थात् जब तक इस देश में ब्रिटिश सत्ता के आधीन स्वराज्य की पद्धति स्थापित नहीं की जायगी तबतक राजनैतिक आकांक्षा सफल नहीं हो सकती। इस विषय में हमारे देश के नेताओं ने यही अन्तिम ध्येय निश्चित किया है कि हम लोगों को अंगरेज़ी उपनिवेशों के समान इसी राज्य में स्वतन्त्रता प्राप्त करनी चाहिये। इसी को "स्वराज्य" या Autonomy कहते हैं। इस उद्देश की सफलता के लिये हम लोग एक बहुत बड़ी प्रयोगशाला में पहुंच गये हैं। म्युनीसिपैलिटी, कांग्रेस, कान्फरेंस, समिति आदि सब संस्थाएं इसी प्रयोगशाला की भिन्न भिन्न कक्षाएं हैं। यदि इस शाला की उन्नति अभीष्ट है तो प्रत्येक कक्षा की भी उन्नति होनी चाहिये। अर्थात् प्रत्येक लोकनियुक्त संस्था को अपना २ काम ठीक ठीक रीति से करना चाहिये। हर्ष की बात है कि वर्तमान समय में अनेक देशसेवक-समितियां स्थापित हो रही हैं और बहुतेरे लोग अपने देश की सेवा के लिये सारा जीवन अर्पण कर रहे हैं। परन्तु इस बात को भूलना नहीं चाहिये कि अज्ञानयुग के संकुचित भाव अब तक पूरी तरह नष्ट नहीं हो गये हैं। हम देखते हैं कि कुछ लोग सार्वजनिक सम्मान के लिये तो बहुत परिश्रम करते हैं; किन्तु सार्वजनिक जवाबदेही की ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते। यह हाल स्थानिक स्वराज्य (Municipality) के प्रबन्ध में बहुतायत से देख पड़ता है। मेम्बरों की चुनाई के समय प्रत्येक वार्ड में जो धूमधाम और हलचल देख पड़ती है वह मेम्बर हो जाने पर एकदम लुप्त हो जाती है। मेम्बरों को अपने निर्वाचकों की याद तक नहीं रहती। इसी प्रकार कहीं कहीं आपस की फूट और स्वार्थवृत्ति भी देख पड़ती है। परमेश्वर से प्रार्थना है कि वह हम लोगों को स्वार्थत्याग और स्वकर्तव्यपालन करना सिखावे।

वर्तमान राष्ट्रीय जागृति के कारण ही इस देश में हीन जातियों के उद्धार की बहुत चर्चा हो रही है और कई स्थानों में यत्न भी किया जा रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि यह सामाजिक विषय हमारे राष्ट्रीय विकास के लिये अत्यन्त महत्व का है। हीन जाति के—अछूत—लोगों की संख्या भारत की लोक-संख्या की १ बटे ६ है (अर्थात् ५ करोड़ से भी अधिक है)। सोचिये तो सही इतनी बड़ी लोक-संख्या के प्रति "दूर, दूर, छी, छी, अलग रहो, अलग रहो!" हीनतादर्शक उद्गार प्रगट करके हम लोगों ने राष्ट्र के श्रमविभाग की दृष्टि से अपने देश की कितनी हानि कर डाली है! यदि हिन्दुस्थान की सर्वाङ्गपूर्ण उन्नति होनी है तो यह सामाजिक अन्याय और दुराचार बहुत शीघ्र

बन्द किया जाना चाहिये। इस विषय में जो प्रयत्न हो रहा है वह यद्यपि प्रशंसनीय है तथापि वह अब तक देशव्यापी नहीं हो पाया है। इस समय के शिक्षित युवकों को अपने समाज की सेवा करने के लिये बहुत अच्छा मौक़ा मिला है। यदि वे हमारे देश की अछूत जातियों के उद्धार का यत्न करें तो थोड़े ही समय में हमारी सामाजिक आकांक्षा सफल हो सकती है।

इस लेख में हिन्दुस्थान की राष्ट्रीय जागृति की मीमांसा करके संक्षेप में यह बताया गया है कि उस जागृति से कौन कौन सी महत्वाकांक्षाएं उत्पन्न हुई हैं। किसी को इस बात का भय करने की आवश्यकता नहीं है कि इस जागृति से हिन्दुस्थानियों में बलवा करने की इच्छा उत्पन्न होगी। इस जागृति की जड़ सच्चे स्वदेशाभिमान और गुणग्राहकता में है। यथार्थ में यह देश अब तक संरक्षक अवस्था ही में है। यहां के लोग पुरानी बातों की यथाशक्ति रक्षा करने का प्रयत्न किया करते हैं; इस लिए उचित है कि हम इस नई जागृति के सिद्धान्तों को, हिन्दुस्थान के पुनर्जन्म-सम्बन्धी इस विषय को प्रत्येक भारतवासी के मन में अच्छी तरह प्रतिबिम्बित कर दें। वर्तमान समय में हिन्दुस्थान में जन्म लेना सचमुच बड़े भाग्य की बात है। इस समय हमारे सामने कर्तव्य का क्षेत्र प्रायः खाली पड़ा है और हम लोगों को अपने देश की उन्नति के लिये कठिन परिश्रम करना है। हमारे परिश्रमों का फल चख कर, हमें अपने कर्तव्य की ओर अग्रसर होते हुए देख कर क्या आगे होनेवाली पीढ़ियां कृतज्ञभाव से हम लोगों को आशीर्वाद न देंगी? अन्त में उस जगच्चालक, दयामय ईश्वर से यही प्रार्थना है कि वह हरेक छोटे से बड़े भारतवासी के मन में स्वदेशाभिमान और गुणग्राहकता उत्पन्न करदे और हमें अपने देश की सेवा करने के लिए शक्ति प्रदान करे।

पनामा पैसेफिक प्रदर्शिनी।

[लेखक—श्रीयुत शिवप्रसाद गुप्त।]

बृहस्पतिवार ८-४-१५।

जिस पनामा पैसेफिक प्रदर्शिनी के गुणानुवाद आज कितने दिनों से पढ़ व सुन रहे थे उसी को आज देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह क्या है, कैसी है, कितनी बड़ी है इसके वास्तविक रूप का ज्ञान ऐसे भाइयों को कराना जिन्होंने कभी भारत के बाहर पैर नहीं रक्खा है मेरे जैसे अल्पबुद्धिवाले की लेखनी से होना सम्भव नहीं है। किन्तु जिन भाइयों ने १९०४ की बम्बई वा १९०६ की कलकत्ता वा १९११ की प्रयाग की प्रदर्शिनी देखी है वे यदि यह अनुमान करलें कि इन प्रदर्शिनियों से कोई आठ वा दस गुनी अधिक भूमि पर सैकड़ों विशाल भवनों में नाना प्रकार की अद्भुत वस्तुएँ जिन्हें मनुष्य की बुद्धि ने सिर्जा है एकत्रित की हुई हैं तो कदाचित इस प्रदर्शिनी के कुछ अंश का अनुमान उन्हें हो जावेगा।

एक और बड़ा भारी अन्तर अपनी प्रदर्शिनियों में और यहां की प्रदर्शिनी में यह है कि हमारे यहां प्रदर्शिनी तमाशे की जगहें हैं। वहां लोग तमाशा देखने या दिल बहलाने जाते हैं। अपनी कारीगरी को जिन्हें छिपा रखना चाहिये वे इस भांति उसे प्रदर्शित करते हैं जिससे अन्यदेशीय अनुभवी चालाक व्यापारी इनके रहस्यों व गोपनीय बातों को देख और समझ लेते हैं और

उसका परिणाम यह होता है कि वे अपने देश से यन्त्र द्वारा वैसी ही वस्तु सस्ती, चाहे वह उतनी पायदार व अच्छी न हो, बना भेजते हैं और हमारा रोजगार मार लेते हैं क्योंकि हमारे देश में न तो किसी प्रकार की रुकावट है व न अभी तक पेटेण्ट द्वारा ही पुराने ढंग के कारीगरों ने फायदा उठाया है। इससे हमारे देश में अभी प्रदर्शिनियों का समय नहीं आया है। मेरा अभिप्राय इससे निर्माण के ढंग की प्रदर्शिनी का है जैसी दिल्ली में १९०३ के दरबार के समय हुई थी।

इन देशों में अधिकतर दर्शक जो प्रदर्शिनियों में जाते हैं वे किसी विशेष ध्यान से जाते हैं पहिले अपना समय वे अपने अभीष्ट अभिप्राय-जनित वस्तु को देखने, उसके प्रत्येक अंगों को समझने व उनको भले प्रकार मनन करने में व्यतीत करते हैं फिर इसके उपरान्त भिन्न २ प्रकार के चित्तबहलाव के सामान से मनोरञ्जन भी करते हैं इस प्रकार के मनोरञ्जन के सामान की भी यहां बहुतायत रहती है उनमें भी अनेक बड़े ही शिक्षाप्रद होते हैं।

आज मैं ५० सेण्ट अर्थात् १॥) रुपया देकर भीतर गया, सामने रत्न धरहरे (Jeweltower) की शोभा देखकर चकित रह गया। यह एक बहुत ऊंचा खूबसूरत धरहरा बना है। इसपर चारों ओर नाना रंग के शीशे के टुकड़े हीरे के कमल की भांति कटे करोड़ों जड़े हुए हैं। इन पर सूर्य भगवान् की रश्मियों के पड़ने से इतनी चमक होती है कि उनपर आंखें ठहरना कठिन है किन्तु इसकी शोभा रात्रि में कृत्रिम विद्युत प्रकाश में अकथनीय है। इसका अनुमान मन-चले लोग कर सकते हैं किन्तु इसका लिखना कठिन है। इसकी शोभा देख मैं एक गाड़ी पर चढ़ा जो यहां पर हर १० मिनट पर चलती रहती हैं। इस सारी प्रदर्शिनी की परिक्रमा कर मैं विश्वकर्मा के मनुष्यरूपी अद्भुत जन्तु को उत्पन्न करने की शक्ति की मन ही मन प्रशंसा करता रहा। यह प्रदर्शिनी समुद्र तट पर बनी है इसलिए जब मैं पिछली ओर गया तो वहां एक युद्धपोत खड़ा था उसके देखने को मन चला तो वहां से एक दूसरा १५) रु० का टिकट ले वहां एक छोटी नौका पर मैं जा पहुंचा। यह संयुक्तप्रवेश का "आरगोन" नामक युद्धपोत है जो यहां दर्शकों के लिये रक्खा गया है। यह एमेरिका व स्पेन से जो १९वीं शताब्दी में लड़ाई हुई थी उसमें लड़ भी चुका है। इसमें १२ इंच मुंह की ४ तोपें हैं व अनेक अन्य छोटी बड़ी तोपें भी हैं किन्तु यह अब पुरानी व दूसरी श्रेणी का पोत समझा जाता है। मेरा ख्याल था कि उसे अच्छी प्रकार से देख सकूंगा किन्तु मेरा विचार गलत निकला। यहां भीतर नीचे जाने की आज्ञा नहीं थी खैर एक नाविक सैनिक के साथ जाकर ऊपर से तोपों इत्यादि को देख लिया। यहां एक और नया अनुभव प्राप्त हुआ। यूरोप, तथा एमेरिका में सभी को जो थोड़ा बहुत भी कार्य करे कुछ देना पड़ता है जिसे यहां टिप व अपने यहां इनाम कहते हैं व उसी का नामान्तर रिशवत भी है। यद्यपि कोई यहां मांगता नहीं किन्तु यदि दिया न जाय तो मनुष्य नीची निगाह से देखा जाता है व दूसरी बार यदि फिर उसी व्यक्ति से कार्य पड़े तो दिक्कत भी उठानी पड़ती है। खैर इसी ख्याल से मैंने इस नाविक को भी कुछ देना चाहा किन्तु उसने लेने से यह कह कर इन्कार कर दिया कि ऐसा करने से उसे गोली मारदी जायगी। यह मेरे लिए एक नया अनुभव इस देश में था क्योंकि यहां पैसा देने से हर प्रकार का काम कराया जा सकता है और पैसे के लेने में कोई भी इनकार नहीं करता।

इसे देख हम लौट आये। अब सन्ध्या के ४ बज गये थे। अन्य चीज़ों को देखना आज मुलतवी कर मैं तमाशे की ओर चला। तमाशे यहां नाना प्रकार के हैं जिनका कोई अन्त

नहीं है किन्तु उनमें से अधिकांश ऐसे हैं जो कामोत्तेजक व नरनारियों के प्रति अधिकतर पुरुषों के मनमें क्षोभ उत्पन्न करानेवाले हैं अर्थात् किसी न किसी प्रकार से स्त्रियों के लावण्य तथा इनकी आकर्षणशक्ति का प्रयोग किया गया है, नंगी तस्वीरें व नंगी व अर्द्धनंगी औरतों के प्रदर्शन का तो कहीं अन्त ही नहीं है। हर प्रकार के नाच व तमाशे में यही उद्योग होता है कि स्त्री के किसी न किसी अंग को नंगा करके दिखाना। यहां पर दर्शकों का जमघटा लगा रहता है और इस महल्ले को यदि नन्दन वन अथवा इन्द्र का अखाड़ा कहें तो अत्युक्ति नहीं समझना चाहिये। यहां सचमुच परियों का जमघटा ही रहता है। यदि यहां भूल कर देवऋषि नारद भी आजायँ तो बिना अपनी तपस्या का कुछ अंग खोये नहीं लौटने पावेंगे।

हम लोग यहां बड़ी देर तक घूमते रहे। मिश्रियों व हवाइयों तथा एक दो प्रकार के और नाच देखे, पानी में डुब्बी लगानेवाली स्त्रियों का तमाशा देखा। इन सब को देखते भालते पनामा खाल (Panama Canal) के पास आये। यह पनामा खाल का एक छोटे परिमाण पर पूरा नकशा है—अर्थात् यदि आप वायुयान पर चढ़कर २ मील ऊपर चले जावें और वहां से पनामा खाल को देखने में जो दृश्य देख पड़ेगा वैसा दृश्य यहां दिखाया गया है। सब कल पुर्जे, दर्वाजे, फाटक, बांध, नदी, झील, समुद्र, पहाड़ी सभी कुछ देख पड़ती है। उस पर भी एक और विलक्षण बात है। इसके देखने के लिए करीब २ हज़ार कुर्सियां एक परिधि में रक्खी हुई हैं उनमें से एक पर आप बैठ जायँ व सामने पड़े हुए यन्त्र को कान में लगा लें, ये कुर्सियोंवाला चक्र पनामा खाल के चारों ओर आप से आप घूमता है व यन्त्र द्वारा आपको हर एक बात का विवरण सुन पड़ता है। जो मनुष्य जहां बैठा होता है उसे वहीं की बात सुनाई पड़ती है। यह कौतुक ४० भिन्न भिन्न ग्रामोफोनों के जरिये विशेष विद्युत यन्त्र से किया गया है। इसे देख इस पर चकित होते व साधारण रात्रि की शोभा देखते हुए हम ८ बजे वहां से लौट आये।

शुक्रवार ६-४-१५।

आज मैं प्रदर्शिनी में जाते ही भीतरी दृश्य देखने के लिए चला। प्रथम मैं नाना प्रकार की दस्तकारियों के भवन में गया। यहां पर अनेक वस्तुएँ देखने सुनने की हैं। नाना प्रकार की चीज़ें किस प्रकार बनती हैं उनका वृहत्रूप से यहां प्रदर्शन किया गया है। सब वस्तुओं को ठीक रीति से लिखने के लिए बहुत समय व बुद्धि दरकार है किन्तु मुझ में दोनों बातों का घाटा है इसलिए मैं उन्हीं को संक्षेप में लिखूँगा जो मुझे विशेषरूप से लिखने लायक जँची। मुझे यहां दो वस्तुएँ बहुत अच्छी लगीं एक सोने के तवक का कारखाना, दूसरी एक जौहरी की दूकान।

सोने के तवक के कारखाने में बस केवल यही कथनीय है कि वह ठीक उसी प्रकार हथौड़ों से कूट कर बनता है जिस प्रकार उसे काशी में बनाते हैं अर्थात् सोने के टुकड़ों को विशेष प्रकार से बने हुए चमड़े की तहों में रख कर ऊपर से हथौड़े से कूटना।

जौहरी की दूकान बहुत बड़ी थी। नाना प्रकार के रत्न व मणियां यहां थीं। मैंने सुन रक्खा था कि मोती कई रंग के होते हैं किन्तु मैंने सिवा सफेद के और रंगों के नहीं देखे थे किन्तु यहां सच्चे मोती ५ रंग के देखे सफेद, काले, चमकते हुए आबनूस के रंग के, काले पालिश किये हुए लोहे के रंग के, लाल कत्थई रंग के व गुलाबी। इन्हें देख चकित रह गया व देर तक देखता रहा। यहीं पर एक और मोती देखा जो बड़ाई में १ इञ्च के करीब होगा किन्तु सुडौल व आबदार नहीं था, वज़न में

यह २२४॥ ग्रेन था। इसकी कीमत २५ हज़ार डालर अर्थात् ७५ हज़ार रुपया कुछ अधिक नहीं जान पड़ा क्योंकि मैंने कोई मटर बराबर एक मोती को १ लाख कई हज़ार को बिकते हुए सुन रक्खा है।

वालथम कम्पनी की घड़ियों को भी इसी विभाग में बनते देखा। यहां पर पेंचकश (Screw) इतने महीन बनते हैं जिन्हें देखने के लिए आतशी शीशे की आवश्यकता पड़ती है। इनके डोरे इंच के हज़ारवें हिस्से से छोटे होते हैं। किस प्रकार ये घड़ी में लगाये जाते हैं यह और भी अधिक रहस्य की बात है।

यहां घूमते हुए मेरी एक पारसी सज्जन से मुलाकात होगई। आपने स्वयं पहिले मुझसे गुजराती भाषा में बात करना प्रारम्भ किया। मैंने उन्हें हिन्दी में उत्तर दिया। बात करने से मालूम हुआ कि आपकी दूकान लन्दन व बम्बई में है व आप यहाँ एक दूकान खोल रहे हैं। आपका नाम महाशय एम० जे० भंगारा है। आप एफ० जे० भंगारा कम्पनी के प्रतिनिधि या मालिक ही हैं। इनसे मिलकर दुःख व सुख दोनों हुए सुख तो यह हुआ कि अपने लोग भी अब कुछ २ कर रहे हैं किन्तु दुःख इससे हुआ कि अपनी हीन अवस्था की याद वेसौके आगई। इस बड़ी प्रदर्शिनी में हमारा नामो-निशान ही नहीं है।

यहां से यन्त्र भवन (Palace of machinery) में गया। इसे देख अकल चकरा गई, नाना प्रकार के यन्त्र वहां थे जिनको समझना भी मेरे लिए कठिन ही था। मैं इधर उधर थोड़ी देर घूमता रहा फिर सेनाविभाग की ओर गया यहां भिन्न भिन्न भांति की बन्दूकें, तमंचे, गोली, बारूद, जहाज़, सुरंग, टारपीडो, सबमैरिन इत्यादि के छोटे २ नमूने देखता रहा। सब से बड़ा तोप का गोला जो १६ इंच मोटी नलीवाली तोप से दागा जाता है देख अकल अधिक गुम हो गई व यूरोपीय युद्ध की भयंकरता का दृश्य आँखों के सामने आगया। यह गोला १६ इञ्च मोटा कोई १ या सवा गज लम्बा ठोस लोहे का है। इसका वजन २४०० पाऊंड अर्थात् कोई २८ मन है। इसके दागने के लिये धूमरहित ६६६.५ पाऊंड अर्थात् ८ मन सवा पांच सेर बारूद लगती है। ज़रा इसकी भयंकरता का ख्याल तो कीजिये।

यहां नाना प्रकार की सड़कों के नमूने देखे। मट्टी से लेकर आजकल की पिचकी सड़कों तक के नमूने यहां हैं। प्रायः इन देशों में एमेरिका व इङ्गलैंड का मुझे अनुभव है। तीन प्रकार की सड़कें अधिक बनती हैं एक लकड़ी की ईंटों को पिच से जमा कर, दूसरी पत्थर के टुकड़ों को पिच से जमाकर, तीसरी पत्थर की ईंटों को पिच से जमा कर। इन तीनों में धूल नहीं होती। पहिले दो प्रकार की सड़कें बड़ी उत्तम, चिकनी व चमकदार होती हैं, इन पर पानी छिड़कने की ज़रूरत भी नहीं होती व तीसरी ऊबड़ खाबड़ जो केवल उन नगरों में बनती हैं जहां व्यापार अधिक होता है व जहां भारी २ गाड़ियां चलती हैं। इन देशों में गर्द आपको कहीं नहीं दिखाई देती। म्युनीसिपैलिटी का यह प्रथम कर्तव्य है कि सड़कें गर्द से रहित हों क्योंकि आजकल गर्दा ही बीमारी का घर समझा जाता है। बस आज इन्हीं घरों को देखने में साँझ हो गई।

शनिवार १०-४-१५।

आज मेरे साथ मेरे एक मुलाकाती की दो छोटी बहिनें व एक भाई प्रदर्शिनी देखने गये थे। चूंकि ये मेरी ही देखभाल में गये थे इससे मेरा समय अधिक इन्हीं में लग गया। तिस पर भी शिक्षाभवन व भोजनगृह थोड़ा २ देखा।

शिक्षाभवन में बहुत वस्तुएँ देखने की हैं जिन्हें फिर देखकर लिखूँगा। यहां पर शिशु-

पालन विभाग में बहुत बातें हमारे जानने के योग्य हैं जिनके बारे में मैं पृथक् अनुसन्धान कर रहा हूं, आशा है कि मुझे उसमें सफलता होगी। यहां मैं घूमता हुआ फिलीपाईन द्वीप के शिक्षाविभाग में आया। यहां के चित्रों को देखकर चकित रह जाना पड़ा। यह देश एमेरिकावालों के पास अभी थोड़े दिनों से आया है। १८९० के बाद ही वहाँ पर एमेरिकावालों का शासन प्रारम्भ हुआ है किन्तु इतने ही थोड़े दिनों में वहाँ पर शिक्षा में आशातीत उन्नति होगई है और उस देश को अब बहुत कुछ स्वराज्य भी मिल गया है। उस देश की जन-संख्या ८० लाख है, इसमें से २० प्रति सैकड़े मनुष्य इस अल्प समय में ही साक्षर होगये हैं। यहां पर प्रति सैकड़े १०० बालकों में ४० या ४५ बालक पाठशालाओं में जाते हैं व इस छोटी आबादी में भी ४१७५ पाठशालाएँ हैं व यहां का राष्ट्र अपने राष्ट्र-कर की आय का १७वाँ अंश शिक्षा में व्यय करता है। इन ऊपर के अंकों से हमें शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

भोजनशाला में भी एक दृश्य अद्भुत देखा। वहां एक आटा पीसनेवाले की दूकान है जिसने विज्ञापन देने के लिये एक विलक्षण तरकीब निकाली है अर्थात् भिन्न २ देश के लोगों को अपनी २ पोशाक में अपना २ भोजन आटे से वहां बनवाता है। वहीं पर एक अपने देशी भाई भी पूरी व पकौड़ी बनाते हैं। पकौड़ी के लिये यहाँ भीड़ लगी रहती है व हज़ारों एमेरिकन उसके बनाने की तरकीब प्रति दिन यहां खड़े हो पूछते हैं व पकौड़ी खाकर मगन होते हैं। यदि यहां उत्तम हलवाई की दूकान खोल दी जाती तो अपने भोजनों का बड़ा ही प्रचार होता।

सोमवार, १२ अप्रेल १९१५।

आज मैंने ज़रा अच्छी तरह शिक्षाभवन की छानबीन की। यहां सहस्रों ऐसी वस्तुएँ हैं जिनके अंक मालूम करने और यहां लिखने की आवश्यकता है किन्तु अभी मैं यह नहीं कर सका, आशा है कि आगे चलकर करूंगा।

जापान ने जो आशातीत उन्नति गत २५ वर्षों में हर प्रकार से की है इसका ब्योरा देख चकित रह जाना पड़ता है। स्वतन्त्र देश किस प्रकार उन्नति कर सकते हैं यह उससे भलीभांति प्रकट होता है।

यहां पर ही भिन्न २ ईसाई सम्प्रदायों की दूकानें भी लगी थीं कोई बीस के करीब तो मैंने देखीं किन्तु इन सम्प्रदायों की संख्या सैकड़ों तक पहुंची हुई है। इसे देख अपने यहां के सम्प्रदायों पर जो कटाक्ष होता है उसका स्मरण आगया। यदि रोमन कैथोलिक व प्रोटेस्टेंट प्रेस्बिटीरियन व कृश्चियन सायन्स चर्च व अन्य अनगिनती सम्प्रदायों के ईसाईमतावलम्बी सभी के सभी जनसंख्या में ईसाई कहे व समझे जाते हैं तो बेचारे हिन्दू, सिक्ख, जैन आदि को एक बृहत् हिन्दू नाम से पुकारने में क्या आपत्ति है सो मेरी समझ में नहीं आता। हां, केवल अन्तर यही है कि "ज़बरदस्त की जोरू सब की मां व कमज़ोर की मा सब की भाभी होती है।"

यहां मदिरा से जो हानि होती है उसको भी खूब अच्छी तरह से नाना प्रकार के चित्रों व अंकों से प्रदर्शित किया हुआ है—एक जगह पर इसी कोटि में चाह व कहवे की भी गिनती की गई है ये पदार्थ भी स्वास्थ्य को हानि पहुंचानेवाले बताये गये हैं। सुर्ती, तमाखू, चुरट, सिगरेट महाराज की भी खूब दुर्दशा है। जापानियों ने तो २० वर्ष से कम उमरवालों को ये पदार्थ बेचना भी नियमविरुद्ध बताया है व प्रति वर्ष इस नियम के द्वारा जिन्हें दण्ड मिला है उसका लेखा भी दिया हुआ है। मैं अपने यहां के नवीन शिक्षित समुदाय के ध्यान को इस ओर आकृष्ट कराना चाहता व बढ़ती हुई चाह

की चाह को रोकना चाहता हूं पर मैं क्या कर सकूँगा! होगा वही जो राम रचि राखा—खैर।

यहां से निकल मैं रत्न-घरहरे के भीतर से होकर चला तो संसारचक्र (Court of universe) के भीतर से गुजरा। यहां पर दो ओर दो प्रकार की सभ्यता की मूर्तियां हैं। एक ओर प्राच्य सभ्यता व दूसरी ओर पाश्चात्य सभ्यता। प्राच्य सभ्यता में बीच में हाथी पर सवार भारत फिर ऊंट व घोड़ों पर अन्य देश दिखाये गये हैं इनके नीचे अंगरेज़ी में कुछ लिखा है उसे मैं पढ़ने लगा जब पढ़ चुका तो अन्त में कालिदास का नाम आया जिसे पढ़कर हर्ष व विषाद से रोमांच हो आया। अंगरेज़ी में यह लिखा हुआ था:—

The moon sinks yonder in the west
While in the east the glorious sun
Behind the Herald down appears
Thus rising and set in constant change
Those shining orb and regulate.
The very life of this our world.

यहां से होता हुआ मैं तमाशेगाह में पहुंचा यहां पर आज दो तमाशे देखे एक विख्यात जेनरल स्काट का दक्षिण ध्रुव की यात्रा व वहां ही उनका लोप हो जाना व दूसरा ईसाइयों की पैदायश की पुस्तक के अनुसार सृष्टि का सृजना। ये दोनों तमाशे किस योग्यता व किस सफाई से तैयार किये गये हैं इसका अन्दाज़ा देखने से ही लगता है।

स्काट का जहाज़ कैसे लन्दन से चल डोवर के पास से गुज़रता है फिर किस भांति अटलाण्टिक में तूफान में होता हुआ एमेरिका के पास से गुज़रता दक्षिणी ध्रुव के बरफीले मैदान में पहुंचता है। वहां किस तरह ये लोग सलेजो पर रवाने होते हैं—बरफीले तूफान व अन्त में स्काट का वीरों की भांति भूख, प्यास व जाड़े से जान देना इत्यादि आँखों के सामने आजाता है यह सब तस्वीरों के द्वारा नहीं किन्तु विचित्र कारीगरी से किया जाता है जिससे सच्चा दृश्य सामने आता है।

सृष्टिभवन में भूगर्भशास्त्र के तत्व को भली-भांति दिखलाया गया था। पहिले ब्रह्माण्ड वाष्प के रूप में दिखाई दिया, जल वृष्टि से पृथ्वी जल से ढांक गई, फिर ज्वालामुखी के द्वारा पृथ्वी धीरे २ जल सी उठी, फिर सूर्य, चन्द्रमा ईसाइयों के मतानुसार बने फिर वनस्पतियां उगीं—फिर जलचर, नभचर, भूचर बने। अन्त में बाबा आदम व हौवा बने, अन्त में ईश्वर मेहनत से थक आराम करने चला गया। इन सब के दिखाने में विज्ञान से बड़ी सहायता ली गई थी।

बुधवार, १४ अप्रेल, १९१४।

आज प्रदर्शिनी में घुसते ही "साधारण कलाकौशल भवन" (Palace of Liberal Art) में घुसा। यहां नाना प्रकार के यन्त्र व अन्य नाना प्रकार की वस्तुओं का समूह है। इस देश में दूकान पर सौदा बेचने व बैंको में हिसाब रखने के लिये अनेकानेक यन्त्र बने हुए हैं जिनमें हिसाब किताब बड़ी उत्तमता से रक्खा जा सकता है। ये यन्त्र प्रायः समस्त दूसरी भाषा के अंकों में मिलते हैं पर भारतीय अंकों का नामो-निशान नहीं है। इसे देखता हुआ एक जगह पहुंचा जहां 'लेखा' (Ledger) बनाने की मशीन थी। यह बैंक व व्यापारियों के बड़े काम की है। फर्ज कीजिये आपके यहां 'क' का ५००) रु० जमा है अब वह आपसे ३ बार में दो २ सौ कर के ६ सौ रुपया लेता है। जब आपकी रोकड़ से इस यन्त्र द्वारा लेखा बनाया जायगा तो आप से आप २ रकमों के लिखने के उपरान्त यह मशीन बन्द हो जायगी जिससे आप को तुरन्त पता लग जायगा कि इस खाते में रकम ज्यादा ली गई है। अब आपको जब यह मालूम होगया तो आप एक दूसरा पेंच दबा

कर यन्त्र चलावें तो वह चलने लगेगा और रोकड़ बाकी के खाते में ऋण दिखा देगा। इस यन्त्र द्वारा जो लेखा बनता है उसमें ४ खाने होते हैं। (१) कल की रोकड़ बाकी। (२) नाम। (३) जमा। (४) आज की रोकड़ बाकी। आप मशीन चलाये जाइये यहां आप से आप सब काम होता जायगा जोड़ बाकी सब शुद्ध २ आपसे आप मशीन कर देगी। आप चाहे जोड़ने या बाकी तोड़ने में भूल भी जायँ पर यह मशीन नहीं भूलती। इसी प्रकार इसी मशीन से चिट्ठा भी बनता है। आप लेखे के सब खातों की नाम जमा की रकमें छापते जाइये अन्त में एक पेच घुमाने से सब जमा की रकमों की एक में व नाम की दूसरे में जोड़ व फिर उसकी रोकड़ बाकी झट छप जायेगी।

एक दूसरी मशीन जोड़ने की है। फर्ज कीजिये आपको सौ रकम जोड़ना है। आप मशीन पर सब रकमें छापते चले जाइये अन्त में पेच दबाते ही सबका ज़ोड़ शुद्ध २ आना पाई सहित नीचे छप जायगा। इन सब यन्त्रों के द्वारा इस देश में भूल चूक तथा बेईमानी की बहुत कम गुञ्जाइश कारबार में रह जाती है।

मर्दुमशुमारी के लिये भी एक मशीन बनी है किन्तु मेरी समझ में वह भली भांति नहीं आई। इसी प्रकार वोट देने के लिये भी एक मशीन है जिसके द्वारा वोटलेने वाला बेईमानी करके वोट इधर उधर नहीं कर सकता। यह ज़माना यन्त्रों का है सारे कार्यों के लिए आजकल यन्त्र बन रहे हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि कुछ दिन में मनुष्य हाथ से काम करना भूल जायँगे, वे बिना यन्त्रों के कुछ कर ही न सकेंगे। अब भी जो कार्य हमारे देश के बढ़ई व लोहार हाथों से करते हैं वह कार्य यहांवाले बिना यन्त्र के नहीं कर सकते। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

यहां से होता हुआ नाना प्रकार के बिजली के यन्त्रों को देखता हुआ अंडरवुड (Under wood) टाइपराइटर कम्पनी की दूकान पर पहुंचा। इस कम्पनी ने गजब ही कर दिया है। केवल इसी प्रदर्शिनी में विज्ञापन के लिये ३ लाख के लागत की एक टाइपराइटर मशीन बनाई है। यह मशीन क्या है मशीनों का परदादा है। इसका वज़न सिर्फ १४ टन अर्थात् कुल ३७२ मन है। इसका डीलडौल मामूली यन्त्रों से १७२८ गुना बड़ा है। यह २१ फुट चौड़ी व १५ फुट ऊंची हैं किन्तु इस पर काम बड़ी शीघ्रता से होता है। इसके हरफ कोई ३ इंच बड़े होते हैं। यहांवाले विज्ञापन देने में बड़ा धन लगाते हैं। इसका प्रभाव भी अच्छा होता है। इसी दूकान पर दर्शकों का जमघटा लगा रहता है। दर्याफ़्त करने से इसके पास भी हिन्दी के टाइपराइटर का पता नहीं चला।

यहां से होता हुआ मैं फिर शिक्षाभवन में घूमता हुआ एक कोने में जा पहुंचा। वहां कुछ पुस्तकें एक आलमारी में लगाई हुई थीं उसे देखने लगा। थोड़ी देर में पता लगा कि यह "कारनेगी इन्सटीट्यूशन आफ वाशिंगटन" (Carnegie Institution of Washington) नामक संस्था है। धीरे धीरे पता लगा कि आधुनिक समय के एमेरकिन धन कुबेर ने ३ बार करके २ करोड़ २० लाख डालर अर्थात् ६ करोड़ ६० लाख रुपये का दान देकर यह संस्था बनाई है। इसके द्वारा विज्ञानवेत्ता नये सिरे से सारे ज्ञानभंडार को परख रहे हैं व उसमें वृद्धि करने के कार्य में लगे हैं। इसी संस्था द्वारा एक दूर्बीन बन रही हैं जो १८ मास में तैयार हो जायगी। यह संसार की सब दूर्बीनों से बड़ी होगी। अभी तक सबसे बड़ी दूर्बीन ६० इञ्च व्यास के शीशे की है। यह १०० इञ्च व्यास के लेन्स की होगी इसके द्वारा कैसे २ कार्य होंगे उसका अनुमान ही किया जा सकता है। इस संस्था के अन्तरगत ४ विभाग हैं (१) शासन

विभाग (२) विज्ञान अनुशीलन विभाग (३) व्यक्तिगत अनुशीलन विभाग (४) मुद्रण विभाग। संसार में जितने प्रकार के ज्ञानस्रोत हैं सभी के लिये यहां नलिकाएँ लगी हैं। नीचे की नामावली से आपको उसका कुछ दिग्दर्शनमात्र होगा :—

1. Department of Experimental Evolution.

2. Department of Botanical Research.

3. Department of Embryology.

4. Department of Marine Biology.

5. Nutrition Laboratory.

6. Department of Terrestrial Magnetism.

7. Geophysical Laboratory.

8. Department of Meridian Astrometry.

9. Mount Wilson Solar Observatory.

10. Department of Economics and Sociology.

11. Department of Historical Research.

यह तो मैंने ऊपर मोटे तौर पर नाम गिनाये हैं किन्तु एक २ के भीतर अनेक २ शाखाएँ और प्रतिशाखाएँ हैं। इसका नाम है ज्ञान की पिपासा हा ! अपने देश में प्रतिदिन करोड़ों व्यक्ति त्रिकाल सन्ध्या करते हुए पवित्र सावित्री मन्त्र द्वारा जगन्नियन्ता से ज्ञान की प्रार्थना करते हैं किन्तु बस कोरी प्रार्थना करके चुप रह जाते हैं कार्य कुछ नहीं करते।

जगदीशीचन्द्र बोस के लिये एक प्रयोगशाला भारतीयों से बनाते नहीं बनती जिसमें केवल १०। १५ लाख का काम है। क्या राजे महाराजे जो पचास २ लाख चन्दा दे डालते हैं सब मिलकर दो चार करोड़ रुपया एकत्र कर विद्या-मन्दिर बनाने में नहीं लगा सकते। न जाने क्यों बड़े २ राजा लोग अपनी २ रियासतों में युनिवरसिटियां नहीं बनाते जिसमें विद्या का खूब प्रचार हो।

इस उपर्युक्त संस्था ने अभी तक ५२२ पुस्तकें भिन्नभिन्न विषयों पर मुद्रित की हैं जो सारी की सारी बड़े २ दिग्गज विद्वानों के द्वारा लिखी गई हैं। नीचे मैं पुस्तकों की विषय-सूची देता हूं।

1. Classics of International Law. 2. Astronomy and Meathematics 3. Chemistry and Physics. 4. Terrestrial Magnetism. 5. Engineering. 6. Geology. 7. Paleontology. 8. Archeology. 9. History and Bibliography. 10. Literature. 11. Philology. 12. Folk Lore 13. Embryology 14. Inded medicees 15 Nutrition and other subjects of Allied Interest. 16 Experimental Evolution, Variation and Heridity. 17 Stereochemistry Applied to Biology. 18. Botany 19. Climatology and Geography. 20 Zoology.

उपर्युक्त सूची से आपको इसका पता लग जायगा कि यह संस्था क्या कर रही है।

यहां से होकर मैं फिर जापानी गृह में पहुंचा व वहां से कुछ अंक संग्रह किये जिन्हें यहां देता हूं। जापान का भारत से १०,१५,२३,६३८ डालर का व्यापार है। इसमें से जापान भारत से ८;६५,८६,८३१ डालर का कच्चा माल मंगाता है व भारत को बना हुआ माल १,४६,३६,७०७ डालर का भेजता है। १८६८ ईसवी से जापानियों की वृद्धि का प्रारम्भ हुआ है। उस समय जापान का व्यापार डेढ़ करोड़ आमदनी व २ करोड़ ४० लाख रफ़्तनी का था। १६०० में बढ़कर यह आमदनी ४२० करोड़ व रफ़्तनी ३०० करोड़ हो गई और अब १६१३ में आम-

दनी १०८० करोड़ व रफ़्तनी ६६० करोड़ है। उपर्युक्त लेखे से साफ ज्ञात होता है कि जापान ने गत ४६ वर्षों में अपने व्यापार को ३॥ करोड़ से बढ़ाकर २०४० करोड़ का कर लिया है यानी पांच सौ तिरासी गुना अधिक बढ़ा लिया है। इतने ही समय में हमने क्या किया है उसके अंक भी यदि मिलें तो पता लगे किन्तु मोटी दृष्टि में इतने ही समय के बीच में केवल भूख प्यास से तड़प कर २ करोड़ २० लाख मनुष्य मर गये। खैर।

यहां से मैं "वर्ल्डली ऐंड नेशनल वूमैन्स क्रिश्चियन टेम्परेन्स यूनियन (Worldy and National Womans Christian Temperance Union) गया। वहां से जो अंक संग्रह किये वे नीचे दिये जाते हैं:—

निम्नलिखित पाँच वस्तुओं का व्यवहार बिला नशे के किया जा सकता है। जिंजर, एल, सासपेरिला, वैनिल्ला सोडा, रैस्पबेरी आदि (Ginger Ale, Sarsaparila, Vamilla Soda, Raspberry etc.

निदान मादक द्रव्यों में उष्णता को छोड़ भोजन के और कोई गुण विद्यमान नहीं हैं इसलिए और भोजन के पदार्थों का यदि मादक द्रव्य-वाली वस्तुओं से मुकाबला करना हो तो केवल उष्णता के आधार पर ही हो सकता है। अब आपको नीचे के अंकों से यह पता लगेगा कि यदि कोई व्यक्ति १० सेंट के भिन्न २ पदार्थ खरीदे तो उसमें निम्न भांति उष्णता पाई जायगी। यह माप कैलोरी (Calorie) में दी गई है, कैलोरी उतनी उष्णता को कहते हैं जो एक ग्राम जल के ताप को एक अंश बढ़ा दे।

आटा	६७०५
जई का दरिया	३४४०
साबूदाना (Tapioca)	३४४०
शर्करा	३१००
सेम का बीजा (Beans) ...	२६६६
रोटी	२४३०
सूखी मटर	२०१५
चावल	१७२०
आलू	१५००
किशमिश	१३३७
सेवई	१११०
मक्की के टुकड़े (कौर्न फ्लोक्स) ...	८४२.५
सेव	७३३
सोडा बिस्कुट	६५०
ह्विस्की	१६१.४
काकटेइल	१५६.५
बीयर	१३८
ब्रांडी	११६
वाइन	६३
शैम्पेन	२१.७
स्किम मिल्क	६६०
लैम्ब चैप (Lamb chap) ...	४४०
अंडे	२६२
चिकेन	२०२
मछली	१८६
मूंगफली	१४५०
पार्क सौज	१०८२
मक्खन	६८०
पनीर	६७५
दूध	६२०
मलाई	५६५

नीचे की तालिका से आपको भिन्न २ प्रकार की मदिरा में मादक पदार्थ एलकोहल (Alcohal) की प्रति सैकड़े मात्रा मालूम होगी।

बीयर	५ सैकड़ा
एल	७ ,,

पार्लर	७	सैकड़ा
हार्ड सेडर	६	,,
फ्रटवाईन	८	,,
कैरेट	८	,,
मस्केटल	८	,,
शैम्पेन	१०	,,
सैनटर्न	१२	,,
शेरी	१४	,,
पोर्ट	१४	,,
वरमथ	१५	,,
क्यूडी स्यूथी	३२	,,
काकटेल्स	३५	,,
बिटर्स	४६	,,
कीमनल	४२	,,
रम	४५	,,
ब्रांडो	५०	,,
जिन	५०	,,
ह्विस्की	५०	,,
वोडाका	५०	,,
एब्सिथ	६०	,,

इनको देखता हुआ बाहर निकल आया फिर तमाशेगाह में पहुंचा और और वस्तुओं को देखा। (1) Evolution of Dreadnoughts, (2) A Grand Canion of Arizova. इन दोनों में भी बड़ी योग्यता से कार्य किया गया है। बड़े ही महत्व के दृश्य हैं—एक में जहाज़ी लड़ाई सामने होती दीख पड़ती है व दूसरे में महान् अमेरिकन दर्रे का दृश्य है। अमेरिका में ४ वस्तुएं बड़े महत्व की है। नियागरा फाल्स, यलोस्टोव पार्क, ग्रैंड केनिअन आव अरीज़ोवा, यसोमाइट वेली। किन्तु ये इतने २ दूर हैं कि इनका देखना कठिन है मैंने केवल नियागरा को ही देखा है।

शुक्रवार, १६ अप्रेल, १९१५।

आज मैंने कृषि-भवन, खानों के भवन व गाड़ी रेल इत्यादि के भवन व जानवरों का घर देखा। इन भवनों में जानवरों के भवन को छोड़ कोई विशेष बात न थी।

कृषि में नाना प्रकार के अन्न व घासों के नमूने थे व तरह तरह के कृषि-सम्बन्धी यन्त्र थे पर हमारे काम के कोई भी न जँचे। मुझे यहाँ निम्नलिखित वस्तुएं अच्छी लगीं। जुआर व वोड़े खेम की क़िस्में, हाथीचिंघाड़ का रेशा व एक प्रकार की घास जो बालों की जगह गद्दों में भरी जाती है। मशीनों में दूध तुहने का यन्त्र अच्छा लगा। इस यन्त्र द्वारा एक मनुष्य एक घंटे में कोई २५ गायों का दूध आसानी से दुह सकता है। इसकी कीमत कोई एक हज़ार रुपया होगी और इसपर भी बिजली की शक्ति की आवश्यकता भी पड़ेगी। यहां पर नाना प्रकार के कृषि-सम्बन्धी और यन्त्र भी थे पर सब इतने बड़े व पेचीदा थे जिनका उपयोग अपने यहां अभी करना असम्भव सा ही दीख पड़ता है।

यहां से खानों के भवन में गया। नाना वस्तुओं की खानें देखीं। बड़ी सुन्दरता से खानें बनाई गई थीं। खनिज वस्तुओं को किस प्रकार साफ करते हैं यह भी दिखाया गया था पर जितनी वस्तुओं की आवश्यकता इस भवन में है उतनी नहीं हैं। यहां की प्रदर्शिनी व अपने यहां की प्रदर्शिनी में एक अन्तर यह भी देख पड़ा कि जिस प्रकार अपने यहां की प्रदर्शिनियों में कला-कौशल के गोपनीय रहस्यों को खोल के दिखा देते हैं वैसा यहां नहीं करते। मुझे एक भी जगह यह नहीं दीख पड़ा।

गाड़ी व रथ भवन में नाना प्रकार के सवारियों का समूह था किन्तु पनडुब्बी नाव या विमान न थे। यहां पर दो वस्तुएं देखने योग्य थीं। एक मोटर गाड़ी का कारखाना।

यहां मोटर के भिन्न २ भागों को जोड़ गाड़ी बना रहे थे व दूसरा एक नये प्रकार का इंजन। इसमें यह खूबी थी कि बाइलर इत्यादि सब पीछे थे व इंजन तेल का है। हांकनेवाले के लिए जगह सामने है जिसमें वह सड़क पर की सजावटों को भली प्रकार देख सकता है व रात को भी एक मील तक की दूरी पर आदमी दीख पड़ सकता है जिससे खतरा कम हो गया है। यह अपने यहां के इंजन अगर उलटे कर दिये जायँ तो जैसे दीख पड़ेंगे वैसा दीख पड़ता है।

पशुशाला में गौएँ ऐसी देखां जैसी कभी ज़िन्दगी में नहीं देखी थीं। एक एक गऊ मन मन भर दूध देनेवाली देखी उनके थन जमीन में छू जाते थे। वे बहुत बड़े व दूध से भरे थे। इनके दाम १०००) रुपये के लगभग थे। यहीं पर एक साँड़ देखा। साँड़ की अपने यहां इतनी कमी होती जाती है जिसका ठिकाना नहीं। अब शहरों में अच्छे साँड़ बरदाने को नहीं मिलते जिससे गोसन्तान दिन २ छीजती जाती है। इस ओर हमें ध्यान देना चाहिये। घोड़े भी यहां ऐसे २ देखे जिनका ठिकाना नहीं। इन देशों में पशुओं के पालने व उनकी नस्ल को बढ़ाने व उनकी सन्तान को सुखी रखने के लिये नाना यत्न किये जाते हैं। विज्ञानवेत्ता लोग अपनी खोपड़ी इन बातों में रात दिन खपाया करते हैं। अपने यहां झूंठी दया का ढकोसला मात्र रह गया है। गाय ने जहां ज़रा दूध कम देना शुरू किया बस ब्राह्मण के घर भेजी गई। ब्राह्मण बिचारा न मालूम उसे कैसे रक्खेगा। बड़े २ नगरों में भी साँड़ों के लिए कोई बन्दोबस्त नहीं है। घोड़ों के खेत तो अब दिन बदिन कहानी होते जाते हैं। जहां कभी एक से एक अच्छे घोड़े उत्पन्न होते थे वहां अब गदहे भी नहीं पैदा होते।

यहां की जिस वस्तु का मुकाबला अपने यहां के वस्तु से करते हैं उसी में अपने यहां अवनति दीख पड़ती है। क्या भगवान् इस देश का नाश ही देखना चाहते हैं ? यदि यही इच्छा है तो क्या चारा किन्तु प्रभो ! फिर सिसकार न मारो एक ही बार वसुन्धरा को आज्ञा दो कि माता भूमि हमें अपने उदर में लोप कर ले ?

अब मुझे प्रदर्शिनी की और बहुत सी वस्तुओं का संक्षेप में विवरण आपको सुनाना है। आज मैं चित्रशाला व अन्य कारीगरियों के भवन में घूमता रहा। यहीं चित्रों को देख कर बड़ा आनन्द आया। नाना प्रकार के उत्तम २ चित्र यहां हैं किन्तु मुझे सब से अधिक चीनी चित्र की शोभा अच्छी लगी। मुझे इन चित्रों को गौर से देखते देख एक चीनी सज्जन ने जो यहां के प्रबन्ध की देखभाल में थे मुझसे पूंछा कि क्या मुझे चीनी चित्र रुचते हैं। मैंने कहा हां तब उन्होंने और बहुत से चित्र भीतर से निकाल कर दिखाये जिनकी शोभा देखते ही बनती थी। ५०० साल के चित्र ऐसे जान पड़ते थे कि मानों चितेरे की कलम से अभी निकले हों। यहां पर बहुत सी शीशियां देखीं जो चौड़ी बनाई हुई थीं किन्तु उनके मुख इतने छोटे थे कि उनमें एक इञ्च के आठवें हिस्से की मोटाई की पिन्सिल जा सकती थी। किन्तु चतुर चितेरे ने इन शीशियों के भीतरी ओर ऐसे उत्तम चित्र बनाये थे कि बस देखते ही बनता था। यहीं पर चीनी बने हुए हांथी दांत के गेंद देखे जो गोलाई में शायद २॥ से ३ इञ्च होंगे किन्तु कार्य-कुशल कारीगर ने इनमें एक के भीतर एक २८ तहें काटी थीं व प्रत्येक तहों पर उमदा जाली बनी थी। यह कार्य भारत में भी बनता है। मैंने इसे देहली में तथा काशी के प्रधान रईस बाबू माधोजी की कोठी में देखा है। आपके यहां शत-रञ्ज की मुहरों में यह कारीगरी है पर उनमें कितने तह हैं सो मुझे स्मरण नहीं है। कुछ हो यह कारीगरी प्राच्य देशवालों ही की मिलकीयत है इसे पाश्चात्य देशवाले कम से कम अबतो नहीं ही कर सकते। यहीं पर तमाशा-

गाह के एक तमाशे का भी ज़िक्र कर देना उचित है। ज़ोन में एक तमाशा Cyclorawed Bottle of G ttysburg के नाम से प्रसिद्ध है। यह इस देश के अन्तरर्राष्ट्रीय युद्ध का एक दृश्य है। एक गोल मण्डप में ४०० फुट लम्बा ५० फुट चौड़ा एक लड़ाई का चित्र लगाया हुआ है उसी को दर्शक देखते हैं। यह चित्र कैसा है यह लिखना कठिन है किन्तु बड़े ग़ौर से देखने पर भी यह जानना कि चित्र कहां पर प्रारम्भ होता है असम्भव है। इस चित्र के बनाने में बड़ी कारीगरी है। सारा चित्र जीवित प्रतीत होता है। चित्र में कई योजन लम्बा चौड़ा मैदान बना है जिसे देख अचम्भा होता है व चितेरे की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। दृष्टान्त के लिए मैं थोड़ा सा हाल लिखता हूं। एक जगह दो मनुष्य एक ज़ख्मी को लिये जाते देखाये गये हैं इनमें दोनों आदमी चित्र में हैं ज़ख़्मी आधा चित्र में है आधी मूरत है किन्तु यह जानना कि मूरत कहां खतम हुई व चित्र कहां प्रारंभ हुआ बड़ा दुष्कर है। एक जगह रथ है जिसका आधा पहिया सच्चा व आधा चित्र में है। एक कुंआं है आधा सच्चा आधा चित्र में। उसपर एक लकड़ी की बाल्टी है जो आधी सच्ची व आधी चित्र में है इसी प्रकार अन्य बहुत ही विचित्र २ घटनाओं को यहां मूर्ति तथा चिन्हों द्वारा मिलाकर दर्शाया गया है जिससे दर्शकों पर बड़ा ही उत्तम प्रभाव पड़ता है। मैंने मार्सेल्स की चित्रशाला में बहुत से उत्तम चित्र देखे थे जिनमें बाज़ २ दस लाख पाउन्ड अर्थात् १॥ करोड़ रुपये की कीमत के थे। बृटिश म्यूज़ियम लन्दन में भी बड़े अनमोल चित्र देखे थे किन्तु मेरी निगाह में (मेरी निगाह बिलकुल ही इन विषयों में अनभिज्ञ है इस कारण वह प्रामाणिक किसी अङ्ग में भी नहीं समझी जा सकती व उसका ऐसा समझना भी मूर्खता से कम नहीं है) इस चित्र के मुकाबिले में वे अद्भुत चित्र हेच जँचते थे।

इसके उपरान्त मैंने एक दिन इन महलों की फिर परिक्रमा की थी। मुझे एक जगह संसार में कहां २ व कितना कितना सोना खानों में मिलता है इसके अंक देख पड़े थे सो मैं पाठकों के विनोदार्थ यहां उद्धृत करता हूं। १६१३ में सारे संसार की खानों में से १२५,५४ घन इञ्च सोना प्राप्त हुआ जिसका मूल्य ४५,२१,३३,४४६ डालर हुआ (एक डालर प्रायः ३ रुपये के बराबर समझना चाहिये)। अब मैं नीचे देशों का नाम व सोने की अवसत व मूल्य देता हूं।

देशों का नाम।	सोने का तौल का परता। कुल को १०० मान कर।	मूल्य डालर में।
ट्रांसवाल (Transwal)	४० सैकड़ा।	१८,०८,१२,७२०।
आस्ट्रेलेशिया (Australasia)	११.३ ”	५,२०,६८,७२०।
रोडेसिया (Rhodesia)	३.१ ”	१,४१,८६,०४०।
केनेडा (Caneda)	२.६ ”	१,३२,७६,१२०।
भारतवर्ष	२.७ ”	१,२०,६६,१२०।
वेस्ट एफ्रिका (West Africa)	१.८ ”	८१,७४,७००।
संयुक्त राष्ट्र U. S.	१६.४ ”	८,७८,१६,६६०।
रूस (Russia)	४.४ ”	२,४८,६५,०८०।
मेक्सिको (Mexico)	४.५ ”	२,०१,४८,६२०।
अन्यदेश	८.६ ”	३,८७,२०,०००।

उपर्युक्त अंकों से आपको पता लगेगा कि संसार के सोने के उत्पत्ति का २७सैकड़ा भाग अपने देश में प्राप्त हुआ, क्या आप जानते हैं कि यह कहां होता है यदि न जानते हों तो जान लीजिये कि यह मैसूर राज्य में प्राप्त होता है। अभी तक यहां ऊपर बालु में मिला मिलता था। उसे बटोर धो गला प्राप्त किया जाता था। अब थोड़े दिनों से ऊपर का सब समाप्त हो जाने से नीचे खोद के प्राप्त करने की आवश्यकता पड़ी। अब सोना पाने के लिए भी निर्धन देश में यन्त्रों के लिए धन नहीं मिला वा ऐसा कहो कि लोग इसके लिए भी धन लगाने को तैयार नहीं हैं इसलिए इस कार्य के लिए सात समुद्र पार विलायत से धन आया व सोना जो निकलता है राजा साहेब को कुछ रजाई का देकर विदेशी धनियों के जेब में जाता है इसी को दरिद्रता की पराकाष्ठा कहते हैं। दरिद्रों के हाथ लगाने से उसी प्रकार सोना राख हो जाता है व भाग्यमानों की छूई मिट्टी भी सोना बन जाती है।

इन महलों के अतिरिक्त जिनका वर्णन संक्षेप से ऊपर किया गया है अन्य भिन्न राष्ट्रों के भी पृथक् २ गृह निर्माण हुए हैं उनमें से कितने खुल गये हैं, कितने अभी बन रहे हैं। मैंने जितने देखे हैं उनका दिग्दर्शनमात्र यहां कराये देता हूं :—

केनेडा—यह अंगरेज़ों का उपनिवेश है व ठीक संयुक्त राष्ट्र के उत्तर पृथ्वी की छोर तक फैला हुआ है। यह ब्रिटिश साम्राज्य में केवल नाममात्र के लिए ही है। इससे ब्रिटिश साम्राज्य के केन्द्रस्थल को एक कौड़ी की भी आमदनी नहीं है प्रत्युत इङ्गलिस्तान को ही उलटे साम्राज्यसचिव का वेतन देना पड़ता है। हां यहां भी वाइसराय अथवा सम्राट् के प्रतिनिधि रहते हैं किन्तु इन्हें नवाबी के अधिकार नहीं हैं। यहां प्रजा की राष्ट्रसमिति है व इसी के अन्तरगत प्रत्येक प्रकार का अधिकार है। इन देशनिवासियों को अपने धन पर अधिकार है। वे कररूप से जो प्रत्येक वर्ष धनराशि राष्ट्रकोष में देते हैं उसे अपने ही देश में अपने ही लिये व्यय भी स्वयं ही करते हैं। दूसरों को एक कौड़ी लेने का अधिकार उसमें से नहीं है इसी कारण इतना शीतप्रधान देश होते हुए भी यह प्रतिदिन आशातीत उन्नति कर रहा है। उसी उन्नति को अपने पड़ोसी राष्ट्र को दिखाने के लिए यहां भिन्न २ प्रबन्ध हुआ है। अपनी उन्नति की व अपने यहां उत्पन्न हुए पदार्थों को किस भांति यहां दर्शाया गया है उसका पूरा ब्यौरा देना इस छोटे लेख में सम्भव नहीं है किन्तु थोड़ा सा तो लिखना ही चाहिये। उदाहरणस्वरूप कृषिविभाग को लीजिये, उसमें देश में क्या वस्तु उपजती है सभी दिखाई गई हैं। यहां तक कि करीब २०० प्रकार के भिन्न २ घासों के नमूने यहां एकत्रित हुए हैं और उनमें से किन घासों के दाने मनुष्यों के खाने के काम में आ सकते हैं यह भी दिखाया गया है। यहां पर उन घासों को भी अच्छी प्रकार रक्खे हुए पाया जिसे अपने देश में पशुओं को भी नहीं खिलाया जाता। इसे देख मनुष्य ने ज्ञान की वृद्धि के लिए विज्ञान से कितनी सहायता ली है वह प्रत्यक्ष देख पड़ता है। हमारे यहां लोग इसी भ्रम में पड़े हैं कि परमेश्वर ने हमीं को सृष्टि के आदि में वेदों में भर कर सारा ज्ञान दे दिया है जिसे चुपचाप टुकुर टुकुर हम देखा करते हैं या बहुत हुआ तो कुछ तोतों की भांति रट कर दोहरा लेने ही में बस बहादुरी समझते हैं। पर दूसरे देशवाले प्रतिदिन सृष्टि के गुप्त भंडार में से कुछ न कुछ मनुष्योपयोगी ज्ञान परिश्रम द्वारा निकाला करते हैं और अपने तथा अन्यों के जीवन को सुखकर बनाते हैं। इसी का नाम सच्ची तपस्या अथवा ज्ञान पिपासा, वेदों का वास्तविक पाठ वा विज्ञान की खोज है।

कृषि की भांति तरह २ के फल फूलों का भी विस्तार यहां पर है व अन्य खनिज पदार्थों व पशु पक्षियों का भी खूब विस्तार दिया है। इस देश में जंगल बहुत है इससे यहां लकड़ी बहुत पैदा होती है। इसलिए लकड़ी के भिन्न २ उपयोग का भी दर्शन यहां भलीभांति कराया गया है। अभी थोड़े दिन पूर्व यहां कागज़ों के कारखाने बहुत कम थे किन्तु थोड़े दिनों में ही यहां ५१ कारखाने केवल लकड़ी के गुदे (Pulp) से कागज बनाने के बन गये और यह समझा जाता है कि थोड़े दिनों में यह देश कागज़ के कारखाने में सब अन्य देशों से बढ़ जावेगा। इसका कारण उपयुक्त लकड़ी की बहुतायत व धन विभाग तथा कलाकौशल जाननेवालों की अधिकता है। यहां एक विशेष प्रकार के पशु होते हैं जो लकड़ी का गूदा निकाल अपना गृह निर्माण करते हैं बस इसी को देख इसका पता लगा है कि उस विशेष प्रकार के काष्ठ से कागज़ बनाने का अत्युत्तम गूदा बन सकता है। नीचे इस देश की उन्नति का लेखा देते हैं :—

१९१३ में धन की उत्पत्ति का लेखा :—

कृषि	५५२७७१५००	डालर।
जंगलात	१६१८०२०४९	,,
खनिज	१३६०४८२९६	,,
मछली इत्यादि	३३३८४४६९	,,
गोधन	१२१०००००००	,,
फल	२५०००००००	,,
कुल जोड़ ...	१०३०००६३१४	

व्यापार उन्नति-सूचक लेखा।

	१९१२	१९१३
कुल व्यापार	८७४६३७७९४	१०८५२६४४४९
आमदनी	५५९३२५५४४	६८६६०४४१३
रफ़्तनी	३१५३१७२५०	३७७०६८३५५
संयुक्त राष्ट्र से व्यापार	४८८६७९७४१	६६२४३२९३७
ब्रिटिश साम्राज्य से	३०७८४०८१६	३६१७५९०३६
ब्रिटिश राज्य से	२६९०५४८४४	३१७६३५५८९

उपर्युक्त लेखे को देखने से मालूम होता है कि केवल १ वर्ष में २१०६२६६५५ डालर की व्यापार में वृद्धि हुई। यह क्यों? कैनेडा व भारत दोनों ही ब्रिटिश साम्राज्य में हैं किन्तु एक में वृद्धि व दूसरे में कुछ नहीं इसका क्या कारण? कारण स्वराज्य, स्वाभिमान, ज्ञान व परिश्रम है।

केलीफोर्निया महल—संयुक्त राष्ट्र के भिन्न प्रदेशों के भी संयुक्त महलों के अतिरिक्त अपने अपने अलग २ भवन बने हैं। इनमें से कुछ में तो विशेष प्रदर्शिनी है बाकी केवल दिखाने ही के लिये हैं। इनमें से केलीफोर्निक भवन में विशेष रूप से प्रदर्शिनी का प्रबन्ध है। यहां इस प्रान्त के भिन्न २ फल फूल, अन्न, शाक पात तथा खनिज पदार्थ व जन्तुओं को व उनको बनाने व ठीक करने में जिन यन्त्रों की आवश्यकता होती है वे भी प्रदर्शित किये गये हैं। इस भवन में घुसते ही सामने एक विशाल वृक्ष का तना देख पड़ता है। यह केलीफोर्निया की प्रधान लाल लकड़ी (red wood) का तना है। यह वृक्ष बहुत बड़ा व मोटा तथा बड़ी आयु का होता है। वृक्ष के दो टुकड़े यहाँ रक्खे हैं, दोनों भीतर से पोले किये हुए हैं। भीतर जाने से मालूम होता

है कि रेल गाड़ी के एक पहिले दर्जे के डब्बे में खड़े हैं। इसके मिकदार का लेखा इस भाँति है।

वृक्ष की उँचाई ३०० फुट, धड़ की मुटाई का व्यास २० फुट, धड़ की उँचाई १५० फुट, जहां से प्रथम डाली निकली वहां की मुटाई का व्यास ८ फुट। इस लकड़ी के टेबुल, कठवत, कुर्सी व नाना प्रकार की वस्तुएँ यहां बनती हैं। यहां से आगे बढ़ने पर नाना प्रकार के फल फूल, कन्दमूल, शाक पात, अन्न व कुपन्न, पशु पक्षी, मछली तथा खनिज पदार्थ देख पड़ते हैं। इन देशों में मुरब्बा बनाने, फलों को सुखाने तथा उनका विशेष पाक बनाने का बड़ा रिवाज़ है। इसी प्रकार तरकारी इत्यादि को भी काटव सुखा कर रखने की चाल है। इससे दो प्रधान उपकार होते हैं एक तो हर मौसम व देशों में भिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ जो उस मौसम व देश में नहीं मिलते प्राप्त होते हैं दूसरे मौसम में वस्तु की बहुतायत से उनका मूल्य नहीं घटता बनवस्तु ही फेकनी पड़ती इससे देश के धन में वृद्धि होती है। उदाहरण रूप से अपने देश में आम वा लीची के मौसम में ये पदार्थ सस्ते भी मिलते हैं व सड़ कर फेंके भी जाते हैं दूसरे बेमौसम में रुपये के एक भी नहीं मिल सकते व देश के बाहर इनका दर्शन आंख में अञ्जन लगाने को भी नहीं होता। इसी प्रकार मौसम के बाद जो लोग हरी मटर, गोभी व कचनार अथवा कटहल की तरकारी खाना चाहें तो नहीं मिलेगी किन्तु इसके प्रत्युत कैलिफोरनिया की नारंगी तथा अन्य : कार के फल फूल तरकारी सभी देशों में तथा सभी मौसम में प्राप्त होती है। ये कुछ सूखे कुछ विशेष प्रकार से ताजे ही नये बन्द किये हुए व कुछ बरफ द्वारा ज्यों के त्यों रक्खे हुए मिलते हैं। अपने देश में काबुल से सर्दा आना दुस्तर है बिना काश्मीर गये गिलास व गोशःव गों का स्वाद पाना असम्भव है किन्तु कैलिफोरनिया के अंगूर, नासपाती व नारंगी सभी सभ्य जगत में प्राप्त हैं। इसके लंबे चौड़े बयान से मेरा अभिप्राय यह है कि अपने देश में इन ३ प्रकार के धन्धों की बड़ी आवश्यकता हैं (१) फल तथा भिन्न २ तरकारियां को टीन में बन्द करके रखना (२) फल तरकारियों को इस प्रकार से सुखा कर रखना जिसमें उनके खाद तथा खाद्य पदार्थ की उपयोगिता में अन्तर न पड़ने पावे (३) हिम कुंडों द्वारा फल व तरकारी को ज्यों का त्यों ठंढा करके रखना जिसमें वे बिना सड़े देश के एक भाग से दूसरे में तथा विदेशों में भेजे जा सकें व एक मौसम के फल दूसरे मौसम में मिल सके। प्रथम के दो उपायों से देश का धन बढ़ेगा तथा वस्तु छीजेगी नहीं व अन्त के उपाय से धनिकों की रसना लोलुपता का सन्तोष होगा इसके अतिरिक्त सूखी तरकारियों की उपयोगिता दिन २ लड़ाई में रसद एकत्र कराने में तथा जहाज़ी सफ़र के कारण बढ़ती जाती है। इसमें जगह की कमी होती है व वस्तुएँ प्राप्त भी होती हैं। इसी देश में इनके व्यवसायी कोट्याधीश बन गये हैं। इतना ही नहीं यहां पर भोजन पका कर टीन में विशेष प्रकार से बन्द करके चलान करने का बड़ा रिवाज बढ़ता जाता है। हेंज Heinz नाम के एक व्यापारी ने यहाँ इस व्यवसाय की बदौलत एक पुश्त में ही कई करोड़ रुपये कमा कर धर में रख लिया है यहां के अमीर दूसरों का गला काट रुपया नहीं बनाते किन्तु अपने परिश्रम व व्यापार से धन एकत्र करते हैं धन व्यापार से बढ़ता है, आढ़त, व्याज व दलाली से नहीं। अपने यहां व्यवसाय व व्यापार Commerce and industries नहीं है केवल दलाली सूदखोरी व आढ़त व बिचवइये का काम है। उदाहरण स्वरूप कलकत्ते की "मुसद्दी गीरी" का ध्यान करिये जिसमें मलाई विदेशी उड़ाते हैं देशियों को छाछ मिलती है व ऊपर से पूरी झोंकी की जोखम भी उठानी पड़ती है। यहां कितने ही प्रकार के यन्त्र भी

देखें जिनमें से एक का जिक्र यहां कर देता हूं। यह फलों को बड़ाई के अनुसार पृथक् करने का यन्त्र है एक कपड़े के टेबुल पर दौरी में भर करकोई फल जैसे सेव, नारंगी या नासपाती लाकर डाल दी जाती हैं-वहां से वे लुढ़क २ कर एक छोटे से हाथ की भांति बने हुए कटोरे में एक २ कर गिरते जाते हैं। इस कटोरे के साथ एक यन्त्र ऐसा भी है जो फल को तोल लेता है। तोल के अनुसार आप से आप विशेष कमानी घूम जाती है जिससे वह कटोरा फल को उछाल देता है। यन्त्र ऐसा है कि वह अमुक भार को अमुक दूरी पर फेंकता जाता है। उन दूरियों पर थैलियां हैं जिनमें फल गिरते जाते हैं इस भांति एक मनुष्य थोड़ी देर में हज़ारों फलों को पृथक् पृथक् कर लेता है। इस प्रकार से छांटने में भूल की गुञ्जाइश ही नहीं है। और काम भी सफाई व शीघ्रता से होता है। इसी भांति फल सुखाने का यन्त्र है। इसमें फल एक कोठरी में काट कर थालियों में रख कर यन्त्र द्वारा भेजे गये हैं। कोठरी में विशेष प्रकार से सुखाई हुई हवा प्रविष्ट की जाती है जो फलों में से केवल जलांश खींच लेती है। अब किस फल में से कितना जलांश निकालना चाहिये यह रसायन शास्त्र द्वारा निश्चित होता है। इस प्रकार विशेष फल या तरकारी में से उतनाही जल निकाला जाता है जितने के निकालने से फल या तरकारी खराब न हो। सूर्य की किरणों से सुखाने में स्वाद में फर्क पड़ जाता है, बाजी २ वस्तुएँ खराब हो जाती हैं, रंग भी बदल जाता है पर इस भांति से इसमें कुछ भी फर्क नहीं पड़ता। हालैंड के गृह में जावा, सुमात्रा की भिन्न २ उन्नतियों का दिग्दर्शन कराया गया है। कृषि व जलशक्ति का यहां विशेष प्रदर्शन है।

होनोलूलू गृह में भिन्न २ प्रकार की मछलियां जीवित कुण्डों में दिखाई गई हैं। ऐसे २ विचित्र रंग की मछलियां हैं कि यदि उनके रंगों का चित्र बनाना हो तो चितेरे को अच्छा परिश्रम करना पड़े। यह देखने ही योग्य है।

तुरकी गृह में फारसी गलीचों की अच्छी दुकान एकत्र है। यहां अच्छे २ गलीचे देखने में आये।

जापानियों ने अपना भवन निराला ही बनाया है। पगपग पर जुआचोरी व धोखेबाजी व जुवे की बहार है। मैंने भी एक जगह फंस कर ३) रु० खोये।

श्याम का गृह अभी बन रहा है। मैं उसे नहीं देख पाया। बाहर से बड़ाही सुन्दर लगता है।

इनके अतिरिक्त तमाशेगाह से सम्बन्ध रखनेवाली एक वस्तु का वर्णन यहां और करना है।

बच्चों के सेने का घर Infant incubator यह बड़ाही शिक्षाप्रद तथा उपयोगी तमाशा है। इसे तमाशा कहना भूल है। इसका उपयुक्त नाम विज्ञानशाला है। अपने देश में जब बच्चे समय के पूर्व पैदा हो जाते हैं तो वे बहुधा मर जाते हैं। उनके फेफड़े तथा कलेजे में आवश्यक शक्ति न होने के कारण वे भली भांति रुधिर शुद्ध नहीं कर सकते। यह उनकी मृत्यु का एक प्रधान कारण होता है। आपने नव-जात बालक को नीला पीला पड़ते देखा होगा। अपने यहां भूत प्रेत की बाधा पूतना डाकनी के क्रोध के नाम से पुकारी जाती है व यथेष्ट उपचार न कर मूखों से झड़ाने फुकाने व राखी गंडे बांध विचारों की जान ली जाती है। मैंने पांच सात बालकों को अपने घरमें ही इसी प्रकार मुरझाते देखा है। इस देश में भी ऐसे बालक कोई १४ फी सैकड़े बचते हैं। किन्तु इस संस्था द्वारा जितने बालकों की देख भाल होती है उसमें से ८४ फी सैकड़ा अब तक बचे हैं।

इस संस्था का प्रधान स्थान न्यूयार्क है किन्तु ४ शाखायें भी इसकी हैं। यहां नवजात

बालक जनमतेही लाये जाते हैं। यहां आते ही उनकी परिक्षा होती है फिर साफ करके वे एक विशेष शीशे के सन्दूक में रक्खे जाते हैं जिसमें साफ व नर्म कपड़ा बिछा रहता है। इस सन्दूक में विशेष युक्ति से सर्वदा सम ताप रक्खा जाता है। व विशेष यन्त्र द्वारा उत्तम साफ आक्सिजन युक्त वायु का प्रवेश होता है जिसमें बालक को सांस लेने में दिक्कत न हो। हर बालक के फेफड़े की शक्ति के अनुसार हवा में आक्सिजन मिलाई जाती है। ठीक समय व अवसर पर उत्तम परिक्षा की हुई स्त्रियों का दुग्ध ठीक परिमाण में इन्हें पिलाया जाता है। बस यही इनको बचाने का उपाय है। बालकों के जीवन का मुख्य यन्त्र साफ हवा, साफ वस्त्र, शुद्ध दूध समय व अवसर पर पिलाना मात्र है। अब आप उपर्युक्त विवरण से अपने यहां के नरकरूपी सौरी घर का मिलान कीजिये जहां गन्दे कपड़े, गन्दी हवा टूटे फूटे गृह में सबसे गन्दी कोठरी व उस पर दुर्गन्धयुक्त अत्यन्त मलीन वस्तुओं का धुआं होता है। मैंने अपने घर में सौरी देखा है। एक बार अपनी पत्नी से हंसी में मैंने कहा भी था कि तुम लोग राक्षसी हो कि देवी जो इस नरककुण्ड में से जीती बच कर निकलती हो। मुझे दो दिन भी इस में रहना पड़े तो मैं अवश्य बीमार पड़ जाऊँ। अपने देश में भयानक शिशु मृत्यु की संख्या के लिये सौरी घर व स्त्रियों की मूर्खता ही प्रधान कारण है।

इस तमाशे घर में इस समय आठ बालक थे सभी समय के पूर्व पैदा हुए थे। सब से छोटा इस महीने में पैदा हुआ था। वह यहां १४ दिन से था। उसका भार केवल ३० आऊंस अर्थात् १५ छटांक था यह देखने में एक चूहे के बराबर था। इन देशों में विज्ञानवेत्ता एक ओर नाना प्रकार से जीवनवृद्धि व धनवृद्धि में लगे हैं व दूसरी ओर अस्त्र-शस्त्र बना हत्या व धन नाश के उपाय भी करते जाते हैं जिसमें लीप पोत लेखा बराबर रहै।

इस प्रदर्शिनी को देखनेवाला बिला इस परिणाम पर पहुंचे नहीं रह सकता कि इस देश के निवासियों में अर्थात् पाश्चात्य सभ्यता में कामोत्तेजक वस्तुओं की बड़ी प्रधानता है। यहां पग पग पर नाना प्रकार से स्त्रियों की सुन्दरता का दृश्य दिखाया गया है। कोई तमाशे की जगह अथवा प्रदर्शिनी ऐसी नहीं है जिसमें इस अंग की पूर्ति न हो। इतने विषयासक्त होने पर भी वे देश क्यों इतनी उन्नति कर रहे हैं यह समझ में नहीं आता। इसी तमाशेगाह में सैकड़ों ऐसी जगहें हैं जिनमें स्त्रियों का रूप यौवन नहीं किन्तु अंग प्रत्यंग देखने का भी बड़ा प्रबन्ध है।

इस प्रदर्शिनी के बनाने का विचार प्रथम ही मि० आर० बी० होल R. B Hole के हृदय में उठा था जो इस समय इसके उपप्रधान हैं। यह विचार १६०४ में हो उठा था। १६०६ में इसके लिये एक विशेष विधान बनाने के लिये सानफ्रेनसिसको की ओर से वाशिंगटन से प्रार्थन की गई थी। १६०६ में इसके लिये २५०० प्रतिनिधियों से जो व्यवसाय संस्था के प्रतिनिधि थे पत्र द्वारा सम्मति पूछी गई। उन्होंने एक स्वर से उसके होने के पक्ष में सम्मति दी थी। इसके उपरान्त ७ दिसम्बर १६०६ को महती सभा हुई जिसमें सानफ्रानसिसको निवासियों ने इस कार्य के लिये ४०,६८,००० डालर का चन्दा किया। १५ फरवरी १६११ को राष्ट्रपति टाफ्ट ने इस विधान पर अपने हस्ताक्षर किये। १६११ को जुलाई मास में इसके लिये जगह नियुक्त हुई व १४ अक्तूबर १६११ को राष्ट्रपति टाफ्ट ने जमीन खुदाई का कार्य प्रारम्भ किया। प्रथम यन्त्रशाला भवन का कार्य ७ जनवरी १६१३ को प्रारम्भ हुआ और भवन १० मार्च १६१४ को तैयार हो गया।

इस प्रदर्शिनी ने ६३५ एकड़ जगह छेकी है। यह सानफ्रानसिसको की खाड़ी के दक्षिणी

छोर पर बनी है। यह ठीक स्वर्णद्वार Golden gate के भीतर है। कुल जगह २॥ मील लम्बी व आधी मील चौड़ी है। इसके दोनों बगल में सरकारी किले हैं। खाई के पार ऊँची २ पहाड़ियां नीचे से ऊपर तक घास व वृक्षों से हरी भरी हैं। प्रदर्शिनी के पीछे सानफ्रान्सिस्को के नगर की ऊँचान है जिसने इस प्रदर्शिनी को एक भांति से प्राकृतिक रंगशाला बना रक्खा है।

प्रदर्शिनी ३ भागों में विभक्त है। बीच का प्रधान भाग ११ महलों से सुसज्जित है। पश्चिम का किनारा प्रधान २ विदेशों के भवनों तथा पशुशाला से युक्त है और पूर्वीय भाग तमाशगाह से भरा है। यह प्रदर्शिनी इस समय ५ करोड़ डालर अर्थात् १५ करोड़ की लागत की है। इसमें से ७५,००,००० डालर सानफ्रान्सिस्को नगर ने दिया है। इसके सिवाय कैलीफोर्निया प्रान्त ने ५०,००,००० और फ्रान्सिस्को नगर ने ५०,००,००० विशेष कम्पनी के कागज़ द्वारा दिया है। ८००००० भिन्न २ प्रान्तों द्वारा प्राप्त हुआ है। अपना २ भवन निर्माण करने में कैलिफोर्निया के जिलों ने ३०,०,०००० दिये हैं। १००००००० भिन्न २ कनशेशनों में लगा है। विदेशी राज्यों द्वारा ५०,००,००० और विशेष व्यक्तियों द्वारा अपनी २ वस्तुओं के प्रदर्शिनी में ६५००००० लगा है। ये अन्तिम बातें इस प्रदर्शन की महत्ता दिखलाने के लिये लिखी गई हैं।

पदार्थ और उस पर कुछ विचार।

[लेखक—श्रीयुत श्रीधर बाजपेयी।]

अत्यंत प्राचीनकाल से मनुष्य पदार्थ की उत्पत्ति और उसकी बनावट पर विचार करते चले आरहे हैं। हमारे यहां के प्राचीन विद्वानों का यह मत था कि वे केवल दो वस्तुएँ हैं जिनसे कि सारी अन्य वस्तुएं उत्पन्न हो सकती हैं अर्थात् प्रकृति और पुरुष। आजकल यही मैटर (Matter) और एनर्जी (Energy) के नाम से पुकारी जाती हैं। डाल्टन साहब ने अठारहवीं शताब्दी में पदार्थ की बनावट पर अपनी गवेषणा प्रकाशित की और यही सिद्धान्त वर्तमान रसायन-शास्त्र की एक बड़ी कुञ्जी है। इससे यह न सोचना चाहिये कि इसके पहिले किसी ने यह बात नहीं सोची थी। यूरोप के विद्वानों का यह विचार है कि डाल्टन के पहिले ग्रीक के कुछ तत्वज्ञानियों (Philosophers) ने इसके विषय में कुछ अनुसन्धान किया था, इनमें से मुख्य २ डिमीट्रिअस (Demetrius), ल्यूसिपस (Leucippus), और ल्यूक्रीटिअस (Lucretius) हैं परन्तु वास्तव में सब से पहिले भारत के प्रसिद्ध दार्शनिक और वैशेषिक शास्त्र के कर्ता कणाद मुनि ने ही यह बात सोची थी। इनका यह मत था कि पदार्थ बहुत छोटे २ टुकड़ों का बना होता है जो न बदलते हैं, न नष्ट होते हैं और न उनके टुकड़े हो सकते हैं। इसी बात को डाल्टन साहब ने इस प्रकार प्रकाशित किया :—

(१) पदार्थ ऐसे छोटे २ टुकड़ों या परमाणुओं के बने होते हैं जिनके टुकड़े नहीं हो सकते।

(२) एक ही तत्व के अणुओं की बनावट और भार एक ही होता है।

(३) भिन्न २ तत्वों के अणु भिन्न २ होते हैं और उनकी प्रकृति भी भिन्न २ होती है।

(४) कई तत्वों के अणु मिलकर एक पदार्थ बनाते हैं।

तत्वों के इन अणुओं का मेल भी नियमानुसार होता है।

डाल्टन साहब या और प्राचीन विद्वानों के मत से यह स्पष्ट है कि ये परमाणु विभाजित नहीं हो सकते। परन्तु उनके पीछे के आविष्कारों ने सिद्ध कर दिया कि अणुओं के भी टुकड़े हो सकते हैं। प्रोफेसर जे० जे० टामसन (Professor J. J. Thomson) ने जो केम्ब्रिज में "कवेंडिश पदार्थ प्रयोगशाला" (Covendish Physical Laboratory) के प्रधान अध्यापक हैं अपने आविष्कारों में अणुओं के टुकड़े होना सिद्ध किया है। जब वे भिन्न २ तत्वों के बीच से जो भाफ़ (gas) के रूप में रहते हैं विद्युत्-धारा प्रवाहित कर रहे थे तब उन्हें इस बात का पता लगा था।

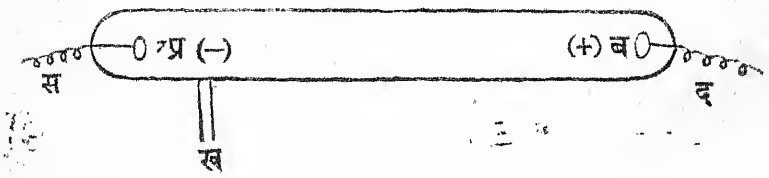

बिजली दो प्रकार की मानी गई है। एक पाज़िटिव (+) और दूसरी निगेटिव (—) है। जिस प्रकार इन विद्वानों ने अपने आविष्कार किये उसका वर्णन इस प्रकार है। वे एक कांच की नली लेते हैं जिसका मुंह दोनों ओर बन्द रहता है। मुंह बन्द करते समय प्लैटिनम धातु के दो तार स और द जिनमें अ और ब इसी धातु की फुल्लियां लगी रहती हैं, रख देते हैं। फिर इन दोनों तारों को रमकफ साहब के बनाये हुए विद्युत्-कोष से मिला देते हैं। फिर ख मार्ग से नली के भीतर की सब हवा खींच लेते हैं और थोड़ी सी गैस जिसे काम में लाना होता है भर देते हैं। जब बिजली की धारा निगेटिव अ से पाज़िटिव ब की ओर दौड़ती है तब भिन्न २ गैसों से भरी नलियों का भिन्न २ रंग देख पड़ता है अर्थात् किसी का हरा, किसी का बैंगनी इत्यादि। पहिले सर विलियम क्रुक्स (Sir William Crooks) ने यह बात सिद्ध की थी कि जब बिजली अ से ब को जाती है तो अ से अत्यन्त सूक्ष्म परमाणु जो निगेटिव (—) विद्युत्-शक्ति से भरे होते हैं ब की ओर जाते हैं। इनकी गति बड़ी वेगवती होती है। क्रुक्स साहब के मतानुसार इनकी गति प्रायः बीस हज़ार मील प्रति सैकड़ा होती है। अध्यापक टामसन साहब ने इन परमाणुओं के भार का पता लगाया। तब तक हाइड्रोजन या अभिद्रवजन गैस के अणु सब से छोटे और हलके माने जाते थे। ये इतने छोटे होते हैं कि यदि १२ करोड़ ७० लाख अणु एक रेखा में रक्खे जायँ तो वह रेखा केवल १ इञ्च लम्बी होगी। टामसन साहब ने यह पता लगाया कि यह हाइड्रोजन का एक परमाणु इन बिजली के भरे हुए टुकड़ों से प्रायः दो हज़ार गुना अधिक भारी होता है। अब यह सोचा जा सकता है कि इन टुकड़ों का परिमाण क्या है। टामसन साहब ने इन टुकड़ों का नाम इलेक्ट्रान रक्खा है और हम भी इसे अब इसी नाम से पुकारेंगे।

इससे प्रत्यक्ष ज्ञात होता है कि पुराने और नये विचारों में कितना अन्तर पड़ गया। पहिले ये विचार थे कि भिन्न तत्वों के अणु भिन्न होते हैं और उनकी खासियतें दूसरी होती

हैं। अब यह माना जाता है कि सब तत्वों के अणु इन्हीं इलेक्ट्रानों से मिलकर बने हैं। दो भिन्न तत्वों के अणुओं में अन्तर केवल इतना है कि एक में इलेक्ट्रानों की संख्या कुछ अधिक है और एक में कुछ कम। एक में वे एक प्रकार से स्थित हैं और दूसरे में दूसरे प्रकार से।

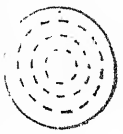

यदि हम एक अणु को एक गोले के बराबर समझ लें तो उसके अन्दर के इलेक्ट्रान इन बिन्दुओं की भांति होंगे। इस प्रकार एक अणु के कम या अधिक इलेक्ट्रान हो सकते हैं। यदि हम इसके कुछ इलेक्ट्रान खींच कर इसे ह के रूप का कर दें तो यह दूसरे तत्व का अणु हो जायगा क्योंकि इसके भीतर के इलेक्ट्रानों की संख्या और स्थान बदल गया।

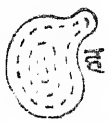

इस आविष्कार पर लोगों ने यह प्रश्न करना प्रारम्भ किया कि यदि यह सत्य है तो हमको एक तत्व को दूसरे तत्व में बदल देने में समर्थ होना चाहिये। सर विलियम रैमज़े (Sir William Ramsay) ने यह करके दिखला दिया। उन्होंने कापर सल्फेट (नीला तूतिया) का लीथियम नामक तत्व बना दिया। सिलिकन, ज़रकलूनियम टिटैनिअम नाम के तत्वों को शुद्ध कोयला बना दिया। रेडियम आजकल पृथ्वी में सब से मूल्यवान पदार्थ है। यह अभीतक केवल ४ ग्राम मिला है जिसका मूल्य कई करोड़ रुपया आंका जाता है। जब इसकी विभाजन क्रिया प्रारम्भ होती है तो इसके अणुओं के इलेक्ट्रानों में अन्तर पड़ना प्रारम्भ होता है और साथ ही साथ दूसरे तत्व बनते जाते हैं, अपनी पांच अवस्थाओं के बाद सीसा रह जाता है।

चाहे ये बातें अभी पदार्थ विद्या की प्रयोगशाला की नलियों और दीवालों के बाहर नहीं निकली हैं तो भी लोग उन अन्तिम अवस्थाओं का विचार कर सकते हैं जब ये बाहर आवेंगी क्योंकि प्रत्येक आविष्कार इसी प्रकार प्रारम्भ होता है। यदि इन विद्वानों ने अपने कार्य में सफलता पाई तो एक दिन वह होगा जब एक बड़ी तादाद में एक तत्व से दूसरा तत्व बनेगा। जब लोहे से सोना और सीसे (Lead) से रेडियम निकलेगा।

हिन्दी और बराड़।

[लेखक—श्रीयुत मुन्शी देवीप्रसाद।]

जो महाशय हिन्दी भाषा को सारे ही हिन्दुस्थान और सब ही हिन्दुओं की मातृभाषा ख़्याल करते हैं वे मेरी रामकहानी को ध्यान देकर सुनें। मैं दो ढाई महीने से एक इतिहास-सम्बन्धी काम के लिये सफर कर रहा हूं। मालवे और निमाड़ तक तो मैंने देखा कि हिन्दू लोग हिन्दी बोलते हैं। मुसलमानों को मैं अलग रखता हूं क्योंकि वे तो सब ही स्थानों में हिन्दी और उनके पढ़े लिखे लोग उर्दू बोलते हैं। यहां हिन्दुओं से मेरा प्रयोजन है इसलिए मैं उन्हीं की बोली के बाबत कहता हूं।

बुरहानपुर दक्खन में हिन्दी और मरहठी बोली का सीमाप्रान्त है। यहां के हिन्दू जो मरहठे नहीं हैं और जिनको मरहठे जांगड़े जांगड़े कहते हैं हिन्दी बोलते हैं। उस हिन्दी का कुछ नमूना भी बताये देता हूं।

मैं वहां तेलियों की बाड़ी में ठहरा था जहां पानी का नल था जो रात दिन कभी बन्द नहीं होता था। इसलिए बहुत लोग नहाने धोने पानी पीने और भरने को आते थे। कोई २ स्वार्थी मनुष्य टोंटी खुली भी छोड़ जाते थे। एक दिन मैंने कई लड़कों को यह कहते सुना कि "टोंटी तो कोई साला खोल गया बिचारी भोली ढाली बामनी का नाम हो गया कि वह टोंटी खुली छोड़ गई।"

मैंने खयाल किया कि यह लड़के मुसलमान होंगे क्योंकि बेपढ़े मुसलमान मुसलमानियें और उनके लड़के बाले ऐसी हिन्दी बोला करते हैं मगर फिर सोचा कि मुसलमान नहीं हिन्दू हैं। मुसलमान होते तो "भोली ढाली" नहीं बोलते "भोली भाली" बोलते। दूसरे एक बामनी के वास्ते उनको इतना तरस भी नहीं आता। मैं अपना शक मिटाने के लिये उनके पास गया तो वे लंगोट लगाये नहा रहे थे जिससे उनकी जात पूछनी पड़ी क्योंकि धोती पाजामा पहिने नहीं थे। इधर हिन्दू मुसलमानों की यही पहिचान है। उन्होंने अपनी जाति राजपूत, सुनार, कायस्थ और ब्राह्मण बताई जिससे उनका हिन्दू होना साबित होकर यह अचम्भा हुआ कि हिन्दी की इस अन्तिम सीमा पर यहां के हिन्दू कैसी सीधी और सरल हिन्दी बोलते हैं।

इससे भी और मज़ेदार नमूना यह है। टोंटी खुली रहने के बाबत तो मैं पहिले लिख ही चुका हूं। उससे अकारथ भी पानी गिरता था उसको देखकर मेरे साथियों का दिल बहुत दूखता था जो मारवाड़ की निर्जल भूमि के रहनेवाले थे और इससे वे झट जाकर टोंटी बन्द कर देते थे परन्तु टोंटी कुछ ढीली थी बन्द कर देने पर भी कुछ पानी गिरा करता था। उसके वास्ते भट्ट नेनूराम जी ने जो अपने को चन्द बरदाई के वंश में बताते हैं बहुत सी गड़बड़ मचाई और तेलियों के पटेल से जाकर भी टोंटी की बात कह दी उसने आकर टोंटी निकाल ली और नल में डाट ठोक कर बन्द कर दिया। फिर तो वह बाड़ी मानों मारवाड़ की निर्जल भूमि होगई। अब जो पानी के वास्ते आता था नल को बन्द देखकर चुपचाप चला जाता था और हमको भी दूसरे नल से पानी मँगाना पड़ता था।

एक दिन भट्ट जी जैसा एक जले तन हिन्दू आया और बड़बड़ाता हुआ जाते जाते एक ऐसा फ़िकरा कह गया जिसको सुन कर मैं तो कुछ मुसकराया ही परन्तु भट्ट जी हँसते २ लोट गये।

वह गर्मागर्म फ़िकरा यह था "कि जो ब-पुरवाले साले मारवाड़ी ऐसे आये कि नल ही बन्द होगया।"

अब आगे बीती सो सुनिये। बुरहानपुर से हम खामगाम और खामगाम से महकर गये। वहां जो शामत आई तो लोनार के पुराने पौराणिक तीर्थों और देवस्थानों के बखान सुनकर जी लहराया और वहां कुछ ऐतिहासिक छबियां भी बताई गई थीं जिनकी हमको तलाश थी। एक बैल गाड़ी भाड़े की और पहर रात गये महकर से निकले। सड़क नहीं थी। मेह बरस गया था। रास्ता कीचड़ पानी में और चांद बादलों में छिपा हुआ था। ठंढी हवा चलती थी। इन सब पर तुर्रा यह था कि गाड़ीवाला मरहठा था। हिन्दी नहीं जानता था और हम उसकी बोली नहीं समझते थे उससे योंहीं गुल खप होते चले जाते थे। आधी रात तक दो कोस गये होंगे कि उसने अचानक रास्ता छोड़ कर बैलों को मोड़ा और एक ऊजड़ जंगल की तरफ हांकने लगा। उससे बहुतेरा सिरमारा कि तू कहां जाता है रास्ता तो उधर रह गया मगर उसने कुछ न सुना। और वह जो चिल्ला चिल्ला कर कुछ कहता भी, तो हम न समझते लाचार होकर चुप हो जाते। आध कोस चल

कर दूर से बाजे की आवाज़ आई, कुछ उजाला भी दिखाई दिया और बहुत से आदमियों की भीड़ भी देख पड़ी, उसने वहां पहुंच कर गाड़ी छोड़ दी और बैलों को एक खूंटे से बांध कर उस भीड़ में अदीठ हो गया।

अब हम हैरान हैं कि कहां जाते थे और कहां आगये? क्या यही लोनार है? वह तो महकर से ७ कोस पर बताया जाता था क्या इधर के इतने छोटे कोस हैं? हम तो इधर अपने दिल में यह उधेड़ बुन कर रहे थे उधर वे लोग भी चौंके कि ये कौन कहां से आगये और बाजा बंद करके हमारी गाड़ी के गिर्द आ झूमें और अपनी अनगढ़ बोली में कुछ बकवाद करने लगे। मैंने इशारे से पूंछा कि यहां क्या हो रहा है और हमारा गाड़ीवाला कहां गया। इसके जवाब में उन्होंने जो कुछ कहा उसमें लग्न शब्द से हम यह समझे कि यहां विवाह है और यह भीड़ बरात की है। इस बरात में महकर के दो एक मुसलमान भी थे। एक ने हमारे पास आकर बड़ी मीठी हिन्दी बोली में पहिले तो हमारा हाल पूछा और फिर उस मरहठे गाड़ीवाले को बदमाश बता कर कहा कि "वह जात का कनबी है और यह गांव भी कनबियों का है। गणपुरा नाम है। आज यहां शादी है। यह भीड़ दोनों तरफ के कनबियों की है। आपका गाड़ीवाला भी इन्हीं में जा मिला है। मैं पहिचानता नहीं हूं नहीं तो साले को पकड़ लाता। ये मरहठे हमसे बहुत डरते हैं। पिटे बग़ैर काम नहीं देते यह इनकी ख़ासियत है। आप इनको नहीं जानते हैं जिससे वह आपको छोड़ कर चला गया। अब देखिये कब तक आपको उसका रास्ता देखना पड़े।"

वह तो यह कह कर चला गया क्योंकि ताशेवाला था उसको ताशे बजाने थे और सब लोग भी जाकर ज़मीन पर अपनी २ जगह बैठ गये, गाना होने लगा, भट्टजी गाने के भी रसिया हैं। समझ में तो कुछ भी नहीं आता था तो भी अहा हा हा! करते हुए उस मूर्खमंडली में जा विराजे। अब वह गाड़ीवान आया और बैलों को भी खोल कर ले गया। मैंने अपने साथ के एक रजपूत को दौड़ाया कि जहां जावे वहां से पकड़ लावे। अब गाड़ी पर मैं अकेले रह गया। चपरासी नीचे बैठा २ पहिले ही सो गया था।

कुछ देर पीछे नंगे मुंह और नंगे सिरवाली मिस्सी से काला मुंह किये हुए काली २ चुड़ैल जैसी कुछ मरहटने जिनकी सारस सरीखी टांगें भी नंगी ही थीं गाड़ी के पास होकर निकलीं। मैंने उनको देख कर अपने दिल में कहा कि इब्नबतूता अपने अरबी सफ़रनामे में मरहटनों को हिन्दुस्तान भर की महलाओं से अच्छी बताता है। क्या ये वही मरहटनें हैं या इनकी भी इस कलिकाल में कुछ काया पलट हो गई है। खैर मैंने एक चुलबुली सी मरहटन से पूछा कि यहां कोई मारवाड़ी भी है। वह न जाने क्यों मारवाड़ी का नाम सुन कर हंसी और एक आदमी की तरफ उंगुली उठा कर बोली कि "ते मारवाड़ी चांगला मारवाड़ी" वह मारवाड़ी भी मानों उसकी बोली पर लगा हुआ था सीधा मेरे पास आया और बोला आप कहां रहते हो? मैंने कहा जोधपुर रहता हूं, लोनार जाता हूं, परन्तु गाड़ीवान यहां अधबीच में छोड़ कर न जाने कहां चला गया है। उसने कहा मैं उसको जानता हूं। वह राखेड़ी का कनबी है, रायभान नाम है। भूखा था बरात उसी की जात की है यहां रोटी खाकर बैलों को अपने गांव में चराने ले गया है। अभी आजायगा नहीं तो मैं जाकर पकड़ लाऊंगा।

प्र०–तुम कौन हो? कहां रहते हो? यहां क्या करते हो?

उ०–मैं गौड़ ब्राह्मण मारवाड़ के परगने परबतसर का रहनेवाला हूं, जगन्नाथ नाम है,

महकर में हलवाईपना करता हूं; यहां मेरी भैंसें चरती हैं उनका दूध लेने को रोज़ सांझ पड़े आता हूं और तड़के ही दूध लेकर चला जाता हूं जिसके खोये की मिठाई बनाकर बेचता हूं।

प्र०–भला तुम मिठाई में खांड़ कैसी डालते हो?

उ०–मरहठों के लिये तो मोरस और मारवाड़ियों के लिये बनारस। मोरस १) की ४ सेर और बनारस २॥ सेर आती है। मोरस की मिठाई २॥ सेर और बनारस की २ सेर देता हूं।

इतनी बातचीत होकर मुझे नींद आगई। पिछली रात को कुछ गड़बड़ हुई और मेरी आंख खुली तो क्या देखता हूं कि जगन्नाथ गाड़ी हांक रहा है और वह महहठा पीछे २ दौड़ रहा है। अब हमारे आदमी उसको खूब दबाते और धमकाते हैं और वह बड़े मियां बड़े मियां कर रहा है।

मैंने जगन्नाथ से कहा कि तुमने बहुत मिहनत और मिहरबानी की अब इसको गाड़ी पर बैठने दो अब यह सीधा हो गया है और कह दो कि तड़के ही लोनार पहुंचादे। चांद उस वक्त तक निकला हुआ था क्योंकि पूनों की रात थी मैं अपने दिल में कहता था कि रात तो यों कटी, देखिये दिन कैसे कटता है और किन २ मरहठों से पाला पड़ता है परन्तु ऐसा न हुआ क्योंकि यहां मारवाड़ी बहुत थे। पुलीस के अफसर एक मुसलमान सज्जन थे उन्होंने चल कर आबासाहिब नाम के एक विद्वान् मरहटे ब्राह्मण से मिलाया। ये हिन्दी बोल जानते थे। इन दोनों भलेमानसों ने मुझे सब तीर्थ और मंदिर दिखाये। आबासाहिब ने सबका हाल कहा और मुझको बहुत अनुग्रहीत किया।

अब मुझे औरंगाबाद जाना है। रेल यहां से २५ कोस जालने में है। २।३ दिन और बैलगाड़ी में जाना होगा। इसलिए मैंने मारवाड़ी की गाड़ी भाड़े की है।

मारवाड़ी बराड़ में बहुत हैं और उनके आश्रित ब्राह्मण भी। वे यहां आपस में मारवाड़ी और मरहठों से मरहठी बोलते हैं। हिन्दी की उनको न कभी पहिले परवा थी न अब है केवल अपने ब्याज बट्टे से काम है जो यहां मारवाड़ से दूना ड्योढ़ा मिलता है वे लिखते भी ऐसा हैं जिसके वास्ते उन्हीं के देश में यह कहावत चली हुई है कि "आला बंचे नहीं आपसूं सूखा बंचे नहीं भणियां रावा पसूं"। इस मरहटी बोली की लंका (बराड़) में हिन्दी की झालर पीटनेवाले तो मुसलमान ही हैं और कमनसीबी से वे ही आजकल के सुलेखकों के क्लिष्ट और कष्टसाध्य लेखों में बदनाम हैं, थोड़े उर्दू बोलनेवाले और उर्दू के पक्षपाती उसी कैंडे के मुसलमानों के लेखों को देख कर वे सुलेखक जी सारे ही मुसलमानों पर हिन्दीद्वेषी होने का दोष लगाते हैं। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है मुसलमान यदि हिन्दी के द्वेषी होते तो ऐसे देश में जहां की बोली हिन्दी नहीं है हिन्दी नहीं फैलाते। इस देश में हिन्दी मुसलमानों ने फैलाई है हिन्दुओं ने नहीं फैलाई। मुसलमान दिल्ली से उठ कर जिन २ देशों को फतेह करते गये वहीं अपने साथ हिन्दी को भी लेते गये।

मारवाड़ी कहते हैं कि हमारे बाप दादे जब पहिले पहिल बराड़, तैलिंग और मद्रास वग़ैरः में व्यापार करने को आये थे तो मुसलमानों से हिन्दी में बातचीत करके रस्ता चलते थे और काम चलाते थे। जिस गांव में मुसलमान नहीं मिलते थे वहां उनको बहुत दिक्कत उधर की भाषा समझने में पड़ती थी।

अब जो महाशय हिन्दी को सारे हिन्दुस्तान की बोली बनाना ही चाहते हैं तो वे पहिले यहां पधार कर मरहठी सीखें और मरहठों को हिन्दी सिखाकर उनके द्वारा हिन्दी का प्रचार करें। इसमें उनको मुसलमानों से

बहुत मदद मिलेगी किसलिए कि यहां सरकारी दफ़्तर मरहठी में है और मरहठी मोड़ी अक्षरों में लिखी जाती है या बालबोधी में। बालबोधी नागरी लिपि का दूसरा रूप है। मुसलमान भी बहुधा हिन्दी उसी लिपि में लिखते और पढ़ते हैं क्योंकि उर्दू लिपि यहां नहीं चलती है।

इसके सिवाय एक बात यह भी सुभीते की है कि बराड़ अब मध्यप्रदेश में जोड़ दिया गया है जहां हिन्दी और नागरी लिपि के दफ़्तर हैं और वहां से कानून और गज़ट हिन्दी भाषा और नागरी लिपि के छपे हुए बराड़ में आते हैं जो नौकरी और कानूनी पेशा करनेवाले मरहठों को पढ़ने पड़ते हैं। और इस प्रसंग से बराड़ के प्रत्येक प्रान्त और शहर तथा क़सबे में दो चार दस बीस मरहठे हिन्दी के जाननेवाले मिल सकते हैं। इन सब बातों से इस देश में हिन्दी के जल्दी फैल-जाने की आशा है पर इसके वास्ते पहिले कुछ निःस्वार्थ हिन्दी-हितैषियों का आना, रहना और प्रयत्न करना ज़रूर है, दूर बैठे हुए लेखों और लेक्चरों के बाण फेंकने से कुछ होना नहीं है।

दूसरी बात हमारे सौभाग्य की यह भी है कि बराड़ के एक तरफ इधर मध्यप्रदेश में हिन्दी और उधर दूसरी तरफ़ निजाम राज्य में उर्दू दफ़्तर हैं। हिन्दी और उर्दू बोली में लिपि के सिवाय और कोई भेद नहीं है। इन दोनों हिन्दीहितैषियों के मेल जोल और जतन से बराड़ में हिन्दी अच्छी तरह से फैल सकती है।

मरहठवाड़ी में हिन्दी फैलाने से हमारी यह मन्शा नहीं है कि मरहठी उठ जावे और न वह हमारे उठाने से उठ सकती है हां इतना ज़रूर चाहते हैं कि जिन देशों में अब तक हिन्दी की बोली चाली का प्रवेश नहीं हुआ है उनमें सर्वसाधारण के हित और देशी परदेशी लोगों के लिये हिन्दी का लिखना पढ़ना और बोलना भी चल निकले।

अन्त में हम अपने मारवाड़ी बनिये भाइयों से भी ऊपर लिखे गिल्ले की माफ़ी मांग कर प्रार्थना करते हैं कि जो उनको अपने बढ़े हुए व्यापार के कामों की भरमार से हिन्दी के प्रचार में अधिक समय लगाने का अवकाश न हो तो इतना ज़रूर करें कि अपने वही खाते हुंडी पुरज़े ख़त लिखत, और बीजक वग़ैरः सब हिन्दी भाषा और नागरी लिपि में लिखा और लिखाया करें। उनकी इस सहायता से हिन्दी लक्ष्मी का रूप धारण करके उनके भंडारों को अपने हितैषियों के आशिर्वादों से भर देगी।

मिश्र-बन्धु-विनोद ।

[लेखक-पं० मयाशंकर बी० ए० ।]

हिन्दी-नवरत्न के कर्ता मिश्र-बन्धु सुविख्यात लेखक हैं, आधुनिक हिन्दी संसार को उनका परिचय कराना अनावश्यक है। थोड़ा समय हुआ आपने हिन्दी-साहित्य का एक इतिहास लिखकर हिन्दी भाषा की बड़ी सेवा की है, इस ही इतिहासग्रंथ का नाम है "मिश्र-बन्धु-विनोद" अथवा "हिन्दी-साहित्य का इतिहास" तथा "कवि कीर्तन"। इस ग्रंथ के महत्वपूर्ण होने में कोई सन्देह नहीं है, बड़ी खोज और परिश्रम से १२ वर्ष में यह ग्रंथ रचा गया है।

हिन्दी साहित्य का कोई इतिहास नहीं था, इस त्रुटि को पूर्ण करने में इस ग्रन्थ ने कहां तक सफलता प्राप्त की है इसकी समालोचना फिर कभी की जायगी। इस समय केवल यह

कहना पर्याप्त होगा कि ग्रन्थ के नाम से ही विदित होता है कि वह साहित्य का इतिहास है, तथा कवियों का जीवनचरित्र भी है अथवा यह कहना चाहिये कि वह दोनों का मिश्रण है। इस समय कविकीर्तन में कुछ कवियों का जो समय लिखा है उस विषय में हम क्रमशः लिख कर पाठकों का मनोरंजन कराते रहेंगे।

आलम।

मिश्र-बन्धु-विनोद में आलम कवि का समय संवत १७६० वि० लिखा है, इसका कारण यह लिखा है कि शिवसिंह ने इस कवि का बनाया हुआ औरंगज़ेब के द्वितीय पुत्र मौअज्ज़म की प्रशंसा का एक छन्द लिखा है। यह शाहज़ादा संवत् १७६३ में जाजऊ की लड़ाई में मारा गया था, इससे ज्ञात होता है कि यह कवि औरंगज़ेब के समय का है।

मिश्र-बन्धुओं ने केवल एक ही छन्द के आधार पर इस कवि का समय निर्धारित कर दिया है, हम इस छन्द को नीचे लिखे देते हैं:—

जानत औलि कितावनि को
जे निसाफ के माने कहे हैं ते चीन्हें।
पालत हौ इत आलम को
उत नीके रहीम के नाम को लीन्हें॥
मौज़मशाह तुम्हें करता
करिबे को दिलीपति हैं वर दीन्हें।
काबिल हैं ते रहैं कितहू
कहां काबिल होत हैं काबिल कीन्हें॥

ऐसा विदित होता है कि हिन्दी-साहित्य के इतिहास-रचयिता महाशयों ने आलम का कोई ग्रंथ देखने का कष्ट नहीं उठाया क्योंकि "विनोद" में जो ग्रंथ आलम के बनाये हुए लिखे हैं उनमें "माधवानल कामकंदला" का भी नाम है। इसी ग्रंथ में कवि ने अपने समय का पूरा परिचय दिया है, और ग्रंथ के निर्माण करने का कारण भी लिखा है।

इस ग्रंथ के इन छन्दों से स्पष्ट विदित होता है कि आलम औरंगज़ेब के समय में नहीं था किन्तु उसका प्रपितामह अकबर बादशाह का समयवर्ती था:—

अदली* कहौं बखानि,
सुजस प्रगट चहुं खंड में।
विद्या अरथ निदान,
साहि अकब्बर जगत गुरु॥ १॥

जगपति राज कोटि जुग कीजै।
साहि जलाल† छत्रपति कीजै॥
दिल्लीपति अकबर सुलताना।
सप्त दीप में जाकी आना॥
... ...
धरमराज सब देस चलाना।
हिन्दू तुरक पंथ दुइ आना॥
आगे नेव महाबल मंत्री।
राजा दीप टोडरमल खत्री॥
... ...
उतपति बिरह वियोग,
कहौं कथा आलम सुमति।
पुनि सिंगार संयोग,
नल कंदल कारन कहत॥१॥
सन नौ सै इक्यानव जबहीं।
कथा अरंभ कीन्ह यह तबहीं॥
... ...

ऊपर के दिये हुए छंदों से जो हमने "माधवानल कामकंदला" नामक ग्रंथ से उद्धृत किये हैं, आलम का समय ९९१ हिजरी अर्थात् संवत् १६३० तथा सन् १५७३ ई० है। ऐसे दृढ़ प्रमाणों के होते हुए केवल एक छंद के आधार पर आलम का समय १७६० वि० माननीय नहीं है। यह संभव है कि यह छंद किसी दूसरे मौअज्ज़म की प्रशंसा में कहा गया हो तथा आलम का

* न्यायी। † जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर।

बनाया हुआ ही न हो किसी दूसरे कवि की ही कल्पना हो। हमको तो यह दूसरा पक्ष ठीक मालूम होता है। शिवसिंह के लिखे हुए छंद में जो आलम शब्द आया है उसका अर्थ यदि संसार लिया जाय तो उस पद का यह आशय होता है :—

"आप इस लोक में संसार का पालन करते हो और परलोक के लिए रहीम (ईश्वर) का नाम लेते हैं।"

हमारा यह अर्थ कहाँ तक युक्तिसंगत है इसको पाठक स्वयं विचार लें। हमारी सम्मति में तो इतिहासरचयिता महाशयों का दिया हुआ संवत् ठीक नहीं है।

प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मुन्शी देवीप्रशादजी ने आलम की स्त्री शेख़ रंगरेज़िन का अकबर के समय में होना लिखा है परन्तु मिश्र-बन्धु महाशयों ने उसको नहीं माना। कदाचित् "माधवानल कामकंदला" से जो संवत् निकलता है उसको मुन्शीजी ने सप्रमाण नहीं लिखा होगा अतएव "विनोद" में शिवसिंहसरोज का दिया हुआ समय लिखा गया। हिन्दी-साहित्य के एकमात्र इतिहास में आलम से प्रख्यात कवि का समय निर्माण करने में अधिक खोज की आवश्यकता थी।

"मिश्र-बन्धु-विनोद" में आलम की स्त्री का नाम शेख़ लिखा है, मुं० देवीप्रसादजी भी ऐसा ही लिखते हैं। किंवदन्ती भी ऐसी ही है परन्तु हमको इसमें संदेह है।

१–हमारे पास आलम के कवित्त नाम की एक पुस्तक है, उसमें ४०० कवित्त हैं, उनमें किसी में आलम और किसी में शेख़ नाम आया है, उनमें कोई क्रम ऐसा नहीं है जिससे यह कहा जा सके कि इस पुस्तक में शेख़ तथा आलम दोनों के कवित्त किसी क्रम से दिये हैं। यदि शेख़ और आलम दो पृथक् व्यक्ति होते तो इस रीति से कवित्त दोनों नाम से मिले जुले न लिखे जाते, भरतपुर राजकीय पुस्तकालय में भी आलम के कवित्त की जो पुस्तक है उसमें भी इसी रीति से कवित्त लिखे हैं।

२–उक्त राजकीय पुस्तकालय में आलम कृत "दूती विज्ञप्ति" नामक एक ग्रंथ और है उसमें भी शेख़ और आलम दोनों नाम से कवित्त पाये जाते हैं।

३–काव्य-दृष्टि से भी शेख़ और आलम के कवित्त एक से ही हैं, अतएव यह एकही व्यक्ति के ज्ञात होते हैं।

४–नवमुसलिम अर्थात् जो हिन्दू मुसलमान हो जाते हैं वे प्रायः शेख़ कहलाते हैं। मुसलमानों के चार भेद हैं। शेख़, सैयद, मुग़ल, पठान। उनमें नवमुसलिम शेख़ों में ही गिने जाते हैं। आलम ब्राह्मण से मुसलमान हुए थे, अधिक संभव है कि उनकी उपाधि शेख़ ही रही हो।

हमारा विचार कहां तक ठीक है इसको हम विज्ञ पाठकों के विचार पर छोड़ते हैं।

गोप।

"मिश्र-बन्धु-विनोद" में नं० ११५ पर गोप कवि का समय संवत् १६१५ वि० लिखा है और इस कवि का महाराज पृथ्वीसिंह उरछा नरेश के यहां होना बतलाया गया है। महाराज पृथ्वीसिंह उरछा नरेश ने सं० १७७२ से १८०७ तक राज्य किया था। नहीं मालूम कि १७७ वर्ष का अन्तर होते हुए भी गोप का समय सं० १६१५ कैसे दिया गया था तो यह संवत् ठीक नहीं है या पृथ्वीसिंह के समय में होना ठीक नहीं लिखा गय है।

हिन्दी की अपील।

[लेखक-श्रीयुत गिरिजादत्त शुक्ल 'कविप्रिय'।]

प्रभुवर कर दीजै पार नैया हमारी।
सह पक्षन-विपक्षी के झकोरे न सकती॥
डगमग करती है हाय निःशक्त होके।
अय! भवभयहारी श्री खरारी बचाओ॥ १॥
बढ़कर मुझ से भी कौन होगी दुखारी।
नित तलफ रही हूं घोर तापों-तपाई॥
पल २ पर हा! हा!! ठोकरें खा रही हूं।
पर शरण न पाती हूं कहीं भी किसी की॥ २॥
बन निपट भिखारी एक कोने पड़ी हूं।
सह अहह! रही हूं यातनायें करोड़ों॥
पर रह सकती हूं क्या यहां भी प्रभो मैं।
जन सदय लगे हैं मेट ही डालने को॥ ३॥
दुर्बल दुखिया को दूर देना सहारा।
सर असगर से तो धूर में हैं मिलाते॥
कह मृतक चुके हैं आह जीती मुझे वे।
विभुवर भयहारी देख अन्धेर लीजे॥ ४॥
पर मृत इससे तो मैं न हूंगी कभी भी।
यदि यह सब मेरे पूत ही काम के हों॥
यदि यह पहिचानें आज भी दीन मा को।
तब फिर विचरूं मैं बाग में वैभवों के॥ ५॥
पर बहु इनमें हैं मुग्ध उर्दू-छटा पै।
बहु मुग्ध बुध भूले देख हा!! अंगरेज़ी॥
बहु सुत अपने औ दूसरे को न जानें।
अब अहह! करूं क्या? भाग्य को कोसती हूं ६
इन नव अंगरेज़ी-शिक्षितों की दशा तो।
यदि तनिक कहेगी शारदा ही कहेगी॥
सचमुच इतना जो दुःख मैं पारही हूं।
वह फल इन्हीं की तो कृपा का सभी है॥ ७॥
कर तनिक लिया जो पास बी० ए० इन्होंने।
फिर फुदक चले तो ऐंग्लो-वाटिका में।
किस तरह गँवारी, हा मुझे साथ लेवें।
तज कर प्यारी अंगरेज़ी-वधू को॥ ८॥
पर शरम न आती है इन्हें हा! ज़रा भी।
जब विकट घृणा से ये मुझे देखते हैं॥
निज लड़कपने में गोद मेरी पले थे।
अब यह सब बातें भूल के सर्वथा ही॥ ९॥
अब तनिक दशा तो ब्राह्मणों की निहारो।
इन परम पियारे प्राण के प्राण मेरे॥
बन मधुकर उर्दू-फारसी-कंज के ये।
नित कर छिटकाये जा रहे निर्दयी हो॥ १०॥
प्रिय सुत चिरजीवी मालवी की कृपा से।
फिर सुठि छबि देखी राज-दरबार की भी॥
पर तनिक कपूतों ने नहीं हन्त झांका।
मुझ विजित जरा की ओर आंखें उठा के॥११॥
किस तरह धरूं मैं धैर्य हे दीनबन्धो!
जब उन दिवसों की चित्त में याद आती॥
जब चमक रहा था भाग्य तारा हमारा।
जब विचर रही थी कीर्ति के कुञ्ज में मैं॥ १२॥
जब तनय हमारे सूर से सूरमा थे।
जब सुत तुलसी से वीर थे जन्म पाये॥
जब अहह! विहारी से रहे दुःखहारी।
दिन मन-मुद-कारी वे कहां हैं विधाता? १३॥
विभुवर कहिये तो पाप मैं क्या किये थी?
अब फल जिसका मैं आज यों भोगती हूं।
निज समझ घमंडी भी नहीं मैं कभी थी।
दुरगति यह मेरी हो रही तो प्रभो क्यों? १४॥
प्रभु अब विनती है आप से एक मेरी।
रवि-किरन-कृपा की शीघ्र ही भेज दीजै॥
यह सब मिट जावे संकटों का अँधेरा।
फिर हृदय-धरा में हर्ष-आलोक आवे॥ १५॥
इन सब तनयों की आंख भी खोल दीजे।
अब यह पहिचानें आज भी दीन मा को॥
फिर वह दिन आवें मोद-आमोद-दायी।
नित विलप रही हूं हा! जिन्हीं के लिये मैं॥१६॥

कड़ी समालोचना के कारण। *

[लेखक—श्रीयुत कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०।]

"आगे के सुकवि रीझि हैं तो कविताई
न तौ राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है।"
[दास]

समालोचक का यह पूज्य कर्तव्य है कि वह अपने समय के लोकसमाज में सत्साहित्य के गुणकथन एवं उसी प्रकार दूषित साहित्य के दोषोद्घाटन का कार्य तत्परता से जारी रक्खे और लोगों को भ्रम में पड़ने से बचावे। उसका यह कार्य जैसे उत्तरदायित्व का है वैसा ही यह कठिन भी है। मृत कवियों के गुण-दोषों के कथन में तो समालोचक निर्भयता पूर्वक अपने कार्य में सफलता प्राप्त करता है परन्तु जीवित कवियों की समालोचना करते समय बहुधा नैतिक बलयुक्त होते हुए भी वह अपने कर्तव्य पालन में तावत् समर्थ नहीं होता है। इसके बहुत से कारण हैं। हमारे अनेक लेखक वर्तमानकाल के समालोचकों पर इस कारण बेतरह चिढ़े हैं कि वे जीवित कवियों की समालोचना में प्रशंसा का अंश बहुत कम रखते हैं और निन्दा का अधिक। जो हो इस छोटे से लेख में यही देखना है कि समालोचकों के द्वारा जीवित कवियों पर ऐसा अन्याय क्यों हो रहा है।

मृत कवियों के समग्र काव्य के पढ़ने से उन पर जो राय क़ायम की जाती है वह प्रायः स्थिर भित्ति पर अवलम्बित रहती है। मृत कवि महाशय को साहित्य-संसार का जो कुछ उपकार करना था उसको करके वे विदा हो चुके हैं। उनकी कृति में से गुण निकाल निकाल कर समालोचक लोकसमाज को समर्पित करता है और कृतज्ञता का पाठ पढ़ाता हुआ उनका अनुकरण करने का अनुरोध भी करता जाता है। उक्त कवि के विशेष दोषों के प्रदर्शन से अब क्या लाभ है क्योंकि कवि जी के इस लोक में न होने से उनके द्वारा उनका सुधार नहीं हो सकता है परन्तु अनेक दोष ऐसे भी हो गये हैं जिन पर कुछ न कहने से उनको लोग दोष न समझ कर अनुकरणीय समझने लगते हैं इस कारण ऐसे दोषों का तीव्र प्रतिवाद भी करना समालोचक अपना कर्तव्य समझता है। केवल मानसिक बल प्रदर्शनार्थ ही वह प्राचीन कवियों की कृति में छिन्द्रान्वेषण नहीं करता फिरता है। जो हो पर जीवित कवियों की कृति की समालोचना करते समय उसको बहुत सी बातें ध्यान में रखनी पड़ती हैं। यह कवि अभी जीवित है इस कारण अपने दोषों का सुधार कर सकेगा यह विचार समालोचक को ढूंढ़ ढूंढ़ कर दोष प्रदर्शन के लिये बाध्य करता है क्योंकि उसका कार्य तो सत्साहित्य का निर्माण ही कराना है। वह ठीक उस इंजीनियर के समान है जो ज़रा भी गड़बड़ पाकर नई इमारत को गिरवा कर फिर से बनवाता रहता है जबतक कि वह अपनी यथार्थ स्थिति पर नहीं पहुंचती है और पुरानी इमारतों के गुणों का वर्णन कर उनसे लाभ उठाने का परामर्श दिया करता है। हां पुरानी इमारत में जहां कहीं जोखिम की बात होती है वहां वैसा साफ साफ कह देता है। समालोचक को इस बात पर भी ध्यान रखना पड़ता है कि जिस कवि या लेखक की मैं समालोचना कर रहा हूं वह अपने दोष किस प्रकार से दूर करेगा। यदि उक्त कवि नवीन हुआ तो उसके दोषों का वर्णन समालोचक ऐसे शब्दों में करता है जिसमें सुधार

* इस लेख में दो एक विचार Hazzlitt कृत Spirit of the age से भी लिये गये हैं। लेखक।

भी हो और उत्साह का नाश भी न होने पावे परन्तु यदि कवि हठी और दुराग्रही है तो उसी प्रकार से उसकी कविता की समालोचना करते समय भी दोषोद्भावना तीव्र स्वर में करनी पड़ती है क्योंकि अहम्मन्य होने के कारण पूरी चोट खाये बिना उस पर कुछ भी असर नहीं होता है। ऐसी दशा में जीवित कवि की कृतियों में अधिक दोषों का दिखलाया जाना कदाचित इसी कारण से हो परन्तु प्रश्न यह उठता है कि अच्छा दोषोद्घाटन तो सुधार के ख़याल से है परन्तु प्रशंसा की कमी क्यों है?

प्रशंसा की कमी के कई कारणों में से एक कारण यह भी है कि मृत कवि की अपेक्षा जीवित में स्वभावतः हमारा उतना पूज्य भाव नहीं रहता है। अपने ही समान उसमें भी कमज़ोरियां देखकर हम उसको उस आदर से कैसे देख सकते हैं जैसे कि उस मृत कवि को जिसका काव्य ही उसके विषय में हमारा सर्वस्व है?

जीवित कवि महोदय अभी न जाने क्या क्या लिखें, सम्भव है कि वह बहुत अच्छा भी हो परन्तु इसका निर्णय करनेवाली भविष्य की पीढ़ियां भी है। अभी तो कवि महाशय अपनी कवितापरीक्षा में बैठे हैं। जिन छोटी २ परीक्षाओं में उन्होंने योग दिया है वे केवल उनको पाठ याद कराने भर को थीं उसीके द्वारा उनकी थोड़ी बहुत प्रतिभा की झलक पाकर समालोचक ने कुछ गुणगान कर दिया है परन्तु अन्तिम परीक्षा जिसमें यथार्थ प्रतिभा का विकाश दिखलाना है उसका समय अभी दूर है। उसका निर्णय आगे आनेवाली पीढ़ियां करेंगी सो वर्तमान समालोचक अनधिकार चर्चा में प्रविष्ट न होता हुआ दबी ज़बान से एकाध गुण कह कर रह जाता है। दबी ज़बान इस लिए कि वह नहीं जानता है कि वर्तमान समय के कवियों की कविता २० बरस बाद कोई पढ़ेगा या नहीं परन्तु पुराने कवियों में सूर, तुलसी की भूरि भूरि प्रशंसा वह इसीलिए करता है कि उसे निश्चय है कि २० क्या १०० वर्ष के बाद भी सूर, तुलसी का वैसा ही आदर रहेगा। एक बड़े कौतूहल की बात यहाँ पर उठती है कि वर्तमान कवियों की प्रशंसा कर सकने की ज़िम्मेदारी आगे आनेवाली पीढ़ियों पर डाली जाती है। जिन हम लोगों के बीच कवि जी रहते हैं और जिनकी प्रशंसा के हम पुल बांधा करते हैं उनकी बिलकुल सलाह ही नहीं ली जाती है। वास्तव में तो हमीं को इस बात के निर्णय का स्वत्व मिलना चाहिये कि कवि कैसा है, क्योंकि हमारी रुचि के अनुसार होने ही से वह सुकवि है। जो लोग इस प्रकार की दलील उठाते हैं वे लोकप्रियता और प्रशंसा के भेद को नहीं समझते हैं। लोकप्रिय होना दूसरी बात है और प्रशंसित होना दूसरी बात है। मनुष्य लोकप्रिय होने से योग्य भी हो यह आवश्यक नहीं है। ऊँचे पद पर होने या दूषित लोकरुचि का समर्थक एवं नेता होने से भी आदमी लोकप्रिय कहा जायगा परन्तु इस कारण से वह 'प्रशंसा-पात्र' भी नहीं कहा जा सकता है। दूषित लोकरुचि के विरुद्ध होने से सालङ्कार, संस्कृत पुराणों की कथाओं के हवाले देनेवाले, शुद्ध छन्द एवं शब्दालङ्कारों से पूर्ण काव्यग्रन्थ एवं उनके प्रणेता लोकरुचि के अनुगामी होने से लोकप्रिय होंगे परन्तु इसी कारण से वे भविष्य में प्रशंसा पात्र भी माने जायँ इसको कौन कह सकता है? लोकप्रिय होना साधारण परन्तु प्रशंसा-पात्र होना महत्व की बात है। प्रशंसा स्वतः आदर करवा लेती है। उसमें कभी कमी नहीं पड़ती है और उसकी प्राप्ति के लिये किसी विशेष योग की आवश्यकता नहीं रहती है। वह सब समय, सब लोगों एवं सब देशों में समान रूप से आदर पाती है। उसमें पक्षपात की झलक भी नहीं रहती है। परन्तु यह प्रशंसा जीवितों को नहीं वरन् स्वर्गवासियों को ही प्राप्त

होती है। इसका मन्दिर समाधि पर ही बनता है। लोकप्रिय होनेवाले और प्रशंसा प्राप्त करने में यह बड़ा अन्तर है कि पहला सदा अपने नाम करने का ध्यान रखता हुआ लोकरुचि का गुलाम बनकर सरस्वती को उसी के अनुसार घुमाता फिराता है परन्तु दूसरे को अपने काम से काम है वह नाम की परवाह नहीं करता है परवाह करता है अपने काम की। "रामचरित मानस" की रचना करते समय गोस्वामी तुलसीदास रामचरित मानस में ही मग्न थे आजकल के समान वे नाम के भूखे न थे। लोकप्रिय महाशय को चार दिन के बाद लोग भूल जाते हैं परन्तु काम पर कुरबान होनेवाले की अजरा अमरा प्रशंसा होती है इसी कारण से हमारी रुचि के अनुसार सरस्वती को नचानेवाले अतएव लोकप्रिय अनेक कवियों की प्रशंसा करने के पात्र हम नहीं हैं वरन् आगे होनेवाली पीढ़ियां ही हैं। ऐसी दशा में समालोचकगण उनकी प्रशंसा में अधिक स्थान कैसे दे सकते हैं? वर्तमान समय के यथार्थ कवियों को भी इस प्रशंसा की विशेष परवाह न करनी चाहिये क्योंकि यदि वे उसके योग्य न होते हुए उसकी कामना करते हैं तो अपनी आत्मा पर स्वयं अन्याय करते हैं और यदि वे यथार्थ कवि होने से सचमुच प्रशंसापात्र हैं तो उन्हें निर्भय होकर उस समय को बाट जोहनी चाहिये जब अंतिम फैसला होगा क्योंकि उस समय प्रशंसा को उनकी चेरी बनना ही पड़ेगा।

एक बात और है जो समालोचकों का कार्य कठिन कर देती है। वह है समालोचक का कवि से परिचय। कृति देखने से जो भावना होती है कवि को स्वयं देखने से कभी कभी वह भावना बिलकुल जाती रहती है। कुछ लोगों का मत है कि समालोचक यदि कवि को न देखे हो या उसके विषय में सिवाय उसके काव्य के और कुछ न जानता हो तो बहुत अच्छा है क्योंकि इन बातों से समालोचना पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। हमारे अधिकांश समालोचक कविवृन्द से परिचित होने के कारण कभी कभी उस दोष को अपनी समालोचना में ला देते हैं। यही परिचय शत्रुता मित्रता के रूप में होने से ईर्ष्या, द्वेष अथवा चाटुपूर्ण समालोचनाओं को लिखवाता है।

दलबन्दी की चाल भी वर्तमान कवियों पर कड़ी समालोचनाएँ लिखवाने का कारण है। बहुत लोग भाषाविशेष या शैलीविशेष के समर्थक होने पर उस भाषा या शैली के विरुद्ध लिखी हुई कविता के भाव की अवहेलना करके व्यर्थ ही में उसके दोष ही दोष ढूंढ़ा करते हैं। यह बात सर्वथैव निन्द्य है।

(१) निदान सुधार के लिहाज़ से कवि की पात्रता का विचार रखते हुए समालोचक जीवित कवि की कविता में दोष अधिक दिखलाता है।

(२) जीवित कवियों में पूज्य भाव कम होने से एवं उनकी प्रशंसा करने की आगे होनेवाली पीढ़ियां के यथार्थ अधिकारिणी होने से समालोचक दबी ज़बान से उनकी प्रशंसा करता है। लोकप्रियता और प्रशंसा में भेद है।

(३) दलबन्दी एवं परिचय के कारण कभी कभी समालोचक कवि के साथ पक्षपात का बर्ताव कर जाता है।

प्रथम और द्वितीय कारणों से प्रेरित कड़ी समालोचना की शिकायत बेजा है परन्तु तीसरे कारण वश होनेवाली कड़ाई निन्द्य है। क्या समालोचक-समुदाय इस पर विचार करने की कृपा करेगा?

यद्यपि हमारे कवि अपनी कविता की कड़ी समालोचना पर नाराज़ होते हैं पर यदि देखा जाय तो वे स्वयं दूसरे कवियों की निन्दा किया करते हैं। दो एक को छोड़कर जिस कवि से मिलिये तो उसे आप आत्मप्रशंसक एवं परनिन्दक पाइयेगा। पुराने कवियों की भावपूर्ण

कविता सुनने की आशा से वहां जाना व्यर्थ है। तुलसी, सूर की वहां बातें कहां; वहां तो केवल उक्त कवि-कृत कविताएँ सुनते २ आपका चित्त उकता जायगा। यदि दैवात् प्राचीन कवि का नाम आगया तो फिर निन्दा का प्रवाह रोके ही नहीं रुकता है। हमारे ऐसे कवि लोग जब अपनी निन्दा अधिक और प्रशंसा कम पाते हैं तब आपे से बाहर हो जाते हैं और उनके हिमायती लेखक समालोचकों के समालोचक बन जाते हैं। हमें अपने जैसे कवियों के मानसिक कष्ट के साथ सहानुभूति है परन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि उसके कम होने की कोई आशा नहीं देख पड़ती है। उन्हें अपनी प्रशंसा के लिये भविष्य की पीढ़ियों का ही भरोसा करना चाहिये और दासकृत इस छन्दांश को स्मरण कर सन्तोष करना चाहिये कि :—

"आगे के सुकवि रीझिहैं तो कविताई
न तो राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है।"

हे आर्ष-भारत !

[लेखक—श्रीयुत भगवन्नारायण भार्गव।]

(अ)

जयति कान्तिमय सशान्ति भारत जय प्यारे।
सकल-जगत-श्रेष्ठ-देश जामहँ ना क्लेस-लेस
जिहि पै हरि-दया विशेष हिन्द हे हमारे।
ऋषियनु-सन्तान-गेह सुखद-द्विरद-जलद-नेह
प्रिय-पुनीत-धरमु-देह सुतनु-दुख निवारे॥
भक्ति-मुक्ति-देनहार ज्ञान-बुद्धि-सुचि-अगार
विद्या-सागर अपार प्राननु सम प्यारे।
नासक भय-ताप आप पण्डित कविता-कलाप
जहँ नहिं अपयस-विलाप सत्य-धरमवारे॥१॥
जय जय जय मातृभूमि पूरित-यस-उदधि-ऊर्मि,
चरन-कमल तोर चूमि गावों गुन तिहारे।
अनुपम-छवि रुचिर तोर लखि २ मन मोर मोर
नाचै सब लाज छोड़ मोद-मत्त प्यारे॥
सुकृत-पुन्य-मंजु-पुञ्ज सान्ति-कञ्ज-विमल-कुञ्ज,
जहँ आनन्द-भृङ्ग-गुञ्ज नासत दुख सारे।
वहरत जहँ धरम-पवन मुनि-जन किय अमल-हवन
ईस-देश-भक्त-भवन पावन-तनुधारे॥ २॥

(इ)

जगत-नाथ! लाज आज राखिये हमारी।
विद्या निज भूल गये तुव-सुत पुनि सोइ गये
अन्य-देस लेइ गये जतनु करहु भारी।
पूर्वकाल-सत्य-नाथ जाके ऋधि-सिद्धि साथ
सकल-कीर्ति तुम्हरे हाथ हिन्द! अब हमारी॥
गौरव को करहु त्रान राखो प्रिय-स्वाभिमान
देवो नित ज्ञान-दान शिक्षक-नर-नारी।
संस्कृत को करु प्रचार नागरि पुनि लो उबार
उन्नति-पथ सुचि सुधार तुरत हे अधारी॥३॥
हमहूं तें ज्ञान पाय हमहिं 'जङ्गली' बताय
लाज नाहिं हाय २ अन्य भूमि सारी।
सीख्यो विज्ञान-ज्ञान सेवा को देइ दान
देखो अब साभिमान हाय! देत गारी॥
पुत्रनु निज दो जगाय अलस-नींद सोवें हाय!
यस-मग न परत लखाय बुद्धि खोइ सारी॥
कम्पित उर होत आज लखिकें सब पाप-काज
कहा करहिं देस-राज! सोचत बुधि हारी॥४॥

(उ)

होवहु अब अस कृपालु पूर्व सौख्य पावें।
नाना दुष्काल-राज आज करत साज बाज
लखियतु ऋतु सुख न आज सब जन दुख पावें।
औषधि भइँ रसविहीन भारत जनु वीरहीन
देश, द्रव्य छीन दीन सबनु हा! दुखावें॥
तौहु हे महर्षि-देश! तुम्हरो अस तेज सेस
जिहिं लखि खल लहत दुःख लजत मुख दुरावें।
निज प्रिय अनुकम्प करहु क्लेस-लेस-मात्र हरहु
सबकों रत धरम करहु तुमकों सिर नावें॥५॥

हिन्दू समाज का संगठन।

[लेखक-श्रीयुत रुद्रदत्त भट्ट।]

"हमारा समाज" कहते हमने अनेक बार अनेक मनुष्यों को सुना है पर बहुत ही कम लोगों ने विचारपूर्वक यह देखने की चेष्टा की है कि हिन्दू जाति में वस्तुतः कोई समाज है या नहीं। अपनी क्षुद्र बुद्धि से हमने "समाज" का अस्तित्व खोज निकालने का बहुत प्रयत्न किया पर हम सफल न हुए। या तो हिन्दू जाति में कोई समाज है ही नहीं या हम ही उसको खोज निकालने के योग्य नहीं हैं, इन दोनों के अतिरिक्त तीसरी बात हम कहने को समर्थ नहीं। जब तक मनुष्य को हिलने, डुलने, चलने, फिरने, बोलने, खाने, पीने, सांस लेने की शक्ति रहती है तब तक हम उसे "मनुष्य" भले ही कहें पर जब उसमें उल्लिखित शक्तियों में से एक भी शक्ति नहीं रहती तब भी उसको मनुष्य कहना मूर्खता नहीं तो और क्या है? जब मनुष्य पञ्चत्व को प्राप्त हो जाता है तब उसके नाम के अतिरिक्त और कुछ संसार में नहीं रहता इसी प्रकार यदि हमारे समाज का भी नाम ही नाम शेष रह गया हो तो क्या आश्चर्य? पर बाजे २ मनुष्यों के नाम में भी एक अनिर्वचनीय प्रभाव विद्यमान रहता है। हमें विदित हुआ है कि वीरवर नैपोलियन के नाम को सुनकर ही अब भी अनेक पाश्चात्य रमणियों के शिशु रोना बन्द कर माता की गोद में छिप जाते हैं। एवं यदि "समाज" के नाम मात्र में ही कुछ ऐसी अलौकिक शक्ति हो तो हम नहीं जानते। जिस प्रकार प्राणरहित मनुष्य को औषधि पिलाना और फिर उसके जी उठने व आरोग्य रहने की आशा करना निराशा मात्र है उसी प्रकार प्राणरहित समाज के लिये अनेक औषधियों का आविष्कार कर और उनकी सहायता से आन्दोलन कर जीवन संचार करने का प्रयत्न करना श्रम का दुष्प्रयोग करना कहा जाय तो कुछ आश्चर्य नहीं। औषधियों का प्रयोग करने से प्रथम यदि प्राण संचार करने का प्रयत्न किया जाय तो कदाचित श्रेयस्कर भी हो पर बिना प्राणसंचार किये ही केवल दोष निकालना और उनको निवारण करने के वास्ते अनेक मनगढ़न्त उपायों को सोच निकालना कदाचित मरे सर्प की आंख निकालना ही है।

संसार के और समाजों के समान हमारा समाज न था। पर जो हमारे समाज के उच्च आदर्श थे वे अब अस्त हो गये हैं। आदर्शों का इस प्रकार लोप हो जाने पर अब भी समाज को जीवित कहने में कुछ संकोच सा होता है। एवं यदि समाज का यथार्थ में उद्धार करना है तो प्रथम उसमें भूले हुए उच्च आदर्शों का संचार करना चाहिये, आदर्शरूपी प्राणों का संचार करने के पश्चात् यदि फिर अन्य दोषों को सुधारने का प्रयत्न किया जाय तो न्यायसङ्गत होगा। प्रायः देखा गया है कि समाज की दशा ऐसी हो रही है जैसी राजा के न रहने पर साम्राज्य की अथवा यों कहिये कि समाज के इतने मुखिया बन गये हैं कि जान नहीं पड़ता किसकी बात मानी जाय। इसलिए प्रत्येक देश के हितचिन्तक को यह देखने का प्रयत्न करना चाहिये कि हमारे समाज की पूर्वकाल में क्या स्थिति थी, उसका संगठन किस प्रकार का था, उसके उद्देश्य कैसे उच्च व आदरणीय थे, उसका प्रत्येक व्यक्ति किस प्रकार अपने २ कर्तव्यों का पालन करता था और उसके नियम कैसे न्यायसङ्गत, सर्वमतानुकूल और सर्वप्रिय थे। इस विषय में संसार-प्रसिद्ध विद्वद्वर एवं सुकवि डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक महत्वपूर्ण लेख लिखा है उसीका मर्मानु-

बाद में आज पाठकों की भेंट करने का साहस करता हूँ :—

"भारत में राजा का मुख्य कर्तव्य न्याय करना व शत्रुओं से प्रजा की रक्षा करना था। राजा पर ही सारा भार देकर सर्वहितकारी कार्यों की ओर समाज ने मुंह नहीं मोड़ लिया था। समाज को इसकी कुछ परवाह न थी कि उनका राजा शिकार खेलने में समय व्यतीत कर रहा है अथवा राजप्रासाद में सुन्दरियों के प्रेमपाश में बंधा हुआ है। जब तक कोई बाहरी शत्रु आकर ऊधम न मचावे तबतक समाज का कार्य बड़ी सरलता, सुगमता व आनन्द से चला जाता था। प्रजा को सुशिक्षा देना, प्रत्येक स्थानों में पानी का सुप्रबन्ध करना, धर्मशाला बनवाना इत्यादि २ सब लोकोपकारी कार्य सदा समाज के धनाढ्य मनुष्य ही किया करते थे। यही कारण था कि भारत में असंख्य आक्रमण हुए, असंख्य प्राणियों का नाश हुआ, पर तब भी हमारे धर्म और हमारे समाज को कुछ भी हानि न पहुंची। राजा राजा में संग्राम हुआ पर समाज का कार्य न रुका। एक राज्य दूसरे राजा के आधीन चला गया पर समाज के कर्तव्य का पालन यथावत होता चला गया। सुन्दर उद्यानों के बीच देवमन्दिर बनते गये, प्रत्येक नगरों में पथिकाश्रम स्थापित होते गये, थके पथिकों के लिये स्थान स्थान पर तालाब और कुएँ खुदवा कर पानी का सुप्रबन्ध होता चला गया, प्रत्येक ग्राम में चटाई पर बैठ पण्डित लोग बालकों को रामायण, महाभारत प्रभृति काव्यों और अन्य उत्तमोत्तम ग्रन्थों की सुशिक्षा सुन्दर रीति से देते गये, प्रत्येक देव-मन्दिर में श्रद्धा व प्रेम से रामायण व महा-भारत का पाठ होता रहा, प्रत्येक हिन्दूगृह में नरनारी व बालकों के हृदय में वही प्राचीन आर्यों के उच्च आदर्श का प्रादुर्भाव होता चला गया। कितनी बार पृथ्वी में स्वदेशाभिमानी भारत-पुत्रों ने मान, मर्यादा और धर्म की रक्षा करने के लिए रक्त की भी नदी बहाई पर तो भी समाज का कार्य वैसे ही चलता रहा। हिन्दू समाज ने कभी बाहर का भरोसा न किया, हिन्दू समाज कभी दूसरों के सहारे खड़ा न रहा, उसने कभी दूसरों पर अवलम्बन न किया एवं बाहर के अनेक आक्रमण और युद्ध उसका बल न घटा सके और उसको अपने कर्तव्य का पालन करने से रोक न सके। पर आजकल यह बात नहीं है। शोक इस बात पर अधिक नहीं है कि भारत में अनेक स्थानों पर पीने को पानी नहीं मिलता, जहां मिलता भी है वहां इतना मैला कुचैला रहता है कि पीने को जी नहीं चाहता पर अधिक शोक इस बात का है कि समाज में एक प्रकार से शिथिलता आगई है। समाज के मनुष्यों ने अपने उच्च आदर्शों को भुला दिया है और निस्सहाय कर्तव्यभीरु हो दूसरों का मुंह ताकने लग गये हैं।

"पहिले मनुष्यों की प्रवृत्ति समाज की ओर अधिक थी। समाज का मनुष्य आदर व भय करते थे पर आजकल मनुष्य समाज के नाम पर ही चक्कर लगा उसको एक प्रकार से भूल गये हैं। उसके अंतरङ्ग जीवन को न जान कर वे केवल नाम ही नाम रटा करते हैं। यही कारण है कि यत्र तत्र हमें टूटे फूटे मन्दिर दिखलाई पड़ते हैं क्योंकि उनको सुधारनेवाला कोई नहीं है। जगह जगह मिट्टी व पत्थर से भरे हुए तालाब, पोखरें, कुएँ दिखलाई पड़ते हैं क्योंकि उनको साफ करानेवाला कोई नहीं है। हमारे मरघटों व तीर्थों में जाने के लिये रास्ते पथरीले व भयानक हो रहे हैं क्योंकि उनको सुधारने व ठीक करानेवाला कोई नहीं रहा। हमारे ग्राम सुखरहित, ऊजड़ और सूनसान हो रहे हैं क्योंकि अब हमारा ध्यान प्राकृतिक दृश्य से कृत्रिम की ओर आकर्षित हो गया है और वे जो समाज २ की पुकार लगा अपने तुमुल नाद से चारों दिशा गुंजा देते हैं, वे मलीन मुख करके मस्तक खुजलाते सरकारी

अफसरों के पास जाकर "पानी" २ की पुकार करने को ही अपना परम कर्तव्य समझे बैठे हैं। पाश्चात्य शासनप्रणाली में और भारत की प्राचीन प्रणाली में बड़ा अन्तर है। पाश्चात्य राष्ट्रों में सब प्रजा के लिये हितकर कार्यों का करना राजा का कर्तव्य है पर भारत ने अपने शासकों के ऊपर इन परमोपयोगी कार्यों का भार नहीं दिया था। इसका आशय यह नहीं है कि राजा इन कार्यों को बिलकुल ही नहीं करता था और इन कार्यों से उसका कुछ सम्बन्ध ही न था। नहीं वरन् ऐसे कार्यों के कर्ताओं को पारितोषिक देना, समाज के बड़े २ नेताओं व सुधारकों को उच्च २ उपाधियों से विभूषित करना, प्रजा की सन्तानों को बिना मूल्य विद्या-दान देनेवाले विद्वानों का समुचित आदर सत्कार करना यह सब राजा का कर्तव्य व धर्म था। हमारे राजा भी कभी २ तालाब, कुएँ खुदवा देते थे, अनाथालय व पथिकाश्रम स्थापित कर देते थे, विद्यार्थियों वा विद्वानों के लिए अनेक सुप्रबन्ध कर दिया करते थे पर यह सब वे एक साधारण मनुष्य के रूप में करते थे राजा के रूप में नहीं। यदि कभी राजा अन्यायी हो ऐसे सब कार्यों से अपना हाथ उठा लेता था, यदि राजा के दुर्बल होने से कभी सारे साम्राज्य में राष्ट्रविप्लव हो उठता था, यदि राज्यकर्मचारी अच्छे कार्यों से राजा का मुख-मोड़ उसे कुनीति की ओर झुका देते थे तो समाज का कार्य एकदम नहीं रुक जाता था। समाज एक दम शिथिल व मृतवत् नहीं हो जाता था। समाज का कार्य बराबर चला ही जाता था। जो कार्य राजा नहीं करता था उसको समाज के मनुष्य साधारणतः ही करते चले जाते थे। उन दिनों हिन्दू-समाज में जीवन था, शक्ति थी, आदर्श था; एकता थी और प्रत्येक समाज का सभासद अथवा व्यक्ति समाज के प्रति अपने कर्तव्य व धर्म को भली प्रकार समझता व जानता था। विलायत का प्रत्येक मनुष्य अपने ही सुख-स्वार्थ, आराम-ऐश व आमोद-प्रमोद में दत्तचित्त रहता है, अपने स्वार्थ के बाहर उसकी दृष्टि जाती ही नहीं, समाज के प्रति उसका मानो कुछ कर्तव्य ही नहीं है क्योंकि उसने समाज के सब बड़े काम राजा को अथवा शासक-समूह को सौंप दिये हैं।

"भारत में ऐसा न था। शासक-समूह को समाज के इतने महत्वपूर्ण कार्य नहीं दिये गये थे। समाज के कार्य समाज के पुरुषों ने अपने ही ऊपर लिये थे एवं समाज के उपकारी कार्यों में कभी त्रुटि होती ही नहीं थी। राजा आखेट में समय व्यतीत करे, संग्राम करे, राज्य का कार्य करे, आमोद-प्रमोद में समय व्यतीत करे, न्याय करे अथवा अन्याय उसको ईश्वर के आगे ही अपने कार्यों का उत्तर देना पड़ता था पर जनसाधारण निश्चिन्त बैठ कर जनसाधारण के लाभ के सब काम उसको ही सौंप कर उसका ही मुख नहीं ताका करता था। हमारे समाज के सब महान् कार्य बड़ी अच्छी रीति से सब देशवासियों के मध्य बँटे हुए थे। यही कारण था कि हमारा समाज धर्म और कर्तव्य से परिपूर्ण वा जीवित था। समाज के सब नर नारी आत्मत्याग करना, आत्मदमन करना, परमार्थ के कार्यों का सम्पादन करना भली प्रकार जानते थे और समाज के प्रत्येक व्यक्ति से कर्तव्यपालन की पूरी आशा की जाती थी। पाश्चात्य राष्ट्रों में यदि शासनप्रणाली का आसन डिगे अथवा किसी प्रकार राजविप्लव हो जावे तो सारा देश नष्टभ्रष्ट हो जाता है। इसी कारण पाश्चात्य राष्ट्रों में राजनीति का इतना आदर व प्रभाव है पर हमारे देश में देश को तभी हानि पहुंचती है जब समाज प्रायः मृतवत् या शिथिल हो जाता है। यही कारण है कि हमारा ध्यान राजनीति की ओर कभी विशेष प्रकार से आकर्षित नहीं हुआ। हमने बड़े धैर्य व बुद्धिमानी के साथ अपने समाज की स्वतन्त्रता की रक्षा की है। पाश्चात्य राष्ट्रों में भिखारियों को

भिक्षा देने से लेकर प्रजा को सुशिक्षा देने तक का भार सब राष्ट्र के ऊपर रहता है पर भारत में इस भार का विशेषांश समाज के पुरुषों व धनाढ्यों पर है एवं यदि पाश्चात्य राष्ट्र जीवितावस्था में रहना चाहेंगे तो उनको अपनी शासनप्रणाली जीवित रखनी पड़ेगी और यदि हम जीवित रहना चाहें तो हमको अपने समाज का आदर्श और धर्म और धैर्य सदा निर्मल व शुद्ध रखना चाहिये। इङ्गलैंड में यह अवश्य उपयोगी या आवश्यकीय बात है कि वहां के मनुष्य सर्वदा राष्ट्र को जीवित व सचेत रखने के वास्ते आन्दोलन करें। अंगरेज़ी शिक्षा पाकर अब हम भी यह समझने लग गये हैं कि हमारा कर्तव्य केवल सरकार को अपनी आवश्यकता दिखलाना है।

"हम यह नहीं समझते कि दूसरे के शरीर पर कितनी ही मरहम पट्टी लगाई जाय पर उससे हमारा रोग कदापि अच्छा होने का नहीं। इङ्गलैंड में प्रजातन्त्र राज्य का आसन है, मनुष्यों के इच्छानुसार ही राष्ट्र का शासन होता है—पर यहां ऐसा नहीं है। यद्यपि यह बड़ी अच्छी वस्तु है पर हमें प्राप्य नहीं।

"भारत में समाज का सरकार से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। सरकार व समाज भारत में बिलकुल ही भिन्न हैं एवं यदि हम समाज का कुछ कार्य सरकार से कराना चाहें तो उसके कारण हमको समाज की स्वतन्त्रता खो देनी पड़ेगी। सरकार से कुछ भी काम कराने की इच्छा करने से समाज स्वयं काम करने के अयोग्य व निर्बल हो जायगा। पर यह अनुकूल नहीं। हमारे ऊपर कितने ही आक्रमण हुए, हमारे पूर्वजों ने कितने ही युद्धों में सहर्ष मातृभूमि के लिये प्राण दिये, हमने कितनों ही को मस्तक झुकाया, कितने ही राजा महाराजाओं ने हम पर राज्य किया पर हमारे समाज की कमानी कभी ढीली न पड़ी, हमारे समाज का कार्य कभी न रुका, हमारा समाज बिना किसी की आशा पर निर्भर हुए बराबर अपना कर्तव्य पालन करता चला गया, समाज के कार्य में बाहरवालों को हस्तक्षेप करने न दिया जिसका फल यह हुआ कि राज्य नाश हो गये, राजा मर गये पर हमारा समाज ज्यों का त्यों दृढ़ बना रहा।

"आज हम स्वेच्छा से विदेशी-धर्म-पूर्ण-आदर्शों को ग्रहण कर सारे समाज के कार्य एक भिन्न राज्याधिपति को सौंप रहे हैं। पहिले भी हिन्दू समाज में नये २ धर्मों का प्रादुर्भाव हुआ और उनसे नये २ व्यवहार-नियम इत्यादि की उत्पत्ति हुई पर समाज से वे भिन्न न रहे, समाज ने उनका ह्रास व उनकी अवहेलना न की एवं समाज के पूर्व आदर्श उनके भी आदर्श बने रहे। पर आज बात ही विचित्र है। अब नवीन नियमों के अनुसार अन्य धर्मावलम्बियों को "हिन्दू नहीं" कह कर लिखाने को बाध्य किया जाता है। यह बात हमारे समाज को सब से अधिक हानि पहुंचानेवाली है। हमारे समाज को इससे अधिक चोट पहुंचने की सम्भावना है, इससे प्रकट होता है कि हमारा समाज निस्सहाय मरणप्राय व संकुचित होगया है, उसका जीवनप्रदीप बुझ जाने में कुछ देर नहीं है।

"प्राचीन समय में बादशाह जिन विद्वान व धनाढ्य समाज के नेताओं को उच्च से उच्च उपाधि से विभूषित कर राज्य के संचालन में उनकी सहायता वा नियोग चाहते थे वे इससे सन्तुष्ट न हो समाज का कार्य कर—समाज की सेवा कर—उससे ही आदर व सम्मान पाने की अधिक लालसा व अधिक इच्छा करते थे। समाज के आदर-सम्मान को वे राजा के आदर-सम्मान से अच्छा समझते थे। राजा से "राय बहादुर", "राजा बहादुर", "महाराजा" इत्यादि रूखी पदवी पाने की अपेक्षा समाज में "दानी", "दयावान्", "दयालु", "दीनहितचिन्तक", "गरीबपरवर", इत्यादि नामों से प्रसिद्ध होने के हेतु वे अधिक प्रयत्न व इच्छा करते

थे। यही कारण था कि सारे प्रदेश में सुख सम्पदा की कमी न थी, सारे प्रदेश में मनुष्यत्व के सब चिन्ह सब सामान प्राप्य व मौजूद थे।

"आजकल हम अपने समाज को कुछ समझते ही नहीं, समाज के आदर अथवा ह्रास की हमें कुछ परवाह ही नहीं है, हमारे आगे समाज कुछ है ही नहीं, हम समझते हैं कि समाज हमें कुछ पदवी अथवा उच्च पदाधिकार तो देही नहीं सकता तब हम क्यों उसकी कुछ परवाह करें। अब हमारे सब प्रयत्न समाज की ओर को न जा—देश की ओर न जा—उसके बाहर चले गये हैं। आजकल एक सामान्य से सामान्य, क्षुद्र से क्षुद्र काम के वास्ते हमको सरकार का मुंह ताकना पड़ता है, सरकार की शरण जाना पड़ता है। आजकल कोई भी सर्वोपकारी काम करने के लिये सरकार को बड़े २ मनुष्यों पर प्रभाव डालना पड़ता है, उनको उनके कर्तव्य से सूचित करना पड़ता है। हमारे बड़े मनुष्यों ने निर्धनी मनुष्यों का ध्यान छोड़ दिया है–"गरीबपरवर" बनना छोड़ अब वे "धनीपरवर" बनने में दत्तचित्त हैं। प्राचीन आदर्शों का अब अवसान होने लग गया है—लोप होने लग गया है।

"हमको यथाशक्ति जहां से भी हो विद्योपार्जन की चेष्टा अवश्य करनी चाहिये पर उसके साथ ही साथ अपने आदर्शों को छोड़ना नहीं चाहिये। हमको बाहर से एकत्र कर, उपार्जन कर भीतर अपने घर में भरना चाहिये। पर आजकल हम ठीक इसका उलटा करते हैं। उदाहरणार्थ राष्ट्रीय कांग्रेस को लीजिये। सारे देश भर को सुधारने व उन्नत करने के उच्च उद्देश्य को लेकर वह केवल एक भाग को सुधारने में लगी हुई है, केवल एक भाग की ही पुकार सुना करती है। कांग्रेस की भाषा विदेशी है, जन-साधारण न तो विदेशीभाषा में दी हुई वक्तृता समझ सकते हैं न उसमें अपने भाव ही पूरी तरह प्रकट कर सकते हैं एवं उससे जन-साधारण का कोई लाभ होने की सम्भावना नहीं दीख पड़ती। हम जन-साधारण व कुछ इने गिने अंगरेज़ीदाओं के बीच एक बड़ी ऊंची दीवाल बनाने लग रहे हैं, हम यह नहीं समझ रहे हैं कि जब तक हम जनसमूह का हृदय अपने से न मिला लें, उनकी प्रीति के भाजन न बन लें तबतक हम कुछ भी नहीं हैं, हमारी गणना किसी में भी नहीं है।

"हमारा समाज मुख्यतः ग्रामों का बना हुआ है, हमारे समाज के अधिकांश मनुष्य ग्रामों में निवास करते हैं एवं हमको कोई ऐसी सभा बनानी चाहिये जिसमें सब ग्रामनिवासी भाग ले सकें और योग दे सकें। सबसे सरल बात तो यह मालूम पड़ती है कि हमको भारतीय ढंग का एक मेला रचना चाहिये जहां सब ग्रामीण बन्धु बान्धव स्वतन्त्रता से मिलजुल सकें और लाभ उठावें।

"हम बहुधा भारत के धनहरण की बातें किया करते हैं, पर हम अपने हृदयहरण की बात जानते ही नहीं। यदि सब उपयोगी कर्म विदेशी सरकार के पास चले जावेंगे तो भला बताओ हमारे पास क्या रहेगा ? क्या हमको विदेशी सरकार से भीख मांग कर ही जीवन व्यतीत करना पड़ेगा ? क्या सरकार के समीप जा केवल रोना ही हमारा कर्तव्य है ? नहीं कदापि नहीं, हममें से प्रत्येक व्यक्ति को, अपने जीवन के हर एक दिन देश की आवश्यकता पर विचार कर उसको पूरी करने की चेष्टा करनी चाहिये।

"इसी में हमारा उत्थान है और यही हमारा धर्म है। अब वह समय समीप आगया है जब सारा समाज भारत के एक विराट् स्वदेशी सभा अथवा समाज में परिवर्तित हो जाय। इस समय प्रत्येक मनुष्य को यह सोचना चाहिये कि वह समाज में कितना ही निर्धन व बलहीन हो पर वह अकेला नहीं है, उसकी स्थिति समाज की स्थिति के साथ मिली जुली है

और समाज उसका कदापि तिरस्कार नहीं कर सकता। सब ही मनुष्य अपना कर्तव्य भली-भांति नहीं जान सकते एवं प्रत्येक मनुष्य को कर्तव्य का सीधा रास्ता दिखाने के वास्ते एक केन्द्र होना चाहिये। किसी एक पार्टी को केन्द्र बन कर स्वार्थ की धारा बहाने की कुचेष्टा नहीं करनी चाहिये। सर्वोत्तम तो यही होगा कि एक योग्य व्यक्ति नेता मान लिया जाय और सब उसके आदेशानुसार कार्य करने को तत्पर हो जायँ, उसका आदेश मानने में मानहानि, जाति-हानि, प्रान्तहानि न समझें। ऐसा नेता कभी अच्छा मनुष्य भी होगा और कभी खराब भी हो सकता है पर यदि समाज जीवित व सचेत है तो कोई नेता भी उसको कुछ हानि नहीं पहुंचा सकता। पर ऐसा एक नेता होना आवश्यक है क्योंकि उससे समाज में जीवनसंस्कार हो जायगा। यदि समाज एक ऐसे मनुष्य को अपना नेता मानले तो उसका ऐक्य-बल अथाह हो जावेगा। इस नेता से नीचे सारे देश के भिन्न २ प्रान्तों में प्रान्तीय नेतागण होंगे। वे समाज की आवश्यकताओं का ध्यान रखकर उनको पूर्ण करने की सदा चेष्टा किया करेंगे और अच्छे २ कार्यों का सुसम्पादन किया करेंगे और उनके लिए बड़े नेता के निकट उत्तरदायी रहेंगे। समाज के पुरुष ही स्वेच्छा से धन अर्पण कर इस महान् कार्य में योग देंगे।"

प्रातश्री।

[लेखक—श्रीयुत कविरत्न पं० सत्यनारायण।]

जय २ जग-आश रूप ऊषे! प्रतिभा अनूप,
जागृतिमय पुण्य प्रभा प्रिय प्रकासिनी।
सीतल सुरभित समीर सरल, सुमति-सुखद, धीर,
वर बहाय मृदुल मृदुल मुद-विकासिनी।
हृदय-कमल-कोष अमल समुदित दल नवल नवल,
कोमल कर रुचिर खोल रुचि विलासिनी।
द्विजगन करि २ कलोल गावत श्रुतिसुखद लोल,
बोलति सुर सरस मनहुं मंजु भासिनी।
नवद्रुम पल्लव डुलाय सुमन सुमन रज विछाय,
स्वागत तव रचति प्रकृति पुण्यरासिनी।
मधुप चारु चरितवान विद्यामधु करत पान,
ठौर ठौर गुंजि, तिन त्रितापनासिनी।
आतम-विस्मृति कराल फैलत जब तिमिरजाल,
करति ज्ञान सूर्य-उदय जग विभासिनी।
सुवरन रंजित सुरंग रम्य परम प्रेमसंग,
हिम-अंचल शीश धारि सदभिलासिनी।
सहृदय-सन्ताप-हारि भारत आरत निहारि,
ओस-अश्रु सजल युगल दृग अकासिनी।
असुर-मुनि-सुजन-सेवि प्रातश्री सत्यदेवि,
दया द्रवित अति पुनीत हृदयवासिनी।

सायोनारा।

[लेखक—एक जापान प्रवासी।]

आज नवीन एशिया के स्वाधीन शिशु की गोद में आये दो मास दो दिन हो गये। अब स्वाधीन जगत से आधीन संसार की ओर यात्रा होगी। इन दो मासों में अपने भाईयों को बताने लायक क्या देखा है वही यहां लिखना है।

१३ सौ वर्ष पूर्व जब बूढ़े भारत का संदेशा जापान को चीन व कोरिया के मार्ग से चल कर मिला था उसका चिन्ह अब कहीं २ पुराने

मन्दिरों में ही रह गया है। पुराने मन्दिरों में आजदिन भी बुद्ध भगवान् की भारतीय शिल्पियों के हाथ से बनी प्रतिमाएँ मिलती हैं। पर हमारा सम्बन्ध जापान से इतना ही नहीं है।

हमें यह कहते कुछ भी संकोच नहीं होता कि हम आज दिन भी जापानियों को अपना ही बन्धु समझते हैं और स्वभावतः जान पड़ता है कि ये हमारे ही हैं। अङ्गरेज़ी भाषा के जानने के कारण इङ्गलैंड व एमेरिका में हमें वहां के निवासियों से बातचीत करने की बहुत सुविधा थी किन्तु एक साल के बीच में कभी ऐसा अवसर न मिला कि कभी बात करने में वह भाव पैदा हो जो अपनों से बातें करने में होता है। एमेरिका निवासी जब मिलते थे तभी बड़ी अच्छी तरह बात करते थे किन्तु सदा परायापन ही झलकता था। जापानी भाषा हम बिलकुल नहीं समझते, जापानी भी हिन्दी नहीं समझते निदान इनसे भी अङ्गरेज़ी द्वारा ही बातचीत करनी पड़ती थी किन्तु इनसे बात करने में हिचक ज़रा भी नहीं होती थी, ऐसा ज्ञात होता था कि किसी अपने भाई से ही बातचीत कर रहे हैं। यह क्यों? इसी कारण कि हम में और इनमें समानता अधिक है। हम एक दूसरे के मनोभावों को अच्छी प्रकार समझ सकते हैं।

यदि बंगाल के किसी ग्राम से कुछ लोग किसी योगमाया के बल से जापान के ग्राम में पहुंचा दिये जायँ तो उन्हें यह जानने में कुछ समय लगेगा कि वे किसी दूसरे देश में हैं क्योंकि चारों ओर यहां भी वही धानों से भरे खेत, घास फूस से छाई झोपड़ियाँ, नंगे सिर मनुष्य मच्छी भात भोजन करते देख पड़ेंगे। हां विभिन्नता यह होगी कि उन्हें बिजली की रोशनी, साफ उत्तम जल व जगह २ पाठशालाएँ देख पड़ेंगी, गृहों में खाद्य पदार्थ भी अच्छे व काफी देख पड़ेंगे। मनुष्यों के शरीर भी कपड़े से ढँके व माथा भी ज्ञानरहित नहीं मिलेगा। सारांश यह कि यदि बंगाल के ग्रामों में विद्युत् प्रकाश हो जावे, पल्ली २ में पाठशालाएँ खुल जायँ, पद्मा व हुगली में युद्धपोत खड़े मिलें तो बंगाल व जापान में कुछ भी भेद बाकी न रह जाय।

हिन्दुस्थान निवासियों को यह मालूम होने से कि उनमें और जापानियों में कुछ भेद नहीं है उनके आश्चर्य की सीमा नहीं रह जाती पर यह बात सच है इसमें कुछ सन्देह नहीं। जापानियों की चाल ढाल, रहन-सहन, खान-पान, पहिरावा, पूजा-अर्चा, भूत-प्रेत, टोना-टनमन, श्राद्ध-पिण्ड, छुत-छात सभी तो भारतवासियों के समान हैं।

यूरोप व एमेरिका निवासी कहते हैं कि जापान ने बिलकुल यूरोपियन ढंग स्वीकार कर लिया, अब उसमें एशियाई बात कुछ भी बाकी नहीं है। यह इतना भ्रमात्मक कथन है जिसका ठिकाना नहीं। यदि आजदिन ऊपरी निगाह से देखनेवाला व्यक्ति भारत को यूरोपीय सभ्यता का गुलाम इस कारण कहे कि भारत में कुछ लोग कोट पतलून पहिनने लग गये हैं, होटल में भोजन करने लग गये हैं तथा घरों में भी विलायती सभ्यता से रहना अख़्तियार कर लिया है तो कदाचित वह कथन उससे अधिक सच होगा जितना यह कहना कि जापान यूरोपीय सभ्यता का गुलाम हो गया है। इसमें सन्देह नहीं कि जापान ने यूरोप एमेरिका से रणविद्या सीखी है, जंगी जहाज़ व गोली गोला बनाना सीखा है, बड़े २ आफ़िस, बैंक, कारखाने, पुतलीघर सभी यूरोप-एमेरिका की भांति बनाये हैं, सेना तथा अन्य कारबार में यूरोपीय पोशाक़ पहिनते हैं, यूरोपीय भोजन से भी घृणा नहीं करते पर इससे क्या होता है। यह केवल बाहरी आडम्बर मात्र है। आप बड़े से बड़े जापानी के घर जाइये जो कदाचित कई बार यूरोप एमेरिका की यात्रा कर आया हो,

उसके यहां भी पहले पहल आपका अभिवादन करने जो टहलनी आवेगी वह पृथ्वी पर मस्तक रख आपको प्रणाम करेगी, घर में घुसते समय आपको झखमार जूता उतारना ही पड़ेगा। कतिपय घरों में ज़मीन पर ही पलथी मार बैठना भी होगा। जिनसे आप मिलने गये होंगे वे महाशय लम्बे बिछौने पर ही आपसे मिलेंगे। आपको पान सुपारी की जगह जो यहां चाह मिलेगी वह अङ्गरेज़ी मीठी चाह नहीं वरन् दूध शक्कर रहित हरी चाह की पत्ती का गरम २ काढ़ा ही मिलेगा। यह रिवाज़ एक आफ़िस के लेखक से लेकर साम्राज्य के प्रधान सचिव काउन्ट ओकूमा के घर में भी पाया जायगा।

जापान में दो मास के लगभग मैं यहा उत्तर दक्षिण डेढ़ हज़ार मील घूमा किन्तु एक भी स्त्री मुझे लहँगा पहिने नहीं देख पड़ी यद्यपि बहुतसी ऐसी स्त्रियों से मुलाकात हुई जो यूरोप एमेरिका में दस २ बारह २ वर्ष रह आई हैं। बड़े २ नगरों में, सड़क पर, ट्राम में, रेल में कहीं भी ऐसे पुरुष नहीं देख पड़ते जो विदेशी पोशाक में हों। हां, कल कारखानों, कोठी बैंकों इत्यादि में विदेशी पोशाकें देखी जाती हैं किन्तु वे पहिननेवाले को भार सी प्रतीत होती हैं, घर में आने पर वे किस प्रकार फेंकी जाती हैं उसे भारतवासियों को बताना न होगा।

जापानी मांसभक्षी जाति नहीं है तथापि जापानियों को विदेश तथा स्वदेश में भी मांस खाने से घृणा नहीं है, काम पड़ने पर वे मांस खा लेते हैं किन्तु मांस उनके जीवन के साथ लिपट नहीं जाता घर में उन्हें फिर वही मछली भात व तरकारियाँ हीं अच्छी लगती हैं।

जापान ने विदेशियों के संसर्ग से खान-पान, रहन-सहन, पूजा-अर्चन नहीं छोड़ा है और न उसमें कुछ अदल-बदल ही किया है किन्तु आत्मरक्षा व शत्रु के दमन करने की जितनी विद्या थी उसे भली भांति अपनाया है। ४० वर्षों में ही इन्होंने इस विद्या में इतनी उन्नति कर ली है कि अपने गुरुओं को ही राह दिखाने लगे। कहा जाता है कि ड्रेडनाट जहाज बनाने की चाल जापान ने ही चलाई है व पहिला ड्रेडनाट इसी देश में बना था।

जापान की असाधारण उन्नति इतने कम समय में होना संसार को चकित कर देता है। अभी १९२५ में जो यहां युगान्तर हुआ था तब जापान क्या था कुछ नहीं; केवल मध्य युग की भांति एक छोटा सा राज्य था जैसा कि वाजिद-अली शाह के समय अवध अथवा शुजाउद्दौला के समय बंगाल रहा होगा। १९३५-४० तक उसने अपने पंख फड़फड़ाये और हाथ पैर पसार अंग-ड़ाई ले अपनी निद्रा तोड़ी व अपना घर सँभालना प्रारम्भ किया। १९५१ में चीन को पराजित कर यूरोपीय जगत की आंख अपनी ओर फेरी और अपनी ओर देखते हुए उनसे कहा कि भैया हम भी मनुष्य हैं, हमारे भी हाथ पैर हैं, हमें याद रखना। १९६०-६१ में उसने घमंडी रूस का गर्व खर्व कर एक बार जगत को अचम्भे में डाल दिया। अब क्या था अबतो इसकी भी गणना प्रथम श्रेणी की शक्तियों में होगई। यूरोप एमेरिका की शक्तियों ने हाथ मिला अपने मञ्च पर चढ़ा इसका स्वागत किया और कहा "आप बड़े हैं, आप शक्तिशाली हैं, आप राख में छिपी अग्नि के अंगारे हैं, आइये हमारी पंक्ति में बैठिये और संसार की अन्य छै शक्तियों के साथ मिल कर उन्हें सात बनाइये। आपतो हमारी बिरादरी के हैं हमारी पंक्ति में भोजन कीजिये।" रूस पर विजय पाये आज १०।११ वर्ष हो गये। इस समय यूरोप में जो विनाशकारी संग्राम हो रहा है उसमें यदि जापान ने जर्मनों का संग दिया होता तो आज एशिया का क्या हाल होता इसके जानने का अवसर केवल अंगरेज़ बीर सर एडवर्ड ग्रे को ही है। इस संग्राम से जापान का कितना महत्व बढ़ गया है व इसके वाणिज्य-व्यापार को कितना लाभ पहुंचेगा इसका पता १० वर्ष बाद लगेगा। गत ४०।५०

वर्षों में जापान ने दस २ वर्षों में जितनी उन्नति की है उतनी उन्नति इतने ही इतने कम समय में दूसरी किसी जाति ने संसार में की है या नहीं इसमें सन्देह है। इसकी यकायक इतनी उन्नति देख यूरोप एमेरिका वाले आश्चर्य में पड़ गये हैं व जापान को यूरोपियन हो गया बतलाते हैं। हम भी उन्हीं की बात सुन कर उन्हीं का पढ़ा पाठ दुहरा देते हैं।

विदेश में किसी जापानी को देख प्रायः लोग यही कहेंगे कि यह जाति बड़ी घमंडी है, इस के मुख पर कभी हँसी का नाम नहीं आता, यह सदा गम्भीरता में ही पड़ी गूढ़ विचार किया करती है किन्तु इस देश में आकर देखने से कोई विशेष गम्भीरता नहीं देख पड़ती। यहां जापानी मामूली मनुष्यों की भांति हँसते हैं, खेलते हैं तथा सभी कुछ व्यवहार मामूली है। पर विदेश में ये इतने क्यों गम्भीर बनते हैं इस का कारण है और वह कारण भी बड़े महत्व का है। जापान की असाधारण शक्ति से जहां संसार में यूरोप एमेरिका की शक्तियां इससे डरती व इसका सन्मान करती हैं वहां इससे स्वाभाविक डाह भी करती हैं; ऐसी अवस्था में इसकी प्रत्येक बात को ध्यान से देखती व मौका ढूंढ़ा करती हैं कि कैसे व कब इसे नीचा दिखावें अतएव प्रवासी जापानियों को इसका ख्याल रखना पड़ता है और एक २ कदम उन्हें फूंक २ कर रखना होता है। उनके ऊपर जापान का गौरव निर्भर है, उनके एक दोष से सारी जाति कलंकित बन सकती है, उनकी ज़रा सी भूल से सारे देश को सिर नीचा करना पड़ेगा इसी दायित्व का विचार उन्हें विदेश में गम्भीर बनाता है। यह जाति के बड़प्पन का लक्षण है।

भारतवर्ष के समाचारपत्रों तथा जनता में जापान के प्रति प्रीतिभाव नहीं है, वे उसे सदा कलंकित व दोषी ठहराया करते हैं। क्यों? इसीलिए कि वह जीवित रहना चाहता है, अपनी स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखना चाहता है। इसलिए कि उसका जो कर्तव्य है उससे विमुख नहीं होता। जिस कारण से जापान स्वतन्त्र व प्रभावशाली है व जिसके अभाव से अन्य एशियाई जातियाँ दासत्व की शृङ्खला में बँधी हैं उसी कारण को निरर्थायो बनाने के लिए हम भारतवासी उसकी निन्दा करते हैं न? क्या कभी निन्दकों ने इसपर भी विचार किया है? नहीं, उनमें इस पर विचार करने की योग्यता ही नहीं है, नहीं तो उनकी हालत ही ऐसी न रहती।

जापान पर एक बड़ा दोष यह लगाया जाता है कि उसने कोरिया को दबा लिया। अगर वह कोरिया को न दबाता तो करता क्या चीन कोरिया को सुरक्षित रखने में असमर्थ था, कोरिया स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकता था यह साफ ज़ाहिर है। नतीजा यह होता था कि रूस अपना विशाल हाथ उसपर फैलाता था। यदि रूस का पूर्ण अधिकार उसपर हो जाता जैसा कि पोर्ट आर्थर पर उसका अधिकार था तो कितने दिन जापान चैन से सोने पाता? क्या कभी आपने इसे विचारा है? ऐसी अवस्था में अपनी रक्षा के लिए अपने को जीवित रखने के लिए यदि वह कोरिया पर अधिकार न जमाता तो और क्या करता? कोरिया को तो कोई न कोई दबाता ही। पोर्टआर्थर को ध्वंस कर रूस के एशिया में बढ़े हाथ को काट रूस पर उसने जो विजय प्राप्त थी व जिसके कारण भारत भी प्रसन्न हुआ था क्या उसी के स्वाभाविक फल के लिए भारतवर्ष का जापान से रुष्ट होना उचित है?

सारा दोष जापान पर यह आरोपित किया जाता है कि जापान चीन पर प्रभाव जमाना चाहता है। हां, ठीक है जापान चीन पर प्रभाव जमाना चाहता है, इसमें बुराई क्या है? चीन की बन्दर-बाँट में यदि इसे भी हिस्सा मिलजाय तो हमारा क्या नुकसान है? जहां चीन पर रूसी, फरासीसी, जर्मन, अंगरेज सभी का

प्रभाव पड़ रहा है, सभी ने अपना २ प्रभाव-मण्डल व स्वार्थमण्डल चीन में बना रक्खा है, वहां यदि जापान भी ऐसा करे तो क्या दोष है? सिंगताऊ व पोर्ट आर्थर की भांति यदि चीन में स्थल स्थल पर यूरोप-एमेरिका वालों का प्रभाव बढ़ जावे व एशियाई समुद्र में इनके युद्धपोतों के लिए आश्रम तथा स्थान हो जाये तो जापान कितने दिन सुख की नींद सो सकता है? ऐसी अवस्था में यदि चीन अपनी रक्षा करने में असमर्थ है तो जापान अपनी जान क्यों जोखिम में डाले? यह कहां की बुद्धिमानी है? किन्तु संसार के जीवित मनुष्यों की यह नीति मुर्दों की समझ में नहीं आसकती इसीसे तो वे मृतक-शय्या पर पड़े २ सिसक रहे हैं।

जापान निर्जीव अथवा अर्धजीवित जातियों की भांति सुदूर भविष्य के सुन्दर स्वप्न से प्रसन्न नहीं होता और न उसे पूर्व की कथा और कीर्ति ही सुन या कह कर सन्तोष होता है। "हमारे दादा ने घी खाया था, हमारा पहुंचा सूंघ लो" इसकी उसे फुरसत नहीं है। उसे तो इतना भी नहीं याद है कि रूस-जापान युद्ध के समय उसकी क्या अवस्था थी व आज से ३० वर्ष बाद क्या होगी। पांच सात दस वर्षों में उसके विचारवान् पुरुषों की क्या दशा होगी व उसके लिये उसे क्या तैयारी करनी चाहिये वह इसीमें लिप्त रहता है। संसार की सारी जीवित जातियों का यही हाल है। क्या फरासीसियों को इसका विचार करने की फुरसत है कि चिरकाल से अङ्गरेज़ों से उनकी शत्रुता चली आती है? क्या रूस को भी इसका विचार कभी होता है कि अभी दस वर्ष ही हुए जापान से उसकी लड़ाई हुई थी? नहीं आज ये लोग वर्तमान के विचार से प्रेरित होकर ही सबके समान शत्रु जर्मनी से लड़ने के लिये तैयार हैं व आपस में मित्र हैं। दस वर्ष बाद क्या होगा, कौन किसका शत्रु कौन किसका मित्र होगा इसके विचार की फुरसत इस समय नहीं है।

किन्तु आधीन जातियों का कोई वर्तमान काल नहीं होता इसीसे वे या तो भविष्य का स्वप्न देखा करती हैं या पूर्व के गौरव की कथा कह अपना समय बिताती हैं। बिस्मार्क के पूर्व जर्मननिवासी भी भविष्य का स्वप्न देखा करते थे। मेजनी के उत्पन्न होने के पहिले इटलीवाले भी पूर्वजों की गाथा पढ़ा करते थे पर आज उन्हें वर्तमान ही वर्तमान सूझता है।

सम्पादकीय टिप्पणियां।

एक मज़ेदार खबर आई है। सन्ध्या समय एक मांझी को छोटी नौका जल में बैठ गई। नहर के किनारे नौका छोड़ कर मांझी किनारे चला गया। सबेरे उठते ही वह नौका के स्थान पर पहुंचा किन्तु उसका वहां पता न था। वह चिन्ता में डूब गया। अन्त में उसने कांड रचा। बेलियाघाट थाने में उसने जाकर एक रपट लिखाई। उसने कहा कि रात्रि में कुछ भद्र लोग आकर उसकी नौका उससे ज़बर्दस्ती छीन ले गये। पुलीस को भद्र लोगों की बदमाशी का एक नूतन प्रमाण मिला। बस फिर क्या था हिन्दुस्थानी और अङ्गरेज़ पुलीस का एक दल बदमाश बङ्गाली नवयुवकों की खोज में निकला। नहर के उस पार नौका लङ्गर के सहारे पड़ी थी। पुलीसवालों ने सोचा बस सूत्र हाथ आ गया अब बदमाशों का पता लग जायगा। किन्तु नौका के नाविक को भी पाकर उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। अन्त में पता यह लगा कि नहर का एक इञ्जिनियर जो कि उधर ही से जा रहा था, नौका को अकेली और किसी मनुष्य को आस पास न देखकर ले गया और उसने उसे नाविक के हवाले

कर दिया। पुलीस का बना बनाया खेल बिगड़ गया। भद्र लोगों को पकड़ने का अच्छा अवसर हाथ से निकल गया। अब मांझी पर मुकदमा चलेगा। भद्र लोग भी पुलीस की दृष्टि में कितने गिर गये हैं कि उनके विरुद्ध जो कुछ कह दिया जाय वह उसपर विश्वास करने में आनाकानी नहीं करती। इसपर हम भद्र लोगों को या पुलीस को किसको बधाई दें ?

मुस्लिम लीग।

कुछ मुसल्मानों के अदूरदर्शी नेताओं की राय है कि गत वर्ष की भांति मुस्लिम लीग का अधिवेशन युद्ध के कारण इस वर्ष भी स्थगित रक्खा जाय। खेद से कहना पड़ता है कि यह सर्वथा अनुचित है और वास्तव में अधिवेशन का स्थगित करना स्वयं अपनी हत्या करना है। उचित तो यह है कि अधिवेशन इस वर्ष बड़ी धूमधाम से बंबई में हो। कांग्रेस भी वहीं होगी, उसी समय यदि मुस्लिम लीग का भी जलसा वहीं पर हो तो दोनों जाति के नेता एक स्थान पर मिलकर बहुत कुछ बातें तय कर सकते हैं। देश को आवश्यकता यह पुकार पुकार कर कह रही है कि दोनों दल के लोग, देश के नेता इस समय मिलकर भविष्य का कार्यक्रम निश्चित करें। वे तय करें कि वे क्या चाहते हैं और उसकी प्राप्ति के लिए आन्दोलन करें। आदर्श निश्चित है, इसपर दोनों दल के नेता सहमत हैं कि ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत वे स्वराज्य चाहते हैं। अब इसकी स्कीम तैयार कर उन्हें देश और गवर्नमेंट के सामने रखना चाहिये। यह विषय कितने महत्व का है इसके कहने की कोई आवश्यकता नहीं। हम आशा करते हैं कि मुस्लिम लीग के सभ्य इन बातों पर विचार कर अपने कर्तव्य से पराङ्मुख न होंगे।

प्राचीन समय में सुनते हैं तीन की संख्या बहुत कल्याणकर समझी जाती थी। ब्रह्मा, विष्णु, महेश; गंगा, यमुना, सरस्वती। अङ्गरेज़ी में भी Thrice Blessed कहा जाता था, रोमन और यूनानी सभ्यता के समय में भी लोगों के विचार कुछ ऐसे ही थे किन्तु अब समय ने पलटा खाया है या यह कह सकते हैं कि वह उन्नति कर रहा है और इसलिए तीन नहीं वरन् नौ की संख्या आज दिन फैशन में आरही है।

विलायत से अभी एक सूचना आई है कि अबकी बार पी० डबलू० डी० और रेल विभाग के लिए विलायत में चुने गये पुरुषों में से केवल ९ मनुष्य भारत में पदार्पण करेंगे क्योंकि आवश्यक संख्या में मनुष्य मिल नहीं रहे हैं। युद्ध के बाद यह ठीक हो जायगा। मुख्य खबर इस प्रकार है :—

Only nine young officers recruited for Engineering Services of the P W. D. and Railways will come out to India this cold weather, the usual number of the candidates not being avaiiable. This will right itself after the ar."

इस नौ की संख्या में एक रहस्य है और इसका एक इतिहास भी है। विलायत में एक नियम है कि विलायत में चुने हुए पुरुषों में से दस फी सैकड़े से अधिक भारतवासी न हों। लोग कहते हैं कि कितने ही वर्षों से जिस संख्या में लोग चुने गये हैं उसके अन्त में ९ अवश्य रहा है क्योंकि दस के होतेही एक भारतवासी बढ़ जाता। कामन्स सभा में साफ तौर से यह कहा गया था कि ऐसा प्रबन्ध केवल भारतवासियों को दूर रखने के लिए किया जाता है क्योंकि जब १९ या २९ सभ्य चुने गये तो एकही या दो भारतवासी उसमें आसकते हैं। भाग्यवश सर के० जी० गुप्त का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। वे उस समय इंडिया कौंसिल के सभ्य थे। उनके कहने सुनने पर यह प्रथा कम हो गई थी। उनके हटते ही फिर ९

की संख्या ने दर्शन दिया है। देखें हमारे नूतन सभ्य इस सम्बन्ध में क्या करते हैं ?

एक बात और है। सरकारी सूचना के अन्त में कहा गया है कि युद्ध के बाद यह ठीक हो जायगा। सरकार का इस व्याख्या से क्या अर्थ है ? क्या हम समझ लें कि इसका अर्थ यह है कि युद्ध के अन्त होने पर विदेशी फिर पी० डब्लू० डी० विभाग में पहिले की भांति उच्च-पदों पर भर दिये जायँगे। "ठीक" का अर्थ तो कुछ और होना चाहिये। हमतो समझते हैं कि "ठीक" का अर्थ न्याय है और ऐसी दशा में उच्च पदों पर भारतवासी दिखाई देंगे क्योंकि इस विभाग में जिस योग्यता की आवश्यकता है वह अधिकतर भारतवासियों में है।

जापान क्या कर रहा है ?

जापान इस समय भारतवर्ष, आस्ट्रेलिया और चीन के बाज़ारों पर कब्ज़ा जमाने के प्रयत्न में लीन है। जो माल जर्मनी और आस्ट्रिया से आते थे उन्हें वह बना बना कर भेजने का यत्न कर रहा है। जापानी कृषि और व्यापार विभाग ने इसी हेतु से एक आस्ट्रेलियन को बुलाया है। उसका काम यही है कि वह बतलावे कि आस्ट्रेलिया में कौन २ सी वस्तु जर्मनी और आस्ट्रिया से आती थी तथा आस्ट्रेलियानिवासियों को किन वस्तुओं की अधिक आवश्यकता है, उनकी रुचि कैसी है और वे किन प्रकार की वस्तुओं को अपनाते हैं। यह मनुष्य घूम घाम कर कल कारखानों में जाता है और आस्ट्रेलिया की आवश्यकताओं पर व्याख्यान देता है। इस समय भी आस्ट्रेलिया को जापान से बड़ा माल जा रहा है। रूस से भी जापान का व्यापार बढ़ रहा है। खाकी कपड़े ही के लिए रूस से इतना आर्डर जापान को मिल चुका है कि वह दो वर्ष में भी उसे पूरा नहीं कर सकेगा इतनाही नहीं रूसी सैनिकों के लिए जूते भी जापान में बन रहे हैं। कोई ऐसा खाली गृह वहां नहीं है जहाँ पर १००।५० मनुष्य बैठे जूते न तैयार कर रहे हों।

जीती जागती जाति ऐसे काम किया करती है।

अमृतसर से शिक्षा।

पंजाब दिन दिन उन्नति और सुधार के क्षेत्र में आगे बढ़ता जाता है। लाहोर के शहर से वेश्याएँ बाहर करदी गईं। अब खबर आई है कि अमृतसर से शराब की दूकानें बाहर कर दी गईं। इस सुधार के लिए मि० किङ्ग और छोटे लाट धन्यवाद के पात्र हैं।

क्या अन्य शहरों के, विशेषकर कलकत्ता, बंबई और प्रयाग के, आबकारी विभागवाले इस संबन्ध में अमृतसर से शिक्षा ग्रहण करना पाप समझते हैं ?

विचार-स्वातंत्र्य।

इङ्गलैंड स्वतंत्रता का केन्द्र है, उसका जन्म दाता है और उसका बड़ा ज़बर्दस्त पृष्ठपोषक है। भारत के संबन्ध में न भी सही तो भी इङ्गलैंड के लिए यह अक्षरशः सत्य है। युद्ध के संबन्ध में वहां कुछ मतभेद है। आइरिश दल के नेता मि० रामज़े मेकडानल्ड भी विरोधियों में हैं। उन्होंने कुछ पैम्फलेट आदि इसी सम्बन्ध में निकाले हैं। लकीर के फकीर और स्वतंत्रता के जानी दुश्मन मि० जे० डी० रीश से पाठक परिचित हैं। यह भला कब सहन कर सकते थे। कामन्स सभा में इन्होंने यह प्रश्न पूछा कि रामज़े मेकडानल्ड पर मुकदमा क्यों न चलाया जाय ? अन्य सदस्य इसका उत्तर देते रहे। अन्त में युद्ध-विभाग के उपमंत्री मि० टीनैन्ट का उत्तर सुन मि० रीश को चुप हो जाना पड़ा। मि० टीनैन्ट ने कहा—"क्या माननीय सदस्य को निश्चय है कि मि० मेकडानल्ड पर मुकदमा चलाया जा सकता था ? मि० मेकडा-

नल्ड ने गवर्नमेंट के कार्य और परराष्ट्र-सचिव पर जो टीका-टिप्पणियाँ प्रकाशित कीं, उनकी मैं निन्दा करता हूँ और मेरा विश्वास है कि सारी कामन्स सभा भी ऐसा ही करेगी। वे बड़े शोचनीय लेख थे परन्तु उनके कारण मि० मेक-डानल्ड पर मुकदमा कायम (चला नहीं ?) हो सकता है यह दूसरी बात है। इङ्गलैंड सदा से एक स्वाधीन देश समझा जाता रहा है। हम सदा से कहते आए हैं कि **प्रत्येक पुरुष को प्रत्येक विषय पर अपना मत प्रगट करने का अधिकार है, चाहे वह मत मूर्खतापूर्ण ही हो—मूर्खता के लिए कभी मुकदमें नहीं चलाये गये चाहे उसका वक्तव्य शोचनीय क्यों न हो। वाणी और लेख की स्वतंत्रता की रक्षा के पक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है और इन दोनों को बनाये रखना वाञ्छनीय है।**"

इस फटकार के सुनने तथा कुछ भी उत्तर न दे सकने में मि० रीश के साथ हमें पूर्ण सहानुभूति है यद्यपि उन्हें चुप रह जाने का कोई कारण न था। उन्हें कह देना था कि उनका ख्याल था कि इङ्गलैंड की ही देखरेख में भारत शासित हो रहा है और जब इङ्गलैंड भारत में बोलने और लिखने की स्वतंत्रता का गला घोटना अनुचित नहीं समझता तो वे समझे थे कि उसके विचारों में कुछ परिवर्तन हो गया है।

कमखर्च वाले नशान।

दक्षिण एफ्रिका के "रैंड डेली मेल" में निम्न लिखित विज्ञापन प्रकाशित हुआ है:—

भारतीय भाषाओं का व्याख्याता।

मेजिस्ट्रेट प्रिटोरिया के स्टाफ के लिए एक व्याख्याता की आवश्यकता है। वेतन १२० पौंड से लेकर १६५ पौंड तक वार्षिक होगा। ३६ से ३८ पौंड तक एलाउन्स भी मिलेगा। पहिले ३ मास के लिए ही मनुष्य रक्खा जायगा।

(१) निवेदनपत्र भेजनेवाला सच्चरित्र और यूरोपियन होना चाहिये।

(२) तामील का उसे अच्छा ज्ञान होना आवश्यक है साथ ही उसे टेलुगू, गुजराती और हिन्दुस्तानी का भी ज्ञान होना चाहिये।

यूनियन गवर्नमेंट को चार भाषाओं का जाननेवाला सच्चरित्र यूरोपियन इस वेतन पर मिलना कठिन है। सस्ता मनुष्य ढूंढने के अर्थ उसे भारत में यह विज्ञापन वितरण कराना चाहिये। कितने ही ग्रेजुएट इससे भी कम वेतन पर मिल जायँगे। सस्ते वेतन के लिए भारत का बाज़ार खाली है किन्तु भूल हुई भारतवासियों के लिए तो वहाँ स्थान ही नहीं।

भारत का शासन किस भांति होना चाहिये।

सर एन० चन्द्रावरकर ने एक लेख में लिखा है:—इस युद्ध के समय में सहसा सर हेनरी लारेन्स का कथन याद आजाता है जो उन्होंने सन् ८५ की क्रीमियन वार के कुछ ही दिन बाद कहा था:—

"स्थायी शान्ति कभी नहीं स्थापित हो सकती। अभी उसका समय नहीं आया है। अभी सिद्धान्त की बातों की लड़ाई लड़ना बाकी है। इङ्गलैंड को अपना भाग्य और भविष्य स्वयम् गढ़ लेना चाहिये। इङ्गलैंड को भारत का शासन भारतवासियों के हित के लिए और यथाशक्ति उन्हीं के द्वारा करना चाहिये और उस दशा में न इङ्गलैंड और न भारत को ही

रूस या एमेरिका या दोनों की सम्मिलित सेनाओं के आक्रमण से कोई डर रह जायगा।"

इस बात को सर हेनरी लारेन्स ने ३० वर्ष हुए तब कहा था। इङ्गलैंड को सोचना चाहिये कि अपने शुभचिन्तक के बताये हुए मार्ग पर वह कितना चला है ?

मनुष्य चाहियें।

युद्धक्षेत्र से बराबर यही पुकार आरही है। लार्ड किचनर ने भी अभी कामन्स सभा में युद्ध की स्थिति का दिग्दर्शन कराते हुए यही कहा था। वास्तव में यह किसी से छिपा नहीं है कि विजय उसी की होगी जिसके पास चाँदी की गोलियां अधिक हैं और जो अधिक दिन रण-क्षेत्र में अड़ सकेगा। इसका अर्थ यह है कि विजय धनबल और मनुष्यबल पर अवलंबित है। इङ्गलैंड को किसी की भी कमी नहीं है। जो राष्ट्र फ्रांस, रूस, सर्विया, बेलजियम, रूमेनिया, इटली आदि को इस समय भी धड़ाधड़ रुपया उधार दे सकता है उसको भला धन की कमी कब हो सकती है। रही मनुष्य-बल की बात उसके लिए भी इङ्गलैंड को कहीं ढूंढ़ने जाना नहीं है। यह बात हो दूसरी है कि अपनी शक्ति (Resources) को भले प्रकार या भरपूर काम में वह न लावे। अकेला भारत इतना मनुष्य-बल दे सकता है कि रण-क्षेत्र में जगह न रह जाय। हम जानते हैं कि इङ्गलैंड के राजनीतिज्ञ हमें स्वयंसेवक नहीं बनाना चाहते हैं। जिस भांति हम युद्ध में सहायता पहुंचाया चाहते हैं वह उन्हें पसन्द नहीं किन्तु बार २ "मनुष्य चाहिये, मनुष्य चाहिये" की पुकार को सुनकर क्या करें चुप भी नहीं रहा जाता। क्या ही अच्छा हो यदि इङ्गलैंड के राजनीतिज्ञ ऐसा प्रबन्ध करदें कि कम से कम यह खबर रायटर हम लोगों के कानों तक पहुंचा कर हमें व्यर्थ में दुःखित न करे।

रामज़े मेकडानेल्ड की पूजा।

एक पादरी ने अभी यह लिखा है :—

Mr. Macdonald has no moral right to enjoy liberty and security under the British flag: he has insulted the king, his ministers and the nation, and he has discouraged effort to bring the war to a successful end."

अर्थात् मि० मेकडानेल्ड को कोई नैतिक अधिकार नहीं है कि वे स्वतंत्रता का उपभोग करें या ब्रिटिश झंडे की छाया में रक्षित रहें। साफ शब्दों में इसके मानी यह हैं कि उन्हें जेल में होना चाहिये या देशबाहर कालेपानी में, क्योंकि उन्होंने राजा को, मंत्रियों को, और स्वजाति को अपमानित किया है और यह कि युद्ध को सफलतासहित समाप्त करने के प्रयत्न और उत्साह पर उन्होंने ठंढा पानी छोड़ा है। सौभाग्य से मि० मेकडानेल्ड अङ्गरेज़ हैं और स्वतंत्रता के महल इङ्गलैंड में हैं और क्या कहें।

सिविल सर्विस का सुधार।

मध्यप्रदेश की विगत व्यवस्थापक सभा में चीफ कमिश्नर साहब ने कहा है कि २॥ लाख रुपया सिविलसर्विस की भलाई के लिए अलग कर दिया गया है तात्पर्य यह कि सिविल-सर्विस पर वहां ढाई लाख और व्यय होगा। कहना नहीं होगा कि अधिकांश रुपया अङ्गरेज़ों के जेब में जायगा। अब वहां पर ६३ ऊँचे ऊँचे पद होंगे इनमें से ७ पर हिन्दुस्थानी होंगे। हिन्दुस्थानी यदि इतने पर भी सन्तुष्ट न हों तो यह सर्वथा उनका दोष है।

लाहोरी षड्यंत्र।

षड्यंत्र के मुकदमे का फैसला सुना दिया गया। ६१ अभियुक्तों में २४ को फांसी, २७ को जन्मभर के लिए कालापानी, ६ को विविध

प्रकार की सज़ाएँ और ४ छोड़ दिये गये हैं। ६१ अभियुक्तों में से ५१ मनुष्यों को कानूनन जो कड़ी से कड़ी सज़ा दी जा सकती है वह दी गई है। फैसला बहुत सख़्त है और समस्त देश के निवासियों की यह इच्छा है कि श्रीमान् लार्ड हार्डिञ्ज स्वयम् देखभाल कर दयामिश्रित न्याय करें।

गोरे पत्र जो चाहें कहें, वे इस फैसले को कैसाही न्यायानुमोदित और उचित क्यों न समझें किन्तु भारतवासी यह जानते हैं कि इससे गुरुतर अपराध करने तथा सम्राट् के विरुद्ध सेना ले खड़े होने और लड़ाई लड़ने पर भी दक्षिण एफ्रिका के जनरल डी वेट और उनके साथियों को नाममात्र की सज़ाएँ हुई हैं। दो वर्ष का जेल उसमें घर सा आराम। यदि डी वेट वगैरह अपने अभीष्ट की सिद्धि लाभ करते तो उसका प्रभाव साम्राज्य पर क्या पड़ता, साथ ही यदि हमारे ये अपढ़ दसबीस पचास भाई खड़े भी हो जाते तो क्या कर लेते "एक चना भाड़ नहीं फोड़ सकता" जब कि यह भले प्रकार मालूम है कि समस्त जनता राजभक्त है और उसका विश्वास है कि इङ्गलैंड के साथ रहने में ही उसका हित है।

हम सदा बिगड़े मस्तिष्क वालों के बुद्धि-बिहीन कार्यों की निन्दा करते हैं कोई भी देश का शुभचिन्तक उनसे सहानुभूति नहीं रखता। एङ्गलो-इंडियनों की अपेक्षा हम लोग उनके कामों से अधिक दुःखी होते हैं और उनकी निन्दा करते हैं। ऐसे कामों के होने पर एङ्गलो-इंडियनों को क्रोध आता है किन्तु कारे बादलों के पीछे, उनकी कोरों पर उन्हें रुपहली रेखा भी दिखाई देती है। भारत पर कब्ज़ा जमाये रखने के लिए, उसकी हीनता प्रगट करने के उन्हें सुबूत और मिल जाते हैं और कब्ज़ा जमाये रखने के लिए वे अधिक सख़्ती करने को लालायित होते हैं। इसके विपरीत अराजकों की करतूतों से हम लोगों को दुःख होता है क्योंकि हम देखते हैं कि हमारे मेल के काम में यह बाधक होता है। इसके सुबूत के लिए भी हमें कहीं दूर नहीं जाना है। षड्यंत्र के विषय में लेख लिखते हुए "टाइम्स आव इंडिया" ने लिखा है:—

If must influence our form of Government अर्थात् इसका हमारे शासन-सम्बन्धी प्रथा पर अवश्य प्रभाव पड़ना चाहिये। इसके क्या मानी हैं? साफ शब्दों में इसका अर्थ यह है कि "टाइम्स" चाहता है कि यह षड्यंत्र जिसे कि "टाइम्स" भी स्वीकार करता है कि जनता के सद्विचार और उसकी राजभक्ति के कारण असफलता प्राप्त हुई, हमारे "स्वराज्य के दावे" के विरुद्ध खड़ा किया जाय। हम लोग भी यह सब जानते हैं और इसी कारण षड्यंत्र आदि को शिक्षित और अशिक्षित समाज घृणा की दृष्टि से देखता है किन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी हमें कहना पड़ता है कि बहुत सख्त सज़ाएँ भी व्यर्थ होती हैं। अराजक दल-वाले दल में सम्मिलित होने के पहिले स्वरक्षा के प्रश्न को बलाय ताख रख देते हैं, फाँसी आदि का भय उन्हें नहीं रहता। फाँसी आदि के होने से उन्हें कोई क्षति नहीं पहुंचती। किन्तु सख्त सज़ाओं से जो अराजक दल के जानी दुश्मन हैं उनकी भी सहानुभूति आप से आप उनके प्रति हो जाती है। समाज में अराजकों के प्रति सहानुभूति के भाव को बढ़ाना अभीष्ट नहीं, यह समाज के लिए हितकर नहीं और सरकार को इसका सदा ध्यान रखना चाहिये। यदि सख्त सज़ाओं से अराजकदल का दमन हो सकना संभव होता तो आजदिन संसार में अराजकों का नामोनिशान न होता।

हम श्रीमान् वाइसराय का ध्यान कमिश्नरों के इस कथन की ओर भी आकृष्ट करते हैं। कमिश्नरों ने लिखा है:—"हम इस

बात का दावा नहीं करते कि इस षड्यंत्र की सब बातों को हम पूरी तरह जानते हैं पर वह बात जो हमने गवाहियों से संग्रह की है उसे हम अवश्य प्रगट करना चाहते हैं। वह बात यह है कि सम्भवतः राज्यविप्लवकारी संस्था का सर्वव्यापी भाव होने पर भी हमें विश्वास है कि यह वह संस्था है जिसे भारत के अधिकांश पुरुष घृणा से देखते हैं। इस बात का हम पर प्रभाव पड़ा है और इस मुकदमें में एक नहीं ऐसे अनेक उदाहरण मिले हैं कि सब श्रेणियों और सब मतों के लोग हृदय से राज-भक्त हैं और वे चाहते हैं कि देश में शान्ति बनी रहे और लोग कानून को पूरी तरह मानें। हमने इस बात पर विशेष रूप से लक्ष्य किया है कि चब्बा की डकैती में गांव के कितने ही लोगों ने ऐसी बड़ी बहादुरी दिखलाई है जिसका कोई भी आदमी उचित अभिमान कर सकता है। हमें और भी अनेक उदाहरण मिले हैं जिनमें निस्संकोच होकर लोगों ने इन उपद्रवियों के विरुद्ध गवर्नमेंट का साथ दिया है।"

इससे यह साफ प्रगट होता है कि अधिकतर जनता राजभक्त है और ऐसी दशा में शिक्षा देनेवाली बड़ी कड़ी सज़ा की कोई आवश्यकता नहीं है।

मादक वस्तु।

डा० लैंडर ब्रंटन ने "नाइनटीन्थसेंचुरी" नामक पत्रिका में लिखा है:—

"अपनी मानसिक शक्तियों को दुरुस्त करने के लिए शराब (alcohol) मनुष्य में बड़ी ज़हरीली फसाहत पैदा कर देती है और आदमी समझने लगता है कि शराब लेने के वक्त वह अधिक शक्तिमान्, अधिक बुद्धिमान् और अधिक प्रसन्न हो जाता है और यही सब बातें आदमी को धोखे से खतरे में डालती हैं। इस फसाहत से प्रसन्न होने की इच्छा बार बार उत्पन्न होती है, इतना ही नहीं किन्तु नियमित रूप से धीरे धीरे इसका प्रभाव जाता रहता है और जो प्रसन्नता प्राप्त करने की वह इच्छा करता है उसे प्राप्त करने के लिए मनुष्य को अधिक अधिक शराब पीनी पड़ती है और संचित मानसिक शक्तियों का बहुत अधिक अंश व्यय करना पड़ता है। दूसरों के मत का आदर न करना, अपने कर्तव्य कर्मों से विमुख रहना और अपने कुटुम्ब या अपने देश के प्रति अपने आचरण के फलों की जो बातें पहले तक हृदय में उपस्थित थीं उनकी ओर बेपरवाही करना, ये सब बातें शराब पीने के बाद शीघ्रही धीरे धीरे अपना प्रभाव जमाती हैं और मनुष्य की प्रवृत्ति ऐसी हो जाती है कि वह दूसरों का बिलकुल खयाल करना ही नहीं छोड़ देता है वरन आत्मगौरव के ध्यान को भी वह अपने से दूर कर देता है। यही नहीं कि काम करने में उसकी तबियत नहीं लगती, अच्छा काम करने के वह योग्य नहीं रहता और जहां हाथ से बारीक काम करना पड़ता है वहां शराबखोर आदमी ऐसा बेमसरफ हो जाता और उसका काम ऐसा खराब होता है कि उसके साथियों का समय नष्ट होता है और अपने मालिक के लिए वह लाभ की जगह भार रूप हो जाता है। इसका फल यह होता है कि वह अपनी जगह से बर्खास्त कर दिया जाता है। धंधा चले जाने से दरिद्रता आती है और इस दशा में वह, उसकी पत्नी और उसके कुटुम्बीगण अपने अधिक गम्भीर पड़ोसियों के लिए भाररूप हो जाते हैं।"

ऐसी बुरी वस्तु का प्रचार बन्द करने के लिए सरकार कब तक हाथ पैर न हिलायेगी?

मादक वस्तुएँ।

एमेरिका के एक कनसास (Kansas) नाम

के राष्ट्र में विगत ३० वर्षों से शराब आदि मादक वस्तुओं का बिकना बिलकुल बन्द कर दिया गया है। फल यह हुआ है:—

(१) कनसास की १०५ कौंटियों में से ८७ में एक भी पागल मनुष्य नहीं है।

(२) इनमें से २४ कौंटियों में कोई भी कमज़ोर मस्तिष्क या हृदय का मनुष्य नहीं है।

(३) ९६ कौंटियों में एक भी मतवाला मनुष्य नहीं है।

(४) ३८ कौंटियों के Poor Houses (दीन पुरुषों के लिए गृह) खाली पड़े हैं।

(५) ५३ जेलखाने अभी बिलकुल खाली पड़े थे और ६५ कौंटियों में राष्ट्रीय प्रायश्चित्त गृहों में एक भी मनुष्य न था।

(६) समस्त राष्ट्र में कुल ६०० से कम ही कंगाल हैं।

(७) बहुत सी कौंटियों में प्रायः दस वर्ष हुए एक बार भी जूरी किसी फौजदारी मुकदमे को सुनने के लिए नहीं बुलाई गई है।

(८) समस्त जनता में से केवल दो फी सैकड़ा मनुष्य अपठित है।

(९) पहिले मृत्यु १००० पीछे १७ होती थी किन्तु अब १००० पीछे ७ ही होती है।

संसार के राष्ट्रों को सोचना चाहिये कि मादक वस्तुओं के कर की आय से यह आय अच्छी है या नहीं?

हृदयविदारक घटना।

पूर्व बंगाल में अकालरूपी राक्षस मुँह बाये दौड़ रहा है। खबर आई है कि अभी एक मनुष्य जो दो दिन तक उपवास कर चुका था किसी प्रकार से कहीं से कुछ चावल लाया। उसने अपनी गृहलक्ष्मी को उसे पकाने के लिए दे दिया। चावल पक भी न पाया था कि लगान वसूल करने को चौकीदार उपस्थित हो गया और उसने उसके "चावल" छीन लिए और उसे लेकर चलता हुआ। गरीब मनुष्य क्या कर सकता था? सरकारी लगान का मामला, दूसरे सरकारी चौकीदार, उसे संसार में रहना बहुत कठिन प्रतीत हुआ और उसने आत्महत्या कर डाली। सती स्त्री ने भी पति से अलग रहना उचित न समझ कर उसी के बताये पथ का अनुसरण किया।

इस घटना पर टीकाटिप्पणी करना व्यर्थ है किन्तु इससे यह विदित होता है कि अकालपीड़ित स्थानों में भी कोई कोई निर्दयी लालपगड़ीवाले किस तरह लगान वसूल करते हैं।

सफलता भी अर्थरहित होगई।

पंजाब यूनीवर्सिटी का एक विचित्र नियम है। कानून की परीक्षा में वहाँ पर अबकी बार ६० युवक पास हुए हैं किन्तु चीफ कोर्ट ने नियम बना दिया है कि प्रत्येक वर्ष केवल ३० ही नये वकील वकालत कर सकेंगे। अब प्रश्न यह है कि जो ३० युवक बाकी बचे और जो कानून की परीक्षा पास कर चुके हैं उनका क्या होगा। वे क्या करेंगे? मर मर कर परीक्षा पास की, सफलता लाभ की किन्तु उससे कोई अर्थ न निकला। न वे फिर से परीक्षा में सम्मिलित हो सकते हैं और न वकालत ही कर सकते हैं। यह कैसा न्याय है विशेषकर जब लंडन, आयरलैंड आदि से विद्यार्थी परीक्षा पास कर वहाँ बैरिस्टरी कर सकते हैं तो उसी यूनीवर्सिटी की परीक्षा पास किए हुए लोग उससे क्यों वंचित किए जायँ।

हम तो समझते हैं कि यूनीवर्सिटी को यह भी नियम बना देना चाहिये कि प्रत्येक वर्ष ३० से अधिक विद्यार्थी वहाँ परीक्षा न दे सकें और साथ ही अन्य विश्वविद्यालयों से पास हुआ कोई भी मनुष्य वहाँ पर वकालत न कर सके।

स्वतंत्र मनुष्य का स्वत्व।

प्रोफेसर एफ० जे० सी० हर्नशा ने, "मार्निङ्ग पोस्ट" नामी पत्र में, प्रत्येक मनुष्य के हथियार बाँधने, रखने और उसके उसे चलाना जानने के कर्तव्य के संबन्ध में एक बहुत ही सुन्दर लेख लिखा है। उन्होंने लिखा है कि अस्त्र शस्त्र रखना और उसे चलाना जानना प्रत्येक "स्वतंत्र मनुष्य" का प्रथम स्वत्व है। क्या इसी के कारण तो अङ्गरेज़ भरतवासियों को, जिन्हें अस्त्र शस्त्र रखने आदि का अधिकार नहीं, नीची दृष्टि से तो नहीं देखते ?

अनिवार्य सैनिक सेवा

के संबन्ध में उन्होंने लिखा है कि स्वतंत्र मनुष्य का यह चिन्ह था। युद्ध के समय न बुलाया जाना यह प्रगट करता था कि मनुष्य "गुलाम" Slave a Serf या ग़ैर है। आगे चल कर प्रोफेसर ने लिखा है:—

Not to be called to defend ancestral liberty when it was endangered, not to be allowed to carry arms to maintain the integrity of the fatherland, was a degradation which branded a man as unfree"

अर्थात् "परम्परागत स्वतंत्रता के संकट में आने पर उसकी रक्षा के लिए न बुलाया जाना, जननी जन्मभूमि की रक्षा के लिए अस्त्र शस्त्र न रख पाना छोटेपन का द्योतक था और ऐसा मनुष्य अस्वतंत्र पुरुष कहलाता था।"

इसमें सन्देह नहीं कि प्रोफेसर साहब की बातें अक्षरशः सत्य हैं। अस्त्र आईन के पास होने के बाद ही से भारतवासी हीन हो गये हैं। स्वतंत्रताप्रेमी इङ्गलैंड ने अंधकार में फिर रोशनी फैलाई है, जंगल में उसने फिर नाद किया है, प्रतिध्वनि भारत में गूँज रही है और भारत खड़ा हो कर कह रहा है "स्वतंत्र देश, स्वतंत्रता के प्रेमी इङ्गलैंड अस्त्र आईन को रद्द कर हमारे पुत्रों को भी स्वतंत्र मनुष्य बनने दे"

कमज़ोर की लुगाई।

"ट्रिब्यून" पत्र ने एक विचित्र खबर छापी है। सहसा विश्वास नहीं होता किन्तु यह सोचकर कि सहयोगी झूंठ खबर न छापेगा और यह कि "कमज़ोर की लुगाई गांव की भौजाई" हुआ करती है हम खबर को छापे देते हैं:—

'लाहौर टेलीग्राफ आफिस में २४ तारीख को टाइमकीपर सोहनलाल को एक एङ्गलो-इंडियन ने दफ़्तर के भीतर, टेलीग्राफ मास्टर तथा अन्य कर्मचारियों के सामने खूब पीटा, ठोकरें लगाईं और गालियां सुनाईं। पांचवीं वार यह एक हिन्दुस्थानी वहां गोरे प्रभुओं का शिकार हुआ है।"

एक राजधानी में, सरकारी दफ़्तर में एक भारतवासी की यह दशा हो और लोग देखें और कोई चूँ न करे, यह विचित्र दृश्य है। मालूम नहीं दर्शकों में उसके कोई जातिभाई थे या नहीं ?

हर्ष सूचना।

पाठकों को यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि हिन्दी पाठकों को सुविधा के लिए हमने "मर्यादा पुस्तक भंडार" के नाम से एक पुस्तक-विभाग खोल दिया है। इस विभाग से सभी हिन्दीसाहित्य की पुस्तकें प्राप्त हो सकेंगी। ग्राहकों को विविध पुस्तकों के खरीदने के लिए विविध प्रेसों को आर्डर भेजने में पैसा नहीं खर्च करना पड़ेगा साथहा उन्हें सबके लिए अलग वी० पी० का खर्च भी नहीं उठाना पड़ेगा। आशा है हिन्दी पुस्तकों के ग्राहक हमें आर्डर भेज हमारे उत्साह को बढ़ावेंगे।

मैनेजर मर्यादा, प्रयाग।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग, में बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित हुई।

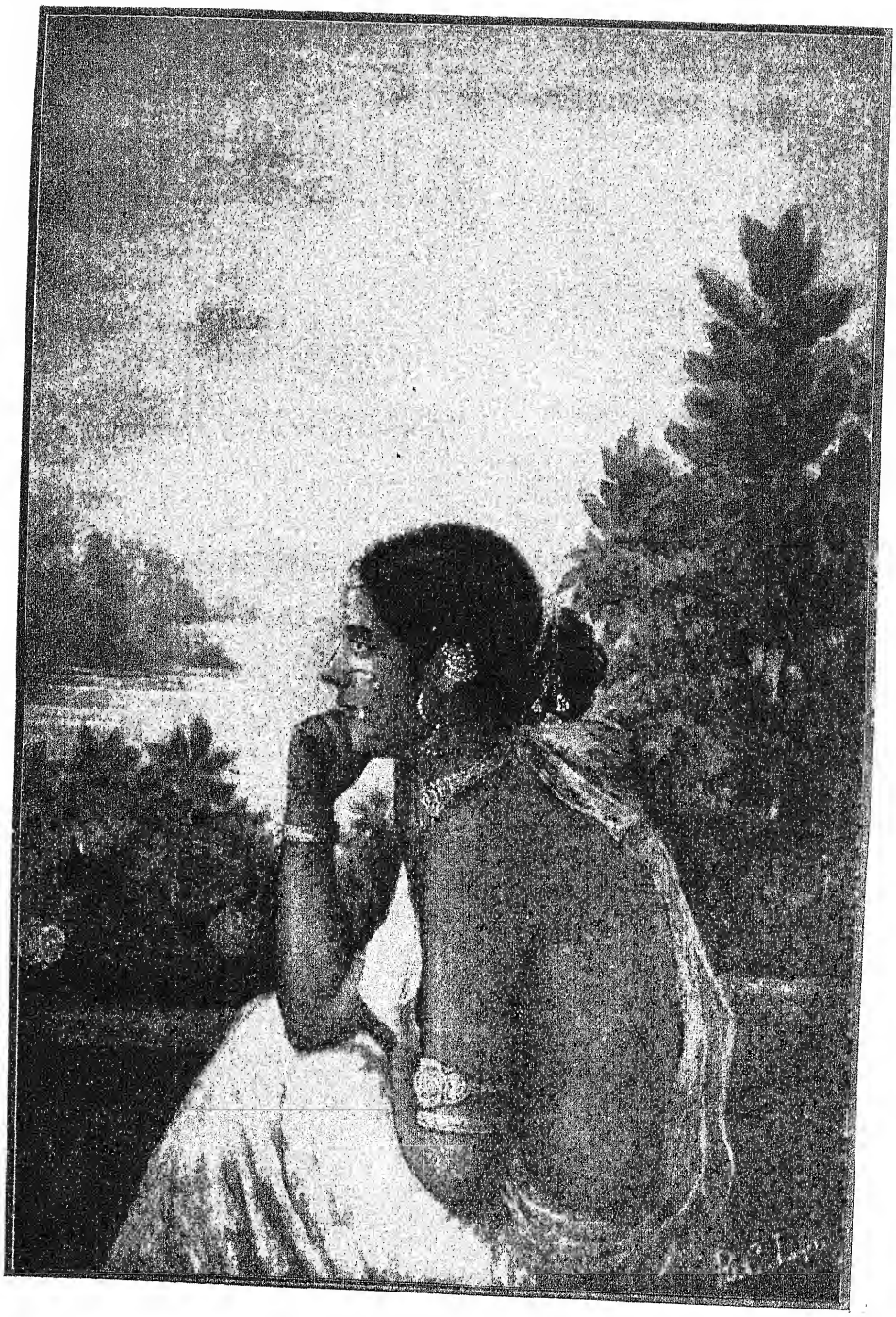

MOHILA PRESS
Calcutta

मर्यादा

सचित्र मासिक पत्रिका ।

भाग १०] अक्तूबर सन् १९१५-आश्विन [संख्या ४

समय और उसका उपयोग ।

[लेखक—श्रीयुत लोताराम गुप्त बी० ए० ।]

आजकल जिधर दृष्टि डालिये उधर यही देखने में आता है कि जनसमूह लगातार तो काम में लगा हुआ है, क्या स्त्री क्या पुरुष सभी किसी न किसी कार्य में निमग्न हैं और इस पर भी यही पुकार होती रहती है 'काम हो कहां से समय तो है ही नहीं'। यदि एक ओर बेचारे व्यापारीगण प्रातःकाल से ही उठ कर रात के १२ बजे पर्यन्त अपनी उसी व्यापार-सम्बन्धी उधेड़बुन में लगते हुए भी यही कहते हुए सुनाई देते हैं कि काम निमटता ही नहीं, अमुक कार्य तो अधूरा ही रह गया और अमुक तो बिल्कुल ही नहीं हुआ; तो दूसरी ओर विद्यार्थीजन अलग ही कहा करते हैं 'क्या करें, किधर जाय, एक मिनट की भी फुरसत नहीं, इसपर भी पढ़ने लिखने का इतना काम पड़ा हुआ है इत्यादि'। निस्सन्देह सभी मनुष्य अपने अपने कार्यों में लगे रहते हैं तथापि वे काम उनके ठीक समय में पूरे नहीं हो पाते। प्रिय पाठको! यदि आप इसका कारण सोचने को बैठें तो यही बात होगा कि हम अपने समय का उपयोग ही ठीक नहीं करते, नहीं तो समय बहुत है और वास्तव में यह ठीक भी है, ये सारी शिकायतें और असफलताएं इसी कारण हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि हमारे समय का अधिकांश तो निरर्थक कार्यों और व्यर्थ वार्त्ता-

लाप इत्यादि में जाता है; और अधिकतर नित्यहा हम लोग समय की अवहेलना किया करते हैं उसका काम में लाना अथवा उसकी कदर करना तो दूर रहा यदि आज का काम आज हो भी सकता है तो भी हम ख्वाहम-ख्वाह उसको कल के लिये टाल देते हैं और उसका वैसाही फल पाते हैं, न केवल सैकड़ों और सहस्रों रुपयों का नुक़सान ही उठाते हैं किन्तु साथही बहुत अच्छे २ अवसर भी खो बैठते हैं जो फिर सारी उम्र में भी नहीं मिलते। यह प्रत्यक्ष देखने में आता है और कोई भी मनुष्य इससे इन्कार नहीं कर सकता। अस्तु, यह जोर के साथ कहा जा सकता है कि यदि हम अपने समय का यथार्थ ही सदुपयोग करें तो न केवल उन हानियों और उनके कारण होनेवाली अनेक मानसिक चिन्ताओं से ही बच सकेंगे, बल्कि साथही हर प्रकार का पूरा २ लाभ उठावेंगे।

हमारे बहुत से पाठक कहेंगे कि हम समय को अपने उचित उपयोग में तो बहुत लाना चाहते हैं परन्तु यह तो जानते ही नहीं कि उस का सदुपयोग किया किस भांति जाय। प्रिय सज्जनो! इसके उत्तर में संक्षेप रूप से इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि आप अपने समय की कार्यानुसार व्यवस्था कर डालिये और तदनु-सार ही प्रत्येक कार्य कीजिये। फिर देखिये कि आप स्वयं ही उसके सदुपयोग को जानने लगेंगे तथापि इस अवसर पर कुछ ऐसे सिद्धान्तों का बतलाना आवश्यक जान पड़ता है जो विशेष कर नवयुवकों के लिए बहुत ही उप-योगी हैं :—

(१) जो समय मिले उसी को फौरन अपना बना लो, उसका एक मिनट भी व्यर्थ न खोओ, क्योंकि वह समय फिर नहीं मिलने का। किसी ने क्या ही अच्छा कहा है कि समय सदाही अज्ञात अवस्था में दौड़ता रहता है और उसकी चाल बिजली की चाल से भी कहीं बढ़कर है; उसका सिर गंजा है, केवल एक छोटी सी चोटी आगे की ओर है, अस्तु, ज्योंही वह आपके निकट से दौड़ता हुआ निकले फौरन उसकी आगेवाली चोटी पकड़ लो। यदि आपने आधे सेकंड की भी देर की तो वह निकल जायगा और फिर हाथ न आवेगा, चाहे आप पीछे से कितना ही हाथ मलें क्योंकि उसके सिर पर पीछे की ओर बाल हैं ही नहीं—इस भांति आप समझ सकते हैं कि जहां किञ्चित्मात्र भी देर हुई कि समय निकल गया। अब विचार कीजिये कहां तो यह बात और कहां हमारा घंटों का व्यर्थ वार्त्तालाप अथवा निरर्थक खेल—इस कारण चाहिये कि हम अपने समय का एक पल बिना किसी कार्य के न जाने दें। साथही यह भी ध्यान में रखना परमावश्यक है कि समय सदा इन्हीं छोटे २ पलों से बनता है। यदि हमने इन छोटे २ पलों को ही व्यर्थ नष्ट कर दिया तो समझ लो कि सारा समय ही नष्ट हो गया, और यदि हमने इनको कार्य में ले लिया तो समय का अच्छा उपयोग हो गया।

(२) प्रथम केवल आवश्यक कार्यों को ही हाथ में लो और उनको तुरन्त कर डालो; उनको किसी दूसरे समय के लिए न टालो। जो मनुष्य अपने कार्यों को फिर के लिये टालते रहते हैं उनके बहुत से कार्य सदा बिना किये हुए ही पड़े रह जाते हैं और अन्त में उनको बड़ी २ हानियां उठानी पड़ती हैं। कहा भी है "काल करै सो आज कर, आज करै सो अब" यह भी हमेशा ध्यान रक्खो कि हम समय का उपयोग करते हुए भी अधिकतर लाभ किस भांति उठा सकते हैं। बहुत से मनुष्यों में, विशेषकर विद्यार्थियों में, ऐसा देखा जाता है कि वे अपने समय को कार्य में तो लगाते हैं परन्तु आवश्यक कार्य में नहीं लगाते। उदाहर-णार्थ किसी विद्यार्थी को कल इतिहास में तो परीक्षा होने को हो और आज संध्या को पढ़ने के समय हो किसी शिक्षाप्रद उपन्यास या रेखा-

गणित की पुस्तक को लेकर पढ़ने बैठ जाय, तो उसका समय निरर्थक तो नहीं गया परन्तु उसका सदुपयोग नहीं हुआ। समय का वही उपयोग सदुपयोग कहा जायगा, जिसमें ठीक कार्य ठीक समय पर हुआ हो। इस कारण हमको अपना समय प्रथम केवल आवश्यक कार्यों में ही लगाना चाहिये।

(३) इसके साथही एक बात यह है कि ठीक कार्य को ठीक समय पर करो। इसके लिए पहिले ही यथोचित रीति से अपने समय को प्रत्येक कार्य के लिये विभाजित कर लेना परमावश्यक है। जब हमारा समय इस भांति भिन्न२ कार्यों में विभाजित हो जाय तब हमको देखना चाहिये कि अमुक समय का कार्य उसी निश्चित समय में होता है या नहीं, यदि नहीं तो उसको उसी समय में समाप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये। ध्यान रहे कि सुबह का कार्य, कितना ही छोटा क्यों न हो, शाम के लिये कभी न छोड़ा जाय, क्योंकि इस भांति छोड़ा हुआ कार्य धीरे २ बहुत हो जाता है और कभी २ तो हो ही नहीं पाता। दूसरे प्रत्येक पहर, नहीं नहीं, प्रत्येक घंटा तथा मिनट तक अपना नया काम आपके सामने लाते हैं इस कारण प्रति घंटा तथा मिनट का कार्य उसी घंटे तथा मिनट में समाप्त कर देना नितान्त आवश्यक है। इसी को अङ्गरेज़ी में Punctuality अर्थात् कार्य को ठीक समय पर करना कहते हैं। जिस भांति एक कार्यकुशल पुरुष उससे दुगनी पुस्तकें एक सन्दूक में रख देगा, जितनी कि एक मूर्ख पुरुष उसमें रख सकेगा इसी भांति ठीक समय पर कार्य करनेवाला मनुष्य एक साधारण पुरुष से दुगना काम कर लेगा और उससे कहीं बहुत कुछ अच्छा करेगा, क्योंकि ठीक समय पर कार्य करने के कारण वह उस कार्य को शान्तिपूर्वक कर सकेगा।

(४) एक समय में एकही कार्य करो। यदि आपने एक से अधिक कार्य एकही समय में किये तो याद रक्खो कि उनमें से कोई सा भी कार्य अच्छा और पूरा न हो सकेगा, क्योंकि एक समय में एकही कार्य के करने में चित्त की स्थिरता और शान्ति से काम लिया जा सकता है जो एक कार्य का उत्तम समाप्ति के लिये परमावश्यक है। कहा भी है,

"एकहि साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।"

(५) जिस किसी भी कार्य को करो उसे पूरा करके छोड़ो; अधूरा कभी न छोड़ो। यदि बीच में विश्राम भी लो तो बहुत थोड़ा विश्राम लो जिससे कि वह कार्य शीघ्र समाप्त हो जाय क्योंकि एक कार्य को अधूरा छोड़ने से केवल यही नहीं होता कि वह या बहुत से अनावश्यक तथा असामयिक कार्यों के बीच में विघ्न डालने के कारण वह कार्य ही पूरा नहीं हो पाता, किन्तु उसमें समय का एक बड़ा भारी भाग व्यर्थही नष्ट जाता है, और जो कुछ थोड़ा बहुत भी जिस समय में किया जाता है वह समय तो व्यर्थ जाता ही है, किन्तु साथ ही उतना ही समय उस कार्य के करने में लगता है जिसको कि वह मनुष्य उस समय में उस कार्य के न होते हुए कर लेता? इस भांति स्पष्ट रूप से दुगना समय लग जाता है। यही नहीं बल्कि इससे एक ऐसी टेव भी पड़ जाती है कि मनुष्य फिर किसी काम को या तो पूरा कर ही नहीं सकता या उसके पूरा करने में उसे फिर बड़ी २ कठिनाइयां उठानी पड़ती हैं और बहुत सा समय व्यर्थ नष्ट करना पड़ता है। बहुधा विद्यार्थियों में देखा जाता है कि जहां उन्होंने किसी भी निबन्ध या पुस्तक को थोड़ा सा भी कठिन पाया कि छोड़ा—लगे कुछ और देखने तथा किसी दूसरी पुस्तक को पढ़ने—यह बहुत बुरी तथा हानिकारक टेव है इससे बचने का भरसक प्रयत्न करना चाहिये और हाथ में लिए हुए कार्य को यथाशक्ति पूरा ही करके छोड़ना चाहिये।

यदि इन कतिपय सिद्धान्तों के अनुसार कार्य किया जाय तो निस्संदेह समय का बहुत उत्तम उपयोग होगा और प्रत्येक कार्य सुगमता, शीघ्रता तथा उत्तमता से हो सकेगा परन्तु साथही यह भी ध्यान रखना चाहिये कि ये सिद्धान्त स्थूल हैं। इनमें यथासमय और आवश्यकतानुसार विचारपूर्वक किञ्चित् परिवर्तन भी किया जा सकता है। केवल उनके शब्दों को हृदयङ्गम करके लकीर पीटने का प्रयोजन नहीं है, न अन्धविश्वास से उनका अनुसरण करने ही की आवश्यकता है, वास्तव में आवश्यकता है उनका ठीक २ अभिप्राय समझने की।

अब केवल एक बात और कहकर मैं इस लेख को समाप्त करता हूं, वह यह है कि प्रत्येक मनुष्य को स्वयं समय के पाबन्द होने की टेव डालनी चाहिये जिससे वह प्रत्येक कार्य को ठीक समय में ही करले। इसके लिए निम्न लिखित कतिपय बातों के अनुकूल कार्य करना परम सहायक तथा अत्यंत लाभकारी है :—

(अ) प्रातःकाल उठकर ही अपने दिन भर के कार्यों को भिन्न २ समय तथा घंटों में विभाजित कर लो; और तत्काल ही उसके अनुसार कार्य करना आरम्भ कर दो।

(ब) रात को सोते समय अपने दिन भर के किए हुए कार्य पर दृष्टि डालो और उसका प्रातःकाल की हुई विभाजित व्यवस्था से मिलान करो। फिर निष्पक्ष होकर सूक्ष्म दृष्टि से देखो कि सारा कार्य उसी व्यवस्था के अनुकूल हुआ या नहीं और क्या त्रुटि रह गई। यदि कोई त्रुटि अकस्मात् रह गई हो तो भविष्यत् में उसका पूरा २ ध्यान रक्खो जिससे कि वह फिर न होने पावे।

गेहूं की पैदावार का युद्ध पर प्रभाव।

[लेखक—श्रीयुत सिद्धनाथ।]

यूरोपीय देशों में खाद्यपदार्थों में मुख्य पदार्थ गेहूं है। जिस देश में गेहूं की पैदावार कम होती है उस देश को दूसरे देशों से गेहूं मँगाना पड़ता है। परन्तु वर्तमान महायुद्ध के कारण माल की आमद और रफ़्तनी कम हो जाने से यूरोपीय संपत्तिशास्त्रज्ञ इस समय इस बात का विचार कर रहे हैं कि किस देश में कितना गेहूं पैदा होता है, कहां पर कितना गेहूं फालतू है और किस देश में गेहूं का भाव मामूली की अपेक्षा अधिक बढ़ गया है। चाहे मित्रों का सैन्य-दल जर्मनों की १० लाइनें लेले, चाहे जर्मन लोग मित्रों की ५ खाइयां लेलें, पर सम्पत्तिशास्त्रज्ञों का यह अनुमान है कि जिस देश में अन्न नहीं, उस देश का देह भी अक्षत नहीं रह सकता। अन्तिम-काल की वेदना की अपेक्षा मध्याह्नकाल की भूख की ज्वाला अधिक असहनीय होती है। इसी कारण जिस देश में गेहूं की कमी मालूम होगी, उस देश के वीर, शत्रु के तोपखाने पर जा गिरने में चाहे न डरें पर अन्न के अभाव में अपनी उदर-ज्वाला बुझाने में वे असमर्थ रहेंगे। किस देश में कितना गेहूं पैदा होता है इत्यादि बातें नीचे दी जाती हैं :—

नक्शा नं० १।

देश का नाम।	लोक संख्या।	गेहूं की पैदावार।	प्रति मनुष्य पीछे पड़ता।
	(आंकड़े हज़ार के हैं)	(आंकड़े हज़ार टन के हैं)	टन (५६) सेर।
अमेरिकन संयुक्त रियासतें	९२,०००	५,५६,५००	६
यूरोप रशिया	१,३०,५००	५,०४,५००	३.८
भारतवर्ष	३,१५,०००	१,९६,५००	६.२५
फ्रांस	४०,०००	१,९०,०००	४.७५
अर्जेनटाइन	७,२५०	१,२०,०००	१.६५
इटाली	३५,०००	१,०५,०००	३.००
केनाडा	७,२५०	९८,५००	१३.५
हंगेरी	२०,८५०	७८,५००	३.८
रुमानिया	७,०८०	२९,१३०	४.१
आस्ट्रेलिया	५,०००	१५,०००	३ ०
इजिप्ट	११,३००	२१,०००	१.८
स्पेन	२०,०००	७५,०००	३.७५
बलगेरिया	४,४००	२९,०००	६.५
अलजीरिया	५,६००	१७,५००	३.१
चिली	३,४००	७,५००	२.२
न्यूज़ीलैंड	१,१००	२,५००	२.२
सर्विया	३,०००	६,०००	२.०
युराग्वे	१,१००	५,०००	४ ५
सब दुनिया में मिलाकर	१६,२३,०००	२१,००,०००	१ ४

नक्शा नं० २।

देश का नाम।	लोक संख्या।	गेहूं की पैदावार।	प्रति मनुष्य पीछे पड़ता।
	(आंकड़े हज़ार के हैं)	(आँकड़े हज़ार टन के हैं)	टन (५६ सेर)
ग्रेट ब्रिटेन	४५,२५०	३९,०००	.८६
जर्मनी	६५,०००	९५,०००	१.४६
आस्ट्रिया	३०,४००	३६,५००	१.२

देश का नाम।	लोक संख्या।	गेहूं की पैदावार।	प्रति मनुष्य पीछे पड़ना।
	(आंकड़े हज़ार के हैं)	(आंकड़े हज़ार टन के हैं)	टन (५६ सेर) में।
जापान	५०,०००	१५,०००	.३
हालैंड	६,०००	३,३५०	.५५
नार्वे	२,४००	१७०	.०७
स्वीडन	५,५००	६,५००	१.१८
डेन्मार्क	२,८००	२,५००	.९
पोर्तुगाल	५,५००	६,५००	१.१८
ग्रीस	२,७००	३,५००	१.६
स्विट्ज़रलैंड	३,८००	३,०००	.५

(ऊपर दिये हुए आंकड़े सन् १९१४ के हैं)

नक्शा नं० १ में जिन देशों के नाम दिये हैं वे देश अपने खर्च के लिए काफी गेहूं रखकर दूसरे देशों को भी भेज सकते हैं। नक्शा नं० २ वाले देशों को दूसरे देशों से गेहूं खरीदना पड़ता है। इन नक्शों में दिये हुए देशों के अलावा कुछ देश ऐसे हैं, जो न तो बाहर से गेहूं मोल लेते हैं, न अपना गेहूं दूसरे देशों को बेंचते हैं; अतएव उन देशों का नामोल्लेख करने का प्रयोजन नहीं। अमुक देश से गेहूं बाहर जायगा अथवा नहीं यह बात उस देश के गेहूं की पैदावार और लोकसंख्या पर अवलम्बित है। इसमें भी एक बात और देखनी पड़ती है; वह यह कि अमुक देश में प्रत्येक मनुष्य पीछे साधारणतः कितने गेहूं की आवश्यकता रहती है। उदाहरणार्थ इङ्गलैंड, कैनाडा आस्ट्रेलिया इत्यादि देशों में फी आदमी तीन टन अर्थात् १६८ सेर गेहूं की आवश्यकता होती है। यदि भारतवर्ष की ३१॥ करोड़ प्रजा इसी प्रमाण से गेहूं खर्च करे, तो हमारे देश से गेहूं का एक दाना भी बाहर नहीं जा सकता। इतना ही नहीं वरन् दुनियां की सारी गेहूं की पैदावार अकेला भारतवर्ष खा जायगा। यहाँ साधारणतः फी आदमी ४० सेर गेहूं पैदा होता है, इसमें भी करीब $\frac{१}{५}$ हिस्सा दूसरे देशों को रवाना होता है। अस्तु।

आज हमको ग्रेट ब्रिटेन, आस्ट्रिया-हंगेरी और जर्मनी का विचार करना है। कारण लड़नेवाले राष्ट्रों में फ्रान्स और रशिया में गेंहू की पैदावार काफ़ी है। इङ्गलैंड को आदमी पीछे ३ टन के हिसाब से प्रतिवर्ष १३॥ करोड़ टन गेहू, की आवश्यकता रहती है। इसमें ३॥ करोड़ टन गेंहू वहीं पैदा होता है। बाकी १० करोड़ टन बाहर से आता है। प्रतिवर्ष रशिया, इङ्गलैंड को १ करोड़ टन गेंहू देता है, पर वह इस समय मिलना कठिन है। भारतवर्ष २॥ करोड़ टन गेंहू भेजता है; अरजेंटाइन देश से २ करोड़ टन आता है, युनाइटेड स्टेट्स व कनाडा दोनों से ४ करोड़ टन आता है। इस तरह ८ करोड़ टन गेंहू इङ्गलैंड को इस वर्ष भी मिलेगा। परन्तु आस्ट्रेलिया से आनेवाले एक करोड़ की कमी रहेगी कारण इस साल वहां की फसल बिगड़ जाने से वह देश अपने लिये दूसरे देशों से गेंहू मँगाने के

विचार में है। अतएव एक करोड़ रशिया का और एक करोड़ आस्ट्रेलिया का मिलाकर २ करोड़ टन गेंहू की इङ्गलैंड को इस साल कमी रहेगी। यह कमी इङ्गलैंड उन देशों से पूरी कर लेगा जिन देशों से युद्ध के पूर्व जर्मनी वगैरः शत्रुदेशों को गेंहू जाता था, और अब युद्ध के कारण नहीं जा सकेगा।

आस्ट्रिया-हंगेरी और जर्मनी के विषय में विचारकरने से मालुम होगा कि हंगेरी में गेंहू की पैदावार काफ़ी तौर से होती है, परन्तु आस्ट्रिया और जर्मनी को करीब ६ करोड़ टन गेंहू बाहर से मोल लेना पड़ता है। युद्ध के कारण ये तीनों देश एक हो गये हैं, इसलिए इन तीनों का इकट्ठा हिसाब लगाने से यह बात ज़ाहिर होती है कि वहां २१ करोड़ टन गेंहू पैदा होता है। अर्थात् फी आदमी २ टन गेहूं का पड़ता पड़ता है। इससे यह भी बात ज़ाहिर होती है कि इङ्गलैंड की तरह जर्मनी को प्रति मनुष्य ३ टन गेंहू इस वर्ष नहीं मिल सकता, इसलिए यातो उनको अपनी खुराक घटानी पड़ेगी या आलू, गाजर, इत्यादि कंदमूलों पर अपना गुज़ारः करना पड़ेगा। भारतवर्ष में आदमी पीछे आधा टन अर्थात् २८ सेर गहू ही काफ़ी होता है इस वजह से हम जर्मनों की तकलीफों की कल्पना नहीं कर सकते। परन्तु प्रति मनुष्य १६८ सेर गेंहू खर्च करनेवाले युरोपियनों की दृष्टि से देखने से इस वर्ष जर्मनी में गेंहू का बहुत बड़ा अकाल है।

ऊपर दिये नक़शे में वर्तमान वर्ष की कम पैदावार का विचार नहीं किया गया है। जर्मन किसान लड़ाई में शामिल होने के कारण और युद्ध के कारण पूरी खेती न होने से जर्मनी की इस वर्ष की पैदावार शांति के समय से बहुत कम होगी। अर्थात् जर्मनों के यहां गेंहू की कमी और भी अधिक रहेगी। परन्तु इङ्गलैंड के लिए ये कठिनाइयां नहीं हैं; कारण आस्ट्रेलिया में मामूली से ४ लाख एकड़ गेहूं की खेती अधिक की गई है। भारतवर्ष में भी अगली साल कपास की अपेक्षा गेंहू की खेती अधिक की जायगी। इसी तरह मिस्र में भी गेंहू की खेती बढ़ाने का प्रयत्न हो रहा है। इतने पर भी अमेरिका से इङ्गलैंड को खूब गेहूं मिलेगा। इन सब बातों से चिढ़कर ही जर्मनी ने इङ्गलैंड के आस पास आनेवाले व्यापारी जहाज़ों को डुबाने का प्रयत्न आरम्भ किया है। पर इससे इङ्गलैंड को कोई हानि नहीं उठानी पड़ेगी।

इङ्गलैंड में युद्ध के कारण पिछले साल की अपेक्षा भाव कितना बढ़ गया है, यह बात नीचे दिये नक़शे से प्रगट होगी।

महीने का नाम।	सन् १९१४ में भाव सेरों में प्रति रुपये।	सन् १९१३ में भाव सेरों में प्रति रुपये।
जनवरी	१२	१२।
फरवरी	१२	१२
मार्च	१२ ३/८	१२
अप्रैल	११॥	११॥
मई	११ ३/७	११॥

महीने का नाम।	सन् १९१४ में भाव सेरों में प्रति रुपये।	सन् १९१५ में भाव सेरों में प्रति रुपये।
जून	११	११॥
जुलाई	११	११।
अगस्त	१०	११
सितम्बर	९॥॥	११॥
अक्तूबर	९॥॥	१२
नवम्बर	९।	१२½
दिसम्बर	९॥॥	१२

आस्ट्रिया-जर्मनी में गेंहू का भाव कितना बढ़ा है, यह बात जानने का कोई साधन नहीं है। परन्तु जर्मन सरकार ने वहाँ के अनाज का व्यापार अपने हाथ में ले लिया है; इससे यह अनुमान होता है कि वहाँ पर गेहूं का भाव बहुतही चढ़ गया है। अगर इङ्गलैंड में प्रतिवर्ष के अनुसार, अर्जेंटाइन, एमेरिका और रशिया से गेहूं आता तो भाव न बढ़ता। परन्तु आस्ट्रेलिया में पैदावार अच्छी नहीं हुई, अर्जेंटाइन में फसल देर से हुई, एमेरिका ने गेहूं बाहर भेजने में विलम्ब किया, और लड़ाई के कारण रशिया का द्वार बन्द हो गया। इस वजह से भाव बढ़ गया है पर वह जल्द ही उतरेगा, ऐसा अर्थ-शास्त्रों का अनुमान है।

इङ्गलैंड को इस तरह गेंहू मिलेगा, पर जर्मनी की क्या अवस्था होगी? क्या जर्मन लोगों को हार मानकर चुप रहना पड़ेगा? सम्पत्ति-शास्त्रों का तो यही अनुमान है और वह अनुमान गणित के आधार पर होने से, उसमें गलती निकलना भी प्रायः संभव नहीं है। भविष्यही सब बातों का निर्णय करेगा।

कवित्व।*

[लेखक—पं० श्रीहरिहरसुरूप शर्मा शास्त्री विद्याभूषण।]

(१)

संसार में कवित्व सबसे अधिक सुन्दर है। स्वर्ग की अप्सराएँ, नंदनबन का पारिजात, पूर्णिमा का शुभ्र शशधर, यद्यपि सुन्दर हैं, किन्तु कवित्व के सामने इन सब का सौन्दर्य फीका है। वसन्त का मलयानिल, प्रातःकाल का दिङ्मण्डल, सन्ध्याकालीन आकाश,—यद्यपि सुन्दर हैं, किन्तु कवित्व के सामने इन सबका सौन्दर्य पानी भरता है।

* "जन्मभूमि" के एक लेख के आधार पर।

कवित्व को सुन्दर कहना उसका अपमान करना है। कवित्व ही सर्वविध सौन्दर्य का आकर है। सुन्दर को सौन्दर्य कवित्व से ही मिला है। सौन्दर्यसंसार में कवित्व ही अद्वितीय कर्त्ता है।

समस्त संसार में कवित्व का ही असामान्य प्रभुत्व है। भले को बुरा, बुरे को बहुत बुरा, बहुत बुरे को बहुत भला बना दिखाना,—घुमा-फिराकर जिस तरह भी बन पड़े, एक एक के दो दो बना देना, ठीक को ठीक रखना एकमात्र कवित्व का ही करतब है।

कवित्व अन्धकार में सूर्य, दारिद्र्य में धन, और उपवास में अन्न है। कवित्व प्यास में शीतल जल, विषाद में सान्त्वना, और विरह में मिलन है। कवित्व वसन्त में फूल, शरद में ज्योत्स्ना, और निदाघ में सन्ध्या है। आज उसी कवित्व की कथा लिखते हुए चित्तकुसुम मारे आनन्द के खिला जाता है।

कवित्व की करुणा में, कवित्व के प्रणय में सामान्य मनुष्य भी अमर हो जाता है। ऐसे कवित्व की उपासना करने के लिये कौन अग्रसर न होगा? ऐसे कवित्व को श्रेष्ठ 'समझ' कर उसका पुजारी बनने के लिये किसका मन न चलेगा?

(२)

कवित्व एक नररत्न है, किन्तु उसका जीवन-चरित्र लिखने की कोई सामग्री भी नहीं है।

दर्शन या विज्ञान कवित्व को 'पुरुष' कहने में आपत्ति करते हैं, करें; किन्तु हमतो उसे एक असामान्य नररत्न—एक महापुरुष ही समझेंगे। जो हम समझेंगे, उसीके अनुसार परिचय देंगे। बड़ी मुश्किल से हम आज कवित्व की एक जीवनी लिखने बैठे हैं। बड़ी ढूंढ़भाल करने पर भी आपका जन्मसमय स्थिर नहीं किया जा सका है। तोभी बहुत पहले लाखों बरस पहले इसका जन्म हुआ होगा, इसमें हमें सन्देह नहीं है।

कवित्व का जन्मस्थान भूतल है या देवलोक, यह भी ठीक नहीं कहा जा सकता। इसका पता लगाने का कोई विशेष उपाय भी नहीं है।

कवित्व प्रतिपत्तिशाली और सर्वप्रिय एक चक्रवती राजा है। बचपन में उसे शत्रु के हाथ पड़ कर बड़े कष्ट सहने पड़े हैं। कितनी ही बार उसका जीवन संकटापन्न हुआ है। भाषा का अभाव ही उसका प्रधान शत्रु है। आजकल के खोजी पण्डितों की अटकलपच्चू खोज, इसी भाव का आभास पाती जाती है। उस समय कवित्व सर्वथा निःसहाय था, दुर्दान्त शत्रु का सामना करने में वह कृतकार्य नहीं हो सका था।

उस समय यह कौन जानता था कि, किसी वक्त कवित्व को ही दिग्विजयी सम्राट् होना है। यह कौन समझता था कि, अन्त में यह कवित्व ही संसार का जीवन-स्वरूप हो रहेगा? यह कवित्व ही इस जगत के श्रेष्ठ आसन का अधिकारी हो, क्या मनुष्य और क्या देवता सबसे हार्दिक पूजोपहार ग्रहण करेगा, उस समय यह बात किसी ने स्वप्न में भी नहीं सोची थी।

निःसहाय होकर भी वीरश्रेष्ठ कवित्व ने अपने आप, सहायसम्पन्न प्रबल शत्रु के पञ्जे से आत्मरक्षा करने में सफलता प्राप्त की थी।

कुछ समय के बाद अलौकिक रूप-लावण्यवती एक रमणी उत्पन्न हुई, और उसने कवित्व के दुर्दान्त शत्रु—भाषा के अभाव—को एकबारगी विध्वस्त कर डाला। इस रमणी का नाम है 'भाषा'।

वीरवर कवित्व ने ज्योंही यह संवाद सुना त्योंही उसे उस वीराङ्गना-शत्रुदलनी भाषा के साथ विवाह करने की उत्कण्ठा हो चली। भाषा भी कवित्व के गुण सुन सुन कर, उसके गले

में जयमाल डालने के लिये उत्सुक थी। किन्तु विधि का लिखा नहीं टलता। बिना घड़ी और पल आये कोई घटना घटित नहीं होती। किसी प्रकार की बाधा और आपत्ति न होने पर भी कई साल बीत गये किन्तु भाषा और कवित्व की आशा पूर्ण न हुई। भाषा और कवित्व का आपस में परिणय सम्बन्ध नहीं हुआ। कवित्व ने प्रतिज्ञा कर डाली—यदि भाषा को न पाऊंगा तो इस शरीर को ही न रक्खूँगा!

विरह बड़ी भयानक व्याधि है। जिस वीर ने अकेले ही, दुर्दान्त शत्रु के साथ संग्राम कर आत्मरक्षा की थी, वही आज निरुद्यम और निश्चेष्ट है। वह शत्रु नहीं है, तो भी वह बाहर नहीं निकलता। अपनी कुटीर में सजल नलिनी-दल पर सोकर भी उसे असह्य ताप अनुभव करना पड़ता है। कवित्व के स्वजन उसकी करुण दशा को निहार कर चिन्ता से पीड़ित हैं। हाय! कवित्व अब न बचेगा! भगवन्! पता नहीं, आपके मनमें क्या है?

(३)

तमसा का तीर है। वन में सुन्दर फूल खिल रहे हैं। मृदुमन्द प्रभात वायु धीरे धीरे कुसुम-स्तवक का चुम्बन कर रही है। लता-कामिनी का कमनीय कलेवर विकम्पित हो उठता है। पशु-पक्षियों के जोड़े क्रीड़ा में आसक्त हैं। आनन्द-स्रोतस्विनी बड़े वेग से प्रवाहित है।

विरही के लिये यह प्रदेश बड़ा ही दारुण है। भाग्यवश कवित्व आज इसी स्थान में उपस्थित है। उसका आज और किसी तरफ़ लक्ष्य नहीं है। वह क्रीड़ापरायण क्रौञ्च-मिथुन की ओर एकटक दृष्टि से देख रहा है। वह दृश्य उसको विषमय प्रतीत होता है, तो भी उसकी आंखें वहां से एक पल के लिये नहीं हटती हैं। कोई न कोई हृदय के खेंचने की बात है। क्रौञ्चयुवक धीरे धीरे अपनी चोंच से क्रौञ्चकामिनी के कमनीय कलेवर को खुजा देता है, कभी दोनों ही एक दूसरे को टकटकी लगाकर सप्रेम देखने लगते हैं, और कभी दोनों निमीलित-नयन हो आलिङ्गन का परमानन्द भोगने लगते हैं—कवित्व इसी कौतुक को देख रहा है। यह सब उसको असह्य है। हृदय का भावामय अन्तस्तलपर्यन्त विध्वस्त हुआ जाता है; तो भी वह अपनी आंखें वहां से हटाने में असमर्थ है।

हाय! यह सब सुखकी चेष्टायें एक क्षण में नष्ट हो गईं! अश्रुपूर्ण सकरुण नयनों से प्रिया की ओर निहारते हुए, निषाद-शर-विद्ध क्रौञ्च भूतल-शायी हो गया! उस लीलामयी क्रौञ्चरमणी की क्या दशा हुई होगी, सो एकमात्र कवित्व ही जान सकता था। और कवित्व की अवस्था? उसे जानते थे केवल—परम कारुणिक महर्षि वाल्मीकि। वे कवित्व की असीम यन्त्रणा को जानते थे। प्रेम-परिणति की शोकमयी प्रतिमा के दर्शन होने पर, प्रेमिक-श्रेष्ठ कवित्व के हृदय-कुटीर में जो नैराश्य सन्धुक्षित चिन्ता की चिता दहक उठी थी, उसे जानकर ऋषिवर कातर होगये थे। कवित्व के उस निदारुण विरह-दुःख का, मर्म-मर्म में अग्निकणों को बरसानेवाली कारुण्यमिश्रित उस अस्फुट यन्त्रणा का अनुभव कर, महर्षि वाल्मीकि देर-तक स्थिर न रह सके। दूसरे का दुःख देखकर उ[illegible] दयामय का तरल हृदय द्रवीभूत हो उठा।

[illegible]ल्मीकि ने, भाषा और कवित्व के विवाह में अ[illegible]चित भाव से सम्पादकता ग्रहण की; ऋषि ने, कवित्व के समागम के लिये उत्सुक-चित्ता कुमारी भाषा को लाकर, विरहकातर, मर्मपीड़ित कवित्व के हाथ में—शुभ मुहूर्त्त में सौंप दिया। भाषा मारे आनन्द के आपे में न समाई,—अधीरा हो गई। कवित्व पुलकित हो उठा। वह सहसा नवीन बल से बलीयान् होकर, सहसा पूर्वोद्यम और पूर्वचेष्टा पाकर, मधुर एवं मञ्जुल वेश में सबके सामने प्रादु-

भूत हुआ। सब ने विस्मित हो बड़ी चाह से देखा,—

"मा निषाद, प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥"

सब दिशाओं में आनन्द कोलाहल सुनाई देने लगा। स्वयं ब्रह्मा ने वहां उपस्थित हो, इस सुकार्य के उपलक्ष्य में वाल्मीकि को पुरस्कृत किया।

(४)

संसार बड़ा विचित्र है। एक तरफ़ आलोक है, तो दूसरी तरफ़ अन्धकार। एक तरफ़ रौद्र, दूसरी तरफ़ मेघ; एक तरफ़ आनन्द, दूसरी तरफ़ विषाद:—संसार की यही गति है। उसी संसार में एक ओर सर्वजन वन्दनीय कवित्व है, और दूसरी ओर है सर्वजन-गर्हिता मिथ्या।

कवित्व सुन्दर, मिथ्या कुत्सित। कवित्व की सर्वत्र प्रशंसा है, और मिथ्या की सब जगह निन्दा। कवित्व के उपासक का सम्मान होता है, तो मिथ्या के पुजारी की अवज्ञा। इसीसे कहते हैं—'संसार बड़ा विचित्र है।' कवित्व ने एक दिन इस दीन-हीन मिथ्या को देख लिया। दीना का दुःख देख कर उसका हृदय भर आया।

मिथ्या दुःखमय जीवन रो धोकर बिता रही है। कोई उसपर मिट्टी कीचड़ फेंकते हैं; कोई कोई न कहने योग्य गालियाँ भी दे डालते हैं। बहुत से उसके आधार पर उत्तम-मध्यम की व्यवस्था करते हैं। भ्रमणपरायण मिथ्या जिसके पास पहुंचती है, वही घृणा से नाक दबाकर दस हाथ पीछे हट जाता है। यद्यपि मतलब पड़ने पर, कोई कोई ऐसे भी हैं जो बड़ी विनय दिखाकर, उसका आवाहन करते हैं, किन्तु वे भी काम निकलते ही उसकी अवमानना करने लगते हैं। शरणार्थिनी मिथ्या के प्रति किसी की भी सदय दृष्टि नहीं है। जो मिथ्या की अवमानना न करे, जनसमाज में वही निन्दापात्र है। यही सब देखकर कवित्व ने स्थिर किया, "अहा! इस मिथ्या के समान, पृथ्वी के पर्दे पर दूसरी हतभागिनी स्त्री नहीं है। सब से पद-दलित, उपकृत के द्वारा भी लाञ्छित, एक मिथ्या को छोड़ और कौन अभागिनी है? इस रमणी के प्रति कोई भी कृतज्ञता स्वीकार नहीं करता। हा भगवन्! क्या इस पतिता का किसी प्रकार भी उद्धार न होगा?"

अन्त में, बहुत सोच विचार के बाद कवित्व ने इस मिथ्या के साथ विवाह करने की मन में ठान ली। उसके विवाह कर लेने पर, कई प्रकार से इसके दोष संशोधित हो जायँगे, इसी विश्वास के वश हो वह मिथ्या के साथ विवाह करने के लिए उद्यत हो गया।

दीन-हीन मिथ्या के साथ विवाह करने के लिए कवित्व को ज़रा भी उत्कण्ठा सहन न करनी पड़ी, और न विरहविधुर ही होना पड़ा।

मिथ्या के साथ कवित्व का विवाह हो गया। इस विवाह के सम्पादक भी सम्भवतः भगवान् वाल्मीकि ही हैं। बहु-विवाह समाज में प्रचलित हैं ही; अतः इस कार्य के लिये किसी व्यक्ति-विशेष को दोष नहीं दिया जासकता। कवित्व ने वास्तव में पतिता का उद्धार किया। कवित्व के साथ मिथ्या का जनसमाज में अधिक आदर होने लगा। कुत्सिता घृणिता मिथ्या, कवित्व के सहयोग से सुन्दरी हो गई, मनोरमा बन गई। पति कवित्व ने, प्रेमपूर्वक दूसरी पत्नी का नाम रक्खा 'कल्पना'। कल्पना और भाषा से समन्वित कवित्व देव की आजतक घर घर में पूजा होती है। किसी कवि ने ठीक कहा है—

"काचः काञ्चनसंसर्गाद्धत्ते मारकतद्युतिम्।"

कवित्व की दोनों पत्नियां कुछ प्रगल्भा हैं। मिथ्या और भाषा दोनों ही एक एक मास

स्वामिसङ्ग कर भिन्न भिन्न दिशाओं में विचरती हैं। कभी कभी दोनों सपत्नी मिलकर नाना स्थानों में घूमने निकलती हैं

बिना चाँद की रात शोभा नहीं पाती। बिना कवित्व के क्या मिथ्या का आदर होता है? क्या बिना सोने के काँच की मरकत-प्रभा प्रगट होती है? एकाकिनी मिथ्या, स्वामिसंग-हीना मिथ्या वैसे ही पहिले की भांति घृणा के योग्य है। वह उज्ज्वल भूषण राजमहिषी कल्पना और यह विक्षतवेशा मिथ्या—दोनों एक ही व्यक्ति हैं, यह कोई नहीं जान सकता।

मिथ्या जिस समय तक महापुरुष के साथ रहती है, उस समय क्या उसका तेज देखा है?—सम्मान देखा है? उस समय मिथ्या की क्रूर बुद्धि नहीं होती। उस समय भाषा के साथ उसका भलमनसी का व्यवहार होता है। वह भाषा की श्रीवृद्धि करने में ही सचेष्ट रहती है।

किन्तु स्वामिसङ्ग न होने पर क्रूर-मति मिथ्या सरलहृदया सपत्नी भाषा को अपदस्थ करने के लिये उसके साथ मिल रहती है।

इसी प्रकार मिथ्या के दुःस्वभावका पांव पांव पर परिचय मिलता रहा है।

हे कवित्व! हे महापुरुष! यह दुःशीला मिथ्या तुम्हारे ही संसर्ग से रमणीरत्न कल्पना कहलाती है;—हे अलौकिक शक्तिसम्पन्न देव! हम आपको सविस्मय बारम्बार प्रणाम करते हैं। हे दयामय! आपने दीन पर दया कर उसका दुःख मोचन किया है, जनसमाज में उसके प्रति चिरप्रतिष्ठित असद् भ्रम के बदले सद् भ्रम स्थापन किया है। आपको इसीलिए शतशः सहस्रशः धन्यवाद अर्पित हैं।

हे मिथ्ये! तुम स्वामिसंग कभी न छोड़ना। देखें, फिर कौन तुम्हारा अपमान करता है? कल्पना के नाम से तुम सबकी पूजनीया बनी रहो। स्वामिसङ्ग और यह नाम त्यागकर, अपमानिता होने में तुम्हें क्या मिलेगा?

(५)

कवित्व की और भी कई एक पत्नियां हैं। उनके नाम हैं चित्रविद्या आदि। कवित्व सभी पत्नियों का प्रियतम है। काव्य, आलेख्य आदि उसकी सन्तान हैं। कवित्व की अन्यतमा पत्नी कल्पना कोकिला की भांति अपनी सन्तान के पालने पोसने में असमर्थ है। इसी कारण से उसकी सन्तानें विमाता द्वारा पाली-पोसी जाती हैं।

कवित्व महाशय जब हवाख़ोरी को निकलते हैं, तो किसी न किसी पत्नी को साथ रखते हैं। अकेले कवित्व की भी पूछ नहीं होती। किन्तु केवल कल्पना को लिये उन्हें बाहर फिरते किसी ने कभी न देखा होगा। तोभी कल्पना और दूसरी किसी पत्नी के साथ वे कितनी ही बार उज्ज्वल भाव से विचरण करते हैं।

सुन्दरी भाषा के साथ कवित्व की महा महिमा अवर्णनीय होती है, उनकी उस अपूर्व छटा के देखने के लिये बड़े बड़े तड़पते हैं। पर कवित्व, परमोपकारिणी भाषा की अपेक्षा मिथ्या से कई गुना अधिक प्यार करते हैं और वे क्यों हैं;—कवित्व के रमणीय चरित्र में यही दो एक बारीक दोष हैं। यही कवित्व की आंशिक जीवनी है।

दर्शनशास्त्रों के सिद्धान्त।

[लेखक—श्रीयुत कन्नोमल एम० ए०, सेशन्स जज, धौलपुर।]

दर्शनशास्त्रों का महत्व कौन नहीं जानता है। इनकी समस्त भूमण्डल में महिमा फैली हुई है। यूरोप के बड़े २ विद्वानों ने इनकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है और कहा है कि इनके मध्याह्नकाल सूर्य के सदृश प्रचण्ड तेज़ के सामने यूरोप का ज्ञान-शास्त्र एक धुंधले टिमटिमाते दीपक के मलिन प्रकाश के बराबर है।

दर्शनशास्त्र छः हैं—वेदान्त, सांख्य, न्याय, वैशेषिक, योग और पूर्वमीमांसा। इन छःहों शास्त्रों के रचयिताओं के ये नाम हैं—व्यास, कपिल, गौतम, कणाद, पतञ्जलि, जैमिनि।

यदि विचार कर देखा जाय तो सब ज्ञान और विज्ञान शास्त्रों में—मुख्यतः तीन विषयों का विवेचन है अर्थात् ईश्वर क्या है? जीव क्या है? संसार क्या है और कैसे उत्पन्न हुआ है?

इन विषयों पर जो दर्शन शास्त्रों में विचार हैं, उन्हें सूक्ष्मतः नीचे लिखते हैं।

पूर्वोक्त छः शास्त्रों में से योग और पूर्वमीमांसा ऐसे शास्त्र हैं कि जिनमें इन विषयों पर कोई स्वतंत्र विचार नहीं किया गया है। इस कारण इन दो को छोड़ बाकी के चार दर्शनों में जो इस विषय के विचार हैं उन्हें लिखते हैं:—

न्याय और वैशेषिक शास्त्रों का परस्पर गाढ़ा सम्बन्ध है। इन दोनों के विचारों में भिन्नता नहीं है इसलिए इन दोनों के सिद्धान्त साथ २ ही लिखे जाते हैं।

जीव क्या है? इस विषय में गौतम और कणाद के ये सिद्धान्त हैं।—

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनोलिङ्गमिति। प्राणयाननिमेषोन्मेषमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषौ प्रयत्नश्चात्मनो लिङ्गानिः—

अर्थ—प्राण, (सांस बाहर निकालना) यान, (सांस भीतर खींचना) नेत्रों को खोलना. बंद करना, मन, गति (चलना फिरना,) इन्द्रियाँ, अन्तरविकार (क्षुधादि,) सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, ये सब जीव के लक्षण हैं।

जीव अनेक हैं एक नहीं।

पश्चिमीय विज्ञानशास्त्रवेत्ताओं ने भी जीव के ऐसेही लक्षण माने हैं।

ईश्वर क्या है? इसका उत्तर इन दर्शनों में इस भांति है।—

ईश्वर सगुण है। सत्य, दया, बल, ज्ञान, ये सब गुण ईश्वर में अन्तिम सीमा के हैं। ईश्वर संसार का रक्षक और अधिष्ठाता है, परम दयालु और न्यायकारी है, मनुष्यों के कर्मानुसार सुखदुःख देता है।

कविं पुराणमनुशासितार
मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्यधातारमचिन्त्यरूप-
मादित्यवर्णंतमसा परस्तात्॥

पिताऽहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक् साम यजुरेव च॥
गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं वीजमव्ययम्॥

अर्थ—ईश्वर सर्वज्ञ है, पुराने से पुराना है, समस्त संसार का अनुशासन करनेवाला है, छोटे से छोटा है, सं

है, उसके रूप का चिन्तन नहीं हो सकता है, अंधकार से परे, सूर्य का सा उसमें तेज है। ईश्वर जगत् का पिता, माता, धाता, प्रपिता, है। ऋक्, साम, यजुर्वेदादि वही है। वही पवित्र जाननेयोग्य है। ईश्वरही संसार की गति है, वही संसार का भर्ता, प्रभु, साक्षी, निवास, शरण, सुहृद, प्रभव, प्रलय स्थान, निधान और अव्यय बीज है।

इन श्लोकों से यह भी ज्ञात हो गया होगा कि ईश्वर और जीव का क्या सम्बन्ध है।

ईश्वर का जीव के साथ माता, पिता, धाता, भर्ता, प्रभु सुहृदादि का सम्बन्ध है।

ईश्वर और जीव एक नहीं हैं, पृथक् २ हैं और न सब मनुष्यों का एक जीव ही है, प्रत्येक प्राणी का पृथक् २ जीव है।

संसारोत्पत्ति के विषय में न्याय और वैशेषिक का यह मत है कि संसार परमाणुओं से बना है। परमाणु वह है कि न जिसके टुकड़े हो सकें, न जिसका कुछ विस्तार हो और न जो दिखाई दे। दो २ तीन २ चार चार परमाणु आपस में मिलकर पदार्थों के रूप में दिखाई देने लगते हैं। सब संसार इन परमाणुओं के परस्पर सम्मेलन से बना है।

अब सांख्य दर्शन के सिद्धान्त सुनिये।

जीव को सांख्यदर्शन में पुरुष के नाम से पुकारा है और पुरुष के ये लक्षण कहे हैं :—

पुरुष अनादि है, गुणों से रहित है, सूक्ष्म से सूक्ष्म है, देशकालादि के बंधन से परे है, वह कोई कर्म नहीं करता न स्वयं उत्पन्न हुआ है, और न किसी वस्तु को उत्पन्न करता है, अमर और नित्य है। सब दोषों से निष्कलंक है, प्रकृति की रचना को देखनेवाला है, बुद्धि, मन, इन्द्रियां इन सबके परे हैं, देश, काल, कारण, बन्धन, जाल से विमुक्त है, उसे न सुख न दुःख होता है। अच्छे बुरे किसी प्रकार के कर्म से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसे पुरुष अनेक हैं, एक नहीं, अर्थात् जितने संसार में प्राणी हैं सबके पुरुष पृथक् २ हैं—एक नहीं हैं।

पुरुष के लक्षण पढ़ने के पीछे यह प्रश्न उठता है कि जब पुरुष को सुख-दुःख और संसार से कुछ काम ही नहीं है, तो सुख-दुःख किसे होता है? कर्म का फल कौन भोगता है? संसार में किसका आवागमन होता है?

इसका यह उत्तर है कि पुरुष के सिवाय एक लिङ्ग शरीर और है। उसी को सब सुख दुःखादि होते हैं और उसी का आवागमन होता है। यह लिङ्ग शरीर १८ चीज़ों का बना है अर्थात् बुद्धि, अहंकार, मन, पाँच तन्मात्राएँ (शब्दादि), पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ। शब्द, स्पर्श, गंधादि के आदि कारणों को तन्मात्रा कहते हैं।

कान, नाक, नेत्र, जिह्वा, त्वक्, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं।

मुख, हाथ, पैर, लिङ्ग, और गुदा ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं।

विचार से देखा जाय तो जिसको न्याय और वैशेषिक दर्शनों ने जीव कहा है उसी को सांख्य ने लिङ्ग शरीर के नाम से पुकारा है, क्योंकि जितना संसार का कार्य है सब लिङ्ग शरीर के द्वारा ही होता है। पुरुष को इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। पुरुष तो केवल चुपचाप बैठा प्रकृति की क्रीड़ा देखता है, प्रकृति के कार्य में कोई हस्तक्षेप नहीं करता है। जब पुरुष प्रकृति का सम्बन्ध प्रचलन होने लगता है तब संसार बनना प्रारम्भ हो जाता है, प्रकृति में अनेकानेक विकार होने लगते हैं। उत्पत्ति की श्रेणी यह है, पहिले बुद्धि, फिर अहंकार, फिर तन्मात्रा, फिर १६ विकार अर्थात् पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पांच कर्मेन्द्रियाँ, मन और पंच महाभूत बने। इस प्रकार प्राकृतिक संक्रम से संसार की रचना होती है। जब प्रतिसंक्रम होता है तो

प्रलय हो जाती है। बुद्धि, से लगाकर पाषाण तक प्रकृति-संक्रम से उत्पन्न होते हैं। पुरुष का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है । इन विषयों में वेदान्तदर्शन के निम्नलिखित सिद्धान्त हैं :—

सांख्य ने जिस प्रकार पुरुष के लक्षण माने हैं, वेदान्त भी वही मानता है। सांख्य में इसका नाम पुरुष है, और वेदान्त में इसका नाम आत्मा है।

आत्मा सब गुणों से रहित है, सूक्ष्म से सूक्ष्म है, इंद्रियों से परे है, निर्दोष है, नित्य प्रकाशमान है, संसार के भीतर बाहर दोनों है । न वायु से उड़ सकती है, न पानी से भीग सकती है, न चलाये चल सकती है, न सांसारिक कोई काम करती है, न यह करना उसका काम है, 'मैं' तू' इन उपाधियों से रहित है।

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

(आत्मा) न जन्म लेती है न मरता है, न उत्पन्न होकर नाश को प्राप्त होती है, उसका जन्म नहीं होता है, वह नित्य है, अनन्त है, प्राचीन है । शरीर के मरने पर उसका नाश नहीं होता है।

नैनं छिन्दति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥

शस्त्रों से न उसका छेदन हो सकता, न अग्नि उसे जला सकती, न जल उसे भिगो सकता और न पवन उसे सुखा सकती है।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥

यह छेदी नहीं जा सकती। जलाई नहीं जा सकती है, भीग नहीं सकती है, सूख नहीं सकती है, नित्य, सर्वव्यापी, अनन्त स्थिति-वाली, अचल और सनातन है।

जिसको जीव कहते हैं और जिसके लक्षण "मैं" "तू" हैं, वह प्रकृति अथवा माया का बना हुआ है। सांख्य में इसे लिङ्ग शरीर कहा है, और वेदान्त में सूक्ष्म शरीर के नाम से पुकारा है। पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच प्राण, मन और बुद्धि, इन १७ चीज़ों का सूक्ष्म शरीर बना है। ये लक्षण सांख्य के लिङ्ग शरीर से मिलते हुए हैं।

सांख्य और वेदान्त ने आत्मा का रूप लगभग एकसा ही माना है, इतना ही अन्तर है कि सांख्य में तो पुरुष अनेक माने गये हैं, और वेदान्त में आत्मा एक ही मानी गई है । एक आत्मा ही देश-काल-कारण-बंधन (Time, Space and Casualty) रहित हो सकती है, अनेक नहीं। जितनी पृथक्ता और भिन्नता दिखाई देती है, वह सब इन तीन चीज़ों से ही है । यदि कोई ऐसा पदार्थ है कि जिसमें ये तीनों चीज़ें नहीं हैं, तो वह एकही हो सकता है, अनेक नहीं, अतएव आत्मा एक है, और एकही हो सकती है।

ईश्वरविषय में, वेदान्त निर्गुण ब्रह्म प्रतिपादन करता है। ब्रह्म निर्गुण, निराकार और नित्य है। समस्त संसार की सत्ता उसी से है। ब्रह्म में शब्द स्पर्शादि विकार नहीं हैं । जरा-मरण का बंधन भी कोई नहीं है । वह अनादि अनन्त है, बड़े से बड़ा है, छोटे से छोटा और ऊंचे से ऊंचा है।

आकारवालों में निराकार है, नाशमानों में अविनाशी है, सर्वव्यापी और संसार का आधार है।

वाणी, नेत्र, मन कोई उस तक नहीं पहुंचते हैं। संसार के किसी पदार्थ से उसकी उपमा नहीं दी जा सकती है। केवल नेति नेति शब्दों से उसे पुकारते हैं। संसार में जो विचित्रता दिखाई देती है वह अविवेक के कारण है। यदि अविवेक-निद्रा टूट जाय तो पुरुष और प्रकृति में कोई सम्बन्ध न रहे।

ईश्वर के विषय में सांख्य ने कुछ नहीं कहा है, केवल सगुण ईश्वर की असिद्धि मानी है। सगुण ईश्वर की असिद्धि ठहराकर निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन नहीं किया है। सगुण ईश्वर न मानने के कारण कोई कोई सांख्य मत को नास्तिक मत भी कहते हैं परन्तु सनातन धर्म में तो छहों शास्त्र बराबर माने जाते हैं। यदि सनातन धर्म में केवल सगुण ईश्वर ही माना जाता तो सांख्य को नास्तिक कहना अनुचित नहीं था। इस धर्म में तो सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार के ईश्वर माने हैं। अतएव सांख्य मत को नास्तिक कहना ठीक नहीं है। वास्तव में देखा जाय तो सांख्य ईश्वर की सत्ता का निषेध नहीं करता है केवल सगुण ईश्वर का होना असिद्ध मानता है।

संसारोत्पत्ति के विषय में सांख्य का बड़ा गौरवशाली विचार है। यह वही विचार है जिसे यूरोप के विद्वान इस समय मान रहे हैं। डारविन और स्पेन्सर के सहस्रों वर्ष पहिले कपिल इस विचार को प्रकट कर चुके थे। इस विचार का नाम परिणामवाद है।

संसार की उत्पत्ति प्रकृति से है। प्रकृति में सत्व, रज और तम तीन गुण हैं। जब इन गुणों में से किसी गुण की अधिकता होती है तो यह उसी की शक्ति है। प्राकृतिक दृश्य सब इसी दैवी मायावी के खेल हैं। संसार एक प्रकार का रहस्य है। जिस किसी के पास कुंजी है, वह इस रहस्य को जान लेता है।

संसार-प्रपंच ब्रह्म का आवरण है, ज्ञानरूपी शस्त्र से जिसने इस आवरण को छेद डाला है, उसे साक्षात् परमात्मा की झलक दिखाई दे गई है। जितने सुन्दर, मनोहर और आकर्षण करनेवाले पदार्थ संसार में हैं सबमें परमात्मा की ही झलक है। नाम रूप के अनन्त विस्तारित आवरण के छिद्रों से परमात्मा के चमत्कार की झलक दिखाई देती है। पिक और कोकिला के मधुर गान में वही है। पुष्पवाटिका की सुगंध वही है। नक्षत्रों की ज्योति वही है। नवयौवना के सुन्दर रूप में उसी की झलक है। मेघ के प्रचण्ड गर्जन में उसी का शब्द है। अन्तःकरण की शान्त वाणी में वही बोलता है। समुद्र की उद्वेग तरंगों में उसी की शक्ति है। भागीरथी के जलप्रवाह में उसी का उद्वेग है। वक्ता के पदलालित्य में उसी का प्रभाव है। चित्रकार की लेखनी में उसी का महत्व है। शिल्पकार की टांकी में उसी की शक्ति का आविष्कार है। न्यायकारी का वही न्याय है। योद्धा का वही वीरत्व है। परोपकारी का वही धर्म है। सिंह का कोप, बकरी की दीनता, हिरण की चंचलता, सब उसी की शक्ति के रूप हैं।

ब्रह्म का उपनिषदों में इस प्रकार वर्णन किया है :—

यत्तदद्दश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुः श्रोत्रं तदपाणिपादं नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं तद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीरा।

अर्थ—वह दिखाई नहीं देता है, न ग्रहण किया जा सकता है। न उसका जन्म है, न उसका कोई वर्ण है, न नेत्र हैं, न कान हैं, न हाथ हैं, न पैर, हैं, वह नित्य है, व्यापी है, सर्वत्र वर्तमान है, सूक्ष्म से सूक्ष्म है, अविनाशी है। धीमान् पुरुष उसे सब प्राणियों का आदि कारण कहते हैं।

न तत्र सूर्योभाति न चन्द्रतारकञ्चेमा विद्युतोभान्ति कुतोऽयमग्नि। तमेवभान्त मनु भाति सर्वन्तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥

अर्थ—वहाँ न सूर्य प्रकाश करता है, न चन्द्रमा, न तारे। जब बिजली तक वहां नहीं प्रकाश करती है, तो अग्नि की क्या पहुंच है। उसी के प्रकाश से सब प्रकाशित है। उसी के तेज से संसार में उजेला है।

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षु
न लिप्यते चाक्षुषै र्बाह्यदोषैः।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
न लिप्यते लोकदुःखे न बाह्यः॥

अर्थ—जैसे सूर्य सब लोक की चक्षु है, और नेत्रों के दोष और बाहर की वस्तुओं के दोष से दूषित नहीं होता है, वैसेही सब जीवों में वर्तमान आत्मा संसार के दुःखों से लिप्त नहीं होती है क्योंकि वह संसार के दुःखों से परे है।

सर्व्वाननशिरोग्रीवः सर्व्वभूतगुहाशयः।
सर्व्वव्यापी स भगवान् तस्मात् सर्वगतः शिवः॥

अर्थ—वह सब का मुख है, सबकी ग्रीवा है और सब जीवों के हृदय में स्थित है, सर्व-व्यापी, सर्वगामी भगवान है और आनन्दरूप है।

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनोमतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥

अर्थ—जो मन करके ध्यान में नहीं आता, किन्तु मन का ज्ञान जिससे होता है उसे ब्रह्म जानो न कि उसे जिसके सामने उपासक बैठते हैं।

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो विद्मो न विजानी मोयथै तदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदि तादथो अविदितादधि।

अर्थ—वहां नेत्र, वाणी, मन किसी की पहुंच नहीं है, हम उसे नहीं जानते हैं, न यह जानते कि वह क्या है, जो कुछ जानने में आया है उससे वह पृथक् है, जो कुछ जानने में नहीं आया है उससे भी पृथक् है।

नैन मूर्द्ध न तिर्य्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत्
न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।

अर्थ—सिर से, अगल बगल से या बीच से उसे कोई नहीं पकड़ सकता। उसके समान कोई नहीं है उसका नाम महान् यश है।

श्रोत्रस्यश्रोत्रंमनसो मनोयद्वाचो ह वाचः सउ प्राणस्य प्राणश्चक्षुषश्चक्षुरति मुच्य धीराः प्रत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति।

अर्थ—वह कान का कान है, मन का मन है, वाणी की वाणी है, प्राण का प्राण है, नेत्र का नेत्र है। इस संसार को छोड़कर धीमान् पुरुष मुक्त हो जाते हैं।

न तस्य कार्य्यं करणं च विद्यते
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञान बलं क्रिया च।

अर्थ—न उसका कार्य है न उसका कारण है, उसके समान वा उससे अधिक कोई नहीं दिखाई देता है, उसकी शक्ति बहुत प्रकार की है और स्वभाव, ज्ञान, बल, के अनुसार काम करती है।

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवाऽयं नपुंसकः।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन सयुज्यते॥

वह न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है, जिस २ शरीर को धारण करता है, उसी उसी करके युक्त होता है।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः
सर्व्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्म्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥

अर्थ—वही एक देव सब जीवों में छिपा हुआ है, सब में व्याप रहा है, सब जीवों की आत्मा है, सब कर्मों का अध्यक्ष है, सब जीवों का अधिपति है, सब का चैतन्य साक्षी है, वह केवल निर्गुण है। वेदान्त में ब्रह्म और आत्मा को एकही माना है क्योंकि जो देश-काल-कारण उपाधियों से रहित है वह दो नहीं हो सकते।

संसार की उत्पत्ति के विषय में वेदान्तमत सांख्य से मिलता हुआ है। जिस प्रकार सांख्य

ने प्रकृति से उत्पत्ति बताई है उसीके आधार पर वेदान्त ने सृष्टि-रचना मानी है। केवल इतना ही अन्तर है कि सांख्य प्रकृति को नित्य और स्वतंत्र व्यक्ति मानता है, वेदान्त इसे माया के नाम से पुकार कर अनिर्वचनीय कहता है। माया न सत्य है न असत्य। माया का अनुभव हो सकता है परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि वह क्या है। प्रपञ्च का पुञ्ज है, परस्पर विरुद्धताओं का जाल है। यह जाल संसार को बांधे हुए है। माया की परिभाषा करना दुःसाध्य एवं असम्भव है।

यदि संसार परमाणुओं से बना हुआ है तो आधुनिक विज्ञान इस मत का शीघ्र ही खंडन कर देता है क्योंकि जिन्हें परिमाणु कहते हैं वे सिवाय शक्ति-विकारों के और कुछ नहीं हैं। स्वयं व्यक्ति रखनेवाले कोई परमाणु नहीं हैं। वेदान्त माया को स्वयं व्यक्तिवाली वस्तु नहीं मानता है, संसार को स्वप्नवत् कहता है। जाग्रतावस्था में जैसे संसार स्थूल दिखाई देता है वैसे ही स्वप्न में भी दिखाई देता है। यदि स्वप्नावस्थावाले संसार का कोई स्थूलाधार नहीं है, जो जाग्रतावस्थावाले संसार में भी इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। संसार तो एक लम्बा स्वप्न सा है। आत्मा के निज रूप प्रकट होने पर यह स्वप्न लोप हो जाता है। संसार को स्वप्नवत् कहना बड़े आश्चर्य की बात मालूम होती है परन्तु संसार के सभी पारदर्शी विद्वानों ने ऐसा ही कहा है।

प्लेटो, प्लेटोन्यस, पैथेगोरस आदि यूनान देश के धुरन्धर तत्ववेत्ताओं ने भी संसार को स्वप्नवत् ही बताया है।

इङ्गलैंड के सुप्रसिद्ध कवि टेनीसन लिखते हैं कि जबतक स्वप्न दिखाई देते हैं, सच्चे मालूम होते हैं, हम सब भी इस स्वप्न में रहते हों तो क्या आश्चर्य है। अंगरेज़ी के अद्वितीय कवि शेक्सपियर का वाक्य है "जिस चीज़ से स्वप्न बने हैं, उसी के हम भी बने हुए हैं।"

वेदान्त का कथन है कि प्रकृति की केवल मनोमय सत्ता है, कोई पृथक् स्थूल सत्ता नहीं है। मनोमयसत्तावाली प्रकृति में संक्रम प्रति-संक्रम के नियमों का प्रयोग उसी प्रकार हो सकता है जैसे स्थूल सत्तावाली प्रकृति में। इस समय के उद्भट तत्ववेत्ताओं ने यह दिखा दिया है कि देश काल कारण (Time, space and casualty) जिनसे संसार बना है, केवल मनोमय-सत्ता रखनेवाले हैं। इस विचार के चलानेवाले सुप्रसिद्ध कैंट थे। सिवाय वेदान्त के और सब मतावलम्बी यह मानते चले आये थे कि देश-काल-कारण मन से अतिरिक्त स्वतंत्र सत्तावाले हैं। यह वैज्ञानिक त्रुटि अब संशोधित कर दी गई है। कैंट ने भलीभांति सिद्ध कर दिया है कि इन वस्तुओं के सिवाय मन (Mental) के और कोई बाहरवाली (Extra-mental) सत्ता नहीं है। यदि देश-काल-कारण जिनसे समस्त जगत् की रचना हुई है केवल मनोमयसत्ता (Mental existence) रखते हैं तो स्पष्ट है कि संसार भी मनोमय है अर्थात् स्वप्नवत् है। इसी का नाम माया है। वेदान्त मतानुसार संसार अविद्या (Nescience) के कारण ही दिखाई देता है। यदि अविद्या हट जाय तो संसार भी दूर हो जायगा।

ऊपर लिखे विचारों का सूक्ष्मतः यह सार है :—

१—न्याय और वैशेषिक दर्शन—

(अ) **जीव**—जीव वह है जिसे सुख दुःख इच्छा द्वेषादि होवें। वही कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता है।

जीव पृथक् २ हैं और अनेक हैं।

(ब) **ईश्वर**—ईश्वर सगुण है और जीव से पृथक् है। वह न्यायकारी है और कर्मानुसार मनुष्यों को सुख दुःख भी देता है।

(म) **संसार**—संसार की रचना परमाणुओं से हुई है। संसार के जितने पदार्थ हैं, परमा-

णुओं के पुंज हैं। इसका नाम परमाणुवाद (Atomic theory) है।

२—सांख्य दर्शन।

(अ) **जीव अथवा पुरुष**—पुरुष सुख-दुःखादि से रहित है। न वह कर्म करता और न उनके फल भोगता है।

यह सब कर्म लिङ्गशरीर के हैं।

पुरुष तो केवल अनादि, अनन्त, अमर, अजर और निरन्तर बन्धनमुक्त है।

पुरुष एक नहीं अनेक हैं।

(ब) **ईश्वर**—ईश्वरविषय में सांख्य इतना ही कहता है कि सगुण ईश्वर की सिद्धि नहीं हो सकती।

(म) **संसार**—संसार की उत्पत्ति प्रकृति अथवा प्रधान (?) से हुई है। प्रकृति पुरुष से पृथक् है और स्वयं व्यक्ति रखनेवाली है। संक्रम (Evolution) और प्रतिसंक्रम (Involution) द्वारा सृष्टि और प्रलय होता है। इस विचार का नाम परिणामवाद (Evolution theory) है।

३—वेदान्त दर्शन।

(अ) **जीव अथवा आत्मा**—सांख्य ने जो पुरुष का रूप माना है, वही वेदान्त ने आत्मा का रूप माना है, केवल अन्तर इतना ही है कि सांख्य ने पुरुष अनेक माने हैं और वेदान्त ने आत्मा एक ही मानी है।

(ब) **ईश्वर**—निर्गुण ब्रह्म जो सर्वव्यापी और संसार का आधार है।

(म) **संसार**—संसार की उत्पत्ति उसी तरह जैसे सांख्य ने मानी है केवल अन्तर इतना ही है कि प्रकृति को माया कहा है और इस माया को स्वयंसत्तावाली नहीं बताया है। माया अनिर्वचनीय है न सत्य है न असत्य। इसका नाम मायावाद (Doctrine of Nescience) है।

पूर्वोक्त विचारों में क्रमशः विकाश है। न्याय-वैशेषिक दर्शनों की अपेक्षा सांख्य के और सांख्य की अपेक्षा वेदान्त के विचार अधिक गम्भीर और महत्वपूर्ण हैं।

चार्वाकों (Materialists) के मत से लगा-कर वेदान्त-सिद्धान्तों तक उत्तरोत्तर विचार संवर्धन दिखाई देता है। चार्वाक लोग शरीर को ही आत्मा मानते थे। इनका कहना है कि आत्मा शरीर से पृथक् नहीं है। शरीर के साथ ही उसका जन्म होता है और शरीर के साथ ही उसका नाश हो जाता है। चार्वाकों की कई शाखाएँ थीं परन्तु किसी शाखावालों का विचार न्याय और वैशेषिक की विचार गम्भीरता तक नहीं पहुंचा है। इनमें से कोई शाखावाले ज्ञानेन्द्रियों को, कोई कर्मेन्द्रियों को, कोई मन को और कोई बुद्धि को ही आत्मा मानते हैं। जीव के आवागमन (Transmigration of Soul) में इनका विश्वास नहीं है। ईश्वर को मूर्खों का मनकल्पित ढकोसला बताते हैं और संसार की उत्पत्ति आपस में शक्तियों के मिल जाने (Fortutous Concurrence of forces) से कहते हैं।

इन विचारों की न्याय-वैशेषिक के विचारों से तुलना की जाय तो बड़ा अन्तर दिखाई देगा। न्याय ने जीव को शरीर से पृथक् माना है। संसार का कर्ता ईश्वर को बताया है। संसार की उत्पत्ति का क्रम परमाणु द्वारा माना है। इससे अनुमान होता है कि चार्वाकों की अपेक्षा न्याय और वैशेषिक दर्शनों में विचार की बड़ी गम्भीरता और गुरुता है। ज्ञानविचार में पहिली श्रेणी चार्वाक मत की है और दूसरी श्रेणी न्याय और वैशेषिक की।

जब न्याय और वैशेषिक सिद्धान्तों से तुलना की जाती है तो जैसा अन्तर चार्वाक और न्याय-वैशेषिक विचारों में देखा गया था वैसाही न्याय-वैशेषिक और सांख्य-विचारों में

है। जिसे न्याय-वैशेषिक ने जीव माना है उसे सांख्य ने प्रकृति का पुतला बताया है-जीव की महिमा इससे अत्यन्त अधिक बताई है। न्याय-वैशेषिक प्रतिपादित जीव अजर-अमर और नित्य नहीं है। जो लक्षण जीव के बताये गये हैं वे तो लिङ्ग शरीर के ही हैं और लिङ्ग शरीर प्रकृति का बना हुआ है। सांख्य के पुरुष का बड़ा महत्व है। इसके सामने न्याय-वैशेषिक के जीव की कुछ भी तुलना नहीं है। ईश्वर के विषय में देखा जाय तो न्याय-वैशेषिक के सगुण ईश्वर का सांख्य के महत्वशाली प्रमाणों के सामने सिद्ध होना दुःसाध्य एवं असम्भव है। सांख्य ने इस विचार को इसी श्रेणी तक बढ़ाकर छोड़ दिया है। संसार की उत्पत्ति-विषय में तो सांख्य ने वह महत्वात्मक विचार किया है कि जिसकी आज समस्त भूमण्डल में प्रशंसा हो रही है। जो विचार डारविन और स्पेन्सर ने यूरोप की सभ्यता में अब निकाले हैं, उन्हें कपिल मुनि सहस्रों वर्ष पहिले लिख चुके हैं। इस विचार का नाम परिणामवाद (Evolution theory) है। विज्ञान शास्त्र ने न्याय-वैशेषिक के परमाणुवाद (atomic theory) का सर्वथा खंडन कर डाला है। सिद्ध कर दिया है कि जिनको स्थूल परमाणु कहते हैं वे वास्तव में कोई जड़ पदार्थ नहीं हैं, वे संसारोत्पत्ति में मूल कारण भी नहीं हो सकते हैं। संसार में तो सिवाय शक्तिविकारों (Ethereal currents) के और कोई जड़ पदार्थ (matter) मूल कारण नहीं दिखाई देता है। सांख्य ने प्रकृति के शक्ति-विकार द्वारा ही संसारोत्पत्ति बताई है। यही विचार आधुनिक विज्ञान शास्त्र (Seience) का भी है। इन सब विचारों के देखते सांख्य को न्याय-वैशेषिक से उच्चतर पदवी देनी होगी। अतएव सांख्य दर्शन की ज्ञानविचार में तीसरी श्रेणी है।

अब वेदान्त देखिये। जो उत्तरोत्तर विचार-संवर्धन न्याय-वैशेषिक और सांख्य-सिद्धान्तों में दिखाई देता है वही सांख्य और वेदान्तसिद्धान्तों में है।

चार्वाकों ने शरीर ही को आत्मा माना, न्याय-वैशेषिक ने शरीर से पृथक् आत्मा मानी परन्तु उसे सुख दुःखादि का भोक्ता बताया। सांख्य ने इन सब उपाधियों से रहित पुरुष माना और जिसे जीव कहा गया था उसका काम लिङ्ग शरीर से लिया। वेदान्त ने इस विचार को उच्चतम श्रेणी पर पहुंचा दिया। जो त्रुटि सांख्य के विचार में रह गई थी उसका वेदान्त ने संशोधन कर दिया। त्रुटि यह थी कि जब पुरुष देश-काल-कारण-रहित है तो ऐसे पुरुष अनेक कैसे हो सकते हैं। ऐसा तो एकही पुरुष हो सकता है इसलिए वेदान्त ने आत्मा एकही मानी है। इस प्रकार सांख्य की त्रुटि दूर हो गई। जब आत्मा एक मान ली और उसके लक्षण देश-काल-कारण-उपाधि रहित मान लिये तो उसमें और परमात्मा में क्या अन्तर रहा। दोनों एकही हैं, केवल दृष्टिस्थान का ही अन्तर है।

ईश्वर के विषय में देखिये। चार्वाक तो ईश्वर को मानते ही नहीं थे। न्याय-वैशेषिक ने सगुण ईश्वर का प्रतिपादन किया। सांख्य ने सगुण ईश्वर की असिद्धि मानी। वेदान्त ने निर्गुण ब्रह्म का विवेचन किया। वेदान्त का ब्रह्म ऐसा है जो सब चराचर का आधार और सर्व-व्यापी है। बिना ऐसे ब्रह्म के जगत् का परि-माणु अथवा प्रकृति से बनना और चलना असम्भव है। जो कुछ शक्तियां संसार में दिखाई देती हैं इसी की सत्ता से हैं। निर्गुण ब्रह्म को असिद्ध करना नितान्त असंभव है।

सांख्यानुसार संसारोत्पत्ति मानते हुए वेदान्त ने सांख्य की इस त्रुटि को दूर कर दिया कि प्रकृति स्वतंत्र सत्तावाली है। प्रकृति केवल माया है और इसकी मनोमय सत्ता है। ब्रह्मसे पृथक् माया की कोई सत्ता नहीं है।

माया न सत्य है न असत्य है, अनिर्वचनीय है। अविद्या इसका मूल कारण है और इसलिए संसार स्वप्नवत् है। अविद्या के हटने पर संसार-प्रपंच भी लोप हो जाता है। अंग्रेज़ी सुशिक्षितों को इस अवसर पर बरकले तत्ववेत्ता का स्मरण हो उठेगा। इस महानुभाव ने बड़ी विद्वत्ता और चातुर्य से संसार को असार सिद्ध कर दिखाया है। पूर्वोक्त दर्शन-सिद्धान्त-समालोचना से ज्ञात हुआ होगा कि चार्वाकों का मत ज्ञानशास्त्र की सबसे नीची श्रेणी पर है, न्याय-वैशेषिक दर्शन उससे ऊंची श्रेणी पर हैं। सांख्य-दर्शन के सिद्धान्त इससे भी ऊंचे हैं और वेदान्त दर्शन का गौरव और महत्व सबसे ऊंचा है। वेदान्त इसीलिए इस नाम से पुकारा जाता है। वेदान्त का अर्थ वेद के अन्तिम सीमावाले सिद्धान्तों से है। इस समालोचना से निम्नलिखित अनुमान निकलते हैं :—

१—दर्शन शास्त्रों के सिद्धान्त परस्पर विरुद्ध नहीं हैं। जो लोग ऐसा कहते हैं, इन सिद्धान्तों से अनभिज्ञ हैं। ये सिद्धान्त उत्तरोत्तर गौरवशाली होते गये हैं। न्याय-वैशेषिक के विचारों से सांख्य के विचार अधिक महत्व के हैं और सांख्य से वेदान्त के अधिक महत्व के विचार हैं। इन शास्त्रों के सिद्धान्तों में परस्पर वही सम्बन्ध है जो मनुष्य की बाल, तरुण और परिपक्व अवस्था में होता है। बालक, तरुण मनुष्य का विरोधी नहीं है, न तरुण मनुष्य गाढ़तरुण और परिपक्व अवस्थावाले मनुष्य का विरोधी है। यही सम्बन्ध इन दर्शनशास्त्रों के सिद्धान्तों में है। ऐसा कहना कि दर्शन शास्त्र परस्पर विरुद्ध हैं निरर्थक ही नहीं है किन्तु मूर्खता प्रकट करना है।

२—द्वैत (Dualism) और अद्वैत (Monism) का जो विवाद चला आता है सर्वथा निरर्थक है क्योंकि न्याय-वैशेषिक मतवाले जीव के कुछ और लक्षण मानते हैं और वेदान्ती कुछ और। जीव और ईश्वर एक नहीं हो सकते, न लिङ्ग शरीर अथवा सूक्ष्म शरीर और ब्रह्म एक हो सकते हैं। आत्मा और ब्रह्म एक हो सकते हैं।

यदि जीव और आत्मा के एक से लक्षण माने जायँ और जीव-ईश्वर अथवा आत्मा ब्रह्म को एकही बताया जाय तो विवाद, हो सकता है। जब न्याय-वैशेषिक जीव को सुख, दुःख, इच्छा-द्वेषादि का विषय मानते हैं और वेदान्ती जीव अथवा आत्मा को इन सब दोषों से रहित मानते हैं तो ऐसी अवस्था में विवाद होना कैसे सम्भव है। जो लोग ऐसा विवाद करते हैं उन्हें जीव और आत्मा के लक्षण नहीं मालूम हैं। यदि यह परिभाषा जानने पर भी कलह करते हैं तो केवल पक्षपात और वितण्डा ही है। सिद्धान्त समझने पर तो न्याय-वैशेषिक मतानुयायी यह कह सकते हैं कि जीव और ईश्वर पृथक् २ हैं परन्तु आत्मा और ब्रह्म एक हैं और एकही हो सकते हैं। वेदान्ती यह कह सकते हैं कि सूक्ष्म शरीर जो नैयायिकों के जीव के बराबर है ब्रह्म से पृथक् है और पृथक्ही हो सकता है और इसी तरह नैयायिकों का जीव और ईश्वर पृथक् २ हो सकते हैं। परन्तु आत्मा और ब्रह्म जिनके लक्षण नैयायिकों के जीव और ईश्वर से सर्वथा भिन्न हैं कदापि दो नहीं हो सकते। वे दोनों एकही हैं और एकही हो सकते हैं।

चित्र परिचय।

[संग्रहकर्ता—श्रीयुत विष्णुदेव सिंह।]

(१)

तद्गत चिन्ता।

कोमल कंज मृणाल पै, किये कलानिधि वास।
कब को ध्यान रह्यो जु धरि, मित्र मिलन की आस॥

(२)

वर्षा-वर्णन।

तड़ित तरर त्यों शरम्मद अरर घन
घोर की घरर झनकार झींगुरन की।
पौन की लहक त्यों कदम्ब की महक लागी
दाहक दहन लै लै सीमा उड़गन की॥
भनत कविंद बिन नाह से सनाह साजे
पटा झर घटा फेरैं क्यों हू ना मुरन की।
पेरैं भट मन को अरेरैं करैं आठो याम
टेरैं विरहीन की दरेरैं दादुरन की॥

(३)

अंग वर्णन।

कङ्कन करन कल किंकिणी कलित कटि
कंचन कँगूरा कुच केश कारी यामिनी।
कानन करन फूल कोमल कपोल कंठ
कम्बुक कपोत कीर कोकिल कलामिनी॥
केसर कुसुम कलधोत की कछू ना कान्ति
कोविद प्रवीन वेनी करिवर गामिनी।
कोक कारिका सी किन्नरी की कन्निका सी
कल काम की कलासी कमलासी खासी कामिनी

(४)

दोहा।

पिय प्यारी जूरो चितै, चित लीन्हों पहिचान।
शीस उठायो है तिमिर, शशि को पीछे जान॥

(५)

केशव अशोक किधौं सुन्दर शृङ्गार लोक
कनक के हार किधौं आनन्द के कन्द को।
शोभा को स्वभाव कैधौं प्रभा को प्रभाव देखि
मोहैं जन आसु मन नन्दन सुनन्द को॥
चमकत चारु सुचि गङ्गा को पुलिन मानों
चकचौंधे चित मति मन्द हूं अमन्द को।
सेज है सुहाग की कि भाग की सभा सुभाग
भामिनि को भाल किधौं भाग चारु चंद को॥

(६)

कैधौं लागी पंकज के अंक एक लीक किधौं
केशव मयंक अंक अंकित सुभाय को।
यंत्र है सुहाग को कि मंत्र अनुराग को कि
मंत्रन को बीज अध ऊर्ध अभाय को॥
आसन शृङ्गार को कि काम को सरासन है
शासन लिख्यो है प्रेम पूरन प्रभाय को।
राखि रुख वेष विष विषम पियूष में
सुभामिनि की भौहैं कैधौं भौन हाय भाय को॥

(७)

कैधौं लाज मन्दिर के असित कपाट स्वच्छ
झिलमिल वारे पिय प्यारे के लखन के।
कमला के द्वारन वँधाये मैन तोरण कै
गारे हैं गरब जिन वरही पखन के॥
प्रेमी मन श्रमहारी वीजन कै हनूमान
बैठे षटपद विन्दु वारिज भखन के।
पाले खंजरीट पिंजरन में अतनु कैधौं
नौल के दृगञ्चल हरौल धौं चखन के॥

(८)

ऐसे मैन काहू के न ऐसे मैन काहू के न
ऐसे मैन काहू के सँवारे दीह दौर के।
ऐसे भौंर हैं न कारे ऐसे भौंर हैं न कारे
ऐसे भौंर हैं न कञ्ज मंजुल मरोर के॥
सरसे हैं सुखमा के सरसे हैं सुखमा के
सरसे हैं माखन कटाक्ष पैने कोर के।

देखे हरि नीके नैन दीखे हरि नीके नैन
दीखे हरि नीके नैन तीखे हैं न और के॥

(९)

केसर के सनॅ चन्द्र के बीच
रचे मनो लाल गुलाल चुनी गनु।
ये उजराई पिराई ललाई
मलाई हूं के न मुलायमी है तनु॥
लोने सलोने से सोने से शोभित
होने न ऐसे विधात हू के धनु।
बोलत हैं नहिं डोलत लाल ये
गोल कपोलन मोल लिये मनु॥

(१०)

रागिन के आगर विराग के विभाम कर
मन्त्र के भण्डार गूढ रूढ़ के रवन हैं।
ज्ञान के बिवर कैधौं तनक तनक तन
कनक कचोरी प्रेम रस अचवन हैं॥
श्रुतिन के कूप कैधौं मन के सुभिब्ब रूप
किधौं केशवदास रूप भूप के भवन हैं।
लाज के अयन किधौं नयन के सचिव किधौं
नैन के कटाच्छ शर लक्ष्य कै श्रवण हैं॥

(११)

कर्णफूल द्युति धरन दुहुं, करण लसति यहि भाय।
मनो वदन शशि के उदै, नखत दुहूं दिशि आय॥

(१२)

बनवासी किये शुक पीठनिवासी
तुणीर ज्यों तीर विलासिका है।
तिल सून प्रसून हूं खेत गिरे
गुहा सेवक सिद्धि निवासिका है॥
भ्रुव तेग सुनैन के बान लिये
मति बेसरि की संगवासिका है।
बहु भावन की परकाशिका है
यह नासिका धीर बिनासिका है॥

(१३)

कैधौं पिय नेहमई कीरति हसन लैकै
भूलै हेम भूले फूले ध्यान समरथ के।
कैधौं मीत मन खग फंदा तामे मित्र वश
बैठि कवि कुंज सो मथाने मनमथ के॥
ऐसी भांति देखिये ये मोहैं मन प्रीतम के
सुरत बखान करौं कहां लौं अकथ के।
भूले ज्ञान गथ के सुलोक लाज पथ के
सुकौन नैन नथ के निहारियहि नथ के॥

(१४)

धर विद्रुम में कहां लाली इती
कहां कोमलता जया ऐसी गहै।
कहां लाल में लाल प्रकाश इतो
दामता कहां बापुरो बिम्ब लहै॥
कहां ऊख मयूख में ऐसी मिठास
पियूख नहीं हरिऔधि लहै।
जॅती चारुता कोमलता सुकुमारता
माधुरता अधरा में अहै॥

(१५)

पावै सो परस जाको होत है सरस भाग
पावत दरस जाकी जानो अनुसार है।
रमणीय वेखन की लीला धर लेखन की
ललित सुरेखन की प्रगटी पसार है।
वहि क्रम बूढ़ी करि चिंता चित्त गूढ़ी करि
रचनाऊ ढूंढ़ी विधि विविध विचार है।
कथन कथे री लोक चौदहों मथे री पर
पाकी या हँथेरी की न पाई अनुहारि है॥

(१६)

सब सुर तीन ग्राम रागन को धाम धन्य
मूर्छना सुताने श्रुति ग्रह मति बैनी को।
कैधौं चन्द्र मण्डल को परम अधार शुद्ध
उज्ज्वल अनूप स्वच्छ दच्छ पिकबैनी को॥
भनै रघुनाथ शील शोभा को निवास यही
प्रीतम के प्रीति को प्रतीत कर देनी को।

कम्बुते सुढार रम्य चारु है कपोत हूं ते
रम्भा रति कंठ ते सुकंठ मृगनैनी को॥

(१७)

तन तरुवर की उभय शाखा बलभद्र
सुन्दर सुडौल अति गोल समतूल है।
सांचे भरि ढरि विधि दामिन के दोऊ ढूक
दमकति द्युति नाहिं दुरत दुकूल है॥
सुख के सरोवर के पोखे हैं मृणाल मानो
फूले कर अग्र कोकनद के से फूल हैं।
काम कुन्द हेरे भास कुन्दन कनक दण्ड
कैधौं भोरि भामिनि के गोरे भुज मूल हैं॥

(१८)

गड़िबैठीं गोरे करन, श्याम चुरी यहि भांति।
सोन जुही के माल में, ज्यों लपटी अलि पांति॥

(१९)

कैधौं यह केश भेष रस को नरेश वाके
देश की सुदेश भूमि शोभा रस भीनी है।
कैधौं यह मदन की पाटी मन्त्र पढ़िवे को
सुरति सुकवि बनी हाटक नवीनी है॥
यौवन के मन्दिर की भीति है सुढार कैधौं
राज रतिराज रुचि सन रचि कीन्हीं है।
ऐरी वीर याकी यहि पीठ नेकु दीठि परी
देखत हीं ईठि सब ही को पीठि दीनी है॥

(२०)

अभिलाष।

कैधौं वहि देश घन घुमड़ि न बरसत
कैधौं मकरन्द नदी नद पथ भरिगे।
कैधौं पीक चातक चकित चकवाक वाक
मत्त भये दादुर मधुप मोर मरिगे॥
मेरे मन आवत न आली प्यारे आवत हैं
कामांकुर निकर महीते धौं निकरिगे।
कैधौं पञ्चसर हर फेरि कै भसम कीन्हों
कैधौं पञ्चसर जू के पाँचों सर सरिगे॥

(२१)

अब ह्वै है कहा अरविंद सो आनन
इन्द्र के जाय हवाले परयो।
पद्माकर भाखै न भाखै बनै
जिय ऐसे कछू बकसाले परयो॥
इक मीन विचारो विंध्यो बनसी
पुनि जाल के जाय हुमाले परयो।
मन तो मनमोहन के संग गो
तन लाज मनोज के पाले परयो॥

(२२)

एरे वीर पौन तेरो चहूं ओर मौन यासों
तेरे सम कौन मेरे बैन सुन कान दै।
जगत के प्राण उड़े छोटे को समान घन
आनन्द निधान सुखदान दुखियान दै॥
रूप उँजियारे गुणवारे वे सुजान प्यारे
अब ह्वै अमोही बैठे पीठि कै अयान दै।
बिरह व्यथा की भूरि आँखन में राखो पूरि
हा हा तिन पायन की धूरि नेक आन दै॥

मुसलमानों की आश्चर्यजनक उन्नति।

[लेखक—श्रीयुत ब्रजमोहनलाल वर्मा।]

यद्यपि महाराष्ट्र, बंगाल, मद्रास व संयुक्तप्रदेश में शिक्षित हिन्दूसमाज की कुछ उन्नति अवश्य हुई है व इन प्रान्तों के नवयुवक प्रसन्नतापूर्वक देश-सेवा व राष्ट्र-संगठन के कार्य को नौकरी व दासत्व की अपेक्षा श्रेष्ठ समझने लगे हैं परन्तु जिस तेज़ी से गत पचास वर्षों में मुसलमानों ने अपनी उन्नति करके गवर्नमेंट तक इसका प्रभाव डाला है—यदि उसका मुकाबला किया जाय तो हम बहुत

पीछे पड़ गये हैं। संसार में उन्नति किसी की रुकी नहीं रहती, कोई प्राणी कभी स्थिर दशा में नहीं रह सकता परन्तु जिसकी गति तीव्र होगी वह संसार मे बाज़ी ले जायगा। राष्ट्रोन्नति में वही जाति अग्रसर हो सकती है जो समय के अवसरों से लाभ उठावे।

हम इस बात की बिलकुल ही परवाह नहीं करते कि संसार में कौन २ जातियाँ किस २ प्रकार से उन्नति कर रही हैं। जहां संसार की उन्नतिशील जातियां सजीव राष्ट्रों की उन्नति को देख व उससे शिक्षा ले अपनी भी उन्नति कर लेती हैं वहां हम अपने नेत्र बन्द कर समय व काल की बाट देखते रहते हैं। नवीन राष्ट्र जापान की पचास साल की उन्नति को देख सभ्य संसार व अभिमानी यूरोप शर्मा गया है। जिस जापान की गत रूस-जापान युद्ध में विजय में भी शंका की जाती थी, उस जापान ने सब के देखते २ रूस को मार भगाया। सब यही समझने लगे थे कि इस भारी युद्ध में यद्यपि उसने विजय पाई है परन्तु इससे यह इतना शिथिल होगया है कि आगे उसको बहुत बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। यूरोप का अनुमान झूठा निकला और आज वही निर्बल व अशक्त कहानेवाला जापान रूस का गुरू बन गया है। आज वह जर्मनी, इङ्गलैंड, फ्रान्स, किसी से भी युद्ध-कौशल में पीछे नहीं है। संसार भर उसकी सहायता लेने के लिए खुशामद करने को तैयार हैं। नवसिखुए जापानी गोलन्दाज़ रूसी प्रौढ़ गोलन्दाज़ों को युद्ध-शिक्षा देने के लिए निमंत्रित किये जाते हैं। आज रूसी सेना में सबसे प्रथम स्थान जापानी तोपों को व जापान से सीखे हुए रूसी गोलन्दाज़ों को मिल रहा है। संसार में उन्नति के अवसरों से लाभ उठाकर अपनी प्रभुता बनाये रखने में यह एक जीता जागता उदाहरण है।

हम तो यही समझते हैं कि जिस प्रकार हम अपना जीवन व्यतीत करते हैं उसी प्रकार संसार भी करता होगा। हम अपने पड़ोसी की उन्नति से भी लाभ नहीं उठा सकते। यही कारण है कि मुसलमानों की जो पचास साल में उन्नति हुई है उससे हम निरे अनभिज्ञ हैं। मुसलमानों के संगठन को देख किसे आश्चर्य न होगा? यद्यपि भारतवर्ष में इनकी संख्या केवल ७॥ करोड़ है तथापि वे अपने को हिन्दुओं से संख्या में हीन कहाने में शर्माते हैं। एक ही धर्म-सूत्र में बँधे होने के कारण चीन, फारस, मिस्र, अरब, टर्की, लङ्काद्वीप व मालद्वीप, जावा व सुमात्रा के मुसलमानों से वे अपने को किसी भांति अलग नहीं समझते। आज संख्या के विचार से वे हमसे दुगने हैं। एकता के कारण हमसे वे कहीं बलिष्ठ देख पड़ते हैं। आज उनको इस बात का घमंड है कि हम चालीस करोड़ हैं।

ये चालीस करोड़ हमारे २० करोड़ छितरे बितरे भाइयों के समान नहीं हैं। इनमें जीवन है। हर एक मुसलमान दूसरे के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझता है। वह अपना जीवन इस्लाम धर्म पर निछावर करने को सदा तैयार है। धर्माज्ञा का वह स्वप्न में भी उल्लंघन नहीं कर सकता। इसके पालन करने के लिए एक अनपढ़ मुसलमान चाहे वह संसार के किसी भी भाग में क्यों न हो, अपनी प्यारी से प्यारी वस्तु कुर्बान करने को तैयार हो जायगा। वह बिना किसी बाहरी हलचल के इसी धुन में लगा रहता है कि अपने धर्मभाइयों से मिलने का उसे कब अवसर मिले। हज़रत मुहम्मद की आज्ञा को वह कभी उल्लंघन नहीं कर सकता। उनके क़लाम में अक्ल को दख़ल नहीं है। देहाती मुसलमान भी अपने रिश्ते, नाते अरब, तुर्क व अफ़गानों से जोड़ने में नहीं हिचकते। उनको अपने पूर्वजों की विजय पर, जिन्होंने चीन से स्पेन तक कभी राज्य शासन किया था, जिन्होंने उत्तम २ विद्यालय स्थापित किये थे व जिन्होंने ही ग्रीस व मिस्र के प्राचीन

साहित्य को नष्ट किया था* आज भी अभिमान है। आशा पर सारा संसार स्थित है। हिन्दुओं को राष्ट्रों की गणना में न रखकर व चीन को अपने से शारीरिक बल, पौरुष, परिश्रम व एकता में हीन समझते हुए मुसलमान अपने को भावी एशिया का पहिला या कम से कम दूसरा राष्ट्र कहलाने का स्वप्न निरंतर देखते हैं।

इसका क्या कारण है ? हमारे यहां भी एक ही ईश्वर की पूजा होती है। वीरपूजा हमारे यहां भी वर्तमान है। किसी आदर्श में हम उनसे कम नहीं हैं। तब हम उनके समान अपनी जागृति क्यों नहीं कर सकते। हमारी सभाओं में, हमारे उत्सवों व जातीय त्योहारों में बुलाने पर भी इनेगिने ही लोग क्यों आते हैं ? उनके यहां बिना बुलाये धर्म के नाम पर अमीर व गरीब एक साथ उठते, बैठते, खाते पीते व उन्नति की चिन्ता क्यों करते हैं? धार्मिक संसार में जहां लोग राजनैतिक विकास से अनभिज्ञ हैं इस प्रकार की पूर्ण प्रजासत्तात्मक संस्था (Perfected Democracy) का उदाहरण अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकता। एक भीख माँगनेवाला मुसलमान, नहीं २ एक पापाचारिणी वेश्या भी अपने कमाये हुए धन में से मस्जिद के लिए, बकरीद के लिए, मुस्लिम लीग के लिए व अंजुमन इस्लाम के लिए कुछ न कुछ अवश्य दान करती है। परन्तु इसका हाल किसी को नहीं मालूम होता न वह वसूल होने के पहिले ही समाचारपत्रों में छापा जाता है।

वर्तमान समय में मुसलमानों की उन्नति के विशेष कर तीन कारण देख पड़ते हैं। एकता, अविद्या व यूरोपादि देशों में मुसलमानी राज्यों पर अत्याचार। राष्ट्रीय-उन्नति में अविद्या भी अपना उचित भाग रखती है। किसी भी सभ्य जाति को अपनी सभ्यता पर घमंड नहीं करना चाहिये। इतिहास ने यह सिद्ध कर दिया है कि सभ्य से सभ्य जाति को भी निरे जंगली लोग अपनी एकता, क्रूरता व संगठन के बल से खाक में मिला सकते हैं। रोम की यही दशा हुई। भारतवर्ष भी सिकन्दर से लेकर कई शताब्दियों तक निरे जंगली व असभ्य परन्तु रणशूरों के हाथ का शिकार बना रहा। जाति में विद्या का प्रचार चाहे न हो, चाहे उसके यहां साहित्य का नाम भी न हो, चाहे उसके यहां से प्रतिमास एक समाचारपत्र न निकलता हो परन्तु यदि उस जाति में एकता है व सर्व-साधारण के एक दूसरे से मिलने में कोई रुकावट नहीं है तो थोड़े मनुष्यों की शिक्षा से समस्त जाति शिक्षित हो जाती है। वे अप्रत्यक्ष रीति से अपनी अशिक्षित जाति में निरन्तर मिलते रहने के कारण विद्या, बल, नीति व नवीन जीवन का संचार करते रहते हैं व थोड़े ही दिनों में उनके विचारों के बहुत से हिस्सेदार बन जाते हैं। सामाजिक बन्धन न होने के कारण मुसलमानों के संसर्ग में आने-वाले गुलामों ने भी भारतवर्ष का राज्य किया है इतिहास इसका साक्षी है।

मुसलमानों की एकता का असली कारण उनका धार्मिक कट्टरपन है। बिना किसी बाहरी हलचल के मुसलमानों के बालक-बालिकाओं को धार्मिक शिक्षा दी जाती है। धार्मिक-पुस्तकों के द्वारा उनका मन मुसलमानी सांचे में ढाला जाता है। आगे चलकर चाहे वे किसी भी संगति में रहें, गुण व दोष का उनमें कितना भी ज़बर्दस्त समावेश क्यों न हो, उनका रंग सदा मुसलमानी ही रहेगा। मुसलमानों के लड़के, लड़कियां भी जानती हैं कि एक समय उनके पूर्वज भारतवर्ष का राज्य करते थे। हज़रत मोहम्मद के पैरु कभी हारते नहीं। वे जानते

* गिबन ने यह सिद्ध कर दिया है कि मिस्र आदि के साहित्य को तथा एलेक्जेन्ड्रिया के पुस्त-कालय को मुसलमानों ने नष्ट नहीं किया था। सं०।

हैं कि सारे संसार में मुसलमान सबसे श्रेष्ठ थे और ताक़यामत वैसेही रहेंगे। मुसलमान नवयुवक जो स्कूल व कालेजों में शिक्षा पाते हैं, अपने धर्म व जाति को नहीं भूलते। चाहे वे सदा विलायती भेष में ही क्यों न हों परन्तु उन्हें अपनी प्राचीन प्रभुता का घमंड है। मुसलमान कुली, भिश्ती, कस्साब, कुंजड़ों को भी विश्वास है कि टर्की, मिस्र, फारस, अरब, व काबुल संसार की सब जातियों से, विद्या, धन, पौरुष व सभ्यता में श्रेष्ठ हैं। यद्यपि परशिया का प्रायः अन्त हो चुका, टर्की की दशा शोचनीय है, काबुल (Buffer) स्टेट होने के कारण ही, राजनीति के अनुसार ब्रिटिश, गवर्नमेंट के मान का पात्र है; परन्तु संसार भर के इतिहास से परिचित मुसलमान भी, अपने अज्ञानी व निर्बुद्धि साथियों को एकता में बँधे रहने के लिए, उनकी हां में हां मिलाकर कहेगा कि हम सब एक हैं, संसार में हमसे बढ़ कर एकता, समानता, शक्ति व धर्म में कोई देश नहीं है।

अंग्रेज़ी राज्य ने हम सबको उन्नति करने का अवसर दिया है। परन्तु हम उससे लाभ नहीं उठा सके। मुसलमान व ईसाइयों ने इससे अधिक लाभ उठाया है। भारतवर्ष में मुसलमानों की हलचल के केन्द्र-स्थान हैं पेशावर, लाहौर, लखनऊ, कानपुर, आगरा, रामपुर, भूपाल, भावलपुर, सागर, जबलपुर, जमालपुर, इत्यादि। अधिकतर वे शहरों में रहते हैं। हर प्रकार के रोज़गार से अपना निर्वाह करते हैं। जो लोग देहात में रहते हैं वे भी शहरों में आते जाते हैं व अपने पर्व त्योहारों में शहर के मौलवी व मुल्ला बुलाकर, शहर में जो कुछ हो रहा है, साल भर में जो कुछ हो चुका है सब एक दिन में ही गुरुमंत्र के समान सीख लेते हैं। क्या यह अंधविश्वास कम सराहनीय है? इस प्रकार मुसलमान शहर व देहातों में रहते हुए भी एक सूत्र में बँधे हुए हैं। अभी हाल में ही, आगरे में हिन्दुओं पर अत्याचार हुए, कमसिन बालकों की जानें गईं! सैकड़ों हिन्दुओं के घर लूट लिये गये। इस भीषण अत्याचार में देहाती मुसलमान व कुंजड़े कसाइयों का अधिक भाग था, हमें विश्वास है कि कोई सभ्य मुसलमान इसमें शामिल नहीं हुआ, परन्तु एक २ दो २ सप्ताह पहिले मुसलमानों के बीच शहर व देहातों में खलबली थी। चार, पांच रोज़ तक आगरे की पुलीस व फौज कुछ न कर सकी। यही नहीं बकरीद के दिन जितने उपद्रव सुनाई देते हैं प्रायः सबके अड्डे अब शहरों से सहायता पाते हुए देहातों में जम गये हैं।

ऐसे २ कृत्य करनेवाले मुसलमानों की तरफ़दारी करनेवाले नवशिक्षित वकील व बैरिस्टरों की कमी नहीं है। उनकी प्रसिद्धि का यही एक ज़रिया है। अन्त में इतने भीषण अत्याचार होने पर, आगरे में हज़ारों अपराधी, जिनका हाथ खून से रंगा हुआ था साफ़ छूट गये। ऐसा करने को मानो उनको उत्तेजना मिली। इधर कमज़ोर व निर्बल हिन्दू निरपराध सताये गये, परन्तु उनकी पैरवी करने के लिए एक हिन्दू वकील नहीं मिलता था। जो वकील, हिन्दुओं की कमाई से बढ़ करके–इस दशा को पहुंचे हैं वे हिन्दुओं के स्वत्व की रक्षा करने में मुंह छिपावें, इस उदारता की कहीं नज़ीर भी नहीं मिल सकती।

हमारा यह कदापि उद्देश नहीं है कि हिन्दू उपद्रव करें व नेता उनको सहायता पहुंचावें। कदापि नहीं। परन्तु अपनी रक्षा न करना कहां का न्याय है। यदि आज मुसलमान नेता, अपने मूर्ख उपद्रवी भाइयों के अवगुणों का ख्याल न करके उनकी सहायता करने को तैयार हैं तो कल यह भी संभव है कि वे उन्हीं अशिक्षतों को सन्मार्ग पर ला सकें व जिस जाति के नेता स्वार्थत्यागी हों, व जाति उनपर विश्वास

करती हो, तो संसार की कोई भी शक्ति उनकी उन्नति को नहीं रोक सकती।

वर्तमान युद्ध के पहिले टर्की पर इटली, रोमानिया, बलगेरिया सभी ने कुछ न कुछ अत्याचार किये थे। इङ्गलैंड ही केवल उसका साथी बना रहा। इस हलचल ने भारतीय मुसलमानों की जागृति में बड़ाभारी भाग लिया। टर्की के लिए—उसके सहायतार्थ हज़ारों रुपया भारतवर्ष से भेजा गया। ग्राम २ में टर्की की विजय के लिये प्रार्थना की गई। बकरीद को हज़ारों मन चमड़ा बेचकर टर्की की सहायता की गई। इस अवसर ने मुसलमानों का बड़ा उपकार किया। उसी रोज़ से मुसलमान अपने को चालीस करोड़ समझने लगे। लार्ड मार्ले ने कहा था कि यदि भारतवर्ष के मुसलमानों पर ज़रा भी अन्याय किया जायगा तो कुस्तुनतुनिया में इसका बुरा प्रभाव दिखाई पड़ेगा।

इन्हीं दिनों मुस्लिम लीग व अंजुमन इस्लाम ने मुसलमानों की उन्नति में पूरा भाग लिया। यद्यपि हिन्दुओं के समान उनकी प्रत्येक हलचल का हाल, समाचारपत्रों से नहीं मालूम होता तथापि जो उनके बीच कुछ ही दिन रहेगा उसे इस बात का सत्यता मालूम हो जायगी कि सबही मुसलमान किसी एकही धुन में लगे हुए हैं। यदि हिन्दू-मुसलमान-एकता का प्रश्न तय भी हो जाय तब भी मुसलमान जैसी संगठित जाति के साथ हमारी तितर-बितर जाति का कल्याण नहीं। कमज़ोर जाति की मौत है। हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि हिन्दू मुसलमान एक दूसरे से द्वेष करें, परन्तु हमारा अनुरोध अपने हिन्दू भाइयों से इतनाही है कि आओ, हम सब इनके व संसार के राष्ट्रों के गुणों का पालन करके अपना जीवन भी उन्नतपूर्ण बनायें व आपस में—भारतीय कहलाने के पहिले एकता व समानता में वैसे ही योग्य बन जायँ जिसमें यह सम्बन्ध चिरस्थायी हो।

उपदेशपूर्ण ऐतिहासिक बातें।

[लेखक—श्रीयुत धानूलाल श्रीवास्तव।]

(१)

नेपल्स और सिसली के राजा आलफोन्सस अपनी दयालु और मृदु प्रकृति के कारण इतिहास प्रसिद्ध होगये हैं। एकबार उनके मंत्रियों ने पूछा कि, "महाराज! यह आश्चर्य है कि आप उन लोगों पर भी दया करते हैं जो अपनी दुष्टता के कारण सर्वथा दंडनीय होते हैं! यह कैसी नीति है?" यह सुन उन्होंने हँस कर कहा कि "मंत्रियो! तुम लोगों को यह नहीं मालूम है कि अच्छे मनुष्य न्याय से और बुरे मनुष्य दयालुता और सहानुभूति से वश में किये जाते हैं?" राजा के इस उत्तर से मन्त्री लोग संतुष्ट नहीं हुए। कुछ समय बाद किसी अवसर पर उन्होंने राजा की इस विलक्षण नीति की प्रत्यक्ष निन्दा की। तब राजा ने कुछ उत्तेजित होकर कहा कि, "यह बड़े आश्चर्य की बात है कि तुम लोगों पर शासन करने के लिये शेर और भेड़ियों की आवश्यकता हो! तुम लोगों को भलीभांति स्मरण रखना चाहिये कि परमेश्वर ने दया को मनुष्य के लिये और कठोरता को जंगली पशुओं के लिये निर्माण

किया है।" दयालु राजा के इस उत्तर को सुन कर मन्त्रियों ने फिर कभी उनके विरुद्ध कुछ कहने का साहस नहीं किया।

(२)

यूनान का सिकन्दर बादशाह जब संसार को विजय करने के लिये निकला तब उसके लश्कर के एक मकदूनियावासी सिपाही को यह आज्ञा थी कि वह अशर्फियों से लदे हुए खच्चरों के साथ २ चला करे। एक दिन एक खच्चर कुछ दूर चलकर ऐसा थक गया कि उसमें बोझ लेकर आगे चलने की शक्ति बिलकुल नहीं रही। वह बेचारा सिपाही निरुपाय हो उस खच्चर की पीठ से मुहरें उतार कर अपनी पीठ पर रखकर चलने लगा परन्तु कुछ दूर चलकर उन मुहरों के भार से अति श्रमित और क्लान्त हो उन्हें धरती में रखकर दम लेने की चेष्टा करने लगा। बादशाह ने जो उसके कामों को देखता और उसके कर्तव्यपालन की सराहना मन ही मन करता हुआ चला आरहा था, पुकार कर कहा "हे मित्र! निराश न होकर तनिक और परिश्रम और साहस से इन्हें डेरे तक ले चलो। ये सब मुहरें अब तुम्हारी हो चुकीं।" इस बात को सुनकर वह सिपाही उस गठरी को गिरते पड़ते डेरे तक ले ही गया। जब बादशाह डेरे में पहुंचा तो अपने वचन के अनुसार उसने उन मुहरों को उसे पारितोषिक में दे दिया।

(३)

रूस साम्राज्य के उन्नायक प्रसिद्ध राजा पीटर दि ग्रेट ने सन् १७२२ ई० में यह राजाज्ञा निकाली कि "यदि कोई सरदार, जागीरदार या अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति अपने दास दासियों पर निर्दयता करेगा—उनको मारे पीटेगा तो वह इस नियम के अनुसार पागल समझा जायगा। इस दशा में उस पागल आदमी पर नज़र रखने तथा उसकी सम्पत्ति के प्रबन्ध करने के लिये राज्य की ओर से एक अधिकारी नियत किया जायगा।

एक समय स्वयं इस राजा ने अपने बाग़-बान को किसी कारण क्रोध में आकर पीट डाला। वह बेचारा माली कुछ दिन बीमार रह कर आत्मग्लानि के कारण मर ही गया। जब पीटर को उसकी मृत्यु का समाचार मिला तब इस अनर्थ का कारण अपने ही को समझ बड़ा दुःखी हुआ और आँखों में आँसू भरकर कहने लगा कि "हाय! मैंने अपनी प्रजा को सभ्यता सिखलाई तथा दूसरी जाति पर विजय पाई, पर मैंने स्वयं सभ्य बनना न सीखा और अपने मन को बस में न कर सका।" इस प्रकार पीटर दि ग्रेट मरण पर्यंत अपने सच्चे अनुताप के अश्रुबिन्दुओं से इस पाप का प्रायश्चित करता रहा।

(४)

एक दिन प्रिंस आव वेल्स फ्रेडरिक ने जो तीसरे जार्ज का पिता था, संध्या को एक उप वन में घूमते हुए देखा कि एक सिपाही बड़े कष्ट से चल रहा है। उसे पुकार कर नज़दीक बुलाया तो देखा कि उसकी एक भुजा नहीं है। प्रिंस को उसकी इस दीनदशा पर दया आगई और उनमें इस प्रकार बात चीत हुई:—

प्रिन्स—क्यों मित्र! तुमने अपनी एक भुजा कहां खो दी?

सिपाही—श्रीमान्! फोनटनी के युद्ध में मेरा हाथ कट गया।

प्रिं०—तुम्हारा चेहरा पीला पड़ गया है। क्या तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा नहीं है?

सि०—जी हां, महाराज! मेरा स्वास्थ्य दिन प्रति दिन बिगड़ता जाता है!

प्रिं०—इसका कारण क्या है?

सि०—सरकार! जब से मेरी भुजा कट गई तब से मैं बिलकुल दरिद्र होगया हूं। मुझे

अपनी उदरपूर्ति के लिये कठिन परिश्रम करना पड़ता है। इसीसे मुझे ज्वर भी आता है।

प्रिं०—क्या तुम ने पेन्शन पाने के उम्मेदवारों में भरती होने के लिये दरख्वास्त नहीं दी?

सि०—महाराज! मुझे इसके लिये वचन दिया गया था परन्तु मेरा कोई वसीला न होने के कारण कई दूसरे लोग जो मुझसे कम हक़ रखते हैं, प्रथम भर्ती किये जाने योग्य समझे गये।

सिपाही की बातों को सुनकर दयालु प्रिंस ने चार गिन्नियां निकाल कर उसे दीं और कहा कि "प्यारे मित्र! तुम मेरे साथ चलो। मैं तुम्हें पेंशन दिलाने की शक्ति भर चेष्टा करूंगा।"

यहां यह कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रिंस ने अपनी प्रतिज्ञानुसार उसे पेंशन मिलने का प्रबन्ध करा ही दिया।

(५)

प्रशिया के बादशाह फ्रेडरिक दि ग्रेट को अन्त समय में जब कि वह मृत्यु शय्या पर पड़ा हुआ था कई रात बड़ी बेचैनी और कष्ट से बितानी पड़ीं। उस समय उन्होंने अपने सेवकों को जो उनकी अन्तिम सेवा सुश्रूषा तन मन से कर रहे थे, अपने मधुर भाषण और उदारता से अत्यन्त प्रसन्न रक्खा। उन्हीं दिनों एक पोमरनिया निवासी नवयुवक अपनी सुशीलता और विश्वस्तता से बादशाह का प्रीतिभाजन हो रहा था। एक दिन उनसे और उस युवक से इस तरह बातचीत हुई:—

बादशाह—मित्र! मुझे अभी तक यह नहीं जान पड़ा कि तुम कहां से आये हो?

युवक—महाराज! मैं पोमरनिया नामक एक छोटे ग्राम से आया हूँ।

बाद०—तुम्हारे माता पिता जीवित हैं?

युवक—हुजूर! केवल मेरी वृद्धा माता जीवित है।

बाद०—वह अपना निर्वाह किस तरह करती है?

यु०—कृपानिधान! वह सूत कात कर अपना गुज़र कर लेती है।

बाद०—इस काम में उसे कै पैसे रोज़ मिलते होंगे?

यु०—हुजूर! छै पेंस (छै आने) के लगभग कमा लेती है।

बाद०—ओह! क्या केवल छै पेंस में वह अपना पेट भलीभांति चला लेती होगी?

यु०—सरकार! पोमरनिया सरीखे स्थान में इतने पैसों से भलीभांति निर्वाह होजाता है।

बाद०—तुमने भी अपनी बूढ़ी माता के लिये कभी कुछ भेजा है?

यु०—जी हाँ, सरकार अपने वेतन में से बचा २ कर समय २ पर मैंने भी चन्द डालर भेजे हैं।

बाद०—(अत्यंत प्रसन्न होकर) पुत्र! तुमने बहुत अच्छा काम किया। तुम्हारे सपूत होने में कुछ सन्देह नहीं। तुमको मेरे समीप रहते बहुत कष्ट सहन करना पड़ा पर धैर्य रक्खो। यदि तुमने मेरी अच्छी सेवा की है तो मैं भी उसका उचित पुरस्कार देने की कोशिश करूंगा।

यह कह कर बादशाह उस समय चुप हो रहा। कुछ दिन के पश्चात् जब वह पोमरनियन युवक फिर बादशाह के सन्मुख उपस्थित हुआ तो उसे कई टुकड़े सोने के पारितोषिक में मिले। कुछ दिन पीछे जब उसे यह भी मालूम हुआ कि दयालु बादशाह ने उसकी माता के जीते रहने तक उसके निर्वाह के लिये एक सौ डालर पेंशन नियत कर दिया है तब उसके हर्ष का पारावार नहीं रहा!

महाकवि डान्टे।

[लेखक—श्रीयुत शिवनारायण द्विवेदी।]

१—डान्टे की जीवनी।

इटली का विख्यात महाकवि डान्टे सन् १२६५ ई० १४ मई को फ्लोरेंस नामक नगर में पैदा हुआ। डान्टे का वंश प्राचीन और प्रसिद्ध था। उसके वंश पर लक्ष्मी देवी अधिक प्रसन्न नहीं थीं। किन्तु उसके कुल में एक भी ऐसा पुरुष नहीं हुआ था जिसने अपने वंश की मान-मर्यादा भूलकर कभी हीन वृत्ति स्वीकार की हो।

डान्टे शब्द प्राचीन समय से इटली में प्रचलित 'डुरान्टे' शब्द का अपभ्रंश है। यह डुरान्टे प्राचीन समय एक टस्कन जाति के वंश का नाम था। यानी महाकवि डान्टे की नसों में प्राचीन टस्कन रक्त,—यूरोप का 'राजपूत' रक्त बहता था डान्टे के पिता एक साधारण लेखक (Notary) थे। माता का नाम बेला था। हम ऊपर कह आये हैं कि इस वंश की आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी, किन्तु वह ऐसी निकृष्ट भी नहीं थी कि आवश्यकता भी पूरी न होती रही हो। फ्लोरेंस नगर में उनका अच्छा घर था, और नगर के बाहर ज़मीन भी थी।

डान्टे के जीवन का विकास एक महाकवि की प्रतिभा के विकास के ही समान है। सन् १२७४ यानी नौ वर्ष की अवस्था में डान्टे को बियाट्रिस के दर्शन हुए। बियाट्रिस की अवस्था भी नौ वर्ष की ही थी। इन नौ वर्ष के बालक बालिका में परस्पर दर्शन होते ही,—एक अपूर्व और उज्वल प्रेम का जन्म हुआ। डान्टे और बियाट्रिस की प्रेमकथा इटली में अपूर्व है। बड़े २ लेखकों ने उसके वर्णन से अपनी लेखनी को सरस बनाया है। बालिका बियाट्रिस ने अपने प्रेमी डान्टे को यथार्थ प्रेम का बदला दिया या नहीं,—यह कोई नहीं जानता। किन्तु यह सत्य है कि इन दोनों का विवाह नहीं हुआ। डान्टे के उस अपूर्व प्रेम का परिणाम चाहे जो हुआ हो, किन्तु उस प्रेम के द्वारा सरस बने हुए हृदय से अठारह वर्ष की अवस्था में डान्टे ने जो अद्भुत वीणाकाव्य लिखा वह इटालियन भाषा में सर्वथा अपूर्व, अनुपम और सजीव है। इस काव्यग्रन्थ का नाम "विटा नु ओव्हा" यानी "नवजीवन" है। नौ वर्ष के बालक डान्टे में नौ वर्ष के स्वर्गीय सौन्दर्य के देखने से अपूर्व सरसता का उदय हुआ था। वही सरसता उसका "नवजीवन" बनी थी और उसीका वर्णन उसने अपने इस पहिले ग्रन्थ में किया है। डान्टे और उसके नवजीवन के विषय में इतना निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि उसमें उस समय कामवासना का लवलेश भी न था।

भिंगरेली नामक डान्टे के चरित्रलेखक ने लिखा है कि—"डान्टे की नज़र में प्रेम और बियाट्रिस एक ही था,—बियाट्रिस प्रेममय थी और प्रेम का स्वरूप बियाट्रिस था। जब वह डान्टे के पास आती थी तब उसे जान पड़ता था कि मानो स्वर्ग का कोई देवता उसके पास आ रहा है। उसका विश्वास था कि बियाट्रिस कुछ दैवी भावों से पूर्ण है और वह मनुष्य लोक की चीज़ नहीं है। बियाट्रिस अवश्य दैवी भावों से परिपूर्ण थी तभी वह महाकवि के हृदय में निरन्तर विचरण किया करती थी।" बियाट्रिस के एक स्त्री के रूप में होने पर भी डान्टे उसे देवता समझता था,—उसे उसके मिलने में सुख था, वियोग में सुख था, पास और दूर में सुख था—केवल बियाट्रिस के ध्यानमात्र से डान्टे का शरीर पुलकित हो जाता था—डान्टे कहता था कि उस मूर्त्ति

के हृदय में प्रतिष्ठित रहने से विशेष आनन्द का अनुभव होता है, स्वार्थ का नाश होता है और आत्मा का विकास होकर पवित्रता का संचार होता है। अपने "नवजीवन" काव्य में डान्टे ने इसी प्रेम के उज्वल चित्र को हृदय के सरस और उज्वल रँग से रँगा है। कई डान्टे के चरित्रलेखकों का कहना है कि वास्तव में बियाट्रिस नाम की कोई स्त्री थी ही नहीं,—और न नौ वर्ष की अवस्था में डान्टे ने उसे देखा ही, डान्टे की बियाट्रिस एक कल्पना की मूर्ति थी। किन्तु डान्टे के प्रसिद्ध चरित्रकार बोकेशिओ ने लिखा है कि वास्तव में बियाट्रिस एक सौन्दर्यसम्पन्न युवती थी। उसके पिता का नाम "फाल्को पोर्टिनारी" था और उसका विवाह एक "सायमन-डि-बार्डी" नामक युवक से हुआ था। बियाट्रिस का शरीरान्त १२९० ई० में हुआ था और उस समय उसकी अवस्था केवल २४ वर्ष की थी।

डान्टे की शिक्षा साधारण थी। उसके किसी चरित्रलेखक ने नहीं लिखा कि वह "सुशिक्षित" था। उस समय समग्र यूरोप की सुशिक्षा लैटिन और ग्रीक भाषा में व्युत्पन्न हो जाना ही था। किन्तु डान्टे को लैटिन और ग्रीक का ज्ञान बहुत ही थोड़ा था। हाँ, युवावस्था में परिश्रम करने पर डान्टे को लैटिन का अच्छा ज्ञान हो गया था। किन्तु डान्टे के हृदय में जो बचपन से ही एक बीज पड़ा था—वह यथासमय अंकुर का रूप धारण करके वृक्ष बन रहा था। छोटी अवस्था से ही डान्टे की प्रबल इच्छा थी कि वह प्रचलित इटालियन भाषा में उत्कृष्ट कविता और उत्तम गद्य रचना करे और डान्टे का यह उद्देश्य पूर्ण रूप से सफल हुआ। इटालियन भाषा को वास्तव में डान्टे ने उच्च काव्य और उच्च साहित्य के योग्य बना दिया। डान्टे इटालियन भाषा का सबसे पहिला महाकवि है। वह केवल इटली का ही महाकवि नहीं है, बल्कि समग्र यूरोप में उसकी टक्कर का महाकवि नहीं हुआ। इंगलैंड के महाकवि शेक्सपियर और मिल्टन का नाम लिया जाता है, किन्तु डान्टे का नाम इन सबसे पहिले लिया जाता है। डान्टे स्वयं कोई अच्छा गवैया नहीं था, किन्तु उसके संगीत अपूर्व माधुरी से भरे होते थे। डान्टे चित्रकार भी था और उसने काग़ज़ पर बहुत से चित्र बनाये थे। बियाट्रिस की मृत्यु से पूर्व यानी १२९० ई० से पहले की डान्टे की जितनी कविता है—वह सब प्रेमरस से भरी हुई है। किन्तु जब उसकी मृत्यु हो गई तब डान्टे को सब संसार सूना लगने लगा। बियाट्रिस की मृत्यु से एक वर्ष बाद तक सब काम छोड़कर डान्टे ने केवल शोककाव्य की रचना की। डान्टे का शोककाव्य वास्तव में शोक की मूर्त्ति है। इस समय डान्टे की भी कुछ अवनति हो गई थी। स्वयम् डान्टे ने लिखा है—"तेरा वह मुखमंडल मृत्यु के आवरण के कारण मेरी आंखों से दूर हो गया इसलिए थोड़े समय तक मैं संसार के तुच्छ सुख में मग्न होकर तुझसे दूर होगया था।"

महाकवि के इस कथन का अर्थ यह नहीं है कि वह कुमार्गी बन गया था बल्कि कवि की यह भाषा इस समय तक अव्यक्त है। धीरे २ फिर उसका नैतिक बल बढ़ गया।

डान्टे कोरा महाकवि और रसज्ञ ही नहीं था। सन् १२८९ के 'कम्पलिडनो' के युद्ध में भी वह उपस्थित था। इस युद्ध में फ्लोरेंसवालों ने "ओरेटूश्नो" के बिशप का पराभव किया था। इसके बाद 'केपोन' के किले को लेने में भी डान्टे ने तलवार निकाली थी। इससे मालूम होता है कि डान्टे युद्धविद्या में भी निपुण था। डान्टे जैसा कवि था वैसा ही एक वीर योद्धा भी था।

सन् १२८९, में डान्टे ने अपना विवाह किया। स्त्री का नाम 'जेम्मा' था। जेम्मा एक प्रसिद्ध घराने की "मानेत्तो डोनाल्ती" की पुत्री थी। इसका कुल बहुत उच्च और प्रतिष्ठित था।

विवाह के अनन्तर डान्टे की मानमर्यादा और भी अधिक बढ़ गई। फ्लोरेंस नगर के शासन-विभाग में भी उसका प्रवेश हो गया। इस विवाह से एक नई बात यह हुई कि राजनीति में डान्टे को हाथ डालना ही पड़ा। जेम्मा से डान्टे के दो पुत्र और दो कन्याएँ हुईं। दोनों पुत्रों ने अपने पिता के काव्यों पर प्रसिद्ध टीका लिखी है।

उस समय फ्लोरेंस का शासन व्यापारी और कोठीवालों के प्रतिनिधियों के द्वारा होता था। छैः प्रतिनिधियों की एक सभा राज्य का काम करती थी। डान्टे उस सभा में वैद्यों की ओर से प्रतिनिधि था। सन् १३०० में डान्टे प्रतिनिधि बना, पीछे वह न्यायाधीश बनाया गया।

प्रत्येक राज्य में सदा दो दल देखे गये हैं—उस समय फ्लोरेंस में भी दो दल थे। एक कृष्ण दूसरा शुक्ल,—इनमें से शुक्ल दल में डान्टे था। १३०१ ई० में शुक्ल पक्ष का पराभव हुआ और कृष्ण पक्ष के हाथ में राज्य की डोर आई। इस उथला-पुथली का जो कुछ परिणाम हुआ उसके कारण १३०२ में डान्टे को फ्लोरेंस की सीमा के बाहर निकल जाना पड़ा। सर्व-साधारण के धन के दुरुपयोग का अपराध डान्टे पर लगाया गया था। इस अपराध के नाम पर डान्टे और उसके चार साथियों को देशनिकाले का दंड दिया गया था और उनकी सब सम्पत्ति राज्यकोष में मिला ली गई थी। उसी वर्ष के मार्च मास की १०वीं तारीख को एक और आज्ञापत्र निकाला गया जिसमें लिखा था कि यदि डान्टे या उसका कोई साथी फ्लोरेंस की सीमा में पाया गया तो उसे जीते ही आग में जलाने का दंड दिया जायगा। डान्टे का अपनी मातृभूमि से वियोग हुआ, और यह वियोग उसकी आयुष्य के अन्त तक स्थिर रहा। फिर उसे अपनी मातृभूमि के दर्शन करने का सौभाग्य कभी न प्राप्त हुआ। १३०२ से १३१० तक डान्टे इटली के दूसरे नगरों में रहा। वह एक बार फ्रांस और पेरिस देखने के लिए भी गया था। देश-निकाले के बाद डान्टे के राजनैतिक जीवन पर काला परदा दिखाई देता है। फिर उसने राजनैतिक बातों में कभी हाथ नहीं डाला किन्तु साहित्य की सेवा वह उसी प्रकार से करता रहा। इस समय वह काव्यरचना में स्वयम् अपने आपको भूल गया था। जब जर्मन सम्राट् सातवां हेनरी इटली में गया तब डान्टे ने एक बार फिर राजनीति की चर्चा उठाई। इस समय उसने सम्राट् के पक्ष को बड़े ज़ोर से समर्थन किया और इसी आशय के कुछ पत्र उसने फ्लोरेंसवालों को लिखे थे। ये सब पत्र लैटिन भाषा में लिखे गये थे। इन पत्रों का परिणाम यह हुआ कि १३११ में एक आज्ञापत्र निकला जिसमें देशनिकाले मनुष्यों को क्षमा प्रदान की गई किन्तु डान्टे के लिए वह आज्ञा वैसी ही थी। फिर १३१५ में फ्लोरेंस में डान्टे के वापिस बुला लेने का उद्योग किया गया किन्तु डान्टे ने अपराध स्वीकार करने और क्षमा मांगने से नाहीं की, इसलिए उस कोशिश का परिणाम कुछ नहीं हुआ। इसी वर्ष फ्लोरेंस से एक आज्ञा और निकली कि यदि डान्टे और उसका पुत्र मिल जाय तो निस्सन्देह उसका सिर काट दिया जाय, इसके लिए इनाम भी था। सन् १३२१ ई० में वेनिस और रिवेना नगर में झगड़ा होने के लक्षण दिखाई दिये। उस झगड़े की शान्ति के लिए रिवेना से दूत बनकर डान्टे वेनिस गया। किन्तु वह यात्रा ही डान्टे की अन्तिम पैदल यात्रा थी।

वेनिस जाते समय डान्टे को बुखार आया। बस यह बुखार ही उस महाकवि की स्वर्गयात्रा का कारण हुआ। सन् १३२१ ई० को २१वीं सितम्बर को इटली का सर्वश्रेष्ठ महाकवि डान्टे अपनी मर्त्यलीला समाप्त कर चला गया।

उसका शरीर फ्रांसिस्कन मठ में बड़ी धूमधाम से समाधिस्थ किया गया। अब तक इटली में इस महाकवि का हर सातवें वर्ष उत्सव मनाया जाता है। यूरोप की उस अशान्ति से भरी हुई चौदहवीं शताब्दी में डान्टे एक समय को जोड़ देनेवाली कड़ी के समान था। वह नीति-कवि, धर्मवीर, योद्धा, राजनीतिकुशल, शासन-कर्ता, न्यायाधीश, महाकवि तथा धार्मिक भक्त था। प्रौढ़ावस्था में अधिक कष्ट सहने के कारण वह उदास और गम्भीर प्रकृति का बन गया था।

२—डान्टे की राजनीति।

संसार के सर्वश्रेष्ठ महाकवि डान्टे ने अपनी राजनीति अपने महाकाव्यों में गूंथ दी है। वह इतने योग्य प्रसंगों पर योग्य रीति से वर्णन की गई है कि उस महाकवि की रचना पर मुग्ध हो जाना पड़ता है। डान्टे और अरिस्टाटिल (अरस्तू) की नीति बहुत कुछ मिलती जुलती है। अरिस्टाटिल कहता है, मनुष्य एक सामाजिक या पारिवारिक जीव है। यदि दूसरों से ज़रा भी सम्बन्ध न रखकर उसे रहना पड़े तो वह कभी नहीं रह सकता। ऐसी स्थिति में यदि समाज, राज्य या दूसरे विषय की चर्चा हुई कि उनका पारस्परिक सम्बन्ध समष्टि-व्यष्टि का रूप धारण कर लेता है—यह बात निश्चित है।"

डान्टे ने एक स्थान पर कहा है,—दूसरों की सहायता की उपेक्षा करके यदि मनुष्य रहना चाहेगा तो वह जन्म भर में भी सुखी न हो सकेगा! क्योंकि मनुष्य की आवश्यकता अधिक है, और इन सब आवश्यकताओं को अकेला पूरा करने में वह सदा अक्षम है।

डि मानर्किया (De Monarchia) नामक राजनीति की पुस्तक में डान्टे ने अपने सम्पूर्ण राजनैतिक विचार भले प्रकार गूंथे हैं। यूरोप के राजनैतिक साहित्य में 'डि मानर्किया' ग्रन्थ बहुत उच्च कोटि का समझा जाता है। पुस्तक के आरम्भ ही में डान्टे ने प्रश्न किये हैं,—

"मनुष्य सुधार का अन्तिम ध्येय क्या है? प्रत्येक देश की प्रत्येक जाति उन्नति के शिखर की ओर अग्रसर हो रही है, विद्या कला, ज्ञान विज्ञान की उन्नति बड़ी शीघ्रता से हो रही है—पर इनका अन्तिम उद्देश्य क्या हो सकता है? मनुष्यसमाज ऐसा क्यों करता है? किस आशा से उत्तेजित होकर लोग उन्नति और सुधार के लिए उत्सुक हैं?"

इन प्रश्नों के उत्तर में डान्टे कहता है,—"It is the realising or actualising of the whole potentiality of the human intellect, that is, of the intellect of humanity as a whole or in other words, the bringing about of that condition of things in which the intellect of all the individuals in the world would be working together in the most effective manner possible."

मनुष्य की कूटस्थ शक्तियों का जागरण या विकास-साधन ही मनुष्य जाति की उन्नति का कारण है। मानवी शक्ति का विकास किस राष्ट्र या किस जाति में किस प्रकार होगा यह कहना अत्यन्त कठिन है। जो राष्ट्र आज बर्बर है, वही कल उन्नत होता है; जो आज मूर्ख है वही कल पंडित होता है। डान्टे कहता है कि, एक राष्ट्र की दृष्टि से देखते हुए यह विरोध भाव या न्यारी २ स्वतंत्र उन्नति मनुष्य-बुद्धि की कूटस्थ शक्ति के (Patentiality) सम विकास का कारण नहीं बन सकती। सम्पूर्ण मनुष्यजाति का विकास समान होना चाहिये। अर्थात् संसार की सामाजिक और राजनैतिक अवस्था इस ढँग से संघटित होनी चाहिये कि उसके प्रभाव से प्रत्येक स्त्रीपुरुष की बुद्धि स्वभाव से विकसित हो। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए "सार्वराष्ट्रीय शान्ति" (Unversel Peace) की आवश्यकता है। पृथ्वी

के किसी भाग पर युद्ध आरम्भ होते ही यह समझ लेना चाहिये कि मानवी उन्नति अभी अपूर्ण है और मनुष्यहृदय में अभी शत्रु का प्रादुर्भाव है। शत्रु या आसक्ति की विशेष वृद्धि से मानवी बुद्धि विकसित न होकर संकुचित होती है। बुद्धि के विकास से समता बढ़ती है, और समता ही मनुष्य जाति का सच्चा सुधार है। इस 'सार्वराष्ट्रीय शान्ति' के लिए डान्टे ने समग्र पृथ्वी के लिये एक चक्रवर्ती राजा की कल्पना की है। सम्पूर्ण पृथ्वी उस राजराजेश्वर के आधीन है, उसे विजय की लालसा नहीं है, वह व्यसनी, क्रोधी और मूर्ख नहीं है। मानो वह पुरुष प्रत्यक्ष परमात्मा ही है। ऐसे सम्राट् की शक्ति का विकास किस प्रकार होगा? डान्टे कहता है,-

"Imperialism does not mean the supremacy of one nation over others, but the existence of a supreme law that can hold national passions in check."

जिसके कारण एक सम्राट् दूसरे पर विजयी बने, यह सम्राट्शक्ति की कल्पना का मतलब नहीं है। सम्राट्शक्ति अर्थात् जिस के प्रभाव से राष्ट्र में फैली हुई तीव्र इच्छाओं की आसक्ति का संयम हो ऐसे एक संसार-व्यापी नियम का प्रबल होना ही यह सम्राट्-शक्ति है। उस शक्ति का विकास यदि पूर्ण रूप से हो जायगा तो वह शक्ति संसार के लिए कल्याणकर और प्रेममय बन जायगी। प्रेम ही पूर्ण स्वतन्त्रता का आधार है। आसक्ति या शत्रु की पराधीनता ही शृङ्खला है। स्वातन्त्र्य या स्वाधीनता का अर्थ क्या है? डान्टे कहता है,-

"A man is free when his will is in absolute equilibrium, not in the slightest degree weighed down by passion or desire, but free to act in accordance with the judgement of his reason."

जिसे सदसद्विवेक पूर्ण रूप से हो, जिस की इच्छाशक्ति को शत्रु या आसक्ति ने न घेर रक्खा हो, जो अपनी इच्छाशक्ति के अनुमोदन के अनुसार कार्य कर सकता हो, वही मनुष्य स्वतंत्र हो सकता है। जिस पर ज्ञान का पूरा अधिकार हो, जिसकी इच्छाएँ साधु मार्ग की अनुगामिनी हों वही स्वाधीनता का अधिकारी है। इस स्थिति में विचार और न्याय (Judgement) किसे कहना चाहिये? डान्टे कहता है:- "Judgement is the link between apprehension and appetite."

इच्छा और ज्ञान के बीच का भेद ही विचार है।

संयम का ही दूसरा नाम ज्ञान या बोध है। आकांक्षा का आसक्ति की उत्पत्ति ज्ञान से नहीं है। ज्ञान या बोध आकांक्षा को ठहरने भी नहीं देता। जिस पद्धति के अनुसार ज्ञान आसक्ति को अपने वश में करता है उसे विचार या (judgement) कहते हैं। अच्छे विचार से किये हुए काम ही स्वाधीन हैं। यह कहा जा सकता है कि ये काम जब सदसद्विवेक बुद्धि की आज्ञानुसार होंगे तभी मनुष्य पूर्ण स्वतंत्र होगा। स्वाधीनता का विकास स्वयम् होता है। उच्छृङ्खलता कोई स्वाधीनता नहीं है, वह बड़ी बुरी पराधीनता है। मनुष्य की साम्यबुद्धि का उत्कर्ष तभी होगा जब परमात्मा के नीचे सम्पूर्ण मनुष्यों का एक सम्राट् ही अधिकारी होगा। इसके अनन्तर डान्टे ने इन्हीं सूत्रों का स्पष्टीकरण किया है,—

"Every thing which is good is so in Virtue of consisting unity, and consequently that the human race is best disposed when it is most one, that is, when it is concordant." यदि किसी पदार्थ, वस्तु या व्यक्ति का विशेषण "सत्" है। तो वह उसके अन्तर्गत समता, एकता आदि गुणों के ही कारण है;—यानी जो अव्यभिचारी और अविरोधी भावों से प्रकट होता है वही "सत्" है और सम्पूर्ण मनुष्य जाति

में जब यह एक भाव समान रूप से विकसित होगा तभी मनुष्य इस संसार में आनन्द से रह पायँगे।

फिर डान्टे ने अपना साम्यवाद दिया है। यह साम्यवाद और कुछ नहीं "एकमेवाद्वितीयम्" ऐसी इच्छाशक्ति के आधीन सम्पूर्ण मनुष्य जाति का होना है। जैसे आप्त वाक्यों या अपौरुषेय श्रुतिवचनों में परमात्मा की इच्छाशक्ति मात्र प्रकट होती है, और उस आप्त वाक्य के लिए किसी जातिविशेष की इच्छा संयत होती है; उसी प्रकार सांसारिक बातों में उस अकेले सम्राट् की इच्छाशक्ति से जब सम्पूर्ण संसार के मनुष्यों की इच्छा संयत होगी, तभी साम्य का उत्कर्ष होगा। आसक्ति और आकांक्षा की प्रबलता के ही कारण विषमता पैदा होती है। जहां ऊपर कही हुई प्रणाली के अनुसार आसक्ति और आकांक्षा का दमन हो जायगा वहां साम्य का उत्कर्ष और विकास होगा। धार्मिक विषयों की समता की रक्षा के लिए डान्टे ने उस सार्वभौम सम्राट् के समान ही एक सार्वभौम धार्मिक पुरोहित की भी कल्पना की है।

डान्टे ने "डि मानर्किया" में अपने राजनैतिक सिद्धान्त इसी प्रकार लिखे हैं। उसने अपने सिद्धान्तों और कल्पना से जो कुछ लिखा है वह केवल मनुष्यजाति में समता उत्पन्न होने के उद्देश से। उसने संभवपर काल्पनिक चित्र खड़ा करके अपने विचार विशद किये हैं। इसके अनन्तर डान्टे ने अपनी सब शक्ति महाकाव्य के लिखने में लगाई है।

३-डान्टे का महाकाव्य।

जिस महाकाव्य के कारण डान्टे अतुल्य प्रतिभाशाली महाकवि समझा जाता है, और जिस महाकाव्य ने इटालियन भाषा को ग्रीक और लैटिन भाषा के समान गम्भीर, ओजस्विनी और महत्वपूर्ण साबित कर दिया, वह "डिवाइन कामेडी" (The Devine Comedy) है। यह महाकाव्य तीन खंडों में विभक्त है। पहिले खंड का नाम है "इनफर्नो" (The Inferno) या नरक का वर्णन; दूसरे खंड का नाम है (The Purgatorio) 'पर्गेटेरियो' पापक्षय या कर्मभूमि का वर्णन और तीसरे खंड का नाम है (The Paradise) "पराडाइजो" अर्थात् स्वर्गलोक का वृत्तान्त। इस महाकाव्य का प्रत्येक खंड सब गुणों से पूर्ण है। भाषा, भाव और विषयविन्यास में डिवाइन कामेडी का प्रत्येक खंड अतुलनीय एवं अद्वितीय है। विद्वानों का मत है कि 'इन्फर्नो' सन् १३१४ में पूरा हुआ; 'पार्गेटेरिओ' सन् १३१६ में पूरा हुआ, तथा 'पेराडिसो' सन् १३१६ में पूर्ण हुआ। पहिला और तीसरा खंड लिखने के बाद डान्टे ने दूसरा खंड लिखा। वैसे तो इस महाकाव्य के तीनों खंड उत्कृष्ट हैं किन्तु विद्वानों के मतानुसार 'पार्गेटोरिओ' सर्वोत्कृष्ट है। कामेडी शब्द का धात्वर्थ होगा 'साम्यगीत'।

डान्टे का पूर्ण विश्वास था कि मनुष्य चाहे जितना पापी और दुराचारी हो किन्तु कालान्तर में उसे परमात्मा का सान्निध्य अवश्य प्राप्त होगा। यह समग्र महाकाव्य इसी विश्वास से भरा है।

विधाता ने मनुष्य के सामने दो उद्देश या साध्यविषय रख दिये हैं। इस जीवन में भोगोपभोगों के द्वारा प्राप्त होनेवाला सुख पहिला है। इस सुख को प्राप्त करने के लिए मनुष्य को अपनी शक्ति ख़र्च करके एक आनन्दधाम बनाना पड़ता है। यह मनुष्य के लिए साध्य है। उद्योग और पुरुषार्थ से यह पार्थिव स्वर्ग मिल सकता है। स्रष्टा ने मनुष्य के सामने जो दूसरा उद्देश रक्खा है वह अनन्त जीवन में अनन्त सुख की प्राप्ति है। यह सुख परमात्मदर्शन के अलावा और किसी प्रकार प्राप्त नहीं हो सकता। इस सुख के प्राप्त करने का स्थान उद्योग और पुरुषार्थ से आगे है। परमात्मा की

पूर्ण कृपा से इस स्वर्गीय ज्योति का प्रभाव मानवी आत्मा पर पड़ता है—यह तत्व अपने पाठकों को समझाने के लिए ही डान्टे ने यह महाकाव्य लिखा है। डान्टे क्रिश्चियन धर्मावलम्बी था—पुनर्जन्म वह नहीं मानता था—इसलिए कर्मों के द्वारा कर्मफलभोग का रहस्य वह नहीं कह सकता था। इसीलिए सबसे पहिले अपने महाकाव्य में वह नरक से वर्णन करता है। डान्टे ने जिस नरक की कल्पना की है उसके निवासी पाप की कल्पना भी नहीं कर सकते; अर्थात् वहां पाप और पश्चात्ताप का नाम ही नहीं है। कवि ने अपने वर्णन में दिखाया है कि उस अनन्त दुखों की राशि स्वरूप भूमि में रह कर भी आत्मा निरभिमान नहीं होती। बहुत यातना भोगने के बाद जिसका अहंकार चूर्ण हो जाता है, वह 'पर्गेटरी' या कर्मभूमि में पापक्षय होने के लिए जाता है। यह कर्मभूमि प्रायश्चित्त की जगह है—पश्चात्ताप और अनुशोचना से आत्मा स्वच्छ होती है। यहां जीवात्मा के कर्मों की मलीनता धुल कर साफ़ हो जाती है। इसके बाद जीवात्मा की स्वर्ग में जाने की बारी आती है। उस स्वर्ग में जीवात्मा परमात्मा का साक्षात् करता है और उनके समीप रहता है। क्रिश्चयन शास्त्रों में सायुज्य और सारूप्य मुक्ति नहीं है। जीवात्मा के एक अवयवविशिष्ट से वह तीनों, अवस्था भोगता है। इस महाकाव्य का नायक स्वयं कवि है। कवि सुख दुख, यातना, धर्म, विज्ञान, साहित्य विषयक अपना मतामत तथा अपनी मार्गदर्शक वर्जिल और बियाट्रिस का प्रेम, निराशा व आदर लिखते समय नहीं भूला है। प्रथम वह नरक भोगता है, वहां वह अपने समान बहुतों को देखता है। वहां से निकल कर वह कर्मलोक में आता है, यहां का उसका वर्णन बड़ा ही रोचक है। फिर वह अपना कर्म बन्धन काट कर स्वच्छ और निर्मल दशा में स्वर्गारोहण करता है।

डान्टे ने जो कुछ वर्णन किया है—वह इतना तन्मय होकर किया है कि अपने पढ़नेवाले को भी वह तल्लीन कर देता है। वह अपने काव्य में कभी आदर्श क्रिश्चियन के रूप में दिखाई देता है,—नियति और विधि के अनुसार भौतिक और अध्यात्मिक जीवन को सिद्ध करने के लिए वह व्यग्र दीखता है,—उसी प्रकार अपने जीवन के निर्दिष्ट मार्ग को भ्रान्त करनेवाले पापों को विफल करके वह अपना छुटकारा करता है। और कभी कभी वह चौदहवीं शताब्दी का डान्टे ही दिखाई देता है—उसका निज का वर्णन और अनुभव वह स्वयम् सीखता दिखाई देता है। डान्टे के काव्य से ध्वनि निकलती है मानो उसने वह महाकाव्य परमात्मा की आज्ञा से लिखा हो। वह जनाता है मानो परमात्मा का दूत बन कर वह उसकी आज्ञा सर्वसाधारण को सुनाता है। डान्टे के महाकाव्य की कथा सारांश रूप से इस प्रकार है;—

अपनी आयु के पैंतीसवें वर्ष में एक विकट जंगल में डान्टे फिर मार्ग भूलता है। सन् १३०० में यह भयंकर जंगल उस समय का तात्कालिक यूरोप था। उस समय आस्ट्रिया का सम्राट् एलबर्ट था। एलबर्ट अपने कर्तव्य पालन से उदासीन एवं सम्राट् पद के सर्वथा अयोग्य था। यह सम्राट् बहुत लोभी और विलासी था। उस समय सब से बड़ा धर्माचार्य आठवां बेनिफोस पोप भी विलासी, लम्पट और अपने पवित्र पद के अयोग्य था। जो सांसारिक जीवों के मार्गदर्शक हैं, वे ही जब दुराचारी, व्यसनी, लालची हो गये तब यह संसाररूपी भयंकर महावन का पथहीन और विशेष गहन हो जाना सहज है। इस भयंकर जंगल में घूमते हुए डान्टे ने एक पहाड़ देखा। इस पर्वत का ऊंचा शिखर अरुणोदय से प्रभायुक्त हो रहा था। साधुत्व रूपी सूर्य की प्रथम किरण ने उस पर्वत को स्वर्ग के समान बना

रक्खा था। इस पर्वत पर चढ़ने का प्रयत्न डान्टे करने लगा। यह पर्वत डान्टे की कल्पना के अनुसार पार्थिव स्वर्ग था। जब डान्टे पर्वत पर चढ़ने के लिए उसकी अधित्यका में पहुंचा तब तीन भयंकर पशुओं ने उसपर आक्रमण किया। इन तीनों पशुओं में पहिला चीता अर्थात् "काम" दूसरा बाघ अर्थात् "क्रोध" और तीसरा सिंह अर्थात् "अहंकार" था। डान्टे इन तीनों पशुओं का सामना कर रहा था कि एक रीछ अर्थात् "लोभ" ने भी उसपर आक्रमण कर दिया। उसकी मर्मान्तक वेदना सहन न होने के कारण डान्टे उस पर्वत से नीचे गिर गया।

डान्टे का आन्तरिक अभिप्राय यह है कि काम, क्रोध और लोभ स्वर्ग के मार्ग के विरोधी हैं। जिस समय डान्टे लोभ रूपी पिशाच के चंगुल में फँसकर छटपटा रहा था उस समय महाकवि वर्जिल की प्रेतात्मा ने उसे दर्शन दिया। उस आत्मा ने डान्टे को धर्मोपदेश दिया; जिससे उसे दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई। फिर अपने ही प्रयत्न से वह अपनी मुक्ति का मार्ग खोजने लगा। इस मुक्तिमार्ग को खोजते हुए पहिले उसे नरक लोक के दर्शन हुए। फिर वह कर्मभूमि अर्थात् प्रायश्चित्त के स्थान पर गया। पर्गेटरी के अन्तिम द्वार पर उसे बियाट्रिस के दर्शन हुए। बियाट्रिस के विशुद्ध प्रेम, स्वार्थशून्य जीवन, उसकी पवित्रता, विमल स्नेह में भूलता हुआ डान्टे स्वर्ग में पहुंचा।

इससे डान्टे ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि मनुष्य अपने पुरुषार्थ और पराक्रम से नरक से निकल कर कर्म भूमि तक आ सकता है, और उस कर्मभूमि के अन्तिम द्वार तक अपने प्रयत्न से पहुंच सकता है—किन्तु निस्वार्थ, विमल और शुद्ध प्रेम के बिना वह स्वर्ग में नहीं पहुंच सकता। इसकी सिद्धि के लिए ही प्रेममयी सुन्दरी बालिका बियाट्रिस डान्टे को स्वर्ग में ले जाती है। इस दिव्य अपार्थिव वर्णन के बाद डान्टे के महाकाव्य की परिसमाप्ति है। इस जगह की भाषा जैसी अनुपमेय और अतुलनीय है वैसे ही भाव भी अद्वितीय और अवर्णनीय हैं। डान्टे का वर्णन और विशदीकरण अपूर्व है।

डान्टे के मतानुसार पश्चात्ताप और अनुशोचना ही पाप की मुक्ति है। जब तक घोर पश्चात्ताप नहीं है तब तक आत्मा को शुद्धि भी नहीं है। प्रायश्चित्त की कठोर शासन-पद्धति का उद्देश यही है कि पापदग्ध मनुष्य पुनः अपनी इच्छाशक्ति और बुद्धि की स्वाधीनता प्राप्त करे। यदि यह स्वाधीनता न हो तो मनुष्य का पुण्य सञ्चय करना असम्भव हो जाय। प्रायश्चित से वह मार्ग साफ़ होता है और स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा जागृत होती है। इस पाप रूपी पर्वत के डान्टे ने सात भाग माने हैं—उनमें क्रमशः एक २ पाप का नाश होता है।

डान्टे के महाकाव्य के अन्तिम खंड में दो बातें हैं। एक नित्यता, दूसरी कर्मसाफल्य। भूत, भविष्य और वर्तमान का सब जगह अस्तित्व ही नित्यता (Eternity is all at once.) है। जहां गति नहीं, अपचय या उपचय नहीं; जो नित्य-सिद्ध या अविनाशी है वही परमात्मा है, वही अनन्त है। अनन्त को समझाने के लिए बियाट्रिस की आत्मा ने डान्टे को दर्शन दिये। कवि का हाथ पकड़ कर बियाट्रिस उसे सूर्यमंडल में ले गई। उसने अंगुली से इशारा करके कहा,—"वह देखो ग्रह नक्षत्र घूम रहे हैं; यहां पर तीनों समयों का एक साथ विकास हुआ है। जहां तुम खड़े हो उस जगह काल की कोई अवधि नहीं है। केवल नित्य, शुद्ध स्वभाव काल ही यहाँ निवास करता है। काल से व्यतीत जो है—वही अनन्त है।"

डान्टे फलप्राप्ति के लिए मानता है कि, मनुष्य की इच्छा और मनोवृत्तियाँ जब सम्पूर्ण रूप से परमात्मा की इच्छा के आधीन हो

जायँगी तभी जीवन का वांछित फल प्राप्त होगा। "The perfect conformity of our will with the will of God."

"To see god is to see as God sees."

परमात्मा को उस दृष्टि से देखना चाहिये जिस दृष्टि से परमात्मा सम्पूर्ण विश्व को देखता है।

उस स्वर्ग में अशरीरी ज्योति नित्य विराजमान रहती है। आनन्द से परिपूर्ण चैतन्य ज्योतिर्मय है। सब सुखों की मधुरता से भिन्न चिदानन्द ही स्वर्ग है।

डान्टे की कल्पना है कि उस स्वर्ग के निवासियों में रागद्वेष, आनन्द-खेद, तृष्णा या रूप लालसा कुछ नहीं है; वे नित्य शुद्ध, बुद्ध और आनन्दमय हैं।

डान्टे के महाकाव्य का पाठ करते समय हमारे सब पुराण आँखों के सामने खड़े हो जाते हैं। पुराणों में जिस प्रकार आख्यान, उपाख्यान, अर्थवाद आदि अपने २ प्रसंग पर आते हैं—उसी प्रकार डान्टे के महाकाव्य में सब बातें यथास्थान मिलती हैं। पुराणों में जिस प्रकार आध्यात्मिक विवेचन रहता है वैसे ही डान्टे के महाकाव्य में सब बातें ठीक ठिकाने हैं। जिस प्रकार वेद और उपनिषदों के सिद्धान्तों को पुराणों में विशद किया है उसी प्रकार इंजील (Gospel) आदि के तत्वों को इस महाकाव्य में विशद किया गया है। नरकों का वर्णन बहुत कुछ पुराणों से मिलता जुलता है। भेद केवल इतना ही है कि डान्टे का स्वर्ग-नरक अनन्त है और जन्मान्तर नहीं है। हमारे यहाँ स्वर्ग और नरक दोनों का कर्मफल के अनुसार अन्त है,—यही डान्टे के महाकाव्य और पुराणों में भेद है।

इसमें सन्देह नहीं कि डान्टे के समान उच्च प्रतिभावाला कवि अभी तक यूरोप में दूसरा नहीं हुआ। डान्टे का अनुकरण करने का प्रयास बहुत से कवियों ने किया किन्तु कोई उसका अनुकरण नहीं कर सका। प्रसिद्ध कवि मिल्टन ने अपने "स्वर्गच्युति" (Paradise Lost) काव्य लिखते समय डान्टे के महाकाव्य को अपना आदर्श रक्खा है,—किन्तु डान्टे को पढ़कर कोई इसे पढ़े तो मालूम हो सकता है कि उसे सफलता बहुत ही कम प्राप्त हुई है। डान्टे के महाकाव्य के समान सर्वगुणसम्पन्न महाकाव्य उन्नत देशों के साहित्य में दूसरा नहीं है। पहिले कभी हुआ भी नहीं और अब होने की आशा भी नहीं—इस कथन में अतिशयोक्ति ज़रा भी नहीं है।

डान्टे ने भाषा अपनी निज की रचना की है; छन्द भी उसीके बनाये हुए हैं। डान्टे ने इस महाकाव्य में एक कौड़ी भी किसी से उधार नहीं लिया। इस महाकाव्य की शक्ति पर आज डान्टे यूरोप के साहित्यक्षेत्र में महाकवि के पद पर डट रहा है। नैपोलियन का वह क्षणस्थायी वैभव नष्ट हो गया पर डान्टे का वैभव अविनाशी और अक्षय है। डान्टे का आदर्श लैटिन कवि वर्जिल था। किन्तु उसके उत्कृष्ट काव्य एइनीड (Æneid) से डान्टे का काव्य कहीं अधिक उत्कृष्ट और योग्य है। *

* इस लेख के लिखने में मुझे टामस कार्लाइल लिखित Heroes and Hero-worship ग्रन्थ के "The Hero as poet" अध्याय से, तथा "The Life of Poet" के अंशविशेष से, और श्रीयुत काशीनाथ रघुनाथ मित्र लिखित मराठी के "महाकवि डान्टे" नामक लेख से विशेष सहायता मिली है। लेखक।

शिवा जी के विरुद्ध आक्षेपों पर विचार।

[लेखक—तरुण भारत।]

इस लेख में शिवा जी के विरुद्ध जो बार बार आक्षेप किये जाते हैं, उनपर विचार और उनका समाधान का करना है:—

१. शिवा जी के विरुद्ध पहला आक्षेप यह किया जाता है कि शिवा जी लुटेरे थे। इस कारण ही शिवा जी की योग्यता बहुत कम हो जाती है, जिस पुरुष में इतनी योग्यता होने पर यह दोष हो, वह सचमुच अयोग्य पुरुष समझा जायगा। इस आक्षेप का दिग्दर्शन और उसका थोड़ा सा उत्तर हम एक जगह दे चुके हैं। अब सविस्तर विवेचन किया जाता है।

शिवा जी की पूर्वकालीन और समकालीन परिस्थिति दिखा चुके हैं। इससे स्पष्ट होगा कि देशस्वातंत्र्य का मार्ग जो इस पुरुष ने निर्धारित किया, उसके सिवा अन्य कोई मार्ग संभव ही नहीं था। वह काल ऐसा था जब कि गुप्त षड्यन्त्रों का प्रयोग कर, जैसा कि कई देशों के इतिहास में दिखलाई पड़ता है, स्वतंत्रता नहीं मिल सकती थी। खुल्लमखुल्ला सामने आकर बलपूर्वक देश को क्रमशः स्वतंत्र करने के सिवा अन्य उपाय न था। ऐसी स्थिति में द्रव्य की जो ज़रूरत पड़ती, वह कैसे पूरी होती? क्या उस परिस्थिति में आज की नाईं चन्दा एकत्र किया जाता और महाराष्ट्र की स्वतंत्रता स्थापित की जाती? अथवा कोई कम्पनी खड़ी की जाती जिसके सहारे महाराष्ट्र देश का स्वातंत्र्ययुद्ध चला जाता? कौनसा ऐसा उपाय उस परिस्थिति में आप बतला सकते हैं जिससे कि यह देश अपनी स्वतंत्रता फिर से प्राप्त कर लेता? इसके लिये शिवा जी का उपाय सर्वोत्तम था। जो उनमें शामिल हो जाते, वे तो इस पवित्र कर्त्तव्य के करनेवाले ही थे, पर जो शामिल न होते और शत्रु का काम करते अथवा भोगविलास में अपना काल बिताते थे, क्या वे क्षमा किये जाने के योग्य थे? यह काम राष्ट्रीय था, इससे होनेवाला लाभ राष्ट्रीय था, इसलिए तमाम राष्ट्र का कर्तव्य था कि तन मन धन से सहायता करे। अनेक देशों की राष्ट्रीय स्वतंत्रता के इतिहास में यह एक आश्चर्य की बात दीख पड़ती है कि लोग अपनी जान देने को तैयार हैं, पर धन देने को नहीं! मेजिनी अपने आत्मचरित्र में बारम्बार इसी बात पर आश्चर्य प्रगट करता है कि जो लोग अपनी जान खतरे में डालने को तैयार हैं, वे ही अपने धन से किसी प्रकार जुदा नहीं होना चाहते! फिर शिवा जी महाराष्ट्र को स्वतंत्रता कैसे प्राप्त कराते? राजी खुशी से नहीं तो सख्ती से ही द्रव्य लेना आवश्यक था। इसीका नाम मुसलमान इतिहास कारों ने "लूट" रक्खा जिसका अनुवाद अङ्गरेज़ ग्रन्थकार भी करते आये हैं। मुसलमानों का इस प्रकार लिखना क्षम्य था, पर सत्यप्रिय अङ्गरेज़ इतिहासकारों का वही अनुकरण करना देख आश्चर्य और खेद होता है! शिवा जी की लूट की पद्धति के विषय में हम कह भी आये हैं कि शिवा जी नगर नगर गांव गांव जाते और वहां के अगुओं से वहां की स्थिति के अनुसार द्रव्य मांगते थे। इन लोगों का कर्तव्य होता कि वे उतना धन उस गांव से एकत्र कर उनके हाथ दे देते, और तब शिवा जी अपना रास्ता लेते। यदि लोग द्रव्य देने से इन्कार करते तो गांव में शिवा जी के लोग घुस जाते और ज़बरदस्ती द्रव्य ले आते। अगर सशस्त्र प्रतीकार होता तो उसका भी सामना उसी प्रकार किया जाता। पर किसी भी अवस्था में गरीब, बालक, स्त्री, वृद्ध और किसानों

को किसी प्रकार का कष्ट न दिया जाता, न कभी अनावश्यक लोगों का खून किया जाता। बर्नियर नामक एक फ्रेंच प्रवासी लिखता है "शिवा जी कहा करते थे कि ये फिरंगी पादरी बहुत सज्जन हैं, इसलिए उनको कष्ट नहीं देना चाहिये।" डिलेल नामक एक डच व्यापारी सूरत में था। वह बड़ा दानी और धर्मनिष्ठ प्रसिद्ध था। इस कारण उसे शिवा जी ने कभी नहीं सताया। सूरत में एक यहूदी व्यापारी रहता था। बादशाह के पास बेचने के लिए उसने बहुत से बहुमोल रत्न एकत्र किए थे। इस बात की खबर शिवा जी को लगी। तीन बार उसे मार डालने की धमकी दी पर उसने द्रव्य न दिया और आखिर शिवा जी ने उसको छोड़ दिया। *

इस लूट को अगर लूट कहें तो चार्ल्स प्रथम के जबरन लिये हुए कर्ज और राजी खुशी के दान (Forced loans and benevolences) के विषय में क्या कहा जाय यह हमें नहीं समझ पड़ता! लूट का शब्दशः अर्थ है कि किसी के न जाने उसपर चढ़ाई कर उसका द्रव्य छीन ले जाना। हम शिवाजी की लूट का वर्णन ऊपर कर ही चुके हैं। पाठक स्वयम् देख सकते हैं कि शिवाजी के ढंग को लूट कह सकते हैं या नहीं? शिवाजी की लूट स्वराज्यप्राप्ति के लिए केवल एक प्रकार का कर ही था। शिवाजी का राज्य ज्यों ज्यों स्थिर होता गया, त्यों त्यों लूट का क्रम बंद होता गया और कर आदि के रूप में वे अपने अफसरों से आजकल के समान द्रव्य इकट्ठा करते थे। कई राज्यसंस्थापकों को ऐसा करना ही पड़ा है, विजयी विलियम ने इङ्गलैंड जीतने पर अंगरेज़ जमींदारों की ज़मीन ज़ब्त कर ली और अपने नार्मन अनुयायियों को दे दी। अंगरेज़ों ने हिन्दुस्थान जीता तो क्या उसके लिए हमेशा इङ्गलैंड से द्रव्य आता रहा! द्रव्य निकालने की वारेनहेस्टिंग्ज़ की पद्धति का क्याल करते हैं तो शिवाजी की युक्ति अत्युत्तम मालूम होती है। सीज़र और सिकंदर क्या पराजित देशों से अपार द्रव्य नहीं लूट ले गये? मुसलमान सुलतानों ने क्या हिन्दुस्थान का द्रव्य लूट ग़ज़नी और घोर में ले जाकर नहीं भरा? पर लुटेरा केवल शिवाजी और बाकी सब साह!!! और जब ख्याल आता है कि शिवाजी की पद्धति अत्यन्त सौम्य थी और उसने यह सब देश की स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए किया, तब तो हमारा आश्चर्य लाखों गुना बढ़ जाता है!!! †

२.–शिवाजी के विरुद्ध दूसरा आक्षेप यह है कि उन्होंने अफ़ज़ल खाँ का विश्वासघात कर वध किया, यह आक्षेप बड़ा भारी है और उसका दूर करना बड़े महत्व का पर जरा कठिन है।

जब बीजापूर दरबार ने देखा कि शिवाजी को पकड़ना किंवा हराना टेढ़ी खीर है तो विचार हुआ कि कोई बड़ा सेनापति शिवाजी पर आक्रमण करने के लिए भेजा जाय। किसी की हिम्मत न हुई कि शिवाजी पर चढ़ जाय। निदान अफ़ज़ल खाँ इस काम के लिए तैयार हुआ, रास्ते में तुलजापुर और पंढरपुर के मंदिरों को ध्वस्त करता हुआ ही वह आया था। ख्याल रखना चाहिये कि उसके साथ बड़ी प्रचंड सेना थी, वह स्वतः बहुत बलवान मुसलमान था। शिवा जी को जिन्दा या मरा किसी भी स्थिति में पकड़ लाने के

* बर्नियर लिखता है "जान की अपेक्षा धन का अधिक मूल्य समझने का लोगों का स्वभाव ही है।"

† पर हां, यहां इतना कबूल करना चाहिये कि १८वीं सदी में पेशवों और मराठे सरदारों ने शिवाजी का तत्व न समझ उनका कार्य जारी रक्खा, इस कारण उनके कार्यों को भी लूट कहना अयोग्य न होगा!!

लिये उसने प्रण किया था। शिवा जी के प्रति उसमें कूट कूटकर द्वेष भरा था। उसकी धारणा थी कि शिवा जी को देखते देखते पकड़ लाऊंगा। उसकी प्रचंड सेना और उसका बल देख शिवा जी की हिम्मत न हुई कि उसका सामना करें। आखिर उन्होंने यह निश्चय किया कि अफजल खां से मेल किया जाय। शिवा जी ने मेल करने का सँदेसा भेजा पर अफज़ल खां की कारवाइयों पर उनकी सूक्ष्म दृष्टि लगी ही रही। जो कुछ उन्होंने देखा सुना, उससे उन्हें मालूम हो गया कि बड़ी सावधानी से ही रहना चाहिये। अफजलखां को हमेशा यही गर्व बना रहा कि मैं शिवाजी को चाहे जब पकड़ लाऊंगा। वह हमेशा अपने घमंड में चूर था और इस कारण उसने कोई परवा न की। पर शिवाजी उसकी जरा जरा सी बात की पूरी खबरदारी रखते थे। यहां तक कि अफजलखां से मिलने के पहिले उन्होंने यह भी निश्चय कर लिया था कि यदि धोखे से कहीं मारे गये तो राज्य की क्या व्यवस्था की जाय। जंगल साफ कर चारों तरफ फौज रख दी गई थी। इस पर भी यह ख्याल रखना चाहिये कि वे किसी प्रकार का धोखा देना नहीं चाहते थे क्यों कि यदि धोखा ही देना चाहते तो वे अपनी जान खतरे में कभी न डालते यह काम और किसी तरह भी हो जाता। जब भेंट हुई तो अफजल खां ने शिवाजी को आलिंगन करते समय उन्हें अपनी छाती से खूब दबाया, और नंगी तलवार ले हाथ ऊपर उठाया। बस, यदि शिवा जी बुद्धिमान् न होते और पहले से सब बातों पर उन्होंने सोच विचार न किया होता तो थोड़ी ही देर में उनका काम तमाम हो जाता।

इस एक क्षण भर में निश्चय करना था कि क्या किया जाय! क्या अफजल खां की तलवार से अपना सिर कटवा लिया जाय अथवा पहले सोची हुई खबरदारी से काम लिया जाय? इस संसार में कोई भी ऐसा न होगा जो यह कहे कि शत्रु के हाथ से इस प्रकार मर जाना भला हो। तुरन्त ही शिवाजी ने बाघनख उसके पेट में घुसेड़ दिया। तत्काल ही अफ़ज़ल खाँ की तलवार नीचे आई, मराठा वीर ने कुशलता से उसकी चोट से अपने को बचाया और अपनी तलवार से उसका काम तमाम कर डाला! किस जगह इस महापुरुष ने मुसलमान सरदार के साथ विश्वासघात किया यह हमारी समझ में नहीं आता! अफजल खाँ मारे गर्व के फूल रहा था और उसका अपने बल और सेना में हद्द से ज्यादा विश्वास था! शिवाजी अपना और शत्रु का बल जानते थे, और यह भी जानते थे कि अफ़ज़ल खाँ का हृदय कैसा है, इसलिए उन्होंने पूरी खबरदारी से काम लिया। अहंकार में चूर रहने के कारण उसे अपने किये का फल मिला इसमें शिवाजी का क्या दोष है?

इस प्रकरण का फैसला करते समय निम्नलिखित तीन बातें ध्यान में रखनी चाहियें:—

(१) यदि विश्वासघात पूर्वक अफजल खां का बध करने ही का शिवाजी का मन होता तो वे स्वयं अपनी जान खतरे में न डालते और किसी को भेजकर उन्होंने यह काम करवा लिया होता अथवा किसी अन्य उपाय की योजना की होती!! उन्हें स्वयं जाकर अफजल खां से भेंट करने की कोई आवश्यकता न होती।

(२) सारे इतिहासकार लिखते हैं कि भेंट होते ही अफजल खां ने तलवार ऊपर उठाई। जब स्वयं अपनी जान पर आ बनी तो कौन इतना इतना उदार होता कि चुपचाप देखता खड़ा रह जाता! फिर शिवाजी केवल शिवाजी ही नहीं थे उनके साथ महाराष्ट्र की स्वतंत्रता, स्वराज्य इत्यादि सब तत्काल नष्ट हो जाते! इस जवाबदेही को शिवाजी अच्छी तरह जानते थे!

(३) शिवाजी के संधि करने के सँदेसे के विषय में अफजल खां को किसी प्रकार की शंका नहीं थी। शंका रहती तो वह स्वयं मिलने

को न आता! उसे इस सँदेसे की सचाई पर पूर्ण विश्वास था, इस कारण हो वह स्वयं शिवाजी से मिला बल्कि उसने हो विश्वास-घात पूर्वक शिवाजी को जिन्दा या मरा—पकड़ ले जाने का प्रयत्न किया! उस प्रयत्न में वह सफल न हुआ और मारा गया। इसमें शिवा जी का क्या दोष?

३. यह कोई आक्षेप है नहीं, तथापि कुछ लोग कह सकते हैं कि शिवाजी ने बगावत मचाकर पिता को बहुत कष्ट पहुंचाया। इस आक्षेप का उत्तर देने के पहले हम अपने पाठकों का ध्यान फिर से पूर्व लेखों की ओर विशेषतः दूसरे और ४थे की ओर आकर्षित करना चाहते हैं। वहां आपको मालूम हो जायगा कि शिवाजी का सा सच्छील पुरुष कितना मातृपितृभक्त था। सच्छील पुरुष हमेशा मातापिता ही क्या वरन् सारे आदरपात्र पुरुषों के प्रति आदर दर्शित करते हैं। शिवाजी अपनी माता, दादोजी कोंडदेव, स्वामी रामदास इत्यादि आदराई व्यक्तियों का कितना आदर-सत्कार करते थे इसका वर्णन पहले हो ही चुका है! पिता से दूर रहने पर भी वे पिता का कितना ख्याल रखते इसका भी दिग्दर्शन करा चुके हैं। अब एक इतिहासकार क्या लिखते हैं सो सुनियेः—

"तब नादिरशाह को इस बात की फिक्र हुई कि शिवाजी से किस प्रकार सुलह हो। शिवाजी यदि किसी की मानेंगे तो केवल पिता की, ऐसा जानकर उसने इस कार्य के लिए शहाजी को भेजने का निश्चय किया, शहाजी की भी इच्छा पुत्र से मिलने की थी, अफ़ज़ल खाँ और बाजी घोरपड़े से बदला लेने का शिवाजी के विषय में पिता को विशेष अभिमान था, तब "पुत्र मेरे कब्ज़े में नहीं है, तथापि प्रयत्न कर देखता हूं" ऐसा कह वे तुलजापुर पंढरपुर होते हुए आये। पिता-पुत्र की भेंट कितने प्रेम-पूर्वक हुई इसका वर्णन करना कठिन है! बड़े साजबाज के साथ शिवाजी पिता को लेने गये। मिले बहुत दिन हो गये थे इस कारण प्रथम भेंट मंदिर में हुई। शहाजी के पालकी में बैठ जाने पर, शिवाजी नंगे पैरों पालकी कंधे पर धर कर चलने लगे! घर पहुंचने पर सद्गदित अंतःकरण से दोनों की बातचीत हुई! शहा जी के कारण शिवा जी और नादिरशाह के बीच जो सुलह हुई उसमें बीजापूर को ही विशेष लाभ हुआ! शहा जी के कारण शिवाजी को शपथ करनी पड़ी कि पिता के जीते जी बीजापूर से फिर झगड़ा न करूंगा।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि शिवाजी ने अपना प्रण पूर्णतया निभाया।

क्या ऐसा पुत्र कभी अपने पिता को कष्ट देने की इच्छा कर सकता है? हां कई बार अनिच्छापूर्वक स्वराज्य के उद्धार करने में शहाजी को पुत्र के कृत्यों के कारण कुछ कष्ट अवश्य सहना पड़ा, पर शिवा जी तत्काल उनके दूर करने का प्रयत्न करते रहे। यहां एक बात ख्याल रखने लायक है कि मुसलमानों से महाराष्ट्र का उद्धार करना था और शहाजी उन्हीं के नौकर थे। इसी कारण उन्हें कभी कभी कष्ट सहना पड़ता था। स्वराज्य के उद्धार का कार्य शिवा जी को शहा जी की इच्छा के विरुद्ध करना पड़ा, और ऐसा इतिहास में हमेशा होता ही है। तरुण पीढ़ी के ध्येय, साधन इत्यादि वृद्धि पीढ़ी से सदा भिन्न रहते हैं, और तरुण पीढ़ी अपना काम अनिच्छा-पूर्वक वृद्धों की इच्छा के विरुद्ध किया ही करती है। यह मानवी स्वभाव ही है—सदा से इतिहास में इसका चित्र चित्रित है। दूसरे यदि ऐसा न हो तो प्रगति का मार्ग ही बन्द हो जायगा। तरुणों में तेजी की बहुत आवश्यकता है—केवल उसका अत्यन्त वेग सौम्य करने के लिए वृद्धों की बुद्धिमानी की आवश्यकता है। शिवाजी सब काम अत्यन्त विचारपूर्वक किया करते थे, उन्हें उपदेश देने के लिए माता और स्वामी रामदास वगैरः थे ही, तथापि वे पिता

की भी इच्छा का ख्याल करते रहते थे। पिता के त्याग देने पर भी और शत्रुपक्ष की नौकरी करने पर भी उनके हृदय में पिता के प्रति उनका आदर तिलभर भी कम न हुआ, यह पुनः पुनः ख्याल रखने लायक है !! इस बात को और एक तरह से विचार किया जा सकता है। हम पहले लेखों में बतला ही चुके हैं कि शिवाजी केवल एक पुरुष नहीं थे, वरन् उनके शरीर और मन में महाराष्ट्र का शरीर और मन था, उनकी इच्छा महाराष्ट्र की इच्छा थी, उनकी महत्वाकांक्षा महाराष्ट्र की महत्वाकांक्षा थी, क्या वे केवल पिता की अनिच्छा के कारण किसी प्रकार महाराष्ट्र का ख्याल छोड़ देते? क्या सदसद्विवेक बुद्धि को त्याग देते? इस महान् कार्य के लिए उन्हें अपनी सदसद्विवेक बुद्धि की आज्ञा मानना आवश्यक था, और बड़े बड़े काम करनेवालों को ऐसा ही करना पड़ा है। और इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं!

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट विदित होगा कि शिवाजी के शुद्ध चरित्र पर कई इतिहासिकारों ने निरर्थक कीचड़ फेंकने का प्रयत्न किया है, पर उसमें वे फलीभूत नहीं हुए !!!

स्त्रियों का कर्तव्य।

[लेखक—श्रीयुत हृदयनाथ सप्रू।]

इस यूरोपीय घोर संग्राम के कारण तीन बड़े ही गूढ़ प्रश्न पश्चिमीय देशवासियों में उठ आये हैं। वे प्रश्न इस प्रकार हैं :—

१—क्या यह सम्भव है कि यदि स्त्री अविवाहिता, हृष्ट पुष्टा और काम-काजी हो, तो वह युद्धकर्तृ हो सकती है?

२—क्या यह उचित होगा कि समय पड़ने पर स्त्रियां लड़ कर देश-सेवा कर सकें?

३—क्या यह बुरा जान पड़ेगा कि स्त्रियां कवायद करना और निशाना मारना सीखें, जिससे कि वे अवसर आने पर वीरता से लड़ कर अपने देश को शत्रु द्वारा पद-दलित होने से बचा सकें?

यह प्रश्न ऐसे नहीं हैं कि जिनके ऊपर कोई बिना सोचे समझे अपनी सम्मति प्रगट कर सके। हमारे हिन्दुस्थानी भाई, जो कि अभी तक पर्दा आदि बुरी संस्थाओं के उड़ाने में ही हिचकिचा रहे हैं वे तो इन प्रश्नों को सुनते ही अपने कानों पर हाथ रक्खेंगे और राम राम उच्चारण करके इस पाप का प्रायश्चित्त करेंगे. फिर इन प्रश्नों पर अपनी सम्मति प्रगट करना तो दूसरी ही बात रही। पर हमें विश्वास है कि अब समय बहुत बदल गया है और इन महापुरुषों की संख्या भी बहुत कम हो गई है। इसी विश्वास पर हमने अपनी लेखनी उठाने का आज साहस किया है। यहां पर यह कह देना अनुचित न होगा कि इस लेख में केवल विलायत और पश्चिमीय देशों ही के सम्बन्ध में विचार करना है। अतः यह उचित है कि विचारक इस समय की पश्चिमीय दशा को ध्यान में रखते हुए इस प्रश्न को सोचे और फिर अपनी सम्मति ठीक ठीक निश्चित करे। इस समय इङ्गलैंड आदि देशों की क्या दशा है और वहां समय कैसा आगया है?

एक समय था जबकि पश्चिमीय स्त्रियां अबला के नाम से पुकारी जाती थीं और सत्य ही थीं भी अबला ही। परन्तु समय में अब बड़ा अन्तर हो गया है। पुरुष स्त्री और स्त्रियां पुरुष हो गई हैं। "अबला" का 'अ', 'ल' में बदल गया है और अबला शब्द (Weak sex) तो केवल मिथ्या ही सिद्ध होता है। पिछले २५

वर्षों से बराबर अन्तर होता जा रहा है। पुरुष छोटे और निर्बल किन्तु स्त्रियां लम्बी चौड़ी, हृष्ट पुष्ट और अधिक फुर्तीली होती जा रही हैं। देखिये मिस एफ० ओसबालडिस्टन एक सब खेलों के जाननेवाली क्या कहती हैं, "यदि अधिक लोगों की जांच की जाय तो वह पुरानी कहावत कि "स्त्रियां अबला हैं" अब कुछ मिथ्या सी जान पड़ती है। नदी किनारे जाकर देखिये तो नावों पर कितने ही छोटे छोटे बीने के आदमी उनमें बैठे ही दिखलाई पड़ेंगे। इन नावों को पुरुषों से दुगनी लम्बी चौड़ी, बल और शक्ति में उनसे कहीं बढ़ी चढ़ी, स्त्रियां खेती हुई इधर से उधर घूमती हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि उनको कवायद और शस्त्र-विद्या सिखाई जाय तो वे रणक्षेत्र में भली प्रकार काम आ सकती हैं।"

लिवरपूल नगर में स्त्रियों का एक बड़ा भारी बेडफ़ार्ड नाम का कालेज है। इस कालेज में एक अति आश्चर्यजनक और आनन्ददायक प्रदर्शिनी हुई थी जिसमें कि केवल स्त्रियों के शारीरिक बल व सहनशक्ति का नमूना ही दिखाया गया था। जिस जिसने वहां देख कर अपने नेत्र सफल किये वह चकित ही रह गया। वे स्त्रियां थीं कि पहलवान। सदस्य प्रत्येक के मुंह से यही निकलता था कि ऐसी स्त्रियां क्यों अपने को अबला कहकर छिपाती हैं। यदि इन लोगों से सेना का काम लिया जाय तो कैसा हो? कहने की आवश्यकता नहीं है कि बहुत सी स्त्रियों ने अनेक रणक्षेत्रों में अपने वीरत्व का परिचय इतिहासों द्वारा दिया है।

सबसे बड़ी कठिनता तो इस समय इङ्गलैंड में यह है कि पुरुषों से स्त्रियां दस लाख अधिक हैं। यही हाल फ्रांस आदि देशों का भी है। अब प्रश्न यह है कि वहां किया क्या जाय? स्पष्टतया तथा प्रत्येक को एक पति नहीं मिल सकता, न वह कदापि इस बात पर सहमत होंगे कि हमारे हिन्दुस्थान की नाईं एक एक पुरुष की दस, दस, बीस, बीस, अर्धाङ्गिनियां हों। इस प्रश्न का केवल एक ही उत्तर हो सकता है। जबकि औरतें शरीर में, बल में, और सहनशक्ति में वहां के मर्दों से कहीं बढ़ चढ़ कर हैं तो यह सर्वथा उचित है और जो बहुत कुछ पूरा भी होता जाता है कि हर एक काम काज यहां तक कि सेना का काम भी स्त्रियों के लिए खोल दें। हमें पूरी आशा है कि ऐसा हो जाने पर स्त्री जाति उतनी ही अच्छी तरह पर काम करेंगी जैसा कि पुरुष लोग कर रहे हैं। कैसा अच्छा होगा यदि उनको भी अपने देश पर प्राण न्योछावर कर देने का अवसर मिले। ऐसा करने से 'एक पंथ' दो काज की कहावत चरितार्थ हो जायगी। एक ओर तो देश की भलाई होगी और शत्रुओं की बाढ़ रुक जायगी और दूसरी ओर "अपनी कन्याओं को क्या करें" यह प्रश्न हल हो जायगा। लड़ाई में उनकी बहुत कुछ संख्या न्यून हो जायगी और "एक एक के गले सात सात" का झगड़ा छूटेगा।

दूसरी ध्यान देने योग्य बात एक और भी है। बहुतों की सम्मति है कि धायों का काम अब स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष बहुत अच्छा करते हैं। वही पूर्वोक्त मिस ओसबिलडिस्टन क्या कहती हैं:--

A still greater argument for the employment of women, now that men are declared to make the best and gentlest hospital nurses, is.....

अर्थात्–स्त्रियों को नौकर रखने के लिए इससे भी बड़ा प्रमाण, अब कि यह साबित हो गया है कि पुरुष धाइयों का काम बड़ी सावधानी और अच्छी तरह करते हैं, यह है कि.....

अब तो स्त्रियों को अवश्य ही सेना में नौकरी करना चाहिये चाहे पुरुष करें वा न करें।

यदि हम ऐसी वीर बालाओं के दृष्टान्त चाहते हैं तो हमको खोजने बहुत दूर नहीं जाना पड़ेगा। यूरोप के थोड़े पिछले इतिहास में दो नाम सबसे अग्रसर हैं, पहिला हन्नाह स्नेल (Hennah Snell) जिसने महाराजा जार्ज की सेना में बहुत वीरता से काम किया और द्वितीय ग्रीक महिला हेलेना कौन्स्टैन्टिनिडिस (Helena Constantinides) है। हेलेना के परिवार को तुर्क लोगों ने मटियामेट कर दिया था जिसपर वह एथेन्स लौटी। उसके लौटते ही स्वयं-सेवकगण उसके चारों ओर इकट्ठा हो गये और हेलेना २५०० आदमियों को साथ ले ग्रीस देश की स्वतंत्रता के लिए बड़ी वीरता से युद्ध के मैदान में लड़ी और इस प्रकार सर्वदा के लिए अपना नाम ग्रीस के इतिहास में चमका गई। इनके अतिरिक्त पमाज़न्स, बोडीशिया और जोन आव आर्क आदि स्पेन, फ्रांस, पोलैंड और अमेरिका के राज्य परिवर्त्तन में पुरुषों के साथ लड़ीं।

आजकल के महासंग्राम में भी रूस की ओर से कितनी ही स्त्रियां रणक्षेत्र में जूझ रही हैं। किरा बैशकिरौफ़ (Kira Bashkiroff) नामक एक अट्ठारह वर्ष की कन्या ने अपना नाम सेना में निकोलस पौपोफ़ (Nicholas Poroff) लिखवाया और एक साधारण सिपाही का काम करते हुए इसने ऐसे २ वीरता के काम किये कि उसको क्रास आफ़ सेंट जार्ज नाम का एक पदक दिया गया। दूसरी युवती कोकोवत्सिवा (Kokovtseva) कज़्ज़ाक फ़ौज़ की एक सेनापति है। वह शत्रुओं के ऊपर आक्रमण करने में तीन बार घायल हुई और वीरता के लिए इसे भी "क्रास आफ़ सेंट जार्ज" का पदक मिला।

तीसरी रूस की सबला का हाल इस प्रकार है :—

"इस स्त्री का पति लड़ाई पर जाने का नाम सुनते ही छिप गया। उसकी वीर स्त्री से पति की कायरता न देखी गई। इस भय से कि कहीं मेरे पति का नाम न रक्खा जाय और उसकी कायरता सब पर प्रगट न हो जाय वह अपने पति का सैनिक रूप धारण करके रणक्षेत्र में जा पहुंची। युद्ध में वह बड़ी वीरता से लड़ी और अन्त में घायल होकर मृत्यु को प्राप्त हुई। मरते समय उसका भंडा फूट गया॥" ऐसे ही कितने दृष्टान्त दिये जा सकते हैं जिससे कि यह सिद्ध होता है कि औरतें यदि लड़ाई का काम सिखाई जावें तो वे उतनी ही अच्छी तरह काम आ सकती हैं जितने कि पुरुष लोग आते हैं।

आजकल की लड़ाई का हाल यदि देखा जाय तो पहिले समय से बड़ा अन्तर हो गया है। अब बड़ी बड़ी लड़ाइयां जीतने के लिए पशु सरीखे बल की इतनी आवश्यकता नहीं है जितनी की नये नये आविष्कारों और यंत्रों की। एक मुट्ठी भर आदमी दूर से एक बड़ी भारी सेना का सामना भली प्रकार कर सकते हैं। विज्ञान के बल से स्त्रियां अब पुरुषों की बराबरी कर सकती हैं। नगर के एक कोने में बैठी हुई एक अबला बटन दबाती है और शहर भर में अति प्रभावशाली बिजली अपना काम करने लगती है। यह क्या बात है? केवल कलों की करामात। सच पूछिये तो विज्ञान के कारण अब सिपाही होने के लिए तलवार आदि शस्त्रों की आवश्यकता ही नहीं रही।

अब है अपने देश को शत्रुदल के द्वारा पददलित होने से बचाने की आवश्यकता, इस बीसवीं शताब्दी में कोई बिरला ही पुरुष ऐसा निकलेगा कि जो शत्रुओं से आक्रमण किये जाने पर अपने देश की ओर से हाथ न उठावे। यदि कोई ऐसा निकल भी आवे तो वह अपनी जननी जन्मभूमि का सच्चा पुत्र नहीं किन्तु एक विश्वासघाती तथा नीचातिनीच है। आजकल तो वह समय आ गया है जब कि निर्बल होना पिछले

का इशारा है। यदि कोई जाति चाहती है कि वह निश्चिन्त रह कर जीवित रहे तो उसके लिए यह सर्वथा उचित और आवश्यक है कि वह संग्राम के लिए सदा तत्पर रहे। और इस प्रकार तत्पर रहने का क्या अर्थ है? केवल यही कि बच्चे से लेकर बूढ़े तक सब कवायद तथा शस्त्रज्ञान द्वारा चैतन्य रहें। अब प्रश्न यह है कि इङ्गलैंड और फ्रांस आदि देशों में जहां कि इस यूरोपियन युद्ध के पहिले ही स्त्रियां केवल गिन्ती ही में अधिक नहीं थीं किन्तु शारीरिक बल और सहनशक्ति आदि में भी उनका नम्बर बढ़ा चढ़ा है तो क्या कारण है कि जब पुरुष लोग मर, खप कर कम हो जायँ या लड़ाई में घायल होकर गिर पड़ें, तो उनकी जगहें औरतें न लें? हम तो समझते हैं कि स्त्रियों को अपने देश पर प्राण न्योछावर कर देने का उतना ही अधिकार है जितना कि पुरुषों को। उनके लिये पुरुषों की जगहों पर लड़ते हुए गिरकर मर जाना कहीं अच्छा है परन्तु शत्रुओं से जीते जाने पर उनका अत्याचार सहन करना भला नहीं।

यदि यह मान लिया जाय—जैसा कि हम जानते हैं कि मानना पड़ेगा—कि लड़ाई होना सर्वदा के लिए निश्चित है तो उसके लिए यह अत्याश्यक है कि हर एक चाहे वह पुरुष हो या स्त्री—लड़का हो या बूढ़ा—प्रत्येक आदमी जो लड़ सकता है लड़ने मरने पर तय्यार रहे। एक जाति को यह केवल उचित ही नहीं किन्तु परमावश्यक है कि वह एक एक को समर की सामग्री से सुसज्जित करे। यदि आवश्यकता पड़ेगी तो स्त्रियां भी अपना ऋण बड़ी वीरता से चुकावेंगी। अपनी स्वयं रक्षा करना तो केवल साधारण ही बात ठहरी।

फ्रांस की स्त्रियों ने तो अपनी वीरता का नमूना हमें १८७० ई० की लड़ाई में दे ही दिया है। किस २ वीरता से वे निज देश के लिए लड़ीं और लड़ते लड़ते अपनी जानें गंवाईं। क्या ही भला होता यदि हमारी यहां की राजपूत बालाएं जिन्होंने यवनों के द्वारा अपने पति और पुत्रों के मारे जाने पर चिता पर अपनी देह को रखकर स्वाहा कर दिया, अहिल्याबाई व ताराबाई की नाईं हर समय पर यवनों का सामना करके देश ऋण को उतारतीं और चिताओं पर जान देने के बदले रणक्षेत्र में वीरता के साथ लड़ते हुए गिर कर मर जातीं। यदि उस समय यवनों के अत्याचार सहने के बदले सारी हिन्दू स्त्रियां लड़ने और मरने पर उद्यत हो जातीं तो हमें पूरा विश्वास है कि आज भारत का इतिहास कुछ और का और ही हो गया होता।

हर प्रकार की कसरत करने का उचित होना तो मानी हुई ही बात है। लार्ड राबर्ट्स, सर जान फ्रेंच आदि बड़े बड़े महापुरुषों की भी ऐसी ही सम्मति है। औरतों में देखिये वाइकौंटेस हारवर्टसन (Viscountess Harbertson) क्या कहती हैं :—

There can be nothing either undignified or improper in girls learning to shoot or in their being drilled.

अर्थात् कन्याओं के कवायद करने और निशाना मारना सीखने में कोई भी बुरी बात नहीं जान पड़ती।

एक मिस चायोलेट बैनब्रग नाम्नी अन्य महिला कहती हैं :—

I think girls should undergo physical training in the same way as boys. There can be nothing undignified or improper for girls to drill and learn how to handle a rifle.

अर्थात "मेरी समझ में लड़कियों के लिये वैसे ही कसरत वगैरः करना अच्छा है जैसे कि लड़कों के लिए। उनके लिये इसमें कोई हरज या बुराई नहीं है कि वे कवायद करें और बन्दूक चलाना सीखें।"

ऐसी कसरत करने से दो मुख्य लाभ हैं। पहिला यह कि उनकी सन्तान यदि स्त्रियां विवाह करें तो बहुत ही हृष्टपुष्ट होंगी जिससे जाति की जाति सुधर जाने की आशा है। दृष्टान्त के लिए ग्रीस के इतिहास में स्पार्टा और स्पार्टा की स्त्रियों का हाल पढ़िये और जाँच करके देखिये कि इसीके प्रभाव से वहां की क्या अवस्था थी। दूसरी बात यह कि वे अवसर आने पर केवल अपनी ही रक्षा नहीं कर सकतीं किन्तु देश को भी दासत्व से बचा सकती हैं। इसका प्रमाण जोन आव आर्क नाम की एक किसान-बालिका का हाल पढ़ने से जाना जा सकता है। इसने केवल अपने ही बल से फ्रांस देश को दासत्व से बचाया था। आस्ट्रिया की रानी मेरिया टेरिज़ा का ऐसा ही दूसरा दृष्टान्त है।

मेरा इतना साहस नहीं कि अब मैं उन्हीं बातों को हिन्दुस्तान के निवासियों के लिए आवश्यक बताऊँ। हमारे बूढ़े भारतवर्ष का तो ढंग ही निराला है। स्त्रियों की तो कौन कहे यहां तो पुरुषों ही में से एक हज़ार में नौ सौ निन्नानवे लोग ऐसे निकलेंगे जिन्होंने अपनी आयु में बन्दूक और तलवार के कभी दर्शन भी नहीं किये।

युद्ध के अनन्तर भारत।

[गत १४ सितम्बर को बम्बई में मान० मि० एन० एम० समर्थ की अध्यक्षता में श्रीमती एनी बीसेंट ने 'युद्ध के अनन्तर भारत' इस विषय पर एक बड़ी ओजस्विनी और प्रभावशालिनी वक्तृता दी थी। उसी का हिन्दी भाषान्तर यहाँ प्रकाशित किया जाता है।]

श्रीमती बीसेंट ने इस प्रकार आरम्भ किया :—

"मैं अपनी वक्तृता में भारत की राजनैतिक स्थिति पर अपने निज के विचार प्रकट कर रही हूं और उनके लिए कोई दूसरा राजनीतिज्ञ उत्तरदायी न समझा जाना चाहिये। मैं सभापति की इस बात से सहमत नहीं हूं कि अभी केवल थोड़े ही दिनों से मैं भारत के राजनैतिक प्रश्नों पर विचार करने लगी हूं। गत १८८५ ई० में ब्रिटिश सरकार की उग्र नीति पर मैं कलम उठा चुकी हूं। मैं पिछले ४० वर्षों से भारत के राजनैतिक जीवन से परिचित हूं, यद्यपि उसमें क्रियाशील भाग लेना स्वयं भारत में मैंने हाल ही में आरम्भ किया है। गत १९०४ या १९०५ में मैंने यह सम्मति प्रकट करने का साहस किया था कि भारत को स्वराज्य की आवश्यकता है और यह कि जब तक उसके प्राचीन स्वायत्त-शासन के आधार पर स्वराज्य का भवन निर्माण नहीं किया जायगा तबतक भारत कभी यथार्थ में समृद्धिवान् नहीं होगा। मेरी समझ में संसार के किसी भी अन्य देश की अपेक्षा भारत स्वराज्य के अधिक उपयुक्त है। जो लोग भारत को स्वराज्य के योग्य नहीं समझते, उनकी समझ में शायद भारत का इतिहास क्लाइव ही के समय से आरम्भ होता है। परन्तु यह भ्रम है। जैसा कि इतिहास-वेत्ताओं को मालूम है, प्राचीन राज्यों के समय से लगातार भारतवर्ष में स्वराज्य की पूर्ण व्यवस्था थी।

मुख्य विषय पर आने के पहिले मैं यह कह देना चाहती हूं कि वक्तृता में जहाँ जहाँ 'भारत की स्वतंत्रता' की चर्चा करूंगी, वहाँ वहाँ उसका अर्थ स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशों के

समान साम्राज्यान्तर्गत स्वतंत्रता होगी, साम्राज्य से बाहर होकर स्वतंत्रता नहीं। मैं सदा से कहती आई हूं कि मेरा यह विश्वास है कि इङ्गलैंड और भारत का सम्मिलन दोनों के लिए लाभदायक है और यह कि प्रत्येक के हित के लिए दोनों को आपस में प्रेम और स्वतंत्रता की ग्रन्थि बांध लेनी चाहिये, और ऐसे दो बँधे हुए चीतों की भांति न होना चाहिये जो अपने को छुटाने के लिए बीच की जंजीर पर खैंचा-तानी कर रहे हों। मैं इङ्गलैंड के संयोग के विरुद्ध कुछ भी नहीं कहना चाहती, वरन् मैं आशा करती हूं कि यह संयोग भावी कितनी ही शताब्दियों तक बना रहेगा। मेरा यही दावा है कि इङ्गलैंड ने अपने साम्राज्य के प्रत्येक सभ्य भाग को जो कुछ दिया है वही हिन्दुस्तान को भी दे। केवल स्वतंत्रता ही भारत को एक महान्, सन्तुष्ट और सुखी राष्ट्र बना सकती है, और केवल स्वतंत्रता ही उसे साम्राज्य के लिए एक भय और संकट का कारण होने के स्थान में रक्षा का साधन बना सकती है।

प्रत्येक सभ्य राष्ट्र का यह स्वाभाविक स्वत्व है कि वह अपने कामकाज का स्वयं प्रबन्ध करे। इसी आधार पर स्वराज्य प्राप्त करने का भारत को स्वत्व है। कृतज्ञता या और किसी बात का प्रश्न नहीं है। स्वराज्य पुरस्कार की भांति नहीं मांगा जाता वरन् एक हक़ की तरह उसका दावा किया जा रहा है। जब भारत को फिर अपना शासन आप करने का स्वत्व मिल जायगा, तो वह स्वराज्य के मुकुट को अपने माथे इस लिए नहीं रक्खेगा कि वह किसीका कृतज्ञ है, वरन् इसलिए कि यह उसका स्वत्व है। ईश्वर ने उसे जो स्वतंत्रता प्रदान की है उसको ले लेने का हक़ किसीको नहीं है।

भेंगेपन का रोग।

लोगों ने मि० चार्लस राबर्ट के मुंह से सुना था कि भारत के प्रति इङ्गलैंड का 'दृष्टि-कोण' बदल जायगा। यह आलंकारिक भाषा थी और मालूम नहीं उसका आशय क्या है। जिस राष्ट्र को भेंगेपन का रोग है, उसे दृष्टि-कोण बदलने की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी कि खुली दृष्टि से सीधे देख सकने की शक्ति की। क्या नये दृष्टि-कोण ही की बदौलत हमें ये नये भारत-मंत्री मिले हैं? भारत-मंत्री ही भारत का शासक होता है, क्योंकि जैसा बहुधा उल्लेख होता है, सम्राट् शासन नहीं करते। भारत-मंत्री, जो कि सम्राट् का प्रति-निधि और ३१॥ करोड़ भारतवासियों का शासक है, अङ्गरेज़ी दल का केवल पुछल्ला हो रहा है और वह इस पद पर इस कारण नियुक्त नहीं किया जाता कि भारत को उसकी आवश्यकता है, वरन् इस कारण कि उसके लिए अन्यत्र स्थान पाना कठिन है। वर्तमान भारत-मंत्री मि० आस्टन चेम्बरलेन हिन्दुस्तान के विषय में कुछ नहीं जानते। उनके उत्तर सदा इस प्रकार के हुआ करते हैं:—"मैं नहीं जानता। कृपया कल मुझसे यह प्रश्न पूछियेगा।" यदि दृष्टि-कोण बदलने का यही परिणाम हुआ है तो इसे जहांतक होसके शीघ्रही बदल डालना चाहिये, क्योंकि यद्यपि लार्ड क्रू के साथ कोई विशेष रूप से प्रेम नहीं कर सकता तथापि वे इनसे कहीं अधिक अच्छे हैं। भारतवासी मि० चार्लस राबर्ट के प्रति कृतज्ञ थे क्योंकि ये भारत से प्रेम करते थे परन्तु उनके स्थान पर लार्ड इसलिंगटन को देखना असाधारणतः बुरा हुआ है—ये एक ऐसे कमीशन के सभापति हैं जिसकी रिपोर्ट से भारतवासियों को कोई विशेष आशा नहीं है।

क्या सम्पादक बच्चे हैं?

प्रेस ऐक्ट के अनुसार नित्यही कार्यवाहियाँ हो रही हैं और एक के बाद दूसरा अखबार नष्ट किया जा रहा है। 'कामरेड' 'हमदर्द' और 'स्टार आफ़ उत्कल' बन्द कर दिये गये हैं। तीसरे पत्र के सम्पादक को यह भी नहीं बता

लाया गया कि उसका क्या दोष था, अथवा उसके पत्र का कौनसा लेख प्रेस ऐक्ट की चपेट में आगया। सम्पादकों का यह स्वत्व है कि उन्हें आपत्तिजनक वाक्यों की स्पष्ट सूचना मिले, चाहे वे विस्तृत रूप से न भी प्रकट किये जायँ। वाक्यों को स्पष्टतः न बतलाना कानून के विरुद्ध है। परन्तु कोई इस मामले पर ध्यान देनेवाला नहीं है। इसका अभिप्राय यह है कि मालिक ने अपना कुल धन उसपर खर्च कर दिया और हाईकोर्ट जाने के लिए उनके पास कुछ नहीं बचा है (?) हिन्दुस्तान में प्रेस ऐक्ट का होना इङ्गलैंड की स्वाधीनता के योग्य नहीं है। प्रायः प्रतिदिन सम्पादकों को इसके लिए चेतावनियाँ मिल रही हैं कि इसे मत छापना, उसे रोक लेना या अमुक अमुक स्थान पर जो घटना हो उसका हाल मत देना, इत्यादि इत्यादि। क्या वे बच्चे हैं जो इस बात का विवेक नहीं कर सकते कि उन्हें क्या छापना और क्या न छापना चाहिये?

दो विचार-धाराएँ।

इङ्गलैंड क्या करेगा, इस प्रश्न की मुझे चिन्ता नहीं है। मुझे चिन्ता इस बात की है कि भारत क्या करेगा?—क्योंकि यही महत्व-पूर्ण विषय है और इसीसे भविष्य का निर्णय होगा। यह विषय इङ्गलैंड और भारत दोनों के लिए महत्वपूर्ण है। भारत में इस विषय पर दो भिन्न भिन्न विचार-धाराएँ हैं। एक विचार-धारा 'क्रमिक, सुधार' के पक्ष में है, अर्थात् थोड़ा यहां, थोड़ा वहां, एक पद यहां और एक पद वहां और इस प्रकार अन्त में चुने हुए प्रतिनिधियों की अधिक संख्या। यह सब अपने ढंग पर अच्छा है परन्तु स्पष्ट बात यह है कि इस विषय की ओर मैं इस दृष्टि से नहीं देखती। मेरी सम्मति है कि भारत को दावा करके इङ्गलैंड की सरकार से यह स्पष्ट प्रतिज्ञा करा लेनी चाहिये कि युद्ध के समाप्त होने पर साम्राज्य की कौंसिल में भारत को उसका स्थान दिया जायगा और यह कि भारत अपने घर का आप प्रबन्ध करेगा।

कुछ लोग समझते हैं कि इससे सरकार को हैरानी होगी। मैं नहीं समझ सकती कि हैरानी क्यों होगी। जबकि आस्ट्रेलिया, कैनेडा, और अन्य देश यही बात कहते हैं तब हिन्दुस्तान अकेला क्यों चुप रहे? मैं नहीं जानती कि भेद कहाँ पर है। उपनिवेशों को यह कहने के लिए किसीने दोष नहीं दिया। उपनिवेश-सचिव मि० बानर ला ने जो कान्सरवेटिव दल के नेता हैं, कहा है कि "जब लोहा लाल है तभी तुम्हें हथौड़ा चलाना चाहिये। साम्राज्य की कौंसिल में अपना स्थान प्राप्त करलो।" बस एकही बार मैं अपने जीवन में मि० बानर ला से सहमत हुई। मैं पूछती हूं कि मि० आस्टन चेम्बरलेन भी क्यों नहीं हिन्दुस्तान से वही बात कहते जो मि० बानरला ने उपनिवेशों से कही है? उन्होंने क्यों नहीं कहा कि हिन्दुस्तान का पद भी उपनिवेशों के बराबर ही होगा? हिन्दुस्तान की क्यों उपेक्षा की जाय? हैरानी कहाँ है? मैं तो समझती हूं कि सरकार यह देखकर प्रसन्न होगी कि युद्ध समाप्त होने के पहिले ही हिन्दुस्तान के लिए स्वराज्य के प्रश्न पर विचार किया जा रहा है। मैं यही कहना चाहती हूं कि ब्रिटिश साम्राज्य केवल इस बात की घोषणा कर दे कि युद्ध समाप्त होने के बाद हिन्दुस्तान एक स्वतंत्र और स्वायत्त-शासक राष्ट्र बना दिया जायगा। नये 'फेडरल'* आधार पर साम्राज्य का फिर से संगठन होना चाहिये और इस संगठन में अन्य अन्य भागों के साथ भारत को भी स्थान दिया जाय। यही मैं चाहती हूं और भारतवासियों को भी इसीकी अभिलाषा प्रकट

---

* अर्थात् कई राष्ट्रों का एक संगठन, जो अपने निज के मामलों में स्वतंत्र होंगे परन्तु सामान्य उद्देश्य के लिए एक सूत्र में बँधे हुए होंगे।

करनी चाहिये। लार्ड मेक्डानल और लार्ड कर्ज़न कहते हैं कि विवादग्रस्त विषयों पर विचार नहीं करना चाहिये। परन्तु उन्होंने स्वयं विवादग्रस्त प्रश्नों पर विचार किया!

स्वराज्य का अर्थ।

मैं अब बतलाती हूं कि स्वराज्य से मेरा क्या तात्पर्य है। मेरा यही तात्पर्य है कि देश का शासन प्रजा की सम्मति से चुनी हुई कौंसिल द्वारा हुआ करे, जिसे खजाने पर पूरा अधिकार होगा और वह सरकार प्रतिनिधि-सभा के प्रति उत्तरदायी होगी। इस बड़ी कार्यकारिणी कौंसिल में चुने हुए सदस्य रहेंगे और विभाग-पदाधिकारी निर्वाचित प्रतिनिधि-सभा के प्रति उत्तरदायी होंगे। इस सभा की शक्ति प्रजा के चुने हुए प्रतिनिधियों के हाथों में रहेगी। तब इङ्गलैंड की सरकार बिना भारत की सम्मति के १,४५,५०,००,०००) रु० नहीं मँगवाया करेगी। ज़िला कौंसिलों, ताल्लुक बोर्डों, म्युनिसिपलिटियों और गाँवों की पंचायतों में जिस एक चीज़ की आवश्यकता है वह चुने हुए प्रतिनिधियों की है। ये चुने हुए सदस्य अपने चुननेवाले प्रजाजनों के सामने जवाबदेह होंगे। युद्ध के अनन्तर अवलम्बन करने के लिए ये स्पष्ट और निश्चित धाराएँ हैं।

अस्त्र आईन, फौजी कालेज, भारतीय वालंटियर ये सब आभ्यन्तरिक प्रश्न हैं। मैं जानती हूं कि कई विचारवान् भारतवासियों और अँगरेज़ों की यह सम्मति है कि हिन्दुस्तान में अब यह पुकार होनी चाहिये कि हम लोग सुधारों के टुकड़े नहीं माँगते वरन् अपना शासन स्वयं करने का स्वत्व चाहते हैं।

औद्योगिक प्रश्न के विषय में मैं यहाँ अधिक नहीं कहना चाहती। यह भारतवासियों के करने का काम है। मैं यह नहीं समझती कि कोई सरकार कारीगरियाँ उत्पन्न कर सकती है, यद्यपि मेरा यह विश्वास है कि कारीगरियों की आरम्भिक दशा में सरकार उनकी सहायता कर सकती है। सर विलियम क्लार्क को चाहिये था कि वे मद्रास की इंडियन चेम्बर आफ़ कामर्स (भारतीय व्यापारी-सभा) की यह बात मान लेते कि जब उद्योग-धन्धे के किसी काम में हिन्दुस्तानी पूंजी लगाई जाय तो सरकार कुछ शर्तों के साथ पूंजी के लिए ब्याज की गारंटी कर दिया करे, जैसा कि सरकार हिन्दुस्तानी रेलों में लगाई जानेवाली अंगरेज़ी पूंजी के लिए कर देती है। यदि लोग जर्मन व्यापार की वृद्धि पर दृष्टि डालेंगे तो उन्हें मालूम होगा कि लगातार कई वर्षों से जर्मनी अपने कला-कौशल की उन्नति के लिए विज्ञानवेत्ताओं और रसायनज्ञों को सिखाता आया है। यहाँ हिन्दुस्तान में इस प्रकार का कुछ भी काम नहीं हुआ है। वास्तव में देश में शायद ही कोई कारीगरियाँ विद्यमान हैं।

इन्डियन सिविल सर्विस।

इंडियन सिविल सर्विस के सम्बन्ध में कांग्रेस जब से स्थापित हुई तभी से भारत में समकालीन परीक्षाओं का होना माँग रही है। १८६० में जो कमीशन बैठा था उसने भी यही सम्मति दी थी और १८९२ में कामन्स सभा में भी एक प्रस्ताव इसके पक्ष में पास होगया था। श्रीयुत गोखले ने इस विषय पर वक्तृता देते हुए कहा था कि मैं यह नहीं समझ सकता कि अपने ही देश में नौकरी के पदों पर विदेशों से आये हुए लोगों को किस तरह भर दिया जाय। अन्य बहुतसे लोग भी प्रायः यही बात कह चुके हैं। लार्ड स्टैनली ने कह दिया था कि भारत में सिविल सर्विस की परीक्षाएँ नियत करने से इनकार करने का यह अर्थ होगा कि इंगलैंड ने भारत को जो कुछ देने का वचन दिया था उसीसे उसे वंचित कर रहा है—अर्थात् इन्डियन सिविल सर्विस में न्याययुक्त और समान भाग। लार्ड स्टैनली के मतानुसार

इसका परिणाम अन्यायपूर्ण और सम्भवतः अत्यन्त हानिकारक होगा।

शासन और न्याय-विभागों का पृथक्करण भी कांग्रेस ३० वर्षों से माँग रही है। यह विषय कांग्रेस के स्थायी मन्तव्य में चला गया है, क्योंकि उसके सम्बन्ध में कोई नई बात अब कहने को रह नहीं गई, सब कुछ बारम्बार कहा जा चुका है। तौ भी पुरानी व्यवस्था अबतक मौजूद ही है। अब भी मालगुज़ारी जमा करने-वाला कलेक्टर एक ज़िले के कोने में थकाऊ दिन के अन्त में मुकदमे सुना करता है। अब भी उसकी गश्ती अदालत अमलों सहित दौरा करती फिरती है, साथ ही वादी, प्रतिवादी, दोनों पक्षों के गवाह और वकील भी जहाँ कहीं वह जाता है उसके पीछे पीछे फिरते हैं। अफसर लोग मोटर गाड़ियों में चलते हैं और बेचारे अभियुक्त को पैदल या बैलगाड़ी पर जाना पड़ता है। जब भारतवासी उक्त सुधार को ३० वर्षों में भी प्राप्त नहीं कर सके तब यह कहना कठिन है कि अन्य सब सुधारों के प्राप्त करने में कितनी शताब्दियाँ व्यतीत हो जायँगी।

मुझे मालूम है कि इस सम्बन्ध में किस प्रकार नाहीं का जवाब दिया जाता है। कुछ मनुष्यों का विचार है कि भारतवर्ष स्वराज्य के योग्य नहीं है। मैं पूछती हूं कि योग्यता का विवेक कौन करेगा? जब इंगलैंड को स्वराज्य मिला था तब क्या वह उसके योग्य था? यदि इंगलैंड था तो भारत सरीखा शान्तिपूर्ण देश इंगलैंड के उन उपद्रवी और विध्वंसी हजूमों (the rowdy and destructive mobs in England) से अधिक योग्य है, जिन्होंने राज्य की स्थिरता के लिए यह आवश्यक कर दिया था कि उन्हें अधिक स्वतंत्रता दी जाय। कुछ लोग भारत पर मुसलमानों के हमले का हवाला देते हैं और भ्रमपूर्वक मुसलमानों को 'परदेशी' बतलाते हैं। यदि तुम हिन्दुस्तान में मुसल-मानों को 'परदेशी' बतलाओगे तो इंगलैंड में भी कोई अंगरेज़ नहीं है, क्योंकि, मुसलमानों की तरह विलियम विजेता भी बाहर ही से आया था और इंगलैंड को जीत कर उसने अपना राज्य स्थापित किया। कोई जाति स्वाधीनता के योग्य नहीं होती जबतक कि वह यह नहीं दिखलाती कि मैं उसे पाने के लिए दृढ़संकल्प हूँ। यदि तुम उसे लेने के लिए दृढ़-संकल्प हो तो तुम उसे पाओगे। तुम्हें इंगलैंड से कह देना चाहिये कि तुम्हारे 'स्वाधीनता-प्रेम की बदौलत हम चुनाव का स्वत्व पाने का दावा करते हैं। यह बात याद रक्खो कि इंगलैंड हिचकिचाहट की नीति को नहीं जानता। आयर्लैंड भारत से भी अधिक कठिन स्थिति में था क्योंकि आयर्लैंड में लगभग ५० लाख मनुष्य ही रह गये हैं जब कि भारत में ३१॥ करोड विद्यमान हैं।' मि० ऐस्क्विथ ने एक सभा में वक्तृता देते हुए श्रोताओं से यह विचारने के लिए कहा था कि यदि इंगलैंड में सब अधि-कार के स्थानों पर जर्मन नियुक्त हो जायँ और प्रजा को बोलने का अधिकार बिना दिये उसका शासन करें तो कैसा होगा? मि० ऐस्क्विथ ने बतलाया कि ऐसी दशा अचिन्तनीय और असह-नीय होगी। मैं भी मि० ऐस्क्विथ के साथ सहमत हूँ। इस विचार से विदित होता है कि मि० ऐस्क्विथ को देश की स्वतंत्रता की चिन्ता है।

अस्त्र आईन।

अस्त्र आईन के विषय में सर फीरोज़शाह मेहता का मत निश्चयात्मक है। वे कहते हैं कि "तुम्हें सारी भारतीय जाति को नपुंसक न बना देना चाहिये। यदि एक बार भारतवासी नपुंसक हो गये तो फिर बहुत दिनों के बाद तुम उनकी नपुंसकता छुटा पाओगे।" इंगलैंड की चेतावनी के इन शब्दों की सुनी अनसुनी न करनी चाहिये। यदि भारतवासी हथियार बाँधने पाते और लड़ना सिखाये जाते तो जर्मनी इंगलैंड से लड़ाई छेड़ने का साहस न

करता। भारत की जन-संख्या की तुलना करते हुए जर्मनी की आबादी कितनी है ? यदि अस्त्र आईन न होता तो बहुत अधिक भारत-वासी फ्लैंडर्स को गये होते और तब युद्ध उतने दिनों तक न चलता जितने दिनों तक चला है।

इंगलैंड हिन्दुस्तान से कहता है, "हमारा विश्वास करो, काम न करो परन्तु विश्वास करो।" मैं बहुतसे भारतवासियों को जानती हूं जो अपने हृदयों में पूछते हैं "तुम क्यों नहीं हमारा विश्वास करते ?" राजभक्ति के महान् प्रदर्शन के बाद यदि भारतवासी वालंटियरों में भर्ती होने पाते तो इंगलैंड को अपने पक्ष में लड़ने के लिए लाखों पुरुष तैयार मिल जाते। हिन्दुस्तानी ईसाई वालंटियर हो सकते हैं परन्तु हिन्दू और मुसलमान नहीं। देशी ईसाइयों की पल्टनें मद्रास की सड़कों पर अभिमानपूर्वक खाकी उर्दी पहिने जाती हुई मद्रास के लोगों ने देखीं थीं गैर-ईसाई हिन्दुस्तानियों के लिए यह प्रायः एक अपमान था। इस दृश्य ने उन्हें राजद्रोही नहीं बनाया परन्तु अत्यन्त क्रोधित और उत्तेजित कर दिया। इनके सिवा और भी कारण हैं जिनसे भारतवासियों को स्वराज्य मिल जाना चाहिये। एक कारण भारतवर्ष की आर्थिक स्थिति है। मि० दादाभाई की "अन-ब्रिटिश रूल इन इंडिया" नाम की पुस्तक में ऐसे अंक दिये गये हैं, जिनपर कोई दम नहीं मार सकता। मि० डी० ई० वाचा के स्फुट लेखों और मि० डिगबी की किताब से भी भारत की आर्थिक दशा समझी जा सकती है। भारतवासियों का कहना है कि "हम चाहते हैं कि अंगरेज़ लोग यह भूल जायँ कि वे इस देश में परदेशी हैं और हिन्दुस्तानियों के साथ भाईचारे का बर्ताव करने लगें।" यह आशा नहीं की जा सकती कि हिन्दुस्तानी यह बात बिलकुल भूल जायँगे कि भारत की सरकार पूर्णतः अपनी ही नहीं है। इसके विरुद्ध सरकारी अफसर हिन्दुस्तान से जानेवाले धन के बड़े बहाव (the great drain from India) के सम्बन्ध में कहते हैं कि "इसको बहाव के नाम से मत पुकारो। यह धन मूल्य के पलटे में दिया जाता है।" यह धन 'होम चार्जेस' पर (इंगलैंड को भेजने में) खर्च किया जाता है, जो वस्तुतः भारत के लिए 'विदेशी खर्च' है। मैं नहीं समझ सकती कि यह धन पाई हुई चीज़ का मूल्य स्वरूप कैसे माना जा सकता है। 'होम चार्जेस' के २० करोड़ रुपये प्रतिवर्ष भारत से एक दूसरे देश के उपयोग के लिए चले जाते हैं। इसमें परिवर्तन होना चाहिये। इसके सिवा 'व्यापार का सामञ्जस्य' भी भारत के लिए अहितकर है। लार्ड सेलिसबरी ने कहा था:—

"If India must be bled it would be well if you apply the lancet where the blood is overflowing."

अर्थात् "यदि हिन्दुस्तान के खून का चूसना आवश्यक ही है तो अच्छा होगा कि तुम नश्तर ऐसी जगह लगाओ जहाँ खून बहुतायत से हो।"

भारत की गाय दुहकर ठाँठ की जारही है। हिन्दुस्तान की सेना का खर्च बढ़कर ५४ करोड़ रु० तक पहुंच गया है। सरकार शिक्षा के लिए ५ करोड़ नहीं दे सकती परन्तु सैनिक व्यय के लिए ५४ करोड़ दे सकती है।

हिन्दुस्तानी सिपाही सस्ता है। अंगरेज़ सिपाही अपेक्षाकृत अधिक खर्चीला है और उसपर ७००) रु० प्रतिवर्ष से अधिक खर्च बैठता है। भारत में लगनेवाले टैक्स के सम्बन्ध में स्वयं सरकारी अफसर स्वीकार कर चुके हैं कि अब अधिक टैक्स लगाने की गुंजायश ही नहीं रही है। तोभी उनमें से कुछ का कहना है कि भारत में टैक्स हलका है! अन्य देशों में अधिक टैक्स लगाने की गुंजायश बनी है; परन्तु हिन्दुस्तान में ऐसी कोई गुंजायश नहीं रही है क्योंकि लोग भूखों मरने की स्थिति के बहुत

पास पहुंच गये हैं। बम्बई में किसानों की बड़ी जनसंख्या फसल कट चुकने के बाद अपने गावों को छोड़कर चली जाती है, क्योंकि गाँवों में उनके लिए जीविका चलाने को काफी सामान नहीं रहता। यही दशा पहिले आयरिश किसानों की होगई थी। यह तनिक भी सम्भव नहीं है कि लोग सदा इसी तरह जीवन व्यतीत कर सकेंगे। मैं कल श्रोतृमण्डल को बतला चुकी हूं कि भारत में ४॥ करोड़ मनुष्य यह नहीं जानते कि किसी दिन पेट भरकर खाना किसे कहते हैं। मैं चाहती हूं कि लोग जानें कि भूख किसे कहते हैं, जिससे कि वे भूखों मरते मनुष्यों के साथ सहानुभूति कर सकें। एक शताब्दी में हिन्दुस्तान में २० अकाल पड़े! इसका क्या अर्थ है यह बात यदि मैं एक वाक्य में प्रकट करना चाहूं तो बस यही कहूंगी कि "हिन्दुस्तान को स्वराज्य की आवश्यकता है।"

इसके अनन्तर श्रीमती बीसेंट ने निमक के महसूल की चर्चा की और फिर आबकारी के सम्बन्ध में कहा कि :—

शराब की दूकानें देशभर में फैली हुई हैं। बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी से मेरी बातचीत हुई थी जिसमें उन्होंने कहा कि "यदि इंगलैंड हिन्दुस्तान में शराब की दूकानों और वेश्यालयों को बन्द कर दे तो बाकी बातों का प्रबन्ध हम लोग स्वयं कर लेंगे।" यह अच्छा नहीं है कि ऐसी बातें कहने की आवश्यकता पड़े। जब हम शिक्षा की ओर देखते हैं तो पाते हैं कि कुल जनसंख्या में से केवल १.६ फीसदी (?) मनुष्य पढ़ लिख सकते हैं। मि० गोखले ने अपने प्रसिद्ध बिल में २.६ (?) का औसत बतलाया था। मैं केवल सर्वसाधारण की प्रारम्भिक शिक्षा की बात कह रही हूं, क्योंकि मैं समझती हूं कि कुल सुधार के मार्ग में यही रोड़ा है। सहयोग-समितियों की उन्नति के पथ में यही बाधा है, क्योंकि बिना शिक्षा के लोग इस आन्दोलन के सिद्धान्त को नहीं समझ सकते।

शिक्षा—एक व्यापारिक लाभ!

श्रीमान् गोखले ने बतलाया था कि भारत में १॥ करोड़ लड़के इस समय ऐसे हैं जिन्हें पाठशाला में जाना चाहिये परन्तु इनमें से केवल ४० लाख जाते हैं! सरकार ने उनसे कहा था कि तुम मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा को माँगकर केवल एक असम्भवनीय आकांक्षा प्रकट कर रहे हो। परन्तु मेरे विचार में एक व्यापार में लाभार्थ पूंजी लगाने की भाँति भी लोगों को शिक्षा देना उचित है। क्योंकि तब वे खेती भी अधिक अच्छी कर सकेंगे, माल भी अधिक अच्छा तैयार करेंगे और पढ़ लिख जाने से उनमें अंगरेज़ी वस्तुएँ भी आजकल से अधिक खपा करेंगी। इंगलैंड से यह नहीं कहा जाता कि वह अपनी जेब से खर्च करके हिन्दुस्तान के बच्चों को पढ़ाये। खर्च हिन्दुस्तानियों के मत्थे रहेगा। २० वर्ष के बीच में जापान में ९२ फीसदी लड़के पाठशालाओं को जाने लगे। यदि भारत सरकार को परवाह हो तो जापान ने जो कर दिखाया है वही भारत भी कर सकता है। जब शिक्षा-सम्बन्धी खर्च की चर्चा होती है तब कभी कभी कहा जाता है कि "ओह, हिन्दुस्तान एक गरीब देश है।" यह विचित्र बात है कि एक क्षण में यह कहा जाता है कि हिन्दुस्तान समृद्धिशाली और धनवान् है क्योंकि वह अंगरेज़ी शासन के आधीन है और दूसरे ही क्षण यह कहा जाता है कि "हिन्दुस्तान ऐसा गरीब देश है कि उसको शिक्षा नहीं दी जा सकती।"

बड़ौदा।

मैंने एक दिन बड़ौदे के गायकवाड़ से पूछा था कि उनकी मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था कैसी चल रही है। उन्होंने उत्तर दिया कि मुझे बड़ी सावधानी से काम करना पड़ता है क्योंकि ज़बर्दस्ती का क्रम प्रजा के लिए नया है। वहां की कुल जनसंख्या में से

६ फीसदी लड़के पाठशालाओं में हैं जब कि ब्रिटिश भारत में औसत बहुत ही थोड़ा है। मैं समझती हूं कि जो कुछ गायकवाड़ ने कर दिखाया है वह अंगरेज़ी सरकार के किये भी हो सकता है।

उपसंहार।

भारत क्यों स्वराज्य चाहता है इसके कुछ कारण मैंने यहां बतलाये हैं। मैं अपने समस्त अंगरेज़ भाइयों से कहती हूं कि वे भारत की स्वतंत्रता के निमित्त साम्राज्य के हितार्थ काम करें। इसी में भारत का लाभ है और अंगरेजों का भी। एक समय था जब कि हिन्दुस्तान को आनेवाले अंगरेज़ अभिमान के साथ विचारते थे कि वह दिन आयेगा जब हिन्दुस्तान भी इंगलैंड के साथ स्वतंत्रता में भाग लेगा। मेकाले ने कहा था कि इंगलैंड के लिए वह सबसे अधिक अभिमान का दिन होगा जब हिन्दुस्तानी भी इंगलैंड की स्वतंत्र संस्थाओं में भाग लेने के स्वत्व का दावा करेंगे। पिछली शताब्दी के बीच में इंगलैंड ने इस देश में ऐसे राजनीतिज्ञ भेजे जिन्होंने भारत में स्वतंत्रता के बीज बोये। गदर के बाद इस देश में लड़ाइयों का अन्त होगया और सीमाप्रान्त को छोड़कर देशभर में 'पैक्स ब्रिटेनिका' का प्रभुत्व हो गया। कितने ही वर्ष हुए मैंने पढ़ा था कि जब अंगरेज़ी सरकार ने ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथ से भारत का शासन-भार ले लिया, तब कुछ अंगरेज़ राजनीतिज्ञों ने कहा कि पार्लामेंट में भारत के भी प्रतिनिधि होने चाहियें और यह कि भारत को एक स्वतंत्र देश बन कर इंगलैंड की सी महती प्रतिनिधि-सत्ताक संस्थाओं का उपभोग करना चाहिये। इंगलैंड साम्राज्य की माता है और उसे प्रसन्न होना चाहिये कि भारतवासी अब साम्राज्य के शासन में भाग चाह रहे हैं। जब कि हिन्दुस्तान के सिपाही बेलजियम की स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे हैं, तब वे यहां लौट कर और यह देखकर क्या कहेंगे कि भारतवर्ष उस स्वतंत्रता से रहित है? हिन्दुस्तानी सिपाही फ्लैंडर्स में लड़ रहे हैं क्योंकि जर्मनी ने एक सन्धिपत्र का कागज़ के टुकड़े की तरह अपमान किया था। जब वे लौटकर यहां आयेंगे और देखेंगे कि लार्ड लिटन के ये शब्द सत्य हैं कि इङ्गलैंड अपनी की हुई प्रतिज्ञा का पालन नहीं कर रहा है, तब उन्हें कैसा मालूम होगा? इंगलैंड को अवश्य भारत का साथ देना चाहिये और उसे उस स्वतंत्रता के भोग करने में सहायता देनी चाहिये जो कि उसका स्वत्व है। यह कहने का भारतवासियों को पूरा अधिकार है। जब कि इंगलैंड ने आयर्लैंड को स्वराज्य दे दिया तब क्या वह उसे भारत को नहीं देगा?

(श्रोताओं ने बड़ी देर तक खूब करताल ध्वनि की।)

सम्पादकीय टिप्पणियां।

लायड जार्ज का वक्तव्य।

मि० लायड जार्ज ने व्याख्यान देते हुए ग्रेट ब्रिटेन के निवासियों से कई नुकीले प्रश्न किये हैं साथ ही उन्होंने यह भी बतलाया है कि उन्हीं के कमर कस खड़े होने पर यूरोप की स्वतंत्रता निर्भर है। उन्होंने कहा है:—

"इस देश में कितने लोग पूर्णरूप से रूसियों के पीछे हटने का पूर्ण तत्व समझते हैं? साल भर से अधिक हुआ कि रूस ने रसद कम होने पर भी जर्मन सेना आधी और आस्ट्रियन सेना की चार बटे पांच अंश शक्ति को ठिकाने लगा दिया है। क्या लोग इस बात

को समझते हैं कि यूरोपीय स्वाधीनता के लिए जो युद्ध हो रहा है इसमें रूस ने अब तक अच्छी सहायता की है.....और कुछ महीनों तक रूसी सेना से हमें वैसी अधिक सहायता की आशा नहीं करनी चाहिये जैसी कि सहायता हमें मिल चुकी है ?

"अब रूस की सेना फिर से तैयार होगी तब तक युद्ध में उसकी जगह कौन लेगा ? अब तक रूस ने जो बोझ सम्हाला है उसे अब कौन सम्हालेगा ? फ्रांस ने जितना बोझ उठा रक्खा है उससे अधिक बोझ उठाने की उससे आशा नहीं की जा सकती।.....इटली भी शक्ति भर युद्ध में लड़ रहा है। वह और क्या कर सकता है।

"अब केवल ब्रिटेन बाकी है ? क्या ब्रिटेन इस खाली जगह को पूरी करेगा जो रूस के फिर से अपनी शक्ति दुरुस्त करने के लिए आराम करने से खाली होगी। क्या ब्रिटेन पश्चिम और पूर्व दोनों में आगामी कई महीनों में होनेवाली सब बातों को पूरी तरह सम्हाल सकेगा ? इस महादेश के समस्त लोगों के उत्तर पर.....यूरोप का कितनी ही पीढ़ियों की स्वाधीनता निर्भर रहेगी।"

ऐसे दुर्घट के समय में भी प्रजातंत्री लायड जार्ज को भारत की याद नहीं आई यह खेद की बात है। हम कितने ही बार लिख चुके हैं और फिर भी लिखते हैं कि भारत को—सशस्त्र करो, भारतीय स्वयंसेवकों की सेना के दल के दल रणक्षेत्र में भेजो रूस का काम भारतीय वीर अपने ऊपर ओढ़ लेंगे। जब तक रूस तैयार होगा भारतीय वीर मोर्चा लिए रहेंगे। भारतवासियों का अविश्वास वृथा है, वे शासन से सन्तुष्ट हों या नहीं किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस युद्ध में वे इङ्गलैंड के साथ हैं, साम्राज्य की रक्षा करना वे अपना उतना ही बड़ा कर्तव्य समझते हैं जितना कि एक अङ्गरेज़। भीतरी रीति-नीति में मतभेद अनिवार्य है किन्तु शत्रु सबका एक ही है, और एक का शत्रु दूसरे का मित्र नहीं हो सकता। अविश्वास से लाभ नहीं। मि० लायड जार्ज के शब्दों में:—

"To dwell on such facts is the most disagreeable task that can fall to the lot of a public man. For all that, the public man who either shirks these facts himself does not do his best to force others to face them until they are redressed is guilty of high treason to the state which he has sworn to serve."

अर्थ—"ऐसी बातों पर एक सार्वजनिक पुरुष के लिए विचार करना बड़ा बुरा काम है। क्योंकि जो सार्वजनिक पुरुष ऐसी बातों से स्वयं घबराता है या अपने भरसक और लोगों पर उनके दूर करने का दबाव नहीं डालता तो वह उस राज्य के प्रति जिसकी सेवा करने की उसने शपथ की है बड़े भारी राजविद्रोह का अपराधी है।"

इस विचार से ही प्रेरित हो हम बार बार कहते हैं भारतवासियों का विश्वास करो, उन्हें अस्त्र-शस्त्र दे स्वयंसेवक बनाओ, उन्हें सैनिक शिक्षा दो, वे काम पूरा कर देंगे।

दूर ! दूर !!

अभी तक द० अफ्रिका, कैनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड से भारतवासी दूर किये जाते थे किन्तु अब एमेरिका से भी वे दूर किये जानेवाले हैं। इस समय नहीं तो एमेरिकन कांग्रेस की दूसरी बैठक में एशियाई लोगों को दूर रखने का बिल पास हो जायगा। इस बिल को केलीफोर्निया के मि० जान रेकर ने उपस्थित किया है। भारतवासियों के विरुद्ध अभियोग ये हैं:—

(१) भारतवासी पगड़ी बाँधते हैं और चावल खाते हैं। (कितना बड़ा पाप करते हैं ?)

(२) वे एमेरिकन क्रिश्चियेन्टी को स्वीकार नहीं करते (निसन्देह यह जुर्म अक्षम्य है ?)

(३) उनकी आदतें भोंडी हैं। (बिलकुल ठीक है क्योंकि इन्हीं लोगों के पूर्वजों ने संसार को सभ्यता सिखाई है ?)

(४) गोरे मजदूरों का वे स्थान ले रहे हैं। (स्वतंत्र देश में प्रतिद्वन्द्विता का क्या काम, दूसरों को स्वतंत्रता से काम करने दो, खुद भूखों मरो ?)

(५) वे मिलाये नहीं जा सकते। (बिलाशक यह उनमें बड़ा भारी दोष है। अपने खून की पवित्रता बनाये रखना, अपनी सभ्यता को जीवित रखना और फिर पंचगव्य में निवास यह घोर उत्पात है, इसकी सज़ा ज़रूरी है ?)

(६) वे रुपया पैदा कर उसे अपने देश को भेज देते हैं। (इसके तो हम भी कायल हैं दूसरे देश से रुपया पैदा कर अपने देश भेज देना निस्सन्देह दूसरे देश को गरीब कर देता है, इसलिए यह आवश्यक है कि भारतनिवासी एमेरिकन सब चीज़ें भारत की बनी हुई खरीदा करें, और जो कुछ पैदा करें उसे यहीं खर्च कर दिया करें अपने देश में या अन्य किसी देश में न भेजें, इससे भारत दिन दिन गरीब हो रहा है।)

खैर, इन कोरे उत्तरों से कुछ होना नहीं, उत्तर के साथ साथ यदि पीछे शक्ति भी नहीं लगी रहती तो उनसे कुछ लाभ नहीं होता। जापानियों का प्रबन्ध जापानवाले और उनकी गवर्नमेंट कर लेगी, चीनियों का भी प्रबन्ध यदि उनमें उस समय दम हुआ तो वे कर लेंगे, भारतवासियों के सम्बन्ध में हमें सचेत हो जाना चाहिये। गवर्नमेंट कुछ करना चाहेगी तो एमेरिकन कहेंगे पहिले आस्ट्रेलिया, कैनाडा से बातचीत कर लो तब हम से भी कुछ कहना। ऐसी अवस्था में एमेरिका की स्वतंत्र भूमि में अपना मुख उज्वल रखने के लिए हमी लोगों को प्रयत्न करना होगा। अभी से सावधान हो जाओ, भारतीय युवकों की, भारतमाता की, मान रक्षा के लिए तैयारी कर रक्खो, पैसा एकत्र करो और भारतीय युवकों को एमेरिका में बने रहने में सहायता पहुंचाओ।

पब्लिक सर्विस कमीशन की रिपोर्ट।

वायुमंडल से आवाज़ आई है कि कमीशन के अधिकतर अधिकारी सभ्य भारतीय स्वार्थों के विरुद्ध हैं। यह कोई नई बात नहीं है। कमीशन में जैसे सभ्य थे, जैसा उसका संगठन था उससे यह पहिले ही से विदित था। अस्तु हमें इसका रोना नहीं है हमारा कहना तो यह है कि रिपोर्ट प्रकाशित की जाय। कुछ लोगों को भ्रम है कि रिपोर्ट के हमारी सी न होने के कारण ही उसके प्रकाशन में विलंब हो रहा है। हम नहीं जानते बात वास्तव में क्या है, हम तो केवल इतना ही जानते हैं कि फिनेन्स या करेन्सी कमीशन की रिपोर्ट उपस्थित होते ही प्रकाशित की गई थी और पब्लिक सर्विस कमीशन की रिपोर्ट के प्रकाशन में विलंब का कोई कारण न होना चाहिये। लोगों का यह ख्याल कि रिपोर्ट के प्रकाशित होते ही असन्तोष फैलेगा और युद्ध के समय में वह उचित नहीं और इसलिए वह प्रकाशित न की जाय हमारी समझ में ठीक नहीं है। रिपोर्ट अभी प्रकाशित होनी चाहिये, उससे असन्तोष फैलेगा तो उसका युद्ध से क्या सम्बन्ध ? क्या इस समय हम लोग असन्तुष्ट नहीं हैं ? असन्तोष तो तब तक रहेगा और बराबर ज़ोर पकड़ेगा जब तक हम वैसे ही नहीं हो जाते जैसे अङ्गरेज, कैनेडियन, स्काटस् वा आस्ट्रेलियन हैं किन्तु इस असन्तोष का प्रभाव युद्ध पर नहीं पड़ता क्योंकि हम जानते हैं कि साम्राज्यरक्षा का प्रश्न सर्वोपरि है, पहिले विजय प्राप्त करनी है, अङ्गरेज अहसान मानें या न मानें, यह हमारा कर्तव्य है और उसके पालन से हम चूकनेवाले नहीं, इसी भांति स्वराज्य के लिए आन्दोलन करने और उसको बिना प्राप्त किए

भी हम न बैठेंगे। ऐसी अवस्था में रिपोर्ट हितकर हो या अहितकर उसको प्रकाशित करने में विलम्ब करने से कोई लाभ नहीं।

ऐंग्लो इन्डियन रेजीमेंट।

सुनते हैं पङ्गलो इंडियन लोगों का कोई रेजिमेंट बननेवाला है, बाहर कदाचित उन्हें न जाना पड़े किन्तु देश में ही उन्हें सैनिक बन देशभक्ति दिखाने का अवसर दिया जायगा। यह खुशी की बात है किन्तु प्रश्न यह है कि शुद्ध इंडियन लोगों को भी स्वदेशभक्ति दिखाने का अवसर साथ ही साथ दिया जायगा या नहीं?

कैनिङ्ग कालेज का झगड़ा।

गवर्नमेंट की विज्ञप्ति जो प्रकाशित हुई है उसे पढ़कर न गवर्नमेंट और न कैनिङ्ग कालेज के अधिकारियों को हम बधाई दे सकते हैं। आरंभ से अन्त तक लाल पगिया का जुल्म दिखाई देता है। सर्वसाधारण का हित इसी में था कि मुकदमा चलता। हम आशा करते हैं कि इन्स्पेक्टर जेनरल जो पुलीसवालों को सज़ा देंगे उसकी सूचना हम लोगों को मिलेगी। पुलीसवालों का अपराध अक्षम्य है।

उपनिवेशवाले।

भारत में उच्च पदों पर उपनिवेशवाले जो आसीन हैं उनका यह लेखा है:—

विभाग	द० अफ्रिका	कैनाडा	आस्ट्रेलिया	न्यूज़ीलैंड	जोड़
इंडियन सिविलसर्विस	३	१	५	५	१४
प्रोविन्सियल "	०	०	१	०	१
पुलीस विभाग	१	१	५	०	७
कस्टम विभाग	०	१	१	०	२
जंगल विभाग	२	०	१	१	४
शिक्षा विभाग	०	१	३	२	६
पब्लिक वर्क्स	१	१	२	१	५
मेडिकल सर्विस	३	७	४	३	१७
सर्वे	०	३	०	०	३
पाइलाट सर्विस	०	०	१	०	१
मिलिटरी एकाउन्टस्	०	०	१	०	१
पोस्ट आफिस	०	१	०	०	१
स्टेट रेलवे	०	०	२	०	२
वर्क्स	०	०	२	०	२
	१०,	१६,	२६,	१२,	६७

हम लोग द० अफ्रिका को नाममात्र के लिए छोड़कर आस्ट्रेलिया आदि उपनिवेशों की भूमि पर पैर भी नहीं रख सकते किन्तु वहाँवाले हमारे घर में, हमारे वेतन से हमीं पर हुकम चलाते हैं। हम लोग लार्ड हार्डिंग की "बदले की नीति" चाहते हैं। जहाँ हम नहीं जा सकते वहाँवाले हमारे घर न आवें, जो हमें नहीं देखना चाहते हम उन्हें नहीं देखना चाहते। युद्ध के समाप्त होते ही यदि उपनिवेशवालों की बुद्धि नहीं ठिकाने आती तो उन्हें यहाँ से बिदा कर शिक्षा देनी होगी।

मि० तिलक और धर्म।

गणपति-उत्सव में वक्तृता देते हुए मि० तिलक ने कहा है "एक बार ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकारकर इससे कोई भेद या अन्तर नहीं पड़ता यदि धर्म की आनुसंगिक छोटी २ बातों रुढ़ियों आदि में परिवर्तन हो। पुरातन धर्म वर्तमान समय के उपयुक्त नहीं और आधुनिक समय का धर्म ५० वर्ष के बाद उपयोगी न रह जायगा। इसलिए यह आवश्यक है कि समय की गति और देश की आवश्यकता के अनुसार आधुनिक धर्मविश्वासों में परिवर्तन किया जाय। प्रातःसन्ध्या, सन्ध्यावन्दन ही धर्म नहीं है। जो पुरुष संसार के हित के लिए काम करता है वास्तव में वही सन्ध्यावन्दन करता है क्योंकि वास्तविक सन्ध्या यही है। ईश्वर ऊँच नीच, बड़े, छोटे, अमीर गरीब में भेदभाव नहीं करता तब फिर तुम इस भेदभाव को क्यों चाहते हो? रीति नीति, रूढ़ि धर्म की सर्वस्व नहीं हैं।"

हम ये ही बातें कितने ही दिनों से कहते चले आ रहे हैं अब महात्मा तिलक से कट्टर सनातनधर्मी भी वही कह रहे हैं। देखें अब भी हमारे भाइयों की आँख खुलती है या नहीं।

शिक्षा और स्वराज्य।

"ब्रिटिश सिटीज़न" (नागरिक) नामक पुस्तक में प्रोफेसर थरोल्ड रोजर्स ने इङ्गलैंड के संबन्ध में लिखा है :—

"मैं नहीं समझता कि १०० वर्ष पहले, १० आदमियों में एक आदमी और २० स्त्रियों में १ स्त्री से अधिक लिखना पढ़ना जानती थी। जब हैम्पशायर गांव में मैं गया था उस समय मुश्किल से कोई किसान जिसकी उम्र ४० से ऊपर थी पढ़ सकता था। किसानों को साधारण शिक्षा देना भी उस समय उचित नहीं समझा जाता था। यदि एक या दो शताब्दी और पहले के समय पर विचार करते हैं तो इङ्गलैंड के सब लोग, बालक वृद्ध, छोटे बड़े सब के सब मुट्ठी भर लोगों को छोड़ सब बिलकुल मूर्ख थे और फिर भी हाउस आफ् कामन्स मौजूद था।"

कथा का मर्म प्रगट है और जो शिक्षा की कमी के कारण कहते हैं कि भारत स्वराज्य के उपयुक्त नहीं, जिसकी दशा उस समय के इङ्गलैंड से कहीं अच्छी है, उन्हें प्रोफेसर की बातों से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

भारतवासी स्वयं-सेवक।

बड़े लाट की कौंसिल में प्रश्न का उत्तर देते हुए कमांडर इनचीफ ने कहा है कि अब तक २० भारतवासी स्वयम् सेवक बने हैं। यदि यह कहा जाता कि २० भारतवासी स्वयम् सेवक बनाये गये हैं तो अधिक उचित होता। क्योंकि भारतवासियों पर यदि सब कुछ निर्भर होता तो समस्त देश आज स्वयम सेवक होता। उपनिवेशों को भी २० की संख्या देख जब कि वे सहस्रों की संख्या में भेज रहे हैं, न चौंक जाना चाहिये। उन्हें यह सदा ध्यान में रखना चाहिये कि उनकी सी स्वतंत्रता आज हमें प्राप्त होती तो उनके देशवासियों की रणक्षेत्र में आवश्यकता ही न होती केवल भारतीय वीर ही युद्ध का अन्त कर देते और रणक्षेत्र में उन्हीं के लिए स्थान न रहता।

मि० बार्न्स।

पाठक मि० बार्न्स को न भूले होंगे। आपही बनारस में सहकारी जेलर हैं। आपही ने अंधेरे में हिलती डुलती काली शक्ल को सुअर समझ कर एक घसियारे की हत्या कर डाली थी। आपही को इस हत्या के लिए १५०) जुर्माना हुआ था। अब गजट में यह प्रकाशित हुआ है कि आप भी अलआईन के शिकार किये गये हैं। उससे आप बरी नहीं रहे। इसके साथ २

यदि आपसे यह भी कह दिया जाता कि जेल का हाता शिकार खेलने की जगह नहीं है तो अच्छा होता। एक बात तो और है। प्रान्तीय कौंसिल में उत्तर देते हुए मि० बार्न्स के संबन्ध में सरकार की ओर से कहा गया है कि सरकार दंड को उपयुक्त समझती है ऐसे ही मामलों में भारतवासियों को भी इतनी ही सज़ा मिली है और इस सम्बन्ध में वह कुछ करना नहीं चाहती। सर्व-साधारण की दृष्टि में और सरकार की दृष्टि में भारी भेद है।

डिफेन्स ऐक्ट।

कौंसिल में उत्तर देते हुए डिफेन्स ऐक्ट के शिकार का लेखा यों बतलाया गया है:—

प्रान्त	शिकार हुए	दंडित	मुक्त	फैसला नहीं हुआ।
बंगाल	१२३	६५	३	५५
पंजाब	३१०६	१४१	२७३८ रिहा ७० मुक्त	१६७

इस संख्या को देखने से विदित होता है कि पुलीस अपने जोश में अधिकाधिक मनुष्यों पर दोष लगाती है। उसने ३२३६ मनुष्यों को गिरफ्तार किया जिनमें से २७३८ छोड़ दिये गये। ८३ को बिलकुल साफ रिहाई मिल गई। २०६ दंडित हुए और २१२ के विरुद्ध अभी मुकदमा फैसल नहीं हुआ है। इससे यह प्रकट होता है प्रत्येक १०० मनुष्यों में जिन पर मुकदमा चलाया गया ७ दंडित हुए और ९० छोड़े गये। यह लेखा पुकार पुकार कह रहा है कि कानून का प्रयोग बड़ी सावधानी से किया जाना चाहिये।

रूस में प्रजातन्त्र की प्रधानता।

रूस में निरंकुश शासन का दौरदौरा सदा रहा है। डाईट पार्लामेंट के होते हुए भी वास्तव में प्रजा वहां उसी प्रकार स्वतन्त्र नहीं है जैसे कि इङ्गलैंड फ्रांस आदि देशों में। प्रजा पक्ष की ओर ध्यान न देने से ही कितने ही स्वतन्त्रता के प्रेमी युद्ध के आरम्भ में रूस का साथ देने के विरुद्ध थे। किन्तु अब युद्ध ने वहां पर नया अध्याय खोल दिया है। प्रजा पक्ष की धीरे धीरे वहां जीत हो रही है। वहां राष्ट्रीय मंत्रिमंडल जिसमें सभी जाति और सभी पक्ष के लोग सम्मिलित हैं संगठित हो रहा है और पाठकों को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि "कौंसिल आव इम्पायर" में ज़ार ने एक यहूदी को भी स्थान दिया है। यहूदी पददलित घृणित, हेय यहूदी को भी साम्राज्य की कौंसिल में अधिकार दिया गया है यह सभ्यता के लिए बड़ी मार्के की विजय हुई है और एक इसी काम से रूस इस युद्ध में विजय का अधिकारी अपने को सिद्ध करता है। साम्राज्य की कौंसिल में बोलते हुए बैरन रोशन ने कहा है:—

"अब गवर्नमेंट के लिये यह उपयुक्त समय है कि वह परम्परागत नीति को जो फौजी (militant) राष्ट्रीयता के लिये बड़ी प्रिय है छोड़ दे। कानून बनानेवालों का कर्तव्य है कि वे अब ऐसे बिल उपस्थित करें जिससे वे सब कानून रद्द कर दिये जायँ जिनमें यहूदियों के अधिकार कम किये गये हैं और फिनलैंड के सम्बन्ध का भी कानून रद्द किया जाय। उन विचारों की विजय के लिये जिनके लिये हम लड़ रहे हैं यह आवश्यक है कि स्वयं रूस में भी अब लोगों के साथ अन्याय या अत्याचार न हो।

आशा है अन्य यूरोपियन जातियां भी रूस से इस सम्बन्ध में शिक्षा ग्रहण करना पाप न समझेंगी।

तू भी।

मिसेज बीसेन्ट ने एक "स्वराज्य समिति" स्थापित की है। उनका विश्वास है कि इसी

समय में स्वराज्य के लिए आन्दोलन करने से सफलता प्राप्त हो सकती है। उनका कहना है कि इस युद्ध के समय में हम लोग इङ्गलैंड को दबोच कर स्वराज्य ले लेना नहीं चाहते हैं, हम इस समय सर्वसाधारण को स्वराज्य की शिक्षा मात्र देना चाहते हैं, उन्हें तैयार करना चाहते हैं जिसमें युद्ध के अन्त होने पर इङ्गलैंड और भारत मिलकर स्वराज्य की व्यवस्था कर लें। इसी उद्देश्य से मिसेज़ बीसेन्ट "युद्ध के बाद भारत" आदि विषयों पर देश में व्याख्यान दे रहीं हैं। अभी वे कलकत्ते इसी अभिप्राय से गई थीं। टाइम्स आव इंडिया को यह बहुत अखरा और भलमनसाहत और लज्जा को तिलाञ्जलि दे उसने यहां तक लिख मारा कि अफसरों को चाहिये कि वे हस्तक्षेप कर मि० बीसेन्ट का कलकत्ते में व्याख्यान न होने दें इत्यादि। इसका हमें रोना नहीं स्वार्थान्धों की लीला उन्हीं को शोभा देती है किन्तु दुःख इस पर हुआ कि एक देशी पत्र "इन्डियन मिरर" ने भी टाइम्स की हां में हां ही नहीं मिलाई वरन् वह उससे भी आगे बढ़ गया। उसने लिखा था—

"मिसेज बीसेंट भारतवर्ष में स्वराज्य" पर व्याख्यान देने के लिये कलकत्ते आरही हैं। हम चाहते हैं कि वे यहां आने का विचार छोड़ दें। कलकत्तेवालों को इस समय किसी आन्दोलन की आवश्यकता नहीं है और न कोई आन्दोलन करना इष्ट ही है। उत्तम होगा कि स्थानीय अधिकारीगण श्रीमती जी को यह बात समझा दें।"

"तू भी गिर गया और कितना गिरा" इसके सिवाय और क्या कहें?

ईश्वर कर रहा है।

एक मनुष्य का कथन है कि गधे और खच्चर के पतन की सीमा है किन्तु मनुष्य के नहीं, वह बराबर नीचे ही गिरता जाता है जब तक कि ग़ैर शक्तियां उसे ऊपर न उठावें। भारतवासियों की आज दिन यही दशा है। आज कितनेही दिनों से पातालाभिमुखी हो वे जमीन खूंदते जाते हैं किन्तु ऊपर उठने की, उन्नति करने की लालसा उनमें नहीं जागृत होती। झखमार कर ईश्वर को भी इन पर तरस आया है और अब वह इन्हें जगाने, उठाने और उन्हें मनुष्य बनाने का प्रबल कर रहा है। इसी लिए आज कितने ही वर्षों से देश में महामारी, कालरा, अकाल, सूखा, और बाढ़ का साम्राज्य जम रहा है। ईश्वर यह सब हमारी भलाई के लिए कर रहा है। देश खंड खंड में विभक्त था, एक प्रान्त के वासी दूसरे प्रान्त वालों से अलग, भाषा, रहन सहन, चाल ढाल सब कुछ अलग। ऐसी दशा में इनमें एकता नहीं हो सकती थी, राष्ट्रीयता का भाव नहीं जागृत हो सकता था। सब तरह के प्रयत्न किये गये किन्तु विशेष सफलता न प्राप्त हुई। अन्त में ईश्वर ने समस्त भारत को एक करने का बीड़ा सा उठाया है। सोते हुओं को वह घन की चोट से जगा रहा है। एक प्रान्त में अकाल पड़ता है जिसमें अन्य प्रान्त वाले सहायता पहुंचायें, एक दूसरे प्रान्त में बूड़ा आता है जिसमें अकाल पीड़ित प्रान्त वाले तथा अन्य प्रान्त वाले उस प्रान्त के निवासियों से सहानुभूति प्रगट करें, जाकर उनके बीच में काम करें, एक भाई दूसरे भाइयों को पहिचाने और उनमें भाईचारा स्थापित हो। गत ८।१० वर्षों से यह होता आरहा है। बहुत कुछ काम भी हुआ किन्तु जितना चाहिये उतना नहीं। इस समय तक यह सब हो जाना चाहिये था किन्तु अभागे भारतवासी न कर सके। संसार की जातियों के भाग्य के फैसले का दिन निकट आरहा है, शताब्दियों के लिए प्रत्येक जाति के किस्मत का निपटेरा हो जायगा किन्तु भारत अभी भी पड़ा सो रहा है, अभी भी समस्त भारत एक नहीं हुआ, समय रहा नहीं इसलिए ईश्वर ने एक साथही बंगाल

बिहार भूटान में बूड़ा, पंजाब, राजपुताना, गुजरात सिंध में अकाल और कहीं कालरा भेज दिया है। जिसमें एक प्रान्त के वासी दूसरे प्रान्तवासियों को सहायता पहुंचायें बनसे जाकर मिलें, उनमें रह कर काम करें और एकदम से समस्त भारत में भाईचारा स्थापित हो जाय। बिना समस्त देश में भाईचारा स्थापित हुए स्वराज्य का स्वप्न देखना व्यर्थ है। इसलिए भाईचारा स्थापित करने के लिए, ईश्वर की इच्छा पूरी करने के लिये समस्त देशवासियों का कर्तव्य है कि विपद में फँसे भाइयों के प्रति वे अपनी सहानुभूति का हाथ बढ़ावें। आओ पाठको! आओ! देश के नवयुवक वीर पीड़ितों की सहायता करने जाने को तैयार हैं। राजपुताने में भीषण अकाल पड़ रहा है, पंजाब, सिंध आदि में वह ज़ोर पकड़ेगा। इन जाति के भिक्षुकों की झोली भर दो, अपने भंडारे से थैलियां निकाल इन्हें दे दो, राजपुताने में कार्य करते देख संभव है विधाता यह समझलें कि भारतवासी अब पुराने नहीं रहे, अब वे भाई-बन्धु हो गये हैं। ऐसी अवस्था में संभव है पंजाब सिन्ध आदि में अकाल उतना ज़ोर न पकड़े।

इङ्गलैंड की आवाज़।

सभी बातों के संबन्ध में मतभेद हुआही करता है। युद्ध के संबन्ध में भी मतभेद हो सकता है। इङ्गलैंड में कितने कुछ पैम्फलेट कदाचित युद्ध के विरुद्ध निकले हैं। लेखकों, मुद्रकों और प्रकाशकों पर कदाचित मुकदमा चलाया गया है। डिफेन्स आव दि रलम ऐक्ट की एक धारा का लाभ उठा कर विचार गुप्त रीति से होता है जैसे भारतवर्ष में गुप्त चेम्बरों में हुआ करता है। इसी का विरोध करते हुए स्वतंत्रता प्रिय इङ्गलैंड ने लार्ड पारमूर के मुख से ये शब्द कहलवाये हैं :—

"अभी हाल में जो मुकदमे गुप्त रूप से अलग कमरों में हुए उनका सम्बन्ध जासूसी से था युद्ध की गति से नहीं किन्तु वे उन्हीं पैम्फलेटों या परचों पर लगाये गये जिनका प्रचार हो चुका था। इस प्रकार इन मुकदमों द्वारा किसी परचे को ज़ब्त करना लोकमत और स्वतंत्र भाषण को दबाना है और इस तरह से प्रजा की स्वाधीनता के अव्यर्थ रक्षोपायों को नष्ट करना है।"

धन्य इङ्गलंड! इसी स्वतंत्रता के प्रेम से तू आज सर्वोपरि हो रहा है।

गेहूं और आटे की रफ़्तनी।

१९१० से लेकर १९१५ तक में अप्रेल से लेकर अगस्त तक के पांच मासों में इस हिसाब से इतना हंडरवेट गेहूं और आटा बाहर गया है :—

वर्ष	बंगाल से	बम्बई से	सिन्ध से	समस्त भारत से
१९१०	१६,५३,५७६;	१०,२२,५९२;	४७,३१,८९४;	१,२४,०८,२५९;
१९११	२५,४७,१०२;	२२,७९,२४४;	१,१५,१०,२९७;	१,६३,३६,६९५;
१९१२	२१,७९,५३२;	२५,२६,८३८;	१,४०,२८,१६७;	१,८७,३४,५७१;
१९१३	१५,२७,७६३;	३८,११,०७३;	१,३८,५१,२४३;	१,९१,९१,११३;
१९१४	६२,२१३;	५०,५९,५७;	८५,३२,८९९;	९,१०,१२४;
१९१५	१०,६१,३५५;	१६,५८,१७२;	१,०७,२४,१०९;	१,३४,४१,८१६;

मार्के की बात यह है कि १९१५ के सरकारी प्रबन्ध की रफ़्तनी १९११ से १९१३ तक के अपतिबन्ध रफ़्तनी से कहीं कम है, फसल भी अच्छी हुई है किन्तु इतने पर भी महँगी का ठिकाना नहीं।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग, में बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित हुई।

सुखनिद्रिया ।

U. RAY & SONS, CALCUTTA.

भाग १०] नवम्बर सन् १९१५–कार्तिक [संख्या ५

आत्मत्यागियों का स्वर्गारोहण ।

[लेखक–श्रीयुत तुकाराम ।]

गान ।

(१)

परम पिता तेरे चरणों में हैं हम आते ।
शीघ्र मिलें शुभ दर्श तुम्हारे यही मनाते ॥
रोम रोम में सांसारिकता समा रही जो ।
उसे साथ मानवशरीर के विदा कराते ॥

(२)

इस संसार-सिंधु से है जो एक तारिणी ।
उसी शांति-नौका में हैं हम बैठे जाते ॥

(३)

अब तो मृत्यु अवश्य हमें तुमसे मिलायगी ।
इस आशा से हैं हम फूले नहीं समाते ॥

(४)

प्रभो ! हमें अब निज चरणों की शरण दीजिये ।
तोड़ आरहे हैं भव से हम सारे नाते ॥

(५)

दयासिंधु ! हे जगत्पिता ! सुख-दुःख-विधाता !
आते हैं हम सभी तुम्हारा ही गुण गाते ॥

क्यों रोते हो ?

[लेखक—रोनेवाला ।]

"कद्र क्या जाने वह ग्यामत की
जो न हो जिसके पास ।
रोने वाले ही को मालूम है
आँसू की मिठास ॥"

"रोते क्यों हो ?" कोई कहता है सर में दर्द है, कोई कहता है कालिक पेन उठा है, कोई कहता है भाई ने मारा है, कोई कहता है विधि का मारा हूं, कोई कहता है किस्मत में लिखा है, कोई कहता है भाग्य ही ऐसा है, कोई कहता है "कुतः किल, स्वयम् अक्षि आकुली-कृत्य अभ्रकारणं पृच्छसि, स्वयम् आंख में अँगुली कर रोने का कारण क्यों पूँछते हो ?" ये सब विकाश की सीढ़ियों पर चढ़नेवालों में नौकि खिये हैं। जो बहुत पहुंचे हुए हैं वे कहते हैं रोना गाना वृथा है, दुःख सुख कोई चीज नहीं और बुद्धिमान को दुःख सुख न अनुभव करना चाहिये। उपाय बतानेवाले कहते हैं "दुःखी दुःखा-धिकान् पश्येत् सुखी पश्येत सुखाधिकान्" दुःखी अपने से अधिक दुःखी को देखे, सुखी अपने से अधिक सुखी को देखे इस तरह से दुःखी को दुःख और सुखी को सुख न पागल कर सकेगा। ये सब भीरु हैं, संसार से त्रस्त, संसार की कठिनाइयों से भागनेवाले, इसके दुःखों को न सह सकनेवाले ये भगेड़ू और कापुरुष हैं। ये सच्चे रोनेवाले नहीं। सच्चे रोनेवालों का कहना तो यह है कि रोते हैं क्योंकि रोने में मज़ा है, यही सत्य है, यही सार्थक है और संसार में इससे बढ़कर किसी वस्तु में मज़ा नहीं। क्योंकि रोने के बाद शरीर हलका हो जाता है, जितना देर रोते हैं, संसार से नाता टूट जाता है, हृदय की तंत्री दूसरे हृदय की तंत्री की बेतरी से जुड़ जाती है, विद्युत्-धारा यहां से पास होकर वहां पहुंचती है, चाहे वह पार्थिव टेलीफोन की भांति दूसरे हृदय से कुछ शब्द न भी कहती हो किन्तु रोनेवाले हृदय से कुछ कह कर वह उसे शान्त्वना देती ही है। रोनेवाले को संसार में एक Harmony सादृश्य, समता और एकता दिखाई देती है, समस्त जीवधारियों की आत्माएँ उसमें लीन हो जाती हैं, उसकी दृष्टि में उनका अलग अस्तित्व नहीं रह जाता, वह उन्हें अपनी समझता है, उनके प्रति प्रगाढ़ सहानुभूति उसके हृदय में उमड़ आती है और उसकी छोटी सी आत्मा एक विशाल रूप धारण कर लेती है। स्वार्थ और क्षुद्रहृदयता उससे मुख मोड़ लेती हैं। स्थूल जगत से वह ऊपर उठ जाता है और वह उस आनन्द को अनुभव करता है जो हँसनेवाले कभी स्वप्न में भी नहीं अनुभव कर सकते। इसीसे रोते हैं, क्योंकि ऐसा मज़ा किसी में दिखाई नहीं देता। इसके सिवा रोते इसलिए हैं क्योंकि यही स्वाधीनता है, इसमें आत्मनिर्भरता है, दूसरों की सहायता की ज़रूरत नहीं, दूसरों की ज़रूरत नहीं, दूसरों के सहयोग की आवश्यकता नहीं। सुख के लिए साथी होने चाहियें तभी सुख अनुभव कर सकते हैं किन्तु रोने में अकेले ही मस्त हैं। फिर कहो इतने गुणों से सम्पन्न ऐसी अनमोल, अमूल्य वस्तु को क्यों न ग्रहण करें ?

सुननेवाले, पढ़नेवाले, हँसेंगे, कहते होंगे "क्या पागल है" हँसना छोड़कर इसे रोना भाया है, ठीक भी है जिसको जिस वस्तु की कद्र नहीं मालूम वह इसके सिवा कहीं क्या सकता है ? किन्तु जो कभी रोये हैं, जिनके हृदय में कभी ऐसे उच्च, पवित्र, संसार से परे विचार उठे हैं जिन्हें प्रगट कर सकने में चमड़े की ज़बान असमर्थ हुई है, जिन्हें पापी शरीर

ने धारण न कर सकने के कारण अश्रुओं के द्वारा उन आंखों से, जिनके कारण उन भावों को हृदय में स्थान मिला, निकाल देने का प्रयत्न किया है वे ही जानते हैं कि रोने में कैसी मिठास है, उसमें कितना अमृतमय सुख है और वह कैसे सुख का देनेवाला है।

लोग कहेंगे वही पागल की सी बात, वही निस्सार भावुकता, हृदयहीनता, नहीं नहीं, बुद्धि-हीनता, विवेकशून्यता की बात। आओ पाठक आओ, ऐसे न मानोगे। कुछ समय पागल का साथ देकर देखो, वह कहता क्या है? रोओ तनिक रोओ। नहीं रोओगे ? क्यों रोओगे ? तुम रोना जानते ही नहीं तुम रोओगे क्या ? अच्छा कभी किसी को रोते देखा है ? नहीं देखा, क्योंकि काफिरों, निन्दकों के सामने कभी कोई रोता कब है ? तब फिर तुम्हें कैसे समझावें कि कोई क्यों रोता है, कैसे रोता है और उसे क्या मज़ा मिलता है ? इसे समझने के लिए तुम्हें रोना होगा, यदि तुम नहीं रो सकते तो फिर बुद्धि पर पत्थर रख लो और व्यर्थ में समझने का प्रयत्न न करो, तुम नहीं समझ सकोगे। यदि वास्तव में समझना है तो रोओ, रोने की पाठशाला में पहिले झाड़ू देना सीखो, टाट बिछाना सीखो, जो लोग रोने आते हैं उनकी पदरज को माथे में लगाओ, उनके चरणों पर सर नवाओ। जिस समय तुम्हारी उनमें अक्ति हो जायगी तुम रोने का मर्म समझने लगोगे। तुम रोना सीखने के अधिकारी हो जाओगे। इतना स्वीकार हो तो आओ हम तुम्हें घुमा फिरा देंगे, तुम्हें पवित्र आत्माओं का दर्शन करा देंगे, संसार की सत्यता तुम्हें दिखा देंगे, यदि तुम्हारे आँख होंगी, नहीं नहीं तुम्हारे शरीर में आँख होते हुए भी यदि वह तुम्हारी न होगी, उसपर यदि तुम्हारा अधिकार न होगा, यदि संसार में भिन्नता, भेद छोड़कर उसे एकता ही दिखाई देती होगी, यदि वह सर्वत्र एकही वस्तु देखती होगी और उसके सिवाय उसे कहीं भी कुछ और नहीं दिखाई देता होगा तब तुम सब देख सकोगे नहीं तो सब कुछ देखते हुए भी तुम कुछ नहीं देख पाओगे।

आओ आओ, चले आओ, पागल कह चुके हो उसीके नाते आओ, अपने शब्दों की हो लाज रख लो क्या हानि है ? पागल के साथ रहकर, उसकी बातों को सुनकर उन्हें समझने के लिए बिना पागल बने काम नहीं चलता। यदि पागल बनने से डरते हो, यदि वह नाम तुम्हें प्यारा नहीं, यदि तुम उस पर न्योछावर नहीं, यदि पागल बनने के लिए तुम अपने को निसार नहीं कर सकते तो लौट जाओ अभी समय है, किन्तु यदि दुनिया देखना है, उसका तथ्य अनुभव करना है तो कोई हानि नहीं बढ़े आओ।

"शमा का इसलिए गुलगीर ने काटी है ज़बाँ।
कह न दे राज़ मोहब्बत कहीं परवाने से॥"

देखो ! देखो ! मरुमय जंगल है, जलती हुई बालू के कण—ज्योतिपूर्ण कण—रात्रि के समय गगनमंडल में छिटके हुए तारक राशि की भांति शोभायमान हैं। ये शीतलता नहीं फैलाते, चंदन का काम न देकर ये जलते हुए लाल २ अङ्गारों का काम देते हैं। आकाश साफ है, बादल की अटखेली करती हुई अठलाती टुकड़ियों का नामोनिशान नहीं है। भगवन् मरीचिमालिन् प्रचंड ताप से तप रहे हैं। निरंकुश शासकों को मालूम पड़ता है इस समय पराक्रत करने का इन्होंने बीड़ाउठा लिया है। पशुओं का तो कहना ही क्या पक्षी भी अपने २ घोंसलों से बाहर निहारने का साहस नहीं कर रहे हैं। चारों ओर अग्नि बरस रही है। हवा का नाम नहीं है। इसी समय पर दो दिशाओं से एक एक पथिक चले आ रहे हैं। मार्ग में इनकी भेंट हो गई। एक दूसरे को देख स्तब्ध से रह गये। जलती हुई बालू में दोनों वहीं बैठ गये। किसी के मुंह से कोई शब्द नहीं निकला, किसी ने यह भी न

पूंछा कहां से आते हो, कहां को जाओगे। बहुत दिनों बाद मिलने पर कोई इतने दिनों की खबर भी नहीं पूछता। दोनों एक दूसरे की ओर निहारते और आखों से मुक्ताओं का सलिल निकालते जलती हुई बालू को ठंढी सी करते बैठे हैं। आंखें चार हो कर पथरा सी गई हैं और गतिशून्य हैं। ये बराबर रो रहे हैं। अश्रुधारा इनकी बन्द ही नहीं होती न ये आपस में कुछ बोलते ही हैं। आओ पाठक ! इनसे चल कर पूँछें ये क्यों रोते हैं। ये रोने का मर्म बतला सकेंगे किन्तु नहीं नहीं इन्हें स्वर्ग से भूमि पर उतारने से क्या लाभ ? भूमि पर आते ही ये इस जलती हुई बालू और सूर्य के प्रचंड ताप में नहीं बैठ सकेंगे, मालूम नहीं इन्हें कब क्या कष्ट अनुभव होने लगें, इन्हें छेड़ना उचित नहीं, इन्हें रोने दीजिये, इन्हें रोने में ही स्वर्ग है। इनसे यह पूछना कि रोते क्यों हो या रोना छोड़ो इन पर जुल्म करना है, इन्हें जलती हुई अग्नि में जलाना है। आइये इन पर दया कर इन्हें छोड़ दीजिये।

आइये अब आपको दूसरे स्थान पर ले चलें। इधर देखिये यह वृन्दावन की पवित्र भूमि है। कलकलवाहिनी पवित्रसलिला यमतापनाशिनी श्यामाश्यामसलिला यमुना बह रही है। हरे हरे वृक्ष देखिये फल फूलों से लदे झूम रहे हैं। ये लताकुँज हैं। इधर उधर पायल में कांकरी गड़ने के शब्द सुनाई दे रहे हैं। देखिये वह वृक्षों की ओट में पड़ा हुआ कौन क्यों रो रहा है। मालूम होता है कोई गा रहा है। कैसा कोकिल कंठ है, एक एक शब्द हृदयतंत्री को जर्जर किये डाल रहे हैं। ठीकही है दुःख-अतीव-असह्य दुःख का रोना ही आज कल सभ्य संसार में गाने के नाम से प्रसिद्ध है। इस रोने में भी कैसी शक्ति है, अपने ही ओर खींचे ले रहा है। आइये तनिक बैठ कर सुन क्या रोता है। ध्यान लगाइये देखिये "बागेश्वरी" की धुन है और शब्द ये हैं :—

जा थल कीन्हें बिहार अनेकन
ता थल कांकरि बैठि चुन्यों करैं।
जा रसना से करी बहु बातन
ता रसना ते चरित्र गुन्यों करैं॥
आलम जौन सेा कुँजन में
रस केलि करी तहँ शीश धुन्या करैं।
आखिन में जेा सदा बसते।
तिनकी अब कान किहानी सुन्यों करैं॥

* * * *

का कहिये कोऊ पीर को नाहिन
ताते हिये की बतैयतु नाहिन।
भांगन भेंट भई जेा कहूं
तेा घरीक बिलोकि अघैयतु नाहिन॥
ठाकुर वा घर चेाचन्द को डर
याते घरी २ जैयतु नाहिन।
भेंटन कैसे के पैये उन्हें।
जिन्हें आखिन देखन पैयतु नाहिन॥

* * * *

जेई जेई सुखद दुःखद अब तेई तेई
कपि मंडन बिछुरत जदुपत्ती।
तरु भये तीर व्याल भई बेहल
जम भई जमुन कुसुम भो कत्ती॥
शीतल मन्द सुगन्ध लगत जेई
तेई यम अनिल अनल सम तत्ती।
जेई बन नित बेहरत गोपाल सङ्ग
तेई बन अब बेहरन लगी छत्ती॥

कहिये पाठक इस पगले से पूछियेगा कि यह क्यों रोता है। यह रोना बन्द क्यों नहीं करता ? क्या करियेगा, यह सत्यमेव पगला है। देखिये न यमुना बह रही है। ठंढी हवा चल रही है। चारों ओर हरियाली का साम्राज्य है और यह स्वयम् वृक्षों की ओट साये में लता कुँजों में पड़ा है किन्तु तरु इसे तीर के समान लग रहे हैं। यमतापहारिणी यमुना इसे यम के समान दिखाई देती हैं। शीतल मन्द सुगन्ध-

मन्द समीर इसे यम अनिल अनल के समान तप्ती लगती है। यह नितान्त पागल है जाने दीजिये। इसे क्षमा करिये किन्तु इतना मान जाइये कि इसका रोना आप जो सुखभवन में बैठे गाना सुना करते हैं उससे कहीं हृदयग्राही है, अच्छा है। आइये, अब देर न करिये अभी बहुत चलना है।

वह देखिये गंगोत्री का पहाड़ है। कल-कलनिनादिनी गंगा बह रही है। यहां शान्ति सुखमा बरस रही है। श्वेत हंसों की पंक्ति मानसरोवर की रचना कर रही है। एक योगी सन्ध्या के समय तट पर बैठा हुआ ध्यान में मग्न है। उसे तन बदन की सुध नहीं है। देखिये उसने आंख खोला है और रो रहा है। कैसे गंभीर शब्द हैं सुनिये रोते २ वह कह रहा है :—

पंचत्वं तनुरेतु भूतनिवहाः स्वांशे विशन्तु ध्रुवम्।
धातारं प्रणिपत्य नम्रशिरसा याचेहमेकं वरम्॥
तद्वापीषु पयः तदीय मुकुरे ज्योतिस्तदीयांगणे।
व्योम्न्यव्योम तदीयवर्त्मसु धारा तत्सालवृत्तेनिलः॥

समझे, काहे को समझोगे ? देववाणी से मुख मोड़ने ही से तो इस हीन दशा को पचहुंगये हो। अपनी सभ्यता से गिर गये। अपने आदर्शों से गिर गये। मनुष्य से पशु हो गये हो। खैर जाने दो हम समझाये देते हैं देखो वह रोकर क्या कहता है। वह ईश्वर की वन्दना करता है। वर मांगता है किन्तु कहता है हम कोई विशेष वर भी नहीं माँगते। हम ऐसी वस्तु नहीं मांगते जिसके लिए तुमको हमारे साथ कोई खास रियायत करनी पड़े। हम पर कोई इनायत करनी पड़े। हम मांगते हैं वही जो तुम सबको देते हो, जो अमिट है और जिससे कोई बच भी नहीं सकता किन्तु इतने पर भी उसमें कुछ विशेषता है उसी के लिए नम्र शिर को नवा कर तुमसे एक भिक्षा माँगते हैं। वह कहता है जिसने शरीर धारण किया है वह मरेगा। शरीर, पांच तत्वों का बना हुआ शरीर, पृथ्वी, जल, वायु, तेज, आकाश पांचों तत्वों में मिलेगा। शरीर के पांचों तत्व अपने २ तत्वों में मिल जायँगे यह ध्रुव है। ऐसी अवस्था में हम चाहते हैं कि हमारे शरीर का जल तत्व उसकी वापी के, जिसमें वह स्नान करती है, जल में मिल जाय। हमारा तेज-तत्व उसके दर्पण, आइने, के तेज-तत्व में मिल जाय। हमारे शरीर का आकाश-तत्व उसके आंगन के, जहां वह बैठा करती है ऊपर के आकाश में मिल जाय। हमारा पृथ्वी-तत्व उसी पृथ्वी में मिल जाय जिस पर वह चहलकदमी करती है और हमारे शरीर का वायु-तत्व उसके हाथ के उस पंखे के जिसे वह झला करती है वायु में मिल जाय।

कहिये पाठक, एक पागल, एक महा पागल, एक वज्र पागल, इसे किस नाम से पुकारियेगा किन्तु सच कहिये इसके रोने में मज़ा है कि नहीं ? अच्छा मज़ा नहीं आया तो न सही इसके रोने में मिठास है कि नहीं। यह भी जाने दो यही बतलाओ कि हमने में भी कभी ऐसा उच्च, पवित्र, त्याग आदर्शपूर्ण भाव देखा है या सुना है ? क्यों मानोगे ? तुमने अभी जाना ही क्या है ? तुमतो खेल में पड़े हो। दुनिया को तुमने खेलने का स्थान समझ लिया है। ठीक भी है। यह दुनिया की झंझटों से, उसकी कठिनाइयों से तुमको बचाये रहता है। उसका अनुभव तुम्हें नहीं होने देता। गंभीर भाव तुम्हारे हृदय में नहीं आने देता। गंभीरता से Seriously तुम्हें कोई चीज़ें नहीं देखने देता। पृष्ठस्थ ज़ाहिरी बाहिक Superficial दृष्टिही से तुम्हें सब कुछ दिखाना है इसी से तुम "रोने" के मज़े को, उसकी गंभीरता को अब तक नहीं समझ सके हो। खैर न समझो, तुम्हें समझा कर लाभ ही क्या। जब तक नहीं समझते तभी अच्छा, हमने समझ कर क्या किया कि

तुम्हें समझने को कहें किन्तु हम तुम्हें छोड़ेंगे नहीं आओ तनिक इधर आओ उस तरफ भी चले चलो। बस वहां से तुम्हारा पागल तुम्हारा साथ छोड़ देगा और फिर मनमाना तुम जहां चाहना चले जाना। आओ आओ; इतना कष्ट और स्वीकार करो।

दिन कटा फरियाद में और रात ज़ारी* में कटी।
उम्र कटने में कटी पर क्याही ख्वारी में कटी॥

देखो यह क्या है? मैदान है, सैकड़ों झोंपड़े पड़े हैं। सहस्रों मनुष्य कँगलों के रूप में दिखाई देते हैं। कोई भूख से तड़प रहा है, किसी के पास पानी पीने को कोई बर्तन नहीं है, कोई प्लेग का शिकार है। किसी को कालरा ने धर धमका है। इनके बदन पर चीथड़े भी नहीं दिखाई देते। सब बड़े दुःख में निमग्न हैं। इनसे दूर पर एक तेजवान सुन्दर दीप्त पुरुष बैठा है। देखिये अविरल आंसू की धारा उसके नेत्रों से बह रही है। देखिये उसी के पास से एक मनुष्य चला आ रहा है। इस दृश्य का रहस्य इससे मालूम होगा। वह कहता है कि तेजवान मनुष्य समय का बड़ा धनी मनुष्य है। गरीबों का दुःख दूर करने के लिए इसने अपना सब कुछ उन्हें दे दिया, अब उसके पास कुछ नहीं बचा है। हमारे कहने पर कि इसीलिए शायद वह रो रहा है आगन्तुक मनुष्य कहता है "क्या बकते हो, वह रो रहा है कि अब उसके पास और कुछ नहीं बचा है जिससे अपने दुःखी भाइयों को वह सहायता पहुंचाये, इसे अपने लिए धन की कमी नहीं वरन बाँटने के लिए धन नहीं है इसलिए वह रो रहा है। आओ, पाठक जाने दो, इसके पास चल कर क्या करोगे? इसकी मूर्खता बहुत बढ़ी हुई है। इसके साथ सहानुभूति मत दिखाना। भला इसे रोने में क्या मज़ा मिलता है, यह क्यों रोता है? धनी होकर भी हँसना छोड़ यह रोता है कितना बड़ा मूर्ख है। मगर क्यों पाठक हँसने से इसे रोना आया है इसमें कुछ तथ्य है कि नहीं?

आइये, जाने दीजिये। बरपची करने से क्या लाभ? उधर देखिये। चलिये अब पहाड़ी पर चढ़ चलें। वहीं से पागल आपका साथ छोड़ेगा। देखिये पहाड़ी पर बैठा हुआ मनुष्य क्यों रो रहा है? आइये धीरे धीरे चुपके से इसके पीछे चले चलें। वहीं से इसके रोने का कारण कदाचित मालूम हो तो मालूम हो। अच्छा यह देखिये, यहां से एक तमाशा भी दिखाई देता है। वह देखिये एक व्याध ने जाल लगा रक्खा है। वाह क्या फंदा उसने दे रक्खा है, ज्यों ज्यों पक्षी चारे की लालच से चारा चुगते आगे बढ़ते हैं, जाल का फंदा सिकुड़ता जाता है। थोड़ी देर में ये सब पक्षी व्याध के शिकार हो जायँगे। देखिये पहाड़ी पर बैठा हुआ मनुष्य भी हिलता है। आहा कैसी दुःखभरी आवाज से यह रोता है। जंगल इसके रोने से प्रतिध्वनित हो गया। रोते रोते यह कहता है :—

"अपनी भिनकारों* से हलका† कल रहे हैं दाम‡ का
ताबरों पर सहर§ है सैयाद के एकबाल का॥"

चलिये इस मूर्ख का भी पीछा छोड़िये। काज़ी जी क्यों बावले शहर के अन्देशे से। पूछिये भला तू क्यों रोता है, तुझे क्या कष्ट है। दुनिया जहन्नम में जाती है, जाने दे, तुझे अपने ऐशो-आराम को छोड़ने से मतलब? मगर बेवकूफ हो तो ठहरा, व्यर्थ इससे कौन बकवाद करे। आइये, चलिये, इससे उलझने में कुछ नहीं रक्खा है। आइये उस पहाड़ी पर चलिये। देखिये क्या है? कीचड़ भरी गढ़ैया और उसमें एक हंस। इतनाही नहीं थोड़ी दूर पर एक तेजोमय पुरुषराशि मनुष्य भी बैठा है। किन्तु यह क्या? यह भी रो रहा है, कुछ कुछ कहता भी जाता है। कहता है :—

* रोने।

* चोचें। † फन्दे का घेरा। ‡ जाल § जादू।

पुरा सरिस मानसे विकचसार सालिस्खलत्।
पराग सुरभी कृते पयसि यस्यगान्तं वयः॥
स पल्वल जले मिलदनेक भेकाकुले।
मराल कुल नायकः कथय रे कथम् वर्तताम्॥

वाह ! क्या कहना है यह रोनेवालों में बजूमूर्ख नहीं नहीं उनका सरताज मिला। आपही कहिये नहीं तो और क्या ? यह हंस के नाम रोता है । कहता है "मराल-कुल-नायक हंसों के राजा, उनमें श्रेष्ठ प्राचीन समय में तुम बड़े सुख में थे। मानसरोवर में रहकर भ्रमरों से विचलित पुष्परेणु से सुगन्धयुक्त जल में तुम विचरते थे, इसी सुख में तुम्हारी समस्त जिन्दगी बीती। अब इस कीचड़ में पड़े, जहां मेढ़क की टर टर से कान फूटे जाते हैं कैसे तुम जीते हो ? वाह क्या प्रश्न है, और इसके लिए रोना भी कैसा शोभायुक्त है ? किन्तु क्या करियेगा ? रोनेवाले पागल होते हैं। उनका विश्वास ही बेहूदा है। उनका कहना है जो रोना नहीं जानता, पागल होना नहीं जानता, अपने को निसार करना नहीं जानता वह दुनिया में कुछ कर ही नहीं सकता। कहिये अब इनका क्या करियेगा ? इनके लिए आपके पास कौनसी औषधि है ? पागलों को रोने दीजिये, इतिहास में जो बड़े बड़े मनुष्यों के नाम मिलते हैं ये सब पागल थे, रोनेवाले थे, उनके नामों पर हड़-ताल लगाइये, भूल कर रोना न सीखिये। हँसिये खूब हँसिये। दुनिया की झंझटों से दूर रहिये। आप अपने रास्ते चलिये, हमें रोने दीजिये, हमें इसी में मज़ा है।

महमूद पुत्र मासूद ।

[लेखक--पं० कृष्णविहरी मिश्र ।]

महमूद गज़नी का विशेष परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। नियमित रीति से आक्रमणों द्वारा भारत को भयभीत करने-वालों में सबसे आगे उसी को स्थान मिलता है। भारत के बड़े २ नगरों को लूट कर मूर्तियों को तोड़ कर उसने एक प्रकार से खलभली मचा रक्खी थी । सोमनाथ सरीखे जगत्-विख्यात शिवलिंग को नष्ट भ्रष्ट करके उसने मुसलमान धर्मावलम्बियों की वाहवाही खूब ही लूटी परन्तु हिन्दू तो इन्हें काल से भी विशेष विकराल समझने लगे थे । भारत में उसके अनेकानेक आक्रमण होते रहे और पश्चिमोत्तर प्रदेशों को उसने अच्छा तरह अपने शासनाधीन किया । भारतीय मुसल-मान साम्राज्य की राजधानी उसने लाहोर में रक्खी। महमूद ने अली अरीयारूक नामक एक सुप्रसिद्ध व्यक्ति को यहां का गवर्नर नियत किया। यह बड़ी योग्यता से देश का शासन करता रहा । देशवासियों के रंग ढंग से विशेष परिचित हो जाने के कारण इसका प्रभाव बेहद बढ़ गया। इसी समय १०३० में महमूद की मृत्यु होगई । उस समय अफ़ग़ानिस्तान में एक प्रकार से विप्लव उपस्थित हुआ। ऐसे अच्छे अवसर को अली अरीयारूक सदृश नीतिज्ञ भला हाथ से क्यों जाने देने लगा था। उसने अपने सैन्यबल को खूब दृढ़ किया और स्वतंत्र होने के लिए प्राणपण से चेष्टा करने लगा था। महमूद के मोहम्मद और मासूद नामक दो पुत्र थे। मोहम्मद पिता को विशेष प्यारा था । परन्तु प्रजा का अनुराग मासूद पर था इस कारण पिता की मृत्यु के पश्चात् बेचारा मोहम्मद थोड़े

ही दिन राजसुख भोग सका। मासूद ने प्रजा-बल की सहायता से शीघ्र ही मोहम्मद को राज्यच्युत किया, नेत्रविहीन करके उसे कारागार में अवरुद्ध करा दिया और तब सिंहासनासीन हुआ। मासूद को पिता के समय के—हसनक मन्त्री से द्वेष होगया इस कारण उसको बड़ी दुर्दशा से मरवा डाला। अब इसने ख़ाजा अहमदहसन मैमन्दी को अपना मन्त्री नियुक्त किया। सौभाग्यवश ये मन्त्री महाशय योग्य पुरुष निकले इस कारण मासूद अनेकानेक आपत्तियों से बचता रहा। अली अरीयारूक के बढ़ते प्रभाव को रोकने की अत्यन्त आवश्यकता समझी गई परन्तु खुल्लमखुल्ला युद्ध में उसको जीत लेना सहज न था इस कारण मैमन्दी ने दूसरी ही नीति का अवलम्बन लिया। अलीअरी-यारूक मदिरा बहुत पीता था। बस इसीके द्वारा उसका सर्वनाश हुआ। एक दिन जब वह दर्बार में आया तो बादशाह ने उसे बहुत सी मदिरा भेंट की। जोश में आकर वह उसे पी गया। षड्-यन्त्र तो पहिले ही से चल रहा था वह बेचारा वहीं मार डाला गया। इस प्रकार नीतिकुशल खलाइकार की सहायता से एक दुर्दमनीय शासक से छुट्टी मिली। अब यह सोचा गया कि भारतवर्ष में यारूक का स्थानापन्न कौन हो। बहुत वादानुवाद के पश्चात् यह निश्चित हुआ कि मुल्की प्रबन्ध तथा फौजी प्रबन्ध दोनों के हेतु अलग अलग कार्यकर्ता होने ही से उस देश की वास्तविक अधीनता मासूद के हाथ में रह सकेगी। इस कारण दो व्यक्ति भिन्न भिन्न कार्यों के हेतु अलग अलग नियत हुए। पिता महमूद के कोषाध्यक्ष अहमद नियालतगीन को सेनापति का पद मिला और काज़ी शीराज़ ने न्यायाधीश पदवी को अलंकृत किया। जिस समय ये दोनों व्यक्ति भारत को चलने लगे तो इन्हें नाना भांति के उपदेश दिये गये। नियालतगीन को सख़्त ताकीद की गई कि वह काज़ी शीराज़ के कामों में बिल्कुल दख़ल न दे। इसके अतिरिक्त मद्य-पान तथा पोलो खेल में सम्मिलित होने की ख़ास तौर से मनाही की गई थी। जान पड़ता है कि अरीयारूक को दुर्दशा का स्मरण दिलाने ही के हेतु मद्यपान निषेध की आज्ञा का उल्लेख हुआ। पोलो न खेलने का आदेश यह दर्शित करता है कि उस समय भारतवर्ष में पोलो का ख़ासा प्रचार था और सैनिकगण अपना बहुत समय इस खेल में नष्ट कर देते थे। बहुत लोगों का मत है कि पोलो खेल तो यूरोपवालों का है उस समय उसका भारतवर्ष में होना कैसे सम्भव है। ऐसे लोगों को चाहिये कि वे इति-हास-ग्रन्थों को देखें तो उन्हें स्पष्ट विदित हो जायगा कि यह खेल भारतीय है। कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु इसी खेल के कारण घोड़े से गिर कर हुई। अकबर को भी यह खेल अत्यन्त ही प्रिय था यहां तक कि पलाश लकड़ी की गेंद बना कर और उनको जलाकर वे रात को भी इस खेल का अभ्यास किया करते थे। कर्नल मैलेसन ने अकबर का जो जीवनचरित्र लिखा है उसके १०२ पृष्ठ में यह बात स्पष्ट रूप से लिखी है। इसके अतिरिक्त अकबरी हिन्दी के महाकवि जिन्हें कि हिन्दी नवरत्नों में परिगणित होने का सौभाग्य प्राप्त है उन्होंने भी रामचन्द्रिका में रामचन्द्र द्वारा यह खेल खिलवाया है। केशवदास जी ने बड़े बड़े राज दरबार देखे थे अतः वे उसकाल में प्रचलित राजाओं की आमोद-प्रमोद की सामग्री से भलीभांति परिचित थे। ऐसी दशा में उनका यह वर्णन यह सूचित करता है कि बड़े २ राजाओं के आमोद-प्रमोद की सामग्री का पोलो एक प्रधान अंग था। इस खेल का उस समय में प्रचलित नाम चौगान था—स्थलसंकोच के कारण हम केशवकृत चौगान वर्णन का कुछ ही अंश यहां उद्धृत करते हैं :—

यहि विधि राम गये चोगान।
सावकाश सब भूमि समान॥

शोभित एक कोस परिमान।
रच्यो रुचिर तापर चौगान॥

एक कोद रघुनाथ उदार।
भरत दूसरे कोद विचार॥
सोहत हाथे लीन्हें छुरी।
कारी पीरी लाली हरी॥
देखन लगे सबै जग जाल।
डारि दियो भुव गोला हाल॥
गोला जाइ जहां जहँ जबै।
होत तहां तितही तित तबै॥
गोला जाके आगे जाय।
सोई ताहि चलै अपनाय॥
वाके मन अति आनँद होय।
कहो सुनो नाइ मानै कोय॥
घरी २ पर ठाकुर सबै।
बदलत वासन वाहन तबै॥

निदान इन सब उपदेशों के होते भी नियाल्तगीन लाहौर में आकर सब कुछ भूल गया और स्वतंत्र होने की चेष्टा करने लगा। थोड़ेही समय में उसने महतीशक्ति सम्पादित की। अब मासूद को भी भय उत्पन्न हुआ और उसने भिन्न भिन्न प्रभावशाली शासकों से इनको दंड देने को कहा परन्तु किसी की हिम्मत न पड़ी और नियाल्तगीन की शक्ति बढ़ती ही गई यहां तक कि भारतीय यवनराज्य एक प्रकार से स्वतंत्र ही हो गया। संभवतः नियाल्तगीन की शक्ति का ह्रास न होता परन्तु भावीवश इसे उस समय दूसरी ही बात सूझी। कहां तो राजकोप के कारण वैसेही सब विरुद्ध हो रहे थे कहां इसे उस समय भारतवर्ष में यवनधर्म के महत्व दिखलाने की आवश्यकता समझ पड़ी। मुसलमान लोग प्रायः अन्यधर्म का अनुचित अपमान करके ही अपने धर्मानुराग का स्वांग दिखलाते हैं। हमारे नियाल्तगीन को भी यही धुन सवार हुई। बस कुछ चुने २ घुड़सवार लेकर हिन्दुओं की प्राणों से भी प्यारी काशी-नगरी पर जा टूटा। काशीवालियों को भला यह खबर कहां थी कि नियाल्तगीन अपने अगाध धर्मप्रेम को दर्शित करते हुए पहली ठेस उन्हीं लोगों को देगा। अस्तु, नियाल्तगीन को कुछ दूकानें लूटने का अच्छा मौका मिल गया। उधर हिन्दू लोग भी अब वास्तविक मर्म को समझ गये अतएव उनकी एक विशाल सेना उससे युद्ध करने तथा उसकी गति रोकने के लिए चली। पाँच छै सौ घुड़सवारों से नियाल्तगीन भला इस सेना का सामना कैसे करता तुरन्तही वह काशी छोड़ चलता बना पुण्य-क्षेत्र काशी पर यह मुसलमानों का प्रथम आक्रमण था। अब जैसे २ नियाल्तगीन का प्रभाव बढ़ता गया वैसे २ वह स्वतंत्र होने की भी चेष्टा करता गया। अब वह दासों के क्रय विक्रय का कार्य भी करने लगा। गज़नी से भागे हुए दोषी पुरुषों को इसकी बदौलत लाहौर शरण-स्थान बन गया। सुना जाता है कि उसने यह भी प्रसिद्ध कर दिया कि मैं मासूद का पुत्र हूं। इन सब समाचारों को सुन कर मासूद का मन इससे फिर गया। जब नियाल्तगीन को यह हाल मिला तो यह भी खुलमखुल्ला राजविद्रोही बन भारतीय राज्यप्रदेशों का स्वतंत्र शासक बन बैठा। उधर अफ़ग़ानिस्तान में सेलजुक लोगों ने सर उठाया। मासूद का विचार भारत आकर नियाल्तगीन को दण्ड देने का था परन्तु मंत्रियों की राय इसके विरुद्ध थी। अतः पहिले से सलजुकों का दमन करना ही स्थिर रक्खा गया निदान महाराज 'जयसेन' उसके विरुद्ध भेजे गये और थोड़े ही समय में उन्होंने उसकी शक्ति को छिन्न भिन्न कर डाला। उधर भारत में नियाल्तगीन के बढ़ने प्रभाव को रोकनेवाला कोई नहीं दिखलाई पड़ता था। जिससे कहा जाता था वही सम्मुख जाने से डरता था। ऐसे समय एक हिन्दू को इसके दमन करने की हिम्मत हुई। इसका नाम तिलक था। यह जाति का

नाई था परन्तु सेनासञ्चालन आदि क्रियाओं में बड़ा ही कुशल था। जात्यभिमान भी इस व्यक्ति में खूब था। प्रकृति का बड़ा ही उदार था। हिन्दी तथा फारसी में कविता भी करता था। इसकी हिन्दी कविता कैसी होती थी इसका कुछ ठीक पता नहीं है सम्भव है कि हिन्दी कवियों के जीवनचरित्रादिविषयक पुस्तकों में अथवा "हिन्दी के इतिहास" द्वारा इसकी कविता के पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हो सके। नियाल्तगीन और इसका निज का वैर तो था ही परन्तु हिन्दूजाति तथा धर्म के प्रति जो अत्याचार नियाल्तगीन ने किये थे उनका बदला लेने के लिए भी वह लालायित हो रहा था। काशी लूटने के बाद से वैर का बदला लेने की इच्छा और भी प्रबल हो गई थी। निदान तिलक के ताबड़तोड़ कई बार विनय करने पर तथा हिन्दू महाराज जयसेन का युद्धकौशल देखकर मासूद ने तिलक को नियाल्तगीन का शिर अपनी भेंट में भेजने की आज्ञादी। तिलक ने अपूर्व रणकौशल से नियाल्तगीन को शीघ्रही समरक्षेत्र से पलायित किया। बेचारा नियाल्तगीन भागा तो, परन्तु उद्दण्ड जाटों के हाथ में पड़ गया। उनसे तिलक ने नियाल्तगीन का शिर एक लाख रुपये में खरीद कर सुलतान मासूद की भेंट किया। तिलक और जयसेन के कार्य इस बात को सूचित करते हैं कि इस समय तक हिन्दुओं की अवस्था कैसी थी। विद्रोही गवर्नर के पतन का समाचार सुन सुल्तान मासूद बहुतही प्रसन्न हुआ। अब उसको भी भारत में धर्मप्रचार की सूझी। निदान मंत्रियों के बारम्बार निषेध करने पर भी उसने भारत की ओर प्रस्थान किया। इस यात्रा का मुख्य उद्देश्य हांसी दुर्ग विजय करने का था। तिलक सदृश्य योद्धाओं की सहायता से उसने इसे विजित किया और आनन्दपूर्वक काबुल लौटा। परन्तु वहां जाकर उसे अपनी बड़ी भूल पर पछताना पड़ा। खुरासान धीरे २ हाथ से निकल गया। फारस भी स्वतंत्र हो गया। चारों ओर विद्रोहाग्नि भभक उठी, सेनापतियों के पराजित हो जाने पर वह स्वयं रणक्षेत्र में अवतीर्ण हुआ परन्तु दुर्भाग्यवश सन १०४० में मर्व के समर में वह भी पराजित हुआ। राज्य नष्ट होने में किसी प्रकार का सन्देह बाकी न रहा तब लाचार होकर भारत भाग चलने की तैयारी की गई। प्राप्य धन एकत्रित किया गया, बेगमों के हेतु सवारी का उचित प्रबन्ध किया गया और सबने भारत की ओर प्रस्थान किया परन्तु अभी सिन्ध नदी के उस पार भी नहीं पहुंचा था कि शत्रुओं के अवरोध में पड़ गया और बन्दी हो जाना पड़ा। अब इसका अन्धा भाई सिंहासनासीन हुआ। मासूद ने थोड़े दिन "कीरी" दुर्ग में बन्दी रहकर अपने जीवन की इहलीला सम्वरण की। इस प्रकार १० वर्ष राज्य करके तथा उसके सम्बन्ध में नाना प्रकार की आपदाओं को झेल करके अन्त में उसे इस गुरुतर दायित्वपूर्ण कार्य से छुटकारा मिला। यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि मासूद बड़ा ही श्रमशील नरपति था राज्य को शत्रुओं के हाथ जाने से बचाने में उसने कुछ उठा नहीं रक्खा था फिर भी ईश्वर की कुछ और ही इच्छा थी। बैहाकी नामक प्रसिद्ध इतिहासकार ने उसी की ओर इङ्गित करके क्याही ठीक कहा है कि "मनुष्य भाग्य के सम्मुख नहीं ठहर सकता है"। मासूद की मृत्यु के पश्चात् भारतवर्ष में हिन्दू शक्ति का पुनरुत्थान हुआ। थानेश्वर, हांसी, और नगरकोट के दुर्गों पर फिर हिन्दुओं की पताकाएँ फहराने लगीं। सोमनाथ महादेव के जिस लिंग को महमूद ने भंग किया था वह अब तक सुरक्षित था। प्रसिद्ध इतिहासकार फरश्ता ने लिखा है कि महमूद ने तलवार से लिंग काट डाला था परन्तु ऐसा होना संभव नहीं है क्योंकि यह मूर्ति द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से थी। वस्तुतः उन अन्य लिंगों को देखते यह बात ध्यान में नहीं आती कि तलवार

से मूर्ति छेदी गई होगी। ऐसी असंभव और पक्षपातपूर्ण बातें लिखकर भी न जाने इन इतिहास कहलानेवाली पुस्तकों का इतिहास-वत् माना जाना कैसे उचित समझा जाय। यह बात बहुत प्रसिद्ध है कि मूर्तिस्थापन के पूर्व मूर्ति के नीचे यथासाध्य द्रव्य अवश्य रक्खा जाता है। सोमनाथ की मूर्ति को भंग करने के पश्चात् महमूद को बहुत धन प्राप्त हुआ था। इससे बहुत संभव है कि शीघ्रता पूर्वक महमूद ने मूर्ति को नीचे से खुदवा लिया हो और ऐसी दशा में शिवलिङ्ग थोड़ा ही बहुत भङ्ग हुआ हो जिसकी पूर्ति १७ या १८ वर्षों में कुछ २ हो सकती है कारण यह कि पत्थर कभी २ बढ़ता है। सम्भव शब्द बहुव्यापी है परन्तु खोखली मूर्तियों का व्यवहार नहीं किया जाता था तब अन्य इतिहासकारों के मतानुसार कैसे मान लें कि महमूद तथा उसके सेवकों के डंडों से मूर्ति टूटी और उसके अन्दर से बहुमूल्य रत्नादि प्राप्त हुए। हमारी राय में तो नीचे से खोद कर मूर्ति निकालने ही से प्राणप्रतिष्ठा के समय का द्रव्य प्राप्त हुआ होगा और उसीसे यह भ्रम उत्थित हुआ। जो हो मासूद की मृत्यु के पश्चात् ब्राह्मणों ने इस शिवलिङ्ग को अपनी पूर्वावस्था में ढूंढ़ निकाला और उक्त विशाल मन्दिर में धूमधाम से उसकी फिर स्थापना हुई। और मन्दिर का पूर्व गौरव फिर देख पड़ने लगा। सन १०४३ में कोई ८० सहस्र हिन्दुओं की सेना ने लाहोर पर अधिकार कर लिया निदान मासूद के समय से लगाकर गोरी वंश के भारत में आने के पूर्व तक हिन्दू शक्ति का क्रामिक विकाश एवं नाश होता रहा। मासूद की मृत्यु के बाद पांच वर्ष तक पंजाब में हिन्दुओं का बड़ा प्राधान्य रहा।

प्रेम-पयोनिधि।

[लेखक—श्रीयुत किशोरीलाल गोस्वामी।]

(विरह)

बंशीध्वनि।

(१)

बाँसुरी, बीर! बजाइ, दुरो वह,
नाचै कदम्ब तरें बनमाली।
बेगि चलौ, जनि देरि करो, चलि
प्रानपियारो लखैं हम हाली॥
खोन परे, धुनि पूरि पयोद,
मयूरी न धीर धर उर खाली।
मान गुमान, अहो कुलकान, नसै,
बरु देहँ सबै मिलि गाली॥

(२)

प्रेम-पयोनिधि में धँसि कै,
बिन पार भए, ठहरो जनि आली।
केलि करैं कमलाकर में हम,
ज्यों मुद मानस मंजु मराली॥
जो जेहि चाहै, मिलै तेहि सोइ,
अहै यह 'दंतकथा' नहिं जाली।
बान चलावत काम इत,
हँसि कै, उत लोग बजावत ताली॥

(३)

कंजन-पंजन, धीर समीर,
लतानि की फूलि रहीं सब डाली।

त्यों तरु फैलि फले, जहँ, भोरन,
की भरमाति है भीर उताली ॥
ह्वाई, बजाइ रह्यो कलबेनु,
बिनोदनि सों, रसिया रस-साली।
जाइ, गहैं, चलि बेगि उतै,
छिपिजाइयो, नातरु, गैल निराली

(४)

कानन में मलयानिल-संग ह्वै,
देत अमी मुरलीधुनि ढाली।
बेगि चलौ, जिमि सागर पैं,
सरिता सब जात चलीं चहुं हाली ॥
थाकि सकै, फनि खोइ, अहो, मनि!
मोहन हाथ करी घरवाली।
ज्यों, घन-दामिनी को नित संग,
बनैं हम हूं पिय की घरवाली ॥

(५)

सीतल-मन्द-सुगन्धसमीर,
जरावत अङ्ग, अनङ्ग-निगाली।
तातो लगै जल, सीरो; सखेद,
तपावत चांदनी रैन कराली ॥
चन्दन-पंक तें लाले परैं, पुनि,
पीर उसीर करै हिय हाली।
फूल लगें, कुसुमायुध के सर से,
लखि भटै बिना बनमाली ॥

(६)

कूकत ही, हिय हूक चलावत,
कोपि कसाइन कैलिया काली।
लोचन-नीर के संग बही,
ब्रज-बालनि की कुलकानि की लाली ॥
देखहिं कौन उपाय किएँ,
रस-सागर नागर कों दृगपाली।
जीवन-प्रान-अधार वही,
बन, बाँसुरी टेरत, जो बनमाली ॥

समाज-सुधार का क्रम।

[लेखक—श्रीयुत लक्ष्मीशंकर अवस्थी।]

भारतवर्ष में आज कितने ही वर्षों से समाज-सुधार का आन्दोलन हो रहा है परन्तु उसमें जितने परिश्रम और समय का व्यय किया गया उसको देखते हुए बहुत ही थोड़ी सफलता प्राप्त हुई है। दरिद्रों के मनोरथ जिस प्रकार निष्फल हो जाते हैं अथवा ग्रीष्म ऋतु में क्षुद्र नदियाँ जिस तरह सूख जाती हैं प्रायः उसी तरह समाज-सुधार के आन्दोलकों के प्रबल असफल हो रहे हैं। यह दृश्य बहुत ही चिन्ताजनक है। सुविज्ञ देश-हितैषियों को इस विषय पर बहुत ध्यान-पूर्वक विचार करना चाहिये कि इस आन्दोलन को जो सफलता प्राप्त होनी चाहिये थी वह क्यों नहीं हुई।

सुधार की आवश्यकता।

हिन्दू समाज की वर्तमान शोचनीय अवस्था को देखकर कट्टर से कट्टर रूढ़ि-प्रेमी को भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उसके संगठन और रीतियों में सुधार की आवश्यकता है। परन्तु सुधार कहां तक और किस प्रकार किया जाय, यही सारे प्रश्न का मर्म-स्थल है और यहीं से विवाद आरम्भ होता है। जिस समाज का दिन पर दिन शारीरिक और संख्या-सम्बन्धी ह्रास होता चला जाता है, जिसके सहस्रों

मनुष्य प्रतिवर्ष ईसाई और मुसलमान बनते जाते हैं, जिस समाज में १७,७०३ (१९११ ई० की मनुष्य-गणना के अनुसार) ऐसी विधवाएँ मौजूद हैं जिनकी अवस्था ५ वर्ष से भी कम है, वह समाज किसी तरह स्वस्थ और बलिष्ठ नहीं कहा जा सकता। हिसाब लगाया गया है कि "जिस तेज़ी के साथ इस समय हिन्दुओं की संख्या घट रही है उससे यदि यही दशा रही तो ५६४ वर्ष में एक भी हिन्दू हिन्दू न रहेगा।" इस कथन में अत्युक्ति हो सकती है परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि दशा बहुत ही शोचनीय है।

कार्य-शैली में दोष।

समाज-सुधारकों का लक्ष्य समाज-हित ही तो था, उसको पुष्ट और संरक्षण-शील बनाना ही तो उनका ध्येय था, फिर भी उनका आन्दोलन क्यों लोकप्रिय नहीं हुआ? भारतवर्षीय समाज-सुधारक कान्फरेंस पिछले २६ वर्षों से अपनी पुकार मचा रही है; संयुक्तप्रांतीय समाज-सुधारक कान्फरेंस की भी अवस्था लगभग १० वर्ष की हो चुकी। पूछा जा सकता है कि इनकी कार्यवाहियों का क्या फल हुआ? अरण्य-रोदन की तरह हमारे समाज-सुधारकों की सिंह-गर्जन वक्तृताएँ और कान्फरेंसों के लम्बे चौड़े प्रस्ताव निष्फल हो जाते हैं। इतना ही नहीं, समाज-सुधार का नाम बदनाम हो गया है और बहुधा प्रकाश्य रूप से समाज-सुधारक 'समाज-विध्वंसी' के नाम से पुकारे जाते हैं! ऐसी अवस्था में यह स्पष्ट है कि उनकी कार्य-शैली में कुछ भारी दोष अवश्य है और यह कि समाज का सुधार करने के पहिले उन्हें अपने क्रम में सुधार करने की बड़ी आवश्यकता है।

अधिकारियों की उपेक्षा।

राजनैतिक क्षेत्र में काम करनेवाले यह मानकर चलते हैं कि एक शक्तिशाली गवर्नमेंट है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, जिसके कानूनों की सीमा के भीतर रहकर ही कुल आन्दोलन करना पड़ेगा। हमें गवर्नमेंट को सुधारना है परन्तु नियमबद्ध आन्दोलन ही हमारा साधन है। इसी प्रकार यह आवश्यक है कि हिन्दू समाज में वर्तमान समय में जिन अगुओं का, जिन पंडितों का प्रभाव है उनकी सुमति के साथ, उनको अपने अनुकूल करके आन्दोलन किया जाय। यही सरल, नहीं नहीं एक मात्र, मार्ग है। खेद की बात है समाज-सुधारकों ने अबतक समाज के वास्तविक और प्रभावशाली अधिकारियों की उपेक्षा की है। पाठकों ने कभी नहीं सुना होगा कि किसी समाज-सुधारक कान्फरेंस में संस्कृत के विद्वान पंडित बुलाये गये और उनसे परामर्श किया गया।

विचित्र प्रवृत्ति।

सुधार के आन्दोलन की असफलता का एक बहुत बड़ा कारण यह है कि प्रायः सुधारकों ने अपने कार्यों और विचारों से सर्वसाधारण में अपने प्रति घृणा उत्पन्न करली। बहुतसे सुधारकों में एक यह विचित्र प्रवृत्ति पाई गई कि "अपना जो कुछ है सो खराब है और दूसरे का सब कुछ अच्छा है"! इस प्रवृत्ति का यह परिणाम हुआ कि हिन्दू होकर भी उन्हें हिन्दू होने का अभिमान नहीं रहा। क्या सचमुच हिन्दू समाज सारी बुराइयों और सारे अनर्थों का घर है? इससे अधिक मिथ्या भ्रम कोई नहीं हो सकता।

इस सम्बन्ध में स्वनाम-धन्य परलोकगत राजा सर टी० माधवराव के विचार उल्लेखयोग्य हैं। आप बड़े भारी सुधारक भी थे परन्तु फिर भी हिन्दू होने का आपको बड़ा अभिमान था। आपने लिखा है:—

"प्रत्येक हिन्दू को अपने हिन्दू होने का अभिमान हो सकता है। यह बात मैं सुदीर्घ अध्ययन, निरीक्षण और अनुभव के बाद कहता

हूँ। मेरा विश्वास है कि यदि अन्य सभ्य जातियों के साथ हिन्दुओं की तुलना करने के लिए सुयोग्य विद्वानों की एक सभा नियुक्त की जाय तो सामाजिक और गार्हस्थिक गुणों में वह हिन्दुओं के पक्ष में निर्णय करेगी.....। उनका अकेला संयम ही निश्चयात्मक प्रभाव रखता है। संसार में कौन ऐसी जाति है जिसके एक लाख मनुष्य किसी अवसर पर एकत्रित होकर हिन्दुओं के समान शान्त और धैर्ययुक्त आचरण प्रदर्शित कर सकते हैं?

हिन्दुओं की श्रेष्ठता-द्योतक कुछ बातें।

"इस प्रकार की बहुतसी बातें संगृहीत की जा सकती है परन्तु थोड़ी सी ये हैं:—

(१) वैवाहिक स्वत्व की प्राप्ति या बहाली के लिए पति शायद ही कभी अपनी स्त्री पर दावा करता है।

(२) ऐसे स्वत्वों की प्राप्ति या बहाली के लिए हिन्दू स्त्री तो कभी पति पर दावा करती ही नहीं।

(३) तलाक के लिए हिन्दुओं में कभी मुकदमेबाज़ी नहीं होती।

(४) शायद ही कभी कोई हिन्दू पति या स्त्री आचरण-भ्रष्टता के लिए एक दूसरे पर मुकदमा चलाती है।

(५) सन्तान के स्वामित्व पर शायद ही कभी झगड़ा होता है।

(६) जायदाद के विषय में भी शायद ही कभी हिन्दू स्त्री और पुरुष में वैमनस्य होता है।"

प्रत्येक जाति में अपनी कुछ विशेषताएँ हुआ करती हैं और यही उसकी बहुमूल्य सम्पत्ति होती है। इन जातिगत विशेषताओं की रक्षा सबको करनी चाहिये। हिन्दू जाति में ऐसी बहुतसी विशेषताएँ हैं क्योंकि उसकी सभ्यता संसार में सबसे प्राचीन है। समय आता है जब इन विशेषताओं में कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता होती है परन्तु इनको एकदम नष्ट करके दूसरों की विशेषताओं की नकल करना अत्यन्त मूर्खता है।

सुधारों के भेद।

सुधार-आन्दोलन की असफलता का एक और बड़ा कारण यह है कि सुधारकों ने क्रमशः कदम बढ़ाने के स्थान में छलाँगें मारने का निश्चय किया। कुछ लोगों की प्रवृत्ति होती है कि वे बहुत ऊँचा निशाना ताकते हैं इसीलिए चूक जाते हैं। सरल और सुगम मार्ग के अनुसरण की आवश्यकता है। डंका पीटने के स्थान में शान्ति और सुमति के साथ काम करने की आवश्यकता है। प्राफेसर एम० रंगाचारियर एम० ए० ने सुधारों को इन तीनों भागों में बाँटा है:—

(१) वे सुधार जो शास्त्रों के एकदम विरुद्ध हैं।

(२) वे सुधार जो शास्त्रों के विरुद्ध नहीं हैं परन्तु प्रचलित प्रथा और लोगों के वर्तमान विचारों के विरुद्ध हैं

(३) ऐसे सुधार जिनकी व्यवस्था स्वयं शास्त्र देते हैं परन्तु जो लोगों की रीति-रवाज़ के विरुद्ध हैं।

सब जानते हैं कि रीति-रवाज़ के सामने शास्त्रीय आज्ञा को विशेष महत्व प्राप्त है। ऐसी अवस्था में विरोध घटाने और अधिक सहानुभूति प्राप्त करने के लिए क्यों न तीसरी श्रेणी के सुधारों ही से श्रीगणेश किया जाय?

नेक सलाह।

यहां मैं फिर राजा सर टी० माधवराव का मत उद्धृत करता हूं:—

"मेरी हार्दिक प्रार्थना यह है कि पहिले सबसे सरल सुधारों को पसन्द करो।..... ऋतुमती कन्या का विवाह कराने की चेष्टा न करो वरन् लड़कियों की वैवाहिक अवस्था ८ से

१० वा ११ वर्ष तक बढ़वाने का प्रयत्न करो। सब तरह के सुधारों के लिए उद्योग करो परन्तु विधवा-विवाह की चर्चा न करो .....। जो ब्राह्मण वर्ण न हों उन्हें शिल्प-कलादि सीखने के लिए इङ्गलैंड भेजने का प्रयत्न करो। लड़कियों को अधिक पारंगत करने की अपेक्षा केवल लिखना पढ़ना और गणित सिखाने की ओर ध्यान दो। लड़कियों को देशी भाषा में शिक्षा दो न कि अंगरेज़ी में। उत्साह और उत्तेजना की अपेक्षा विवेक की अधिक आवश्यकता है।"

शास्त्रों और पण्डितों से सहायता।

समाज-सुधार में शास्त्रों और पंडितों की सहायता की आवश्यकता अब कई बड़े बड़े सुधारक स्वीकार करने लगे हैं। मान० बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और उनका 'बंगाली' भी इसकी आवश्यकता प्रतिपादन करता है। कुछ लोग कहते हैं कि "साम्प्रदायिक रोज़गारी पंडितों ने तो शास्त्रों को भावमती का झोला बना दिया है। मौक़े पर वे उनसे सब कुछ निकाल लेते हैं।" परन्तु यह अत्युक्ति है। जब २० विद्वान देशहित के भाव से प्रेरित होकर एक स्थान पर बैठकर विचार करेंगे और मताधिक्य से जो व्यवस्था देंगे तो वह शास्त्र के अनुकूल और माननीय ही होगी।

मुझे स्मरण है कि पं० भीमसेन शर्मा ने कुछ वर्ष हुए अपने पत्र द्वारा यह सम्मति दी थी कि अब वह समय आगया है कि हिन्दुओं की समुद्र-यात्रा रोकी नहीं जा सकती इसलिए विदेश से लौटे हुओं को विधिपूर्वक प्रायश्चित्त कर लेने पर स्वजाति में ले लेना उचित है। पं० दीनदयालु शर्मा प्रभृति कितने ही सनातन-धर्मी नेताओं का मत है कि ८ वर्ष से कम अवस्थावाली बच्चियों का विवाह शास्त्र के सर्वथा विरुद्ध है और ऐसे अनर्थकारी विवाह रोकने के लिए खूब आन्दोलन होना चाहिये। इन सम्मतियों का सदुपयोग किया जाना चाहिये। इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार की सहायता और सहानुभूति प्राप्त करके जो आन्दोलन किया जायगा वह शीघ्र सफल होगा।

स्त्री-शिक्षा।

स्त्री-शिक्षा के प्रति संकीर्ण-हृदयों का विरोध अब काफ़ूर होता जाता है। वास्तव में अब मतभेद स्त्री-शिक्षा पर नहीं वरन् उसकी शैली पर है। अभीतक जिस शैली से शिक्षा दी गई और प्रायः दी जारही है वह राष्ट्रीय या अपनी शैली नहीं है। वह स्वधर्म एवं देश-काल-पात्र के अनुकूल नहीं है। वह बहुधा सदाचार-शिक्षा से विहीन और ईसाइयों के प्रभाव से प्रभावित है। लाला लाजपतराय के शब्दों में हमारा उद्देश्य लड़कियों को अनुपयुक्त शिक्षा देकर और स्वतंत्र कर के 'तितलियां' बनाना नहीं है। मिसेज़ बीसेंट के कथनानुसार "यह अत्यन्त आवश्यक है कि लड़कियों की शिक्षा का कार्य सर्वथा अपनी अधीनता में रहे और भारत की तीन प्रसिद्ध जातियाँ हिन्दू, मुसलमान और पारसी स्वयं अपनी शिक्षा-प्रणाली को निश्चित करें—यद्यपि इसके निश्चय में जैनियों और सिक्खों की बात पर भी ध्यान देना होगा। भारतीय लड़कियों की शिक्षा का कार्य विदेशी मिशनरियों के हाथ में जाने देना भारतीय राष्ट्रीयता की आशा का नाश करना है और इसके परिणाम में निश्चय ही जो आध्यात्मिक पतन होगा उसकी बाबत मैं यहां कुछ नहीं कहती.....।"

हम अपनी लड़कियों को प्रधानतः इसी उद्देश्य से शिक्षा देंगे कि वे अपने धर्म और कर्तव्य को समझ सकें, गृह-कार्य में निपुण हो सकें और बच्चों का पालन-पोषण करना सीख सकें। परन्तु स्त्रियों का कार्यक्षेत्र केवल गृह में परिमित करना हमारा अभिप्राय नहीं है। यह मत भ्रमात्मक है कि "हमारे समाज में केवल सीता और सावित्री हों, गार्गी, मैत्रेयी और देवहूती न हों।"

उत्तररामचरित् में ऋषियों की जिन वेदान्तवादिनी पत्नियों का वर्णन है, जिन शीला, विज्ञा आदि की कविताओं के उदाहरण शार्ङ्गधर पद्धति में मिलते हैं, वे विदुषियाँ, अत्रि की पत्नी एवं मंडन मिश्र की सहधर्मिणी के साथ, हमारे समाज की कीर्ति को नष्ट करनेवाली नहीं वरन् समुज्ज्वल करनेवाली थीं। यह ठीक है कि इङ्गलैंड, फ्रांस आदि पश्चिमीय देशों की भाँति हमारी लड़कियों को शिक्षा पाकर दफ़्तरों और दूकानों, रेलों और डाकखानों में काम करना नहीं है, परन्तु उन्हें समाज में तो काम करना है। शिक्षित बालिकाओं में से निरंतर कुछ विदुषियाँ भी स्त्रियों के क्षेत्र में काम करने के लिए तैयार करनी पड़ेंगी। शिक्षिकाओं और चिकित्सिकाओं की हमें बड़ी आवश्यकता है। स्त्रियों के शिक्षित हो जाने पर समाज-सुधार का कार्य सुगम हो जायगा। परन्तु स्त्री-शिक्षा का गुरुतर कार्य हमें स्वयं अपने हाथों में लेना होगा। सरकारी अफसरों या ईसाई मिशनरियों का शासन उसपर कभी न होना चाहिये। हमारे सुविज्ञ नेताओं को उचित है कि वे अच्छी तरह विचारकर अपनी बालिकाओं का पाठ्य-क्रम निश्चित करें और तदनुसार कार्य-संचालन के लिए गवर्नमेंट को प्रेरित करें।

दो अटिल प्रश्न।

हिन्दू विधवाओं और अछूतों की दशा सुधारना और हिन्दुओं की संख्या न घटने देना, ये दो गम्भीर विषय जातिहितैषियों को चिन्तित कर रहे हैं। प्रश्न यह है कि क्या हिन्दुत्व कोई ऐसी काँच की चीज़ है जो टूटकर फिर जुड़ नहीं सकती? कुछ विद्वान ऐतिहासिक प्रमाण देकर कहते हैं कि पूर्वकाल में आर्य लोगों ने दक्षिण में जाकर बहुत से द्रविड़ लोगों को ब्राह्मण बना लिया; भारत की उत्तर-पूर्वीय सीमा पर बहुत से मंगोलियन वंश के मनुष्य और और छोटेनागपुर के लाखों आदिम निवासी हिन्दू बना लिये गये और वे अब तक हिन्दू कहलाते हैं। क्या यह सम्भव और वांछनीय नहीं है कि हमारे जो भाई भ्रम या अज्ञान से अथवा पेट की ज्वाला से स्वधर्म त्यागकर ईसाई या मुसलमान होगये हैं वे प्रायश्चित्त करने के अनन्तर फिर हिन्दू समाज में ग्रहण कर लिये जायँ? दूसरा प्रश्न हिन्दू विधवाओं का है। यह ठीक है कि वैवाहिक अवस्था बढ़ाकर और महामारियों को देश से निकालकर उनकी संख्या बहुत घटाई जा सकती है; यह भी ठीक है कि हिन्दू विधवाओं को शिक्षा देकर और उनके लिए विधवा-आश्रम खोलकर उनका दुःख कम किया जा सकता है, परन्तु क्या इससे अधिक कुछ कर्तव्य नहीं है? आचार-भ्रष्ट विधवाओं की अपेक्षा क्या पुनर्विवाहिता स्त्रियाँ समाज के लिए अधिक उपयोगी नहीं होंगी? जो बाल-विधवाएँ आत्मदमन करने में असमर्थ हों, जो निराश्रित हों, अथवा यों कहिये कि जो पुनर्विवाह की इच्छुक हों—माना कि ऐसी थोड़ी निकलेंगी—उन्हें पुनर्विवाह की आज्ञा देना अथवा ज़बर्दस्ती विधवा रखना वांछनीय है? ऐसे गम्भीर विषय पर मैं स्वयं व्यवस्था देने का साहस नहीं कर सकता। मैं अपने सामाजिक नेताओं और सुविज्ञ पंडितों से प्रार्थना करता हूं कि वे एक स्थान पर एकत्र होकर इस विषय का निर्णय करें और उनका निर्णय समाज को मान्य होगा।

अन्तिम निवेदन।

अन्त में मैं समाज-सुधारकों से यह निवेदन करना चाहता हूं कि समाज-सुधार का काम बड़ा नाज़ुक काम है, इसके आन्दोलन में जोश की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी विवेक और दूरदर्शिता की। समाज के लिए आपकी हित-कामना में कुछ सन्देह नहीं परन्तु कार्य-शैली दूषित होने पर सब गुड़ मट्टी हो जायगा।

तपोबन।

[लेखक—श्रीयुत भगवान्नारायण भार्गव।]

(१)

सबविधि सुसोभित मनहरन,
तपवन छटा ललाम।
लखहु प्रेमयुत मूल मुद,
ऋसियनु को सुचिधाम॥

छिति पै सुर-लोक समान बनो,
सुख के सब साजन सों सघनो।
कहुँ पति-सरोज-सु-बाग़ सजे,
सित-पद्म पै भृङ्ग कहूं लरजे॥

(२)

कहुं वृक्ष कमण्डलु धारत हैं,
बनि साधु स्वयं सिधि साधत हैं।
अति उच्च लगे विटपादि तहाँ,
लखिबे सबु-विश्व कि रीति तहाँ॥

(३)

सबु-ओर श्रुतिध्वनि राजत है,
बनही बनि वाद्य सुबाजत है।
घृत-आहुति-धूम निकासत है,
पुनि पापनु-पुञ्ज प्रनासत है॥

(४)

मृगबृन्द, मृगेन्द्र, गयन्द तहाँ,
सब बैठे समीप महन्त जहाँ।
सब ध्यान सप्रेम करैं नितही,
रिपु भीत समान बसें तितही॥

(५)

मृदु-सीत-सुगन्धित-वायु बहैं,
वह शान्ति-स्वभाव-प्रभाव कहैं।
तप ही धन है धन वे जन हैं,
तनहूं मनहूं पर अर्पन हैं॥

(६)

मद काम न रोस न लोभ तहाँ,
नहिं मोह प्रवेस न छोभ तहाँ।
ऋषि नाम रमेस उदार करैं,
अघ-पुञ्ज चहूं दिसि छार करैं॥

(७)

सुर या थल कों सिगरे तरसैं,
सोइ हेर प्रसून कलीहरसैं।
बिकसे-बहु-पुष्पनु-कुञ्ज सजे,
लखि नन्दन कानन गर्व तजे॥

(८)

सुरभी चहुं ओर विहार करे,
पर तापस तेज सों मार डरे।
फल मिष्ट-रसाल-अनार लगे,
सुचि-भक्ति-विराग-पराग-पगे॥

(९)

कहुं कन्द वनस्पति सोहत हैं,
कदली कहुं चित्तनु मोहत हैं।
पिक; कीर, शिखी द्विज गान करैं,
कहुं सारस धर्म बखान करैं॥

(१०)

सरिता कहुं लेय उमङ्ग रहीं,
बनिता बन की बनि बीचि बहीं।
झरना कहुं सीतल वारि बहैं,
हुलसे पुलके बन-मोद लहैं॥

(११)

रवि-आतप तीखन नाहिं तहाँ,
निसि में कहुं भीति न पाहि तहाँ।
जगती-तल ऐसो न ठाम अहो,
जहँ लेस कलेस प्रवेस न हो॥

(१२)

रवि राज समाप्त भयो जबहीं,
दुखते तम घोर निका तबहीं।
अलि-अश्रु-विमोचन कञ्ज करैं,
उड़ु-वृन्द तबै नभ दीख परैं॥

(१३)

वन-वृक्ष प्रकाश-प्रदीप्त भये,
तब ऋक्ष अनेक लजाय गये।
चकई, चक चन्द्र विलोकत हैं,
पशु पक्षि स्वथानहिं भाजत हैं॥

(१४)

पय-दोहन-शब्द चहूं दिसि में,
श्रुति आनँद देत अहो निसि में।
अब देखु, सुधा-बरसा बरसी,
रजनीपति ने रजनी हरसी॥

(१५)

भगवन्त! सदा तिनको धन है,
तप-कानन में जिनको तन है।
तपकानन तुल्य न और मही,
सुरधाम हु है सुभ धाम वही॥

स्त्रियों की उच्चशिक्षा।

[लेखक—श्रीयुत वर्णीप्रसाद।]

एक समय लोग स्त्रीशिक्षा के—प्रारम्भिक स्त्री शिक्षा के भी—विरोधी थे और स्त्रीशिक्षा-प्रचारकों को धर्मद्रोही, गृहस्थ सुख-विनाशक, कलियुगी-गुरु आदि महापदवियों से विभूषित करते थे। पर जैसा कि संसार के इतिहास में अनेक वार हुआ है प्रगतिशीलों की विजय हुई। भारतसमाज ने यदि अधिक नहीं तो प्रारंभिक स्त्रीशिक्षा के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया, स्वीकार ही नहीं किन्तु थोड़ा बहुत कार्य में भी परिणत कर दिया है। जो उपाधियां प्रारम्भिक स्त्रीशिक्षा के प्रचारकों को प्रदान की जाती थीं वे अब उच्च स्त्रीशिक्षा के पक्षपातियों पर उदारतापूर्वक बरसाई जाती हैं। "यूनीवर्सिटी शिक्षा पाकर स्त्रियां पतियों की परवाह न करेंगी, पातिव्रत धर्म को छोड़ देंगी, स्वतन्त्रता का दावा करने लगेंगी, वोट मांगने लगेंगी। सारांश यह कि शिक्षा सारे गार्हस्थ सुख को नाश कर देगी और जीवन को नरक-जीवन बना देगी।" ऐसे शब्द बहुधा सुनने में आते हैं। सुधारकों का कर्तव्य है कि इन शिकायतों को सुनें और जैसा उचित समझें निर्णय करें। हम तो इस लेख में दो एक मोटी २ बातों पर ही विचार करेंगे।

शिक्षा का उद्देश्य और फल।

प्रत्येक मनुष्य में स्वभावतः कुछ शक्तियां अथवा यों कहिये कि शक्तियों के बीज होते हैं। इन बीजों को अंकुरित करना और अंकुरों को बढ़ाना, इन शक्तियों को सर्वोत्तम प्रणाली के अनुसार विकसित करना और संसारक्षेत्र को अपने काम करने के योग्य बनाना, शिक्षा का काम है। हर्बर्ट स्पेन्सर के शब्दों में, मनुष्य का अर्थात् मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और नैतिक शक्तियों का पूर्ण विकास शिक्षा है। प्रारम्भिक शिक्षा तो इस वास्तविक शिक्षा का साधनमात्र है। अच्छा तो शिक्षा के प्राथमिक तीन उद्देश्य यह हुए शरीर को बलशाली, हृष्ट-पुष्ट बनाना, मस्तिष्क अथवा बुद्धि को तीक्ष्ण करना और चरित्र का संगठन करना। आज-

कल शिक्षा शब्द का प्रयोग दूसरे उद्देश्य के अर्थ में—मानसिक शिक्षा के अर्थ में ही होता है। हमको भी इसी का विचार करना है।

अन्य शक्तियों की भांति मस्तिष्क भी शिक्षित होने पर स्वतंत्रतापूर्वक और ओज के साथ अपना कार्य करने लगता है विचार और प्रश्न करने लगता है। अशिक्षित अथवा अर्द्ध-शिक्षित लोग जिन बातों को, जिन संस्थाओं को शास्त्र के प्रमाण पर, पुरोहितों के कथन पर, परम्परा के आधार पर, स्वयंसिद्ध और समाज के लिए अनिवार्य मान लेते हैं उन बातों और संस्थाओं को भी शिक्षितमस्तिष्क मनुष्य परीक्षा की कसौटी पर कसने में, अपनी बुद्धि के अनुसार उनकी सत्यता में सन्देह करने में अथवा उनको सर्वथा त्याज्य समझने में संकोच नहीं करता। शिक्षितमस्तिष्क अपने आप पर विश्वास करने लगता है, शास्त्रों के हाथ अपनी विचार-स्वाधीनता को नहीं बेंच डालता और रीति-रिवाज़ का ग़ुलाम नहीं हो रहता।

अतएव जिस समाज में उच्चशिक्षा का जितना अधिक प्रचार होगा उसमें उतनी ही अधिक मानसिक स्वतन्त्रता होगी, सब बातों की उतनी ही अधिक परीक्षा होगी और हानि-कारक या समय के प्रतिकूल संस्थाओं, सिद्धान्तों का उतना ही अधिक त्याग होगा। इस परीक्षा और इस त्याग से अन्त में सारे समाज का भला तो अवश्य होता है पर प्रारम्भ में पुरानी बातों के पूजकों के, पुरोहितों के, पोपों के सम्मान, अधिकार और कभी २ जीविका को भी कड़ा धक्का पहुंचता है, पुराने सिद्धान्तों में दृढ़ विश्वास करनेवाले अनेक सज्जनों को धर्म पर वज्रपात होते देख और नवयुवकों को नरकमार्ग पर जाते देख हार्दिक कष्ट होता है। अतएव वे सब लोग उच्चशिक्षा अथवा यों कहिये नये फैशन की उच्चशिक्षा के कट्टर विरोधी हो जाते हैं। पादरियों ने यूरोप में जनसमूह को वश में रखने की एक बड़ी ही सुगम रीति निकाली थी। वे उनको शिक्षा—उच्च शिक्षा—से वञ्चित रखते थे। सच पूंछिये तो हमारे देश में उच्च स्त्री-शिक्षा के विरोध का मूल कारण यह भय है कि शिक्षाप्राप्त स्त्रियों पर हम अपना वर्तमान अधिकार कायम न रख सकेंगे, उनसे अपनी गुलामी न करा सकेंगे।

स्त्रीशिक्षा के विरोध का दूसरा बड़ा कारण हमारा कट्टरपन है। संसार की प्रत्येक जाति थोड़ी बहुत कट्टर होती ही है पर हम भारत-वासी सब से अधिक पुराणपूजक हैं। निस्संदेह प्राचीन भारत में स्त्रियां सुशिक्षिता होती थीं पर एक हज़ार वर्ष से उच्च स्त्रीशिक्षा देश से उठ सी गई है। इसका पुनरुज्जीवन लोगों को बिलकुल नई बात जान पड़ती है।

तीसरा कारण यह है कि हमारे देशवासी—बहुतेरे शिक्षित देशवासी भी—शिक्षा के महत्व और उद्देश्य को नहीं समझते। यदि शिक्षा केवल नौकरी करने या वकील बैरिस्टर डाक्टर बनने का साधन है तो स्त्रियों को शिक्षा की आव-श्यकता ही क्या है।

भ्रान्तिपूर्ण दलीलें।

स्त्रीशिक्षा के विरुद्ध जो दलीलें पेश की जाती हैं उन पर और ज़रा ध्यान दीजिये।

पहिली दलील पातिव्रत-धर्म-सम्बन्धिनी है। इस धर्म की ठीक २ परिभाषा तो हमको मालूम नहीं पर यदि इसका अभिप्राय यह है कि स्त्रियां पूर्णतः अचरित्रा हों, पतियों का आदर करें, बड़े २ कामों में पतियों की सलाह लिया करें तो पातिव्रत धर्म निस्संदेह स्त्रियों का परम धर्म है। परन्तु यदि पातिव्रत धर्म का यह अभिप्राय है कि स्त्रियां पतिसेवा को अपने सम्पूर्ण जीवन का एकमात्र उद्देश्य समझें, पति के द्वारा सब तरह के कष्ट सहें और शिकायत न करें, अपने सारे स्वत्वों और अधिकारों को भूल

जायँ, सांगांश पतियों की पूर्णतः गुलाम होजायँ तो ऐसे पतित पति-धर्म को दूर से ही नमस्कार करना उचित है। अभाग्यवश यह दूसरा अभिप्राय ही वर्तमान पातिव्रत धर्म का वास्तविक अभिप्राय है। यदि उच्च स्त्रीशिक्षा का प्रचार हो जायगा तो निस्संदेह हम स्त्रियों को मारपीट न सकेंगे, गालियां न दे सकेंगे, घर की चार-दीवारों के जेलखाने में बन्द न रख सकेंगे एवं अन्य अत्याचार न कर सकेंगे पर क्या इससे समाज की हानि होगी?

शिक्षा से चरित्र बिगड़ जाने का भय करना सर्वथा निर्मूल है। शिक्षा ने प्राचीन भारत महिलाओं को सच्चरित्रा बनाया था, साहस, धैर्य, सत्यपरायणतासम्पन्न किया था। भारत का इतिहास पढ़ लेने, वाल्मीकि, कालिदास, शेक्सपियर आदि के ग्रन्थ पढ़ने से अथवा रेखागणित का ज्ञान प्राप्त कर लेने से अथवा रसायनशास्त्र पढ़ लेने से चरित्र को क्या हानि पहुंचेगी यह हमारी समझ में नहीं आता।

इस समय देश में जो कुछ पातिव्रत धर्म है उसका आधार—एकमात्र आधार—परम्परागत रीति या लोकनिन्दाभय या पारस्परिक प्रेम है। प्रथम दो आधार बड़े ही अनिश्चित हैं। उनके स्थान पर शिक्षा को रखने की आवश्यकता है। हमारे विरोधियों की दूसरी दलील यह है कि स्त्रीशिक्षा गृहस्थ सुख का नाश कर देगी। हमारा उत्तर स्पष्ट है। यदि मारपीट अत्याचार में ही सुख है, मूर्खाओं से सिर मारने ही में सुख है तो अवश्य शिक्षा गृहस्थ-सुख का नाश कर देगी। यदि एक दूसरे के स्वत्वों का आदर करने में, एक दूसरे का साथी बनने में, समाज, राजनीति, धर्म आदि पर वार्तालाप करने में सुख है तो स्त्रीशिक्षा अवश्य गृहस्थ सुख की सृष्टि करेगी। कभी २ शिक्षित मनुष्यों के मुख से भी यह दलील सुनने में आती है कि स्त्री शिक्षा भारतीय महिलाओं को अंग्रेज़ महिलाओं के भांति वोटाभिलाषिणी बना देगी। ऐसे लोगों से हमारी प्रार्थना है कि पहिले (Suffregettes) समताभिलाषिणी स्त्रियों के आन्दोलन को ध्यान से और निष्पक्षपात से अध्ययन करें, दूसरे यह विचारें कि जिस देश में बड़े २ विद्वानों, सेठ साहूकारों तक को भी वोट का अधिकार नहीं मिला उस देश में स्त्रियों के वोट मांगने की आशंका करना अत्यधिक दूरदर्शिता है या नहीं और तीसरे विश्वास रक्खें कि शिक्षा का काफी प्रचार हो जाने पर इस विषय में जो फैसला होगा वह हितकर ही होगा। आपको सदा के लिए कानून बनाने का अधिकार नहीं है।

कुछ लोग यह भी कहते हैं कि यूनिवर्सिटी शिक्षा से भारतीय बालकों को ही कौन बहुत लाभ हुआ है, स्त्रियों को वह शिक्षा देने से कुछ अधिक लाभ की सम्भावना नहीं है। निस्संदेह हमारी शिक्षाप्रणाली में कुछ बहुत बड़े दोष हैं और उनसे हमें बहुत हानि हुई है तथापि हम अपनी भविष्य स्त्रीशिक्षाप्रणाली को इन दोषों से बचा सकते हैं। हमको यह न भूलना चाहिये कि दोष रहते हुए भी यूनिवर्सिटी शिक्षा ने भारत को जगा दिया है, भविष्य उन्नति का मार्ग बता दिया है, धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक सुधार का बीज बो दिया है और रानाडे, गोखले, बनर्जी, मालवीय जैसे महानुभावों को उत्पन्न कर दिया है।

कुछ और रुकावटें।

इसके सिवा कुछ और भी रुकावटें हैं। ये प्रारम्भिक स्त्रीशिक्षा के प्रचार में भी बहुत बाधा डालती हैं। उच्च शिक्षा के मार्ग में तो इनकी महिमा अपरम्पार है। बालविवाह और परदे की पुरानी रिवाजें एक दिन में नहीं दूर हो सकती हैं। पर स्त्रियों की उन्नति और शिक्षा के लिए इनका जल्द दूर होना परमावश्यक है।

इस समय स्त्रीशिक्षकाओं की भी बहुत कमी है। तथापि जो स्त्रियां उच्च शिक्षा प्राप्त

कर चुकी हैं उनको शिक्षाकार्य में नियुक्त करने से, यूरोपियन महिलाओं और यूरोप-शिक्षकों को नियुक्त करने से यह कमी बहुत कुछ दूर हो सकती है।

अब रही द्रव्य की बात। हमारी समझ में यदि हिन्दू और मुसलमान विश्वविद्यालयों में एक २ स्त्री कालेज भी रहे तो देश का बहुत कल्याण हो। सरकार अब परीक्षक विश्वविद्यालयों के स्थान पर शिक्षक विश्वविद्यालय स्थापित करना चाहती है। उच्च स्त्रीशिक्षा के पक्षपातियों का कर्तव्य है कि सरकार पर स्त्री कालेज खोलने का जोर दें। सर तारकनाथ पालित, डा० रासविहारी घोष जैसे महानुभावों की सहायता से बहुत कुछ हो सकता है। शायद इसी शताब्दी में वह समय आजाय जब प्रत्येक प्रान्त में एक २ स्त्री यूनिवर्सिटी दिखलाई देगी।

वर्तमान शिक्षाप्रणाली के दोष।

हम कह चुके हैं कि वर्तमान शिक्षाप्रणाली में कुछ बड़े दोष हैं जिनके कारण शिक्षा की उपयोगिता कम हो गई है। स्त्रीशिक्षाप्रणाली को इन दोषों से मुक्त रखना चाहिये। इस समय जो कन्याएँ शिक्षा पाती हैं वे इसी सदोष-प्रणाली के अनुसार पाती हैं। अतएव इसपर विचार करना चाहिये।

(१)—अङ्गरेज़ी के माध्यम से शिक्षा देने के कारण समय और बल की हानि, मानसिक विकास की अपूर्णता, रटने की आदत, मातृभाषा का अनादर, स्वदेशी सभ्यता से अनभिज्ञता, जनसमूह से पार्थक्य आदि अनर्थ होते हैं यह बात लगभग सभी मानते हैं। स्कूलों में इस समय भी मातृभाषा द्वारा शिक्षा दी जा सकती है। पर अभी दस पांच वर्ष तक—जब तक हिन्दी साहित्य की उन्नति न हो—कालेजों में अङ्गरेज़ी का माध्यम ही स्वीकार करना होगा। जब स्त्रीकालेज खोलने का समय आये तब इस विषय पर बहुत ध्यान देने की आवश्यकता है। हमारा यह प्रयोजन नहीं कि शिक्षाप्रणाली से अङ्गरेज़ी या अन्य भाषाएं बिलकुल निकाल दी जायँ। एमरसन के शब्दों में जो मनुष्य केवल एक भाषा जानता है वह एक भी नहीं जानता। पाश्चात्य देशों के बालक, बालिकाएँ अपनी मातृभाषा के अलावा कम से कम एक विदेशी भाषा अवश्य सीखती हैं। हम अनुन्नत भाषा-भाषी लोगों के लिये तो यह और भी अधिक आवश्यक है। अतएव हमारी सारी शिक्षाप्रणाली में अङ्गरेज़ी, फ्रेंच, बंगला, मराठी, आदि भाषाओं के सीखने का अवश्य प्रबन्ध होना चाहिये। (२) हमारी वर्तमान शिक्षाप्रणाली में दूसरा दोष यह है कि भारतीय धर्म, तत्त्वज्ञान, काव्य आदि की ओर कम ध्यान दिया जाता है। यदि ग्रीक और लैटिन से अनुवादित ग्रन्थ हमको पढ़ाये जाते हैं तो संस्कृत और प्राकृत ने क्या अपराध किया है? यदि मिल्टन का "पैरेडाइज़ लास्ट" पढ़ना आवश्यक है तो रामायण या सूरसागर का पढ़ना क्यों आवश्यक नहीं है? (३) परीक्षाओं के बाहुल्य और कठोरता के बहुत से विद्यार्थी शिकार होते हैं और सभी थोड़ी बहुत हानि उठा चुके हैं।

ऐसे ही अन्य दोषों से स्त्रीशिक्षा-प्रणाली को बचाना हमारा धर्म है। पर सामान्यतः यह प्रणाली वर्तमान शिक्षाप्रणाली पर निर्द्धारित की जा सकती है।

स्त्रियों के लिए सार्वजनिक कार्य।

पर साधारण शिक्षा के अलावा कुछ स्त्रियों को विशेष शिक्षा की भी आवश्यकता है। कुछ ऐसे सार्वजनिक कार्य हैं जिनको स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा अधिक योग्यतापूर्वक कर सकती हैं। पाश्चात्य देशों में छोटे लड़के और लड़कियों की शिक्षा बहुधा स्त्रियों ही के हाथ में है। स्वाभाविक कोमलता और प्रेम के कारण वे इस कार्य को बहुत सफलतापूर्वक कर सकती हैं।

रोगियों का परिचारण भी स्त्रियों ने बहुत अच्छी तरह किया है। कुछ दिन हुए इङ्गलैंड और भारतवर्ष में एक आन्दोलन उठा था कि पुरुषों की भाँति भारतीय स्त्रियों को भी डाकूरी की शिक्षा का अवसर दिया जाय। यद्यपि अभी तक कोई प्रबन्ध नहीं किया गया तथापि हमारी समझ में, जो काम आजकल यूरोपियन डाकूरनियाँ करती हैं वह भारतीय महिलाएँ भी करने लगें, तो देश का बहुत कल्याण हो। अतएव शिक्षा और डाकूरी विभागों की शिक्षा का प्रबन्ध स्त्रियों के लिए होना परमावश्यक है।

एक तीसरा कार्य जो बहुत सी महिलाएँ पाश्चात्य देशों में करती हैं और थोड़ा बहुत यहां भी करने लगी हैं पत्रसम्पादन है। जार्ज इलियट, मिसेस अस्टिन आदि स्त्रियों ने अङ्गरेज़ी साहित्य की जो सेवा की है उससे स्त्रियों की लेखनयोग्यता में कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता।

इस प्रकार की विशेष शिक्षा का प्रबन्ध तो थोड़ी ही स्त्रियों के लिए होगा पर गृह-प्रबन्ध-शास्त्र सब को सिखलाना चाहिये। बच्चों का लालन पालन, बच्चों की शिक्षा, घर का प्रबन्ध करना यह विषय सब स्त्रियों के जानने के योग्य है। स्त्रीशिक्षा में यह विशेषता रहेगी।

पढ़ लिख के क्या करेंगी ?

अधिकांश स्त्रियां नौकरी तो करेंगी ही नहीं पर शिक्षा का अभीष्ट, नौकरी नहीं है। शिक्षित स्त्रियां समाज में नये जीवन का संचार करेंगी, पतियों की अर्द्धाङ्गिनी और मंत्राणी बनेंगी और अपने पुत्रों को राम और भरत बनाने का प्रयत्न करेंगी, जीवन का वास्तविक सुख भोगेंगी। तेईसवीं सदी में वे वोट मांगेंगी या नहीं यह तो हम नहीं कह सकते पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि बीसवीं सदी में ही उच्चशिक्षाप्राप्त महिलाएँ हमारे गृहों को संसार के रमणीयतम स्थान और अवनत भारत को उन्नत भारत बना देंगी। देश का पुनरुद्धार देश के अत्यन्त आवश्यक और अत्यन्त प्रभावशाली वर्ग को मृतप्राय रखने से नहीं होता। न्याय, मनुष्यत्व व देशभक्ति स्वार्थ और परमार्थ के नाम पर हम सब का कर्तव्य है कि उच्च स्त्रीशिक्षा का प्रचार करें।

पालतू पशु।

[लेखक—प्रोफेसर रतनचन्द रावत।]

संसार यात्रा में जीवन निर्वाह के लिए घोड़े, गाय, बकरी आदि पशु मनुष्य के प्राचीन काल से साथी हैं। पशुओं को वश में करने से मनुष्य के अनेक कार्य सिद्ध होते हैं और वस्तुतः उन्हीं के बल पर मनुष्य सृष्टि का स्वामी बना बैठा है। गाय, भैंस दूध पिला कर, बैल, घोड़े, ऊंट हल जोत और बोझ उठा कर, बकरी भेड़ अपना ऊन और मांस दे कर मनुष्य का पालनपोषण और शुश्रूषा करते आये हैं। लड़ाई, ब्याह, उत्सव स्वयंवर सब में पशु-पक्षियों ने मनुष्य के कार्यों में योग दिया है और उसकी कीर्त संसार में उज्वल की है। तात्पर्य यह कि पशु-पक्षियों ने मनुष्य का दासत्व स्वीकार कर उसे उच्च बनाया है और सच पूंछिये तो बीहड़ जंगल, रेतीले मैदान, अगम्य नदी और आकाशवत् चोटियोंवाले पहाड़ों का राज्य मनुष्य को उन्हीं के सहारे मिला है। अतः आशा है कि पशु-पक्षी किस प्रकार मनुष्य

के आधीन हुए इसका विवरण पाठकों को मनोरंजक होगा।

पशु कब से पालतू हुए ?

जब मनुष्य प्रारम्भिक और असभ्य दशा में था तभी से वह पशु-पक्षियों को अपने आधीन करने लगा और आज जिन घरेलू जानवरों को हम देखते हैं वे अर्वाचीन काल से वश किये हुए जन्तुओं की सन्तान हैं। घरेलू जन्तुओं के विषय में दो मत हो सकते हैं।

(१) भगवान् कृष्ण के समान काली नाग को नथनेवाले महापुरुष अथवा अर्जुन सदृश महावीर समय समय पर उत्पन्न हुए और उन्होंने ही घोड़े आदि जानवरों पर विजय पाई और उनसे मनुष्य का दासत्व स्वीकार कराया।

(२) अथवा कुछ पशु-पक्षियों में घरेलू बनने के गुण स्वाभाविक होते हैं। असभ्य मनुष्यों ने ही उनको वश में किया और धीरे २ वे पालतू बनते गये। पशुविज्ञानविशारद प्रायः दूसरे मत के पक्ष में हैं।

पशु-पक्षियों में कुछ आकर्षण होता है। कुत्ते को यूरोपवासी प्राण से भी प्यारा समझते हैं। मैना, तोता भारत वासियों को कैसे प्यारे हैं! मैना की मीठी आवाज़ और तोते की राम राम, में भारतवासी आनन्द अनुभव करते हैं। बहुत से लोग ख़रगोश और कबूतर के इश्क में मतवाले हो जाते हैं। असभ्य और जंगली हालत में यह प्रेम मनुष्य में विशेष रूप से रहता है। प्रायः सभी असभ्य कुछ न कुछ लाड़ले जानवर पालते हैं। उनको देवरूप और भगवान समझते हैं। प्राचीन राजा लोग जानवरों को तथा उनका तमाशा देखने के शौक़ीन होते थे। अब भी भारत में आलसी और हट्टे कट्टे निठल्ले लोग मुर्गों और भेंड़ों को लड़ाने में अपना सौभाग्य मानते हैं। सर जान रिचार्डसन इंग्लैंडीय एमेरिकानिवासी रेड इण्डियनों के विषय में यों लिखते हैं "रेड इन्डियन औरतें भालू के छोटे बच्चों को पालती हैं और अपनी छाती का दूध पिलाती हैं। रेड इन्डियन अपने लाड़ले जानवरों को बहुत चाहते हैं और बड़े प्यार से पालते हैं। यदि जानवर खरीदना हो तो मूल्य ठहराने में कोई कठिनता नहीं होती परन्तु बेचनेवाले पुरुष के बच्चे और औरतें पशु से जुदा होना बड़ा बुरा समझती हैं और रोने बिलखने लगती हैं। मेरा पालतू भालु का बच्चा औरतों के इकट्ठा किये हुए झड़बेरियों को चुरा खाता था परन्तु वे अपने हानि की परवा न कर सदा हँसती और मुसकराती थीं"।

एफ्रिका और एमेरिका में भ्रमण करनेवाले पथिक बतलाते हैं कि इन देशों के निवासी सांप, बिच्छू, लोमड़ी, गीदड़, मगर, बन्दर, हिरन, चीता, भालु, सब प्रकार के जानवर पालते थे। प्राचीन मिश्रवासियों को जानवर पालने का बड़ा शौक़ था। एक विख्यात वैज्ञानिक मि० गुडविन कहते हैं कि "They anticipated our zoological tastes completely" दक्षिण एफ्रिका में एक सांप का मन्दिर था जिसमें ३० अजगर थे; सूर्यास्त के समय पुजारी भेंड़ बकरी और मुर्गों का मांस लाकर उनको खिलाते थे। रात को वे नगर घूमने जाते थे और शिकार की तलाश में मकानों में घुस जाते थे। इन सांपों को मारना क्या छूना तक मना था। यदि कोई अभागा ऐसा करता था तो उसे मृत्यु का दंड दिया जाता था। जंगली राजाओं के कबूतरों को मारना भी मृत्यु से दण्डनीय था।

भारतवर्ष।

हमारे यहां वेदों में गौ, हाथी, बकरी, गदहा आदि के द्योतक शब्दों का प्रयोग है। महाभारत के युद्ध में हाथी, अश्व आदि पालतू पशु काम में लाये जाते थे। पुराणों में कामधेनु,

ऐरावत और इन्द्र के घोड़े की उत्पत्ति समुद्र-मन्थन से मानी गई है इससे प्रतीत होता है कि अति प्राचीन काल में ही भारत ने गाय आदि पशुओं को पालतू बना लिया था और गायों की उपयोगिता देख उनको माता का पूज्य स्थान दिया था। देवी का वाहन सिंह, विष्णु का वाहन गरुड़ और गणेश का वाहन मूषक ये सम्बन्ध भी रहस्यजनक और मनभावने हैं। सांड़ों का नगर में निरद्वंद्व घूमना और देवमन्दिरों में चढ़ाया जाना हिन्दू जाति की पशुभक्ति का उदाहरण है। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र के सेनानायक हनुमान के संबन्ध से बन्दर पूज्य दृष्टि से देखे जाते हैं और उनको अयोध्या, मथुरा में पूर्ण स्वत्व प्राप्त हैं चाहे वे कितना ही उपद्रव क्यों न करें वहां वे अदण्डनीय है। पशुविज्ञानानुसार हाथी को पालतू बनाना बड़ा कठिन और सभ्यता सम्पन्न जाति का काम समझा जाता है। भारत जैसे सम्पन्न देश ही में लाखों हाथियों का पालना संभव था। पुरु और चन्द्रगुप्त के हाथी विख्यात हैं। सिंहादि हिंसक पशुओं को राजा अपनी पशुशाला में रखते थे, और कहते हैं कि योगबल से ये पशु बिना अस्त्र शस्त्र ही के वश में हो जाते थे। बुद्ध महाराज के आश्रम के चारों ओर सिंह और बाघ लेटे रहते थे। वीणा बजाकर और गाकर भी भारतवासी पशुओं को पकड़ते थे। अकबर के दरबार में तानसेन ने गा गाकर हिरनों को बुलाया था। पाले हुए कबूतर चिट्ठियां ले जाने के काम में आते थे। १७६१ की पानीपत की लड़ाई में सदाशिवराव की हार की खबर पेशवा को कबूतर के गले की चिट्ठी बाँच कर ही मालूम हुई थी।

पशु कैसे पालतू बनाये जाते हैं।

जैसा कह चुके हैं प्रारम्भिक दशा में अधिक जानवर पकड़े और पालतू बनाये जाते हैं। असभ्य देशों के राजा जानवरों को लड़ाने और मनुष्यों के अखाड़े के बड़े शौकीन होते थे। जंगली हालत में मनुष्य हिंसक और अन्य पशुओं को पकड़ने के अधिक योग्य होते हैं। जब धनी मनुष्य और राजाओं की प्रवृत्ति के कारण इन पशुओं की अधिक चाह होती है तो लोग धन कमाने के लालच से जानवरों को पकड़ लेते हैं, और बेचने लगते हैं। चोरगड्ढों और जालों से जानवर जीते पकड़ लिये जाते हैं। शिकारी, पशु को तीर कमान अथवा गोली से मार कर गिरा लेगा परन्तु जीवित पशु पकड़ने का काम जंगली मनुष्य ही जानते हैं। अपनी प्रकृतिही से ये जानवरों के सब दाव पेंचों को समझते हैं और उनको बेखटके कैद में रख सकते हैं। रेड इंडियन और अफ्रिका के निग्रो हिंसक पशुओं की गुफा में जाकर बच्चों को पकड़ लेते हैं और उन्हें पाल कर बड़ा बना लेते हैं।

जंगली जातियां अपने पड़ोसी सभ्य जातियों के पास जीते जानवर लाकर उनको प्रसन्न करती हैं और खाने पीने की वस्तुएँ प्राप्त करती हैं और इन्हीं जानवरों में से घरेलू बनाने योग्य घरेलू बनाये जाते हैं।

मेक्सिको के प्राचीन राजाओं के अजायबघर के विषय में मि० गोमेरा यों लिखते हैं:—

"यहां पर बहुत से पींजड़े मज़बूत बल्लियों के बने थे। किन्हीं में बाघ, किन्हीं में सिंह, किन्हीं में भेड़िये थे। कोई ऐसा चौपाया न होगा जो वहां न हो। उनको खाने के लिए हिरन और दूसरे शिकार किये हुए जानवर दिये जाते थे। इनके अतिरिक्त बड़े २ मटके और तालाबों में सांप, घड़ियाल, छिपकलियां थीं। दूसरे हाते में शिकारी चिड़ियों के पींजड़े थे और गिद्ध, दर्जनों किस्म के बाज, उकाब और उल्लू थे। बड़े २ उकाबों को खाने के लिए टर्की मिलते थे। हमारे कैम्पनिवासी इतने प्रकार के जानवर और चिड़ियों को देख अचम्भे में हो गये। विषैले सांपों की फुंकार, सिंहों का गरजना,

भेड़ियों को चीत्कार और भोज्य जानवरों का कराहना सुनकर उनके होश दंग हो गये। एशिया, रोम आदि देशों में भी प्राचीन काल में अजायबघर और अखाड़े थे। कलकत्ते के चिड़ियाखाने (zoological garden) से उनका कुछ अन्दाज़ा हो सकता है।

घरेलू जानवर कौन पाल सकते हैं?

शौक या तमाशे के लिए सब जानवरों को मनुष्य पकड़ कर कैद कर सकता है और हिला भी सकता है परन्तु उनमें से थोड़े ही घरेलू हैं। घरेलू बनने के लिये जानवरों में ये गुण होने आवश्यक हैं:—

(१) मजबूती।
(२) मनुष्य से प्रेम।
(३) आरामपसन्द होना।
(४) उपयोगिता।
(५) वंश बढ़ाने की शक्ति।
(६) पालने में सुगमता।

यदि जानवर मज़बूत न हो तो वह देशविदेश की गर्मी और शीत को सह न सकेगा। अबरदारी में कुछ कमी हो जाने से वह रोगी हो जायगा या मर जायगा। मथुरा की गायें पहाड़ों में रह सकती हैं। अर्बी घोड़ा मजे से हिन्दुस्तान के मैदानों में दौड़ता है। विलायती कुत्ते और चूहे हमारे देश में मान पाते हैं। यदि ऐसा न हो तो उनका बढ़ना रुक जाय और किन्हीं २ स्थानों में जीवित रहना भी असंभव हो जाय। मनुष्य का प्रेम जानवर को आकृष्ट करता है और वे उनके काम को अत्यन्त कष्ट सहने पर भी करते हैं। घोड़ा अपने स्वामी की थपकी को बड़ी कृपा समझता और प्रेम भरी निगाह से उसकी ओर देख हिनहिनाता है किन्तु एफ्रिका-निवासी जेब्रा अपना पीठ पर जीन तक लादने नहीं देता और ज़रा से खटके में भाग के दूर निकल जाता है। स्वीडन का बारहसिंगा (Elk) बड़े चाव से बेपहिये की गाड़ियों (sledges) को बर्फ़ पर खींचता है और मालिक की ओर निहारता जाता है परंतु इसके विपरीत बिसन (Bison) नामक जानवर जिस पेड़ से बंधा हो उसीसे सर टकराकर भेजा बाहर निकाल डालता है। अबाबील आदि चिड़ियाएँ मकानों में घोंसला बनाती हैं परन्तु उकाब, हिरन, भेंड़, पास भी नहीं आतीं। बाज़ी गाय और बकरियाँ छोटे बच्चों को अपने थनों का दूध पिला देती हैं। बच्चे लुढ़कते २ टांगों के नीचे चले जाते हैं और मजे में दूध पीते हैं। कुत्ते बिल्ली दोनों की घोड़े से मित्रता होती है परन्तु कुत्ते और बिल्ली स्वाभाविक शत्रु हैं। बन्दर और नेवला साँप के जानी दुश्मन हैं। चट्टान पर बैठकर और सांप की गर्दन पकड़ कर बड़े रगड़ रगड़ कर बन्दर सांप को जान लेता है। तेज मिजाज और सुस्तमिजाज जानवरों में दोस्ती नहीं होती। किसी जन्तु का चलना फिरना बहुत ही सुन्दर और नाज़ुक हो परन्तु वह दूसरे को भद्दा और घिनौना मालूम होगा। उसकी आवाज दूसरे को कर्कश मालूम होगी और उसकी गंध से दुर्गंध आवेगी। आदमी का परम मित्र कुत्ता है। मनुष्य कुत्ते के विचार और भाव समझता है और कुत्ता मनुष्य के। कुत्ता मनुष्य की ज़रा सी हँसी में नाराज़ हो जाता है और टेढ़ी आंख से घबड़ा जाता है परन्तु बैल और भेड़ पर इन बातों का कुछ भी असर नहीं होता।

आराम की बलवती इच्छा से बहुत से जानवर आदमी की अधीनता में रहना स्वीकार करते हैं और इसी की चाट से बहुत से हिंसक जीव घरों के समीप आजाते हैं। जंगली हालत में जानवर सदा चिन्तित रहते हैं। ज़रा से खटके में उनको कोसों दूर भागना पड़ता है और जब कोई शिकारी या हिंसक पशु पीछा करता है तो एक या दो दिन तक दौड़ना पड़ता है। ज़रा से डर से जानवरों का झुंड कान खोलकर खड़ा हो जाता है और तब पागल होकर इधर उधर भागता है। कोई जानवर इस

कठिनता और दौड़ धूप को पसन्द करते हैं और दूसरों को ऐसा जीवन असहनीय होता है। यदि कोई पकड़ा हुआ पशु जो आधा पालतू हो गया हो, पीटा जाय तो वह भागकर जंगल में चला जायगा। परन्तु आदमी के घर का आराम वहां नहीं और पल २ पर मृत्यु का भय है। यदि वह आराम पसन्द होगा तो वह घर लौट आवेगा।

किसी सरकस का भालू एक दिन भाग गया था मैनेजर ने उसको बहुत ढुंढ़वाया पर कहीं पता न चला। दूसरे दिन शाम को मैनेजर ने देखा कि एक भालू उसके खेमे की ओर चला आता है, जंगली पशु समझकर बन्दूक उठा उसे मार डाला। देखने से मालूम हुआ कि वही भागा हुआ भालू था। भालू भाग के जंगल में गया था परन्तु जंगली जीवन के उसने अपने को अयोग्य समझा और घर का आराम याद कर लौट आया परन्तु अभागे मैनेजर ने उसे मार कर बहुत हानि उठाई।

जानवर उपयोगी होना चाहिये। बाल्यावस्था में वह प्यारा और मनभावना होता है। इसी कारण स्वामी ने उसको पहिले पकड़ा था परन्तु बड़े होने पर उसमें वह सुन्दरता और हावभाव नहीं रहता। स्वामी का प्रेम घट गया और बेकार बोझ समझ उसको निकाल भगाया या मार डाला।

उदाहरणतः किसी मछुवे ने एक लँस के बच्चे को पकड़ा। वह बहुत प्यारा था। वह स्वयं समुद्र से मछली मार कर लाता था और उसकी झोपड़ी में लौट आता था। थोड़े समय बाद वह अपने मन का होगया और उसको घर में रहना असह्य होगया। वह बच्चों को धक्के देने और आगन्तुकों को काटने लगा। अड़ौसी पड़ोसियों के लिए कंटक होगया परन्तु मनुष्य के सदृश व्यवहार देख लोग उसका मारा जाना ठीक नहीं समझते थे। एक दिन मछुवा उसे अपने साथ नाव में ले गया और दूर समुद्र में जा फेंक आया लेकिन यह सब निष्फल हुआ। एक या दो दिन में उसकी आवाज़ फिर झोंपड़ी के पास सुनाई दी। सूंस ने अपने घर का रास्ता ढूँढ़ निकाला। कुछ दिन पश्चात् किसी शिकारी ने उसे पालतू न समझ कर मार डाला। यदि यह सूंस उपयोगी जन्तु होता तो निस्सन्देह मछुवा दूसरे सूँसों को पकड़ता और उसकी अबरदारी करता और कालविशेष में वह और उसकी सन्तान पालतू बन जाती। मांस, दूध और ऊन आदि के लिए भी जानवर पाले जाते हैं परन्तु जंगली कौमें इस अभिप्राय से उनको कम पालती हैं। खेल तमाशे और अपने सर्दारों को प्रसन्न करने के लिए ही उन्हें वे प्रायः पकड़ते हैं।

जानवरों को पालतू दशा में बच्चे पैदा करना और उनकी नस्ल को बढ़ाना अत्यावश्यक है। जब जानवर जंगल में चुगने जाते हैं तो अपने को कैद से मुक्त पाते हैं और इधर उधर भागना चाहते हैं। जंगली हालत के गुण उनमें फिर से आजाते हैं। इसलिए जानवर में झुंड बांध कर चुगने के गुण होने चाहियें अन्यथा एक इस ओर दूसरा दूसरी ओर भाग जायगा और चरवाहा उनको घर लाने में असमर्थ हो जायगा। बकरी आदि झुंड में रहती हैं और उससे कम अलग होती हैं। झुंड में न रहनेवाला जानवर बिल्ली है परन्तु वह घर के आराम की बहुत शौकीन है और इसलिए पालतू दशा में रह सकती है।

अब अन्तिम वक्तव्य केवल यह है कि जब हम अपने पालतू जानवरों की परवरिश ठीक २ रीति से करेंगे तभी वे हमारे लिए उपयोगी हो सकेंगे। कृष्ण ने गोपाल होकर और बन २ गायों को चरा कर भारत-सन्तानों के हृदय में अपना नाम चिरस्मरणीय कर दिया है परन्तु आज भगवान् कृष्ण की वेही गायें मांस-रक्त-हीन हो अस्थिपिंजर मात्र रह गई हैं और इस पर भी हम लाठी से मार मार कर उन्हें दुहते हैं। वास्तव में भेंड़, बकरी, गाय सभी की दशा भारत में शोचनीय है फिर हमारा कल्याण क्या कर हो?

शङ्कराचार्य का समय।

[लेखक—श्रीयुत राधामोहन गोकुल जी ।]

हिन्दी की एक पत्रिका में एक कोई जोधपुरनिवासी सज्जन ने कतिपय पंक्तियों द्वारा उपर्युक्त शीर्षक से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि स्वामी शङ्कर का प्रादुर्भाव आठवीं शताब्दी ईस्वी के अन्त में हुआ होगा और स्वामी दयानन्द ने जो २२०० वर्ष पूर्व (ईसा से ३०० वर्ष पहले) लिखा है ठीक नहीं है। इसी लेख के एक फुटनोट में उस पत्रिका के सम्पादक कहते हैं—"शंकराचार्य दो हुए हैं—एक आदि शङ्कराचार्य, दूसरे वे जिन्होंने शारीरिक भाष्य बनाया है।"

शंकर के समय की बाबत हमें अधिक कहने की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि जो कुछ उक्त सज्जन ने लिखा है वह अनेक प्राच्य व पाश्चात्य विद्वानों की खोज के एक अंश का पिष्टपेषणमात्र है। यदि यह पिष्टपेषण भी सांगोपांग होता तो भी कम से कम स्कूल के बच्चों को कुछ लाभ पहुंचता। इतिहास-वेत्ताओं से छिपा नहीं है कि डाक्टर रमेशचन्द्र दत्त व डाक्टर हाल, प्रभृति अनेक विद्वानों ने बड़ी खोज के साथ निर्विवाद रूप से यह सिद्ध कर दिया है कि शंकर का जन्म शकाब्द ८१० में हुआ और ८४२ में आप परमपदारूढ़ हुए। यह ईस्वी सन् ७८८–८२०, व कलि संवत् ३८८९-३९२१ के अनुसार है। इस दशा में किसी सज्जन का अनिश्चित काल आठवीं शताब्दी का अन्त लिखना बिलकुल निष्फल है। हमारे कथन का प्रमाण निम्नलिखित लेखों को सचेत होकर पढ़ने से मिल जाता है:—

(1) Indian Antiquary Vol XI & XII p. p. 175 and 13 respectively—

(2) Webber's History of Indian Literature (1878) p. p. 236, 261.

(3) Notices of Sanskrit MSS. P. 17.

(4) Colbrooks, Essays II P. 332.

(५) हमने अनेक संस्कृत ग्रन्थों व शिलालेखों का नाम यहां पर उद्धृत नहीं किया।

अब पाठक देख सकते हैं कि कलि संवत् के अनुसार स्वामी दयानन्द का १२०० वर्ष का अनुमान, केवल इन प्रमाणों के आधार पर जो उस समय उन्हें मिले कदाचित् दूषित नहीं कहा जा सकता। अन्यत्र १२०० का २२०० छप जाना छापेखाने या प्रूफ पढ़नेवाले के प्रमाद का फल है। कौन नहीं जानता कि स्वामी जी लिखा दिया करते थे, लिखनेवाले व प्रूफ पढ़नेवाले दूसरे लोग होते थे। लिखने व प्रूफ पढ़नेवालों की अमार्जनीय भूलों के ही कारण स्वामी को एक दो ग्रन्थ छपे छपाये नष्ट करने पड़े थे, यह भी संसार जानता है।

दूसरी बात जिसके सम्बन्ध में मुझे राष्ट्र का ध्यान आकृष्ट करना है सम्पादक की टिप्पणी है। प्रथम तो आपने अपने आदि शंकराचार्य के होने का कोई भी प्रमाण नहीं दिया, जिससे इतिहास के विद्यार्थी सन्तुष्ट होते और आपकी बात के सत्यासत्य को निर्णय करते। दूसरे आपने शंकर को 'शारीरिक भाष्य' को बनानेवाला लिखा है, न कि 'शारीरक' भाष्य का। सम्भव है कि यह भूल प्रूफरीडर की हो या छापेखाने के भूत की शरारत हो।

अन्त में निवेदन है कि सम्पादक जी आदिम शंकराचार्य का संक्षिप्त जीवन सरस्वती में निकालेंगे तो राष्ट्र पर बड़ा अहसान होगा।

शिवाजी के विषय में विदेशियों का मत।

[लेखक—तरुण भारत।]

पहले लेख में हम कह ही चुके हैं कि शिवाजी के विषय में जिन्हें सच्चा ज्ञान नहीं, वे इस महापुरुष को 'डाकू, बाग़ी, लुटेरा, चोर' इत्यादि नाम दिया करते हैं। यह रीति अभी तक प्रचलित है। यहां तक कि कुछ पढ़े लिखे हमारे हिन्दुस्थानी भाई भी शिवाजी को यही उपाधियां दिया करते हैं, यह हम अच्छी तरह जानते हैं। इसका कारण केवल अज्ञान है। ऊपर के रंग रूप से साधारण लोग किसी वस्तु का मूल्य निश्चय किया करते हैं और तमाम अंगरेज़ी पुस्तकों में यही पढ़ने को मिलता है, इस कारण इन लोगों का ऐसा मत हो जाना अस्वाभाविक नहीं है। परन्तु इतना ख्याल रखना चाहिये कि जिस किसी पुरुष में कुछ भी महान् गुण हैं, उसके विषय में उसके शत्रु भी—गाली देते समय भी—अनिच्छापूर्वक अनजाने ही (उनका तो यही ख्याल रहता है कि हम केवल गालिप्रदान ही कर रहे हैं) उसकी कुछ प्रशंसा भी कर जाते हैं। जब हम यह देखते हैं तो तुरन्त समझ जाना चाहिये कि इस पुरुष में ऐसे कोई महान् गुण अवश्य थे जिनने उसके शत्रु को भी उसकी प्रशंसा करने के लिये बाध्य किया। आज हम पाठकों को यही दिखलाना चाहते हैं कि शिवाजी पर जिन जिन लोगों ने कीचड़ फेंकने का प्रयत्न किया है, उन्होंने उस कीचड़ के साथ अनजाने कुछ हीरे और मोती भी अपनी जेब से निकाल कर फेंक दिये हैं।

ओवेन साहब ने अपने ग्रन्थ में शिवाजी के विषय में बहुत कुछ वर्णन किया है। परन्तु सहृदयता न होने के कारण शिवाजी के विरोधाभासात्मक कर्त्तव्य की मीमांसा आपकी समझ में न आई और पूर्व के कुग्रह के कारण केवल आश्चर्यचकित होगये। आप लिखते हैं—"धूमधाम और अव्यवस्था दूर करके उसकी जगह नियमित व्यवस्था स्थापित करना तो सचमुच बड़े कुशल पुरुष का काम है। प्रथम प्रथम तो ऐसा जान पड़ता है कि शिवाजी ने इससे भी बड़ा काम लिया। प्रचलित धूमधाम और अव्यवस्था का लाभ उठाकर उसने अपने हृदय का उद्देश्य सिद्धकर लिया और इन साधनाओं का प्रवाह अपने अधिकार में रखकर इष्टसिद्धि की ओर खूब जोर से बहने दिया। अनियंत्रित शासनसरूपी महानगरी के दरवाजे उसने खोल दिये और लूट और लश्करी स्वेच्छाचार का प्रवाह उसके हृदय में उमड़ आया। परन्तु उस प्रवाह में वह स्वतः न तो डूबा न घबराया ही, उलटे इस स्वेच्छाचारी और सर्वनाशकारी प्रवाह को सहायता से राजव्यवस्था और मर्यादित राष्ट्रीय स्वतन्त्रता उसने उत्पन्न की। महाराष्ट्रीय वीरों में भरी हुई महत्वाकांक्षा रूपी अग्नि को उसने अपने उत्साहरूपी वायु से प्रदीप्त किया परन्तु उसमें स्वतः जल जाने का अथवा इतनी लूट से और बेपरवाही से मिले राज्य के नष्ट होने का उसे कभी भय न हुआ। लूट और बेईमानी से उसका उत्कर्ष हुआ तथापि उससे कभी किसी ने विश्वासघात न किया। गद्दर करना उसका और उसके लोगों का जीवनोद्देश्य था पर उसके कायदे बड़े सख्त थे—उनका उल्लंघन कभी किसी ने न किया और कभी यदि ऐसा हुआ ही तो अपराधी अवश्य दंड पाता था। सारांश, शिवाजी जंगी तूफान पर चढ़कर उस तूफान को अपने वश में रखनेवाला विलक्षण पुरुष था। शिवाजी का चरित्र पढ़ने से ऐसी विलक्षण विरोधात्मक बातें दीख पड़ती हैं परन्तु उसने जो संस्थाएं निर्माण कीं

उनका अवलोकन करें तो यह विरोध दूर हो जाता है।"

कहिये पाठक, क्या आपको इस कीचड़ में हीरे और मोती नहीं मिले ? बेचारा ओवेन गाली देने की तो इच्छा करता और कर रहा है प्रशंसा !! हम एक लेख में बतला ही चुके हैं कि शिवाजी के राज्य में अनेक जाति के मुसलमान और हिन्दू (पाठक ख्याल रक्खें कि उसके कई नौकर मुसलमान थे) थे, पर किसी ने इस महापुरुष के साथ विश्वासघात न किया ! फिर लूट मार करना पर उसी की सहायता से राज्य प्राप्त करना ! अग्नि प्रदीप्त हो जाय पर न उसमें जले और न मकान ही नष्ट हो !! तूफान को अपने आप बुलावे पर उसे बिलकुल पालतू बच्चा बना ले !!! क्या ही विलक्षण और विरोधात्मक बातें हैं !!! यही शिवाजी की योग्यता है !!!

बर्नियर नामक फ्रेंचप्रवासी ने हिन्दुस्थान में जो प्रवास किया था, उसका इतिहास लिखा है। उसने भी शिवाजी का इस प्रकार उल्लेख किया है*:—

"शिवाजी नामक एक शूर और साहसी पुरुष बीजापूर के राज्य में गड़बड़ मचाता था। वह सदा सावधान, साहसी और अपनी रक्षा करने के विषय में बड़ा बेपरवाह रहता था। मोगल सरदार यशवंतसिंह से अनबन होने के कारण उसने शाइस्ताखां पर चढ़ाई की और सूरत नगर की अपार संपत्ति लूट ले गया।" इस समय की एक मजेदार बात बर्नियर ने दी है। सूरत में रे० फादर अंब्रोज़ नामक एक पादड़ी थे, उनका शिवाजी ने बहुत सन्मान किया। शिवाजी कहा करते थे, ये फिरंगी पादड़ी बहुत सज्जन होते हैं इसलिए इन्हें तंग न करना चाहिये। इसी प्रकार वहां डिलेल नामक एक डच व्यापारी रहता था, वह बड़ा दानधर्मशील गिना जाता था। इसलिए शिवाजी ने उसे भी कोई कष्ट न दिया। सूरत में एक यहूदी व्यापारी रहता था। बादशाह के पास बेंचने के लिये लेजाने के लिए उसने अनेक अमूल्य रत्न इकट्ठे किये थे। इसकी खबर शिवाजी को मिली। उसकी गर्दन पर तीन बार तलवार रखकर सिर काट देने का डर दिखलाया गया, तब भी पश्चिमी मारवाड़ी ने अपनी दौलत नहीं दिखलाई। बर्नियर के लिखने से दो एक बातें मालुम होती हैं। यहूदी व्यापारियों के पास द्रव्य है, यह खबर मिलने पर भी शिवाजी ने उन्हें बिना मारे छोड़ दिया। स्वतंत्रता के लिये शिवाजी जो प्रयत्न कर रहे थे उसके लिये अपने पक्ष में मिलाने और धन आदि की सहायता लेने के लिये धमकी के सिवा और कोई कठोर उपायों का अवलम्बन न किया। इसी प्रकार उदार और परोपकारी लोगों को कभी उनके द्वारा कोई कष्ट नहीं मिलता था और उनका वह सदा सन्मान ही करते थे।

एक दूसरे फ्रेंच प्रवासी टेवर्नियर लिखते हैं—"शहाजी के ग़दर के कारण बीजापूर के राज्य में बड़ा गड़बड़ मच गई। बुरा बर्ताव करने के कारण बादशाह ने उसे कैद में रक्खा, और वह मरते दम तक कैद में रहा। इस बात से उसके पुत्र को बहुत गुस्सा आया। शिवाजी स्वभाव से उदार था और सहृदय होने के कारण शिवाजी के अनेक अनुयायी हो गये। उसे बहुत से पैदल और सवार मिल गये और थोड़े ही काल में उसकी बड़ी भारी सेना हो गई। इस अवधि में बीजापूर का राजा मर गया। उसके कोई संतति न थी। अब शिवाजी की बन आई और दक्षिण किनारे का बहुत प्रदेश उसे मिल गया। वह उस फौज को अच्छा वेतन दिया करता था, इस कारण वे लोग भक्ति-पूर्वक नौकरी करते थे"। इतिहास का तो

* बर्नियर की पुस्तक अंगरेज़ी में अनुवादित कहीं भी मिल सकती है, जिन्हें इच्छा हो वे देख सकते हैं।

आपने खून कर डाला है—उड़ती उड़ती बातें मालूम हुईं उन्हें ही आपने लेकर टिप्पणी करली है; पर ख्याल रखने की बात है कि इन गप्पों के साथ शिवाजी के दो चार गुण भी आपके कानों में पड़े थे इससे ज्यादा सर्टिफिकेट और क्या चाहिये? आपको अनेक धन्यवाद है कि आपने इनके विषय में टिप्पणी की।

कयोर नामक एक और फ्रेंच प्रवासी सन् १६६८ से १६७३ तक हिन्दुस्थान में मौजूद थे। आपने शिवाजी के विषय में बड़ी विश्वस्त बातें प्रसिद्ध की हैं और बड़ेही आनंदपूर्वक आप शिवाजी की प्रशंसा करते हैं। आपने जूलियस सीजर* और गस्टेव्हस अडाल्फस† से शिवाजी की तुलना की है और कहा है कि वह सर्वगुणसंपन्न योद्धा और चक्रवर्ती राजा था।

बीजापूर के मुसलमानी इतिहास में शिवाजी के विषय में लिखा है "शिवाजी के समान चपल, साहसी, चालाक, कुशल, ठग, कभी किसी ने न सुना न देखा होगा यही कह सक्ते हैं वह बड़ा पराक्रमी, शूर और विचारशील था। नाना प्रकार की ठग विद्या और बहाने शिवाजी में ठूंस ठूंस कर भरे थे। वह बड़ा साहसी था और लोगों की जान लेने में वह इतना प्रवीण था कि अपना कोई सानी नहीं रखता था। शहाजी के जीते जी ही उसने इन कार्यों में कीर्ति प्राप्त कर ली थी। वह अपने बाहुबल और बुद्धिबल से बड़े बड़े राज्य नष्ट कर चुका था, और बड़े बड़े अच्छे अच्छे स्थानों और घरों को लूटकर समूल नष्ट कर डालता था। दिल्लीपति और बीजापूर में बैर होने का कारण वही था। उसका भाग्य इतना बलवान् था कि इन दोनों राज्यों के बीच में रह कर दोनों को एक समान कष्ट दिया करता और इन दोनों का सर्वनाश ही करने का उसने संकल्प कर लिया था। दोनों बादशाह उसकी जड़ उखाड़ने को सदा उद्योग करते पर उनकी कुछ न चली। शिवाजी किसी काम में शायद ही नाकामयाब हुआ हो। इस प्रकार अपने भाग्य के जोर से पैंतीस वर्ष उद्योग करता रहा और बहुत मुल्क ले लेने पर मराठी राज्य की नींव डाल कर हिजरी सन् १०९१ (ई० स० १६८०) में मरा और दिल्ली और बीजापूर के बादशाह उसके उपद्रव से मुक्त हुए। उसके बाद उसका बदफैली पुत्र संभाजी अपने पिता की गद्दी पर बैठा और वह भी अपने पिता की रीति के अनुसार चलकर तेजस्वी होने लगा।" ख्याल रखने की बात है कि यह शिवाजी के खास बैरियों ने लिखा है।

तारीख १२ अगस्त १८९५ के 'जगहितेच्छु' ने लिखा है कि मुसलमानों के विषय में शिवाजी के मन में वैरभाव नहीं था। इसके समर्थन में खाफीखां के लेख से यह अवतरण दिया है:—"शिवाजी ने मसजिदों को नुकसान नहीं पहुंचाया। उसके हाथ में कहीं कुरान की प्रति मिल जाती तो वह उसका सन्मान करके अपने आदमियों को जो मुसलमान होते उन्हें दे दिया करता था*।" ख्याल रखिये कि खाफीखां कट्टर मुसलमान था और हिन्दुओं को कुत्ते, दुष्ट,

* यह रोम का बड़ा प्रसिद्ध योद्धा था। उस समय रोम की स्थिति ठीक न थी, इस कारण राज्य के लगभग सब अधिकार उसे अपने हाथ में कर लेने पड़े, पर यह बात कुछ लोगों को न रुची और ईसासंह के ४४ वर्ष पूर्व उसका उसके विरोधियों ने खून कर डाला।

† यह स्वीडन का राजा था। इसी ने स्वीडन की फौजी शक्ति निर्माण की। यह प्रसिद्ध सेनापति था। सत्रहवीं शताब्दी में प्रोटेस्टेंट और रोमन कैथोलिक लोगों में जो तीस वर्ष का प्रचंड युद्ध हुआ, उसमें यह प्रोटेस्टेंट मतवालों की ओर से लड़ता था। सन् १६३२ में गुस्टेव्हस को लड़ाई में मारा गया।

* खाफीखां का इतिहास—इलियटकृत अनुवाद भाग ७वां पृष्ठ २६०।

पाजी इत्यादि गालिप्रदान किया करता था। ऐसे पुरुष के शिवाजी के विषय में ऊपर के वाक्य हैं। इससे जान सकते हैं कि मुसलमान लोग शिवाजी के विषय में क्या ख्याल रखते थे। मुसलमानों से परधर्मी होने के कारण ही शिवा जी द्वेष करना योग्य नहीं समझते थे। स्वधर्म स्थापित करते समय परधर्म का उच्छेद करने का कभी उनका उद्देश्य नहीं रहा। वे सब को समान देखते थे। इसलिए शिवाजी को सब मुसलमानों का शत्रु कहना योग्य नहीं। खाफीखां आगे लिखता है "अपने राज्य के लोगों का सम्मान कायम रखने के लिए वह सदा प्रयत्न करता रहा। गदर और लूट से लोगों को कुछ कष्ट अवश्य होते थे परन्तु इससे कोई बुरा काम उसने नहीं किया। जो मुसलमानों की स्त्रियां अथवा लड़के उसके हाथ में पड़ जाते, उनकी इज्जत में कभी कुछ कमी न होने देता था। इस बात में उसके नियम बड़े सख्त थे, जो बेकायदे काम करते व बड़ा कठिन दंड पाते थे।" लीजिये यह तो खाफीखां ने एल० एल० डी० का डिप्लोमा ही दे दिया है।

पाठकवर्ग शायद इन्हीं बातों में भूल गये होंगे—दोगया, खाफीखां से बढ़कर कोई क्या कह सकता है? पर प्रसिद्ध दिल्लीपति कट्टर इसलामधर्मी औरँगजेब की भी बातें सुन लीजिये, आप लिखते हैं—"शिवाजी बड़ा भारी योद्धा था। हिन्दुस्थान के प्राचीन राज्य के नष्ट करने का मैं सतत उद्योग कर रहा था उस समय नया राज्य स्थापन करने का महत्कार्य शिवाजी के सिवाय किसी दूसरे से न बन पड़ा। उन्नीस वर्ष से मेरी सेना उसके साथ लड़ रही है तब भी उसके राज्य का नित्य उत्कर्ष ही हो रहा है।" उस पहाड़ के चूहे को ऐसी बड़ी पदवी उसी के शत्रु ने प्रदान की है!

इससे अधिक शिवाजी के सम्बन्ध में अन्य लोगों के मत उद्धृत करने की हम आवश्यकता नहीं समझते और इस लेख को यहीं समाप्त करते हैं।

हमारी डायरी।

[लेखक—श्रीयुत शिवप्रसाद गुप्त।]

(पूर्व प्रकाशित से आगे।)

१९वीं शताब्दी में घरेलू युद्ध के पूर्व तक हार्वर्ड विद्यालय का प्रभाव बढ़ता ही गया व मासाचुसेट के बाहर भी पढ़ने लगा। यहां तक कि विद्यार्थियों की संख्या का पंचमांश मध्यप्रदेश तथा दक्षिणांत प्रदेश से आने लगा। विश्वविद्यालय की शक्ति नवीन इङ्गलैंड की मानसिक उन्नति में तनमन से लगी हुई थी और उस समय के विद्वानों का बड़ा अंश यहीं के शिक्षाप्राप्त पुत्रों से बना था। विख्यात कवि लाँगफेलो (Longfellow) जो बाडविन (Bowdvin) के पढ़े हुए थे इस विद्यालय में १८३६–१८५४ तक अध्यापक रहे और अपनी सारी आयु यहीं केम्ब्रिज में व्यतीत कर दी। नवीन इङ्गलड के विख्यात कवि, इतिहासवेत्ता व प्रायः सभी उदार धार्मिक नेता व प्रखर बुद्धिवाले विचारशील दार्शनिक इसी हार्वर्ड के विद्यार्थी रह चुके थे। यहां के सब से विख्यात प्रधानों के नाम ये हैं:—जान थार्नटन किर्कलैंड (John Thorhton Kirkland) (१८१०–१८२८), जोशिया क्विन्सी (Josiah Quincy) (१८२९–१८४५) व जेम्स वाकर (James Wacker) (१८५३–१८६०)। इस काल में विद्यालय के आय की वृद्धि हुई, चिकित्सा, कानून तथा ब्रह्मविद्या व विज्ञान की पाठशालाएं बनीं व अध्यापक

जार्ड स्पार्क्स (Jard Sparks) तथा एडवर्ड इवरेट (Edward Everatt) के यहां रहने के कारण विद्यालय का नाम बढ़ा। इसके अतिरिक्त यहां के विद्यार्थियों में भी निम्नलिखित विद्वान होगये हैं। जोजेफ स्टोरी, जार्ज टिकनर, एच० डब्ल्यू० लेफैलर्स, जे० आर० लोवेल, बेंजामिन पीपर्स, लुइस आगारीज़, आसा ग्रे, जे० ओ० डब्ल्यू होलवेज़ इत्यादि।

इस समय बहुत से छात्रालय व अन्य इमारतें विद्यालय में बढ़ीं व इसकी सम्पत्ति १८०० से १८६६ तक में २,४२,००० डालर से बढ़ कर २२,५०,००० डालर पहुंच गई। विद्यालय के विद्वन्मण्डल की संख्या १५ से बढ़कर २४ तक १८१० से १८६६ में पहुंच गई। १८०३-०४ में फ्रेशमैन क्लास की संख्या ५७ व विद्यालय के छात्रों की संख्या २३३ थी, इसके अतिरिक्त बहुत से विद्यार्थी चिकित्सा विभाग में भी थे, किन्तु १८६८-६९ में ये दोनों संख्याएं १२८ व १०४३ हो गईं।

शिक्षा-सम्बन्धी दृष्टि से इस विद्यालय में १८०० तक शिक्षा पर कुछ न कुछ प्रभाव साम्प्रदायिक विचारों का पड़ता ही रहा। १७९० में लैटिन, ग्रीक, गणित, ज्योतिष, अंगरेज़ी, दर्शन, साम्प्रदायिक मत व प्रकृतिदर्शन यहां पढ़ाया जाता था केवल हिबरू व फ्रांसीसी भाषा लेना न लेना छात्रों की रुचि पर छोड़ा गया था। अन्तिम विषय को छोड़ अन्य सब विषय सबको पढ़ने पड़ते थे। यह शिक्षा उस समय की आवश्यकता व विचार की दृष्टि से अत्यन्त उत्तम थी।

१९वीं शताब्दी के प्रथम चरण में ही विद्या के स्वाभाविक प्रवाह तथा अनेक अध्यापकों के प्रभाव के कारण, जिन्होंने जर्मनी में शिक्षा प्राप्त की थी शिक्षा के क्रम तथा छात्रों के रहन सहन के व्यवहार में बहुत उलट फेर होने लगा। जार्ज टिकनर[1] (George Tecknor) (१८१७-१८७१) के प्रभाव से शिक्षा के विषय का चुनाव अधिकतर विद्यार्थियों की रुचि पर छोड़ दिया गया और अन्य विषयों के साथ, रसायन, भूगर्भ शास्त्र, इतिहास, सम्पत्ति-शास्त्र तथा अन्य अनेक आधुनिक विषय जोड़ दिये गये।

उपर्युक्त परिवर्तन के साथ विश्वविद्यालय के शासन में भी अनेक परिवर्तन हुए। १८०० तक प्रायः बहुधा फेलो पादरी लोग हुआ करते थे किन्तु उपर्युक्त समय से यह चाल चली कि केवल एक पादरी ही एक समय में इसका सभ्य रह सके इस परिवर्तन के कारण इस पद का सम्मान बहुत बढ़ गया। एक समय ऐसा हुआ कि पांच फेलों में से तीन में एक जोज़ेफ स्टोरी (Joseph Storv) दूसरे लम्युएल शा, (Lemuel Shaw) जो दोनों सज्जन देश के प्रधान वकील थे व तीसरे विख्यात गणितज्ञ नैथेनियल बोडिच (Nathaniel Bowditch) ये सज्जन चुने गये। १८४३ में कंग्रीगेशनल पादरियों के अतिरिक्त अन्य पादरियों के लिये इस विद्यालय की प्रधान सभा का द्वार खुल गया इससे भी अधिक प्रभावशाली परिवर्तन यह हुआ कि प्रधान सभा से शासक दल का प्रभाव कम होगया। उत्पत्ति समय से गवर्नर व उच्च सरकारी कर्मचारीगण इस सभा के सदस्य हुआ करते थे। किन्तु १८६५ में सदस्यों के निर्वाचन का अधिकार विद्यालय से उत्तीर्ण हुए छात्रों ही के हाथ में आ गया व उसी समय से सरकारी कर्मचारियों का कुछ हाथ विद्यालय के शासन में न रह गया। यह उस झगड़े का अन्तिम परिणाम था जिसमें कट्टर दल के पादरियों ने राजनैतिक चालबाजियों के प्रभाव व सहायता से कालेज के शासन में बोस्टन के उदार विचारवालों की शक्ति को कम करना चाहा था पर वे हार गये। किन्तु यह जीत पार्टि की जीत न थी। यह नये जातीय जीवन के प्रभाव से पुराने विचारों के मनमुटाव के कम होने से घटित हुई थी और इसके कारण विद्यालय की उपयोगिता में कुछ फर्क

नहीं पड़ा। विश्वविद्यालय की प्रधान सभा में मासाचुस्टेट के बाहर के लोगों के सम्मिलित होने की आज्ञा होने के कारण विद्यालय की सार्वजनिकता बढ़ गई व इसकी उपयोगिता का आकार भी आशातीत बढ़ गया।

घरेलू झगड़े के बाद हार्वर्ड ने उस उन्नति में से हिस्सा लिया है जो कि सारे संयुक्तप्रदेश के उत्तरी व पश्चिमी भाग में हुई। इसका इस समय का इतिहास वास्तव में चार्ल्स विलियम इलियट (Charles William Eliot) (१८६९-१९०९) के सभापतित्व-सम्बन्धी शासन का इतिहास है। सभापति इलियट अपनी दूरदर्शिता, अनुराग तथा बुद्धि व शासनकुशलता व अपने उद्देश्य की दृढ़ अटलता व चरित्र की पवित्रता के कारण समय की नवीन शक्तियों का सद्व्यवहार करने में समर्थ हुए व इसके प्रभाव से विद्यालय को अनेकानेक दान मिले जो सब मिल कर एक भारी सम्पत्ति हो गई। और इसी के साथ २ दिन प्रतिदिन बढ़नेवाले शिक्षक-मण्डल की योग्यता व प्रेम को भी खूब सञ्चय करके। आप अपने गत ४० वर्षों के सभापतित्व में विद्यालय की आशातीत उन्नति व इसकी वृद्धि को देख सके। इसी काल में छात्रों की संख्या चौगुनी हो गई व विद्यालय राष्ट्र का प्रथम विद्यामन्दिर गिना जाने लगा। देशदेशान्तरों में भी इसका सन्मान बढ़ गया। आपके परिश्रम से शिक्षाप्रणाली में विषयों के इच्छानुसार लेने की पूर्ण स्वतंत्रता छात्रों को मिल गई व परीक्षा व विद्यामन्दिर में सम्मिलित होने के ठीक नियम बन गये और उनके अनुसार कार्य भी होने लगा। विश्वविद्यालय में ज्ञान की सभी शाखा-प्रशाखाओं में शिक्षा देने का प्रबन्ध हो गया। इसी समय उपाधि-परीक्षा की योग्यता में भी वृद्धि की गई और उसमें उदार बुद्धि से कलाकौशल व विज्ञान सम्मिलित हुए। विशेष प्रकार के व्यावहारिक शिक्षालयों में प्रवेश करने के पूर्व साधारण उपाधि प्राप्त करने का नियम बनाया गया व उसी के साथ उपाधि के लिये विशेष विशेष विषयों में पारंगत होना भी आवश्यक किया गया। आप के शासनकाल में छात्रों के व्यवहार में पूर्ण स्वतन्त्रता-पूर्ण मानसिक बल का जान बूझ कर प्रयोग हुआ। और वही नियम दृढ़ता, उदारनीति व न्याय के साथ विद्वन्मण्डल तथा शिक्षकसमुदाय के सम्बन्ध में भी बर्ता गया।

इस समय के प्रधान जिनका नाम ऐबट लारेन्स लावेल (Abbott Lowrence Lowell) है जब इस पद पर निर्वाचित किये गये उस समय ये विद्यालय में शासन-शास्त्र के अध्यापक थे। अबतक आपके शासन में यह विशेष उद्देश्य रक्खा गया है जिसके द्वारा विद्यार्थियों को इस बात के लिये बाध्य होना पड़ता है कि वे अपने शिक्षा के विषयों को किसी विशेष उद्देश्य से प्रेरित होकर चुनें। आपने साधारण उपाधि-परीक्षा के पाठ्य-क्रम से विशेष आजीविका-सम्बन्धी पढ़ाई (Professional and Technical) को अलग रक्खा है। इससे साधारण शिक्षा की जड़ अधिक मज़बूत हो जाती है।

जिस कारपोरेशन द्वारा हार्वर्ड का शासन होता है उसमें एक प्रकार का स्वयं-सञ्चालनतत्व है। यह प्रधान, पांच अन्य फेलोओं तथा कोषाध्यक्ष से मिल कर बनी है। इसे धन तथा विद्यासम्बन्धी दोनों विभागों में आज्ञाओं तथा निबमों को ठीक रीति से व्यवहार में लाने का अधिकार है। प्रधान सभा (Board of Overseers) को जिसमें विद्यालय के पुत्रों (Alumni) द्वारा ३० सभ्य नियुक्त हैं व प्रधान व कोषाध्यक्ष भी उसके सभ्य होते हैं सब कार्यों के लिए अबाध्य, विपुल किन्तु अनिश्चित अधिकार प्राप्त हैं। कारपोरेशन के सभ्यों के चुनाव तथा अध्यापकों की नियुक्ति में इस प्रधान सभा की अनुमति की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त और प्रधान कर्मचारियों की नियुक्ति भी इस

प्रधान सभा की सम्मति लेकर ही होती है। कारपोरेशन सम्बन्धी हर प्रकार के आवश्यक नियम व विद्वन्मण्डली के सम्बन्ध के सब नियम इस प्रधान सभा के सम्मुख उपस्थित होते हैं। इस प्रधान सभा का यह भी धर्म है कि अनेक छोटी २ समितियों द्वारा विश्वविद्यालय के हर अंश का पूरा निरीक्षण रक्खे और इसके सम्बन्ध में शासक-समिति को बराबर सूचित करती रहे।

प्रधान विद्वन्मण्डल के सब सदस्य शासक-सभाओं के सदस्य हैं और कार्यरूपेण सब अधिवेशनों में इसके सदस्यों को सम्मिलित होना पड़ता है। अध्यापक तथा अन्य उच्च कर्मचारीगण पहले प्रधान द्वारा नामांकित होते हैं तब उन्हें प्रधान सभा वा शासक-सभा नियुक्त करती है। इस नियुक्ति में विशेष शिक्षाविभाग के प्रधान अध्यापक की राय भी परेलू तौर पर लेली जाती है। केवल चिकित्सा विभाग में अध्यापकों की अंतरंग सभा नये अध्यापक को नियमित रूप से चुनती है—विशेष जीविका-सम्बन्धी पाठशालाओं में अपने २ विषयों के विषयमण्डल के प्रधानों (Deans) को कार्य को ठीक रूप से चलाने तथा शिक्षा के निरीक्षण का पूरा भार मिला हुआ है किन्तु आय-व्यय के चिट्ठे बनाने का अधिकार उन्हें नहीं है—किन्तु हार्वर्ड विद्यालय तथा ज्ञान और विज्ञान (Arts and science) सम्बन्धी उपाधि-पाठशालाएँ बिलकुल प्रधान के ही निरीक्षण में हैं; इनके विषय में प्रधान को केवल छात्रों के शासन का अधिकार है।

इस विश्वविद्यालय में ज्ञान, विज्ञान, ब्रह्मविद्या, कानून, चिकित्सा तथा विज्ञान के प्रयोग शास्त्र के लिये पांच विद्वन्मण्डल हैं। प्रत्येक मण्डल में वे सब कार्यकर्ता होते हैं जिनकी नियुक्ति एक वर्ष से अधिक के लिये हुई हो। शिक्षक जो मण्डल के सभ्य हैं उन्हें अन्य सब अध्यापकों को सम्मति देने का अधिकार प्राप्त है। केवल चिकित्सा विभाग को छोड़कर और सब विभागों में उच्च-पदाधिकारियों को अन्य विद्वन्मण्डल के छोटे कार्यकर्ताओं से अधिक कोई अधिकार प्राप्त नहीं हैं। हार्वर्ड विश्वविद्यालय में यह विशेषत्व है कि उसके ज्ञान-विज्ञान विषयक विद्वन्मण्डल के मण्डलपति को केवल सभापतित्व के अधिकार को छोड़कर और कोई अधिकार प्राप्त नहीं है और ये बहुधा बदला करते हैं—इस नियम के कारण नौजवान भी सभापति हो जाया करते हैं जो विद्यालय के लिये उपयोगी है क्योंकि इस रीति से सहायक अध्यापक व शिक्षकों को शिक्षा-सम्बन्धी चालढाल पर अपना प्रभाव डालने का अवसर मिल जाता है। यह विद्वन्मण्डल बहुत शीघ्र २ अपना अधिवेशन करता रहता है। ज्ञान-विज्ञान मण्डल तो प्रति सप्ताह एकत्र होता है। इसे हर प्रकार के नियम बनाने का अधिकार है। छात्रों की देखभाल व अन्य शासनकार्य का भार बड़े २ विश्वविद्यालयों में प्रायः शासकसभा के अधीन रक्खा जाता है।

ज्ञान-विज्ञान मण्डल विभाग कई समितियों में विभक्त है जिन्हें शासन के विस्तृत प्रपञ्च के देखभाल का पूरा पूरा अधिकार प्राप्त है।

हार्वर्ड विद्यालय इस विद्यापीठ का हृदय है। ज्ञान व विज्ञान सम्बन्धी पाठशालाओं का सम्बन्ध भी इस विद्यालय से घनिष्ट है। कार्यशासन सम्बन्धी शिक्षालय भी इस समय ज्ञान-विज्ञानमण्डल के अधीन है। इस समय उपाधि-परीक्षा व उसके पूर्व की शिक्षा के लिये उपयुक्त मण्डल में कोई भिन्न प्रबन्ध नहीं है।

हार्वर्ड विद्यालय में केवल परीक्षा द्वारा ही प्रवेश होता है व प्रति वर्ष अनेक छात्र इससे वंचित रह जाते हैं—१९११ के नये नियम के अनुसार प्रत्येक विद्यार्थी की तैयार की हुई शिक्षा का क्रम (Programme) पृथक् २ जांचा जाता है और यदि क्रम ठीक पाया जाता है तो

उसके श्रम की परीक्षा ४ भिन्न २ विभागों में भी होती है। (१) अंगरेज़ी भाषा। (२) लाटिन भाषा अथवा (बैचलर आफ साइन्स के विद्यार्थी के लिये) किसी अन्य आधुनिक भाषा में। (३) गणित वा भौतिक अथवा रसायनशास्त्र में। (४) उस दूसरी शाखा में जिसे विद्यार्थी सात भिन्न विषयों में से चुन ले। यह क्रम इसलिए बर्ता जाता है जिसमें हार्वर्ड उन उच्च-शिक्षाओं के साथ चल सके जो देश में सर्वत्र फैली हुई हैं और इसलिए यह क्रम पुराने तरीके के मुवाफिक रक्खा गया है जिसके अनुसार तैयारी के समय की शिक्षा की परीक्षा सब विषयों में जिन्हें विद्यार्थी तैयार करता था ली जाती थी। १९०१-१९१० में जितने विद्यार्थी इस विद्यालय में सम्मिलित हुए हैं उनमें ४४ सैकड़े सार्वजनिक पाठशालाओं से, बाकी ५६ सैकड़े व्यक्तिविशेष की पाठशालाओं से आये थे। १९१२ के १५४ विद्यार्थियों में से ८० सैकड़े सर्वसाधारण की व २० सैकड़े व्यक्तिविशेष की पाठशालाओं में से आये। हार्वर्ड विद्यालय की उपाधियों का नाम ए० बी० (A. B.) और एस० बी० (S. B) है। इनमें विशेष अन्तर यह है कि ए० बी० के विद्यार्थियों को प्रवेशिका परीक्षा में लाटिन भाषा की परीक्षा में उत्तीर्ण होना आवश्यक है।

हार्वर्ड विद्यालय ने साधारण शिक्षा व जीविका-विशेष की शिक्षाओं को एक में मिलाने का सदा विरोध किया है और ये इन दोनों उपर्युक्त परीक्षाओं में मिलाई नहीं जातीं—किन्तु विद्यार्थियों का बड़ा समूह इन दोनों परीक्षाओं की तैयारी तीन या साढ़े तीन वर्ष के परिश्रम में कर लेता है।

ए० बी० और एस० बी० की उपाधि तथा और अन्य उपाधियां भी उन्हीं को मिलती हैं जिन्होंने सम्पूर्ण शिक्षा यहीं ग्रहण की हो किन्तु अन्य विद्यालयों में शिक्षा द्वारा प्राप्त की हुई उपाधियां यहां आगे पढ़ने के लिये प्रामाणिक होती हैं। गर्मी के दिनों में छुट्टियों के समय पढ़नेवाले छात्रों तथा अन्य प्रकार से (Extension courses) शिक्षाग्रहण करनेवालों की सुविधा के लिये ए० ए० (Associaton Arts) की उपाधि १९१० में नियुक्त की गई है। इस उपाधि के लिये भी उतने ही पाठों का पढ़ना आवश्यक है जितना अन्य दोनों उपाधियों के लिये है किन्तु इसके लिये प्रवेशिका परीक्षा व छात्रालय में रहने की आवश्यकता नहीं है—किन्तु पत्र-व्यवहार से प्राप्त शिक्षा के लिए कोई उपाधि नहीं मिलती।

१८८६ से गिर्जे की हाजिरी छात्रों के लिए आवश्यक नहीं गिनी जाती। विश्वविद्यालय के गिर्जे में प्रतिदिन प्रातःकाल ईश्वरवन्दना होती है व रविवार को उपदेश भी होता है।

धार्मिक कार्यवाही के निरीक्षणार्थ पांच भिन्न २ सम्प्रदायों के पादरी नियुक्त हैं। इनपर एक प्रधान है जो विद्यालय में रहनेवाला अध्यापक होता है और वह विद्यालय का पुरोहित (Pastor) समझा जाता है। उपर्युक्त प्रत्येक पादरी लगातार कई सप्ताह तक उपदेश देता तथा उपासना कराता है व छात्रों से शंका समाधान भी कराता है। गिरजे के कार्य में मामूली छात्रमण्डलियों द्वारा सहायता मिलती है। ये मण्डलियां भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के गिरजों तथा रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय की हैं।

विद्यालय के भिन्न २ विभागों का लेखा, उनकी स्थापना की तिथि, छात्रों की संख्या (१९१२-१३) विद्वन्मण्डलों के सभ्यों की संख्या के सहित नीचे की तालिका में दी जाती है—भिन्न २ विद्वन्मण्डलों के सभ्यों की संख्या दोबारा आये हुए नामों को छोड़ कर १९१२-१३ में २४९ थी। इसके अतिरिक्त लगभग पदाधिकारियों की संख्या जो शिक्षक का कार्य करते हैं ५०० थी।

	किस सन् में स्थापित हुआ।	१९१२-१३ के छात्रों की संख्या।	सभापति सहित विद्वन्मण्डल के सभ्यों की संख्या।
ज्ञान-विज्ञान मण्डल			१६६
हार्वर्ड विद्यालय।	१६३६	२३०८	...
ज्ञान-विज्ञान-उपाधि पाठशाला	१८७२	४६३	...
कलाकौशल-शिक्षा-सम्बन्धी उपाधिशाला	१९०८	१०७	...
ब्रह्मविद्या मण्डल—ब्रह्मविद्यालय	१८१९	४८	७
कानून मण्डल—कानून पाठशाला	१८१७	७४१	११
चिकित्सा मण्डल	...	...	६१
चिकित्सा-शाला	[१७८२ [१८०६	२९०	...
दांत के रोगों की शाला	१८६७	१९०	...
विज्ञान-प्रयोग-शास्त्र मण्डल	...	...	३९
प्रयोगिक विज्ञान-उपाधि-शाला	[१८४७ [१९०६	१३२	...
जोड़	...	४२७९	...
सम्बन्ध छात्र (Affiliated Students)	...	...	...
विशेष छात्र* (Extension Students)	१९१०	९	...
(१९१२) की गर्मियों की ज्ञान-विज्ञानशाला	१८७१	८२३	...
गर्मियों की चिकित्साशाला (१९१२)	१८८९	२१८	...
चिकित्सा-उपाधि-शिक्षा (१९११-१२)	१८७२	१५६	...

आजीविका-सम्बन्धी उपाधि के शिक्षालय में प्रवेशार्थ किसी प्रामाणिक विद्यालय की उपाधि की आवश्यकता सर्वदा देखी जाती है। दांत के रोगों की पाठशाला में प्रवेश होने के लिये इसकी आवश्यकता नहीं है। किन्तु यहां प्रवेशिका परीक्षा ली जाती है।

आजीविका-सम्बन्धी शिक्षा में जो विशेष उन्नति अभी हुई है वह प्रयोगिक विज्ञान के सम्बन्ध में है। लारेन्स विद्यालय जो उपाधि-से नीचे की शिक्षा के लिए था उसका स्थान अब उपाधि-प्रयोगिक-विज्ञान विद्यालय ने लिया है। इस विद्यालय में निम्नलिखित पाठशालायें हैं जिनमें वास्तु-विद्या (साधारण-वास्तु-विद्या, यन्त्र-वास्तु-विद्या, विद्युत्-वास्तु-विद्या) Engineering (Civil, mechanical, electric) खनिजाविद्या (Mining) धातुशोधन-विद्या (Metallurgy) शिल्पविद्या (Architecture) भूप्रदेश-शिल्पविद्या (Landscape Architecture) अरण्यशास्त्र (farestry) प्रयोगिक जीवशास्त्र (Applied Biology.) ये आजीविका सम्बन्धी विद्याएँ पढ़ाई जाती हैं।

अभी हाल में (१९०२) स्थापित कलाकौशल शासन सम्बन्धी उपाधिशाला में निम्नलिखित विषय पढ़ने होते हैं। बहीखाता, वाणिज्य विष-

* ४१० विद्यार्थियों के अतिरिक्त जिन्हें विद्यालय की अधीनता में बोस्टन में शिक्षा मिलती है।

यक नियम, औद्योगिक प्रयुक्ति, वाणिज्य तथा व्यापार-सम्बन्धी शासन, महाजनी और सराफे के काम (Banking and finance) माल भेजना मँगाना (transportation) व बीमा, यह सब विषय उपाधिधारी छात्रों को कारबार में उचित निर्दिष्ट आसन दिलाते हैं।

ब्रह्मविद्या का विद्यालय पूर्व में युनिटे-रियन (Unitarian) सम्प्रदाय के अनुसार था किन्तु अब अनडिनोमिनेशनल (Undenominational) सम्प्रदाय के अनुसार चलता है, और इसके विद्वन्मण्डल में तीन सम्प्रदायों के अध्यापक हैं। इसके साथ एनडोवर थियोलोजिकल सिमीनरी (Andover Theological Seminary) सम्मिलित हो गई है। इसका कारण इस संस्था का केम्ब्रिज नगर में १९०८ में आगमन तथा यहाँ के विद्यालय के साथ सम्बद्ध होना है। इन दोनों शिक्षालयों का पाठ्यक्रम इस भाँति बनाया गया है कि उनमें आपस में मिल कर एक प्रकार पूर्णत्व आगया है।

रोगियों की सेवा-शुश्रूषा विषयक पाठशालाओं के लिये माससाचसेट्ट के साधारण चिकित्सालय तथा बोस्टन नगर चिकित्सालय व अन्य १० से अधिक चिकित्सालयों व औषधालायों में प्रबन्ध किया गया है। इस विषय में पीटर बेण्ट ब्रिघम चिकित्सालय (Peter Bent Brigham Hospital) के चिकित्साशाला के निकट बन जाने से और सहायता मिली है। इस चिकित्सालय का प्रबन्ध उसके दाता तथा चिकित्साशाला के कार्यकर्त्ताओं की संघशक्ति से होता है। ऐसाही प्रबन्ध बहुत से अन्य चिकित्सालयों के सम्बन्ध में भी है।

विश्वविद्यालय में भिन्न २ प्रयोगशालाओं को छोड़कर विशेष विज्ञान-सम्बन्धी संस्थाएँ ये हैं:—खनिज पदार्थों का अजायब घर (१७९३) (Minerological Museum), वनस्पति उद्यान (१८०७) (Botanical garden), मानमन्दिर (१८४३) (Astromonical observatory), चिड़िया-खाना या पशुशाला (१८५९) (Museum of Comparative zoology), ग्रे हरबेरियम (१८६४) (Gray Herbarium), पीबाडी म्युजिअम आफ अमेरिकन आरकेआलोजी व इथनोलाजी (१८६६) (Peabody museum of American Archacology and Ethnology), बिसी साहब की (कृषि-सम्बन्धी संस्था १८७१) (Bussey Institution) आरनाल्ड आरबोरेटम (१८७२) (Arnold Arboretum) व जंगलात (१९०७) (Harward forest at Petersham mall.)

विद्यालय के प्रधान पुस्तकालय के लिये विडनर स्मारक पुस्तकालय (Widener Menorial Library) बन रहा है किन्तु भिन्न २ विभागों का पुस्तकालय अलग २ है। कानून के पुस्तकालय में १९१२ में १.४८,००० पुस्तकें व १७,५०० गुटके थे व कम्पैरेटिव जूआलोजी का पुस्तकालय विशेष उपयोगी है। ब्रह्मविद्या-सम्बन्धी पुस्तकालय अब ऐंडोवर सिमीनरी पुस्तकालय के साथ मिला दिया गया है और इसका नाम ऐंडोवर हार्वर्ड थियोलाजिकल पुस्तकालय हो गया है। यहां १,००,००० पुस्तकें और ५०,००० गुटके हैं। विश्वविद्यालय के प्रधान पुस्तकालय में १९१२ में १८,६४,९०० पुस्तकें व गुटके थे। किन्तु इसकी प्राचीनता, पुस्तकों का संग्रह व अनमोल पदार्थों की दान से प्राप्ति आदि इसकी उपयोगिता को इसके आकार से कहीं अधिक बढ़ा देते हैं।

इस विश्वविद्यालय के साथ रेडक्लिक विद्यालय (Radcliffe College) भी सम्बद्ध है। यह पाठशाला स्त्रियों की है। यह १८७९ में अन्य नाम से स्थापित हुई थी व आनडोवर थियोलोजिकल सिमीनरी भी (१८०८) में स्थापित हुई थी जिसका वृतान्त अन्यत्र आचुका है, व सामाजिक कार्यकर्त्ताओं की पाठशाला (School for social workers) भी (१९०४) में स्थापित हुई थी।

जो लोग भिन्न २ आजीविका के कार्यों में सम्मिलित हैं उन्हें विशेष रूप से शिक्षा देने के लिये केवल गर्मियों की पाठशालाओं में ही नहीं किन्तु जाड़ों में भी बोस्टन नगर में एक समिति द्वारा प्रबन्ध होता है जो हार्वर्ड, टफ्टस्, मासाचस्टेट औद्योगिक संस्था व बोस्टन कालेज बोस्टन विश्वविद्यालय, बोस्टन संग्रहालय, वेल्सबी व सायमन के प्रतिनिधि है। (Representing Harward, Tufts, the wassachustts Institute of Lechnologye Boston callge, Boston Universiiy, the Boston Museum of five Arts, Wellesby and Simmons.)

विश्वविद्यालय के कार्य में (जमींदारी को छोड़ कर) ५०० एकड़ जमीन केम्ब्रिज व बोस्टन में घिरी है। इसके साथ और अन्य भूमि भी है। वास्तु-शास्त्र सम्बन्धी ७०० एकड़ जमीन है; न्युहैम्पशायर हार्वर्डवन २००० एकड़ (New hampshire Harward forest at Petersham, massachusetts, and the observotory at Arequipa, Peru.) है। इस समय भिन्न २ इमारतों का मूल्य ८०,०००,०० डालर अर्थात् ढाई करोड़ रुपया है। १९१२ की जुलाई में वह सम्पत्ति जिससे विश्वविद्यालय की आय होती है २,६०,०००,०० डालर के मूल्य अर्थात् सात करोड़ अस्सी लाख रुपये के मूल्य की थी। १९११-१२ की कुल आय २४,८५,००० डालर अर्थात् चौहत्तर लाख पचपन हजार रुपये हुई।

उसका ब्यौरा नीचे देखिये।

लागत से आय	११,९९,०००	डालर
छात्रों से किराया और फीस	८,६३,०००	,,
अन्य आय	९७,०००	,,
चलते काम के लिये दान	३,२८,५००	,,
कुल आय	२४,८७,५००	,,

व्यय इस भांति हुआ:—

शासन	९८,०००	डालर
विद्या सम्बन्धी	१३,६८,०००	,,
वैज्ञानिक खोज व अन्य बातें	६,९९,०००	,,
विद्यार्थियों को सहायता	१,९२,०००	,,
भूमि तथा इमारतों की मरम्मत	१,४६,५००	,,
कुल व्यय	२५,०३,५००	,,

१९०२ से १९१२ तक में बड़े छोटे दानों को मिला कर विश्वविद्यालय को १० वर्षों में कुल आय १६,३५,००० डालर प्रतिवर्ष में हुई।

हार्वर्ड विद्यालय में संयुक्त राष्ट्रों के सभी मार्गों से विद्यार्थी आते हैं आधे से कुछ कम विद्यार्थी आस पास के उन नगरों से ही आते हैं जो मासाचस्टेट प्रान्त के अन्तर्गत हैं। १९१२-१३ में हार्वर्ड कालेज में ५७ सैकड़ा विद्यार्थी इसी मासाचस्टेट प्रान्त के थे ५ सैकड़ा न्यूइङ्गलैंड के अन्य प्रान्तों से थे व बाकी ३८ सैकड़ा न्यूइङ्गलैंड के बाहर से आये थे। बहुत से छात्र हार्वर्ड कालेज तथा विश्वविद्यालय सम्बन्धी अन्य उपाधि पाठशालाओं तथा आजीविका सम्बन्धी पाठशालाओं में अपने परिश्रम से रोटी कमा कर पढ़ते हैं। छात्रवृत्ति तथा अन्य वृत्तियां हार्वर्ड कालेज में प्रतिवर्ष ७५,००० मूल्य की व अन्य आजीविका सम्बन्धी पाठशालाओं में १,०००,०० डालर के मूल्य की प्रतिवर्ष होती है। ये सब वृत्तियां विशेष दान तथा आय से दी जाती हैं। स्कूल या कालिज की फीस इसके लिये कभी नहीं छोड़ी जाती।

हार्वर्ड कालेज में छात्रों का जीवन हर प्रकार से उन्नत होता है व उपाधि न पाये हुए छात्रों के खेल कसरत का प्रबन्ध अत्यन्त उत्तम है। खेल कूद में मुख्य मुठभेड़ याले (Yale) विश्वविद्यालय से होती है। छात्रों की प्रधान सभा नागरिक संस्थाही है इससे अन्य कालेजों

से सम्बन्ध नहीं है। इनमें से बहुत कम सभाओं के भवनों में छात्रों के रहने का प्रबन्ध है उपाधि नहीं प्राप्त किए हुए छात्रों की सामाजिक संख्या उपाधिधारी तथा आजीविका सम्बन्धी छात्रों से बिलकुल भिन्न २ है इति।

यह उपर्युक्त वृत्तान्त इतना बढ़ा कर पूर्ण रूप से मैंने इस कारण लिखा है कि सुना है अपने देश में हिन्दू विश्वविद्यालय व मुसलमान विश्वविद्यालय बनने वाले हैं। यदि उन लोगों को जो इस कार्य में लगे हैं इस विवरण से कुछ लाभ हो तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

श्रीमती एनीबिसेंट का व्याख्यान।

बिहारी विद्यार्थियों को उपदेश।

कीपुर में बिहारी विद्यार्थियों की कान्फरेंस में सभापति की हैसियत से श्रीमती एनीबिसेंट महोदया ने जो व्याख्यान दिया, उसका अनुवाद नीचे दिया जाता है :—

मेरे युवक मित्रो, :—

आपने मुझपर बड़ा विश्वास और कृपा करके जो इतनी दूर मद्रास से बुलाया है इसके लिये सबसे पहले मुझे आपको धन्यवाद देना उचित है। तुम्हारी उठती हुई जवानी है और भविष्य की ओर तुम बड़ी उत्कण्ठा से टकटकी लगाये हो। और मैं एक वृद्धा स्त्री हूं, मेरी ढलती उम्र है और मैं उस संसार पर दृष्टि डाल रही हूं जिसमें मैं ६८ वर्ष पूरे कर चुकी हूं। हममें ऐसी कौन सामान्य बात है जिससे हम यहां वक्ता और श्रोताओं के रूप में एकत्र हुए हैं? निस्सन्देह यह भारतवर्ष के लिए हमारा सामान्य प्रेम और मातृभूमि की सेवा करने की हमारी इच्छा ही है। मुझे आशा है कि तुम अनेक वर्षों तक मातृभूमि की अच्छी सेवा करोगे और मेरी भी थोड़ी बहुत जो ज़िन्दगी है इसे मैं भी इसकी सेवा में लगा दूंगी। भारतवर्ष में तुम्हारी यह विद्यार्थियों की एक बड़ी महत्वपूर्ण सभा है और इसका सभापति होना एक मान की बात है। यह सौभाग्य की बात है कि तुम्हारे यहां के अफसरों ने तुम्हारी इस सभा के स्थापन करने का विरोध नहीं किया। जब सेंट्रल हिन्दू कालेज, बनारस, के उदार प्रिंसिपल मि० जी० एस० अरंडेल ने संयुक्तप्रान्त में तुम्हारी सी सभा आपित करना चाहा तो वहां के छोटे लाट ने इसका विरोध किया। केवल तुम्हारी जैसी सभा से ही जो महान उद्देश्यों की सिद्धि के लिये युवकों को एकत्र करती है, वास्तविक लाभ हो सकता है। यहां तुम्हें साथ मिल कर काम करने का मूल्य मालूम पड़ता है और यहीं तुम यह सीखते हो कि हर व्यक्ति को समष्टि के आधीन रहना चाहिये। यहाँ तुम पक्षपात की जगह विचारशक्ति और अंधविश्वास की जगह ज्ञान से काम लेना सीखते हो। यहीं तुम्हें मानवप्रकृति के रहस्यों को समझने की पहले पहिल शिक्षा मिलती है और यहीं तुम्हें किसी कार्य का संगठन करना और स्वतंत्रता और शान्ति का उचित उपयोग और विधान करना सिखलाया जाता है।

तरुण भारत का भविष्य।

तुम लोग, जो राष्ट्र के नवयुवकों के एक अंश हो, मैं तुम्हें भविष्य के सम्बन्ध में और सबसे अधिक इस विषय में कि भविष्य में अच्छी तरह और गौरव लाभ करने के लिये तुम्हें क्या तैयारी करनी चाहिये इससे अधिक मैं और क्या अच्छा उपदेश कर सकती हूं। यहां

यह कहना केवल सत्यही का पुनरुल्लेख करना है कि जैसे कली के भीतर चिपटी हुई फूलों की पत्तियों में फूल छिपा रहता है ठीक वैसेही राष्ट्र का भाग्य उसके युवकों में छिपा रहता है। तुम जो आज सोच रहे हो कल सारा राष्ट्र वही सोचने लगेगा। कुछ वर्षों में तुम्हारे ही चरित्रों के समान चाहे वे सबल हों अथवा दुर्बल, चाहे वे बुरे हों या भले, चाहे वे उदार हों अथवा निन्दित, चाहे वे बहादुरी लिये हुए हों अथवा ओछापन और चाहे वे पवित्र हों अथवा कलङ्कित उन्हीं के समान राष्ट्र के नागरिकों के चरित्र दिखलाई देने लगेंगे। तुम उन चरित्रों को अब उत्पन्न कर रहे हो और उन्हें उन संस्कारों के अनुसार जिन्हें तुम अपने वर्तमान शरीर के साथ लाये थे ढाल रहे हो क्योंकि मनुष्य जैसा सोचता है वैसा ही हो जाता है। पूर्व जन्म में तुम्हारे जो विचार थे उनसे वे चरित्र उत्पन्न हुए जिन्हें तुम इस संसार में लेकर आये; इस जन्म में भूतकाल में जैसे तुम्हारे विचार थे उनके अनुकूल धीरे धीरे तुम्हारे चरित्र वर्तमान रूप में ढले हैं; तुम्हारे वर्तमान विचारों से तुम्हारी बड़ी अवस्था के चरित्र उत्पन्न हो रहे हैं और तुम्हें ऐसे नागरिक बना रहे हैं कि जब हम बुड्ढे लोग चल बसेंगे, तो तुम सब लोग मिल कर एक भारत बन जाओगे। भारत ने तुम्हें जन्म दिया है, वह तुम्हारी जननी है; किन्तु भविष्य में तुम उसे अपनी कन्या के रूप में फिर जन्म दोगे। जीवन की बड़ी जंजीर में हरेक पीढ़ी सोने की एक कड़ी है; हर कड़ी की पहली कड़ियों से रक्षा हो रही है और हर कड़ी सब पिछली कड़ियों की रक्षा कर रही है। निस्सन्देह ये केवल सच्ची बातें हैं पर ये ऐसी सच्ची बात है जो जीवित रहती हैं और हमें इन्हें पथप्रदर्शक बनाना चाहिये और इनसे उत्साह ग्रहण करना चाहिये। "तरुण भारत" (Young India) के स्वयं ऐसे शब्द हैं जिनसे शिक्षा और उत्साह मिलता है क्योंकि पिछली शताब्दी ने उन्हें एक विशेष अर्थ के वस्त्र से भूषित किया है। उनका अभिप्राय देश के उन युवकों या तरुण लोगों से है जो देशभक्ति और एकता के उच्च आदर्श से प्रेरित हुए हों।

पहले इटली केवल भौगोलिक शब्द मात्र था; रोम, जो एक समय प्रजातंत्र और राजकीय एकता का प्राचीन नगर था उसमें घोर अत्याचार और अन्याय होने लगा था; वीनिस जो एड्रियाटिक समुद्र की रानी थी विदेशियों की अधीनता में था और नेपल्स भी बोरबन्स लोगों का शिकारगाह हो रहा था कि ऐसे समय में इटली का उद्धारकर्ता और उसे जीवन प्रदान करनेवाला गोसप मेज़नी अवतीर्ण हुआ। उसका सिद्धान्त कर्तव्य पालन था और उसके झंडे पर 'ईश्वर और प्रजा' लिखा था। उसकी शंखध्वनि सुनकर इटली के युवक दौड़ पड़े और उसकी सेवा में एकत्र हो गये और इस प्रकार तरुण इटली का जन्म हुआ। तरुण इटली ही के कारण गैरीबाल्डी का तलवार उठाना, कैवर की राजनीतिनिपुणता और विक्टर इमैन्युअल का मुकुट धारण करना सम्भव हुआ; संयुक्त इटली ही उसका कार्य था। इसी प्रकार तरुण जर्मनी ने आरम्भ में सुन्दरता से कार्य किया और संयुक्त जर्मनी का स्वप्न देखा और इसे सम्भव भी किया; पर क्योंकि यह एक ही ओर विशेष रूप से मुड़ी हुई थी, क्योंकि उसने उसी आदर्श को घृणित समझा जिसके अनुसार उसे रहना चाहिये था, क्योंकि अनात्मवाद (Materialism) उसमें पूरी तरह प्रविष्ट हो गया था; क्योंकि न उसने ईश्वर की भक्ति की और न लोगों से प्रेम किया इसलिए उसने जो संयुक्त जर्मनी उत्पन्न की उसने लोगों का उद्धार करने की जगह उन पर अत्याचार किया और इसके आचार्य बिस्मार्क और रक्तक मोल्टके हुए।

तरुण रूस जो अमीर था और गरीब हो गया, जो बड़ा कुलीन था और मज़दूर होगया,

उसने स्वाधीनता के लिये अपना जीवन दिया और लोगों के उद्धार करने में उसे बलि चढ़ना पड़ा। इस तरुण रूस से वह रूस उत्पन्न हुआ जिसे हम आज देखते हैं और अब वह अजय, सर्वस्वत्यागी और सर्वसहिष्णु है। जो रूस गुलामी से जकड़ा हुआ था वह स्वाधीन है।

इस प्रकार तरुण भारत का अभिप्राय राष्ट्र के उन युवकों से है जो सब मतभेदों और सब प्राचीन बैरभाव को भूल कर 'संयुक्त भारत' ही को अपना मूलमन्त्र बनावें और उसके झंडे पर यह लिखा हो:—"मातृभूमि की पूजा करो, वन्दे मातरम्।"

मातृभूमि की पूजा कैसे होगी? तरुण भारत स्वाभाविक ही दो बड़े भागों में विभक्त हैं (१) नये रँगरूट अर्थात् वे विद्यार्थी जो भविष्य के लिये तैयारी कर रहे हैं और (२) शिक्षित सिपाही अर्थात् वे युवक जो अब विद्यार्थी नहीं हैं और जिन्होंने संसार में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है। आज संसार में जो महायुद्ध हो रहा है उसमें तुमने देख लिया है कि जब इंगलैंड में उत्साह और जोश में भरे नये रंगरूट सेना में भरती होते हैं तो वे फौरन ही लड़ने के लिये युद्ध में नहीं भेजे जाते पर उनसे खूब मेहनत ली जाती है और लगातार कष्ट सहने पड़ते हैं और उन्हें खाई खोदना, उनमें लेटना, उछलना, कूच करना, गोली चलाना, रुक जाना और आज्ञा पालन करना सिखाया जाता है। तुम्हें स्मरण है कि अफसरों ने रंगरूटों की खोदी हुई खाइयों को देखा और ताने से कहा 'हां; खाइयां बनाई हैं। इन खाइयों में खालवेशन आरमी से भी रक्षा होना कठिन है।' दूसरे अफसर ने उन लोगों को जो गोली के डर से पीछे भागना चाहते थे देखकर कहा, "बहुत अच्छा पर ऐसा करोगे तो तुम सब की पीठ में गोली मार दी जायगी।" लोगों को बिना शिक्षा, बिना योग्यता और बिना ज्ञान के युद्ध में भेजना ऐसा ही है जैसे भेड़ों को कसाईखाने में भेज देना।

और सज्जनो, क्या आप समझते हैं कि मातृभूमि और स्वतंत्रता देवी की सेवा करने के लिये आपका नाम दर्ज हो सकता है, और आप योंहीं सीधे अत्यन्त गौरवशाली और धर्मपूर्ण युद्धों में, उन युद्धों में जिनसे राष्ट्रीय स्वराज्य उत्पन्न होता है और जिनसे राष्ट्र स्वतंत्र हो जाता है, बिना पहले राष्ट्रीय रंगरूट हुए, बिना उस योग्यता को प्राप्त किये जिससे ही नागरिकता मिलनी सम्भव है और बिना उस शिक्षा के प्राप्त किये जो जवानों को आदमी और आदमियों को नागरिक बनाता है लड़ने के लिये जा सकते हैं? क्या तुम उस गरम जोश के उबाल में जो तुम्हें मातृभूमि की सेवा करने के लिये अपना नाम दर्ज करने को प्रेरित करता है, यह समझते हो कि तुम इसी समय तत्काल ही कार्य करना चाहते हो? नया रंगरूट यही समझता है। पर सिपाही बनने के लिये उसे बड़ी कठिन शिक्षा ग्रहण करनीपड़ती है और बिना ऐसा किये वह देश की फौजी वर्दी पहनने का अधिकारी नहीं। यदि तुम से कहा गया कि राष्ट्रीय सेवा करने में तो आरम्भ में कठोर शिक्षा दी जाती है तो क्या तुम्हारा जोश ठंडा पड़ जायगा? यदि यही बात है तो तुम्हारा जोश तिनकों की उस आग के समान है जो चर-चरा कर बड़े ज़ोर से चलती है और फिर शीघ्र ही बुझ जाती है। देशपक्ष के योग्य तो केवल यही जोश है जो कठिनाइयों, बड़े बड़े कष्टों और कठोर से कठोर नियमों के पालन करने में भी कभी ठंडा न पड़े और सदा गरम बना रहे। मातृभूमि के मन्दिर को उस अग्नि से अपवित्र करने का साहस मत करो जो नियमित शिक्षा की फूंक में ही बुझ जाती है। स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये उसी जोश की ज़रूरत है जो पीटे हुए उस स्टील के समान हो जो नियमित शिक्षा की भट्टी में शुद्ध हुआ हो, विद्या की

निहाई पर कूटा गया हो और लाल गरम ही गरम कष्टों रूपी बरफ के ठंडे जल में डाला गया हो यहां तक कि उसमें ऐसी शक्ति हो जाय कि वह किसी से टूट न सके, उसमें इतनी दृढ़ता आजाय कि वह किसी से लच न सके, इसमें ऐसी तीक्ष्णता आजाय कि उसे कोई रोक न सके और ऐसी कोमलता हो जिसका किसी पर प्रभाव पड़े बिना न रहे। जब तुम्हारे चरित्र दुरुस्त किये हुए स्टील के समान होंगे तभी तुम मातृभूमि की वास्तविक सेवा करने के योग्य होगे।

नई ज़िम्मेदारी।

इसके पहले कि मैं तुम्हें यह बतलाऊं कि स्वतंत्रता के सिपाही बनने के लिये तुम्हें क्या क्या तैयारी करनी चाहिये पहले मैं तुम्हें वे कारण बतलाती हूं जिनके कारण यह तैयारी करना इतना अधिक जरूरी हो गया है जितना कि पिछली डेढ़ शताब्दी से भी अभी तक नहीं हुआ था। तुम जवान आदमी जो आज स्कूलों और कालेजों में शिक्षा पारहे हैं तुम्हारे ही द्वारा नवीन भारत बनेगा—वह भारत बनेगा जिसमें औरों का शासन दूर होकर स्वराज्य होगा। वह भारत इसी प्रकार बनेगा जैसे सुरों और असुरों ने समुद्र मथ कर लक्ष्मी निकाली थी। नवीन भारत तुम्हारे और तुम से हज़ारों लोगों द्वारा बनेगा, सन्मार्ग पर चलेगा और संगठित होगा। तुम स्कूल और कालेज के विद्यार्थियों में ही से भारत के भविष्य राजनीतिज्ञ, नेता, जेनरल, ऐडमिरल, जगत सेठ और शासक बनेंगे। यही नहीं, तुम्हीं में से इम्पीरियल कौंसिल के—उस इम्पीरियल कौंसिल के जो महान् साम्राज्य की भाग्यविधात्री बनेगी—मेम्बर बनेंगे। यही कौंसिल यदि उदार, निस्स्वार्थ पवित्र और धर्मशील राजनीतिज्ञों के हाथ में होगी तो इससे सारे संसार का कल्याण होगा और यदि ओछे, स्वार्थी, दुनियबी और बुरे लोगों के हाथ में रहेगी तो इससे सब को बड़ा कष्ट मिलेगा।

इङ्गलैंड में युवकों को जितनी सख़्ती से नियमों का पालन करना पड़ता है उतनी सख़्ती यहां नहीं है; इसका कारण बहुत सीधा सादा और स्पष्ट है। हारो और ईटन के क्रीड़ाक्षेत्रों के विद्यार्थी अपनी निर्द्धारित सीमाओं के बाहर नहीं जाते और आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज के चहारदिवारियों में रहनेवाले युवक उन पब्लिक लेक्चरों में नहीं जाने पाते जो उक्त यूनिवरसिटियों के वाइस-चैन्सलरों की बिना आज्ञा होते हैं। युवावस्था में उन्हें आज्ञा पालन करना सिखाया जाता है कि बड़े होने पर वे शासन कर सकें, उन पर इसलिए शासन किया जाता है कि वे आत्मशासन करना सीखें। नियमों के पालन करने के बन्धन में वे बँधे रहते हैं कि वे स्वतंत्र राज्य के स्वतंत्र नागरिक बनने के योग्य हों। यहां इस बात की परवाह नहीं की जाती कि तुम नियमों का पालन करो, चाहे जैसे रहो और चाहे जैसे खाओ पीओ क्योंकि बड़े होने पर स्वतंत्रता की ज़िम्मेदारी तुम पर नहीं है। यदि कोई दिक्कत होगी तो दूसरे इसको दूर कर देंगे। यदि दंगा फ़साद होगा तो दूसरे ही इसे दबा देंगे। यदि कोई संकट आवेगा तो दूसरे उसे दूर करने का यत्न करेंगे। यदि तुम्हारे देश पर कोई आफत आवेगी तो दूसरे ही उसकी रक्षा करेंगे।

पर अब सब बातों में परिवर्तन हो रहा है, इसलिए तुम्हें भी उनके अनुकूल होना चाहिये और जवानी में तुम्हें स्वतंत्र लोगों की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। क्योंकि जब तुम पूरे आदमी बनोगे तो भारतवर्ष के अमनचैन और उन्नति के तुम ही ज़िम्मेदार होगे; बड़े अभिमान के साथ तुम्हें स्वतंत्रता की जिम्मेदारी भी अपने ऊपर लेनी चाहिये। और स्वतंत्रता देवी बड़ी रूपवती है पर टेढ़ी है; वह दृढ़ और निष्कलंक शस्त्रधारी योद्धा है। जो वीर उसके

संग जा रहे हैं वे बड़े मर्द हैं, निर्बल नहीं हैं और उसे अपनी सेवा के लिये मरे गिरे काहिलों की नहीं किन्तु मर्दों की ज़रूरत है।

बिना तैयारी किये तुम कार्य आरम्भ करोगे तो वही होगा जैसे नये रंगरूट युद्ध में चले जाँय जिनसे शत्रु की सेना की अपेक्षा अपनी ही सेना की अधिक हानि है। तुम में से बहुत से नहीं जानते कि राजनैतिक मामले कैसे भारी होते हैं, राजनैतिक कार्य कैसे दूरदर्शिता लिये हुए होते हैं, किस प्रकार राष्ट्र के संयुक्त शरीर के भाग आपस में एक दूसरे के आधीन हैं, किस प्रकार उतावली करने से सर्वनाश होता है और मूर्खता से सङ्कट उत्पन्न होता है और किस प्रकार गलती से अनजाने अत्याचार होते हैं। राजनीति में लोग ऐसे कार्य करते हैं जिनसे लोगों की जानें चली जाती हैं, लोग भूखों मर जाते हैं या सारा राष्ट्र ही सुख-समृद्धि से हरा-भरा हो जाता है अथवा करोड़ों स्त्री पुरुषों और बालबच्चों को अक्षय सुख मिल जाता है या जन्म भर के लिये वे पत्थर से मारे जाते हैं और जहाँ जंगल है वहां मंगल हो जाता है और जहां बड़े बड़े भवन हैं वहां वन हो जाता है। यदि पत्थर के मन्दिर इतने पवित्र समझे जाते हैं कि उनमें अपवित्र पुरुष का पैर न पड़ जाय तो क्या उस मन्दिर में जो लोगों की जानों का बना हुआ है और लोगों के उद्धार ही के लिए जिसकी प्रतिष्ठा हुई है क्या उसमें अपवित्र और अयोग्य पुरुष घुसेंगे? तुम लोग जो विद्यार्थी हो क्या मर्द होने पर इसमें घुसोगे?

इस समय तुम किस प्रकार तैयारी करोगे?

तुम मुख्य कर चार चीजों के बने हो; एक तो शरीर जो तुम्हारे सब काम करता है; दूसरे मनोभाव जो तुम्हारे सुख-दुःख और पाप पुण्य के मूल हैं; तीसरे तुम्हारा मन जो तुम्हारा चरित्र बनानेवाला और सब कार्यों का सञ्चालक है; चौथे हृदय का स्वामी अविनाशी आत्मा जिसकी परिपूर्णता की टूटी हुई किरनों को हम सज्जन, रूपवान् और सत्यवादी कहते हैं।

शरीर, मनोभाव और मन इन तीनों का एक खेत है जिसे तुम जो चेतन रूप हो तुम्हें जोतना चाहिये और इसमें किसी बड़ी सुन्दर फसल का बीज बोना चाहिये।

शरीर।

कुछ काल से भारतवासी शारीरिक बल को हीन समझ रहे हैं, यद्यपि यह भ्रम अब दूर हो रहा है। प्राचीन काल में जैसी अच्छी औसत और कुशलता से शरीर संगठित करने का उपदेश दिया गया है उसे लोग बिलकुल भूल गये हैं और यह समझने लगे हैं कि योग और संन्यास ही मनुष्यजीवन की हर दशाओं में उपयुक्त है। योग और संन्यास के साधन के लिये भी पुष्ट शरीर की आवश्यकता है। शूद्रों का दृढ़ बल और उनकी सहिष्णुता, वैश्यों की धनसमृद्धि और उनके गार्हस्थ सुख और क्षत्रियों के साहस, तेज, वीरता और दृढ़ता, इन सब गुणों को लोगों ने पीछे हटा दिया और वृद्धावस्था के दार्शनिक, योगी और संन्यासी ब्राह्मण के सदृश 'मृदु हिन्दू' को लोग आदर्श भारतवासी समझने लगे हैं। किन्तु पृथ्वीराज, कृष्ण और शिवाजी और राजपूत और मरहठों में विशेष मृदुता न थी। किन्तु इस समय मृदु हिन्दू सिद्धान्त अच्छा समझा गया है और सारे भारतवर्ष के ऊपर इसका ऐसा पलस्तर चढ़ाया गया है कि स्वयं भारत सन्तान हजारों वर्षों के वीरता भरे इतिहास को भूले जाते हैं और वे सब बातें मृत्यु के तुल्य हो गई हैं क्योंकि लोग उन्हें भूल गये हैं। अब तुम्हें मातृभूमि के सेवा के लिए शरीर को दुरुस्त करना चाहिये, यह शरीर उसी का

है और उसे दृढ़, साहसी और सहिष्णु शरीरों की आवश्यकता है जिनके मजबूत पुट्ठे और हड्डियां कड़ी हों। कोमल, लटकते हुए, मोटे और काहिल शरीर स्वतंत्रता के योग्य नहीं है, वे केवल गुलाम होने ही के योग्य हैं और स्मरण रक्खो कि युवावस्था ही ऐसा समय है जब शरीर बलिष्ठ और पुष्ट हो सकता है। तुम आजन्म विद्याध्ययन कर सकते हो किन्तु तुम्हारे शरीर के भाग्य का निपटारा जवानी ही में होता है। यदि उस अवस्था में शरीर का दुरुपयोग किया जाय तो यह कमी फिर कभी पूरी नहीं होती।

तो अब तुम्हें अपने शरीर के लिये क्या करना चाहिये? तुम्हें ऐसा भोजन करना चाहिये जो अच्छा, सादा और पुष्ट हो और तीक्ष्ण न हो। बहुत अधिक मीठा मत खाओ, बहुत मसाले और मिर्च मत खाओ, ऐसे खाद्य पदार्थ मत खाओ जिससे तुम स्वाद के कारण बहुत ज्यादा भोजन करो। अच्छी तरह सोओ और न बहुत रात तक पढ़ो और न अपना सबक याद करने के लिये बहुत जल्दी उठो। कसरत करो, दौड़ो, उछल कूद करो और चढ़ो उतरो और कसरत इतनी करो कि पूरी तरह दम भर जाय और कसरत बड़ी प्रसन्नता और फुरती से करो। डम्ब-बेल करना, लाठी चलाना, घूसेबाजी करना और तैरना सीखो। भारत-सन्तानों से मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं कि अपने शरीर बिलकुल साफ सुथरे रक्खो, और अच्छे हिन्दुस्थानी कपड़े अच्छी तरह पहनो और भद्दे कटे हुए विलायती कपड़े मत पहिनो जो धुल नहीं सकते और मैले हो जाते हैं और भद्दे मालूम होते हैं।

तुम जितेन्द्रिय बनो और शरीर पवित्र रक्खो और ऐसा होने के लिए अपने हृदय से कभी स्त्री का स्मरण न करो और कभी अपनी ज़बान पर गंदी बात न आने दो और अपवित्र चर्चा न करो। यदि तुम पाप की बातों में अपना मन लगाओगे तो कैसी भी कसरत या खेलकूद क्यों न करो तुम्हारा शरीर कभी बलिष्ठ नहीं हो सकता। यदि कोई लड़का तुम से बुरी बात कहे तो घृणा से उसे कहो कि चुप हो जाय और यदि न माने तो उठा कर उसे पटक दो। भारत की अगली पीढ़ी के तुम पिता बनोगे और भारतवर्ष की ओर से अमानत के तौर पर वह पवित्रता तुम्हारे पास रक्खी हुई है जिसके ही द्वारा तुम शक्तिशाली हो सकते हो। जिस युवा का चरित्र पवित्र होता है वह बड़ा वीर और साहसी होता है और उसकी बड़ी आयु होती है। बाल्यावस्था में पाप के कारण जिनके शरीर क्षीण हो गये हैं उन्हें देख कर दया आती और घृणा होती है। उनके कार्य मनुष्यत्व के विरुद्ध हैं। ठीक ही और बड़ी बुद्धिमानी से प्राचीन लोगों ने विद्यार्थियों को ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने का उपदेश दिया था।

मनोभाव।

युवाओं के मन के भाव दृढ़ होते हैं और उनके अनुसार वे कार्य करते हैं। यदि तुम भविष्य में मातृ-भूमि की सेवा करना चाहो तो तुम्हें आत्मसंयम सीखना चाहिये और ठीक मनोभावों से काम लेना चाहिये और गलत मनोभावों से दूर ही रहना चाहिये। तुम्हें अपने में साहस और सहिष्णुता, दया और सहायता करने की शक्ति, सत्य और परोपकार उत्पन्न करना चाहिये। तुम्हें सब पूज्यों की पूजा करनी चाहिये—ईश्वर, मातापिता और गुरू की तुम्हें पूजा करनी चाहिये, तुम्हे निर्बलों की रक्षा करनी चाहिये, वृद्धों में नम्रता दिखानी चाहिये और जो गरीब हैं और तुम से पद में नीचे हैं उनके साथ सज्जनता का व्यवहार करना चाहिये। उस आदमी से कभी अप्रिय वचन न कहो जो अपने पद के कारण तुम्हें अप्रिय उत्तर न दे सके और अपने बड़े के साथ गुस्ताखी मत करो। कभी भय या लालच से

झूठ मत बोलो और किसी की खुशामद करने के लिये कपट मत करो।

मनोभावों को शिक्षा देने में अंगरेज़ी खेल उपयोगी हैं क्योंकि उनके द्वारा तुम आत्मसंयम और अच्छा स्वभाव सीखते हो। बिना किसी विशेष सम्बन्ध के तुम विजय प्राप्त करते और हँसते हुए पराजय स्वीकार कर लेते हो। उनसे हम यह भी सीखते हैं कि हर आदमी को अपनी टीम की अधीनता स्वीकार करनी चाहिये और पूरी टीम की हार जीत के सामने अपनी हार जीत को तुच्छ समझना चाहिये। उनके द्वारा नेतृत्व की शक्ति, नेता में राजभक्ति, किसी बात को तत्काल विचार लेना, फौरन काम करना ये सब बातें भी सीखते हैं। यदि तुम साहस मान, बहादुरी और उदारतापूर्वक खेलो तो जीवन के बड़े खेल में बहुत अच्छे खेलोगे।

मन।

बहुत से लोग भ्रमवश समझते हैं कि शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य मन को सुधारना है पर बुद्धि को शिक्षित करने के महत्व को कम समझना मूर्खता है। यदि प्रजातंत्र शासन में मूर्ख आदमी स्वतन्त्र हो तो जिस औसत में उसे स्वतंत्रता प्राप्त है उसी औसत में वह प्रजातंत्र के लिये संकट का देनेवाला है। वह लड़का है जिसकी रक्षा करनी चाहिये, जिसे सहायता देनी, सन्मार्ग पर लाना और सिखलाना चाहिये किन्तु स्वतन्त्र जातियां अपनी नीति निर्द्धारित करने में जोखिम उठाकर उसे सम्मति देने का अधिकार देती हैं। यदि तुम अच्छी तरह मातृभूमि की सेवा करना चाहते हो तो तुम्हें खूब और अच्छी तरह अध्ययन और मनन करना चाहिये। स्मरण रक्खो कि शिक्षा का अभिप्राय यह नहीं है कि बहुत सी बातों को याद कर लो; इसका अभिप्राय मानसिक शक्तियों को काम में लाना और उन्हें अपने आधीन करना है कि तुम उन्हें किसी विषय में लगा सको और जीवन के उपस्थित प्रश्नों पर स्पष्ट रूप से और अच्छी तरह विचार कर सको। किसी चीज की आलोचना, यथार्थता, विचारणा, श्रेणी विभाग करने की शक्ति, चीजों को अपने ठीक औसत में देखना अर्थात् उनके यथार्थ मूल्य और एक चीज से दूसरी चीज के सम्बन्ध को समझना ये सब गुण तुम्हें अपने में उत्पन्न करने का यत्न करना चाहिये। सोचना ही आपस में एक चीज का दूसरी चीज से सम्बन्ध आपित होना है। तुम्हें सोच कर और निश्चित रूप से विचार करने की आदत डालनी चाहिये क्योंकि नियमित और संगठित विचार ही चित्त की एकाग्रता है और बिना चित्त की एकाग्रता हुए बड़े बड़े विषय पूरी तरह समझ में नहीं आसकते।

तुम जिस प्रकार जीवन व्यतीत करना चाहो उसके अनुसार विशेष रूप से तुम्हें शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये; पर तुम सब को अपने देश का इतिहास पढ़ना चाहिये और यह समझ लेना चाहिये कि राष्ट्रों के उत्कर्ष में इतिहास का बड़ा महत्व है। मैं श्री राम या ऋषियों के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहती। तुम वही लो जिसे विलायत के लोग इतिहास कहते हैं और जिसे उन्होंने खण्डहरों और कब्रों से संग्रह किया है। पुरातत्ववेत्ता कहते हैं कि प्राचीन बैबीलन बड़ा सम्पन्न और समृद्ध देश था; ५००० वर्ष हुए बैबीलन का हर तरह से चढ़ता समय था उस समय भारतवर्ष उससे व्यापार करता था। प्राचीन निनेवा के महत्व को भी तुम ने सुना है; भारतवर्ष की धनसम्पत्ति से मुग्ध होकर निनेवा के सेमीरामस ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया। ईसामसीह के २००० वर्ष पहले मिश्र की रक्षित लाशें (Mummies) हिन्दुस्तान की सुन्दर मलमलों में लपेटी जाती थीं। अब बैबीलन कहां है? अब वह पृथ्वी के पेट में समा गया है। निनेवा कहाँ है? अब उसके ऊपर रेतीले मैदान हैं। अब मिस्र की महत्ता

कहां है ? अब यात्री लोग निडर होकर उसके महापुरुषों की कब्रों पर गोली का निशाना लगाते हैं। वे सब कहां हैं ? वे मर गये। और भारतवर्ष जो उनके बने समय में उनका मुकाबला करता था अभी तक बना है । तो अब भारतवर्ष का सच्चा इतिहास पढ़ो; चन्द्रगुप्त और अकबर के साम्राज्यों का वृत्तान्त पढ़ो; कोशला और काशी के राज्यों का हाल पढ़ो और इधर राजपूताने के राज्यों, मुगलों की महत्वपूर्ण बातों और मरहटों के राज्य का इतिहास भी पढ़ो और तब अपने मन में सोचो कि क्या इस अविनाशी देश का कभी नाश हो सकता है और यदि १५० वर्ष के विदेशी राज्य ने ५,००० वर्ष के इस शक्तिशाली और समृद्ध भारतवर्ष को नामर्द (emasculated) कर दिया है तो क्या तुम्हें कुछ लज्जा भी आती है ? अपने देश के इतिहास का अध्ययन और मनन करो क्योंकि इतिहास ही के द्वारा देशभक्ति का पोषण होता है।

इंगलैंड का इतिहास पढ़ो; यह देखो कि सैक्शनों के समय में किस प्रकार स्वतंत्रता उत्पन्न हुई और रनीमेड में उसका पुनर्जन्म हुआ; राजा पहले ऐडवर्ड के समय में इङ्गलैंड के नागरिकों, व्यापारियों और प्रथम कामन लोगों का उत्कर्ष देखो; राजाओं और अमीरों में और राजा और प्रजा में जो लड़ाई झगड़े हुए हैं उन्हें देखो; यह भी देखो कि हैम्पडन, पिम और क्रामवेल की अधीनता में स्वतंत्रता के लिये कैसा लड़ाई हुई और वेस्टमिनिस्टर में लोगों पर मुकदमे चले और ह्वाइटहाल में वे फाँसी पर लटकाये गये; पिछली सत्रहवीं, अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में स्वतंत्रता की लड़ाई का इतिहास पढ़ो, उन दशाओं का मनन करो जिनके कारण शेली की मर्मस्पर्शिनी कविता उद्भूत हुई; स्वतंत्रता की उस पवित्र वायु में विचरण करो जो इङ्गलैंड के फेफड़ों में भर गई, जिसने उसे गुलामों का उद्धारकर्ता, निर्बलों का रक्षक और मेज़िनी, कास्थ और क्राप्टकीन का शरणस्थान बनाया। इतना सब जान लेने पर ही तुम समझोगे कि ईश्वर ने इङ्गलैंड को भारतवर्ष में क्यों भेजा।

इन सब बातों को तुम्हें अध्ययन और मनन करना चाहिये । यदि तुम सार्वजनिक जीवन द्वारा अथवा वकालत द्वारा देश की सेवा करना चाहते हो तो सम्पत्ति शास्त्र का अध्ययन करो और उसे देश की अवस्थाओं के अनुकूल काम में लाना सीखो और समझ लो कि यह आवश्यक नहीं है कि जो बात इङ्गलैंड के लिये उपयोगी हो वह भारतवर्ष के लिये भी उपयोगी है। तर्क शास्त्र को पढ़ो कि यथार्थ और भ्रमात्मक बातों को समझ सको और उच्च साहित्य का अध्ययन करो कि तुम्हारे मनोभाव पवित्र हों, तुम अपने आदर्श निर्द्धारित कर सको और तुम्हें तुम्हारे कार्यों में उत्तेजना मिल सके। और महापुरुषों के जीवन-चरित्र पढ़ो और उन पर अच्छी तरह विचार और मनन करो; इस प्रकार उनकी महत्ता तुम में फिर से उत्पन्न होगी।

यदि तुम व्यापार या खेती द्वारा देश की सेवा करना चाहते हो तो भारतवर्ष के शास्त्र और विलायत का पदार्थ-विज्ञान पढ़ो । नई नई चीज़ों को ईजाद करो, उनकी परीक्षा करो, प्रकृति के छिपे हुए रहस्यों को पूरी तरह समझो और उसके अपरिवर्तनशील नियमों को सीखो। स्वास्थ्य-विद्या (Sanitation and hygiene) को पढ़ो और जिस प्रकार इससे विलायतवाले लाभ उठा रहे हैं उसी प्रकार तुम भी अपने देश की अवस्था के अनुकूल नगरों और गाँवों को साफ रक्खो और अपना स्वास्थ्य सुधारो।

यदि तुम अध्यापक का प्रतिष्ठित कार्य कर मातृभूमि की सेवा करना चाहते हो तो विलायतवालों के नई प्रकार से शिक्षा देने के उपायों को अवश्य सीखो। इनसे तुम्हें अच्छी सहायता मिलेगी और जब तुम अपनी शिक्षा समाप्त कर

औरों को पढ़ाओगे तब तुम्हारे द्वारा शिक्षा का पुनर्संस्कार होगा।

मन को शिक्षित करने का विषय बड़ा भारी है और मैं यहाँ उसके सम्बन्ध में केवल दो चार ही बातें कह सकती हूँ। पर तुम जो कुछ पढ़ो लिखो उसे माता ही के लिये करो; और यदि तुम अपने सब कार्य उसके अर्पण कर दोगे और समझोगे कि जो कुछ कर रहे हैं यह सब उसीकी सेवा करने के लिये तैयारी है तो बड़े से बड़े कष्ट को तुम प्रसन्नता से सहोगे और ऐसे विषयों के अध्यपन और मनन को भी जिनमें आदमी का मन बिलकुल ऊब जाता है बड़े प्रेम से करोगे क्योंकि तुम्हें यह आशा रहेगी कि भविष्य में इन सब का उपयोग होगा। शरीर, मनोभाव और मन ये सब उसी के निमित्त उत्सर्ग हैं और उसकी सेवा करने ही के लिये मनुष्य का इन पर अधिकार है।

आत्मा।

इस आत्मा के सम्बन्ध में जो तुम सब के हृदयों ही में है मैं क्या कह सकता हूं? संसार के सभी धर्मों का उद्देश्य आत्मा और ईश्वर का यथार्थ ज्ञान हो जाना ही है। उनकी ऊपरी रीति-रस्में इसीलिए बनाई गई हैं कि उनसे शरीर दुरुस्त रहे, आलस्य दूर हो, लोग सब चीजों में कुपथ्य से बचें और अत्याचारी प्रभु की जगह उपयोगी सेवक बनें। उनके नैतिक उपदेश इस लिये बने हैं कि उनके द्वारा मनोभाव संस्कृत हों और अत्यन्त पवित्र उद्देश्य ही में लगें। उनके वेदान्त और दर्शनों का यही उद्देश्य है कि लोगों में बुद्धि का अत्युच्च विकास हो। किन्तु धर्म का तत्वपदार्थ एकता और अपने हृदय के भीतर और बाहर इस संसार में एक ही ईश्वर का ज्ञान होना है। संसार में ईश्वर का ज्ञान होने का अर्थ यही है कि संसार के सब प्राणियों को अपना भाई समझना।

भारतवर्ष में सभी बड़े बड़े धर्म मौजूद हैं और कुछ लोगों का विचार है कि धार्मिक मतभेदों के कारण सच्ची राष्ट्रीयता के उत्पन्न होने में सदा बाधा पड़ेगी। जो लोग ऐसा कहते हैं उनका विचार ठीक नहीं है। भिन्न भिन्न धर्मों की ऊपरी बातों में भेद है और अज्ञानी लोग व्यर्थ की बातों में झगड़ते हैं। किन्तु धर्मों का हृदय एक है अर्थात् ईश्वर और मनुष्य से प्रेम करना। बिहार में हिन्दू मुसलमान एक साथ प्रेम और सुख से रहते हैं और एक दूसरे का आदर करते हैं। तो अब बिहारी विद्यार्थियों को चाहिये कि वे संयुक्त भारत को धार्मिक सहिष्णुता का उपहार प्रदान करें। सर्वसाधारण की सेवा करनेवाले प्रसिद्ध मुसलमान बिहार में उत्पन्न हुए हैं और उनके होने का हिन्दू और मुसलमानों को समान अभिमान है। अन्यत्र भी सब जगह भारतवर्ष में यहाँ के समान धार्मिक मतभेदों और झगड़ों की जगह लोगों में सामान्य प्रेम और अभिमान का प्रचार होना चाहिये।

विद्यार्थियों के कार्य।

विद्यार्थियों को किस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये इस विषय में मैं बहुत कह चुकी हूं; किन्तु बाहरी संसार से विद्यार्थियों का क्या सम्बन्ध है। हमारा नया रंगरूट खाई खोदना, कूँच करना, शस्त्र चलाना और गोली चलाना सीखता है। वह सिवा इसके और किस तरह लड़ने के लिये तैयार हो सकता है। और यही दशा तुम्हारी है। वर्तमान राजनैतिक विषयों से तुम्हें प्रेम रखना चाहिये, अखबारों में उन्हें पढ़ना चाहिये और अपनी विचार-सभाओं में उन पर वादानुवाद करना चाहिये। यदि सम्भव हो तो सेंट्रल हिन्दू कालेज, बनारस के समान एक पार्लामेंट बनाओ जहां तुम सब प्रकार की कानून बनानेवाली संस्थाओं के प्रकार जान सको, और उत्तम रूप से वादानुवाद करना, प्रसन्नता से अपने पक्ष का खंडन सहना, गंभीरता से तर्क करना, सब बातों को बिलकुल

ठीक बतलाना और अपनी बातों को स्पष्ट रूप से समझाना सीख सको। अथवा आक्सफर्ड या कैम्ब्रिज के समान एक यूनिवर्सल प्रकार की संस्था बनाओ जहाँ ग्लैडस्टन और अन्य लोगों ने पहले पहल अपनी सफलता प्राप्त की। पहले प्रायः तुम्हारी सम्मतियां भद्दी, एक पक्ष को लिये हुए और अतिशयोक्ति भरी होंगी; आरम्भ में वे और क्या हो सकती हैं। इस समय उनका भद्दा होना अच्छा है पर जब तुम सर्वसाधारण की सेवा करने लगोगे उस समय उनका भद्दा होना अच्छा नहीं क्योंकि उससे अन्य लोगों के जीवनों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। यदि तुम अपनी हँसी कराना नहीं चाहते तो इन बातों के कारण तुम सब विषयों को अच्छी तरह अध्ययन और मनन करने को बाध्य होगे। यदि तुम अच्छे वक्ता हो और तुम्हारी वाणी में मधुरता है तो ख्याल रक्खो कि तुम्हारी वाणी की अपेक्षा तुम्हारा ज्ञान पीछे न रहे, यह नहीं कि ज्ञान से वाणी आगे बढ़ जाय और धारा प्रवाह बोलने में कभी अपनी मूर्खता को शब्दों के आडम्बर से छिपाने का यत्न मत करो। वक्तृता भरी पूरी और सार पदार्थवाली होनी चाहिये, हीन सार वाली नहीं। इसके लिये निरन्तर अध्ययन और मनन की आवश्यकता है। वक्तृता केवल सुन्दरता ही के स्तम्भ पर नहीं किन्तु मुख्यतः बुद्धिमत्ता और शक्ति के स्तम्भों पर ही स्थित रहनी चाहिये। और तुम्हें अपनी विचार-सभाओं में विशेष विशेष सब बातों पर विचार करना चाहिये जैसे पंचायतों और लोकल बोर्डों को बनाना और उनके कार्य; नगर और गांव में सफाई और स्वास्थ्य-रक्षा के नियम; गांवों में स्कूल खोलना, पाठ्य विषयों पर विचार, प्रारम्भिक, माध्यमिक और शिल्प शिक्षा के सम्बन्ध में विचार, भिक्षा-वृत्ति, दान, सहयोग और अन्य ऐसे ही विषयों पर विचार। जब तुम्हारे कालेज का कार्य समाप्त हो जायगा तो तुम्हें इन सब बातों की आवश्यकता होगी।

इस प्रकार अध्ययन, मनन और विचार करना रंगरूट की फौजी तैयारी करने के समान है, युद्ध में जाने से पहले यह उसकी आखिरी तैयारी है।

किन्तु ज्ञान को सार्थक करने के लिये उसे अध्ययन या मनन करने ही की नहीं किन्तु उसके अनुसार स्वयं कार्य करने की आवश्यकता है। तुम लोगों की सेवा करने के लिये अपने को तैयार करो। तुम एक मंडली बनाओ और रात्रि पाठशाला (Night School) का भार लो और बारी बारी से तुम में से हरेक हफ्ते में एक दिन उसकी निगरानी करो; नियमित रूप से उसमें चन्दे द्वारा एक अध्यापक नियत करो किन्तु उसके कार्य में हाथ बटाओ और उसके कार्य का निरीक्षण करो। एक मंडली अस्पताल में आया करे, पुस्तकें और अखबार एकत्र करे और उन्हें बीमारों को पढ़ने को दे और जो लोग अच्छे हो रहे हों उनसे भी कुछ बातें करें और पूछे कि क्या वे भी पढ़ेंगे और अस्पताल से आने पर उनकी भी थोड़ी बहुत खबरदारी रक्खे। एक दूसरी मंडली एक पुस्तकालय स्थापित करे और हफ्ते में एक दिन हर आदमी बारी बारी से उसका काम देखे। दूसरी एक मंडली बहुत गरीब लोगों को थोड़ा थोड़ा कर्ज देने के लिये बननी चाहिये और उनके बढ़ते हुए कर्ज से छुटकारा करने में उनकी सहायता करनी चाहिये। पर तुम यह स्मरण रक्खो कि इन सब बातों को व्यापार के गम्भीर सिद्धान्तों के अनुसार करो और हर काम पूरी तरह सफाई और नियमों से करो। विशेषरूप से इस कर्ज देने के काम में एक अच्छे व्यापारी की सहायता और परामर्श लेना अच्छा होगा नहीं तो लाभ की जगह हानि अधिक होगी। जहाँ (मि० गोखले की) भारत-सेवक-समिति की शाखा है वहां तो तुम्हें सदा ही अनेक विषयों के अध्ययन और मनन और व्यावहारिक कार्य करने में बड़े प्रेम-

पूर्वक सहायता मिले ही गी। एक दूसरी मंडली गरीब विद्यार्थियों को सहायता देने के लिये बनाओ; जो किताबें लड़कों के काम में आचुकी हों उन्हें संग्रह करके गरीब लड़कों को देनी चाहियें; जो गरीब लड़के भोजन के लिये घर घर मारे मारे फिरते हैं उन सब के लिये एक जगह भोजन का प्रबन्ध होना चाहिये। तुम्हारे नगर में जब मेले ठेले हों तो उस समय वृद्धों, स्त्रियों और बच्चों की विशेष रूप से सहायता करने का प्रबन्ध करो। यदि तुम में लोकसेवा करने का भाव है तो तुम हजार तरह से लोगों की सेवा कर सकते हो। गरीबों और दुःखियों की इस प्रकार सहायता करने से तुम उनकी ज़रूरतों और उनके कष्टों को समझोगे और इतना अधिक व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लोगे कि तुम संसार में उसका उपयोग कर सको।

तुम देखते हो कि काम कम नहीं है, काम इतना अधिक है कि तुम्हारे इन तैयारी के दिनों में तुम्हें जो फुरसत मिलेगी वह बिलकुल काम में आजायगी। इसके बाद जब तुम संसार में जाओगे तो तुम और अधिक ज़िम्मेदारी के काम करने के लिये तैयार रहोगे और मनुष्य के योग्य काम करने के योग्य होगे। तब तुम स्वतन्त्रता देवी की सेवा में नये रंगरूटों की तरह नहीं किन्तु शिक्षित सिपाहियों के समान कार्य करोगे।

संसार के इतिहास में ऐसा बहुत कम होता है कि युवाओं को ऐसे ऐसे उत्तम कार्य करने का अवसर मिले। ईश्वर तुम्हें इन सब कार्य करने के योग्य बनावे। ईश्वर ऐसा समय लावे कि मातृभूमि तुम्हारे लिये अभिमान करे। तुम भविष्य में अपना यह सिद्धान्त बनाओ:

Be God-loving and Man-serving;
Be Pure, be Brave, be Strong.

अर्थात् "अपने को ईश्वर-भक्त और लोक-सेवक बनाओ और पवित्र, वीर और बलिष्ठ आत्मा बनो।"

भारत के अकाल पर एक नज़र।

[लेखक—श्रीयुत शुकदेवसिंह।]

परमात्मा की माया बड़ी विचित्र है, उसकी चलाई हुई प्रगति में किसी की तनिक भी दाल नहीं गलती। मनुष्य के वर्षों का सब सोचा विचारा क्षणमात्र में धूल में मिल जाता है। "कवने अवसर का भयऊ, गयऊ नारि विश्वास" जैसे आश्चर्यजनक वाक्य जो चक्रवर्ती राजा दशरथ जी जैसे राजर्षि के मुख से निकल पड़े थे, सो उसी परमात्मा ही की विचित्रता का कारण कहा जा सकता है। इस समय यूरोपीय युद्ध के कारण जो भूमण्डल भर में हाहाकार की ध्वनि से आकाश गंज रहा है यह भी ईश्वर ही की माया है। आज से दो वर्ष ही पूर्व किस माई के लाल ने ऐसा अनुमान भी किया होगा कि कुछ ही दिनों के बाद मैं अपनी आंखों से इन उन्नति के शिखर पर पहुंचे हुए राष्ट्रों को अपने स्वार्थ में अंधा होते हुए एक दूसरे का गला घोंटते हुए देखूँगा और हृदय को पिघलानेवाला सहस्रों नारियों का करुण क्रन्दन सुनाई पड़ेगा। किन्तु नहीं जगत् पिता परमात्मा की शतरंज की चाल मनुष्यों की सामान्य दृष्टि से परे है, वह चाल अगम्य है, अथाह है, मनुष्य के विचार से सर्वथा बाहर है।

परमात्मा के इसी नियमानुसार यह भारतवर्ष जो आज से हजारों वर्ष पहले जगद्गुरु समझा जाता था वही आज हेच नज़र से देखा जाता है। किसी कवि की यह उक्ति यहां ठीक जँचती है कि "राई से पर्वत करै, पर्वत राई माहिं।" मैं भूलता नहीं तो इतिहास में यह बात पाई जाती है कि इसी भारतवर्ष की उर्वरा भूमि की बदौलत रुपये का आठ मन चावल बिकता था। भारतवर्ष के प्राचीन खाद्य पदार्थ का निर्ख जब इस भांति था तब दूसरी चीजों की कौन गिनती। उन दिनों घर में एक व्यक्ति कमाता था दस व्यक्ति परवरिश पाते थे। घी दूध जैसे पदार्थ की भी कोई कदर नहीं थी। पेट की चिन्ता लोगों को छूती तक नहीं थी। प्रत्येक मनुष्य दृढ़ कट्टे मज़बूत एवं उत्साही होते थे। अपनी जन्मभूमि से प्रेम रखते थे। उसके लिये अपनी जान तक की भी कुछ परवाह नहीं करते थे।

उसी भारतवर्ष में आज समय के फेर से ऐसे प्रति दिन हजारों हृदयद्रावक एवं रोमांचकारी दृश्य दिखाई देते हैं जो हृदय को टूक २ कर देनेवाले हैं। आज भारतमाता की लाखों सपूत सन्तानें अपना २ धर्म त्याग पेट की आग बुझाने के लिये ईसाई और मुसलमान होती जारही हैं। लाखों विधवाएँ असती हो २ अपनी कदर की पूर्ति कर रही हैं। समाज इस कुत्सित कर्म को देख रहा है किन्तु दरिद्रतावश कुछ उद्योग करते नहीं बनता। जहां प्रति वर्ष कई यज्ञ ऐसे होते थे कि वर्षों अनगिनती दीन-दुखियों की क्षुधा की शान्ति होती थी, बन जन्तुओं तक को भी भोजन की चिन्ता नहीं रहती थी, वहां आज गली २ क्षुधापीड़ित आबाल वृद्ध नर नारी मारे २ फिरते हैं। बड़े अच्छे २ गृहस्थों के यहां की यह दशा है कि बेचारों को साल भर भरपेट सुअन्न तक भी भोजन को नहीं मिलता है। प्रति वर्ष यहां के लोगों को अकाल की यंत्रणा से खूब कष्ट भोगना पड़ता है। देश के शिक्षित समुदाय को यह बात स्पष्टतः ज्ञात हो गई है कि भारतवर्ष में अब वे सुख-शान्ति के दिन नहीं दिखाई देंगे। किन्तु दुःख है कि वे यथेष्ट रूप से इस को दूर करने के लिये यत्न नहीं करते हैं। कौंसिल में हिन्दुस्तानियों की संख्या बढ़ाने तथा दो एक पुरुषों को सरकारी बड़े २ उहदों के मिलने से भारतीय प्रजाओं का इस कष्ट से छुटकारा होना नहीं बदा है। आज जहां ऐसा समय उपस्थित है कि फसल के दिन में भी रुपये के सात सेर गेहूं नौ दस सेर चना अथवा यों समझना चाहिये कि कोई ऐसा अन्न नहीं है जिसका भाव चार रुपया मन से कम पाया जाय। जिस गृहस्थ को अपने दस बाल बच्चों का पालन पोषण करना है, समझ में नहीं आता कि वह गृहस्थ अपने अगले दिनों को जब तक कि नई फसल तैयार नहीं हो जायगी, कैसे निर्वाह करेगा। उसके अपने पेट खर्च के अतिरिक्त अन्य आवश्यक बातें जैसे शादी विवाह तथा गृहस्थी के अन्य २ चीजों का सामान कैसे होगा। ऐसा कौन सा उपाय है कि जिससे उसको इस भयंकर अकाल के समय में सहायता मिल सकती है। यहीं तक उस गृहस्थ के बारे में विचार करने की बात नहीं रह गई है। उसके यहां जितने नौकर पनिहारे आदि गृहस्थी के काम करनेवाले रहते हैं उनका भरणपोषण इस समय वह कैसे कर सकता है। मैं बलपूर्वक इस बात को कह सकता हूं कि इस समय कोई भी गृहस्थ ऐसा एक भी नज़र नहीं आयेगा जो अपनी गृहस्थी की पैदावार से अपना भरणपोषण करते हुए गृहस्थी के अन्य २ और आवश्यक सामान जैसे बैल आदि का भी प्रबन्ध कर सकता हो। ऐसी दशा में शिक्षित समुदाय इस समय विचार करे कि देश का भविष्य कैसा अंधकारमय है। इसका परिणाम सारे भारतवर्ष के लिये कैसा होगा। किस बल से कौन

सहायता पाकर ये गृहस्थ आगामी फसल को पैदा करने में समर्थ होंगे। ऐसी कैफियत किसी एक प्रान्त की नहीं है कि दूसरा प्रान्त भी उसको सहायता पहुंचा सके। मेरे अनुमान से तो आर्यसमाज की शुद्धिसभाएँ, अनाथालय व अन्य २ इस तरह के सभा-समाज सभी इस भयंकर अकाल के कुचक्र में पड़े बिना न रहेंगे। किसी सभा-समाज के उद्देश्य की सिद्धि इस तरह के समय रहते नहीं हो सकती है। दिन बदिन अकाल की भयंकरता बढ़ती ही जाती है। मामूली औकात के मनुष्य अधीर होते जारहे हैं। उनकी बुद्धि काम नहीं करती है। वे इसी सोच विचार में डूबते उतराते हैं। उनको कोई असली मार्ग नहीं नज़र आता है। समय बड़ा विपरीत अवस्था में है। देखें इसका फेर क्या करता है।

अकस्मात् अकाल की भयङ्करता को देख कर बहुतों के जी में यह बात धस गई है कि भारतवर्ष का यह अकाल वर्तमान युद्ध होने के कारण हुआ है। किन्तु मेरे विचार में यह अनुमान असत्य प्रतीत होता है क्योंकि भारतवर्ष को यह महंगी चिरस्थायी है प्रतिवर्ष यहां की महंगी उन्नति ही पर है। अन्न का भाव जो विगत् वर्ष के पूर्व था सो गत नहीं रहा, अथवा जो भाव गत वर्ष रहा सो इस वर्ष नहीं पाया जाता। इसी प्रकार आप पूर्वापर मिलान करते चले जाइये तब आपको ज्ञात होगा कि वास्तव में इस महंगी के कारण कुछ अन्य ही हैं जो इस देश को इस प्रकार से दिनोदिन विध्वंस एवम् कमजोर करते जाते हैं। यह बात भी कुछ अंशों में पाई जाती है कि यूरोप के वर्तमान युद्ध का प्रभाव भारतवर्ष पर बहुत कुछ पड़ रहा है। इस युद्ध से देश की आन्तरिक अवस्था में बहुत कुछ उलट फेर होने की सम्भावना देखी जाती है। देश के नेता विचार-बुद्धि से कार्य करेंगे तो ऐसा सम्भव है कि देश का बहुत कुछ कल्याण हो सके। किन्तु सब प्रकार से वर्तमान यूरोपीय युद्ध ही अकाल का कारण नहीं कहा जा सकता है। आज देश अन्न से भरपूर रहता तो एक प्रकार से इसको लाभही की सम्भावना थी। मैं इस बात को मानता तथा जानता हूं कि इस युद्ध से व्यापार आदि की क्षति से व्यापारियों, रोजगारियों तथा कुलियों को बेकार रहना पड़ता है। इसके अतिरिक्त यहां से कुछ अन्न भी वहां जाता है, किन्तु इसी से इस अकाल की भीषणता की वृद्धि नहीं हुई है। भारतवर्ष में अकाल के प्रधान कारण कुछ अन्य ही हैं। जब तक सर्वसाधारण तथा राजा की दृष्टि उन कारणों पर नहीं पड़ेगी तबतक कभी सम्भव नहीं है कि भारतवर्ष का ऐसे अकाल से पीछा छूटे।

यदि आज अन्न का भाव रुपये के सात आठ सेर के बदले पंद्रह सेर रहता (क्योंकि शहस्राब्दों के समय के अनुसार रुपये के आठ मन की कोई तौल नहीं करता है) तब भी किसी के मुंह से अकाल सा हृदयविदारक शब्द नहीं निकलता। अब तो भाव कुछ सुधर भी गया है नहीं तो कुछ महीनों पूर्व पांच सेर तक हो गया था। इस दशा में प्रायः सभी श्रेणी के मनुष्यों की चिन्ता इतनी नहीं रहती जितनी इस समय है। वे अपना निर्वाह सामान्य रीति से कर लेते। इस तरह से हाय अकाल २ की पुकार दिगदिगन्त में न मच जाती। देश के लोग निश्चिन्ततापूर्वक अपने कार्य में रत रहते। इस दशा में लोग यही कहते कि समय साधारण है। हालाँ कि ऐसी स्थिति में भी देश के मनुष्यों के एक बड़े भाग में इस दर से भी कष्ट होता अवश्य, पर ऐसी स्थिति के रहते देश के नेतागणों को न चिल्लाने की धुन रहती न राजा को प्रजा के प्रति सर्वदा चिन्ता बनी रहती। केवल अन्न के भाव में हेर फेर होने ही से देश में हाहाकार मचने लग जाता है। लोगों में अशान्ति फैल जाती है। बड़े २

धनाढ्यों को चिन्ता सताने लगती है। इससे यह तथ्य निकलता है कि देश में अन्न के अभाव से दर में घाट बाढ़ होता है। जब देश में अन्न की उपज जैसी रहती है तब अन्न की दर भी तदनुसार रहती है। यदि अन्न की उपज खासी रहे तो कोई कारण नहीं है कि उसकी दर में एकबारगी इस तरह से कमी हो जाय कि संसार भर में हाहाकार मच जाय। यह बात निश्चित है कि अन्न की उपज में कितनी ही वृद्धि क्यों न हो किन्तु शाहजहां का समय हम लोगों के नसीब में नहीं होगा क्योंकि तब के और अब के समय में बहुत कुछ अन्तर हो गया है। उस समय देश में इतने मनुष्य नहीं थे, उस समय भारतवर्ष की स्थिति ही भिन्न थी, उस समय से अब के समय की तुलना करना व्यर्थ है। उस समय भारतवर्ष का सम्बन्ध आज का जैसा सारे संसार के साथ नहीं था। उस समय की बात खोजना आकाश के तारा तोड़ने की इच्छा करना है क्योंकि भारतवर्ष में अन्न की उपज रहने पर भी दूसरे देशों से अन्न की मांग आने पर यहां उन देशों का कुछ प्रभाव पड़ेगा ही। हालाँ कि गृहस्थों को हर प्रकार से ऐसा होने से मुनाफा ही हो सकता है।

यह बात मानी हुई है कि संसार भर से भारतवर्ष की भूमि उर्वरा और रत्नगर्भा है। यहां की भूमि में अनेकों तरह की चीजें पैदा होती हैं। यहां का प्राकृतिक मौसम भी ऐसा ही है कि गर्म, सर्द तथा सामान्य मौसम के देशों में उपजनेवाली चीजें भी भरपूर अच्छी तरह से पैदा हो सकती हैं। किन्तु इस पर भी अकाल का साम्राज्य यहां चिरस्थायी होता जा रहा है। जिस बात पर देश का जीवन-मरण निर्भर है उस बात के बनाये रखने वा उसकी उन्नति करने से अपना सुखपूर्वक समय व्यतीत करते हुए संसार भर को काम पहुंचने पर भी सारे संसार से अपना मस्तक ऊंचा हो सकता है। दुःख है कि उसी बात पर यहां के शिक्षित तथा सभ्य समाज का ध्यान नहीं जाता है। जब तक भारतवर्ष की खेती का सुधार नहीं होगा, जब तक खेती करनेवाले किसानों का सभ्य समाज में आदर नहीं होगा, जब तक राजा तथा देश के शिक्षित लोग गृहस्थों का विद्यान्धकार दूर नहीं करेंगे; उनकी तनदुरुस्ती का ख्याल नहीं करेंगे, उनके गृहस्थी के कल कांटे यन्त्र तथा व्यावहारिक चीजों का सुधार नहीं होगा, जब तक उनकी दरिद्रता पर ध्यान दे समय २ पर उनकी आर्थिक सहायता नहीं की जायगी, तब तक भारतवर्ष के इस भयङ्कर अकाल से छुटकारा होने की कोई आशा नहीं है।

हिन्दुओं के प्राचीन ग्रंथों में खेती करने की विधि तथा इसके महत्व का वर्णन पूर्णरूप से पाया जाता है। प्राचीन समय के लोग खेती के तत्व को समझे हुए थे। किसानों का समाज में खूबही आदर था। देश के भिन्न २ श्रेणी के मनुष्य किसानों को उच्चातिउच्च समझते थे। ऋषि, मुनि महात्मा सभी इनकी भलाई के ख्वाहां थे। भारतवर्ष की यह कहावत कि "उत्तम खेती मध्यम बान निकृष्ट चाकरी भीख निदान" प्रसिद्ध है।

राजा गृहस्थों पर पूरा ध्यान रखते थे, गृहस्थों से प्रेम रखते थे, सहानुभूति जतलाते थे, उनकी उन्नति के उपाय सोचते थे और सब प्रकार से खेती और किसानों की सहायता किया करते थे। आज यह दशा है कि इसके पूर्व ही इस पर विचार किया जाय कि भारत के भिन्न २ श्रेणी के मनुष्यों का ध्यान गृहस्थों के प्रति कैसा रहता है रोंगटे खड़े हो जाते हैं। आज प्रत्येक किसान को सभ्य समाज किस दृष्टि से देखता है यह प्रत्यक्ष है, उससे प्रेम रखना, उसको शिक्षित बनाना, तो दूर रहे मेरे विचार में तो आजकल एक सभ्य पुरुष किसान से बातचीत करने में भी अपनी बेइ-

जानी समझता है। गृहस्थ के परिश्रमपूर्ण कामों से उसे एक प्रकार घृणा सी हो गई है। सभ्य समाज समझता है कि ये वास्तव में कुली हैं। इनका कर्त्तव्य यही है कि ये लोग परिश्रम करके हम लोगों को सुख पहुँचावें। बिचारे गृहस्थों को जो एक प्रकार से सारे भारत के यही बासी कहे जा सकते हैं न कोई शिक्षित बनाने का यत्न करता है न इनको कोई सहायता ही पहुंचाता है। दिनोंदिन वे बिचारे गिरते ही चले जा रहे हैं कोई भी उनको हाथ बढ़ानेवाला नजर नहीं आता है। कहने का प्रयोजन यह है कि जिस प्रकार से इन दिनों किसानों की उपेक्षा की जाती है उसी तरह से ऐसाही क्रम यदि जारी रहा तो इस समय के यह अकाल क्या हैं इससे भी और और बुरे दिनों का सामना करना पड़ेगा। जैसे वे कूपान्धकार में घुसे जा रहे हैं यदि उनको उससे निकालने का प्रबन्ध नहीं किया जायगा तो कैसा दिन आवेगा इसका अन्दाजा लगना कठिन है। क्योंकि जब कमानेवाला ही नहीं रहेगा तब खानेवाला को कौन पूछता है? यह निश्चित बात है। यदि बन पड़ा तो किसानों की वर्त्तमान अवस्था, उनकी निरक्षरता से देश को कितनी हानि व्यापार में होती है यह दिखलाने का प्रयत्न किसी और लेख में करूंगा।

सर फीरोज़शाह मेहता।

सर फीरोज़शाह मेरवान जी मेहता का जन्म एक उच्च पारसी घराने में ४ अगस्त १८४५ ई० को हुआ था। इनके पिता बम्बई के प्रसिद्ध व्यापारी और साहित्य प्रेमी थे। इन्होंने अपने पुत्र को शिक्षा के लिए एलफिंस्टन कालेज में भेजा जहां से सर फीरोज़शाह १८६४ में बी० ए० की और छः महीने बाद एम० ए० की परीक्षा में सम्मानसहित उत्तीर्ण हुए। इस प्रकार सर फीरोज़शाह उन भारतवासियों में से थे जिन्होंने प्रथम ही प्रथम उच्च अंगरेज़ी शिक्षा का रसपान किया। तदनन्तर ये पढ़ने के लिए इङ्गलंड भेजे गये जहां १८६८ में उन्होंने बेरिस्टरी की परीक्षा पास की। इङ्गलैंड ही में ये श्रीमान् दादाभाई नौरोजी से मिले जो एक प्रकार से इनके गुरू हो गये। बम्बई में इनकी बैरिस्टरी खूब चमकी। अपने जीवन में बम्बई के कारपोरेशन के लिए इन्होंने जो काम किया वह चिरस्मरणीय रहेगा। इन्हीं के उद्योग की बदौलत बम्बई का कारपोरेशन आज भारत भर में सबसे उन्नत म्यूनिसिपल संस्था है। १८८५ में बम्बई प्रेसीडेंसी एसोसियेशन नाम की सभा स्थापित हुई जिसके प्रथम सभापति सर फीरोज़शाह निर्वाचित हुए। उसी वर्ष बम्बई में कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन श्रीमान् डबल्यू० सी० बनर्जी के सभापतित्व में हुआ। कांग्रेस के जन्मदाताओं में सर फीरोज़शाह के नाम की भी गणना की जायगी। उसी समय से देशोन्नति के सभी कामों में सर फीरोज़शाह योग देने लगे।

१८८४ में ये कारपोरेशन के सभापति चुने गये। १८८६ में लार्ड रे ने इन्हें बम्बई व्यवस्थापक कौंसिल का सदस्य नियुक्त किया। १८८८ के म्यूनिसिपल एक्ट को पास करवाने में इन्होंने बड़ा उद्योग किया। तब से ये अन्त समय तक बम्बई कौंसिल के सदस्य बने रहे और उनके कौंसिल-सम्बन्धी कार्य की प्रशंसा सभी लोग करते हैं।

बजट के अवसर पर इनकी वक्तृताओं की प्रतीक्षा सरकार और प्रजा पहिले ही से बड़ी उत्सुकता के साथ करती थी, क्योंकि इनकी टीका-टिप्पणियाँ बड़ी उपयोगी और प्रभावहारिक हुआ करती थीं। १८९० में वे कलकत्ते की कांग्रेस के सभापति निर्वाचित हुए। इसके ३ या ४ वर्ष बाद बम्बई व्यवस्थापक कौंसिल के गैर-सरकारी सदस्यों ने इन्हें अपना प्रतिनिधि

परलोकगत सर फीरोज़शाह मेहता।

चुनकर बड़ी व्यवस्थापक कौंसिल में भेजा, जहाँ इन्होंने महत्वपूर्ण काम किया। कंट्रैक्टमेंट ऐक्ट, पुलीस ऐक्ट तथा १८९५-९६ के बजट की उन्होंने ऐसी योग्यता और निर्भीकता के साथ आलोचना की कि उनकी कीर्त्ति न केवल स्वदेश ही में वरन् इङ्गलैंड तक फैल गई। कौंसिल के

अधिवेशन के बाद ये कलकत्ते गये जहाँ टाउन हाल में इन्हें एक अभिनन्दनपत्र दिया गया। पीछे बम्बई में भी एक अवसर पर इन्हें वैसा ही अभिनन्दनपत्र दिया गया। १८९५ में इन्हें सी० आई० ई० की पदवी मिली।

बड़ी कौंसिल में सर फीरोज़शाह निडर होकर प्रजा और न्याय का पक्ष लिया करते थे। प्रथम ही वर्ष में सरकारी मेम्बरों के साथ इनकी मुठभेड़ हो गई। सर एंटानी (अब लार्ड) मेक्डानल ने पुलीस बिल पेश किया था जिसका देश में बड़ा विरोध किया गया। उसका उद्देश्य यह था कि सरकारी अफसर शान्ति-रक्षा के बहाने जिसे चाहें उसे बिना मुकदमे ही के सज़ा दे सकें। सर फीरोज़शाह ने कहा कि "मैं नहीं जानता कि इससे भी अधिक कच्चा, विपरीतगामी, दुष्प्रयोग होने योग्य और नीति भ्रष्ट करनेवाला कोई कानून गढ़ा जा सकता है। शासक (Executive) अफ़सरों के हृदय को रिझानेवाला यह उस प्रकार का कानून है जो इस सत्य बात को नहीं स्वीकार कर सकता कि निर्दोष मनुष्यों को बिना हानि पहुंचाये या तंग किये, अपराधियों को दंड देने और अपराध रोकने का कार्य न्याय द्वारा संरक्षित होना चाहिये और यह काम उन मनुष्यों के विचारों और निश्चयों पर नहीं छोड़ा जा सकता जो अपने को सुयोग्य, ईमान्दार और विवेकी समझते हैं।" सर फीरोज़शाह की खरी बातों से अफसर लोग दंग हो गये और कहने लगे कि सर फीरोज़शाह ने तो कौंसिल में "नये भाव" का संचार कर दिया है। यह नया भाव और कुछ नहीं था; सदा 'हां हुज़ूर' 'जो हुकुम' न कहना ही 'नया भाव' था। १८९६ में इन्होंने अपनी राज़ी से कौंसिल में अपना पद त्याग दिया और इस प्रकार श्रीमान् गोखले को वहाँ जाने का अवसर दिया। १९०४ में सम्राट् जार्ज प्रिंस आफ़ वेल्स की हैसियत से भारत में आये और इन्हें के० सी० आई० ई० की उपाधि से विभूषित किया। बम्बई यूनिवर्सिटी की सीनेट सभा में भी इन्होंने बहुत कुछ प्रशंसनीय काम किया। अभी हाल में सर फीरोज़शाह उसके वाइसचांसलर नियुक्त हुए थे परन्तु शोक कि दुदव ने उन्हें इस पद पर काम करने के लिए समय नहीं दिया।

सर फीरोज़शाह के गुण।

सर फीरोज़शाह में कई असाधारण गुण थे जिनमें नेतृत्व प्रधान था। ये बड़ी उच्चकोटि के नेता थे, लोगों को अपने वश में करना, उनको अपना अनुगामी बनाना ये खूब जानते थे। यह प्रसिद्ध है कि सर फीरोज़शाह बम्बईप्रान्त में बिना तिलक के राजा थे। उनकी मरज़ी के विरुद्ध चलने का शायद ही किसी को साहस पड़ता था। बड़े ही दबङ्ग थे। इसी कारण गवर्नर से लेकर छोटे सरकारी अफसर तक सभी इनसे डरा करते थे और इनका आदर करते थे। यहाँ कुछ उदाहरण देना असङ्गत न होगा। एक समय की बात है कि बम्बई को ट्राम्वे कम्पनी ने महसूल की दर बढ़ा देने का निश्चय कर लिया। नगरनिवासियों ने सर फीरोज़शाह की दोहाई दी और सर फीरोज़शाह ने कम्पनी को अपना विचार त्यागने के लिये मज़बूर किया और आखिर महसूल नहीं बढ़ाया गया। कुछ वर्ष हुए बम्बई यूनिवर्सिटी मेट्रिकुलेशन परीक्षा को उठा देने का विचार कर रही थी। सरकारी अफसरों ही के दिमाग की यह उपज थी और स्वयं चांसलर का भी यही मत था। यूनिवर्सिटी में सरकारी प्रतिनिधियों का तो ज़ोर रहता ही है इस पर चांसलर भी उनके समर्थक थे, इसलिए लोग समझते थे कि बस अब मेट्रिकुलेशन परीक्षा का अन्त हुआ, परन्तु सर फीरोज़शाह ने इस विपत्ति को टाल दिया। उन्होंने उठकर इस प्रकार व्याख्यान आरम्भ किया, "सज्जनगण, परीक्षा उठाने के पक्ष में सम्मति मत दीजिये, क्योंकि यह तो चांसलर का मत है!" अपनी ज़ोरदार वक्तृता से उन्होंने

सदस्यों को अपने पक्ष में कर लिया। जब बम्बई के गवर्नर सर सिडनहम क्लार्क की मियाद खतम होने को हुई तब बम्बई के कारपोरेशन में यह प्रस्ताव हुआ कि उनका स्मारक बनाने के लिए कारपोरेशन को एक बहुत बड़ी रकम देनी चाहिये। सर फीरोज़शाह ने अपने असाधारण साहस के साथ उठकर इस प्रस्ताव का विरोध किया और पूछा कि "सर सिडनहम ने बम्बई कारपोरेशन के लिए क्या किया है जो हम एक बड़ी रकम उनके स्मारक के लिए प्रदान करें?" कांग्रेस निमन्त्रित करने में हज़ारों रुपयों का खर्च होता है परन्तु इन्हीं के कारण बम्बई प्रान्त अपनी पारी से कई बार अधिक कांग्रेस को आमन्त्रित कर चुका है। १९०३ की बात है कि मद्रास की कांग्रेस में संयुक्त-प्रान्त की बारी थी कि उसे आगामी वर्ष के लिये निमन्त्रित करे। परन्तु यहाँ के प्रतिनिधि कुछ कारणों से इसके लिये तैयार नहीं थे। उस समय जब कि यह मामला डांवाडोल हो रहा था, एक उपस्थित प्रतिनिधि कुछ क्रोध और कुछ ताने में कह उठा कि "आप ही क्यों नहीं बम्बई में निमन्त्रित करते?" याद रहे कि पिछले ही वर्ष बम्बई प्रान्त के अहमदाबाद नगर में कांग्रेस हो चुकी थी। परन्तु तुरन्त ही सर फीरोज़शाह ने उत्तर दिया कि "हाँ, मैं आगामी कांग्रेस को बम्बई में निमन्त्रित करता हूं।" यह सुनकर बम्बई के प्रतिनिधिगण लज्जित रह गये। यहां तक कि एक ने कुछ बुदबुदाना भी आरम्भ किया परन्तु सर फीरोज़शाह के यह कहते ही कि "मैं निमन्त्रित करता हूं" उसे फिर कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। आखिर बम्बई में दूसरे वर्ष कांग्रेस बड़ी सफलता के साथ हुई; स्वागत-समिति के कोष में लगभग ६०,०००) का चन्दा आ गया था जिसमें से सब खर्च कर चुकने पर ७०,०००) की अपूर्व रकम बच रही! सर फीरोज़शाह वक्ता भी बड़े ज़बर्दस्त थे। श्रोताओं को अपनी ओर आकर्षित करने की कला में वे निपुण थे। शोक कि भारत न केवल धन ही से वरन् जन से भी दरिद्र होता जाता है।

जीवन।

[लेखक—श्रीयुत नन्दकिशोर दुबे।]

प्रत्येक जीव को अपने जीवन की चेतना जन्म से ही होती है। कीट से लेकर मनुष्य तक सभी की चेष्टा, चाहे वह प्राकृतिक हो या स्वतः उत्पन्न हो यही रहती है कि जीवन का अन्त न होने पावे। पशु-पक्षी इत्यादि भाग कर छिप कर कभी २ सामना करके जीवन को दीर्घ बनाने का प्रयत्न करते हैं। सभ्य मनुष्य नित्य औषधियों का सेवन किया करते हैं जरा से दर्द से भी डर उठते हैं कि कहीं कोई प्राणघातक बीमारी न हो जाय। एक जीवन की रक्षा के लिये, प्राकृतिक सौंदर्य-पूर्ण दृश्य का नाश करने में, संसार में हलचल मचानेवाले धर्मोपदेशकों, देशहितैषियों और बड़े २ सम्राटों तक के प्राण लेने में सोच विचार नहीं किया गया।

मनुष्य की चेष्टा पहले तो यह रहती है कि जीवन दीर्घ हो, दूसरी यह होती है कि सुखमय हो। जीवन को सुरक्षित समझ सुखी बनाने के लिये रोम ऐसा शहर जलाया गया, गांव के गांव भस्म कर डाले गये, दूसरों के स्वत्व पर

अधिकार जमाया गया, मनुष्यों को गुलाम बनाया गया, देशों की स्वाधीनता नष्ट की गई।

जयचंद ने सुख की अभिलाषा से अपने भाई को नीचा दिखलाने का प्रयत्न किया, गज़नी ने इसी उद्देश्य से सोमनाथ का मंदिर तोड़ा, राणा प्रताप ने चित्तौर के गौरव के लिये कठिन कष्टों को सहन करने ही में अनुपम सुख समझा, मुराद ने भाई की भोली-भाली बातों में विश्वास करने में सुख पाया, औरंगज़ेब ने अविश्वास में सुख समझा, शिवाजी को महाराष्ट्र के लिये निरंतर घाटियों में घूमने में ही आनन्द मिला। सभी प्रकार वाजिदअली शाह ने भी अपनी सुख की इच्छा का अनुभव किया।

प्रत्येक मनुष्य अपनी धुन के अनुसार जीवन व्यतीत कर डालता है पर योग्य मनुष्यों की जीवनी के मनन करने से यह ज्ञात होता है कि उत्तम और सुखमय जीवन उसी का है कि जिसने यह समझा कि संसार जीवन का पवित्र संग्राम है। जिस देश में हम उत्पन्न हुए हैं उसके प्रति हमारा कुछ कर्त्तव्य है। हमारे जन्म लेने का कुछ कारण है, जो शक्तियां हम में हैं वे किसी कार्य के लिये हैं।

महाराणा प्रताप ने चित्तौर पर पानी फेर मोगल सम्राट् के आश्रित होकर क्षत्रियों के गौरव को नष्ट करना उचित न समझा और आपत्तियां सहीं। महाराज शिवाजी ने दक्षिणी भारत की बुरी दशा देख कर महाराष्ट्र देश को निर्माण किया। फ्रैंकलिन, वाशिंगटन और लिंकन ने अपने भाइयों के दुःख से दुःखी हो कारे जन्म कठिन परिश्रम करके अमेरिका को आज की गति पर पहुंचा दिया।

जो लोग अपना कार्य करके इस जीवन संग्राम में कर्मवीर की पदवी पा चुके हैं उनके पदचिन्हों पर यदि सौभाग्य से हो सके तो हमें भी चलना चाहिये। पहिले आवश्यक है कि हम कार्यक्षेत्र के लिये अपने को तैयार करें। सबसे पहली बात है उत्तम शरीर। न जाने किस दुर्भाग्य से इस देश में आजकल युवकों का शरीर निर्बल होता है। शरीर और मन से बड़ाही घनिष्ट संबन्ध है। निर्बल शरीर में मन भी निर्बल ही हो सकता है। सबल शरीर न होने के कारण अच्छे २ विचार, पवित्र मनोभाव, दृढ़ प्रतिज्ञा, अटल विश्वास इत्यादि अनेक बातों की कमी रहती है। कठिन परिश्रम की इच्छा नहीं होती। भले ही सादेपन और भोले स्वभाव की बड़ाई की जाय परन्तु स्वावलम्बन और अपने स्वत्वों की रक्षा करने की योग्यता न होने के कारण निर्बल मनुष्यों का जीवन ही वृथा है। कैसा ही निर्बल शरीर हो सादे और समय के भोजन और व्यायाम और ब्रह्मचर्य से सुधर सकता है।

शरीर के बाद आवश्यक है कि इतिहास, जीवनचरित्र, और सामयिक पत्रों को पढ़ कर समय को पहिचानें, देश की संस्थाओं की दशा का ज्ञान प्राप्त करें और देशों की हालत जानें, वहां से अपने देश की हालत को मिलान करें। जो त्रुटियां हों उनको पहले अच्छी प्रकार समझें विचारें कि किस प्रकार वे मिट सकती हैं और फिर भरसक प्रयत्न करके कुरीतियों और त्रुटियों को दूर करें।

मनुष्य हम भी हैं ईश्वर ने जो शक्तियां संसार के किसी भी मनुष्य को दी हैं वही हममें भी विद्यमान हैं। जो स्वत्व संसार के किसी मनुष्य को हैं वही हम में भी हैं फिर क्यों और देशों में साधारण कुली २०) रु० रोज़ पैदा करें और हम दो आना रोज में निर्वाह करें? और देशों में मनुष्य उच्च शिक्षा प्राप्त करना जीवन की आवश्यक वस्तुओं में से एक समझें और हम अपने भाइयों को दक्षिण अफ्रीका से आया हुआ पत्र ३ कोस पढ़ाने जाते देख चुपके बैठ रहें।

मिश्र-बन्धु-विनोद।

[लेखक—श्रीयुत महेन्द्रनाथ चतुर्वेदी।]

मिश्र बन्धु विनोद अथवा हिन्दी साहित्य का इतिहास तथा "कवि कीर्तन" नामक एक ग्रंथ १५०० पृष्ठों का तीन भागों में हिन्दी ग्रन्थ प्रसारक मंडली खँडवा व प्रयाग द्वारा प्रकाशित हुआ है। इसके लेखक हिन्दी-साहित्य के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० गणेशविहारी मिश्र, पं० श्यामविहारी मिश्र एम० ए० और पं० शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए० हैं। भूमिका देखने से ज्ञात हुआ कि यह समस्त ग्रन्थ बन्धु-त्रय के १२ वर्ष के कठिन परिश्रम का फल है। इस ग्रन्थ में संवत् ७०० से लगाकर वर्तमान समय तक के समस्त गद्य-पद्य-लेखकों का परिचय दिया गया है। जिसका अन्य कुछ भी परिचय नहीं दिया गया है, उसका नामोल्लेख ही ग्रन्थ के वर्तमान प्रकरण में किया गया है। सारांश यह कि इस पुस्तक में सभी हिन्दी के कवि, लेखक तथा सहायकों का जिन्होंने नाममात्र के लिये भी हिन्दी की किसी प्रकार की भी सेवा की है, उल्लेख किया गया है।

इसमें कोई संशय नहीं कि इस ग्रन्थ के लिखने में मिश्र-बन्धुओं को अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा, अनेकों पुराने ग्रन्थ और अनेकों मासिक पत्रों की फायलों को उलटना पड़ा होगा। इस ग्रन्थ से हिन्दी साहित्य का अत्यन्त उपकार साधन होगा तथा भावी अन्य लेखकों को इससे बहुत कुछ सहायता मिलेगी। हमारा अनुरोध है कि प्रत्येक हिन्दी-हितैषी को इस ग्रन्थ का ध्यानपूर्वक मनन करना चाहिये।

मैं यह कह देना आवश्यक समझता हूं कि सत्य के अनुरोध से ही यह मैं छोटा सा लेख लिखने को विवश हुआ हूं। वर्तमान लेखकों के विषय में कुछ लिखने के पहिले मैं यह आवश्यक समझता हूं कि पुराने कवियों से सम्बन्ध रखनेवाली कुछ आवश्यक सूचनाएँ जिनसे मैं अवगत हूं यहां प्रगट कर दूं जिनके ग्रन्थ के द्वितीय संस्करण में सुधार होने से लोगों को लाभ होगा।

मिश्र-बन्धुओं ने द्वितीय भाग के १०६ पृष्ठ पर कवि सूरति मिश्र के विषय में लिखा है:—

"खोज में इनके बनाये हुये काव्य-सिद्धान्त, रस-रत्नाकर और रसिक-प्रिया की टीका रस-गाहक-चन्द्रिका नामक ग्रन्थ लिखे हैं।" सूरति कवि की रचित केशवकृत 'रसिकप्रिया' की टीका 'रस-गाहक-चन्द्रिका' की एक हस्तलिखित प्रति हमारे पास है। यह ग्रन्थ कब, क्यों और कैसे बना, यह सूरति मिश्र के रचित निम्नलिखित दोहों के पढ़ने से स्वयं प्रगट हो जाता है:—

उमराइन राजन सकल कियो बहुत सनमान।
अब सुनिये जिहि विधि भयो ग्रंथ प्रगट बुधिवान॥
एक समय बैठे हते वान सुजस अवदात।
तहँ कवि सूरति सुकवि सों कही आय यह बात॥
पोथी केशव दास की सबै कवित मति धीर।
तिन में यह रसिक प्रिया महा अर्थ गम्भीर॥
बाकी टीका कीजिये प्रश्नोत्तर निरधारि।
याहि पढ़त जग रसिकजन लहैं मोद उरधारि॥
यह सुनि तब रचना रची सुनहु सुकवि सिरमौर।
बहुत प्रश्न बहुविधि अरथ लहो सकल यहि ठौर॥
सत्रह सौ इक्यानवे माधव सुदि बुधवार।
यह रस गाहक चन्द्रिका पुष्प नखत अवतार॥

यह पुस्तक जहानाबाद के नवाब नसरुल्ला-खां के कहने से बनाई गई थी। नवाब ने इनका बहुत आदर सम्मान किया था। हमारे पास

जो प्रति है उसमें आदि का एक पृष्ठ और अन्त का एक पृष्ठ जाता रहा है।

माथुर कुलपति मिश्र के विषय में लेखकों ने लिखा है कि "खोज में इनके द्रोणपर्व, गुण-रहस्य और संग्रह-सार नामक ग्रन्थों का और भी पता लगा है।" इस विषय में हमारा यह वक्तव्य है कि इनका 'द्रोण पर्व' या 'संग्रामसार' हस्तलिखित हमारे पुस्तकालय में मौजूद है जिसको अब होलीपुरा जि० आगरानिवासी पं० राधेलाल छक्कन लाल चतुर्वेदी, वकील ने छपवा भी दिया है। 'संग्रहसार' नाम हमको भ्रममूलक जान पड़ता है क्योंकि जो प्रति हमारे पास है उसमें "द्रोणपर्व या संग्राम सार" नाम लिखा है। शायद इसी कारण लेखकों ने दो स्वतंत्र पुस्तकें समझकर 'संग्रामसार' का 'संग्रह-सार' भ्रमवश लिख दिया हो। हम इसके प्रमाण में यहां पर दो एक छन्द लिख देते किन्तु खेद है कि जिस जगह बैठे हम यह लेख लिख रहे हैं, उस जगह यह ग्रन्थ हमारे पास मौजूद नहीं है। इस ग्रन्थ में द्रोण पर्व का वर्णन अत्युत्तम रीति से हृदयग्राही विविध छन्दों में किया गया है। इनका रचित एक दूसरा ग्रन्थ 'दुर्गासप्तशती भी हमारे पुस्तकालय में है जिसमें देवीभागवत की समस्त कथा संक्षेप में वर्णन की गई है। इस ग्रन्थ का नाम खोज में भी नहीं है। यह पुस्तक छपी हुई हमारे पास है। इन दोनों ग्रंथों के काव्य का रसास्वादन मैं पाठकों को फिर कराऊंगा।

इस ग्रन्थ के ३४२ पृष्ठ में मिश्र बन्धुओं ने लिखा है कि—

"तिमिर लंग सह मेल चली बाबर के हलके।
रही हुमायूं संग गई अकबर के दल के॥
जहांगीर जस लियो पीठि को भार हटायो।
साहिजहां करि न्याव ताहि पुनि मांड बटायो॥

बल रहित भई पौरुष थक्यो
भगी फिरत वन द्यार डर।
औरँगजेब करिनी सोई
लै दीन्हीं कविराज कर॥

यह छन्द मुन्शी देवीप्रसाद मुन्सिफ कविगंग का रचा हुआ बतलाते हैं। किन्तु यह छन्द कविगंग का रचा हुआ नहीं है।"

हम भी लेखकों से इस विषय में सहमत हैं कि यह छन्द कविगंग का रचा हुआ नहीं है किन्तु कम्पिलनिवासी कविराय टेकमुनि चतुर्वेदी का रचा हुआ है। इन कविराय का विस्तृत हाल गोरखपुर से प्रकाशित "ज्ञान-शक्ति" नामक मासिकपत्रिका के चतुर्थ अंक में प्रकाशित मेरे एक लेख में मिलेगा। यह छन्द औरंगजेब के समय में बना है। औरँगजेब ही ने टेकमुनि चतुर्वेदी को कविराय की पदवी तथा ५०० बीघा माफी जमीन दी थी जो इनके वंशधर अब तक भोग रहे हैं। अस्तु।

यह लेख समाप्त करने के पूर्व मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि वर्तमान लेखकों में कितने ही सुयोग्य लेखकों की कृतियों का उल्लेख करना तो दूर उनका नमोल्लेख तक भी नहीं हुआ है। आशा है भविष्य में यह त्रुटि भी अवश्य दूर कर दी जायगी।

विश्वहास।*

[लेखक—कृष्णाकर।]

रोष से हँसो कोई,
दोष से हँसो कोई,
कभी भी न भाई चाहे भूल के हँसो कोई।
हँसेंगे हँसावेंगे,
हर्ष को बढ़ावेंगे,
हिलमिल हिलोड़ों को आवैं खिलावेंगे।
युद्ध को पधारैं,
परमधाम को सिधारैं चहे,
पाप को यहां ही पड़े आपकी सुधार चहे।
लाठियां चलावैं चहे,
जीभ ही लड़ावैं चहे,
द्वेष से तमाम दिनों रात जले जावैं चहे।
हँसी दो में काम होवै,
सदा सुबह शाम होवै,
हँसी ही में सारा यह जीवन तमाम होवै।
सूर्य हँसैं, चन्द्र हँसैं,
चन्द्र औ उपेन्द्र हँसैं,
जगती के जीव हँसैं, पार्वती के पीव हँसैं।
हँसी ही ने सारा आधा धरती अकास है।
हँसी ही की सारी यह ब्रह्म का विकास है॥

हमारा पुस्तकालय।

आदर्श हिन्दू।

प्रकाशक—काशी नागरी प्रचारिणी सभा, मूल्य ३) रु० और उसी से प्राप्त।

"आदर्श हिन्दू" नामक एक सामाजिक उपन्यास है और काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित "मनोरंजन पुस्तक माला" द्वारा तीन खंडों में प्रकाशित हुआ है। इसके रचयिता हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक और श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार के भूतपूर्व सम्पादक मेहता पं० लज्जाराम शर्मा हैं। मेहता जी के अन्य उपन्यासों की भांति इससे भी पाठकों को अच्छी शिक्षा मिलती है और हमारी समझ में ऐसे ही उपन्यासों से पाठकों के चरित्र सुधारने में बहुत कुछ सहायता मिलती है। इस पुस्तक में जगह जगह सूर, तुलसी, हरिश्चन्द्र, आदि सुकवियों की सुन्दर कविताएँ और कहीं कहीं नीति आदि के उपदेशपूर्ण श्लोक उद्धृत कर देने से सोने में सुगंध मिल गई है। इस उपन्यास में पं० प्रियानाथ को आदर्श हिन्दू मानकर उनका साधारणतः अच्छा चित्र खींचा गया है। काशी, प्रयाग और मथुरा में यात्रियों की जो दुर्दशा होती है और धर्म के नाम से जो अधर्म होता है, उसका ऐसा हृदयग्राही चित्र चित्रित हुआ है कि नेत्रों से अश्रुओं की धारा और शरीर में रोमाञ्च हुए बिना नहीं रहते फिर भी आश्चर्य होता है कि लेखक ने आजकल के समय में भी तीर्थयात्रा को इतना अधिक महत्व क्यों दिया है? हम तीर्थयात्रा के विरोधी नहीं किन्तु हम यह कभी नहीं चाहते कि धर्म के नाम से तीर्थों

* "पदार्पण" से उद्धृत।

पर घोर अधर्म किया जाय और उसके रोकने का कोई विशेष प्रयत्न न हो। हमारी समझ में आजकल गुसांई तुलसीदास के मतानुसार सत्संगरूपी तीर्थों में ही अथवा भीष्मपितामह के मानसिक तीर्थों पर ही लोगों की अधिक श्रद्धा होनी चाहिये। तुलसीदास कहते हैं :—

मुदमंगलमय संत समाजू।
ज्यों जग जंगम तीरथराजू॥
राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा।
सरस्वति ब्रह्म विचार प्रचारा॥
विधि-निषेध-मय कलिमल हरनी।
कर्म-कथा रविनन्दन बरनी॥
हरि हर कथा बिराजति बेनी।
सुनत सकल मुद मंगल देनी॥
बट बिश्वास अचल निज धर्मा।
तीरथराज समाज सुकर्मा॥
सबहि सुलभ सब दिन सब देसा।
सेवत सादर समन कलेसा॥
अकथ अलौकिक तीरथराऊ।
देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ॥

सुनि समुझहिं जन मुदित मन,
मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु,
साधु-समाज प्रयाग॥

यह हुआ तुलसीदास जी का तीर्थराज। महाभारत में धर्मराज युधिष्ठिर के पूछने पर भीष्म पितामह ने जो मानस तीर्थ कहे हैं उनमें कुछ ये हैं :—

अगाधे विमले शुद्धे सत्यतोये धृतिह्रदे।
स्नातव्यं मानसे तीर्थे सत्यमालम्ब्य शाश्वतं।
तीर्थशौचमनर्थित्वमार्जवं सत्यमार्दवम्।
अहिंसा सर्वभूतानामानृशंस्यं दमः शमः।
निर्ममा निरहङ्कारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः।
शुचयस्तीर्थभूतास्ते ये भैक्ष्यमुपभुञ्जते।
तत्वचित्वनहंबुद्धिस्तीर्थप्रवरमुच्यते।
सर्वत्यागेष्वभिरतः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः।
शौचेन वृत्तशौचार्थास्तेतीर्था शुचयश्च ते।
नोदकक्लिन्नगात्रस्तु स्नात इत्यभिधीयते।
स स्नातो यो दमःस्नातः स बाह्याभ्यन्तरशुचिः

हमारी समझ में आजकल ऐसे ही तीर्थों को हमें अधिक विशेषता देनी चाहिये और लेखकों, वक्ताओं और पत्रसम्पादकों को उचित है कि वे इस ओर लोगों की अधिक प्रवृत्ति करें। समय के अनुसार धर्म में भी कुछ परिवर्तन होता है। यह सब लोग मानेंगे कि पहले तीर्थयात्रा से जो लाभ और धर्मपालन होता था वह आजकल नहीं होता। इस समय हिन्दू-समाज में सनातन धर्म और आर्यसमाज ये दो माननीय अंग हैं। हम आर्य समाज को भी सनातनधर्म के अन्तरगत ही मानते हैं और उसके द्वारा जो उपयोगी कार्य होता है उसके लिये उसका आदर करते हैं। आश्चर्य है कि सनातनधर्म का अङ्ग होने पर भी आजकल आर्यसमाज में सनातनधर्म से भी अधिक जीवन दिखाई देने लगा है। हम सनातनधर्म और आर्यसमाज दोनों की अच्छी बातों ही के समर्थक हैं, प्रचलित कुरीतियों के नहीं। इनमें आपस में मेल रहने की बड़ी आवश्यकता है। आपस में वादानुवाद करने से कभी वृद्धि नहीं हो सकती। दोनों को मतभेद की बातें दूर रखकर उन्हीं बातों को ग्रहण कर के जिनमें आपस में किसी प्रकार का मतभेद नहीं है आपस में मेल रखना और एक होकर रहना चाहिये। "आदर्श हिन्दू" को आद्योपान्त पढ़कर हम कह सकते हैं कि वस्तुतः मेहता जी के और हमारे विचारों में बहुत ही कम अन्तर है। हम आशा करते हैं कि मेहता जी समय के अनुकूल अपनी मधुर एवं प्रौढ़ लेखनी से एक ऐसा उपन्यास अवश्य लिखेंगे जिसमें सनातनधर्म और आर्यसमाज आदि में

मेल दिखाया जाय और उसमें हिन्दी पाठकों को धार्मिक सहिष्णुता का उच्च आदर्श मिले।

"आदर्श हिन्दू" के पढ़ने से यह बात हृदय पर अच्छी तरह खचित हो जाती है कि पं० प्रियानाथ जैसे योग्य सज्जनों के सहवास से बड़े बड़े दुराचारी भी सुमार्ग पर आजाते हैं; पं० दीनबन्धु का परोपकार देखकर हृदय में परोपकार की वृत्ति जागृत हो उठती है; प्रियानाथ और कामतानाथ का सौहार्द देखकर यह शिक्षा मिलती है कि भाई भाई को किस तरह रहना चाहिये। पहले प्रियंवदा और सुखदा में जो जेठानी देवरानी थीं आपस में नहीं पटती थी और मा के लाड़ से सुखदा प्रायः बिलकुल ही हाथ से जाती रही थी किन्तु पीछे अच्छी शिक्षा मिलने पर वह मार्ग पर आगई और प्रियंवदा के साथ मिलकर बहिन से भी अधिक प्रम से रहने लगी। इस पुस्तक में धर्मशिक्षा, देशी व्यापार, राजनीति, स्त्रीशिक्षा आदि सभी बातों की थोड़ी बहुत चर्चा है। शिक्षा के सम्बन्ध में यह आशा की गई है कि भावी हिन्दू विश्वविद्यालय से हिन्दुओं को आदर्श शिक्षा मिलेगी। ईश्वर पंडित जी की यह आशा सफल करे। पुस्तक सर्वथा उपादेय और हिन्दुओं के पढ़ने के योग्य है। पुस्तक से मनोरंजन भी होता है और शिक्षा भी मिलती है। छपाई सफाई सब सुन्दर है।

झुझार तेजा।

झुझार तेजा—यह ८७ पन्ने की एक छोटी सी पुस्तिका है और इसके भी लेखक वही हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पं० लज्जाराम शर्मा हैं। इस पुस्तक में राजपुताने में विशेष मान्य तेजा वीर का चरित्र है। इसका आधार जनश्रुति है और इतिहास से भी कुछ सहायता ली गई है। पुस्तक रोचक और उपयोगी है और पढ़ने में उपन्यास का सा आनन्द आता है। पुस्तक का मूल्य ।) है और मिलने का पता—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी है।

सम्पादकीय टिप्पणियां।

कारण की आवश्यकता।

गत वर्ष में युक्त प्रान्त में ७१० मनुष्यों की हत्या हुई। इस संख्या में वह संख्या नहीं सम्मिलित है जो हत्याकारी साफ छूट गये या जिनमें हत्याकारियों ने आत्महत्या करली। इससे पहिले वर्ष में ६४१ हत्याएँ हुई थीं। तात्पर्य यह कि इस वर्ष में ६९ हत्याओं की वृद्धि हुई। इसका कोई कारण होना चाहिये। इन्सपेक्टर जेनरल लिखते हैं:—

"It is almost impossible to supply any definite cause for fluctuations under this head; but as I have remarked before the climatic conditions of a trying season are calculated to affect the tempers of persons who are liable to give way to passion and this is the only reason I can put forward to account for the increase of this crime."

अर्थ-इस मद में हत्या की संख्या बढ़ने का कोई निश्चित कारण बतलाना प्रायः असम्भव है; पर जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं देश में गरमी बहुत पड़ने से लोगों के स्वभाव बिगड़ जाते हैं और वे जोश में आकर पाप कर बैठते हैं। मैं हत्याकारियों की वृद्धि का केवल यही कारण बतला सकता हूं।

यह सौभाग्य की बात है कि इसमें एफ्रिका के समान गर्मी नहीं पड़ती नहीं तो मालूम नहीं क्या होता?

पास होकर फेल ।

कलकत्ते से एक लड़के के पास होने के बाद फेल हो जाने की एक विचित्र कथा सुनाई दी है । कम से कम जितने दिन उसे कालेज में उपस्थित रहना चाहिये था उसमें वह दस दिन कम उपस्थित था । लड़का तेज़ था इस कारण से कालेज के अध्यक्ष ने दयावश उसके और एक अन्य बी० एस० सी० के लड़के के संबन्ध में सिनडिकेट से प्रार्थना की कि उन्हें परीक्षा में सम्मिलित होने की आज्ञा दे दी जाय । सिन्डिकेट ने पहिले स्वीकृति नहीं दी किन्तु परीक्षा के तीन दिन पहिले अध्यक्ष को तार द्वारा सूचना मिली कि दोनों युवक परीक्षा में सम्मिलित हों । लड़कों ने परीक्षा दी और सेनेट भवन की दीवार पर परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थियों की सूची में उनका नाम निकल गया । किन्तु जब परीक्षा का फल कलकत्ता गज़ट में निकला तो उसमें दो में से एक विद्यार्थी का नाम न था । अध्यक्ष महोदय ने फिर लिखापढ़ी की । उत्तर उन्हें मिला कि केवल बी० एस० सी० के लड़के के संबन्ध में सिन्डिकेट ने आज्ञा दी थी । भूल से तार में दूसरे लड़के का नाम भी चला गया । इस तरह से परीक्षा को पास कर भी युनीवर्सिटी के कामों के लिए लड़का फेल ही है । इसे हम नियमों का बलिदान या विधि की विडंबना समझें ?

भारतीय वीर ।

दक्षिण एफ्रिका के बलवे की बात पाठक भूले न होंगे । वहाँ "वेन्टर्सड्राप" के ज़िले में बलवाई अधिक थे । ज़िले की रक्षा के लिए राजभक्त प्रजा कम थी । अधिकारियों का ध्यान तुरन्त ही तिरस्कृत भारतवासियों की ओर आकृष्ट हुआ । फिर क्या देर थी आवश्यक से अधिक भारतवासी साम्राज्य रक्षा के काम के लिए एकत्रित हो गये और सशस्त्र एक सप्ताह तक रात्रि में ८ बजे से ४ बजे सवेरे तक वे घूम घूम कर रात्रि भर पहरा देते रहे । एक सप्ताह बाद सेना आगई और तब भारतवासियों को छुट्टी मिल गई । जनरेल बोथा ने बलवे के अन्त होने पर मुक्तकंठ से भारतीय वीरों को उनके कर्तव्य पालन के लिए धन्यवाद दिया । भारतवासी कभी अपने कर्तव्य से विमुख न होंगे यह हमारा सदा से विश्वास है । साम्राज्य को भी अधिक संख्या में सैनिकों की आवश्यकता है । सम्राट जार्ज ने स्वयम् अपील की है । लार्ड किचनर बराबर मनुष्यों की पुकार मचा रहे हैं, क्या जनरेल बोथा की भांति ब्रिटिश सरकार भारतवासियों पर विश्वास कर उन्हें स्वयं-सेवक बना उनकी सेवा से लाभ उठाना उचित नहीं समझती । अभी इस युद्ध का अन्त दिखाई नहीं दे रहा है किन्तु भारतीय अपने पौरुष से उसे दृष्टिगोचर करा देंगे यह हमारा दृढ़ विश्वास है ।

वितंडावाद ।

कराची से खबर आई है कि वहाँ के रेलवे के एक डबलू० जे० केनी साहब क्रोध के वशीभूत हुए । कारण नहीं मालूम है और इस क्रोध में आपने एक ताज़ीन नामक भारतवासी को एक ठोकर मारी । अपनी कमज़ोरी, हीनता या नालायकी से वह उस ठोकर को सह न सका इसमें साहब का कोई कुसूर न था किन्तु अपनी कमज़ोरी के पाप से ताज़ीन की जान निकल गई । उसकी जान को रोके रहना साहब की शक्ति के बाहर था । कानूनी लोगों ने साहब पर मुकदमा चलाया, किन्तु उन्होंने मालूम पड़ता है डाक्टर से सलाह नहीं ली थी क्योंकि डाक्टर की राय में उसकी तिल्ली इतनी बढ़ गई थी कि ज़रा सी ठोकर से उसका फट जाना संभव था । पहिले साहब पर मनुष्य हत्या का अभियोग लगाया गया किन्तु बाद में साधारण चोट पहुंचाने का ही अभियोग चलाया गया । डाक्टर ने

अपनी राय दी और साहब पर ५०) जुर्माना हो गया। यह ठीक ही हुआ। हमें साहब के साथ सहानुभूति है कि उन्हें व्यर्थ में मुकदमें की झंझट उठानी पड़ी और यह जुर्माना देना पड़ा। उनका कोई दोष हमें दिखाई नहीं देता,। भारतीय कौंसिल के किसी सभ्य को यह प्रस्ताव सभा में उपस्थित करना चाहिये कि जिन भारतवासियों को अङ्गरेजों के साथ काम करने का सौभाग्य या अवसर प्राप्त होता है उन्हें प्रत्येक सप्ताह एक डाक्टर से अपनी तिल्ली की जाँच कराकर सर्टीफिकट ले लेना चाहिये कि वह बढ़ी हुई नहीं है। एक नियम यह भी हो जाय तो अच्छा हो कि जो भारतवासी बिना जांच कराये काम करेगा और जो मरेगा उसके घरवालों पर उनकी असावधानी के लिए जुर्माना होगा। व्यर्थ में तिल्ली बढ़ाकर ये मरनेवाले मनोमालिन्य बढ़ाते हैं और एक जाति को दूसरी जाति के विरुद्ध करने की सामग्री इकट्ठा करते हैं। यह वितंडावाद सर्वथा हेय है।

हमारा भ्रम।

प्रिन्स बिस्मार्क ने एक बार कहा था कि Free trade is the weapon of the strongest अर्थात् मुक्त द्वार व्यापार की नीति सशक्तों का अस्त्र है। भारत, बूढ़ा भारत, सशक्त है। सुबूत इसका यही है कि मुक्तद्वार नीति उसकी भी है। यदि वास्तव में ऐसा नहीं है तो प्रिन्स बिस्मार्क की उक्ति गलत होगी यही हमारा भ्रम है।

सम्मेलन।

सम्मेलन के दिन निकट हैं। इसी दिसम्बर मास के अन्तिम दिनों में उसकी बैठक है। सभापति का आसन माननीय पं० मदनमोहन मालवीय सुशोभित करेंगे। इस वर्ष सम्मेलन लाहौर में हो रहा है। आर्य भाइयों का गढ़ होते हुए भी यह उर्दू का केन्द्र है। गतवर्ष हिन्दी ने उर्दू के किले लखनौ पर चढ़ाई की थी अब की वह लाहौर पर चढ़ रही है। सेनानियों और सिपाहियों को जय जय करते हुए झंडे के साथ होना चाहिये। हिन्दी की विजय पर ही हमारी सब प्रकार की जीत अवलंबित है।

प्रह्लाद।

खेद के साथ कहना पड़ता है कि दिल्ली से निकलनेवाला प्रह्लाद अब बन्द हो गया। बन्द होने का कारण वही ग्राहकों का अभाव और आर्थिक कठिनाइयाँ। प्रभात बन्द हुआ ऊषा ने दर्शन देना छोड़ा। अब प्रह्लाद का भी बिछोह सहना पड़ा। पंजाब के लिये यह गौरव की बात नहीं है कि आर्यों की भूमि होते हुए भी उसका जलवायु हिन्दी के पत्रों के लिए तुषार सदृश्य हो रहा है।

हमारा विशेष अङ्क।

विशेष अङ्क शीघ्र ही प्रकाशित होगा। हम अभी यह नहीं बतलाते कि उसका नाम क्या है और उसमें लेख किस विषय के होंगे। हाँ इतना कह देना हम अवश्य चाहते हैं कि ऐसा अङ्क कभी पहिले हिन्दी भाषा में नहीं निकला है। इस अङ्क में मि० तिलक, मिसेज बीसेन्ट, मि० केलकर, मि० लाजपतराय आदि राष्ट्रीय दल के नेताओं के लेख रहेंगे। इस अङ्क का मूल्य १) होगा। ग्राहकों को अङ्क वही साधारण मूल्य पर मिलेगा।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग, में बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित हुई।

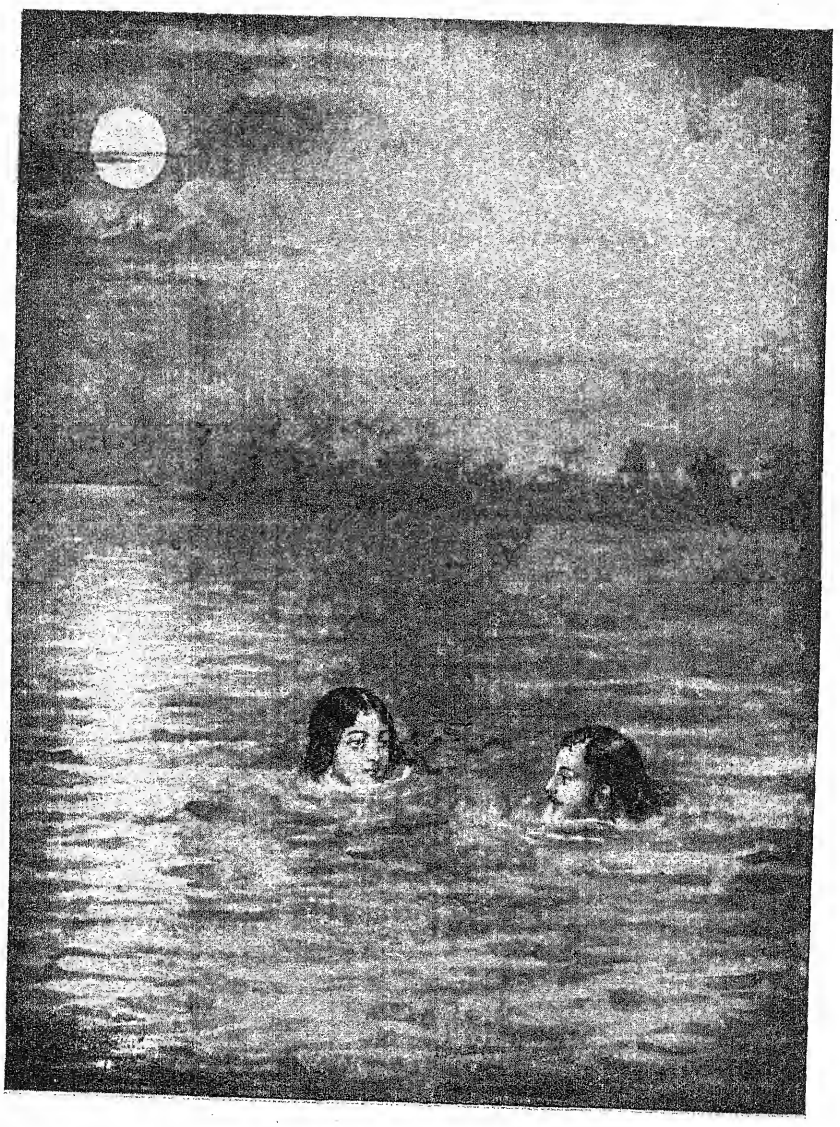

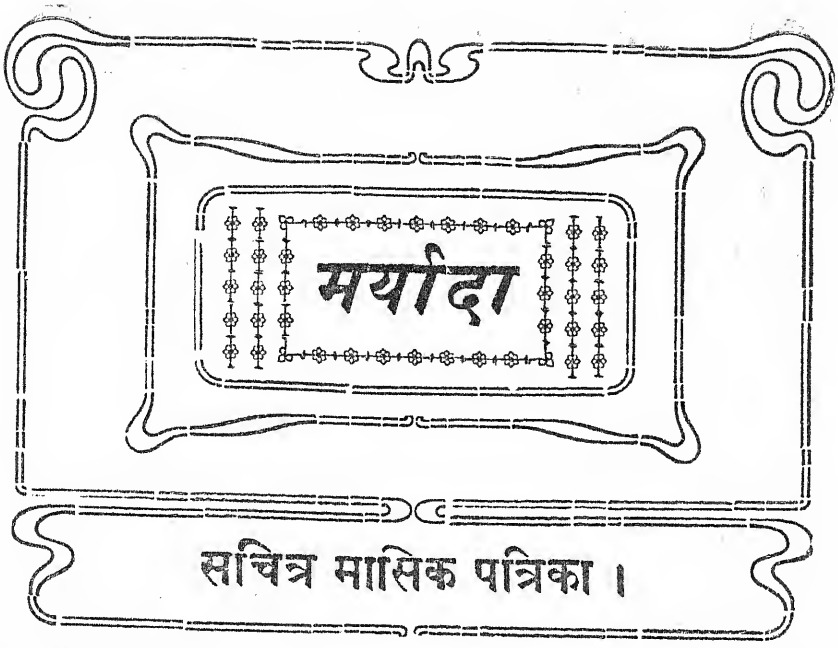

भाग १०] दिसम्बर सन् १९१५-अगहन [संख्या ६

"उठहु आलस को त्यागहु" ।

[लेखक-श्रीयुत कृष्णविहारी मिश्र बी० ए० ।]

उठहु मीत आलस को त्यागहु
दिवस सिरानो जात ।
बसुधा बन्धु शस्त्र सों सज्जित
तुम अजहूं औंघात ॥
जेहि विधि जाको लरन जहाँ है
तहँ सोइ हरबर जात ।
मींजत नयन उघारत पलकन
तुम सोचत पछितात ॥
जीवन समर न पीठ दिखावहिं
सब आगे समुहात ।
पुरिखन के अभिमान मगन तुम
करवट लै अँगरात ॥
मनमोदक सो मोद बढ़ावहु
सेंतमेंत इतरात ।
रिपुगन आगे धावत आवत
तुम केवल बतरात ॥
पीछे निरखन को न समय अब
अवसर अति नियरात ।
बढ़हु बढ़हु भारतवासी न तु
लाज तुम्हारो जात ॥

यूरोपीय महाभारत के कारण।

[लेखक—वही पुराना फ्रांसप्रवासी आधुनिक "जेनेवानिवासी"।]

That any one should act in Politics out of complaisance or from a sentiment of Justice, others may expect from us but not we from them. Every Government takes solely its own interest as the standard of its actions, however it may drape them with deductions of Justice or sentiment. My belief is that no one does anything for us unless he can at the same time serve his own interests.

Bismark

सर्वः स्वार्थम समीहते।

पाठकवृन्द! इस लेख के द्वारा आप से बातें करनेवाला न अंगरेज़ है, न फ्रेंच, न जर्मन, न रूसी और न इनमें से किसी का अंध पक्षपाती या प्रजा ही। वह तटस्थ देश का निवासी है और युद्ध को भी वह एक तटस्थ की भाँति ही देखता है। वह स्वतंत्र है, उसके भाव स्वतन्त्र हैं, उसके विचार स्वतन्त्र हैं और यथाशक्ति स्वतन्त्रता से ही अपनी बातों को कहने के लिए आज वह आपके सामने उपस्थित है।

आप कहेंगे इसका सुबूत क्या है। ठीक है इस शताब्दी में बिना प्रमाण कोई बात मानी नहीं जा सकती। अब "बाबा वाक्यं प्रमाणं" के दिन गये। कोई बात जबतक वह बुद्धि में न आजाय मानी नहीं जा सकती उसका कहनेवाला स्वयम् विधाता ही क्यों न हो।

अच्छा तो सुनिये! सारा संसार इस बात की घोषणा कर रहा है कि इस युद्ध का सारा उत्तरदायित्व जर्मनी पर है, जर्मनी की ही स्वार्थपरता और जातीय अभिमान के कारण युद्ध हुआ किन्तु हम कहते हैं कि युद्ध के लिये उत्तरदायी अकेला जर्मनी नहीं है। युद्ध के लिए जितना जवाबदेह जर्मनी है उससे रूस और फ्रांस एक रत्ती भर कम नहीं। साथ ही साथ जितनी ये बातें सत्य हैं उतनी ही सत्य यह बात भी है कि युद्ध के लिए कोई भी दोषी नहीं, समय की मर्जी कुछ ऐसा ही थी। रूस के लिए सर्विया का पक्ष लेकर युद्ध की तैयारी न करना और जर्मनी के लिए आस्ट्रिया का हिमायती न बनना अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी मारने के बराबर होता। एक दृष्टि से फ्रांस पर कुछ दोष मढ़ा जा सकता है किन्तु जब आत्म-रक्षा का सवाल उठता है, जब हम यह सोचते हैं कि प्रत्येक राष्ट्र का पहिला धर्म हर प्रकार से आत्म-रक्षा को प्रधानता देनी है, जब हम सोचते हैं कि Politics are life, and like all life will adhere to no rule

हमें यह विवश हो मानना पड़ता है कि फ्रांस और इङ्गलैंड ने भी युद्ध में सम्मिलित हो अपने कर्तव्य का पालन ही किया है।

यहां पर एक बात हम और साफ साफ कह देना चाहते हैं। राजनीति, कूटनीति, जैसा कि उनके नामों से प्रगट है, नीति हैं। समयानुसार, आवश्यकतानुसार जो ठीक हो वही करना उचित और आवश्यक होता है। जो साधारण पुरुष के लिए बेईमानी है, दग़ाबाजी है, झूठ है वही बात किसी राष्ट्र से की जाने पर बेईमानी, दग़ाबाज़ी, झूठ नहीं वरन् राजनीति होती है। इसका कारण भी है ये बातें एक दो के हित के लिए नहीं वरन् राष्ट्र के हित के लिए की जाती हैं।

साधारणतः नियम आदि जो संसार में बनाये जाते और प्रचलित होते हैं वे समाज या राष्ट्र के हित के लिए होते हैं। वे इसलिए बनाये जाते हैं जिससे समाज या राष्ट्र की नौका बढ़ती

रहे। समाज की रक्षा के लिए नियम आदि हैं किन्तु जब समाज के अस्तित्व में ही सन्देह होने लगता है तब फिर उन नियमों का आदर कैसे किया जा सकता है जिनसे समाज की रक्षा ही मात्र हो सकती है? जब समाज का अस्तित्व बना रहेगा तभी उसकी रक्षा भी की जा सकती है, तभी उन नियमों का भी प्रयोजन होता है। किन्तु जब समाज ही नहीं तो उन नियमों का काम ही क्या? मुख्य प्रश्न है समाज का अस्तित्व गौण है उसकी रक्षा। ऐसी अवस्था में जो लोग राष्ट्रीय मामलों, राजनैतिक कूटनीतियों में धर्म और नैतिक नियमों आदि को ढूढ़ने का प्रयत्न करते हैं वे भूल करते हैं और व्यर्थ परिश्रम करते हैं।

स्वार्थ की झलक।

इस सम्बन्ध में अधिक न कह कर अब हम अपने विषय पर आते हैं। ऊपर कहा गया है कि इंगलैंड ने युद्ध में सम्मिलित हो अपना धर्म पालन किया है। आप इसका कारण जानना चाहते होंगे। सुनिये, कहा जाता है कि इस युद्ध में वह केवल इसलिए सम्मिलित हुआ क्योंकि बेलजियम के साथ अन्याय किया गया था। बेलजियम को राष्ट्रों ने सन्धि द्वारा अखंडनीय माना था, यह तय हो चुका था कि लड़नेवालों की सेनाएँ बेलजियम भूमि पर पैर न रक्खेंगी इत्यादि किन्तु जर्मनी ने इसके विरुद्ध आचरण किया। इसीलिए इंगलैंड को मैदान में आना पड़ा। कहने सुनने में ये बातें बहुत अच्छी मालूम होती हैं किन्तु इतना ही सत्य नहीं है। जिस प्रकार से बेलजियम की उदासीनता को जर्मनी ने भंग किया था उसी प्रकार से जर्मनी ने लक्समबर्ग की उदासीनता का भंग किया था। यदि इंगलैंड परोपकार के लिए दौड़ा था तो फिर वह लक्समबर्ग के लिए पहिले क्यों नहीं उठा?

राजनीति में धर्म, उदारता आदि को जो स्थान देते हैं वे इस बात का उत्तर दें। और लोगों का कहना तो यही है कि लक्समबर्ग फ्रांस की सीमा पर था, लक्समबर्ग पर जर्मन कब्ज़ा होने से फ्रांस को हानि पहुंच सकती थी इंगलैंड को नहीं और इसीलिए इंगलैंड को मैदान में उतरना आवश्यक नहीं समझ पड़ा। दूसरे सन्धि में भी कुछ ऐसी ही शर्तें हैं। इसके विपरीत बेलजियम पर जर्मन कब्ज़ा का अर्थ यह था कि समुद्रतट तक जर्मन सेना पहुंच जाती, यह इंगलैंड के लिए हानिकर था और इसलिए मैदान में आना इंगलैंड के लिए उतना ही आवश्यक था जितना कि परोस में अग्नि लगने से अपने घर की चिन्ता।

यही नहीं मि० लुई० ई० वान० नार्मन नाम के एक एमेरिकन ने इसी सम्बन्ध में चर्चा करते हुए एमेरिकन "रिव्यू आव रिव्यूज़" में लिखा है कि—

Shortly afterward (1904) a secret understanding was arrived at between the two countries which, despite official denials, is now understood to have provided for British aid to France in case of an attack by Germany. This was the famous "Entante cordiale or cordial understanding.

अर्थात् १९०४ के कुछ ही समय बाद इंगलैंड और फ्रांस में आपस में एक समझौता हो गया था जिसका अर्थ यह था, यद्यपि सरकारी तौर से इसका विरोध ही किया जाता है कि यदि जर्मनी फ्रांस पर हमला करे तो इंगलैंड फ्रांस की सहायता करेगा।

यह दूर की बात है, लिखनेवाला भी अमेरिकन है किन्तु देखिये प्रयाग का अंगरेज़ी पत्र "पायोनियर" इंगलैंड के सम्मिलित होने के कारणों का विवेचन करते हुए अपनी १ जनवरी की संख्या में क्या लिखता है। उसने लिखा है:—

Britain was drawn in because we could not face with equanimity the prospect of the downfal of France in a war which was not of her seeking; because we could not afford to see Belgium in the power of a nation that has seldom troubled to disguise its hostile feelings towards us; *Finally because we had set our hands and seals to the treaty guaranteeing the neturality of Belgium*.....

इससे भी यह साफ प्रगट है कि इंगलैंड जितना बेलजियम के लिए नहीं जितना फ्रांस के लिए नहीं उतना अपने लिए—क्योंकि फ्रांस और बेलजियम के न रहने पर उसपर भी विपत्ति पड़ने की सम्भावना थी—लड़ा। वह इसलिए भी युद्ध में सम्मिलित हुआ क्योंकि वह देखता था कि रूस साथ है, फ्रांस साथ है, बेलजियम साथ है, हर तरह से पक्ष मज़बूत है ऐसी अवस्था में यह सम्भव है कि जर्मनी की हार से सदा के लिए उसके मार्ग से कंटक दूर हो जाय। चाहे जिस पहलू से देखिये उदारता का जादू आपको मोह जाल में नहीं छोड़ सकेगा।

यह सब होते भी इंगलैंड का हित इसी में था कि वह मित्रों का साथ दे, अपने सदा के बैरी का मान मर्दन करता और अपने अस्तित्व और प्रभुता को अपनी दृष्टि में अविनाशी कर लेता। इसी कारण से हम कहते हैं कि इंगलैंड ने युद्ध में सम्मिलित हो अपने कर्तव्य का पालन ही किया है।

वस्तुतः युद्ध क्यों हुआ और उसके कारण क्या हैं इसको समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम लोग यूरोपीय राष्ट्रों की स्थिति से परिचित हों और उनके इतिहास का हमें कुछ कुछ ज्ञान हो।

इतिहास।

एक समय कुल यूरोप में रोम का चक्रवर्ती राज्य था। धीरे धीरे अन्तर्जातीय संग्राम हुए और एक एक कर राज्य पृथक २ हो गये। पहिले राष्ट्र का भाव द्वीपगत था किन्तु बाद में वह जातिगत हुआ। द्वीपगत भाव के स्थान पर जातीय भाव ने अधिकार जमाया और यह विचार फैलना आरम्भ हुआ कि प्रत्येक राष्ट्र पूर्ण स्वतन्त्रता का अधिकारी है और वह किसी अन्य राष्ट्र से किसी प्रकार कम नहीं। सन् १८०६ में आस्ट्रिया के सम्राट् ने "रोमन सम्राट्" की पदवी त्याग दी और उसी दिन से रोमन साम्राज्य का नामोनिशान दुनिया से मिट गया। इसके बाद यूरोप में नेपोलियन का दौर दौरा हुआ।

१८१५ ई० में नेपोलियन को वाटरलू के युद्ध में सम्पूर्ण रूप से पराजित और बन्दी कर सेंट-हेलना में भेजने के बाद, प्यारी-नगरी पेरिस में जो दूसरी बार सन्धि हुई उसमें फ्रांस को वर्त्तमान राज्य और दो एक छोटे २ स्टेट्स मिले। इंगलैंड को वेस्ट इन्डीज़ के कई एक द्वीप, उत्ताशा-अल्तरीप, मीरटस, सिलश और माल्टा द्वीप प्राप्त हुए। आस्ट्रिया को अपने इटली के राज्य समूह फिर वापिस मिल गये। प्रशिया (आधुनिक जर्मनी) को राइन-प्रदेश, ड्यानजिन और ओयारस राज्य का कुछ अंश लेकर सन्तोष धारण करना पड़ा। ओयारस का बचा भाग प्रशिया ने ग्रहण किया। इटली ने पिडमान्ट, सेवाय और जनेवा (इन तीनों की शासन-प्रणाली एक हुई) और अन्यान्य क्षुद्र राज्य सब फिर स्वाधीन हो गये। उसी समय आस्ट्रियन नेदरलैंड (बेलजियम) हालैंड के साथ मिला दिया गया और एक स्वतन्त्र राज्य की सृष्टि हुई। स्वीडन, नार्वे और डेन्मार्क में पुरातन वंश फिर अधिकारी हुए और आस्ट्रिया के सम्राट् जर्मनी के सम्मिलित प्रदेश समूह के प्रेसीडेन्ट चुने गये। पश्चिमांश की जब यह अवस्था थी; पूर्वांश के ग्रीस, अलबेनिया, थेस, मेसीडोनिया, सर्विया, रूमानिया, मान्टीनिग्रो, बलगेरिया, रूमेलिया, बोसनिया, हरज़ीगोवाइना

इत्यादि क्रिश्चियन राज्यसमूह आटोमन टर्की के अधिकार में थे। ये सभी देश स्वाधीनता प्राप्ति के लिए थोड़ा बहुत उद्योग कर रहे थे। अष्टादश शताब्दी के लेखकगण विशेष कर रूसो, वालटेयर, मन्टेस्क जो चिन्ताधारा प्रवाहित कर गये थे उसके फल से फ्रांस में प्रजातन्त्र शासन प्रतिष्ठित होगया। इसका प्रभाव पर-पद-दलित, अत्याचार-प्रपीड़ित और विगत गौरव ग्रीस और इटली के अधिवासियों पर भी पड़ा।

इसी समय से यूरोपीय राजनैतिक आकाश में Balance of Power वल साम्य नामक नक्षत्र का विकाश हुआ। सब राष्ट्रों की दृष्टि इस ओर फिरी कि किसी अन्य राष्ट्र की शक्ति न बढ़ने पावे, जिसमें एक वलवान होकर दूसरे को दबा न सके और जिसमें सब का महत्व एक सा बना रहे। इसी हेतु प्रायः नेपोलियन के बाद से सभी युद्धों के अन्त में राष्ट्रों की पंचायत ही द्वारा मेल, सन्धि आदि हुआ करती थी। इन सब पंचायतों में निर्णायक विचार यही रहता था कि शक्ति वराबर रहे। इस वर्तमान युद्ध का भी एक प्रधान कारण यही Balance of Power का अड़ंगा है। दूसरा प्रधान कारण स्लैव (रूस) और ट्यूटन (जर्मन) की प्रतिद्वन्द्विता है। तीसरा और सब से प्रधान कारण एशिया की तथा संसार की अन्य नूतन बाज़ारों को हस्तगत करना है जहां देश में बना हुआ माल बेचा जा सके, और चौथा समुद्र पर समान अधिकार की इच्छा है।

राष्ट्रों की तड़बन्दी।

राष्ट्रों में रोम का सितारा कभी अस्त होगया। उसके बाद स्पेन, पोर्चुगाल, और डच भी कुछ दिन चमक कर मन्द ज्योति हुए। इनके बाद फ्रांस चमका और नेपोलियन की विचित्र शक्ति से बहुत ऊँचा उठा किन्तु इसे इङ्गलैंड और जर्मनी ने धर दबाया और १९वीं शताब्दी इङ्गलैंड की हुई। जर्मनी, राष्ट्रों की दौड़ में सब के पीछे रंगमंच पर आया किन्तु इसने आते ही १८७० में फ्रांस को पछाड़कर अन्य राष्ट्रों को यह संदेश दिया कि "अब जिगर थाम कर बैठो मेरी बारी आई।"

इस संबन्ध में एक बात और पाठकों को हम बतला देना चाहते हैं। इससे पाठकों को यह भी मालूम होगा कि जर्मनी को जर्मनी और बड़े बड़े राष्ट्रों को बड़ा राष्ट्र कौन सी वस्तु बना देती है। जिस समय जर्मन सेना विजय लाभ कर फ्रांस को कुचल रही थी एडोल्फी थीयर्स फ्रेंच प्रजातंत्र के प्रेसीडेन्ट यूरोपीय सम्राटों के पास सहायता की भिक्षा मांगते फिर रहे थे। इसी समय में वीयना में उनसे और रैंके नामक जर्मन ऐतिहासिक से भेंट हुई। थीयर्स ने रैंके से पूछा कि सिदान में विजय लाभ कर अब जर्मन सेना किसके विरुद्ध लड़ रही है क्योंकि नेपोलियन तृतीय तो बहुत दिन हुए कैद हो चुका! रैंके (Ranke) ने उत्तर दिया "लुई चौदवें के विरुद्ध।" पाठको! लुई चौदवां १७१५ में मर चुका था और उपर्युक्त बात १८७० में हो रही थी किन्तु रैंके ने झूंठ नहीं कहा था। लुई १४वें ने जर्मन सम्राटों को इतना नीचा दिखाया था कि ५ पुस्त बाद भी जर्मन उस अपमान को भूल नहीं सके थे। लुई १४वें के महल में ही बैठ कर जर्मन राजाओं ने जर्मन साम्राज्य की नींव डाली थी। वहीं पर वे एक हुए थे। १६८१ में लुई ने जो जर्मनों को हराकर अपमानित किया था वह आग उसी तरह से १८११ में उनके हृदयों में वल रही थी।

वास्तव में बात भी ऐसी ही है—

It is a proof of a lively sense of honour if a nation suffers so keenly from a single injury to its pride that the desire for retrebution becomes the ruling passion of the people'' ''Von Bulow''

जो जाति अपना अपमानित होना भूल जाती है, जिस जाति में बदला लेने के लाल

लाल जलते हुए अङ्गारे हृदय में हर घड़ी जलते नहीं रहते, जिसे अपनी मान मर्यादा का ध्यान जाता रहता है और जो सब कुछ भूलकर निश्चेष्ट हो जाती है वही जाति मुर्दा गिनी जाती है और उसके अस्तित्व की गिनती नहीं हो सकती। केवल जर्मनी ही में नहीं यही भाव फरासीसियों में है, यही रूसियों में है, यही इटैलियनो में है, सर्वो में है और आज इसके द्वारा भी इस रणरूपी यज्ञ में अच्छी आहुति पड़ रही है।

फ्रांस १८७० को नहीं भूला है, अलसास लोरेन फ्रेंच हृदय पर इस समय भी बिच्छू की भांति डंक मार रहा है। फ्रांस के सैनिक आज रूस का साथ देने को उतना नहीं जितना कि अलसास लोरेन को हस्तगत करने और १८७० का बदला लेने को लड़ रहे हैं।

जिस समय इङ्गलैंड और बोर लोगों में युद्ध हो रहा था। सारे यूरोप की सहानुभूति बोरों के साथ थी। फ्रेंच जनता भी बोरों की सहायता करने के लिए लालायित थी। उस समय एक अंगरेज़ मंत्री ने एक फ्रेंच कूटनीतिज्ञ से बातें करते हुए कहा—"फ्रांस जर्मनी से मिल कर कहीं बोरों का साथ तो न देगा?"

फ्रेंच कूटनीतिज्ञ ने कहा:—

You may rest assured that so long as Alsace-Lorraine remains German, whatever may happen, the French nation will consider Germany its permanent enemy and will regard any other power merely as an accidental opponent.

अर्थात् जब तक अलसास लोरन, जर्मनों के कब्ज़े में है, जो चाहे हो जाय, फ्रेंच जाति जर्मनों को सदा अपना शत्रु समझेगी..... अलसास लोरेन को छीन लेने की अभिलाषा फ्रेंच हृदय से दूर नहीं हुई है। जीवित जातियों के चिह्न ये हैं, जिसमें "हम" नहीं, जिस जाति के हृदय में शत्रु के मानमर्दन की अमृतमय अभिलाषा प्रति घड़ी हिलोरें नहीं मारती रहती वह जाति संज्ञाहीन है, और वह अपने पूर्वजों के नाम को इतिहास में फिर से स्वर्णाक्षरों में नहीं लिखवा सकती।

जर्मनी का आदिपर्व।

अब जर्मनी के सम्बन्ध में कुछ समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम जर्मनी का इतिहास कह दें।

६०० वर्ष पहिले (जर्मनी) प्रशा के निवासी स्लाव भाषा बोलते थे और मूर्तिपूजक थे। प्रायः २५० वर्ष हुए तब प्रशा पर पोलैंड के राजा का शासन था। तेरहवीं शताब्दी में जर्मनों ने ईसाई मत स्वीकार किया। धीरे धीरे जर्मनी ऊपर उठा किन्तु शताब्दियों तक जर्मन राजाओं की कोई पूंछ न थी। वे यूरोपीय अन्य राजाओं का दरबार किया करते थे, उनकी भिक्षा से जीते थे इत्यादि।

किन्तु अपने सम्राटों और राज्यनीतिज्ञों के बुद्धि-बल से जर्मन सितारा एकदम यूरोपीय आकाश में जगमगाने लगा। इसके पहिले तीन युद्धों में जर्मनी विजय लाभ कर चुका था और येही उसके उत्कर्ष का कारण हैं। अन्य राष्ट्रों इङ्गलैंड, फ्रांस और रूस को यह तनिक भी नहीं सुहाया, उन लोगों ने जर्मनी के मार्ग में कितनी ही अड़चनें डालीं किन्तु बिस्मार्क चतुरता से राष्ट्र की नौका को इन चट्टानों से टकराने से सदा बचाता रहा।

१८०६ में जर्मनी बुरी तरह से हारा किन्तु सम्राट् फ्रडरिक और बिस्मार्क हतोत्साह नहीं हुए। १८०७ से १३ तक उन लोगों ने बड़ी चेष्टाएँ कीं और जर्मन जनता भी हर प्रकार से उनके हाथों की कठपुतली होगई। जहां राजा और प्रजा इस प्रकार से एक हो जायँ वहां क्या नहीं हो सकता। १८१३ से १८१५ तक जर्मनी फिर नेपोलियन को कुचलने में लगा

और वाटरलू के युद्ध के बाद जर्मन जाति यूरोपीय संसार में आदर की दृष्टि से देखी जाने लगी। १८६६ में जर्मनी ने डेनमार्क के दो प्रदेश छीन लिए। फ्रांस और ब्रिटेन ने झगड़ा करना चाहा किन्तु लाचार हो उन्हें चुप रह जाना पड़ा। १८७० में जर्मनी ने फ्रांस पर विजय लाभ की और क्षतिपूर्ण में बहुत से धन के साथ अलसास लोरेन भी ले लिया।

जिस तरह जर्मनी संसार में युद्ध द्वारा विजय लाभ कर रहा था उसी तरह से सब प्रकार की विद्या और कलाकौशल की उन्नति भी जर्मनी में शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की कला की भांति नित्यप्रति वृद्धि प्राप्त कर रही थी। जनसंख्या में भी बराबर वृद्धि हो रही थी। सारांश यह कि तब से जर्मनी का भाग्य सूर्य यूरोपीय गगनमण्डल में बराबर ऊंचा ही होता चला जा रहा है।

सन् ७१ में जर्मन साम्राज्य की जनसंख्या ४१,०५,८,७६२ थी। १६०० में यही संख्या ५६,३,६७,१७८ होगई और आज यही ६६,०००,००० है। साम्राज्य में इतने निवासियों के लिए स्थान नहीं न वह इतने मनुष्यों के भोजन-वसन ही का अच्छी प्रकार प्रबन्ध कर सकता है। भीषण समस्या राजनीतिज्ञों के सामने उपस्थित हुई। देश से निवासी बाहर जाकर दूर देशों में बसने लगे। १८६२ में जर्मनी से ११६,३३६ प्रवासी बाहर गये किन्तु राजनीतिज्ञों को यह बात कैसे पसन्द आसकती थी। वे यह नहीं चाहते थे कि उनकी शक्ति कम हो, जर्मन उनसे अलग हों और वे दूर देशों में जाकर बसें। राष्ट्रीयता का खून जिनकी रगों में दौड़ रहा है वे कब अन्य देशों, अन्य राष्ट्रों के झंडे की छाया में रहना पसन्द कर सकते हैं। यह ठीक भी है, आज इङ्गलैंड काही यदि कोई राजनीतिज्ञ यह प्रस्ताव करे कि अङ्गरेज़ दूसरे देशों में, दूसरे राज्य के आधीन जाकर बसें तो वह देश का शत्रु समझा जायगा।

अङ्गरेज आस्ट्रेलिया में बसेंगे, कैनाडा में बसेंगे किन्तु वे इटली, रूस या फ्रांस में बसना कभी नहीं पसन्द करेंगे। ऐसी अवस्था में जर्मन-जनता के भोजन का दो ही प्रकार से उपाय हो सकता था। एक तो यह कि जनता की वृद्धि न हो, बच्चे कम पैदा हों, दूसरा साम्राज्य-विस्तार।

जर्मन राजनीतिज्ञों से नेपोलियन के पतन का कारण छिपा न था। वे जानते थे कि नेपोलियन, जर्मन या ब्रिटिश सैनिकों से नहीं हारा, उसके हार का एकमात्र प्रधान कारण फ्रेंच स्त्रियां थीं।

इसली रेक के शब्दों में Those women, all powerfull in France, sapped and sapped the popularity of Napoleon whom they called the man-eater.

नेपोलियन अपने समय का बड़ा ज़बर्दस्त राजनीतिज्ञ था। फ्रेंच जनसंख्या की वृद्धि देख, जो उस समय रूस से कहीं अधिक थी उसने देखा कि जनता के भोजन के लिए साम्राज्य-विस्तार की आवश्यकता है। उसने उनको दूर देशों में जाकर बसने के लिए कहा किन्तु फ्रेंच स्त्रियां पेरिस से बाहर नहीं होना चाहती थीं, और, मर्द बीबियों के खिलाफ चल नहीं सकते थे। फ्रेंच स्त्रियों ने यह निश्चित किया कि वे अधिक सन्तान न पैदा करेंगी और उसका फल यह हुआ है कि फ्रांस की जनसंख्या जो १८१५ में जर्मनी से कहीं अधिक थी आज उससे २२,००००० कम है।

जर्मन राजनीतिज्ञ इन बातों को जानते हैं इससे वे प्रथम उपाय के विरोधी हैं। उनके सिवाय जर्मन स्त्रियां अधिक पुत्रों की माता होना अपना सौभाग्य समझती हैं।

जनता की वृद्धि के साथ ही साथ कल-कारखाने बढ़े, उनके लिए भी काम करनेवालों की आवश्यकता है इस दशा में कोई भी विचारवान राजनीतिज्ञ जर्मनों को दूर देशों में

बसने के लिए कब कह सकता था? ऐसी अवस्था में उनका भोजन सर्वथा व्यापार पर निर्भर है। इस समय जर्मनी में दूर देशों से व्यापार के द्वारा २८५०००००० रुपया प्रति वर्ष आता है। सन् १९१० में ११८०० जर्मन जहाज़ और ११६९८ अन्य राष्ट्रों के जहाज़ों ने जर्मन बन्दरगाहों में माल उतारा और ११९६२ जर्मन और ११६७८ अन्य राष्ट्रों के जहाज़ माल लेकर बाहर गये। इतने पर भी बढ़ते हुए व्यापार के लिए जर्मनी प्रति वर्ष ७० नूतन स्टीमर और ४० नूतन जहाज़ तैयार करता है।

व्यापार की रक्षा के निमित्त या दूसरे शब्दों में जनता के भोजन की रक्षा के निमित्त यह आवश्यक हुआ कि विदेशी व्यापार रक्षित रहे। इस हेतु जर्मन राजनीतिज्ञों के सामने जल सेना का मसला उपस्थित हुआ। वान बूलों के शब्दों में The sea became a factor of more importance in national life. राष्ट्रीय जीवन के लिए समुद्र पर अधिकार अधिक महत्व का प्रतीत होने लगा।

शक्ति का ही संसार में मान होता है। सेना के कारण जर्मनी बलवान था इसलिए स्थल पर उसकी तूती बजती थी किन्तु सामुद्रिक शक्ति न होने से वह लुंज था इस कारण जर्मनी के लिए जलसेना का रखना जीवन मरण का प्रश्न था। उसके जीवन के लिए, उसके अस्तित्व के लिए यह आवश्यक था कि जिस प्रकार वह स्थल सेना द्वारा शक्तिशाली था उसी प्रकार वह जल सेना द्वारा भी शक्ति सम्पन्न हो। जिस तरह स्थल पर वह निर्भय था उसी तरह समुद्र में भी वह निर्भय हो जाय।

शक्ति क्या है इसका नमूना भी देख लीजिये। १८६४ में जर्मनी ने डेन्मार्क पर आक्रमण किया। उस समय बर्लिन स्थित ब्रिटिश राजदूत ने बिस्मार्क से कहा कि इङ्गलैंड के निवासी उत्तेजित हो गये हैं और सम्भव है कि विवश हो इङ्गलैंड को जर्मनी के विरुद्ध अस्त्र ग्रहण करना पड़े। बिस्मार्क ने हँस कर कहा—"खुशी से, तुम लोग हमें हानि ही क्या पहुंचा सकते हो। अधिक से अधिक तुम एक दो बम के गोले स्टाल्पम्यूड या पिलेन पर गिरा सकते हो।"

बात यह थी कि जिस भांति इङ्गलैंड अपनी जल-सेना के कारण अयोध्य था उसी प्रकार स्थल सेना के रहते जर्मनी पर भी कोई आक्रमण नहीं कर सकता था। स्थल सेना इससे अधिक कुछ नहीं कर सकती थी, वह देश के व्यापार या देश की रोटी की रक्षा करने में असमर्थ थी। इसलिए जर्मनी ने जल सेना की ओर ध्यान दिया।

यहीं से इङ्गलैंड का वह और इङ्गलैंड उसका प्रतिद्वन्द्वी हुआ। जर्मनी के लिए यह कर्तव्य भी था।

Every nation with sound instincts and a viable organisation of the state, has attempted to extend its geographical position if it has no coast-line. The bitterest and most protracted struggles have always raged round coast-lines and harbours from Careyra and Potedaea, which were the cause of the Peloponesion war to Kavalla, about which the Greeks and Bulgarians quarreled in our times." Nations which could not reach the sea or were forced away from it, silently retired from the universal contest.

क्रमशः।

महापुरुष सन-यात-सेन।

[लेखक—"नारायण"।]

चीन में फिर राजतंत्र स्थापित हो गया है। बड़ी बड़ी कठिनाइयों और विकट बाधाओं को दूर कर जो काम सन-यात-सेन ने किया था युनान-शि-काई और उनके साथियों ने आज उसी पर पानी फेर दिया है। पाठकों को यह दिखलाने के लिए कि "महापुरुष" का काम कैसा था, कठिनाइयां कैसी थीं और उनपर विजय प्राप्त करना कितना कठिन था आज मैं वीरवर नायक के सम्बन्ध में कुछ कहने को उपस्थित हुआ हूं।

संसार के लोगों को डाक्टर सन-यात-सेन का नाम पहले पहल सन् १८९६ में सुनाई दिया। जिस समय अंगरेज़ लोगों ने सुना कि दिन दहाड़े, ख़ास लंदन शहर से एक चीनी शर्णागत (refugee) उड़ा दिया गया है और वह चीनी दूत-गृह (embassy) में कैद कर रक्खा गया है, उसकी स्वतन्त्रता छीन ली गई है और उसकी जान का भी ख़तरा है, उस समय वे लोग मानों एक निद्रा से चौंक पड़े। इस बात से लोगों में बड़ा कौतूहल मच गया। उसके विषय में लोगों में बड़ा जोश फैल गया। उसके बचाव के बेढब ढंग सोचे जाने लगे। दो चार रोज तो सारे शहर क्या सारे देश में इसीकी चर्चा होती रही। जहां देखो यही बात और कोई ज़िक्र ही नहीं। यकायक ब्रिटेन ने हस्तक्षेप किया। कुछ दिन के बाद "सन" मुक्त किये गये। तुरन्त ही सारी चर्चा बन्द होगई और लोग 'सन' को भूल भी गये।

परन्तु १५ वर्ष के बाद यह बात फिर उभरी। २९ दिसम्बर सन् १९११ को रायटर के 'नैनकिन' के सम्वाददाता ने यह तार दिया कि वही शर्णागत जो अपने देश से भागकर हमारे देश में आया था और यहां आकर भी जिसका पीछा न छुटा था, वही आज चीन के प्रजातन्त्र राज्य का प्रथम प्रधान बनाया गया है और वही इस समय चीन की वर्तमान विचित्र स्थिति का नायक और सूत्रधार है। अब यह प्रश्न होने लगा कि इस बीच में कौन सी ऐसी बात हो गई जिससे मनुष्य को यह अपूर्व अधिकार मिल गया।

इस ग़रीब, गुमनाम और निःसहाय मनुष्य ने किस तरह से अपने करोड़ों देशवासियों पर प्रभुता प्राप्त कर ली? उसकी शक्ति का रहस्य क्या है?

सन-यात-सेन तथा चीन के विप्लव का सच्चा चित्र इन प्रश्नों का उत्तर है। ऐतिहासिक उपयोगिता के ख़याल से इससे बढ़कर कोई चरित्र दिखाई नहीं देता। बीस वर्ष तक सन-यात-सेन ने अपने जीवन का प्रत्येक दिन और करीब करीब प्रत्येक घंटा केवल एक इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए खर्च किया कि चीन से मंचू लोगों का राज्य कैसे हटे और किस तरह से देश में ऐसा प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य स्थापित हो जिससे लोगों के साथ साधारण न्याय हो, दुष्ट कर्मचारियों के चंगुल से लोगों की जान बचे और स्वतन्त्रता तथा शिक्षा की सुविधा प्राप्त हो। बहुत बार उसे संकट में पड़ना पड़ा। कई बार उसने जान की जोखिम भी उठाई। चीन के ४० लाख वर्गमील में से बहुत सा भाग उसने पैदल घूम डाला। इस यात्रा में उसे बहुत से रूप धारण करने पड़े। किन्तु उसने अपने देश का कोना कोना छान डाला और लगभग हर एक शहर में अपने प्रतिनिधि नियत कर दिये। उसने अपनी विलक्षण योग्यता और सब से एक ऐसा संगठन

स्थापित कर दिया जिसकी शाखाएं धीरे २ सारे देश में फैल गईं। उसने केवल इतना ही काम नहीं किया किन्तु जो चीनी सारे संसार में तितर बितर फैले हुए थे, उनमें भी उसने देश-भक्ति पैदा कर दी। अमेरिका, होनोलूलू, मालय प्रायद्वीप और स्टेट सेटिलमेंट में जो उसके भाई मौजूद थे उनमें भी उसने मंचू वंश के विरुद्ध विप्लव का सन्देश पहुंचा दिया।

इस वंश से प्रत्येक चीनी स्वाभाविक रीति से घृणा करता है। वह इन देशनिर्वासित मनुष्यों से अनेक बार मिला और प्रत्येक बार उसे कुछ नये प्रेमी मिले और कुछ ऐसी बातें मालूम हुईं जिनसे देश में काम करने के नये नये तरीके निकल आये। उसने यूरोप से हथियार मोल लेकर चुपचाप अपने देश को भेजे और वहां के अधिकारियों को इसका कुछ भी पता न चला। उसने बहुत से यूरोपीय दूत-गृहों में अपने मित्र पैदा कर लिये और सब से कठिन काम उसने यह किया कि बहुत सी शक्तियों को, उनके प्रतिनिधियों द्वारा, इस बात पर राज़ी कर लिया कि जिस समय चीन अपने उद्धार का यत्न करे, उस समय वे शक्तियाँ कुछ हस्तक्षेप न करें।

उसने इस सारे काम को केवल थोड़े से सच्चे मित्रों की सहायता से किया है। उसका और कोई ज़रिया न था। मंचू लोगों के एजेन्ट सदा उसकी जान के पीछे पड़े रहते थे। उन्होंने उसे तथा उसके प्रभाव को नष्ट करने के लिए कोई बात उठा नहीं रक्खी थी।

चीन का उद्धार करने में उसे जो कुछ सफलता प्राप्त हुई है, उससे हम कह सकते हैं कि वह वर्तमान समय का सर्वश्रेष्ठ मनुष्य है। जिस समय हम सोचते हैं कि उसका कार्य कितना गहन था और उसके सन्मुख कितनी बड़ी बड़ी कठिनाइयां थीं, उस समय हमें मालूम होता है कि संसार के इतिहास में उसने कितना बड़ा भाग लिया है।

यदि संसार के किसी देश में विप्लव का संगठन करना कठिन था तो वह देश चीन ही था। वहां की पहली कठिनाई देश का महान विस्तार है। इतना कह देने से कि चीन का विस्तार ४२१८२०१ वर्गमील है, दिमाग चकरा जाता है। किन्तु जिस समय हम सोचते हैं कि चीन साम्राज्य सारे यूरोप से भी बड़ा है या वह रहने योग्य संसार का एक चौथाई हिस्सा है उस समय हमें उसकी विशालता का कुछ पता चलता है। इतने विस्तृत देश के लोगों को एक भाव से काम करने के लिए तैयार करना, कोई सरल काम नहीं किन्तु असाध्य विघ्न बाधाओं पर विजय प्राप्त करना है। और उस पर तुर्रा यह कि वहां के लोग भी कुछ बहुत तेज़ नहीं हैं। कहा जाता है कि जितना पाश्चात्य देशों के लोग दस वर्ष में आगे बढ़ते हैं, चीनी उससे भी कम सौ वर्ष में आगे खिसकते हैं। पांच हज़ार वर्ष तक वे लोग संसार से बिलकुल अलग रहे। अपने ही उद्देश उनके सामने थे। वे अपनी पुरानी परिपाटी पकड़े हुए थे। पाश्चात्य संसार की उन्नति से या तो वे बिलकुल अनभिज्ञ थे या वे उसकी ओर से बिलकुल उदासीन थे। मसीन की तरह मुर्दा भाषा के ग्रन्थों को वे रट लेते थे। आधुनिक सभ्यता के प्रबल प्रवाह के सामने मुर्दों की तरह चुपचाप वे खड़े थे। अपने देश के मूल धन को काम में लाने का उन्होंने कोई उद्योग नहीं किया था। एक जर्मन विद्वान का कथन है कि चीन के केवल एक प्रान्त में इतना कोयला है कि वह संसार भर के लिए एक हज़ार वर्ष तक काम दे सकता है। परन्तु इस कोयले को निकालनेवाला कोई नहीं है। चीन में जो सब से पहली रेल बनी थी उसको चीनी सरकार ने बहुत ही शीघ्र ले लिया। वह 'शँघाई' से 'ऊसंग' तक जाती थी। लोगों में इससे बड़ी हलचल मच

गई। किन्तु ज्योंहीं वह बन कर तैयार हुई त्योंहीं सरकार ने उसे मोल ले लिया और सड़क को तोड़ फोड़ डाला और एंजिन को नदी में डुबवा दिया। इस समय भी चीन का विशेष भाग रेलों से इतना दूर है जितना चीनी लोग आधुनिक विचारों तथा आधुनिक साहित्य से परे हैं। 'सन-यात-सेन' का कथन है कि राजनीति की पुस्तकों के छापने, रखने आदि की चीन में आज्ञा नहीं है। दैनिक पत्रों की मनाही है। संसार, उसके लोग और उसकी राजनीति की बू भी वहां नहीं पहुंची है। सातवें दर्जे के 'मन्दारिन' के नीचे किसी को चीन का भूगोल पढ़ने की आज्ञा नहीं, विदेशों का भूगोल पढ़ना तो बहुत दूर की बात है। वर्तमान वंश के कानून सब लोग नहीं पढ़ सकते। वे केवल उच्च-पदाधिकारियों ही को ज्ञात हैं। सामयिक विषयों पर पुस्तकें पढ़ने की केवल मनाही ही नहीं है वरन् उसकी सज़ा प्राणदण्ड है। किसी को कोई नया आविष्कार करने की आज्ञा नहीं। इस आज्ञा का उल्लंघन करनेवाले को फांसी तक दी जा सकती है। इस तरह से लोग अन्धकार में रक्खे जाते हैं और जिन बातों को सरकार अपने सुभीते की समझती है केवल उन्हीं बातों को वह प्रकट होने देती है।

स्वयं गवर्नमेंट के आज्ञापत्रों से पता चलता है कि लोगों की दशा कैसी शोचनीय है। उदाहरण के लिए चीन की महारानी के १९०६ के नवम्बर मास के आज्ञापत्र को ले लीजिये। उसमें वे कहती हैं कि "अधिकारियों और लोगों में शिष्टाचार के कारण इतना भेद-भाव उत्पन्न होगया है कि सारे कामों की तरफ ग़फलत की जा रही है। अधिकारी लोग प्रजा के दुःख सुख की ओर ध्यान नहीं देते और कहीं कहीं तो वे इतने पतित हो गये हैं कि उन लोगों ने अपने नातेदारों और सेक्रेटरियों को प्रजा को सताने और लूटने की आज्ञा दे दी है। ऐसी अवस्था में क्या कोई आशा कर सकता है कि इस प्रकार की स्थानिक गवर्नमेंट उन्नति कर सकती हैं? क्या ऐसी दशा में लोगों का उत्साह बढ़ सकता है? इन बातों पर विचार करने से हमारा हृदय उद्विग्न हो जाता है।" क्या यूरोपियन लोग इस प्रकार की कमज़ोरी सरकार से सुनते और चुपचाप उसे सहन कर लेते? परन्तु चीनवाले इसे बरदाश्त कर लेते हैं या कुछ दिन पहले तक बरदाश्त कर लेते थे।

इसका कारण यह है कि बहुत समय हुआ तब से चीन को आध्यात्मिक अहंकार का लक़वा मार गया है और उसी अहंकार की बेड़ियां उसे अभी तक जकड़े रही हैं। जिस समय यूरोप के लोग निरे जंगली थे, उस समय चीन के लोग बड़े बड़े मकान बनाना जानते थे। वहां बड़े बड़े ज्योतिषी मौजूद थे। वे लोग बन्दूकों का चलाना जानते थे, चाय बोते थे, बारूद बना लेते थे, मिट्टी के बरतन, सरेस और तांत बनाना जानते थे। यूरोप में शुरू होने के पांच सौ वर्ष पहिले उन्होंने छापे का आविष्कार कर लिया था, ६ सौ मील लम्बी एक नहर खोद डाली थी और रोमन लोगों कीसी पहाड़ी सड़कें भी बनाई थीं।

इसलिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि उन्हें अपनी इस प्रकार की उन्नति करने के कारण और विशेष करके ऐसे समय में जब कि सभ्यता में उनका मुकाबिला करनेवाला कोई भी न था, यह ख़्याल पैदा होगया हो कि संसार की सारी जातियां जंगली हैं और केवल हमारी ही जाति जाति कहलाने के योग्य है और हमारी ही जाति के साथ संसार का ज्ञान भी लुप्त हो जायगा।

उनका यह ख़्याल करीब करीब वर्तमान-काल तक बना रहा। जिस समय लार्ड 'नेपियर' अंगरेज़ी पार्लामेंट की आज्ञा से इसलिए 'कैंटन' में आये और वहां के गवर्नर को पत्र लिखा कि चीन और इंगलैंड के व्यापारिक सम्बन्ध

की बातें निश्चित हो जायँ, उस समय चीन के गवर्नर ने कहा कि "मैं जंगली आदमी से पत्र-व्यवहार भी नहीं करना चाहता। ऐसा करना हमारी शान के खिलाफ़ है । जंगली कौम के लोग आयें जायें और सिवा व्यापार के उन्हें किसी बात से सरोकार न रहे। चीन के अधिकारी व्यापार ऐसे तुच्छ विषय की ओर कुछ ध्यान भी नहीं देते, ऐसी ऐसी छोटी बातों का विचार करना भी हमारे लिये अनुचित है।"

जिस देश के लोगों के विचार इस प्रकार के हों वहां विप्लव करानेवाले मनुष्य के मार्ग में कितनी कठिनाइयां होंगी इसका विचार आप स्वयं कर सकते हैं । जो लोग अपने देश के सिवा बाहरी संसार से कोई सम्पर्क ही नहीं रखते और अपने देश की उपस्थित स्थिति को बहुत अच्छा समझते हैं, उनमें सुधार करना कोई हँसी खेल नहीं है।

सन-यात-सेन के मार्ग में बहुत सी रुकावटें थीं किन्तु सब से बड़ी रुकावट मंचू लोगों का अंधेर और अन्याय था । चीन का विस्तार और वहां के लोगों की उदासीनता 'सेन' के मार्ग में दो बड़ी बाधाएं थीं परन्तु मंचू लोगों के अन्याय के सामने वे कुछ भी न थीं। इस प्रकार का अंधेर तो आज तक संसार में कभी देखा ही नहीं गया। जिस समय यूरोप में स्वेच्छाचारी राजाओं की तूती बोलती थी उस समय भी उनकी सत्ता को रोकने के लिए एक तो वहां के रईस थे दूसरे वहां की पार्लामेंट। परन्तु चीन में कोई पार्लामेंट नहीं थी और वहां के जितने रईस थे वे सब के सब मंचू थे। वे लोग एक तो चीनियों से जलते थे और दूसरे उन्हें अपने अधिकारों की बड़ी फिक्र थी। तीसरी बात यह थी कि चीन के पुलीस चौकीदार से लेकर प्रान्त के गवर्नर तक जितने छोटे बड़े अधिकारी थे सब यही चाहते थे कि वर्तमान अन्धेरखाता जैसा है वैसा ही बना रहे और इसका कारण भी साफ था। वहां के अधिकारियों को वेतन बहुत कम मिलता था और ऊपरी आमदनी पर ही उनका सारा खर्च निर्भर रहता था। इस ऊपरी आमदनी का होना अंधेर ही में सम्भव था। इस विषय में सन-यात-सेन एक जगह कहते हैं कि शायद अंगरेज़ लोगों को इस बात का पता नहीं है कि चीन के बड़े बड़े पदाधिकारियों का निश्चित वेतन कितना कम होता है। उन्हें विश्वास नहीं होगा कि 'कैन्टन' के वाइसराय का वार्षिक वेतन केवल साठ पौण्ड है। जिस वाइसराय की प्रजा सारे ग्रेटब्रिटेन की प्रजा से अधिक हो और उसकी तन्ख्वाह इतनी कम यह कम आश्चर्य की बात नहीं है । इससे आप समझ सकते हैं कि अपने पद की योग्यतानुसार ठाट बाट से रहने के लिए और दौलत जमा करने के लिए वह कौन सा अन्याय न करता होगा। उसे मजबूरन लोगों पर अत्याचार करना पड़ता है और न्याय को बेचना पड़ता है। सरकारी दृष्टि में चढ़ने के लिए शिक्षा की परीक्षाओं में अच्छी तरह से उत्तीर्ण होना ही एक साधन है। मान लीजिये कि एक विद्यार्थी विशेषता के साथ 'पास' होता है। वह सरकारी नौकरी की खोज करता है और 'पीकिंग' के अधिकारियों को घूस देकर एक जगह प्राप्त करता है। परन्तु उसकी तन्ख्वाह से उसका गुज़ारा नहीं होता। क्योंकि शायद तन्ख्वाह की बराबर रुपया उसे साल में अपनी जगह पर बने रहने के लिए देना पड़ता है। परिणाम यह होता है कि वह लूट खसोट आरंभ करता है। जब गवर्नमेंट उसकी पीठ पर हाथ रक्खे है और वह काफी रुपया न कमाये तो उस मनुष्य सा बेवकूफ कौन हो सकता है । वह खूब रुपया कमाता है और खूब घूँस दे देकर ऊँचे पद प्राप्त करता जाता है। ज्यों ज्यों वह ऊँचे पद प्राप्त करता जाता है त्यों त्यों उसे धन कमाने में सुविधा होती जाती है। इस तरह से जो मनुष्य खूब अच्छी प्रकार से लूट सकता है वही सब से ऊँचा पद पा सकता है।

यही अधिकारी चोर जिसका मन उसकी जीवनचर्य्या से दूषित हो जाता है सारे सामाजिक तथा राजनैतिक मामलों में अन्तिम अधिकारी होता है। मंचू वंश को बनाये रखने का यही एक मुख्य ज़रिया है अर्थात् अपने अधिकार बेंच करके ही वह जीवित रह सकता है। जहां की गवर्नमेंट इस प्रकार की गिरी हुई दशा में हो यदि वहां के लोगों में भीतर ही भीतर असन्तोष फैला हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

मन्चू वंश इस प्रकार से सदा रहा। यहां पर अन्य देश के लोग यह प्रश्न कर सकते हैं कि क्या ऐसी हालत में बुद्धिमान और देश-भक्त चीनियों के लिए कोई ऐसा मार्ग न था कि वे अपने देशभाइयों को सिखाने का संगठित प्रयत्न कर सकते ? चीनी लोग इस प्रश्न ही को व्यर्थ समझते हैं। परन्तु इस सम्बन्ध में इतना ही कहना काफी है कि चानियों के मार्ग में ऐसी रुकावटें हैं जो उन्हें अपने कार्य में फली भूत होने नहीं देती।

पहले पहल यह विश्वास नहीं होता कि केवल एक वंश के लोग संसार के सब से बड़े [illegible] देखभाल कैसे रख सकते हैं परन्तु वास्तविक बात यह है कि मन्चू लोग चीनियों को अपने अधिकार में या तो डराकर या भेद लेकर रखते हैं। सम्राट् के जासूस सब जगह मौजूद हैं। छोटे से छोटे गांव में, बड़े बड़े कारख़ानों में, पुतली घरों के फाटकों पर, रेल-गाड़ियों में, साधारण घरों में अर्थात् जहां देखो वहीं वे उपस्थित हैं। चीन जासूसों से आच्छादित है। वे हर बात की ख़बर तुरन्त देते हैं। काम करने में वे बड़े तेज़ हैं परन्तु काम वे चुपचाप करते हैं। ऐसे ऐसे जासूस हैं जिन्हें अपने इष्ट मित्रों का भेद बताने में भी संकोच नहीं होता। अपने कामों पर पछताना तो वे जानते ही नहीं। उन्हें देखने से शक तो होता ही नहीं और उनसे कुछ छिपा भी नहीं रहता। चीन के किसी गाँव में कोई अनजान आदमी आया नहीं कि तुरन्त उसकी ख़बर अधिकारियों को मिल जाती है। किसी आदमी ने बगावत की बात मुँह से निकली कि उसकी जान संकट में पड़ गई। स्वयं शाहीमहल भी जासूसों से खाली नहीं है। यदि वहां भी किसी की ज़बान से "सुधार" का मनहूस शब्द निकला तो फिर खैर नहीं। १२ वर्ष हुए "वांगहिन्गी" नामक सुधारक सम्राट् ने मन्चू लोगों के अधिकारों को कुछ कम करना चाहा था। वह पकड़ा गया और एक टापू में भेज दिया गया। वहां पड़ा पड़ा वह सड़ता रहा। वह अपनी जाति के उस अटूट अन्याय का शिकार था जिससे उसकी जाति चीन के ऊपर अपना अधिकार जमाये है।

परन्तु जहां सम्राट् को असफलता हुई वहां सन-यात-सेन सफल हुआ। विप्लव के लिए जो तीन विकट रुकावटें थीं उनपर उसने विजय प्राप्त की। पहली रुकावट देश का विस्तार और उसकी गड़बड़ दशा थी। दूसरी बात यह थी कि लोग घोर अंधकार में पड़े हुए सड़ रहे थे। तीसरा कांटा 'सेन' के मार्ग में यह था कि अन्याय के पास शक्ति थी जो लोगों और शिक्षा के रास्ता में एक दीवार का काम करती थी। परन्तु 'सेन' ने इन सारी कठिनाइयों को पार कर के ही छोड़ा।

उत्तरा और अभिमन्यु।

[लेखक—श्रीयुत ठाकुर किशोरसिंह बारहठ।]

(जुलाई मास के अंक से आगे।)

असिबन्धन।

(१)

यौं रत्नजटित रण-मुकुट स्वर्णनिर्मित सिर धरकर।
औ जनक-प्रदत्त अभेद्य-कवच संहनन१ पहिनकर॥
पुनि अंश अखंड निषंग२ धनुष त्यौं धार सिधारे।
असि धारण को अभिमन्युप्रिया के महल पधारे॥

(२)

निज-मातृ-वेश्मसे३ प्रिया-सौध४ तक मार्ग बना था
तरु-ताल-पिंड सम मंजुवक्रता-रहित तना५ था॥
विद्युन्निभ दीपावली लगी थीं दुहुंधां जिसके।
मलयज के दोनों ओर रज्जुयुत खंभे उसके॥

(३)

ऊपर जिसके बहुमूल्य मंजु उल्लोच६ खिचे थे।
तल पाटवस्त्रके हेम-खचित पट-मार्ग७ बिछे थे॥
'रणविजयी' 'मघवापौत्र शत्रु-संहारक' 'जय हो'।
कुंकुमसे मंगल शब्द लिखेथे 'तुम्हें अभय हो'॥

(४)

बिच स्थान स्थान पर कई लतागृह रम्य बने थे।
केसर के रँगके शुभागमन-पट लिखे तने थे॥
फव्वारे जिनके बीच स्फटिकके बने ठहे थे।
जो गंधयुक्त सित-नीर-कणोंको उगल रहे थे॥

(५)

यह स्वागतका उपकरण८ देख विधुकुल-अवतंस९
मनहीं मन करनेलगे प्रियाकी प्रेम प्रशंसा॥
सुखपाल१ बीच स्थितवीर मार्गपट२ पर सुखपाते
प्यारीके महलों निकट दिये दिखलाई आते॥

(६)

गण-सौविददल३ने तदनु किया जयकार सुबायन४
पुनि अंतेउर५ अधिकारि-वर्गने दिया उपायन६॥
तब द्वार-स्थित सहचरी-वृंदने मंगल गाया।
सहकार-कुसुमको अलिक७ लगाकर कलश बँधाया

(७)

सब स्वागतका उपचार करत स्वीकृत अरिकंदन।
अंतेउर भीतर गए सुभद्रा के प्रिय नन्दन॥
सखियोंने धो पदकमल उच्च-आसन बैठाए।
वे पाद्य-सलिल सप्रेम प्रियाने नयन लगाए॥

(८)

नीराजन८ निज-कर-युगल लिए तँहँ प्रियाखड़ी थी
मोतिन की जिसके गिर्द शोभती श्वेत लड़ी थी॥
आरति कर प्रियका भाल अग्निशिख९से चरचाया
तब सखीजनोंने रुचिर बधावा हिलमिल गाया॥

बधावा।

हीरामणि छन्द।

(१)

कई हरिद्रा कर लिए कुंकुम कई उड़ात।
कोई अक्षत थाल भर गीत मनोहर गात॥

---

१ शरीर। २ माथा। ३ गृह। ४ महल। ५ विस्तृत। ६ वितान (चँदवा)। ७ पांवड़े। ८ सामग्री। ९ अभिमन्यु।

१ तामजाम (जो एक काष्ठ के सामने लगी हुई दो कुर्सियों के आकार का और स्वर्ण या चांदी का बना हुआ होता है, जिसे चार कहार कंधे पर उठा कर चलते हैं)। २ पांवड़ा। ३ अंतःपुर में जानेवाले पुरुष। ४ सुन्दर वाक्यों से। ५ अंतःपुर। ६ भेंट। ७ ललाट। ८ आरती। ९ केसर।

कोई हाटक कलश बँधाती
कुछ लाजा बरसान लगीं।
ड्योढ़ीपर स्थित हो सब प्रिय
ढिग रुचिर बधावा गान लगीं ॥१॥

(१०)

सूर्यमुखी-सुम उत्तरा जो रवि रहत बिलोक।
हुआ आज आदित्य वह उदित प्रियाके ओक ॥
सखीवृंद-अहिफेन-कुसुमकी
क्यारी के बिच खिला अहा।
यह सतृष्ण-सुकुमार-सुमन सखि!
अंशुमालि प्रिय निरख रहा ॥ २ ॥

(११)

हस्त-आरती कर लिए प्रिय-विधु स्वागत काज।
नील-वसन पहिने खड़ी राका-सखि-सिरताज ॥
दिव्य-धुनी-सि.ल-वस्त्र-मार्ग पर
पुष्प पालकी बीच ठहा।
देख सखी! अभिमन्यु निशापति
ज्योत्स्ना शुभ्र प्रसार रहा ॥ ३ ॥

(१२)

रण-विधु अति-आह्लाद-कर बढ़त देख कर ज्वार।
जिनके मानस-नीरमें (वे) आये प्रिया अगार ॥
प्रिय-पयोधि के खांत-सलिल में
आनँद-बीचि किलोल रही।
नीराजन-शतमुख से सुरसरि-
प्यारी प्रियहिं बधाय रही ॥ ४ ॥

---

(१०) उत्तरारूपी सूर्यमुखी फूल जिस सूर्य का दर्शन करने को सदा उत्सुक रहता है वही (अभिमन्यु) रविप्रिया के महलों पर उदय हुआ है और हे सखि! सखी वृंद रूपी अफीम के पुष्पों की क्यारी के मध्यभाग में खिला हुआ यह सुकुमार उत्तरारूपी सूरजमुखी सतृष्ण होकर अपने प्यारे अंशुमालि को निरख रहा है। (सूर्य और सूर्यमुखी पुष्प का रूपक है।)

(११) अपने प्रिय निशानाथ का स्वागत करने यह राका (पूर्णिमा की उज्वल रात्रि) रूप-धारिणी सखि शिरोमणि उत्तरा नील नभ रूपी नीली साड़ी पहिने हस्त-नक्षत्र-रूपिणी आरती को हाथों में लिए खड़ी हुई है। और हे सखि! देख, पुष्यनक्षत्र के आकार को धारण करने-वाली पालकी में बैठे हुए वे अभिमन्यु रूपी निशानाथ आकाश गंगारूपी पांवड़ोंपर होकर अपनी निर्मल कान्ति का प्रसार करते हुए आरहे हैं।

नोट—हस्तनक्षत्र के पांच तारे हैं जिनमें सब से अन्त का तारा आरती का डंडा और ऊपर के ४ तारे चतुर्मुख आरती के आकार के हैं और पुष्यनक्षत्र के ७ तारों में दोनों सिरों के दो तारे तो पालकी के दोनों डंडों के, ऊपर के दोनों तारे पालकी की कमान के, और नीचे के ३ तारे पालकी के आसन भाग के आकार के हैं यथा:—

हस्तनक्षत्र

चतुर्मुखी आरती

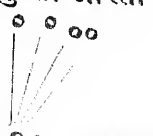

—आरती का डंडा

चन्द्र और चन्द्रिका का रूपक है।

पुष्यनक्षत्र

कमान

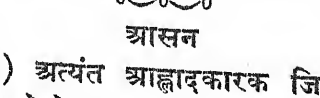

आसन

(१२) अत्यंत आह्लादकारक जिस युद्ध-रूपी चन्द्रको देखकर जिनके चित्तरूपी जलमें हर्षका ज्वार बढ़ा करता है वे समुद्ररूपी अभि-मन्यु प्रियाके महल पधारे हैं हे सखि! उन प्यारे अभिमन्यु समुद्रके चित्त-सलिलमें आनंद की तरंगें शब्दायमान होरही हैं और उनको

(१३)

रसित-शंख-निर्घोष कर धनु-ऋजु रोहित धार।
आए पुष्कर-पार्थसुत चातक-खजन अधार॥
सौदामिनि-उत्तरा इरंमद
कर आरार्ति बधाती है।
कादंबिनी-सखीगण लाजा
कण-सुनीर बरसाती है॥ ५॥

(१४)

जिन्हँ कोदंड-प्रतापको स्मरण करत रिपुवृंद।
निज ल तना भ्रमंग लखि मूर्छित ह्वैं मतिमंद॥
ज्या-आघात-जनित जिनके भुज
रेखा श्याम बिराज रही।
जिसपर श्वेत भुज-च्छद मानो
उरगी कंचुक पहिन रही॥ ६॥

(१५)

जिनकी रिपु-रमणी सतत प्रिय-वियोगकी पीर।
निज अवदात-कपोल पर स्रवैं सकज्जल नीर॥
मानो शिला संग-मर्मर पर
अश्मज-धारा बहन लगी।
कज्जल-भ्रांति-युक्त-दृगसे वा
कीकी१ कृष्णा ढहन लगी॥ ७॥

(१६)

जिनका वासकर पुष्प सम शुभ्र रहा यश छाय।
जिनका मोहक-मुख- कमल प्रिया-प्रेम अधिकाय
आओ आलि बधावैं उनको
हिलमिल मंगल गान करैं।
आसेचनक२ रूप उनका सखि
तृपित नयन भर पान करैं॥ ८॥

(१७)

दोहा।

नम्र बनी प्रिय ढिग खड़ी, पहिने वेश सुघाट।
वाणी प्रिय-मन-हारिणी, बोली सुता विराट॥

भागीरथीरूपधारिणी प्रिया-उत्तरा शतमुख रूप आरती से बधा रही है (गंगा सागर संगम पर भागीरथी शतमुख होकर समुद्र में गिरती है वही शतमुख मानो आरती है। सागर और गंगा का रूपक है।)

(१३) मेघगर्जन के समान शंख निर्घोष करते हुए, इंद्र धनुषाकार धनुष को धारण किये हुए, चातकरूपी खजनों के आधार, पुष्कर (बारह जाति के मेघों में से एक मेघ) रूपी अभिमन्यु आए हैं। हे सखि! उन पुष्कर-अभिमन्यु को विद्युत्रूपधारिणी उत्तरा तड़ित् ज्योति रूप आरती से बधाती है, और मेघमाला रूपसखीगण आनंदयुक्त होकर सुगंधित जल-कण रूप लाजा बरसा रही हैं (मेघ और विद्युत् का रूपक है)

(१४) जिन अभिमन्यु के चाप के प्रताप को स्मरण कर करके उनके रिपुगण (भयसे) हत-बुद्धि होने के कारण अपनी रमणीगण के भ्रभंग में भी अभिमन्यु के चाप की संभावना करके मूर्छित हो जाते हैं, उन (अभिमन्यु) के भुजपर धनुष्य की प्रत्यंचा के आघात लगलग कर काली रेखा पड़ गई है उसपर श्वेत वस्त्र की बांह ऐसी शोभित होती है मानो कृष्ण सर्पिणी ने श्वेत कंचुकी पहिन रक्खी हो।

(१५) जिन अभिमन्यु के शत्रुगणों की स्त्रियां पति वियोग-जन्य पीड़ा के कारण अपने गौर कपोलों पर निरंतर कृष्णवर्ण (सकज्जल आंसू बहाया करती हैं क्योंकि विधवावस्था के कारण अपनी आंखों के कज्जल को बहाते बहाते उनको अपनी चक्षुओं के कृष्णमंडल१ में भी कज्जल की भ्रांति हो गई है अतः उस (कृष्णमंडल) को भी बहा देना चाहती हैं वह ऐसा शोभा देता है मानो संगममर्मर की शिला पर से शिलाजीत की धाराएं बह रही हैं।

२ अड़ूस। ३ जिसको देखते रहने पर भी तृप्ति का अन्त नहीं आता।

मयार्बा

स्वीडेश का मार्शलॉग वॉर ।

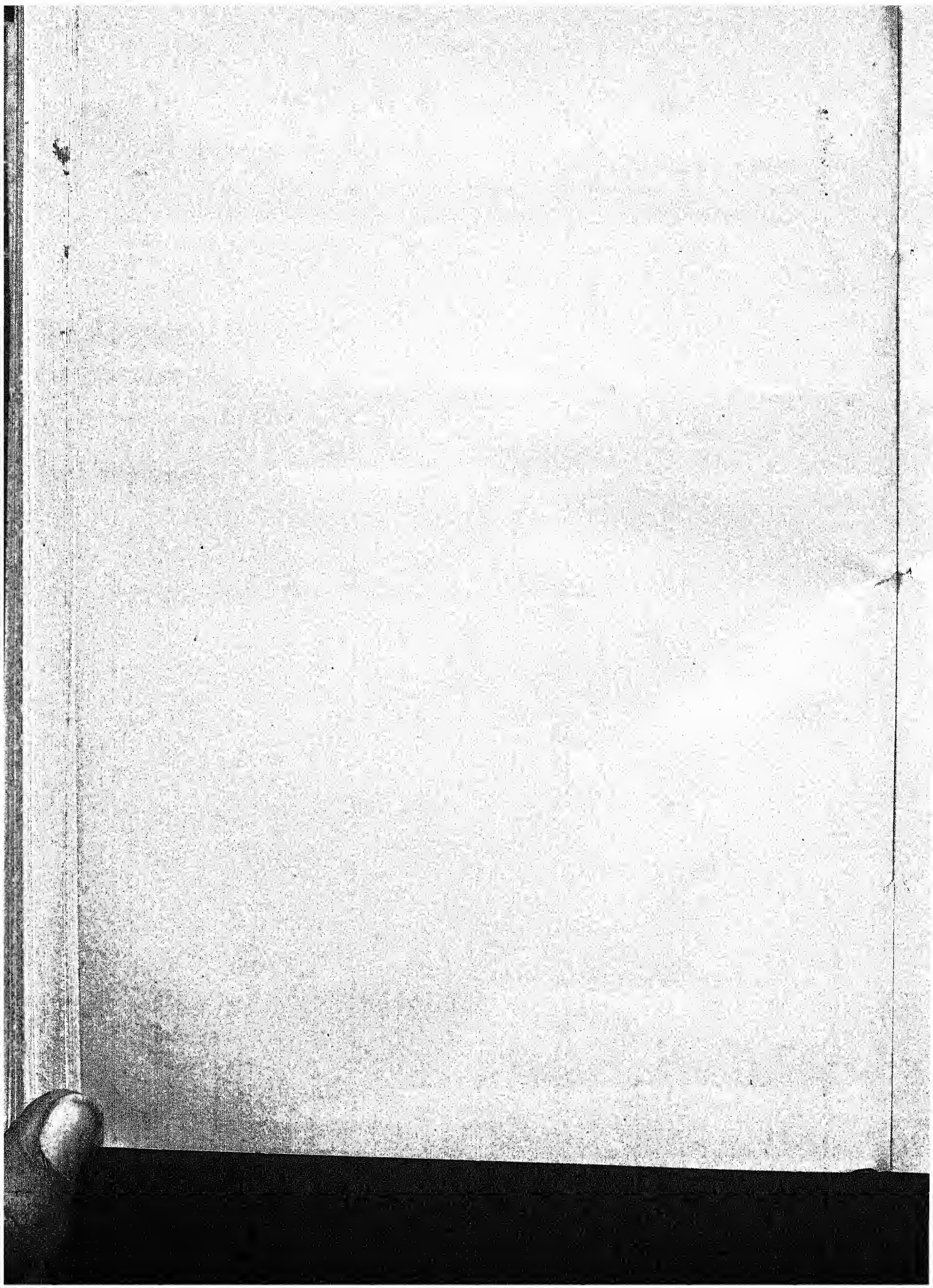

छंद साणोर।

(१८)

आर्य-जननिका कष्ट निवारण।
करने प्राणाधार॥
वीरोचित आपने उठाया।
उन्नतांस पर भार॥ १॥

(१९)

यदि सेवा समयोचित करने।
दासी शासन पावै॥
आर्यजाति में जन्म-ग्रहण मम।
तो चरितार्थ कहावै॥ २॥

(२०)

आर्य-नारि की कुल मर्यादा।
प्रिय का वेश बनाना॥
वीर-वेश से रण-गमनोन्मुख।
पति को भव्य सजाना॥ ३॥

(२१)

हो निदेश तो कवच नाथ का।
केसरिया[1] रँग लाऊं॥
अपने निज कोमल कर-युग से।
प्रिय को फिर पहिनाऊं॥ ४॥

(२२)

हँसकर "तथैवास्तु" कह प्रिय ने।
अपना कवच उतारा॥
।पर मस्तक से मातृ-दत्त सज-
नाह किया नहिं न्यारा॥ ५॥

(२३)

इधर प्रिया ने स्वर्ण-पात्र में।
केसर का रँग गेरा॥
वीर-भव्य उधर सखियों ने।
सरसी[2] गीत उगेरा[3]॥ ६॥

(२४)

छन्द सरसी।

धन्य है भारत-भूमि हमारी।
आत्मोत्सर्ग प्रतिज्ञा-पालन सहन-शीलता मात।
निर्भीकता शौर्य तव पृथुकन[4] गुण होते सहजात॥
जननि तव पय ही गुणकारी॥ १॥

(२५)

कार्तिकेय उत्तानपाद-सुत कशिपुहिरण्य कुमार।
राम कृष्ण कुशने शिशुपनमें निजगुण किए प्रसार॥
हुए कई अतुलित बल-धारी॥ २॥

(२६)

इतर भूमि हैं भोग-भूमि सब कर्म-भूमि यह देश।
तेजोराशि आर्य-बालकगण गिनत न निज लघु वेश
है वीरसू कुक्षि तुम्हारी॥ ३॥

(२७)

समर-सुत निज वीर-सूनु लखि मातृ-भूमि को गोद
पुत्र-वधू लखि पावक-जलती जिन्हँ घर होत प्रमोद
वे हम आर्य-जाति-महिला री॥ ४॥

(२८)

है दीपक लघु-विग्रह तव भी अन्तर्धनंजय[5] जात।
दारुण-तिमिर-पुंजदारणमें निज सामर्थ्य दिखात॥
तेजस्वी क्या छोटा क्या भारी॥ ६॥

(२९)

मामा हों मधुसूदन जिसके अर्जुन जिसके तात।
उसके लिए विपत्ति-विशारण[6] बड़ी कौनसी बात॥
कपिध्वज-सुत की बलिहारी॥ ७॥

शेष आगे।

---

१ केसर के रंग का (भारतवर्ष में यह प्राचीन प्रथा थी कि जब वीर युद्ध में जाता था तो वह केसर के रंग के वस्त्र पहिनता था।) २ मात्रा छंद की एक जाति। ३ गाना प्रारम्भ किया। ४ बालक। ५ अग्नि (क्षेप) अर्जुन। ६ नाश।

अरबों की अवनति या टुवर्स संग्राम (७८९ वि)।

[लेखक—श्रीयुत कृष्णविहारी मिश्र, बी० ए० ।]

विक्रमीय सातवीं शताब्दी के अंतिम भाग में महात्मा मोहम्मद ने जिस धर्म का प्रचार किया था वह धर्म आठवीं शताब्दी में उन्नति की चरम सीमा पर पहुंच गया था। इसलाम धर्म से पागल एशिया के पश्चिम तट-वाले देशों एवं यूरोप के पूर्वीय देशों में भारी विद्रोह उठ खड़ा हुआ था। यूरोप में लोग महात्मा ईसा के लिए मरने को तैयार थे तो एशिया में मोहम्मदी मत के लिए शहीद होना पुण्य कार्य था। एक ओर से द्वितीया के चाँद की शकल का झण्डा उड़ता था तो दूसरी ओर से सलीब निसान अंकित झण्डा फहराता था। ईसाई और मुसलमान राजे एक दूसरे के कट्टर शत्रु हो रहे थे। ईसाई चाहते थे कि संसार भर में क्रिश्चियन मत फैल जावे, सब उसी को स्वीकार करके मुक्ति प्राप्त करें। उधर मुसलमान चाहते थे कि एक भी ईसाई के रहते मुसलमान धर्म का कल्याण नहीं हो सकता इसी होड़ाहोड़ी में उक्त दोनों मतों को माननेवाले नृपतिगण भयङ्कर युद्ध में लगे रहते थे। यों तो यह धर्म-युद्ध बहुत काल तक चला परन्तु जिस युद्ध का वर्णन करने आज हम जा रहे हैं वास्तव में उसी युद्ध में इस बात का निबटारा होगया कि भविष्य द्वितीया के चाँद का चमकदार है या सलीब का।

फ्रांस के उत्तरीय भाग में परन्तु राजधानी पेरिस के दक्षिण में 'लवायर' नदी आज भी अपनी स्वाभाविक गति से बहती हुई फ्रान्सी-सियों का मन प्रमुदित कर रही है। इसी 'लवा-यर' नदी के बामतट पर 'टुवर्स' नगर स्थित है। इसी टुवर्स नगर में आज से प्रायः ११०० वर्ष पहले ईसाइयों और मुसलमानों में भीषण संघर्ष हुआ था।

उस समय का इतिहास उपलब्ध न होने से इस युद्ध का यथावत् वर्णन नहीं किया जा सकता है। फिर भी धार्मिक युद्ध होने के कारण दोनों पक्ष के प्रसिद्ध २ धर्माचारियों ने इसके विषय में अपनी २ सम्मति दी है उसमें से छानबीन करने पर मतलब की सभी बातें जान पड़ती हैं। फ्रान्सीसी लेखकों ने इस युद्ध का कुछ भी महत्व न मानकर इसका बहुत कम वर्णन किया है परन्तु ठीक इसके विपरीत जर्मन और अंगरेज़ इतिहासकारों ने इसका खूब ही यश गाया है। गीबन आदि इतिहासकारों ने भी इस युद्ध के वर्णन में अपनी लेखनी को पवित्र किया है। आर्नल्ड इस युद्ध को बड़े महत्व का मानता है। महात्मा मुहम्मद के मरने और इस भयङ्कर युद्ध के समय में ठीक एक शताब्दी का अन्तर था इतने ही समय में फारस, मिस्र, सीरिया, एफ्रिका, आदि पर द्वितीया चन्द्र खचित मोहम्मदी पताका फहरा रही थी। यूरोप में भी प्रायः वही हाल था। उत्तरीय यूरोप में उस समय जर्मन जाति का दबदबा था। प्रायः वर्तमान फ्रान्स पर भी उक्त जातियों का ही उस समय साम्राज्य था परन्तु दक्षिण में बात दूसरी थी, यहां प्रायः इटली की समग्र राज्य पर मुसलमानों का अधिकार हो चुका था। स्पेन पर भी इसलामी पताका झूम रही थी परन्तु इतने ही से मुसलमान विजेता की विजय कामना को शान्ति नहीं मिली थी। बड़े धूमधाम से यह तैयारी हो रही थी कि स्पेन के उत्तर में स्थित पेरीनीज पर्वतमाला लाँघ कर यूरोप के उत्तरीय देशों पर भी कब्ज़ा किया जावे, वहां के भी बड़े बड़े नगर लूटे जावें इसी मनसूबे से स्पेन में खूब तैयारी होने लगी। मुसलमानों का सेनापति बड़ा ही दक्ष, वीर एवं कार्यपटु था। उसके समान और कोई भी मुस-

लमान सेनापति उस समय न था। मोहम्मदी सेना की भी उस समय धाक थी। ऐसी विशद वीरवाहिनी उस समय और किस नृपति के पास थी। आह वह इसलामी भ्रातृ-भाव—वह कट्टरपने का जोश—वह नये धर्म के शबाब का ज़माना और सबसे बढ़कर अन्धधर्म-विश्वास ने सीरियन, मूर, यूनानी, ईरानी और तातार इन सबको एक कर रक्खा था। इसी प्रकार की असंख्य दुर्धर्ष सेना अपने हुङ्कार से दिगदिगन्त को कँपाती हुई स्पेन में एकत्रित हुई। वीर अब्दुर्रहमान इब्न अब्दुल्ला इनका प्रधान सेनापति था। सहायता के लिए एफ्रिका से एक बर्बर सेना भी आई थी। सैन्य संख्या प्रायः १ लक्ष थी। यथासमय सेना ने कूंच का डङ्का पीटा, मारू बाजे बजने लगे। योद्धाओं की तलवारों की चमक ने चकाचौंध पैदा कर दी। बढ़ती हुई समुद्र की तरंगों की भाँति कोई चीज़ इस सेना के सामने न ठहर सकी। पेरीनीज़ पर्वतमाला पार करली गई। नगर पर नगर हस्तगत होने लगे। फ्रांस का धैर्य छूटा। उत्तरीय देश काँप उठे। ईसाई जगत में हाहाकार मच गया पर वीर अब्दुर्रहमान की अग्रगति रोकने में कोई भी समर्थ न हो सका।

जब ईसाई जगत् में निराशा के बादल उमड़ चुके थे उस समय में 'मामैः मामैः' करके जिसने सदा के लिये अरबों के हौसले पस्त कर दिये उस वीर धुरीण का नाम 'चार्ल्स मार्टेल' था। यह जर्मनवंशी था। इसकी राज्य राइन नदी के वाम तट पर थी। दक्षिण तट-वाले जर्मन लोग उस समय तक ईसाई नहीं हुये थे। निदान इस छोटे परन्तु साहसी राजा ने स्वयं अपनी एवं किराये पर एक भारी सेना एकत्रित की। यह युद्ध दो राजाओं, जातियों, देशों और महाद्वीपों ही में न था परञ्च उस समय के परम प्रसिद्ध ईसाई और मुसलमान धर्मों का प्रसार एवं संकुचन भी इसी युद्ध पर निर्भर था। मुसलमानी सेना के घुड़सवार जिस समय अपने घोड़ों की टापों से फ्रांस देश के भूमि को खोदते हुए ज्वारभाटे की तरह बढ़ रहे थे तब इसी ने उच्चस्वर से कहा था बस ख़बरदार अब आगे बढ़े कि मारे गये। इसी वीरपुङ्गव के पराक्रम को देखकर वीर अरबों को टुवर्स स्थान में बलात अपने घोड़ों की रास ढीली कर देनी पड़ी थी। आश्चर्य से अभिभूत अब्दुर्रहमान अपने सामने एक विशालवाहिनी देखकर टुवर्स में ठहर गया था। अब भीषण संग्राम अनिवार्य था। एकही वन में दो केशरी या एकही स्थान में कहीं दो तलवारें रह सकती हैं अस्तु टुवर्स के पास ही अब्दुर्रहमान का शिविर पड़ गया। उसकी सेना में अदम्य उत्साह था। अब तक की जीत ही उत्साह बढ़ाने के लिए यथेष्ट थी परन्तु लूटखसोट का माल भी तो इन अरब सैनिकों के पास अपार था। विधवाओं के करुणाक्रन्दन, बालकों के फूट फूट कर रोने एवं निःसहाय कन्याओं के गिड़गिड़ाने की उपेक्षा करके यह सब माल एकत्रित किया गया था। विजित देशों की कौन सी प्रमदा (स्त्री) ऐसी बची थी जिसपर बलात्कार न किया गया हो। बालकों और बृद्धों पर कब दया दिखलाई गई थी। नगर के नगर अब भी जल रहे थे। लोकचीत्कार से कानों के परदे फटे जाते थे। क्रूरता, नृशंसता, अधमता, दौरात्म्य आदि शब्दों का प्रयोग ऐसी चुस्तगी के साथ और कहां पर किया जा सकता था। इन सब साधनों से अपरिमित माल एकत्रित हुआ। इस प्रकार के अनगिनत लूटी हुई वस्तुओं के ढेरों को देखकर एक बार अब्दुर्रहमान भी अकचका गया था। पुनः जीतने से इसी प्रकार का माल फिर लूटने को मिलेगा।

एक बार उमदा से उमदा वस्त्र, धनधान्य, खाद्य पेय सामग्री लूटने को फिर मिलेगी, एक बार लोगों की गाढ़ी कमाई का माल सहज ही में हाथ लगेगा, यह प्रलोभन नैतिक, बलहीन,

दुष्ट तथा नृशंस अरब सैनिकों के लिये क्या कम था? उधर घोर अहङ्कार से भी अरबवासी फूल गये थे अब तक बराबर विजय प्राप्त करते रहनेवाली सेना को क्या कोई पराजित भी कर सकता है, का उत्तर उनका अभिमानाभिभूत मन बारबार 'नहीं' में ही देता था। अपनी विजय में दृढ़ विश्वास रखते हुए अरब सैनिक एक बार फिर अपनी पैशाचिक लीला में संलग्न हुए, एकबार फिर अपने अवर्णनीय कार्यों से मनुष्यता को यूरोपीय रणक्षेत्र से मार भगाया। एक बार फिर ईसाईजगत दांत किटकिटाकर रह गया। जिस टुवर्स नगर को बचाने के लिए 'चार्ल्स' चला था उसको देखते देखते अरबों ने छीन लिया। नगर में पहलेवाला लूट खसोट का बाज़ार फिर गर्म हुआ। ईसाई सेना 'ओवर' नदी के तट पर ठहर गई।

प्रातःकाल होने भी न पाया था कि अदम्य उत्साहवाले अरबों के शस्त्र झङ्कार को सुनकर ईसाई सेना का कलेजा काँप उठा। मुसलमानी सेना के चपल तुरङ्ग अपनी चंचल चाल से चपला को चमत्कृत करते हुए ईसाई सेना पर बड़े वेग से आ टूटे। भयंकर टक्कर लगी। रोक के सब उपाय व्यर्थ हुये। चीड़ते फाड़ते घोर अरब सैनिकों का धँसना तभी जान पड़ा जब ईसाई सेना के बीच में यकायक उनके भाले चमक उठे। परन्तु जैसे वेगवती से वेगवती नदी का प्रवाह आगे पहाड़ पाकर लौटने को बाध्य होता है उसी प्रकार इतनी दूर जाकर भी—सहस्रों मुण्डों का बलिदान चढ़ाकर भी—पर्वत सदृश चार्ल्स की टस से मस न होनेवाली सेना पर—अरब प्रवाह का कुछ असर न पड़ा। भीषण मारकाट रक्त की नदियों का बहना—गीदड़, चील्ह और गृद्धों का आनन्द एवं आहत लोगों का घोर क्रन्दन सब युद्धों के समान यहां पर भी हुआ परन्तु संध्या तक किसी प्रकार से फैसले की बात कुछ भी न हुई। ईसाई सेना ने बड़ी वीरता से मुसलमानी सेना के आक्रमण को निवारण किया। संध्या समय आगया, सूर्य अस्ताचलगामी हुये, मुसलमानी सेना अपने शिविरों में लौट आई। दोनों पक्षवाले दूसरे दिन किस प्रकार क्या करना होगा इस सोच में पड़ गये।

नैश अन्धकार दूर भी न होने पाया था कि अरब लोग वद्धपरिकर जय घोष करते हुये अपने शत्रु से फिर जा भिड़े। अब्दुर्रहमान के इस वाक्य ने कि देखना कल की भांति आज संध्या को न लौटना पड़े बिजली का काम किया। खटाखट तलवार चलने लगी। ईसाई सैनिको आज तुम किसको रोक रहे हो? यह मुसलमानी सेना आज चंचला से किसी भी प्रकार कम नहीं है। क्या तेज़ी, क्या संहारकारिता एवं क्या भयङ्कर शब्द सभी में तो वह चपला के समान है। जिस प्रकार जंगल काटकर लोग अपना रास्ता बना लेते हैं उसी प्रकार अरबों ने देखते देखते ईसाइयों को काट पीटकर खास उनके मध्य भाग में प्रविष्ट होकर घोर गर्जना की। ईसाई सेना की पंक्ति बार बार टूटने पर हुई उसी समय में अरब सेना को एक अद्भुत कोलाहल सुन पड़ा। उन्होंने क्या सुना कि उनके लूटे हुए माल को शत्रु लोग उठाये लिये जाते हैं। धन ही को सर्वस्व माननेवाले नैतिक बलहीन अरब सैनिकों के पांव एकदम पीछे पड़ने लगे। अपने माल बचाने की प्रबल इच्छा ने उन्हें अपने शिविरों की ओर लौटने को बाध्य किया। ईसाइयों की बन आई। चारों ओर से बढ़ बढ़कर वे लोग कृपाण मारने लगे। धनलोलुप अरबों के मुण्डों से मेदिनी पट गई। अब्दुर्रहमान ने इस झूठे समाचार का शीघ्र ही खण्डन किया। उसने लाखों उद्योग किये, नाना भाँति के प्रलोभन दिये, सैकड़ों उत्तासवाक्य कहे, जी तोड़ कर सेना की लौटती गति को रोकने का उद्योग किया पर कुछ भी फल न हुआ। इसी गड़बड़ी में वह स्वयं शत्रुओं में घिर गया। एक साथ सहस्रों तलवारें और भाले उसी पर चलने

लगे। कालदेव अपनी जिह्वा के सहस्रों भाग करके उसे ग्रसने चले। बहुत देर तक अब्दुर्रहमान ने अपने को बचाया परन्तु अन्त में एक भाले ने सैकड़ों लड़ाइयों को जीतनेवाले इस सुदृढ़ शरीर को छेद ही तो डाला। मार्मिक घाव लगने से अब्दुर्रहमान उसी क्षण वीर गति को प्राप्त हुये। अब्दुर्रहमान इस संसार से चल दिये उनके साथ ही साथ उत्तरीय यूरोप को विजय करने की मुसलमानों की आशा भी चली गई। सेनापति की मृत्यु का समाचार पाकर मुसलमानी सेना बेतहाशा भागी। विजयी चार्ल्स की सेना अब आगे बढ़ी। बढ़कर उसने मुसलमानों का संहार करना आरम्भ कर दिया। भागते हुये अरबों को खदेड़ कर ईसाई मारने लगे। दो तिहाई से अधिक मुसलमानी सेना मार डाली गई। बाकी अपनी जान लेकर जिसको जिस ओर मार्ग मिला उसी ओर भाग निकली। ईसाइयों ने विजयसूचक विकट जयघोष करके मेदिनी कँपा दी।

ऊपर का वर्णन मुसलमान इतिहासकारों के अनुसार है। ईसाई इतिहासकारों के मतानुसार यह युद्ध सात दिन हुआ था और अब्दुर्रहमान ने जब विजय होते न देखी तब वह भाग गया एवं इसके बाद मुसलमानी सेना के भी पैर उखड़ गये। जो हो दोनों वर्णनों से यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि इस युद्ध में जो करारी पराजय मुसलमानों की हुई उसमें किसी प्रकार का भी सन्देह नहीं। अरब विजय प्रवाह की गति रोकने का पूर्ण सौभाग्य जर्मनराज चार्ल्स मार्टेल को प्राप्त है इसमें भी कुछ कहने सुनने की गुंजायश नहीं। इस युद्ध के बाद पेरोनीज़ पर्वत-माला पार करके उत्तरीय देश विजय करने का दृढ़ संकल्प फिर कोई भी मुसलमान नृपति न कर सका।

महामति गिबन की राय है कि इसी युद्ध के कारण "ब्रिटेन के हमारे पूर्व पुरुष एवं गाल के हमारे पड़ोसी कुरान की राजव्यवस्था एवं धार्मिक जंजीर से जकड़े नहीं जा सके।" आरनल्ड कहता है कि "इस युद्ध के द्वारा उत्तरीय यूरोप का ऐसा उद्धार हुआ जिससे सैकड़ों वर्षों तक मनुष्य जाति की सुख समृद्धि बढ़ी" शेगेल इस युद्ध के विषय में यों कहता है "चार्ल्स मार्टेल ने पश्चिमीय यूरोप के ईसाई राष्ट्रों की सर्वसंहारकारी इसलाम से रक्षा की"। यूरोपीय इतिहासकारों का सम्मिलित मत जिसको हम इस युद्ध का परिणाम मानते हैं यह था :—

"यूरोप पर फिर भी नई नई विपत्तियां पड़ीं परन्तु एकता सूत्र में न बँधा हुआ भी ईसाई साम्राज्य सुरक्षित रहा। सभ्यता, राष्ट्रीयता एवं राजव्यवस्था को जो उन्नति हुई वह इसी युद्ध का परिणाम था यदि मुसलमान जीतते तो यह कुछ न होने पाता और आज इङ्गलैण्ड में भी न्याय शासन कुरान के द्वारा होता। इस युद्ध के लिए यूरोप को जर्मनी का चिरकृतज्ञ रहना चाहिये।

वीर-बाला को संदेश ।

[लेखिका—श्रीमती तोरन देवी (लली) ।]

यह सत्य है की वीरमाता,
धन्य है संसार में ।
उसकी प्रशंसा हो सके क्यों
शब्द ही दो चार में ॥
वह ओज पूरण रक्त जो,
प्रति वीर तन में बह रहा ।
संदेह क्या वह वीर-माता
ही कि है महिमा महा ॥
वह वीर जो रण में खड़े,
जिनसे कि डरते काल हैं ।
यह मानना हे सज्जनो,
वह वीर मा के लाल हैं ॥
वह वीर भगिनी धन्य हैं,
जिनके सहोदर वीर हैं ।
उस घोर रण को देखकर,
होते न रंच अधीर हैं ॥
सम्बन्ध भ्राता भगि का,
बस उच्चता का चिह्न है ।
निश्छल सदा निःस्वार्थ
जिनका गाढ़ प्रेम पवित्र है ॥
जिसके वचन देते हृदय को
सर्वदा उत्साह हैं ।
जिसकी मनोहर कामनाएँ
शान्तियुक्त अथाह हैं ॥
जो है सुखी सुख में,
दुखों में चौगुना दुख मानती ।
अपने हृदय का भाव भी
जो बे कहे ही जानती ॥
है रक्त जिसका एक ही
वा प्राण सम मान लो ।
संसार में वह एक भगिनी
मात्र है यह जान लो ॥
समता तुम्हारी किन्तु
किससे वीर बाला हो सके ।
केवल तुम्हारी वीरता का
गान कैसे हो सके ॥
तुम ने स्वजीवन के सजीवन,
प्राण के भी प्राण को ।
अपने हृदय के रक्त को,
इस जन्म के कल्याण को ॥
निज भाग्य के शुभ सूर्य को,
आशालता के चित्र को ।
युग लोक के साथी, सदा
आराध्य देव पवित्र को ॥
उस घोर रण के हेतु तुमने
जिस प्रकार बिदा किया ।
संसार को कर्तव्यपालन
सत्य ही दिखला दिया ॥
सम्राट् की सेवार्थ तुम
कुछ भी नहीं दुख मानतीं ।
निज देश के मानार्थ तुम
विचलित न होना जानतीं ॥
कर्तव्य अपने श्रेष्ठ में
तुम हो कभी फूली नहीं ।
सह धैर्य अपने धर्म को
तुम आज भी भूली नहीं ॥
कारण यही तुमने दिया
बस आज सर्वस दान है ।
निज पूर्वजों का रख लिया
अद्भुत अलौकिक मान है ॥
बस एक गौरव के लिये
सर्वस्व अपना दे दिया ।
तुम हो यथा जिनकी सुताएँ
सत्य ही दिखला दिया ॥

यदि मान का कारण न होता
तो भला यह मानतीं ।
अपने असह्य दुख को अहो !
क्या एक सुख ही जानतीं ॥
जिसमें न देतीं साथ तुम
वह कौन सी आपत्ति थी ।
जिसमें न लेतीं भाग तुम
वह कौन घोर विपत्ति थी ॥
कर्तव्य अपने के लिये तुम
कब नहीं कटिबद्ध थीं ।
निज योग्य सेवा हेतु पूरण
भांति कब न सनद्ध थीं ॥
हे वीर-बाले धन्य हो
साहस तुम्हारा धन्य है ।
बस धन्य है कर्तव्य को
धीरज तुम्हारा धन्य है ॥
परमात्मा जब जन्म दे,
तब ऐसि हो सद्बुद्धि दे ।
संसार में सम्मान दे,
ऊँचे हृदय की वृद्धि दे ॥
चाहे जहां जब जन्म होवे
वहीं सुन्दर भाग्य हो ।
हे वीर की नारी तुम्हारा
शुभ अचल सौभाग्य हो ॥
जो हैं तुम्हारी कामनाएँ
वे प्रभो पूरी करें ।
रण वीर सिंहों को (लली)
अब शीघ्र ही विजयी करें ॥

श्रीकृष्णचरित्र का गूढ़ आशय ।

[लेखक—लाला कन्नोमल एम० ए० ।]

भगवान श्रीकृष्णचन्द्रजी का चरित्र बड़ा अद्भुत और विस्मयजनक है । सब अवतारों में कृष्णावतार सम्पूर्ण हुआ है । जितने कार्य श्रीकृष्ण के हैं सब में अद्भुतता और महत्व भरा है । साधारण मनुष्य इन रहस्यों के समझने में असमर्थ हैं । जो श्रद्धा और विश्वास से श्रीकृष्ण की भक्ति करते हैं, उन्हें कोई सन्देह नहीं होता है परन्तु जो वादविवाद में रुचि रखनेवाले हैं, उन्हें सर्वदा शंकाएँ हुआ करती हैं । जिन चरित्रों को वे समझ नहीं सकते हैं, उनमें दोष आरोपण करते रहते हैं । ऐसे मनुष्यों की श्रीकृष्ण के चरित्र में दोष निकालने की निरन्तर चेष्टा रहती है ।

नीचे कुछ ऐसे चरित्रों का गूढ़ आशय लिखा जाता है जिन पर सदैव आक्षेप हुआ करते हैं ।

(१) चीरहरण लीला ।

पहले यह बता देने की आवश्यकता है कि जिस समय के कार्य अथवा घटना पर विचार करना है, उस समय की रीति और प्रथाओं का पूरा ध्यान रखना चाहिये । ऐतिहासिक दृष्टि के बिना किसी ऐतिहासिक घटना का पूर्ण निर्णय नहीं हो सकता है । जिस समय कृष्णावतार हुआ है उस समय व्रज में क्या क्या रीति कुरीति प्रचलित थीं और मनुष्य और स्त्रियों का परस्पर क्या व्यवहार था यह जानना ज़रूरी है । यह बहुत पुराने समय की बात है । आधुनिक रीति व्यवहार से उस समय की रीति व्यवहारकी तुलना नहीं हो सकती है । दोषारोपण करनेवाले इस ऐतिहासिक दृष्टि को भूल जाते हैं और प्राचीन से प्राचीन बातों को आधुनिक रीति और प्रथाओं की दृष्टि से देखने लगते हैं । इसमें बड़ी भूल होती है

और प्राचीनकालिक वस्तुओं अथवा घटनाओं का पूर्ण विवेचन नहीं होता है।

अब यह बताना है कि जिस समय में कृष्ण भगवान वृन्दावन में थे उस समय उस स्थान की सभ्यता-सम्बन्धी क्या दशा थी। कोई इतिहास नहीं है जिससे यह बात स्पष्ट और शीघ्र मालूम हो जाय परन्तु जिन पुस्तकों में कृष्ण-चरित्र दिया हुआ है उन्हीं में उस समय के रीति व्यवहार की झलक भी विद्यमान है। ध्यान से पढ़ने से ज्ञात होगा कि वृन्दावन में स्त्रियों के नग्न स्नान करने की रीति चली आती थी। यह रीति अति निन्दनीय थी और उसके दूर करने की भी चेष्टाएं की गई थीं परन्तु फलीभूत नहीं हुई थीं। इस कुरीति को दूर करने का विचार श्रीकृष्णचन्द्र जी ने किया और यह निश्चय किया कि जबतक नग्न स्नान करनेवाली स्त्रियों को लज्जा दिलानेवाला दंड नहीं मिलेगा, तबतक इनकी यह कुरीति छूटना असम्भव है। अतः एक दिन जब बहुत स्त्रियां अपने वस्त्रों को किनारे पर धरकर नग्न स्नान कर रहीं थीं, श्रीकृष्ण भगवान जिन्हें यह अत्यावश्यक सामाजिक सुधार करना था, इन वस्त्रों को लेकर एक वृक्ष पर चढ़ गये और जब स्त्रियां स्नान करके बाहर निकलीं और अपने वस्त्रों को नहीं पाया तो बड़े कष्ट में पड़ीं। इस समय श्रीकृष्ण ने उनसे—हे गोपियो! तुम बड़ी मूर्ख हो, तीर्थस्थान में नग्न स्नान करती हो। इसका दंड यही है कि जबतक तुम नग्न अवस्था में आकर अपने २ वस्त्र नहीं लेजाओगी मैं वस्त्र नहीं दूंगा। गोपियां बड़ी लज्जित हुईं और उस दिन से उन लोगों ने प्रतिज्ञा की कि नग्न होकर कभी नहीं स्नान करेंगी।* ऐसी प्रतिज्ञा करने पर कृष्ण ने सब वस्त्र दे दिये और इस प्राचीन कुरीति का उसी दिन से लोप होगया।

अब प्रश्न है कि यह सामाजिक सुधार था या व्यभिचार। कोई समझदार मनुष्य इसे बुरा नहीं कह सकता है। सामाजिक सुधारकों को सुधार करने में बड़ी बड़ी कठिनाइयां उठानी पड़ती हैं और दूसरों के उपकार के लिए अपनी प्रतिष्ठा तक खो देनी पड़ती है। सच्चे सुधार करनेवाले कभी विचल नहीं होते हैं और अपमान और सम्मान से विमुख होकर अपना नियत कार्य करते ही जाते हैं। श्रीकृष्ण ने इस बात की कुछ परवाह नहीं की कि लोग क्या कहेंगे। उनको जो सुधार करना था कर डाला। यदि श्रीकृष्ण का यह कार्य अनुचित और निन्दनीय था तो उन स्त्रियों के पतियों ने क्यों नहीं आन्दोलन किया और कृष्ण को क्यों नहीं दंड दिया। ऐसा तो कहीं उल्लेख नहीं है। इसके विपरीत यह तो ज्ञात होता है कि इस कुरीति के दूर हो जाने से, कृष्ण की सभी ने प्रशंसा की। जैसा कृष्ण पर दोषारोपणवालों को यह कार्य बुरा और निन्दनीय मालूम होता है वैसा उन स्त्रियों के पति, भ्राता, पिता आदि को क्यों नहीं मालूम हुआ। इससे सिद्ध है कि यह कार्य कोई निन्दनीय नहीं था। केवल सुधार के अभिप्राय से ही किया गया था।

इससे कृष्ण की सामाजिक सुधार की बुद्धिमत्ता पाई जाती है, न कि उनका दुराचरण, इसके सिवा इस समय कृष्ण की सात वर्ष की अवस्था थी। कौन कह सकता है कि ऐसे बालक को कोई काम-सम्बन्धी अनुराग उत्पन्न हुआ हो।

जो भक्ति मार्ग को मानते हैं उनका कहना है कि तन्मय भक्ति सब से श्रेष्ठ है। गोपियां कृष्ण में भक्ति करती थीं परन्तु सर्वांङ्गिनी भक्ति नहीं थी। इनको अपनी भक्ति का अभिमान था। कृष्ण ने इसकी परीक्षा ली है। इस परीक्षा में जब गोपियां पूरी नहीं निकलीं तो कृष्ण ने

* इसके पहिले श्रीकृष्ण ने या और किसी ने इस कुरीति के निवारण के लिए क्या किया था? क्या इसी प्रकार से सफलता प्राप्त हो सकती थी? क्या यह लीला प्रेमी भक्तों और शृङ्गार रस में डूबे हुओं को मनगढ़न्त नहीं हो सकती। सं० म०।

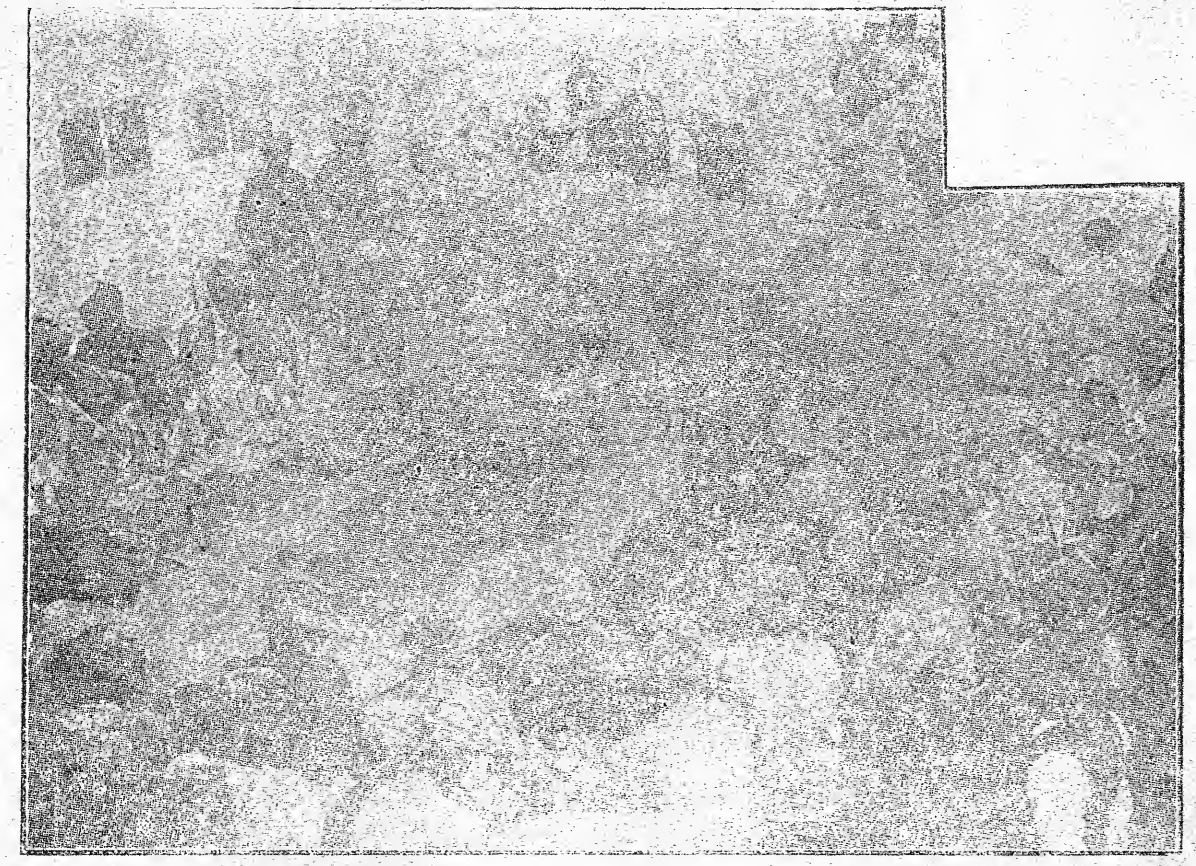

घायल सिक्ख सैनिक भारत को लौटते समय जहाज़ पर ईश विनय कर रहे हैं।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

उनके अभिमान का उपालम्भ किया है जिससे गोपियों को अपना अभिमान जाता रहा।

कृष्ण को जब भगवान मान लिया तो उनसे किसी प्रकार का भेद नहीं हो सकता। वे घट घट के ज्ञानी हैं, कोई बात उनसे छिपी नहीं है। जिनकी पूर्ण भक्ति परमेश्वर में हो जाती है वे संसार की किसी वस्तु का ध्यान नहीं रखते, न उसकी कुछ परवा करते हैं। सभी जानते हैं कि पूर्ण संन्यासी, जो परमहंस अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं, सब वस्त्रों को फेंककर नग्न रहते हैं। क्या उनका नग्न रहना लौकिक दृष्टि से बुरा नहीं है? बेशक बुरा है परन्तु कोई ऐसा नहीं कहता। जैन दिगम्बरी साधु नग्न रहते हैं। जैन की मूर्तियां नग्न होती हैं जिनके दर्शन सभी गृहस्थ करते हैं। परमहंस साधु नग्न रहते हैं। लौकिक दृष्टि जो गोपियों के चरित्र में लगाई जाती है इन साधुओं के चरित्र में नहीं लगाई जाती। नहीं तो इन सब को बुरा कहना पड़ेगा। क्या परमेश्वर मनुष्यों को अपने सामने नग्न बुलाता है जिससे ये सब नग्न हो गये हैं? कदापि नहीं। ये तो संसार की माया का चिह्न है? ईश्वर के सामने वही पहुंचता है जो संसार की सब बातों को छोड़ देता है और इनमें कुछ भी रुचि नहीं रखता, न सांसारिक बन्धनों की कुछ परवा करता है। गोपियां अभी इस श्रेणी पर नहीं पहुंची थीं। श्रीकृष्ण ने इस बात की जांच कर ली।*

(२) कृष्ण की रासलीला।

कृष्णचन्द्रजी पर दूसरा आक्षेप यह है कि वे सर्वदा तरुण गोपियों के साथ रहा करते थे और खेल-क्रीड़ा करते रहते थे। यदि कृष्णचन्द्र शुद्धाचरण के होते तो उनको स्त्रियों के साथ ऐसा अनुराग क्यों होता और इन तरुण बालाओं से क्रीड़ा करने में उनका क्या अभिप्राय था?

इस बात को पहिले ही कह आये हैं कि जिस घटना की ऐतिहासिक दृष्टि छोड़कर समालोचना की जाती है उसका कभी पूर्ण और सत्य ज्ञान नहीं होता। जिस समय श्रीकृष्ण ब्रज में रहते थे उस समय का हाल मालूम करना अत्यावश्यक है और यह हाल उन्हीं पुस्तकों से मालूम हो सकता है जिनमें श्रीकृष्ण चन्द्र का चरित्र वर्णन किया गया है।

पाठकों को इस तरफ ध्यान दिलाना भी आवश्यक है कि इस देश में परदे का रिवाज मुसलमानी समय से ही है और जिन प्रान्तों में मुसलमानों का अधिक प्रभाव रहा है वहां परदे की कठिनाइयाँ भी अधिक होगई हैं। प्राचीन भारत में स्त्री-पुरुषों में परस्पर व्यवहार उसी रीति से था जैसा कि आजकल यूरोप की सभ्य जातियों में दिखाई देता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि कृष्णचन्द्र के समय स्त्री-पुरुषों के परस्पर मिलने अथवा वार्तालाप करने में कोई रुकावट नहीं थी। दूसरे इस बात पर भी ध्यान देना ज़रूरी है कि जिस जाति की गोपियां थीं उसमें मानसिक सभ्यता अथवा विद्या-प्रचार कम हुआ था।† गोपगोपियाँ स्वतन्त्रता से रहती थीं। छल, कपट, व्यभिचार आदि दोषों से कलङ्कित नहीं थीं। कृष्ण की इस समय ६ या ७ वर्ष की अवस्था थी। बालक

* नग्न रहना इस बात का एकमात्र प्रमाण नहीं है कि किसीने संसार त्याग दिया है, न कपड़े से अपने को ढक रखना इस बात का सुबूत है कि कोई संसार में लिप्त है। सात वर्ष के श्रीकृष्ण को जो प्रायः घर ही में स्त्रियों को नग्न देखते रहे होंगे यह सुधार कैसे सूझा? दूसरे ७ वर्ष के कृष्ण के सामने गोपियों को नग्न आने में इतनी लज्जा क्यों आई कि उन लोगों ने प्रतिज्ञा की? बच्चों के सामने तो स्त्रियों को नग्न दिखाई देने में लज्जा नहीं आती। सं० म०

† किन्तु उस अवस्था में भी वे "वेद" की ऋचाएँ थीं और "ऋषी" उन्हें "योग" और "वेदान्त" सिखलाने को लालायित थे। सं० म०।

बड़ा सुन्दर और समझदार था। इसकी तरफ सभी का प्रेम था। जैसे गोप कृष्ण से प्रेम रखते थे वैसे गोपियाँ भी प्रेम करती थीं। जब कोई सुन्दर बालक होता है तो सभी का चित्त उसकी तरफ आकृष्ट होता है। यह अस्वाभाविक बात नहीं है। अहि गोपियाँ कृष्ण को जो एक ऐसा सुन्दर और होनहार लड़का था देखकर प्रसन्न होती थीं और उसके साथ खेलती थीं तो इसमें आश्चर्य क्या है? यह स्वाभाविक बात है। आक्षेप करनेवाले इस बात को छोड़ देते हैं कि ब्रज के सब लड़के अथवा गोप भी दिनभर कृष्ण के साथ रहते थे और उनका साथ कभी नहीं छोड़ते थे। दिनभर श्रीकृष्ण वन में गौ चराते थे। सब गोप उनके साथ होते थे और वन-स्थान में अनेक प्रकार के खेल गोपों के साथ हुआ करते थे। स्त्री-पुरुष सभी कृष्ण से स्नेह करते थे। क्या यह बात अब नहीं है कि जब कोई बड़ा सुन्दर और समझदार बालक होता है तो क्या स्त्रियां और क्या पुरुष सभी उसके साथ खेलते हैं? मा बाप भाई बहिन सभी, किसी अवस्था के क्यों न हों, छोटे बालक के साथ खेलने में बड़ी प्रसन्नता प्रकट करते हैं। राजा महाराजाओं को अपने छोटे बालकों के साथ खेलते बहुतों ने देखा है।

कृष्ण का गोपियों के साथ खेलना कोई अस्वाभाविक बात नहीं और विशेषतः उस समय जब कि हिन्दूजाति में कहीं भी परदे की प्रथा नहीं थी और कृष्ण की सात वर्ष की अवस्था थी।

अब रासलीला पर विचार करिये। जिस समय का हाल लिख रहे हैं उस समय में वेश्याओं का नाच तो था ही नहीं। यह असभ्य और घृणित रीति तो उसी समय से पाई जाती है जब से मुसलमानों का इस देश में प्रवेश हुआ। प्राचीन हिन्दू-समाज में स्त्री पुरुषों में परस्पर संसर्ग रहता था और नृत्य-संगीतादि विषयों में भी स्त्रियां पुरुषों के बराबर रहती थीं।

सर्वसाधारण को ज्ञात है कि पाश्चात्य देशों में, जो आज सभ्यता में गणनीय हैं, स्त्री पुरुषों में परस्पर गाने बजाने नाचने का प्रचार है। इसे कोई सभ्य आदमी बुरा नहीं कहता। सब में बड़ी खुशी का उत्सव नाच का है। नाच से यह अभिप्राय नहीं कि किसी दुराचारिणी पतित स्त्री अर्थात वेश्या को बुलाकर नाच दिखाया जाय बल्कि यह कि सब बड़े २ सज्जन और सदाचारिणी स्त्रियां आपस में मिलकर नृत्य करें। अंगरेज़ी शिक्षित पुरुषों को तो अंगरेज़ी नाच जिसे 'Ball' कहते हैं अच्छी तरह से मालूम है। कोई मनुष्य अंगरेज़ों को असभ्य और दुराचारी नहीं कहता क्योंकि इनमें स्त्री पुरुष इकट्ठे होकर नाचते हैं। आश्चर्य है कि इस देश में, जो इस समय यूरोप की सभ्यता के कहीं पीछे है, श्रीकृष्ण को, जिन्होंने गोपियों के साथ इस तरह नाच किया था, बड़ा दोष लगाया जाता है और उनके आचरणों पर आक्षेप किया जाता है। जब यह ख्याल किया जाय कि अंगरेज़ी सुशिक्षित पुरुष, जो पाश्चात्य देशों के 'Ball System' अर्थात् नाच-प्रथा की प्रशंसा करते हैं और श्रीकृष्ण के नाच-विधान की निन्दा करते हैं तो आश्चर्य की सीमा और भी बढ़ जाती है। इनके विचार में यह परस्पर-विरुद्धता कैसी?*

यथार्थ में बात यह है कि श्रीकृष्ण भगवान एक बड़े समाज-सुधारक थे। ऊपर चीरहरण-लीला के प्रसंग में कह आये हैं कि एक प्राचीन कुरीति को उन्होंने किस चतुरता और बुद्धि-

* यदि 'बाल डैन्स' (Ball Dance) और रासलीला एक ही बात है तो किसीको आक्षेप नहीं होना चाहिये। आक्षेप करनेवालों का कथन तो यही है कि बाल डैन्स में जो कुछ होता था हो सकता है वही रासलीला में भी होता, था होता रहा होगा। सं० म०

मत्ता से दूर किया है। इसी सामाजिक सुधार की दृष्टि से देखा जाय तो मालूम होगा कि यूरोप में सभ्यता फैलने के सहस्रों वर्ष पहिले ये कृष्ण भगवान ही थे जिन्होंने Ball अर्थात् नृत्य की प्रथा निकाली—यह प्रथा जो इस समय समस्त सभ्य भूमण्डल में बड़े सम्मान के साथ प्रचलित है। आजकल हिन्दू जाति के अच्छे २ विद्वानों को कहते और लिखते देखा है कि आधुनिक सभ्यता के सभी बड़े बड़े आविष्कार जो दृष्टिगोचर होते हैं पहिले इस देश में भी मालूम थे और उनके प्रमाण हिन्दू शास्त्रों में भी पाये जाते हैं। जैसे विमान, तार, बिना तार का तार। एतद्देशीय बड़े अभिमान से कहते हैं कि विमान इस देश में बहुत पुराने हैं। योगविद्या से दूर की खबर जल्दी मिल जाती थी। गुटकों के द्वारा दूर दूर आदमी आकाश के मार्ग से चले जाते थे। यदि इन सब बातों के कहने में इस देश का प्रभाव और गौरव प्रकट होता है तो एक ऐसे विषय में, जिसमें यथार्थ ही इस देश का गौरव ज्ञात होता है, क्यों भूल दिखाई जावे? यह बात हम लोगों को बड़े अभिमान से कहना चाहिये कि ये हमारे कृष्णचन्द्र जी थे जिन्होंने नाच की प्रथा निकाली है और जो प्रथा आज सभी सभ्य देशों में प्रचलित है।* सामाजिक दृष्टि से रासलीला के द्वारा श्रीकृष्ण जी बहुत बड़ा काम कर गये। स्त्री-पुरुषों के परस्पर मनोरञ्जन की वह रीति निकाल गये जिसके प्रचार करने से सब सभ्य देशों में वेश्यानृत्य का प्रवेश भी नहीं होने पाया। इस देश में, जहां हमारे परम पूजनीय कृष्ण ने यह प्रथा निकाली, उसके अभाव से घर २ वेश्या-नृत्य होने लगा और सामाजिक निर्मल आनन्द का लेश भी नहीं रहा। इस देश के निरक्षर मनुष्य तो भगवान श्रीकृष्ण की रासलीला पर उपहास करते रहे अथवा उसे खेल समझते रहे, पश्चिम देश के सभ्य स्त्री-पुरुष उसका गूढ़ आशय समझकर प्रचार में ले आये। परिणाम क्या हुआ? यहां तो वेश्याएँ नाच करने लगीं और सामाजिक चरित्र धरातल को जाने लगा और वहां वेश्याओं का नाम-निशान न रहा और नर-नारी सभी को आनन्द और मनोरञ्जन का उपाय मिला।

यह बात समझ में नहीं आती कि श्रीकृष्ण के रास कर लेने से उनमें क्या दोष आगया और क्या धर्म में धक्का लग गया? यह इसी देश की कहावत है, "साहित्यसंगीतकला विहीनः साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः।" अर्थात् जो मनुष्य या स्त्री साहित्य संगीत और ऐसी ऐसी कलाओं को नहीं जानता या जानती वह बिना पूँछ का पशु है। साहित्य-संगीत-विचार से रासलीला एक अद्भुत चीज है। इसकी तुलना और किसी चीज से नहीं हो सकती। साहित्य, संगीत और नृत्य के श्री कृष्ण धुरन्धर आचार्य गिने जाते हैं। इसका गौरव वे ही समझ सकते हैं जिनका इन विषयों से परिचय है। सर्वसाधारण की समझ से यह विषय परे है।

यह भी इस स्थान पर लिख देना आवश्यक है कि जिस समय कृष्ण ने रासलीला की है उनकी अवस्था ७ वर्ष की थी अर्थात् विषय-भोग के योग्य अवस्था नहीं थी। दूसरी बात यह है कि रासलीला में कहीं विषय-भोग का उल्लेख नहीं है। नृत्य और तत्सम्बन्धी क्रीड़ाओं का वर्णन ही है। तीसरे यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि यह रासलीला गोपियों की अति दीन प्रार्थना पर की गई थी। बहुत दिन से प्रार्थना थी। श्रीकृष्ण ने इनके मन

* साथ ही इसलिए दुःख भी होना चाहिये कि ऐसी अच्छी प्रथा केवल इसलिए उठ गई कि मनुष्य स्त्री को दासी, अपनी ज़रख़रीद दौलत और अपने को उसका प्रभु समझने लगे। प्रभुत्व भी इतना बढ़ गया कि मनुष्य ने स्त्री के मुख पर कपड़ा डाल दिया कि उसे कोई देखे नहीं, उससे कोई बोले नहीं। सं० म०।

शुद्ध करने के लिए कई मास तक कात्यायन व्रत* इनसे करवाया। रासपंचाध्यायी के पढ़ने से ज्ञात होगा कि जो कुछ कृष्ण ने किया है उसमें कोई दूषित बात नहीं है। उपहास और आक्षेप करने को तो अनसमझ आदमी पवित्र से पवित्र वस्तुओं में दोष लगा सकते हैं। दुग्ध कैसा सुन्दर और बलदायक पदार्थ है परन्तु आजकल के पढ़े लिखे उसमें भी दोष लगाते हैं और यह कहकर कि इससे मेदा बिगड़ जाता है उसका सेवन छोड़ देते हैं! इस विषय में भी देखो। कृष्ण भगवान ने भोजन-सम्बन्धी क्या सुधार कर दिखाया है। दूध, दही, माखन, इन्हींका भोजन उन्होंने श्रेष्ठ माना। मद, मांस का भोजन, जो पहिले से चला आता था, उन्होंने सर्वथा त्याग किया।

अब इस रासलीला को अध्यात्म की दृष्टि से वर्णन करते हैं। चीरहरण लीला के प्रसंग में कह आये हैं कि गोपियाँ अपने को परमभक्त समझती थीं परन्तु जब कृष्ण ने इनकी परीक्षा ली तो इन्हें पूरा नहीं पाया। उनके भक्त होने का जो अभिमान था उसे उन्होंने तोड़ दिया। गोपियों ने भी इस बात को मान लिया। अपनी भक्ति बढ़ाने लगीं; बढ़ाते बढ़ाते पूर्ण अवस्था पर पहुंच गईं। इस अवस्था की भी श्रीकृष्ण ने परीक्षा की और यह परीक्षा रासलीला में थी। रासलीला में भी जब श्रीकृष्ण ने इनमें अभिमान का लेश बाकी देखा तो फिर झोंका दिया और जब ये अपने को पूर्ण समझ गईं तब कृष्ण इनसे मिले। गोपियाँ भक्ति की आदर्श नायिका हैं। इनसे बढ़कर भक्ति करनेवाला कोई नहीं हुआ है। नारदसूत्रों में भी सब से बड़ा उदाहरण गोपियों की भक्ति का ही दिया है। भक्ति पूर्ण होने से परिणाम यह हुआ कि जीव और परमेश्वर एक होगये। जीव परमेश्वर में तन्मयता हो गई। जैसे नृत्य में एकचित्त हो जाता वैसे ही जीव परमेश्वर में रमने लगता है। रासलीला क्या है? जीवों का ईश्वर के साथ एकभाव होकर रमण करना है। यह अवस्था भक्ति से ही होती है। गोपियों को भक्ति से यह आनन्द प्राप्त हुआ।†

अब तीसरा अर्थ लीजिये। जब कोई बहुत तेजस्वी वा महात्मा होता है तो एक बार कामदेव उसकी अवश्य परीक्षा लेता है और यदि इस परीक्षा में वह पूरा उतर जाता है तो उसका बड़ा गौरव होता है। इस तरह श्रीकृष्ण भगवान की परीक्षा भी हुई। भगवान जान गये। कामदेव के मन में किसी तरह की शंका न रह जाय इसलिए सब सामग्री इकट्ठी की जिससे काम का पूरा उद्रेक हो सके। शरदपूर्णिमा की रात्रि, अनेक यौवना स्त्रियाँ, यमुनातट के रम्य स्थल, मधुर वंशी का संगीत, रासलीला का व्यवहार, यह सब सामग्री कामदेव की सहायक थी। श्रीकृष्ण भगवान इस सब के रहते कामदेव के वश में नहीं हुए। गोपियों के साथ नृत्य भी किया, क्रीड़ाएँ भी कीं परन्तु किसी प्रकार का व्यभिचार नहीं किया। कामदेव को हार माननी पड़ी और वह लज्जित होकर श्रीकृष्ण भगवान की शरण आया। इस सब का अभिप्राय यह है कि श्रीकृष्णचन्द्र ने रासलीला के द्वारा कामदेव का मान खंडन किया है। रासलीला श्रीकृष्ण के अटल योगी होने के प्रमाण में है, न कि उनके व्यभिचार के।

क्रमशः।

---

* इसकी आवश्यकता क्यों प्रतीत हुई? सं० म०

† जीव और परमेश्वर एक हुए या पुरुष और प्रकृति का परदा उठ गया। इस विषय के ज्ञाताओं का कहना है कि Romantic plane का यह Sex attraction मात्र है। सं० म०

देश-विनय।

[लेखक—श्रीयुत नृसिंहनाथ त्रिपाठी।]

(१)

हे दीनबन्धो! दीन भारतवर्ष की सुधि लीजिये।
अज्ञान है वह हो रहा सज्ञान इसको कीजिये॥
आलस्य का प्रेमी बना है कार्य-पथ को छोड़कर।
कुछ सूझ पड़ता है नहीं मारग-प्रदर्शक हूजिये॥

(२)

क्षीरोदतनया का रहा जो सर्वदा भण्डार था।
वह है दरिद्रागार अब लक्ष्मीविभूषित कीजिये॥
अभिमानवान् सरस्वती का जो रहा संसार में।
वह है अविद्यापूर्ण, विद्या-दान केशव! दीजिये॥

(३)

विज्ञान, शिल्पकला-कुशलता में बना था अग्रणी।
वह ताकता मुख अन्य का सूई जुड़ी के भी लिए॥
हा! जो स्वतंत्र विचार शुद्धाचारवान रहा सदा।
उसकी पराधीना अवस्था देखि आज पसीजिये॥

(४)

राष्ट्रीयता समुदित नहीं इसके हृदय-उद्यान में।
होकर बृहस्पति प्रभु! इसे राष्ट्रीय शिक्षा दीजिये॥
हे नाथ क्या! कुछ भी दया इस देश पर आती नहीं?
यदि देश! करुणासिन्धु हो तो शीघ्र करुणा कीजिये

युद्ध से हानि।

[लेखक—श्रीयुत शिवनारायण द्विवेदी।]

संसार के हर एक पदार्थ में फ़ायदा और नुक़सान पहुंचाने की ताक़त है। जो ज़हर आदमी की जान का गाहक होता है, बहुतसी बीमारियों में वही ज़हर उस रोग को दूर करके मनुष्य को प्राणदान देता है। इसलिए किसी चीज़ या किसी बात को सर्वथा भला या बुरा कह देना केवल मूर्खता प्रगट करना है। हर एक चीज़ अपने आस पासवाली चीज़ों के प्रभाव पर अच्छा या बुरा फल देती है। इसी प्रकार हर एक क्रिया का सम्बन्ध अपनी आस पासवाली घटनाओं से जुड़ा रहता है। यूरोप के इस महासंग्राम में युवराज फर्डिनेंड का वध एक ऐसी घटना है जिसके निमित्त दोनों ओर से तलवारें निकलीं। पर यदि अब से पचास वर्ष पहिले से उन घटनाओं का सूत्र-पात न हुआ होता तो आर्चड्यूक युवराज का वध किसीको याद भी न रहता। भय की सभा में दुर्योधन की हंसी महाभारत जैसे घोर संग्राम का कारण बनी थी। पर यदि महाभारत के पहिले की वे घटनाएं न घटी होतीं तो भय की सभा से संग्राम का सूत्रपात होना कभी सम्भव नहीं था। इस प्रकार के सम्मिलित कार्य-कारणों से विविध घटनाओं का जन्म होता है; इसलिए आस पास की घटनावली पर विचार किये बिना संसार और प्रकृति की कोई क्रिया बुरी नहीं ठहराई जा सकती।

मनुष्य-समाज की उन्नति के साथ 'युद्ध' का बड़ा गहरा सम्बन्ध है। युद्ध से मनुष्यों की उन्नति और अवनति दोनों होती है। जो पक्ष जीतता है वह अपने शत्रुपक्ष के देश, धन, राज्य आदि को अपने आधीन कर लेता है। इससे वे लोग अपने नुक़सान को आसानी से पूरा कर लेते हैं। हारे हुए पक्ष की सुन्दरी और गुणवती

स्त्रियों से वे विवाह करके अपनी जाति की संख्या बढ़ा लेते हैं। हारे हुए पक्ष के धन का वे उपयोग करके अपनी जाति को उन्नति का रास्ता साफ कर लेते हैं। जो पक्ष जीतता है उसका धर्म, भाषा और वेष हारे हुए पक्ष को अपनाना पड़ता है। इस प्रकार विजयी पक्ष सब बातों में प्रबल होजाता है और हारनेवाला पक्ष निर्बल पड़ जाता है। वैदिककाल में जो आर्यों और अनार्यों का एक लंबा संग्राम हुआ था उसमें आर्य जीते और अनार्य हारे थे। आज उस अनार्य जाति का बिन्दु-विसर्ग भी इस धराधाम पर नहीं है। आर्य जाति ने उसे अपने पेट में पचा डाला। इसी प्रकार शक और हूण जाति का भी पता नहीं है। प्राचीनकाल की मध्य एशिया की प्रसिद्ध जाति "वैबिलोनिअन" भी इसी प्रकार नष्ट हो गई।

संग्राम से जहां एक जाति अपने रास्ते का कांटा साफ करके अपनी उन्नति करती है वहां दूसरी जाति उस उन्नति के लिए बलि हो जाती है। कीट-पतंगों और वनस्पतियों में जैसा जीवन संग्राम होता है मनुष्यों का वह संग्राम भी ठीक वैसा ही है। इससे कहा जा सकता है कि मनुष्य अभी उन्नति के पहाड़ की जड़ में भी नहीं पहुंचा; नहीं तो वनस्पतियों की तरह जीवन-कलह न होता। इस समय की सुप्रसिद्ध पुस्तक "Next War" अर्थात् "भावी संग्राम" में जनरल बर्नहार्डी ने जर्मनीवालों को युद्ध की उपयोगिता भलीभांति समझाई है। इसमें यह साबित किया गया है कि जातीयता का विकास युद्ध के सिवा और किसी प्रकार नहीं हो सकता। एक जाति बहुत समय तक संग्राम से विरत रह कर ललित कलाओं में डूबी रहने के कारण कायर बन जाती है; और फिर वह सशक्त और उन्नति करनेवाली जाति का मुक़ाबिला नहीं कर सकती; अतएव स्वाधीनता खोकर पराधीन बन जाती है। जनरल बर्नहार्डी के मत से पराधीनता मृत्यु है। इस पराधीनता रूप मृत्यु से वही जाति बच सकती है जो हर समय अपने कलेजे के खून से संग्राम भूमि को तर करने के लिए तैयार हो और समय आने पर करके भी दिखा देती हो।

विकास सिद्धान्त के अनुसार वनस्पति और कीट-पतंगों में भी अपनी उन्नति और जाति-विस्तार का यही उपाय है। मनुष्यों के इतिहास में एक २ पांव पर यही उदाहरण देखने को मिलता है, इसलिए युद्ध की भयंकरता को देख कर जितना बुरा कहने की इच्छा होती है, इस सिद्धान्त को विचारने पर युद्ध उतना बुरा नहीं मालूम होता।

जब तक मनुष्य में जातीयता का भाव है तब तक न तो संसार से युद्ध होना उठ ही सकता है, और न युद्ध बुरा ही है। जातीय उन्नति के भाव से युद्ध को उत्तेजना मिलती है। एक अपना पेट भरने के लिए दूसरे को निगलना चाहता है, दूसरा अपने प्राण जाने के भय से उसे नाश करना चाहता है। इस भाव का नाश तभी हो सकता है जब संसारभर के मनुष्यों से जातीयता हटकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का भाव या मनुष्यमात्र में भ्रातृत्व स्थापित हो। अन्यथा शान्ति की दुहाई इस धराधाम से संग्राम का नाश नहीं कर सकती।

जब तक एक जाति के अधिकार दूसरी जाति के हाथ में रहेंगे; जब तक बहुत से मनुष्यों के अधिकार कुछ इने गिने मनुष्य भोगेंगे; जब तक ईश्वरदत्तता (Divine Right) का भाव रंचमात्र भी टिका रहेगा; जब तक मनुष्य-मात्र पर प्रेम की विजय न होगी, तब तक इस संसार से युद्ध नहीं उठ सकता एवं बुरा भी नहीं कहा जा सकता। जो जाति प्रबल होगी वह आस पास की निर्बल जातियों को हड़प कर अपना विस्तार करना चाहेगी और जो जातियाँ निर्बल हैं वे अपने समर्थ शत्रु की मृत्यु चाहेंगी। इसलिए जातीयता और

पराधीनता ही युद्ध की जड़ है। यूरोप में युद्ध की निन्दा करनेवाली सैकड़ों समितियां हैं और उनका निर्माण भी गत पचास वर्षों में हुआ है किन्तु फिर भी वर्तमान विश्वव्यापी संग्राम जैसे महायुद्ध के कारण बनते रहे और अन्त में यह हो ही गया। International Congress, International Conference of Historians, Universal Races Congress, Congress of Religions, International Congress of Trades Unions, International Conference of Socialists, International Law आदि समितियां और संस्थाएँ, जो यूरोप की शान्ति-रक्षिका (Concert of Europe) कही जाती थीं वे इस संग्राम का कुछ भी बना या बिगाड़ न सकीं। हेग की शान्ति-सभा एक ओर धरी रही और युद्ध छिड़ गया। हम ऊपर कह आये हैं कि युद्ध का भाव इस प्रकार नहीं मिट सकता। यहां पर इतना हम और कह देना चाहते हैं कि मनुष्यों में मनुष्यत्व का भाव ही शान्ति स्थापित कर सकता है।

युद्ध से राष्ट्रीयता का संचार अवश्य होता है। हज़ारों उपदेशक जिन कुरीतियों, दुर्गुणों और फूट को नहीं मिटा सकते; युद्ध से राष्ट्रीय संकट का ख़याल करके लोग इन्हें अपने आप त्याग देते हैं। भारतीय सेना के यूरोप में जाने पर भी समुद्रयात्रा का नाम किसी पंडित के मुंह से नहीं निकला। जो गोरे भारतीयों को फूटी आँखों भी देखना पसन्द नहीं करते थे वे दो सहोदर भाइयों के समान एक दूसरे का सहारा लिये शत्रु पर आग बरसा रहे हैं; इससे बढ़कर युद्ध से राष्ट्रीयता के संगठन का और क्या प्रमाण हो सकता है? पर दूसरी ओर युद्ध से जातीयता और राष्ट्रीयता को बड़ी हानि भी पहुंचती है।

किसी देश की सीमा पर युद्ध छिड़ जाने के बाद स्वदेशप्रेमी वीर घर में नहीं बैठते; स्वदेश-रक्षा के रण-निमन्त्रण से उनका हृदय उछलने लगता है। वे रणाङ्गण में खड़े होकर वीर के समान प्राण त्याग करते हैं; देश में केवल दुर्बल, कायर और रोगी शेष रह जाते हैं। इन दुर्बल और भीरु माता पिता की संतान भी ऐसी ही होती है। विकास सिद्धान्त के अनुसार पशुओं और कीट-पतंगों के संग्राम में जब हृष्ट, पुष्ट और सशक्त प्राणी काम आजाते हैं तब बचे हुए दुर्बलों और कायरों की सन्तानें वैसी ही हीनवीर्य होती है। मनुष्य जाति के लिए भी यही नियम है। युद्ध से डरकर जो कायर और दुबल मनुष्य घर में बैठा रहेगा वही भविष्य में पिता बनेगा और यों सहज ही में जातीय अवनति बिना बुलाये आजायगी।

जातीय अवनति के जितने कारण बताये जाते हैं, उनमें से एक देश के लोगों का देशान्तर में जाकर उपनिवेश स्थापित करना है। देश के उत्साही, साहसी और ऊँचे ख़यालों-वाले मनुष्य ही विदेश में जाकर धन-सम्पत्ति बढ़ाने की चेष्टा किया करते है। जिस देश के उत्साही और बलवान् कृषक चले जायँगे तब वहाँ दुर्बल और कम हौसलेवाले किसान बच रहेंगे; इसलिए देश में खेती की अवनति होगी। यह बात सत्य है कि जिस देश से वे आवेंगे उसकी हानि अवश्य होगी पर जहाँ वे रहेंगे वहां की श्रीवृद्धि तो होगी। पृथ्वी के किसी न किसी भाग में उनका उद्योग मूर्तिमान् खड़ा दिखाई देगा। किन्तु संग्राम से वे इस पृथ्वी पर ही नहीं रहने पाते। इसलिए युद्ध से जो समाज की बड़ी भारी हानि होती है वह सम्पूर्ण पृथ्वी की हानि से कम नहीं है।

एक समय में यूनानी (यवन) जाति संसार की सब जातियों से श्रेष्ठ और वीर थी, किन्तु धीरे २ उसकी अवनति हुई और अब उसका नाममात्र शेष है। यूनान के इतिहास को देखने-वाले बता सकते है कि उस जाति की अवनति का कारण अकाल में ही सर्वोत्तम व्यक्तियों का अभाव हो जाना था। यूनान में आपस में अनेक

संग्राम हुए और यों उनकी शक्ति का अपने आप ह्रास हुआ। वर्तमान यूनानी जाति वीरश्रेष्ठ लिउएडास और मिल्टाउडिस की सन्तान नहीं है, बल्कि लड़ाई में न जानेवाले कायरों और निरुत्साही पुरुषों की सन्तान है।

आज उस यूनान की कैसी शोचनीय अवस्था हो रही है। महाशक्तियों के हाथ वह आज कठपुतली बन रहा है। जिस यूनान ने पारस्य सम्राट् के विरुद्ध तलवार उठाकर उसे पराजित किया, जो यूनान एक दिन तमाम अत्याचारों और अविचारों का शत्रु था; उस ही यूनान को तुर्कों से अपनी स्वाधीनता लौटाने के लिए समग्र यूरोप के मुंह की ओर ताकना पड़ा। यद्यपि बालकन संग्राम से यूनान जीवित राष्ट्रों में सम्मिलित होने की कोशिश कर रहा है; पर उसकी वह शक्ति दूर है।

यूनान का पतन इस प्रकार हुआ। कुछ शताब्दियों के बाद महाप्रतापी रोम राज्य का भी यही हाल हुआ। क्या रोम को कभी इस बात का अनुमान हुआ था कि उसकी विराट् सुशिक्षित सेना और उसके प्रतापी महासाम्राज्य का एक दिन नाश हो जायगा? रोम का नाश इसलिए नहीं हुआ है कि असंख्य बर्बर जाति ने उस शिक्षित का नाश किया; अधर्म, अहङ्कार, विलास और अत्याचार ने भी रोम का नाश नहीं किया। विद्वान् सीली (Seely) ने लिखा है कि "रोम साम्राज्य केवल उत्कृष्ट मनुष्यों के अभाव से नष्ट हुआ है।" सब प्रकृत इतिहास लिखनेवालों ने उत्तम मनुष्यों के अभाव ही से देश का नाश होना लिखा है। युद्ध से साहसी और वीर मनुष्यों का अन्त हो जाता है। प्रोफेसर आटो सीक ने (Prof. Otto Seeck's "Downfall of the Anciant World.") अपने ग्रन्थ में रोम के नाश होने के कारणों में उपयुक्त मनुष्यों का अभाव सब से प्रधान कारण बताया है। रोम-सम्राट् मेरिअस (Marius) और सिना (Cinna) ने हज़ारों और लाखों रोम सन्तानों का खून बहाया था। रोम-सम्राट् सल्ला (Sulla) प्रजातन्त्र का घोर विरोधी था। इसके समय में असंख्य प्रजाप्रिय मनुष्यों का वध हुआ था। जब रोम में 'ट्रैमवेरेट' (Triumvirate) का प्राधान्य हुआ तब भी असंख्य उच्चाशय मनुष्यों का संहार हुआ। इस प्रकार उत्साही, साहसी, ऊँचे विचारोंवाले और नेता बननेवाले मनुष्यों के अभाव में कायर और कमज़ोर बच रहे। रोम के मनुष्य उन्हीं बचे हुओं की सन्तानें हैं, इसलिए उनसे क्या आशा की जा सकती है?

बेरी (Berry) ने लिखा है कि रोम में लड़ाइयों के बाद असली किसानों की तादाद बहुत कम बची थी और जो "गुलाम" लड़ाई में नहीं गये थे उन्हींकी औलाद बढ़ने लगी। रोम एएटनाइन आदि के समय में मनुष्यों की तादाद इतनी घट गई थी कि सम्राट् अगस्टस् ने उन लोगों को सरकारी इनाम देने का कानून बनाया था जो विवाह करते थे।

इस प्रकार यूनान और रोम, कार्थेज और मिस्र, अरब और टर्की समय २ पर ध्वंस हुए और इसका एकमात्र कारण शक्तिशाली और साहसी व्यक्तियों का अभाव था। जब उच्च मानसिक श्रेणीवाले मनुष्यों का अभाव हो जाता है तब नीची श्रेणीवालों की प्रधानता हो जाती है और उनकी डरपोक और निर्बल सन्तान अवनति करती चली जाती है। भारतवर्ष के इतिहास पर नज़र डालने से भी यही बात अक्षर २ सच जान पड़ती है।

जापान की ओर देखने से हमें यह मालूम होता है कि गत पचास वर्षों में इसने अन्दाज़े से ज़ियादा तरक्की कर डाली। इसका सबब यह है कि जापान में ऊँची श्रेणीवाले मनुष्यों का अभाव नहीं है। गत दो सौ वर्ष से जापान में चिरशान्ति रही है, छोटी मोटी लड़ाइयों को छोड़कर इसे किसी जाति के साथ संग्राम

किल्ले गोव्यातील चेपोरा बेटावर आहे.

मराठ्यांचे आरमार, प्रकाशन

नहीं करना पड़ा। देश में शान्ति के समय में श्रेष्ठ मनुष्यों की वृद्धि होती है, क्योंकि प्रतियोगिता में आलसी, कायर और काम से घबरानेवाले नहीं टिक सकते। इसीलिए दो सौ वर्ष की शान्ति से जापान में उच्च हृदय और बाहुली मनुष्यों की वृद्धि हुई और उन्होंने विपुल शक्तिशाली रूस को नीचा दिखा दिया।

पृथ्वी पर अनेक जातियों में सैकड़ों महासंग्राम हुए, उन सब की कमी कई सौ साल में भी पूरी होनी मुश्किल है। बहुतों का यह सिद्धान्त है कि युद्ध अवश्यम्भावी होता है, पर यथार्थ में युद्ध अवश्यम्भावी कभी नहीं होता। यदि न्याय से प्राप्त किसी के अधिकार में बाधा न दी जाय, किसी को प्राप्त होनेवाली कोई सुविधा, कोई क्षमता से उसे वंचित न किया जाय, मनुष्यमात्र के साथ मनुष्यत्वपूर्ण और सहृदय व्यवहार किया जाय तो पृथ्वी पर कभी युद्ध की नौबत नहीं आसकती। जब तक यह नहीं होगा तब तक युद्ध भी बंद नहीं हो सकता और वह बुरा भी नहीं है, क्योंकि युद्ध के द्वारा ही अन्याय और अत्याचार का अन्त हो सकता है।

हमारी उन्नति।

[लेखक—श्रीयुत बालाप्रसाद शर्मा।]

इस जगत में कौन ऐसा प्राणी है जो अपनी उन्नति न चाहे। वर्तमान समय में जबकि संसार के समस्त देश उन्नति की दौड़ में एक दूसरे से बाज़ी लगा रहे हैं तो क्या केवल हमारी जाति ही ऐसी है जो इस ओर ज़रा भी ध्यान न देगी? भारतवर्ष, जिसका आदर्श, किसी समय में समस्त जगत मानता था। जिसकी सभ्यता प्राचीनतम कही जाती है। गणित, ज्योतिष, रेखागणित, बीजगणित, आयुर्वेद, दर्शन आदि विद्याओं का प्रारम्भ में यहां आविष्कार हुआ और जिसने आत्मिक विषयों में अपूर्व उन्नति की हो यदि उसकी वर्तमान अवस्था पर विचार करें तो महान आश्चर्य होता है। किन्तु आश्चर्य करने से क्या होगा? प्रश्न तो यह है कि अब क्या करना चाहिये?

यह प्रसिद्ध सिद्धान्त है कि "ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करते हैं" इसपर क्षणमात्र ध्यान कीजिये और अपने देश की दशा को सामने रखकर अन्य देशों से तुलना कर कुछ यत्न कीजिये सम्भव है कि इसी प्रकार परिश्रम और अनुशीलन द्वारा हम अपने लक्ष्य की ओर पहुंच जावें। उन्नति की मूल "शिक्षा" है। बिना शिक्षा के उन्नति असम्भव है इस कारण प्रथम शिक्षा पर ही विचार करना है। हमारे नीतिशास्त्रकारों ने तो यहां तक कहा है कि "तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम्" अर्थात् बिना शिक्षा प्राप्त किये मनुष्य सींग व पूँछ रहित पशु है तिनका नहीं खाता और जीवित है यह उसका परम भाग्य है। "शिक्षा" से दो अभिप्राय हैं (१) किसी विषय का ज्ञान प्राप्त हो जाना (२) शारीरिक और मानसिक शक्तियों की उन्नति हो जावे। हमारे शरीर में ज्ञान प्राप्त करने के ईश्वरदत्त ५ साधन हैं जिन्हें ज्ञानेन्द्रियां कहते हैं (१) नेत्र (जिनसे देखते हैं) (२) कान (जिनसे सुनते हैं) (३) नासिका (जिनसे गन्ध ग्रहण करते हैं) (४) रसनेन्द्रिय (जिह्वा) जिससे चखते हैं (५)

त्वचा (जिससे शीत-उष्ण चिकनापन खुर्दरापन आदि छूकर जान सकते हैं) इसी कारण यह इन्द्रियां ज्ञान प्राप्त करने के पाँच द्वार कही जाती हैं। नेचर (प्रकृति) की ओर से प्रत्येक मनुष्य को यह दर्वाजे दिये गये हैं (सिवाय किसी विशेष २ व्यक्तियों के जो जन्म से ही किसी इंद्रिय से रहित हों) बालक जब से उत्पन्न होकर पृथ्वी पर आता है उसी समय से कुछ न कुछ ज्ञान प्राप्त करने लगता है और उसकी इन ज्ञान प्राप्त करने की शक्तियों में विकास होना प्रारम्भ हो जाता है। एक उदाहरण लीजिये। एक बालक ६ मास का है इसे एक बार शहद चटाइये वह रसनेन्द्रिय द्वारा उसके स्वाद से ज्ञान प्राप्त करेगा और शहद को बड़े प्रेम से चाटने लगेगा। किन्तु यदि उसकी जिह्वा से थोड़ी सी कुनैन लगा दी जाय तो रोने लगेगा और अप्रसन्नता को प्रगट करेगा और फिर आपकी उंगली नहीं चाटेगा। इससे ज्ञात हुआ कि नन्हें से बालक में भी कोई ऐसी शक्ति है जो शहद और कुनैन के स्वाद में भेद जानती है। बाल्यावस्था में यह शक्ति निर्बल होती है और बड़े होने पर क्रमशः बढ़ती जाती है। अब आप मुख्य लक्ष्य की ओर आइये। अर्थात् बालकों को शिक्षा इस प्रकार मिलनी चाहिये कि उनकी शक्तियों में विकास हो और शिक्षा प्रकृति के नियमानुसार हो। ६ वर्ष का बालक जब पाठशाला वा स्कूल में अपने गुरु के पास आता है तो उसका ज्ञान बहुत थोड़ा होता है। यदि उसके ज्ञान प्राप्त करने के दर्वाजे बन्द कर दिये गये या उनका अनुशीलन भले प्रकार या विधिपूर्वक न हुआ तो उसकी उन्नति समाप्त—और यह उदाहरण जैसे एक बच्चे के लिए है उसी प्रकार देश के सब बच्चा पर घटित हो सकता है और बच्चे ही कालान्तर में बड़े होकर युवा और देश के नेता बनते हैं। इससे ईश्वरदत्त शक्तियों के विकास और सुधार पर देशका सुधार निर्भर है अर्थात् "बालकों की शिक्षापद्धति ठीक होने पर किसी देश की भावी उन्नति निर्भर है"।

हमारे स्कूलों में जो बच्चे पढ़ते हैं उनके शिक्षकों का अधिकतर मुख्य उद्देश्य यह रहता है कि किसी न किसी प्रकार परीक्षा फल में ७५ प्रति सैकड़ा छात्र उत्तीर्ण हो जावें जिससे इंस्पेक्टर साहब अपने वार्षिक मुआइना में स्कूल के कार्य और मास्टर की प्रशंसा करें। इस उद्देश्यपूर्ति में हमारे बच्चों की शक्तियां नष्ट-भ्रष्ट हो जाती हैं। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य यह कदापि नहीं है कि मर खपकर, ठुक पिटकर किताब घोटली और परीक्षा देने के बाद किताब के दर्शनों को भी जी न चाहे। अतः हमको अपनी शिक्षापद्धति इस प्रकार बनानी चाहिये जिससे बच्चों की शक्तियों में वृद्धि और विकास हो। छोटे बच्चों का सुधार बड़ी सावधानी से करना चाहिये। बाल्यावस्था में बालक अपने बड़ों की प्रसन्नता और अप्रसन्नता का बड़ा ध्यान रखते हैं। वे ऐसे काम करने से सर्वदा बचना चाहते हैं जिनसे उनके गुरुजन और मातापिता अप्रसन्न होते हैं, इसलिए माता पिता, गुरु और जिन लोगों में बालक रहे वे यथासम्भव ऐसे हों जिनका लक्ष्य सदैव जाति और देशसुधार की ओर हो। तभी वे छोटे से बालक (जो भविष्य में देश का बड़ा मनुष्य होगा) के शिक्षण और पोषण का ध्यान रक्खेंगे। हमारे स्कूलों में बहुत से विषय इसलिए पढ़ाये जाते हैं जिनसे ज्ञानेन्द्रियों की तरबियत हो, यथा ड्राइंग और वस्तुपाठ ऐसे प्रधान विषय हैं जिन्हें छोटे बच्चों को अवश्य पढ़ाना चाहिये (दुर्भाग्य से देशी पाठशालाओं वा स्कूलों में लोग इन विषयों को व्यर्थ समझते हैं। नेताओं को इस ओर ध्यान देना उचित है) यद्यपि ड्राइंग विषय का प्रत्येक मनुष्य को काम नहीं पड़ता परन्तु उसके पढ़ने से और थोड़ासा भी अभ्यास करने से मिज़ाज में सफ़ाई, हाथ और आंखों की तरबियत तरतीब, किसी स्थान

की दूरी, किसी पदार्थ की आकृति का कि यह गोल, चौकोर, लम्बोतरा आदि का भली-भाँति ज्ञान हो जाता है इस कारण यह विषय अनिवार्य होना चाहिये। इसी प्रकार वस्तुपाठ का विषय अत्यन्त लाभदायक है, बच्चों को उससे वञ्चित रखना मानो उनकी ज्ञान प्राप्त करने की शक्तियों को बन्द कर देना है। यह विषय ऐसा है जो खेल का खेल है और इस के १५ या २० पाठों के पढ़ने से बालक को इतना अधिक अनुभव और ज्ञान हो जाता है जो बड़ी अवस्था पर और १५ या २० पुस्तकों के पढ़ने से भी नहीं होता। जिन बच्चों को वस्तु-पाठ पढ़ाया गया है उनसे और उन बच्चों से जिन्हें नहीं पढ़ाया गया है एक दो ही प्रश्न कीजिये तो आपको पता लगेगा कि कितने बच्चे ऐसे हैं जिन्हें अपनी पुस्तक की पंक्ति के सिवा बाह्य जगत का कुछ भी ज्ञान नहीं। उदाहरणार्थ तीन प्रश्न हम लिखे देते हैं आप बच्चों से पूछें तो हमारे विचार की सत्यता आपको प्रकट हो जायगी। (१) दूध पिलानेवाले जानवरों के नाम बताओ? फिर पूछो कि गिलहरी, चूहा, कैसा जानवर है? (२) उड़नेवाले पक्षियों के नाम। (३) अंडा देनेवाले कौन २ से जीव हैं? फिर पूछो कि चिमगीदड़, नकुल कैसे जीव हैं? वस्तुपाठ से जहाँ ज्ञान और अनुभव होता है वहाँ बालकों को खोज करने का स्वभाव और ज्ञान प्राप्त करने का शौक़ भी बढ़ जाता है। विचार करने की शक्ति बढ़ती है। किन्तु हमारे देश की शिक्षा-पद्धति की विचित्र दशा है। प्रथम तो अल्प वेतन होने के कारण बहुत से योग्य और विद्वान मनुष्य अध्यापकी का पेशा ही नहीं करते और शिक्षकों की योग्यता पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है, बालकों के माता, पिता सस्ते से सस्ता ट्यूटर रखते हैं और स्कूलों में अधिकतर शिक्षक सिवा पुस्तक घुटा देने और ठोक पीट कर परीक्षा में उत्तीर्ण करा देने के अपना कुछ भी कर्त्तव्य नहीं समझते। यदि हमें देश व जाति की उन्नति इष्ट है तो शिक्षकों के वेतन की चिन्ता कम कीजिये और शिक्षकों को चाहिये कि वे अपना मुख्य कर्त्तव्य "ईश्वरदत्त शक्तियों की उन्नति और उनका विकास करना समझें और विद्यार्थियों को इस प्रकार शिक्षा दें जिससे उनकी शक्तियाँ बढ़ें।" सब को एक लाठी से न हांकें अर्थात् यह आशा न करें कि सब विद्यार्थी सब विषयों में समान उन्नति करें। बहुत से मनुष्यों की यह इच्छा होती है कि उनके बालक अत्यन्त छोटी अवस्था में विद्वान बन जावें और इस उद्देश्यपूर्ति के लिए उनके मस्तिष्क पर इतना दबाव डालते हैं कि थोड़े ही दिनों में बालक का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और जन्म भर के लिए पढ़ने से वंचित रह जाता है। अतः यह सिद्ध हुआ कि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मानसी शक्तियों की उन्नति करना है। इस कारण शिक्षाविधि या पाठविधि में जो विषय रक्खे जावें उनके भी दो ही मुख्य उद्देश्य होने चाहियें—(१) ज्ञानेन्द्रियों की तरबियत। (२) उस विषय से ज्ञान हो जावे और योग्यता बढ़े, जिससे बड़े होने पर हमारे नित्य के काम आवे। अब हमको यह देख लेना चाहिये कि कौन २ विषय किस २ अवस्था में पढ़ाये जावें। फिर देश, काल पर विचार करना पड़ेगा कि इस समय हमारी पाठविधि कैसी हो। सारांश यह कि बाल्यावस्था में ऐसे विषय जिनसे देखने, छूने, सुनने, टटोलने, तर्तीब देने, सफाई की आदत पड़ने, रात दिन के व्यवहार में आने योग्य विषय पढ़ाने चाहियें और आगे चलकर देशकाल आवश्यकतानुसार क्रमशः बढ़ाते जावें, इस कारण-वस्तु-पाठ, ड्राइंग, मौखिक गणित, किसी पदार्थ को दिखाकर उसका वर्णन करना, बोलचाल के नियम, पढ़ने बैठने के नियम, आरोग्यता-सम्बन्धी पाठ, गणित, भाषा इत्यादि अनिवार्य होने चाहियें और बड़ी अवस्था पर जहां दार्शनिक और गूढ़ विषय पढ़ाये जावें उनके साथ २

भूगोल, इतिहास, प्राकृतिक जगत का ज्ञान (विज्ञान की मोटी २ बातें) अनिवार्य होनी चाहियें और घरवालों और पाठकों को अपने तर्ज़ अमल और उपदेश द्वारा अदब, क़ायदे जिन्हें अंगरेज़ी में मैनर्ज़ कहते हैं, अवश्य सिखाने चाहियें जिनके बिना मनुष्य जन्मभर दुःख और अपमान सहता है।

भारतवर्ष में आजकल साथ ही साथ १३ वर्ष की अवस्था पीछे ऐसी कोई शिल्प-शिक्षा सिखाने की ओर देश के शुभचिन्तकों को ध्यान देना आवश्यक है जिससे बड़े होकर पेट भरने की चिन्ता में न पड़ें और नौकरी न मिलने पर कुछ धंधा कर सकें। भारतवर्ष में अनेक देशी संस्थाएँ खुली हैं और खुल रही हैं और कई ऐसी भी हैं जो रेज़ीडेंशियल हैं। उनमें बड़ी भारी त्रुटि यह है कि उनके विद्यार्थियों को सिवा पाठ घोट लेने और बनाबनाया भोजन करने के अभ्यासी हो जाने के कारण साँसारिक व्यवहारों का ज्ञान बहुत ही न्यून या न होने के बराबर है। इस कारण उनके संचालकों को इस ओर ध्यान देना चाहिये (सुना है कि लोकमान्य गाँधी जी ने एक ऐसी संस्था खोली है जिसमें इन सब बातों का ध्यान रक्खा है। परमेश्वर ऐसी संस्था की उन्नति करें।)

अब देखना यह है कि इस २०वीं शताब्दी में हमारे देश की शिक्षा-पद्धति की क्या दशा है?

अभी यहाँ हिनोज़ रोज़ अव्वल है। अभी तक यही निर्णय हो रहा है कि लड़कियों को पढ़ाना ठीक है या नहीं? धर्मोपदेशक जीव के "अणु और विभु" के सूक्ष्म विवाद को अलाप रहे हैं। ग्रामीण और कुपढ़ मनुष्यों को ऐसे २ गूढ़ और सूक्ष्म विषयों पर व्याख्यान देने की अपेक्षा यदि सम्पत्ति-शास्त्र-सम्बन्धी और आरोग्य-शास्त्र-सम्बन्धी कुछ २ बातें सुनाई जावें या ऐतिहासिक कथाएँ सुनाई जावें तो अधिक उपकार हो किन्तु हमारे मस्तिष्कों में अजब फक्कड़ी समाई है कि वर्तमान समय में अन्य देशवासियों की उन्नति देखते हुए भी हम तुक ध्यान नहीं देते और नीचे लिखे प्रकार के सूक्ष्म विषयों पर शिर तोड़ मग़ज़पच्ची करते हैं और ऐसे २ वादविवाद करते हैं कि जिससे साम्प्रदायिक द्वेष बढ़ता जाता है। यथा :—

(१) वेद पौरुषेय हैं या अपौरुषेय? (२) मुक्ति से पुनरावृत्ति होती है वा नहीं? (३) जीव ब्रह्म एक हैं या भिन्न २? (४) शूद्रों को पढ़ने का अधिकार है या नहीं? (५) विदेशगमन करना चाहिये या नहीं? (६) विद्यार्थियों को बोर्डिंग में रक्खें तो पंक्तिभोज से धर्म भ्रष्ट होगा या नहीं? (७) वर्णव्यवस्था किस प्रकार है—जन्म से या गुण, कर्म से वा गुण, कर्म, स्वभाव से (८) ईश्वर साकार है या निराकार (९) वृक्षों में जीव है या नहीं (१०) सूर्य्य में सृष्टि है वा नहीं? इत्यादि।

जब हमारी जाति में विद्या का इतना कम प्रचार हो कि कठिनाई से ७ प्रति सैकड़ा पढ़े लिखे निकलें और ऐसे २ सूक्ष्म विषयों पर जैसा कि ऊपर लिखा—विचार किया जाय तो कितना घोर आश्चर्य है और हमारी पुकार की "उन्नति शिक्षा-विधि के सुधार पर है" कौन सुनेगा।

हे परमेश्वर! आनन्दकन्द! देशवासियों को सद्बुद्धि दीजिये कि वह अपने देशसुधार में लगें, शिक्षापद्धति को ठीक करें और आपके आनन्द के अनन्त भाण्डार में से यह भी कुछ ग्रहण कर सकें।

भारत-सिक्का-इतिहास ।

[लेखक—श्रीयुत भगवन्नारायण भार्गव बी० ए० ।]

(१) उत्तरी भारत के प्राचीन सिक्कों का वर्णन ।

वर्तमान इतिहासकारों का कथन है कि भारत की प्राचीन दशा का ज्ञान होना इतिहासाभाव के कारण असम्भव नहीं तो बहुत ही कठिन है। अतीतकाल का अधिक हाल प्राचीननिर्मित गृहों, प्राचीन सिक्कों और उस समय के ताम्रपत्र, शिला, स्तम्भ आदिकों पर खचित लेखों से ज्ञात होता है ।

आजकल अनेकों वैज्ञानिकजन सिक्कों के विज्ञान की छानबीन में लगे हुये हैं और गत अस्सी वर्ष के लगभग में अतीत भारत के सिक्कों का बहुत कुछ पता चल गया है तथ पि भारत की सभ्यता के बहुत प्राचीन होने के कारण अभी वैज्ञानिकों के लिए उसके सिक्का-विज्ञान का क्षेत्र बहुत लम्बा चौड़ा पड़ा हुआ है जिसमें वे अभी अगणित वर्षों तक काम कर सकते हैं ।

प्रसिद्ध इतिहासकारों की मति अनुसार सिक्कों का प्रयोग यहां पर ईसा के जन्म से सात शताब्दियों के पूर्व ही होने लगा था क्योंकि उस समय में भारत विदेशों से व्यापार करने लगा था, उस अवस्था में उसको किसी न किसी प्रकार के सिक्कों की आवश्यकता अवश्य पड़ता होगी ।

मिस्टर जेम्स कैनेडी (Mr. James Kennedy) का कथन है कि यहां के लोग सिक्कों का बनाना व्यापारियों और सर्राफों का काम समझते थे न कि राजकर्मचारियों का। यह बात ठीक भी है क्योंकि उस समय में सिक्कों की टकसालें राज्य की ओर से नहीं थीं। सब सिक्के किसी धातु के बने हुये चौखुंटे और चारो कोनों में कुछ २ कटे हुये होते थे। कभी २ इनकी उलटी ओर कोई चिह्न नहीं होता परंतु अधिकतर उस ओर एक अथवा दो छोटे २ चिह्न गढ़े होते थे । सीधी ओर अनेकों चिह्न विविध वर्मा के ठप्पों से लगे हुये होते थे। इसी कारण से सिक्का के वैज्ञानिक इनको वर्मा-अङ्कित (Punch-marked) कहने लगे हैं। इस प्रकार के सिक्कों को मनु ने 'पुराण' कहा है और दक्षिणी लेखकों ने इनको 'शलाका' का नाम दिया है ।

जिस धातु के बने हुये ये सिक्के होते थे उसमें चाँदी के साथ और भी कुछ मिलाया जाता था। यहां पर चांदी कम हुआ करती थी अतएव इन सिक्कों का प्रादुर्भाव तभी हुआ होगा जब चाँदी विदेशों से आने लगी होगी। मिस्टर केनेडी का कथन कि ये वर्मा-अङ्कित सिक्के बेबीलोनिया (Babylonia) से नकल किये गये थे जबकि ईसा से सात शताब्दियों पहिले देशान्तरों से व्यापार होने लगा था सम्भवप्राय ही प्रतीत होता है ।

जो बहुत ही प्राचीन सिक्के हैं वे ताँबे के वर्मा अङ्कित शकल के हैं जोकि कभी २ काशी समीपस्थ प्राचीन स्थानों में पाये जाते हैं। काशी-प्रान्त के निकट बैराट नामक प्राचीनस्थल में कार्लायल (Carlleyle) को ऐसे बीस ताँबे के टुकड़े मिले थे और उस समय चाँदी के केवल चार ही पाये ।

इन वर्मा-अङ्कित सिक्कों पर के चिह्न एक से नहीं हैं किसी में मनुष्य, किसी में पशु, किसी में वृक्ष और किसी २ में सूर्य का आकार पाया जाता है ।

उन चांदी के बढ़िया सिक्कों की तौल ५५ ग्रेन के लगभग अर्थात् बीस रत्ती (Abrus

Precatorius) होती है। वह 'रत्ती' बीज १.८० ग्रेन का होता है। पूर्वकाल में यहां पर सिक्कों की तौल का सम्बन्ध इसी बीज से रहता था।

इन सिक्कों के साथ ही साथ उत्तरी भारत में ताँबा और कसकुट के ढले हुये सिक्के भी चलते थे। कुछ उनमें से पाये गये हैं जिनका समय ईसा से तीन सौ वर्ष पाया जाता है। कभी २ तो धातु पूरी तौर से ढलने भी नहीं पाती थी कि उसमें कोई गोल २ ठप्पा लगा दिया जाता था। इस प्रकार के सिक्के जो कि अधिकतर ईसा से दो सौ वर्ष पूर्व बनाये जाते थे 'Hot-stamped' 'अग्नि-अङ्कित' कहे जाते हैं। पंजाब में तक्षशिला (Tanila) में प्राप्त सिक्कों से हमको मालूम हो सकता है कि 'अग्नि-अङ्कित' और 'एक ठप्पायुत' 'Single-die' सिक्कों से बदल कर 'उभय ओर अङ्कित' 'Double-die' सिक्के कैसे हो गये। अन्तिम ठप्पादार (सिक्का की दोनों ओर) सिक्का यवनों (Greeks) और रूमियों (Romans) की नकल कर बनाया गया था।

अलक्षेन्द्र (Alaxanders) ने जब पंजाब और सिन्ध में होकर विजय-दुन्दुभी बजाई थी उस समय यवनों का प्रभाव सिक्कों पर नहीं पड़ा। यद्यपि लवणगिरि (Salt Range) के एक सरदार सौभूति (Sophytes) ने यूनान के ढंग के कुछ चांदी के सिक्के चलाये थे तथापि समष्टिरूप से एतद्देशीय सिक्का के प्रचार पर यवनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

बेकट्रिया के सिक्के (Bactrian Coins)

ईसा से ढाई सौ वर्ष पूर्व, बेकट्रिया का स्वतन्त्र राज्य सिरिया (Syria) के सेलीयूसिड साम्राज्य (Seleucid Empire) से पृथक हो गया था। उसके बहुत काल बाद जब यूक्रेटाइडीज़ (Eucratides) और मीनेन्डर (Menander) नाम के बेकट्रिया के नृपों ने भारत पर अनेकों आक्रमण किये तब इन लोगों के भी सिक्के यहां चल गये।

इन्होंने विशेषकर चांदी और तांबा के सिक्के चलाये। यवन सिद्धान्त पर अपनी कला का वैचित्र्य दिखलाते हुये ईसा से १५० वर्ष तक इनका प्रचार रहा। सीमा के समीप के राजाओं ने चौखुंटे सिक्कों का प्रचार कर रक्खा था। उनमें भी जो चिह्न अङ्कित होते थे वे परिचित पदार्थों के ही चित्र होते थे।

पंजाब को छोड़कर और समस्त देश में व्यापारादि उन्हीं प्राचीन स्वदेशीय सिक्कों से ही होता रहा। यही कारण है कि अशोक तथा अन्य मौर्यवंशीय राजाओं के नाम के सिक्के नहीं पाये जाते।

ईसा से सौ वर्ष पूर्व अग्निमित्र तथा अन्य राजाओं के नाम के सिक्का पाये जाते हैं। ६० ईसवी से २२० ईसवी तक अन्ध्रभृत्यवंश के नृपों के नाम से अङ्कित सिक्के भी मिलते हैं। परन्तु सिक्काकारी की पुरानी रीतिपरम्परा अनेकों स्थानों में प्रचलित रही। अंगरेज़ों की विजय तक भी मध्यभारत (Central India) में वही रीति पाई गई थी। आज भी बिहार और गोरखपुर के निवासी नैपाल के घरू टकसालों के पैसों को सरकारी पैसों की अपेक्षा अधिक पसन्द करते हैं।

कुशन सिक्का (Kushan Coins)

कुशनवंश के सरदारों ने पहिली शताब्दी के अन्तिम भाग में अफ़ग़ानिस्तान और पंजाब पर विजय पाई। इसी समय रूमी साम्राज्य से भारत का सम्बन्ध हुआ। कैडफैसीज़ प्रथम (Kadphises I) ने काबुलदरी को और कुशन साम्राज्य के सीमावर्ती प्रदेशों को ले लिया और उसने तांबे के सिक्के चलाये जिनकी सीधी ओर एक राजा का सिर था जो कि आगस्टस के शिर से मिलता जुलता था और उलटी ओर रूमी कुरसी पर स्थित एक राजा का चित्र

रहता था। इसका राज्य ८५ ईसवी में समाप्त हुआ।

इसके बाद इसका पुत्र कैडफाइसीज़ द्वितीय ने ८५-१२५ ईसवी तक राज्य किया। इसने रूमी ढंग के सिक्के चलाये और सुवर्ण के सिक्के भी रूमी औरी (Aurei) के समान तोल के प्रचलित किये।

प्लाइनी (Pliny) का कथन है कि ७७ ईसवी में रूमी सुवर्ण बहुत अधिक मात्रा में पूर्व की ओर जाता था। इस बात का समर्थन इससे होता है कि उत्तरी व दक्षिणी भारत में ढेर के ढेर रूमी सिक्के (सुवर्ण के) मिलते हैं। कुशन के सिक्के यद्यपि तोल में रूमी औरी (Aurei) के तुल्य थे तथापि रूमी सिक्कों के आदर्श की वह 'नक़ल' नहीं थी। कैडफ़ाइसीज़ द्वितीय अपने सिक्कों की उलटी ओर नान्दी सहित भगवान् शिवजी का चित्र अङ्कित करवाता था। सीधी ओर यवनभाषा और उसी लिपि में लिखा होता था और उलटी ओर प्राकृतभाषा और खड़ोष्ठी लिपि में। इस राजा ने अपने सुवर्ण सिक्कों के समान तांबे के सिक्के भी बहुत प्रचलित किये थे। ये अब भी काशी की ओर कहीं कहीं पाये जाते हैं।

यह समय जब कि कुशनवंश के सिक्के कुछ देशी कुछ यूरोपियन ढंग के होने लगे थे सिक्कावैज्ञानिकों के लिए एक प्रसिद्ध और स्मरणीय समय है। इसी समय से उत्तरी भारत में उत्तम और अङ्कित सिक्का होने लगे, उनपर राजा का नाम उसका चित्र अथवा दोनों पाये गये और सब सिक्कों का प्रचार राजकीय संख्या द्वारा होने लगा।

इसके पश्चात् कनिष्क राजसिंहासन पर आया। इसकी औरी (Aurei) कैडफाइसीज़ द्वितीय के औरी से तोल और आकार में ही समानता रखती थी परन्तु इसकी उलटी ओर देवदेवियों की सभा सूर्यचन्द्र से लेकर बुद्ध और शाक्यमुनि तक दिखलाई जाती थी। सीधी ओर कैडफाइसीज़ द्वितीय के सिक्कों का ही चिह्न था अर्थात् यज्ञवेदी पर हवन करता हुआ नृप बनाया जाता था। उपर्युक्त देवदेवियों में कभी पारसी लोगों के देवताओं के चित्र रहते थे, कदाचित् इसका कारण यही है कि कनिष्क पहिले अग्निपूजक था फिर बौद्धधर्मावलम्बी होकर उस धर्म की उन्नति की। इसके सिक्कों की उभय ओर यवनलिपि के अक्षर रहते थे परन्तु 'राजराजेश्वर' (King of Keips) कभी यवनभाषा में और कभी पुरानी फ़ारसी में अङ्कित होता था। इसके ताँबा और कसकुट के सिक्के सुवर्ण समान थे।

इसके बाद हुविश्क राजा हुआ। तोल में और शुद्धता में इसके सिक्के कनिष्क के सिक्कों से मिलते हैं। परन्तु आकृति में भेद है। सुवर्ण के सिक्कों पर राजा का आधा ही चित्र रहता है और कसकुट के सिक्कों पर राजा कभी गजारूढ़, कभी पैर पर पैर रक्खे और कभी सिंहासन के किनारे पर एक पैर लटकाये और दूसरा ऊपर रक्खे बैठा हुआ दिखलाया जाता है। उलटी ओर वही देवदेवियों की सभायें दिखाई देती हैं। जो कुछ उनपर लिखा हुआ होता था यवनलिपि में होता था।

अब १८५ ईसवी में वासुदेव राजा हुआ। इसके समय में औरी (Aurei) की तोल तो वही रही परन्तु सुवर्ण का मिलान कम हो गया। इसने भी सीधी ओर हवन करता हुआ राजा और उलटी ओर सनान्दी भगवान् महादेव जी के चित्र अङ्कित करवाये। इसके सिक्कों में भी यवन भाषा के अक्षर रहते थे। इसका राज्य २२५ ईसवी तक रहा।

एक शताब्दी पश्चात् एक दूसरे वंश का जन्म हुआ। उसके आदिक का नाम चन्द्रगुप्त था। इनका बहुत कुछ हाल सिक्कों से ही ज्ञात होता है। इस गुप्त वंश के सुवर्ण के सिक्के कुशन वंश के सिक्कों से मिलते जुलते हैं

और सिक्कों के दोनों ओर कलावैचित्र्यमय चित्र है।

सन् ३५० व ४५० ईसवी के बीच में गुप्तवंशीय राज्य में संस्कृत का प्रचार अधिक हुआ। उन दिनों में संस्कृत ही में सिक्कों पर लिखा जाता था परन्तु उसका प्रचार बहुत दिनों नहीं रहा क्योंकि पांचवीं शताब्दी में ऐसे सिक्के कम होने लगे। ४८० ईसवी के लगभग हूंल जाति की विजय होने पर समस्त मानसिक तथा काल्पनिक उन्नति पर पानी फिर गया।

पहिले के गुप्तवंशीय सुवर्ण सिक्कों के अङ्कित चिह्न स्थिर कर दिये गये अर्थात् सदैव उनकी सीधी ओर खड़ा हुआ राजा और उलटी ओर कमलासनस्थ देवी के चित्र होते थे। ये दो चित्र उत्तरी भारत में कै शताब्दियों तक प्रचलित रहीं। खड़े हुए राजा के चित्र तो काश्मीर के प्रान्तीय सिक्कों में १३३६ ईसवी तक पाये जाते हैं। उलटी ओर स्थित देवी के चित्र बीच के हिन्दूवंशीय राज्यों में प्रचलित रहे और कन्नौज में बनाये हुये मुहम्मद बिनसाम के सिक्कों में भी सन् ११९४ तक पाये जाते हैं।

गुप्तवंशीय तांबे के सिक्के वर्णनीय नहीं हैं। उनके चांदी के सिक्के सुराष्ट्र (काठियावार) के विदेशी शक के सिक्कों की नक़ल हैं।

सैट्रप सिक्के (Satrap Coins)

सैट्रप (Satrap) सिक्कों की तोल ३० से ३६ ग्रेन तक की है। इनकी परम्परा हिरकोडीज़ और एपोलोडोटस फाइलोपेटर (Hyrcodes and Apollodotus Philopator) से चली आ रही है।

सिक्कों पर यवनलिपि का उल्लेख सन् ४०० ईसवी से लुप्त हो गया। परन्तु ड्रैकमा (Drachma) का नाम तथा ग्रीक के तोलने के बांट ग्यारहवीं अथवा बारहवीं शताब्दी तक प्रचलित रहे।

गुप्तवंश का ह्रास।

गुप्तवंश के नष्ट होने के पश्चात् अगणित एतद्देशीय राजाओं के अनेकों सिक्के हुये परन्तु उनकी दशा अच्छी नहीं रही। यद्यपि हर्षवर्धन (Harshvardhan) ने सन् ६०६ ईसवी में बहुत प्रयत्न किया तो भी सिक्कों पर कोई अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। इनके सिक्के जो कि गुप्तवंश के चांदी के सिक्कों के समान है मिस्टर बर्न (Mr. Burn) ने उनको पाया है।

सातवीं, आठवीं और नवीं शताब्दियों में प्रचलित सिक्के फ़ारिस के सेसेनियन सिक्कों (Sassanian coins of Persia) की नक़ल थे इनमें पूजकों सहित अग्निवेदी का चित्र होता था। यह चित्र इतना बड़ा होता था कि साधारण लोग पहिचान नहीं सकते थे। नवीं शताब्दी के अन्त में अनेकों हिन्दूवंश हुए जिनके कुछ नाम ये हैं—महोबा के चन्देल, देहली के तोमार, कन्नौज के राठौर और चेदी के हैहय (Hai-Hayas)। इन लोगों के सिक्के ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ में चेदी के गाङ्गेयदेव ने बनाये थे। सीधी ओर तीन पंक्तियों में राजा का नाम व पदवी रहती थी और उलटी ओर गुप्त जाति की बैठी हुई देवी। इस प्रकार के सिक्कों का अन्तिम निदर्शन एक चन्देली सिक्का है जोकि सन् १२५० ईसवी के लगभग प्रकाशित हुआ था।

ओहिन्द (Ohind) का ब्राह्मणराजाओं के टकसालस्वामियों ने एक नूतन प्रकार का सिक्का चलाया। उसकी सीधी ओर एक घुड़सवार रहता था और उलटी ओर साँड़ वृषभ। देहली और अजमेर के चौहान नृपों ने और देहली के सुलतानों से बलबन तक के मुसलमानों ने इसीकी नक़ल की। काँगड़ा के हिमालय के समीपस्थ रियासतों के महीपों ने भी ऐसे ही सिक्के चलाये। यहां पर इस प्रकार का सिक्का सत्तरहवीं शताब्दी तक रहा।

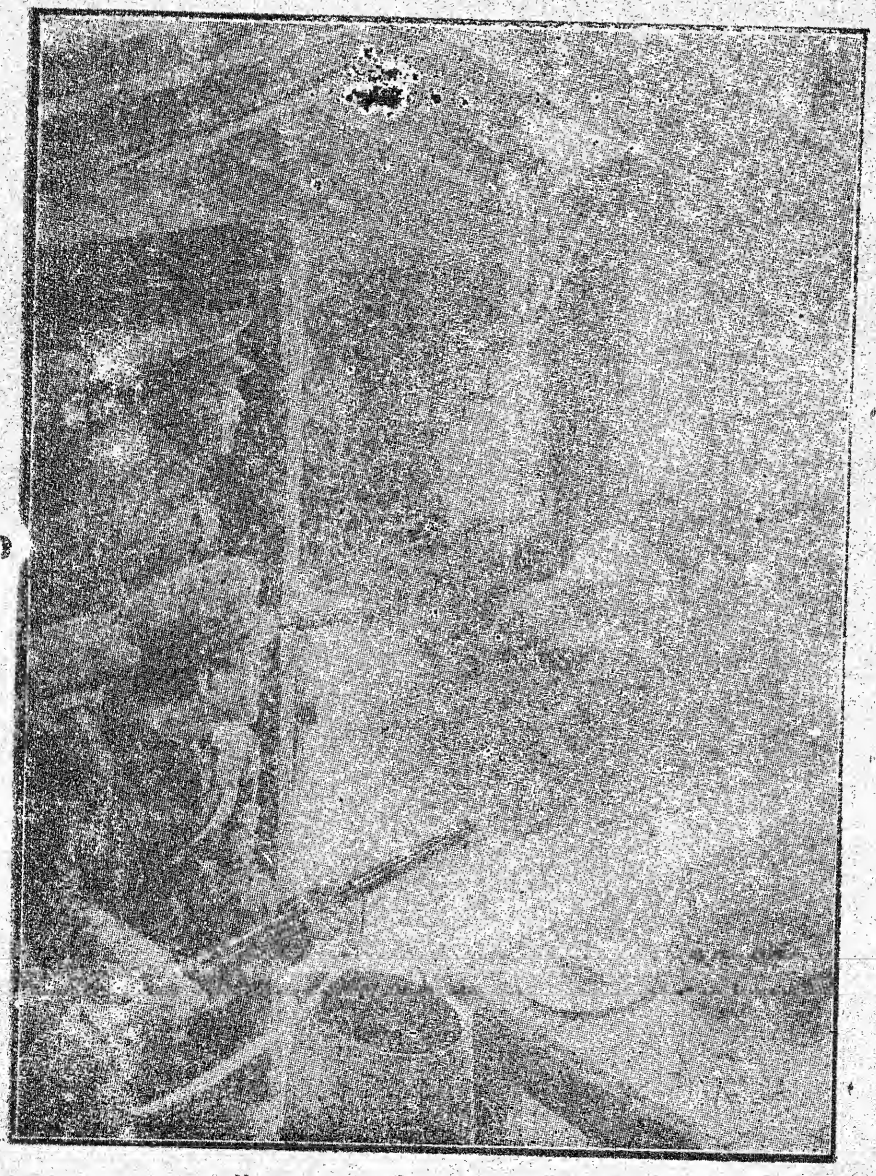

घात में लगा हुआ चोर गोली का शिकार हुआ ।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग ।

युग परिवर्तन। *

[लेखक—श्रीयुत माधव शुक्ल।]

घोरों के शंखध्वनि से ही
युग में अंतर आनपड़े।
मिथ्या स्वप्न देखनेवाले
हुये युद्ध में आन खड़े॥
कालग्रस्तजनों के तन में
फिर से रक्त हुआ संचार।
छोड़ शिथिलता समरस्थल के
हेतु होगये चट तैयार॥
गहन शिलाखण्डों के नीचे
दबे हुये थे जिनके हाथ॥
देखो छुड़ा रहे उसको वे
हैं मिलकर झटके के साथ।
श्याम प्रशान्त महासागर जल
श्वेत सिंधु संलग्न हुआ॥
श्वेत श्याम का भेद विसूचक
भाव भ्रान्तिमय भग्न हुआ।
यह विचित्रता है आकाश में
अधिक श्यामता छाई है॥
अहह! श्यामता ही की जग में
चहूं ओर अधिकाई है॥
कालों की मिट गई कालिमा
सित के शोभागार हुये।
तन को मिटादिया तिल बन कर
विधुमुखी चिबुक आकार हुये॥
संध्या की लावण्य छटा का
छोटा निकल गया सोना।
कसा गया जिस समय कसौटी
के ऊपर उसका कोना॥
एक सिंधु है एक नीर है
एक वेग की धारा है।
एक सभ्यता ही जहाज़ है
सबका एक सहारा है॥

शिवाजी के उद्देश।

[लेखक—तरुण भारत।]

इस महापुरुष की योग्यता जानने के लिए उसके उद्देश भी जानना अत्यावश्यक है वस्तुतः उद्देश तो इस महापुरुष के कृत्यों से जानना चाहिये। परन्तु कृत्यों का अर्थ करते समय मनोविकार दूर करना अत्यावश्यक है। कई ग्रंथकार विकारवशात्, कोई तो शिवाजी को आकाश पर चढ़ाने की इच्छा से, तो कोई शिवाजी को नीचा दिखाने की इच्छा से, कुछ का कुछ बतलाते हैं। इस लिए यथामति शिवाजी के उद्देश विकारहीन होकर जानने की चेष्टा करना ही ठीक होगा।

शिवाजी ने कार्य किस परिस्थिति में शुरू किया? मराठाशाही रही न थी, मराठों का राज्य अस्त हो चुका था। मराठे केवल छोटे मोटे सरदार बन गये थे, हिन्दू धर्म मृतप्राय हो गया था, भयहीन होने के कारण मुसलमान राजा मनमाना अत्याचार करने लग गये थे, सारांश, महाराष्ट्र में हिन्दू जाति और धर्म की श्रेष्ठता को नीचा तो देखना पड़ा था ही पर

* पं० माधव शुक्ल रचित "महाभारत नाटक" से उद्धृत।

उनके लोप हो जाने की जब आशंका हुई तब शिवाजी ने अपनी कमर कसी। यह ख्याल रखना चाहिये कि दक्षिण के मुसलमानी राज्य और उत्तर की बादशाही में बहुत भेद था। अकबर के समय से मोगल बादशाहत बढ़ती चली आरही थी और दक्षिण के मुसलमानी राजा उसे किसी प्रकार अपना नहीं सकते थे, यानी दक्षिण में केवल बीजापूर, गोलकुंडा इत्यादि राजाओं की प्रतिष्ठा थी, और उन्हीं की कृतियां महाराष्ट्र के सम्मुख थीं। दक्षिण से और मोगलशाही से बहुत कम संबन्ध था। ऐसी दशा में अगर कुछ विचार पैदा हो तो केवल दक्षिण के विषय ही हो सकते हैं। तमाम हिन्दुस्तान के विषय में शिवाजी के मस्तिष्क में विचार उत्पन्न होना असंभव ही था। सारांश, जब शिवाजी स्वराज्य, स्वतंत्रता और स्वधर्म के उद्धार के हेतु सन्नद्ध हुए तब वे तमाम हिन्दुस्तान के विषय में न सोचते रहे होंगे, केवल महाराष्ट्र का ही वे विचार कर सकते थे, यानी केवल महाराष्ट्र में ही स्वराज्य स्थापित करना चाहते थे।

२–यह तो परिस्थिति से निश्चित होता है। क्या उनकी कृति से भी कुछ मालूम होता है? विरुद्धपक्षियों से हमारा प्रश्न है कि अगर उनका उद्देश्य तमाम हिन्दुस्तान जीतने का था तो उन्होंने समय समय पर बीजापूर और गोलकुंडा के राज्यों को बचाने का क्यों प्रयत्न किया? अगर वे भी मोगलों से मिलकर इन्हें नेस्तनाबूद करने का प्रयत्न करते तो महाराष्ट्र राज्य की सीमा थोड़े ही काल में महाराष्ट्र के बाहर पहुंच जाती? अगर मुसलमानी राज्यों को नाम शेष ही करने का उनका विचार होता तो उन्हें मोगलों से बचने का क्या कारण था? सुभीता पाकर वे उन्हें बिलकुल निगल जाते। अगर उन्हें मुसलमानों के नाम से ही द्वेष होता तो उन्होंने अपने राज्य में, अपनी नौकरी में मुसलमान रक्खे ही क्यों। अगर मुसलमानी धर्म से उन्हें घृणा थी तो कुरानशरीफ हाथ में आजाने पर उसका आदर कर किसी मुसलमान के हाथ में क्यों देते? इन प्रश्नों के उत्तरों पर शिवाजी के उद्देश्य का प्रश्न भी निर्भर है। शिवाजी का विचार न तो सब मुसलमानी राज्यों को नष्ट करने का था, न मुसलमानी धर्म दूर करने का था। हिन्दू धर्म का ह्रास हो चुका था और स्वराज्य न होने से अत्याचार होता था, इस कारण इनका उद्धार करना आवश्यक था, जब रेलगाड़ियां नहीं थीं, जब तार और डाक की व्यवस्था नहीं थी, जब केवल एक प्रान्त की बात दूसरे प्रान्त में जानने के लिए महीनों बीत जाते थे, जब समस्त भारत का नकशा सामने न था, तब यह कहना कि शिवाजी का मन समस्त भारत में चक्रवर्ती राज्य करने का था हमें तो केवल धृष्टता ही जान पड़ती है। जिन्हें इतिहास का अर्थ समझ न पड़ता हो वे भले ही कुछ का कुछ कहते रहें। प्राचीन और अर्वाचीन, पाश्चात्य और पौर्वात्य इतिहास के पढ़ने से हमें यही जान पड़ता है कि शिवाजी की दृष्टि में केवल महाराष्ट्र भरा था, समस्त भारत नहीं।

३–परन्तु क्या उस समय के विचारों से भी कुछ जाना जा सकता है? अगर हम उस समय का साहित्य उठाकर देखें तो हर आदमी केवल महाराष्ट्र का ही विचार करता सा जान पड़ता है, समस्त भारत की कल्पना किसी के सिर में नहीं दिखाई देती। इतना ही नहीं वरन् स्वामी रामदास ने भी यही उपदेश शिवाजी को दिया था कि "मराठा तितुका मेलवावा। महाराष्ट्र धर्म वाढवावा।" इन शब्दों में क्या महाराष्ट्र परिमित कल्पना स्पष्टतया दर्शित नहीं होती? मराठे उस समय समस्त भारत में नहीं रहते थे। महाराष्ट्र धर्म की कल्पना केवल महाराष्ट्र में ही थी। इसपर भी एक दो इतिहासकार इन शब्दों को भूल जाते हैं और शिवाजी की कल्पना सार्वभौम राज्य करने

की दिखाने का प्रयत्न करते हैं। इन्हीं में से श्रीयुत गोविन्द सखाराम सर देसाई बी० ए० भी हैं।* खेद के साथ कहना पड़ता है कि इन ग्रन्थकार ने शिवाजी को सब कुछ बनाने के प्रयत्न में एक बड़ी भारी गलती की है और इतिहास के तत्वों का अज्ञान स्पष्टतया प्रकट किया है। न जानें क्यों इन्हें इसी बात में बड़प्पन जान पड़ा और मनमाने आधारहीन सबूत ढूंढ़ निकाले हैं। उनमें से कुछ संक्षिप्तया हम यहां देते हैं। आप लिखते हैं:—

(१) "बसई में बाजीराव ने मराठों की स्वतंत्रता की माला एक दम निकालकर अंगरेज़ों के गले में डाल दी, इसपर भी मराठे लड़ते ही रहे। तो क्या इसमें सातत्य, एक प्रकार के दूरदर्शित्व, और कर्तव्यता की निश्चित दिशा नहीं जान पड़ती?"

(२) "छत्रपति नामक विशिष्टार्थसूचक किताब अपने नाम को जोड़ने का कौन कारण था? तंजावर जीतने का कोई सबब होना ही चाहिये?"

(३) "चौथाई और सर देशमुखी वसूल करने में उसका कुछ विशिष्ट हेतु जान पड़ता है।"

(४) "समुद्र किनारा अपने हाथ में रखने में भी विशिष्टता जान पड़ती है।"

पाठक ही जान लेंगे कि इन वाक्यों में कुछ भी सार नहीं है। मासो को लड़ाई जीतने का क्लाइव का निश्चय था इसलिए क्या यह भी कहना सत्य होगा कि रंगून से कराची तक और काश्मीर से कन्याकुमारी तक राज्य करने का उसका विचार था? अथवा क्या यह कहना सत्य होगा कि सिक्ख, मराठे और मुसलमानों से अंगरेज़ लड़े इसलिए ३१ दिसम्बर १६०० ईसवी को जो कंपनी लंडन में बनी वह राज्य जीतने के ही विचार से वहां आई? अथवा क्या यह कहना ठीक होगा कि आजकल अमेरिका में आंग्लसंतति राज्य कर रही है तो उनके पूर्वज, जो मेफ्लावर में चढ़कर वहां आये थे वे इसी विचार से आये थे? यदृच्छया जो होना गया उससे विचार की कल्पना करना केवल अपने ऐतिहासिक ज्ञान की संकीर्णता दिखलाना है। यह किसे मालूम नहीं कि पुराने ज़माने में जो भारी राजा बन बैठा वह छत्रपति कहलाने ही लगता था? हां, इसका हेतु इतना अवश्य जान पड़ता है कि महाराष्ट्र में और कोई राजा न रहने पावे, जो रहे सो इनसे दब कर रहे। चौथाई और सर देशमुखी वसूल करने में एक तो यह हेतु था कि स्वराज्य का मामला चलता रखने के लिए द्रव्य मिलता रहे। दूसरे अगर उस राज्य के जाने का मौका ही आन पड़े तो दूसरों के हाथ न जाने पावे। यह तो हमेशा राजनीति का तत्व ही है। अगर तुम अपना घर नहीं बचा सकते और तुम हमारे पास रहते हो तो तुम्हारा घर हमें लेना ही चाहिये, नहीं तो हमारा ही घर चला जायगा। इसमें कोई विशिष्ट हेतु ढूंढना व्यर्थ है। समुद्र किनारा एक तो महाराष्ट्र की पश्चिम ओर चरम सीमा थी, दूसरे उधर से डर भी था। यानी ऐसा स्थान शिवाजी को अपने हाथ में रखना ही पड़ा। वह आत्म-रक्षा के हेतु ही करना पड़ा। जिसे अंगरेज़ी राज्य के विस्तार का इतिहास ज्ञात है, जिसे रोम की सत्ता की वृद्धि का इतिहास मालूम है, जिसे प्रशिया का इतिहास अवगत है, वह यह भी जान लेगा कि जब पड़ोसी कमज़ोर हो जाता है तो केवल सरक्षा की दृष्टि से—बिना लोभ के भी—आस पास के राज्यों पर अपना अधिकार बनाये रहने की इच्छा करना पड़ता है। बस, यही बात महाराष्ट्र राज्य की वृद्धि में भी पाई जाती है। उसका दर्थ कर मनमानी

* हिन्दुस्तान का इतिहास, भाग दूसरा, पूर्वार्ध पृष्ठ २५७-२६७ देखो।

बातें रखते बैठना इतिहासकर्ता के लिए ठीक नहीं। जो पुरुष जिस प्रकार हो, वह उसी प्रकार दिखाया जावे। बढ़ाना या नीचे गिराना इतिहासकर्ता का कर्तव्य नहीं है। यह द्वेषी या खुशामदी का ही काम है। आखिर हम न्यायमूर्ति रानाडे के विचारों ही से सहमत हैं, श्री० सरदेसाई के विचारों से नहीं।

शिवाजी की अन्य महापुरुषों से तुलना

१–किसी बात को जानना हो तो हम बहुधा दृष्टान्त द्वारा अच्छी तरह समझ सकते हैं। किसी पुरुष की योग्यता जाननी हो तो परिचित पुरुषों के उदाहरणों से अच्छी तरह जान सकते हैं। यह हम आप सब रोज किया करते हैं। इसी न्याय से शिवाजी की योग्यता जानना अनुचित न होगा। परन्तु एक दो बातें हम यहां बतला कर सावधान कर देना उचित समझते हैं। कोई भी दो पुरुष संसार में कभी एक समान नहीं होते। प्रत्येक मनुष्य की कृति और स्वभाव भिन्न है और यह बात सार्वदेशिक और सार्वकालिक है। जब हम कभी दो पुरुषों की तुलना करते हैं तो बहुधा किसी विशिष्ट बात का ख्याल करके ही उन्हें तौलते हैं सब बातों में उन्हें समान नहीं समझ लेते। उस विशिष्ट बात का विचार कर कौन अधिक है कौन कम है इस बात का निश्चय करते हैं। एक पुरुष की सब बातें लेकर दूसरे किसी पुरुष की सब बातों से तुलना करने लगें तो हम कभी सफल न होंगे, न कुछ निर्णय ही कर सकेंगे। दूसरे, प्रत्येक पुरुष की परिस्थिति का भी ख्याल रखना उचित है। परिस्थिति को भूलकर अगर हम न्याय करने बैठें तो हमारा निर्णय कठोर सा जान पड़ेगा किंवा कभी अन्याय भी हो जायगा। इन दो बातों का ध्यान रख कर ही तुलना के कार्य में लगना ठीक होगा।

२–साधारणतः पाश्चात्य ग्रन्थकारों ने शिवाजी की तुलना हैदरअली, यशवंतराव होलकर इत्यादि लोगों से की है। अथवा बहुधा इन पुरुषों का वर्णन करते समय शिवाजी का ही दृष्टांत दिया है। परन्तु, जैसा हम कह चुके हैं, विकारहीन और सहृदय पुरुष ही शिवाजी की सच्ची योग्यता जान सकते हैं। ये सब लुटेरे थे और शिवाजी भी लुटेरा था। परन्तु शिवाजी के लुटेरेपन का विचार हम कर चुके हैं। अगर शिवाजी के कार्य को लूट भी कहें तो यह ख्याल रखना ही चाहिये कि इस लूट से स्वतंत्रता, स्वराज्य और स्वधर्म का उद्धार हुआ है। हैदर अली ने दूसरों का स्वातंत्र्य नष्ट कर केवल फौज के जोर से उन्हें अपने को 'त्राहि भगवन्' कहने के लिए बाध्य किया। शिवाजी से प्रजा सुख पाती थी; हैदर अली की दृष्टि स्वार्थ से अंधी हो गई थी। लोगों का सुख और निष्ठा एक के राज्य के आधारस्तंभ थे, पर दूसरे के राज्य का बल तलवार का ज़ोर था। एक ने मुसलमानों के धर्म का कभी अनादर न किया तो दूसरे ने हिन्दू धर्म को पैर के तले कुचलने में अपनी शक्ति व्यर्थ खोई।

३–कई लोगों ने शिवाजी की तुलना ग्रीस के बादशाह सिकंदर से की है, परन्तु वह भी सर्वथैव ठीक नहीं मालूम होती। दोनों के समय, कर्त्तव्य और फलप्राप्ति में महदन्तर है। जगत को जीतने की अथवा दिगन्त में कीर्ति फैलाने की कभी शिवाजी की इच्छा नहीं थी। स्वराष्ट्र की स्वतंत्रता प्राप्त कर लेना ही उनका इतिकर्तव्य था। सिकन्दर तो सब दुनिया ही जीतना चाहता था। केवल विजय के सिवा उसने कुछ भी नहीं किया। जित प्रदेश की राज्यव्यवस्था का उसने कुछ भी ख्याल न किया। परन्तु शिवाजी की बात भिन्न थी। शिवाजी कोई ऐसा देश जीतने के फेर में नहीं पड़े जिसकी राज्यव्यवस्था करना कठिन हो। सिकन्दर कितना भी भारी जगज्जेता क्यों न कहलावे, वह शिवाजी के बराबर नहीं हो सकता। और एक बात ख्याल रखने लायक

है। सिकन्दर के पिता के पास पहले ही बड़ा भारी राज्य था। पर शिवाजी के पास क्या था? केवल छोटी सी जागीर। पुनश्च ख्याल रखना चाहिये कि शहरों के ऊपर कब्ज़ा करने के बाद वहां के लोगों को कतल करना, अमूल्य ग्रंथसंग्रह से अग्नि का तर्पण करना, शरणागत कैदियों को यमसदन को पहुंचाना, और सुरा देवी की भक्ति करते करते उन्मत्त हो जाना इत्यादि बातों से शिवाजी सैकड़ों कोस दूर थे। इन बातों में तो सिकन्दर सिकन्दर ही था।

४–यूरोप के इतिहास में नैपोलियन बोनापार्ट एक महा व्यक्ति हो गया है। कुछ बातों में ये दो महापुरुष बिलकुल विरुद्ध थे, पर कुछ बातों में उनकी समता भी हो सकती है। बुद्धि और चतुरता, दूसरों पर अपना रोब जमाने की विलक्षण कुशलता, स्वराष्ट्र को ऊर्जित करने की इच्छा इत्यादि महापुरुषों के गुण दोनों में थे, पर देशकालानुसार दोनों की कृतियां अत्यंत भिन्न थीं। अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में यूरोप में राष्ट्र राष्ट्र के बीच स्पर्धा उत्पन्न हो गई थी, इन लोगों की शिक्षा ही अन्य प्रकार की थी, इस कारण वहां बुद्धिमान पुरुष को अपना नाम दिगंत करने का जितना अवकाश था, उतना हिन्दुस्तान में नहीं था। बड़प्पन मिलाकर अखंड कीर्ति मिलने का नैपोलियन को अवकाश मिला। यह महापुरुष फ्रान्स का विद्वान, लेखक और अच्छा वकील था। शिवाजी को कुछ भी शिक्षा न मिली थी। प्राकृतिक बुद्धिमत्ता और अनुभव दोनों में समान थे, परन्तु शिक्षा से एक के गुणों का विकास हुआ, दूसरे को वह अवसर ही प्राप्त नहीं हुआ। फिर फ्रांस के समान संपन्न देश में कला, विद्या इत्यादि सार्वजनिक लोकोपयोगी कार्यों में सुधार कर स्वदेश को ऊर्जित करने का मौका मिला, परन्तु हिन्दुस्तान को शिवाजी के समय अत्यंत भिन्न स्थिति थी। इसके सिवा आस्ट्रिया, रशिया, प्रशिया, इंगलैंड इत्यादि रणशूर राष्ट्रों से लड़ने का मौका जो नैपोलियन को मिला वह शिवाजी को मिलना असंभव था। इस कारण इन बातों में इस फ्रेंच महापुरुष से महाराष्ट्रीय वीर हीन जान पड़ता है परन्तु और अनेक बातों का ख्याल रखना चाहिये। कुछ भी हो, नैपोलियन के कारण यूरोप में जो प्राणहानि हुई, वह हिन्दुस्तान में कभी नहीं हुई और शिवाजी के हाथ से प्राणहानि नाममात्र को ही हुई होगी। परन्तु सब से भारी बात है कि नैपोलियन अत्यंत महत्वाकांक्षी था, शिवाजी ऐसे विकारों से कितने दूर थे यह हम दिखलाही चुके हैं। गीता का कर्मयोग शिवाजी के रोम रोम में भरा था। नई फौज तैयार करना, किले बनाकर देश का बंदोबस्त करना, और सब देश में सरल राज्यव्यवस्था स्थापित कर उसे समृद्ध करना इत्यादि बातों में ये दोनों समान थे। परन्तु नैपोलियन के कार्य को नींव फ्रांस के समान संपन्न देश पर थी। शिवाजी की नींव कुछ भी नहीं। सब देश पराधीन था, उसे स्वतंत्र करने का भार उनपर आपड़ा था और नैपोलियन ने एक संपन्न देश को महत् पदपर चढ़ाने का प्रयत्न किया। फिर नपोलियन ने कौन भारी तारीफ की? अत्यंत महत्वाकांक्षा और बुद्धि से नैपोलियन ने केवल सारे संसार की शत्रुता संपादित की। परन्तु शिवाजी ने वह नींव डाली थी जिसके भरोसे मराठों ने औरंगजेब के समान प्रचंड बादशाह को हराया।

५–सच तो यह है कि शिवाजी की जिससे तुलना हो ऐसा पुरुष अप्राप्य है। कुछ बातों में बाबर से तुलना हो सकती है। बाबर का पैतृक राज्य दूसरों के हाथ में चला गया था। शिवाजी के समान ही उसका भी आयुष्य आपत्तिमय रहा और केवल साहस, बुद्धि और कट्टर स्वभाव के कारण उसने हिन्दुस्तान की बादशाहत की। शिवाजी के समान ही वह भी माता के वचन को पूज्य मानता था। बाबर

शूर तो था ही पर राज्यव्यवस्था भी उसकी बुरी न थी। शिवाजी के समान वह भी अल्पायुषी रहा। तथापि बाबर ने भी पर देश को जीता। शिवाजी बाबर के समान शूर और कट्टर, अकबर के समान सब पर समदृष्टि से राज्यव्यवस्था करने में कुशल और शाहजहां के समान मितव्ययी रहकर प्रजा सुख को बढ़ाने में निमग्न थे। बाबर और अकबर के समान ही इस महापुरुष ने अनेक संकट देखे थे इस कारण गरीब लोगों की दशा अच्छी तरह जानते थे। तथापि वे जहांगीर और शाहजहां के समान ऐश आराम में लिपटे न थे। औरंगजेब के समान बड़ी भारी उद्योगशीलता शिवाजी में थी, पर इसके कपट और विश्वासघात से कोसों दूर थे।

६–कुछ बातों में उनकी आल्फ्रेड दी ग्रेट से तुलना हो सकती है। इंगलैंड को स्वतंत्रता प्राप्त कर देने का कार्य (९वीं शताब्दी के अंत में) इस महापुरुष ने किया। सारे इंगलैंड को डेन लोगों ने दबाय कर डाला था, उनसे इसने देश बचाया और 'महापुरुष' कहलाने का पात्र हुआ। इस दृष्टि से शिवाजी की योग्यता इससे बहुत अधिक है।

७–सोलहवीं सदी में स्पेन की सत्ता बहुत बढ़ गई थी। हालैंड, इटली इत्यादि देश स्पेन के आधीन थे। उसी समय ईसाई धर्म में सुधार करने का झगड़ा उत्पन्न हुआ था और यूरोप में नया मत बहुत प्रचलित होने लग गया था। ऐसे समय में स्पेन ने हालैंड पर घोर जुल्म किया, और डच प्रजा अत्यंत क्षुब्ध हो गई। स्पेन के राजा फिलिप के दो हेतु थे–एक तो डच लोगों को प्रोटेस्टंट न बनने देना और दूसरे उस देश पर अपना राज्य कायम रखना। बुद्धि, दरिद्रता, स्वराष्ट्राभिमान इत्यादि गुणों में डच और महाराष्ट्रीय समसमान जान पड़ते हैं। जैसी परिस्थिति में शिवाजी जन्मे उसी स्थिति में हालैंड का त्राता ओरेंज का सरदार विलियम पैदा हुआ। दोनों महापुरुषों को जो युद्ध करने पड़े उनमें भी बहुत समता है। ऐतिहासिक दृष्टि से उस देश का इतिहास भी बड़ा मनोरंजक और बोधप्रद है। शिवाजी से लग भग एक सदी पहले यह बात हालैंड में हुई। पर स्पेन के लोग धर्म सम्बन्ध में जितने क्रूर थे उतने क्रूर मुसलमान न थे। परन्तु बाकी इतिहास राजाराम और ताराबाई तक का समसमान है। गुणों में दोनों पुरुषों की बहुत समता है। दोनों बड़े दूरदर्शी, दीर्घप्रयत्न, निज के विषय में निरीच्छ और केवल स्वदेश-कार्यार्थ शक्ति खर्च करनेवाले थे। दोनों ने ही स्वदेश को स्वतंत्रता प्राप्त करा दी। दोनों देशों में स्वतंत्रता के भी परिणाम समान ही हुए। मराठों का प्रभाव बढ़ता बढ़ता बहुत अधिक हो गया, उसी प्रकार डच लोग यूरोप में प्रमुख हुए। दोनों का उद्गम बहुत क्षुद्र था।

८–अब कोई कहेंगे कि हम कुछ का कुछ ही कह रहे हैं। परन्तु हम ऊपर जो बतला चुके हैं, उन तत्वों का ख्याल रक्खें तो हमारी तुलना ठीक जान पड़ेगी। केवल परिणाम से पुरुष की योग्यता निश्चित करना युक्त नहीं। इस न्याय से वारेनहेस्टिंग्ज और डेलहौसी बड़े भारी लोग भी समझे जायँगे। परन्तु सदाचार के नियमों का स्मरण रखना उचित है। इसी कारण आल्फ्रेड, नेल्सन, सिकन्दर, सीज़र, बोनापार्ट इत्यादि रणवीरों से अधिक योग्य हैं। आल्फ्रेड ने दुनियाँ का दिग्विजय नहीं किया तथापि वह महापुरुषों में गणय है। इसी प्रकार मर्यादित क्षेत्र में कार्य कर किसी का स्वतंत्रता को न कुचलने और प्राणहानि का पाप न करते हुए शिवाजी ने अपना कार्य किया, इसी कारण शिवाजी महापुरुष हैं। स्वराष्ट्र और स्वधर्म के परे शिवाजी ने प्रयत्न नहीं किया इसी कारण शिवाजी को सीज़र के समान

† इन दो राष्ट्रों की विस्तर तुलना हमने अपने पहले लेख में की है।

कतल हो जाने का मौका न आया बोनापार्ट के समान शत्रुओं की कैद में सड़ते रहने का अवसर न आया अथवा सिकंदर के समान लोगों के शाप सहने का कारण न प्राप्त हुआ।

८—अगर किसी अंगरेज़ से पूछो कि तुम नेल्सन का इतना अधिक आदर क्यों करते हो तो वह कहेगा "तुम भी अंगरेज़ बन जाओ तो जान जाओगे।" यही न्याय शिवाजी के लिए इससे भी अधिक उपयुक्त है। चारों ओर राज्यक्रान्ति है, अत्याचार हो रहे हैं, धर्म रसातल को जा रहा है, राष्ट्र नष्ट भ्रष्ट हो रहा है। ऐसे समय जो दाता मिले उसके गुण-वाद गाने में हमारी जीभ नहीं थक सकती। सारांश में हम यही कहते हैं कि शिवाजी के समकालीन बन जाइये, तब आप इस महा-पुरुष को अच्छी तरह से पहिचान सकेंगे।

चित्र-परिचय।

[लेखक—श्रीयुत किशोरीलाल गोस्वामी।]

शैवलिनी और प्रताप।

(१)

शैवलिनी थी, एक विपतनया, सुकुमारी।
कर बैठी थी प्रेम, बिना जाने, दुखारी॥
था स्वजाति का एक युवा, सुन्दर गुणआगर।
शैवलिनी के मन में वह, गड़ गया उजागर॥

(२)

बढ़ा प्रेम, धीरे धीरे, चुपचाप परस्पर।
मिल जाते थे दोनों, जब मिलता था अवसर॥
बालेपन का प्रेम, बढ़ा मन ही मन ऐसे।
शुक्ल पक्ष का चन्द्र, दिनोदिन बढ़ता जैसे॥

(३)

भई चाहना करने की विवाह, जब पूरी।
शैवलिनी ने कह डाली, तब बात अधूरी॥
सुनकर उसकी बात, कहा प्रताप ने "प्यारी,
यह अनहोनी बात, भला क्या सोच, बिचारी"॥

(४)

इस पर शैवलिनी, झुंझला, अनखाकर बोली।
"ऐसी बातों से लगती है, प्यारे, गोली॥
किन्तु, जाति के झगड़े ने, वह विवाह तोड़ा।
पर, शैवलिनी ने, उससे न कभी मुंह मोड़ा॥

(५)

नदी किनारे मिले एक दिन, दोनों प्यारे।
लगे तैरने संग, तीर पर वसन उतारे॥
कहने लगी बात ही बातों, शैवलिनी यों।
"यहीं, हमारा और तुम्हारा, व्याह, न हो, क्यों?"

(६)

सुनकर और सोचकर मन में, यों प्रताप ने।
कहा "हठीली! घेर लिया है, तुझे पाप ने॥
माता की इच्छा के बिना, व्याह का करना।
बहुत बुरा है; इससे तो अच्छा है मरना"॥

(७)

शैवलिनी झुंझलाकर बोली, "चुप हो जाओ,
मन बरजारी लेकर मन में डूब शरमाओ॥
मुझे धर्म का भय, नाहक तुम क्यों दिखलाओ।
प्रेम मार्ग में नेम नहीं है, सुन, सुख पाओ"॥

(८)

तब प्रताप ने कहा, "तुम्हारा हठ पूरा है।
कलँगी नहीं, लगाया तुमने कंगूरा है॥
खैर, यही इच्छा है, तो, बस हाथ बढ़ाओ।
करो व्याह जल में, खुद डूबो, मुझे डुबाओ॥

(९)

जाति-पांति के झगड़े को तुम नहीं मानतीं।
होगा क्या परिणाम, इसे भी नहीं जानतीं॥
किन्तु नतीजा बुरा; सुनो, ऐसे विवाह का।
कड़ुआ ही फल मिलता है, अनमेल-चाह का॥

(१०)

बोलो, अब क्या इच्छा है, लो, हाथ मिलाओ।
यहीं व्याह हो जाय, प्रेम से गले लगाओ॥

हिल-मिल-कर जलकेलि करो, रस दो, सुख पाओ
अब क्यों झिझकीं? मरो! मारकर मुझे, अघाओ"

(११)

यों कहकर, चट उसने जल में डुब्बी मारी।
पर, शैवलिनी ने मरने की हिम्मत हारी॥
"मेरा कौन प्रताप, मरूँ मैं नाहक क्यों थों"।
यही सोचकर मुड़ी, लगी आ, तट पर ज्यों त्यों॥

(१२)

घर भागी, औ भई दूसरे की घरवाली।
किन्तु, हुई वह कभी नहीं सुखिनी, मतवाली॥
मिला, चन्द्रशेखरसा पति, पण्डित औ ज्ञानी।
धर्मभीरु, धनवान, विवेकी, सुन्दर मानी॥

(१३)

किन्तु उसे शैवलिनी ने वैरी सा जाना।
प्रेम गया भरसाइ में, तिनके सा माना॥
रही सुलगती सदा आग, मन में प्रताप की।
मन ही मन वह सांट लगाती गई पाप की॥

(१४)

सुनो इधर अब जो कुछ थी बीती, प्रताप पर।
दम घुटने से बहा, धार में, वह अकुलाकर॥
उसी जगह थी, नाव चन्द्रशेखर की जाती।
डगमग-डगमग चाल, पाल पर थी अठलाती॥

(१५)

देख चन्द्रशेखर ने, उसे निकाला झटपट।
कर सुन्दर उपचार अनेक, जिलाया चटपट॥
फिर तो उसकी करी भली, सब भांति भलाई॥
तन से, मनसे, धन से, पूरी करी सिताई॥

(१६)

फिर सुन्दर नारी से उसका व्याह कराया।
सभी भांति से उन्नति-सीमा पर पहुंचाया॥
यह उपकार चन्द्रशेखर का उसने माना।
जीते दम तक उन्हें पिता के समान जाना॥

(१७)

पीछे फिर जब यह प्रताप ने सुना कान से।
"हुई चन्द्रशेखर की वह घरनी गुमान से"॥
तब उसकी सब बात भुलाई, हटकर, जी से।
लिया न उसका नाम, भूलकर कभी, किसी से॥

(१८)

गये मुर्शिदाबाद, चन्द्रशेखर जब घर से।
सूने घर को देख, विपत के बादल बरसे॥
शैवलिनी पड़ गई हाथ फास्टर के ऐसी।
कालरात्रि, थी, गई, मेह रावण के जैसी॥

(१९)

रामचरण जो था प्रताप का नौकर प्यारा।
उसने शैवलिनी को, डांका डाल उबारा॥
रही रात को उस दिन, शैवलिनी जिस घर में।
फिर प्रताप को वही देख, उबली छिन भर में॥

(२०)

किन्तु उसी अवसर में, मचा बखेड़ा भारी।
पहुंचा, गुण्डे लिये, गलष्टन् अत्याचारी॥
किया कैद, बेड़ी पहना, उसने प्रताप को।
मानो मौत बुलाई, बरबस, न्योत, आपको॥

(२१)

अपने कारण देख दशा, प्रताप की आँखों।
शैवलिनी ने मनसूबे बाँधे, तब लाखों॥
दैवयोग से दलनी औ कुलसम के मिससे।
शैवलिनी पहुंचा नवाब ढिग, भरकर रिससे॥

(२२)

कहा हाल उसने मनमाना नवाब से यों।
अब प्रताप के छुड़ा मँगाने में अबेर क्यों?
यह सुन औ हंस, कहा मीर कासिम ने जाओ।
मदद हमारी लेकर, उसको तुम्हीं छुड़ाओ॥

(२३)

यह सुन औ उठकर शैवलिनी बोली हँस कर।
मदद आपकी लिये, छुड़ातो हूं अब जाकर॥
भला करै भगवान आपका, आप अमर हों।
ऐसे ही, जग में जो पैदा हों, वे नर हों॥

(२४)

योंहीं बहुत दिनों तक विपद-समोई सी वह।
पहुंची फिर प्रताप के आगे दुःसह दुख सह॥

रही घूमती, दैवयोग से, फिर प्रताप से।
पगली का सा भेस बनाए, मिली आप से॥

(२५)

खोल हथकड़ी बेड़ी, अपनी बिथा सुनाई।
और कहा हँस, "तुम्हें कैद से मिली रिहाई॥
अब मैं जल में कूद पड़ूंगी, दौड़, झपटकर।
तुम भी झटपट कूद पड़ो, मुझको ले जाने धर॥

(२६)

इस मिस से, छूटैगा पिंड तुम्हारा प्यारे!
नहीं; तुम्हारी जान, न छोड़ेंगे ये सारे॥
यों कहकर, चट कूद पड़ी जल में शैवलिनी।
मानो, गई चढ़ाई, गङ्गा में नगनलिनी॥

(२७)

लगे शोर सब करने, उसे पकड़ने दौड़े।
चट प्रताप भी कूद, लगाकर डुब्बी दौड़े॥
हाथ-पैर को मार, कलाबाजी कर जल में।
जा पकड़ा शैवलिनी को, प्रताप ने पल में॥

(२८)

फिर तो दोनों संग, लगे तैराकी बहने।
सुनने लगे प्रताप, लगी शैवलिनी कहने॥
कही कथा सब अपनी, जो कुछ बीती ऊपर।
और कहा, अभिमान-सहित, "मैं वारी तुम पर॥

(२९)

क्या इतने पर भी न मुझे अपनाओगे तुम।
मुझसी प्यारी को क्या, उर न लगाओगे तुम॥
अब भी, क्या, मनमें, न जरा शरमाओगे तुम।
फिर भी क्या, पत्थर से हो, तरसाओगे तुम॥

(३०)

दिया, सभी संसार छोड़, कर आस तुम्हारी।
तुम प्यारे हो, सदा, तुम्हारी हूं मैं प्यारी॥
काम मुझे क्या इस दुनियां से, सच्ची जानो।
जान तुम्हीं पर है कुर्बान, इसे सच मानो॥

(३१)

सुनो, तुम्हारे लिये, सभी तजकर मैं आई।
छोड़ सभी जंजाल, तुम्हारी आस लगाई॥
बोलो, क्या पड़ गये सोच में, मेरे प्यारे।
जो कुछ हो, जी में, कह डालो बिना विचारे"॥

(३२)

सुनकर उसकी पाप-वासना-भरी कहानी।
चट प्रताप ने नैन तरेरे, भौंहें तानी॥
कहा कोप से, "हा हा री! कुलटा हत्यारी।
मर तू क्यों न गई, जो ऐसी बात विचारी॥

(३३)

सुन शैवलिनी, परनारी माता-समान है।
फिर भी, जिसकी तू नारी, वह अति महान है॥
अनगिनतिन उपकार मेरे ऊपर हैं उसके।
पिता-समान हमारा वह, हम बालक उसके॥

(३४)

इस नाते से हुई, अरी जननी तू मेरी।
प्रेम नहीं, यह ज़हर उगलती रसना तेरी॥
जाना, पूर्व जन्म की तू वैरिन दुःखारी।
इसीलिये, है गई, तेरी सारी मति मारी॥

(३५)

तूभी ब्याही गई, गया हूं मैं भी ब्याहा।
मैंने उसको चाहा, उसने मुझको चाहा॥
सीख, प्यार करना अपने पति को शैवलिनी!
इसके बिना, न सुख पावेगी जग में छलिनी!

(३६)

जो कुछ हुआ, भूलजा उसको, अब तो शरमा।
खोटी बात बिसार, भले मारग में अब आ॥
जानबूझकर, स्वर्ग छोड़, रौरव में मत जा।
छोड़ सुधा को, आंख मूंदकर यों विष मत खा॥

(३७)

उसे भूल जा, जो कुछ खेला बालेपन में।
आगा-पीछा सोच, हुई स्यानी अब, मन में॥
जिसे सुधा तू समझ रही है, वही हलाहल।
अमृत छोड़कर, विष चखने आई तू चंचल!

(३८)

हुई यहां तक, अरे! अधोगति तेरी डाइन!
कुलटा बनने चली, कहा जग में ठकुराइन!

छोड़ अकारथ इस 'पन' को, पति के घर जा तू।
अपने स्वामी को कर प्यार, सती कहला तू॥

(३९)

और जरा सुन, मुझे याद है, बालेपन में।
जब इस ध्रुव का हठ पकड़ा था, तूने मन में॥
यों हीं उस दिन संग तैरते थे हम दोनों।
मन की कहते-सुनते थे, हँस-हँस हम दोनों॥

(४०)

तभी ब्याह की चरचा, तूने छेड़ चलाई।
पर जब कही डूबने की, तब पीठ दिखाई॥
फिर हो गई दूसरे की, घर जा, घरवाली।
किन्तु अभी तक बनी रही, वह हवस निराली॥

(४१)

अच्छा, तेरे लिये, जान मैं फिर दे दूंगा।
जैसे उस दिन डूबा था, वैसे डूबूंगा॥
परनारी होकर, अब तू परपुरुष ताकती।
अपने पति को छोड़, इधर औ उधर झाँकती॥

(४२)

खुद डूबेगी, मुझे डुबाएगी पातक में।
अरे, मेघ को देख, कहां धीरज चातक में॥
देख दीप को, कब पतंग मन मारे रहता।
भूखा, देख परोसी थाली, कब थिर रहता॥

(४३)

इसीलिये इस जीने से मरना अच्छा है।
इस पातक में गिरने से, तिरना अच्छा है॥
अब मत कर हैरान, यहीं पर तेरे कारण।
अभी डूब मरता हूं, बस, मत कर तू वारण"॥

(४४)

यह सुन, रोकर, और पकड़कर बहती लकड़ी।
शैवलिनी ने कातरता से विनती पकड़ी॥
कहने लगी, "सुनो मेरी, मत जान गँवाओ।
वही करूंगी, जो कुछ मुझे कहो, समझाओ॥

(४५)

जली-कटी सब सुनी तुम्हारी, मन को मारे।
बतलाओ तो, मन में है क्या ठनी तुम्हारे॥
लगती-बातें सभी तुम्हारी, लगतीं प्यारी।
सब सुनने को, हूं तयार, मैं वारी वारी"॥

(४६)

सुन, प्रताप ने कहा, "मुझे छूकर बतलाओ।
मेरा कहना करो, कसम तुम मेरी खाओ॥
तब मैं अपनी जान बचाऊंगा, मरने से।
जल्दी कहो, चलेगा काम न यों डरने से"॥

(४७)

तब छूकर शैवलिनी बोली, "क़सम तुम्हारी।
कहा तुम्हारा सभी करूंगी, मैं बलिहारी"॥
तब प्रताप ने कहा, "हुई अब तुम परनारी।
फिर 'कुलटापन' की, क्यों मन में बात विचारी?

(४८)

कौन सुनेगा, पाप भरी यह बात तुम्हारी!
सोने की, क्या कोई मारता हिये कटारी!
इसीलिये, कहता हूं, कुछ तो सोचो मन में।
दोनों लोक बिगड़ जाते हैं, कुलटापन में॥

(४९)

अब तुम मुझे बन्धु औ मित्र समान निहारो।
दूर करो यह पागलपन, मन तनिक सुधारो॥
पाप-वासना खोद बहाओ, घर को जाओ।
मुझे भूलकर, फिर अपना मुंह मत दिखलाओ॥

(५०)

मरा मुझे समझो, या अपने ही को जानो।
जान बचाना चाहो, तो, कहना यह मानो॥
पति की प्यारी बनो, प्यार करना अब सीखो।
जिससे सतीमण्डली में, सुन्दर तुम दीखो॥

(५१)

करो समर्पण प्रान उसी को, जिसकी हो तुम।
पुण्यवती बनकर, कर डालो, पातक को गुम॥
जो कहना मेरा मानोगी, सुख पाओगी।
सती कहाओगी, फिर, परमधाम जाओगी"॥

(५२)

यह सुन बज्र समान वचन शैवलिनी कांपी।
फिर उसने अपने मन की गहराई नापी॥

रोकर कहने लगी, खून अपने मन का कर।
"मैंने माना सभी, तुम्हारा कहा, बन्धुवर॥

(५३)

अपनी जान बचाओ, आओ, चलो तीर पर।
कांप रहा मेरा शरीर है, जल में थर थर॥
अब से मुझे, मरी तुम समझो, क्रोध भुलाओ।
मैं भी ऐसा ही समझूंगी, लो, अब आओ॥

(५४)

सच्चे मित्र तुम्हीं हो मेरे, मुझे उबारा।
हे प्रताप! तुम धन्य-धन्य हो दिया सहारा॥
देखे नैन पसार मुझे, अब से जग सारा।
और कहे-'शैवलिनी ने मन खूब सुधारा'॥

(५५)

हुआ प्रताप महाप्रसन्न, मन में औ बोला।
शैवलिनी! सचमुच तुमने बदला यह चोला॥
दया करे जगदीश, परम सुखिनी तुम होवो।
बीज, सुधा से फलदायक, घर जाकर बोवो॥

(५६)

ग्रहण करेंगे तुम्हें चन्द्रशेखर, प्रसन्न हो।
किन्तु न लेने दे यदि कुलगरिमावसन्न हो!
तो तुम करना स्मरण मुझे, मैं आऊंगा तब।
सभी बखेड़े मेट, विवाद [मिटाऊंगा सब"॥

(५७)

यों कह कर प्रताप ने तट की ओर निहारा।
अपने दम को साध, ईश का लिया सहारा॥
संग चली शैवलिनी भी, अतिशय हरखाती।
फूली अङ्गों, अपने मन में नहीं समाती॥

(५८)

हाथ-पांव दोनों ने मारा, बढ़े तीर को।
चले, चीरते नीर, लजाते ज्यों समीर को॥
यों प्रताप ने शैवलिनी को पार लगाया।
उसे बचाया, अपना भी कुल-धर्म बचाया॥

स्त्री-शिक्षा पर एक दृष्टि।

[लेखक—श्रीयुत लोताराम गुप्त बी० ए०।]

यों तो आजकल हम लोगों का ध्यान कुछ थोड़ा और बहुत अपनी उन्नति की ओर झुक ही गया है और प्रति ओर से ही अपनी २ उन्नति करने के हेतु यथाशक्ति जन-समुदाय जुटा हुआ है। यदि एक ओर छोटे २ विद्यार्थीजन रातदिन पुस्तकों के अध्ययन में सिर खपाकर विद्योपार्जन में रत हैं, तो दूसरी ओर कुछ बड़े २ सज्जन रातदिन के परिश्रम से धन और ऐश्वर्य बढ़ाने की चेष्टा में ही लग रहे हैं। यदि एक ओर इतिहास-सम्बन्धी पुरानी २ बातों की खोज हो रही है तो दूसरी ओर विज्ञान के नये २ आविष्कारों की भरमार देखने में आती है। परन्तु यह सब कुछ होने पर भी नित्यप्रति यही देखने में आता है कि जितनी उन्नति साधारणतया होनी चाहिये उतनी होती ही नहीं। ऐसा क्यों है? क्यों हम उतनी भी उन्नति नहीं कर सकते, अधिक करना तो दर किनार, तो क्या हम लोग आवश्यक परिश्रम नहीं करते, अथवा हम में उतना परिश्रम करने की शक्ति ही नहीं? नहीं, नहीं यह कदापि नहीं, हममें शक्ति भी है और हम बराबर आवश्यक—कभी २ तो आवश्यक से भी कहीं बहुत कुछ अधिक—परिश्रम भी करते हैं। तो फिर क्या कारण है?

इसके उत्तर में हमारे कुछ भाई कदाचित्

इसी वाक्य को कहेंगे कि 'यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः' अर्थात् हमारा काम तो यत्न करना है यदि यत्न करने पर भी पूर्ण सफलता अथवा उन्नति नहीं होती तो उसमें दोष किसका, भाग्य की बात है। परन्तु यदि विचार किया जावे तो यह भाग्य की बात कुछ ठीक अथवा विश्वसनीय प्रतीत नहीं होती, विशेष कर ऐसी दशा में, जब कि हम अपने अधूरे यत्न को ही पूर्ण यत्न समझ बैठते हैं। इस भांति किञ्चित् तर्क वितर्क के साथ सूक्ष्मदृष्टि से देखने पर प्रायः इसके दो कारण ज्ञात होते हैं:—

(१) या तो हम ऐसे उन्नति के कार्यों में, जितने होने चाहियें उतने, पूर्णतया दत्तचित्त ही नहीं होते और यदि हुये भी तो प्रायः पूरे साधनों से काम नहीं लेते, (२) या हम लोगों की स्वाभाविक रुचि कुछ मुख्य २ साधनों के प्रति प्रायः बहुत ही कम होती है और इस कारण हम उनको या तो बिल्कुल काम में ही नहीं लाते हैं या थोड़ा बहुत प्रयोग में लाने पर उनसे पूर्ण लाभ नहीं उठाते हैं। यहां पर सबको छोड़कर केवल एक स्त्रीशिक्षा को ही लेलीजिये। यह भी उन्नति के साधनों में से एक साधारणतया मुख्य ही नहीं, किन्तु सर्वोन्मुख साधन है।

वैसे तो स्त्रीशिक्षा के लाभों से जनसमुदाय न्यूनाधिकतया अभिज्ञ ही है और लोगों का ध्यान कुछ थोड़ा बहुत इस ओर झुका भी हुआ है। परन्तु उसका पूर्ण गौरव और हमारे नित्य प्रति के कार्यों तथा उन्नति के साधनों से प्रगाढ़ सम्बन्ध अभी अधिकांश में ज्ञात नहीं है, और यही कारण है कि हमलोग उसको ओर आवश्यक अथवा उचित ध्यान न देने से अपने बहुत से कार्यों में असफल रह जाते हैं। उदाहरण के लिए कहीं दूर नहीं जाना है अपने विद्यार्थियों की ही परीक्षोत्तीर्ण संख्या ले लीजिये। क्या कारण है कि हमारे विद्यार्थीजन अधिकांश में फेल होते रहते हैं। प्रायः सुनने में आता है कि यदि एक विद्यार्थी को गणित में रुचि नहीं, तो दूसरे को इतिहास कभी याद ही नहीं होता, बेचारा लाल पीली पेंसिलों से तो अपनी पुस्तक के पन्ने के पन्ने (सफ़े के सफ़े) रंग डालता है और उसको बार २ रटता है, परन्तु अन्त में वैसा का वैसा ही, याद कुछ भी नहीं। यदि उस विद्यार्थी से पूछा जावे कि भाई ऐसा क्यों है तो बहुधा यही उत्तर मिलता है कि अमुक विषय तो हमारी समझ में बिल्कुल बैठता ही नहीं, रेखागणित से हमें विशेषकर घृणा है और इतिहास में तो बस कुछ न पूछिये सहस्र प्रयत्न करने पर भी मन लगाये नहीं लगता इत्यादि। इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि कुछ स्वभावतः ही उसकी रुचि इन विषयों में नहीं है।

अब यदि हम इसपर विचार करें कि क्यों उसकी रुचि विशेषकर इन कतिपय विषयों में नहीं है और उसका कारण खोज निकालने का प्रयत्न करें तो प्रिय सज्जनो! यही जान पड़ता है कि यह विशेषकर हमारी माताओं, भगिनियों और स्त्रियों के अपढ़ रह जाने का ही फल है। आप कदाचित् कहें कि उस विद्यार्थी की रुचि और स्त्रीशिक्षा से क्या सम्बन्ध है, एक पढ़ी लिखी और सुशिक्षिता माता अपने लड़के को किसी पाठ या विषय को कुछ घोल कर नहीं पिला देगी। सम्भव है बाह्य दृष्टि से ये बातें आपको ठीक प्रतीत होवें और उसका वह प्रगाढ़ सम्बन्ध न जान पड़े, परन्तु वास्तव में स्त्रीशिक्षा का जो सम्बन्ध विद्यार्थी की पठन-पाठन-सम्बन्धी रुचि से है वह बहुत ही घनिष्ट तथा प्रभावोत्पादक है।

इस बात को तो सब ही मानते हैं कि माता पिता के स्वभाव, रुचि तथा विचारों का उनकी सन्तान पर बड़ा प्रभाव पड़ता है जिसमें भी माता का विशेषकर—वैद्यक के बड़े २ ग्रन्थों में भी लिखा है कि बच्चों के गर्भकाल में जैसे विचार माता के होते हैं वैसे ही उन बच्चों के

हुआ करते हैं और उनका स्वभाव तथा एक विशेष रुचि प्रायः माता के स्वभाव तथा रुचि पर निर्भर होती है तो क्या यह सम्भव है कि एक पढ़ी लिखी और सुशिक्षिता माता का बालक जिसको इतिहास में विशेष रुचि हो इतिहास में ही कुछ भी रुचि न रक्खे। नहीं, नहीं, इतिहास में तो उसकी रुचि अवश्य ही होगी।

प्रायः देखा जाता है कि जिन विद्यार्थियों तथा युवा पुरुषों को जो विषय अथवा कार्य रुचिकर होते हैं उनमें कुशलता प्राप्त करने के लिए उनको कठिनाइयां नहीं उठानी पड़तीं; उनके लिए तो वे विषय तथा कार्य कठिन होने पर भी साधारण हो जाते हैं यह एक प्राकृतिक सा नियम है। इस प्रकार हाथ में लिये हुये कार्यों को वे सरलता, शीघ्रता और उत्तमता से पूर्ण कर लेते हैं और उनमें भली भांति कृतकार्य तथा सफल होते हैं। अस्तु, जब माताएं पढ़ी लिखी तथा सुशिक्षिता होंगी तो वे अपनी निजी शिक्षा के द्वारा अपनी सन्तान पर न केवल उनकी गर्भावस्था में ही अनेक प्रकार का विद्या-सम्बन्धी असर डालेंगी किन्तु उनकी बाल्यावस्था में भी अच्छे २ ग्रन्थों से सुन्दर २ कहानियां सुनाकर तथा भांति २ के सदुपदेश देकर उनके भावी पठनपाठन कार्य को सरल तथा सुलभ बना देंगी, और साथ ही उनके सुन्दर चरित्र गठन का एक प्रथम तथा मुख्य कारण होंगी, जिससे कि वे अपने जीवन में सफलता प्राप्त करते हुये संसार के बड़े से बड़े कार्य करने के योग्य हो सकेंगे।

उदाहरणार्थ, परीक्षाओं में आजकल यह प्रश्न छोटे २ विद्यार्थियों से प्रायः प्रत्येक वर्ष पूछा जाता है कि पृथ्वी के गोल होने के क्या २ प्रमाण हैं और तदनुसार मास्टर लोग भी अपने शिष्यों से कहा करते हैं कि पृथ्वी के गोल होने के प्रमाणों को अवश्य याद कर लेना। बेचारे बच्चे अपनी २ पुस्तकों में उन प्रमाणों के नीचे भांति २ के रंगों के चिन्ह लगाते हैं और खूब ही रटते हैं परन्तु तिसपर भी कभी २ ठीक उत्तर नहीं दे सकते और इस कारण परीक्षा में इन्हीं बातों में फेल हो जाते हैं। अब विचारने की बात है कि यदि माताएं अथवा भगिनियें पढ़ी लिखी तथा विदुषी होवें तो क्या वे ऐसी २ बातें को बच्चों को बचपन में ही न बतला दिया करें। जहां वे भांति २ की डरावनी झूंठी सच्ची भूतप्रेतों की कहानियां कह कर बच्चों को डरना सिखाती हैं क्या वहां वे ऐसी भूगोलसम्बन्धी अथवा ऐतिहासिक सारयुक्त बातें अपने बच्चों को न बतलावेंगी? वे अवश्य बतलावेंगी और उन्हें भली भांति समझा भी देंगी। यह तो सब कोई जानता है कि जो बात बच्चों की समझ में बचपन में ही भली भांति आगई हो अथवा जिसको उन्होंने बचपन में अच्छे प्रकार सीख लिया हो उसको वे जन्मभर नहीं भूलते। अस्तु, पृथ्वी के गोल होने के प्रमाण यदि बच्चों को उनकी माताओं और भगिनियों द्वारा बचपन में ही भले प्रकार ज्ञात हो जावें तो उनको बाद में पढ़ते समय उनके समझने और याद करने में किञ्चिन्मात्र भी रुकावट नहीं होगी, और वे सुगमता से ऐसी बातों का पूर्ण उत्तर अपनी परीक्षाओं में देदेंगे।

इसके अतिरिक्त हमारे विद्यार्थियों के लिये इससे एक विशेष लाभ और भी है और वह भी बड़े महत्व का है अर्थात् जब उनको बहुत सी बातों को बचपन में ही सीख जाने के कारण बाद में उन्हें कण्ठगत करने में कोई रुकावट नहीं होती और न कुछ समय ही अधिक देना पड़ता है तो वे अपना बहुत सारा समय दूसरे विषयों के अध्ययन हेतु बचा लेते हैं और उनमें भी बहुत अच्छी कुशलता प्राप्त कर लेते हैं। इस भांति वे न केवल परीक्षारूपी जीवन यात्रा में असफलतारूपी महामारी से बीच में ही कवलित हो जाने से बच जाते हैं किन्तु साथ ही एक अच्छी श्रेणी के विद्वान भी हो जाते

हैं। ऐसे सैकड़ों उदाहरण हम नित्य प्रति देखते हैं और इतिहास भी इसका साक्षी है।

सारांश यह कि जो माताएँ पढ़ी लिखी, शिक्षिता अथवा विदुषी होती हैं वे अपने बच्चों को बचपन से ही भांति २ के सदुपदेश और कहानियों द्वारा ऐसे ढर्रे पर डाल देती हैं कि वे बच्चे बड़े होने पर अपने कार्यों को सफलता-पूर्वक करते हुये अपनी जीवनयात्रा में बड़े से बड़े काम कर उठते हैं और देश तथा संसार का भला करते हुये स्वयं पूर्ण यश प्राप्त करते हैं। अस्तु यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि स्त्री-शिक्षा से विद्यासम्बन्धी ज्ञान के अतिरिक्त केवल यही लाभ नहीं है कि हमारी माताएँ, भगिनियाँ और स्त्रियां हमारे गृहस्थ सुख की पूर्ण सहायिका तथा सम्वर्द्धिका होवें, किन्तु साथ ही उनका शिक्षित होना हमारी और हमारी जीवनोन्नति तथा जीवन-सफलता का एक मुख्य साधन तथा साँचा है।

मैं जासूस कैसे हो गया ?

[लेखक–श्रीयुत रुद्रदत्त भट्ट।]

बालसखा सिद्धदास की बातें सुनते २ मेरा हृदय भी लहरें मारने लगा। जासूस बनने की प्रबल इच्छा रह २ कर हृदय को डाँवाडोल करने लगी। मेरे मित्र एक नामी जासूस थे। बड़ी २ डकैतियों, चोरियों व खूनों का पता उन्होंने बातों ही बात में लगा दिया था। जब २ वे ऐसे समर में विजय प्राप्त कर आते थे तब २ मुझे अपने घर में खाने को निमन्त्रण देना नहीं भूलते थे। मैं भी सजधज कर मित्र की सुस्वादयुक्त बातों का रसपान करने की इच्छा से जल्दी २ कदम बढ़ाये उनके घर पहुंच जाता था। गृहिणी के बनाये हुये रसगुल्लों को उड़ाते हुये मित्र की बातें सुनने में एक अपूर्व आनन्द प्राप्त होता था। कभी २ मित्र की बातें सुनते २ हृदय काँप उठता था, रोंगटे खड़े हो जाया करते थे और साँस जोर २ से चलने लगती थी—उस समय जासूस होने की इच्छा मिट जाती थी। बिलकुल ही मिट जाती थी सो नहीं कह सकता क्योंकि जिस समय मित्र मुझसे अपनी विजय की बातें कहते, वक्षस्थल पर लटकते हुये सुवर्ण, रजत व ताम्रपदक दिखलाते; बड़े बड़े गोरे अफसरों से हाथ मिलाने की बातें कहते, उस समय छाती मारे खुशी के उछलने लगती, नेत्र फड़क उठते, कान खड़े हो जाते और फिर जासूस बनने की इच्छा जागृत होकर पूर्व रूप धारण कर लेती। फिर मैं जासूस बनने का स्वप्न देखने लगता। धीरे धीरे मुझे अपने व्यवसाय से घृणा उत्पन्न होने लगी और जासूसी से प्रेम बढ़ने लगा। एक दिन मैंने अपने मित्र से जासूस बनने के बारे में पूछ ही तो लिया। उन्होंने गम्भीर होकर जासूसी की अनेक व्यथा, दुःख, विपत्तें बतलाईं पर मैं क्यों मानने लगा था। मेरे शिर में तो जासूसी का भूत पूरे प्रकार सवार हो चुका था। अन्त में मुझे दृढ़प्रतिज्ञ देख उन्होंने मुझे कई एक जासूसी पुस्तकें (Detective novels) दीं और उनको ध्यान से पढ़ने का परामर्श दिया। फिर क्या था उन्हीं पुस्तकों को जासूसी की कुंजी (Key note) समझ मैं धोती लगा उनके पीछे पड़ गया। रात दिन उनका ध्यानपूर्वक अध्ययन करता। गृहिणी खाने को बुलाते २ थक जाती पर मेरा जासूसरूपी सुखस्वप्न न टूटता। बच्चे यदि ज़रा भी चिल्लाते तो

उनको खूब पीटता और फिर अपनी पुस्तकों पर जा चिपटता। इसी प्रकार एक २ करके मैंने सब पुस्तकें पढ़ डालीं। मेरा मस्तक इन्हीं जासूसी की अपूर्व व भयानक कहानियों से भर गया और मैं अपने को एक खासा जासूस समझने लगा। सड़क पर चलते २ यदि कोई वृक्ष के पत्ते खड़कते तो मुझे चोरों का अंदेशा हो उठता और मैं वहीं ठहरकर कोई सूत ढूँढ़ निकालने का प्रयत्न करने लगता। घूमने को नित्य ऐसे स्थानों पर जाता जहां से नगर के भद्र पुरुष एक बार भी नहीं गुज़रते। वहाँ के प्रत्येक पुरुष को मैं एक बड़ा भारी डांकू समझता और उनपर कड़ी देखभाल करता। फिर भी मेरा जासूसी स्वप्न सत्य न हुआ। मेरे वक्षस्थल पर न तो कोई पदक ही चमका न किसी गोराङ्ग ने मुझसे हाथ ही मिलाये। हताश हो फिर मैं अपने मित्र सिद्धदास की शरण में गया। उन्होंने मेरे पीठ पर थपकी देते हुए मुझे उत्साहित किया और शान्त होकर कुछ दिन ठहरने का परामर्श दिया। मैं प्रोत्साहित होकर प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिए अवसर की प्रतीक्षा करने लगा।

द्वितीय प्रकरण।

एक दिन मैं अपने कमरे में बैठा हुआ कुछ विचार सागर में निमग्न हो रहा था कि मैंने अपने पास की कुरसी में एक मोटे तोंदवाले मारवाड़ी को बैठे देखा। मैं चौंक उठा। समझा कि कदाचित स्वप्न देख रहा हूं। आंख मींज कर फिर देखा तो मारवाड़ी मेज की दराज खोल रहा था। अब मुझे मारवाड़ी के चोर होने में सन्देह न रहा। जासूसी हवा हो गई। शरीर मारे भय के कांपने लगा। मुंह से आवाज न आई। कितना प्रयत्न किया तब कहीं कठिनता से "चोर" शब्द मुंह से निकला। शब्द सुनकर मेरी स्त्री और बच्चे भी आ गये। स्त्री को आया देखकर मारवाड़ी धैर्य से उठा और जेब से एक कार्ड निकाल कर मेरे हाथ में दे दिया। मैंने जो कार्ड पर दृष्टि डाली तो उसमें मिस्टर सिद्धदास डिटैक्टिव का नाम छपा हुआ था। मारवाड़ी भी खिलखिला कर हँस रहा था। मारवाड़ी के रूप में अपने प्यारे मित्र सिद्धदास को पहिचान मेरी गरदन झुक गई, मारे शर्म के मैं नज़र न उठा सका। लड़के भी सिद्धी चचा को पहिचान उनसे प्रेम करने लगे। स्त्री भीतर चाय तय्यार कराने चली गई। मेरा हाथ पकड़ एक कुरसी पर बिठा वे कहने लगे "देखो भाई अभी तुम जासूसी के "क", "ख" भी न सीख सके। जासूसी में सबसे प्रथम बात धैर्य व साहस का रखना है। तुम एक कृत्रिम चोर को ही देख मूर्च्छित होने लग गये थे यदि एक सचमुच चोर आता तो न जाने तुम क्या करने लगते। दूसरे तुम इतने ग़ाफिल बैठे हुए थे कि तुम्हें मेरा आना व बैठना कुछ भी सुनाई न पड़ा। एक नये जासूस में यह त्रुटियां बहुत ही हानिदायक हैं।"

मैं गरदन झुकाये सब कुछ सुनता रहा। अन्त में साहस करके मैंने उपर्युक्त त्रुटियों के निवारणार्थ दृढ़ संकल्प कर लिया और अपने मित्र को भी अपने संकल्प से सूचित कर दिया।

इतने में चाय आगई, चाय पीकर मेरे मित्र जेब में से एक समाचार-पत्र का प्रथम पृष्ठ निकाल मुझे दिखलाने लगे। उसमें नगर के एक प्रसिद्ध सौदागर के खून का वृत्तान्त था। खून सौदागर के एक नौकर ने किया था, ऐसा पुलीस को सन्देह हुआ था पर खून के रात से आसामी गायब था। मेरे मित्र उस दिन प्रयाग को जानेवाले थे अतः यह काम उन्होंने मेरे ही हाथ सौंपने को ठाना था। पर मेरे प्रथम परीक्षा ही में फेल होने के कारण वे कुछ हताश से हो गये थे। आसामी का बहुत से सचित्र पत्रों में चित्र भी छप चुका था। चित्र को भलीभांति देखने से ऐसा प्रतीत होने लगा

कि मानो मैंने उस मनुष्य को अनेक बार देखा है। उस मनुष्य का एक मानसिक चित्र अपने हृदय पट पर अङ्कित करके मुझे विश्वास हो गया कि खूनी का पता मैं बहुत सरलता से लगा लूंगा। अतः मैंने उत्साहपूर्ण वाणी से अपने मित्र को धन्यवाद दिया और प्रण किया कि मैं बहुत शीघ्र खूनी का पता लगालूँगा और आसामी को पुलीस के हवाले कर दूंगा। मेरे उत्साह को देखकर मेरे मित्र विदा माँग उसी समय गाड़ी से प्रयाग को चल दिये।

मैं अब चिन्ता करने लगा कि किस प्रकार सूत पाऊंगा। मेरे मस्तिष्क में जो सैकड़ों जासूसी कहानियां भरी कोहराम मचा रही थीं उनको टटोल २ कर मैं देखने लगा कि ठीक ऐसी ही कोई घटना पूर्व भी कभी हुई है या नहीं। हां हुई थी। एक कहानी मुझे याद आई। खूनी फरार हुआ था और जासूस ने रेल पर उसका पता लगाया था। बस फिर क्या था तुरन्त एक चालाक जासूस के समान मैं उठा और मुंह में एक दाढ़ी लगा, फैल्ट टोपी पहिन, पतलून डांट बाहर निकल गया। क्या बना कह नहीं सकता पर जासूस लोग रूप बदलते हैं इस ही लिए मैंने भी रूप बदल लिया। अब मैं दर्पण में देखने लगा कि मनुष्य मुझे पहिंचान लेंगे या नहीं। मैंने कितनी अपनी दाढ़ी ऊपर नीचे की पर मैं अपने आप को फिर भी पहिंचानने लगा। जब मैं स्वयं ही अपने को पहिंचानने लगा तब भला अन्य मनुष्य मुझे क्यों न पहिचानें। बस यही चिन्ता मुझे खाने लगी। अन्त में मैं जैसे तैसे वस्त्र झाड़ एक छड़ी घुमाता इधर उधर आगे पीछे चारों ओर देखता उसी समय की गाड़ी से आगरे को चल दिया। राह में जितने मनुष्य मिलते उनकी सूरत अपने मानसिक चित्र से मिलाता जाता था। चलते २ कभी २ एक चालाक जासूस के समान मेरे पैर सरासर आगे बढ़ते और सुन्दर चमकदार पदक भी समय २ पर याद हो आते और मुंह में पानी भर आता।

तृतीय प्रकरण।

स्टेशन पर पहुंच एक टिकट आगरे के लिए खरीद मैं प्लेटफार्म पर घूमने लगा। घूमते २ एक मनुष्य एक गठरी लिये शीघ्रता से मेरे बगल से निकल गया। एक झलक जो मैंने उसके चेहरे की देखी तो मालूम हुआ कि चित्र से उसकी सूरत बहुत कुछ मिलती है, फिर क्या था मैं उसके पीछे चिपट गया और जिस डब्बे में वह बैठा था उसी के सामने आसन मार घूर २ कर उसे देखने लगा। ध्यान-पूर्वक देखने से मालूम हुआ कि वह मनुष्य बड़ी जल्दी में है और मेरे घूरने को देखकर कुछ सिटपिटा सा गया है। अब तो मेरा सन्देह पूरा हो गया, सोलह आना जासूस की तरह मैं अपने शिकार पर आंख डटा कर देखता रहा। रेल ने सीटी दी। स्टेशन निकट आगया। प्लेटफार्म पर रेल के ठहरते ही वह मनुष्य गठरी सहित रेल से उतर गया। मैं भी झट उतर कर पीछे २ चला। वह वृक्षों की आड़ में छिपता हुआ बहुत दूर निकल गया। मैं भी पीछे पीछे चलता गया। एक स्थान पर पहुंच उसने गठरी खोली और नक़ली दाढ़ी व मूछ निकाल कर पहिन लीं। एक सफेद साफा पहिना। चूड़ीदार सफेद पायजामा पहिना। मूछों पर ताव देते हुए वह एक खासा पञ्जाबी बन गया। इस प्रकार बन ठन कर वह उलटे पांव फिर स्टेशन को लौटा। मैं भी परिछाईं की तरह चला। स्टेशन पर पहुंच वह एक दूसरे डिब्बे में बैठ गया। अब तो उसके खूनी होने में मुझे कुछ भी सन्देह न रहा। इस प्रकार भला एक अच्छा मनुष्य क्यों अपनी सूरत बदले मारा २ फिरता। अब मैं यह सोचने लगा कि किस प्रकार उसको पकड़कर पुलीस के हवाले करूं। मित्र सिद्धदास के कहने के अनुसार मैंने साहस का परित्याग न किया पर

तब भी उसकी भयानक सूरत देखकर मेरे पाँव काँपने लगे। मैं अपने मस्तिष्क को टटोल कर याद करने लगा कि ऐसे अवसर पर जासूसगण कैसे काम करते हैं। याद हो आया कि झट पकड़ कर हाथ बांध पुलीस के हवाले कर देते हैं। बस फिर क्या था। जासूसी में नाम पैदा करने के उत्साह से उत्साहित होकर मैं उसी डिब्बे पर जा धमका और खूनी महाशय से भिड़ गया। इतने में रेल सीटी देकर चल दी। हम दोनों की कुस्ती होती रही। वह मनुष्य भी बड़ा ताकतवर था, खूब भिड़ गया। एक बार उसके पांव फिसल गये और अवसर पा मैं उसपर सवार हो गया। अब क्या था वह परास्त हो गया और मारे खुशी के मैं फूल गया। अब तो मेरे छाती पर सोने चांदी के पदक लटकना क्या कठिन था। मैं सोचने लगा कि अब बड़े बड़े साहब लोग मुझसे हाथ मिलावेंगे और समाचारपत्रों में मेरा नाम चल निकलेगा, यह सोंचते सोंचते दूसरा स्टेशन निकट आ गया। शोर गुल सुन कर पुलीस कमरे में आ गई। मैंने आसामी की ओर अंगुली लगाकर पुलीस को कहा कि यह खूनी है और मैं डिटैक्टिव सिद्धदास का अनुचर अथवा गुप्तचर हूं। पुलीस यह सुनकर मुझे और उसे दोनों को स्टेशन मास्टर के पास ले गई। उस मनुष्य ने जेब से एक कार्ड निकाला और स्टेशन मास्टर को दे दिया। कार्ड को पढ़कर स्टेशन मास्टर खिलखिला कर हँस पड़े और उन्होंने उस मनुष्य को फिर गाड़ी में चढ़ने की आज्ञा दे दी। मैं कितना चिल्लाया कि यह खूनी है पर एक न सुनी गई। लाचार हो मुंह मार मैं बैठा रहा।

उपसंहार।

वह मनुष्य जिसको मैंने खूनी समझा था प्रसिद्ध पारसी थियेटर का मैनेजर व अभिनयकर्ता निकला। यह सुनकर मेरी तो जान निकल गई। फिर मैंने कभी जासूसी का नाम न लिया। मेरे मित्र ने भी मुझे फिर कभी कोई और मामला सौंपने का कष्ट न किया। जब जब मैं पिछली बातें सोचता हूं मेरी हँसी थमती ही नहीं। खैर अब फिर मैंने वही अपना पुराना व्यवसाय आरम्भ कर दिया है।

हमारा पुस्तकालय।

हिन्दी महाभारत।

आजतक हिन्दी में अनेक महाभारत की पुस्तकें निकली हैं पर हिन्दी प्रेस, प्रयाग ने जो यह 'हिन्दी-महाभारत' पुस्तक प्रकाशित की है सो कई बातों में अनोखी है। इसकी भाषा इतनी सरल है कि छोटे छोटे बालक और कम पढ़ी स्त्रियां भी आसानी से पढ़कर समझ सकती हैं। लेखशैली बड़ी मनोहर है। सब से बड़ी खूबी इस पुस्तक में यह है कि यह सब से सस्ती है। सवा चार सौ पृष्ठों की भारी पोथी का मूल्य केवल ।।।) बारह आने रक्खा है। ऐसी उपयोगी पुस्तक को इतने सस्ते भाव में बेंचने के लिए हम हिन्दी प्रेस की प्रशंसा करते हैं। प्रत्येक हिन्दी जाननेवाले को यह पुस्तक पढ़नी चाहिये। हम चाहते हैं कि इस पुस्तक का घर २ वैसा ही प्रचार हो जाय जैसा रामायण का है। पुस्तक के मिलने का पता—

मैनेजर हिन्दी प्रेस, प्रयाग।

सम्पादकीय टिप्पणियां ।

कांग्रेस ।

कांग्रेस का तीसवाँ वार्षिक अधिवेशन बड़ी धूमधाम से बंबई में हो गया। सभापति का आसन सर एस० पी० सिनहा ने सुशोभित किया था। पंडाल में दर्शकों की खासी भीड़ थी। अब की बार स्वराज्य का प्रश्न ज़ोर शोर से उपस्थित होनेवाला था और इसके लोग बड़े उत्सुक दिखाई देते थे। चारों ओर इसी की चर्चा थी। सभापति महाशय का भाषण जैसा होना चाहिये वैसा न था। इसका कारण यही विदित होता है कि भारत के नूतन भावों का उन्हें पता नहीं है। भारत की राजनीति और उसके हृदय से वे कोसों दूर हैं। नव-भारत से मालूम होता है उनका परिचय भी नहीं है। स्वराज्य और होमरूल का जो गरम खून नव-भारत की रगों में बह रहा है, उसने उनके खून में गरमी नहीं पहुंचाई है। वे समझते हैं कि भारत स्वराज्य के उपयुक्त नहीं; अभी केवल कुछ सुधार उसे चाहियें। उन्हें इसका पता नहीं है कि भारत के राष्ट्रीय नौका में एक बड़ा सा छिद्र है, उसमें से निरन्तर नौका में पानी भर रहा है, पानी उलचने से—सुधार से—नौका का जल पर बना रह जाना संभव है किन्तु नौका उस दशा में सुरक्षित नहीं कही जा सकती। नौका की सुरक्षा के लिए बुद्धि कहती है कि पहिले छिद्र को बन्द कर दो, पानी का आना बन्द करो और तब पानी उलच कर बाहर करो।

एक मात्र सुधार

स्वराज्य या होमरूल है, इससे छिद्र बन्द हो जायगा अनन्तर धीरे धीरे सुधार हो सकेगा। सुधार करना—पानी उलच कर बाहर करना—जब कि पानी निरन्तर भरता जा रहा है बुद्धिमानी नहीं है, अक्ल यही कहती है कि पहिले छिद्र को बन्द करो जिसके कारण सुधारों की आवश्यकता होती है। कांग्रेस का भी यही मत है। इसको जानने के लिए स्वराज्य के प्रस्ताव पर जो वक्तृताएँ हुई हैं उन्हें पढ़ना चाहिये। देश दिन दिन दरिद्रता के पाश में जकड़ता जा रहा है, करोड़ों मनुष्य को भर पेट अन्न नहीं मिल रहा है, आत्मनिर्भरता, वीरोचित गुण जनता में से काफूर हो रहे हैं यह सब कौंसिल में सुधार और एक दो उच्चपदों के मिल जाने से न सुधरेगा, इसके लिए सब सुख के दाता और सर्वदुखमोचन "स्वराज्य" की प्राप्ति ही आवश्यक है।

काँग्रेस का यह अधिवेशन कई एक कारणों से चिरस्मरणीय रहेगा। सब से प्रथम तो अब की बार कांग्रेस ने नरम और गरम दलों को मिला देने के लिए अपने नियम ढीले कर दिये हैं। आशा की जाती है कि अब दूसरी कांग्रेस में दोनों दल सम्मिलित रहेंगे। देश के भविष्य पर इसका कैसा प्रभाव पड़ेगा यह पाठक स्वयम् सोच सकते हैं। दूसरी बात जो इस अधिवेशन को सदा जीवित रक्खेगी वह यह है कि कांग्रेस ने "आल इंडिया कांग्रेस कमेटी" को यह आज्ञा दी है कि वह

स्वराज्य

की प्राप्ति के लिए एक व्यवस्था स्कीम तैयार करे। मुस्लिम लीग की कमेटी से मिलकर स्कीम तैयार हो और फिर उसकी प्राप्ति के लिए निरन्तर आन्दोलन किया जाय। इसका अर्थ यह है कि कांग्रेस तीन दिन के बाद सो न जायगी वरन निरन्तर काम करती रहेगी।

"होमरूल लीग" के नाम पर कितने ही मनुष्य इस वर्ष बंबई पधारे थे। कितने ही ऐसे सज्जन थे जो कांग्रेस या मुस्लिम लीग के भक्त न थे। जो सुधारों के तिनकों में विश्वास नहीं

करते जो एकदम मूल पर जाते हैं और जो

कल्पवृक्ष

स्वराज्य की प्राप्ति कोही भारत के लिए एकमात्र सुधार समझते हैं। २५ तारीख़ को चौना बाग में "होमरूल लीग" की सभा होनेवाली थी किन्तु उस दिन न होकर वह २६ को हुई। देश के सभी नेता उस समय वहां पर उपस्थित थे। हिन्दू मुसलमान पारसी ईसाई भारतमाता के सभी सुपूत रुग्ण जननी की सेवा और उसके उपचार के संबन्ध में विचार करने के लिए उपस्थित थे। उस समय का दृश्य देखने ही लायक था। एक नया जीवनस्रोत वहां बहता दिखाई देता था। सभी के मुख पर एक नई अनिर्वचनीय ज्योति खेल रही थी। भिन्न रूपों में, भिन्न कपड़ों में, भिन्न शरीरों में एक ही आत्मलता, एक ही उद्देश्य जागृत दिखाई देता था। ठीक समय पर काम शुरू हुआ। माननीय बा० सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने सभापति का आसन सुशोभित किया। मिसेज़ बीसेन्ट ने अपना प्रस्ताव पढ़ सुनाया। सर नारायण चन्द्रावरकर तथा उन्हीं के दल के अन्य सदस्यों ने विरोध आरंभ किया। उनके विरोध का अर्थ यह था कि "होमरूल लीग" स्थापित होने से कांग्रेस को धक्का पहुंचेगा। होमरूल लीग कोई नई बात नहीं करेगी, वह करेगी वही जो कांग्रेस करती आई है या करनेवाली है। ऐसी अवस्था में उसका संगठन तभी न्यायानुमोदित हो सकता है जब वह उस काम को आरंभ करे जो कांग्रेस स्वयम् न करनेवाली हो। अभी काँग्रेस का अधिवेशन होनेवाला है। उसमें क्या निश्चय होगा कोई नहीं जानता ऐसी अवस्था में कांग्रेस के अधिवेशन के बाद ही जब वह काम करने से पीछे हटे, होमरूल लीग का संगठन उचित होगा। बड़ी देर तक इसी संबन्ध में बहस होती रही अन्त में सभा का अधिवेशन २६ तारीख कांग्रेस के हो चुकने तक स्थगित किया गया। २६ तारीख तक में कांग्रेस ने प्रायः वही सब करना निश्चित कर लिया जो होमरूल लीग का उद्देश्य था और इस कारण मिसेज़ बीसेन्ट ने सभा में कहा कि अब होमरूल लीग की आवश्यकता नहीं रही। इस पर बहुत वाद हुआ। बड़ी गर्मा-गर्मी रही अन्त में होमरूल लीग का अधिवेशन उस समय तक जब तक कि कांग्रेस कमेटी की सभा होकर कुछ निश्चय न हो जाय स्थगित किया गया। कहने सुनने में यह सब ठीक ही दिखाई देता है किन्तु वास्तव में यह वैसा है नहीं। शब्दों का जाल यदि हटा दिया जाय तो इसका अर्थ यह हुआ कि जो लोग यह समझते हैं कि भारत अभी स्वराज्य के उपयुक्त नहीं उनकी जीत हो गई और जो लोग यह समझते हैं कि भारत सर्वथा अपना शासन अपने हाथ में लेने के उपयुक्त है उनकी हार। होमरूल लीग तुरन्त आन्दोलन आरंभ करना चाहती थी अब यह एकप्रकार से असंभव सा होगया है। आल इंडिया कांग्रेस कमेटी स्वराज्य की अभी स्कीम तैयार करेगी, मुस्लिम लीग के सभ्यों से वह इस संबन्ध में सम्मति लेगी, फिर विचार होगा, आवश्यक परिवर्तनों के बाद उस स्कीम को वह कांग्रेस के अगले अधिवेशन में उपस्थित करेगी। तात्पर्य यह कि आन्दोलन न होगा। वर्ष भर स्कीम बनाने में जायगा। यही नरम दल के कुछ नेताओं की इच्छा भी थी

हार न मानेंगे

यह सब सत्य है किन्तु जिनका हृदय से विश्वास है कि स्वराज्य ही हमारे सब दुःखों को हर सकता है वे शब्दजाल में फंसनेवाले नहीं। काम करनेवाले हाथ पैर कटा कर लुंज होकर बैठना कब पसन्द कर सकते हैं। 'न्यू इंडिया' में स्वराज्य-संबन्धी लेखमाला निकलने लगी। मद्रास की कांग्रेस कमेटी की बैठक इसी सम्बन्ध में स्वराज्य के संबन्ध में विचार करेगी। वह अपनी स्कीम तैयार करेगी। आशा है अन्य प्रान्तीय

कमेटियाँ भी अपने कर्तव्य पालन से मुंह न मोड़ेंगी। २३ अप्रिल को प्रयाग में भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी की बैठक होगी। सभी प्रान्त के नेता उपस्थित होंगे। स्वराज्य की स्कीम के संबन्ध में विचार होगा। इस तरह से काम जारी रहेगा, लोगों को ए राज्य के सम्बन्ध में शिक्षा मिलती रहेगी और आन्दोलन होता रहेगा।

यह बहुत अच्छा होगा, समय की गति हम से यही करने को कहती है। युद्ध बहुत दिन जारी नहीं रह सकता, मित्रबल की जीत निश्चित है। ब्रिटेन में साम्राज्यसंगठन का प्रश्न उठेगा, ऐसी दशा में भारत का प्रश्न भी उठेगा। उस समय भारत के

स्वत्वों का अपहरण

न हो, साम्राज्य में उसे उसके उपयुक्त स्थान मिले इसलिए भारत को तैयारी करनी आवश्यक है। इङ्गलैंड से लड़ने के लिए नहीं, भारत सरकार से अलग अलग नहीं वरन उसे साथ लेकर और ब्रिटिश साम्राज्य और इङ्गलैंड को और शक्तिशाली बनाने के लिए। भारत के मान, उसकी मर्यादा का प्रश्न उठ खड़ा हुआ है। साम्राज्य में यदि भारत को उसके उपयुक्त स्थान न मिला तो आजतक तो लंकाशायर और मेनचेस्टर ही हम पर राज्य करते थे किन्तु साम्राज्यसंगठन के बाद हम पर राज्य करने का स्वत्व दक्षिण अफ्रिका, कैनाडा और आस्ट्रेलिया को भी हो जायगा।

कांग्रेस की भूल।

कांग्रेस वर्ष में ३६१ दिन सोनेवाली संस्था है। इसका एकमात्र कारण यही है कि कांग्रेस का समस्त कार्य अवैतनिक सज्जनों द्वारा किया जाता है। उन्हें अपने कामों से इतनी छुट्टी मिलनी कठिन है कि वे सदा कांग्रेस का काम देखते रहेंगे। इसमें इन कार्यकर्ताओं का कोई दोष नहीं देश तो जितना काम वे कर देते हैं उतने ही के लिए उनका कृतज्ञ है। कांग्रेस का काम वर्ष भर सदा होता रहे इसके लिए कितनी ही बार यह कहा जा चुका है कि वेतनभोगी कार्यकर्ता रक्खे जायँ जिन्हें कांग्रेस के काम के सिवा संसार में अन्य कोई काम करना न रहे। यह प्रायः सभी देश के शुभचिन्तकों की सम्मति है। अब की बार आशा थी कि कुछ इस प्रकार का प्रबन्ध हो जायगा किन्तु खेद से कहना पड़ता है कि इस तरफ लोगों का ध्यान ही नहीं गया और कोई नूतन प्रबन्ध न हो सकेगा। अप्रिल में "आल इंडिया कांग्रेस कमेटी" की बैठक होनेवाली है हम आशा करते हैं कि सभा इस संबन्ध में भी कुछ निश्चय कर देगी।

मि० तिलक और स्वराज्य।

लोग कितनी ही दृष्टि से मि० तिलक को देखते हैं। कोई समझता है कि वे चाहते हैं कि भारत एक दम स्वतंत्र हो जाय, कोई कहता है कि वे चाहते हैं कि अंगरेज़ इसी दम भारत से रवाना हो जायँ, कोई कहता है कि वे चाहते हैं स्वराज्य जिसमें भारत को भारत के संबन्ध में सब कुछ करने का पूरा अधिकार हो। बातें ये नहीं हैं, वे स्वप्न देखनेवाले नहीं हैं। अभी पूना में सहयोगी "लीडर" के सम्पादक मि० सी० वाई० चिन्तामणि का एक व्याख्यान हुआ था। मि० तिलक ने सभापति का आसन सुशोभित किया था। स्वराज्य के संबन्ध में चर्चा करते हुए उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि वे चाहते हैं कि १८५८ के एक्ट में ऐसे समुचित परिवर्तन कर दिये जायँ जिससे भारतवासियों को अपना शासन करने का अधिक से अधिक अवसर प्राप्त हो, उन्होंने यह भी कहा है कि गवर्नमेंट को यह भी विदित कर देना चाहिये कि हम, बीस

या पचास वर्ष बाद वह भारतवासियों को अपना शासन आप करने का पूर्ण अधिकार दे देगी जैसा कि फिलिपाइन द्वीप के संबन्ध में अमेरिका ने किया था। यह मि० तिलक की ही राय हो सो भी नहीं। अमेरिका के धनकुबेर मि० कारनेगी ने भारत के संबन्ध में अपना मत प्रगट करते हुए अभी कहा है:—

"If India be properly guided, no violent revolution need be feared. The movement towards independence would be orderly and slow, although irresistable...The true policy of Britain is to say some day to India, as she said to Canada and Australia, that if she ever feels that the time has arrived when she must establish Government for herself, so be it. It is because this had been said to the British self-governing colonies that they remain loyal colonies today. Proclaim Coercion and the part of America will soon be played by them again. When India has been told this the effect will be as it has been with the colonies—to keep her closer and to keep her longer than otherwise within the Empire."

जो लोग मि० तिलक की ओर अँगुली उठाया करते हैं उन्हें ऊपर की बातों को समझना चाहिये।

मुस्लिम लीग।

मुस्लिम लीग का भी अधिवेशन बंबई में हो गया। आरंभ से ही इसके संबन्ध में विरोध था। कुछ अदूरदर्शी, स्वार्थप्रेरित लोग यह नहीं चाहते थे कि बंबई में अधिवेशन हो। कितनेही कारण इसके लिए बतलाये जाते थे किन्तु जहां तक हम समझते हैं कारण यही था कि वहां कांग्रेस होनेवाली थी और इससे बहुत कुछ संभावना थी कि दोनों भाई भविष्य में मिलकर चलना निश्चय करलें। इसका सुबूत भी हमें इस तरह से मिलता है। मुस्लिम लीग के अधिवेशन में द्वितीय दिन जब कुछ गुंडों ने उपद्रव मचाना शुरू किया तो उनका कहना यही था कि मि० मज़हरुलहक काफिर हैं। काफिरों को मंडप में उन्होंने बुला कर बैठाला है। यदि काफिर न होते, यदि उनसे मिलजाने की संभावना न होती तो मुस्लिम लीग में गड़बड़ न मचती। किन्तु विरोधियों के हाथ कुछ न आया। यह सत्य है कि उनके कारण एक दिन अधिवेशन स्थगित कर दिया गया किन्तु दूसरे दिन ताजमहल होटल में मुस्लिम लीग के सदस्यों ने सम्मिलित होकर अपनी कार्यवाही पूरी कर डाली। मुस्लिम लीग ने अपनी कमेटी को आज्ञा देदी कि वह स्वराज्य की स्कीम तैयार कर काफिर भाइयों से मिलकर उसपर विचार करे और फिर स्वराज्य के संबन्ध में आन्दोलन करे। इस तरह से विरोधियों के मन की मन ही में रह गई।

प्रेस एसोसियेशन।

बंबई में इस बार एक प्रेस एसोसियेशन की भी नीव पड़ गई है। प्रेस एक्ट की छुरी की धार को गोठिल करना तथा प्रेस-संबन्धी अन्य बातों पर विचार करना इस एसोसियेशन का कर्तव्य होगा। यह भी तय हुआ है कि प्रेस के प्रतिनिधियों का एक दल श्रीमान् वाइराय की सेवा में उपस्थित होकर प्रेस एक्ट की कठिनाइयों को उनपर प्रगट करे और उनसे प्रार्थना करे कि प्रेस एक्ट के जुल्म को वे कम करें। आवश्यक काम को आरंभ करने के लिए २०००) का चन्दा भी हो गया है। ईश्वर इस एसोसियेशन को उसकी कार्यवाही में सफलता प्रदान करे।

हिन्दू सभा।

सोते सोते हिन्दू भी जाग पड़े हैं। अपने स्वत्वों की रक्षा, अपनी हितचिन्ता ने उन्हें भी जागकर काम करने पर विवश किया है। इसी का फल है कि अबकी बार बंबई में सब कान्फरेन्सों के साथ ही साथ हिन्दू सभा का भी अधिवेशन हो गया। सभापति का आसन माननीय मालवीय जी ने ग्रहण किया था। अनेक प्रस्ताव पास हुए, प्रायः सभी प्रान्त के हिन्दू सभा में योग दे रहे थे। काम अच्छा हुआ है, किन्तु हिन्दू सभा यदि हिन्दुओं में ऐक्य न स्थापित कर सकी, यदि हिन्दू सभा एकत्र होकर भी मतभेद, ऊँचनीच भेद और दुनियाभर के वैमनस्य पैदा करनेवाले भाव बने रहे तो हिन्दू सभा को सफलता कठिनता से होगी। हिन्दुओं में एकता स्थापित करने के लिए एक भाव होना चाहिये जिससे सब भाई प्रेरित हों, एक नद होना चाहिये जिसमें सब भाई एक मत से बह सकें और एक महत आकांक्षा होनी चाहिये जिसके नाम पर हम लोग अपने मतभेदों का बलिदान कर सकें। यदि हम लोग यह नहीं कर सकते, यदि कोरे धर्म की पुकार कर उसके नाम पर और उसके नाम की रोटी खानेवाले ही हमारे नेता होंगे, यदि हमारे नेता वे ही होंगे जो स्वार्थ से अंधे हो रहे हैं तो फिर कुछ होना जाना नहीं है।

अनिवार्य सैनिक सेवा

का बिल मि० एस्क्विथ ने पार्लामेंट में उपस्थित कर दिया। कारण इसका यह है कि हिसाब लगाकर देखने से विदित हुआ है कि अविवाहित लोग विवाहितों की अपेक्षा कम संख्या में सेना में भरती हुए हैं। ऐसा क्यों हुआ इस सम्बन्ध में हम अपनी सम्मति कुछ न देंगे। हम केवल इतना ही कहेंगे कि यदि भारत में भी सैनिक सेवा अनिवार्य कर दी जाय या भारतवासी युवकों को स्वयंसेवक बनकर साम्राज्य की सेवा करने का अवसर दिया जाय तो इंगलैंड के मार्ग की बहुत सी कठिनाइयाँ दूर हो जायँ।

षष्ठ साहित्य-सम्मेलन।

षष्ठ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग में बाबू श्यामसुन्दरदास के सभापतित्व में हो गया। ८।१० दिन की तैयारी में सम्मेलन जैसा हो सकता था वैसा ही हुआ। बहुत थोड़े साहित्य-सेवी उपस्थित हो सके। एक महत्वपूर्ण काम यह हुआ कि स्वर्गीय पं० बालकृष्ण भट्ट और राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' के स्थायी स्मारक के पदकों के लिए लगभग ७००) का चन्दा हो गया जिसका अधिकांश भाग प्रयागनिवासियों ने 'अपने घर ही से' दिया है। लगभग २० प्रस्ताव स्वीकृत हुए परन्तु हमें खेद के साथ कहना पड़ता है कि सम्मेलन के प्रस्ताव भी प्रायः कांग्रेस के से कागज़ी प्रस्ताव ही होते हैं। उनको व्यावहारिक रूप देने या दिलवाने के लिए यथेष्ट चेष्टा नहीं की जाती। प्रयाग विश्वविद्यालय देशीभाषाओं के प्रति अपनी उपेक्षा के लिए अच्छी तरह बदनाम है और हम आशा करते हैं कि बाबू श्यामसुन्दर दास की वक्तृता के उस भाग पर सरकार ध्यान देने की कृपा करेगी जिसमें इस महत्वपूर्ण विषय की चर्चा की गई है। यथार्थ बात तो यह है कि षष्ठ सम्मेलन का लाहौर ही में होना उचित था परन्तु इस सम्बन्ध में अब दुःख प्रकाश करने की अपेक्षा लाहौर के उर्दू पत्रों की इस प्रकार की कामना की सफलता के लिए प्रार्थना करना ही अच्छा प्रतीत होता है, जैसी कि सहयोगी 'हिन्दुस्तान' ने प्रकट की है:—

"इसका जवाब सिर्फ यही हो सकता है कि पंजाबवाले एक बड़ा शानदार जलसा चन्द

माह के अन्दर ही करें और साबित करके दिखलायें कि चन्द खास अखबार (महाशय) हिन्दी की तरक्की के ठीकेदार नहीं हैं, बल्कि अबले पंजाब भी दिलोजान से अपनी मातृभाषा की बेहतरी चाहते हैं।"

युद्ध के कारण और इतिहास।

इस लेख के साथ जो पत्र था उसे हम नीचे छापे देते हैं:—

"……

पुरानी रीति के अनुसार नहीं, क्योंकि आजतक मैं केवल आपके नूतनवर्ष की संख्या में एक लेख भेजा करता था, किन्तु रीति के विपरीत इस वर्ष कुछ समय पहिले ही मैं लेख भेज रहा हूं। आपकी आज्ञानुसार लेख "युद्ध के कारणों के सम्बन्ध में ही है। रीति के विपरीत लेख भी अबकी बहुत बड़ा है। लेख काहे को पूरा पोथा है और आशा है क्रमशः छापने में लेख कई संख्याओं में चलता रहेगा। आपात से मैं "जेनेवा" आया था। यहां से कुछ समय के लिए जर्मनी चला गया था किन्तु युद्ध छिड़ते ही भाग कर फिर यहीं आ गया हूं। इस प्रकार से आपका पुराना "फ्राँस-प्रवासी" अब "जेनेवानिवासी" हो गया है। पूर्वार्ध छापिये समय से उत्तरार्द्ध भी भेज दूंगा। आपके पास पहुंचना न पहुंचना सेंसर के आधीन है। अस्तु। अब

युद्ध के कारण और इतिहास

पर ध्यान दीजिये……।"

लेख कैसा है, वह तटस्थ का लिखा हुआ है या नहीं, इस संबन्ध में हम कुछ नहीं कह सकते; पाठक स्वयं विचार कर लें। हमें इतना ही कहना है कि लेख के पढ़ने से बहुत सी गुप्त बातों का रहस्य खुल जायगा, युद्ध की बातों को ठीक २ समझने में सहायता मिलेगी, साथ ही बहुत सी ऐतिहासिक बातें हम लोगों को मालूम हो जायँगी। इसके बाद इतना और कहना है कि यथाशक्ति जो कुछ आया है और आवेगा उसे हम बिना बहुत काट छांट के छापते जायँगे।

निर्लज्ज धृष्टता।

सदा के मित्र "इङ्गलिश मैन" ने भी कांग्रेस की कार्यवाहियों पर अपनी सम्मति दी है। उसने स्वप्न देखा है कि शिक्षित भारतवासी स्वराज्य के लिए पागल नहीं हैं और वे धीरे धीरे सुधार पाने में ही संतुष्ट हैं। सहयोगी ने लज्जा को तिलाञ्जलि दे यह लिखने की भी धृष्टता की है कि:—

A country which is unable as yet to stand by itself in all things, to finance itself, to defend itself is obviously not ready to govern itself."

अर्थात् जो देश अपने सहारे नहीं खड़ा रह सकता, जो अपने लिए धन का भी प्रबन्ध नहीं कर सकता, जो अपनी रक्षा भी नहीं कर सकता वह स्वशासन साफ ही साफ नहीं कर सकता…।"

मालूम नहीं वह लिखते सहयोगी को शर्म क्यों नहीं आई। जो देश अपने पैरों आप खड़ा होने नहीं पाता, जिसे अपने शासन में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं, जिसे अपने आय, व्यय में बजट बनाने में कोई हाथ नहीं, जिसे विदेशी मालों को देश में आने देने के लिए अपने घर में कर लगाना पड़ता है, जिसके रुपये से विदेशी लोग उसके घर में रेल चलाते हैं और लाभ उठाते हैं, जो अपना रुपया अपनी इच्छानुसार नहीं खर्च कर सकता उसके लिए यह कहना कि वह इन सब कामों को कर नहीं सकता घाव पर निमक छिड़कना नहीं तो क्या है। जिस देश के निवासी अस्त्र शस्त्र रखने से वर्जित हों, जहां के नवयुवक 'स्वयं सेवक' बनने

को तरसते हों, जहां अब आईन की तलवार उनके सर पर एक धागे के सहारे लटकती हो, उस देश के सम्बन्ध में यह कहना कि वह अपनी रक्षा आप नहीं कर सकता, जलती कड़ाई से निकालकर उसे चूल्हे में गिरा देने के बराबर है कि नहीं।

समय बलवान है और "इङ्गलिश मैन" जो कुछ चाहे कह सकता है इसके सिवा और हम कहीं क्या सकते हैं।

हिन्दू विश्वविद्यालय

की नींव चौथी फरवरी को पड़ेगी। सब सामान धूमधाम से हो रहा है। चन्दा भी एकत्र किया जा रहा है। अभी इसी सम्बन्ध में माननीय मालवीयजी मद्रास और बम्बई पधारे थे। दोनों स्थानों में व्याख्यान हुए। मद्रास में श्रोताओं की संख्या प्रायः दस सहस्र थी। चन्दा उसी समय ६०,०००) का हो गया। एक कमेटी चन्दा लिखाने और जमा करने के लिए संगठित हो गई है। बम्बई में भी ८ तारीख को व्याख्यान हुआ। वहां भी ६१,०००) चन्दा हो गया है। मद्रास की भांति वहां भी एक कमेटी बन गई है। एक करोड़ शीघ्र एकत्र हो जाना चाहिये। ईश्वर माननीय मालवीयजी को उनके प्रयोग में सफल करे।

यूरोप के प्रसिद्ध लेखक, नाटककविता और खरा कहनेवाले आर्ज बरनार्ड शा के नाम से पाठक परिचित हैं। सेंसर ने उनके एक नये नाटक "माइकेल ओलेफर्टी वी० की०" को अपने पंजे से दबाया है। सच्ची बातों और खरी बातों को अब भी लोग सहन नहीं कर सकते हैं। आरंभ में "मिसेज़ वारेन्स प्रोफेशन" नामी नाटक अमेरिका में बन्द किया गया था। मामला चलने पर जजों ने तय किया कि वह अश्लील नहीं। अब इङ्गलैंड में यह रोका गया है। इङ्गलैंड में इबसन कृत "घोस्ट" बहुत दिन हुए रोका गया था। अब बहुत दिनों बाद यह नाटक रोका गया है। फल कुछ न होगा लोग अब अधिक संख्या में उसे देखें और पढ़ेंगे।

विशेष अङ्क।

विशेष अङ्क के संबन्ध में कितने ही पत्र आरहे हैं। कोई पूछता है किस मास में निकलेगा, कोई पूछता है ग्राहकगण यदि एक से अधिक संख्या खरीदना चाहेंगे तो उन्हें क्या मूल्य देना पड़ेगा। इन सब बातों के संबन्ध में हमें इतनाही कहना है कि अङ्क शीघ्रही निकलेगा। देर इस कारण से हो रही है कि लो० तिलक, लाला लाजपतराय, मिसेज़ बीसेन्ट, श्रीयुत केलकर आदि के लेख अभी नहीं प्राप्त हुए हैं। मूल्य के संबन्ध में ग्राहकों को एक प्रति से अधिक के लिए अधिक मूल्य देना होगा, दूसरी प्रति उन्हें साधारण मूल्य पर न मिल सकेगी।

049/2V2

45-62

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग, में बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित हुई।